श्रीश्रीगौरनित्यानन्दौ जयतः

श्रीश्रीचैतन्यभागवत

o

मध्यखण्ड

jj

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में गयाधाम से लौटने पर महाप्रभु क प्रेमविकार, विद्यार्थियों के समीप उनके द्वारा सब प्रकार के शब्दों की कृष्ण–तात्पर्यपर व्याख्या और कृष्णसंकीर्तन की शिक्षा आदि वर्णित है।

गयाधाम से वापिस आने पर गया के रहस्य का वर्णन करते समय प्रभु ने सर्वप्रथम कृष्ण विरह–जन्य प्रेम के विकारों को प्रकाशित किया तथा फिर भक्तों के समक्ष अपनी तीर्थयात्रा का वर्णन किया। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर में श्रीवास–श्रीमान्–गदाधर–सदाशिव आदि भक्तों का सम्मिलन और प्रभु के कृष्ण विरहजन्य प्रेम के दर्शन से क्रन्दन एवं विस्मय, प्रभु का गंगादास पुत्र के दर्शन से क्रन्दन एवं विस्मय, प्रभु का गंगादास पण्डित तथा मुकुन्दसंजय के घर जाना, शचीमाता की पुत्र के विषय में आंशका और पुत्र के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना, शिष्यों के निकट प्रभु का "कृष्ण ही समस्त शब्दों और शास्त्रों के एकमात्र तात्पर्य हैं"–इस प्रकार का व्याख्यान, प्रभु का गंगा स्नान, भोजन के समय माता के सन्निधान में प्रभु द्वारा सर्वशास्त्रों का कृष्ण–तात्पर्यपर कीर्तन और कृष्ण बहिर्मुख मायाबद्ध जीव के भीषण गर्भावास दुःख का वर्णन, अध्यापन के समय शिष्यों के निकट कृष्ण–स्फर्ति और कृष्ण पर व्याख्यान, गंगादास पण्डित के साथ वार्तालाप के समय प्रभु द्वारा शब्द–शस्त्र की स्वकृत कृष्ण तात्पर्यपरक व्याख्या को तर्कविवाद से परे कहकर गर्वोक्ति और किसी दिन रत्नगर्भ–आचार्य द्वारा भक्ति के सहयोग से कृष्ण विषयक श्लोक का पठन और उसके श्रवण से महाप्रभु का भावावेश, फिर किसी और दिन शिष्यों के निकट धातु–संज्ञा आदि का 'श्रीकृष्ण की शक्ति' रूप से व्याख्यान एवं वार्तालाप के अन्त में उनको सदा के लिए विदाई के कारण उन शिष्यों का क्रन्दन और प्रभु का आशीर्वाद; इन सब गौरलीलाओं के स्मरण से ग्रन्थकार की खेदोक्ति एवं अन्त में शिष्यों को प्रभु द्वारा कृष्ण–संकीर्तन–रीति की शिक्षा प्रदान करना इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

(गौड़ीय–भाष्य)

o

मंगलाचरण

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ॥१॥
नमस्त्रिकालसत्याय जगन्नाथ सुताय च।
सभृत्याय सपुत्राय सकलत्राय ते नमः॥२॥

(गौड़ीय–भाष्य)

O

(१–२) गौः भा—आदि में १म अः और २य संख्या के अन्वय, अनुवाद और विवृति द्रष्टव्य है॥

श्रीगौरसुन्दर का जयगान—

जय जय जय विश्वम्भर द्विजराज।
जय विश्वम्भर–प्रिय वैष्णव समाज॥३॥
गौरचन्द्र जय धर्मसेतु महा–धीर।
जय संकीर्तनमय सुन्दर शरीर॥४॥
जय नित्यानन्देर बान्धव धन प्राण।
जय गदाधर–अद्वैतेर प्रेमधाम॥५॥
जय श्रीजगदानन्द–प्रिय–अतिशय।
जय वक्रेश्वर–काशीश्वरेर हृदय॥६॥
जय जय श्रीवासादि–प्रियवर्ग–नाथ।
जीव–प्रति कर' प्रभु, शुभ–दृष्टिपात॥७॥

(३) प.अनु०—द्विजराज श्रीविश्वम्भर की जय हो, जय हो। श्रीविश्वम्भर के प्रिय वैष्णव–समाज की जय हो।

(३) गौः भा—विश्वम्भर 'द्विजराज' एवं विश्वम्भर प्रिय 'वैष्णव–समाज',—श्रीगौरसुन्दर स्वयं परिपूर्णतम ब्रह्मण्यदेव होते हुये भी ब्राह्मण–कुलोत्तम एवं उनका प्रिय वर्ग ही अखिल–वर्णाश्रमी–गुरु परमहंस अथवा "वैष्णव–समाज" है। संस्कार–वर्जित मनुष्यों की "एकजन्मा–शूद्र" एवं संस्कार–सम्पन्न मनुष्यों की ही 'द्विज'–संज्ञा दी है। क्षत्रिय और वैश्य यद्यपि 'द्विज'–शब्द–वाच्य हैं, तथापि 'द्विजराज'–शब्द एकमात्र 'ब्राह्मण' का ही निर्देश करता है। इस जगत् की बन्धनावस्था में जीव का बीजगर्भ–समुद्भव–पाप से संस्पृष्ट होना स्वाभाविक है, इसलिए शरीरधारी जीव की नैसर्गिक (संग–द्वारा स्वभाव) पाप–प्रशान्ति के लिए उसका संस्कार आवश्यक है। भगवान् विश्वम्भर ने संस्कारों के प्रति उदासीनता, उनकी अप्रयोजनीयता और शून्यता अथवा विरोध का किसी भी दिन अनुमोदन नहीं किया। वे भक्ति के अनुकूल दैव–वर्णाश्रमाचार के ही पक्षपाती थे; अवैष्णव विचार या अदैव–वर्णाश्रमविचार उनको कभी भी प्रिय नहीं थी।

विष्णुभक्ति के अनुकूल वृत्तवर्ण या प्रकृत आश्रम–विचार को ही उन्होंने दैववर्णाश्रम धर्म के रूप में ग्रहण किया है। उसी कारण वैष्णव–समाज उनका प्रिय है। अवैष्णव समाज में कर्मकाण्ड का विशेष आदर एवं केवलद्वैतपरता लक्षित होती थी, किन्तु उनके प्रकटकाल के बहुत पहले से ही श्रीवैष्णव समाज और तत्त्ववादी वैष्णव समाज ने दाक्षिणात्य या प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। वे सद्–वैष्णव समाज या श्रीमाध्वगौड़ीय समाज के अन्तर्गत कर्नाटक देशीय विप्रकुलोद्भूत श्रीसनातन और श्रीरूप प्रभु आदि श्रीमाध्वगौड़ीय ब्राह्मणों को उन्होंने निज प्रियतम वैष्णव आचार्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है। फिर श्रीवैष्णव समाज से श्रीपाद प्रबोधानन्द और प्रियरूप में अंगीकार किया है। दक्षिण–देशीय श्री–सम्प्रदाय और ब्रह्म–सम्प्रदाय श्रीगौरसुन्दर को प्रिय होने पर भी निजप्रिय श्रीगौड़ीय वैष्णव–समाज ही

उनका अतिशय आदरास्पद है। कालक्रम से गौड़ीय–वैष्णव समाज की धारा और कालक्रम से गौड़ीय–वैष्णव समाज की धारा और पद्धति स्मार्त–विचारानुसार पंचोपासकगण के उपद्रव के फलस्वरुप विशेषरूप से विशृंखल हो गई थी, इसलिए उन्होंने श्रीमाध्वविप्र–समाजोद्भूत श्रीमद् सनातन गोस्वामिपाद को श्रीहरिभक्तिविलास–नामक वैष्णव–स्मृति– संकलन का आदेश प्रदान किया। श्रीरामानुजीय वैष्णव–समाज में आविर्भूत श्रीपाद गोपालभट्ट गोस्वामी श्रीमद् सनातन–रूप प्रभुद्वय के अत्यन्त प्रिय थे, इसलिए श्रीमद् सनातन गोस्वामी प्रभु ने निज संकलित "श्रीहरिभक्तिविलास" ग्रन्थ का अपने अनुगत दास श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के द्वारा संवर्द्धन कराया। इसलिए गौड़ीय–वैष्णव–स्मृति और गौड़ीय–वैष्णव–सामाजिक विधि–शास्त्र 'हरिभक्तिविलास' और उसके अनुकूल 'सत्क्रियासार–दीपिका' और 'संस्कार–दीपिका' के रूप में ही गृहीत होते हैं। श्रीगौरसुन्दर के अनुगत वैष्णव समाज में हम कुछेक विषयों का वैशिष्ट्य निरूपित करते हैं। स्मार्तगण की पद्धति–द्वारा वैष्णव–स्मृति को अनेक प्रकार से बाधा दिये जाने के कारण श्रीध्यानचन्द्र, श्रीरसिकानन्द एवं अधुनातन श्रीश्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर महाशय ने श्रीगौरानुगत गौड़ीय–वैष्णव समाज के प्रकृत शाश्वत मंगल की आकांक्षा की है।

श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर–द्वारा गौड़ीय–वैष्णव समाज की स्थापना श्रीचैतन्याब्द की पंचम शताब्दी के प्रारम्भ में कलकत्ता महानगरी में की गई थी। तब भी गौड़देश में आपको गौड़ीयजन कहने वालों ने निज सम्प्रदाय की किसी भी बात की चर्चा करनी प्रारम्भ नहीं की थी। इसके कुछ समय बाद ही कलकत्ता में 'गौराङ्ग–समान' नामक एक नवीन सम्प्रदाय सनातन कल्पित नवीन–स्मृति के सहयोग से स्थापित हुआ था। गौड़ीय–वैष्णव समाज, श्रीविश्व वैष्णव–राजसभा की शाखा विशेष है। आधुनिक तार्किक–सम्प्रदाय अदूरर्शिता के कारण कहते रहते हैं कि, प्राचीन ग्रन्थों में "वैष्णव समाज"–शब्द का व्यवहार नहीं है, वक्तव्य विषय जानने के लिए इस महाग्रन्थ स्थित इस अंश को पढ़ने पर उनको अपनी अनभिज्ञता का बोध होगा और वह अपसारित होगी। गौड़ीय–वैष्णव–समाज के महानुभावों की विशेषता यह है कि, उन्होंने पूर्व–पूर्व आचार्य–चतुष्टय की 'ऐकान्तिकता', 'वैष्णवरचार', 'सशक्तिक–शक्तिमद् विग्रहानुगत्य' (शक्तियुक्त शक्तिमद्विग्रह का आनुगत्य), और 'तदीयता' (भक्त भगवान् के आनुगत्य) को सम्पूर्ण भाव से ग्रहण करके जगत् में अहैतुक भजन सौन्दर्य का प्रचार किया है। केवलाद्वैत मायावाद–मूलक नित्य–ईश–सेवन–

वर्जित नीरस, शुष्क निर्विशेष ज्ञान की वैष्णवत्व की उपयोगिता, भक्तिशास्त्रों की सर्वोत्तमता, कर्मज्ञानावृत विद्ध–पंचोपासना आचार्यो के प्रचार्य विषयों में विस्तारित नहीं हुये, वे सब गौड़ीय वैष्णवों की विचार–धारा में लक्षित होते हैं। किन्तु गम्भीर दुःख का विषय यह है कि, शुद्धभक्ति–विरोधियों के दम्भ औ मात्सर्य ने शुद्ध–वैष्णव–सम्राट् श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी और उनके अनुगत श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर महाशय ने गौड़ीय–वैष्णव–

समाज में प्रविष्ट बहुत से कुत्सित आचार विचारों को सब प्रकार से विदूरित किया है। इसलिए वर्तमान युग में इस शुद्ध–वैष्णव–राजगण और निष्कपट, प्रिय अनुगतगण को ही विश्वम्भर प्रिय वैष्णव–समाज कहा जा सकताहै। इसके प्रतिकूल–चेष्टापरायण

विरोधीजन-गौड़ीय-वैष्णव समाज के अशेष अमंगल-साधनकारी हैं, अर्थात् वे ही श्रीगौरसुन्दर के प्रिय-विरोधी, प्रिय हैं।

(४) **प.अनु०**—धर्मसेतु महाधीर, श्रीगौरचन्द्र की जय हो। उनके संकीर्तनमय सुन्दर शरीर की जय हो।

(४) **गौः भा**—धर्मसेतु-लौकिक या आर्थिक-धर्म और अलौकिक अथवा पारमार्थिक-धर्म, इन दोनों में वृहद् अन्तर विद्यमान है। इसीलिए भगवान् गौरसुन्दर जगदगुरु के शीर्ष स्थान का आसन ग्रहण करके लौकिक धार्मिकगणों को लोकोत्तर वैकुण्ठ-धर्म में ले जाने के लिए सेतुस्वरूप हुये हैं। केवलद्व ैतवादी के साथ भक्त सम्प्रदायी महानुभावों का जो मतभेद है, उनके मीमांसक रूप से हम गौरसुन्दर को 'अचिन्तय-भेदाभेद'-विचार के मूल महापुरुष के रूप में लक्ष्य करते हैं। श्रीगौरहरि ने आत्मधर्म-विरोधी, मनः कल्पित, नीति-रहित किसी भी बात का अवलम्बन करके धर्मराज्य में प्रवेश करने की व्यवस्था नहीं की है। अधर्म-सेतु के अवलम्बन-द्वारा जो प्राकृत-सहजिया-मतवाद और जड़ेन्द्रिय-तर्पण ाभिलाष 'धर्म' के नाम पर समाज में अबाध रूप से चल रहा है, वह 'माटिया', मृण्मय अथवा भौम अर्थात् पार्थिव ब्राह्यज्ञान से पुष्ट है। सनातन धर्मसेतु भगवान् श्रीगौरहरि ने लौकिक-विचारों से पार होकर किस प्रकार से भगवान् अधोक्षज की सेवा में पहुँचना होगा, उसके सेतुस्वरूप हरिसंकीर्तन का प्रचार किया है।

महाधीर,—गौरसुन्दर ने तर्कपथ का आवाहन नहीं किया, अपितु वे श्रौतपथ के पुनः प्रवर्तक हैं। उन्होंने कर्मियों की भांति जड़ेन्द्रिय-तर्पण-परायण चंचल मनोधर्म का प्रदर्शन या प्रचार नहीं किया, अर्थात स्वर्ग-सुखादि नश्वर जड़ीय अनित्य जागतिक अभ्युदय-प्राप्ति आदि के सम्बन्ध में कभी भी, किसी को भी, किसी प्रकार का उपदेश नहीं दिया। जिह्वा, उदर और उपस्थ को जय करने का नाम ही 'धृति' या 'त्रिदण्ड धारण' है। उस प्रकार के कायमनोवाक्य वेग धारणरूप धृति से वर्जित चंचल धर्मी मानव अप्राकृत हरिभक्ति की बात कुछ भी न समझ सकने के कारण प्राकृत विचार या बुद्धि के सहयोग से जिस प्रकार के नानाविध कुतर्कों का आवाहन करते हैं, उस प्रकार के कुतर्कों को कभी प्रश्रय न देने के कारण गौरसुन्दर—धीर त्रिदण्डिगण के आराध्य महाधीर हैं। फिर गृहब्रती अथवा गृहमेधि-सम्प्रदाय और सुनीति-विगर्हित गौरनागरी सम्प्रदायों के द्वारा अत्याचार-वशतः गौरसुन्दर को असंयत, गृहासक्त और नागर-रुप में विचारने पर भी वे उनके अभीष्ट मनः कल्पित विषय से बहुत दूर अवस्थान करते हैं, इसलिए भी उनको 'महाधीर' कहा जाता है।

संकीर्तनमय,—स्वयं भगवान् कृष्णस्वरूप होने पर भी गौरसुन्दर ने विप्रलम्भरस में सर्वक्षण निमग्न रहकर कृष्णनामकीर्तन-विग्रहरूप से महाभागवतलीला में गौरलीला को प्रकट किया है एवं एकमात्र नामसंकीर्तन-यज्ञ से ही वे आराध्य मूर्ति में शब्द और परब्रह्म हैं।

(५-७) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्राणधन बान्धव की जय हो। श्रीगदाधर-अद्वैत के प्रेमधाम की जय हो। श्रीजगदानन्द के अतिशय-अद्वैत के प्रेमधाम हो। श्रीवक्रेश्वर-काशीश्वर के हृदय की जय हो। श्रीवासादि प्रियवर्ग के नाथ आपकी जय हो, जय हो। हे प्रभु! आप जीवों के प्रति शुभ-दृष्टिपात कीजिये।

गौर के कृष्ण कीर्तन-लीलात्मक मध्यखण्ड

की कथा के श्रवण से जीव के अज्ञानतम का नाश–

मध्यखण्ड–कथा येन अमृतेर खण्ड।
ये कथा शुनिले घुचे अन्तर–पाषण्ड॥८॥

(८) प. अनु०—मध्यखण्ड की कथा जैसे अमृत का ही खण्ड है। जिस कथा को सुनने से हृदय का पाखण्ड रूप अज्ञान विदूरित हो जाता है।

कृष्णसंकीर्तन–लीलात्मक मध्यखण्ड की कथा–श्रवण के लिए पाठकों से अनुरोध–

मध्यखण्ड कथा भाइ शुन एकचित्ते।
संकीर्तन आरम्भ हइल येन मते॥९॥

(९) प. अनु०—हे भाइयो! जिस प्रकार से संकीर्तन का आरम्भ हुआ, उस मध्यखण्ड की कथा को एकचित्त होकर सुनिये।

गया से प्रभु का प्रत्यागमन, सभी का हर्ष और कुशल–सम्भाषण–

गया करि' आइलेन श्रीगौरसुन्दर।
परिपूर्ण ध्वनि हैल नदीया–नगर॥१०॥

(१०) प. अनु०—इस ध्वनि से समस्त नदिया–नगर परिपूर्ण हो गया कि श्रीगौरसुन्दर गया की मात्रा से वापस लौट आये हैं।

श्रीगौरसुन्दर के दर्शन से समस्त नवद्वीपकाउल्लास और सभी के प्रति हर्ष–सम्भावना और अपनी तीर्थयात्रा का वर्णन–

धाइलेन यत सब आप्तवर्ग आछे।
केह आगे, केह माझे, केह अति पाछे॥११॥
यथायोग्य कैला प्रभु सवारे सम्भाव।
विश्वम्भरे देखि' सबे हइला उल्लास॥१२॥
आगुवाड़ि' सबे आनिजलेन निज–घरे।
तीर्थ–कथा सबारे कहेन विश्वम्भरे॥१३॥

(११–१३) पु. अनु०—जितने भी बन्धु–बान्धव थे, वे सभी द्रुतगति से चले आये, कोई आगे, कोई बीच में, तो कोई पीछे आया।

प्रभु ने सबके साथ यथायोग्य सम्भाषण किया। विश्वम्भर को देखकर सब में उल्लास छा गया। सभी को आगे बढ़कर सम्मान से प्रभु अपने घर ले आये और विश्वम्भर सबसे तीर्थ–कथा का वर्णन करने लगे।

(१३) गौः भा—आगुवाडि,—आगे बढ़कर या अग्रसर होकर, सम्मुख गमन करके।

प्रभु द्वारा सबको सविनय निज प्रत्यागमन कथन—

प्रभु बोले,—''तोमा' सबाकार आशीर्वादे।
गया–भूमि देखिया आइनु निर्विरोधे॥''१४॥

(१४) प. अनु०—प्रभु ने कहा,—"आप सबके आशीर्वाद से मैं निर्विघ्न रूप से गया तीर्थ का दर्शन कर आया हूँ।"

सबका सन्तोष और आशीर्वाद–ज्ञापन—

परम–सुनम्र हइ' प्रभु कथा कय।
सबे तुष्ट हैला देखि' प्रभुर विनय॥१५॥
शिरे हस्त दिया केह 'चिरजीवी' करे।
सर्व–अंगे हस्त दिया केह मन्त्र पड़े॥''१६॥
केह वक्षे हस्त दिया करे आशीर्वाद।
''गोविन्द शीतलानन्द करुन प्रसाद॥''१७॥

(१५–१७) प. अनु०—परम विनम्र होकर प्रभु अपनी यात्रा–कथा का वर्णन कर रहे हैं और उनके विनय को देखकर सभी प्रसन्न हो रहे हैं। कोई प्रभु के मस्तक पर हाथ रखकर चिरजीवी होने का आशीर्वाद देने लगा, कोई समस्त अंगों पर हाथ लगाकर मन्त्र पढ़ने लगा और कोई वक्ष पर हाथ रखकर यह

आशीर्वाद देने लगा कि,—"गोविन्द तुम को शान्ति और आनन्द प्रदान करें।"

प्रभु के दर्शन से माता और ससुराल वालों को महा-आनन्द—

हइला आनन्दमयी शची भाग्यवती।
पुत्र देखि' हरिषे ना जाने आछे कति॥१८॥
लक्ष्मीर जनक-कुले आनन्द उठिल।
पतिमुख देखिया लक्ष्मीर दुःख गेल॥१९॥
सकल-वैष्णवगण हरिष हइला।
देखितेओ सेइक्षणे केह केह गेला॥२०॥

(१८-२०) प. अनु०—पुत्र को देखकर भाग्यवती श्रीशचादेवी आनन्दमय हो उठीं और हर्ष से अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनको यह भी ज्ञान नहीं रहा कि वे है कहाँ। श्रीलक्ष्मी (विष्णुप्रिया) के जनक-कुल में भी आनन्द छा गया और पति का श्रीमुख-दर्शन कर लक्ष्मी का दुःख विदूरित हो गया।

सभी वैष्णववृन्द भी हर्षित हो उठे। उसी समय उनके दर्शन के लिए कोई-कोई वहाँ भी आपहुँचे।

यथायोग्य सम्भाषण के बाद सभी को विदाई देना—

सबाकारे करि' प्रभु विनय-सम्भाष।
विदाय दिलेन सबे, गेला निजवास॥२१॥

(२१) प. अनु०—प्रभु ने सभी के साथ विनयपूर्वक सम्भाषण किया और सभी को विदा किया। सभी अपने अपने घरों की प्रस्थान कर गये।

निर्जन मे कुछेक अन्तरंग भक्तों के निकट गयाधाम के रहस्य का वर्णन—

विष्णुभक्त गुटि-दुइ-चारि-जन लइया।
रहः कथा कहिवारे बसिलेन गिया॥२२॥
प्रभु बले,—"बन्धु सब शुन, कहि कथा।
कृष्णेर अपूर्व ये देखिलुँ यथा यथा॥२३॥
गयार भितर मात्र हइलाड. प्रवेश।
प्रथमेइ शुनिलाड. मंगल विशेष॥२४॥
सहस्र-सहस्र विप्र पड़े वेदध्वनि।
'देख देख विष्णुपादोदक-तीर्थ-खानि॥'२५॥

(२२-२५) प. अनु०—तत्पश्चात कुछेक विष्णु भक्तों को लेकर प्रभु गयाधाम की गूढ़ बातों को बताने के लिए बैठ गये और कहने लगे,—हे बन्धुओं सुनों; वहाँ, जहाँ-जहाँ पर मैंने श्रीकृष्ण की अपूर्व महिमा का दर्शन किया, उस बात को मैं तुमसे कह रहा हूँ। गया में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम मैंने जो विशेष मंगल देखा, वह यह था कि सहस्र-सहस्र विप्र वेदध्वनि गान कर रहे हैं। कोई कह रहा है, देखो! देखो! यह विष्णु 'पादोदक तीर्थ' है।

(२२) गौः भा—गुटि,—अल्प-संख्या में। जगत् में दो प्रकार के लोग हैं। उनमें अधिक संख्यक तो वे मायाग्रस्त लोग हैं, जो विषय भोगों की चेष्टा में विष्णुसेवा से उदासीन रहते हैं। दूसरे अति अल्पसंख्यक लोग ऐसे हैं, जो वस्तुतः भगवत् सेवा में तत्पर हैं। उस श्रेणी के व्यक्ति ही 'वैष्णव' या 'विष्णुभक्त' नाम से कथित हैं। उसी प्रकार के दो-चार वैष्णवों के निकट ही श्रीगौरसुन्दर ने निर्जन में हरिकथी आरम्भ की।

गौर-कृष्ण का देवदुर्लभ पादतीर्थ-पूत तीर्थस्थान—

पूर्वे कृष्ण यवे कैला गया-आगमन।
सेइस्थाने रहि' प्रभु धुइला चरण॥२६॥
याँ'र पादोदक लागि' गंगार महत्त्व।
शिरे धरि' शिव जाने पादोदक-तत्त्व॥२७॥

से–चरण–उदक–प्रभावे सेइ स्थान।
जगते हइल 'पादोदक–तीर्थ' नाम॥''२८॥

(२६–२८) प. अनु०—पहले जहाँ श्रीकृष्ण ने गया में आगमन किया था, उसी स्थान पर रहकर प्रभु ने अपने श्रीचरणों को धोया था। इनके पादोदक के कारण गंगा का विशेष महत्त्व है। उसी पादोपक तत्त्व को जानने के कारण श्रीशिव जी ने उसे अपने मस्तक पर धारण किया है। उन्हीं श्रीचरणों के जल के प्रभाव से वह स्थान जगत् में 'पादोदक तीर्थ' नाम से विख्यात है।"

(२७–२८) गौ. भाः—तथ्य–(भाः१/१८/२१) "अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः। सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात् को नाम लोके भगवत् पदार्थः॥"

अर्थात् जिनके पदनख से निःसृत होकर भी श्री–गंगा ब्रह्मा द्वारा अर्घ्योदक रूप से समर्पित होकर महादेव के साथ समस्त जगत् को पवित्र कर रही हैं, उन मुकुन्द के अतिरिक्त इस जगत् में और कौन ऐसा है,—जो भगवत् शब्दवाच्य हो सके?

(भाः३/२८/२२) ''यच्छौचनिःसृतसरित् प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः श्विाऽभूत्। ध्यातुर्मनःशमल

–शैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरण ाविन्दम्॥"

अर्थात् 'जिनके श्रीपाद्–प्रक्षालन से निःसृत सरित्–श्रेष्ठ श्रीगंगा के संसारतारण जल को अपने मस्तक पर धारण करके श्रीशिव ने भी शिवस्वरूप अर्थात् मंगलमय स्वरुप या अत्यधिक सुख को प्राप्त किया है, उन श्रीचरणों को ध्यान करने वालों के मन की सब प्रकार की कलषु–कल्मष–कषाय–

किल्विषराशि वज्र फेंकने के फल से पर्वत के टुकड़े होने की भाँति विध्वंसित हो जाती है, अतएव उन्हीं भगवान् के पादपद्मों का सर्वदा ही ध्यान करना चाहिये।'

कृष्णपादतीर्थ–स्मरण से प्रभु के अपूर्व प्रेमविकार–प्रकाश का वर्णन—

पादपद्म–तीर्थेर लइते प्रभु नाम।
अझरे झरये दुइ कमल–नयान॥२९॥
शेषे प्रभु हइलेन बड़ असम्बर।
'कृष्ण' बलि' कान्दिते लागिला बहुतर॥३०॥
भरिल पुष्पेर वन महाप्रेम–जले।
महा–श्वास छाड़ि' प्रभु 'कृष्ण कृष्ण' बले॥३१॥
पुलके पूर्णित हइल सर्व–कलेवर।
स्थिर नहे प्रभु कम्पभरे थरथर॥३२॥

(२९) प. अनु०—श्रीपादपद्म–तीर्थ का नाम लेने मात्र से ही प्रभु में अपूर्व प्रेमविकार के कारण उनके दोनों कमल नेत्रों से झर–झर अश्रु प्रवाहित होने लगे।

(३०–३२) प. अनु०—अन्त में प्रभु जब धैर्य धारण करने में नितान्त असमर्थ हो गये, तब 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुये बहुत क्रदन करने लगे।

आँखों से बहते महा–प्रेम जल से पुष्पों का वन भी भर गया। प्रभु महा–श्वास के साथ 'कृष्ण' 'कृष्ण' पुकारने लगे। साथ–ही–साथ समस्त शरीर भी आनन्द से परिपूर्ण हो गया और वे स्थिर न रहकर थरथर काँपने लगे।

(३०) गौः भा—असम्बर,—संवरण में अर्थात् धैर्य धारण में, आत्म–संयम या आत्म–संगोपन में असमर्थ; 'आसमाल' (अपने को सम्भाल न सकना)।

श्रीमान पण्डितादि भक्तों द्वारा प्रभु के अपूर्व प्रेम–विकार का दर्शन—

श्रीमान्पण्डित–आदि यत भक्तगण।
देखने अपूर्व कृष्णप्रेमेर क्रन्दन॥३३॥

(३३) प. अनु०—श्रीमान्पण्डित आदि जितने भी भक्तगण थे, सभी प्रभु के अपूर्व कृष्णप्रेम के क्रन्दन का दर्शन करने लगे।

प्रभु की प्रेमाश्रुधारा के साथ गंगा की उपमा–

चतुर्द्दिके नयने बहये प्रेमधार।
गंगा येन आसिया करिला अवतार॥३४॥

(३४) प. अनु०—प्रभु के नयनों से सर्वत्र प्रेम की धार बहने लगी, उस समय ऐसा अनुभव हुआ, मानों गंगा ही अवतीर्ण हो गई हों।

उसके दर्शन से भक्तों को विस्मय, प्रभु के प्रति कृष्ण प्रसाद–अनुमान–

मने मने सबेइ चिन्तेन चमत्कार।
''एमत इहाने कभु नाहि देखि आर॥३५॥
श्रीकृष्णेर अनुग्रह हइल इहाने।
कि वैभव पथे वा हइल दरशने॥''३६॥

(३५–३६) प. अनु०—सब भक्त मन–ही–मन इस चमत्कार के विषय में विचार करने लगे कि,–"इनको इस स्थिति में कभी नहीं देखा है। अवश्य ही इन पर श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है, न जाने मार्ग में इन्हें किस वैभव का दर्शन हुआ है।"

प्रभु को बाह्यदशा की प्राप्ति और आलाप–

बाह्य–दृष्टि प्रभुर हइल कतक्षणे।
शेषे प्रभु सम्भाषा करिला सबा' सने॥३७॥
प्रभु कहे,–''बन्धु सब, आजि घरे याह।
कालि यथा बलि' तथा आसिवारे चाह॥३८॥
तोमा' सबा' सहित निभृत एक स्थाने।
मोर दुःख सकल करिव निवेदने॥३९॥

(३७–३९) प.अनु०—कुछ ही क्षणों में प्रभु की बाह्य दशा लौट आई। तब अन्त में प्रभु ने सभी के साथ सम्भाषण किया। वे कहने लगे–"हे बन्धुओं! आप सब आज तो घर लौट जाओ। कल जहाँ आने के लिए कहूँ, वहाँ आ जाना। तुम सब के साथ एक निर्जन स्थान पर पाकर अपना सारा दुःख निवेदन करुँगा।

(३९) गौः भा—तुम सबको साथ लेकर एक बहिरंगजन–हीन–स्थान पर अपने कृष्ण–विरह–दुःख की बात कहूँगा। बहिरंग लोगों में कोई भी मेरे कृष्ण विरह दुःख की बात नहीं समझ पायेगा; इसीलिए मैं तुम्हारे जैसे अन्तरंग–भक्तों के निकट ही अपने कृष्ण विरह से आर्त हृदय का गुप्तद्वार उद्घाटन करके कृष्ण–विरह–वेदना निवेदन करुँगा।

अगले दिन दो जनों को शुक्लाम्बर के घर में आगमनार्थ अनुरोध–

कालि सबे शुक्लाम्बर–ब्रह्मचारि–घरे।
तुमि आर सदाशिव आसिह सत्वरे॥''४०॥

(४०) प. अनु०—श्रीशुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर तुम और सदाशिव कल जल्दी चले आना।"

(४०) गौः भा—यहाँ पर 'तुमि' शब्द एक वचनान्तरूप में गृहीत होने पर श्रीमान् पण्डित को ही समझना होगा (परवर्ती ५१ संख्या द्रष्टव्य)।

सबको विदाई देना–

सम्भाष करिया सबे करिला विदाय।
यथा–कार्ये रहिलेन विश्वम्भर–राय॥४१॥

(४१) प. अनु०—इस प्रकार सब के साथ वार्तालाप करने के पश्चात् प्रभु श्रीविश्वम्भर ने सबको विदा किया और फिर से अपने निर्धारित कार्य में निमग्न हो गये।

प्रभु का कृष्ण प्रेमावेश और कृष्णेतर विषयों से वैराग्य–

निरवधि कृष्णावेश प्रभुर शरीरे।
महा–विरक्तेर प्राय व्यवहार करे॥४२॥

(४२) प. अनु०—प्रभु निरन्तर कृष्णावेश में रहने लगे और महा–विरक्त की भाँति व्यवहार करने लगे।

(४२) गौः भा—प्रभु के श्रीविग्रह में सर्वक्षण अधिरूढ़ महाभावमय–कृष्णप्रेम का अधिष्ठान लक्षित होने लगा। इसलिए सर्वोत्तम त्यागी विरक्त संन्यासी के विचारों का अवलम्बन करके वे आश्रयविग्रह के भाव में विभावित होकर आत्मेन्द्रिय–सुखभोग–वांछा वर्जनपूर्वक मूर्त्त शुद्ध–वैराग्य–विग्रहरूप से एक तमालश्यामकान्ति सर्वाकर्षक वस्तु के प्रेमाकर्षण में अतिशय व्यस्तता दिखाने लगे। इस प्रसंग में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के एक साथ अधिष्ठान के सम्बन्ध में—(भाः११/२/४२ "भक्तिः परेशानुभवों विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः। प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥" यह श्लोक विवेचना करने योग्य है।

पुत्रवत्सला शची को पुत्र के प्रेमविकार का दर्शन–

बुझिते ना पारे आइ पुत्रेर चरित।
तथापिह पुत्र देखि' महा–आनन्दित॥४३॥
'कृष्ण कृष्ण' बलि प्रभु करये क्रदन।
आइ देखे,—अश्रुजले भरिल अंगन॥४४॥
''कोथा कृष्ण, कोथा कृष्ण''—बलये ठाकुर।
बलिते बलिते प्रेम बाड़ये प्रचुर॥४५॥

(४३–४५) प. अनु०—श्रीशचीमाता पुत्र के आचरण को समझ नहीं पा रही थीं। तथापि पुत्र को देखकर परम–आनन्दित थीं। प्रभु 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुये क्रन्दन कर रहे हैं और माता देख रही हैं कि,—अश्रु जल से समस्त आंगन भर गया है। प्रभु "कृष्ण कहाँ है! कृष्ण कहाँ है!!" ऐसा पुकार रहे हैं और पुकारते–पुकारते उनका प्रेम बढ़ता ही जा रहा है।

पुत्र की दशा–दर्शन से शची की किंकर्त्तव्य–विमूढ़ावस्था–

किछु नाहि बुझे आइ कोन् वा कारण।
करयोड़े गेला आइ गोविन्द–शरण॥४६॥

(४६) प. अनु०—कुछ भी न समझने के कारण श्रीशचीमाता हाथों को जोड़कर श्रीगोविन्द की शरण में आ गईं।

हरिनाम प्रेम–प्रकाशरुप निज अवतार–कारण के रहस्य का प्रकटन आरम्भ–

आरम्भिला महाप्रभु आपन–प्रकाश।
अनन्त–ब्रह्माण्डमय हइल उल्लास॥४७॥

(४७) प. अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अपने को प्रकाश करना आरम्भ कर दिया, जिससे अनन्त–ब्रह्माण्ड उल्लसित हो उठे।

प्रभु–दर्शनार्थ भक्तों का आगमन–

'प्रेम–वृष्टि करिते प्रभुर शुभारम्भ'।
ध्वनि शुनि' याय यथा भागवतवृन्द॥४८॥
ये–सब वैष्णव गेला प्रभु–दरशने।
सम्भाषा करिला प्रभु ताँ' सबार सने॥४९॥

(४८) प. अनु०—प्रभु ने प्रेम वृष्टि करने का शुभारम्भ किया और उसकी ध्वनि को सुनकर सभी भक्तवृन्द वहाँ आने लगे।

(४८) गौः भा—जीवों के करुणा के वशीभूत होकर प्रभु ने परम शुभ मुहूर्त्त में प्रेमवारि वर्षण आरम्भ की। उसकी चर्चा प्रचारित होने मात्र से ही भक्तों ने श्रवण कर उसी क्षण प्रभु के निकट आना आरम्भ

कर दिया।

(४९) प. अनु०—जो सब वैष्णव प्रभु के दर्शनों के लिये गये थे उन सबके साथ प्रभु वार्तालाप करते हुये कहने लगे—

शुक्लाम्बर के घर में सबको
आगमनार्थ अनुरोध—

''कालि शुक्लाम्बर–घरे मिलिया आसिया।
मोर दुःख निवेदिमु निभृते बसिया॥''५०॥

(५०) प. अनु०—''तुम सब कल शुक्लाम्बर के घर आकर मिलना। तब मैं एकान्त में बैठकर तुमसे अपना दुःख निवेदन करुँगा।"

प्रभु के अपूर्व प्रेम-दर्शन से
श्रीमान् पण्डित का हर्ष—

हरिषे पूर्णित हैला श्रीमान्पण्डित।
देखिया अद्भुत प्रेम महा–हरषित॥५१॥

(५१) प. अनु०—प्रभु के अद्भुत प्रेम का दर्शन कर श्रीमान् पण्डित परम हर्षित हो उठे।

दूसरे दिन प्रातः भक्तों का श्रीवास के
घर पर पुष्प-चयनार्थ सन्मेलन—

यथा–कृत्य करि' ऊषः–काले साजि लैया।
चलिला तुलिये पुष्प हरषित हैया॥५२॥
एक कुन्द–गाय आछे श्रीवास–मन्दिरे।
कुन्दरुपे किवा कल्पतरु अवतरे॥५३॥
यतेक वैष्णव तोले, तुलिते ना पारे।
अक्षय अव्यय पुष्प सर्वक्षण धरे॥५४॥
ऊषःकाले उठिया सकल भक्तगण।
पुष्प तुलिवारे आसि' हइला मिलन॥५५॥
सबेइ तोलेन पुष्प कृष्णकथा–रसे।
गदाधर, गोपीनाथ, रामाञि, श्रीवासे॥५६॥

(५२–५६) प. अनु०—श्रीगदाधर, श्रीगोपीनाथ, रामाञि, श्रीवास आदि भक्तवृन्द अपना नित्य कृत्य सम्पन्न करके प्रातःकाल आनन्द पूर्वक पुष्प चयन हेतु फूलों की साजि (पुष्पचयन-पात्र) लेकर श्रीवास के घर पहुँचे। वहाँ एक कुन्द का वृक्ष था। वह कुन्द वृक्ष मानों साक्षात् कल्पतरु का ही अवतार था। उससे वैष्णवजन चाहे जितने ही पुष्प चुन लेते, वह हमेशा अक्षय, अव्यय पुष्प-राशि धारण किये रहता। प्रातःकाल उठकर सभी भक्तवृन्द वहाँ पर पुष्प चयन करने के लिए मिले और गदाधर, गोपीनाथ, रामाञि एवं श्रीमास परस्पर आनन्दपूर्वक कृष्ण-चर्चा करते हुये पुष्पों का चयन करने लगे।

श्रीमान् पण्डित का वहाँ पर
हास्य पूर्वक आगमन—

हेनइ समये आसि' श्रीमान् पण्डित।
हासिते हासिते आसि' हइला विदित॥५७॥

(५७) प. अनु०—उसी समय श्रीमान् पण्डित हँसते-हँसते वहाँ पर उपस्थित हो गये।

श्रीमान् पण्डित से भक्तों द्वारा हँसने
के कारण की जिज्ञासा—

सबेइ वलेन,—''आजि बड़ देखि हास्य?''
श्रीमान् कहेन,—''बलिलेन भागवतगण।
श्रीमान् कहेन,—''आछे कारण अवश्य॥''५८॥
''कह देखि''–बलिलेन भागवतकारण।
श्रीमान पण्डित बले,—''शुनह कारण॥५९॥

(५८–५९) प. अनु०—सभी ने कहा,—"आज आप बड़े हँस रहे हैं, क्या बात है?" श्रीमान् पण्डित ने कहा,—"कुछ कारण अवश्य है।" उन्होंने पूछा—"क्या कारण है, बताओ तो सही"। श्रीमान् पण्डित बोले,—"सुनो, इसका कारण बताता हूँ।

भक्तों के समक्ष श्रीमान् पण्डित द्वारा
पूर्वदिवसीय प्रभु–प्रेम–विकार–चेष्टा का वर्णन–

परम–अद्‌भुत कथा, महा–असम्भव।
'निमाइपण्डित हैला परम वैष्णव'॥६०॥
गया हइते आइलेन सकल कुशले।
शुनि' आमि सम्भाषिते गेलाड. विकाले॥६१॥
परम–विरक्त–रुप सकल सम्भाष।
तिलार्द्धेक औद्धत्येर नाहिक प्रकाश॥६२॥
निभृते कहिते लागिलेन कृष्णकथा।
ये ये स्थाने देखिलेन ये अपूर्व यथा॥६३॥
पादपद्म–तीर्थेर लइते मात्र नाम।
नयनेर जले सब पूर्ण हैल स्थान॥६४॥
सर्व–अंग महा–कम्प–पुलके पूर्णित।
'हा कृष्ण'! बलिया मात्र पड़िला भूमित॥६५॥
सर्व–अंगे धातु नाहि, हइला मूर्च्छित।
कतक्षणे बाह्य–दृष्टि हैला चमकित॥६६॥
शेषे ये बलिया 'कृष्ण' कान्दिते लागिता।
हेन बुझि,—गंगा–देवी आसिया मिलिला॥६७॥

(६०–६७) प. अनु०—यह बड़ी अद्‌भुत बात है और असम्भव जैसी है कि, 'निमाइ पण्डित परम वैष्णव हो गये है'। वे गया से सकुशल आ गये हैं—यह सुनकर मैं कल सांयकाल उनसे बातचीत करने गया था। बड़े ही विरक्त भाव से उन्होंने समस्त वार्तालाप किया। लेश मात्र भी उद्दण्डता उनमें देखने को नहीं मिली। एकान्त में ले जाकर वे हमसे कृष्ण–कथा कहने लगे, वर्णन करने लगे कि किस–किस स्थान पर उन्होंने क्या–क्या अद्‌भुत देखा। फिर पादपद्म–तीर्थ का नाम लेने मात्र से ही उनके नेत्रों से प्रवाहित होने वाले जल से वह स्थान भर गया और उनके समस्त अंग महाकम्प, पुलक और रोमांच से परिपूर्ण हो गये। फिर केवल 'हा कृष्ण'! मात्र कहकर वे भूमि पर गिर पड़े। उनके समस्त अंग की चेतना लुप्त हो गई। वे मूर्च्छित हो गये। कुछ ही क्षणों में जब बाह्य–दृष्टि हुई तो वे विस्मित हुये। अन्त में जब वे 'कृष्ण' 'कृष्ण कहते हुये क्रन्दन करने लगे तो ऐसा जान पड़ता था जैसे मानों साक्षात् गंगा देवी ही आकर उनमें समाहित हो गई हों।

(६०) गौः भा—जो निमाइ पण्डित कुछ दिन पहले महातार्किक चूड़ामणि थे एवं वैष्णवों की व्याख्या को व्यंग विद्रूप रूप वचनों से खण्डन कर देते थे, वे निमाइ पण्डित अब परम–वैष्णव हो गये हैं।

प्रभु के प्रेमविकार दर्शन से उनको
अलौकिक और अतिमर्त्य होने का ज्ञान–

ये भक्ति देखिलुँ आमि ताहान नयने।
ताहाने मनुष्य–बुद्धि नाहि आर मने॥६८॥

(६८) प. अनु०—मैंने उनकी आँखों में जो भक्ति देखी है, उससे मेरे मन में अब उनके प्रति मनुष्य बुद्धि नहीं रही।

सबको प्रभु का अनुरोध ज्ञापन–

सबे एइ कथा कहिलेन बाह्य हैले।
'शुक्लाम्बर–घरे कालि मिलिबा सकाले॥६९॥
तुमि आर सदाशिव पण्डित–मुरारि।
तोमा' सबा' स्थाने दुःख करिव गोहारि॥'७०॥
परम मंगल एइ कहिलाड. कथा।
अवश्य कारण इथे आछये सर्वथा॥''७१॥

(६९–७१) प. अनु०—बाह्य ज्ञान होने पर वे केवल इतना ही बोले कि,—कल प्रातः शुक्लाम्बर के घर पर तुम, सदाशिव, पण्डित मुरारी आकर मिलना, तुम सभी के सामने मैं अपना दुःख निवेदन करुँगा। यह मैंने परम मंगल की बात आप लोगों से कही है। इसके भीतर अवश्य की कोई कारण है।

(७०) गौः भा—गोहारि (संस्कृत 'गोचर' शब्द से) बिहार और उड़िया देश में 'गोहारि' शब्द से सहानुभूतिलाभ के उद्देश्य से प्रतीकार या सुविचार प्रार्थना।

प्रभु के अपूर्वभाव को सुनकर भक्तों द्वारा सहर्ष हरिध्वनि—

श्रीमानेर वचन शुनिया भक्तगणे।
'हरि' बलि' महाध्वनि करिला तखने॥७२॥
प्रथमेइ बलिलेन श्रीवास उदार।
''गोत्र बाड़ाउन कृष्ण आमा' सबाकार॥७३॥

(७२–७३) प. अनु०—श्रीमान् पण्डित के वचनों को सुनकर सभी भक्तवृन्द उसी समय 'हरि बोल' की महाध्वनि करने लगे। उदार श्रीवास पहले ही बोल उठे कि "श्रीकृष्ण हमारे गोत्र का वर्द्धन करें"।

(७३) गौः भा—गोत्र,—अन्वय, वंश, गोष्ठी।

सजातीयाशय स्निग्ध कृष्ण भजनशील गोष्ठीवृद्धि की वाञ्छा, तथाहि—

''गोत्रं नो वर्द्धताम्'' इति॥७४॥
आनन्दे करेन सबे कृष्ण–संकथन।
उठिल मंगल–ध्वनि परम मोहन॥७५॥
'तथास्तु' 'तथास्तु' बले भागवतगण।
'सबेइ भजुक कृष्णचन्द्रेर चरण'॥७६॥

(७४) अनुवाद—हमारा वंश अथवा गोष्ठी वृद्धि को प्राप्त हो।

(७५) प. अनु०—आनन्द से सभी श्रीकृष्ण की चर्चा करने लगे और सबको मोहित करने वाली मंगल ध्वनि गूँज उठी।

(७६) प. अनु० 'ऐसा ही हो' ऐसा ही हो' कहते हुये भक्तगण बोले कि,—सभी श्रीकृष्ण चन्द्र के चरणों का भजन करें।

(७६) गौः भा—तथ्य—स्मार्त्त-श्राद्ध में पिण्डदान के समय आशीर्वाद।

'आ–ब्रह्मस्तम्ब (ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ तक) सभी कृष्ण पादपद्मों की सेवा करके हमारे गोत्र की वृद्धि करें'—श्रीवास के मुख से यह बात सुनने मात्र से सभी एकत्रित भागवतजनों ने "ऐसा ही हो, ऐसा ही हो" कहकर उनके कथन का अनुमोदन किया।

पुष्प चयन के बाद भक्तों का अपने–अपने घरों को गमन—

हेनमते पुष्प तुलि' भागवतगण।
पूजा करिवारे सबे करिला गमन॥७७॥

(७७) प. अनु०—इस प्रकार फूल चुनकर सभी भागवतगणों ने पूजा करने के लिए अपने–अपने घरों को प्रस्थान किया।

शुक्लाम्बर के घर श्रीमान् पण्डित और गदाधरादिका गमन—

श्रीमान पण्डित चलिलेन गंगातीरे।
शुक्लाम्बर–ब्रह्मचारी–ताहान मन्दिरे॥७८॥
शुनिया ए–सब कथा प्रभु–गदाधर।
शुक्लाम्बर–गृह–प्रति चलिला सत्वर॥७९॥
''कि आख्यान कृष्णेर कहेन शुनि गिया।''
थाकिलेन शुक्लाम्बर–गृहे लुकाइया॥८०॥
सदाशिव, मुरारि, श्रीमान्, शुक्लाम्बर।
मिलिला सकल यत प्रेम–अनुचर॥८१॥

(७८) प. अनु०—श्रीमान् पण्डित गंगा के किनारे की ओर चल दिये, जहाँ शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का घर था।

(७९–८१) प. अनु०—यह सब बात सुनकर गदाधर पण्डित भी शीघ्रता से शुक्लाम्बर के घर की ओर चल दिये। "श्रीकृष्ण के विषय में क्या आख्यान कहते हैं, जाकर सुनुँ तो सही, "ऐसा विचार करके वे शुक्लाम्बर

के घर में जाकर छिप गये। बाद में सदाशिव, मुरारि, श्रीमान्, शुक्लाम्बर ये जितने भी प्रेमी भक्तजन थे, वे सभी वहाँ आ मिले।

प्रभु का भी वहाँ पर आगमन और कृष्ण भक्ति सूचक श्लोकों की आवृति—

हेनइ समये विश्वम्भर द्विजराज।
आसिया मिलिला हेथा वैष्णवसमाज॥८२॥
परम–आनन्दे सबे करेन सम्भाष।
प्रभुर नाहिक बाह्यदृष्टि–प्रकाश॥८३॥
देखिलेन मात्र प्रभु भागवतगण।
पड़िते लागिला श्लोक—भक्तिर लक्षण॥८४॥

(८२–८४) प. अनु०—ऐसे समय में द्वि जराज विश्वम्भर भी वैष्णव समाज में आ मिले। सभी एक दूसरे के साथ परम आनन्द से वार्तालाप करने लगे; परन्तु प्रभु में तनिक भी बाह्य दृष्टि नहीं थी। भक्तों को देखते ही वे भक्ति–लक्षण सूचक श्लोकों को पढ़ने लगे।

(८४) गौः भा—कृष्णप्रेमविह्वल प्रभु शुक्लाम्बर के घर वैष्णवों का उत्कण्डित भाव देखने पर "सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते॥" एवं "अन्याभिलाषिता –शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा"॥ इत्यादि शुद्धभक्ति लक्षण सूचक श्लोकों अथवा परवर्ती ८५ संख्या का "पाइलुँ, ईश्वर मोर कोन्दिके गेला?" इस वाक्य को लक्ष्य कर श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद द्वारा उच्चारित "अयि दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ कदावलोम्यसे। हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्।" इत्यादि विप्रलम्भप्रेमसूचक श्लोकसमूह का पाठ करने लगे।

कृष्ण विरह में प्रभु–द्वारा अन्वेषण, मूर्च्छा और अश्रुपात एवं प्रेमाश्रुप्लुत भक्तों से कृष्णसन्धान की जिज्ञासा—

"पाइलुँ, ईश्वर मोर कोन् दिके गेला?"
एत बलि' स्तम्भ कोले करिया पड़िया॥८५॥
भांगिल गृहेर स्तम्भ प्रभुर आवेशे।
"कोथा कृष्ण" बलिया पड़िया मुक्त–केशे॥८६॥
प्रभु पड़िलेन मात्र 'हा कृष्ण' बलिया।
भक्तसब पड़िलेन ढलिया ढलिया॥८७॥
गृहेर भितरे मूर्च्छा गेला गदाधर।
के वा कोन् दिके पड़े, नाहि परापर॥८८॥
सबे हैला कृष्णप्रेम–आनन्दे मूर्च्छित।
हासेन जाह्नवी–देवी हइया विस्मित॥८९॥
कतक्षणे बाह्य प्रकाशिका विश्वम्भर।
कृष्ण बलि' कान्दिते लागिला बहुतर॥९०॥
"कृष्ण रे, प्रभु रे, मोर कोन् दिके गेला"?
एत बलि' प्रभु पुनः भूमिते पड़िला॥९१॥
कृष्ण प्रेमे कान्दे प्रभु शचीर नन्दन।
चतुर्दिके बेड़ि' कान्दे भागवतगण॥९२॥
आछोड़ेर समुच्चय नाहिक–श्रीअंगे।
ना जाने ठाकुर किछु निज–प्रेम–रंगे॥९३॥
उठिल कीर्तन–रोल प्रेमेर क्रन्दन।
प्रेममय हैल शुक्लाम्बरेर भवन॥९४॥
स्थिर हइ' क्षणेके बसिला विश्वम्भर।
तथापि आनन्दधारा बहे निरन्तर॥९५॥
प्रभु बले,—"कोन् जन गृहेर भितर?"
ब्रह्मचारी बलेन,—"तोमार गदाधर"॥९६॥
हेट–माथा करिया कान्देन गदाधर।
देखिया सन्तोष बड़ प्रभु विश्वम्भर॥९७॥
प्रभु बोले,—"गदाधर! तुमि से सुकृति।
शिशु हैते कृष्णेते करिला दृढ़–मति॥९८॥
आमार से हेन जन्म गेल वृथा–रसे।
पाइलुँ अमूल्य निधि, गेल दैव–दोषे॥"९९॥
एत बलि' भूमिते पड़िया विश्वभर।

धूलाय लोटाय सर्व–सेव्य–कलेवर॥१००॥

(८५–१००) प. अनु०—"जिन ईश्वर को मैंने प्राप्त किया था, वे मेरे प्रभु कहाँ चले गये?" यह कहते हुये प्रभु एक खम्भे का आलिंगन कर गिर पड़े। प्रभु के आवेश से घर का खम्भा टूट गया। "कृष्ण कहाँ हैं"? ऐसा कहकर प्रभु गिर पड़े। उनके केश बिखर गये। 'हा कृष्ण' कहकर प्रभु के गिरते ही सब भक्त भी प्रेम से विह्वल होकर गिर पड़े। घर के भीतर छिपे गदाधर भी मूर्च्छित हो गये। कौन किस ओर पड़ा है, किसी को अपने पराये का बोध ही नहीं रहा। सभी कृष्णप्रेम के आनन्द में मूर्च्छित हो गये। यह देखकर जाह्नवी (गंगा) देवी विस्मित होकर हँसने लगीं। कुछ ही क्षणों में बाह्य ज्ञान होने पर श्रीविश्वम्भर "कृष्ण! कृष्ण!" कहते हुये अतिशय क्रन्दन करने लगे,—"हे कृष्ण! हे मेरे प्रभो! आप कहाँ चले गये?" इतना कहकर प्रभु पुनः भूमि पर गिर पड़े। श्रीशचीनन्दन प्रभु कृष्णप्रेम में क्रन्दन कर रहे हैं। उनको चारों ओर से घेर कर भक्तवृन्द भी क्रन्दन कर रहे हैं। अनेकों बार प्रभु का शरीर पछाड़ खाकर भूमि पर गिरा। किन्तु प्रभु अपने प्रेम में कुछ नहीं जान पाये। तभी कीर्तन की ध्वनि गूँज उठी। भक्तवृन्द प्रेम से रोने लगे। शुक्लाम्बर का भवन प्रेममय हो गया। कुछ की क्षणों में श्रीविश्वम्भर प्रभु स्थिर होकर बैठ गये, परन्तु फिर भी उनके नेत्रों से निरन्तर आनन्द की धारा बहती जा रही थी। तभी उन्होंने पूछा,–"घर के भीतर कौन है?" ब्रह्मचारी ने कहा,–"आपके गदाधर है"। श्री–

गदाधर मस्तक नीचा करके क्रन्दन कर रहे हैं। यह देखकर प्रभु श्रीविश्वम्भर अति सन्तुष्ट हुये और बोले,—"गदाधर! तुम सुकृतिवान् हो जोकि बचपन से ही तुमने श्रीकृष्ण में दृढ़ मति कर रखी है। मेरा जन्म तो ऐसे ही व्यर्थ सुख भोग में चला गया। एक अमूल्य निधि मिली थी, परन्तु दुर्भाग्य के कारण उसे खो बैठा।" इतना कहकर श्रीविश्वम्भर भूमि पर गिर पड़े और सर्व-सेव्य उनका वह श्रीअंग धूल में लोटने लगा।

(८५) गौः भा—"हाय, मैंने कृष्ण को पाया था, किन्तु अभी वे मुझको छोड़कर न जाने कहाँ चले गये?"—यह कहते-कहते प्रभु ने कृष्णप्रेमावेश से बलपूर्वक घर के स्तम्भ का दृढ़ आलिंगन कर लिया।

(८८) गौः भा—परापर,—पर (अन्य) अपर (निज) अपने-पराये का बुद्धि-भेद।

(९३) गौः भा—प्रभु कृष्णप्रेम में अत्यन्त विह्वल होकर बारम्बार भूमि पर गिर पड़ते थे। उनके श्रीअंग पर चोट का कोई दिखाई नहीं दिया एवं अन्तर्दशा की स्थिति में बाह्य सुख-दुःखादि का किंचित् मात्र अनुभव भी उन्होंने नहीं किया।

(९९) गौ.भा.—प्रभु ने श्रीगदाधर से कहा, —"हे गदाधर, बाल्यकाल से कृष्णसेवा की ओर उन्मुख होने के कारण तुम परम सौभाग्यवान् हो; तुम्हारी जैसी दृढ़ कृष्णसेवा-बुद्धि मेरी नहीं थी। मैंने तर्कशास्त्र के अध्ययन में इतने दिन व्यर्थ ही गंवा दिये। अतिदुर्लभ खोये हुये धन श्रीकृष्ण को पाकर भी मैं अपने भाग्य-दोष के कारण उनसे वंचित हो गया।"

(१००) गौः भाः—सर्वसेव्य कलेवर—श्रीगौरविग्रह प्राकृत चतुर्दशभुवन एवं अप्राकृतपरव्योम-वैकुण्ठ-गोलोक वृन्दावन के अखिल आश्रित-वर्ग का सेव्य अथवा उपास्य वस्तु है।

प्रभु का कृष्णविरह में आर्त्तिक्रन्दन,
कदाचित अर्द्धबाह्यदशा—

पुनः पुनः हय बाह्य, पुनः पुनः पड़े।

दैवे रक्षा पाय नाक–मुख से–आछाड़े ॥१०१ ॥
मेलिते ना पारे दुइ चक्षु प्रेमजले।
सबे एक 'कृष्ण कृष्ण' श्रीवदने बले ॥१०२ ॥
धरिया सबार गला कान्दे विश्वम्भर।
"कृष्ण कोथा?–भाइ सब, बलह सत्वर ॥"१०३ ॥
प्रभुर देखिया आर्ति कान्दे भक्तगण।
का'रो मुखे आर किछु ना स्फुरे वचन ॥१०४ ॥
प्रभु बोले,—"मोर दुःख करह खण्डन।
आनि' देह' मोरे नन्दगोपेन्द्र–नन्दन ॥१०५ ॥
एत बलि' श्वास छाड़ि' पुनः पुनः कान्दे।
लोटाय भूमिते केश, ताहा नाहि बान्धे ॥१०६ ॥

(१०१–१०६) प. अनु०—प्रभु बारम्बार बाह्यदशा में लौटते हैं और फिर बारम्बार गिर पड़ते हैं। परन्तु दैव कृपा से उन पछाड़ों के कारण नाक मुख बच ही जाते हैं। प्रेमाश्रुजल से भरे रहने के कारण प्रभु दोनों नेत्रों को खोल नहीं पा रहे हैं, केवल मुख से 'कृष्ण कृष्ण' ही पुकार रहे हैं। प्रभु विश्वम्भर सभी के गले मिलकर क्रन्दन करते हैं—और कहते हैं, "भाइयो! कृष्ण कहाँ है? यह तुम सब मुझे जल्दी से बताओ" प्रभु की ऐसी आर्त दशा देखकर सभी भक्त क्रन्दन करने लगे। किसी के मुख से कोई वाक्य ही नहीं निकल रहा। प्रभु कहते हैं,—"आप मेरे दुःख का खण्डन कर दो। गोपेन्द्र नन्दनन्दन को लाकर मुझे दो"। इतना कहकर प्रभु दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुये निरन्तर क्रन्दन ही कर रहे हैं। उनके केश भूमि हुये निरन्तर क्रन्दन ही कर रहे हैं। उनके केश भूमि पर लोट रहे हैं, लेकिन वे उन्हें बांधते ही नहीं।

अर्द्धबाह्यदशा की प्राप्ति के बाद
अतिष्टिपूर्वक भक्तों को विदाई देना—

एइ सुखे सर्वदिन गेल क्षणप्राय।
कथंचित् सबा'—प्रति हइला विदाय ॥१०७ ॥

(१०७) पु. अनु०—इस सुख में सारा दिन एक क्षण के समान व्यतीत हो गया। तब प्रभु ने जैसे-तैसे सबसे विदा ली।

प्रभु के अपूर्व प्रेमविकार-दर्शन और श्रवण
से भक्तों का विस्मय और परस्पर
विविध मतों का कथन—

गदाधर, सदाशिव, श्रीमान् पण्डित।
शुक्लाम्बर–आदि सबे हइला विस्मित ॥१०८ ॥
ये ये देखिलेन प्रेम, सबेइ अवाक्य।
अपूर्व देखिया का'रो देहे नाहि बाह्य ॥१०९ ॥
वैष्णव समाजे सबे, आइला हरिषे।
आनुपूर्विक कहिलेन अशेष–विशेषे ॥११० ॥
शुनिञा सकल महाभागवतगण।
'हरि हरि बलि' सबे करेन क्रन्दन ॥१११ ॥
शुनिञा अपूर्व प्रेम सबेइ विस्मित।
केह बले,—"ईश्वर वा हइला विदित ॥"११२ ॥
केह बले,—"निमाइ पण्डित भाल हैले।
पाषण्डीर मुण्ड छिण्डिवारे पारि हेले ॥"११३ ॥
केह बले,—"हइवेक कृष्णेर रहस्य।
सर्वथा सन्देह नाञि, जानिह अवश्य ॥"११४ ॥
केह बले,—"ईश्वरपुरीर संग हैते।
किवा देखिलेन कृष्णप्रकाश गयाते ॥"११५ ॥
एइमत आनन्दे सकल भक्तगण।
नाना–जने नाना–कथा करेन कथन ॥११६ ॥

(१०८) गौः भा—कृष्णविरह से उत्पन्न अत्यधिक क्लेश रहने पर भी आश्रय-भाव में विभावित गौरसुन्दर द्वारा बिताया हुआ वह चार प्रहरों वाला लम्बा दिन भी कृष्णप्रेम सुख में अतिवाहित होने के कारण उन्हें वह अत्यन्त अल्प समय के रूप में प्रतीत हुआ। कृष्णप्रेम मदिरा से आच्छन्न प्रभु ने अर्द्धबाह्य दशा में

जैसे-तैसे अति कष्टपूर्वक सभी भक्तों से विदा ग्रहण की अर्थात् अवकाश की याचना की।

(१०८-११६) प. अनु०—श्रीगदाधर, सदाशिव, श्रीमान् पण्डित, श्रीशुक्लाम्बर आदि सब भक्तवृन्द बड़े ही विस्मित हो उठे। प्रभु के इस प्रेम को जिन-जिन महानुभावों ने देखा, वे सभी अवाक् रह गये। इस अपूर्व प्रेम को देखकर किसी को अपनी देह तक की सुध भी नहीं रही। सभी भक्त प्रसन्न पूर्वक वैष्णवसमाज में आये और प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सभी बातों का विशेष रूप से वर्णन करने लगे। सुनकर सभी महाभागवतगण 'हरि हरि' कहते हुये क्रन्दन करने लगे। अपूर्व करने लगे। अपूर्व प्रेम की बात सुनकर सभी विस्मित थे। कोई कहता कि,—"कहीं ईश्वर तो नहीं प्रकट हो गये।" कोई कहता कि,-"यह तो श्रीकृष्ण का कोई गुप्त रहस्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, यह निश्चित जान लो।" कोई कहता कि,-"इनकी ईश्वरपुरी के संग से ऐसी दशा हुई हैं।" इस प्रकार सभी भक्तवृन्द आनन्दपूर्वक नाना प्रकार की बातें कहने लगे।

(१०९) गौः भा—प्रभु के उस महाभावमय अभूतपूर्व प्रेमविकार रुप अत्याश्चर्य-युक्त व्यवहार का दर्शन करके सभी भक्तवृन्द निर्वाक् हो गये थे।

(११४) गौः भा—किसी-किसी भक्त ने कहा,—"इस निमाइ पण्डित से ही सब लोग श्रीकृष्ण की समस्त अज्ञात लीलाओं का रहस्य निश्चय ही जान समस्त अज्ञात लीलाओं का रहस्य निश्चय ही जान सकेंगे,—इसमें कोई सन्देह नही है।"

प्रभु को लक्ष्य कर वैष्णवों का आशीर्वाद—

सबे मेलि' करिते लागिला आशीर्वाद।
''हउक हउक सत्य कृष्णेर प्रसाद''॥११७॥

(११७) प. अनु०—सभी मिलकर प्रभु के लिए यही आशीर्वाद करने लगे कि,—"श्रीकृष्ण की यह कृपा सत्य हो, सत्य हो"!

वैष्णवों का हर्षोत्साह से कृष्णकीर्तन—

आनन्दे लागिला सबे करिते कीर्तन।
केह गाय, केह नाचे, करये क्रन्दन॥११८॥
हेनमते भक्तगण आछेन निज रसे॥११९॥

(११८-११९) प. अनु०—फिर सभी आनन्दपूर्वक कीर्तन करने लगे। कोई गाने लगा, कोई नाचने लगा तो कोई क्रन्दन करने लगा। इस प्रकार भक्तगण हर्ष-विह्वल थे। परन्तु विश्वम्भर निज रस में आविष्ट थे।

गंगादास पण्डित के घर प्रभु का गमन, यथारीति परस्पर व्यवहार—

कथंचित् बाह्य प्रकाशिया विश्वम्भर।
चलिलेन गंगादास पण्डितेर घर॥१२०॥
गुरुर करिला प्रभु चरण वन्दन।
सम्भ्रमे उठिया गुरु कैला आलिंगन॥१२१॥
गुरु बले,—''धन्य बाप, तोमार जीवन।
पितृकुल मातृकुल करिला मोचन॥१२२॥

(१२०-१२२) प. अनु०—जब श्रीविश्वम्भर ने किसी प्रकार से कुछ बाह्य ज्ञान प्राप्त किया तो वे श्रीगंगादास पण्डित के घर की ओर चल दिये।

जाते ही प्रभु ने श्रीगुरुदेव के चरणों की वन्दना की। श्रीगुरुदेव ने भी झट से उठकर उनको आलिंगन कर लिया। श्रीगुरुदेव ने कहा,—"वत्स! तुम्हारा जीवन धन्य है। तुमने अपने पितृकुल और मातृकुल का उद्धार कर दिया।

प्रभु के प्रति शिष्यों की निष्ठा का वर्णन–

तोमार पड़ुया सब–तोमार अवधि।
पुंथि केह नाहि मेले, ब्रह्मा बले यदि॥१२३॥

(१२३) प. अनु०—तुम्हारे विद्यार्थी तुमको छोड़कर और किसी के पास पढ़ना ही नहीं चाहते, भले ही ब्रह्मा उनको क्यों न समझायें।

(१२३) गौः भाः—अवधि,—(प्रान्त, शेष, सीमा), प्रश्रय प्राप्त करके वृद्धि प्राप्त या सम्वर्द्धित, अधिक, 'बाड़ा' (वृद्धि प्राप्त हुआ)।

गुरु गंगादास पण्डित द्वारा प्रभु को मधुर वाक्यों से विदाई दान—

एखने आइला तुमि सबार प्रकाश।
कालि हैते पड़ाइवा आजि याह वास॥''१२४॥

(१२४) प. अनु०—सबके हृदयों में आनन्द का प्रकाश करने वाले तुम अब आ गये हो। अब कल से पढ़ाना, आज घर जाओ।"

(१२४) गौः भा—सबार प्रकाश,—सभी के हृदयों में आनन्द की शोभा को अभिव्यक्त करने वाले, गौरवौज्ज्वल्य विकाशक (उज्ज्वल गौरव को विकसित करने वाले) अथवा प्रकृत तत्त्वों को उद्घाटन करने वाले।

शिष्यों से वेष्टित होकर प्रभु का मुकुन्द–संजय के घर आगमन–

गुरु नमस्करिया चलिला विश्वम्भर।
चतुर्द्दिके पड़ुया वेष्टित शशधर॥१२५॥
आइलेन श्रीमुकुन्दसंजयेर घरे।
आसिया बसिया चण्डीमण्डप–भितरे॥१२६॥

(१२५–१२६) प. अनु०—श्रीगुरुदेव को प्रणाम करने का पश्चात् तारावलि से घिरे चन्द्रमा की भाँति चारों ओर से शिष्यों से घिरे हुये प्रभु श्रीविश्वम्भर, श्रीमुकुन्दसंजय के घर आ गये और आकर चण्डीमण्डप के भीतर बैठ गये।

गोष्ठी सहित मुकुन्द का आनन्द, मुकुन्द के पुत्र पुरुषोत्तम को प्रभु द्वारा स्नेह कृपा दान और स्त्रियों द्वारा हुलध्वनि–

गोष्ठी–संगे मुकुन्दसंजय पुण्यवन्त।
ये हइल आनन्द, ताहार नाहि अन्त॥१२७॥
पुरुषोत्तमसंजयेरे प्रभु कैला कोले।
सिंचिलेन अंग ता'न नयनेर जले॥१२८॥
जयकार दिते लागिलेन नारीगण।
परम आनन्द हैल मुकुन्द–भवन॥१२९॥

(१२७–१२९) प. अनु०—सौभाग्यशाली पुण्यवन्त श्रीमुकुन्दसंजय को गोष्ठी सहित जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसकी कोई सीमा नहीं है। श्रीपुरुषोत्तमसंजय को प्रभु ने आलिंगबद्ध कर लिया। प्रभु के अश्रुजल से उनका सारा शरीर भीग गया। सभी नारियाँ जय–जयकार (हुलुध्वनि) करने लगीं। मुकुन्दसंजय के भवन में परम आनन्द छा गया।

प्रभु का अपने घर आगमन—

शुभ दृष्टिपात प्रभु करि' सबाकारे।
आइलेन महाप्रभु आपन–मन्दिरे॥१३०॥
आसिया बसिया विष्णुगृहेर दुयारे।
प्रीति करि' विदाय दिलेन सबाकारे॥१३१॥

(१३०–१३१) प. अनु०—सभी के ऊपर शुभ दृष्टिपात करते हुये महाप्रभु अपने घर आ गये, आते ही विष्णु मन्दिर के द्वार पर बैठ गये और फिर सबको प्रीतिपूर्वक विदा किया।

प्रभु की अभिनव (नूतन) क्रियामुद्राओं को समझने में सभी की असमर्थता—

ये–ये जन आइसे प्रभुरे सम्भाषिते।
प्रभुर चरित्र केह ना पारे बुझिते॥१३२॥

(१३२) प.अनु०—जो व्यक्ति प्रभु से वार्तालाप करने के लिए आ रहे थे उनमें

से कोई भी प्रभु के चरित्र को नहीं समझ पा रहा था।

प्रभु-द्वारा पूर्व-विद्याविलास-अंहकार का गोपन और महावैराग्य का प्रकटन-

पूर्व-विद्या औद्धत्य ना देखे कोन जन।
परम विरक्तप्राय थाके सर्वक्षण॥१३३॥

(१३३) प. अनु०—कोई भी व्यक्ति अब उनमें पहले की सी विद्या-विषयक उद्दण्डता नहीं देख पा रहा था, अब तो प्रभु सब समय परम विरक्त की भाँति रह रहे थे।

पुत्र के भाव से अनभिज्ञ शची द्वारा पुत्र के लिए विष्णु पूजन—

पुत्रेर चरित्र शची किछुइ ना बुझे।
पुत्रेर मंगल लागि' गंगा-विष्णु पूजे॥१३४॥
''स्वामी निला कृष्णचन्द्र! निला पुत्रगण।
अवशिष्ट सबे-मात्र आछे एकजन॥१३५॥
अनाथिनी मोरे, कृष्ण'! एइ देह' वर।
सुस्थचित्ते गृहे मोर रहु विश्वम्भर॥''१३६॥

(१३४-१३६) प. अनु०—श्रीशचीमाता भी पुत्र के व्यवहार के बारे में कुछ भी न समझ पाईं। वे पुत्र के मंगल के लिए गंगा-विष्णु की पूजा करने लगीं। वे कहने लगीं—"हे कृष्णचन्द्र! आपने मेरे स्वामी को ले लिया और पुत्रों को भी ले लिया, अब तो केवल यह एक ही बचा है। हे कृष्ण! मुझ अनाथिनी को तो यही वर दें कि मेरा विश्वम्भर स्वस्थ चित्त से घर में ही रहे।"

पुत्रवधू के माध्यम से उदासीन पुत्र की गृहासक्ति को बढ़ाने वाली चेष्टाएँ, कृष्ण विरहाक्रान्त प्रभु का वैराग्य और उदासीनता—

लक्ष्मीरे आनिजा पुत्र-समीपे बसाय।
दृष्टिपात करियाओ प्रभु नाहि चा'य॥१३७॥

(१३७) प. अनु०—शचीमाता ने लक्ष्मी को लाकर पुत्र के पास बिठा दिया, परन्तु प्रभु ने उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया।

(१३७) गौः भा—लक्ष्मी अर्थात् विष्णुप्रिया देवी। निमाइ की कृष्णेतर विषयों में उदासीनता देखकर माता शचीदेवी ने पुत्र के सांसारिक बन्धनों के वर्द्धन हेतु संसार में असाक्त साधारण माताओं के लौकिक चिन्तन का अभिनय करते हुये विचार किया,—"वधू श्रीविष्णुप्रियादेवी के साथ बातचीत आदि का सुयोग देने का ऐसा सम्भव हो सकता है कि पुत्र की संसार विरुद्ध तीव्र कृष्णभजनानुराग चेष्टा तनिक शिथिल हो जाये। साधारण लौकिक दृष्टि से यौवन के समय बद्धजीव नारी के प्रति भोग्य बुद्धि के कारण अपनी पत्नी को भोग्याभिमान से भोग करते-करते संसार में आसक्त और गृहमेधी हो जाते हैं, किन्तु प्रभु के पक्ष में यह विचार किंचित्मात्र भी लागू नहीं हुआ। वे अपनी लक्ष्मी के प्रति अत्यन्त उदासीन भाव से सामान्य कटाक्षपात करके भी कृष्णविरह-सन्तपत आश्रय भाव में विभावित होकर कृष्णप्रेम-विह्वलता के कारण दास्य भाव की विग्रहस्वरुपा विष्णुप्रियादेवी तक को भोग्य विषय के रूप में देखने को उत्साहित नहीं हुये।

अहर्निश कृष्णविरह-वेदना से प्रभु द्वारा श्लोका-वृत्ति-,अधैर्य और क्रन्दन—

निरवधि श्लोक पड़ि' करये रोदन।
''कोथा कृष्ण! कोथा कृष्ण!''बले अनुक्षण॥१३८॥
कखनो कखनो येवा हुंकार करय।
डरे पलायेन लक्ष्मी, शची पाय भय॥१३९॥
रात्र्ये निद्रा नाहि या'न प्रभु कृष्णरसे।

विरहे ना पाय स्वास्थ्य, उठे, पड़े वैसे॥१४०॥

(१३८-१४०) प. अनु०—प्रभु निरन्तर श्लोक पढते-पढ़ते क्रन्दन ही करते रहते और सब समय यही रट लगाये रहते कि "कहाँ हैं कृष्ण! कहाँ हैं कृष्ण!" फिर कभी-कभी जब प्रभु हुंकार करते तो डर के मारे विष्णुप्रिया उठ भागतीं और शचीमाता भी भयभीत हो उठतीं। कृष्णरस में निमग्न प्रभु को रात्रि में नींद भी नहीं आती थी। विरह-वेदना के कारण कभी वे उठते, कभी गिर पड़ते और कभी बैठ जाते।

(१४०) गौः भा—विप्रलम्भ रस में निमग्न प्रभु की कृष्ण-विरहानुभूति इतनी दूर तक बढ़ गयी थी कि वे प्रतिदिन बिना नींद के ही रात बिता देते थे। तीव्र विरह की वेदना से अस्थिर होकर वे कभी तो शय्या पर ही उठकर बैठ जाते।

बहिरंग लोगों को देखकर प्रभु-द्वारा अपने निगूढ़ अन्तर्भाव का गोपन—

भिन्न लोक देखिले करेन सम्वरण।
ऊषः काले गंगा स्नाने करये गमन॥१४१॥

(१४१) प. अनु०—बाहर के बहिर्मुख लोगों को देखने पर प्रभु अपने भाव का संवरण कर लेते। प्रातः काल होते ही वे गंगा स्नान के लिए चले जाते।

(१४१) गौः भा—कृष्णसेवा की प्रवृति से रहित, अनभिज्ञ, बहिर्मुख, अभक्त लोगों को देखने पर उनको बहिरंग समझकर प्रभु अपने तीव्र कृष्णविरह प्रेमविकार का दमन या संयमन कर लेते थे।

प्रतिदिन गंगास्नान करके आते ही प्रभु-द्वारा शिष्यों को पढ़ने के लिए प्रस्तुत होना—

आइलेन मात्र प्रभु करि' गंगास्नान।
पड़ुयार वर्ग आसि' हैल उपस्थान॥१४२॥

(१४२) प. अनु०—प्रभु के गंगाास्नान करके आते ही विद्यार्थियों की टोली आकर उपस्थित हो जाती।

प्रभु के मुख से निरन्तर एकमात्र 'कृष्ण'-शब्द का उच्चारण—

'कृष्ण' बिना ठाकुरेर ना आइसे वदने।
पड़ुया-सकल इहा किछुइ ना जाने॥१४३॥

(१४३) गौः भा—कृष्ण की विप्रलम्भ प्रेमसेवा में नियुक्त प्रभु के श्रीमुख से एकमात्र 'कृष्ण' शब्द के अतिरिक्त न तो कोई अन्य शब्द सुना जाता, न कोई दूसरी चर्चा। किन्तु छात्र समूह अपने अध्यापक निमाइ पण्डित की तात्कालिक अवस्था को तनिक भी नहीं समझ पाये।

सभी की प्रार्थना पर परममुख्य विद्वद्रूढ़िवृत्ति से प्रभु द्वारा अध्यापन के माध्यम से कृष्णनाम के माहात्म्य का प्रकाश आरम्भ—

अनुरोधे प्रभु बसिलेन पड़ाइते।
पड़ुया-सबार स्थाने प्रकाश करिते॥१४४॥
'हरि' बलि पुँथि मेलिलेन शिष्यगण।
शुनिया आनन्द हैला श्रीशचीनन्दन॥१४५॥

(१४४-१४५) प. अनु०—सभी के अनुरोध पर प्रभु पढ़ाने के लिए बैठ गये और सभी विद्यार्थियों के पास अपने स्वरूप का प्रकाश करने लगे। 'हरि' 'हरि' बोलने हुये शिष्यों ने अपनी पुस्तकें खोलीं। उसको सुनकर श्रीशचीनन्दन प्रभु आनन्दित हो उठे।

हरिध्वनि सुनकर प्रभु द्वारा अधोक्षज-दर्शन का प्रकाश-

बाह्य नाहि प्रभुर शुनिया हरिध्वनि।

शुभदृष्टि सबारे करिला द्विजमणि॥१४६॥

(१४६) प. अनु०—हरिध्वनि सुनते ही प्रभु की बाह्य चेतना लुप्त हो गई। फिर द्विजराज प्रभु ने सभी का प्रभु दृष्टिपात किया।

नित्य-शुद्ध-पूर्ण-मुक्त चिन्मयी परम मुख्यविद्वद् रुढ़िवृत्ति के माध्यम से प्रभु द्वारा व्याख्यानारम्भ—

आविष्ट हइया प्रभु करेन व्याख्यान।
सूत्र-वृत्ति-टीकाय, सकल हरिनाम॥१४७॥

(१४७) प. अनु०—आवेश में आकर प्रभु ने व्याख्या आरम्भ की। वे सूत्र, वृत्ति और टीका में सर्वत्र 'हरि का नाम ही सिद्ध करने लगे।

(१४७) गौः भा—अध्यापक होने के कारण निमाइ ने कृष्णप्रेमाविष्ट होकर शब्दशास्त्र का अध्यापन करते समय समग्र सूत्र, वृत्ति और टीका का तात्पर्य एकमात्र हरिनाम ही है; ऐसी व्याख्या की। शब्दों की रूढ़िवृत्तियों में प्रधानतः विद्वद्रूढ़ि, साधारण रूढ़ि और अज्ञरूढ़ि, ये तीन प्रकार की वृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। उस समय प्राकृत इन्द्रिय तर्पन परायण आध्यक्षिक (इन्द्रिय ग्राह्य ज्ञान) शब्दशास्त्र के अध्यापकगण अज्ञरूढ़िवृत्ति से प्रेरित होकर केवल इतना ही जानते थे कि प्रत्येक शब्द इन्द्रिय सुख साधन उपयोगी भोग-वाचक है। अपनी भोग-पर बुद्धि के कारण कोई भी अध्यापक विद्वद्रूढ़िावत्ति से प्रेरित होकर यह समझाने में सक्षम ही न था कि प्रत्येक वर्ण और शब्द भगवद् उद्दीपक और भगवद्वस्तु से अभिन्न है। गौरसुन्दर ने शब्द शास्त्र का पाठ करने वालों को अध्यापन के समय ग्रन्थ के आरम्भ से अन्त तक विद्वद्रूढ़िवृत्ति द्वारा ही जो प्रकृत अर्थ आलोच्य और बोधयोग्य है, उसकी व्याख्या करके वस्तुतः प्रत्येक शब्द का ही भगवद्वाचकत्व एवं वाच्यस्वरूप भगवान् विष्णु तथा वाचकस्वरूप शब्द के परव्योम वैकुण्ठाधार के कारण, परस्पर की भेद-निषिद्धता अर्थात् सम्पूर्ण अभेदत्व वाचक में प्रतीतिगत वैषम्य (भेद) लक्षित होता है, उस स्थान पर मोहिनी माया द्वारा वंचित जीवों की भोगबुद्धि के कारण अज्ञरूढ़िवृति ही प्रकाशित होती श्रीनाम के उद्देशक (जिस तत्त्व को उद्देश्य करता है) विचारों से रहित उस समय अध्यापक विश्वम्भर द्वारा व्याख्यायित (व्याख्या किये हुये) शब्दों के अर्थ में भगवत्तत्व के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की उपलब्धि नहीं थी। कृष्णसेवामय परव्योम परव्योम में प्रस्फुटित प्रत्येक शब्द ही शुद्ध चिन्मयी विद्वद्रूढ़िवृत्ति में वाच्य भगवान्, नामी हरि के साथ सर्वतोभाव से अभिन्न वाचक श्रीहरिनाम-स्वरूप है।

प्रभु द्वारा सर्वशास्त्रों में वर्णित कृष्ण के नाम और कृष्ण तत्त्व की महिमा का व्याख्यान—

प्रभु बोले,—सर्वकाल सत्य कृष्णनाम।
सर्वशास्त्रे 'कृष्ण' बइ ना बलये आन॥१४८॥
हर्त्ता कर्त्ता पालयिता कृष्ण से ईश्वर।
अज-भव-आदि, सब—कृष्णेर किंकर॥१४९॥

(१४८-१४९) प. अनु०—गौरप्रभु बोले कि, एक कृष्णनाम ही प्रत्येक काल में सत्य है। समस्त शास्त्र एक कृष्ण को छोड़ अन्य कुछ नहीं कहते हैं। तथा सबके कर्त्ता, पालक और संहर्ता हैं। ब्रह्मा, शिव आदि सभी श्रीकृष्ण के किंकर हैं।

(१४८) गौः भा—कृष्णनाम कालातीत है। वह काल के बीच में उत्पन्न और विलीन होने वाली असत्य वस्तु नहीं है। कृष्णनाम और कृष्ण में किसी प्रकार का मायिक वैषम्य न रहने के कारण काल के जनक विग्रह

नामी कृष्ण के साथ कृष्णनाम भी सार्वकालिक अखण्ड सत्य है। सभी

सात्वक शास्त्रों ने कृष्ण के अतिरिक्त दूसरे किसी को भी लक्ष्य नहीं किया है; यथा हरिवंश पुराण में—"वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥"

(१४९) गौः भा—कृष्ण ही परमेश्वर और सब कारणों के कारण हैं। वे ही जगत् के मूल सृष्टिकर्त्ता, मूल–पालक और मूल संहारकारी हैं। जहाँ कहीं पर ब्रह्मा और रुद्र का सृष्टिकर्ता और लयकर्ता के रुप में उल्लेख हुआ है, वहाँ पर उनको कृष्ण–शक्ति के प्रभाव से ही ईश्वरता प्राप्त होने के कारण, कृष्ण आज्ञा पालन–द्वारा आधिकारिक गौण सेवा के निर्वाहकारी रजोगुण तथा तमोगुण के अधिष्ठातृदेवों के रुप में समझना होगा।

कृष्णेतर–व्याख्याकारी तथा कृष्णनाम भजनहीन व्यक्ति की निन्दा—

कृष्णेर चरण छाड़ि' ये आर बाखाने।
वृथा जन्म याय ता'र असत्य–वचने॥१५०॥
आगम–वेदान्त–आदि यत दरशत।
सर्वशास्त्रे कहे 'कृष्णपदे भक्तिधन'॥१५१॥
मुग्ध सब अध्यापक कृष्णेर मायाय।
छाड़िया कृष्णेर भक्ति अन्य पथे याय॥१५२॥
करुणासागर कृष्णसागर कृष्ण जगत–जीवन।
सेवक–वत्सल नन्दगोपेर नन्दन॥१५३॥
हेन कृष्ण नामे या'र नाहि रति–मति।
पड़ियाओ सर्वशास्त्र, ताहार दुर्गति॥१५४॥
दरिद्र अधम यदि लय कृष्णनाम।
सर्वदोष थाकिलेओ याय कृष्णधाम॥१५५॥
एइमत सकल शास्त्रेर अभिप्राय।
इहाते सन्देह या'र, से–इ दुःख पाय॥१५६॥
कृष्णेर भजन छाड़ि' ये शास्त्र बाखाने।
से अधम कभु शास्त्रमर्म नाहि जाने॥१५७॥
शास्त्रेर ना जाते मर्म, अध्यापना करे।
गर्द्दभरे प्राय येन शास्त्र बहि' मरे॥१५८॥
पड़िया शुनिञा लोक गेल छारे–खारे।
कृष्ण महामहोत्सवे वंचिला ताहारे॥१५९॥

(१५०–१५१) प. अनु०—जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के चरणों को छोड़कर और कुछ वर्णन करता है तो उस असत्य वचन से उसका जन्म व्यर्थ चला जाता है। आगम वेदान्त आदि जितने भी दर्शन और शास्त्र हैं, वे सभी 'श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में भक्ति धन का' ही प्रतिपादन करते हैं। जो अध्यापक कृष्ण की भक्ति को छोड़कर अन्य पथ पर चल रहे हैं, वे सब श्रीकृष्ण की माया से मोहित हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण करुणासागर, भक्त–वत्सल और जगत् के जीवन हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के नाम में जिनकी रति–मति नहीं हैं, वे सब शास्त्रों को पढ़कर भी दुर्गति को ही प्राप्त होते हैं। परन्तु कोई दरिद्र और अधम भी यदि कृष्णनाम लेता है तो सब दोषों के होने पर भी वह श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है। यही सब शास्त्रों का अभिप्राय है। इसमें जिसे सन्देह है, वही दुःख पाता है। जो शास्त्र की व्याख्या श्रीकृष्ण भजन के अतिरिक्त कुछ और करता है, वह अधम वस्तुतः शास्त्र के मर्म को ही नहीं जानता है और जो बिना मर्म जाने शास्त्र पढ़ाता है, वह गधे की भाँति शास्त्र का बोझा ढोता हुआ मरता है। पढ़ सुनकर भी लोग नष्ट–भ्रष्ट हो रहे हैं। जिस कारण वे श्रीकृष्ण महा–महोत्सव से भी वंचित हो जाते हैं।

(१५०) गौः भा—श्रीकृष्ण ही सब कारण

ों के कारण मूल आकर-वस्तु हैं। उनके पादपदमों की सेवा के तात्पर्य का परित्याग करके अज्ञरूढिवृत्ति के आश्रय से जो पण्डिताभिमानी शास्त्र तात्पर्य से अनभिज्ञ, केवल भारवाही लोग शास्त्र का कुत्सित अर्थ करते हैं, उनका अति दुर्लभ अर्थप्रद (प्रयोजन देने वाला) मानव-जीवन-धारण भी ऐसी असती (व्यभिचारिणी) व्याख्या करने के कारण व्यर्थ और निष्फल हो जाता है अर्थात् श्रीमद्भागवत की भाषा में,—वे वास्तव में हैं—'जीवन्मृत', 'जीवच्छव' अथवा 'श्वसच्छव', अर्थात् जीवित अवस्था में भी मृत तुल्य।

(१५१) गौः भा—वेदविस्तार आगम अर्थात् सात्वत-तन्त्र-पंचरात्रसमूह, वेद के शिरोभाग—उपनिषद् समूह और उनके सारस्वरुप वेदान्त एवं अन्याय सभी दर्शन-शास्त्रादि समस्त शास्त्र ही तात्पर्यरूप से एकमात्र श्रीकृष्ण पादपद्म-सेवा का ही प्रतिपादन और उसी को लक्ष्य करते हैं।

(१५४) गौः भा—जो पण्डिताभिमानी समस्त शास्त्रों का अध्ययन करके भी परम-मुख्या विद्वद्रूढ़िवृत्ति के परित्याग पूर्वक अज्ञरूढ़िवृत्ति का अवलम्बन करके वैकुण्ठ-कृष्णनाम में रूचि विशिष्ट नहीं होते, वे आत्मसम्भावित (अंहकारी) पण्डिताभिमानी होने पर भी प्रकृत प्रस्ताव से शास्त्रों के सारग्राही न होकर दुर्दैग्रस्त नरकगामी और भारवाही मात्र हैं।

(१५७) गौः भा—जो प्राक्तनजन्म की पुंज-पुंज दुष्कृतियों के वशीभूत होकर सभी शास्त्रों के एकमात्र तात्पर्य 'कृष्ण भजन' का परित्याग करके भगवद्भक्ति की परमोत्कर्षसूचक भक्ति-परक व्याख्या नहीं करते अर्थात् भक्तिप्रतिकूल अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान, और योगादि अभक्ति को ही 'उपेय' समझकर शास्त्रों की व्याख्या करते हैं, वे वस्तुतः स्वारस्य (सुसिद्धान्त), अनुभव, अभिप्राय या तात्पर्य से अवगत नहीं हैं। "आचार्यवान् पुरूषो वेद"—(छाः ६/१४/२)—"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥" (श्वेताश्वः ६/२३) "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृवृणुते तनूं स्वाम्"॥ (कठ.१/२/२३) आदि मन्त्र एवं "शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि। श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनूमिव रक्षतः॥" (भाः ११/११/१८) "अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव ही। जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥"(भाः १०/१४/२९) आदि श्रुति-स्मृति-पुराणदि-शास्त्रों के असंख्य श्लोक विशेषरुप से अवलोकन करने योग्य हैं।

(१५८) गौः भा—शास्त्रों का अनुशीलन करने वाले जन दो प्रकार के होते हैं (१) एक तो जो गो-ग र्दभ (बैल और गधे) की भाँति भारवाही और दूसरे-मधुकर (मधुमक्खी) की भाँति सारग्राही। तात्पर्य यह है कि अज्ञरूढ़िवृत्ति से प्रेरित होकर भारवाही अध्यापकगण प्रकृत शास्त्र के तात्पर्य ज्ञान के अभाव से अपनी जड़ेन्द्रियो के तर्पण के लिए परविद्या सरस्वती के प्रति श्रीकृष्ण की ऐकान्तिक भजनपरायण व्याख्या न करके गो-गर्दभ की तरह मधु या चीनी के बर्तन में स्थित पदार्थ के माधुर्य की उपलब्धि अथवा आस्वादन करने में असमर्थ होकर केवलमात्र अज्ञपशुसुलभ (अज्ञ पशु की तरह) वृथा परिश्रम करते हैं, उसी प्रकार भारवाही पण्डिताभिमानिगण का यह सब श्रुत-स्वाध्याय प्रवचनादि-श्रम भी पूर्णतः निष्फल और निरर्थक हो जाता है। उस समय यह निर्बोध सम्प्रदाय माया मोहग्रस्त होकर समशील (समान स्वभाव) भारवाही लोगों के मध्य 'पण्डित' होने की भ्रान्ति उन्पन्न कर लेता है।

किन्तु शास्त्र के सारग्राही सुचतुर भक्तों की ही वस्तुतः बन्ध–मोक्ष–वित् 'पण्डित' आख्या यथोचित और शोभनीय है।

(भाः ४/२९/४४ श्लोक में राजर्षि प्राचीनबर्हि के प्रति देवर्षि नारद की उक्ति) "अद्यापि वाचस्पतयर–तपोविद्यासमाधिभिः। पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम्॥"

अर्थात् 'वाचस्पतिगण तपस्या, विद्या और समाधि द्वारा सतत विचार करने पर भी सर्वसाक्षी परमेश्वर को अभी तक नहीं जान सके हैं।'

कृष्ण के नाम और गुणों का वर्णन–

पूतनारे येइ प्रभु कैला मुक्तिदान।
हेन कृष्ण छाड़ि' लोके करे अन्य ध्यान॥१६०॥
अघासुर–हेन पापी ये कैला मोचन।
कौन सुखे छाड़े लोकर ताँहार कीर्तन?॥१६१॥
ये–कृष्णेर नामे हय जगत पवित्र।
ना बले दुःखित जीव ताहार चरित्र॥१६२॥
ये–कृष्णेर महोत्सवे ब्रह्मादि–विह्वल।
ताहा छाड़ि नृत्यगीते करे अमंगल॥१६३॥
अजामिले निस्तारिला ये–कृष्णेर नामे।
धन–कुल–विद्या–मदे ताहा नाहि जाने॥१६४॥

(१६०–१६१) प. अनु०—जिन प्रभु ने पूतना को भी मुक्ति दे दी, ऐसे श्रीकृष्ण को छोड़कर भी लोग दूसरों का ध्यान करते हैं। जिन्होंने अघासुर जैसे पापी का भी उद्धार कर दिया, फिर उनका कीर्तन लोग किस सुख के लिए छोड़ देते हैं।

(१६०) गौः भा—भगवान् कृष्ण ने उनके अपने वध की इच्छा रखनेवाली मूर्तिमती कापट्य–विग्रह पूतना की नारकी वृत्ति होने पर भी अपनी अहैतुकी दया के परवश होकर उसको आध्यक्षिक कृष्ण विरोध युक्त–ज्ञान से मुक्त करके सुदुर्लभ निज परमपद प्रदान किया था। जो कृष्ण की उस असाम्यातिशया (जिसके समान और बड़ा कोई नहीं) अमन्दोदया दया की महिमा का विचार करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं, वे ही समझ सकते हैं कि, प्रपंच और प्रपंचातीत अप्राकृत जगत् में, कहीं पर भी उस दया की सीमा या तुलना नहीं है। इसलिए नितान्त अभागे, कुबुद्धि और नारकी मूर्खों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं होगा जो सर्वोत्तम परमधर्म कृष्णपादपद्म की सेवा छोड़कर अन्यत्र चिन्ता या चेष्टा करता हो। (भाः ३/२/२३ श्लोक में विदुर के निकट श्रीउद्धव की उक्ति)—"अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्साध्वी। लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरण ं व्रजेम॥"

अर्थात् "अहो, उस बकासुर की बहन पूतना ने, बध करने की इच्छा से असाधु वृत्तियुक्त होकर जिनको अपने स्तनों में लगे हुये कालकूट विष का पान कराया था, उसे भी जिन्होंने मातृ योग्या गति प्रदान की थी, उन श्रीकृष्ण को छोड़कर हम अन्य किस दयालु के शरणापन्न होवें?"

(भाः १०/४८/२६) श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति उद्धव का स्तवन)—"कः पण्डितत्वदपरं शरणं समीयाद् भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात्। सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य॥"

अर्थात् 'ऐसा कौन पंडित है, जो प्रिय, सत्यभाषी सुहृद् और कृतज्ञरुप आपको छोड़कर किसी दूसरे के शरणापन्न होगा? आप भजनशील सुहृद् व्यक्तियों के लिए उनकी समस्त कामनाओं को एवं अपने आप तक को दे देते हैं, फिर भी न आपका कोई ह्रास होता हैं और न वृद्धि।'

(चैः चः मध्य २२ श पः ९२ और ९४ —) "भक्तवत्सल, कृतज्ञ, समर्थ, वदान्य। हेन कृष्ण छाड़ि' पण्डित नाहि भजे अन्य"॥ "विज्ञजनेर हय यदि कृष्णगुण-ज्ञान। अन्य त्यजि' भजे, ता'ते उद्धव प्रमाण॥"

(१६२-१६४) प. अनु०—जिन श्रीकृष्ण के नाम मात्र से ही जगत् पवित्र हो जाता है, फिर भी उनका नाम दुःखित जीव नहीं लेते हैं। जिन श्रीकृष्ण के महोत्सव में ब्रह्मादि भी विह्वल हो जाते हैं, उस (महोत्सव) को छोड़कर लोग दूसरे-दूसरे प्रकार के नृत्य गीत आदि में अपना अमंगल करते रहते हैं। जिन श्रीकृष्ण के नाम तक को धन, कुल और विद्या के मद में भूल जाते हैं।

(१६४) गौः भा—अजामिल के कृष्ण नामाभास से निस्तार के प्रसंग में,—भाः षष्ठ स्क, १म अः २१-६८ और २य अध्याय (सम्पूर्ण) द्रष्टव्य हैं।

धन.....जाने,—(भाः१/८/२६ श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति कुन्ती की उक्ति) —"जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमान-

मदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम्॥"

अर्थात् 'हे कृष्ण! ऊँचे कुल, धन, विद्या एवं रुपादि नश्वर सम्पत्ति की प्राप्ति से जिनका अहंकार बढ़ चुका है, ऐसे व्यक्ति निष्किंचन निष्काम-भक्त के लिए आपके 'श्रीकृष्ण', गोविन्द' इत्यादि शुद्धनामों का कीर्तन करने में निश्चय ही कभी भी समर्थ नहीं होते हैं।'

कृष्ण के पादपद्मों का माहात्म्य वर्णन—

शुन, भाइ-सब, सत्य आमार वचन।
भजह अमूल्य कृष्णपादपद्म-धन॥१६५॥
ये-चरण सेविते लक्ष्मीर अभिलाष।
ये-चरण सेविञा शंकर शुद्धदास॥१६६॥
ये-चरण हइते जाह्नवी-परकाश।
हेन पादपद्म, भाइ, सबे कर आश॥१६७॥

(१६५-१६७) प. अनु०—हे भाइयों! तुम सब मेरे सत्य वचनों को सुनो—श्रीकृष्ण के पाद-पद्म रुपी अमूल्य धन का भजन करो। जिन श्रीचरणों की सेवा के लिए लक्ष्मीजी सदा लालायित रहती हैं और जिन श्रीचरणों का सेवन करके शिवजी उनके अनन्य दास हो गये हैं तथा जिन श्रीचरणों से गंगा जी प्रकट हुई हैं, हे भाइयों! ऐसे श्रीपादपद्मों के लिए सभी आशा करो।

(१६५) गौः भा—"हे साधवः सकलमेव विहाय दूराद् गौरांगचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्॥" अर्थात 'हे साधुओं, आप लोग श्रीकृष्णेन्द्रिय तर्पण प्रतिकूल जितने भी दैहिक या मानसिक धर्म हैं, उन सबका दूर से परित्याग करके श्रीगौरांगचन्द्र के चरणों में अनुरक्त हो जाइये।'

प्रभु की स्वकृत और अविसंवादिनी (सर्वसम्मत)व्याख्या में आत्मश्लाघा—

देखि,-''कार् शक्ति आछे एइ नवद्वीपे।
खण्डुक आमार व्याख्याआमारसमीपे?''॥१६८॥

(१६८) प. अनु०—देखुँ, "इस नवद्वीप में किसकी शक्ति है, जो मेरी इस व्याख्या का मेरे सम्मुख खण्डन कर सके।"

मूर्त्तशब्द-विरह स्वरुप श्रीविश्वम्भर की यथार्थ व्याख्या—

परम-ब्रह्म विश्वम्भर शब्द-मूर्त्तिमय।
ये-शब्दे ये बाखानेन से-इ सत्य हय॥१६९॥

(१६९) प. अनु०—परब्रह्म विश्वम्भर स्वयं ही शब्दों के मूर्त्तिमय विग्रह हैं, वे जिस शब्द की जो व्याख्या करते हैं, वही सत्य होती है।

(१६९) गौः भा—चेतन और अचेतन विश्व के पालक और पोषक वैकुण्ठपति श्रीविश्वम्भर–साक्षात् परब्रह्म शब्द–विग्रह हैं, इसलिए वे साक्षात् परविद्या सरस्वती के पति हैं। प्रभु विश्वम्भर नित्य–शुद्ध–पूर्ण–

मुक्त–चिनमयी परम–मुख्या विद्वद्रुढ़िवृत्ति से जिस किसी भी शब्द की जो कुछ भी कृष्णतात्पर्यपरक व्याख्या करें, वही प्रकृत और परम–सत्यार्थ है।

प्रभु की व्याख्या से छात्रों का मुग्धभाव—

मोहित पड़ुया सब शुने एकमने।
प्रभुओ विह्वल इह' सत्य से बाखाने॥१७०॥

(१७०) प. अनु०—प्रभु प्रेम में विह्वल होकर जो सत्य है उसका बखान कर रहे हैं और सभी विद्यार्थी मोहित होकर उसे एकमन से सुन रहे हैं।

प्रत्येक शब्द का चिन्मय सहज अर्थ ही कृष्ण तात्पर्यपर,—उस पर भी प्रभु का व्याख्या वैचित्र्य—

सहजेइ शब्दमात्रे 'कृष्ण सत्य' कहे।
ईश्वर ये बाखानिवे,—किछु चित्र नहे॥१७१॥

(१७१) प. अनु०—स्वाभाविक रूप से प्रत्येक शब्द परम सत्य श्रीकृष्ण का ही वर्णन करते हैं। प्रभु जो ऐसी व्याख्या कर रहे हैं, इसमें कोई विचित्र बात नहीं है।

(१७९) गौः भा—प्रेमाञ्जनच्छुरित (प्रेमरूप सुरमा से युक्त) भक्तिमय नित्यशुद्ध श्रवणेन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले सभी शब्द शुद्धसत्त्व परव्योम (चिदकाश) से अवतीर्ण होकर उपलब्ध होने के कारण नित्य–सत्य–सनातन कृष्ण के साथ अभिन्नता–वाचक हैं। इसलिए जीवसुलभ (१) भ्रम, (२) प्रमाद, (३) विप्रलिप्सा और (४) करणापाटव, इन चार दोषों से निर्मुक्त साक्षात् परमेश्वर श्रीविश्वम्भर पूर्ण–शुद्ध–नित्य–

मुक्त चिन्मयी परम–मुख्या विद्वद्रूढ़िवृत्ति से जो प्रत्येक शब्द की उसी प्रकार से सत्यार्थ–व्याख्या कर रहे हैं, वह आश्चर्यजनक अथवा विस्मयकर नहीं है।

प्रभु द्वारा बाह्य दशा होने पर छात्रों से अपनी व्याख्या–रीति की जिज्ञासा—

क्षणेके हइला बाह्यदृष्टि विश्वम्भर।
लज्जित हइया किछु कहये उत्तर॥१७२॥

(१७२) प. अनु०—कुछ ही देर में जब श्री विश्वम्भर को बाह्य ज्ञान हो गया, तब वे लज्जित होकर विद्यार्थियों से कुछ इस प्रकार कहने लगे।

छात्रों का प्रभु के सम्मुख तत्कृत व्याख्या को समझते की सामर्थ्य का अभाव ज्ञापन–

''आजि आमि केमत से सुत्र बाखानिलुँ?''
पड़ुया–सकल बले,—''किछु ना बुझिलुँ''॥१७३॥
यत किछु शब्दे बाखानह 'कृष्ण' मात्र।
''बुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र?''॥१७४॥

(१७३–१७४) प. अनु०—प्रभु बोले, —"आज मैंने सूत्रों की कैसी व्याख्या की?" सब विद्यार्थी बोले,–"हम तो कुछ नहीं समझे। आपने तो सभी शब्दों का अर्थ एक मात्र कृष्ण ही बताया। यहाँ भला कौन ऐसा पात्र है, जो आपकी इस व्याख्या को समझ सके?"

छात्रों के साथ प्रभु का गंगा स्नान के लिए गमन—

हासि' बले विश्वम्भर,—''शुन सब भाइ।
पुँथि बान्ध' आजि चल गंगास्नाने याइ॥''१७५॥
बान्धिला पुस्तक सबे प्रभुर वचने।
गंगास्नाने चलिलेन विश्वम्भर–सने॥१७६॥

(१७५–१७६) प. अनु०—प्रभु श्रीविश्वम्भर

ने हँसते हुये कहा,—"भाइयों! सब सुनो! आज अपनी पुस्तकों को बाँध लो और चलो गंगा स्नान को चलें।" प्रभु के वचन सुनते ही सभी ने पुस्तकें बाँध लीं और श्रीविश्वम्भर के साथ गंगा स्नान को चल पड़े।

प्रभु के अलौलिक रुप का वर्णन—

गंगाजले केलि करे प्रभु विश्वम्भर।
समुद्रेर माझे येन पूर्ण–शशधर॥१७७॥
गंगाजले केलि करे प्रभु विश्वम्भर–राय।
परम–सुकृति–सब देखे नदीयाय॥१७८॥
ब्रह्माादिर अभिलाष ये रुप देखिते।
ब्रह्मादिर अभिलाष ये रुप देखिते।
हेन प्रभु विप्ररुपे खेले से जलेते॥१७९॥
गंगाघाटे स्नान करे यत सब जन।
सबाइ चा'हेन गौरचन्द्रेर वदन॥१८०॥
अन्योऽन्ये सर्व–जने कहये बचन।
''धन्य माता–पिता,—याँर ए–हेन नन्दन''॥१८१॥

(१७७–१८१) प. अनु०—प्रभु श्रीविश्वम्भर गंगा जल में ऐसे (क्रीड़ा, केलि) करता है। श्रीविश्वम्भर राय गंगा जल में विहार कर रहे हैं और नदीया के परम सुकृतिशाली सब लोग देख रहे हैं। ब्रह्मादि भी जिस रुप के दर्शन की अभिलाषा करते हैं, वही प्रभु विप्ररुप से जल में विहार कर रहे हैं। गंगा घाट पर जितने भी लोग स्नान कर रहे हैं, वे सब गौरचन्द्र के मुख की ओर ही देख रहे हैं और सभी लोग परस्पर कह रहे हैं कि,—"माता पिता धन्य हैं, जिनके ये ऐसे पुत्र हें।"

प्रभु के पादस्पर्श से गंगा का आनन्द और प्रभु की सेवा–

गंगार बाड़िल प्रभु–परशे उल्लास।
आनन्दे करेन देवी तरंग–प्रकाश॥१८२॥
तंरगेर छले नृत्य करेन जाह्नवी ।
अनन्त–ब्रह्माण्ड या'र पदयुग–सेवी॥१८३॥
चतुर्द्दिके प्रभुरे बेड़िया जह्नुसुता।
तरंगेर छले जल देइ अलक्षिता॥१८४॥

(१८२–१८४) प. अनु०—प्रभु का स्पर्श पाते ही गंगा देवी उल्लासित हो उठीं और वे आनन्द में अपनी तरंगों को प्रकट करने लगीं। वे आज तरंगों के बहाने नृत्य कर रही हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके चरण युगल की सेवा करते हैं, ऐसे प्रभु को चारों ओर से घेरकर तरंगो के बहाने जह्नुसुता (गंगा) अलक्षिता रुप से उनका जलाभिषेक कर रही हैं।

(१७७, १८२–१८४) गौः भा—प्रभु के प्रति प्रयुक्त निरवद्य (निर्दोष, उत्कृष्ट) उपमा और सब प्रकार का वर्णन ग्रन्थकार के महा–कवित्व को प्रकाशित कर रहा है।

भविष्य में गौरकृष्ण–चरितरुप–पुराण के व्यासावतार किसी गौरलीला–लेखक के वर्णन सम्बन्ध में ग्रन्थकार की भविष्यवाणी—

वेदे मात्र ए–सब लीलार मर्म जाने।
किछु शेषे व्यक्त हबे सकल पुराणे॥१८५॥

(१८५) प. अनु०—केवल वेद ही इन सब लीलाओं का मर्म जानते हैं, कालान्तर में सब पुराणों में भी यह (लीलाओं का मर्म) प्रकाशित होगा।

स्नान के बाद प्रभु और छात्रों का अपने–अपने घर को प्रस्थान—

स्नान करि' गृहे आइलेन विश्वम्भर।
चलिला पड़ुयावर्ग यथा याँर घर॥१८६॥

(१८६) प. अनु०—प्रभु विश्वम्भर स्नान करके अपने घर आ गये तथा सभी विद्यार्थी भी अपने–अपने घर की ओर चल दिये।

गृहस्थ–वैष्णवों को प्रभु के आर्दश द्रष्टान्त द्वारा विष्णु और तदीय के अर्चन तथा सदाचार की शिक्षा प्रदान–

वस्त्र परिवर्त्त' करि' धुइला चरण।
तुलसीरे जल दिया करिला सेचन॥१८७॥
यथाविधि करि' प्रभु गोविन्द–पूजन।
आसिया बसिया गृहे करिते भोजन॥१८८॥
तुलसीर मंजरी–सहित दिव्य अन्न।
मा'ये आनि' सम्मुखे करिला उपसन्न॥१८९॥
विस्वक्सेनेरे तबे करि' निवेदन।
अनन्तब्रह्माण्ड–नाथ करेन भोजन॥१९०॥

(१८७–१९०) प. अनु०—घर आकर प्रभु ने वस्त्र बदलकर चरण धोये और तुलसी में जल देकर उसका सेचन किया। फिर यथाविधि श्रीगोविन्द का पूजन करके गृह में भोजन के लिए जा बैठे। माता ने तुलसी मंजरी के सहित दिव्य अन्न प्रभु के सम्मुख लाकर रक्खा। तब विस्वक्सेन को निवेदन करके अनन्त ब्रह्माण्ड के नाथ प्रभु श्रीविश्वम्भर भोजन करने लगे।

(१८७–१८९) गौः भा—यथाविधि वैष्ाव–दीक्षित व्यक्ति यदि भगवान् विष्णु के लिए तुलसी मंजरी के बिना नैवेद्य अर्पण करता है तो भगवान् विष्णु उसे ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि तुलसी—नित्य कृष्ण प्रेयसी हैं, इसलिए उनका मंजरी पत्र भी केशव को अतिप्रिय है। वार्क्षार्च्चावतार (वृक्ष रूप में अवतरित) तुलसी की मंजरी के सहयोग से ही अर्चावतार श्रीगोविन्द विग्रह के अर्चन की विधि है। तुलसी मंजरी द्वारा भगवान् विष्ाु के विग्रह की अर्चन–विधि व्यवस्था सभी सात्वत वैष्णव–स्मृति–शास्त्रों में कथित है। श्रीगौरसुन्दर ने अभी तदीय रूप से अर्चाविग्रह श्रीतुलसी के अंग पर जलसिंचनरुप अर्चन के बार अपने कुलदेवता या गृहदेव श्रीगोविन्द अर्थात विष्णुविग्रह की शुद्ध–पूजा की। इस लीला के द्वारा प्रभु ने भगवत्सेवापरायण परमार्थी आदर्श गृहस्थ के अवश्य करणीय नित्यकृत्य का महान् दृष्टान्त प्रदर्शित किया है। प्रत्येक गृहस्थ वैष्णव को इस प्रकार के आदर्श का अनुसरण करके भगवान् श्रीविष्णु के विग्रह का अर्चन करना चाहिए एवं नैवेद्य का अवशेष (प्रसाद) परम श्रद्धा और दीनता के साथ ग्रहण करना चाहिए।

(१९०) गौः भा—विष्वक्सेन,—श्रीविष्णु का निर्माल्यधारी पार्षद चतुर्भुज देवविशेष।

ह.भ.वि. ८म विः ८४–८७ श्लोक में "विष्वक्सेनाय दातव्यं नैवेद्यं तच्छतांशकम्" एवं (भा.११/२७/२९और ४३—) "दुर्गो विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरुन् सुरान्। स्वे स्वे स्थानेत्वभिमुखान् पूजयेत् प्रोक्षण ादिभिः" ॥दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत्" एवं इस शेषोक्त श्लोकार्द्ध की श्रीधर–स्वामिपाद–कृत भावार्थ–दीपिका–टीका में—"तत्र उभयत्र भगवतो भोजनसमाप्तिं ध्यात्वा आचमनं दत्त्वा उच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयित्वा तदनुज्ञया पश्चात् स्वयं भुंजीत" अर्थात् भगवान को निवेदित उनका उच्छिष्टप्रसाद विष्वक्सेन को समर्पण करने के बाद वही प्रसाद उनकी आज्ञा से स्वयं ग्रहण करे,–यही शास्त्र विधि है।

शचीमाता और महालक्ष्मी द्वारा प्रभु की सेवा–

सम्मुखे बसिला शची जगतेर माता।
घरेर भितरे देखे लक्ष्मी पतिव्रता॥१९१॥

(१९१) प. अनु०—प्रभु का प्रसाद ग्रहण करते समय जगन्माता श्रीशचीदेवी सामने बैठी थीं और पतिव्रता श्रीविष्णुप्रिया देवी घर के भीतर से प्रभु को देख रही थीं।

शचीमाता की जिज्ञासा—

मा'ये बले,—''आजि, बाप! कि पुँथि पड़िला?
काहार सहित किवा कन्दल करिला?॥१९२॥

(१९२) प. अनु०—माँ ने पूछा,—"वत्स! आज तुमने कौन-सी पुस्तक पढ़ी? और किसी से झगड़ा तो नहीं किया?

प्रभु द्वारा कृष्ण के नाम-गुण और उनके श्रीचरणों एवं कृष्णभक्त की नित्य-सत्यता का वर्णन—

प्रभु बले,—''आजि पड़िलाड. कृष्णनाम।
सत्य कृष्ण-चरणकमल गुणधाम॥१९३॥
सत्य कृष्णनाम-गुण-श्रवण-कीर्तन।
सत्य कृष्णचन्द्रेर सेवक ये-ये-जन॥१९४॥

(१९३-१९४) प. अनु०—प्रभु ने कहा,—"आज मैंने श्रीकृष्णनाम पढ़ा। गुणधाम श्रीकृष्णचरण कमल ही सत्य हैं, श्रीकृष्णनाम के गुणों का श्रवण-कीर्त्तन ही सत्य है, ओर सत्य हैं वे, जो-जो श्रीकृष्णचन्द्र के सेवक हैं।

(१९३-१९४) गौः भा—श्रीशचीदेवी के पूछने पर उत्तर में प्रभु ने कहा,—कृष्णपादपद्म ही समस्त सद्गुणों के मूल आश्रय या आकर और नित्य शुद्धसत्त्व सनातन वस्तु हैं। नामी, रूपी, गुणी और लीलामय कृष्ण विग्रह के साथ पूर्णतः अभिन्न अप्राकृत नाम, रूप, गुण, परिकर वैशिष्ट्य और लीला का श्रवण-कीर्तन ही सब आश्रित वश जनों का सार्वकालिक एकमात्र साधन है। कृष्ण के नाम, रूप, गुण, परिकर वैशिष्ट्य और लीला का श्रवण-कीर्त्तन करने वाले भक्तवृन्द ही नित्य सत्य हैं।

कृष्णभक्तियुक्त शास्त्रों की प्रशंसा और अभिक्तयुक्त शास्त्रों की निन्दा—

सेइ शास्त्र सत्य—कृष्णभक्ति कहे या'य।
अन्यथा हइले शास्त्र पाषण्डत्व पाय॥१९५॥

(१९५) प. अनु०—वस्तुतः वे ही शास्त्र सत्य हैं, जो श्रीकृष्ण की भक्ति का वर्णन करते हैं। अन्यथा होने पर वे शास्त्र पाखण डत्व को प्राप्त होते हैं।

(१९५) गौः भा—जो सब निरस्तकुहक (कपटता रहित) सात्वतशास्त्र कृष्ण-भक्ति का प्रतिपादन और कीर्तन करते हैं, वे सब शास्त्र ही सत्य और परमधर्मनिरुपक हैं। यदि किसी शास्त्र में कृष्ण के नाम, रूप, गुण, परिकर वैशिष्ट्य और लीला की कथा का श्रवण-कीर्तन न रहे, अथवा कृष्णभक्त के नित्यत्व और सर्वश्रेष्ठ गौरव-माहात्म्य का वर्णन न रहे, अथवा एकमात्र कृष्णभक्ति ही सर्वोत्तम अभिधेयत्व के रूप में उल्लिखित न हो, तब उसे 'शास्त्र' कहने की अपेक्षा 'पाखण डी का प्रजल्प' जानकर तथा दुःसंग समझकर उसका कभी भी अनुशीलन नहीं करना चाहिए।

(श्रीमध्यभाष्य-धृतस्कन्दपुराण-वाक्य)—"ऋग्य-जुः-

सामाथर्वाश्च भारतं पंचरात्रकम्। मूलरामायण ंचैव शास्त्रमित्यभिधीयते। यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्त्तितम्। अतोऽन्यथग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं 'कुवर्त्म'तत"॥

अर्थात्, 'ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चारों वेद एवं महाभारत, मूल-रामायण और पंचरात्र,—ये सभी 'शास्त्र' कहे जाते हैं। इनके अनुकूल जो दूसरे सब ग्रन्थ हैं, वे भी शास्त्रों की श्रेणी में आते हैं। इनके अतिरिक्त जो ग्रन्थ हैं, वे सब तो 'कुवर्त्म' (कुमार्ग) है, वे ग्रंथ शास्त्र ही नहीं हैं।'

(तत्त्वसन्दर्भ)-धृत मत्स्यपुराण कावाक्य),—"सात्त्वि-

केषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः। तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य

च। संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।"

अर्थात् 'सात्विक (पुराणादि) शास्त्रों में हरि की महिमा ही अधिक वर्णित हुई है, राजसिक पुराणों में ब्रह्मा की महिमा का आधिक्य है एवं इसी प्रकार तामसिक पुराणों में ब्रह्मा की भाँति अग्नि, शिव और दुर्गा की महिमा और संकीर्ण अर्थात् सत्त्वरजस्तमोमिश्रित विविध शास्त्रों में सरस्वती आदि देवी–देवताओं की महिमा और पितृलोक का माहात्मय कीर्तित हुआ है।'

अनेक अनभिज्ञ भारवाही आत्म–पर–वंचनाभिलाषी (अपने और दूसरों को वंचना के अभिलाषी) व्यक्तियों की धारण है कि महिमा का गान करने वाले शास्त्र इन्द्रियपरायण सकाम व्यक्तियों के विरुद्ध लिखे गये हैं, इसलिए वे सभी शास्त्र—विवादपरायण और साम्प्रदायिक हैं। किन्तु श्रीगौरसुन्दर ने अपनी जननी को कृष्ण, कृष्णभक्त और कृष्णभक्ति की महिमा के द्वारा केवल आध्यक्षिक ज्ञान रखने वाले उन समस्त मूर्ख व्यक्तियों का उनकी पूर्वोक्त भ्रान्तिमयी धारणा से परित्राण करने की इन्छा से ही यह सत्यार्थ व्याख्या की है। इन निरस्तकुहक शास्त्रों में जो कृष्ण–भक्त और कृष्णभक्तों के भक्तों की महिमा कीर्तित हुई है, वह किसी प्रकार भी साम्प्रदायिक विवदमान अर्थवाद नहीं है, अपितु वही समग्र–चरम–कल्याण चाहने वाले जीवों का एकमात्र परम मंगलप्रद सिद्धान्त है। आध्यक्षिक विचारपरायण संकीणचेता नारकी व्यक्ति ही सर्वेश्वरेश्वर विष्णुपरतत्त्व कृष्ण को भी अन्यान्य दूसरे देवताओं के साथ रखकर समान प्रतिद्वन्द्वी या किसी संकीर्ण सम्प्रदायविशेष के आराध्यदेव के रूप में मानते है; तब भी अपने निर्विशेष–विचारपरायण ज्ञान शास्त्र और अर्थवादपूर्ण मधुपुष्पित फल श्रुतिज्ञापक बहुत देवताओं की पूजा के उद्देशक सकाम कर्मशास्त्रों के व्याख्यावाद और बागाडम्बर (बातूनी) (इन दो प्रकार के) दुःसंगों का परित्याग करके ऐकान्तिक कृष्णभक्ति प्रतिपादक एकायन शास्त्रों का अध्ययन करने पर ही वे नित्य निःश्रेयस की प्राप्ति का सुयोग उपलब्ध कर पायेंगे।

शास्त्र–प्रणाम—तथाहि जैमिनी
भारते आश्वमेधिके पर्वणि—

''यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तत् शास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥१९६॥

(१९६) अन्वयः—यस्मिन् शास्त्रे (वेदानुग–पुराणेतर–स्मृतीति हासादौ) पुराणे वा हरिभक्तिः (सर्वेश्वरेश्वरस्य श्रीहरेः भक्तिः एव मुख्य–प्रतिपाद्यत्वेन) न दृश्यते (वर्णिततया न आलक्ष्यते, अन्येषां लब्ध–प्रतिष्ठानां का वार्त्ता, तत्) यदि स्वयं ब्रह्मा (लोकपितामहः चतुर्मुखः अपि) वदेत् (तत् शास्त्रं पठेत्, वर्णयेत्, श्रावयेत् इत्यर्थः, तथापि) तत् शास्त्रं न एव (कदाचिदपि कथमपि न) श्रोतव्यं (कैरापि पुंभिः श्रवणार्हः भवति)।

(१९६) अनुवाद—जिस शास्त्र या पुराण में एकमात्र श्रीहरिभक्ति ही मुख्य तात्पर्यरुप से दृष्टिगत नहीं होती हो, तो साक्षाद् चतुर्मुख ब्रह्मा भी यदि उस शास्त्र का वर्णन करके सुनाये, तब भी उसे श्रवण करना किसी के जिए भी उचित नहीं है।

"अपवित्र होने पर पवित्र होता है, यदि 'हरि' को भजे, पवित्र होने पर अपवित्र होता है, यदि 'हरि' को त्यजें"—

''चण्डाल 'चण्डाल' नहे,—यदि 'कृष्ण' बले।
विप्र 'विप्र' नहे,—यदि असत्पथे चले॥''१९७॥

(१९७) प. अनु०—"चाण्डाल भी यदि

'कृष्ण' नाम कहे तो वह चाण्डाल नहीं है और 'विप्र' भी यदि असत्पथ पर चले तो वह विप्र नहीं है।"

(१९७) गौः भा—प्रकृत प्रस्ताव से चाण्डाल कुलोद्भूत होने पर भी कृष्णभक्त की ब्राह्मणोत्तमता एवं ब्राह्मणकुलोत्पन्न होने पर भी असद्वृत्ति पर निर्भ करने वाला कृष्णभक्ति-हीन पाखण्डी का चाण्डालत्व शास्त्र सिद्ध है। जाति-सामान्य-बुद्धि से उन दोनों का दर्शन—निषिद्ध है। रुचि, वृत्ति, स्वभाव अथवा लक्षणानुसार ही उनके वर्ण का निर्देश करना उचित है—यही समग्र श्रुति-स्मृति-पुराण ोतिहास-पंचरात्रादि शास्त्रों का अभिप्राय और सिद्धान्त है।

"आर्ज्जवं ब्राह्मणे साक्षात् शूद्रोऽनार्ज्जवलक्षणः।
गौतमस्त्विति विज्ञाय सत्यकाममुपानयत्॥" (छान्दोग्य में माध्वभाष्य-धृत साम-संहिता-वाक्य), अर्थात 'ब्राह्मण में साक्षात् सरलता विद्यमान रहती है। इस प्रकार से गुण विचार करके ही हारिद्रुतम गौतम ने सत्यकाम को उपनयन या सावित्री-संस्कार प्रदान किया था।'

"शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदा द्रवणात् सूच्यते हि"॥ (ब्रः सूः १/३/४४); एवं "नारसौ पौत्रायणः शूद्रः शुचाद्रवणमेव हि शूद्रत्वम्"। (इसी का पूर्णप्रज्ञ माध्वभाष्य)। "राजा पौत्रायणः शोकावाप्तमान्।" (—पद्मपुराण)।

अर्थात् शोकद्वारा जो द्रवीभूत हो, वही 'शूद्र' है। पद्मपुराण में लिखा है कि,—'राजा पौत्रायण रैक्वमुनि द्वारा 'शूद्र' रुप से कथित हुये थे। उन्होंने इन रैक्वमुनि द्वारा 'शूद्र' रुप से कथित हुये थे। उन्होंने इन रैक्वमुनि से प्राणविद्या प्राण करके परमधर्म को प्राप्त किया'।

"यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्द्दिशेत्॥"—(मः भाः वः पः १८०/२६) अर्थात् 'हे सर्प! जिसका ब्राह्मण स्वभाव देखा जाता है, वही 'ब्राह्मण' नाम से कथित है। जिसका ब्राह्मण-स्वभाव न हो, उसका 'शूद्र' रूप से निर्देश करना चाहिये।

"एवं च सत्यादिकं यदि शूद्रऽप्यस्ति, तर्हि सोऽपि ब्राह्मण एव स्यात् शूद्रलक्ष्मकामादिकं न ब्राह्मणेऽस्ति, नापि ब्राह्मणलक्ष्मशमादिकं शूद्रेऽस्ति। शुद्रोऽपि शमाद्युपेतो ब्राह्मण एव, ब्राह्मणोऽपि कामाद्युपेतः शुद्र एव।" (मः भाः वः पः १८०/२३-२६ श्लोक की नीलकण्ड टीका)। अर्थात् 'इस प्रकार के सत्यादि लक्ष्ण यदि शूद्र में भी रहें, तब वह भी निश्चय ही ब्राह्मण ों में परिगणित होगा। कामादि जो शूद्र के लक्षण-सूमह हैं, वे ब्राह्मण में नहीं रह सकते हैं। शूद्रकुलोद्भूत-व्यक्ति यदि शमादिगुणों द्व ारा भूषित हो, तब निश्चय ही वह 'ब्राह्मण' है और ब्राह्मण-कुलोद्भूत व्यक्ति यदि कामादि गुण-युक्त है, तब वह निश्चय ही 'शूद्र' है—इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।'

"शूद्रे चैतद्भवेल्लक्षणं द्विजे तच्च न विद्यते। न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥" (—मः भाः शाः पः (१८९/८)।

अर्थात 'शूद्र' में यदि विप्र के लक्षण देखे जायें और ब्राह्मण में यदि शूद्र के लक्षण उपलब्ध हों, तब शूद्र 'शूद्र वाच्य नहीं होते हैं एवं ब्राह्मण भी 'ब्राह्मण' नहीं हो सकते हैं।'

"ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्त्तमानो विकर्मसु। दाम्भिको दुष्कृतः प्राज्ञः शूद्रेण सदृशो भवेत्। यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः। तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्विजः॥" (—मः भाः वः पः २१५/१३-१५)।

अर्थात् जो ब्राह्मण दम्भी और दुष्कार्य परायण होकर पतन के योग्य असत्कर्म में लिप्त रहता है, वह शूद्रतुल्य है और जो शूद्र इन्द्रिय-निग्रह, सत्य और धर्म के विषय में

सतत उद्यम विशिष्ट है, उसकी मैं 'ब्राह्मण' के रूप से विवेचना करता हूँ; क्योंकि ब्राह्मण होने का कारण एकमात्र हरिभजनरुप 'सदाचार' ही हैं।

"हिंसानृत–प्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः। कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥ सर्वभक्ष्यरतिर्त्यि सर्वकर्म–करोऽशुचिः। त्यक्त वेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः॥" (—मः भाः शाः पः १८८/१३, १८७/७)

अर्थात् 'हिंसा, मिथ्याभाषण, लोभ और सर्वकर्मों के द्वारा जीविका निर्वाह, असत्कार्यों द्वारा शुचिभ्रष्ट होकर ब्राह्मण भी शूद्र बन जाते हैं। भक्ष्याभक्ष्य सब कुछ खाने में रुचि रखने वाले, सदा सदसत् सब कर्म करने वाले शौचाचार–विहीन, वेदपाठ का परित्याग करने वाले और अनाचारी व्यक्ति को ही 'शूद्र' कहा जाता है।'

"न योनिर्नापि संस्कारों न श्रुतं न च सन्ततिः। कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारण ाम्॥ सर्वोऽयं ब्राह्मणों लोके वृत्तेन तु विधीयते। वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति॥" (—मः भाः अनुः शाः पः १४३/५०–५१)।

अर्थात्, 'जन्म या जाति, संस्कार, वेदाध्ययन अथवा सन्तति,—कोई भी द्विजत्व का एकमात्र कारण है। वृत्त (सच्चरित्र) ही द्विजत्व का एकमात्र कारण है। वृत्त अर्थात् द्विज वर्णाभिव्यजंक (द्विजवर्णपरिचायक) स्वभाव में प्रतिष्ठित होने से शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है।'

"न शूद्रा भगवद्भक्तास्ते तु भागवता मताः। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने।" (—हः भः विः १० म विः–धृत पद्मपुराण वाक्य)।

अर्थात् 'भगवद्भक्तिपरायण व्यक्तियों को कभी भी 'शूद्र' नहीं कहा जाता है। उनको तो 'भागवत' ही कहा जाता है। जनार्दन के प्रति भक्ति न रहने पर प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है, भले ही वह किसी भी जाति का हो।'

"ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः। तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः॥" (—अत्रिसंहिता ३७२ श्लोक)।

अर्थात 'जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न व्यक्ति वेद या भगवत्तत्व के विषय में अनभिज्ञ रहकर केवलमात्र यज्ञोपवीत के बल पर अतिशय रहकर केवलमात्र यज्ञोपवीत के बल पर अतिशय गर्व करता है, वह ब्राह्मण उसी पाप से 'पशु' कहलाता है।'

"एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः" (—वृहदाः ३/९/१०)।

अर्थात् 'हे गार्गि, जो उस अच्युततत्व को जानकर इस लोक से प्रयाण करता है, वे ही 'ब्राह्मण' हैं।'

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः।" (—बृहदाः ४/४/२१)।

अर्थात् 'बुद्धिमान् ब्रह्मज्ञ पुरुष को चाहिये कि वह उन (परब्रह्म) को शास्त्रादि से जानकर प्रेमभक्ति की प्राप्ति के लिए यत्न करे'।

"विष्णोरयं यतो ह्यासीत्तस्माद्वैष्णव उच्यते। सर्वेषां चैव वर्णानां वैष्णवः श्रेष्ठ उच्यते॥" (—पाद्मोत्तरखण्ड में ३९ अः)।

"सकृत् प्रणामी कृष्णस्य मातुः स्तन्यं पिबेन हि। हरिपादे मनो येषां तेभ्यो नित्यं नमो नमः॥ पुक्वसः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः। तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः॥" (—पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में आदि २४ अः)।

अर्थात् 'जिन्होने केवलमात्र एकबार भी समस्त अहंकार का परित्याग करके कृष्ण को प्रणाम किया है, उन्हें फिर माता का स्तन्यपान नहीं करना पड़ेगा। पुक्वस (एक वर्ण संकर जाति) और श्वपच (कुत्ते का मांस खाने

वाले चाण्डाल) यहाँ तक कि म्लेच्छजाति समूह भी यदि एकान्तभाव से हरिपादपद्मों में शरण ग्रहण करके सेवा में रत होते हैं, तो वे भी वन्दनीय और महाभाग हैं।'

"न मेऽभक्तश्चुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्"॥

(—स्कन्दपुराण)

अर्थात् 'चारों वेदों का पाठ करने वाला चतुर्वेदी ब्राह्मण भी, यदि वह अभक्त है, तो मेरा प्रिय नहीं है और चाण्डाल भी, यदि वह भक्त है, तो वह मेरा प्रिय है। भक्त ही यथार्थ रुप से दान का पात्र एवं ग्रहण का पात्र है। भक्त सर्वथा मेरी ही भाँति पूज्य है।'

(भाः ३/३३/७ श्लोक में.....)

" अहो वत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्। तेपुस्तपस्ते जुहुवः सस्नुरार्या ब्रह्मानचुर्नाम गृणन्ति ये ते।"

अर्थात् 'अहो! नामग्रहणकारी पुरुष की श्रेष्ठता की बात और क्या कहूँ? जिसकी जिह्वा पर आपका नाम एक बार भी उच्चारित होता है, वह चाण्डाल कुल में आविर्भूत होने पर भी इस नामोच्चारण के कारण ही पूज्यतम है; उसकी व्यावहारिक ब्राह्मणता तो पहले ही सिद्ध हो चुकी है; कारण, वह अपने पूर्व जन्मों में ही सब प्रकार की तपस्या, सब प्रकार के यज्ञ, समस्त तीर्थों में स्नान, सभी वेदों का अध्ययन और सदाचार का पालन आदि ब्राह्मण के अधिकारो-चित्त समस्त व्यावहारिक कृत्यों को सम्पन्न करके अभी इस जन्म में नाम ग्रहण कर रहा है।'

(भक्ति सन्दर्भ ११७ संख्या धृत-गारुड़-वाक्य) "ब्राह्मणानां सहस्त्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते। सत्रयाजि-

सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः। सर्ववेदान्तवित्-कोट्या विष्णुभक्तों विशिष्यते। वैष्णवानां सहस्रेभ्य एकाकन्त्यको विशिष्यते।"

अर्थात् हजारों ब्राह्मणों की अपेक्षा एक याज्ञिक ब्राह्मणों की अपेक्षा एक सर्ववेदान्त शास्त्रज्ञ श्रेष्ठ है, कोटि-कोटि सर्ववेदान्त-शास्त्रज्ञ व्यक्तियों की अपेक्षा एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है तथा हजारों विष्णुभक्त वैष्णवों की अपेक्षा एक ऐकान्तिक (अनन्य) भक्त श्रेष्ठ है।

माता-देवहूति के प्रति भगवान् कपिलदेव के भक्ति योग के वर्णन का पुनः अभिनय—

कपिलेर भावे प्रभु जननीर स्थाने।
ये कहिला, ताइ प्रभु कहये एखाने॥१९८॥
''शुन शुन, माता ! कृष्णभक्तिर प्रभाव।
सर्वभावे कर माता! कृष्णे अनुराग॥१९९॥

(१९८) **प. अनु०—**प्रभु ने जैसे कपिलदेव के रुप में अपनी जननी देवहूति को जो उपदेश दिया था, वैसे ही वही उपदेश यहाँ वे शचीमाता को दे रहे हैं।

(१९८) **गौः भा—**कपिल-देवहूति-संवाद, —भाः ३य अः द्रष्टव्य है।

कृष्णभक्त का माहात्म्य वर्णन—

कृष्णसेवकेर माता! कभु नाहि नाश।
कालचक्र डराय देखिया कृष्णदास॥२००॥
गर्भबासे यत दुःख जन्मे वा मरणे।
कृष्णेर सेवक, माता, किछुइ ना जाने॥२०१॥
कृष्णविस्मृत बहिर्मुख जीव के गर्भवासादि

(२००-२०१) **प. अनु०—**हे माता! श्रीकृष्ण के सेवक का कभी नाश नहीं हैं। श्रीकृष्णदास को देखकर कालचक्र भी डरता है। गर्भवास में एवं जन्म और मरण के समय जीव को जितना भी दुःख होता है, हे माता! श्रीकृष्ण सेवक को उसका कुछ भी

अनुभव नहीं होता है।

(२००) **गौः भा—**जो कृष्ण का भजन करते हैं, वे मायाबद्ध जीवों की भाँति कालक्षोभ्यधर्म अर्थात् जन्म–स्थिति–नाश के अधीन नहीं हैं। वास्तव में भगवद्भक्त काल के प्रभाव से कभी भी विनष्ट नहीं होते हैं, भक्तिमय जीवन प्राप्त करके वे नित्य निरन्तर ही हरिसेवा करते रहते हैं। देवताओं के भी प्रभु काल का यह जन्म–स्थिति–भंगात्मक प्रबलचक्र भक्तों के भक्तिप्रभाव को देखकर भयभीत रहता है।

भीषण कालचक्र कृष्णविमुख या कृष्ण विस्मृत मायाबद्ध जीवों को नाना योनियों में भ्रमण अर्थात् जन्मग्रहण करवाकर अन्त में उनका संहार करता रहता है; किन्तु भगवद्भक्त नित्य चिन्मय आत्मवित् होते है, इसलिए उस प्रकार का भंयकर कालचक्र उनका स्पर्श तक नहीं कर सकता है, अपितु दास की भाँति के उनका अनुगमन करता है।

(२०१) **गौः भा—**(भाः३/२५/४३ श्लोक में माता– देवहूति के प्रति भगवान् कपिलदेव की उचित)

"ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम्।

इस जगत् में कृष्णविमुख और कृष्ण विस्मृत सब जीव जन्म–स्थिति और मरण की श्रृंखला में आबद्ध होकर माता की कोख में वास के समय विभिन्न प्रकार की यन्त्रण ाएँ भोगते हैं, किन्तु भगवद्भक्त माता के पेट में अवस्थान के समय किसी भी घृण ा अथवा क्लेशादि का अनुभव नहीं करते हैं, परन्तु भगवद् इच्छा से प्रपंच में आगमन करने से पहले भी वे गर्भवास के क्लेशादि से उदासीन रहते हैं और उस समय भी वे भगवान् की सेवा ही करते रहते हैं। फलस्वरुप भगवद्भक्त किसी भी अवस्था में जन्म–मरण के किसी भी प्रकार के दुःखदि का अनुभव नहीं करते हैं, सर्वदा ही वे कृष्ण–सेवानन्द में निमग्न रहते हैं। माता–कयाधु के गर्भ में अवस्थान के समय महा–भागवत श्रीप्रह्लाद का अनुक्षण कृष्ण स्मरण इस विषय में एक ज्वलन्त दृष्टान्त है।

क्लेश का वर्णन—

जगतेर पिता—कृष्ण, ये ना भजे बाप।
पितृद्रोही पातकीर जन्मजन्म ताप॥२०२॥
चित्त दिया शुन' माता! जीवेर ये गति।
कृष्ण ना भजिले पाय यतेक दुर्गति॥२०३॥
मरिया–मरिया पुनः पाय गर्भवास।
सर्व–अंगे हय पूर्व पापेर प्रकाश॥२०४॥
कटु, अम्ल, लवण—जननी यत खाय।
अंगे गिया लागे तार, महामोह पाय॥२०५॥
मांसमय अंग कृमिकुले बेड़ि' खाय।
घुचाइते नाहि शक्ति, मरये ज्वालाय॥२०६॥
नड़िते ना पारे तप्त–पंजरेर माझे।
तबे प्राण रहे भवितव्यतार काजे॥२०७॥

(२०२–२०७) **प. अनु०—**श्रीकृष्ण जगत् के पिता हैं, जो पिता को नहीं भजता है, उस पितृद्रोही पातकी पुत्र को जन्म–जन्मान्तर तक दुःख ही भोगना पड़ता है। हे माता! जीव की, श्रीकृष्ण–भजन न करने से जो–जो दुर्गति होती है, वह सब मनोयोग पूर्वक सुनो। वह जीव मर–मर कर बारम्बार गर्भवास प्राप्त करवा है। उस समय उसके सारे शरीर में पूर्वकृत पापों का प्रकाश देखा जाता है। माता जो भी कड़वी, खट्टी, नमकीन वस्तु खाती है, उसका रस जा–जाकर उसके शरीर में लगता है, जिससे वह बड़ा ही कष्ट पाता है। उसके माँसमय शरीर को कीड़े घेर–घेर कर खाते

हैं, उन्हे हटाने की शक्ति उसमें नहीं होती, इस प्रकार के दंशन की जलन में वह जला करता है। गर्भ-पिंजरे के भीतर पड़ा हुआ वह हिल-डुल भी नहीं सकता है। फिर भी जो उसके प्राण बचे रहते हैं, वह केवल प्रारब्ध भोग के लिए हैं।

(२०२) **गौः भा—**कृष्ण से ही चेतन जीव-जगत् और अचेतन जड़-जगत् उत्पन्न होता है, इसलिए कृष्ण ही समस्त विश्व के एकमात्र जनक (पिता) हैं। जिस प्रकार कृतज्ञ-पुत्र द्वारा पिता हा आनुगत्य और पूजन ही एकमात्र धर्म या कर्त्तव्य कर्म है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव को, विशेषतः मनुष्य का समस्त विश्वसर्ग के मूलजनक अर्थात् आकर चेतन श्रीकृष्ण के पादपद्मों का ही नित्यकाल आनुगत्य के साथ भजन करना कर्तव्य है। जो जीव अपने स्वरुप-ज्ञान से वंचित होकर सर्वलोक-पितामह पद्मयोनि ब्रह्मा के भी जनक (मूल) नारायण कृष्ण के प्रति भक्तिरहित होते हैं, वे ही सब अकृतज्ञ पुत्र-तुल्य जीव नाना प्रकार के संसार-क्लेशों को प्राप्त करते हैं। उस प्रकार के अकृतज्ञ, धर्मोल्लंघनकारी अपराधी पुत्ररुपी जीवों के लिए दण्ड-स्वरुप संसार में आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीन प्रकार के तापों की व्यवस्था है।

(भाः ११/५/३) श्लोक में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र में अन्यतम श्रीचमसमूनि की उक्ति)—"य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम्। न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद् भ्रष्टाः पतन्त्यधः॥"

अर्थात् ' इन चारों वर्णाश्रमियों में जो-जो व्यक्ति साक्षात् निज पिता ईश्वर का भजन नहीं करते हैं, उल्टे उनकी अवज्ञा करते हैं, वे अपने स्थान से भ्रष्ट होकर अधःपतित होते है।'

(२०३) **गौः भा—**कृष्णभजनहीन जीव की दुर्गति, (चैः चः मध्य, २०श पः ११७-११८) —"कृष्ण भूलि' सेइ जीव—अनादि बहिर्मुख। अतएव माया तारे देय संसार-दुःख॥ कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय। दण्डयजने राजा येन नदीते चुबाय।"

(भाः ३य स्कः ३०श अः, विशेषतः इस स्थान पर ३१श अः १-३१ संख्या में माता देवहूति के प्रति भगवान् कपिलदेव की उक्ति—

श्रीभगवान ने कहा,—माता, मैंने जो यह काल की कथा कही है, मनुष्य इसके प्रभाव से ही चालित होते है; जैसे मेघ समूह वायु के द्वारा विचलित होकर भी वायु के पराक्रम को नहीं जान सकते, उसी प्रकार यह मनुष्य भी इस बलवान् काल के असीत विक्रम को नहीं जान पाता है।

मनुष्य सुख की अभिलाषा से जिस-जिस आवश्यक वस्तु को बहुत कष्ट से प्राप्त करता है, शक्तिमान् काल उस इकट्ठे किये वस्तु-समूह को विनष्ट कर देता है।

मन्दमति जीव मोहवश होकर कलत्राादि के साथ अनित्य देह, गेह, और धन आदि को नित्य मान लेता है। इसलिए उन सब वस्तुओं के नष्ट होने पर वह शोक में निमग्न हो जाता है।

इस संसार में सब जीव जिस-जिस योनि में परिभ्रमण करते हैं, वे उस-उस योनि में ही आनन्द मानने लगते है; इसलिए उससे तनिक भी विरक्त नहीं हो पाते।

दैव-माया-विमोहित पुरुष नरकयोनि प्राप्त करने से भी नरकयोग्य आहारादि से सन्तुष्ट रहने के कारण उस नारकीय शरीर को भी छोड़ना नहीं चाहते।

वे ही व्यक्ति अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु-बान्धवों आदि में नाना

प्रकार के पापाचरण में भी प्रवृत्त रहता है।

वह गृहव्रती व्यक्ति कापट्यधर्मयुक्त सुख–दुःख प्रधान घर में शिशुओं की मीठी–मीठी आधी–आधी बोली और असती स्त्रियों के द्व ारा निर्जन में प्रदर्शित सम्भोगादिरुपा माया के द्वारा मन और इन्द्रियों सहित निरलस होकर लिप्त हो जाता है; निरन्तर केवल दुःख के प्रतिकार के लिए किये गये यत्न को ही 'सुख' रुप मानता है।

जिनके पोषण से अधोगति होती है उन कुटुम्बियों का ही वह मूढ़ व्यक्ति भयंकर हिंसावृत्ति–द्वारा जहाँ–तहाँ से अर्थोपार्ज्जन करके पोषण करता रहता है तथा स्वयं उनके खाने से जो कुछ अवशिष्ट रह जाता है, उसी का भोजन करके वह अपना जीवन धारण करता है।

जब कभी वह जीविका रहित हो जाता है, तब वह जीविका के अन्य साधनों का अवलम्बन करने की बारम्बार चेष्टा करता है और इसमें असफल होने पर वह लोभ में लिप्त होकर दूसरे के धन की इच्छा करने लगता है।

यह मूढ़बुद्धि अभागा व्यक्ति जब बारम्बार यत्न करके भी कुटुम्बियों का भरण पोषण करने में असमर्थ हो जाता है, तब श्रीहीन और दुःखित होकर लम्बी–लम्बी साँसे छोड़ने लगता है। इस प्रकार जब वह अपने स्त्री–पुत्रादि के भरण–पोषण में असमर्थ हो जाता है, तब दयाहीन किसान जैसे असमर्थ हुये बैल की उपेक्षा कर देता है, वैसे ही उसके पुत्र–कलत्रादि भी उस गृहव्रती व्यक्ति की उपेक्षा करने लगते हैं और पूर्व की भाँति उसका आदर नहीं करते हैं। किन्तु इतने पर भी उसका संसार से विराग नहीं होता है; व्याधिग्रस्त, विरुपाकृति और आसन्नमृत्यु (मृत्यु के निकट) होकर वह गृहव्रती व्यक्ति घर में ही पड़ा–पड़ा सड़ता रहता है और पहले उसने स्वयं जिन पुत्र–कलत्रादि का पालन किया था, वे ही अवज्ञापूर्वक उसको जो कुछ थोड़ा बहुत खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं, वह गृह–पालित कुत्ते की भाँति उसको ही खाता हुआ जीवन यापन करता रहता है। उस आयु में वह रोगग्रस्त हो जाता है। उसकी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। उसका भोजन भी कम हो जाता है, वह परिश्रम करने में असमर्थ होकर घर में ही पड़े रहेन को विवश हो जाता है।

देह स्थित वायु के ऊर्ध्व गमनागमन के कारण उसकी श्वास–नलिकाएँ कफ द्वारा रुद्ध हो जाती है; इस कारण वायु के प्रकोप से चक्षु बाहर आ जाते है; उस समय खाँसने अथवा सांस लेने में भी उसे बड़ा कष्ट होता है तथा कफ बढ़ जाने के कारण कण्ठ में घुरघुराहट होने लगती है।

धीरे–धीरे वह गृहव्रती मृत्युशय्या पर पड़ जाता है, तब आत्मीय बन्धु–बान्धव उसको चारों ओ से घेरकर शोक करना आरम्भ कर देते हैं तथा उससे अनेक बातें पूछते हैं, किन्तु काल–पाश में जकड़ा हुआ वह व्यक्ति उन बन्धुओं की किसी भी बात का उत्तर नहीं दे पाता है।

कुटुम्ब–पोषण में व्यापृतचित्त (लगे हुए चित्त वाला) वह अजितेन्द्रिय गृहव्रती व्यक्ति इस प्रकार की अवस्था में भी रोते हुये आत्मीय–स्वजनों के अतिशय दुःख को देखकर अधीर हो उठता है और अन्त में वह नष्टबुद्धि होकर प्राणों का परित्याग करता रहता है तथा भय से बारम्बार मलमूत्र परित्याग करता रहता है।

उसके बाद वे दोनों यमदूत उस गृहव्रती व्यक्ति–रुपी जीवात्मा को स्थूलदेह से निकालकर

यातना–देह में निरुद्ध करके बलपूर्वक उसके गले में रस्सी बाँध देते हैं और जैसे राजपुरुष किसी दण्डनीय व्यक्ति को पाशबद्ध करके ले जाते हैं, यमराज के किंकरगण भी उसी प्रकार उसको लेकर लम्बी यात्रा पर प्रस्थान करते हैं।

यमदूतों के तिरस्कार वाक्यों से उस पुरुष का हृदय विर्दाण हो जाता है तथा सारा शरीर काँपने लगता है। मार्ग में कुत्ते उसको खाने के लिए झपटते है; उस समय वह व्यक्ति घोर यातना से अत्यन्त व्यथित होकर अपने किये हुये पापों का स्मरण करते–करते यमदूतों के साथ चलते रहने को विवश होता है।

यमदूत उसको जिस रास्ते से लेकर जाते है, वह रास्ता जलती हुई बालुका से परिपूर्ण होता है, वहाँ कोई विश्रामस्थल या पीने का जल भी नहीं होता हैं; भूख–प्यास से प्रपीड़ित व्यक्ति के सूर्य किरणों और दवालन के द्व ारा सन्तप्त होकर चलने में नितान्त असमर्थ होने पर भी यमदूत उसकी पीठ पर कोड़े बरसाते है; इसलिए उसे घोर कष्ट सहते हुये भी चलने को विवश होना पड़ता है।

श्रमवशतः वह व्यक्ति चलते–चलते जहाँ–तहाँ थककर और बारम्बार मूर्च्छित होकर गिर जाता है, फिर चेतना प्राप्त होने पर उसे पापयुक्त अन्धकारमय पथ द्वारा यमगृह में ले जाया जाता है।

जिस पथ से उसे यमगृह में ले जाया जाता है, वह अत्यन्त लम्बा है। किसी–किसी दंडित–व्यक्ति को तो यमदूत दो मुहूर्त्त में ही इस लम्बे मार्ग को पार करा देते हैं। इस प्रकार वह पापी व्यक्ति जब यमगृह में उपस्थित होता है तो वहाँ वह देखता है कि, कहीं तो जलते हुये अंगारों–द्वारा घिरा हुआ पापी का शरीर दग्ध हो रहा है, कहीं दूसरों के द्वारा दग्ध किया जा रहा है, फिर कहीं पर कोई पापी अपना मांस आप ही काट करके खा रहा है; यमालय में स्थित कुत्ते, गिद्ध आदि मांसभक्षी जीव जीते जी उसकी आँतों को खींच–खींच कर बाहर कर रहे हैं; कोई सर्प, बिच्छु और डाँस आदि जन्तुओं के काटने से अतिशय वेदना का अनुभव कर रहा है, किसी के सब अंग–प्रत्यंग खण्ड–खण्ड करके निष्ठुरभाव से छेदन किये जा रहे है, किसी को पर्वत के शिखर से गिराया जा रहा है, किसी को जल और गड्ढे में डालकर बन्द कर दिया गया है—ये सब यातनाएँ पापी जीव भोगते रहते हैं।

अन्धतामिश्र, रौरव आदि जितने प्रकार के नरकों की यन्त्रणाएँ पारस्परिक पाप–संसर्ग से निर्मित हुई हैं, वे मृत गृहव्रती व्यक्तियों को; चाहे वे पुरुष हों अथवा नारी, सभी को भोगनी पड़ती हैं।

हे माता, तत्त्ववेत्ताओं का मानना है कि यही स्थान नरक और यही स्थान स्वर्ग है। नरक में जो सब यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, वे इस जगत् में भी देखी जाती हैं। जीवन भर कुटुम्ब–पोषण में अथवा अपने उदर–भरण में ही लगे रहने वाले लोगों को मृत्यु के बाद कुटुम्ब और अपने शरीर, दोनों का ही इसी स्थान पर परित्याग करके अपने किये हुये सब कर्मो का फल पूर्वोक्तरुप से भोगना पड़ता है।

प्राणियों की हिंसा द्वारा परिपुष्ट अपने स्थूलदेह एवं संचित धन,—इन दोनों का ही इस जगत में परित्याग करके पापरुप पाथेय (सम्बल) को साथ लेकर वह गृहव्रती व्यक्ति अन्धकारपूर्ण घोर नरक को प्राप्त करता है।

उस गृहव्रती पुरुष को अपने कुटुम्ब–पोषण में किये गये पापों का दण्ड परकाल में ईश्वर

द्वारा प्रदान किया जाता है; वह आतुर (कातर) की भाँति हतज्ञान होकर नरक में पड़ा–पड़ा अपने पापों का फल भोगता रहता है।

जो नरक भोग के बाद कुक्कुर–शूकर आदि योनियों में जितने प्रकार की यातनाएँ है, क्रमशः उन सब यातनाओं का भोग उस पापी को करना पड़ता है। जब भोग के द्व ारा उस व्यक्ति के पाप कट जाते हैं, तब वह फिर से शुद्ध होकर मनुष्यलोक में गमन करता है।

श्रीभगवान् ने कहा,—हे माता, दैव–द्वारा प्रेरित होकर जीव पूर्वकृत कर्मों के फलानुसार देह प्राप्ति के लिए पुरुष के वीर्यकण के द्व ार स्त्री के गर्भ में प्रवेश करता है।

यह वीर्यकण गर्भ में गिरने पर एक रात्रि में स्त्री के शोणित (रक्त) में मिल जाता है, पाँच रात्रियों में बुद्बुद–रुप हो जाता है, दस दिन में बेर–फल के समान कठिन मांसपिण्ड का आकार धारण कर लेता है। इस प्रकार एक महीने में आकार धारण कर लेता है। इस प्रकार एक महीने में उसका मस्तक, दो महीने में उसके हाथ पाँव आदि अंगो का विभाग तथा तीन महीने में नख, रोम, अस्थि, चर्म और छिद्र आदि सब प्रकटिक हो जाते हैं। चार मास में सप्त धातुओं (रस, रक्त, मांस, अस्थि, मेध, मज्जा और शुक्र) का एवं पंचम मास में जीव जरायु के द्वारा आवृत होकर दाहिनी कोख में भ्रमण करता है।

वह जीव माता के खाये हुये अन्न जलादि के द्वारा परिवर्द्धित होता रहता है। उसके द्वारा न चाहने पर भी उसको प्राणियों के उत्पत्ति स्थान मल–मूत्र के गड्ढे में पड़े रहने के लिए विवश होना पड़ता है।

गर्भावास के समय वहाँ स्थित भूखे कीड़े उसकी सुकुमार देह को, उसके समस्त अंगो को क्षत–विक्षत करते रहते हैं, उससे अतिशय क्लेश प्राप्त करके वह क्षण–क्षण में अचेत होता रहता है।

गर्भधारिणी जननी जिन कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रुखे, खट्टे आदि दुःसह रसों का सेवन करती है, उन सबके साथ गर्भस्थ जीव की देह के संयुक्त होने पर उसके समस्त अंगो मे असह्य पीड़ा होने लगती है। वह अन्दर जरायु के द्वारा आवृत और बाहर नाड़ी द्वारा विशेषरुप से आबद्ध होकर पीठ और गर्दन को रहता है। इस प्रकार पिंजरे में बन्द पक्षी के समान वह जीव अपने अंगों का संचालन करने में असमर्थ होकर उस गर्भ में वास करता है।

इस गर्भवास के समय दैवयोग से उसकी, पूर्व–पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों की स्मृति उदित होती है। तब वह शत–शत जन्मों के पाप कर्मों का स्मरण करके लम्बी–लम्बी साँसे छोड़ने लगता है, इसलिए ऐसी अवस्था में उसे किसी भी प्रकार का सुख कैसे मिल सकता है?

इस प्रकार जीव जब सप्तम–मास में पदार्पण करता है, तब उसका ज्ञानोदय होता है। किन्तु प्रसव–कारण–रुप–वायु के द्वारा चलायमान होकर वह उसी उदर में उत्पन्न हुये विष्ठा के कीड़ों के समान एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं रह सकता है।

तब देहात्मदर्शी जीव पुनः गर्भवास–यन्त्रण ाा से भयभीत होकर सप्त धातुओं के द्वारा आबद्ध अवस्था में ही दोनों हाथों को जोड़कर व्याकुलचित्त से, जिन परमेश्वर ने मातृगर्भ में उसका प्रेरण किया है, उनकी स्तुति करना शुरु करता है।

जीव कहने लगता है,—'इस परिदृश्यमान जगत् का पालन करने का इच्छुक होकर जो

भगवान् अनेक प्रकार के रुप धारण करते हैं तथा जिन भगवान् ने मेरे समान असद्व्यक्ति के योग्य इस प्रकार की गति का विधान किया है, मैं उनके भूतल पर विचरण करने वाले अभयकारी चरणारविन्दों की शरण ग्रहण करता हूँ।'

जो 'मै' माता के उदर में देह का आकार प्राप्त करके माया के आश्रयपूर्वक कर्मों द्वारा आवृत-स्वरुप से बद्ध होकर रह रहा हूँ, तथा भगवान्—जो अन्तर्यामी रुप से मेरे साथ इस स्थान पर वास कर रहे है, उन 'भगवान्' में और 'मुझमें विशेष भेद है। भगवान्—स्थूल और लिंग उपाधि से रहित हैं, अर्थात् उनके 'देह' और 'देही' में भेद नहीं है; वे अखण्ड ज्ञान स्वरुप हैं। मेरे सन्तप्त-हृदय में उनका वही रुप प्रतिभासित हो रहा है। वे ही मेरे एकमात्र शरण्य है, प्रतिभासित हो रहा है। वे ही मेरे एकमात्र शरण्य है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ।

मैं पंचभूतरचित इस देह में आच्छन्न होकर वास कर रहा हूँ, इसलिए मुझे जो अभी-अभी अनुभव हो रहा है, वस्तुतः मैं वह नहीं हूँ; क्योंकि मेरा नित्यस्वरुप पांचभौतिक शरीर के साथ सम्पर्क रहित है; इसलिए इन्द्रिय, गुण और विषयों के साथ चिदाभासात्मक होना मेरे लिए असम्भव है, किन्तु भगवान की महिमा इस शरीरादि के आवरण से भी कुण्ठित नहीं होती हे, अर्थात पृथक्रुप से जीव के हृदय में अन्तर्यामीस्वरुप से अवस्थान करने पर भी उनका अप्राकृत-स्वरुप किसी विकार या माया का संस्पर्श प्राप्त नहीं करता है, अथवा यों कहिए कि मायिक जीव के शरीर के समान उनके देह और देही में कभी भी भेद नहीं होता हे; क्योंकि वे वैकुण्ठ वस्तु हैं तथा प्रकृति और पुरुष के नियन्ता एवं सर्वज्ञ हैं। मैं उन्हीं आदि पुरुष की वन्दना करता हूँ।

जिनकी माया के द्वारा जीव ज्ञान और पूर्वस्मृति के खो जाने से विस्मृत गुण-कर्म-निमित्त इस संसार के मार्ग में क्लान्त होकर भटक रहा है, उन परमेश्वर की कृपा के बिना और किसी प्रकार से भी इस जीव को दोबारा अपने स्वरुप की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

मुझे त्रैकालिक ज्ञान का दान करने में परमेश्वर के अतिरिक्त और कौन समर्थ होगा? परमेश्वर अंश अन्तर्यामी-परमात्मा रुप से चराचर निखिल पदार्थो में विद्यमान हैं। अतः कर्मफल से बद्धजीव की पदवी उनका भजन करता हूँ।

हे भगवान्, मैं रक्त, मल, और मूत्र से पूर्ण कूपस्वरुप मातृगर्भ में गिरकर उसकी जठरानि से सन्तप्त हो रहा हूँ। इस स्थान से निकलने के लिए मैं अपने परिमित (सीमित) मासों की गणना कर रहा हूँ और चिन्ता कर रहा हूँ कि—भगवान् कब मुझे यहाँ से छुटकारा दिलायेंगे।

हे ईश्वर, आपके समान असीम-कृपामय केवल आप ही हैं। आपने मात्र दस मास के जीव को इस प्रकार का ज्ञान प्रदान किया है, ऐसे दीननाथ आप अपने अस कार्य से आप ही प्रसन्न हों, केवल अपने हाथों को जोड़ने के सिवाय क्या कोई व्यक्ति आपके द्वारा किये गये इस उपकार का यथोचित प्रत्युपकार करने में समर्थ होगा?

हे भगवान्, सप्तधातुरुप बन्धन में आबद्ध पशु-आदि अन्यान्य सब जन्तु केवल अपने-अपने शरीर में होने वाले सुख-दुःखादि का अनुभव करते हैं, किन्तु मैं तो आपके द्वारा प्रदत्त विवेक-ज्ञान के बल से शमदमादि युक्त हुआ हूँ, वही भोक्ता-स्वरुप अपरोक्षरुप

से प्रतीयमान अनादि पूर्ण पुरुष का अन्दर और बाहर से दर्शन कर रहा हूँ।

हे प्रभो, मैं बहु प्रकार के दुखों का आधार स्वरुप इस गर्भ में वास करके भी यहाँ से बाहर जाने की इच्छा नहीं करता हूँ; क्योंकि, बाहर इससे भी अधिक घोर अन्ध्कारमय संसार–कूप विद्यमान है। जो व्यक्ति संसार में जाता है, उसको आपकी माया घेर लेती है। माया द्वारा बद्ध होकर जीव शरीरादि में 'अहं' बुद्धि करके पुत्रकलत्रादि से सम्बन्ध के कारण इस संसारचक्र में भटकता रहता है।

अतः मैं इस स्थान पर ही अवस्थित रहकर विष्णु के युगल–चरण कमलों को हृदय में धारण करके सारथिरुपिणी बुद्धि की सहायता से अति शीघ्र ही अपनी आत्मा का उद्धार कर लूँगा। जिससे कि, हे भगवान्, मैं फिर से ऐसे बहुविध गर्भावास–दुःखों में न गिरुँ।

भगवान् कपिलदेव ने कहा,—(हे माता), इस प्रकार दस महीने की आयु वाला गर्भस्थ जीव जब भगवान् का स्तवन करता है, उसी समय प्रसवकारिणी वायु उसको अधोमुख करके पृथ्वी पर लाने के लिए ढकेलती है।

इसके बाद वह जीव रक्त से भीगे हुये शरीर से भूमि पर गिरकर विष्ठा से उत्पन्न कीड़े की भाँति छटपटाता है और भिन्न दशा प्राप्ति से पूर्वज्ञान के विनष्ट होने के कारण बारम्बार रोने लगता है।

जो उसके अभिप्राय को नहीं जानते हैं, उस प्रकार के अज्ञ व्यक्तियों के द्वारा वह नव–प्रसूत शिशु तात्पर्योपलब्धि में असमर्थ उन प्रतिपालकों द्वारा उस शिशु के रोने के समय उसको अभिप्रेत को जाने बिना उसकी अनभीप्सित वस्तु प्रदान किये जाने पर भी (अर्थात् स्तन के लिए रोने पर, शिशु के पेट दर्द की कल्पना करके नीम का रस प्रदान करते एवं शिशु के वास्तव में पेट दर्द के कारण रोने पर उसको औषध देने की बजाय स्तन देने पर भी), वह शिशु उसका निषेध करने में समर्थ नहीं होता है।

शिशु के प्रतिपालक उसको अपवित्र बिस्तरों पर लिटाकर रखते हैं। शिशु के पसीने से उत्पन्न कीट समूह उसके शरीर में काटते रहते हैं, परन्तु फिर भी वह शिशु अपने शरीर को खुजलाने या शय्या से उठने की चेष्टा नहीं कर पाता है।

बड़े–बड़े कीड़े जैसे छोटे–छोटे कीड़ों को काटते हैं, वैसे ही डाँस, मच्छर और खटमल आदि शिशु के कोमल शरीर को काटते रहते हैं। क्योंकि जन्म के पश्चात् मातृगर्भ में अवस्थान के समय का ज्ञान लुप्त हो जाता है, इसलिए वह किसी प्रकार प्रतीकार का उपाय करने में समर्थ न होकर केवल व्यथा अनुभव करता है और रोता रहता है।

इस प्रकार से पाँच वर्षों तक पूर्वोक्त विविध क्लेशों को भोगने के बाद पौगण्ड अवस्था में वह अध्ययनादि का दुःख अनुभव करता है। उसके बाद जब वह यौवन दशा में पहुँचता है, तब इप्सित (इच्छित) वस्तुओं को प्राप्त न कर पाने के कारण अज्ञानवश उसका क्रोध प्रदीप्त (भड़क) हो उठता है और वह शोकाकुल रहने लगता है। शरीर बढ़ने के साथ–ही–साथ उसका देहात्माभिमान भी बढ़ जाता है। तब उस कामी जीव में काम के पूर्ण न होने पर जो क्रोध की उत्पत्ति होती है, उससे अभिभूत होकर वह अपने विनाश के लिए दूसरे कामी पुरुषों के साथ विरोध करता है।

मूढ़ मन्दबुद्धि जीव पंचभूत–विनिर्मित देह में पुनः 'मैं' और 'मेरा'—इस प्रकार की बुद्धि करता है।

जो देह अविद्या और कर्म के द्वारा जीव के बन्धन का हेतु बनकर उस जीव को क्लेश प्रदान करते हुए जन्म-जन्म में उसका अनुगमन करता है, मूढ़-देही उसी देह के लिए फिर से कर्मों का अनुष्ठान करके कर्मबद्ध होकर संसार में भटकता रहता है-इत्यादि क्रष्णविस्मृत, कृष्णबहिर्मुख, अष्टपाश बद्ध जीवों को कालचक्र द्वारा निरन्तर पीड़ित किया जाना, गर्भवास-दुःख, जन्म-जन्म में ताप और दुर्गति का वर्णन आलोचनीय है।

(२०४) **गौः भा—**जन्म-स्थिति और नाश की प्रक्रिया से युक्त इस प्रपंच में प्रत्येक वस्तु ही काल के क्रमानुसार उत्पन्न होती है, लालित-पालित होकर वृद्धि प्राप्त और अवस्थित होती है एवं अन्त में विनष्ट हो जाती है। चिन्मय जीव अपने चेतन-धर्म के विपरीत भाव का प्रयोग करते हुये कृष्णेतर मायिक वस्तुओं के प्रति लुब्ध होकर जब कृष्ण भजन का परित्याग कर देते है; तब उनका अपना स्वभाव बदलने के कारण उन्हें जड़भोगों के भोक्ता होने का अभिमान ही उपादेय लगने लगता है। यही जीवों की स्वतन्त्रता का दुःख मिलता है; इस स्वतन्त्रता के अपव्यवहार के फलस्वरुप नश्वर जगत में जीव पुनः पुनः स्थूल और सूक्ष्म—इन दो उपाधियों में आवृत और विक्षिप्त होकर अपने स्वरुप को भूल जाते हैं, जिसके परिणाम-स्वरुप कृष्णभजनचेष्टा का परित्याग करके वे कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में यथाक्रम फल-भोग और फलत्याग की आकांक्षा करते रहते हैं। इस प्रकार कृष्णपादपद्मों की सेवा का त्याग करने से वे अपने मरण के चक्र में भ्रमण करते रहते हैं। ऐसे बद्धजीवों में मिल जाता है एवं उनका भोग वासनामय सूक्ष्म इन्द्रियोपकरण के साथ सदा के लिए विदाई ग्रहण करके पुनः दूसरा स्थूल शरीर ग्रहण करने के लिए व्याकुल होता है। कर्मफलदाता ईश्वर के निर्देश से सूक्ष्म शरीर पुनः कर्मफल के अनुरुप योनि में जन्म लेकर अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति में व्यस्त हो जाता है मृत्यु के बाद नयी माता के गर्भ में स्थूल शरीर धारण करने के लिए उसके पूर्व संचित पाप में समूह विभिन्न अंग सम्बन्धी विकारों या रोगों के रुप में स्थूल भाव से प्रकटित होते रहते हैं और इस प्रकार स्थूल शरीर बढ़ता जाता है। बद्धजीव इस नवीन-स्थूल शरीर से अपने पूर्व जन्म में किये हुये पापों का बोझा ढोने के लिए पापों के फल से विकृत और रोगयुक्त अंग-प्रत्यंगादि को प्राप्त करके पुनः स्थूलभाव से विषय-भोगों में प्रवृत्त हो जाता है एवं प्राक्तन पाप-समूह के फलस्वरुप दोबारा अपने अंग से उत्पन्न पुत्र-कन्या का जनक-जनजीव प्राप्त करता है। सद्गुरु और कृष्ण के कृपा-प्रसाद से उत्पन्न निष्कपट भजन के फल से दिव्यज्ञान का उदय न होने तक उसके प्रारब्ध और अप्रारब्ध पापों का सम्पूर्ण रुप से नाश नहीं होता है। जब यह दैहिक कृष्णविमुखता प्रकाशित होकर जीव को स्थूल देह में आत्मबुद्धि कराने के लिए प्रयत्न करती है, तब अहैतुक-करुणामय कृष्णचन्द्र कभी तो स्वयं और कभी अपने निज जन को वैकुण्ठ-शब्द या वैकुण्ठ-वाणी के कीर्त्तनकारी लोक-शिक्षक आचार्य एवं उद्धारकर्त्तारुप के प्रेरित करके कृष्णविस्मृ दुर्दैवग्रस्त जीव के स्वरुप को जाग्रत करवाते हैं। जीव पूर्वजन्म के प्राक्तन पापकर्मों के फल या दण्डरुप रोगादि दुःख, क्लेशों अथवा ताप समूहों को माता के गर्भ करके पूर्व-पापों का हिसाब चुकाता करता है।

(२०७) **गौः भा—**भवितव्यतार काजे,

—प्रारब्ध या अनिवार्य भाग्यवशतः।

मृतजन्मा का अतिपाप—

कोन अति–पातकीर जन्म नाहि हय।
गर्भे गर्भे हय पुनः उत्पत्ति–प्रलय॥२०८॥

(२०८) **प. अनु०—**किसी–किसी अति पापी का तो जन्म भी नहीं हो पाता है। असके जन्म–मरण, गर्भों में ही बारम्बार होते रहते हैं।

मातृगर्भस्थित जीव का ज्ञानोदय—

शुन शुन माता, जीवतत्त्वेर संस्थान।
सात–मासे जीवेर गर्भेते हय ज्ञान॥२०९॥

(२०९) **प. अनु०—**सुनो माता! जीवतत्त्व की स्थिति को सुनो। गर्भ में जीव को सातवें महीने में ज्ञान होता है।

गर्भस्थित जीव का पश्चात्ताप
और कृष्णस्तुति—

तखने से स्मरिया करे अनुताप।
स्तुति करे कृष्णेरे छाड़िया घन श्वास॥२१०॥
''रक्ष, कृष्ण! जगत्–जीवेर प्राणनाथ।
तोमा' बइ दुःख—जीव निवेदिवे का'त॥२११॥
ये करये बन्दी, प्रभु! छाड़ाय से–इ से।
सहज–मृतेरे, प्रभु! माया कर' किसे॥२१२॥
मिथ्या धन–पुत्र–रसे गोड.इलुँ जनम।
ना भजिलुँ तोर दुइ अमूल्य चरण॥२१३॥
ये–पुत्र पोषण कैलुँ अशेष विधर्मे।
कोथा वा से–सब गेल मोर एइ कर्मे॥२१४॥
एखन ए–दुःखे मोर के करिवे पार?
तुमि से एखन बन्धु करिवा उद्धार॥२१५॥
एतेके जानिनु,—सत्य तोमार चरण।
रक्ष, प्रभु कृष्ण! तोर लइनु शरण॥२१६॥
तुमि–हेन कल्पतरु–ठाकुर छाड़िया।
भुलिलाड. असत्पथे प्रमत्त हइया॥२१७॥
उचित ताहार एइ योग्य शास्ति हय।
करिला त' एवे कृपा कर, महाशय!॥२१८॥
एइ कृपा कर,—येन तोमा' ना पासरि।
येखाने–सेखाने केने ना जन्मि, ना मरि॥२१९॥
येखाने तोमार नाहि यशेर प्रचार।
यथा नाहि वैष्णवजनेर अवतार॥२२०॥
येखाने तोमार यात्रा–महोत्सव नाइ।
इन्द्रलोक हइलेओ ताहा नाहि चाइ॥२२१॥

(२१०–२२१) **प. अनु०—**उस समय वह अपने पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण करके पश्चाताप करता है और लम्बी–लम्बी सांसे लेता हुआ श्रीकृष्ण की स्तुति करता है—"हे कृष्ण! हे जगत् के जीवों के प्राणनाथ! रक्षा करो। यह जीव तुम्हारे अतिरिक्त और किससे अपना दुःख कहे? हे प्रभो! जो बन्दी बनाता है, वही छुड़ात भी है। हे प्रभो! जो अपने आप ही मरा हुआ है, उस पर माया क्यों चलाते हो। मैनें धन–पुत्रादि के मिथ्या सुख भोग में अनेक जन्म गँवा दिये हैं। आपके अमूल्य चरण–युगल का भजन कभी नहीं किया। जिन पुत्रादि को मैंने अनेकानेक अधर्म करके पाला पोसा था, मेरे उन कर्मों के फलस्वरुप वे न जाने कहाँ चले गये। अब इस दुःख से मुझे कौन छुड़ाये? इस समय तो तुम ही मेरे वास्तविक बन्धु हो, मेरा उद्धार करो! अब मालूम प्रभो! हे कृष्ण! रक्षा करो! मैंने तुम्हारी ही शरण ली है, तुम्हारे जैसे कल्पतरु प्रभु को छोड़ मैं प्रमत्त होकर असत् पथ का पथिक बना रहा। उसका यह दण्ड महाशय! अब तो कृपा करो! कृपा करो! कृपा यह करो कि मैं तुमको अब कभी न भूलूँ—चाहे कहीं जन्मूँ और कहीं मरुँ, जहाँ तुम्हारे यश हा प्रचार न हो, जहाँ वैष्णवजन न हों, जहाँ तुम्हारा लीला महोत्सव न होता

हो, वह स्थान चाहे इन्द्रलोक ही क्यों न हो, वह मुझे नहीं चाहिये।

(२११) **गौः भा—**का'त,—(संस्कृत 'कुत्र' शब्द से प्राचीन बंगला भाषा में कुथा, कोथा, कथि, का'त), कहाँ पर, किसको, किसके पास या किस स्थान पर।

मातृगर्भ के सप्तम मास में अवस्थान के समय आर्त्त-जीव कातरभाव से भगवान् का स्तव कर रहा है,—जिन भगवान् की माया (दुर्गा या कारागार की स्वामिनी) ने मुझको इस भव-दुर्ग अर्थात् संसार-कारागार में बन्दी करके सत्त्व, रजः और तमोगुणरुप तीन प्रकार के जालों के द्वारा बाँध दिया है, अर्थात् भगवान् की जो अचित् बहिरंगा-शक्ति कृष्ण-विस्मृत बहिर्मुख मुझको मोहित करके जड़ सुखभोगों में प्रमत्त कराकर त्रितापज्वाला में दग्ध कर रही है, गुरु कृष्ण-प्रसाद के प्रभाव से मेरी सेवोन्मुखत को देखकर फिर वही माया भगवान् की चिन्मयी स्वरुपशाक्ति रुप से मुझे इस भव कारागार-क्लेश से मुक्त भी करा सकती है। हे भगवान्! मैं जिस मुहूर्त्त से आपको अपने नित्य सेव्य परमकारण चेतन प्रभुरुप से न जानकर तथा आपसे विमुख होकर और आपको भूलकर एवं आपकी प्रतीति के बिना अन्य दूसरी वस्तु (माया) के प्रति अभिनिविष्ट हुआ हूँ; उसी मुहूर्त्त से अपनी बुद्धिभ्रष्ट हो जाने के कारण मैं निसर्गतः श्वसच्छव (श्वास लेते हुये भी शव या जीवन्मृत) की तरह भौक्ता अभिमान के फलस्वरुप अचेतन का सेवक बना हुआ मृत शव या जड़वत् होकर पड़ा हुआ हूँ। अब फिर आप अपनी विमुख मोहिनी, वंचना करने वाली माया द्वारा मुझको और अधिकतर वंचित क्यों कर रहे हैं?

कृष्ण को भूलकर हम सर्वदा ही इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान के सहयोग से इन्द्रियों के तर्पण में व्यस्त रहकर अतीन्द्रिय अधोक्षज (विष्णु) के अप्राकृत सेवा विचार से विमुख रहते हैं। यह हमारे जड़ प्रभुत्व या जड़दास्यात्मक स्वभाव का ही परिचय है; अर्थात् जड़दास्यास्मक स्वभाव का ही परिचय है; अर्थात् जड़वस्तु जैसे स्वतः कर्त्तत्व धर्म से वंचित रहती है, उसी प्रकार हम भी स्वतन्त्र चेतन वृत्ति के अपव्यवहार के फलस्वरुप अचिन्माया द्वारा चेतन रहित होकर अज्ञान में निमग्न रहते हैं।

(२१७) **गौः भा—**भुलिलाड. असत्पथे प्रमत्त हइया,—(भाः ३/९/६ श्लोक में मैत्रेय-विदुर-संवाद में नारायण के रुप का दर्शन करने के बाद ब्रह्मा द्वारा स्तव)—" तावद्भयं द्रविण गेहसुहृन्निमितं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः। तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्त्तिमूलं यावन्न तेऽघ्रिंमभयं प्रवृणीत लोकः॥"

अर्थात् 'जब तक लोग, आपके अभय चरणारविन्दों का मुख्यरुप से वरण नहीं कर लेते, तब तक उनका, भविष्य में विनाश होने का भय, उनके विनाश होने पर शोक, पुनः उनकी प्राप्ति के लिए स्पृहा, लेकिन उसमें पराजय होने से भी उनके लिए विपुल पिपासा, फिर किसी तरह से प्राप्त होने पर भी अनात्मवस्तु में 'मैं' और 'मेरा'—इस प्रकार की जड़ासक्ति वर्तमान रहती है; यही संसार का मूल कारण है।'

(२१८) **गौः भा—**सम्राट कुलशेखर रचित मुकुन्दमाला स्तोत्र में,—"नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे यद्-यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरुपम्। एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मा-

न्तरेऽपि त्वत्पादम्भोरुह-युगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥" अर्थात् 'हे भगवान्! धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्ग की प्राप्ति में मेरी कोई आस्था नहीं है, मेरे प्राक्तन कर्मों के अनुसार

भविष्य में जो होना है, सो होता रहे, होने दो; मेरी तो आपसे यही एकान्त प्रार्थना है,—कि जैसे भी हो जन्म–जन्मान्तर में मेरी आपके पादपद्मयुगल में अचंचला भक्ति बनी रहे।

(२१९) **गौः भा—**(भाः १०/१४/३० श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति ब्रह्मा की स्तवोक्ति) —"तदस्तु में नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्। येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥"

अर्थात् 'चाहे मैं इस मनुष्य जन्म में रहूँ या मेरा अन्यत्र किसी तिर्यगयोनि में ही जन्म क्यों न हो, उस पर मेरी बस एक ही प्रार्थना है कि,—मुझे केवल मात्र ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो,—जो मैं आपके भक्तों के बीच में रहकर आपके पादपद्मों की सेवा कर पाऊँ।'

भक्त, भक्ति और भगवान् के प्रसंग से रहित स्वर्ग–लोक भी वर्जनीय है— तथाहि (भाः ५/१९/२४)—

"न यत्र वैकुण्ठ कथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥" २२२॥
"गर्भवास–दुःख प्रभु, एहो मोर भाल।
यदि तोर स्मृति मोर रहे सर्वकाल॥२२३॥
तोर पादपद्मेर स्मरण नाहि यथा।
हेन कृपा कर, प्रभु! ना फेलिवा तथा॥२२४॥
एइमत दुःख प्रभु, कोटि–कोटि जन्म।
पाइलुँ विस्तर, प्रभु! सब–मोर कर्म॥२२५॥
से दुःख–विपद् प्रभु, रहु बारे बार।
यदि तोर स्मृति थाके सर्व–वेद–सार॥२२६॥
हेन कर' कृष्ण, एवे दास्ययोग दिया।
चरणे राखह दासी–नन्दन करिया॥२२७॥
वारेक करह यदि ए दुःखेर पार।
तोमा' बइ तबे प्रभु, ना चाहितु आर॥"२२८॥
एइमत गर्भवास पोड़े अनुक्षण।
ताहो भालबासे कृष्णस्मृतिर कारण॥२२९॥

(२२०–२२१) **गौः भा—**जिस स्थान पर भगवान् कृष्ण का गुण–कीर्तन नहीं हैं, बल्कि बद्धजीव का नश्वर गुणकीर्तनमय व्यभिचार है, जहाँ पर वैकुण्ठागत किसी अप्राकृत दिव्यसूरि ने अवतीर्ण होकर कृष्णाभिन्न नाम–रुप–गुण–लीला का कीर्तन नहीं किया है, जहाँ पर भगवान क त्रिविक्रमत्व, अर्थात्, निगुर्ण वैकुण्ठधाम प्रकाशित नहीं है तथा जहाँ पर कृष्णसम्बन्धी किसी प्रकार के पर्वमहोत्सवादि अनुष्ठित नहीं होते हैं, वह स्थान भले की अमरावली की भाँति इन्द्रियतर्पण का स्थान ही क्यों न हो, मैं उसके लिए तनिक भी अभिलाषा नहीं करता हूँ।

अधोक्षज–सेवा को जिन्होने समझ लिया है, उनके लिए ही "त्रिदशपुराकाशपुष्पायते" अर्थात् बहिर्जगत् में भोगबुद्धि नही रह सकती है। भोगी जीवों की इन्द्रियतर्पण में उत्कट अभिलाषा रहती है, इसलिए उनकी वैकुण्ठ (विष्णु) स्मृति की सम्भावना नहीं है और इस कारण वे अन्याभिलाषिता–

शून्य होकर नैष्कर्माश्रय पूर्वक विष्णुभक्ति का आदर न करके स्वर्गादि इन्द्रियतृप्ति की आदर्शभूमि का ही बहुत सम्मान करते हैं।

(२२२) **गौः भा—**महाराज परीक्षित के समक्ष श्रीशुकदेवजी देवताओं द्वारा गाये गये इस श्लोकगीति का कीर्तन कर रहे हैं, जिसमें इस भारतभूमि पर हरिसेवानुकूल मानव जन्म की सर्वश्रेष्ठता एवं हरिपादपद्म की स्मृति–विहीन नश्वर स्वर्गादि (देवलोक) की अपेक्षा श्रीहरि के अवतार–क्षेत्र एवं श्रीहरि प्रसंग से पूर्ण इस भारतभूमि पर पंचम–पुरुषार्थ (भक्ति) के साधन

योग्य मानव जन्म की एकान्त प्रयोजनीयता सूचित हुई है।

अन्वयः—यत्र (यस्मिन् देशे), वैकुण ठकथासुधापगाः (वैकुण्ठकथाः वैकुण्ठस्य श्रीहरेः कथानां कीर्तनरुपाः सुधापगाः अमृतनद्यः) न (निरन्तरं न प्रवहन्ति न सन्तीत्यर्थः, तथा यत्र) तदाश्रयाः (तस्याः वैकुण्ठ-कथासुधापगायाः आश्रयाः सततं हरिकथामृतपानासक्ताः इत्यर्थः) साधवः भागवताः (शुद्धभक्ताः वैष्णवाः) न (न सन्ति, तथा) यत्र (यस्मिन्) महोत्सवाः (महान्तः नृत्याद्युत्सवाः येषु तादृशाः) यज्ञेशमखाः (यज्ञेशस्य श्रीहरेः मखाः पूजाः च) न (न-भवन्ति), सः (तादृशः) सुरेशलोकः अपि (सुरेशस्य ब्रह्मणः लोकः अपि) न वै (नैव) सेव्यतां (कैः अपि पुंभिः आश्रयः न कार्यः इत्यर्थः, दुःसंग-ज्ञानेन सर्वथा परित्याज्यः इत्यर्थः)।

अनुवाद—जहाँ हरिकथामृत की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ उस हरिकथामृत प्रवाहिनी के आश्रित साधु-भागवतजन अवस्थान नहीं करते और जहाँ कृष्ण के नृत्य, गीत, वादन-कीर्तनादि से युक्त महोत्सवमयी यज्ञेश्वर की पूजा नहीं की जाती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, वह स्थान रहने के योग्य नहीं है।

(२२३-२२९) **प. अनु०—**"हे प्रभो! यदि आपकी स्मृति निरन्तर बनी रहे, तो यह गर्भवास का दुःख मेरे लिए अच्छा है। हे प्रभो! अब तो बस ऐसी कृपा करो कि जहाँ आपके पादपद्मों का स्मरण न रहे, वहाँ मुझे मत डाल देना। हे प्रभो! इस प्रकार के अनेकानेक दुःख मैंने कोटि-कोटि जन्मों में पाये हैं, वे सब मेरे कर्मों के ही फल थे। हे प्रभो! वे सब दुःख और विपत्तियाँ भले ही बारम्बार आयें, परन्तु आपकी स्मृति बनी रहे। यह स्मृति ही समस्त वेदों का सार है। हे कृष्ण! अब तो ऐसा करो कि मुझे अपनी किसी दासी का कोई पुत्र बनाकर और दास-भाव देकर अपने चरणों के समीप रख लो। एक बार यदि आप मुझे इस दुःख से छुड़ा दें, तो फिर आपको छोड़कर मैं और किसी को नहीं चाहूँगा।" इस प्रकार वह जीव, गर्भ में निरन्तर जलता-तड़पता रहता है, परन्तु श्रीकृष्ण की स्मृति के कारण इस अवस्था को भी वह अच्छा ही समझता है।

(२२३) **गौः भा—**यद्यपि गर्भवास की भीषण क्लेश-यन्त्रणा अत्यन्त हृदय विदारक और दुःसह है, तथापि हे भगवान्! ऐसी भीषण क्लेश-यन्त्रणा को भोगते समय भी यदि मैं निरन्तर आपके ही स्मरण में संलग्न रहूँ, तो यही मेरे लिए अत्यन्त प्रशस्त, अभिप्रेत, उपादेय और अभीष्टप्रद है।

(भाः १/८/२५ श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति कुन्ती का स्तवन)—'विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्'।

अर्थात् 'हे जगद्गुरो भगवान्! हमारे जीवन में अनन्त काल तक असंख्य और विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि उससे पुनर्जन्म के नाशक आपके दुर्लभ दर्शन प्राप्त होते हैं।'

(२२४) **गौः भा—**जहाँ आपके पादपद्मों के स्मरण का अभाव है और जड़, नश्वर इन्द्रियतर्पण-काम या इन्द्रियतर्पण-काम का व्याघात, अर्थात् भोग अथवा त्याग, राग अथवा द्वेष वर्तमान हैं, वहाँ आपकी कृपा का विलास न रहने के कारण बहिर्मुख-जीवों के प्रति आपकी वंचनामयी निर्दयता ही व्यक्त या अव्यक्त भाव से विद्यमान रहती है। ऐसी वंचना, छलना या माया से युक्त निर्दयता का परित्याग करके आप मुझे सदा कृष्णेतर जड़विषयों के प्रति सभी अभिनिवेशों से मुक्त

रखना—यही मेरी ऐकान्तिकी प्रार्थना है। अपनी अमन्दोदया दया का वर्षा करते हुये आप सर्वक्षण मेरे स्मृतिपथ में विद्यमान रहकर उसे आलोकित करते रहना और मैं उसको ही आपकी अमाया (माया रहित) कृपा के रुप में मानता रहूँ। निजेन्द्रियों की तृप्ति से युक्त सुख या दुःख के प्रबल प्रहारों के फलस्वरुप आपके पादपद्मों की विस्मृति से कभी भी मेरा सर्वनाश जैसे न हो।

(२२५) **गौः भा—**विस्तर,—[वि-स्तृ (पूरण या आच्छादन करना) + अल्] समूह, प्रचुर।

कर्म,—प्राक्तन दुष्कर्म-फल, दुष्कर्म, दुर्दैव, दुर्भाग्य, दुर्-दृष्ट, दग्धललाट।

(२२६) **गौः भा—**सभी वेदों का यही एकमात्र सार कथन है कि, निरन्तर कृष्ण की स्मृति रहने पर ही जीव का कभी भी किसी प्रकार का भी अमंगल नहीं होता है।

हे भगवान्! इस प्रपंच में प्राक्तन कर्म के फलस्वरुप विभिन्न प्रकार के दुःखों में पड़कर भी यदि आपकी अविस्मृति मेरे चित्त में निरन्तर जागरुक रहे, तो यही मेरे लिए सर्वोत्तम मंगल है।

विस्मृत बहिर्मुख जीवों को द्वितीयाभिनिवेश से मुक्ति प्रदान करके उनको अपनी ओर उन्मुख करने के लिए भगवान् ने जीव के लिए जो असंख्य त्रिताप युक्त दुःख-क्लेश-कष्टादि, सजाकर रखे हुये हैं, बाहर से देखने पर वे दण्डस्वरुप लगते हैं, परन्तु अन्तदृष्टि से वे सब महाकृपा के निदर्शन स्वरुप हैं। पग-पग पर कर्मों के कर्त्तत्वाभिमान से अहंकारविमूढ़ होकर हम सदा इन्द्रिय-सुख-भोग में आसक्त रहते हैं, किन्तु मोहिनी वंचनामयी माया हमारे समस्त सुख भोगों को ही दुःख में परिणत करती रहती है। तथापि इन त्रितापयुक्त दुःखों से दुःखित, दण्डित, दण्डित और निष्पेषित (पीसे गये) होते रहने से भी कठोर विधान के भीतर भगवान की अतुल दया—अन्तःसलिला फल्गुनदी ही भाँति प्रवाहित रहती है; क्योंकि संसार में नाना-प्रकार की असंख्य बाधा-विघ्न-विपत्ति-विपाक (कठिनाई) आदि असुविधाओं के फलस्वरुप हमारे इन्द्रियतर्पण में व्याघात (विघ्न) आने पर इन त्रिताप-युक्त क्लेशों के मूलकारण, अर्थात् अपनी ईश्वर विरोधी स्वतन्त्रता के अप-व्यवहार और अपनी बहिर्मुखता के प्रति हमारे हृदय में धिक्कार एवं साथ-ही-साथ सांसारिक अभिनिवेश के प्रति एक प्रकार की वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। तब इस दुःखमय प्रपंच भोग से निवृत होकर अपने नित्य मंगलानुसन्धान के लिए सचेष्ट होकर हम विपद्-नाशन, पापों को कुचलने वाले नित्यप्रभु मधुसूदन के पादपद्मों की असीम कृपा का स्मरण करते हैं। इससे हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि, इस संसार के प्रति अपने प्रभुत्व की वासना से भोगी होने की चेष्टा करना—नितान्त निर्बोध (महामूर्ख) का विचार है। सच्चिदानन्दविग्रह सर्वकारण कारण श्रीकृष्ण का स्मरण एवं स्मरणरुप सेवा ही हम लोगों का परम कल्याणकारी नित्यधन है।

(भाः २/१/६ श्लोक में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकोक्ति)—'एतावन सांख्य-योगाभ्यां स्वधर्म-परि

निष्ठया। जन्म लाभः परः पुंसामन्ते नारायण स्मृति ही पुरुष के जन्मलाभ का सर्वश्रेष्ठ फल है।'

(२२७) **गौः भा—**जैसे गृहस्थाश्रम में स्थित किसी प्रभु क आश्रिता और पाल्य दासी का पुत्र जन्म से ही अपने प्रभु की सेवा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता है, उसी प्रकार हे प्रभो! मुझको भी अपनी पाल्य और रक्षणीय दासी का पुत्र जानकर सर्वदा अपनी

निष्काम सेवा में नियुक्त कीजिए; मैं सर्वक्षण निष्टपट भाव से आपकी सेवा मे ही नियुक्त रहूँ एवं आपके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तु की सेवा करने के छल से मैं किसी मुहूर्त्त में भी उस वस्तु का स्वामी न बन जाऊँ।

(२२९) **गौः भा—**ताहो,—वह भी, अर्थात् मातृगर्भ वास के समय उसकी दुःखज्वाला में जलना भी।

मातृगर्भ वास के समय उत्पन्न असह्य दुःखज्वाला, सुदःसह होने पर भी, आपकी स्मृतिरुप कृष्णसेवा के कारण सुखमय बन जाती है। इसलिए उस दहन ज्वाला को भी मैं उपादेय और वाच्छनीय समझता हूँ।

गर्भ से बहिर्गत बहिर्मुख जीव के
दुःखों का वर्णन—

स्तवेर प्रभावे गर्भे दुःख नाहि पाय।
काले पड़े भूमिते आपन–अनिष्छाय॥२३०॥
शुन शुन माता, जीवतत्त्वेर संस्थान।
भूमिते पड़िले मात्र हय आगेयान॥२३१॥
मूर्च्छागत हय क्षणे, क्षणे कान्दे श्वासे।
कहिते ना पारे, दुःखसागरेते भासे॥२३२॥
कृष्णेर सेवक जीव कृष्णेर मायाय।
कृष्ण ना भजिले एइमत दुःख पाय॥२३३॥

(२३०–२३३) **प. अनु०—**वह जीव, प्रभु के स्तवन के प्रभाव से गर्भ का दुःख अनुभव नहीं करता है। समय पर, इच्छा न होते हुये भी वह भूमि पर आ जाता है। सुनो माता! कृष्णविस्मृत, बहिर्मुख उस बद्धजीव की दशा के बारे में सुनो। भूमि पर आते ही वह अचेत हो जाता है। कुछ ही क्षणों में मूर्च्छाभंग होने पर कभी वह रोता है और कभी साँस ग्रहण करता और छोड़ता है। वह अपने को दुःख के सागर में पड़ा हुआ पाता है, किन्तु अपने उस दुःख को वह कह भी नहीं सकता है। श्रीकृष्ण का सेवक यह जीव श्रीकृष्ण की माया में भूलकर श्रीकृष्ण का भजन नहीं करता, इसी कारण ऐसा दुःख पाता है।

(२३१) **गौः भा—**जीवतत्त्वेर संस्थान, —कृष्ण को भूल जाना, बहिर्मुख बद्ध–जीव की दशा या अवस्था।

(२३२) **गौः भा—**श्वासे,—श्वास ग्रहण और त्याग करना।

(२३३) **गौः भा—**जीव का स्वरुप है नित्य कृष्णदास वैष्णव। कृष्णसेवाविमुख होने मात्र से वह कृष्ण की बहिरंग–शक्ति मोहिनी छलनामयी माया की 'विक्षेपणी' और 'आवरण ी'—इन दोनो वृत्तियों के अधीन हो जाता है। माया के आश्रय से इन्द्रियजन्य ज्ञान द्व ारा वस्तु को मापने की वृत्ति—भोगमूला और वंचनामयी है, इस कारण वह अनन्त–दुःखों की जननी है।

(चैः चः मध्य २० श पः ११७–११८, १२०) "कृष्ण भूलि' सेइ जीव—अनादि–बहिर्मुख। अतएव माया ता'रे देय संसार–दुःख॥ कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुबाय। दण्डयजने राजा येन नदीते चुबाय॥"

"साधु–शास्त्र–कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय। सेइ जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य॥" (चैः चः मध्य २२श पः १२–१५, २४–२५, ३३, ३५, ३७, ४१)—"नित्यबद्ध—कृष्ण हैते नित्य–बहुर्मुख। नित्य–संसार भुंजे नरकादि दुःख॥ सेइ दोषे माया–पिशाची दण्ड करे तारे। आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि' मारे॥ काम–क्रोधरे दास हञा तार लाथि खाय। भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु–वैद्य पाय॥ ताँर उपदेश–मंत्रे पिशाची पलाय। कृष्णभक्ति पाय, तबे कृष्ण–निकटे याय॥" कृष्ण–नित्यदास जीव ताहा भुलि'गेल। एइ दोषे माया तार गलाय बान्धिल॥ पाय कृष्णेर चरण॥ 'कृष्ण,

तोमार हड़' यदि बले एकबार। मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥ भक्ति-मुक्ति-सिद्धिकामी 'सुबुद्धि' यदि हय। गाढ़-भक्तियोगे तबे कृष्णेरे भजय॥ अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन। ना मागिलेह कृष्ण तारे देन स्वचरण॥ काम लागि' कृष्ण भजे, पाय कृष्ण रसे। काम छाड़ि' 'दास' हैते हय अभिलाषे॥"

कृष्णभजनकारी ही सौभाग्यवान्—

कथेदिने कालवशे हय बुद्धि-ज्ञान।
इथे ये भजये कृष्ण, से-इ भाग्यवान्॥२३४॥

(२३४) **प. अनु०**—कुछ दिन बाद समय आने पर उसकी बुद्धि-ज्ञान होता है, तब जो श्रीकृष्ण का भजन करता है। वही भाग्यवाली है।

कृष्ण-बहिर्मुख असत्संगी को नरक की प्राप्ति—

अन्यथा ना भजे कृष्ण, दुष्ट-संग करे।
पुनः सेइमत माया-पापे डुबि' मरे॥२३५॥

(२३५) **प. अनु०**—इसके विपरीत यदि वह श्रीकृष्ण को नहीं भजता और दुष्टों का संग करता है तो वह फिर से उसी प्रकार माया के पाप में डूब कर मरता है।

(२३५) **गौः भा**—अन्यथा,—अन्य पक्ष से, इसके अतिरिक्त विपरीत भाव से।

माया-पापे,—माया के प्रभाव से कृष्ण विस्मृति और विमुखता के फल से लभ्य पूंजीभूत पाप-समुद्र में।

कृष्ण सेवा का परित्याग करके किसी अन्य अभिलाषा से किया गया जो कोई भी कर्म और ज्ञानादि चेष्टा क्यों न हो, वह सब अभक्त और असत् व्यक्तियों का आचरण मात्र है। वे वैकुण्ठ -वस्तु को सीमा विशिष्ट तुच्छ वस्तुविशेष समझकर इन्द्रियजन्य ज्ञान से मापने की चेष्टा करने पर आध्यक्षिक कर्मज्ञानवादी हो जाते हैं। अत्यन्त दुर्दैव ग्रस्त जीव ही कृष्ण सेवा में रुचि न रखकर माया रचित संसार समुद्र में डूबकर मरता है। जड़ इन्द्रियों के द्वारा वैकुण्ठ वस्तु को मापने की चेष्टा से भगवद् विमुखता या भगवद् विस्मृति होती है। इन्द्रिय जन्य ज्ञान उस भगवद्विमुख बद्धजीव को पाप-पुण्य की तरंगों में बहाते-बहाते अन्त में अतल भवजलधि में डुबाकर निरन्तर केवल जन्म-मरण-यन्त्रणा का भोग कराता रहता है।

(भाः ११/२६/३ श्लोक में उद्धव के प्रति श्रीकृष्णोक्ति—"संग न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धनुगान्धवत्॥"

अर्थात् "शिश्नोदरतर्पण प्रिय असद्व्यक्तियों का संग कभी भी नहीं करना चाहिये। ऐसे व्यक्तियें का संग करने वाला मनुष्य अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धों की भाँति अवश्य ही अन्धतम अवस्था में गिरता है।"

जिह्वोदरोपस्थ-लम्पट असत्संगी को नरक की प्राप्ति—तथाहि (भाः ३/३१/३२)—

"यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्वतम्॥"२३६॥

(२३६) **अन्वय—जन्तुः** (जीवः) यदि शिश्नोदर-कृतोद्यमैः (शिश्नोदरतर्पणार्थं कृतः अनुष्ठितः) उद्यमः प्रयत्नः यैः तादृशैः उपस्थोदरलम्पटैः) असद्भिः (असाधुभिः अभक्तैः जनैः) आस्थितः (अधिष्ठितः सन्) पथि (तेषां मार्गे) पुनः रमते (आसक्तः भवति), यद्वा, पथि (सन्मार्गे) [आस्थितः अपि यदि असद्भिः सह रमते, तदा] पूर्ववत् ("यातनादेह आवृत्य"—(भाः ३/३०२० इत्यादि पूर्वोक्त-प्रकारेण) तमः (नरकं) विशति (प्राप्नोतीत्यर्थः)।

अनुवाद—सत्पथ पर चलते हुये भी यदि

कोई मनुष्य किसी उदर और उपस्थेन्द्रिय के भोगों में लगे हुये असाधु का संग करता है तो उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से अर्थात् गले में यमदूतों द्वारा पाशबद्ध होकर नरक में प्रवेश करना पड़ता है।

तथाहि—

''अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम्।
अनाराधित–गोविन्दचरणस्य कथं भवेत्॥'' २३७॥

(२३७) **गौः भा**—आदि ७म अः १३६ संख्या का अन्वय, अनुवाद द्रष्टव्य है।

कृष्णभजन के फल से ही
निरापद जीवन एवंमरण—

''अनायासेन मरण, जीवन दुःख–बिने।
कृष्ण भजिले से हय कृष्णेर स्मरणे॥२३८॥

(२३८) **प. अनु०**—अनायास मरण और दुःख –रहित जीवन कृष्णभजन के फलस्वरुप कृष्णस्मरण से संभव होता है।

(२३८) **प. अनु०**—अनायास मरण और दुःख–रहित जीवन कृष्णभजन के फलस्वरुप कृष्णस्मरण से संभव होता है।

(२३८) **गौः भा**—आदि ७म अः १३७ संख्या द्रष्टव्य है।

साधुसंग में कृष्णभजन करने के लिए
शचीमाता को उपदेश—

एतेके भजइ कृष्ण साधु–संग करि'।
मने चिन्त कृष्ण, माता, मुखे बल 'हरि'॥२३९॥

(२३९) **प. अनु०**—अतएव हे माता! साधुसंग करते हुये श्रीकृष्ण का भजन करो, मन में श्रीकृष्ण का चिन्तन करो और मुख से 'हरि' 'हरि' बोलो।

कृष्णभक्तिहीन भय–भोग–हिंसात्मक
सत्कर्मादि निष्फल—

भक्तिहीन–कर्मे कोन फल नाहि पाय।
सेइ कर्म भक्तिहीन,—पर हिंसा या'य''॥२४०॥

(२४०) **प. अनु०**—भक्तिहीन कर्म से कोई सुफल नहीं मिलता। भक्तिहीन कर्म वही है, जिसमें दूसरों की हिंसा हो।

(२४०) **गौः भा**—अतएव हे माता! साधुओं का संग करते हुये सर्वक्षण कृष्ण का भजन करो। मुख से हरिनाम का कीर्त्तन करते हुये हृदय से कृष्ण का स्मरण करो। साधु संग–वर्जित होकर अर्थात् असाधु को साधु समझकर करके विचार कृष्ण भजन की चेष्टा करने का कृष्णसेवा सम्भव ही नहीं है।

साधुसंग में कृष्णनाम–कीर्तन की कर्त्तव्यता, —(भाः ३/२३/५५ श्लोक में कर्दम के प्रति देवहूति–वाक्य)—"संगो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया। स एव साधुषु कृतो निःसंगत्वाय कल्पते॥"

अर्थात्, 'हे मुनिवर, विषयों का संग संसार के भय का नाश करने वाला नहीं होता है, यह सत्य है; क्योंकि अबुद्धि पूर्वक असद्–विषयों में विहित आसक्ति संसार का ही कारण होती है, किन्तु वही (आसक्ति) साधुपुरुषों में अनुष्ठित होन पर विषयानु–रागशून्यता का फल देती है।"

(भाः ११/२/३० श्लोक में नवयोगेन्द्र के प्रति विदेहराज निमि की उक्ति)—"अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः। संसारेऽस्मिन क्षणार्द्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम्॥"

अर्थात्, 'अतएव हे पवित्र ऋषिगण, मैं आप लोगों से आत्यन्तिक मंगलसाधन की जिज्ञासा करता हूँ क्योंकि इस संसार में आधे क्षण का साधुसंग भी मनुष्यों के लिए परमनिधि होता है।'

(भा० ३/२५/२० श्लोक में देवहूति के

प्रति भगवान् कपिल की उक्ति)—'प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः। स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्।'

अथार्त्, 'साधुसंग ही इन सबका मूल है, जिसके बारे में पण्डितजन जानते हैं कि आसक्ति, ही आत्मा का अच्छेद बन्धन है, किन्तु वही आसक्ति, साधुजनों के प्रति अनुष्ठित होने पर आवरणरहित मुक्ति का द्व ार बन जाती है।'

(भाः ४/२२/१९ श्लोक में महाराज पृथु के प्रति श्रीसनतकुमार की उक्ति)—"सङ्गमः खलु साधुना-मुभयेषां च सम्मतः। यत्सम्भाषण ासम्प्रशनः सर्वेषां वितनोति शम्।"

अर्थात् 'हे महाराज! साधुसंग—वक्ता और श्रोता, दोनों को ही वांछनीय है; क्योंकि साधुगण एक दूसरे के साथ जो कथावार्ता ओर प्रश्न करते हैं, उससे सभी का मंगल विस्तार होता है।'

(भाः ४/२९/४० श्लोक में श्रीप्राचीनबर्हि के प्रति श्रीनारद की उक्ति)—"तस्मिन् महन्मुखरिता मधुभिच्च-रित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति। ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्ण ैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्-

भयशोकमोहाः॥

अर्थात् 'उस साधुसंगम के स्थान पर प्रायः महाजनों द्वारा भगवान् वासुदेव का पवित्र चरित्र ही कीर्त्तित होता है। हे राजन् भगवान् की चरित्रकथा—साक्षात् अमृतवाहिनी नदी है, जो-जो लोग अतृप्ति के साथ उस कथा श्रवण में तत्पर होकर अपने कर्णकुहरों द्वारा इस नदी के अमृत का सेवन करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक या मोह आदि स्पर्श नहीं कर सकते हैं।'

(भाः ४/३०/३३ श्लोक में श्रीभगवान् के प्रति श्रीप्रचेतागण की उक्ति)—"यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः। तावद्भवतत्प्रसंगानां संगः स्यान्नो भवे भवे॥"

अर्थात् 'आय जो हमें वर ग्रहण करने के लिए आदेश कर रहे हैं, जो हम आपसे केवल यही वर माँगते हैं कि, जब तक आपकी माया द्वारा मोहित होकर हम अपने कर्मानुसार इस संसार में भ्रमण करते रहें, तब तक जन्म-जन्म में हमें आपके प्रसंगो में आसक्त भक्तों का संग प्राप्त होता रहे।'

(भाः २/२/३६ श्लोक में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकोक्ति)—"तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा। श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥"

अर्थात् 'अतएव हे राजन् हरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करते रहना चाहिए।'

(भाः ४/२०/२४ श्लोक में वैकुण्ठनाथ के प्रति महाराज पृथु की उक्ति)—"न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः। महत्तमान्तर्हृदयान्-मुखच्यतो विधत्स्व कर्णायुतमेष में वरः॥"

अर्थात्, 'हे प्रभो! मुझे तो उस मोक्ष पद की भी इच्छा नहीं है, जिसमें महत्तम साधुओं के हृदयाभ्यन्तर से मुखकमल द्वारा निर्गत आपके चरणकमलों का मकरन्द प्राप्त होने की सम्भावना नहीं रहती; इसलिए मैं यही वर माँगता हूँ कि, आप मुझे हजारों-हजारों कान दे दीजिये, जिनसे मैं सदा आपका यश श्रवण करता रहूँ।'

(भाः ५/१२/१३ श्लोक में रहूगण के प्रति अवधूत भरत की उक्ति)—"यत्रोत्तमः श्लोकगुण ानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथा-विघातः। निषेव्यमाण ोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मति सतीं यच्छति वासुदेवे।"

अर्थात्, 'हे राजन्! महापुरुषों के समाज में सदा विषयवार्ता के नाशक भगवद्गुणानुवाद की ही चर्चा होती रहती है, उस भगवद्गुण

ाानुवाद का यदि प्रतिदिन श्रवण और कीर्तन द्वारा सेवन किया जाये, तब उसके द्वारा ही मोक्षकामी की भगवान् के प्रति सदबुद्धि उदय होती है।'

(भाः १०/५१/५४ श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति राजर्षि मुचुकुन्द की उक्ति)—"भवापवर्गो भ्रमती सदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः। सत्संगी यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः॥"

अर्थात्, 'हे अच्युत! आपकी कृपा से जब किसी संसारी व्यक्ति के संसार का अन्त होना होता है, तभी उसको साधुसंग प्राप्त होता है। जिस समय साधुसंग होता है, उस समय सभी दुःसंगों की निवृति के साथ कार्य-कारण-नियन्ता तथा साधुओं की परमगति एवं परअवर, सबके स्वामी आप में उसकी रति उत्पन्न होती है, आप में रति होने से ही वह मुक्त हो जाता है।'

(भाः ६/११/२७ श्लोक में भगवान के प्रति वृत्र की उक्ति)—''ममोत्तमः श्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः। त्वन्माययाऽऽत्मात्जदार- गेहेष्वासक्त-चित्तस्य न नाथ भूयात्॥"

अर्थात् 'हे नाथ! अपने कर्मों के फलस्वरुप इस संसार चक्र में भ्रमण करते-करते आपके भक्तों के साथ ही मेरी मैत्री हो। भगवान्! आपकी माया के वशीभूत होने के कारण अभी जिन सब पुत्र-कलत्र और देह-गेह में मेरा चित्त आसक्त है; आगे से इन सब वस्तुओं में मेरी असक्ति न रहे।'

(भाः ३/२५/२५ श्लोक में माता देवहूति के प्रति भगवान् कपिल की उक्ति)—"सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः। तज्जोषणा-दाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥"

अर्थात्, 'साधुओं के प्रकृष्ट संग से मेरे (भगवान के) माहात्मय का यथार्थ ज्ञान कराने वाली तथा हृदय कानों को प्रिय लगने वाली जो कथाएँ आलोचित होती हैं, प्रीति के साथ उन सब कथाओं के सेवन से शीघ्र ही अविद्या निवृति के मार्ग स्वरुप मुझमें पहले श्रद्धा और अन्त में प्रेमभक्ति का उदय होता है।'

(भाः १/२/१४ एवं १६-१८ श्लोकों में शौनकादि ऋषियों के प्रति श्रीसूत गोस्वामी की उक्ति)—"तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः। श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यशः॥" शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः। स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थानिषेवणात्॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत-सताम्॥ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत-सेवया। भगवत्युत्तमः श्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी"॥

अर्थात्, "भक्ति-प्रधान धर्म ही नित्य अनुष्ठेय है, इसलिए एकाग्रमन से भक्तवत्सल वासुदेव का ही नित्य निरन्तर श्रवण, कीर्तन, मनन और अर्चन करना कर्तव्य है।' 'हे विप्रगण, श्रद्धावान और भगवान् के यश को सुनने के अभिलाषी व्यक्ति की महत् जनों की सेवा तथा पुण्य तीर्थों (वैष्णव-गुरु) के सेवन से निष्पाप होकर वासुदेव की कथा में रुचि विशिष्ट होती है। श्रीकृष्ण का श्रवण और कीर्तन परम पवित्र करने वाला है। सज्जनों के सुहृद् श्रीकृष्ण अपनी कथा सुनने वाले व्यक्तियों के हृदय में स्थित होकर हृदगत समस्त अशुभ, कामादि वासनाओं को विनष्ट कर देते हैं। नित्य-निरन्तर भागवत् की सेवा के द्वारा समस्त प्रकार के अशुभ नष्ट होने पर उत्तमः श्लोक भगवान् में निश्चला भक्ति उदित होती है।'

भगवत्सेवा के उद्देश्य से रहित होकर

जो पुण्य कर्म (सत्कर्म) किये जाते हैं, उन कर्मों से कर्मकर्ता को किसी शुभ फल की प्राप्ति नहीं होती है। भक्तिहीन–कर्म ही परहिंसामय होते हैं, अर्थात् जहाँ पर भक्ति का अभाव है, वहाँ पर सभी अनुष्ठान परहिंसा में पर्यवसित हो जाते हैं। कर्म, ज्ञान या योग—किसी की भी सहायता की प्रार्थना नहीं मुँह निहारते रहते हैं, किन्तु भक्ति—कर्म, ज्ञान या योग—किसी की भी सहायता की प्रार्थना नहीं करती हैकरती है, अपितु स्वयं ही पूर्ण स्वाधीन और निरपेक्ष है। भक्ति के अनुष्ठान में तनिक भी परहिंसा की सम्भावना नहीं है, अर्थात् भगवत्सेवा की ओर उन्मुख सेवक के भगवत्कर्म में किसी प्रकार से परमहिंसा की चेष्टा नहीं रह सकती है।

बहिर्मुख कर्म की निन्दा,—(भाः ३/२३/५६ श्लोकर में माता देवहूति के प्रति भगवान् कपिल की उक्ति)—"नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥"

अर्थात्, 'इस संसार मे जिस व्यक्ति के कर्म, धर्मार्थकामरुप त्रैवर्गिक धर्म के उद्देश्य से अनुष्ठित विषयों में जिसको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता, फिर जिसका वह वैराग्य तीर्थपद श्रीहरि की सेवा में ही परिणत नहीं हो जाता है, वह व्यक्ति जीवित होने पर भी मृत है, अर्थात् उसका प्राणधारण—वृथा है।'

(भाः १/२/८ श्लोक में शौनकादि ऋषियों के प्रति श्रीसूत गोस्वामी की उक्ति) —"धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन–कथासु यः। नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥"

अर्थात् 'यदि मनुष्यों का वर्णाश्रमपालनरुप–स्वधर्म अनुष्ठित होने पर भी विष्णु–वैष्णव की महिमामयी कथा के श्रवण–कीर्तन में रुचि उत्पन्न न करे, तब इस प्रकार के धर्म का अनुष्ठान केवल व्यर्थ परिश्रम मात्र ही है।'

(भाः १/५/१२ श्लोक में श्रीव्यास जी के प्रति श्रीनारद की उक्ति)—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युतभावर्ज्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम्। कुतः पुः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥"

अर्थात्, 'निष्कर्म का भाव ही नैष्कर्म्य है। उसमें कर्मकाण्ड की विचित्रता नहीं है, इसलिए वह एकाकार–स्वरुप है। इस प्रकार का कर्मविचित्रता रहित नैष्कर्म्यरुप ब्रह्मज्ञान स्थूल–लिंग–देह में आत्मबुद्धि रुप औपाधिक धर्म का निवारक (निषेधक) होने पर भी जब अच्युतभावहीन, अर्थात् भगवद्भक्ति– रहित होने से शोभा नहीं पाता, तब साधन और सिद्धि के समय दुःखरुप काम्यकर्म एवं अकाम्यकर्म, यदि भगवान् को अर्पित न हों, तब ये सब कर्म किस प्रकार से शोभा पा सकते हैं?'

(गीता में ९/२१ श्लोक में अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति)—

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं काम–कामा लभन्ते॥"

अर्थात् 'कर्मीजन यज्ञादि पुण्यकर्मों के फल से स्वर्ग प्राप्त करते हैं। वहाँ पर प्रचुर सुखों का भोग करके पुण्यक्षय होने पर वे फिर से मर्त्यलोक में आगमन करते हैं। इस प्रकार के कामकामी व्यक्तिगण तीनों वेदों के अनुगत होकर संसार में बारम्बार गमनागमन करते रहते हैं।'

(मुण्डक में १/२/७)—"प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरुपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुररेवापि यन्ति॥"

अर्थात्, 'यज्ञेश्वर–विष्णु के उद्देश्य से जो अनुष्ठित नहीं होता है, ऐसा यज्ञरुप प्लव

(नौवा)—भव- समुद्र को पार करने के लिए दृढ़ नहीं है; क्योंकि, ये सब यज्ञ भगवद् उद्देश्य से अनुष्ठित न होने पर केवलमात्र अष्टादशपुरुषोक्त अवर (निकृष्ट) कर्म-कोटि में वर्तमान रहने के कारण अपकृष्ट (निकृष्ट) माने जाते हैं। जो सब अविवेकी व्यक्ति उनको ही श्रेयरुप समझकर उनका अभिनन्दन करते हैं, वे बारम्बार जरा एवं मृत्यु को प्राप्त करते हैं।'

(मुण्डक १/२/९)—"यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।"

अर्थात् 'कर्मीगण कर्म में अनुराग के कारण प्रकृत अद्वयज्ञान-तत्त्व से अनभिज्ञ रहते हैं। इसलिए वे अत्यन्त फलभोगातुर होकर कर्मफल से स्वर्गादि-लोक को प्राप्त करते हैं और पुण्यक्षय होने पर वहाँ से पुनः नीचे गिर पड़ते हैं।

प्रभु के उपदेश से शचीमाता
आनन्द में निमग्न—

कपिलेर भावे प्रभु मा'येरे शिखाय।
शुनि' सेइ वाक्य शची आनन्दे मिलाय॥२४१॥

(२४१) **प. अनु०**—इस प्रकार प्रभु कपिलदेव के भाव में अवस्थित होकर माता को शिक्षा दे रहे थे और माता भी उन वाक्यों को सुनकर आनन्द में निमग्न हो रही थीं।

(२४१) **गौः भा**—मिलाय,—संयुक्त, निमग्न, साक्षात्कार प्राप्त हुआ,—पिघल गया।

प्रभु का सर्वक्षण कृष्णालाप—

कि भोजने, कि शयने, किवा जागरणे।
कृष्ण-बिनु प्रभु आर किछु ना बाखाने॥२४२॥

(२४२) प. अनु—क्या भोजन के समय, क्या शयन के समय और कन्या जाग्रत अवस्था में प्रभु अब तो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न कहते।

(२४२) **गौः भा**—भोजन के समय, निद्रा के समय और जाग्रत अवस्था में, सब समय एवं सब अवस्थाओं में प्रभु केवलमात्र कृष्ण के नाम-रुप-गुण-लीला या कृष्णकथा के कीर्तन के अतिरिक्त और कुछ भी उच्चारण या अन्य कोई प्रयास नहीं करते थे। गौरनागरी आदि अपसाम्प्रदायिकगण कहते हैं कि, गृहस्थ गौरांग ने गृहव्रतियों को केवलपात्र गृहमेध यज्ञ का ही उपदेश दिया है; किन्तु यहाँ पर ग्रन्थकार ठाकुर श्रीवृन्दावनदास आश्रयभाव-विभावित प्रभु के दूसरे किसी प्रकार के कृत्य या प्रयास का वर्णन नहीं कर रहे हैं।

प्रभु की दशा-श्रवण से भक्तों के
मन में नाना विचार—

आप्तमुखे ए-कथा शुनिया भक्तगण।
सर्व-गणे वितर्क भावेन मने-मन॥२४३॥
"किवा कृष्ण प्रकाश हइला से शरीरे?
किवा साधु-संगे, किवा पूर्वेर संस्कारे?॥"२४४॥
एइमते मने सबे करेन विचार।
सुखमय चित्तवृति हइल सबार॥२४५॥

(२४३-२४५) **प. अनु०**—यह बात आत्मीयजनों के मुख से भक्तों ने सुनी, तो सुनकर वे सब मन-ही-मन वितर्क करने लगे "कि क्या निमाइ के शरीर में श्रीकृष्ण का प्रकाश हुआ है? अथवा क्या यह साधु-संग का फल है? अथवा पूर्व जन्मों के संस्कार जागे है।" इस प्रकार सभी मन में विचार करने लगे और सबकी चित्तवृत्तियाँ सुखमयी बन गई।

(२४३) **गौः भा**—सर्वगणे.....मन, —भक्तजन मन-ही-मन आलोचना, अनुमान

या विचार करने लगे।

प्रभु द्वारा श्रीकृष्ण के नाम प्रेम के प्रचार का आरम्भ करने से भक्तों को सुख और पाखण्डियों को दुःख—

खण्डिल भक्तेर दुःख, पाषण्डीर नाश।
महाप्रभु विश्वम्भर हइला प्रकाश॥२४६॥

(२४६) **प. अनु०—**जब महाप्रभु श्रीविश्वम्भर का प्रकाश हो गया तब भक्तों के दुःख दूर होने लगे और पाखण्डियों का विनाश प्रारम्भ हो गया।

(२४६) **गौः भा—**उस समय समग्र विश्व में कृष्णप्रेम प्रदाता विश्वम्भर द्वारा कृष्णभक्ति के प्रचार–सूर्य के उदय से अभक्त समाज द्व ारा उत्पीड़ित और उपहासित भक्तों के मन का पूर्व का कष्ट विनष्ट होने लगा और भक्ति विरोधी पाखण्डियों की दलनलीला प्रारम्भ हो गयी।

महाभागवत लीला मे प्रभु का सर्वत्र श्रीकृष्ण का स्फुरण और श्रीकृष्णनाम का उच्चारण—

वैष्णव–आवेशे महाप्रभु विश्वम्भर।
कृष्णमय जगत देखये निरन्तर॥२४७॥
अहर्निश श्रवणे शुनये कृष्णनाम।
वदने बोलये 'कृष्णचन्द्र' अविराम॥२४८॥

(२४७–२४८) **प. अनु०—**महाप्रभु विश्वम्भर वैष्णव–आवेश में सम्पूर्ण जगत् को निरन्तर कृष्णमय देखने लगे। वे कानों से रात दिन कृष्ण का नाम ही सुनते और मुख से निरन्तर 'श्रीकृष्णचन्द्र' ही कहते रहते।

(२४८) **गौः भा—**श्रीगौरसुन्दर महाभागवत–वैष्णव की लीला का प्रकाश करके सर्वत्र कृष्ण सम्बन्धी –कार्ष्ण (कृष्णभक्त) का दर्शन करने लगे। कृष्णविस्मृत साधारण प्राकृत लोग जैसे जड़–प्रत्यक्षादि–

ज्ञान–विमूढ़ होकर कृष्णदर्शन के अभाव से कृष्णेतर भोग–भूमिका रुप में इस प्रापंचिक जगत् का दर्शन करतेहैं, महाप्रभु ने उस प्रकार के भोक्ता–अभिमान से भोग्य–दर्शन का आदर्श न दिखाकर कृष्णविमुख और कृष्णविस्मृत प्रबुद्धजीवों द्वारा परिलक्षित इस प्राणी–जगत् और जड़–जगत् का कृष्णसेवोन्मुख महाभागवत–वैष्णवों की सच्चिदानन्द–कृष्ण मयी दृष्टि से दर्शन किया। प्रत्येक प्राणी के हृदय में उन्हें उपास्य वस्तु शक्ति के साथ कृष्ण का विलास प्रतीत होने लगा, इसलिए बद्ध–विमुख–विस्मृत जीवों की भाँति अचित जड़ परमाणुओं का व्यवधान उन्हें दृष्टिगत नहीं हुआ और सर्वत्र तुरीय वैकुण्ठ गोलोक के दर्शन में उस प्रकार के प्रापंचिक वैभव समूह ने श्रीकृष्ण के भोगसेवा–विलास दर्शन में उनके सम्मुख कोई बाधा उत्पन्न नहीं की।

(चैः चः मध्य ८म पः २७४)—"स्थावर–जंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति। सर्वत्र स्फुरये ताँर इष्टदेव–मूर्ति॥"

(भाः ११/२/४५, ४९–५४ श्लोकों में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र में अन्यतम श्रीहरि की उक्ति)—"सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः"॥

अर्थात् 'जो निखिल वस्तुओं में प्राणियों के नियन्तारुप से अधिष्ठित परमात्मा के भगवद्भाव–विलास का दर्शन करते हैं और परमात्मा भगवान् श्रीहरि में चिद्विलास–वैचित्र्य का दर्शन करते हैं, वे ही 'उत्तम भागवत' हैं।'

"देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्–भयतर्ष कृच्छ्रैः। संसारधर्मैंविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवत प्रधानः॥"

अर्थात्, 'संसार में रहने पर भी जो व्यक्ति

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि के विषय मे जन्म, नाश, भूख, भय, प्यास इत्यादि संसार के धर्मो से मोहित अर्थात् आसक्त नहीं होते हैं, अपितु सर्वदा हरिस्मृति के द्वारा कुशल से रहते हैं, वे ही 'भागवत-प्रधान' हैं।'

"न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः। वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥"

अर्थात् 'जो एकमात्र कृष्ण में अवस्थित होकर शान्त रहते हैं और उनके चित्त में कामकर्मबीज उद्भूत नहीं होता है, वे ही 'भागवतोत्तम' हैं।'

"न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः। सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः॥"

अर्थात्, 'जिन पुरुषों का इस जड़ देह में जन्म, कर्म, वर्णाश्रम या जाति के द्वारा 'अहं"-भाव उत्पन्न नहीं होता है, वे ही 'हरि के प्रियपात्र' है।

"न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।

सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः॥

अर्थात् 'वित्त और देह के विषय में जिनके, यह 'मेरा' है और यह 'पराया' है। इस प्रकार का भेद नहीं है, तथा जो सभी प्राणियों में समभाव रखने वाले और शान्त हैं, वे ही भागवतोत्तम हैं।'

''त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभि- र्विमृग्यात्। न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धपमि यः स वैष्णावाग्रयः॥

अर्थात्, 'हरिगतचित्त वाले ब्रह्मादि देवता भी जिन कृष्ण का अन्वेषण करते हैं, जो त्रिभुवन प्राप्ति की लालसा से भी उन कृष्ण के पदारविन्दों से लव अर्थात् निमिषार्द्ध मात्र विचलित न होकर अकुण्ठस्मृति (बाधारहित स्मृति वाले) बन रहते हैं, वे ही श्रेष्ठ वैष्णाव हैं।'

''भगवत उरुविक्रमाङघिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे। हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥"

अर्थात्, 'उरुविक्रम (महापराक्रमी) श्रीकृष्ण के पादपद्मों की नखमणिचन्द्रिका द्वारा जिनके हृदय का ताप दूर हो गया है, उनको और दुःख क्या है? सूर्य के ताप से तप्त व्यक्ति का सन्ध्या के समय चन्द्रकिरण मिलने पर क्या और कोई तापक्लेश रह सकता है?'

पहले विद्यारस में मग्न निमाइ की अब सर्वक्षण कृष्ण-प्रीति—

ये-प्रभु आछिला भोला महा-विद्यारसे।
एबे कृष्ण-बिनु आर किछु नाहि बासे॥२४९॥

(२४९) **प. अनु०**—जो प्रभु पहले महा-विद्यारस में निमग्न थे, वे ही अब श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जानते हैं।

प्रातःकाल में छात्रों के आगमन मात्र से ही प्रभु का केवल कृष्णालाप—

पड़ुयार वर्ग सब अति ऊषःकाले।
पड़िवार निमित्त आसिया सबे मिले॥२५०॥
पड़ाइते वैसे गिया त्रिजगत्-राय।
कृष्ण-बिनु किछु आर ना आइसे जिह्वाय॥२५१॥

(२५०-२५१) **प. अनु०**—विद्यार्थीवृन्द पढ़ने के लिए बड़े सवेरे ही प्रभु के पास आ गये तथा त्रिलोकीनाथ प्रभु उनको पढ़ाने के लिए जाकर बैठ भी गये, परन्तु उनकी जिह्वा पर श्रीकृष्ण नाम के अतिरिक्त और कुछ आता ही नहीं था।

शिष्यों के पूछने पर उत्तर में प्रभु द्वारा सभी वर्णों और वेद का कृष्णतात्पर्य परक व्याख्यान—

''सिद्ध वर्णसमाम्नाय?'' बले शिष्यगण।
प्रभु बले,—''सर्व-वर्णे सिद्ध नारायण॥''२५२॥
शिष्य बले,—''वर्ण सिद्ध हइल केमने?''
प्रभु बले,—''कृष्ण-दृष्टिपातेर कारणे॥''२५३॥
शिष्य बले,—''पण्डित! उचित व्याख्या कर'।''
प्रभु बले,—''सर्वक्षण श्रीकृष्ण स्मङर॥''२५४॥
''कृष्णेर भजन कहि—सम्यक आम्नाय।
आदि-मध्य-अन्ते कृष्ण भजन बुझाय॥''२५५॥

(२५२) **प. अनु०**—अशिष्यगण कहते हैं—"सिद्ध वर्णसमाम्नाय"? तो प्रभु कहने लगे, —"सभी वर्णों में नारायण ही सिद्ध हैं।"

(२४२) **गौः भा**—सिद्ध वर्ण-सामाम्नाय, —कलाप या कातन्त्र व्याकरण का प्रथम सूत्र—"सिद्धो वर्णसमाम्नायः" अर्थात् स्वर और व्यंजनवर्ण का पाठक्रम—चिर-प्रसिद्ध है। प्रभु के छात्रगण कलाप-व्याकरण के प्रथम सूत्र का उच्चारण करके कहने लगे कि, वर्णपाठ-रीति तो सुप्रसिद्ध है? उसके उत्तर में प्रभु ने कहा कि, सब वर्ण नित्य-शुद्ध-पूर्ण-मुक्त-चिन्मयी परममुख्या विद्वद्रुढ़िवृत्ति से नारायण को ही प्रतिपादित करते हैं। आरोहपन्थी या अधिरोहवादी अज्ञरुढ़ि-वृत्ति के सहयोग से वर्ण के शब्दशास्त्र का अध्ययन करते हैं, किन्तु प्रभु ने अवतार-विचार का अवलम्बन करके प्रत्येक वर्ण को ही भगवद्-वाचक बताया है। प्रत्येक वर्ण को अज्ञरुढ़िवृत्ति से समझने की चेष्टा करने पर बद्धजीव उनका अभिप्राय नारायण से अलग, इन्द्रियग्राह्य विषय वस्तुओं के रुप में प्राप्त करते हैं; किन्तु वर्ण की विद्वद्रुढ़िवृत्ति साक्षात् स्वप्रकाश वाच्यवस्तु श्रीनारायण-वर्ण द्वारा आत्मास्वरुप को प्रकटित करके जीव को हरिकीर्त्तनकारी बना देती है।

(२५३-२५५) **प. अनु०**—तब शिष्यों ने पूछा कि,—"वर्ण कैसे सिद्ध हुये?" तो प्रभु ने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्ण के दृष्टिपात के कारण।" फिर शिष्यों ने कहा,—"पण्डित जी! उचित व्याख्या करो।" तो प्रभु बोले,—"सब समय श्रीकृष्ण का स्मरण करो। सम्यक् आम्नाय तो श्रीकृष्ण भजन को ही कहते हैं। सभी शास्त्र आदि, मध्य और अन्त में श्रीकृष्ण भजन को ही बताते हैं।"

(२५३) **गौः भा**—छात्रों द्वारा वर्णसिद्धि का कारण पूछने पर उत्तर में प्रभु ने कहा कि, वाच्य-विग्रह श्रीकृष्ण के निरीक्षण का हेतु, अर्थात् कृष्ण से अभिन्न पूर्ण-शुद्ध-नित्य-मुक्त-वाचक (व्यंजक या सूचक अथवा द्योतक) होने के कारण प्रत्येक वर्ण की नित्यसिद्ध है।

(२५४) **गौः भा**—उचित,—यथार्थ, युक्ति या न्यायसंगत।

(२५५) **गौः भा**—सम्यक् आम्नाय, —"आमनति उपदिशति विष्णोः परमं पदम्; आम्नायते सम्यगभ्यस्यते मुनिभिरसौ, आम्नायते उपदिश्यते परधर्मोऽनेनेति आम्नायः 'वेदः';" समाम्नाय। भाः १०/४७/३३ श्लोक में 'समाम्नाय-शब्द में श्रीधरस्वामिपाद रचित टीका में "समाम्नायो वेदः"।

(गीता में १५/१५ श्लोक में अर्जुन के प्रति श्रीकृष्णोक्ति)—

"सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्॥"

अर्थात्, 'मैं ही सब जीवों के हृदय में ईश्वर रुप से अवस्थित हूँ; मुझसे ही जीव के कर्मफलानुसार स्मृतिज्ञान और स्मृतिज्ञान का नाश होता है, सब वेदों में एकमात्र मैं ही जानने योग्य हूँ तथा वेदान्त का रचियता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।'

(भाः १२/१३/१ श्लोक में शौनकादि ऋषियों के प्रति श्रीसूत-गोस्वामी की उक्ति)—

"यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-

र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।

ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो

यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

अर्थात्, 'ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्यस्तवों द्वारा जिनका स्तवन करते रहते हैं, अंग, पदक्रम और उपनिषदों के साथ सब वेद जिनका गान करते रहते हैं, समाधि अवस्था में तद्गत चित्त होकर और असुरगण जिनका अन्त नहीं जानते हैं, उन्हीं परमदेव श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ।'

(भाः ११/२१/४२-४३ श्लोक में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति)—"किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्। इत्यस्यां हृदयं लोके नान्यो मद् वेद कश्चन॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्। एतावन् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम्। मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिसिद्धय प्रसीदति॥"

अर्थात् 'कर्मकाण्ड में विधिवाक्यसमूह द्वारा श्रुति किसका विधान करती है, देवताकाण्ड में मन्त्रवाक्य समूह-द्वारा श्रुति किसको प्रकाशित करती है तथा परिणाम में निषेध करने के उद्देश्य से किस विषय का प्रस्ताव करती है? —इत्यादि वेद-वाणी का तात्पर्य मेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई भी नहीं जानता है। यह विषय अत्यन्त निगूढ़ होने पर भी मैं अभी तुम्हारे प्रति कृपा करके कह रहा हूँ कि, वह वेदवाणी कर्मकाण्ड में यज्ञरुप से मेरा ही विधान करती है, देवताकाण्ड में उन-उन देवताओं के रुप में मुझको ही प्रकाशित करती है और आकाशादि प्रपंच का उल्लेख करके पुनः जो उनका निराकरण (निवारण) करती है, उसकी भी मेरे अतिरिक्त पृथक् सत्ता नहीं है,—यह ही सब वेदों का तात्पर्य है; अर्थात् शब्दशास्त्र वेद परमार्थभूत वास्तव-वस्तु मेरा आश्रय लेकर जड़भेद को मायामात्र रुप से प्रस्तावित करके अन्त में उसका निषेध करने के बाद चिन्मात्र ब्रह्मज्ञान को भी अतिक्रम करके चिद्विलास वैकुण्ठ वैचित्र-वर्णन में परिणत (समाप्त) होकर ही प्रसन्न होते हैं।'

(हरिवंश में)—"वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये य हरिः सर्वत्र गीयते"॥ अर्थात् वेदों में, रामायण में, महाभारत में और पुराणों में आदि, मध्य तथा अन्त में, —सर्वत्र एकमात्र श्रीहरि ही कीर्तित होते हैं।

शिष्यों के बुद्धि विपर्यय (भ्रष्टता) और बोधाभाव को देख कर महाप्रभु का उनको दोपहर बाद आने का आदेश—

शुनिया प्रभुर व्याख्या हासे शिष्यगण।
केह बले,—''हेन बुझि वायुर कारण॥''२५६॥
शिष्यवर्ण बले,—''एवे केमत बाखान'?''
प्रभु बले,—''येन हय शास्त्रेर प्रमाण॥''२५७॥
विकाले सकल बुझाइव भाल मने॥२५८॥
आमिह विरहे गिया बसि' पुँथि चाइ।
विकाले सकले येन हइ एक ठाँइ''॥२५९॥

(२५६-२५९) **प. अनु०—**प्रभु की व्याख्या को सुनकर शिष्यगण हँस पड़े। किसी ने कहा,—"मालूम होता है कि वायु के कारण इनकी यह दशा हो रही है।" शिष्यों ने फिर से पूछा,—"अब आप कैसी व्याख्या कर रहे हैं?" तो प्रभु ने उत्तर दिया—"जैसा शास्त्र के प्रमाण से सिद्ध है।" प्रभु ने फिर से कहा, —"यदि तुम अभी इसे नहीं समझ पा रहे हो तो दोपहर बाद मैं तुम्हें भली भाँति समझा दूँगा। मैं भी अभी एकान्त मैं बैठकर ग्रन्थ

का अनुशीलन (विचार) करता हूँ, दोपहर बाद फिर सब एकत्रित होंगे।"

(२५७) **गौः भा**—छात्रों ने प्रभु से पूछा, —'आप ने अभी यह कैसी अद्‌भुत व्याख्या की हैं? प्रभु ने उत्तर में कहा, शास्त्रों का जिस प्रकार का सिद्धान्त है और जैसी संगति है, वैसी ही व्याख्या मैंने की है।'

(२५९) **गौः भा**—पुँथि चाइ वा चिन्ति, —ग्रन्थ का अनुशीलन करता हूँ।

छात्रों का प्रस्थान और गंगादास के पास जाकर प्रभु की कृष्णाभीष्ट व्याख्या और लीला का वर्णन तथा परामर्श–जिज्ञासा—

शुनिया प्रभुर वाक्य सर्व–शिष्यगण।
कौतुके पुस्तक बान्धि' करिला गमन॥२६०॥
सर्व–शिष्य गंगादास–पाण्डितेर स्थाने।
कहिलेन सब—यत ठाकुर बाखाने॥२६१॥
''एवे यत बाखानेन, कृष्ण–समीहित॥२६२॥
गया हैते यावत् आसियाछेन घरे।
तद्‌वधि कृष्ण बइ व्याख्या नाहि स्फुरे॥२६३॥
सर्वदा बलेन 'कृष्ण'—पुलकित–अंग।
क्षणे हास्य, हुंकार, करये बहु रंग॥२६४॥
प्रति–शब्दे धातु–सूत्र एकत्र करिया।
प्रतिदिन कृष्ण–व्याख्या करेन बसिया॥२६५॥
एबे तान बुझिवारे ना पारि चरित।
कि करिब आमि–सब?—बलह, पण्डित''!॥२६६॥

छात्रों के अभियोग को सुनकर गंगादास पण्डित का हास्य पूर्वक उनको सान्त्वना देना—

उपाध्याय–शिरोमणि विप्र गंगादास।
शुनिया सबार वाक्य उपजिल हास॥२६७॥
ओझा बले,—''घरे याह, आसिह सकाले।
आजि आमि शिक्षाइव ताँहारे विकाले॥२६८॥
भाल मत करि' येन पड़ायेन पुँथि।
आसिह विकाले सब ताँहार संहति॥''२६९॥

(२६०–२६६) **प. अनु०**—प्रभु के वचन सुनकर सब शिष्यों ने कौतुक से पुस्तकें बाँध लीं और चल दिये। सभी ने जाकर श्रीगंगादास पण्डित को जो कुछ व्याख्या प्रभु ने की थी, वह सब कह सुनाई और कहा कि,—अब तो निमाइ पण्डित जो कुछ भी व्याख्या करते हैं, उसमें सभी शब्दों का तात्पर्य श्रीकृष्ण ही सिद्ध करते हैं। जब से वे गया से लौटकर आये हैं, तब से श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई व्याख्या उनके मुख से निकलती ही नहीं। वे पुलकित शरीर से सर्वदा 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते रहते हैं। कभी हँसते हैं और कभी हुंकार करके अनेक प्रकार के भाव प्रदर्शित करते हैं। वे प्रतिदिन बैठकर धातु–सूत्र लगाकर प्रत्येक शब्द की व्याख्या 'कृष्ण' ही करते हैं। इस समय उनका चरित्र कुछ समझ में नहीं आ रहा हैं। पण्डित जी! अब हम क्या करें? आप ही बताइये!"

(२६२) **गौः भा**—समीहित,—(सम्+ईहित), सम्पूर्ण, अभीष्ट, अभिप्रेत, अभिलाषित, तात्पर्य।

(२६५) **गौः भा**—परम यौगिक–वृत्ति के सहयोग से प्रत्येक शब्द की धातु अर्थात् क्रियावाचक प्रकृति और उस–उस शब्द के प्रकृति–प्रत्यय–साधकसूत्र को मिलाकर उसकी कृष्णतात्पर्यपरक व्याख्या करते हैं।

(२६७–२६९) **प. अनु०**—उपाध्याय शिरोमणि विप्र गंगादास को शिष्यों की बात सुनकर हंसी आ गई। उपाध्याय बोले,—"आज तो तुम सब अपने घर जाओ, कल सवेरे आना। आज सांयकाल मैं उनको समझा दूँगा कि वे अच्छी प्रकार से पुस्तक को पढ़ावें। तुम सभी शाम को उनके साथ आ जाना।"

दोपहर बाद छात्रों के साथ प्रभु
का गंगादास के पास आगमन—

परम-हरिषे सबे बासाय चलिला।
विश्वम्भर-संगे सबे विकाले आइला॥२७०॥

(२७०) **प. अनु०**—सभी विद्यार्थी बड़े प्रसन्न होकर घर को चले गये और फिर सांयकाल श्रीविश्वम्भर के साथ आ गये।

प्रभु और गंगादास पण्डित
का परस्पर व्यवहार—

गुरुर चरण-धुलि प्रभु लय शिरे।
''विद्यालाभ इउ''—गुरु आशीर्वाद करे॥२७१॥

(२७१) **प. अनु०**—प्रभु ने आते ही श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों की रज को अपने मस्तक पर धारण किया। श्रीगुरुदेव ने भी "विद्यालाभ हो" कहकर आशीर्वाद दिया।

गंगादास द्वारा प्रभु की वंश-पाण्डित्य
के साथ व्यक्तिगत प्रशंसा—

गुरु बले,—''बाप विश्वम्भर! शुन वाक्य।
ब्राह्मणेर अध्ययन नहे अल्प भाग्य॥२७२॥
मातामह याँर—चक्रवर्ती नीलाम्बर।
बाप याँर—जगन्नाथ-मिश्रपुरन्दर॥२७३॥
उभय-कुलेते मूर्ख नाहिक तोमार।
तुमिओ परम-योग्य व्याख्याने टीकार॥२७४॥

(२७२-२७४) **प. अनु०**—गुरु जी बोले, —"वत्स विश्वम्भर! मेरी बात सुनो। ब्राह्मण के लिए अध्ययन कोई कम सौभाग्य की बात नहीं है। तुम्हारे नाना श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती और पिता श्रीजगन्नाथ मिश्र बड़े विद्वान् थे। तुम्हारे इन दोनों कुलों में कोई भी मूर्ख नहीं है। तुम भी टीका की व्याख्या करने में परम योग्य हो।

ब्राह्मण का सर्वोत्तम और एकमात्र कृत्य
अध्ययन प्रशंसा-द्वारा प्रभु को उपदेश—

अध्ययन छाड़िले से यदि भक्ति हय।
बाप-मातामह कि तोमार 'भक्त' नय? ॥२७५॥
इहा जानि' भालमते कर' अध्ययन।
अध्ययन हइले से वैष्णव-ब्राह्मण॥२७६॥
भद्राभद्र मूर्ख द्विज जानिबे केमने?
इहा जानि' 'कृष्ण' बल, कर' अध्ययने॥२७७॥
भालमते गिया शास्त्र बसिया पड़ाओ।
व्यतिरिक्त अर्थ कर',—मोर माथा खाओ॥''२७८॥

(२७५-२७८) **प. अनु०**—"यदि अध्ययन छोड़ने पर ही भक्ति होती है तो तुम्हारे पिता और नाना क्या भक्त नहीं थे! यह बात समझकर अच्छी तरह से अध्ययन करो। अध्ययन करने पर ही वैष्णव ब्राह्मण होता है। मूर्ख विप्र अच्छे बुरे को कैसा जानेगा? यह जानकर तुम 'कृष्ण' कहो और अध्ययन करो। अब तुम जाकर अच्छी तरह से शास्त्र पढ़ाने के लिए बैठो। यदि तुमने विपरीत अर्थ किया तो तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध्स है।"

(२७६) **गौः भा**—मेरे उपदेशानुसार पूर्वोक्त कथाओं का विचार करके तुम भगवद्भक्ति के विचार को अभी अलग रखकर शास्त्र के अध्ययन और अध्यापन में मन लगाओं। शास्त्रपाठ के फल से ही तुम या तुम्हारे छात्रगण प्रकृत वैष्णव-ब्राह्मण शब्दवाच्य होंगे। सांगवेद (वेदों के अंग के साथ) का अध्ययन करने पर ही अर्थात् स्वाध्याय-द्वारा ही वैष्ण ाव-ब्राह्मण हुआ जाता है। आचार्य से संस्कार प्राप्त न करके स्वाध्याय में उदासीन होने पर विष्णुभक्ति के निरुपण में (निर्णय) में) विशृंखलता आ सकती है।

(चैः चः मध्य २२श पः ६५)—"शास्त्रयुक्त्ये सुनिगण दृढ़ श्रद्धा याँर। 'उत्तम-अधिकारी' सेइ

तारये संसार॥"

(भः रः सिः पूः विः २य लः) —"शास्त्रयुक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढ़निश्चयः। प्रौढ़श्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः॥"

(२७७) **गौः भा—**भद्राभद्र,—भद्र (श्रेयः) और अभद्र (प्रेय), अच्छा–बुरा, हिताहित, शुभाशुभ, उचितानुचित।

शास्त्राध्ययन–वर्जित मूर्ख व्यक्ति, नाम का ब्राह्मण होने पर भी, अच्छा–बुरा विचार करने का उपयुक्त नहीं होता है इसलिए तुम्हारे आदेश से शास्त्राध्ययन में अनमाना होकर 'कृष्ण कृष्ण' कहने पर भी कोई व्यक्ति उचित–अनुचित को समझ नहीं पायेगा।

(२७८) **गौः भा—**व्यतिरिक्त,—विपरीत, विरुद्ध, स्वतनत्र, पृथक्, भिन्न।

'माया खाओ'—(बंगदेश में) शपथार्थापण–विशेष, सर्वनाश का कारण होगा।

परविद्यापति प्रभु की निर्भीक अंहकारोक्ति और आत्मसमर्थन—

प्रभु बले,—"तोमार दुइ–चरण–प्रसादे।
नवद्वीपे केह मोरे ना पारे विवादे॥२७९॥
आमि ये बाखानि सुत्र करिया खण्डन।
नवद्वीपे ताहा स्थापिवेक कोन् जन?॥२८०॥
नगरे बसिया एइ पड़ाइमु गिया।
देखि,—का'र शक्ति आछे, दूषुक आसिया?"२८१॥

(२७९–२८१) **प. अनु०—**तब प्रभु ने कहा,—"आपके श्रीयुगलचरणों की कृपा से नवद्वीप में कोई मुझे शास्त्रार्थ में परास्त नहीं कर सकता है। मैं जिस सूत्र की व्याख्या का खण्डन करुँ, उसकी स्थापना नवद्वीप में कौन कर सकता है? मैं अभी जाकर नगर में पढ़ाने को बैठता हूँ, देखूँ किसमें शक्ति है जो मेरी व्याख्या में दोष निकाले?"

(२७९–२८१) **गौः भा—**आदि १०म अः १६–१८ संख्या द्रष्टव्य है।

विश्वम्भर के वचन के सुनकर गंगादास का हर्ष और प्रभु का विदाई–ग्रहण—

हरिष हइला गुरु शुनिया वचन।
चलिला गुरुर करि' चरण वन्दन॥२८२॥

(२८२) **प. अनु०—**ऐसे वचन सुनकर श्रीगुरुदेव बड़े प्रसन्न हुये। उधर श्रीगुरुदेव के चरणों की वन्दना करके प्रभु चल दिये।

ग्रन्थकार द्वारा गंगादास पण्डित के महा–सौभाग्य की प्रशंसा—

गंगादासपण्डित–चरणे नमस्कार।
वेदपति सरस्वतीपति—शिष्य याँर॥२८३॥
आर किवा गंगादासपण्डितेर साध्य?
याँ'र शिष्य—चतुर्दशभुवन–आराध्य॥२८४॥

(२८३–२८४) **प. अनु०—**वेदपति और सरस्वती–पति जिनके शिष्य हैं, उन श्रीगंगादास पंडित के लिए इससे में मेरा नमस्कार है। श्रीगंगादास पंडित के लिए इससे बढ़कर साध्य और क्या हो सकता है कि चौदह भुवनों के आराध्यदेव उनके शिष्य हैं?

(२८३) **गौः भा—**वेदपति सरस्वती–पति, भाः ११/२१–४३ श्लोकों में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति द्रष्टव्य है।

(२८४) **गौः भा—**आर किवा साध्य? —दूसरी कोई श्रेष्ठतर अभीष्ट प्राप्तव्य वस्तु है क्या?

छात्रों से घिरे प्रभु की उपमा—

चलिला पड़ुया–संगे प्रभु विश्वम्भर।
तारका वेष्टित येन पूर्ण–शशधर॥२८५॥

(२८५) **प. अनु०—**जब प्रभु श्रीविश्वम्भर विद्यार्थियों के साथ चल रहे थे, तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों तारागणों से घिरे हुये पूर्ण

चन्द्रमा हों।

गंगातट पर एक नगरवासी के घर पर बैठकर प्रभु द्वारा स्वकृत व्याख्या में गर्वोक्ति और आत्मश्लाघा—

बसिया असिया नगरियार दुयारे।
याँहार चरण—लक्ष्मीहृदय—उपरे॥२८६॥
योगपट्ट—छान्दे वस्त्र करिया बन्धन।
सुत्रेर करये प्रभु खण्डन स्थापन॥२८७॥
प्रभु बले,—"सन्धिकार्य—ज्ञान नाहि या'र।
कलियुगे भट्टचार्य'—पदवी ताहार॥२८८॥
शब्द—ज्ञान नाहि या'र, से तर्क बाखाने।
आमारे त' प्रबोधिते नारे कोन् जने॥२८९॥
ये आमि खण्डन करि, ये करि, स्थापन।
देखि,—ताहा अन्यथा करुक कोन् जन?"॥२९०॥

(२८६-२९०) **प. अनु०**—जिनके श्रीचरण लक्ष्मी के हृदय के ऊपर शोभा पाते हैं, वे प्रभु एक साधारण नागरिक के द्वार पर आ बैठे और योगपट्ट की रीति से वस्त बाँधकर सूत्र का खण्डन और स्थापन करने लगे। प्रभु ने कहा,—"जिनको सन्धिक्रिया का ज्ञान नहीं है, कलियुग में उनकी पदवी है 'भट्टाचार्य'। और जिनको शब्द का भी ज्ञान नहीं है, वे तर्क शास्त्र की व्याख्या करते हैं, परन्तु मुझे प्रबोध देने में कोई भी समर्थ नहीं है। मैं जिसका खण्डन अथवा जिसका स्थापन कर रहा हूँ, देखुँ कौन उसका अन्यथा करता है?"

(२८७) **गौः भा—**योगपट्ट-छान्दे,—आदि १०म अः १२श संख्या का तथ्य द्रष्टव्य है।

(२८८-२९०) **गौः भा—**आदि १०म अः ४२-४५ एवं १२श अः २७१-२७५ संख्या द्रष्टव्य है।

प्रभु द्वारा की हुई व्याख्या के खण्डन में सभी पण्डितों की असमर्थता—

एइमत बले विश्वम्भर विश्वनाथ।
प्रत्युत्तर करिवेक, हेन शक्ति का'त?२९१॥
गंगा देखिवारे यत अध्यापक याय।
शुनिया, सबार अहंकार चूर्ण हय॥२९२॥
कार् शक्ति आछे विश्वम्भरेर समीपे।
सिद्धान्त दिवेक,—हेन आछे नवद्वीपे?२९३॥

(२९१-२९३) **प. अनु०**—इस प्रकार विश्वनाथ श्रीविश्वम्भर कह रहे थे, परन्तु ऐसी शक्ति किस में थी कि प्रत्युत्तर दे सकता? गंगा दर्शन के लिए जितने अध्यापक जा रहे थे, प्रभु के वचन सुन-सुनकर उन सभी का अंहकार चूर्ण होता जा रहा था। भला नवद्वीप में ऐसी शक्ति किसमें थी, जो प्रभु श्रीविश्वम्भर के सम्मुख अपने किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन कर सके?

रात्रि में बहुत समय तक प्रभु की अपने अनुसार व्याख्या—

एइमत आवेशे बाखाने' विश्वम्भर।
चारि—दण्ड रात्रि, तबु नाहि अवसर॥२९४॥

(२९४) **प. अनु०**—इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर आवेश से व्याखया में निमग्न थे। चार दण्ड रात्रि बीत चुकी थी, तब भी बन्द नहीं होते थे।

महाभाग्यवान् भागवत-पाठक रत्नगर्भ-आचार्य और उनके पुत्रों का परिचय—

दैवे आर एक नगरियार दुयारे।
एक महाभाग्यवान् आछे विप्रवरे॥२९५॥
'रत्नगर्भ—आचार्य' विख्यात ताँर नाम।
प्रभुर पितार संगी, जन्म—एक ग्राम॥२९६॥
तिन पुत्र ताँ'र कृष्णपद्—मकरन्द।
कृष्णानन्द, जीव, यदुनाथ—कविचन्द्र॥२९७॥

(२९५-२९७) **प. अनु०**—दैवयोग से एक

दूसरे नागरिक के घर में एक महाभाग्यवान् विप्रवर रहते थे। उनका नाम था 'रत्नगर्भ–आचार्य'। वे प्रभु के पिता के संगी थे और एक ही गाँव में दोनों जन्मे थे। उनके तीन पुत्र थे, जो श्रीकृष्ण के चरणकमल–मकरन्दसेवी थे। उनके नाम थे कृष्णानन्द, जीव और यदुनाथ कविचन्द्र।

(२९७) **गौः भा**—कृष्णानन्द,—गंगादास पण्डित के प्रधान छात्रविशेष थे (आदि ८म अः ३० संख्या) जिन्होंने जगाइ–माधाइ के उद्धार के बाद अपने साथियों के साथ प्रभु को गंगा में जल क्रीड़ा के समय योगदान किया था। (मध्य १३श अः ३३७), और 'नित्यानन्दगण'—चैः चः आदि ११श पः ५० संख्या द्रष्टव्य है।

जीव (पण्डित),—(अन्य ५म अः) "महाभाग्यवान जीव पण्डित उदार। याँर घरे नित्यानन्दचन्द्रेर विहार॥" (चैः जीव पण्डित नित्यानन्द–गुण गाय।" यह कृष्णलीला के समय ब्रज में इन्दिरा थे,—गौः गः १६९ श्लोक में देखें।

यदूनाथ–कविचन्द्र,—(अन्त्य ५म अः ७३५ संख्या में देखें) "यदुनाथकविचन्द्र—प्रेमरसमय। निरवधि नितयानन्द याँहारे सदय॥" (चैः चः आदि ११/३५) "महाभागवत यदुनाथ कविचन्द्र। याँहार हृदये नृत्य करे नित्यानन्द॥"

रत्नगर्भ–द्वारा भागवत–श्लोक–पठन—

भागवत परम आदरे द्विजवर।
भागवत–श्लोक पड़े करिया आदर॥२९८॥

(२९८) **प. अनु०**—विप्रवर रत्नगर्भ श्रीमद् भागवत का परम आदर करते थे। वह उस समय एक भागवत का श्लोक आदर के साथ पढ़ रहे थे।

याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों को कृष्णरुप का दर्शन तथाहि (भाः १०/२३/२२)—

''श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह—
धातुप्रवालटनवेषमनुव्रतांसे।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालक–कपोलमुखाब्जहासम्''॥२९९॥

(२९९) **गौः भा**—क्षुधार्त (भूख से पीड़ित) गोपबालकों द्वारा श्रीकृष्ण के पास भोजन की प्रार्थना करने पर उन्होंने उनको निकटवर्ती आंगिरस यज्ञानुष्ठान में रत याज्ञिक ब्राह्मणों के पास भेजा। ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण में मनुष्य बुद्धिवश उनको वापस लौटा दिया। गोपबालकों के निराश होकर वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ने उनको फिर से उन्हीं ब्राह्मणों की पत्नियों के पास भेजा। कृष्ण–गुण–श्रवण से आकृष्ट हुई उन विप्रपत्नियों ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण ने अन्न (भोजन) के लिए प्रार्थना की हैं, इस प्रकार श्रवण करते ही उनके लिए वे चारों प्रकार की बहुत–सी भोज्य सामग्री साथ में लेकर सागरगामिनी नदियों की भाँति अहैतुकी और अप्रतिहता भक्ति के सहयोग से पति, भ्राता आदि बन्धु–बान्धवों के निषेध करने पर भी श्रीकृष्ण के निकट पहुँची और उनका इस प्रकार से दर्शन किया—

अन्वय—श्यामं (श्यामवर्णं हिरण्यपरिधिं (हिरण्यवत् परिधिः परिधानं यस्य तं पीताम्बरमित्यर्थः) वनमाल्य–

वर्हधातुप्रवालटनवेषं (वनमाल्यैः बर्हैः मयूर–पुच्छैः धातुभिः प्रवालैश्च नटवद्वेषः यस्य तम्) अनुव्रतांयसे (अनुव्रतस्य सख्युः अंसे स्कन्धे) विन्यस्तहस्तं (विन्यस्तहस्तं (विन्यस्तः निहितः हस्तः येन तम्) इतरेण (अपरहस्तेन) अब्जं (लीलाकमलं) धुनानं (भ्रामयन्तं) कर्णोत्पलालक–कपोलमुखाब्ज्हासं(कर्णयो–

रुत्पले यस्य, अलकाः कपोलयोः यस्य, मुखाब्जे हासः यस्य, तादृशं 'साग्रजं श्रीकृष्ण ं (याज्ञिकविप्राणां) स्त्रियः ददृशुः' इति पूर्वेण ान्वयः।

अनुवाद—याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों ने देखा,—कृष्ण का वर्ण श्यामल है, उन्होंने स्वर्ण सादृश्य पीताम्बर धारण किया हुआ है। वे वनमाला, मोर मुकुट, धातु और प्रवालादि द्वारा नटवर वेष में सज्जित हैं। उन्होंने अपना एक (बायां) हाथ प्रिय सखा के कन्धे पर स्थापित किया हुआ है और दूसरे (दायें) हाथ से वे लीला-कमल (क्रीड़ा-कमल) नचा रहे हैं। उनके दोनों कानों में पद्म-युगल, दोनों कपोलों पर अलकावली और मुखपद्म पर सुमधुर हँसी शोभा पा रही है।

उस श्लोक के श्रवण से प्रभु की प्रेम-मूर्च्छा—

भक्तियोगे श्लोक पढ़े, परम-सन्तोषे।
प्रभुर कर्णेते आसि' करिल प्रवेशे॥३००॥
भक्तिर प्रभाव मात्र शुनिया थाकिया।
सेइक्षणे पड़िलेन मूर्च्छिया हइया॥३०१॥

(३००-३०१) **प. अनु०**—भक्तियोग के इस श्लोक को वे विप्र बड़े आनन्द से पढ़ रहे थे कि तभी यह श्लोक प्रभु के कानों में प्रवेश कर गया। भक्ति के प्रभाव को सुनने मात्र से ही प्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

छात्रों का विस्मय—

सकल पड़ुयावर्ग विस्मित हइला।
क्षणेक-अन्तरे प्रभु बाह्य-प्रकाशिला॥३०२॥

(३०२) **प. अनु०**—यह देखकर सभी विद्यार्थी बड़े विस्मित हो गये। क्षण-भर पीछे ही प्रभु को बाह्य-ज्ञान हो गया।

बाह्यज्ञान प्राप्त होने पर प्रभु की कृष्णनाम की तृष्णा और श्लोक पढ़ने के लिए विप्र से बारम्बार अनुरोध—

बाह्य पाइ' 'बल बल' बले विश्वम्भर।
गड़ागड़ि याय प्रभु धरणी-ऊपर॥३०३॥
प्रभु बले,—''बल बल'', बले विप्रवर।
उठिल समुद्र कृष्ण-सुख मनोहर॥३०४॥

(३०३-३०४) **प. अनु०**—बाह्य-ज्ञान प्राप्त होते ही प्रभु विश्वम्भर 'बोलो! बोलो! कहते हुये पृथ्वी पर लोट-पोट होने लगे। प्रभु ने कहा,—"बोलो! बोलो!" तो विप्रवर पुनः श्लोक पढ़ने लगे। तब तो मनोहर कृष्ण-सुख का सागर ही उमड़ चला।

प्रभु के अश्रु-कम्प-पुलक दर्शन से विप्र का श्लोक पाठ—

लोचनेर जले हैल पृथिवी सिंचित।
अश्रु-कम्प-पुलक-सकल सुविदित॥३०५॥
देखे विप्रवर, ताँर परम-आनन्द।
पड़े भक्ति-श्लोक भक्ति-सने करि' रंग॥३०६॥

(३०५-३०६) **प. अनु०**—प्रभु के अश्रुजल से पृथ्वी गीली हो गई, अश्रु-कम्प-पुलक प्रभु के श्री-अंगों में स्पष्ट रुप से प्रकाशित हो रहे थे। प्रभु को परम आनन्द में देखकर विप्रवर आनन्द से भक्ति सम्बन्धी श्लोकों को भक्तिपूर्वक पढ़ने लगे।

(३०५) **गौः भा**—सुविदित,—सु स्पष्ट भाव से प्रकाशित हुये।

प्रभु के आलिंगन-फल से विप्र का क्रन्दन और प्रेमबन्धन—

देखिया ताहान भक्तियोगेर पठन।
तुष्ट हइ' प्रभु ता'ने दिला आलिंगन॥३०७॥
पाइया वैकुण्ठनायकेर आलिंगन।
प्रेमे पूर्ण रत्नगर्भ हइला तखन॥३०८॥

प्रभुर चरण धरि' रत्नगर्भ कान्दे।
बन्दी हैला द्विज चैतन्येर प्रेम-फान्दे॥३०९॥

(३०७-३०९) **प. अनु०**—उनके भक्ति-युक्त पाठ को देखकर प्रभु ने आनन्दित होकर उनको अपना दिव्य आलिंगन प्रदान किया। श्रीवैकुण्ठनाथ के आलिंगन को पाकर रत्नगर्भाचार्य तत्क्षण प्रेम से परिपूर्ण हो गये और के प्रभु के श्रीचरणों को पकड़कर रोने लगे। वे विप्र श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रेम-बन्धन में आबद्ध हो गये।

(३०९) **गौः भा**—बन्दी प्रेमफान्दे, —प्रेमबन्धन में आबद्ध।

विप्र का श्लोकपठन और प्रभु
का उसके लिये पुनः अनुरोध—

पुनः पुनः पड़े श्लोक प्रेमयुक्त हैया।
''बल बल'' बले प्रभु हुंकार करिया॥३१०॥

(३१०) **प. अनु०**—यह दृश्य देखकर सब नागरिकों को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे सभी प्रभु को प्रणाम करने लगे।

नागरिकों का विस्मय और प्रणाम—

देखिया सबार हैल, अपरुप-ज्ञान।
नागरिया सब देखि' करे परणाम॥३११॥

(३११) **प. अनु०**—गदाधर ने कहा, —"बस! अब और मत पढो।" फिर सभी प्रभु श्रीविश्वम्भर को घेराकर बैठ गये।

श्लोकपठन में प्रभु के मर्म को जानने
वाले गदाधर की निषेधाज्ञा—

''ना पड़िह आर'' बलिलेन गदाधर।
सबे बसिलेन बेड़ि' प्रभु-विश्वम्भर॥३१२॥

(३१२) **प. अनु०**—गदाधार ने कहा,-"बस! अब और मत पढ़ो।" फिर सभी प्रभु श्रीविश्वम्भर को घेरकर बैठ गये।

प्रभु को बाह्यज्ञान की प्राप्ति और अपने
किये हुए अनुष्ठान की जिज्ञासा—

क्षणेके हइला बाह्यदृटि गौर-राय।
''कि बल, कि बल''—प्रभु जिज्ञासे सदाय॥३१३॥
प्रभु बले,—''कि चांचल्य करिलाम आमि?''
पड़ुया-सकल बले,—''कृत्यकृत्य-तुमि॥३१४॥

(३१३-३१४) **प. अनु०**—कुछ ही क्षणों में जब श्रीगौरराय को बाह्य-ज्ञान हो गया, तो भी वे 'क्या कहते हो' 'क्या कहते हो' बस, यही पूछते रहे। प्रभु ने कहा,—"ओह! आज मैंने क्या चंचलता की?" विद्यार्थी बोले, —"आप धन्य है, धन्य हैं।

(३१४) **गौः भा**—कृतकृत्य,—कृतकार्य, धन्य और कृतार्थ, सिद्धमनोरथ, सफलचेष्ट, कृतविद्य।

उसके उत्तर में छात्रों के द्वारा अपनी
वर्णना-शक्ति का ज्ञापन—

कि बलिते पारि आमा' सबार शक्ति।''
आप्तगणे निवारिल,—''ना करिह स्तुति''॥३१५॥

(३१५) **प. अनु०**—हम क्या कह सकते हैं—हममें शक्ति ही कहाँ है!"—यह सुनकर प्रभु ने अपने स्वजनों का निवारण किया कि—"ऐसी स्तुति मत करो।"

छात्रों के साथ प्रभु का गंगातट पर
गमन और कृष्ण-प्रसंग—

बाह्य पाइ' विश्वम्भर आपना' सम्बरे।
सर्व-गणे चलिलेन गंगा देखिवारे॥३१६॥
गंगा नमस्करि' गंगाजल निला शिरे।
गोष्ठीर सहित बसिलेन नन्देर नन्दन॥३१८॥

सेइमत शचीर नन्दन गंगातीरे।
भक्तेर सहित कृष्णप्रसंगे बिहरे॥३१९॥

(३१६-३१९) **प. अनु०**—बाह्य-ज्ञान आने पर श्रीविश्वम्भर ने अपने भाव का संवरण किया और सबके साथ गंगा दर्शन के लिए चल पड़े। वहाँ जाकर उन्होंने श्रीगंगा को नमस्कार किया, गंगाजल को अपने तट पर बैठे गये। जैसे गोपों से घिरे हुये नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने यमुना के तटपर नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ की थीं, वैसे ही भक्तों के साथ श्रीशचीनन्दन गंगा के तट पर श्रीकृष्ण-प्रंसग का आनन्द लेने लगे।

(३१९) **गौः भा**—कालिन्दीतट पर श्रीनन्दनन्दन ने जैसे गोपियाँ के साथ विहार किया था, गंगातट पर शचीनन्दन ने भी उसी प्रकार शिष्यों से घिरकर कृष्ण के नाम, रुप, गुण और लीला कथा का कीर्त्तन किया। अर्वाचीन (मूर्ख) गौर-नागरीगण गौरसुसन्दर की कृष्णप्रसंग में कालयापन रुप गौरलीला के विरुद्ध उनके नागररुप की जो कल्पना करते हैं, उसका प्रतिषेध (निषेध) करने के लिए ग्रन्थकार ने 'कृष्णप्रसंग' शब्द द्वारा गौरसुन्दर की कृष्णकीर्त्तन-लीला का वर्णन किया है।

प्रभु का अपने घर जाकर
भोजन के बाद विश्राम—

कतक्षणे सबारे विदाय दिया घरे।
विश्वम्भर चलिलेन आपन-मन्दिरे॥३२०॥
भोजन करिया सर्वभुवनेर नाथ।
योगनिद्रा-प्रति करिलेन दृष्टिपात॥३२१॥

(३२०-३२१) **प. अनु०**—कुछ देर बाद सबको अपने-अपने घर के लिए विदा करके श्रीविश्वम्भर भी अपने घर चले आये। वहाँ सब लोकों के स्वामी श्रीविश्वम्भर ने भोजन करके योगनिद्रा के प्रति दृष्टिपात किया।

प्रातःकाल में छात्रों का ग्रनथानुशीलन
के लिये आगमन—

पोहाइल निशा,—सर्व-पड़ुयार गण।
आसिया बसिया पुँथि करिते चिन्तन॥३२२॥

(३२२) **प. अनु०**—रात्रि व्यतीत होने पर सब विद्यार्थी पुस्तक पढ़ने के लिए फिर आकर बैठ गये।

गंगास्नान के बाद प्रभु का वहाँ आगमन,
और प्रतिशब्द की कृष्णपरक व्याख्या—

ठाकुर आइला झाट करि' गंगास्नान।
बसिया करेन प्रभु पुस्तक व्याख्यान॥३२३॥
प्रभुर ना स्फुरे कृष्ण-व्यतिरेक आन।
शब्दमात्रे कृष्णभक्ति करये व्याख्यान॥३२४॥

(३२३-३२४) **प. अनु०**—प्रभु भी गंगास्नान करके झट आ गये और बैठकर पुस्तक पढ़ाने लगे। किन्तु प्रभु के मुख से 'कृष्ण' के अतिरिक्त अन्य कुछ ही करने लगे।

(३२४) **गौः भा**—गौरसुन्दर पूर्ण-शुद्ध-नित्य-मुक्त-चिन्मयी परम-मुख्या विद्व दूरुढ़ि-वृति से प्रत्येक शब्द की कृष्णभक्तिपरक व्याख्या ही करते थे। कृष्ण के अतिरिक्त और दूसरी वस्तु के अभिनिवेश वश किसी शब्द का अन्य अर्थ उनकी कृष्ण कीर्तनरत जिह्वा से व्याख्यान नहीं हुआ।

छात्रों के प्रश्न के उत्तर में प्रभु द्वारा
धातु की कृष्ण-शक्ति रुप से व्याख्या—

पड़ुया सकले बले,—"धातु-संज्ञा कार्?"
प्रभु बले,—"श्रीकृष्णेर शक्ति नाम यार"॥३२५॥

(३२५) **प. अनु०**—सभी विद्यार्थियों ने पूछा,—"धातु-संज्ञा किस की है?" तो प्रभु ने उत्तर दिया,—"श्रीकृष्ण की शक्ति की ही।"

(३२५) **गौः भा**—छात्रों के पूछने पर

उसके उत्तर में प्रभु ने कहा,—वाच्य–स्वरुप श्रीकृष्ण की परा, अन्तरंगा या स्वरुप शक्ति जैसे श्रीकृष्ण के औदार्य, है, इसलिए वह शक्ति और शक्तिमान दोनों एक दूसरे स अभिन्न रुप में संयुक्त हैं, वैसे ही योगवृत्ति से प्रत्येक वाचक–शब्द की प्रकृति या धातु भी उसके अभ्यंतर में अच्छेद्यभाव से संयुक्त रहकर उसके अर्थ या शक्ति को प्रकाशित करती है।

प्रभु की स्वकृत व्याख्या में अहंकारोक्ति—

धातुसूत्र बाखानि,—शुनह भाइगण!
देखि, कार शक्ति आछे, करुक खण्डन?३२६॥

(३२६) **प. अनु०**—सुनो भाइयों! अब मैं धातु सूत्र की व्याख्या करता हूँ—देखूँ किसमें शक्ति है जो खण्डन करे?

प्राण जैसे देह का, कृष्णशक्ति–स्वरुप धातु भी उसी प्रकार से शब्द का प्राण या शक्ति है—

यत देख राजा—दिव्यदिव्य–कलेवर।
कनकभूषित, ग्रनथ–चन्दने, सुन्दर॥३२७॥
'यम लक्ष्मी याहार वचने' लोके कय।
धातु–बिने शुन तार से अवस्था हय॥३२८॥
कोथा याय सर्वगिर सौन्दर्य चलिया।
का'रे भस्म करे, का'रे एड़ेन पुँतिया॥३२९॥

(३२७–३२९) **प. अनु०**—जितने भी राजाओं को तुम देखते हो, उनके बड़े सुन्दर दिव्य–दिव्य कलेवर हैं, वे स्वर्ण अलंकारों से भूषित हैं तथा उनके अंगों में चन्दन–सुगन्ध लगा हुआ है। उनके लिए लोग कहते हैं, कि 'धर्मराज और लक्ष्मी इन पर अपना अनुग्रह प्रकट कर रहे हैं' उन राजाओं की भी धातु के बिना जो दशा होती है, उसे सुनो! बिना धातु (प्राण) के उनके सब अंगों का सौन्दर्य न जाने कहाँ चला जाता है। फिर किसी को जलाकर भस्म कर देते हैं तो किसी को जमीन में दफना कर छोड़ देते हैं।

(३२८) **गौः भा**—यम,—धर्म के अधिष्ठातृ–देव, धर्मराज। लक्ष्मी—धन, श्री, शोभा या सम्पद् की अध्ष्ठात्री देवी। वचने,—कृपा या अनुग्रह प्रकाशित करते हैं।

धातु,—प्राण, जीवन, चैतन्य, कृष्ण की पराशक्ति का अणु–अंश।

अन्वय–व्यतिरेकभाव से धातु कृष्णशक्तिरुप से ही आदर की पात्र—

सर्वदेहे धातुरुपे वैसे कृष्णशक्ति।
ताहा सने करे स्नेह, ताहाने से भक्ति॥३३०॥

(३३०) **प. अनु०**—सबकी देह में धातुरुप से श्रीकृष्ण की शक्ति ही विराजित है। उसी के साथ सब स्नेह करते हैं और उसी के साथ आदर–भक्ति करते हैं।

अज्ञरुढ़ि–वृत्याश्रित अध्यापकों की मूर्खता–वर्णन के प्रसंग में छात्रों को दृष्टान्त द्वारा धातु–शब्द के अर्थ का व्याख्या—

भ्रम–वशे, अध्यापक ना बुझये इहा।
'हय' 'नय' भाइसब! बुझ मन दिया॥३३१॥
एवे याँ'रे नमस्करि' करि मान्य–ज्ञान।
धातु गेले, ताँ'रे परशिले करि स्नान॥३३२॥
ये–बापेर कोले पुत्र थाके महा सुखे।
धातु गेले से–इ पुत्र अग्नि देय मुखे॥३३३॥
धातु–संज्ञा—कृष्णशक्ति बल्लभ सबार।
देखि,—इहा दूषुक,—आछये शक्ति कार?३३४॥

(३३१–३३४) **प. अनु०**—अध्यापकगण भ्रम के कारण इसे समझ नहीं पाते हैं। भाइयों! जरा मन से सोचो कि यह बात है या नहीं कि इस समय हम जिनको माननीय

समझकर नमस्कार करते हैं; धातु के चले जाने पर, उन्हीं को छू लेने पर हम स्नान करते हैं। जिस बाप की गोद में बेटा बड़े सुख से रहता है, धातु के चले जाने पर, उसी बाप के मुख में बेटा आग देता है। यह धातु-संज्ञा श्रीकृष्ण की शक्ति है, जो कि सबको प्रिय है। देखूँ—किसमें शक्ति है, जो इस व्याख्या में दोष निकाले?

(३३०-३३४) **गौः भा—**सर्वदेहे..... भक्ति एवं 'धातु'-संज्ञा.....सबार, आदि ७म अः५४-५५ संख्या द्रष्टव्य है।

"सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः। इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभ तयैव हि॥ तद् राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम्। न तथा ममतालम्बि पुत्रवित्तगृहादिषु॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम। यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम्॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत् प्रियः। यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी॥ तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्। तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मामया॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च। भागवद्रुपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किञ्चन॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः। तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रुप्यताम्॥"

अर्थात् 'हे राजन्, सब प्राणियों को अपनी आत्मा ही 'परम प्रिय' है; पुत्र धनादि दूसरी-दूसरी वस्तुएँ आत्मा के प्रिय होने के कारण ही 'प्रिय-तर' हो जाती हैं। हे राजेन्द्र! इसी कारण देहधारियों का अपने-अपने अहंकारास्पद (अहंकार के आश्रय) निज आत्मा से जैसा स्नेह होता है, वैसा स्नेह ममतालम्बन (अपने कहे जाने वाले) पुत्र, धन-गृहादि से उतना नहीं होता है। जो पुरुष शरीर को ही आत्मा मानते हैं, उनको अपना शरीर जैसा प्रिय है, शरीर के सम्पर्क ये युक्त पुत्रादि वैसे प्रिय नहीं हैं। यद्यपि देह ममता-भाजन है, तथापि वह आत्मा क तरह प्रिय नहीं हो सकती है; क्योंकि देह के जीर्ण (वृद्ध) होकर मृत्यु के निकटस्थ होन पर भी जीवित रहने की आशा बलवती बनी रहती है। इसलिए सभी देहधारियों की आत्मा ही प्रियतम है, आत्मा के निमित्त से चराचर सब जगत् प्रिय हो जाता है। हे राजन्! तुम इन श्रीकृष्ण को समस्त देहधारियों के आत्माओं का 'आत्मा' जानों, वे जगत् के हित के लिए स्वरुप-शक्ति चिन्मयी माया-द्वारा देही (चिन्मय शरीरधारी) की भाँति प्रकाश पा रहे हैं। वस्तुतः, जो पुरुष यह जानते हैं कि श्रीकृष्ण ही जगत् के कारण हैं, उनके सम्मुख स्थावर-जंगम समस्त जगत् भगवद्रुप से ही प्रकाश पाता है; वे निश्चित रुप से जानते हैं, कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। हे राजन्! समस्त वस्तुओं की परम सत्ता अपने कारण में ही अवस्थित रहती है, भगवान् श्रीकृष्ण उन समस्त कारणों के भी कारण हैं। तब बताइये कि श्रीकृष्ण के अतिरिक्त दूसरी वस्तु क्या है, उसका निरुपण कीजिए।'

इस प्रकार शक्ति के आश्रय शब्द-विग्रह श्रीकृष्ण का भजन करने के लिए सबसे अनुरोध—

एइमत पवित्र पूज्य ये कृष्णेर शक्ति।
हेन कृष्णे, भाइसब! कर' दृढ़ भक्ति॥३३५॥

(३३५) **प. अनु०—**इस प्रकार से जिन

श्रीकृष्ण की शक्ति पूज्य और पवित्र है, उन श्रीकृष्ण की, हे भाइयों! तुम सब दृढ़ भक्ति करो।

श्रीकृष्णनाम–श्रवण–कीर्त्तन–ध्यान का उपदेश और श्रीकृष्णचरण सेवन का माहात्मय—

बल कृष्ण, भज कृष्ण, शुन कृष्णनाम।
अहर्निश श्रीकृष्णचरण कर' ध्यान॥३३६॥
याँहार चरणे दुर्वा–जल दिले मात्र।
कभु नहे यमेर से अधिकार–पात्र॥३३७॥
अघ–वक–पूतनारे ये कैला मोचन।
भज भज सेइ, नन्दनन्दन–चरण॥३३८॥
पुत्रबुद्धि छाड़ि' अजामिल से स्मरणे।
चलिला वैकुण्ठ, भज से कृष्णचरणे॥३३९॥
याँहार चरण सेवि' शिव—दिगम्बर।
ये–चरण सेविवारे लक्ष्मीर आदर॥३४०॥
अनन्त ये चरण–महिमा–गुण गाय।
दन्ते तृण करि' भज हेन कृष्ण–पा'य॥३४१॥
दन्ते तृण करि' भज हेन कृष्ण–पा'य॥३४१॥

(३३६–३४१) **प. अनु०—**कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो और कृष्णनाम ही सुनो। दिन रात श्रीकृष्णचरणों का ही ध्यान करो। जिन श्रीकृष्ण के चरणों में ᳶऔर जल मात्र चढ़ाने वाले पर यमराज का अधिकार नहीं रह जाता है और जिन्होंने अघासुर, बकासुर तथा पूतना तक का उद्धार कर दिया, उन नन्दानन्दन के श्रीचरणों का भजन करो। पुत्रबुद्धि छोड़कर जिनका स्मरण करने से अजामिल वैकुण्ठ को चला गया, उन श्रीकृष्ण के चरणों को भजो। जिनके चरणों की सेवा में लक्ष्मी का बड़ा ही आदर है और अनन्तदेव जिनके चरणों की महिमा के गुणों को ही गाते रहते हैं, दांतों में तृण लेकर (दीनता से) उन श्रीकृष्ण के चरणों का भजन करो। पुत्रबुद्धि छोड़कर जिनका स्मरण करने से अजामिल वैकुण्ठ को चला गया, उन श्रीकृष्ण के चरणों को भेजो। जिनके चरणों का सेवन करके शिवजी दिगम्बर हैं, जिन चरणों की सेवा में लक्ष्मी का बड़ा ही आदर है और अनन्तदेव जिनके चरणों की महिमा के गुणों को ही गाते रहते हैं, दांतों में तृण लेकर (दीनता से) उन श्रीकृष्ण के चरणों का भजन करो।

(३३६) **गौः भा—**कृष्णतेर अन्य समस्त सिद्धान्त–विरुद्ध प्रजल्प और रसाभासादि का परित्याग करके सब समय निष्कपट भाव से सेवोन्मुख–जिह्वा से कृष्णनाम उच्चारण करो। बाह्यजगत् की वस्तुओं को भोक्ता–अभिमान से भोग्य समझकर भोग करने की बजाय स्वयं को कृष्ण का नित्यसेवोपकरण जानकर निरन्तर कृष्ण के शुद्ध नामकीर्तन के अनुकूल सेवानुष्ठानादि के सम्पादन में नियुक्त रहो। निष्कपट भाव से सेवोन्मुख कानों द्वारा, भोगपर अनित्य अचित् शब्द–कोलाहल के सुनने से जो आत्मेन्द्रिय–तर्पणेच्छा उठती है, उसका परित्याग करके कृष्णाभिन्न शब्द–ब्रह्म कृष्णनाम–कथा का श्रवण करो। इन्द्रियजन्य ज्ञान से अनित्य सुख प्राप्ति की आशा का विसर्जन करके निरन्तर सेवोन्मुख शुद्धचित्त से श्रीकृष्ण पादपद्मों का स्मरण करो।

श्रीहरि के श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण की कर्तव्यता,—(भाः १/२/१४ श्लोक में शौनकादि के प्रति श्रीसूतोक्ति)—

"तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यशः॥"

अर्थात् 'भक्तिप्रधान धर्म ही चरम अनुष्ठान के योग्य है, इसलिए एकाग्र मन से भक्तवत्सल वासुदेव का ही श्रवण, कीर्तन, मनन और अर्चन करना चाहिये।'

(भाः २/१/५ श्लोक में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकोक्ति)—

'तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीवश्वरः। श्रोतव्यः कीर्तिव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम्॥"

अर्थात् 'इसलिए हे भरतवंशावतंस! जो व्यक्ति अभयपद (मोक्ष) की आकांक्षा रखते हैं, उनके लिए आवश्यक है कि वे सर्वात्मा भगवान् परमेश्वर श्रीहरि का ही नाम श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें।

(भाः २/२/३६ श्लोक में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकोक्ति)—

"तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥"

अर्थात् 'इसलिए हे राजन्! सर्वात्मा के द्व ारा सर्वदा भगवान श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना कर्तव्य है।"

(३३७) **गौः भा—**(भाः ६/१/१९ श्लोक में परीक्षित के प्रति श्रीशुकोक्ति)—"सकृन्मनः कृष्ण

पदारविन्द-योर्निवेशितं तदगुणराशि यैरिह। न ते यमं पाश भृतश्च तद्भटान् स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्ण- निष्कृताः॥"

अर्थात् 'जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के गुणानुवाद में अनुरक्त चित्त को उनके पादपद्मों में एक बार भी लगा देते हैं, तो उसी समय उनकी पूर्व पापराशि का प्रायश्चित हो जाता है; फलतः वे स्वप्न में भी यमराज और उनके पाशधारी यमदूतों को नहीं देखता है।'

(नृसिंहपुराण में)—"अहममरगणर्च्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः। हरिगुरुविमुखान्, प्रशास्मि मर्त्यान् हरिचरणप्रणतान् नमस्करोमि॥" (स्कन्द पुराण में)—"न ब्रह्मा न शिवाग्नीन्द्रा नाहं नान्ये दिवौकसः। शक्तास्तु निग्रहं कर्त्तुं वैष्णववानां महात्मनाम्॥"

(३३८) **गौः भा—**अघासुर का उद्धार, —(भाः १०/१२/३८-३९ श्लोक में परीक्षित के प्रति श्रीशुकोक्ति)—

"नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः। अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यंत्वसतांः सुदुल्लर्भम्॥ सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्। स एवनित्यात्मसुखानुभूत्यभि-

व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥"

अर्थात् 'हे राजन्! अघासुर ने भी जो श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से ही पापों से मुक्त होकर असज्जन के लिए सुदुर्लभ सारुप्य मोक्ष की प्राप्ति की, यह स्वरुप शक्ति द्वारा नर बालक की लीला करने वाले मायाधीश महेश्वर, सबके परमविधाता परावर (सर्वश्रेष्ठ) भगवान् श्रीहरि के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं। जिनकी मूर्ति की केवल मनोमयी प्रतिमा ने मात्र एक बार प्रह्लादादि भक्तों के हृदय में गाढ़भाव से स्थापित होकर ही उनको भागवती गति प्रदान की, वे ही भगवान् श्रीकृष्णसाक्षात् स्वयं हृदय में प्रविष्ट होकर जो अघासुर को भी भागवती गति प्रदान कर रहे हैं, उसमें फिर विस्मय की क्या बात है? भगवान् श्रीकृष्ण के अपने अन्तरंग नित्य आत्म-सुखानुभव से यह बहिरंगा माया सर्वदा ही अस्वीकृत है अर्थात् पश्चाद्देश में (पीछे-पीछे) छाया रुप से विलज्जितभाव से पराजित होकर अवस्थित है।'

बकी (पूतना) का उद्धार,—(भाः १०/६/३५ और ३८ श्लोक में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकोक्ति)—"पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना। जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम्॥"

अर्थात् 'हे राजन्! बकी (पूतना) सब लोगों के बच्चों को मारने वाली और रुधिर

पीने वाली राक्षसी थी, किन्तु उसने हत्या करने का वासना लेकर भी भगवान् श्रीहरि को स्तन पान कराकर सद्गति प्राप्त की।'

"यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्। कृष्ण-

भुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः॥

अर्थात् 'भगवान् श्रीकृष्ण ने जिसका स्तन पान किया, उस राक्षसी ने भी जब जननी की गति अर्थात् वैकुण्ठ को प्राप्त किया, तब उन्होंने जिन गायों और गोपियों के स्तनदुग्ध का पान किया है, वे तो मातृसदृशी सद्गति प्राप्त करेंगी ही, उसमें और कुछ कहने की बात ही क्या है?'

'अघ-बक-पूतनारे ये कैला मोचन'—'अर्थात् जो 'हतारि गतिदाक'; यथा भः रः सिः—दः विः १म लः—"पराभवं फेनिल वक्त्रतांच बन्धञ्च भीतिंच मृतिंच कृत्वा। पवर्गदतापि शिखण्डमौले त्वं पात्रवाणामपवर्गदोऽसि॥"

अर्थात् 'हे मोरमुकुटधारी कृष्ण! अपने शत्रुओं को पराजय, फेनयुक्त मुख, बन्धन, भय और मृत्यु—यह पवर्ग (पंचवर्ण-पूर्वदण्ड) प्रदान करके भी परिणाम में उनको अपवर्ग (मुक्ति) की प्रदान की है।'

कृष्ण द्वारा बक और अघ-वध भाः १०म स्कः ११श अः ४७-५३ और १२श अः १३-३५ संख्या द्रष्टव्य है।

(३३९) **गौः भा**—पापाचारपरायण अजामिल ने प्रथमतः पुत्रनाम-संकेत से 'नारायाण'-शब्द का उच्चारण किया था, किन्तु जब भोग्यपुत्र की चिन्ता को छोड़ दिया था और शब्दोच्चारण के साथ की साथ शब्दाभिन्न शब्दी श्रीनारायण का स्मरण किया था, उस समय कृष्णस्मृति के कारण नामाभास के प्रभाव से वे मुक्ति को प्राप्त करके मायातीत अप्राकृत अतीन्द्रिय वैकुण्ठ-राज्य को प्राप्त करने में समर्थ हुये थे। इसलिए उन्हीं अधोक्षज श्रीकृष्ण के पादपद्मों की ही नित्य निरन्तर सेवा करो।

अजामिलोपाख्यान—भाः षष्ठ स्कः १म अः २१-६८, २य अः और ३य अः सम्पूर्ण द्रष्टव्य हैं।

(३४०) **गौः भा**—(ब्रह्मवैवर्त में)—"यत्पा-

दोदकमाधाय शिवः शिरसी नृत्यति। यन्नाभि-विक्षोभाद्ब्रह्माण्डोद्भवसंक्षयौ। तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्रयं यदीच्छति॥"

अर्थात्, 'जिनके पादोदक को मस्तक पर धारण करके पंचशिख शिव नृत्य करते रहते हैं, जिनके नाभिकमल से लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, जिनकी इच्छाशक्ति के विक्षोभ (चांचल्य) से ब्रह्माण्ड का सृजन और लय होता रहता है, यदि उत्कृष्ट स्थान प्राप्ति की इच्छा है, तो श्रीगोविन्द के पदारविन्द की आराधना करो।'

मृन्यु न आने तक सर्वाश्रय कृष्णपादपद्मों का भजन करने के लिए सबसे अनुरोध—

"यावत् आछये प्राण, देहे आछे शक्ति।
तावत् करह कृष्णपादपद्मे भक्ति॥३४२॥
कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण प्राण धन।
चरणे धरिया बलि,—कृष्णे देह' मन'॥"३४३॥

(३४२-३४३) **प. अनु०**—जब तक इस देह में प्राण हैं, देह में शक्ति है, तब तक श्रीकृष्ण के पादपद्मों की भक्ति कर लो। श्रीकृष्ण ही माता हैं, श्रीकृष्ण ही पिता हैं और श्रीकृष्ण ही प्राण-धन हैं। इसलिए मैं तुम्हारे पाँव पकड़कर कहता हूँ कि तुम श्रीकृष्ण में अपना मन लगाओ।

(३४२) **गौः भा**—(भाः ११/९/२९ श्लोक में यदुराज के प्रति अवधूत ब्राह्मण की उक्ति)—

"लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्तु

मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्युयावन्।

निःश्रेयसाय विषयः जन्मों के बाद इस अत्यन्त दुर्लभ परमार्थप्रद, किन्तु अनित्य मानव जन्म को प्राप्त करके धीर व्यक्ति को जब तक मृत्यु दोबारा निकटस्थ न हो, तब तक क्षणमात्र का भी विलम्ब न करके चरम करण कल्याण प्राप्ति के लिए करेंगे।'

(३४३) **गौः भा—**(चैतन्यचन्द्रामृत ९० श्लोक में)'—"दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि। हे साधवः सकलमेव विहाय दूराद्गौरांगचन्द्र-चरणे कुरुतानुरागम्॥"

अर्थात्, 'हे सज्जनवृन्द, मैं दांतों में तिनका धारण करके पद्मयुगल में गिरकर दैन्य के साथ प्रार्थना करता हूँ कि आप सब प्रकार के धर्मों का दूर से परित्याग करके गौरांगचन्द्र के चरणों में अनुरक्त हो जाओ।'

(भाः ७/१/३१ श्लोक में युधिष्ठिर के प्रति देवर्षि नारद की उक्ति)—"तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।" अर्थात् 'इसलिये जिस किसी भी उपाय से कृष्ण में मन को लगा देना चाहिये।'

प्रभु द्वारा अशेष प्रकार के भाव से अपने से अभिन्न कृष्णमहिमा का कीर्तन—

दास्यभावे कहे प्रभु आपन-महिमा।
हइल प्रहर दुइ, तबु नाहि सीमा॥३४४॥

(३४४) **प. अनु०—**प्रभु दास्य भाव से स्वयं ही अपनी महिमा का वर्णन कर रहे थे। दोपहर हो आयी, तब भी वर्णन का अन्त नहीं हुआ।

(३४४) **गौः भा—**सीमा,—अन्त, शेष, क्षान्ति, समाप्ति।

उसके श्रवण से छात्रों का विस्मय और मोह—

मोहित पड़ुया-सब शुने एकमने।
द्विरुक्ति करिते का'रो ना आइसे वदने॥३४५॥

(३४५) **प. अनु०—**सभी विद्यार्थी एकाग्रमन से ऐसे मोहित होकर उसे सुनते रहे कि किसी के मुख से उत्तर-प्रत्युत्तर की कोई बात ही न निकली।

छात्रगण निश्चय ही कृष्ण के निज पार्षद—

से-सबे कृष्णेर दास,—जानिह निश्चय।
कृष्ण याँ'रे पड़ायेन, से कि अन्य हय?३४६॥

(३४६) **प. अनु०—**यह निश्चय समझ लो कि वे सब विद्यार्थी श्रीकृष्ण के ही निज दास थे। जिनको श्रीकृष्ण स्वयं पढ़ा रहे हैं, भला वे क्या दूसरे कोई हो सकते हैं।

(३४६) **गौः भा—**परवर्त्ती ३९७ संख्या द्रष्टव्य है।

प्रभु को बाह्यज्ञान की प्राप्ति और लज्जा-बोध—

कतक्षणे बाह्य प्रकाशिता विश्वम्भर।
चाहिया सबार मुख—लज्जित-अन्दर॥३४७॥

(३४७) **प. अनु०—**कुछ समय बाद प्रभु विश्वम्भर को बाह्यज्ञान का प्रकाश हुआ और सबके मुख की ओर देखकर वे मन-ही-मन लज्जित हो गये।

प्रभु के पूछने पर छात्रों द्वारा प्रभुकृत व्याख्या का सत्यत्व ज्ञापन—

प्रभु बले,—''धातु-सूत्र बाखानिलुँ केन?''
पड़ुया-सकला बले,—''सत्य अर्थ येन॥३४८॥
ये-शब्दे ये अर्थ तुमि करिला बाखान।
कार् बापे ताहा करिबारे पारे आन?३४९॥
यतेक बाखान' तुमि,—सब सत्य हय।

सबे ये उद्देशे पड़ि,—तार अर्थ नय॥''३५०॥

(३४८–३५०) **प. अनु०**—प्रभु ने पूछा, —"धातु–सूत्र की व्याख्या कैसी हुई?" सब विद्यार्थी बोले,—अर्थ तो बहुत सही हुआ है। जिस शब्द का जो अर्थ आपने बताया है, उसको उलट देने की समार्थ्य किसके बाप में है? जो कुछ आपने कहा है, वह सब सत्य ही है, परन्तु हम जिस उद्देश्य से पढ़ते हैं, उसके अनुसार यह अर्थ नहीं है।"

(३४८) **गौः भा**—केन,—कैसे, किस प्रकार। येन,—जैसे, जिस प्रकार।

(३४९) **गौः भा**—आन,—अन्यथा, विरुद्ध, विपरीत।

(३५०) **गौः भा**—आपने विद्वद्रूढ़िवृत्ति के आश्रय से जो अर्थ किया है, वही एकमात्र वास्तव नित्य सत्य है। हम अज्ञरुढ़ि वृत्ति के सहयोग से शब्द के जिस उपदेश या तात्पर्य की व्याख्या करते हैं, वह तात्कालिक अर्थप्रतिम (अर्थ जैसा) होने पर भी यथार्थ या प्रकृत सत्यार्थ नहीं है, परन्तु कदर्थमात्र है।

स्वयं को वायुग्रस्त दिखाकर प्रभु की वंचना–चेष्टा, किन्तु प्रभु की जिज्ञासा के उत्तर में छात्रों द्वारा प्रभुकृत अलौकिक कृष्णपरक व्याख्या, उनके अलौकिक ज्ञान और अपूर्व रुप का वर्णन–

प्रभु बले,—''कह देखि आमारे सकल?
वायु वा आमारे करियाछे ये विह्वल॥३५१॥
सूत्ररुपे कोन् वृत्ति करिये बाखान?''
शिष्यवर्ग बले,—''सबे एक हरिनाम॥३५२॥
सूत्र–वृत्ति–टीकाय बाखान' कृष्ण मात्र।
बुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र?३५३॥
भक्तिर श्रवणे ये तोमार आसि' हये।
ताहाते तोमारे कभु नर–ज्ञान नहे॥''३५४॥
प्रभु बले,—''कोन्रुप देखह आमारे?''
पड़ुया सकले बले,—''यत चमत्कारे''॥३५५॥
ये कम्प, ये अश्रु, ये वा पुलक तोमार।
आमरा त' कोथा कभु नाहि देखि आर॥३५६॥

(३५१–३५६) **प. अनु०**—प्रभु ने कहा, —"तुम सब मुझे देखकर बताओ कि कहीं मुझे वायु ने तो विह्वल नहीं कर दिया। मैंने सूत्ररुप से कौन–सी वृत्ति कही है?" शिष्यों ने कहा,—"केवल एक हरिनाम। आप तो सूत्र, वृत्ति, टीका—सबमें केवल कृष्ण का ही बखान करते हैं। आपकी व्याख्या समझने वाला पात्र यहाँ कौन है भला! भक्ति के पद सुनने से आपकी जो दशा हो जाती है, उससे आपकी जो दशा हो जाती है, उससे आप में कभी मनुष्य बुद्धि नहीं होती"। प्रभु ने पूछा,—"तुम लोग मुझे किस रुप में देखते हो" सभी विद्यार्थियों ने उत्तर दिया,—"सब चमत्कार ही चमत्कार देखा है"। आपके शरीर में जो कम्प, अश्रु और पुलकावलि प्रकट होती हैं, वे तो हमने और कहीं कभी भी नहीं देखी है।

(३५४) **गौः भा**—भक्तिर ....आासि हये, —पूर्वोक्त कृष्णभक्ति–सूचक श्लोकादि को सुनने के फल से आपके जो सब अलौलिक अप्राकृत सात्त्विक प्रेमविकार उदित या प्रकटित हुये।

नरज्ञान नहे,—प्राकृत मनुष्यबुद्धि नहीं होती है।

प्रभु के निकट, पहले दिन रत्नगर्भ–आचार्य के श्लोक–पाठ श्रवण से प्रभु के प्रेमविकार–दशा का वर्णन–

कालि तुमि पुँथि यबे चिन्ताह नगरे।
तखन पढ़िल श्लोक एक विप्रवरे॥३५७॥
भागवत–श्लोक शुनि' हइला मूर्च्छित।
सर्व–अंगे नाहि प्राण, आमरा विस्मित॥३५८॥

चैतन्य पाइया पुनः ये कैला क्रन्दन।
गंगा हेन आसिया हइल मिलन॥३५९॥
शेषे ये वा कम्प आसि' हइल तोमार।
शत जन समर्थ ना हय धरिवार॥३६०॥
आपादमस्तक हैल पुलके उन्नति।
लाला–घर्म–धूलाय व्यापित गौरमूर्त्ति॥३६१॥

(३५७-३६१) **प. अनु०**—कल जब आप नगर (भागवत का) एक श्लोक पढ़ा था। भागवत के उस श्लोक को सुनते ही आप मूर्च्छित हो गये, शरीर में पुनः चेतना आने पर आपने फिर से जो रुदन किया, उस समय देखने से तो यही लगता था कि मानों गंगाजी आकर आपसे मिल गई हों। अन्त में आपको जो कम्प हुआ, उसमें सौ-सौ मनुष्य भी आपको पकड़कर स्थिर नहीं रख सके थे। चरण से लेकर मस्तक तक समस्त शरीर में रोमांच उदित हो गया था और आपकी गौरमूर्ति लार, स्वेद और धूल से परिव्याप्त (लिपटी हुई) थी।

(३६१) **गौः भा**—पुलके-उन्नति, —रोमांचोदय, रोमहर्ष-वृद्धि।

प्रभु के प्रेमविकार दर्शन से नाना व्यक्तियों के नान-मत-वर्णन—

अपूर्व भावये सब,—देखे यत जन।
सबेइ बलेन,—'ए पुरुष नारायण'॥३६२॥
केह बले,—'व्यास, शुक, नारद, प्रह्लाद।
ताँ सबार समयोग्य एमत प्रसाद'॥३६३॥
सबे मेलि' धरिलेन करिया शकति।
क्षणेके तोमार आसि' बाह्य हैल मति॥३६४॥

(३६२-३६४) **प. अनु०**—आपके उस अपूर्व भाव को जिन-जिन लोगों ने उस समय देखा, सभी ने यही कहा—'यह पुरुष तो नारायण हैं'। किसी-किसी ने यह भी कहा कि, 'ये तो व्यासदेव, शुकदेव, नारद, प्रह्लाद हैं; क्योंकि वे ही सब इस कृपा के योग्य हैं।' उस समय सब लोगों ने मिलकर बड़ा जोर लगाकर आपको पकड़ रखा था। फिर कुछ ही क्षण पश्चात् आपको बाह्यज्ञान प्राप्त हो गया।

(३६३) **गौः भा**—एमत प्रसाद,—ऐसा भगवद् अनुग्रह।

(३६४) **गौः भा**—क्षणेके.....मति,—कुछ ही क्षण पश्चात् आपकी बहिर्दशा (बाह्य-चेतना) उपस्थित हो गई।

उस सम्बन्ध में प्रभु की बाह्यस्मृति के राहित्य का वर्णन—

ए–सब वृत्तान्त तुमि किछुइ ना जान'।
आर कथा कहि,—ताहा चित्त दिया शुन॥३६५॥

(३६५) **प. अनु०**—इस सब वृत्तान्त के बारे में आप कुछ भी नहीं जानते हैं और एक बात कहते हैं, ध्यान देकर सुनिये।

दस दिन तक प्रभु के कृष्णपरक व्याख्यान के फल से छात्रों द्वारा अध्ययन-वर्जन ज्ञापन—

दिन दश धरि' कर' यतेक व्याख्यान।
सर्व–शास्त्रे शब्दे—कृष्णभक्ति कृष्णनाम॥३६६॥
दश दिन धरि' आजि पाठ–वाद हय।
कहिते तोमारे सबे वासि बड़ भय॥३६७॥

(३६६-३६७) **प. अनु०**—दस दिन से आप जितनी व्याख्या करते रहे हैं, उसमें प्रत्येक शास्त्र और शब्द में आप कृष्णभक्ति और कृष्ण-नाम का ही बखान कर रहे हैं। आज तक दस दिन के अध्ययन का वर्जन (परित्याग) हो गया है आपसे तो कुछ कहने में भी हमको बड़ा भय लगता है।

(३६७) **गौः भा**—पाठ-वाद,—अध्यापन

और अध्ययन का वर्जन, विरति या परित्याग।

शब्दार्थाविद् प्रभु के कृष्णपर व्याख्यान के समय सभी का विस्मय से निरुत्तर—

शब्देर अशेष अर्थ—तोमार गोचर।
ये बाखान' हासि' ताहा के दिवे उत्तर?३६८॥

(३६८) **प. अनु०**—आप तो एक-एक शब्द के अशेष (अनन्त) अर्थ जानते हैं। जो कुछ भी आप हँसते हुये सहज में कह जाते हैं, उसका उत्तर भला कौन दे सकता है? (अर्थात् उसमें भव्यतर बात कौन कह सकता है?)

(३६८) **गौः भा**—शब्देर.....गोचर,—आप ही शब्द-शास्त्र में परम सर्वोत्तम विशारद हैं; योग, रुहि, योगरुढ़ि गौणी, मुख्या, लक्षणा और अभिधा आदि नाना वत्तियों द्वारा शब्द की व्याख्या करने में आप ही अभिज्ञतम (सम्पूर्ण रुप से जानते) हैं।

अध्ययन वर्जन की बात सुनकर प्रभु द्वारा छात्रों की मृदु भर्त्सना—

प्रभु बले,—''दश दिन पाठ बाद याय।
तबे त' आमारे सबे कहिते युयाय?''३६९॥

(३६९) **प. अनु०**—यह सुनकर प्रभु ने कहा,—"जब दस दिन से तुम्हारा अध्ययन व्यर्थ जा रहा था तो क्या तुम्हारे लिए मुझसे कहना उचित नहीं था?"

(३६९) **गौः भा**—तबे कि.....युयाय?—ऐसी अवस्था में मुझको इस व्यापार (पाठ-वाद) के बारे में बताना क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं था?

छात्रों द्वारा प्रभुकृत कृष्णपर व्याख्या का यथार्थ्य वर्णन—

पड़ुया-सकल बले,—''बाखान उचित।
सत्य 'कृष्ण'—सकल शास्त्रेर समीहित॥३७०॥

(३७०) **प. अनु०**—सभी विद्यार्थियों ने कहा,—"व्याख्या तो आपकी उचित ही है। सचमुच ही समस्त शास्त्रों का यथार्थ अभिप्राय तो श्रीकृष्ण ही हैं।

निज-दुर्दैव वश ही आपकी रचितकृष्णपरक-व्याख्या में हमारा अपनोयोग (मनोयोग का अभाव)—

अध्ययन एइ से—सकलशास्त्र-सार।
तबे ये ना लइ'—दोष आमा' सबाकर॥३७१॥
मूले ये बाखान' तुमि, ज्ञातव्य से-इ से।
ताहाते ना लय चित्त निज-कर्मदोषे॥''३७२॥

(३७१-३७२) **प. अनु०**—सभी शास्त्रों के अध्ययन का सार यही है, फिर भी हम सार को ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं, यह हमारा ही दोष है। वास्तव में आप जिस प्रकार बखान करते हैं वही जानने योग्य है, परन्तु अपने कर्मदोष के कारण उसमें हमारा चित्त नहीं लगता है।

(३७१-३७२) **गौः भा**—इस प्रकार का कृष्णपरक अध्ययन ही सब शास्त्रों का एकमात्र उद्देश्य, अभिप्राय या तात्पर्य है, तथापि हम जो आपके द्वारा रचित कृष्णपरक सत्यार्थ को ग्रहण नहीं कर पाते हैं, इसमें हमारा ही अपराध है। वास्तविक बात यह है कि आप जिस प्रकार से शास्त्र की व्याख्या करते हैं या की है, उसकी उपलब्धि करना ही हमारा एकमात्र प्रयोजन होना चाहिए; किन्तु दुर्भाग्य के दोष से हमारा चित्त आपके रचित सर्वशास्त्र सार सत्यार्थ को ग्रहण करने में असमर्थ हो रहा हैं।

छात्रों के दैन्यवाक्यों से प्रभु को सन्तोष

और उनकी कृपोक्ति—

पड़ुयार वाक्ये तुष्ट हइला ठाकुर।
कहिते लागिता कृपा करिया प्रचुर॥३७३॥

(३७३) **प. अनु०**—विद्यार्थियों के वचन सुनकर प्रभु प्रसन्न हुये और प्रचुर कृपा करते हुये कहने लगे।

छात्रों से अपना निगूढ़ गोपीभाव-ज्ञापन—

प्रभु बले,—''भाई सब! कहिला सुसत्य।
आमार ए-सब कथा—अन्यत्र अकथ्य॥३७४॥

(३७४) **प. अनु०**—प्रभु बोले, भाइयों! जो कुछ तुम कहते हो, वह सब परम सत्य है, पर मेरी ये बातें और किसी के आगे प्रकट करने योग्य नहीं है।

सर्वत्र प्रभु को कृष्ण-दर्शन—

कृष्णवर्ण एक शिशु मुरली बाजाय।
सबे देखि,—ताइ भाइ! बलि सर्वथाय॥३७५॥
यत शुनि श्रवणे, सकल—कृष्णनाम।
सकल भुवन देखि गोविन्देर धाम॥३७६॥

(३७५-३७६) **प. अनु०**—मैं तो केवल कृष्णवर्ण के एक शिशु को सर्वत्र मुरली बजाते हुये देखता हूँ, इसलिए भाइयों! उसकी बातें ही नित्य निरन्तर कहता रहता हूँ। जो कुछ भी सुनता हूँ, वह सब केवल 'कृष्णनाम' ही सुनता हूँ और समस्त भुवनों को गोविन्द के धाम के रुप में ही देखता हूँ।

(३७५-३७६) **गौः भा**—श्रीगौरसुन्दर कह रहे हैं,—मैं सब समय यही देख रहा हूँ कि, एक श्यामकान्ति वाले किशोर वंशीध्वनि करके सभी का `आकर्षित कर रहे हैं। हर वक्त एकमात्र उनका ही दर्शन करने के कारण मैं नित्य-निरन्तर सर्वतोभाव से उनके नाम का कीर्तन ही करता रहता हूँ। जो शब्द-कोलाहल तुम्हारे कानों में प्रविष्ट हो रहा है, वह भी वस्तुतः कृष्ण नाम का ही कोलाहल है और चारों ओर तुम जिस भोगभूमि प्रपंच का दर्शन कर रहे हो, वह वस्तुतः तुम्हारा विहार क्षेत्र नहीं है, अपितु कृष्ण विहारस्थली वैकुण्ठ गोलोकधाम है।

परविद्या शास्त्रानुशीलन का फल 'कृष्णदर्शन' होने के कारण जड़-विद्या-पाठ से विरति (त्याग) और विदाई याचना—

तोमा' सबा' स्थाने मोर एइ परिहार।
आजि हैते आर पाठ नाहिक आमार॥३७७॥

(३७७) **प. अनु०**—तुम सबके समक्ष अब तो मेरी यही प्रतिज्ञा है कि आज से मैं तुम्हें और पाठ नहीं पढ़ा सकूँगा।

(३७७) **गौः भा**—परिहर,—प्रतिज्ञा, शपथ, अंगीकार, विज्ञापन, निवेदन, अनुरोध, प्रार्थना, मिनती, (विनती) दैन्योक्ति।

छात्रों को दूसरे अध्यापक के पास अध्ययनार्थ अनुजा (आदेश) दान—

तोमा' सबाकार—याँ'र ''स्थाने चित्त लय।
ताँ'र स्थाने पड़'—आमि दिलाङ निर्भय॥३७८॥

(३७८) **प. अनु०**—अब तुम्हारा जिनके पास मन लगे, उनके पास जाकर पढ़ो। मैं तुमको अभय दान करता हूँ।

प्रभु द्वारा अपने चित्त में कृष्णेतर शब्द का स्फूर्ति राहित्य-ज्ञापन—

कृष्ण-बिनु आर वाक्य ना स्फुरे आमार।
सत्य आमि कहिलाङ चित्त आपनार॥''३७९॥

(३७९) **प. अनु०**—क्सा करुँ, मुझे तो अब श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य किसी बात की स्फूर्ति ही नहीं होती है, मैंने अपने चित्त की सही दशा का वर्णन कर दिया है।

प्रभु-द्वारा ग्रन्थ-बन्धन—

एइ बोल महाप्रभु सबारे कहिया।
दिलेन पुँथिते डोर अश्रुयुक्त हैया॥३८०॥

(३८०) **प. अनु०**—यह बात महाप्रभु ने सबसे कहकर, नेत्रों से अश्रु बहाते हुये अपनी पुस्तक बाँध ली।

(३८०) **गौः भा**—दिलेन डोर,—रस्सी द्व ारा बन्धन किया, डोरी लपेट कर बाँध दिया।

शिष्यों द्वारा प्रभु का अनुसरण और प्रभुविरह की आंशका से क्रन्दन एवं प्रभु की अध्यापन महिमा की प्रशंसा—

शिष्यगण बलेन करिया नमस्कार।
''आमराओ करिलाङ संकल्प तोमार॥३८१॥
तोमार स्थाने ये पड़िलाङ आमि सब।
आन-स्थाने करिब कि ग्रन्थ अनुभव?''३८२॥
गुरुर विच्छेद-दुःखे सर्व-शिष्यागण।
कहिते लागिता सबे करिया क्रन्दन॥३८३॥
''तोमार मुखेते यत शुनिलुँ व्याख्यान।
जन्मे-जन्मे हृदये रहुक सेइ ध्यान॥३८४॥
का'र स्थाने गिया आर किवा पड़िवाङ?
सेइ भाल,—तोमा' हैते यत जानिलाङ॥३८५॥

(३८१-३८५) **प. अनु०**—तब शिष्यगण भी नमस्कार करके बोले,—"आपकी तरह हमने भी संकल्प कर लिया है। आपके पास से हम सबने, जो पढ़ना था पढ़ लिया है, अब और दूसरी जगह जाकर क्या पढेंगे।" इस प्रकार सभी शिष्यगण श्रीगुरुदेव के बिछुड़ने के दुःख से रोते हुये कहने लगे,—"आपके मुख से हमने जो कुछ भी व्याख्या सुनी है, उसी का ध्यान जन्म-जन्मान्तर तक हमारे हृदय में बना रहे। अब हम किसी दूसरे स्थान में जाकर और क्या पढें? जो कुछ आप से सीख लिया वही उत्तम है।"

(३८१) **गौः भा**—आमराओ.....तोमार,—हम भी आपकी इच्छा के अनुगमन से ग्रन्थाध्ययन से विरत हो गये हैं।

(३८२) **गौः भा**—ग्रन्थ-अनुभव,—ग्रन्थ का यथार्थ, सत्यार्थ, प्रकृत मर्म, सार, अभिप्राय या तात्पर्य।

शिष्यों का भी ग्रन्थ-बन्धन, क्रन्दन और प्रभु का आशीर्वाद—

एत बलि' प्रभुरे करिया हात-जोड़।
पुस्तके दिलेन सब शिष्यगण डोर॥३८६॥
'हरि', बलि' शिष्यगण करिलेन ध्वनि।
सबा' कोल करिया कान्देन द्विजमणि॥३८७॥
शिष्यगण क्रन्दन करेन अधोमुखे।
डुबिलेन शिष्यगण परानन्द-सुखे॥३८८॥
रुद्ध-कण्ठ हइलेन सर्व-शिष्यगण।
आशीर्वाद करे प्रभु श्रीशचीनन्दन॥३८९॥

(३८६-३८९) **प. अनु०**—इतना कहकर और प्रभु को हाथ जोड़कर, सब शिष्यों ने भी अपनी-अपनी पुस्तकें बाँध लीं और 'हरि' हरि' कहते हुये सभी ने ध्वनि की। प्रभु सबसे लिपट कर क्रन्दन करने लगे। शिष्यगण भी मुखे नीचे करके रोने लगे और परमानन्द सुख में डूब गये। सभी शिष्यों के कण्ठ अवरुद्ध हो गये। प्रभु श्रीशचीनन्दन सबको आशीर्वाद देने लगे।

छात्रों को अभीष्ट सिद्ध हो' कहकर आशीर्वाद—

''दिवसेको आमि यदि हइ कृष्णदास।
तबे सिद्ध हउ तोमा' सबार अभिलाष॥३९०॥

(३९०) **प. अनु०**—"यदि मैं एक दिन के लिए भी कृष्णदास का दास हुआ होऊँ, तो तुम्हारी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जायें।

शिष्यों को वृथा-पाठ-त्यागपूर्वक निरन्तर कृष्ण के शरणागत होकर नाम-श्रवण कीर्तनार्थ उपदेश—

तोमरा—सकले लह कृष्णेर शरण।
कृष्णनामे पूर्ण हउ सबार वदन॥३९१॥
निरवधि श्रवणे शुनह कृष्णनाम।
कृष्ण हउ तोमा' सबाकार धन-प्राण॥३९२॥
ये पड़िला, से-इ भाल, आर कार्य नाइ।
सबे मेलि' 'कृष्ण' बलिवाङ एक ठाँइ॥३९३॥

(३९१-३९३) **प. अनु०**—तुम सब श्रीकृष्ण के शरणागत हो जाओ। तुम्हारे मुख श्रीकृष्ण नाम से पूर्ण हों। कानों से तुम निरन्तर श्रीकृष्णनाम सुनो और श्रीकृष्णनाम सुनो और श्रीकृष्ण ही तुम सबके धन-प्राण बन जायें। जो पढ़ लिया, वही ठीक है, अब अधिक प्रयोजन नहीं। बस, अब तो सब एक स्थान पर मिलकर श्रीकृष्ण का कीर्तन किया करना।

(३९३) **गौः भा**—कार्य,—प्रयोजन, आवश्यकता।

प्रत्येक अवतार में पार्षदज्ञान से छात्रों को 'सर्वशास्त्र स्फर्ति हो' कहकर आशीर्वाद—

कृष्णेर कृपाय शास्त्र स्फुरुक सबार।
तुमि-सब—जन्म-जन्म बान्धव आमार॥"३९४॥

(३९४) **प. अनु०**—श्रीकृष्ण की कृपा से तुमको सब शास्त्रों की स्फूर्ति हो जाये। तुम सब तो मेरे जन्म-जन्म के बान्धव हो।"

प्रभु के वाक्य सुनने से छात्रों को महा आनन्द, ग्रन्थकार द्वारा उन छात्रों के भाग्य की प्रंशसा—

प्रभुर अमृत-वाक्य शुनि' शिष्यगण।
परम-आनन्दन हइल ततक्षण॥३९५॥
से-सब शिष्येर पा'य मोर नमस्कार।
चैतन्येर शिष्यत्वे हइल भाग्य याँ'र॥३९६॥
से-सब कृष्णेर दास,—जानिह निश्चय।
कृष्ण या'रे पड़ायेन, से कि अन्य हय?३९७॥

(३९५-३९७) **प. अनु०**—प्रभु के अमृतमय वचनों को सुनकर शिष्यों के हृदय तत्काल परमानन्द से परिपूर्ण हो गये। उन सब शिष्यों के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनको श्रीचैतन्यचन्द्र के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह निश्चय जानो कि वे सब श्रीकृष्ण के दास हैं। श्रीकृष्ण जिनको स्वयं पढ़ावें, भला वे कोई अन्य कैसे हो सकते हैं?

(३९६) **गौः भा**—जिन्होंने बहुत जन्मों की पुंज-पुंज सुकृति के फलस्वरुप विद्यार्थी बनकर श्रीविश्वम्भर के अन्तेवासी (शिष्य) होने का सुदुर्लभ अतुल सौभाग्य प्राप्त किया था, उन परम महा सौभाग्यवन्त छात्रों के चरणों में ग्रन्थकार परम दीनता के साथ नमस्कार कर रहे हैं।

(३९७) **गौः भा**—पूर्ववर्त्ती ३४६ संख्या द्रष्टव्य है। (३९६) **प. अनु०**—जिन-जिन महानुभावों ने प्रभु के उस विद्याविलास का दर्शन किया, उनके दर्शन से भी संसार के बन्धवों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

प्रभु के विद्या-विलास-दर्शकों के दर्शन से भी मुक्ति की प्राप्ति—

से विद्याविलास देखिलेन ये-ये-जन।
ताँदेरओ देखिले हय बन्ध-विमोचन॥३९८॥

(३९८) **प. अनु०**—जिन-जिन महानुभावों ने प्रभु के उस विद्याविलास का दर्शन किया, उनके दर्शन से भी संसार के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है।

प्रभु के विद्या-विलास के अदर्शन से ग्रन्थकार का खेद और प्रार्थना—

हइलुँ पापिष्ठ,—जन्म ना हइल तखने।
इहलाङ वंचित से–सुख–दरशने॥३९९॥
तथापिह एइ कृपा कर' महाशय!
से विद्याविलास मोर रहुक हृदय॥४००॥

(३९९–४००) **प. अनु०—**मैं बड़ा पापी हूँ। मेरा जन्म तो हुआ, परन्तु उस समय नहीं हुआ, इसलिए मैं उस सुख के दर्शन से वंचित ही रहा। तथापि हे महाशय! ऐसी कृपा कीजिए कि आपका वह विद्याविलास निरन्तर मेरे हृदय में रहे।

(३९८–३९९) **गौः भा—**परविद्या वधू के जीवन, साक्षात् शुद्ध सरस्वतीपति, मूर्त्त–शब्द–विग्रह श्रीगौरसुन्दर के परविद्या के दर्शन करने का सौभाग्य जिन्होने प्राप्त किया है, उन बन्धन–मुक्त दिव्यसूरिगण के भी यदि कोई दर्शन करे, तो वह दर्शक भी अविद्या से उत्पन्न भोग–प्रवृत्तियों से नित्यकाल के लिए मुक्त हो जाता है। परवर्तीकाल में श्रील ठाकुर नरोत्तम की प्रार्थना में भी इस प्रकार की बात लिखी हुई है,—"ये सब संगीर संगे ये कैला विलास। से संग ना पाइया कान्दे नरोत्तम दास॥" "यखन गौर नित्यानन्द, अद्व ैतादि भक्तवृन्द, नदीया–नागरे अवतार। तखन ना हैल जन्म, एबे देहे किवा कर्म, मिछा–मात्र बहि फिरि भार॥"

प्रभु–प्रकटिक परविद्यानुशीलन–लीला की नित्यता—

पड़ाइला नवद्वीपे वैकुण्ठेर राय।
अद्यापिह चिह्न आछे सर्व–नदीयाय॥४०१॥
चैतन्य–लीलार आदि–अवधि ना हय।
'आविर्भाव' 'तिरोभाव' एइ वेदे कय॥४०२॥

(४०१–४०२) **प. अनु०—**श्रीवैकुण्ठ नाथ ने नवद्वीप में छात्रों को पढ़ाया था, इसके चिह्न आज भी सारी नदीया में वर्तमान हैं। श्रीचैतन्यचन्द्र की लीला का आदि और अन्त नहीं है। वेद कहते हैं कि उसका केवल 'आविर्भाव' और तिरोभाव' ही है।

(४०१) **गौः भा—**चिह्न,—परविद्यानुशीलन–पीठ या मन्दिर।

(४०२) **गौः भा—**अवधि,—अन्त, शेष, सीमा। आदि ३य अः ५२ संख्या का तथ्य द्रष्टव्य है।

'परिविद्या–वधूजीवन' कृष्णसंकीर्तन के आरम्भ करते ही विद्या–विलास–लीला की परिपूर्णता—

एइमते परिपूर्ण विद्यार विलास।
संकीर्तन—आरम्भेर हइल प्रकाश॥४०३॥

(४०३) **प. अनु०—**इस प्रकार प्रभु का विद्या–विलास यहाँ परिपूर्ण हो गया और अब नाम–संकीर्त्तन का प्रकाश आरम्भ हुआ।

छात्रों के क्रन्दन से प्रभु का विद्याध्ययन के फलस्वरुप कृष्णकीर्तनार्थ उपदेश—

चतुर्दिके अश्रुकण्ठे कान्दे शिष्यगण।
सदय हइया प्रभु बलेन बचन॥४०४॥
''पड़िलाङ शुनिलाङ यतदिन धरि'।
कृष्णेर कीर्तन कर' परिपूर्ण करि'॥४०५॥

(४०४) **गौः भा—**प्रभु के कृष्ण–संकीर्त्तन के आरम्भ के साथ ही उनके विद्याविलास की परिपूर्णता सम्पन्न हो गई। 'संकीर्तन'–शब्द से बहुत लोगों द्वारा मिलकर श्रीहरि के नाम, रुप, गुण, परिकर–वैशिष्ट्य और लीला का कीर्तन एवं उस प्रकार के कीर्तन के समय सेवोन्मुख व्यक्तियों द्वार उन–उन विषयों के 'श्रवण' को भी लक्ष्य करता है। यही संकीर्तन का वैशिष्ट्य है। कृष्ण के नाम, रुप, गुण, परिकर–वैशिष्ट्य और लीला का यदि उचित

भाव से अर्थात् निरपराध पूर्वक कीर्तन न हो तो अनादि बहिर्मूख कृष्णविस्मृत जीव की प्रापंचिक-विषयों से अभिनिवेश त्याग की तनिक भी सम्भावना नहीं रहती है। यदि परलोक की अर्थात परव्योम या पूर्ण-चेतन-राज्य की चिन्मयी कृष्ण-कथा इन्द्रियतर्पण-परायण मनुष्यों के निकट उपस्थित नहीं होती तो मनःकल्पित विविध इन्द्रियतर्पणकारी चेष्टाएँ ही धर्म के नाम पर प्रचलित होकर जगज्जंजाल उपस्थित करेंगी। अमन्दोदय-दया-सिन्धु महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने अमन्दोदय-दया और अहैतुकी कृपा के वशवर्त्ती होकर समग्र अचैतन्य जगदवासियों की उनके अविद्या-जनित जड़ाभिनिवेश से रक्षा करने की इच्छा से अर्थात् अचैतन्य स्थावर-जंगम के हृदयों में शुद्ध-चैतन्यमयी कृष्ण सेवा-प्रवृति का उदय करवाने के लिए ही, कृष्णसेवा-पराकाष्ठा की प्राप्ति ही जिस कृष्णसेवानुगा परविद्या का चरम फल है, उसका प्रचार किया है।

(४०४-४०५) **प. अनु०—**चारों ओर शिष्यों को गद्‌गद होकर रोते देख प्रभु सदय होकर बोले,—"हे छात्रों! इतने दिनों तक तो पढ़ना, पढाना किया। अब जी भरकर श्रीकृष्ण का कीर्तन करो।"

(४०५) **गौः भा—**प्रभु ने कहा,—मैंने जो अब तक शब्द-शास्त्रादि का अध्ययन-अध्यापन के फलस्वरुप मैं कृष्ण कीर्तन को ही एकमात्र सार-रुप से जान पाया हूँ। वेदों का भी एकमात्र प्रतिपद्य (अभिधेय) यही है। इसलिए हे छात्रों! अपने विद्यानुशीलन के चरम फलस्वरुप अनुक्षण चित्तदर्पण-मार्जन, (मन के दर्पण को उज्जवल करने वाले) भवमहादावाग्नि-निर्वापण, (संसार के भीषण दावानल को शान्त करने वाले) श्रेयः कुमुदज्योत्स्ना-वितरण, (श्रेयरुपी चाँदनी का वितरण करने वाले) परविद्या वधू के प्राणधन श्रीकृष्ण के कीर्तन का सतत अनुशीलन करते रहो।

छात्रों की जिज्ञासा के उत्तर में प्रभु द्वारा स्वयं कृष्णनाम-संकीर्तन-रीति का शिक्षा का दान—

कृष्णनाम-बलेन,—"केमन संकीर्तन?"
आपने शिखायेन प्रभु श्रीशचीनन्दन॥४०६॥

(केदार-राग)—

"(हरे) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥"४०७॥
दिशा देखाइया प्रभु हाते तालि दिया।
आपने कीर्त्तन करे शिष्यगण लैया॥४०८॥

(४०६-४०८) **प. अनु०—**शिष्यों ने कहा,—"संकीर्तन कैसे होता है?" तब प्रभु श्रीशचीनन्दन स्वयं उनको सिखाने लगे—"(हरि) हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन"। इस प्रकार बोलकर और हाथों से ताली बजा-बजाकर शिष्यों को सिखाते हुये प्रभु उन सबको साथ लेकर कीर्तन करने लगे।

(४०६) **गौः भा—**ब्रह्मजिज्ञासु और विष्णुभक्ति जिज्ञासु छात्रों के प्रश्न करने पर कृष्णसंकीर्तन की व्याख्या करते हुये स्वयं शुद्ध-सरस्वती पति श्रीविश्वम्भर ने छात्रों को श्रौतपथ की शिक्षा दी। उनकी शिक्षा में तर्कपथ के आदृत (सम्मानित) न होने के कारण अधिरोहवाद की अकर्मण्यता ही प्रदर्शित हुई है। "ज्ञाने प्रयासमुदपास्य" एवं "प्रायेण वेद तदिदं"—इन भागवत-कथित दोनों श्लोकों में प्रतिपादित निष्फल अधिरोहवादरुप पथ से जो निर्भेद ज्ञान और अन्त्य कर्म की कुचेष्टा है, उसके निषेध से ही अनित्य कर्म की कुचेष्टा है, उसके निषेध से ही विष्णुमन्त्र प्रदान किया

जाता है। किन्तु आधुनिक मनोधर्मी श्रौतपथ विरोधी हरि–गुरु–वैष्णवविद्वेषी तथाकथित वैष्ाव द्वारा कीर्त्तित किसी कल्पित कृत्रिम छड़ा (गान) का उपदेश महाप्रभु या उनके निष्टकप मुक्तसेवक जगद्गुरु आचार्य और प्रचारकों ने कभी भी, किसी को भी नहीं दिया है, अपितु गुरु–परमपरा–प्राप्त मन्त्र एवं सम्बोन्धनात्मक श्रीनाम नाम के ही उपदेश दिया है। महाप्रभु ने उस मन्त्र और नाम के आम्नाय या गुरु पारम्पर्य के अनुसार प्राप्त होने की लीला का प्रदर्शन करके उसका ही उपदेश दिया था।

(४०७) **गौः भा—**यहाँ पर सर्वप्रथम हरि और यादव—इन दोनों नामों के साथ कीर्तन करने वाले व्यक्ति की शरणागति या आत्मसम्प्रदानात्मक चतुर्थ–विभक्ति प्रयुक्त हुई है; अर्थात् कृष्णनाम ग्रहण करने के इच्छुक व्यक्तियों को सबसे पहले कृष्णनाम कीर्तन का व्रत श्रीसद्गुरु के निकट आत्मसम्प्रदान द्वारा दिव्यज्ञान प्राप्त करके श्रीगुरु–वैष्णवों के श्रीमुख से निरन्तर कृष्णनाम–कथा श्रवण करते–करते सम्बोधन पूर्वक उच्चःस्वर से निरन्तर निरपराध पूर्वक कृष्णनाम–संकीर्तन का अनुशीलन करना चाहिए।

भगवान के नाम पर साथ चतुर्थी–अन्त–पूर्वक आत्मनिवेदन द्वारा उनका निष्कपट भजन करने की इन्छा होने पर मन्त्र प्राप्त होता है और भगवन्नाम के सम्बोधन द्वारा भगवान्नाम का ही भजन अनुष्ठित होता है। चतुर्थ्यन्त पद से शरणागति लक्षित होती है एवं सम्बोधनात्मक पद से कीर्तनकारी की नित्य सेवाकांक्षा ही लक्षित है। मन्त्र जप के फल से दीक्षा प्राप्त व्यक्ति की संसार–बन्धन से मुक्ति और मुक्तपुरुष का नाम–सम्बोधन युक्त पद, नित्य भजन के तात्पर्य को सूचित करता है। कृष्णमन्त्र को साधन एवं कृष्णनाम को साधन और साध्य जानकर साध्य और साधन, एक दूसरे का अद्वयज्ञान ही व्यवधान–रहित भक्ति के रुप में स्वीकृत हुआ है। मन्त्र और नाम, दोनों ही वाच्य विग्रह विष्णु के ही अभिन्न–वाचक हैं। सम्बन्धज्ञान की प्राप्ति के प्रयास के लिए ही मन्त्र का साधन एवं मन्त्रसिद्धि से मुक्तपुरुष का भजनारम्भ होता है। (चैः चः आदि ७म पः ७३)—"कृष्णमन्त्र हैते हवे संसार–मोचन। कृष्णनाम हैते पावे कृष्णेर चरण॥"

(४०८) **गौः भा—**दिशा देखाइया,—दिशा प्रदर्शन पूर्वक रीति, पद्धति, प्रणाली या सन्धान निर्णय करके।

छात्रों से घिरकर श्रीनामकीर्तन–विग्रह प्रभु का नामप्रेमावेश में भूमि पर गिरना और उच्चध्वनि—

आपने कीर्तन–नाथ करेन कीर्तन।
चौदिके बेड़िया गाय सब–शिष्यगण॥४०९॥
आविष्ट हइया प्रभु निज–नाम–रसे।
गड़ागड़ि याय प्रभु धुलाय आवेशे॥४१०॥
'बल बल' बलि' प्रभु चतुर्दिके पड़े।
पृथिवी विदीर्ण हय आछाड़े–आछाड़े॥४११॥

(४०९–४११) **प. अनु०—**कीर्तन के नाथ आज आप ही अपना कीर्तन कर रहे हैं और सब शिष्य उन्हें चारों और से घेरकर गा रहे हैं। कीर्तन करते–करते प्रभु अपने नाम–रस में भावमग्न होकर आवेश से धूल में लोट–पोट होने लगे। 'बोलो–बोलो' कहते हुये प्रभु इधर चारों ओर गिरने–पड़ने लगे। उनकी हर पछाड़ पर पृथ्वी विदार्ण होने लगी।

(४०९) **गौः भा—**निज–नाम–रसे,—यहाँ पर जो कीर्तन कर रहे हैं, वे स्वयं ही उस कीर्तन की उद्दिष्ट वस्तु हैं। नाम और नामी अभिन्न हैं, गौर और कृष्ण अभिन्न हैं, इसलिए

महाप्रभु के कीर्तन में निजाभिन्न गौलोकपति कृष्ण का माधुर्य और वैकुण्ठपति नारायण का ऐश्वर्यरस प्रकटित है। उस नाम-रस के आस्वादक रुप से कृष्णेतर माया के प्रति अभिनिवेश वर्जनपूर्वक कृष्ण में अभिनिवेश होने की लीला का महाप्रभु ने प्रदर्शन किया है।

प्रभु के कीर्तन की ध्वनि सुनने से सबका वहाँ पर आगमन और उनकी विस्मयोक्ति—

गण्डगोल शुनि' सर्व नदीया-नगर।
धाइया आइला सबे ठाकुरेर घर॥४१२॥
निकटे बसये यत वैष्णवेर घर।
कीर्तन शुनिया सबे आइला सत्वर॥४१३॥
प्रभुर आवेश देखि' सर्व-भक्तगण।
परम-अपूर्व सबे भावे मने-मन॥४१४॥
परम-सन्तोष सबे हइला अन्तरे।
''एवे से कीर्त्तन हैल नदीया-नगरे॥४१५॥
एमन दुर्लभ भक्ति आछये जगते?
नयन सफल हय ए भक्ति देखिते॥४१६॥
यत औद्धत्येर सीमा-एइ विश्वम्भर।
प्रेम देखिलाङ नारदादिरो दुष्कर॥४१७॥
हेन औद्धतेर यदि हेन भक्ति हय।
ना बुझि कृष्णेर इच्छा,—ए वा किवाहय॥''४१८॥

(४१२-४१८) **प. अनु०**—संकीर्तनध्वनि को सुनकर सब नदियावासी द्रुतगति से प्रभु के घर में आ गये। निकट में जितने भी वैष्णवों के घर थे, कीर्तन सुनकर सबके सब शीघ्र वहाँ पहुँच गये। प्रभु के आवेश को देखकर सब भक्तों को मन-ही मन बड़ा ही आश्चर्य हुआ। सबके हृदय में बड़ा ही सन्तोष हुआ कि,—"हाँ, अब हुआ नदिया-नगर में कीर्तन। अहा! ऐसी दुर्लभ भक्ति भी संसार में है? इस भक्ति के दर्शन से आज नेत्र सफल हो गये। इन विश्वम्भर में पहले जहाँ सभी उद्दण्डता की सीमा दिखाई देती थी, आज उनमें नारदादि को भी जो दुर्लभ है, वह प्रेम दिखाई दे रहा है। यदि वैसे उद्दण्ड में भी ऐसी भक्ति हो सकती है तो न जाने कृष्ण की इच्छा से आगे क्या होने वाला है?"

(४१२) **गौः भा—**गौर का अवतार और कीर्तन-महिमा,—(त्रिदण्डि-गोस्वामी श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती-रचित 'श्रीचैतन्यचन्द्रामृत'-ग्रन्थ में १११-१२१, १२४, १२६-१२८, १३३ और १३४ श्लोक)-"न योगो न ध्यानं न च जपतपस्त्यागनियमा न वेदा नाचारः क्व नु वत निषिद्धाद्युपरतिः। अकस्माच्चैतन्ये- ऽवतरित दयासारहृदये पुमर्थानां मौलिं परमिह मुदा लुण्ठति जनः॥ महाकर्मस्त्रोतो निपतितमपि स्थैर्यमयते महापाषाणेभ्योऽप्यतिकठिनमेति द्रवदशाम्। नटत्युद्ध्वं निःसाधनमपि महायोगमनसां भुवि श्रीचैतन्येऽवतरित मनश्चित्ररिभवे॥ स्त्री-प्रत्रादिकथां जहुर्विषयिणः शास्त्रप्रवादं बुधा योगीन्द्रा विजहुर्मरुन्नियमजकलेशं तपस्तापसाः। ज्ञाना-भ्यासविधिंजहुश्च यतयश्चैतन्यचन्द्रे परामाविष्कुर्वति भक्तियोगपदवीं नैवान्य आसीद्रसः॥ अभूद्गेहे गेहे तुमुलहरिसंकीर्तनरवो वभौ देहे देहेविपुलपुलकाश्रुव्यति-

करः। अपि स्नेहे स्नेहे परम-मधुरोत्कर्षपदवी दवीयस्याम्नायादपि जगति गौरेऽवतरित॥ अकस्मादेवैतद्

भुवनमभितः प्लावितमभूत् महाप्रेमाम्भोधेः किमपि रसवन्याभिरखिलम्। अकस्माच्चादृष्टाश्रुतचर विकारैरलमभूच्चमत्कारः कृष्णे कनकरुचिङ्गेऽवतरति॥ उद्गृह्णन्ति समस्तशास्त्रमभितो दुर्वारगर्वायिता धन्यस्मन्यधियश्च कर्मतपसाद्युच्चावचेषु स्थिताः। द्वित्राण्येव जपन्ति केचन हरेर्नामानि वामाशयाः पूर्वं सम्प्रति गौरचन्द्र उदिते प्रेमापि साधारणः॥ देवे चैतन्यनामन्यव-

तरति सुरप्रार्थ्य-पादाब्जसेवे विष्वद्रीचीः

प्रविस्तारयति सुमधुरप्रेमीपीयूषवीचीः को बालः कश्च वृद्धः क इह जडमतिः का वधूः को वराकः सर्वेषा-मैकरस्यं किमपि हरिपदे भक्तिभाजां वभूव॥ सर्वे शंकरनारदादय इहायाताः स्वयं श्रीरपि प्राप्ता देवहलायुधोऽपि मिलिती जाताश्च ते वृष्णयः। भूयः किं व्रजवासिनोऽपि प्रकटा गोपाल-गोप्यादय पूर्णे प्रेमरसेश्वरेऽवतरित श्रीगौरचन्द्र भुवि। भृत्वाः स्निग्धा अतिसुमधुरप्रोज्ज्वलोदार-

भाजस्तत् पादाब्जद्वितयसविधे सर्व एतावतीण ार्ाः। प्रापुःपूर्वाधिकतर-महा-प्रेमपीयूषक्ष्मीं स्वप्रेमाणं वितरति जगत्यद्भुतं हेमगौरे॥ हसन्त्युच्चैरुच्चैरहह कुलवध्वोऽपि परितो द्रवीभावं गच्छन्त्यमपि कुविष-ग्रावघटिताः। तिरस्कुर्वन्त्यज्ञा अपि सकलशास्त्रासमितिं क्षितौ श्रीचैतन्ये-

ऽद्भुत-महिमसारेऽवतरित॥ प्रायः चैतन्यमासीदपि सकलविदां नेह पूर्वं यदेषां खर्वा सर्वार्थसारेऽप्यकृत न हि पदं कुण्ठिता बुद्धिवृतिः। गम्भीरोदारभावोज्ज्व

लर-समधुरप्रेमभक्तिप्रवेशः केषां नासीद् इदानीं जगति करुणया गौरचन्द्रेऽवतीर्णे॥ सर्वज्ञैर्मुनिपंगवैः प्रविवते तत्तन्मते युक्तिभिः पूर्वं नैकतरत्र कोऽपि सुदृढ़ विश्वस्त आसीज्जनः। सम्प्रत्यप्रतिमप्रभाव उदिते गौरांगचन्द्रे पुनः श्रुत्यर्थो हरिभक्तिरेव परमः कैर्वा न निर्द्धार्यते।

अतिपुण्यैरति-सुकृतैः कृतार्थीकृतः कोऽपि पूर्वैः। एवं कैरपि न कृतं यत् प्रेमाब्धौ निमज्जितं विश्वम्। धर्मे निष्ठा दधदनपमां विष्णुभक्तिं गरिष्ठां संविभ्राणो दधदिह हि हत्तिष्ठतीवाश्मसारम्। नीचो गोघ्नादपि जगदहो प्लावयत्यश्रुपूरैः को वा जानात्यहह गहनं हेमगौरांगरगम्॥ क्वचित् कृष्णवेशान्नटति बहुभंगीमभिनयन् क्वचित्-राधाविष्टो हरि-हरिहरीत्यार्त्तिरुदितः। क्वचिद्रिंगन् बालः क्वचिदपि च गोपालचरितो जगद्गौरो विस्मापयति बहुगम्भीरमहिमा॥ देवा दुन्दुभिवादनं विदधिरे गन्धर्वमुख्या जगुः सिद्धा सन्तत-पुष्पवृष्टिभिरिमां पृथ्वीं समाच्छादयन्। दिव्यस्तोत्रपरा महर्षिनिवहाः प्रीत्योपतस्थूर्निजप्रेमोन्मादिनि ताण्डवं रचयति श्रीगौरचन्द्रे भूवि॥ क्षणं हसति रोदाति क्षणमथ क्षणं मूर्च्छति क्षणं लुठति धावति क्षणमथ क्षणं नृत्यति। क्षणं श्वसिति मुंचति क्षणमुदार हाहा रुतिं महाप्रणयसीधुना विहरतीत गौरा हरिः॥"

अर्थात् 'परम-दयालु श्रीचैतन्यदेव के इस जगत् मे अकस्मात् अवतीर्ण होने पर योग, ध्यान, जप, तप, त्याग, नियम, वेदाध्ययन, सदाचार यह सब कुछ नहीं था, फिर यहाँ तक हो गया कि, जिसकी पापादिकर्म से निवृत्ति भी नहीं थी, ऐसे व्यक्ति ने भी परम हर्ष के साथ पुरुषार्थ शिरोमणि अर्थात् परम प्रेम को लूटा था। आश्चर्य-वैभवशाली (शक्तिशाली) श्रीचैतन्यचन्द्र के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने पर, कर्मिकुल के मन ने महाकर्म के प्रवाह में निपतित रहने पर भी प्रेम प्राप्त करके स्थिरता उपलब्ध की और महापाषाण से भी अतिशय कठिन मन भी भक्तिरस में द्रवित हो गया। महायोगादि साधनों में चित्तवृति विशिष्ट व्यक्तियों ने भी मन में योगादि अनित्य साधनों से विरत होकर ऊर्ध्व नृत्य, अर्थात् अधोक्षज चिद्विलास राज्य में प्रेम का आस्वादन किया। श्रीचैतन्यचन्द्र के परभक्ति-योग-पदवी का आविष्कार करने का प्राकृत विषयरसमग्न व्यक्तियों ने स्त्रीसम्बन्धी वाद-विवादों का त्याग कर दिया, योगिश्रेष्ठगण ने प्राणवायु-निरोधार्थ साधन क्लेशों का वर्जन कर दिया, तपस्वियों ने अपनी तपस्या का त्याग कर दिया और ज्ञानी-संन्यासियों ने निर्भेद ब्रह्मानुसन्धान का परित्याग कर दिया। उस समय भक्तिरस के अतिरिक्त दूसरा किसी प्रकार का अन्य रस जगत् में दृष्टिगत नहीं हो रहा था। श्रीगौरसुन्दर

रस जगत् अवतीर्ण होने पर घर-घर में हरिसंकीर्तन की तुमुल ध्वनि गूँज उठी थी। देह-देह में परिपुष्ट पुलकावलि एवं अश्रु समूहों ने शोभा पायी थी, प्रेमभक्ति की प्रगाढ़ता के उत्तरोत्तर उत्कर्ष से श्रुति की भी अगोचर, परम मधुर और अति श्रेष्ठ पदवी भी प्रकाशित हुई थी। सर्वचित्ताकर्षक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहर कनक-कान्ति (गौरवर्ण) धारण करके अवतीर्ण होने पर महा-प्रेम-समुद्र के रस की बाढ़ में यह निखिल जगत् अकस्मात् सब प्रकार से प्लावित और अदृष्टपूर्व (पहले न देखे गये) तथा अश्रुतचर (पहले सुने गये) प्रेम-

विकारों द्वारा अत्यन्त चमत्कृत हुआ था। महाप्रभु के आविर्भाव के कुछ पूर्व व्यक्ति दुर्निवार गर्व में गर्वित होकर समग्र शास्त्रों का सब प्रकार से संग्रह करते थे, अर्थात् 'मैं सर्वशास्त्रवित् हूँ, मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है'—ऐसा समझते थे। कोई-कोई तो स्वयं-ही-स्वयं को कृतार्थ समझने वाले थे)। स्मृतिस्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक-कर्म तथा तपस्या, सांख्ययोगादि मार्गों में ऊँचनीच के भाव से अवस्थित व्यक्तियों में से कोई-कोई मात्र दो-तीन बार हरि की नामावली का जप भी करते थे, तथापि उनका चित्त कपट से पूर्ण ही था। किन्तु गौरचन्द्र के अवतीर्ण होने पर 'प्रेम' भी साधारण वस्तु हो गया था, अर्थात् क्या पापी और क्या धर्मात्मा; सर्वसाधारण को ही प्रेम प्राप्त हुआ था। देवतागण जिनके पादपद्मों की सेवा की वांछा करते रहते हैं, उन्हीं लीलामय पुरुष श्रीचैतन्यदेव ने प्रपंच में अवतीर्ण होकर विश्वव्यापिनी सुमधुरा प्रेमपीयूष-लहरी का सर्वत्र प्रकृष्ट रुप से विस्तार किया, जिससे क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या जड़मति और क्या दीन-हीन अभागा—इस संसार के सभी व्यक्तियों में भक्ति प्राप्ति की योग्यता एवं श्रीहरि के चरणों में किसी एक अपूर्व चमत्कारमय-अद्वय-

ज्ञानरस का उदय हुआ था। प्रेमरस-रसिक-शिरोमणि स्वयं भगवान् श्रीगौरचन्द्र के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने पर, शंकर-नारदादि सभी ने (अद्वैत, श्रीवास आदि भक्तों के रुप में) आगमन किया था। स्वयं लक्ष्मी भी (श्रीलक्ष्मीप्रिया और विष्णुप्रिया के रुप में) आविर्भूत हुई थीं। स्वयं भगवान् से अभिन्न, उनके प्रकाश-स्वरुप बलदेव (पाखण्ड दलनकारी नित्यानन्दराय के रुप में) विराजमान थे। यादव भी (शची, जगन्नाथ आदि के रुप में) प्रकाशित हुये थे; और अधिक क्या कहूँ, नन्दादि व्रजवासिगण, सुबल-प्रमुख सब सखा, गोपी-प्रमुख शक्तिगण, रक्तक, चित्रक आदि दासगण, अर्थात् कृष्णलीला के नित्यसिद्ध सभी पार्षद गौरलीला में अवतीर्ण हुये थे। तपाये हुये स्वर्ण जैसी कान्ति वाले गौरसुन्दर के पृथ्वी पर अपने अलौकिक प्रेम का वितरण करने पर दास, सखा और ऐश्वर्यज्ञानहीन केवल मधुर रस की नित्य-सिद्ध सेविकाएँ एवं प्रेयसीवर्ग,—इन सब ने ही गौरपादपद्म-सान्निध्य में अवतीर्ण होकर पहले (कृष्णलीला के) प्रेमास्वादन की अपेक्षा भी और अधिक महा-प्रेमामृत सम्पत्ति प्राप्त की। अति अलौकिक परम-महिमा-मंडित श्रीकृष्ण चैतन्य के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने पर कुलवधुगण भी (लज्जा परित्यागपूर्वक कृष्णप्रेम में) अत उच्च स्वर से हँसती थीं, इन्द्रियतर्पणपरायण कुविषय-

पाषाण-निर्मित कठिन हृदय भी सब प्रकार से द्रवीभूत हुये थे, तत्त्वज्ञानहीन अज्ञ व्यक्तियों ने भी (श्रीचैतन्य की कृपा से तत्त्वज्ञान प्राप्त करके) सब शास्त्रज्ञ-समाज को भी धिक्कारा था (अर्थात् पारम्परिक विद्या में निपुण पण्डिताभिमानी शास्त्रज्ञ व्यक्तियों

को शास्त्रज्ञान में धिक्कृति प्रदान की थी) । चैतन्याविर्भाव के पहले से इस प्रपंच में सर्वशास्त्रवित् पण्डिताभिमानी व्यक्तियों की भी कृष्ण सेवारुप चेतनवृति आच्छादित–प्राय थी। उन्होंने सर्व–पुरुषार्थ–शिरोमणि कृष्णप्रेम को लक्ष्य नहीं किया था, क्योंकि उनकी बुद्धिवृत्ति अति सामान्य और सन्देह युक्त थी; किन्तु अभी गौरचन्द्र के कृपापूर्वक जगत् में उदित होने के कारण सुदुर्बोध, परम चमत्कारमय विभावअनुभाव आदि सामग्री से पुष्ट उन्नतोज्ज्वला मधुररसमयी प्रेमभक्ति में किसका प्रवेश नहीं हुआ है? सर्वज्ञ मुनिवरों के द्वारा युक्ति तथा तर्कों से अपने–अपने मतों का प्रकृष्ट रुप से विस्तार करने पर भी किसी व्यक्ति को पहले उन सब पक्षपात–पूर्ण युक्तियों में सुदृढ़ विश्वास नहीं था। अब अप्रियतम–प्रभावशाली श्रीगौरचन्द्र के उदित होने पर, हरिभक्ति, जो वेद का एकमात्र प्रतिपाद्य परमार्थ है, उस पर जिसने निश्चय नहीं किया है, ऐसा कौन है? विशेष सदाचारी और परमधार्मिक प्राचीन–महापुरुषों के द्वारा वैकुण्ठादि लोकों के सुख को प्राप्त करके कोई–कोई व्यक्ति ही कृतार्थ हुआ करता था, किन्तु श्रीचैतन्यचन्द्र ने तो जैसे समस्त विश्व को ही प्रेम समुद्र में निमज्जित कर दिया है, पहले और किसी ने भी ऐसा नहीं किया था। धर्म–विषयणि अतुलनीया निष्ठा एवं श्रेष्ठ–भक्ति को सम्यक्रुप से आश्रय करके भी लोग लौह की भाँति सुकठिन हृदय धारण करके पृथ्वी पर अवस्थान करते थे; (किन्तु श्रीगौर–हरि की कृपा से) अहो! गोहत्या से भी अधिक घोर पाप करने वाले व्यक्तियों ने (पाप–प्रवृत्ति से सर्वतोभाव से मुक्त होकर) अश्रुप्रवाह के द्वारा विश्व को प्लावित किया है। अहो! क्या कोई भी व्यक्ति कांचन–कान्ति वाले श्रीगौरसुन्दर के दुर्विगाह्य (दुर्ज्ञेय) रंग को जान सकता है? विपुल दुर्विगाह्य (दुर्ज्ञेय) महिमा के प्रभाव से श्रीगौरसुन्दर ने समग्र विश्व को विस्मयसविष्ट किया है। श्रीकृष्णावेश के कारण कभी तो वे बाल कृष्णलीला का प्रकाश करते हुये जानु (घुटनों द्वारा चलते हैं, कभी गोहपालक लीला का चरित्र प्रकाशित करते हुये बहुरंगी अभिनय करके नृत्य कर रहे हैं, और कभी श्रीराधाभावाविष्ट होकर श्रीकृष्ण विरह में 'हरि'! 'हरि'!! 'हरि'!!! पुकारते हुये विरह पीड़ा से उत्पन्न आर्त्त के कारण रोदन कर रहे हैं। अपने प्रेम में उन्मत्त होकर श्रीगौरसुन्दर द्वारा पृथ्वी पर उत्कट नृत्य आरम्भ करने पर देवताओं ने दुन्दुभि–वादन किया था, प्रधान–प्रधान गन्धर्वों ने संकीर्त्तन आरम्भ किया था, सिद्धगणों ने निरन्तर पुष्पवृष्टि द्वारा भूमण्डल को समाच्छन्न किया था। मनोहर स्तोत्रों के पाठ में कुशल महर्षिवृन्द ने प्रीति के साथ उनका स्तव किया था। श्रीगौरहरि महाभावामृतरस में मग्न होकर कभी तो हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी मूर्च्छित हो जाते हैं, कभी भूमि पर लोट–पोट होने लगते हैं, कभी भागते लगते हैं, और कभी 'हा–हा' ऐसा महत् शब्द करते हैं;—इस प्रकार से वे गौरहरि नाना भावों से प्रपंच में विहार कर रहे हैं।

(४१७) **गौः भा—**सीमा,—चरम, पराकाष्ठा। दुष्कर,—दुर्लभ, दुष्प्राप्य, विरल।

प्रभु को बाह्यज्ञान की प्राप्ति और 'कृष्ण' कहकर क्रन्दन—

क्षणेके हइला बाह्य विश्वम्भर–राय।
सबे प्रभु 'कृष्ण कृष्ण' बलये सदाय॥४१९॥

(४१९) **प. अनु०—**कुछ ही क्षणों में श्रीविश्वम्भर राय को बाह्य–दशा प्राप्त हो गई,

फिर भी वे केवल 'कृष्ण-कृष्ण' ही निरन्तर बोलते रहे।

कृष्णेतर-शब्दोच्चारण का त्याग—

बाह्य हइलेओ बाह्य-कथा नाहि कयं
सर्व-वैष्णवेर गला धरिया कान्दय॥४२०॥

(४२०) **प. अनु०**—बाह्य ज्ञान होने पर प्रभु कृष्णेतर-कथा (दुनियादारी की चर्चा) नहीं कर रहे थे। वे सब वैष्णवों के गले लग-लगकर केवल क्रन्दन करते रहे।

प्रभु को सान्त्वना देने के बाद
सबका प्रस्थान—

सबे मिलि' ठाकुरेरे स्थिर कराइला।
चलिला वैष्णव-सब महानन्द हैया॥४२१॥

(४२१) **प. अनु०**—सब वैष्णवों ने मिलकर प्रभु को स्थिर किया और फिर सब बड़े आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये।

परवर्ति में प्रभु का अनुगमन करते हुए
कुछ छात्रों का अपरविद्यानुशीलन-त्यागपूर्वक
हरिभजनार्थ संन्यास-ग्रहण—

कोन कोन पड़ुया-सकल प्रभु-संगे।
उदासीन-पथ लइलेन प्रेम-रंगे॥४२२॥

(४२२) **प. अनु०**—किसी-किसी विद्यार्थी ने तो प्रभु के संग प्रेम-रंग में रंग कर वैराग्य का पथ ही अपना लिया।

(४२२) **गौः भा**—प्रभु के छात्रों में से किसी-किसी ने प्रापंचिक संसार के प्रति प्रभु के सर्वोत्तम आदर्श वैराग्य या संन्यास का अनुसरण करने के उद्देश्य से वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम स्वीकार किया था। उन्होंने कर्मि-वानप्रस्थ और कर्मि-संन्यासी अथवा निर्भेद-ब्रह्मानु-सन्धारनरत वानप्रस्थ या यति-धर्म ग्रहण नहीं किया था। सभी ने कृष्णप्रेमभक्ति के प्रबल आनन्द-वेग के वशवर्ती होकर युक्त वैष्णव-वानप्रस्थ और युक्त वैष्णव-संन्यास ही ग्रहण किया था।

प्रभु के निज-नाम-प्रेम-प्रकाशारम्भ के
फल से भक्तों के दुःखों का खण्डन—

आरम्भिला महाप्रभु आपन-प्रकाश।
सकल-भक्तेर दुःख हइल विनाश॥४२३॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दचान्द जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥४२४॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे श्रीसंकीर्त्तनारम्भ वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः। (४२३-४२४) प. अनु०—महाप्रभु ने जब अपना प्रकाश आरम्भ कर दिया, तो सब भक्तों के दुःखों का विनाश हो गया। श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र जिनके सर्वस्व हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का कुछ गान करते हैं।

इति गौड़ीय भाष्य में प्रथम अध्यायः समाप्त

O

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्री अद्वैत के निकट भक्तों द्वारा प्रभु के कृष्णप्रेम का वर्णन, उसके श्रवण से अद्वैत प्रभु का आनन्द और आविष्ट (प्रेमावेश से युक्त)-चित्त से सबके निकट अपना स्वप्न वृत्तान्त कथन तथा सब भक्तों द्वारा हर्ष से कृष्ण-कीर्त्तन, श्रीवासादि भक्तों को देखने मात्र से ही प्रभु का प्रणाम और उनके प्रति भक्तों का आशीर्वाद, प्रभु का उसे स्वीकार करके अनेक प्रकार से वैष्णव-सेवादर्श का प्रदर्शन, जिसके दर्शन से भक्तों का आशीर्वाद और आशा, नवद्वीपवासी वैष्णव-विद्वेषी और निन्दक पाखण्डियों के अत्याचार के फलस्वरुप भक्तों के दुःख को सुनने से प्रभु का भक्तों को आश्वासन प्रदान और पाखण्डियों के प्रति क्रोधावेश शचीमाता से अनुरोध, एक समय प्रभु के घर जाकर श्रीवास-पण्डित द्वारा प्रभु के शरीर में महा-भक्तियोग के लक्षणों का दर्शन, श्रीवास द्वारा शची के निकट उनके पुत्र के कृष्णप्रेम वर्णन के फल से माता का पुत्र के सम्बन्ध में वायुरोग-ज्ञान का परित्याग, गदाधार, गदाधर के साथ प्रभु का अद्वैत के घर जाना और भाव से कृष्ण के अर्चन में स्तव, विश्रम्भ-स्निग्ध गदाधर द्वारा उसका निषेध और विस्मय, बाह्यज्ञान-प्राप्ति के बाद अपने आपको छिपाते हुये प्रभु द्वारा अद्वैत की स्तुति करने पर भी अद्वैत के चित्त में प्रभु के अवतार की उपलब्धि तथा प्रभु के औदार्य अवतारित्व की परीक्षा करने के लिए शान्तिपुर में जाना, भक्तों के साथ प्रभु का प्रतिदिन कृष्ण-कीर्तन और विप्रलम्भ प्रेमविकारावेश एवं अन्तरंग भक्तों के पास गया से लौटते समय 'कानाई की नाटशाला' पर तमाल-श्यामल अंग नवघनवर्ण किशोर के दर्शन का वर्णन, वर्णन के समय प्रेम-मूर्च्छा, बाह्यज्ञान आने पर प्रभु की भक्तों द्वारा सहर्ष प्रशंसा, घर में जाकर भी प्रभु का निरन्तर आनन्दावेश और सबके निकट कृष्णनुसन्धान। एक दिन गदाधर के मुख से अपने हृदय में कृष्ण का अवस्थान सुनने पर नाखुनों के द्व ारा प्रभु की अपने वक्ष को विदीर्ण करने की चेष्टा और अन्त में गदाधर के प्रयत्न से प्रभु का धैर्य धारण, पुत्र की दशा-दर्शन से व्याकुल शची का वात्सल्य-स्नेह के बदले में गौरव-भय, भक्तों के साथ सन्ध्या के समय अपने घर में मुकुन्द का कीर्तन गान सुनना, सर्वरात्रव्यापी कीर्तन, उससे निद्रा-सुखभंग होने के कारण पाखण्डियों का क्रोध, विशेषतया श्रीवास के विरुद्ध क्रोध से राजा की असन्तुष्टि का मिथ्या प्रचार, भक्त-वत्सल सर्वज्ञ प्रभु द्वारा नृसिंह के अर्चन में व्यस्त श्रीवास के घर जाकर अपने चतुर्भज ऐश्वर्यमय रुप का प्रदर्शन और कृपाश्वास-श्रवण से कृपापूर्वक स्त्री-सहित श्रीवास को अपने रुप का दर्शन और अर्चन के लिए आदेश, सपरिवार श्रीवास द्वारा प्रभु का पूजन और दैन्योक्ति, श्रीवास के प्रति प्रभु के अभय-वाक्य, प्रत्यक्ष में प्रभु के आदेश प्राप्तिमात्र से श्रीवास के भाई की कन्या श्रीनारायणी की 'कृष्ण' कहकर मूर्च्छा और

क्रन्दन, इन सब ऐश्वर्यों के दर्शन से श्रीवास का पाखण्डि-भय परित्याग और प्रभु-स्तुति-

कीर्तन, श्रीवास को वेदादि के दुर्लभ प्रभु के ऐश्वर्य-प्रकाश का दर्शन, श्रीवास को अपने गूढ़-प्रकाश को व्यक्त करने का प्रभु द्वारा निषेध और उनको अभयाश्वास-प्रदान करने के बाद प्रभु का अपने घर के लिए प्रस्थान, ग्रन्थकार द्वारा कृष्णसेवामय श्रीवास-भवन की माहात्म्य-स्तुति, कार्ष्ण सेवा (वैष्णव-सेवा) ही कृष्णकृपा-प्राप्ति का एकमात्र उपाय कहकर कीर्तन तथा नित्यानन्द-बलदेव के द्व ारा ग्रन्थ-रचनार्थ हृदय में आदेश-प्राप्ति आदि विषय वर्णित हुये हैं।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

श्रीगौरसुन्दर की जय—

जय जय जगन्मंगल गौरचन्द्र।
दान देह' हृदये तोमार पदद्वन्द्व ॥१॥
भक्तगोष्ठी-सहित गौरांग जय जय।
शुनिले चैतन्यकथा भक्ति लभ्य हय ॥२॥

(१-२) प. अनु०—हे जगन्मंगल श्रीगौरचन्द्र! आपकी जय हो, जय हो, अपने श्रीयुगल-चरण आप हमारे हृदय को प्रदान कीजिए। जिनकी कथा को सुनने से भक्ति प्राप्त होती है, उन श्रीगौरांग की भक्त-मण्डली के साथ जय हो, जय हो।

प्रभु के कृष्णप्रेमविकार के दर्शन से विस्मित भक्तों का अद्वैत के पास उसका वर्णन—

ठाकुरेर प्रेम देखि' सर्व-भक्तगण।
परम-विस्मित हैल सबाकार मन ॥३॥
परम-सन्तोषे सबे अद्वैतेर स्थाने।
सबे काहिलेन यत हैल दरशने ॥४॥

(३-४) प. अनु०—प्रभु श्रीगौरचन्द्र में श्रीकृष्णप्रेम के दर्शन कर सब भक्तों के मन में बड़ा ही विस्मय हुआ। उन्होनें जो कुछ इधर देखा, उससे परम सन्तुष्ट होकर उन्होंने वह सब कुछ श्रीअद्वैत प्रभु को जा सुनाया।

भक्तों के वाक्य सुनकर, प्रभु के अवतरण को जानकर भी अद्वैताचार्य द्वारा उस प्रसंग को छिपाना—

भक्तियोग-प्रभावे अद्वैत महाबल।
'अवतरियाछे प्रभु'-जानेन सकल ॥५॥
तथापि अद्वैप-तत्त्व बुझन ना याय।
सेइक्षणे प्रकाशिका तखने लुकाय ॥६॥
शुनिया अद्वैत बड़ हरिष लुकाय।
परम-आविष्ट हइ' कहिते लागिला ॥७॥

(५-७) प. अनु०—भक्तियोग के प्रभाव से महापराक्रमशाली श्रीअद्वैत यह सब जानते थे कि, 'प्रभु ने अवतार लिया है'। तथापि श्रीअद्वैत प्रभु का तत्त्व कुछ समझ में नहीं आता है, क्योंकि वे क्षणभर में अपना प्रकाश करके तत्काल ही अपने को छिपा लेते हैं। भक्तों की बात सुनकर श्रीअद्वैत बड़े प्रसन्न हुये और आवेश में आकर कहने लगे।

(५-६) गौः भाः—(चैः चः आदि षष्ठ पः २५-२९, ३२-३६, ४१-४२, १११ ११३), —"महाविष्णुर अंश—अद्वैत गुणधाम। ईश्वरे अभेद, तेञि 'अद्वैत' पूर्णनाम॥ पूर्वे यैछे कैल सर्व-विश्वेर सृजन। अवतरि' कैल एवे भक्ति-प्रवत्तन॥ जीव निस्तारिल कृष्णभक्ति करि' दान। गीता-भागवते कैल भक्तिर व्याख्यान॥ भक्ति-उपदेश बिनु ताँर नाहि कार्य। अतएव नाम हैल 'अद्वैत-आचार्य'॥ वैष्ाावेर गुरु तेंहो जगतेर आर्य। दुइनाम-मिलने हैल 'अद्वैत-आचार्य'॥ अद्वैत-आचार्य—ईश्वरेर

अंशवर्य। ताँर तत्त्व-नाम-गुण, सकलि आश्चर्य॥ याँहार तुलसीदले, याँर द्वारा कैल प्रभु कीर्तन प्रचार। याँर द्वारा कैल प्रभु जगत् निस्तार॥ आचार्य-गोसांईर गुण-महिमा अपार। जीवकीट कोथाय पाइवेक तार पार॥ आचार्य-गोसांई—चैतन्येर मुख्य-अंग। आर एक अंग ताँर—प्रभु-नित्यानन्द॥ चैतन्य गोसंइके आचार्य करे 'प्रभु-ज्ञान'। आपनाके करेन ताँर 'दास '-अभिमान॥ सेइ अभिमाने सुखे आपना' पासरे। 'कृष्णदास हओ'-जीवे उपदेश करे॥ अद्वैत-आचार्य गोसांईर महिमा अपार। याँहार हुँकारे कैल चैतन्यावतार॥ संकीर्तन प्रचारिया सर्व जगत तारिल। अद्वैत-प्रसादे लोक प्रेमधन पाइल॥ अद्वैत-महिमा अनन्त, के पारे कहिते? सेइ लिखि, येइ शुनि महाजन हैते॥"

(६) गौः भाः—श्रीअद्वैत प्रभु का तत्त्व और उनकी क्रिया-मुद्रा साधारण प्राकृत जीव नहीं जान सकता है। अपनी इच्छा से कभी कृपा-वश वे अपनी अप्राकृत तत्त्व-महिमा प्रकाशित कर देते हैं, फिर कभी अपनी अप्राकृत तत्त्व-महिमा छिपा लेते हैं।

(आलवन्दारु यामुनाचार्य-कृत स्तोत्ररत्न के १३श श्लोक में)—"उल्लंघितत्रिविधसीम मातिशायिसम्भावनं तव परिब्रढिम-स्वभावम्। मायाबलेन भवतापि निगुह्यमानं पश्यन्ति केचिद निशं त्वदनन्यभावाः॥"

अर्थात्—'हे भगवान्! देश, काल और चिन्ता—इन तीनों की सीमा में समस्त वस्तुएँ आबद्ध हैं, किन्तु आपका गूढ़स्वभाव सम और अतिशय-शून्य होने के कारण उक्त तीनों सीमाओं को पार करके विद्यमान है। माया बल के द्वारा आप अपने उस स्वभाव को छिपा लेते हैं किन्तु आपके अनन्य भक्तगण सर्वदा आपके उस स्वरुप का दर्शन करने में योग्य हैं।'

भक्तों से अपने स्वप्न का वृतान्त वर्णन और स्वप्नदृष्ट पुरुष द्वारा अपने व्रत और प्रतिज्ञा के साफल्य की सम्भावना का कथन—

''मोर आजिकार कथा शुन, भाइ-सब!
निशिते देखिलुँ आमि किछु अनुभव॥८॥
गीतार पाठेर अर्थ भाल ना बुझिया।
थाकिलाङ दुःख भावि' उपास करिया॥९॥
कथो रात्र्ये आसि' मोरे बले एकजन।
उठह आचार्य! झाट करह भोजन॥१०॥
एइ पाठ, एइ अर्थ कहिलुँ तोमारे।
उठिया भोजन कर,' पूजह आमारे॥११॥
आर केन दुःख भाव' पाइला सकल।
ये लागि' संकल्प कैला, से हइला सफल॥१२॥
यत उपवास कैला, यत आराधन।
यतेक करिला 'कृष्ण' बलिया क्रन्दन॥१३॥
या' आनिते भुज तुलि' प्रतिज्ञा करिला।
से-प्रभु तोमारे एवे विदित हइला॥१४॥

(८-१४) प. अनु०—"हे भाइयों! तुम सब मेरी आज की एक बात सुनो। आज रात में मुझे कुछ अनुभव हुआ है। गीता के किसी एक पाठ का अर्थ भली प्रकार समझ न पाने से मैं बड़ा दुःखित हुआ और उपवास करके पड़ा रहा। कुछ रात व्यतीत होने पर किसी ने मुझसे यह कहा कि, —"आचार्य! उठो और जल्दी से भोजन करो। वह पाठ यह है और उसका अर्थ यह है-यह मैंने तुम्हें कह दिया। अब उठकर भोजन करो और मेरी पूजा करो। सब कुछ तो पा लिया, फिर अब दुःख क्यों मानते हो? जिस कार्य के लिए तुमने उपवास किये, जितनी आराधना की और 'कृष्ण' कहकर जितको ले आने के लिए भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की, वे ही तुम्हारे प्रभु इस समय प्रकट हो गये हैं।

(१२-१४) गौः भाः—आर केन.....

.....हइला,—(चैः चः आदि ३य पः ९१, ९५-१०९ संख्या)—"आचार्य-गोसांई—प्रभुर भक्त-अवतार। हेतु याँहार हुँकार॥ प्राकटिया देखे आचार्य,—सकल संसार। कृष्णभक्तिगन्धहीन विषय-व्यवहार॥ केह पापे, केह पुण्ये करे विषय-भोग। भक्तिगन्ध नाहि,—याते याय भवरोग॥ लोकगति देखि' आचार्य करुण-हृदय। यदि करेन अवतार। आपने आचरि' भक्ति करेन प्रचार॥ नाम बिनु कलिकाले धर्म नाहि आर। कलिकाले कैछे हबे कृष्ण-अवतार॥ शुद्धभावे करिव कृष्णेर आराधन। निरन्तर सदैन्ये करिव निवेदन॥ आनिया कृष्णेरे करौं कीर्तन संचार। तबे से 'अद्वैत' नाम सफल आमार॥ कृष्ण वश करिवेन कोन् आराधने। विचारिते एक श्लोक आइल ताँर मने॥ (तथाहि गौतमीय-तन्त्रे नारद-वाक्य)—

"तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा। विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥" एइ श्लोकार्थ आचार्य करेन विचारण। 'कृष्णके तुलसीजल देय येइ जन॥ ताँर ऋण शोधिते कृष्ण करेन चिन्तन। जलतुलसीर सम किछु घरे नाहि धन॥ तबे आत्मा वेचि' करे ऋणेर शोधन।' एत भावि आचार्य करेन आराधन॥ गंगाजले, तुलसीमंजरी अनुक्षण। कृष्णपरदपद्म भावि' एमते कृष्णेर कराइला अवतार॥ चैतन्येर अवतारे एइ मुख्य हेतु। भक्तेर इच्छाय अवतार धर्मसेतु॥"

समस्त देशों और श्रीवास के घर में शीघ्र ही देव-दुर्लभ कृष्णकीर्तन-विलास के प्राकट्य की सम्भावना का कथन—

सर्वदेशे हइवेक कृष्णेर कीर्तन।
घरे-घरे नगरे-नगरे अनुक्षण॥१५॥
ब्रह्मार दुर्लभ भक्ति आछये यतेक।
तोमार प्रसादे एबे सबे देखिवेक॥१६॥
एइ श्रीवासेर घरे यतेक वैष्णव।
ब्रह्मादिरो दुर्लभ देखिवे अनुभव॥१७॥
भोजन करह तुमि, आमार विदाय।
आर-बार आसिवाङ भोजन-बेलाय॥'१८॥

(१५-१८) प. अनु०—अब सब देश में, नगर-नगर में, घर-घर में निरन्तर श्रीकृष्ण की कीर्तन होगा। अब तुम्हारी कृपा से जगत् के सभी प्राणी ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ भक्ति के अनुभव को देख पायेंगे। जितने वैष्णव हैं, वे सब इसी श्रीवास के घर ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ अनुभव को प्राप्त करेंगे। अब तुम भोजन करो, मैं भी जाता हूँ, फिर भोजन के समय आऊँगा।"

(१८) गौः भाः—आमार विदाय,—मैंने विदाई ग्रहण कर ली।

जाग्रत अवस्था में स्वप्नदृष्ट-पुरुष का अद्वैत को बाहर से विश्वम्भर रुप में दर्शन—

चक्षु मेलि' चाहि' देखि,—एइ विश्वम्भर।
देखिते-देखिते मात्र हइला अन्तर॥१९॥

(१९) प. अनु०—इतने में अपनी आँखें खुल जाने से देखता हूँ कि यही विश्वम्भर मेरे देखते-देखते अन्तर्हित हो गया।

(१९) गौः भाः—अन्तर,—अन्तर्हित, तिरोहित, अदृश्य।

स्वतन्त्र कृष्ण की दुर्बोध्य और दुर्ज्ञेय निगूढ़ लीला का रहस्य—

कृष्णेर रहस्य किछु ना पारि बुझिते।
कोन् रुपे प्रकाश वा करेन काहाते॥२०॥

(२०) प. अनु०—श्रीकृष्ण का रहस्य कुछ समझ में नहीं आता है। न जाने वे किस रुप में, जिसके भीतर अपना प्रकाश कर देते हैं।

(२०) गौः भाः—कृष्णेर .....काहाते,—(चैः चः आदि ३य पः ८७ संख्या)—"आपना

लुकाइते कृष्ण नाना यत्न करे। तथापि ताँहार भक्त जानये ताँहारे॥" (चैः चः अन्तय, षष्ठ पः १२४ संख्या)—"भक्त चित्ते भक्त गृहे सदा अवस्थान। कभु गुप्त, कभु व्यक्त स्वतन्त्र भगवान्॥"

विश्वम्भर के अग्रज (बड़े भाई) विश्वरुप का परिचय और प्रसंगरुप से बालक–विश्वम्भर की बाल्य–लीला के गुणों का वर्णन—

इहार अग्रज पूर्वे—'विश्वरुप' नाम।
आमार संगे आसि' गीता करित व्याख्यान॥२१॥
एइ शिशु—परम–मधुर रुपवान्।
भाइके डाकिते आइसेन मोर स्थान॥२२॥
चित्तवृत्ति हरे' शिशु सुन्दर देखिया।
आशीर्वाद करि' 'भक्ति हउक बलिया॥२३॥
आभिजात्ये हय बड़–मानुषेर पुत्र।
नीलाम्बर–चक्रवर्ती,—ताँहार दौहित्र॥२४॥
आपनेओ सर्वगुणो परम–पण्डित।
इँहार कृष्णेते भक्ति हइवे उचित॥२५॥

(२१–२५) प. अनु०—इनके बड़े भाई का नाम 'विश्वरुप' था जोकि मेरे पास आकर गीता की व्याख्या किया करते थे। उस समय परम–मधुर रुपवान् यह बालक अपने भाई को बुलाने को देखकर चित्त मोहित–सा हो जाता था इसे मैं 'भक्ति हो'– ऐसा कहकर आशीर्वाद किया करता था। वैसे भी यह ऊँचे कुल में बड़े आदमी का पुत्र है, श्रीनीलाम्बर–चक्रवर्ती कर दौहिक है, वे स्वयं भी सब गुणों से पूर्ण, परम पण्डित हैं। इसकी श्रीकृष्ण में भक्ति होनी उचित ही है।

(२४) गौः भाः—आभिजात्ये,—कलीनता या उच्च सद्वंश के गौरव से।

सभी भक्तों से विश्वम्भर के प्रति शुभाशीर्वाद ज्ञापनार्थ अनुरोध—

बड़ सुखी हइलाङ ए कथा शुनिया।
आशीर्वाद कर' सबे 'तथास्तु' बलिया॥२६॥

(२६) प. अनु०—सब पर श्रीकृष्ण की कृपा होवे से हुँकार करने लगे और सब वैष्णव जय–जयकार करने लगे।

समस्त विश्व के ऊपर अद्वैत की कृष्णकृपा बरसाने के लिए कामना और प्रतिज्ञा—

श्रीकृष्णेर अनुग्रह हउक सबारे।
कृष्णनामे मत्त हठ सकल–संसारे॥२७॥
यदि सत्य वस्तु हय, तबे एइखाने।
सबे आसिवेन एइ वामनार स्थाने॥''२८॥

(२७–२८) प. अनु०—सब, श्रीकृष्ण की कृपा होवे और यह सब संसार श्रीकृष्णनाम में मत्त हो जाए। यदि यह वस्तु सत्य है, तब इसी ब्राह्मण के घर सब आयेंगें

अद्वैत और भक्तों द्वारा आनन्द से हरि–कीर्तन–ध्वनि—

आनन्दे अद्वैत करे परम–हुँकार।
सकल–वैष्णव करे जयजयकार॥२९॥

(२९) प. अनु०—श्रीअद्वैत प्रभु आनन्द पूर्वक जोर–जोर से हुँकार करने लगे और सब वैष्णव जय–जयकार करने लगे।

सब भक्तों की जिह्वा पर नाम–स्वरुप से नामी–कृष्ण का अवतरण—

'हरि हरि' बलि डाके वदन सबार।
उठिल कीर्तनरुप कृष्ण–अवतार॥३०॥
केह बले,—'निमाइपण्डित भाल हैले।
तबे संकीर्तन करि' महा–कुतुहले॥३१॥

(३०–३१) प. अनु०—सब, 'हरि बोल' 'हरि बोल' पुकारने लगे। इस प्रकार वहाँ हरिनाम–संकीर्तन के रुप में श्रीकृष्ण का

अवतार हो गया। किसी ने कहा,–'निमाइ पण्डित के भक्त होने पर हम बड़े ही आनन्द से संकीर्तन किया करेंगे।'

(३०) गौः भाः—श्रीनवद्वीप–मायापुर में सभी की शुद्धसत्व सेवोन्मुख–जिह्वा से श्रीहरि से अभिन्न उनके श्रीनामों की ध्वनि श्रुत और कीर्त्तित होने लगी। उसमें नामकीर्तन से अभिन्न नामी–विग्रह श्रीकृष्ण कीर्तन, ध्वनि, शब्द या नाम के रुप में अवतीर्ण हुये।

(३१) गौः भाः—भाल,—निरभिमान साधु, भक्त, वैष्णव।

अद्वैत को प्रणाम करने के बाद भक्तों का प्रस्थान—

आचार्ये'र प्रणति करिया भक्तगण।
आनन्दे चलिला करि' हरि–संकीर्तन॥३२॥

(३२) प. अनु०—श्रीहरिसंकीर्तन करने के बाद सभी भक्तगण श्रीअद्वैताचार्य को प्रणामकर आनन्द से चल दिये।

दर्शनमात्र से सबके साथ प्रभु का प्रीति सम्भाषण—

प्रभु–संगे याहार याहार देख हय।
परम आदर करि' सबे सम्भाषय॥३३॥

(३३) प. अनु०—प्रभु के साथ जिस–जिसका भी मिलन होता था, प्रभु बड़े आदर के साथ उनसे वार्तालाप करते थे।

प्रभु द्वारा प्रभातःकाल में गंगा स्नान के समय श्रीवासादि भक्तों को दर्शनमात्र से प्रणाम और उनका कृष्णभजनार्थ प्रभु को आशीर्वाद—

प्रातः काले यबे प्रभु चले गंगास्नाने।
वैष्णव–सबार संगे हय दरशने॥३४॥
श्रीवासादि देखिले ठाकुर नमस्करे।
प्रीत हइया भक्तगण आशीर्वाद करे॥३५॥
''तोमार हउक भक्ति कृष्णेर चरणे।
मुखे 'कृष्ण' बल, 'कृष्ण' शुनह श्रवणे॥३६॥
कृष्ण भजिले से, बाप! सब सत्य हय।
कृष्ण ना भजिले, रुप–विद्या किछु नय॥३७॥
कृष्ण से जगतपिता, कृष्ण से जीवन।
दृढ़ करि' भज, बाप! कृष्णेर चरण॥'' ३८॥

(३४–३८) प. अनु०—प्रातःकाल जब प्रभु गंगा–स्नान को जाते थे तो उस समय सभी वैष्णवों के दर्शन होते थे। प्रभु श्रीवासादि भक्तों को देखते ही नमस्कार करते और भक्तगण भी प्रसन्न होकर उन्हें यह आशीर्वाद देते कि,—"श्रीकृष्ण–चरणों में तुम्हारी भक्ति हो, मुख से 'कृष्ण' बोलो और कानों से 'कृष्ण' सुनो। वत्स! श्रीकृष्ण का भजन करने से ही रुप, विद्या आदि सब सार्थक होते हैं, कृष्ण को न भजने से इन सबकी कुछ भी कीमत नहीं है। श्रीकृष्ण ही जगतपिता हैं। श्रीकृष्ण ही सबके जीवन हैं। इसलिए वत्स! दृढ़तापूर्वक श्रीकृष्णचरणों को भजो।"

अपने भक्तों के आशीर्वाद को सुनकर प्रभु की कृपा–दृष्टि—

आशीर्वाद शुनिया प्रभुर बड़ सुख।
सबारे चा'हेन प्रभु तुलिया बड़ सुख॥३९॥

(३९) प. अनु०—भक्तों का आशीर्वाद सुनकर प्रभु को बड़ा सुख होता और प्रभु अपना श्रीमुख उठाकर उनकी ओर देखते हुये कहते—

अमानी और मानद–धर्म के पूर्ण आदर्शरुप में दैन्य–विनय से अपने भक्तों की सेवा–याचना—

''तोमरा से कह सत्य, करि' आशीर्वाद।
तोमरा वा केन आन करिवा प्रसाद?४०॥

(४०) प. अनु०—"आप लोग ही सच्चा आशीर्वाद देते हैं। आप लोग भला श्रीकृष्ण भक्ति के अतिरिक्त दूसरी कृप क्यों करेंगे?

(४०) गौः भाः—आन,—कृष्णभक्ति के बिना दूसरी, इतर, विरुद्ध, प्रतिकूल।

स्वयं प्रभु होने पर भी दासाभिमान से प्रभु का स्वभक्तों की स्तुति द्वारा वैष्णव-माहात्म्य ज्ञापन—

तोमरा से पार' कृष्णभजन दिवारे।
दासरे सेविले कृष्ण अनुग्रह करे॥४१॥
तोमरा ये आमारे शिखाओ विष्णुधर्म।
तेञि बुझि,—आमार उत्तम आछे कर्म॥४२॥

(४१-४२) प. अनु०—आप लोग ही कृष्णभजन देने में समर्थ हैं, कारण, दासों की सेवा करने पर श्रीकृष्ण कृपा करते हैं। आप लोग जो मुझे विष्णुधर्म की शिक्षा दे रहे हैं, उससे मैं समझता हूँ कि मेरे पूर्व कर्म अच्छे हैं।

भक्तवैष्णवों की सेवा से ही कृष्णसेवा प्राप्त होती है, इसलिए स्वयं प्रभु होकर भी अपने भक्त वैष्णवों का विविध सेवा-विधान—

तोमा' सबा' सेविले से कृष्णभक्ति पाइ।''
एत बलि' कारो पा'ये धरे सेइ ठाँइ॥४३॥
निडाड़ये वस्त्र कारो करिया यतने।
धुतिवस्त्र तुलि' कारो देन त' आपने॥४४॥
कुश गंगामृत्तिका काहारो देन करे।
साजि बहि' कोन दिन चले कारो घरे॥४५॥

(४३-४५) प. अनु०—आप सबकी सेवा करने से ही मुझे कृष्ण-भक्ति प्राप्त होगी।" इतना कहकर प्रभु वहीं पर किसी के चरण पकड़ने लगते, कभी बड़े यत्न से किसी के गीले वस्त्र निचोड़ने लगते। किसी की धोती आदि वस्त्र उठाकर उसके हाथ में पकड़ाने लगते। किसी के हाथ में कुश और गंगा की मिट्ठी लाकर देने लगते और किसी-किसी दिन किसी की पूजा की डाली (टोकरी) उठाकर उसके घर तक पहुँचाने लगते।

(४१-४३) गौः भाः—दासे—करे, एवं तोमा—पाइ,—(इतिहास-समुच्चय में लोमश-वाक्य)-

"तस्माद्विष्णुप्रसादाय वैष्णवान् परितोषयेत्।
प्रसादसुमुखो विष्णुस्तेनैव स्यान्न संशयः॥"

अर्थात् 'इस कारण श्रीहरि का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए वैष्णवों का तुष्टि विधान करना चाहिए, तभी निःसन्देह **श्रीहरि प्रसन्न होंगे।**'

(इसी इतिहास-समुच्चय में भगवद्वाक्य)-"न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥"

अर्थात् भगवान की उक्ति है कि, 'मेरी भक्ति में तल्लीन न होने पर चारों वेदों के ज्ञाता स्वाध्याय-रत व्यक्ति भी मेरे प्रिय नहीं हो सकते हैं; जबकि भक्तिमान् होने पर चाण्डाल व्यक्ति भी मेरा प्रिय होता है। अतः चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने पर भी मेरे भक्त को ही दान देना चाहिए और उनका उच्छिष्ट ग्रहण करना चाहिए। वह भक्त-मेरे समान ही पूजनीय है।'—

(आदिपुराण में)-"ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जानाः। मद्भक्तानांच ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥"

अर्थात् 'हे अर्जुन, जो मेरे भक्त हैं वे वास्तविक भक्तों के रुप में गणनीय नहीं हैं; वस्तुतः मेरे भक्तों के भक्त ही मेरे सर्वोत्तम भक्तों के रुप में गिने जाते हैं।'

(बृहन्नारदीय में यज्ञमाल्युपाख्यान के बाद)-"हरि-

भक्तिरतान् यस्तु हरिबुद्ध्या प्रपूजयेत्।

तस्य तुष्यन्ति विप्रेन्द्रा ब्रह्माविष्णु-शिवादयः॥"

अर्थात्,-'हे द्विजोत्तम, विष्णुभक्तिनिष्ठ वैष्णवों को श्रीहरि कि अभिन्न अंग-जानकर उनका अर्चन करने पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी की प्रीति साधित होती है।'

(पाद्मोत्तर खंड के श्रीशिव और उमा के संवाद में)-"अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः। न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः। तस्मात् सर्वप्रयन्येन वैष्णवान् पूजयेत् सदा॥"

अर्थात् 'वैष्णवों की पूजा का परित्याग करके जो गोविन्द का अर्चन करते हैं, उन्हें भगवद्भक्त नहीं कहा जाता है, वे तो 'दाम्भिक' नाम से जाने जाते हैं; इसलिए सर्वदा यत्न के साथ वैष्णवों का अर्चन करना चाहिये।'

(भाः ११/२६/३४ श्लोक में उद्धव के प्रति श्रीकृष्णोक्ति)-"सन्तो दिशन्ति चक्षुंषि बहिरर्कः समुत्थितः। देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च॥"

(भाः ७/५/३२ श्लोक में हिरण्यकशिपु के प्रति प्रह्लाद की उक्ति)-"नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्मृशत्यनर्थापगमो यदर्थः। महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥"

अर्थात्, 'जब तक गृहव्रती मनुष्यों की मति निष्किञ्चन भगवतद् भक्तों की पदरज का अभिषेक स्वीकार नहीं करती है, तब तक वह उरुक्रम कृष्ण के पादपद्मों का स्पर्श कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते है; क्योंकि कृष्णपादपद्म स्पर्श ही जीव के समस्त अनर्थनाश का एकमात्र कारण है।'

(भाः ९४६३, ६६, ६८ श्लोक में दुर्वासा के प्रति भगवान की उक्ति)

"अहं भक्तपराधीनों ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जन प्रियः॥ मयिनिर्बद्ध हृदयाः साधवः समदर्शनाः। वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सात्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम। मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥"

अर्थात् 'हे द्विज, मैं भक्तों के पराधीन हूँ,-मैं स्वाधीन नहीं हूँ, अपितु भक्तों के अधीन हूँ। मेरा हृदय सर्वदा परम भक्त साधु-सन्तों के वश में रहता है। मैं—भक्तजनप्रिय हूँ। सती स्त्री जैसे सत्पति हृदय वाले समदर्शी साधुगण का हृदय हूँ; मेरे अतिरिक्त वे अन्य कुछ भी नहीं जानते हैं और मैं भी उनको छोड़कर और कुछ नहीं जानता हूँ।'

(भाः १०/५१/५४ श्लोक में कृष्ण के प्रति मुचुकुन्द की उक्ति)—"भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्यसमागमः। यर्हि तदैव सद्गतौ परावेशे त्वयि जायते रतिः॥"

अर्थात् "नाना योनियों में भ्रमण करते-करते किसी सौभाग्य से जब जीव का भवसागर से पार होने का समय आता है, तभी हे अच्युत, उसे साधुसंग प्राप्त होता है। साधुसंग होने से ही परावरेश (कार्य-कारणरुप समस्त जगत् के एक मात्र स्वामी) सद्गतिरुप आप में उसकी रति उत्पन्न होती है।"

(४२) **गौः भाः—**मेरा प्रचुर प्राक्तन-सौभाग्य होने के कारण आप मुझे भगवद्धर्म की शिक्षा दे रहे हैं। लौकिक-पारलौकिक फल भोग की कामना से युक्त कर्म ही आगमपायी (आने जाने वाला अनित्य धर्म), असद्धर्म, स्मार्तधर्म या अभक्तियुक्त अवैष्णव शाक्तेय-धर्म है। वह असद्धर्म, कामनायुक्त कर्म करने वाले इन्द्रियतर्पणपरायण भाग्यहीन अहंकार विमूढ़ व्यक्तियों को प्रथमतः स्वर्गादि का अनित्य आपात (प्रथम दृष्टि से) संसार सुख तथा बाद में त्रिताप युक्त दुःख प्रदान करता है। साधारण स्मार्तधर्म में भक्तिहीन सुनीति, ज्ञान और वैराग्य की जो सब कथाएँ हैं, वह

प्रथम दृष्ट्या प्रेयः जान पड़ने पर भी श्रेयः पथ नहीं है, परिणाम में मंगलदायक पथ नहीं है; उसका फल अनित्य है और अन्त में मन्द (दुःख) पैदा करने वाला है किन्तु भगवद्धर्म के अनुशीलन के फल से जीव के नित्य-अमिश्र (शुद्ध) कल्याण का उदय होता है। विष्णुधर्म,-परधर्म, सद्धर्म, भगवद्धर्म और आत्मधर्म है। यथा—(हः भः विः १०म विः) — "तथा वैष्णवधर्मांश्च क्रियमाणानपि स्वयम्। संपृच्छेत्तद्विदः साधुनन्योऽन्य प्रीतिवृद्धये॥ श्रद्धया भगवद्धर्मान् वैष्णवायानुपृच्छते। अवश्यं कथयेद् विद्वानन्यथा दोषभाग् भवेत्॥"

अर्थात् 'स्वयं वैष्णवधर्म का अनुष्ठान करने पर भी एक दूसरे में प्रीति बढ़ाने के लिए उस धर्म को जानने वाले साधुओं से प्रश्न करना चाहिए। श्रद्धायुक्त व्यक्ति द्वारा वैष्णवधर्म के सम्बन्ध में बार-बार प्रश्न पूछने पर उस जिज्ञासु भक्त के प्रति भगवद्धर्म का वर्णन और कीर्तन सुबुद्धिमान् व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए। अन्यथा दोष का भागीदार होना होगा।'

"नाख्याति वैष्णवं धर्म विष्णुभक्तस्य पृच्छतः। कलौ भागवतो भूत्वा पुण्यं याति शताब्दिकम्॥"

अर्थात् 'इस विषय में और भी कहा गया है कि, कलिकाल में हरिभक्तों के द्वारा वैष्णवधर्म के विषय में जिज्ञासा करने पर उनके निकट उस धर्म का वर्णन न करने पर उनके निकट उस धर्म का वर्णन न करने पर भगवद्भक्त के सौ वर्षों का इकट्ठा किया हुआ पुण्य ध्वस्त हो जाता है।'

(काशीखण्ड में, द्वारका-माहात्म्य में चन्द्रशर्मा की उक्ति)—

"एकादश्यां न भोक्तव्यः कर्त्तव्यो जागरः सदा। महोत्सवः प्रकर्त्तव्य प्रत्यहं पूजनं तव॥ पलार्द्धेनापि विद्धन्तु भोक्तव्यं वासरं तव। त्वत्प्रीत्याऽष्टौ मया कार्या द्वादश्यो व्रतसंयुताः॥ भक्तिर्भागवती कार्या प्राणैरपि धनैरपि। नित्यं नामसहस्त्रन्तु पठनीयं तव प्रियम्॥ पूजा तु तुलसीपत्रैर्मया कार्या सदैव हिं। तुलसी-काष्ठसंभूता माला धार्या सदा मया॥ नृत्यगीतं प्रकर्त्तव्य संप्राप्ते जागरे तव। तुलसीकाष्ठसम्भूतचन्दनेन विलेपनम्। करिष्यामि तवाग्रे च गुणानां तव कीर्तनम्॥ मथुरायां प्रकर्त्तव्यं प्रत्यब्दं गमनं मया। त्वत्कथा-श्रवणं कार्यं तथा पुस्तकवाचनम्॥ नित्यं पादोदकं मूध्नां मया धार्यं प्रयत्नतः। नैवेद्य भक्षणं-चापि करिष्यामि यतव्रतः॥ निर्माल्यं शिरसा धार्यं त्वदीयं सादरं मया। तव दत्त्वा यदिष्टन्तु भक्षणीयं मुदा मया॥ तथा तथा प्रकर्त्तव्यं तव तुष्टिः प्रजायते। सत्यमेतन्मया कृष्ण तवाग्रे परिकीर्त्तितम्॥"

अर्थात् 'एकादशी के दिन आहार नही करुँगा, निरन्तर जागरण करुँगा; प्रतिदिन महोत्सव के सहयोग से आपका अर्चन करुँगा; एकादशी-जन्माष्टमी आदि यदि आधे पल के द्वारा भी विद्ध हो, तब भी उस-उस दिन में आहार करुँगा; आपकी प्रीति कि लिए अष्ट महाद्वादशियों के व्रत का पालन करुँगा; धन द्वारा और अपने प्राणों पर खेल करके भी भागवती-भक्ति का अनुष्ठान करुँगा; प्रतिदिन आपके प्रिय सहस्र-नामों का अध्ययन करुँगा; निरन्तर तुलसी के द्वारा आपका अर्चन करुँगा; तुलसीकाष्ठमयी माला धारण करुँगा; एकादशी आदि के समय दिन-रात जागरण करके नृत्य-गीत आदि का अनुष्ठान करुँगा; आपके सम्मुख आपके ही गुणों का कीर्तन करुँगा; प्रत्येक वर्ष मथुरा जाऊँगा। मैं आपकी कथा का श्रवण और आपकी लीलाकथा के सम्बन्धित पुस्तकों का अध्ययन करुँगा; प्रतिदिन यत्न के साथ आपका चरणोदक मस्तक पर

धारण करुँगा; नियमानुसार आपके नैवेद्य का सेवन करुँगा।'

(भाः ७/७/३०-३२ श्लोक में)-"गुरुशुश्रुषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च। सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधेन च। श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुण कर्मणाम्। तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः। इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्।"

अर्थात् 'गुरु-सेवा, गुरुभक्ति, अपने को जो कुछ द्रव्य मिले उसे गुरु को अर्पित कर देना, साधु और भागवतजनों का संसर्ग, ईश्वर की आराधना, भगवत् कथा में श्रद्धा, भगवान् के गुणों और लीलाओं का कीर्तन, उनके पादपद्मों का चिन्तन, उनकी श्रीमूर्त्तियों का दर्शन और पूजनादि, सब प्राणियों में भगवान् हरि का निवास-ऐसा सोचकर उन सभी का यथोचित सम्मान करना चाहिए।-?'

(भाः ११/२/३४ श्लोक में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र के अन्यतम कवि-मुनि की उक्ति)-

"ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये। अञ्ञः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान्॥"

अर्थात् 'हे राजन्, भगवान् ने मूढ़बुद्धि व्यक्तियों को अनायास ही अपनी प्राप्ति के लिए जिन समस्त उपायों का उपदेश दिया है, उन्हें ही 'भागवत-धर्म' समझो।'

(भाः ११/३/२३-३० श्लोक में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र में अन्यतम प्रबुद्ध-मुनि की उक्ति)-"सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु। दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥ शौचं तपः तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्व न्द्वसंज्ञयोः॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेत-

ताम्। विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित्॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि। मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः। जन्मकर्मगुण ानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यश्चात्मनः प्रियम्। दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्। परिचर्यो चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः। मिथो रतिर्मिथरतुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥

अर्थात् 'हे नृप, सर्वप्रथम सब विषयों से चित्त के अनुराग को त्यागकर साधुसंग करना होगा; उसके बाद धीरे-धीरे सब जीवों पर दया, सजातीयाशयस्निग्ध और समशील ईश्वरभक्तों के साथ मित्रता, अपने से श्रेष्ठ वैष्णवों के प्रति सम्मान का भाव, बाहर और अन्दर की पवित्रता, तप (स्वधर्मानुष्ठान), तितिरक्षा (सरलता), ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःखादि एवं सर्वनियतन्तारुप से ईश्वर का दर्शन, दुर्जन-शून्य स्थान में स्थिति, गृह आदि में अनासक्ति, निर्जन में पड़ी हुई वृक्षादि की पवित्र छाल को धारण करना और जिस किसी उपाय से हो, सन्तोष की शिक्षा प्राप्त करना। भागवत-शास्त्रों में श्रद्धा, दूसरे शास्त्रों की भी निन्दा न करना, हरि-तोषण ारुप भजन द्वारा मन, वाक्य और शरीर के दण्ड-विधानरुप त्रिदण्ड धारण करना, सत्य बोलना और दम (बाह्येन्द्रिय-निग्रह), शम (अन्तरिन्द्रिय-निग्रह) की शिक्षा प्राप्त करना। विचित्रलीलामय श्रीहरि के जन्म, लीला और गुणों का श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करना तथा श्रीहरि की प्रीति या सुखविधानरूप सुष्ठु तोषण के उद्देश्य से ही समस्त क्रियाओं का अनुष्ठान करना। एकमात्र परमेश्वर के लिए ही यज्ञ, दान, जप-तप, सदाचार, प्रिय-द्रव्य,

भार्या (पत्नी), सन्तान, गृह और प्राणों को निवेदित करना। इस प्रकार हरिभक्ति परायण व्यक्तियों के साथ मित्रता स्थापित करना, विष्णुदास समझकर स्थावर जंगम सबके साथ सद्व्यवहार करना। सभी मनुष्यों में धार्मिकों के प्रति धार्मिकों में भी साधुओं के प्रति विशेष रूप से सेवा के अनुष्ठान का अभ्यास करना। उसके बाद परस्पर भगवान् विष्णु की अप्राकृत यशोराशि का कथोपकथन, परस्पर प्रीति, तुष्टि और हरि वैमुख्य रूप दुःख के निवारण का अभ्यास करना।'

(भाः ११/११/३४–४१, ११/१९/२०–२३ और ११/२९/९–१२ श्लोकों में भगवान् की उक्ति)–''मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम्। परिचर्या स्तुतिः पर्वगुणकर्मानुकीर्तनम्॥ दास्येनात्मानिवेदनम्॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम्। गीततान्डववादित्र–गोष्ठीभिर्मद्–गृहोत्सवः। यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिक–पर्वसु। वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम्॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः। उद्यानोपवनाक्रीड–पुरमन्दिर कर्मणि॥ संमार्जपलेपाभ्यां सेवकमण्डलवर्तनैः॥ गृहशुश्रुषणं मह्यं दासवद् यदमायया॥ अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरि–कीर्तनम्। अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम्॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः। तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते॥'' "श्रद्धामृतकथायां में शश्वद मदनुकीर्तनम् परिनिष्ठा च पूजाया स्तुतिभिः स्तवनं मम॥ आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम्। मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥ मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मदगुणेरणम्। मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च। इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थे यद् व्रतं तपः॥ कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि मदर्थे शनकैः स्मरन्। मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः॥ देशान् पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान्। देवासुरमनुष्येषु मद्भक्तचरितानि च॥ पृथक सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रा–महोत्सवान्। कारयेद्–गीतनृत्या–द्यैर्महाराजविभूतिभिः॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्। ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥

अर्थात्, 'हे उद्धव, मेरी श्रीमूर्ति अथवा मेरे भक्तों का दर्शन, अर्चन, सेवा, स्तव, प्रणाम और गुणानुवाद करना, मेरी कथा के श्रवण में श्रद्धा, मेरा अनुध्यान, प्राप्त द्रव्य का मुझको दान, दास्यभाव से मेरे लिए आत्मार्पण, मेरी जन्म–लीला का कीर्तन, जन्माष्टमी आदि मेरे सभी पर्वों का अनुमोदन, मेरे भवनों में नृत्य–गीत–वाद्य का अनुष्ठान और परिवार सहित मन्दिर में उत्सवादि कार्य करना। एक वर्ष में आने वाले समस्त प्रकार के पर्व दिवसों पर मेरी यात्रा, बलिविधान (पुष्पादि उपहारों का दान), वैदिकी और तान्त्रिकी दीक्षा ग्रहण करना, मेरे व्रत को धारण करना, मेरी श्रीमूर्ति की प्रतिष्ठा में श्रद्धा, अपने परिवार के या अन्यान्य व्यक्तियों के साथ इकट्ठे होकर मेरे प्रसाद–साधन कार्य, जैसे—उद्यान, उपवन, क्रीड़ा–गृह, नगर और मन्दिर आदि के निर्माण कार्यों में उद्यम, उन स्थानों का सम्मार्जन, गोबर से लेपन, जल से सेंचन, सर्वत्र भद्र–मण्डलादि विरचन, सेवन की भाँति निष्कपट भाव से मेरे मन्दिर की सेवा, निरभिमानता, निष्कपटता से किये गये सत्कार्यों का बखान न करना और मेरे उद्देश्य से जो दीप प्रज्वलित हुआ है, उसकी रोशनी का किसी दूसरी क्रिया में उपयोग न करना। जो–जो द्रव्य सर्वतनवाञ्छित हैं और जो–जो स्वयं को अतिशय प्रिय हैं, उन–उन सबका ही मेरे लिए निवेदन करना।

मेरी सुधामयी कथा में निरन्तर रति, सर्वदा मेरा नाम-कीर्तन, मेरी पूजा में निष्ठा, निरन्तर मेरी स्तुति करना, मेरी सेवा में आदर, सर्वांग द्वारा मेरा अभिवन्दन, सर्वश्रेष्ठ जानकर मेरे भक्तों की पूजा, सब प्राणियों में मैं ही स्थित हूँ, ऐसा भाव रखना, मेरे उद्देश्य से अंग-चेष्टा (भक्ति कार्य का अनुष्ठान करना), मेरे गुण वर्णन में वाणी का उपयोग, मुझमें मेरी प्रीति कि लिए धन, भोग और सुखों का त्याग, मेरे लिए मन्दिर, कुँआ, तालाब इत्यादि का निर्माण तथा मेरे निमित्त ही दान, होम, जप, व्रत और तप आदि का अनुष्ठान करना चाहिए। मुझमें चित्त लगाकर और मेरा स्मरण करते हुये धर्मबुद्धि से मेरी प्रीति कि लिए ही धीरे-धीरे समस्त प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। जिस देश में मेरे भक्त साधु निवास करते हैं, उस पवित्र देश के आश्रित होना एवं देव, दैत्य और मनुष्यों में जो-जो मेरे भक्त हों, उन जैसा आचरण करना चाहिए। परस्पर एकत्र होकर अथवा पृथक्‌रुप से ही नृत्य-गीतादि के साथ महाराजा की भाँति द्रव्यादि विभूतियों द्वारा मेरी प्रीति के लिए यात्रा महोत्सवादि का सम्पादन करना चाहिए। विशुद्धमतिवाले साधु व्यक्तियों को चाहिए कि वे सब प्राणियों को भीतरी और बाहरी आवरण ों से न देखकर आकाशवत अनावृत भगवत् सम्बन्ध से उनका दर्शन करें।

(भाः ११/२/१२ श्लोक में वासुदेव के प्रति श्रीनारद की उक्ति)-"श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः। सद्यः पुनाति सद्‌धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि॥" अर्थात्, 'हे सात्वतश्रेष्ठ! भागवतधर्म की महिमा परम अद्‌भुत है; उसका श्रवण, अध्ययन, चिन्तन, आदर के साथ ग्रहण और स्तवन अथवा अनुमोदन करने से देवद्रोही और जगत्-द्रोही व्यक्ति् भी तत्काल पवित्रता को प्राप्त करते है।'

(भाः ११/२/३५ श्लोक में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र के अन्यतम श्रीकवि मुनि की उक्ति)- "यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्। धावन्-निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह।।"

अर्थात् 'हे राजन्! इन भागवत-धर्म के आश्रित होकर नेत्रों को बन्द करके भागने से भी व्यक्ति कभी किसी प्रकार के विघ्न के कारण स्खलित या पतित नहीं होगा।

(भाः ११/३/३३ श्लोक में विदेहराज निमि के प्रति नवयोगेन्द्र में अन्यतम श्रीप्रबुद्ध मुनि की उक्ति)-"इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया। नारायणपरो मायाञ्जस्जरित दुस्तराम्॥"

अर्थात्, 'इस प्रकार भागवत-धर्मों में शिक्षित होकर, उनसे उत्पन्न हुई प्रेमभक्ति के कारण हरिपरायण व्यक्ति दुस्तर माया को भी पार कर जाता है।'

(भाः ११/२९/२० श्लोक में उद्धव के प्रति कृष्ण की उक्ति)-"न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्‌धर्मस्योद्धवाण्वपि। मयाव्यवसितः सम्यङ् निर्गुण-त्वादनाशिषः॥"

अर्थात् 'हे प्रिय उद्धव! इस मेरे निष्काम धर्म के प्रारम्भ में वैगुण्योप्पति (विरुद्धभाव के उपन्न) होने पर भी उसके द्वारा मेरे धर्म के ध्वसं की तनिक भी सम्भावना नहीं है; क्योंकि निगुर्णता के कारण मेरे द्वार ही यह धर्म सम्पूर्ण रूप से स्थिरीकृत (समर्थित) है, अथवा मोक्ष का नैष्कर्म (निष्कामभाव) केवल फलभोग रहित है, इसलिए उसकी अपेक्षा मेरा यह धर्म समीचीन (अति उत्तम) है। यह निश्चित है।'

(४२) गौः भाः—उत्तम कर्म,-प्रचुर प्राक्तन सुकृत या सौभाग्य।

इस व्यवहार से अमानी और मानद भक्त वैष्णवों का दुःख प्रकाश और उनकी निषेधोक्ति—

सकल वैष्णवगण 'हाय हाय करे'।
''कि कर, कि कर?'' तबु करे' विश्वम्भरे॥४६॥

(४६) **प. अनु०**—यह देखकर सब वैष्णववृन्द "हाय! हाय। यह क्या करते हो? क्या करते हो?" इस प्रकार कहते हैं, किन्तु श्रीविश्वम्भर तब भी कैसा ही करते रहते हैं।

स्वयं प्रभु होकर भी जगदगुरु लोक शिक्षकरूप श्रीविश्वम्भर द्वारा प्रतिदिन अपने भक्तों की सेवा का आदर्श प्रदर्शन—

एइमत प्रतिदिन प्रभु विश्वम्भर।
आपन-दासेर हय आपने किंकर॥४७॥

(४७) प. अनु०—इस प्रकार से प्रतिदिन प्रभु विश्वम्भर स्वयं अपने दासों के सेवक बनते हैं।

(४७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर साक्षात् अनन्त ब्रह्माण्ड-परमव्योम-वैकुण्ठ-गोलोक-वृन्दावन-पति होने पर भी अपने भक्तों के कैंकर्य (दासत्व) अनुष्ठान द्वारा नित्य कल्याणप्रार्थी निष्कपट सेवोन्मुख जीवों को सर्वोत्तम वैष्णव-सेवा के आदर्श की शिक्षा दे रहे हैं।

अपने प्रिय भक्तों के लिए श्रीकृष्ण-द्वारा अपने धर्म तक का त्याग—

कोन् कर्म सेवकेर प्रभु नाहि करे?
सेवकेर लागि' निज-धर्म परिहरे॥४८॥

(४८) प. अनु०—भला प्रभु अपने सेवकों के लिए कौन-सा काम नहीं करते? सेवक के लिए वे अपने तक का भी परित्याग कर देते हैं।

(४८) गौः भाः—प्रभु सेव्य-तत्त्व होकर भी अपने सब प्रकार के सेवनीय धर्मों का परित्याग करके सेवकों के सुख विधान के उद्देश्य से उनको तृप्ति देने वाले कार्यों को करने लगे। यद्यपि अपने सेवकों की सेवा करना प्रभु का धर्म नहीं है, तथापि उनका ऐसा कोई कार्य नहीं है-जो वे सेवकों की प्रीति के लिए नहीं कर सकते हैं एवं इस क्षेत्र में उन्होंने भक्तों के विविध सेवा कार्यों का सम्पादन भी किया है।

(भाः १/९/३७ श्लोक में श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके भीष्म की उक्ति)-'स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतम-धिकतुर्मवप्लुतो रथस्थः। धृतरथचरणोंऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः।

अर्थात् 'इन्होंने प्रतिज्ञा की थी,-कौरव-पाण्डवों के युद्ध में ये किसी के पक्ष में अस्त्र ग्रहण न करके सहयोग मात्र करेंगे। मेरी भी दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि इनको मैं अस्त्र ग्रहण कराकर ही छोड़ूँगा; किन्तु ये ऐसे भक्तवत्सल हैं कि, ये अपनी प्रतिज्ञा का परित्याग करके मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिए रथ से नीचे कूद पड़े और अपने श्रेष्ठ अस्त्र चक्र को धारण कर लिया तथा सिंह जैसे हाथी को मारने के लिए उस पर टूट पड़ता है, वैसे ही ये मुझ पर टूट पड़े। उस समय अतिशय क्रोध का उदय होने के कारण इनको मनुष्य का अभिनय विस्मृत हो गया था। इसलिए इनके उदर में स्थित समस्त भुवनों के भार के कारण इनके प्रत्येक पद से पृथ्वी कम्पित हो उठी और क्रोध से उनके कंधे का दुपट्टा रास्ते में ही गिर पड़ा'

(भाः १०/९/१४, १९ और २० श्लोक में श्रीशुकाक्ति)-''तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तंसत्यंलिङ्ग-मधोक्ष-

जम्। गोपिकालूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ एवं सन्दर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।

स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥ नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया। प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्।"

अर्थात् 'मानवलीला करने वाले इन अव्यक्त अधोक्षज को अपना पुत्र समझकर गोपी यशोदा ने प्राकृत बालक के समान इनको रस्सी द्वारा ऊखल से बाँध दिया था। हे राजन! भगवान् श्रीकृष्ण स्वतन्त्र हैं, ईश्वर-सहित यह समस्त विश्वब्रह्माण्ड उनके वशवर्ती हैं तथापि उन्होंने इस प्रकार की भक्तवश्यता दिखाई थी। हे महाराज! यह सत्य है कि दूसरे व्यक्तियों को भी भगवान् की कृपा प्राप्त होती है, किन्तु मुक्तिप्रद भगवान् मुकुन्द से यशोदा गोपी को जो प्राप्त हुआ, वह ब्रह्मा, शिव और उनके अंगाश्रिता लक्ष्मी, किसी को कभी भी प्राप्त नहीं हुआ।'

(भाः ९/४/६३-६३ और ६८ श्लोक में श्री भगवान् की उक्ति)-"अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैभक्तजनप्रियः॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना। श्रियं-चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥ ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्। हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥ मयि निर्बद्धहृदया साधवः समदर्शनाः। वशीकुर्वन्ति मां भक्तया सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ साधवो हृदय मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्। मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥"

अर्थात् 'हे विप्र! मैं अस्वतन्त्र (परतन्त्र) के समान हूँ; क्योंकि मैं भक्तों के अधीन हूँ। भक्त ही मेरे एकमात्र प्रिय हैं; इसलिए साधु-भक्तगणों के द्वारा मेरा हृदय वशीभूत किया हुआ है। हे तापसप्रवर! मैं ही जिनकी परम गति हूँ, उन साधुओं के बिना मुझे अपनी आत्मा और आत्यन्तिकी लक्ष्मी भी प्रिय नहीं है। वस्तुतः जिन्होंने पुत्र, पत्नी, शरीर, स्वजन, धन, प्राण इहलोक, परलोक इन सबको ही त्यागकर मेरी ही शरण ग्रहण की है, भला उनका परित्याग मैं कैसे करूँ? अहो! सती नारी जैसे अपने सद्पति को वशीभूत कर लेती है, वैसे ही सर्वत्र समदर्शी साधुओं ने अपने हृदयों को मुझमें बाँध करके मुझे वशीभूत कर दिया हैं। सच तो यह है कि साधुजन मेरे हृदय हैं और मैं साधुजनों का हृदय हूँ। वे जैसे मुझसे भिन्न किसी दूसरे को नहीं जानते हैं, उसी प्रकार मैं भी उनसे भिन्न दूसरे किसी को भी नहीं जानता हूँ।'

(भाः ९/५/१५-१६ श्लोक में श्रीभगवान् के प्रति दुर्वासा की उक्ति)-"दुष्करः को नु साधूनां दुस्तयजो वा महात्मनाम्। यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः। तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥"

अर्थात् ' जिन्होंने सात्वनतनाथ (यादवेन्द्र) भगवान् माधव को धारण कर लिया है, उन महात्मा साधुओं के लिए दुष्कर और दुस्त्यज क्या है? जिनका नाम सुनने मात्र से मानव निर्मल हो जाता है, उन्हीं तीर्थपाद प्रभु के जो दास हैं, उनके लिए कौन-सा कार्य अवशिष्ट रह जाता है?

कृष्ण की निरपेक्षता और समदर्शनत्व—

"सकलसुहृत् कृष्ण" सर्व-शास्त्रे कहे।
एतेके कृष्णेर केह द्वेष्योपेक्ष्य नहे॥४९॥

(४९) प. अनु०—सभी शास्त्रों ने श्रीकृष्ण को सबका सुहृद कहा है, अतः श्रीकृष्ण के लिए कोई भी द्वेष और अपेक्षा के योग्य नहीं है।

अपने प्रिय भक्तों के लिए श्रीकृष्ण द्वारा अपनी निरपेक्षता और समदृष्टि तक का त्याग और उसका दृष्टान्त-

ताहो परिहरे' कृष्ण भक्तेर कारणे।
तार साक्षी दुर्योधन-वंशेर मरणे॥५०॥

(५०) प. अनु०—परन्तु भक्तों के लिए श्रीकृष्ण अपनी उस निरपेक्षता और समदृष्टि का भी परित्याग कर देते हैं। वंश-सहित दुर्योधन का मरण ही इसका प्रमाण है।

(५०) गौः भाः—निखिल चिद् और अचिद् जगत् के एकमात्र सर्वोत्तम पालक श्रीकृष्ण को सभी शास्त्रों ने सबके परम आश्रय एवं सब प्राणियों के हितकारी रूप में निर्णीत किया है। इसलिए कोई भी कृष्ण के लिए विद्वेष या उपेक्षा के योग्य नहीं हो सकता है। स्वरूप से श्रीकृष्ण के नित्य सेवक होने के कारण सभी उनकी कृपा या अनुग्रह के पात्र हैं।

सकल-सुहृत् सर्वशुभंकर-"सर्वेषां हितकारी यः स स्यात् सर्वशुभंकरः॥"

कृष्णेर केह द्वेष्योपेक्ष्य नहे,-(भाः १०/३८/२२ श्लोक में परीक्षित के समक्ष श्रीशुकद्वारा गोकुल की ओर जाते हुये अक्रूर के मनोभावों का वर्णन)—"न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो ने चाप्रियों द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा। तथापि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः॥

अर्थात् 'यह सत्य है कि यद्यपि उन श्रीकृष्ण का प्रिय या अप्रिय, सुहृद या असुहृद्, हित या अहित और द्वेष्य अथवा उपेक्ष्य कोई नहीं है, तथापि कल्पवृक्ष के पास जो जैसी भावना रखता है, वह वैसा ही फल देता है, उसी प्रकार जो भक्त जैसे भाव से उनका भजन करता है, वे भी उसको वैसा ही अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।'

(भः रः सिः दः विः १म लः)-"कृता कृतार्था मुनयो विनौदः खलक्षयेणाखिधार्मिकाश्च। वपुर्विमर्दने खलाश्च युद्धे न कस्य पथ्यं हरिण ॥ व्यधायि॥"

अर्थात्—'(श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन के पश्चात् उद्धव ने कहा,)—जिन्होंने खलगण को लक्ष करके, आत्माराम मुनिजन एवं धार्मिकजनों के द्वारा अपनी गुणराशि का प्रचार एवं समर में दुष्टों का विनाश करके कृत-कृतार्थ किया है, उन श्रीहरि के द्वारा किसका हित साधन नहीं हुआ?'

भक्तों के द्वारा श्रीकृष्ण सेवा और श्रीकृष्ण द्वारा भक्तों की सेवा—

कृष्णेर करये सेवा—भक्तेर स्वभाव।
भक्त लागि' कृष्णेर सकल-अनुभाव॥५१॥

(५१) प. अनु०—भक्त का स्वभाव तो होता है श्रीकृष्ण की सेवा करना और श्रीकृष्ण की समस्त चेष्टाएँ होती हैं अपने भक्तों के लिए।

(५१) गौः भाः—ऐकान्तिक भक्त की स्वभावतः सब प्रकार की चेष्टाएँ केवल श्रीकृष्ण-सेवा के लिए ही होती हैं, वे किसी अन्य उद्देश्य से विहित नहीं होतीं। उधर श्रीकृष्ण की भी समस्त चेष्टाएँ या लीलाएँ सब समय केवलमात्र अपने भक्तों के सुख-सन्तोष -विधानार्थ ही सम्पन्न होती हैं।

स्वयं असमोर्द्ध्व तत्त्व होने पर भी श्रीकृष्ण की स्वभक्त प्रेम-वशीभूतता और उसका दृष्टान्त—

कृष्णेर बेचिते पारे भक्त भक्तिरसे।
तार साक्षी सत्यभामा-द्वारका-निवासे॥५२॥

(५२) प. अनु०—भक्त भक्ति के प्रभाव से श्रीकृष्ण को बेच भी सकता है। उसका प्रमाण द्वारिका के महलों में श्रीसत्यभामा हैं।

(५२) गौः भाः—अर्थात् श्रीकृष्ण भक्त अपनी प्रेमसेवा द्वारा कृष्ण को वशीभूत करके बेचने में भी समर्थ हैं।

तार साक्षी .....निवासे,-(हरिवंश के

विष्णुपर्व में ७६ अः)—"पुष्पदामावसज्याथ कण्ठे कृष्णस्य भाविनी। बबन्ध कृष्णं सुभगा पारिजाते वनस्पतौ। अद्भिर्ददौ नारदाय ततोऽनुज्ञाप्य केशवम्॥"

अर्थात् 'इसके बाद कृष्ण-कामिनी-देवी सत्यभामा ने श्रीकृष्ण के कण्ठ में पुष्पमाला डालकर एवं उनको पारिजात वृक्ष से बाँधकर उनकी आज्ञा लेकर जल से संकल्प करके उन्हें नारद जी को सम्प्रदान कर दिया।'

उन श्रीकृष्ण की ही प्रच्छन्नरूप में गौरलीला—

सेइ प्रभु गौरांगसुन्दर विश्वम्भर।
गूढ़रूपे आछे नवद्वीपेर भितर॥५२॥

(५३) प. अनु०—वे ही प्रभु गौरांग सुन्दर विश्वम्भर के रुप में, नवद्वीप में गूढ़रुप से विराजमान हैं।

निरकुंश स्वतन्त्र इच्छावश अपनी लीला के परिकरों के निकट भी अपने स्वरूप का अप्रकाश—

चिनिते ना पारे केह प्रभु आपनार।
या' सबार लागिया हइला अवतार॥५४॥

(५४) प. अनु०—जिन सबके लिए प्रभु का अवतार हुआ था, उनमें से कोई भी अपने प्रभु को पहचान नहीं पा रहा था।

कृष्णभजन की प्राप्ति के लिए कृष्णभक्तों के भजन का सबको उपदेश—

कृष्ण भजिवार यार आछे अभिलाष।
से भजुक कृष्णेर मंगल प्रियदास॥५५॥

(५५) प. अनु०—श्रीकृष्णभजन की जिनकी इच्छा हो, उन्हें चाहिए कि वे प्रभु के मंगलकारी प्रिय दासों का भजन करें।

(५५) गौः भाः—अनेक-अनेक जन्मों की पुंज-पुंज सुकृति के फल से यदि किसी सौभाग्यशाली की कृष्णसेवा में अभिलाषा हो, तो उन्हें श्रीकृष्ण के प्रियजनों की ही सर्वक्षण सेवा करनी चाहिए, उसके फल से ही वे श्रीकृष्ण की शुद्ध सेवा प्राप्त करेंगे। श्रीकृष्ण के प्रिय सेवकगण ही समस्त जगत् के एक मात्र नित्य कल्याणकारी हैं।

स्वयं परिपूर्ण आदर्श भक्त-सेवाचरण द्वारा सबको भक्तसेवा की शिक्षा का दान—

सबारे शिखाय गौरचन्द्र-भागवते।
वैष्णवेर सेवा प्रभु करिया आपने॥५६॥
साजि बहे, धूति बहे, लज्जा नाहि करे'।
सम्भ्रमे वैष्णवगण हाथ आसि' धरे॥५७॥

(५६-५७) प. अनु०—यही शिक्षा भगवान् श्रीगौरचन्द्र ने स्वयं ही वैष्णवों की सेवा करके सबको दी है। लज्जा को छोड़कर प्रभु डलिया उठाकर ले जाते हैं, धोती ले चलते हैं। यह देखकर वैष्णवजन सम्भ्रम से झट आकर उनका हाथ पकड़ लेते हैं।

(५६) गौः भाः—लोकशिक्षक जगद्गुरु श्रीगौरहरि ने स्वयं अपने भक्त-वैष्णवों की सेवा का आदर्श प्रदर्शित करके समस्त जगत् को सेवा की एकान्त प्रयोजनीयता की शिक्षा दी है।

प्रभु के आदर्श अमानी और मानद भाव के दर्शन से भक्तों का उनको आशीर्वाद और अपना दुःख-निवेदन—

देखि' विश्वम्भेर विनय भक्तगण।
अकैतव आशीर्वाद करे' सर्वक्षण॥५८॥
''भज कृष्ण, स्मर' कृष्ण, शुन कृष्णनाम।
कृष्ण हउ सबार जीवन धन प्राण॥५९॥
बलह बलह कृष्ण, हओ कृष्णदास।
तोमार हृदये कृष्ण हउन प्रकाश॥६०॥

कृष्ण बइ आर नाहि स्फुरुक तोमार।
तोमा' हैते दुःख याउ आमा' सबाकार॥६१॥
ये-सब अधम लोक कीर्तनेर हासे।
तोमा' हैते ताहारा डुबुक कृष्णरसे॥६२॥
येन तुमि शास्त्रे सब जिनिला संसार।
तेन कृष्ण भजि' कर पार्षडी संहार॥६३॥
तोमार प्रसादे येन आमरा सकल।
सुखे कृष्ण गाइ नाचि इहया बिह्वल॥''६४॥
हस्त दिया प्रभुर अंगेते भक्तगण।
आशीर्वाद करे' दुःख करि' निवेदन॥६५॥
''एइ नवद्वीपे, बाप! यत अध्यापक ।
कृष्णभक्ति बाखानिते सबे हय 'बक'!६६॥
कि संन्यासी, कि तपस्वी, किवा ज्ञानी यत।
बड़ बड़ एइ नवद्वीपे आछे कत॥६७॥
केह ना वाखाने, बाप! कृष्णेर कीर्तन।
नाहि करे व्याख्या, आर निन्दे सर्वक्षण॥६८॥
यतेक पापिष्ठ श्रोता सेइ वाक्य धरे।
तृण-ज्ञान केह आमा' सबारे ना करे॥६९॥
सन्तापे पोड़ये, बाप! देह सबाकार।
कोथाओ ना शुनि कृष्णकीर्तन-प्रचार॥७०॥
एखने प्रसन्न कृष्ण हइला सबारे।
ए-पथे प्रविष्ट करि' दिलेन तोमारे॥७१॥
तोमा' हैते हइवेक पार्षडीर क्षय।
मनेते आमरा इहा बुझिनु निश्चय॥७२॥
चिरजीवी हओ तुमि, लह कृष्णनाम।
तोमा' हैते व्यक्त हउ कृष्णगुणग्राम॥''७३॥

(५८-७३) प. अनु०—भक्तवृन्द विश्वम्भर के विनय को देखकर उनको सर्वदा अकैतव आशीर्वाद देते रहते थे कि-"श्रीकृष्ण को भजो, श्रीकृष्ण का स्मरण करो, श्रीकृष्णनाम सुनो, श्रीकृष्ण हम सबके जीवन, धन और प्राण हों। बोलो, कृष्ण बोलो, कृष्ण के दास बनो। तुम्हारे हृदय में श्रीकृष्ण का प्रकाश हो। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त तुमको और कुछ भी स्फुरण न हो। तुम्हारे द्वारा हम सबके दुःख दूर हों। जो अधम लोग आज कीर्तन की हँसी उड़ाते हैं, तुम्हारे द्वारा वे सब श्रीकृष्ण के रस में डूब जायें। जैसे तुमने शास्त्रार्थ में संसार को जीत लिया है, वैसे ही अब श्रीकृष्ण का भजन करके पाखण्डियों का संहार करो। तुम्हारी कृपा से हम सब भी प्रेम में विह्वल होकर सुख से श्रीकृष्ण गा-गाकर नाचें।" भक्तजन प्रभु के श्रीअंग पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते थे और अपना दुःख निवेदन करते हुये कहते थे-"वत्य! इस नवद्वीप में जितने भी अध्यापक हैं, वे सब श्रीकृष्ण की भक्ति का बखान करते समय 'बक' बन जाते हैं। इस नवद्वीप में न जाने कितने बड़े-बड़े संन्यासी, तपस्वी और ज्ञानीजन हैं। परन्तु हे वत्स! कोई भी श्रीकृष्ण-कीर्तन का वर्णन नहीं करते हैं। व्याख्या तो कोई करता ही नहीं, उल्टा उसकी सदा निन्दा ही करते रहते हैं। जितने पापिष्ट श्रोता हैं, वे सभी उनके स्वर में स्वर मिलाते रहते हैं और हम सब को तो कोई तिनके के समान भी नहीं समझता है। इस सन्ताप से है वत्स! हम सबके शरीर जल रहे हैं। हाय! श्रीकृष्णकीर्तन का का प्रचार कहीं भी सुनाई नहीं पड़ता है। परन्तु अब श्रीकृष्ण हम सब पर प्रसन्न हुये हैं कि जो तुमको इस पथ में प्रवेश कराया है। हम अपने मन में यह निश्चय समझ गये हैं कि तुम्हारे द्वारा पाखण्डियों का अवश्य ही नाश होगा। तुम कृष्णनाम कहते हुये चिरंजीवी होओ। तुम्हारे द्वारा श्रीकृष्ण के गुणग्राम का प्रकाश हो॥"

(५८) गौः भाः—अकैतव,—कृष्णसेवा के अतिरिक्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष या सिद्धि-वाञ्छा ही 'कैतव' या 'कापट्य' है; उन सब इच्छाओं से रहित केवल कृष्णसेवा-वाञ्छा

ही अकैतव है।

(६०) गौः भाः—तोमार-प्रकाश,—उस समय भी भक्तगण विश्वम्भर को स्वयं भगवान् श्रीकृष्णस्वरूप नहीं समझ रहे थे, अपितु उन्हें श्रीकृष्ण का पाल्यभक्त जानकर यह कहते हुये आशीर्वाद और स्तुति कर रहे थे कि,-"तुम्हारे शुद्ध निर्मल चिन्मय हृदय में श्रीकृष्ण के अप्राकृत नाम, रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट और लीलामय कृष्ण, कृष्णभक्ति और कृष्णप्रेमात्मक अद्वयज्ञान कृष्ण आविर्भूत, प्रकटित या अवतीर्ण हों॥"

(६२) गौः भाः—श्रीकृष्णकीर्तन सभी जीवों का एकमात्र नित्य अनुशीलनीय है, उस रहस्य को न समझकर जो श्रीकृष्णकीर्तन को अपने इन्द्रियतर्पण का प्रतिबन्धन मानकर इसका परिहास या उपहास करते हैं, वे ही सब कृष्ण-ज्ञानहीन लोग तुम्हारे प्रेमबल का कणमात्र प्राप्त करके कृष्ण-भक्ति-रसामृत-सिन्धु-बिन्दु का पान करके अनुक्षण कृष्णसेवा में निमग्न हों। तुम जगद्गुरु का कार्य करते हुये उनको कृष्णसेवन की बुद्धि प्रदान करके सर्वक्षण कृष्णभजन में नियुक्त करो।

(६६) गौःभाः 'बक' या बक्रवती, —"अधोदृष्टि-

नैंकृतिकः स्वार्थसाधन-तत्परः। शठो मिथ्या-विनीतश्च वकव्रतचरो द्विज॥" इसलिए यहाँ 'बक'-शब्द का तात्पर्य है-वंचना करने के विचार से मौनवृत्ति धारण करना। कृष्णेतर प्रजल्प या अभक्ति-परक शास्त्रों की व्याख्या के समय कोटि मुख होने पर भी, कृष्णभक्ति, जो सर्वत्र सर्वदा सर्वशास्त्रों का एकमात्र अवितर्क्य तात्पर्य है, उसे समझकर भी विप्रलिप्सा (छल से प्राप्त करने की इच्छा) के दोष के वशीभूत होकर वे उस कृष्णभक्ति की व्याख्या के समय मत्स्यभक्षण-लोलुप बकपक्षी की भाँति भण्ड, धूर्त्त, शठ या कपटीजनों की भाँति मौनवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं।

(६७) गौः भाः—उस समय नवद्वीप-नगर में कृष्ण के अभक्त प्रसिद्ध कर्मी, ज्ञानी या योगी संन्यासी, तपस्वियों का अभाव नहीं था, ऐसा जाना जाता है।

(७०) गौः भाः—कृष्णकीर्तन-दुर्भिक्ष और त्रिताप दुःख-दावाग्नि ज्वाला के प्रबल उत्ताप से अतिशय सन्तप्त तथा कृष्णकीर्तन विरोधियों के मर्मन्तुद (हृदयविदारक) भीषण कृष्णविद्वेषपूर्ण वाक्यों को सुनकर दुःखी निष्किंचन भक्तगण सर्वक्षण अतिशय मनोव्यथा से जीवन बिता रहे थे, ऐसा कहा है।

(७१) गौः भाः—ए-पथे-कृष्णभक्तिमार्ग में।

भक्तवत्सल भगवान् द्वारा भक्तों के आशीर्वाद-ग्रहण और भक्तों के दुःख सुनने से उसको हटाने के लिए आत्मप्रकाश की इच्छा-

भक्त-आशीर्वाद प्रभु शिरे करि' लय।
भक्त-आशीर्वाद से कृष्णेते भक्ति हय॥७४॥
शुनिया भक्तेर दुःख प्रभु विश्वम्भर।
प्रकाश हइते चित्त हइल सत्वर॥७५॥

(७४-७५) प. अनु०—भक्तों के आशीर्वाद को प्रभु ने अपने मस्तक पर धारण कर लिया, क्योंकि भक्तों के आशीर्वाद से ही श्रीकृष्ण में भक्ति होती है। प्रभु श्रीविश्वम्भर ने भक्तों के दुःखों को सुनकर अपने को शीघ्र ही प्रकट कर देने की इच्छा की।

भक्तों के प्रति प्रभु का उत्साह, उन्हें आश्वासन और अभय-प्रदान-

प्रभु कहे,—"तुमि-सब कृष्णेर दयित।
तोमरा ये बल, से-इ हइबे निश्चित॥७६॥
धन्य मोर जीवन—तोमरा बल भाल।

तोमरा बाखानिले ग्रासिते नारे काल॥७७॥
कोन् छार हय, पाप-पाषण्डीर गण?
सुखे गिया कर' कृष्णचन्द्रेर कीर्तन॥''७८॥

(७६-७८) प. अनु०—प्रभु ने कहा, —"आप सब लोग श्रीकृष्ण के प्यारे हैं। आप लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह निश्चय ही होगा। मेरे जीवन को धन्य है जो आप लोग मेरे लिए ऐसी मंगल कामनाएँ कर रहे हैं। आप लोग यदि कृष्णकीर्तन अथवा कृष्णगुण ानुवाद करें तो काल भी आपको ग्रसित या आक्रान्त नहीं कर सकता है। फिर तुच्छ पापी-पाखण्डियों के दल की तो बात ही क्या है? आप लोग जाकर आनन्द से श्रीकृष्णचन्द्र का कीर्तन करें।"

(७७) गौः भाः—बाखानिले,—कृष्णकीर्तन या कृष्णगुणानुवाद करने से।

ग्रासिते,—ग्रास या आक्रमण करने में।

काल,—दोषपूर्ण कलिकाल; यम, मृत्यु या संसार।

(१)कृष्णकीर्तन का कालभय-निवारकत्व, -(भाः३/२५/३८ श्लोक में माता देवहूति के प्रति भगवान् कपिलदेव की उक्ति)-"न कर्हिचिन्तत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः। येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरूः सुहृदो दैवमिष्टम्॥"

अर्थात् 'हे शान्तरूपे, मैं जिनका प्रिय आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, सुहृद् और सुखभोगहीन नहीं होते हैं, अर्थात् अपने भक्तिमार्ग से कभी भी भ्रष्ट नहीं होते हैं, इसलिए मेरा अनिमिष (अपलक) कालचक्र उनका लेहन, चाटने, स्पर्श अथवा ग्रास करने में समर्थ नहीं है।'

(२) मृत्यु या संसारभय—निवारकत्व, —(भाः १/१/१४ और १६ श्लोक में श्रीसूत के प्रति शौनकादि ऋषियों की उक्ति)-"आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्। ततः सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम्॥" "को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः। शुद्धिकामो न शृणुयाद् यशः कलिमलापहम्॥"

अर्थात् 'घोर संसार में पतित व्यक्ति विवश होकर भी जिनका नाम उच्चारण करने पर तत्काल ही मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं एवं साक्षात् भय या मृत्यु भी जिनसे भयभीत है, पुण्यश्लोक लोकगण जिनकी लीलाओं का सतत स्तवन करते रहते है; उन भगवान् का कलिमलहारी पवित्र यश भला आत्मशुद्धि की इच्छा वाला ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो श्रवण न करे?'

(काशीखण्ड के अग्निविन्दुस्तव में)-"नारायण ोति नरकार्णवतारणेति दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति।

विश्वम्भरेति विरजेति जनार्द्दनेति क्वास्तीह जन्म जपतां क्व कृतान्तभीतिः॥"

अर्थात् 'हे नारायण, हे नरकार्णवतारण, हे दामोदर, हे मधुदैत्यघातिन् हे चतुर्भुज, हे विश्वम्भर, हे विरज, हे जनार्दन—इत्यादि नामों से जो सतत मेरा आह्वान करते हैं, उनका पुनर्जन्म किस प्रकार से सम्भव है?'

अपने भक्तों के सब प्रकार से सेवन
के लिए ही भगवान का सर्वदा
सर्वत्र अवतार ग्रहण—

भक्तदुःख प्रभु कभु सहिते ना पारे।
भक्त लागि' सर्वत्र कृष्णेर अवतारे॥७९॥

(७९) प. अनु०—प्रभु कभी भी अपने भक्तों का थोड़ा-सा भी दुःख सहन नहीं कर सकते हैं। जब जहाँ पर उनके निज जनों के लिए दुःखों के कारण उपस्थित होते हैं, तब वहीं पर वे अवतीर्ण होकर अपने ऐकान्तिक आश्रित-भक्तों के सब प्रकार के दुःखों का मोचन करते हैं।

(आदिपुराण-वाक्य)—"जगतां गुरवो भक्ता भक्तानां गुरवो वयम्। सर्वत्र गुरवो भक्ता वयंच गुरवो यथा॥ अस्माकं बान्धवा भक्ता भक्तानां बान्धवा वयम् अस्माकं गुरवो भक्ता भक्तानां गुरवो वयम्। मद्भक्ता यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छामि पार्थिव। ये केचित् प्राणिनो भक्ता मदर्थे त्यक्तबान्धवाः। तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो नान्यक्रीतो धनंजय॥"

(पाद्म में श्रीभागवद्ब्रह्म-संवाद में)-"दर्शन-ध्यान संस्पशैर्मत्स्यकूर्मविहङ्गमाः। पुष्णान्ति स्वान्यपत्यानि तथाऽमपि पद्मदे॥"

(भः रः सिः दः विः १लः ८० संख्या)-"पुरुषोत्तम चेदवातरिष्यद्भुवनेऽस्मिन् न भवान् भुवः शिवाय। विकटासुर मण्डलान्न जाने सुजनानां वत का दशाभविष्यत्॥"

अर्थात् 'हे पुरुषोत्तम, यदि आप पृथ्वी का मंगल करने के लिए इस संसार में अवतीर्ण न होते, तब विकट (विकराल) असुर-मण्डलों से सज्जनों की क्या दशा हो जाती, उसे मैं जान भी नहीं सकता हूँ।'

भक्तों को भावी कृष्णवतार का विषय और अपनी दैन्य प्रार्थना का ज्ञापन—

''एवे बुझि तोमरा आनाइवा कृष्णचन्द्र।
नवद्वीपे कराइवा वैकुण्ठ-आनन्द॥८०॥
तोमा' सबा हैते हबे जगत्-उद्धार।
कराइवा तोमरा कृष्णेर अवतार॥८१॥
सेवक करिया मोरे सबेइ जानिवा।
एइ वर-'मोरे कभु ना परिहरिया'॥८२॥

(८०-८२) प. अनु०—"ऐसा लगता है कि आप लोग श्रीकृष्णचन्द्र को यहाँ लाकर इस नवद्वीप को वैकुण्ठ के-से आनन्द से परिपूर्ण कर देंगे, आप सबके द्वारा जगत् का उद्धार होगा, आप लोग ही श्रीकृष्ण का अवतार करायेंगे। मुझे आप सभी अपना सेवक जानिए और मुझे यही वर दीजिए कि,-'आप कभी भी मेरा परित्याग नहीं करेंगे'।"

(८२) गौः भाः—परिहरिवा,-वर्जन या परित्याग करेंगे।

भक्तों की पदधूलि और आशीर्वाद ग्रहण—

सबार चरणाधूलि लय विश्वम्भर।
आशीर्वाद सबेइ करेन बहुतर॥८३॥

(८३) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर ने सब भक्तों की चरण-धूलि को धारण किया और उन सभी ने उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये।

गंगा स्नान के बाद प्रभु का अपनी घर आगमन—

गंगास्नान करिया चलिला सबे घर।
प्रभु चलिलेन तबे हासिया अन्तर॥८४॥

(८४) प. अनु०—गंगास्नान करके सब भक्त अपने-अपने घर को चल दिये और प्रभु भी मन में कुछ हँसते हुये घर को चले आये।

भक्तविद्वेष सुनने से पाखण्डितों के प्रति क्रोधावेश—

आपने भक्तेर दुःख शुनिया ठाकुर।
पाषण्डीर प्रति क्रोध बाड़िल प्रचुर॥८५॥

(८५) प. अनु०—अपने भक्तों के दुःख को सुनकर प्रभु का पाखण्डियों के प्रति क्रोध बहुत बढ़ गया।

प्रभु का पाखण्डियों के संहारक विष्णुरूप से हुँकार और उनका लीला अभिनय—

''संहारिमु सब'' बलि' करये हुँकार।
''मुञि सेइ, मुञि सेइ'' बले बारे-बार॥८६॥

क्षणे हासे, क्षणे कान्दे, क्षणे मुर्च्छा पाय।
लक्ष्मीरे देखिया क्षणे मारिवारे याय॥८७॥
एइमत हैला प्रभु वैष्णव–आवेश।
शची ना बुझये कोन् व्याधि वा विशेष॥८८॥

(८६–८८) प. अनु०–"मैं सब पाखण्डियों का संहार कर डालूँगा" ऐसा कहते हुये प्रभु हुँकार करने लगे और बारम्बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ" ऐसा कहने लगे। वे क्षण में हँसते, क्षण में रोते और क्षण में मूर्च्छित हो जाते और फिर कभी श्रीलक्ष्मी (श्रीविष्णुप्रिया को देखकर उन्हें मारने जाते। इस प्रकार प्रभु को वैष्णव–आवेश हो गया। परन्तु श्रीशचीमाता इस बात को न समझकर उसे कोई व्याधि–विशेष समझने लगीं।

(८८) गौः भाः—वैष्णव–आवेश—विष्णुलीला की दुष्टनाशिनी मूर्त्ति।

प्रभुलीला से अनभिज्ञ पुत्रवत्सला शची का दुःख के साथ सबसे पुत्र की व्याधि और क्रियादि का वर्णन—

स्नेह बिनु शची किछु नाहि जाने आर।
सबारे कहेन विश्वम्भरेर व्यभार॥८९॥
''विधाता ये स्वामी निल, निल पुत्रगण।
अवशिष्ट सकले आछये एकजन॥९०॥
ताहारो किरुप मति, बुझन ना याय।
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे, क्षणे मूर्च्छा पाय॥९१॥
आपने–आपने कहे मने–मने कथा।
क्षणे बले,–'छिण्डाँ छिण्डाँ पाषण्डीर माथा'॥९२॥
क्षणे गिया गाच्छेर उपर–डाले चढ़े।
ना मेले लोचन, क्षणे पृथिवीते पड़े॥९३॥
दन्त कड़मड़ि करे, मालसाट मारे।
गड़ागड़ि याय, किछु वचन ना स्फुरे॥''९४॥
नाहि देखे शुने लोक कृष्णेर विकार।
वायु–ज्ञान करि' लोक बले बान्धिवार॥९५॥

(८९–९५) प. अनु०—शचीमाता अपने स्नेह के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानती थीं और सबसे श्रीविश्वम्भर के व्यवहार के बारे में बतलाती हुई कहती थीं कि,–"विधाता ने मेरे स्वामी को ले लिया, कई पुत्रों को भी ले लिया, अब एक ही शेष रह गया है, कुछ समझ में नहीं आता। वह क्षण में हँसता है, क्षण में रोता है और क्षण में मूर्च्छित हो जाता है। वह अपने आप मन–ही–मन न जाने क्या–क्या बातें करता रहता है और कभी–'पाखण्डियों का सिर काट डालूँगा' ऐसा कह उठता है। कभी वह वृक्ष की ऊँची डाल पर जा बैठता है और कभी आँखें बन्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ता है। कभी किट किटाकर दाँत पीसता है और ताल ठोकता है और पृथ्वी पर लोट–पोट हो जाता है। तब मुख से कोई शब्द नहीं निकलता है।" साधारण लोगों में श्रीकृष्णप्रेम के ऐसे विकार देखने–सुनने को नहीं मिलते थे, इसलिए वे उसे वायुरोग समझकर विश्वम्भर को बाँधकर रखने के लिए कहते थे।

(९२) गौः भाः—क्षणे.....माथा, —पाखण्डियों के मस्तकों को काटकर फेंक दूँगा अर्थात् चूर्ण कर दूँगा।

(९४) गौः भाः—कड़मड़ि,—(शब्दात्मक), दाँत से दाँत घिसने का शब्द। मालसाट्—मल्ल + साट (आस्फोट), मल्लों के समान ताल ठोकना।

(९५) कृष्णेर,—कृष्णप्रेमके; लोक,—कृष्ण–बहिर्मुखलोग।

प्रभु की कृष्णप्रेम–चेष्टा को वायुरोग–विकार जानकर उसकी चिकित्सा के लिए मूढ़ लोगों द्वारा शची को औषध और पथ्य–विधान का निर्देश—

शचीमुखे शुनि' ये ये देखिवारे याय।
वायु–ज्ञान करि' सबे हासिया पलाय॥९६॥
आस्ते–व्यस्ते मा'ये गिया आनये धरिया।
लोके बले,–''तुमि त' अबोध ठाकुराणी।
आर वा इहान वार्त्ता जिज्ञासह केनि?९८॥
पूर्वकार वायु आसि' जन्मिल शरीरे।
दुइ–पा'ये बन्धन करिया राख घरे॥९९॥
खाइवारे देह' डाल–नारिकेल–जल।
यावत् उन्माद–वायु नाहि करे बल॥''१००॥
केह बले,–''इथे अल्प–औषधे कि करे'?
शिवाघृत–प्रयोगे से ए–वायु निस्तरे॥१०१॥
पाकतैल शिरे दिया कराइवा स्नान।
यावत् प्रबल नाहि हइवेक ज्ञान॥''१०२॥

(९६–१०२) प. अनु०—शचीमाता से सुन-सुनकर लोग विश्वम्भर को देखने के लिए जाते, वे भी वायुरोग समझकर हँसते हुये वहाँ से भाग जाते। शचीमाता शीघ्रता से पुत्र के पीछे दौड़तीं और उन्हें पकड़ कर ले आतीं। देखने वाले कहते,—"इस पर पुरानी वायु के रोग ने आक्रमण किया है।" कोई कहता,–"ठकुरानी! तुम तो बड़ी अबोध हो! अब और अधिक इसके बारे में क्यों पूछती फिरती हो? पुरानी वायु शरीर में फिर से उभर आयी है। इसके तो दोनों पाँव बाँधकर घर में रोक कर रखो। इसे तब तक हरे नारियल का जल पिलाती रहो, जब तक यह उन्माद वायु शमित न हो जाये।" फिर कोई कहता, —"अरे! अस रोग में छोटी-मोटी दवाइयों से काम नहीं चलेगा। शिवाघृत के प्रयोग से ही वायु दूर हो सकती है। साथ में सिर पर उपचार तब तक करो, जब तक वायु का जोर रहे और बुद्धि ठीक न हो जाय।"

(१००) गौः भाः— उन्माद-वायु—उन्मादजनक वायु (वात)-रोग। नाहि करे बल,—विक्रम का प्रकाश अथवा प्रदर्शन न करे, उग्र न हो जाये।

(९५–१०२) गौः भाः—आदि १२ श अः ७१-७३, ८०-८४ संख्या द्रष्टव्य है।

(१०२) **गौः भाः**—शिवाघृत,—आयुर्वेदिक चिकित्सा में बताया गया उन्माद रोग दूर करने का घृत विशेष।

पाकतैल,—विष्णुतैल और नारायण-तैल इत्यादि, आदि १२श अध्याय ७३ संख्या द्रष्टव्य है।

पुत्रवत्सला सरल शचीमाता द्वारा पुत्र के लिए चिन्ता, श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण और श्रीवास को अपने घर में बुलाना—

परम–उदार शची—जगतेर माता।
यार मुखे येइ शुने, कहे सेइ कथा॥१०३॥
चिन्ताय व्याकुल आइ किछु नाहि जाने।
गोविन्द–शरण लैला काय–वाक्य–मने॥१०४॥
श्रीवासादि वैष्णव—सबार स्थाने–स्थाने।
लोक–द्वारा शची करिलेन निवेदने॥१०५॥

(१०३–१०५) प. अनु०—जगन्माता शचीदेवी परम उदार हैं। वे जिसके मुख से जो कुछ सुनती हैं, उसी की चर्चा करने लगती हैं। चिन्ता से व्याकुल रहने के कारण उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। तन-तन-वचन से वे श्रीगोविन्द की शरणापन्न हो गईं। उन्होंने श्रीवासादि सब वैष्णवों के पास आदमी भेज-भेजकर उनसे यह सब वृत्तान्त निवेदन किया।

एकदिन श्रीवास का शची के घर आगमन प्रभु द्वारा अभ्यर्थना—

एकदिन गेला तथा श्रीवासपण्डित।
उठि' नमस्कार प्रभु कैला सावहित॥१०६॥

(१०६) प. अनु०—एकदिन श्रीवास पण्डित वहाँ आये तो प्रभु ने उठकर मर्यादापूर्वक उन्हें नमस्कार किया।

भक्तदर्शन से प्रभु के कृष्णप्रेमविकारों का प्राकट्य—

भक्त देखि' प्रभुर बाड़िल भक्तिभाव।
लोमहर्ष, अश्रुपात, कम्प, अनुराग॥१०७॥
तुलसीरे आछिला करिते प्रदक्षिणे।
भक्त देखि' प्रभु मूर्च्छा पाइला तखने॥१०८॥
बाह्य पाइ' कतक्षणे लागिला कान्दिते।
महा-कम्प कभु स्थिर ना पारे हइते॥१०९॥

(१०७-१०९) प. अनु०—भक्त को देखते ही प्रभु में भक्तिभाव उमड़ पड़ा—प्रेमजनित रोमांच, अश्रु और कम्प प्रकट हो गये। उस समय प्रभु तुलसी की परिक्रमा कर रहे थे। भक्त को देखकर वे तत्काल ही मूर्च्छित हो गये। कुछ ही क्षण में बाह्यज्ञान होने पर वे क्रन्दन करने लगे; उनका शरीर जोर-जोर से काँपने लगा, जिससे वे स्थिर न रह सके।

प्रभु के कृष्णप्रेमविकार के दर्शन से कृष्णभक्त श्रीवास को उनके महाभाव का परिज्ञान—

अद्भुत देखिया श्रीनिवास मने गणे'।
''महा-भक्तियोग, वायु बले कोन् जने?''११०॥

(११०) **गौः भाः**—महाभक्तियोग,—कृष्णप्रेम की अधिरूढ़ महाभावावस्था।

बाह्यज्ञान प्राप्त करके प्रभु का श्रीवास से अपनी दशा के सम्बन्ध में पूछना—

बाह्य पाइ' प्रभु बले पण्डितेर स्थाने।
''कि बुझ, पण्डित! तुमि मोर ए-विधाने?१११॥
केह बले,—महा-वायु, बान्धिवार तरे।
पण्डित! तोमार चित्ते कि लय आमारे?''११२॥

(१११-११२) **प. अनु०**—बाह्य-दशा प्राप्त होने पर प्रभु ने श्रीवास पण्डित से पूछा,—"पण्डितजी! आप मेरी इस स्थिति को क्या समझते हैं? कुछ लोग तो इसे महा-वायुरोग बतलाकर मुझे बाँध कर रखने के लिए कहते हैं, परन्तु पण्डितजी, आपके हृदय में मेरे बारे में क्या विचार है?

(१११) **गौः भाः**—कि.....विधाने,—मेरी अवस्था को किस प्रकार से समझते हो।

(११२) **गौः भाः**—महा-वायु—वायु से उत्पन्न उन्माद-रोग। चित्ते लय,-मन कहता है; तोमार....आमारे,-मुझे किस प्रकार से तुम मन में विचार करते हो?

श्रीवास द्वारा प्रभु के निकट उनके प्रेमोन्माद के माहात्म्य और स्वरुप का वर्णन—

हासि' बले श्रीवास पण्डित,-''भाल वाइ!
तोमार येमत वाइ, ताहा आमि चाइ॥११३॥
महा-भक्तियोग देखि' तोमार शरीरे।
श्रीकृष्णेर अनुग्रह हइल तोमारे॥''११४॥

(११३-११४) प. अनु०—श्रीवास पण्डित ने हँसते हुये कहा,-"बड़ी अच्छी वायु है। तुम्हारी जैसी वायु तो मैं भी चाहता हूँ। तुम्हारे शरीर में तो मुझे महान् भक्तियोग दिखाई देता है। तुम्हारे ऊपर तो श्रीकृष्ण का अनुग्रह हुआ है।"

उसको सुनकर प्रभु का श्रीवास को आलिंगन दान—

एतेक शुनिला यदि श्रीवासेर मुखे।
श्रीवासेरे आलिंगन कैला बड़ सुखे॥११५॥

(११५) प. अनु०—श्रीवास के मुख के इतना सुनते ही प्रभु ने बड़े प्रसन्न होकर उनको आलिंगन-बद्ध कर लिया।

प्रभु की हर्षोत्साह से उक्ति—

''सभे बले,—'वायु', सबे आशंसिला तुमि।
आजि बड़ कृतकृत्य हइलाङ आमि॥११६॥
यदि तुम वायु-हेन बलिता आमारे।
प्रवेशिताम आजि मुञि गंगार भितरे॥''११७॥

(११६–११७) प. अनु०—"सब लोग तो इसे 'वायु-रोग' बतलाते हैं, एक आपने ही मुझे आश्वासन प्रदान किया है। जिससे आज मैं बड़ा कृत्कृत्य हो गया हूँ। यदि आप भी इसे वायु गताते तो आज अवश्य ही मैं गंगा में प्रवेश कर जाता।"

(११६) गौः भाः—आशंसिला,—आश्वासन प्रदान किया।

श्रीनिवास द्वारा प्रभु के महाप्रेम की प्रंशसा और अपनी इच्छा का ज्ञापन—

श्रीवास बलेन,—''ये तोमार भक्तियोग।
ब्रह्मा–शिव–सनकादि वाञ्छये ए–भोग॥११८॥
सबे मिलि' एकठाँइ करिव कीर्तन।
ये–ते केन ना बले पाषण्डी–पापिगण॥''११९॥

(११८–११९) प. अनु०—श्रीवास पण्डित ने कहा,–"तुम्हारा जो यह भक्तियोग है, इस कृष्णप्रेमान्माद रूप रोग को भोगने की लालसा तो ब्रह्मा-शिव-सनकादि भी करते रहते हैं। हम सब एक स्थान पर एकत्र होकर करेंगे, चाहे पाखण्डी-पापीगण जो कुछ भी क्यों न कहें।"

(११८) गौः भाः—भोग,—इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रेमोन्माद-रोग का भोग, कृष्णविरह-प्रेमज्वाला।

(११९) गौः भाः—ये-ते.....पापिगण "पापीवदतु जनो यथा तथा वा ननु मुखरो न वयं विचारयाम। हरिसमदिरामदातिमत्ता भूवि विलुठाम नटाम निर्विशाम॥"

शची को श्रीवास द्वारा सान्त्वना और प्रबोध-दान एवं प्रभु के महा-कृष्णप्रेम को प्रकाशित न करने की आज्ञा—

शची प्रति श्रीनिवास बलिला वचन।
''चित्तेर यतेक दुःख करह खण्डन॥१२०॥
'वायु नहे,—कृष्णभक्ति' बलिलुँ तोमारे।
इहा कभु अन्य–जन बुझिवारे नारे॥१२१॥
भिन्न–लोक–स्थाने इहा किछु ना कहिवा।
अनेक कृष्णेर यदि रहस्य देखिया॥''१२२॥

(१२०–१२२) प. अनु०—श्रीवास शचीमाता से बोले कि,–"अब आप अपने चित्त के सब दुःखों को दूर कर दीजिए। मैं आपसे कहता हूँ कि यह वायु नहीं है, यह तो कृष्णभक्ति है। यदि आप श्रीकृष्ण के अनेक रहस्यों को देखना चाहती हैं तो बाहर के लोगों से इस विषय में कुछ भी मत कहना।"

(१२०) गौः भाः—खण्डन करह,—'छोड़ दो', दूर या त्याग कर दो।

(१२१–१२२) गौः भाः—अन्य-जन,—गुप्त गूढ़ दूर्बोध्य कृष्ण-लीला-तात्पर्य या चमत्कार।

श्रीवास के वाक्य सुनने से सभी की दुश्चिन्ता का ह्रास, (कम होना) किन्तु पुत्र के गृहत्याग की आंशका—

एतेक कहिया श्रीनिवास गेला घर।
बायुज्ञान दूर हैल शचीर अन्तर॥१२३॥
तथापिह अन्तर–दुःखिता शची हय।
'बाहिराय पुत्र पाछे' एइ मने भय॥१२४॥

(१२३–१२४) प. अनु०—इतना कहकर श्रीवास अपने घर को चले गये और शचीमाता के हृदय में भी वासु रोग होने का भ्रमात्मक ज्ञान दूर हो गया। तथापि शचीमाता के हृदय में एक दूसरा दुःख और भय उपस्थित हो गया कि 'पुत्र पीछे कहीं घर को छोड़कर बाहर न चला जाये।'

(१२४) गौः भाः—बाहिराय—बाहर होना, (यहाँ पर) घर या संसार से बाहर होकर चला जायेगा या गृहस्थाश्रम त्याग करके संन्यास या प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।

भगवत्कृपा के बल से ही भगवत्लीला-रहस्य का बोध—

एइमते आछे प्रभु विश्वम्भर-राय।
के ताने जानिते पारे, यदि ना जानाय?१२५॥

(१२५) प. अनु०—इस प्रकार प्रभु श्रीविश्वम्भर राय अपनी लीला में निमग्न हैं। यदि वे कृपा करके अपने आपको प्रकट न करें तो कौन उनको जान सकता है?

(१२५) गौः भाः—के.....जानाय,—(श्वेताश्वतर में ३य अः १९) — "स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता"; (मुण्डक में ३/२/३ और कठ में २/२३)—"यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥" (भाः १०/१४/२९ श्लोक में श्रीकृष्ण के प्रति ब्रह्मा की उक्ति)—"अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसाद-लेशान-गृहीत एव हि। जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपिं चिरं विचिन्वन्॥" आलबन्दारू-स्तोत्र में १५ और १६ श्लोकों का शेष-पाद-"नैवासुरप्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धम्" और "पाश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः।" चै चः मध्य ६ष्ठ पः ८२ और ८७ पद्यांश—'कृपा बिना ईश्वरेर केह नाहि जाने' और "पाण्डित्याद्ये ईश्वरतत्व-ज्ञान कभु नहे" इत्यादि असंख्य शास्त्रवाक्य अनुशीलन हैं।

एकदिन गदाधर के साथ प्रभु का मायापुर में अद्वैत के दर्शनों के लिए जाना—

एकदिन प्रभु-गदाधर करि' संगे।
अद्वैते देखिते प्रभु चलिलेन रंगे॥१२६॥

(१२६) प. अनु०—एक दिन गदाधर को साथ लेकर प्रभु बड़ी ही उमंग से श्रीअद्वैत के दर्शनों के लिए गये।

प्रभु को अद्वैत के अपने भाव से कृष्णार्चनरत रूप में दर्शन—

अद्वैत देखिला गिया प्रभु-दुइजन।
बसिया करेन जल-तुलसी-सेवन॥१२७॥
दुइ भुज आस्फालिया बले 'हरि हरि'।
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे, आपना' पासरि'॥१२८॥
महामत्त सिंह येन करये हुँकार।
क्रोध देखि,—येन महारुद्र-अवतार॥१२९॥

(१२७-१२९) प. अनु०—वहाँ जाकर श्रीविश्वम्भर और गदाधर ने देखा कि श्रीअद्वैत प्रभु बैठकर जल और तुलसी द्वारा पूजा कर रहे हैं तथा दोनों भुजाएँ उठाकर 'हरि हरि' बोल रहे हैं। अपने आपको भूलकर वे कभी हँसते हैं और कभी रोते हैं; कभी महामत्त सिंह की भाँति हुँकार करते हैं। उनके क्रोध को देखने पर वे महारुद्र के अवतार जैसे लगते हैं।

(१२७) गौः भाः—यहाँ पर अद्वैत-शब्द 'बसिया सेवन करेन' क्रिया-पद का कर्त्ता है। प्रभु-दुइजन,—श्रीविश्वम्भर और श्रीगदाधर।

अपने भक्तश्रेष्ठ अद्वैत के दर्शन करने मात्र से प्रभु की मूर्च्छा—

अद्वैते देखिवा-मात्र, प्रभु विश्वम्भर।
पड़िला मूर्च्छित हइ' पृथिवी-उदार॥१३०॥

(१३०) प. अनु०—श्रीअद्वैतप्रभु को देखने मात्र से ही प्रभु विश्वम्भर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

प्रच्छन्नावतारी आत्मसंगोपनकारी अपने प्रभु के दर्शन मात्र से उनकी साक्षात्रूप से पूजन की इच्छा और यथाविधि अर्चन—

भक्तियोग-प्रभावे अद्वैत महाबल।
'एइ मोर प्राणनाथ' जानिला सकल॥१३१॥
'कति यावे चोरा आजि?'—भावे मने-मने।
''एकादिन चुरि करि' बुल' एइखाने!१३२॥

अद्वैतेर ठाञि तोर ना लागे चोराइ!
चोरेर उपरे चुरि करिव एथाइ''!१३३॥
चुरिर समय एबे बुझिया आपने।
सर्वपूजा–सज्ज लइ' नामिला तखने॥१३४॥
पाद्य, अर्घ, आचमनीय लइ' सेइ ठाञि।
चैतन्यचरण पूजे' आचार्य–गोसाञि॥१३५॥
गन्ध, पुष्प धूप, दीप, चरण–उपरे।
पुनः पुनः एइ श्लोक पड़ि नमस्करे॥१३६॥

(१३१–१३६) प. अनु०—भक्तियोग के प्रभाव से परम प्रतापी श्रीअद्वैत प्रभु सब कुछ जान गये कि,—'ये ही मेरे प्राणनाथ हैं।' वे मन-ही-मन सोचने लगे कि-"इतने दिनों तक तो यह चोर यहाँ—चोरी करता रहा, परन्तु आज यह कहाँ जायेगा? अद्वैत के निकट इसकी चोरी नहीं चलेगी? अद्वैत के निकट इसकी चोरी नहीं चलेगी। मैं यहीं पर इस चोर के ऊपर चोरी करूँगा!" तब चोरी का उपुयुक्त समय देखकर अद्वैत प्रभु आप ही पूजा की सब सामग्री लेकर नीचे उतर आये। श्रीअद्व ैताचार्य गोसाईं ने श्रीचैतन्यचन्द्र के श्रीचरणों पर कर ली। चरणों के ऊपर गन्ध और पुष्प चढ़ाकर एवं धूप, दीप लेकर वे इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुये नमस्कार करने लगे।

(१३२) गौः भाः—चोरा,—(प्रादेशिक चलित या कथित ग्राम्य शब्द, यहाँ, यहाँ पर विशेष्य), चोर, वंचक, आत्मगोपनकारी; चुरि करि,-आत्मगोपन

-पूर्वक वंचना करके।

(१३३) गौः भाः—चोराइ,—(चौर्यवृत्ति); चोरेर.....एथाइ,—(अद्वैत प्रभु सोचते हैं और मन-ही-मन कह रहे हैं,) 'मेरे प्रभु विश्वम्भर प्रच्छन्नावतारी-रूप में अपने आपको छिपाकर जैसे वंचन कर रहे हैं, उसी प्रकार मैं भी उनकी इस वर्तमान अन्तर्दशा में अवस्थान का सुयोग ग्रहण करके उनसे छिपाकर उनके ऊपर डकैती या लूटपाट करूँगा। (अर्थात् साक्षात्रूप से पूजा करके उनके भगवत्तारतम्य रूप को प्रकाशित करूँगा।'

(१३४) गौः भाः—चुरिर,—चातुरी से चोरी, डकैती, लूटपाट करना या लूटना; (यहाँ पर) अपने आप को छिपाने वाले प्रच्छन्नावतारी श्रीमहाप्रभु की साक्षात्रूप से अपने मन की इच्छा के अनुसार पूजा करके उनकी पूर्णतम स्वयं भगवत्ता को प्रकाशित करना।

(१३५–१३६) गौः भाः—श्रीचैतन्यचरणों की अर्चना के सम्बन्ध में जानने के लिए सद्गुरू से दीक्षा प्राप्त अर्चन करने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए कलकत्ता-स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से प्रकाशित 'श्रीभगवद् अर्चनविधि' पुस्तक पढ़ने योग्य है।

कृष्णप्रणाम श्लोक—तथाहि
(विष्णु-पुराण में १म अं १९ अः ६५)—

''नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥''१३७॥

(१३७) गौः भाः—हिरण्यकशिपु के आदेश से दैत्यों द्वारा समुद्र में पर्वतों से आच्छादित कर दिये जाने पर प्रह्लाद-द्वारा श्रीभगवद्-स्तुति—

अन्वय—ब्रह्मण्यानां (ब्रह्मण्यानां वेदविदां देवाय श्रेष्ठाय उपास्याय वा) गोपाब्राणहिताय च (गोभ्यः ब्राह्मणेभ्यः हितं नित्यमंगलं यस्मात् तस्मै) कृष्णाय नमः; (अतएवे) जगद्धिताय (जगतां शर्म्मकृते) गोविन्दाय (गोपनन्दनत्वेन गो-पालनलीला-परायणाय) कृष्णाय (सच्चिदानन्द-विग्रहाय परब्रह्मणे-"कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निवृति-वाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥" इति योगवृत्त्या, —"कृषि-शब्दश्च सत्तार्थोणश्चानन्दस्वरूपकः। सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्द-

मय-स्ततः॥" इति गौतमीय तन्त्रोक्तेः, तथा "कृषि-शब्दो हि सत्तार्थोणश्चानन्दस्वरूपकः। सत्तास्वानन्दयो-र्योगाच्चित् परं ब्रह्म चोच्यते॥" इति बृहद् गौतमी-योक्तेश्च; एवं "रूढ़ियोगमपहरित" इति न्यायेन, नन्द-यशोदानन्दनाय वा,—"कृष्णशब्दस्य तमालश्यामलत्विषि यशोदास्तन्धये पर-ब्रह्माणि रूढ़िः" इति 'नामकौमुदी' कृदुक्तेश्च) नमः नमः (असकृदुक्तिस्त्वत्यौत्सुक्येनेति ज्ञातव्यम्)।

(१३७) अनुवादः—(प्रह्लाद ने कहा,) हे ब्रह्मण्यदेव, हे गो-ब्राह्मण-हितकारिन्, (हित करने वाले), आपको नमस्कार है; हे जगत् का मंगल करने वाले, हे कृष्ण, हे गोविन्द, आपको बारम्बार नमस्कार है।

(१३७) तथ्य—ब्रह्मण्यदेवाय,—"ब्रह्मण्यानां देवाय श्रेष्ठाय"—(श्रीधरस्वामि-कृत 'आत्मप्रकाश'-टीका)। 'गो', 'कृष्ण' और 'गोविन्द'-शब्द का विस्तृत अर्थ जानने के लिए 'ब्रह्मसंहिता'-ग्रन्थ के १म श्लोक की श्रील जीवगोस्वामी-कृत टीका विवेचनीय है।

बारम्बार श्लोकपाठ और
प्रेमाश्रुपातपूर्वक पदप्रक्षालन—

पुनः पुनः श्लोक पड़ि' पड़ये चरणे।
चिनिया आपन-प्रभु करये क्रन्दने॥१३८॥
पाखालिला दुइ पद नयनेर जले
योड़हस्त करि' दाण्डाइला पदतले॥१३९॥

(१३८-१३९) प. अनु—इस श्लोक को बारम्बार पढ़ते हुये श्रीअद्वैत प्रभु महाप्रभु के श्रीचरणों पर पड़ गये और अपने प्रभु को पहचान कर रोने लगे। उन्होंने अपने दोनों नेत्रों के जल से प्रभु के श्रीचरणों को धो डाला और फिर हाथ जोड़कर श्रीचरणों के समीप जाकर खड़े हो गये।

(१३९) गौः भाः—पाखलिला,—(संस्कृत प्र+क्षल् धातु से निष्पन्न 'प्रक्षालन' से पाखालन और हिन्दी 'पखारना'), धोये या प्रक्षलित किये।

गदाधर द्वारा अद्वैत को मर्यादा के साथ उस कार्य से हटाना; अद्वैत के वाक्यों को सुनने से गदाधर की प्रभु के प्रति ईश्वर-बुद्धि-

हासि' बले गदाधर जिह्वा कामड़ाइ'।
''बालकेरे, गोसाञि! एमत ना युयाय॥''१४०॥
हाससे अद्वैत गदाधेर वचने।
''गदाधर! बालके जानिया कथो-दिने॥''१४१॥
चित्ते बड़ विस्मित हइला गदाधर।
''हेन बुझि अवतीर्ण हइला ईश्वर॥''१४२॥

(१४०-१४२) प. अनु०—तब श्रीगदाधर जीभ काटते हुये हँसकर बोले,-हे गोसाईं जी! "बालक के प्रति आपका ऐसा आचरण उचित नहीं है।" गदाधर के वचन सुनकर श्रीअद्वैत प्रभु ने हँसते हुये कहा,-"गदाधर! कुछ ही दिनों में तुम इस बालक को जान जाओगे।" यह सुनकर गदाधर मन में विस्मित हुये कि, —"ऐसा लगता है कि ये ईश्वर ही अवतीर्ण हुये हैं।"

(१४०) गौः भाः—जिह्वा कामड़ाइ',—दाँतों द्वारा जिह्वा दर्शन करके, दाँतों द्वारा जीभ को दबाकर रखना (निषेध करना या निवारण करने के लिए अत्यन्त लज्जा और असम्मति सूचक मुखभङ्गि-क्रिया)।

बालकेरे.....युयाय,-हे प्रभो, विश्वम्भर जैसे बालक के प्रति आपका ऐसा आचरण उचित नहीं है।

(१४२) गौः भाः—जो-भगवान् गौर-कृष्ण के नित्य पार्षद हैं, वे ही प्रभु के अलौकिक प्रेमाविकार-दर्शन से श्रीकृष्ण की गौरलीला को समझ सकते हैं। किन्तु श्रीलअद्वैत प्रभु के आत्मवंचक और आत्मवंचित अनुकरण ाकारी प्राकृत-

साहजिक-सम्प्रदाय उनकी इन सब चिद् उपलब्धि-मूलक भगवद्लीला कथाओं का पाठ या श्रवण करके, कपट से अनेक प्रकार की उच्छृंखलताओं का प्रदर्शन करके श्रीचैतन्यलीला का तारतम्य न समझते हुये नरक के पथ का अनुसंधान करते हैं। वंचितगण भी अपने स्वार्थ का पोषण करने वाले उन वंचकगणों को नवगौरांग सजाकर अपने सर्वनाश को ही आमंत्रित करते हैं।

बहिर्दशा में आकर प्रभु का अद्वैत को प्रेम से अर्चनरत देखना—

कतक्षणे विश्वम्भर प्रकाशिया बाह्य।
देखने आवेशमय अद्वैत-आचार्य॥१४३॥

(१४३) गौः भाः—आवेशमय,—प्रेमाविष्ट।

अपने आपको छिपाकर प्रभु द्वारा अद्वैत की स्तुति—

आपनारे लुकायेन प्रभु-विश्वम्भर।
अद्वैतेरे स्तुति करे' युड़ि' दुइ कर॥१४४॥
नमस्कार करि' ताँन पद्धूलि लय।
आपनार देह प्रभु ताँरे निवेदय॥१४५॥
''अनुग्रह तुमि मोरे कर' महाशय।
तोमार से आमि,—हेन जानिह निश्चय॥१४६॥
धन्य हइलाङ आमि देखिया तोमारे।
तुमि कृपा करिले से कृष्णनाम स्फुरे॥१४७॥
तुमि से करिते पार' भवबन्ध नाश।
तोमार हृदये कृष्ण सर्वदा प्रकाश॥''१४८॥

(१४४-१४८) प. अनु०—तब प्रभु अपने को छिपाने के लिए हाथ जोड़कर श्रीअद्वैत की स्तुति करने लगे। प्रभु ने उनको नमस्कार करके उनकी चरणधूलि ली और अपनी देह को उनके लिए समर्पित करते हुये कहा कि,-"हे महाशय! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यह निश्चय जानिए कि मैं आपका ही हूँ। मैं आपके दर्शन करके धन्य हो गया हूँ। आपके कृपा करने पर ही श्रीकृष्णनाम स्फुरण होता है। आप ही संसार-बन्धन का नाश कर सकते हैं। आपके हृदय में सर्वदा श्रीकृष्ण प्रकाशमान रहते हैं।"

प्रेम से एक दूसरे की महिमा प्रकटन में भक्त और भगवान, दोनों ही समतुल्य—

निज-भक्ते बाड़ाइते ठाकुर से जाने।
येन करे' भक्त, तेन करेन आपने॥१४९॥

(१४९) प. अनु०—भगवान् अपने भक्त की महिमा को बढ़ाना अच्छी तरह जानते हैं, जैसे भक्त उनकी स्तुति करते हैं, वैसे ही वे भी भक्तों की स्तुति करते हैं।

(१४९) गौः भाः—अपने सेवकों की महिमा किस प्रकार से बढ़ाई जाती है और उनकी जय का कीर्तन किस प्रकार से किया जाता है, यह एकमात्र भक्तवश भगवान् ही जानते है; भक्तसंग से वर्जित दूसरे व्यक्ति उसे नहीं जानते हैं। फिर सेव्य-भगवान् के प्रति सेवक भक्तगण जैसे विश्रम्भ के साथ अनेक प्रकार से सेवा-प्रणय चेष्टाओं का प्रदर्शन करते हैं, वैसे ही भक्तों के एकमात्र प्राणस्वरुप श्रीभगवान् भी अपने प्राणधिक प्रिय भक्तों के प्रति अनेक प्रकार से सेवा-प्रणय का विधान करके अतुल असीम भक्त-वात्सल्य का प्रदर्शन करते हैं। इससे कोई जैसे करने की चेष्टा से अपने सेव्य-भाव के राहित्य का ज्ञापन कर रहे हैं; अपितु उन्होंने भक्तवात्सल्य के प्रदर्शन द्वारा भक्त के भक्तरूप का स्वयं आचरण करके जगत् में भगवान् और भक्त के परस्पर अत्यन्त-घनिष्ठ विश्रम्भमय सम्बन्ध का प्रचार किया है।

पहले ही अपने आपको छिपाने प्रच्छन्न-कभु का अद्वैत द्वारा ईश्वर-रुप में ज्ञान और उसका प्रकटन—

मने बले अद्वैत,—''कि कर' भारि-भूरि।
चोरेर उपरे आगे करियाछि चुरि॥''१५०॥

(१५०) प. अनु०—श्रीअद्वैताचार्य मन-ही-मन बोले,—"क्यों करते हो चतुराई? मैं तो पहले से ही चोर की चोरी कर चुका हूँ।"

(१५०) गौः भाः—भारि भूरि,—भारि—खूब, अत्यन्त, प्रचुर; भूरि—सम्भ्रम; इसलिए भारिभूरि, —चातुरी, चालाकी या चतुराई, उस्तादी, बहादुरी, केर्दानि, सेयान्तुमि, मुरुब्बी-आना।

श्रीअद्वैतप्रभु मन-ही-मन कह रहे हैं, —'आप चतुर्दश-भुवनपति होकर भी जैसे मेरी प्रतिष्ठा को बढ़ाकर केवल आत्मगोपनरूप चोरी कर रहे हैं, मैंने भी वैसे ही आपकी अन्तर्दशा में आपकी सेवा करके आपसे सुगुप्त निगूढ़ सेव्य-भाव का सदुपयोग किया है। मेरे सामने आपका स्वरूप प्रकाशित हो चुका है, अर्थात् मैंने आपको ब्रजेन्द्रनन्दन जानकर आपके प्रच्छन्न-अवतारित्व को समझकर सब लोगों के सम्मुख उसे प्रकाशित कर दिया है।'

अद्वैत-द्वारा प्रभु से एकत्र अवस्थान करके कृष्णकीर्तन करने के लिए सविनय अनुरोध—

हासिया अद्वैत किछु करिला उत्तर।
''सबा' हैते तुमि मोर बड़, विश्वम्भर!१५१॥
निरन्तर तोमा' येन देखिवारे पाइ॥१५२॥
सर्व-वैष्णवेर इच्छा—तोमारे देखित।
तोमार सहित कृष्णकीर्तन करिते॥''१५३॥

(१५१-१५३) प. अनु०—फिर हँस करके श्रीअद्वैत प्रभु ने कुछ संक्षिप्त-सा उत्तर दिया कि,—"हे विश्वम्भर! तुम मेरे लिए सबसे बड़े हो। तुम श्रीकृष्ण-कथा का कौतुक करते हुये यहीं रहो, जिससे मैं तुमको निरन्तर देख पाऊँ। सब वैष्णवों की इच्छा तुम्हें देखने और तुम्हारे साथ कृष्णकीर्तन करने की है।"

प्रभु द्वारा अद्वैत के वाक्यों को स्वीकार करना और अपने घर को प्रस्थान—

अद्वैतेर वाक्य शुनि' परम-हरिषे।
स्वीकार करिया चलिलेन निज-वासे॥१५४॥

(१५४) प. अनु०—श्रीअद्वैत की बात सुनकर प्रभु ने बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया और अपने घर को लौट आये।

अपने प्रभु के भक्तवात्सल्य और सेव्यस्वरूप की परीक्षा के लिए अद्वैत का गुप्त-रीति से शान्तिपुर में अपने घर को आना—

जानिला अद्वैत,—हैल प्रभुर प्रकाश।
परीक्षिते' चलिलेन शान्तिपुर-वास॥१५५॥
''सत्य यदि प्रभु हय, मइ हऊं दास।
तबे मोरे बान्धिया आनिवे निज-पाश॥''१५६॥

(१५५-१५६) प. अनु०—श्रीअद्वैत प्रभु जान तो गये कि प्रभु का प्रकाश हो गया है, तथापि परीक्षा करने के लिए वे अपने निवास-स्थान शान्तिपुर को चल दिये। उनके मन में यह था कि—"यदि वास्तव में ये प्रभु ही हैं और मैं वास्तव में उनका सच्चा दास हूँ तो प्रभु मुझे बाँधकर अपने पास ले आयेंगे।"

(१५६) गौः भाः—बान्धिया,—कृपा या दास्यरूप रस्सी के बन्धन में बाँधकर।

प्रभु के अवतारणकारी अद्वैत का चरित्र—दुरधिगम्य (जिसे समझना कठिन हो)—

अद्वैतेर चित्त बुझिवार शक्ति कार?
याँर शक्ति-कारणे चैतन्य-अवतार॥१५७॥

(१५७) प. अनु०—जिनकी शक्ति के प्रभाव से श्रीचैतन्यदेव का अवतार हुआ, उन

अद्वैताचार्य के चित्त का समझने की शक्ति भला किसमें हैं?

परमसत्यवस्तु की लीला में श्रद्धाहीन जन के निश्चय पतन की सम्भावना—

ए–सब कथाय यार नाहिक प्रतीत।
सद्यः अधः पात तार जानिह निश्चित॥१५८॥

(१५८) प. अनु०—परम सत्यवस्तु की लीला में जिनका विश्वास नहीं है, उनका शीघ्र ही अधःपतन होगा, यह निश्चय जानना।

(१५७–१५८) गौः भाः—अद्वैतप्रभु का तत्त्व निरूपण—साधारण पण्डिताभिमानी–जीवों के लिए अति कठिन विषय है। श्रील अद्व ैतप्रभु कारणार्णव में शयन करने वाले महाविष्ण ु के उपादान कारण के अंश हैं। उन्होंने महाप्रभु को अपने–मूल सेव्य–तत्त्व–रूप से प्रपंच में उदय कराकर सबके पास उनका प्रकाश कराया था और सबके लिए उन्हें सहजप्राय कराया था। उपादान–कारणावंश ही निमित्त और उपादान दोनों कारणों से मिलित सर्वकारणकारण परमेश्वर श्री ब्रजेन्द्रनन्दन का प्रपंच में अवतरण कराने में समर्थ है। उन्हीं साक्षात् श्रीहरि के साथ अभिन्न श्रील अद्व ैताचार्य के कृपा–बल से ही हरिविमुख जीवों ने भी अतिशय उदार कृष्णप्रेमप्रदाता श्रीचैतन्यदेव का सन्धान प्राप्त करने का सुयोग पाया है। गौरकृष्ण विमुख जीवों के प्रति श्रीअद्वैताचार्य की अहैतुकी दया ही उनकी अनादि–जीव इन सब महासत्य तत्त्वकथा में प्रवेश न करके इनके प्रति श्रद्धाहीन होते हैं, तो वे तत्काल अधोगति को प्राप्त होते हैं, अर्थात् सुकृति से वंचित हो जाते हैं।

भक्तों के साथ प्रभु का प्रतिदिन कृष्णकीर्तन—

महाप्रभु विश्वम्भर प्रति–दिने–दिने।
संकीर्तन करे सर्व–वैष्णवेर सने॥१५९॥

(१५९) प. अनु०—अब महाप्रभु विश्वम्भर सभी वैष्णवों के साथ प्रतिदिन संकीर्तन करने लगे।

तब भी प्रभु में ईश्वरबुद्धि का अभाव रह ने पर भी प्रभु के प्रेमावेश–दर्शन से उनमें 'ईश्वर' रूप का संशय—

सबे बड़ आनन्दित देखि' विश्वम्भर।
लखिते ना पारे केह आपन–ईश्वर॥१६०॥
सर्व–विलक्षण ताँर परम–आवेश।
देखिया सबार चित्ते सन्देह विशेष॥१६१॥

(१६०–१६१) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर को देख–देखकर सभी बड़े आनन्दित होते थे, परन्तु कोई भी अपने प्रभु को पहचान नहीं पाता था। उसे देख–देख कर सबके चित्त में एक विशेष प्रकार का सन्देह अवश्य हो जाया करता था।

प्रभु की प्रेमावेश–अवस्था के वर्णन में एकमात्र 'शेष' ही समर्थ—

यखन प्रभुर हय आनन्द–आवेश।
के कहिवे ताहा, सबे पारे प्रभु 'शेष'॥१६२॥

(१६२) प. अनु०—जब प्रभु को आनन्द से प्रेमावेश हो जाता है, तब उस दशा का कौन वर्णन कर सकता है? उसका निरूपण तो केवल 'शेषदेव ' ही कर सकते हैं।

(१६२) गौः भाः—प्रभु 'शेष'—भगवान् सहस्रवदन अनन्तदेव।

प्रभु के प्रेमविकारों का वर्णन—

शतेक–जनेओ कम्प धरिवारे नारे।
नयने बहये शतशत–नदी–धारे॥१६३॥

कनक-पनम येन पुलकित-अंग।
क्षणे-क्षणे अट्ट-अट्ट हासे बहु रंग॥१६४॥
क्षणे हय आनन्दे मूर्च्छित प्रहरेक।
बाह्य हैले ना बलेन कृष्ण-व्यतिरेक॥१६५॥
हुँकार शुनिते दुइ श्रवण विदरे।
तान अनुग्रहे तान भक्तगण तरे'॥१६६॥
सर्व-अंग स्तम्भाकृति क्षणे-क्षणे हय।
क्षणे हय सेइ अंग नवनीतमय॥१६७॥

(१६३-१६७) प. अनु०—प्रभु में कम्प होते समय शत-शत जन भी उनको पकड़कर स्थिर नहीं रख सकते थे। नेत्रों से मानों तो सैकडों नदियाँ बहने लगती थीं। जब अंग पुलकित होकर रोंगटे खड़े हो जाते थे, तब ऐसा प्रतीत होता था मानों वे सोने का कटहल ही हो। क्षण-क्षण वे अनेक प्रकार से अट्टहास करते थे। फिर किसी क्षण वे एक-एक प्रहर तक के लिए आनन्द में मूर्च्छित हो जाते थे और बाह्य-ज्ञान होने पर भी 'कृष्ण कृष्ण' बोलने के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं कहते थे। उनकी हुँकार को सुनकर दोनों कान फटने लगते थे, परन्तु उनके अनुग्रह से उनके सब भक्तों की रक्षा हो जाती थी। फिर क्षणभर में प्रभु के समस्त अंग स्तम्भ जैसे हो जाते थे और क्षण भी में ही वे अंग नवनीतमय हो जाते थे।

(१६५) गौः भाः—अन्तर्दशा से बाह्यदशा में आने पर भी प्रभु के मुख से निरन्तर कृष्णनाम उच्चारित होता रहता था। कृष्णविमुख जीव जैसे निद्रित या तूष्णीम्भूत (मौन की स्थिति में) रहते हुये भी सर्वदा भगवत् सेवा से वंचित रहते हैं और निद्रा-भंग या मौन-भंग होने पर अपने-अपने इन्द्रिय-तृप्तिपरक भोग्यविषयों की चर्चा में लग जाते हैं, प्रभु का व्यवहार उस प्रकार का नहीं था या वैसा दृष्टगत नहीं होता था। उन्होंने आन्तरिक और बाह्य, दोनों ही प्रकार की स्थितियों में सर्वोत्तम आदर्श लोकशिक्षकरूप से सब प्रकार की चेष्टाओं को ही कृष्णसेवा परायणता का स्वरूप प्रदर्शन किया था।

(१६६) गौः भाः—भगवान् के कृष्णप्रेम से युक्त हुँकार के शब्दों को सुनकर भगवद्-विमुख श्रोताओं के दोनों कान विदीर्ण होने लगते थे; किन्तु उसको सुनने से भक्तगण उनकी कृपा प्राप्त करके कृष्णेतर विषय भोगों से निष्कृति (छुटकारा) प्राप्त करते थे। अर्थात् उत्तरोत्तर अधिकतर भगवद् सेवोन्मुख होते थे।

प्रभु के प्रेमविकारों के दर्शन से
उनकी अतिमर्त्य (अलौलिक पुरूष)
के रूप में पहिचान—

अपूर्व देखिया सब-भागवतगणे।
नर-ज्ञान आर केह ना करये मने॥१६८॥
केह बले,—"ए पुरुष अंश-अवतार"।
केह बले,—"ए शरीरे कृष्णेर विहार॥"१६९॥
केह बले,—"किवा शुक, प्रहलाद, नारद"।
केह बले,—"हेन बुझि खण्डिल आपद॥"१७०॥
यत सब भागवतगणेर गृहिणी।
ताँग बले—"कृष्ण आसि' जन्मिला आपनि॥"१७१॥
केह बले,—"एइ बुझि प्रभु-अवतार।"
एइमत मने सबे करेन विचार॥१७२॥

(१६८-१७२) प. अनु०—ऐसी अपूर्व दशा को देखकर सब भक्तवृन्दों का मन उनको अब मनुष्य मानने को तैयार नहीं था। कोई कहता कि,—"यह पुरुष तो अंशावतार है।" कोई कहता कि,—"इनके इस शरीर में श्रीकृष्ण विहार करते हैं।" कोई कहता कि,—"यह शुकदेव, प्रह्लाद अथवा नारद हैं।" कोई कहता कि,—"ऐसा मालूम होता है कि अब हमारी

सब आपदाएँ कट गयीं।" उन सब भक्तों की जो गृहणियाँ हैं, वे कहतीं कि,—"श्रीकृष्ण ने आप ही जन्म लिया है।" कोई कहतीं कि,—

"मुझे ऐसा लगता है कि यह प्रभु के अवतार हैं।" इसी प्रकार सभी अपने-अपने मन में सोचा करते थे।

बहिर्दशा में आकर फिर से
प्रभु का प्रेमाश्रुपात—

बाह्य हइले ठाकुर सबार गला धरि'।
ये क्रन्दन करे ताहा कहिते ना पारि॥१७३॥

(१७३) प. अनु०—इधर प्रभु जब बाह्यदशा में आते तो सबका गला पकड़-पकड़कर जो क्रन्दन करते, उसे मैं कह नहीं पा रहा हूँ।

कृष्णविरहार्त्त-गोपीभाव-विभावित प्रभु का
खेद-जैसा कि (श्रीकृष्णकर्णामृत में ४१)—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि॥१७४॥

(१७४) अन्वय—(हे) हरे, (गोपजन-चित्तगौर), (हे) अनाथबन्धो, (अनाथानां गोपीनां बन्धो आश्रय), (हे) करुणैकसिन्धो, (करुणायाः दयायाः एकः दर्शनम्) अन्तरेण (विना) अमूनि अधन्यानि (त्वद्दर्शन-राहित्यात एव अशुभानि अप्रियाणि) दिनान्तराणि (अवशिष्टानि अन्यानि दिनानि) हा हन्त हा हन्त (अहो कष्टम् अहो कष्टम्) कथं (केन उपायेन) नयामि (यापयामि)?

(१७४)अनुवाद—"हे गोपियों के चित्त को चुराने वाले , है अबलाओं के बान्धव, हे दया के सागर श्यामसुन्दर, हाय हाय, तुमको न देखकर तुम्हारे विरह में इन दिनों को मैं कैसे बिताऊँ? बताओ!"

(१७४)तथ्य—(चैः चः मध्य २य पः ५९ संख्या में प्रभु के कृष्ण-विरह वर्णन प्रसंग में)—"तोमार दर्शन बिने, अधन्य ए रात्रि-दिने, एइ काल ना याय काटन। तुमि अनाथेर बन्धु, अपार करुणासिन्धु, कृपा करि' देह' दरशन॥"

कृष्णविरह में कृष्णानुसन्धान और
कृष्ण-प्राप्ति के लिए अति उत्कण्ठा—

''कोथा गेले पाइमु से मुरलीवदन!''
बलिते छाड़ये श्वास, करये क्रन्दन॥१७५॥

(१७५) प. अनु०—"कहाँ जाने से मैं उन मुरलीवदन (मुख से मुरली बजाने वाले श्रीकृष्ण) को पाऊँगा" यह कह-कहकर प्रभु लम्बी-लम्बी साँसे छोड़ते और रोते रहते थे।

(१७५) गौः भाः—(चैः चः मध्य २य पः १५)—"काँहा मोर प्राणनाथ मुरलीवदन। क्या करौं, काँहा पाङ ब्रजेन्द्रनन्दन॥"

(चैः चः अन्त्य १२ पः ५)—"हा हा कृष्ण प्राणनाथ ब्रजेन्द्रनन्दन। काँहा याङ काहा पाङ मुरलीवदन॥" (चैः चः अन्त्य १५ पः २४) "क्या करो, काँहा याङ, काँहा गेले कृष्ण पाङ, दुँहे मोरे कह से उपाय॥" (चैः चः अन्त्य १७पः५३)—"क्या करौं, काँहा याङ, काँहा गेले कृष्ण पाङ, कृष्ण बिना प्राण मोर याय॥"

अन्तरंग भक्तों के समीप अपने
कृष्णविच्छेद-दुःख का निवेदन—

स्थिर हइ' प्रभु सब-आप्तगण-स्थाने।
प्रभु बले,—''मोर दुःख करौं निवेदन॥''१७६॥
प्रभु बले,—''मोर से दुःखेर अन्त नाइ।
पाइयाओ हाराइनु जीवन-कानाइ॥''१७७॥

(१७६-१७७) प. अनु०—फिर जब स्थिर होते, तो सब आत्मीय जनों से कहते कि, —"मैं तुमसे अपना दुःख निवेदन कर रहा

हूँ।" फिर कहते कि,—"मेरे दुःख का कोई अन्त नहीं है। हाय! मैंने अपने प्राणस्वरुप कन्हैया को पाकर के भी गँवा दिया।"

(१७७) गौः भाः—जीवन कानाइ,—प्राण स्वरुप कानु (नन्दनन्दन)।

प्रभु से गुप्तकथा सुनने के लिए सब का बैठना—

सबार सन्तोष हैल रहस्य शुनिते।
श्रद्धा करि' सबे बसिलेन चारिभिते॥१७८॥

(१७८) प. अनु०—यह सुनकर सबको बड़ा आनन्द हुआ और वे सब रहस्य की बात सुनने के लिए श्रद्धापूर्वक प्रभु के चारों ओर बैठ गये।

(१७८) गौः भाः—रहस्य,—गोपनीय या अप्रकाश्य कथा या घटना।

गोपीभाव से विभावित प्रभु द्वारा
'कानाञिनाटशाला' में कृष्ण दर्शनाख्यान
के ज्ञापन द्वारा कृष्णनाम का वर्णन—

''कानाञिर नाटशाला—नामे एक ग्राम।
गया हैते आसिते देखिनु सेइ स्थान॥१७९॥
तमाल-श्यामल एक बालक सुन्दर।
नवगुंजा-सहित कुन्तल मनोहर॥१८०॥
विचित्र मयूरपुच्छ शोभे तदुपरि।
झलमल मणिगण,—लखिते ना पारि॥१८१॥
हातेते मोहन बाँशी परम-सुन्दर।
चरणे नूपूर शोभे अति-मनोहर॥१८२॥
नीलस्तम्भ जिनि' भुजे रत्न-अलंकार।
श्रीवत्स-कौस्तुभ वक्षे शोभे मणिहार॥१८३॥
कि कहिव से पीत-धटीर परिधान।
मकर-कुण्डल शोभे कमल-नयान॥१८४॥
आमार समीपे आइला हासिते-हासिते।
आमा' आलिंगिया पलाइला कोन् भिते॥''१८५॥

(१७९-१८५) प. अनु०—प्रभु ने बताया कि, "गया धाम से लौटते समय 'कनाई नाट्यशाला' नामक एक ग्राम में मैंने देखा कि तमाल जैसे श्यामल वर्ण का एक सुन्दर बालक है। नवीन गुंजाओं के साथ उसकी मनोहर केशावली है। उसके ऊपर विचित्र मोरपंख शोभित हो रहा है, जिसमें मणियाँ झलमला रही हैं, और जिस पर दृष्टि ठहर नहीं पा रही है। हाथ में परम सुन्दर मोहनी बंसी है, चरणों में अत्यन्त मनोहर नूपूर शोभायमान हैं। नील स्तम्भ-सदृश भुजाओं पर रत्नों के अलंकार और वक्षःस्थल पर श्रीवत्स, कौस्तुभमणि और मणि के हार शोभा दे रहे हैं तथा कमर पर कसे हुये उस पीताम्बर का तो कहना ही क्या। कानों में उसके मकराकृत कुण्डल हैं तथा कमल सदृश उसके नेत्र हैं। वह हँसते हँसते मेरे समीप आया और मुझे आलिंगन करके न जाने किधर चला गया।"

(१७९) गौः भाः—कानाञिर नाटशाला,-यह 'कन्हैया का स्थान'—नाम से स्थानीय लोगों के मध्य प्रसिद्ध है। कलकत्ता-हावड़ा-कटवा-आजिमगंज-

वारहाओरा लाइन से 'तालझारि'-स्टेशन पर उतरकर मैदान के कच्चे रास्ते से जाने पर प्रायः दो मील पूर्वोत्तर दिशा में अथवा पक्के रास्ते से स्टेशन की पूर्व दिशा में स्थित मंगलहाट-ग्राम से प्रायः दो मील उत्तर में 'कानाइ की नाटशाला' स्थित है। इस 'कानाइया के स्थान' के चारों ओर ही वन (जगत) हैं; एक छोटे से पहाड़ के ऊपर एक बड़े मन्दिर के अन्दर स्थापित श्रीमती राधिका और श्रीकन्हैयालाल जी और बहुत-सी शालग्राम शिलायें प्राचीनकाल से पूजित हो रही हैं उसके निकट ही एक और प्रस्तर-

मंच (पत्थर के चबूतरे) के ऊपर श्रीचैतन्य महाप्रभु के काले पत्थर से निर्मित दो जोड़ी श्रीचरण-

चिह्न बहुत समय से स्थापित हैं। आजकल

एक विरक्त पुजारी उनका अर्चन करते हैं। इन दोनों मन्दिरों के मध्यवर्ती स्थान पर ही ४४३ गौराब्द में प्राचीन-नवद्वीप श्रीधाम-मायापुरस्थित श्रीचैतन्यमठ के सेवकों के सेवाग्रह के फलस्वरूप एक गौरपादपीठ-मन्दिर स्थापित हुआ है। इस स्थान से पूर्व दिशा में एक मील की दूरी पर गंगाजी प्रवाहित हैं और एक मील की दूरी पर लोगों की बस्ती है।

प्रभु-कृपा के बिना सभी की गोपीभावचित्त प्रभु के वाक्यों को समझने में असमर्थता—

किरूपे कहेन कथा श्रीगौरसुन्दरे।
तान कृपा बिना ताहा के बुझिते पारे?१८६॥

(१८६) प. अनु०—श्रीगौरसुन्दर ये बातें किस भाव में कह रहे थे, इसे उनकी कृपा के बिना कौन समझ सकता है?

(१८६) गौः भाः—प्रभु के अलौकिक वाक्यादि कौन-सी दशा में किस भावादेश में किस-किस जाग्रत स्वरूप वाले व्यक्ति के लिए कथित हो रहे हैं, उनके कृपा बल के बिना उनको समझ पाने की शक्ति किसी में भी नहीं है। जो कपट करके प्रेम प्राप्त किये हुये की भाँति अभिमान से गौरसुन्दर की प्रेम-चेष्टाओं का अनुकरण करते हैं, वे अति द्रुतवेग से बिना किसी विवाद के नरक की ओर गमन करते हैं। प्राकृत-सहजिया अप्राकृत-विप्रलम्भ विग्रह गौरचरित्र को न समझकर जब हरिसेवा का परित्याग करके अपनी और दूसरों की वंचना के कुत्सित अभिप्राय द्वारा कनक-कामिनी -प्रतिष्ठा का संग्रह करने के लिए आत्मविनाशिनी चेष्टाओं में प्रवृत्त होते हैं, अर्थात् गौरकृष्ण-भजन-परायण सद्गुरु के श्रीचरणों का आश्रय न करके जब कृष्णभक्तिहीन जड़ेन्द्रिय तर्पणपरायण अन्याभिलाषी, कर्मी या ज्ञानी के जघन्य (घृण्य) चरणों को ही गुरुपादपद्म समझकर उनका वरण करते हैं, तब उनके प्रति श्रीगौरसुन्दर की कोई कृपा नहीं हुई, यह जानना होगा; दूसरी और वे गौरभोगी होकर अपने द्वारा किये हुये अपराधों के फल भयानक अमंगलों के लाभ करते हैं।

कृष्णकथा-वर्णन के बीच प्रभु की प्रेम-मूर्च्छा—

कहिते कहिते मूर्च्छा गेला विश्वम्भर।
पड़िला 'हा कृष्ण!' बलि' पृथिवी-उपर॥१८७॥

(१८७) प. अनु०—(श्रीकृष्णदर्शन के बारे में कहते-कहते ही प्रभु श्रीविश्वम्भर मूर्च्छित हो गये और 'हा कृष्ण'! कहते हुये पृथ्वी पर गिर पड़े।

सब का जल्दी से प्रभु को धारण और धूलि मार्जन—

आथे-व्यथे धरे सब 'कृष्ण कृष्ण' बलि'।
स्थिर करि' झाड़िलेन श्रीअंगेर धूलि॥१८८॥

(१८८) प. अनु०—'कृष्ण कृष्ण' कहते हुये सब लोगों ने झटपट प्रभु को पकड़ लिया और स्थिर करके उनके श्रीअंग की धूल झाड़ दी।

प्रेमविह्वल प्रभु का केवल 'कृष्ण' कहकर क्रन्दन—

स्थिर हइयाओ प्रभु स्थिर नाहि हय।
'कोथा कृष्ण! कोथा कृष्ण!' बालिया कान्दय॥१८९॥

(१८९) प. अनु०—स्थिर होकर के भी प्रभु स्थिर नहीं हो पा रहे थे और 'कहाँ हैं कृष्ण! कहाँ हैं कृष्ण!' ऐसा कहकर रोते ही जा रहे थे।

बहिर्दशा में आकर प्रभु की अति दैन्ययुक्त-विनयोक्ति—

क्षणेके हइला स्थिर श्रीगौरसुन्दर।
स्वभावे हइला अतिनम्र-कलेवर॥१९०॥

(१९०) **प. अनु०**—कुछ ही समय में श्रीगौरसुन्दर स्थिर हो गये। और उनका स्वभाव अति विनम्र हो गया।

प्रभु के कृष्णभजन-वर्णन के बारे में सुनकर सबके द्वारा दैन्य से प्रभु को प्रतिपालक जानकर उनकी स्तुति और अपना दुःख निवेदन—

परम-सन्तोष चित्त हइल सबार।
शुनिया प्रभुर भक्तिकथार प्रचार॥१९१॥
सबे बले,—"आमरा-सबार बड़ पुण्य।
तुमि-हेन-संगे सबे हइलाङ धन्य॥१९२॥
तुमि संगे यार, तार वैकुण्ठे कि करे?
तिलेक तोमार संगे भक्ति-फल धरे॥१९३॥
अनुपाल्य तोमार आमरा सर्वजन।
सबार नायक हइ' करह कीर्तन॥१९४॥
पाषण्डीर वाक्ये दग्ध शरीर सकल।
तोमार ए प्रेमजले करह शीतल॥"१९५॥

(१९१-१९५) **प. अनु०**—प्रभु की भक्तियुक्त कथा का प्रचार सुनकर सब भक्तों के चित्त को बड़ा आनन्द हुआ। सबने कहा कि,—"हमारे बड़े पुण्य हैं जो तुम्हारे-जैसे के संग से हम सब भी धन्य हो गये। तुम जिसके साथ हो, वह फिर वैकुण्ठ में जाकर क्या करेगा? तुम्हारे एक पल मात्र के संग से ही भक्ति का फल प्राप्त हो जाता है। हम सब तुम्हारे अनुपाल्य (पालन करने योग्य) हैं, तुम हम सबके नायक बनकर कीर्तन करो। पाखण्डियों के वाक्यों से हम सबके शरीर दग्ध हो रहे हैं, इसलिए तुम इस प्रेमजल के वर्णन से हमें शीतल करो।

(१९३) **गौः भाः**—वैकुण्ठे,—ऐश्वर्यरसप्रधान परव्योम में। ताँर.....करे,—उसके निकटऐश्वर्यरस-

प्रधान वैकुण्ठ भी अरुचिकर या अल्प-महिमा-विशिष्ट है।

(१९३) **गौः भाः**—तिलेक,—अति सुक्ष्म कालांश में; अन्य पाठ में, 'तिलार्द्ध'।

भक्तों को सान्त्वना देने के बाद प्रभु का अपने घर आगमन—

सन्तोषे सबार प्रति करिया आश्वास।
चलिलेन मत्तसिंह-प्राय निज-वास॥१९६॥

(१९६) **प. अनु०**—प्रभु ने प्रसन्नापूर्वक सबको आश्वासन दिया और उन्मत्त सिंह की भाँति अपने घर को चल दिये।

कृष्णप्रेमानन्दाविष्ट प्रभु के आचरण द्वारा सम्भोग-मूलक-गौरनागरी वाद का निरसन—

गृहे आइलेओ नाहि व्याभार-प्रस्ताव।
निरन्तर आनन्द-आवेश-आविर्भाव॥१९७॥

(१९७) **प. अनु०**—घर में आने पर भी प्रभु गृहस्थोचित्त सांसरिक व्यवहार की बातें नहीं करते थे, उनको तो सदैव प्रेमानन्द का आवेश ही बना रहता था।

(१९७) **गौः भाः**—व्याभार-प्रस्ताव, —गृहमेधीय या गृहस्थोचित्त सांसरिक व्यवहार का प्रसंग।

कृष्णविरह में उन्मत्त विप्रलम्भ के विग्रह श्रीमन् महाप्रभु अपने घर में आकर भी सांसारिक-व्यवहार के अनुष्ठान की आसक्ति में लिप्त होकर किसी प्रकार के कृष्णेतर भोगमय कर्मों का आवाहन नहीं करते थे; गौरमहाप्रभु गृह में स्वयं को कृष्ण विरह प्रेम की मूर्त्ति जैसा प्रकट करके सर्वक्षण विराजित रहते थे। अवैध गृहव्रती या गृहमेधी नवीन गौरनागरी-मतवादिगण अशास्त्रीय और तत्त्व विरुद्ध भाव से अपने उर्वर (उपजाऊ)

मस्तिष्क से प्रेमभक्तिस्वरुपिणी ऐश्वर्य रसप्रधान स्वकीया (अपनी) कान्ता महालक्ष्मी श्रीमती विष्णुप्रिया देवी के साथ श्रीगौरसुन्दर की जिन सब सम्भोग-लीलाओं की कल्पना (या रचना) करते हैं, उन्हें इस पद्य में श्रीव्यासा-वतार ठाकुर श्रीमद् वृन्दावन दास ने अति निर्मल और सुस्पष्ट-भाषा में सम्पूर्ण रूप से निरस्त कर दिया है।

प्रभु के प्रेमाश्रुओं के वर्णन में ग्रन्थकार की अतुल कवित्व-शक्ति—

कत वा आनन्दधारा बहे श्रीनयने।
चरणेर गंगा किवा आइला वदने!१९८॥

(१९८) प. अनु०—प्रभु के श्रीनेत्रों से न जाने कितनी आनन्दधाराएँ बहती रहती थीं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों श्रीचरणों से निकली गंगा श्रीमुख पर ही आ गई हो।

(१९८) गौः भाः—यहाँ पर 'उत्प्रेक्षा'-नामक अलंकार ग्रन्थकार की अतुल कवित्व-शक्ति का परिचायक हैं।

प्रभु के मुखमण्डल पर बहाने वाली प्रेमानन्दाश्रुधारा के साथ उनके चरणों से प्रकटित गंगा धारा की उपमा दी है। प्रभु के नेत्रों से उस प्रेमानन्दाश्रु-धारा के प्रवाह को देखकर स्वतः ही ऐसा लगता था,—जैसे सचमुच ही गंगा की जल-धारा प्रवाहित हो रही हो,—यही 'उत्प्रेक्षालंकार' हैं।

प्रभु के श्रीमुख में सर्वदा एकमात्र कृष्णकथा—

'कोथा कृष्ण! कोथा कृष्ण!' मात्र प्रभु बले।
आर केह कथा नाहि पाय जिज्ञासिले॥१९९॥

(१९९) प. अनु०—'कहाँ हैं कृष्ण! कहाँ हैं कृष्ण!' प्रभु बस केवल इतना ही बोलते थे। इसके अतिरिक्त उनसे कुछ पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं मिलता था।

(१९९) गौः भाः—आर.....जिज्ञासिले,—कृष्ण विरह-व्याकुल प्रभु से यदि कोई 'कृष्ण' के अतिरिक्त दूसरी कोई बात पूछता था तो उसके उत्तर में प्रभु के मुख से कृष्णकथा के अतिरिक्त और कोई बात या उत्तर सुनने को नहीं मिलता था।

अन्तरंग भक्त के दर्शनमात्र से प्रभु द्वारा कृष्णनुसन्धान की जिज्ञासा—

ये-वैष्णवे ठाकुर देखेन विद्यमाने।
ताँहारेइ जिज्ञासेन,—"कृष्ण कोन् खाने?"२००॥

(२००) प. अनु०—जिस किसी वैष्णव को प्रभु वहाँ उपस्थित देखते, उसी से पूछने लगते कि,—"कृष्ण कहाँ?"

(२००) गौः भाः—पूर्ववर्ती १७५ संख्या का भाष्य द्रष्टव्य हैं।

भक्तों द्वारा अपने ज्ञानानुसार प्रभु को सान्त्वना—

बलिया क्रन्दन प्रभु करे अतिशय।
ये जाने येमत, सेइमत प्रबोधय॥२०१॥

(२०१) प. अनु०—ऐसा पूछकर प्रभु अतिशय क्रन्दन करने लगते। भक्त लोगों में से जो जैसा जानता था, वह वैसा ही समझाा लेता था।

एकदिन ताम्बूल हाथ में लेकर गदाधर का आगमन; गदाधर से प्रभु की कृष्णानुसन्धान की जिज्ञासा—

एकदिन ताम्बूल लइया गदाधर।
हरिषे हइला आसि' प्रभुर गोचर॥२०२॥
गदाधरे देखि' प्रभु करेन जिज्ञासा।
"कोथा कृष्ण आछेन श्यामल पीतवाला?"२०३॥

(२०२-२०३) प. अनु०—एकदिन श्रीगदाधर ताम्बूल लेकर प्रसन्नतापूर्वक प्रभु के सम्मुख

आये। गदाधर को देखकर प्रभु पूछने लगे, —"पीताम्बरधारी श्यामल कृष्ण कहाँ हैं?"

श्रीकृष्ण के प्रति प्रभु की प्रेम-विरह कातरता को देखकर गदाधर निर्वाक्—

से आर्त्ति देखिते सर्व-हृदय विदरे।
कि बोल बलिवे,—हेन वचन ना स्फुरे॥२०४॥

(२०४) गौः भाः—कि बोल..... स्फुरे,-क्या कहकर कृष्ण-विरहार्त्त प्रभु को प्रबोध या सान्त्वना प्रदान करें, उसे न समझने के कारण या स्थिर न कर सकने के कारण समागत लोगों को किसी वाक्य की स्फूर्ति ही नहीं होती थी।

शीघ्रता से गदाधर की उक्ति—

सम्भ्रमे बलेन गदाधर-महाशय।
''निरवधि थाके कृष्ण तोमार हृदय॥''२०५॥

(२०५) प. अनु०—किन्तु श्रीगदाधर महाशय जल्दी से बोल उठे कि, "श्रीकृष्ण तो निरन्तर आनके हृदय में ही रहते हैं।"

(२०५) गौः भाः—सम्भ्रम,—सम्-भ्रम (भ्रमण करना) + अ (भाव में अल्); यहाँ पर, भय या भक्तिवशतः व्यस्तता के साथ।

प्रभु द्वारा अपने वक्ष को चीरने की चेष्टा—

'हृदये आछेन कृष्ण' वचन शुनिया।
आपन-हृदय प्रभु चिरे नख दिया॥२०६॥

(२०६) प. अनु०—'श्रीकृष्ण हृदय में हैं' यह वचन सुनते ही प्रभु लिये और नाना प्रकार से समझाते हुये उन्हें स्थिर करके रखा।

अतिकट से गदाधर द्वारा प्रभु का निवारण और उन्हें सान्त्वना—

आथे-व्याथे गदाधर दुइ हाते धरि'।
नाना-मते प्रबोधि' राखिला स्थिर करि'॥२०७॥

(२०७) प. अनु०—गदाधर ने जैसे-तैसे प्रभु के दोनों हाथ पकड़ लिये और नाना प्रकार से समझाते हुये उन्हें स्थिर करके रखा।

दूर से शची द्वारा गदाधर की समस्त चेष्टाओं के दर्शन और हर्ष से उसकी प्रशंसा—

''एइ आसिवेन कृष्ण, स्थिर हओ मने।''
गदाधर बले, आइ देखेन आपने॥२०८॥
बड़ तुष्ट हैला आइ गदाधर-प्रति।
''एमत शिशुर बुद्धि नाहि देखि कति॥२०९॥
मुञि भये नाहि पारि सम्मुख हइते।
शिशु हइ' केमन प्रबोधिल भालमते॥''२१०॥
''आइ बले,—बाप। तुमि सर्वदा थाकिया।
छाड़िया उहार संग कोथा ना याइवा॥''२११॥

(२०८-२११) प. अनु०-"श्रीकृष्ण अभी आने ही वाले है" ऐसा कहते हुये गदाधर के प्रति बड़ी प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं—"अहो! बालक में ऐसी बुद्धि तो मैंने कहीं नहीं देखी। मैं डर के मारे इसके सामने भी नहीं जा सकती हूँ और इसने बालक होकर के भी कैसे सुन्दर तरीके से इसे समझाया है।" माता ने गदाधर से कहा,—"वत्स! तुम तो सदैव यहीं रहा करो। इसका साथ छोड़कर कहीं मत जाओं।"

देवकी की भाँति शची का प्रभु के प्रति ऐश्वर्यमिश्र वात्सल्य और भयमिश्र विस्मय—

अद्भुत प्रभुर प्रेमयोग देखि' आइ।
पुत्र-हेन ज्ञान आर मने किछु नाइ॥२१२॥
मने भावे आइ,—''ए पुरुष नर नहे।
मनुष्येर नयने कि एत धारा बहे!२१३॥
नाहि जानि आसियाछे कोन् महाशय।''
भये आइ प्रभुर सम्मुख नाहि हय॥२१४॥

(२१२-२१४) प. अनु०—प्रभु के अद्भुत

प्रेमयोग को देखकर शचीमाता को उनके प्रति अपना पुत्र होने का तनिक भी ज्ञान न रहा। वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि,-"यह पुरुष मनुष्य नहीं है। मनुष्य के नेत्रों से क्या इतनी धाराएँ बह सकती हैं! न जाने यह के सामने महापुरुष आया है।" भय मानकर शचीमाता पुत्र के सामने भी नहीं आती थीं।

(२१२) गौः भाः—यहाँ पर, प्रभु के प्रति शचीमाता का देवकी की भाँति ऐश्वर्य मिश्रित वात्सल्य-रस प्रकाशित है।

(२१३) गौः भाः—नर,—मर्त्त्य मानुष या मानव; ए.....नहे,—यह विश्वम्भर निश्चय की कोई अतिमर्त्त्य अलौकिक पुरुष है।

सायंकाल भक्तों का क्रमशः
प्रभु के घर आगमन

सर्व-भक्तगण सन्ध्या-समय हइले।
आसिया प्रभुर गृहे अल्पे-अल्पे मिले॥२१५॥

(२१५) प. अनु०—सन्ध्या होते ही थोड़े-थोड़े करके सब भक्तवृन्द प्रभु के घर पर आ मिले।

कीर्तनगायक मुकुन्द द्वारा सुन्दर स्वर से
भक्तिसूचक श्लोकों की आवृत्ति—

भक्तियोग-सहित ये-सब श्लोक हय।
पड़िते लागिला श्रीमुकुन्द-महाशय॥२१६॥

(२१६) प. अनु०—उस समय श्रीमुकुन्द महाशय भक्तियोग-समस्त सब श्लोकों को पढ़ने लगे।

उनके श्रवण से प्रभु का प्रेमावेश और एक
साथ समस्त सात्त्विक भाषों का प्राकट्य—

पुण्यवन्त मुकुन्देर हेन दिव्य-ध्वनि।
शुनिलेइ आविष्ट हयेन द्विजमणि॥२१७॥

'हरि बोल' बोल' बलि प्रभु लागिता गर्जिते।
चतुर्द्दिके पड़े, केह ना पारे धरिते॥२१८॥
त्रास, हास, कम्प, स्वेद, पुलक, गर्ज्जन।
एकबारे सर्व-भाव दिला दरशन॥२१९॥

(२१७-२१९) प. अनु०—सौभाग्यशाली मुकुन्द का ऐसा दिव्य कण्ठस्वर था कि उसे सुनते ही द्विजमणि (श्रीगौरसुन्दर) प्रेमाविष्ट हो गये। 'हरि बोल' कहकर प्रभु गरजने लगे तथा चारों ओर गिरने लगे। कोई भी उनको पकड़कर रख नहीं पा रहा था। भय, हास, कम्प, स्वेद, पुलक और गर्जन आदि सब भाव एक साथ ही प्रभु में प्रकट हो रहे थे।

(२१७) गौः भाः—ध्वनि,—सुर या कण्ठ-स्वर।

(२१९) गौः भाः—निखिल आश्रितवर्ग में कान्तरस की आश्रय विग्रह कृष्णमोहिनी श्रीमती राधिका की गरिमा और गम्भीरता सर्वापेक्षा अधिक है, इसलिए उनके चित्त में ही समस्त अनुवाद, सात्त्विक भाव और व्यभिचारी या संचारी भावों के समूह परिपूर्ण रूप से कृष्णेन्द्रिय-तोषणार्थ एक साथ उदित होते हैं, इसलिए श्रीमति राधिका के भाव में विभावित प्रभु के चित्त में भी जो यह समस्त भावसमूह एकसाथ एक ही समय में प्रकाशित हुये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

उस समय भक्तों द्वारा कृष्णनाम कीर्तन—

अपूर्व देखिया सुखे गाय भक्तगण।
ईश्वरे प्रेमावेश नहे सम्वरण॥२२०॥

(२२०) प. अनु०—यह अपूर्व दृश्य देखकर भक्तगण आनन्द से गाये चले जा रहे थे, उधर प्रभु का प्रेमावेश थमने का नाम नहीं ले रहा था।

प्रभु का रात भर प्रेमावेश और प्रातः बहिर्दशा—

सर्व-निशा याय येन मुहूर्त्तेक-प्राय।
प्रभाते वा कथंचित प्रभु बाह्य पाय॥२२१॥

(२२१) प. अनु०—सारी रात जैसे एक मुहूर्त्त की भाँति ही बीत गयी, प्रभात काल में जैसे-तैसे प्रभु बाह्यदशा को प्राप्त हुये।

प्रभु का अपने घर में प्रतिदिन उच्चकीर्तन विलास—

एइमत निज-गृहे श्रीशचीनन्दन।
निरवधि निशिदिसि करेन कीर्तन॥२२२॥
आरम्भिक महाप्रभु कीर्तन-प्रकाश।
सकल-भक्तेर दुःख हय देखि' नाश॥२२३॥
'हरि बोल' बलि' डाके जागरण॥२२४॥

(२२२-२२४) प. अनु०—इस प्रकार से श्रीशचीनन्दन अपने घर पर दिन रात निरन्तर कीर्तन ही करते रहते थे। श्रीमन् महाप्रभु ने अपने कीर्तन का प्रकाश आरम्भ कर दिया था, जिसे देख-देखकर सभी भक्तों के दुःखों का नाश होने लगा। इधर श्रीशचीनन्दन बार-बार 'हरि बोल' कहकर पुकारते और उधर पाखण्डियों की बार-बार निद्रा भंग हो जाती। इस प्रकार उनका जागरण हो जाता।

(२२४) गौः भाः—कृष्णसेवा-विमुख पाखण्डिगण सर्वदा विषय-भोग-कार्य में जागरूक रहते हैं, परन्तु कृष्णसेवा-कार्य में सदा निद्रित रहकर कृष्णसेवा को भूले रहते हैं; किन्तु इस समय शचीनन्दन के उच्च हरिकीर्तन की ध्वनि से उनकी उसी तामसिक निद्रा का भंग (विनाश) हुआ था। उनका हरिसेवा से विमुख चित्त उद्बुद्ध (जाग्रत) और चमकित हुआ था।

(२२५-२२८) प. अनु०—निद्रा-सुख-भंग होने से बहिर्मुख लोगों को क्रोध आता और जिसके मन में जो आता वही बकने लगता। कोई कहता,—"क्या इन लोगों को वातरोग हो गया है?" कोई कहता कि,—"क्या करें, इनके कारण रात-भर सो नहीं पाते हैं।" कोई कहता कि,—"इनके जोर-जोर से पुकारने के कारण गोसाञि (भगवान्) अप्रसन्न हो जायेंगे और इस कर्म से इन लोगों का सर्वनाश हो जायेगा।" इन लोगों का व्यवहार अत्यन्त उद्दण्ड हो गया है।"

प्रभु की उच्च कीर्तनध्वनि को सुनकर पाखण्डियों का निद्राभोग-भंग और अनके विद्वेषपूर्ण प्रलापोक्तियाँ—

निद्रा-सुख-भंगे बहिर्मुख क्रुद्ध हय।
यार येनमत इच्छा बलिया मरय॥२२५॥
केह बले,—"ए गुलार हइल कि वाइ?"
केह बले,—"रात्रे निद्रा याइते ना पाइ॥"२२६॥
केह बले,—"गोसाञि रुषिवे बड़ डाके।
ए-गुलार सर्वनाश हैबे एइ पाके॥"२२७॥
केह बले,—"ज्ञान-योग एड़िया विचार।
परम-उद्धत-हेन सबार व्यभार॥"२२८॥

(२२५-२२८) गौः भाः—आदि ७म अः २१, ११ अः ५३-५७, १६ अः १०-१३, और २५५-२६२, २६९, २७० आदि संख्याएँ द्रष्टव्य हैं।

भक्तराज श्रीवास के विरुद्ध ही पाखण्डियों की सर्वाधिक क्रुद्ध-कटूक्ति—

केह बले,—"किसेर कीर्तन के वा जाने?
एत पाक करे एइ श्रीवासिया-वापने॥२२९॥
मागिया खाइवार लागि' मिलि' चारि भाइ।
'कृष्ण' बलि' डाक छाड़े—येन महा-वाइ॥२३०॥
मने-मने बलिले कि पुण्य नाहि हय?
बड़ करि' डाकिले कि पुण्य उपजय?"२३१॥

(२२९-२३१) प. अनु०—कोई कहता कि,—"कौन जाने ये किसलिए कीर्तन करते हैं? श्रीवास ब्राह्मण ही यह सब चक्र चला रहा है। माँगने खाने के लिए चारों भाई मिलकर

'कृष्ण कृष्ण' कहकर ऐसे चिल्लाते हैं मानों उनको महावायु का प्रकोप हो गया हो। अरे, मन-मन में कहने से क्या पुण्य नहीं होता है? क्या जोर से चिल्लाने से ही पुण्य होता है?"

(२२९) गौः भाः—पाक,—पेंच, चक्र; वामने, (अवज्ञा से) ब्राह्मण। एत.....वामने,—इस समस्त कुचक्र, कुमन्त्रणा या दुष्ट सलाह का कारण यह श्रीवास-विप्र ही है।

(२३०) गौः भाः—आदि १६ अः १२-१३ संख्या द्रष्टव्य है।

महावाइ,—महावायु या उन्माद-रोग-ग्रस्त, अति उन्मत्त।

(२३१) गौः भाः—आदि १६ अः २५७, २६९-२७० संख्या द्रष्टव्य है।

सर्वत्र कृष्णकीर्तन के विरुद्ध—राजकोष विषयक लोकापवाद का प्रचार—

केह बले,—''अरे भाइ! पड़ित प्रमाद।
श्रीवासेर लागि' हैल देशेर उत्पाद॥२३२॥
आजि मुञि देआयाने शुनिलुँ सब कथा।
राजार आज्ञाय दुइ नाओ आइये एथा॥२३३॥
शुनिलेक नदीयार कीर्तन विशेष।
धरिया निवारे हैल राजार आदेश॥२३४॥
ये-ते-दिके पलाइवे श्रीवासपण्डित।
आमा' सबा' लैया सर्वनाश उपस्थित॥२३५॥
तखने बलिनु मुञि हइया मुखर।
'श्रीवासेर घर फेलि गंगार भितर॥'२३६॥
तखने ना कैले इहा परिहास-ज्ञाने।
सर्वनाश हय एवे देख विद्यमाने॥''२३७॥
केह बलेश—''आमरा सबार कोन् दाय?
श्रीवासे बान्धिया दिव येवा आसि' चाय॥''२३८॥
एइमत कथा हैल नगरे नगरे ।
'राजनौका आइसे वैष्णव धरिवरे॥'२३९॥

(२३२-२३९) प. अनु०—कोई कहता हैं कि,—"अरे भाई! यह तो विषम विपद् आ पड़ी है। इस श्रीवास के कारण देश का विनाश हो गया। आज अदालत में मैंने सुना है कि राजा की आज्ञा से यहाँ पर दो नौकाएँ आने वाली हैं। राजा को पता चला है कि 'नदिया' में विशेष कीर्तन होता है, इसलिए कीर्तनकारियों को पकड़ ले जाने के लिए राजा की आज्ञा हुई है। श्रीवास पण्डित तो इधर-उधर कहीं भाग जायेगा, परन्तु हम सबके लिए तो सर्वनाश उपस्थित हो जायेगा। मैंने तो तभी जोर देकर कह दिया कि,—'श्रीवास के घर को उखाड़ कर गंगा में फेंक दो'। मेरी बात को मजाक समझकर तुम लोगों ने कुछ नहीं किया, अब इस समय देख लो, सर्वनाश होने वाला है।" कोई कहता कि,—"हम लोगों की क्या हानि है, जो कोई आकर पूछताछ करेगा तो श्रीवास को बाँधकर पकड़वा देंगे।" इस प्रकार नदिया के नगर-नगर में यह बात फैल गई कि,—'वैष्णवों का पकड़ कर ले जाने के लिए राजा की नौका आ रही है।'

(२३२) गौः भाः—पड़िल,—आकर पड़ा है, हो गया है; प्रमाद—विपद, आपद्। उत्साद, —उत्-सद् (हिंसा करना) + अ (भाव में घञ,), विनाश, विध्वंस।

(२३२) गौः भाः—देओयाने,—आदि १५ अः २५ संख्या का भाष्य द्रष्टव्य है।

(२३६) गौः भाः—तखने.....भितर,—आदि १६ अः १३ संख्या द्रष्टव्य है।

राजा के अत्याचार की सम्भावना सुनकर भी प्रपन्न भक्तसमाज की निर्भयता—

वैष्णवसमाजे सबे ए कथा शुनिया।
'गोविन्द' स्मऽरि' सबे भय निवारिला॥२४०॥

''ये करिवे कृष्णचन्द्र, से-इ 'सत्य' हय।
से प्रभु थाकिते कोन् अधमेरे भय?''२४१॥

(२४०-२४१) प. अनु०—वैष्णवसमाज ने भी यह बात सुनी, परन्तु 'गोविन्द' का स्मरण करके सब का भय दूर हो गया। वे बोले कि,—"जो श्रीकृष्णचन्द्र करेंगे, वही सत्य होगा। उन प्रभु के रहते हमें किस अधम का भय?"

(२४१) गौः भाः—जब साक्षात् प्रभु कृष्णचन्द्र स्वयं हमारे रक्षक रूप में विद्यमान हैं, तब किसी भी अन्य विघ्नकारी प्राकृत वस्तु से हमें किसी प्रकार का भी भय नहीं है।

(भाः १०/२/३३ श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ब्रह्मादि देवताओं की स्तुति) —"तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः। त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभोः॥"

उसको सुनने से विश्वासी स्वभाववाले सरलमति श्रीवास की आशंका—

श्रीवासपण्डित—बड़ परम उदार।
येइ कथा शुने सेइ प्रत्यय ताँहार॥२४२॥
यवनेर राज्य देखि' मने हैल भय।
जानिलेन गौरचन्द्र भक्तेर हृदय॥२४३॥

(२४२-२४३) प. अनु०—श्रीवास पण्डित तो बड़े ही उदार थे, वे जो बात सुनते थे, उसी पर विश्वास कर लेते थे। यवनों का राज्य देखकर उनके मन में भय हो गया। उधर भक्त के हृदय की इस बात को श्रीगौरसुन्दर जान गये।

(२४२) गौः भाः—श्रीवास-पण्डित बड़े ही सरल और उदार स्वभाव के भक्त थे, इसलिए कोई व्यक्ति जो कुछ भी उनके पास आकर कहता, वे उस पर ही विश्वास कर लिया करते थे, विशेषतया हिन्दुधर्मविरोधी राजा के राज्य में सभी कुछ सम्भव हो सकता है, इस कारण उनको आशंका हुई थी।

भक्त के दुःख और भय का छुड़ाने के लिए भगवान् की स्वयं को प्रकट करने की इच्छा—

प्रभु अवतीर्ण,—नाहि जाने भक्तगण।
जानाइते आरम्भिला श्रीशचीनन्दन॥२४४॥

(२४४) प. अनु०—भक्तलोग नहीं जानते थे कि प्रभु ने अवतार लिया है, इसलिए अब श्रीशचीनन्दन ने अपने स्वरूप को प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया।

भ्रमण-सुख में विश्वम्भर का गंगातीर पर आगमन और उनके अपूर्व वेश-भूषणादि का वर्णन—

निर्भये बेड़ाय महाप्रभु विश्वम्भर।
त्रिभुवने अद्वितीय मदन-सुन्दर॥२४५॥
सर्वांगे लेपियाछेन सुगन्धि चन्दन।
अरुण-अधर शोभे कमल-नयन॥२४६॥
चाँचर-चिकुर शोभे पूर्णचन्द्र-मुख।
स्कन्धे उपवीत शोभे मनोहर रूप॥२४७॥
दिव्य-वस्त्र परिधान, अधरे ताम्बूल।
कौतुके गेलेन प्रभु भागीरथी-कूल॥२४८॥

(२४५-२४८) प. अनु०—कामदेव से भी अति सुन्दर, त्रिभुवन में अद्वितीय रूपवान् महाप्रभु विश्वम्भर निर्भय होकर विचरण कर रहे थे। उन्होंने समस्त अंगो पर सुगन्धित चन्दन का लेपन किया था। उनके अधर अरुण-वर्ण के थे तथा कमल-सदृश नेत्र शोभा पा रहे थे। श्रीमस्तक पर सुन्दर घुँघराले केश शोभित थे और श्रीमुख पूर्णचन्द्र के समान था। उनके कन्धे पर यज्ञोपवीत सुशोभित था; मनोहरी रूप, दिव्य वस्त्र पहने हुये, अक्षरों में

पान दिये हुये, प्रभु कौतुक से भागीरथी के तट पर पधारे।

(२४५–२४८) गौः भाः—गौररूप–वर्णन, —आदि ८म अः १८४–१८७, ११ अः ३–४, १३ अः६१– ६१–६५ आदि संख्याएँ द्रष्टव्य हैं।

प्रभु के दर्शनों से भक्तों को हर्ष और पाखण्डियों को क्षोभ—

यतेक सुकृति हय देखिते हरिष।
यतेक पाषण्डी, सब हय विमरिष॥२४९॥

(२४९) प. अनु०—जितने सब सुकृतिमाजन थे, वे प्रभु के दर्शन करके अति आनन्दित हुये, परन्तु जो पाखण्डी थे, उन सबको बड़ा दुःख हुआ।

अकुतोभय प्रभु की निर्भीकता को देखकर पाखण्डियों का विस्मय और प्रलाप—

''एत भय शुनियाओ भय नाहि पाय।
राजार कुमार येन नगरे बेड़ाय॥''२५०॥
आर–जन बले,—''भाइ! बुझिलाङ, थाक'।
यत देख एइ सब—पलावर पाक॥'' २५१॥

(२५०–२५१) प. अनु०—किसी ने कहा,—"इतने भय की बात सुनने पर भी इसको भय नहीं है—यह तो राजकुमार की भाँति नगर में वितरण करता फिर रहा है।" दूसरा व्यक्ति बोला,—"भाई! मैं सब बात समझ गया हूँ और बातें रहने दो; यह जो कुछ भी तुम देख रहे हो, यह सब भागने का जुगाड़ है।"

(२५०) गौः भाः—राजार.....बेड़ाय,—आदि षष्ठ अः ७९ संख्या द्रष्टव्य है।

(२५१) गौः भाः—थाक,—'तिष्ठ', थोड़ा रुको सब्र या अपेक्षा करो।

पाक–पेंच, चक्र, फन्दा, कौशल, मतलब, आभिसन्धि।

गंगा–पुलिन पर गायों को चरता देखने मात्र से ही प्रभु का 'पूर्व' ब्रजलीला स्मृति का उद्दीपन—

निर्भये चाहेन चारिदिके विश्वम्भर।
गंगार सुन्दर स्त्रोत पुलिन सुन्दर॥२५२॥
गाभी एक युथ देखे पुलिनेते चरे।
हम्बारव करि' आइये जल खाइबारे॥२५३॥
ऊर्द्धर्व पुच्छ करि, केह चतुर्द्दिके धाय।
केह युझे, केह शुये, केह जल खाय॥२५४॥
देखिया गर्जये प्रभु करे हुहुँकार।
''मुञि सेइ, मुञि सेइ'' बले बारे–बार॥२५५॥

(२५२–२५५) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर निर्भय होकर चारों ओर देख रहे थे, गंगा की सुन्दर धारा थी और पुलिन भी सुन्दर था। प्रभु ने देखा कि पुलिन पर गायों का एक झुण्ड चर रहा है, गायें 'हम्बा–हम्बा' करती हुई जल पीने के लिए आ रही हैं। कुछ पूँछ उठाकर चारों ओर दौड़ रहीं हैं, कुछ लड़ रही हैं, कुछ लेटे हुई हैं और कुछ जल पी रही हैं। यह दृश्य देखकर प्रभु गरजने लगे और हुँकार कर बारम्बार "मैं वही हूँ, मैं वही हूँ"—ऐसा कहने लगे।

(२५५) गौः भाः—मुञि सेइ,—मैं ही स्वयं वह गोपराज नन्दनन्दन हूँ।

प्रभु का द्रुतवेग से नृसिंहार्चनरत श्रीवास के घर के बन्द द्वार पर जाना और पैर से आघात करना—

एइमते धाञा गेला श्रीवासेर घरे।
''कि करिस, श्रीवासिया?'' बलये हुँकार॥२५६॥
नृसिंह पूजये श्रीनिवास येइ घरे।
पुनः पुनः लाथि मारे ताहार दुयारे॥२५७॥

(२५६–२५७) प. अनु०—ऐसा कहते हुये ही वे दौड़कर श्रीवास के घर जा पहुँचे और पहुँचे और हुँकार करते हुये बोले,—"अरे

श्रीवासिया! तू क्या कर रहा है?" श्रीवास-पण्डित जिस कक्ष में श्रीनृसिंह देव की पूजा कर रहे थे, उसके द्वार पर प्रभु बारम्बार लात मारने लगे।

श्रीवास के निकट अपना विष्णुत्व विज्ञापन—
"काहारे पूजिस, करिस् कार ध्यान?

''काहारे पूजिस, करिस् कार ध्यान?
याँहारे पूजिस् ताँरे देख विद्यमान॥''२५८॥

(२५८) प. अनु०—और कहने लगे,—"अरे! तू किस को पूज रहा है और किसका ध्यान कर रहा है? तू जिसकी पूजा कर रहा है, उसको अपने सामने विद्यमान देख ले।"

अर्चन-ध्यान-भंग होने पर श्रीवास को सम्मुख वीरासन में हुँकार-रत चतुर्भुज गौरहरि के दर्शन और उनका विस्मय से स्तम्भ—

ज्वलन्त-अनल देखे श्रीवासपण्डित।
हइल समाधि-भंग, चा'हे चारिभित॥२५९॥
देखे वीरासने बसि' आछे विश्वम्भर।
चतुर्भुज-शंख-चक्र-गदा-पद्म-धर॥२६०॥
गर्जिते आछये येन मत्तसिंह-सार।
वाम-कक्षे तालि दिया करये हुंकार॥२६१॥
देखिया हइल कम्प श्रीवास-शरीरे।
स्तब्ध हैला श्रीनिवास, किछुइ ना स्फरे॥२६२॥

(२५९-२६२) प. अनु०—ज्वलन्त अग्नि (के समान तेजस्वी रूप) को देखकर श्रीवास पण्डित की समाधि भंग हो गई और वे चारों ओर देखने लगे। तभी उन्होंने क्या देखा कि श्रीविश्वम्भर चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये वीरासन पर बैठे हुये हैं। वे उन्मत्तसिंह की भाँति गर्जना कर रहे हैं तथा बाईं बगल में ताल ठोकते हुये हुँकार कर रहे हैं। यह सब देखकर श्रीवास का शरीर काँप उठा। वे एकदम स्तब्ध रह गये। उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

(२६०) गौः भाः—वीरासन,—आदि १० म अः १२श संख्या का भाष्य द्रष्टव्य है।

उत्साह और अभय दान पूर्वक प्रभु द्वारा श्रीवास से अपने तत्त्व का वर्णन और स्तवपाठ की आज्ञा—

डाकिया बलये प्रभु,—''आरे श्रीनिवास!
एतादिन ना जानिस आमार प्रकाश?२६३॥
तोर उच्च संकीर्तन, नाड़ार हुँकारे।
छाड़िया वैकुण्ठ, आइनु सर्व परिवारे॥२६४॥
निश्चिन्तु आछह तुमि मोरे ना जानिया।
शान्तिपुरे गेल नाड़ा आमारे एड़िया॥२६५॥
साधु उद्धारिमु, दुष्ट विनाशिमु सब।
तोर किछु चिन्ता नाइ, पड़' मोर स्तव॥'' २६६॥

(२६३-२६६) प. अनु०—प्रभु पुकार कर बोले,—"अरे श्रीवास! इतने दिनों तक भी मेरे अवतार को तुमने नहीं पहचाना। तुम्हारे उच्च संकीर्तन और नाड़ा (अद्वैत) की हुँकार से ही मैं वैकुण्ठ को छोड़कर परिवार-सहित यहाँ आया हूँ। किन्तु तुम तो मुझे न जान पाकर निश्चिन्त बैठे हो और नाड़ा मुझे छोड़कर शान्तिपुर चला गया है। मैं साधुओं का उद्धार करूँगा और सब दुष्टों का विनाश करूँगा। तुम्हारे लिए कोई चिन्ता की बात नहीं है, बस तुम मेरे स्तव का पाठ करो।"

(२६४) गौः भाः—नाड़ा,-श्रीसज्जनोषणी ७म खण्ड के ११ श संख्या में सम्पादक श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर ने लिखा है,—'श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील अद्वैत प्रभु को नाड़ा शब्द के अनेक प्रकार के अर्थ सुने जाते हैं। किसी वैष्णव पण्डित ने कहा है कि, नार-शब्द का अर्थ है जीव-समष्टि; इस पर अवस्थित महाविष्ण

ा को 'नारा' कहा जा सकता है। क्या उस नारा शब्द का अपभ्रंश ही 'नाडा' हो गया है? राढ़देशीय लोग अनेक स्थानों पर 'र'—के स्थान पर 'ड़' बोलते हैं। संभव है इसी कारण नारा-शब्द को 'नाड़ा' लिखा गया हो? इस अर्थ को ही अच्छा समझा जाता है।'

'नार' और 'नारा' (नाड़ा) शब्द के संबन्ध में भाः १०/१४/१४ श्लोक की श्रीधरस्वामिपाद-रचित 'भावार्थदीपिका'—टीका, —नरं जीव-समूहोऽयनमाश्रयो यस्य स तथेति त्वमेव सर्वदेहिनामात्मत्वान्नारायण इति भावः। नारस्यायनं प्रवृत्तिर्यस्मात् स तथेति। अतो नारमयसे जानासीति त्वमेव नारायणः इत्यर्थः। नरादुद्भूता येऽर्थास्तथा नराज्जातः यज्जलं तदयनादृयो नारायणः प्रसिद्धः। तथा च स्मर्यते, —'नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः। तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥' इति, तथा (मनु-सं १/१०)—'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणं स्मृतः॥' इति च॥"

श्रीवास का प्रेमक्रन्दन और निर्भय होकर हर्षपूर्वक दोनों हाथों को जोड़े हुये प्रभु की स्तुति—

प्रभुरे देखिया प्रेमे काँदे श्रीनिवास।
घुचिल अन्तर-भय, पाइया आश्वास॥२६७॥
हरिषे पूर्णित हैल सर्व कलेवर।
दाण्डाइया स्तुति करे युड़ि' दुइ कर॥२६८॥

(२६७-२६८) प. अनु०—प्रभु का दर्शन कर श्रीनिवास प्रेम से रोने लगे। प्रभु का आश्वासन पाकर उनके हृदय का भय दूर हो गया। उनका सारा शरीर आनन्द से पूर्ण हो गया और वे खड़े होकर दोनों हाथों को जोड़े हुए प्रभु की स्तुति करने लगे।

महाभागवत विद्वान् श्रीवास द्वारा ब्रह्म-रचित भगवत्-स्तुति का पाठ—

सहजे पण्डित बड़ महा-भागवत।
आज्ञा पाइ' स्तुति करे येन अभिमत॥२६९॥
भागवते आछे ब्रह्म-मोहापनोदन।
सेइ श्लोक पड़ि' स्तुति करेन प्रथम॥२७०॥

(२६९-२७०) प. अनु०—श्रीवास पण्डित स्वभाव से महा-भागवत थे। वे प्रभु की आज्ञा पाकर अपने अभिप्राय के अनुसार उनकी स्तुति करने लगे। श्रीमद् भागवत में जो ब्रह्मा के मोह-नाश का प्रसंग है, उसी में से ब्रह्मा-कृत स्तुति का प्रथम श्लोक पढ़कर उन्होंने स्तुति की।

(२७०) गौः भाः—ब्रह्ममोहापनोदन में,-भाः १० स्क. १४ अः द्रष्टव्य है।

गोपराज-तनय कृष्ण का रूप-वर्णन और उनको प्रणाम तथाहि (भाः १०/१४/१)—

''नौमीडय तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुंजावतंसपरिपिच्छल सन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय॥२७१॥

(२७१) गौः भाः—ब्रज के गाय और बछड़ों का हरण करने वाले ब्रह्मा, का दर्प श्रीकृष्ण-द्वारा चूर्ण होने पर ब्रह्मा, भगवान् श्रीकृष्ण के रूप का दर्शन करते हुये उनका स्तव कर रहे हैं—

अन्वय—(स्वकृतापराधेन भिया सकम्पतया भगवान् महिमानमनवगाहमानो यथा दृष्ट-स्वरूपमेव कीर्त्तयन्नाह,)

—(हे) ईड्य, (स्तुल्य) अभ्रवपुषे (अभ्रवत् नवनीरदवत् तडिदम्बराय (तडिद्वत पीतम् अम्बरं वासः यस्य तस्मै, पीतवाससे) गुंजावजंसपरिपिच्छल-सन्मुखाय (गुंजाभिः,अवतंसौ

कर्णभूषणे, परितः पिच्छानि यस्य तत् परिपिच्छं वर्हापीडं, तैः लसत् दीव्यत् मुखं यस्य तस्मै) वन्यस्रजै (वन्याः वनपुष्पादिजाताः स्रजः माला यस्य तस्मै) कवल–वेत्र–विषाण–वेणु लक्ष्मश्रिये (कवलानि दध्योदनग्रासाः श्रीः शोभा यस्य तस्मै) पशुपांगजाय (पशुपस्य गोपराज–श्रीनन्दस्य अंगजाय सुताय) ते (तुभ्यं—द्वितीयार्थे चतुर्थीः यद्वा, तुभ्यं त्वामेव प्रसादयितुं त्वामेव) नौमि (स्तौमि)।

(२७१) अनुवाद—हे नित्यपूज्य विभो! नवमेघ के समान आपका श्यामतनु, विद्युतदामिनी की भाँति आपका पीतवसन, गुंजा से निर्मित दोनों कानों के भूषण और मोर पंख से रचित चूड़े से आपका मुखमण्डल शोभायमान है; आपके गले में वनमाला है, दधिसिक्त–अन्न–ग्रास, वेत्र, विषाण और वेणु, —इन सब अप्राकृत लक्षणों से ही आपकी विशेष शोभा है, आपके पद्युगल अति कोमल हैं; आप गोपराज श्रीनन्द के पुत्र हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

श्लोकार्थ–

''विश्वम्भर–चरणे आमार नमस्कार।
नव–घन वर्ण, पीत वसन याँहार॥२७२॥
शचीर नन्दन–पा'ये मोर नमस्कार।
नव–गुंजा शिखिपुच्छ भूषण याँहार॥२७३॥
गंगादास–शिष्य–पा'ये मोर नमस्कार।
वनमाला, करे दधि–ओधन याँहार॥२७४॥
जगन्नाथ पुत्र–पा'ये मोर नमस्कार।
कोटिचन्द्र जिनि रूप वदन याँहार॥२७५॥
शृंग, वेत्र, वेणु—चिह्न–भूषण याँहार।
सेइ तुमि तोमार चरणे नमस्कार॥२७६॥
चारि–वेदे याँरे घोषे' 'नन्देर कुमार'।
सेइ तुम, तोमार चरणे नमस्कार॥''२७७॥

(२७२–२७७) प. अनु०—"उन श्रीविश्वम्भर के चरणों में मेरा नमस्कार है, जिनका वर्ण नवीन मेघ के तुल्य है और जो पीताम्बर पहने हुये हैं। जिनके नवीन गुंजा और मोरपंख ही भूषण हैं, उन श्रीशचीनन्दन के चरणों में मेरा नमस्कार है। जो वनमाला पहने हुये हैं और जिनके हाथ में दही–अन्न है, उन श्रीगंगादास पण्डित के शिष्य के चरणों में मेरा नमस्कार है। जिनके मुख की रूप–माधुरी कोटि चन्द्रमाओं को जीतने वाली है, उन श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र के चरणों में मेरा नमस्कार है। जिनके भूषण के चिह्न शृंग, वेत्र और वंशी है, वे आप ही हैं। आपके चरणों में मेरा नमस्कार है। चारों वेद जिनको 'नन्दकुमार' घोषित करते हैं, वे आप ही हैं। आपके चरणोंं में मेरा नमस्कार है।"

मन की इच्छानुसार प्रभु की स्तुति–

ब्रह्मस्तवे स्तुति करे' प्रभुर चरणे।
स्वछन्दे बलये—यत आइसे वदने॥२७८॥

(२७८) प. अनु०—श्रीवास पण्डित ने ब्रह्म–स्तव के द्वारा प्रभु के चरणों में स्तुति की। फिर जो कुछ मुख में आया, उसी को स्वछन्द रूप से बोलते रहे।

ऐश्वर्यरस से दास्यभाव में प्रभु के नानावतार और भक्तवत्सल रूप में स्तव और दैन्योक्ति द्वार अपने सौभाग्य का वर्णन–

''तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि यज्ञेश्वर।
तोमार चरणोदक—गंगा तीर्थवर॥२७९॥
जानकीजीवन तुमि, तुमि नरसिंह।
अज–भव–आदि—तव चरणेर भृंग॥२८०॥
तुमि से वेदान्त–वेद्य, तुमि नारायण।
तुमि से छलिला अलि हइया वामन॥२८१॥

तुमि हयग्रीव, तुमि जगत्–जीवन।
तुमि नीलाचलचन्द्र—सबार कारण॥२८२॥
तोमार मायाय कार् नाहि हय भंग?
कमला ना जाने—याँर सने एकसंग॥२८३॥
संगी, सखा, भाइ,—सर्वमते सेवे ये।
हेन प्रभु मोह माने,—अन्य जना के?२८४॥
मिथ्या–गृहवासे मोरे पाड़ियाछ भोले।
तोमा' ना जानिया मोर जन्म गेल हेले॥२८५॥
नाना माया करि' तुमि आमारे वंचिला!
साजि–धूति–आदि करि' सकलि वहिला!२८६॥
ताते मोर भय नाहि, शुन प्राणनाथ!
तुमि–हेन प्रभु मोरे हइला साक्षात्॥२८७॥
आजि मोर सकल–दुःखेर हैल नाश।
आजि मोर दिवस हइल परकाश॥२८८॥
आजि मोर जन्म–कर्म—सकल सफल।
आजि मोर उदय—सकल सुमंगल॥२८९॥
आजि मोर पितृकुल हइल उद्धार।
आजि से वसति धन्य हइल आमार॥२९०॥
आजि मोर नयन–भाग्येर नाहि सीमा।
ताँरे देखि—याँर श्रीचरण सेवे रमा॥''२९१॥

(२७९–२९१) प. अनु०—"आप ही विष्णु हैं, आप ही कृष्ण हैं और आप ही यज्ञेश्वर है। तीर्थ–श्रेष्ठ गंगा आपका ही चरणोदक है। आप ही जानकी के जीवन श्रीराम हैं और आप ही श्रीनृसिंह हैं। ब्रह्मा–शिवादि आपके की श्रीचरणों के भृंग (भ्रमर) हैं। आप ही वेदान्त–वेद्य हैं, आप ही श्रीनारायण हैं आपने ही वामन बनकर बलि को छला था। आप ही हयग्रीव हैं और आप ही जगत् के जीवन हैं। आप ही सबके कारण नीलाचलचन्द्र हैं। आपकी माया से किसकी पराजय नहीं हुई है? सदैव साथ रहने वाली लक्ष्मी जी भी आपको नहीं जानती हैं। जो साथ रहने वाली लक्ष्मी जी भी आपकी नहीं जानती हैं। जो साथी, सखा, भाई आदि के रूप में सब प्रकार से आपकी सेवा करते हैं वे प्रभु (बलराम) भी आपकी माया से मोह में पड़ जाते हैं, तो फिर औरों की तो बात ही क्या है? आपने मुझे भी इस मिथ्या गृहवास में भुला रखा है। आपको न जानकर मेरा जन्म ऐसे ही व्यर्थ चला गया। प्रभो! आपने कितने छल करके मुझे छला। और सुनों प्राणनाथ! आप मेरी पूजा की डलिया और धोती आदि तक उठाकर ले चला करते थे। क्योंकि आप जैसे प्रभु का आज मुझे साक्षात्कार मिल गया है, इस कारण मुझे भय नहीं है। अब मेरे समस्त दुःखों का नाश हो गया है। आज मेरे शुभ दिन का प्राकट्य हुआ है। आज मेरे जन्म–कर्म सब सफल हो गये हैं। आज मेरे समस्त सुमंगलों का उदय हुआ है। आज मेरे पितृकुल का उद्धार हो गया है। आज मेरा निवास–स्थान धन्य हो गया है। आज मेरे नेत्रों के सौभाग्य की सीमा नहीं है, क्योंकि आज मैं उनका दर्शन कर रहा हूँ, जिनके श्रीचरणों की सेवा साक्षात् लक्ष्मीजी करती हैं।"

(२७९–२८०) गौः भाः—आदि २य अः १६९–१७६ संख्या द्रष्टव्य है।

(२८३) गौः भाः—मायाय,—(तटस्थ–शक्ति–प्रकटित जीव के पक्षा में) अचिच्छक्ति बहिरंग–माया में; और (स्वरूपशक्ति–प्रकटित–नित्य–सिद्ध लीला–परिकर के पक्ष में) चिच्छक्ति अन्तरंगा योगमाया में।

भंग,—पराजय, पराभव।

एक–संग,—एकत्र या एकसंग में वास।

(२८४) गौः भाः—संगी.....ये,–श्रीबलदेव–संकर्षणांश शेष या अनन्तदेव; शेषप्रभु का मोह,—आदि १३ अः १०१, १०२ और १०५ संख्या के भाष्य में तथ्य द्रष्टव्य है।

प्रभु के प्रकाश-दर्शन से श्रीवास का
प्रेमावेश से क्रन्दन और हर्षातिशय—

बलिते आविष्ट हैला पण्डित-श्रीवास।
ऊर्द्ध बाहु करि' कान्दे, छाड़े घन श्वास॥२९२॥
गड़ागड़ि याय भाग्यवन्त श्रीनिवास।
देखिया अपूर्व गौरचन्द्र-परकश॥२९३॥
कि अद्‌भुत सुख हैल श्रीवास-शरीरे।
डुबिलेन विप्रवर आनन्द-सागरे॥२९४॥

(२९२-२९४) प. अनु०—इस प्रकार स्तुति करते-करते श्रीवास पण्डित प्रेमावेश में आ गये और दोनों भुजा ऊपर उठाकर रोने लगे तथा लम्बी-लम्बी सांसे लेने लगे। श्री गौरचन्द्र के अपूर्व प्रकाश को देखकर भाग्यवान् श्रीवास पृथ्वी पर लोट-पोट होने लगे। श्रीवास के शरीर में बड़ा अद्‌भुत सुख हुआ। वे आनन्द-सागर में डूब गये।

श्रीवास-कृत स्तव को सुनकर प्रभु द्वारा हँसते
हुये गोष्ठी-सहित उनको अपने रूप का प्रदर्शन
और वर माँगने की आज्ञा—

हासिया शुनेन प्रभु श्रीवासेर स्तुति।
सदय हइया बले श्रीवासेर प्रति॥२९५॥
''स्त्री-पुत्र-आदि यत तोमार बाड़ीर।
देखुक आमार रूप, करह बाहिर॥२९६॥
स्त्रीक हइया पूज' चरण आमार।
वर माग'—येन इच्छा मनेते तोमार॥''२९७॥

(२९५-२९७) प. अनु०—प्रभु ने श्रीवास की स्तुति हँसते-हँसते सुनी और फिर सदय होकर श्रीवास से बोले कि,—"हे श्रीवास! तुम्हारे घर में स्त्री-पुत्र आदि जितने ताकि वे भी मेरे रूप का दर्शन कर सकें। तुम स्त्री-सहित मेरे चरणों की पूजा करो और जो तुमहारी इच्छा हो, वही वर माँग लो।"

प्रभु की आज्ञा से परिवार-सहित श्रीवास का
शीघ्र आना, प्रभु-पूजन और दैन्योक्ति—

प्रभुर पाइया आज्ञा श्रीवासपण्डित।
सर्वपरिकर-संगे आइला त्वरित॥२९८॥
विष्णुपूजा-निमित्त यतेक पुष्प छिल।
सकल प्रभुर पा'ये साक्षातेइ दिल॥२९९॥
गन्ध-पुष्प-धूप-दीपे पूजे श्रीचरण।
सस्त्रीक हइया विप्र करने क्रन्दन॥३००॥
भाई, पत्नी दास, दासी, सकल लइया।
श्रीवास करेन काकु चरणे पड़िया॥३०१॥

(२९८-३०१) प. अनु०—प्रभु की आज्ञा पाकर श्रीवास पण्डित अपने परिवार के सदस्यों को शीघ्र ही वहाँ लाये। विष्णुपूजा के लिए जितने भी फूल रखे थे।, वे सब उन्होंने साक्षात् प्रभु के श्रीचरणों में चढ़ा दिये। उन्होंने गन्ध, पुष्प, धूप, दीप के द्वारा श्रीचरणों की पूजा की और स्त्री-सहित वे क्रन्द्रन करने लगे। फिर भाई, पत्नी, दास और दासी सबको लेकर वे प्रभु के श्रीचरणों में पड़ गये और दीन वचनों द्वारा प्रार्थना करने लगे।

भक्त के मस्तक पर भक्तवत्सल
भगवान्-द्वारा अपनस पद अर्पन वरदान—

श्रीनिवास-प्रियकारी प्रभु विश्वम्भर।
चरण दिलेन सर्व-शिरेर उपर॥३०२॥
अलक्षिते बुले' प्रभु माथाय सबार।
हासि' बले,—''मोते चित्त हउ सबाकार॥''३०३॥

(३०२-३०३) प. अनु०—श्रीवास के प्रियकारी प्रभु श्रीविश्वम्भर ने सबके मस्तक पर अपना श्रीचरण रखा और अलक्षित रूप से सबके मस्तक पर आशीर्वाद देते हुये हँसकर बोले,—"तुम सबका चित्त सदा मुझमें लगा रहे।"

प्रभु द्वारा अपना ईश्वरत्व-वर्णन करने के
उद्देश्य से श्रीवास को अभयदान देकर
भक्तिविरोधी-राजा को गोष्ठी-सहित
कृष्णप्रेमोन्मत्त कराने के लिए
अंगीकार (मनाना)—

हुँकार गर्जन करि' प्रभु विश्वम्भर।
श्रीनिवासो सम्बोधिया बलेन उत्तर॥३०४॥
''ओहे श्रीनिवास! किछु मने भय पाओ?
शुनि,—तोमा' धरिते आइसे राज-नाओ?३०५॥
अनन्तब्रह्माण्ड-माझे यत जीव वैसे।
सबार प्रेरक आमि आपनार रसे॥३०६॥
मुइ यदि बोलाङ सेइ राजार शरीरे।
तबे से बलिवे सेह धरिवार तरे॥३०७॥
यदि वा एमत नहे,—स्वतन्त्र हइया।
धरिवारे बले, तबे मुञि चाङ इहा॥३०८॥
मुञि गिया सर्व-आगे नौकाय चड़िमु।
एइमत गिया राजगोचर हइमु॥३०९॥
मोरे देखि' राजा कि रहिवे नृपासने?
विह्वल करिया ये पाड़ितु सेइखाने?३१०॥
यदि वा एमत नहे, जिज्ञासिवे मोरे।
सेहो मोर अभीष्ट शुन कहि तोरे॥३११॥
'शुन शुन, ओहे राजा! सत्य मिथ्वा जान'।
यतेक मोल्ला काजी सब तोर आन।
हस्ती, घोड़ा, पशु, पक्षी, यत तोर आछे।
सकल आनह, राजा! आपनार काछे॥३१३॥
एवे हेन आज्ञा कर' सकल-काजीरे।
आपनार शास्त्र कहि' कान्दाउ सबारे॥३१४॥
ना परिल तारा यदि एतेक करिते।
तबे से आपना व्यक्त करिमु राजाते॥३१५॥
'संकीर्तन माना कर ए गुलार बोले।
यत तार शक्ति, एइ देखिलि सकले॥३१६॥
मोर शक्ति देख एबे नयन भरिया।'
एत बलि' मत्त-हस्ती आनिमु धरिया॥३१७॥
हस्ती, घोड़ा, मृग, पक्षी, एकत्र करिया।
सेइखाने कान्दाइमु 'कृष्ण' बोलाइया॥३१८॥
राजार यतेक गण, राजार सहिते।
सबा' कान्दाइमु 'कृष्ण' बलि' भाल-मते॥३१९॥

(३०४-३१९) प. अनु०—फिर प्रभु हुँकार और गर्जन करते हुये श्रीवास को सम्बोधित करके बोले,—"ओहे श्रीवास! क्या तुम मन में कुछ डर रहे हो? मैंने सुना है कि तुमको पकड़ने के लिए एक राजा की नौका आ रही है? अनन्त ब्रह्माण्ड में जितने भी जीव बसते हैं; उन सबको मैं ही अपनी इच्छा से प्रेरित करता हूँ,—जब मैं उस राजा के भीतर से ऐसा करने की प्रेरणा करूँगा, तब ही वह पकड़ने के लिए कहेगा। यदि ऐसी बात नहीं हुई और वह स्वतन्त्र रूप से पकड़ लाने के लिए आज्ञा करे भी, तब मैं यह करना चाहता हूँ कि मैं वहाँ जाकर सबसे पहले नौका पर चढ़ जाऊँगा और इस प्रकार जाकर राजा के सम्मुख पहुँचूँगा। मुझे देखकर राजा क्या अपने राज्यासन पर बैठा रह सकेगा? क्या मैं उसे विह्वल बनाकर वहीं न गिरा दूँगा? यदि ऐसा न हुआ और राजा ने मुझसे कुछ पूछा, जो मैं भी चाहता हूँ, तो मैं उससे जो कुछ कहूँगा, वह मैं तुम्हें बतलाया हूँ, सुनो—"अरे राजन्! सुनो! सुनो! और सत्य तथा झूठ को पहचानो। जितने तेरे काजी और मुल्ला हैं, उन सबको बुला लो सबको भी अपने पास मँगवा लो। अब इन सब काजी-मुल्लाओं को आज्ञा दो हि ये अपना शास्त्र पढ़कर फिर मैं अपने को राजा के आगे प्रकट करूँगा और कहूँगा कि तू जिन लोगों के कहने से संकीर्तन के लिए मना करता है—इनकी जितनी भी शक्ति है, वह सब तो तूने देख ही ली। अब तो आँख

खोल करके मेरी भी शक्ति देख ले। इतना कहकर मैं एक मत्त हाथी को पकड़ लाऊँगा और हाथी, घोड़े, पशु और पक्षी, सबको वहाँ इकट्ठा करूँगा तथा वहीं पर उन सबको 'कृष्ण कृष्ण' कहकर रुलाऊँगा।

(३०५) गौः भाः—नाओ,—(संस्कृत नौ-शब्द और मैथिल हिन्दी 'नाव' से), नौका।

(३०६) गौः भाः—ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी जितने भी जीव हैं, उन सबके हृदय में अधिष्ठित होकर उनको केवल चैतन्यस्वरूप मैं स्वयं निर्लिप्त भाव से ईश्वर, अन्तर्यामी-परमात्मा के रूप में जितनी इच्छानुसार भ्रमण कराता हूँ। कोई भी मेरी प्रेरणा के बिना किसी भी कार्य को करने में समर्थ नहीं होता है।

(३०७) गौः भाः—राजा के शरीर में अन्तार्यामीरूप से अवस्थित मैं यदि तुम को पकड़ने के लिए उसको प्रेरित करूँगा, तभी वह राजा तुम लोगों को पकड़ कर लाने के लिए आज्ञा प्रदान करेगा।

(३०८) गौः भाः—यदि इसके विपरीत कुछ हो, अर्थात् यदि अन्तर्यामी-परमात्मा रूपी मेरी स्वतन्त्र इच्छा या प्रेरणा के विरुद्ध राजा पूर्वोक्त रूप से अन्तर्यामी-निर्देश के अनुगत न होकर स्वयं स्वतन्त्र इच्छावशतः तुम लोगों को पकड़ कर लाने के लिए आदेश करेगा, तब मैं यह (निम्नलिखित रूप से) इच्छा करूँगा।

(३१०) गौः भाः—अनन्त-ब्रह्माण्ड-पति सर्वेश्वरेश्वर मुझको देखकर राजा कभी भी रातसिंहासन पर बैठा नहीं रह सकता है। मैं उसका निश्चय ही मोहित और वशीभूत कर लूँगा।

(३११) गौः भाः—यदि वह भी न हुआ, अर्थात् राजा दूसरे प्रकार की इच्छावशतः मुझसे पूछेगा, तब मैं जो कहूँगा और जो इच्छा मैंने की है, वह भी तुमसे कह रहा हूँ, उसे श्रवण करो।

(३१२) गौः भाः—मोल्ला,—(तुर्की-शब्द मुल्ला), मुसलमान महा-पण्डित, धर्म-याजक या विचारपति; काजी—मुसलमान धर्म औ रीति-नीति द्वारा अनुमोदित व्यवस्था प्रदान करने वाला या विचारपति।

सत्य-मिथ्या जान',—क्या सत्य है औ क्या मिथ्या है, इसे जानो।

(३१४) गौः भाः—आपनार शास्त्र,—आपका कुरान-शास्त्र; कान्दाउ,—अश्रु गिराकर दिखाओ।

(३१५) गौः भाः—पारिल,—समर्थ होता है (भविष्य के अर्थ में) आपना.....राजाते,—राजा के निकट अपने को प्रकाशित करूँगा।

(३१६) गौः भाः—एगुलार बोले,—इन काजियों के वचन सुनने के फलस्वरूप; तार, —उन लोगों के।

(३१७) गौः भाः—मत्तहस्ती,—मदमत्त उन्मत्त हाथी।

अपनी सर्वशक्तिमत्ता और ऐश्वर्य में
श्रीवास का संशय दूर करने के लिए
प्रत्यक्ष प्रमाण-प्रदर्शन—

इहाते वा हअप्रत्यय तुमि वास' मने।
साक्षातेइ करों,—देख आपन-नयने॥''३२०॥

(३२०) प. अनु०—यदि तुम्हारे मन में इस बात पर विश्वास नहीं होता है, तो मैं तुम्हारे सामने ही यह सब करके दिखलाता हूँ, तुम आपनी आँखों से देख लो।

(३२०) गौः भाः—अप्रत्यय वास,'—अविश्वास मानते हो, अर्थात् विश्वास न हो।

श्रीवास के भाई की पुत्री
नारायणी की वैष्णवी प्रतिष्ठा—

सम्मुखे देखये एक बालिका आपनि।
श्रीवासेर भातृसुता-नाम 'नारायणी' ॥३२१॥

अद्यापिह वैष्णव–मण्डले याँर ध्वनि।
'चैतन्येर अवशेष–पात्र नारायणी'॥३२२॥

(३२१–३२२) प. अनु०—श्रीवास की भतीजी 'नारायणी' नाम की एक बालिका को प्रभु ने अपने सामने देखा। जिसके बारे में अभी भी वैष्णव–मण्डली में यह ख्याति है कि,—'नारायणी श्रीचैतन्यदेव के अवशेष (प्रसाद) की पात्री है।'

नारायणी को कृष्णनाम पर
क्रन्दनार्थ प्रभु की आज्ञा—

सर्वभूत–अन्तर्यामी श्रीगौरांग–चान्द।
आज्ञा कैला,—"नारायणी! 'कृष्ण' बलि' कान्द'॥"३२३॥

(३२३) प. अनु०—सर्वभूत–अन्तर्यामी प्रभु श्रीगौरांग–चन्द्र ने आज्ञा की कि,—"नारायणी! 'कृष्ण–कृष्ण' कहो और रोकर दिखाओ।"

उसी क्षण नारायणी का कृष्णनाम से अश्रुपात—

चारि वत्सरेर सेइ उन्मत्त–चरित।
'हा कृष्ण' बलिया कान्दे, नाहिक सम्बित॥३२४॥
अंग वहि' पड़े धारा पृथिवीर तले।
परिपूर्ण हैल स्थल नयनेर जले॥३२५॥

(३२४–३२५) प. अनु०—चार वर्ष की वह बालिका कृष्णप्रेम से विह्वल स्वभाव वाली हो गई और 'हा कृष्ण, हा कृष्ण' कहकर रोने लगी। उसे कुछ भी बाह्यज्ञान न रहा। आँसुओं की धारा उसके शरीर को भिगोती हुई पृथ्वी पर बहने लगी और वह स्थान उस जल से परिपूर्ण हो गया।

(३२४) गौः भाः—उन्मत्तचरित,—कृष्ण ाप्रेमविह्वल–स्वभाव–विशिष्ट; संवित्—बाह्यज्ञान या अनुभूति।

प्रत्यक्ष–प्रमाण–प्रदर्शन के बाद हँसते
हुये प्रभु ने श्रीवास से पूछा कि
तुम्हारा भय गया कि नहीं—

हासिया–हासिया बले प्रभु विश्वम्भर।
"एखन तोमार कि घुचिल सब डर?"३२६॥

(३२६) प. अनु०—तब प्रभु श्रीविश्वम्भर हँसते–हँसते पूछने लगे,–" अब तुम्हरा सब भय दूर हो गया या नहीं?"

एकान्त प्रपन्नश्रेष्ठ श्रीवास का
निर्भीक भाव से उत्तर—

महावक्ता श्रीनिवास–सर्व–तत्त्व जाने।
आस्फालिया दुइ भुज बले प्रभु–स्थाने॥३२७॥
"कालरूपी तोमार विग्रह भगवाने।
यखन सकल सृष्टि संहारिया आने'॥३२८॥
तखन ना करि भय तोर नाम बले।
एखन किसेर भय?—तुमि मोर घरे॥"३२९॥

(३२७–३२९) प. अनु०—श्रीवास–पण्डित महावक्ता थे ओर सब तत्त्व को जानते थे। वे दोनों भुजाएँ उठाकर निर्भय होकर प्रभु से बोले,—"प्रभो! आपकी कालरूपी भगवन्मूर्ति जब समस्त सृष्टि का संहार कर डालती है, तब भी मैं आपके नाम के बल के कारण भयभीत नहीं होता हूँ, फिर इस समय जब कि आप साक्षात् मेरे घर में विराजमान हैं, मुझे किसका भय है?"

(३२८–३२९) गौः भाः—भगवान् का भक्त, काल के भय से लेशमात्र भी भयभीत नहीं होता—इस सम्बन्ध में (भाः ३/२५/३८ श्लोक में माता देवहूति के प्रति भगवान् कपिलदेव की उक्ति)—"न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः। येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥" श्लोक विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

प्रेमावेश से अपने भृत्य और परिकरों के साथ
श्रीवास द्वारा वेदस्तुत्य प्रभु का ऐश्वर्यप्रकाश–दर्शन—

बलिया आविष्ट हैला पण्डित–श्रीवास।

गोष्ठीर सहित देखे प्रभुर प्रकाशअ॥३३०॥
चारि-वेदे याँरे देखिवारे अभिलाष।
ताहा देखे श्रीवासेर यत दासी दास॥३३१॥

(३३०-३३१) प. अनु०—यह कहते-कहते श्रीवास पण्डित प्रेमाविष्ट हो गये थे। वे परिवार-सहित प्रभु के प्रकाश का दर्शन करने लगे। चारों वेद जिनके दर्शन की अभिलाषा करते हैं, उनको श्रीवास के सभी दास-दासी देख रहे थे।

ग्रन्थकार द्वारा श्रीवास की महिमा का कीर्तन—

कि बलिव श्रीवासेर उदार चरित्र।
याँहार चरण-धूले संसार पवित्र॥३३२॥

(३३२) प. अनु०—जिनके चरणों की रज समस्त संसार को पवित्र करने में समर्थ है, उन श्रीवास के उदार चरित्र का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ।

(३३२) गौः भाः—चरणेधूले,—पदधूलि के प्रभाव से।

गौरावतार में श्रीवास का घर ही
कृष्णविहार-स्थान वृन्दावन—

कृष्ण-अवतार येन वसुदेव-घरे।
यतेक विहार सब-नन्देर मन्दिरे॥३३३॥
जगन्नाथ-घरे हैल एइ अवतार।
श्रीवासपण्डित-गृहे यतेक विहार॥३३४॥

(३३३-३३४) प. अनु०—जैसे श्रीकृष्ण का अवतार तो वासुदेव के घर हुआ, परन्तु लीलायें सब नन्द महाराज के घर हुईं; वैसे ही यह गौर अवतार भी हुआ तो श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर, परन्तु सारी लीलायें श्रीवास पण्डित के घर में ही हुईं।

सर्वभक्ताप्रिय श्रीवास के भृत्यादि को भी
वेदवाणी-स्तुत्य प्रभु के दर्शनों की प्राप्ति—

सर्व-वैष्णवेर प्रिय पण्डित-श्रीवास।
तान बाड़ी गेले मात्र सबार उल्लास॥३३५॥
अनुभवे याँरे स्तुति करे वेद मुखे।
श्रीवासेर दास-दासी ताँरे देखे सुखे॥३३६॥

(३३५-३३६) प. अनु०—श्रीवास पण्डित सभी वैष्णवों के बड़े प्रिय थे। उनके घर जाने मात्र से ही सबका उल्लास बढ़ जाता था। वेद अपने अनुभव-ज्ञान के बल से जिनकी केवल मुख से ही स्तुति करते हैं, उन्हीं को श्रीवास के दास-दासी सुखपूर्वक आँखों से देख रहे हैं।

(३३६) गौः भाः—अनुभवे.....मुखे, —वेदशास्त्र मुख, अर्थात् विभिन्न मन्त्रवाणी, अथवा वेदवदन व्याकरण-शास्त्र के द्व ारा, अथवा दिव्यसूरिगण वेदमन्त्रो-द्गानद्वारा परोक्षज्ञान से जिनका स्तव करते हैं।

इसलिए वैष्ण-सेवा-कृपा के बल से ही
श्रीकृष्णचरणारविन्दों की कृपा-प्राप्ति—

एतेके वैष्णव-सेवा परम-उपाय।
अवश्य मिलये कृष्ण वैष्णव-कृपाय॥३३७॥

(३३७) प. अनु०—इसलिए वैष्णव-सेवा ही श्रीकृष्ण-प्राप्ति का परम उपाय है, क्योंकि वैष्ण ावों की कृपा से श्रीकृष्ण अवश्य मिलते हैं।

श्रीवास को इस गूढ़ ऐश्वर्यप्रकाश के
घोषणा की निषेध-आज्ञा—

श्रीवासेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर।
"ना कहिओ, ए-सब कथा काहारो गोचर॥"३३८॥

(३३८) प. अनु०—प्रभु श्रीविश्वम्भर ने श्रीवास को आज्ञा दी कि,—"तुम यह सब प्रसंग किसी के सम्मुख प्रकाशित मत करना।"

बहिर्दशा में आकर प्रभु की लज्जा और
श्रीवास को सान्त्वना देने के बाद उनका
अपने घर आगमन—

बाह्य पाइ' विश्वम्भर लज्जित अन्तर।
आश्वासिया श्रीवासेरे गेला निज–घर॥३३९॥

(३३९) प. अनु०—उसके बाद बाह्यदशा में आने पर श्रीविश्वम्भर मन में बड़े लज्जित हुये और श्रीवास को सान्तवना देकर अपने घर को चल गये।

गोष्ठी–सहित श्रीवास का प्रेमानन्दमुख—

सुखमय हैला तबे श्रीवासपण्डित।
पत्नी–वधू–भाइ–दास–दासीर सहित॥३४०॥

(३४०) प. अनु०—तब तो श्रीवास पण्डित, पत्नी, वधू, भाई, दास–दासी आदि सबके साथ बड़े आनन्द को प्राप्त हुये।

इस श्रीवास–स्तुति को सुनने से कृष्णदास्य की प्राप्ति—

श्रीवास करिला स्तुति—देखिया प्रकाश।
इहा येइ शुने, सेइ हय कृष्णदास॥३४१॥

(३४१) प. अनु०—श्रीवास ने प्रभु के प्रकाश को देखकर जो स्तुति की है, उसे जो कोई भी सुनेगा, वह श्रीकृष्ण का दास बन जायेगा।

इस ग्रन्थ की रचना करने के लिए ग्रन्थकार को नित्यानन्द की आज्ञा की प्राप्ति—

अन्तर्यामीरूपे बलराम भगवान्।
आज्ञा कैला चैतन्येर गाइते आख्यान॥३४२॥

(३४२) प. अनु०—भगवान् श्रीबलराम ने अन्तर्यामीरूप से मुझको श्रीचैतन्य–चरित्र का गान करने की आज्ञा की है।

श्रीनित्यानन्द को गुरुरूप में प्राप्त करने के लिए ग्रन्थकार द्वारा वैष्णव–वन्दना—

वैष्णवेर पा'ये मोर एइ नमस्कार।
जन्म–जन्म प्रभु मोर हठ हलधर॥३४३॥

(३४३) प. अनु०—श्रीवैष्णवों के चारणों में मेरी यही प्रार्थना है कि जन्म–जन्म में श्रीबलराम ही मेरे प्रभु हों।

नित्यानन्द और बलदेव एक ही स्वयं प्रकाश–विग्रह के दो नाम और दो लीलायें—

'नरसिंह' 'यदुसिंह'—येन नाम–भेद।
एइमत जानि,—'नित्यानन्द' 'बलदेव'॥३४४॥

(३४४) प. अनु०—जैसे 'नरसिंह' और 'यदुसिंह' में केवल नाममात्र का ही भेद है, वैसा ही भेद मैं 'नित्यानन्द' और 'बलदेव' में मानता हूँ।

गौरकृष्ण–प्रेष्ठ नित्यानन्द–बलदेव ही अवधूतकुल–चूड़ामणि

चैतन्यचन्द्रेर प्रिय विग्रह बलाइ।
एबे 'असवधूतचन्द्र' करि' याँरे गाइ॥३४५॥

(३४५) प. अनु०—जिनको अब 'अवधूतचन्द्र' के नाम से गाते हैं, वे श्रीबलराम ही श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रिय विग्रह हैं।

कीर्तन–विलासात्मक मध्यखण्ड का श्रवण करने के लिए अनुरोध—

मध्यखण्ड–कथा, भाइ! शुन एकचित्ते।
वत्सरेक कीर्तन करिला येनमते॥३४६॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्द–चान्द जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥३४७॥

(३४६–३४७) प. अनु०—भाइयों! जिस प्रकार से प्रभु ने एक वर्ष तक कीर्तन किया है, उस मध्यखण्ड की कथा को एकाग्र चित्त से सुनो! श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल–चरणों को कुछ यशोगान कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे श्रीसंकीर्त्तनारम्भ वर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

इति गौड़ीय भाष्य में प्रथम अध्यायः समाप्त

O

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय का कथासार

इस अध्याय में प्रभु का भावावेश, मुरारिगुप्त के घर में प्रभु द्वारा वराहमूर्ति के रूप से प्रकट होना, उसके दर्शन से मुरारि द्व ारा उनकी स्तुति, श्रीनित्यानन्द का चरित्र, उनका नवद्वीप में नन्दनाचार्य के घर आगमन, भक्तों के निकट प्रभु द्वारा अपने अद्‌भुत स्वप्न का वर्णन, प्रभु द्वारा बलदेव-आवेश मे मद्य की याचना, नन्दनाचार्य के घर गोष्ठी-सहित प्रभु का आगमन और नित्यानन्द के साथ मिलन, नित्यानन्द को प्रकाशित करने के लिए प्रभु का कौशल आदि विषय वर्णित हुये हैं।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

मंगलाचरण—

जय जय सर्व-प्राणनाथ विश्वम्भर।
जय नित्यानन्द-गदाधरेर ईश्वर॥१॥
जय जय अद्वैतादि-भक्तेर अधीन।
भक्ति-दान दिया प्रभु उद्धारह दीन॥२॥
एइमत नवद्वीपे गौराङ्गसुन्दर।
भक्तिसुखे भासे लइ' सर्व-परिकर॥३॥
प्राण-हेन सकल सेवक आपनार।
'कृष्ण' बलि' कान्दे गला धरिया सबार॥४॥
देखिया प्रभुर प्रेम सर्व-दासगण।
चतुर्द्दिके प्रभु बेड़ि' करये क्रन्दन॥५॥

(१-५) प. अनु०—सबके प्राणनाथ श्रीविश्वम्भर की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द और श्रीगदाधर के ईश्वर की जय हो। अद्व ैताचार्यआदि भक्तों के अधीन प्रभु की जय हो, जय हो। हे प्रभु! अपनी भक्ति का दान देकर इस दीन का उद्धार कीजिये। इस प्रकार श्रीगौरांङ्गसुन्दर नवद्वीप में अपने सब परिकरों के साथ भक्ति सुख में आनन्द से अब बहे जा रहे हैं। जिनको अपने सभी सेवक प्राण ों के समान प्रिय हैं, वे प्रभु उनके कण्ठों से लग-लगकर 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुये रो रहे हैं। उनके सेवकगण भी प्रभु के प्रेम को देखकर उनको चारों ओर से घेरकर रो रहे हैं।

(१) गौः भाः—सभी प्राणियों के परमेश्वर श्रीविश्वम्भर हैं। वे नित्यानन्द प्रभु और गदाधर के भी ईश्वर हैं। उनका उत्कर्ष बारम्बार जगत् में प्रचारित हो।

(२) गौः भाः—मैं वृन्दावन दास नितान्त दीन व्यक्ति हूँ। हे प्रभु विश्वम्भर! आप मेरी बुद्धि को सेवा-परायण बनाकर उसका संसार के भोगों से परित्राण कीजिये। अद्वैत आदि-आपके सेवकों ने आपको भक्ति द्वारा अपने वशीभूत किया है। आपकी बारम्बार जय हो।

(४) गौः भाः—सभी प्राणियों के एकमात्र प्रभु और जीवन-सर्वस्व श्रीगौरसुन्दर सब भक्तों को अत्यन्त आत्मीय जानकर कृष्ण-विरह में उनके गले लग-लगकर क्रन्दन करते हैं।

(५) गौः भा—प्रभु के प्रेम को देखकर उनके सब भक्तवृन्द भी उनको घेरकर प्रेम से पूर्ण होकर क्रन्दन करते हैं।

भक्तों का प्रभु के साथ अहर्निश कीर्तन—

आछुक दासेर कार्य, से–प्रेम देखिते।
शुष्ककाष्ठ–पाषाणादि मिलाय भूमिते॥६॥
छाड़ि धन, पुत्र, गृह, सर्व–भक्तगण।
अहर्निश प्रभु–संगे करेन कीर्तन॥७॥

(६–७) प. अनु०—सेवकों की बात तो दूर रही, महाप्रभु के उस प्रेम को देखकर सूखे काठ और पत्थर भी पिघल कर भूमि में मिल जाते हैं सभी भक्तवृन्द अपने धन, पुत्र और गृह आदि को छोड़कर प्रभु के साथ दिन–रात कीर्तन करते रहते हैं।

(६) गौः भाः—शुष्क काष्ठ में जल का समावेश नहीं रहता है, पत्थर के भीतर भी जल का अभाव लक्षित होता है। श्रीगौरसुन्दर की प्रेम भूमिका में शुष्ककाष्ठ और पाषाण के सदृश प्रेम–सहित हृदय भी प्रेमाप्लुत हो गये थे। उनके निज दासगण भी सेवा के कारण प्रेमाविष्ट हुये थे। जो उनके प्रेम के दर्शन करने में सअसमर्थ थे, ऐसे अचेतन पदार्थों में भी सरसता (मधुरता) परिलक्षित हो रही थी।

(७) गौः भाः—सब भक्तों ने अपने–अपने घर, धन और प्रिय पुत्र आदि कि संग का परित्याग करके सर्वक्षण प्रभु के साथ कृष्ण कीर्तन में योग दिया था।

प्रभु के विभिन्न भावोश–

हइलेन गौरचन्द्र कृष्णभक्तिरस।
यखन येरूप शुने, सेइमत हय॥८॥
दास्यभावे प्रभु यबे करेन रोदन।
हइल प्रहर दुइ गंगा–आगमन॥९॥
यबे हासे, तबे प्रभु प्रहरेक हासे।
मूर्च्छित हइले—प्रहरेक नाहि श्वासे॥१०॥
क्षणे हय स्वानुभाव,—दम्भ करि' वैसे।
''मूञि सेइ, मुञि सेइ''—इहा बलि हासे॥११॥
''कोथा गेल नाड़ा बुड़ा,—ये आनिल मोरे?।
विलाइमु भक्तिरस प्रति–घरे–घरे''॥१२॥
सेइक्षणे 'कृष्ण रे! बाप रे!' बलि' कान्दे।
आपनार केश आपनार पा'ये बान्धे॥१३॥
अक्रूर–यानेर श्लोक पड़िया पड़िया।
क्षणे पड़े पृथ्वीते दण्डवत् हैया॥१४॥
हइलेन महाप्रभु येहेन अक्रूर।
सेइमत कथा कहे, बाह्य गेल दूर॥१५॥
''मथुरा चल, नन्द! राम–कृष्णे लैया।
धनुर्मख राज–महोत्सव देखि गिया॥''१६॥
एइमत नाना भावे नाना कथा कय। देखिया वैष्णव–सब आनन्दे भासय॥१७॥

(८–१७) प. अनु०—अब तो गौरचन्द्र कृष्ण–भक्तिमय हो गये हैं। वे जब जैसी कथा सुनते हैं, तब उसी भाव में तन्मय हो जाते हैं। जब प्रभु दास–भाव में रोते हैं, तब दो–दो पहर तक उनके नेत्रों से ऐसी अश्रुधारायें बहती हैं तब एक–एक पहर तक हँसते ही रहते है। तब वे मर्च्छित होते हैं, तब एक–प्रहर तक श्वास का पता नहीं चलता है फिर क्षण–भर में जब उनका ऐश्वर्य–भाव प्रकट होता है तो वे बड़े स्वाभिमान के साथ बैठ जाते हैं और "मैं वही हूँ मैं वही हूँ मैं वही हूँ कि,—"अरे वह बूढ़ा नाड़ा (अद्वैत) कहाँ गया, जो मुझे यहाँ ले आया है? अब मैं प्रत्येक घर में भक्तिरस का वितरण करूँगा।" फिर अचानक उसी समय—"कृष्ण रे! बाप रे!" ऐसा कहकर रोने लगते हैं तथा अपने केशों से अपने पैरों को बाँधने लगते हैं। कभी ब्रज से जाते समय अक्रूर के श्लोकों को पढ़ते–पढ़ते पृथ्वी पर दण्डवत् होकर गिर पड़ते हैं। महाप्रभु अक्रूर के भाव में तन्मय होकर जैसे अक्रूर ही बन जातें हैं तथा अपने को भूलकर अक्रूर की भाँति ही वचन बोलने लगते हैं। वे कहते हैं कि—"हे

नन्द जी! राम-कृष्ण को मथुरा ले जाओ। चलकर राजा का धनुष-यज्ञ महोत्सव देखो।" इस प्रकार से प्रभु नाना प्रकार के भावावेश में नाना प्रकार की बातें कहते रहते हैं और वैष्णव-जन यह सब देख-देखकर आनन्द-धारा में बहते रहते हैं।

(८-१७) गौः भाः—कृष्ण-सेवा में तन्मयता प्राप्त करके श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तों के मुख से श्रीकृष्ण की जिस-जिस लीला-कथा का श्रवण करते, उसी लीला मे प्रविष्ट होकर उसी प्रकार के भाव का प्रदर्शन करने लगते। दास्य-भाव में क्रन्दन करते-करते वे दो प्रहर तक गंगा-धारा के समान अश्रुओं का विसर्जन करते रहते तो कभी तीन-तीन घंटे तक हास्य-रस में निमग्न होकर प्रमत्त बने रहते। कभी-कभी वे तीन-तीन घंटों तक श्वास रोक करके मूर्च्छित बने रहते। कभी दम्भ से अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करने की चेष्टा से हँसते हुये "मैं वही वस्तु हूँ" कहकर चीत्कार करते। भगवान् गौरसुन्दर अपने आपको लोगों के समक्ष भगवद् रूप में प्रकाशित करते समय सत्य से भ्रष्ट कभी नहीं हुये; जीवमात्र ही भगवान् हैं" इत्यादि अनेक प्रलापयुक्त वाक्यों के द्वारा आत्मविनाश ाक साधन करते हुये कभी भी मंगल की प्राप्ति नहीं कर पाते हैं। यद्यपि वे गौरलीला में कृष्ण-भक्त का भाव अंगीकार करके जीवों के सौभाग्य को प्रकाशित करते हुये सेवक की लीला दिखा रहे हैं, तथापि उसके बीच-बीच में मायावादी, पाखण डी, असुर-प्रकृति वाले व्यक्तियों को मोहित करने के लिए मायावादी की भाँति वाक्यों का उच्चाारण करते हुये उनकी मूढ़ता का सम्पादन भी कर रहे हैं। गौरहरि कभी कहते हैं,—'मुझे वैकुण्ठ से जिन्होंने प्रपंच में बुलाया है, वे वृद्ध आचार्य अद्वैत अब मुझे छोड़कर कहाँ चले गये हैं? उनकी इच्छानुसार ही मैं प्रत्येक घर में भक्ति-रस वितरण करूँगा।' इस प्रकार कहते-कहते अपने घुँघराले लम्बे केशों द्वारा वे अपने चरणों को बाँधने लग जाते हैं। कभी 'कृष्ण', 'बाप', 'सौम्य', 'प्रिय' आदि शब्दों के उच्चारण द्वारा सुदूरवर्ती कृष्ण को आवाहान करते-करते वे क्रन्दन करने लगते हैं। कभी बाह्यज्ञान रहित होकर अक्रूर ने जैसे ब्रज में आकर कृष्ण को ले जाने के लिए विभिन्न प्रकार की बातें कहीं थीं, उन्हीं बातों को अक्रूर के भाव से भावित होकर वे कहने लगते हैं,—'हे नन्द, राम-कृष्ण को लेकर मथुरा चलो। वहाँ जाकर हम लोग धनुर्यज्ञ-महोत्सव का दर्शन करेंगे'

(भाः १०/३९/४२ अः द्रष्टव्य है)। कभी भूमि पर दण्डवत् प्रणति करने लगते हैं। इस प्रकार नाना-विध भंगिमाओं के दर्शन से भक्तगण आनन्दमग्न हो जाते हैं।

(१६) गौः भाः—धनुर्मुख,—धनुर्यज्ञ; १०म स्कन्ध ४२ श अध्याय द्रष्टव्य है।

मुरारि के घर में प्रभु द्वारा
वराह-स्वरूप का प्रकटन—

एकदिन वराह-भावेर श्लोक शुनि'।
गर्जिया मुरारि-घरे चलिला आपनि॥१८॥
अन्तरे मुरारिगुप्त-प्रति बड़ प्रेम।
हनुमान्-प्रति प्रभु रामचन्द्र येन॥१९॥
मुरारिर घरे गेला श्रीशचीनन्दन।
सम्भ्रमे करिला गुप्त चरण-वन्दन॥२०॥
''शूकर शूकर'' बलि' प्रभु चलि' याय।
स्तम्भित मुरारिगुप्त चतुर्द्दिके चाय॥२१॥
विष्णुगृहे प्रविष्ट हइला विश्वम्भर।
सम्मुखे देखेन जलभाजन सुन्दर॥२२॥
वराह-आकार प्रभु तुलिला दशने॥२३॥

गर्ज्जे 'यज्ञ–वराह'—प्रकाशें खुर चारि।
प्रभु बले,—''मोर स्तुति करह मुरारि''!२४॥
स्तब्ध हैला मुरारि अपूर्व–दरशने।
कि बलिवे मुरारि, ना आइसे वदने॥२५॥
प्रभु बले,—''बोल बोल किछु भय नाञि।
एतदिन नाहि जान' मुञि एइ ठाञि॥''२६॥
कस्मित मुरारि कहे करिया मिनति।
''तुमि से जानह प्रभु! तोमार ये स्तुति॥२७॥
अनन्त ब्रह्माण्ड यार एक फणे धरे।
सहस्रवदन हइ' यारे स्तुति करे॥२८॥
तबु नाहि पाय अन्त, सेइ प्रभु कय।
तोमार स्तवेते आर के समर्थ हय?२९॥
ये वेदेर मत करे सकल संसार।
सेइ वेद सर्व तत्त्व न जाने तोमार॥३०॥
यत देखि शुनि प्रभु! अनन्त भुवन।
तो'र लोमकूपे गिया मिलाय यखन॥३१॥
हेन सदानन्द तुमि ये कर यखने।
बल देखि वेदे ताहा जानिवे केमने॥३२॥
अतएव तुमि से तोमारे जान' पात्र।
तुमि जानाइले जाने तोर कृपा पात्र॥३३॥
तोमार स्तुतिये मोर कोन् अधिकार।
एत बलि' कान्दे गुप्त, करे नमस्कार॥३४॥
गुप्तवाक्ये तुष्ट हैला वराह ईश्वर।
वेद–प्रति क्रोध करि' बलये उत्तर॥३५॥

(१८–३४) प. अनु०—एक दिन वराह–अवतार ाक एक श्लोक सुनते ही प्रभु गरजते हुये मुरारि गुप्त के घर की ओर चल दिये। प्रभु के हृदय में मुरारि के प्रति प्रेम था, ठीक वैसा ही जैसा हनुमान के प्रति श्रीरामन्द्र की का था। जब श्रीशचीनन्दन मुरारि गुप्त के घर पहुँचे तो मुरारि गुप्त ने सम्भ्रम के साथ प्रभु के चरणों की वन्दन की। प्रभु "शूकर–शूकर" कहते हुये आगे चलते गये, जिसे सुनकर मुरारि गुप्त स्तम्भित होकर चारों ओर देखने लगे, तभी प्रभु श्रीविश्वम्भर विष्णुमन्दिर में प्रवेश कर गये। उन्होंने सामने ही जल से भरा एक सुन्दर गाडु (जल–कलश) देखा। देखते ही तत्क्षण प्रभु का आकार वराह–रूप में परिवर्तित हो गया। प्रभु ने ईश्वर–भाव से जल–कलश को अने दांतों पर उठा लिया और चार खुरों को प्रकट करते हुये यज्ञवराह गरजने लगे। उन्होंने कहा,—"मुरारि! मेरी स्तुति करो" इस अपूर्व दर्शन से मुरारि गुप्त स्तब्ध रह गये, वे क्या बोलें? क्या स्तुति करं? मुख से कुछ भी तो नहीं निकल रहा था। तब प्रभु ने कहा,—"बोलो, बोलो! कोई भय नहीं है। तुम्हें इतने दिन तक मालूम नहीं था कि मैं यहाँ पर हूँ। काँपते हुये मुरारि ने विनयपूर्वक कहा,—"हे प्रभो! आपकी जो स्तुति है, वह आप ही जानते हें। एक फन पर अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करने वाले शेषजी अपने सहस्र मुखों से आपकी स्तुति करते रहते हैं। तब भी वे आपकी महिमा का अन्त नहीं पाते हैं—ऐसा स्वयं भगवान् शेषजी अपने सहस्र मुखों से आपकी स्तुति करते रहते हैं। तब भी वे आपकी महिमा का अन्त नहीं पाते हैं—ऐसा स्वयं भगवान् शेषजी कहते हैं, तो फिर आपकी स्तुति करने में और कौन समर्थ हो सकता है? जिन वेदों के मत पर संसार चलता है, वे वेद भी आपके सम्पूर्ण तत्त्व को नहीं जानते हैं, वे सब महाप्रलय के समय जब आपके ही रोम–कूप में लीन हो जाते हैं। तब एक सदानन्द स्वरूप आप ही शेष रह जाते हैं, उस समय आप जो कुछ भी करते हैं, उसको कहिये तो सही, वेद कैसे जान सकते हैं? इसलिए आप ही केवल अपने को जानते हैं। या फिर आपका कोई कृपापात्र आपके जनाने

पर ही आपको जान सकता है। ऐसे जो आप हैं, आपकी स्तुति करने का भला मेरा क्या अधिकार है?" इतना कहकर मुरारि गुप्त रोने लगे और प्रभु को बार-बार नमस्कार करने लगे। वराह भगवान् मुरारि गुप्त के वचनों से प्रसन्न हुये तथा फिर वेदों के प्रति क्रोध करते हुये बोले।

(१९-२०) गौः भाः—श्रीरामचन्द्र जैसे हनुमान के प्रति आन्तरिक स्नेहयुक्त थे, वैसे ही महाप्रभु भी मुरारि गुप्त को अपना अत्यन्त प्रीति-भाजन समझते थे। एक दिन वराह-आख्यान का श्रवण करके प्रभु वराह कि आवेश में गर्जन करते-करते मुरारि के घर उपस्थित हुये।

(२१-२४) गौः भाः—अचानक गौरहरि मुरारि के घर जाकर 'शूकर' 'शूकर' कहते-कहते उनके विष्णुगृह में प्रविष्ट हो गये। अचानक गौरसुन्दर का ऐसा अपूर्व गर्जन और 'शूकर' 'शूकर' की उक्ति सुनकर मुरारि, यह क्या व्यापार (घटना) है, कुछ भी समझ न सके। विष्णु गृह में एक बृहत् जलपात्र में जल देखकर प्रभु ने दांतों द्वारा उस जलपूर्ण पात्र को उठा लिया। मुरारि ने समय उनको चार पैरों वाले यज्ञ-वराह के रूप में गरजते हुये देखा। वराहदेव विष्णु के अवतार हैं, इसलिए भगवान् गौरसुन्दर का अवतार विशेष होने के कारण उन्होंने अपनी अनुभूति से वराह लीला का प्राकट्य-साधन तदनुरूप विचार-सम्पन्न भक्त के निकट ही प्रकाशित किया। इससे कोई भी मायावादी व्यक्ति इस प्रकार से विचार न करे कि, मायाबद्ध जीव अज्ञान से मुक्त होकर सभी भगवद् वस्तुओं के अनुकरण में ऐसे ईश्वर भाव का प्रदर्शन करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार के भाव से प्रतारित होकर जो लोग अपने आपको विष्णुज्ञान से वंचित किये रखते हैं, उन सब कपटी नारकी सम्प्रदायों का अनादर करने के लिए ही स्वयं भगवान् ने ऐसी लीला का प्रदर्शन करके उनकी मूढ़ता का सम्पादन किया है। नित्य भगवद्-विमुख पाखण्डीजन भगवच्चारित को यथार्थत न समझ सकने के कारण इन सब भावों का अनुकरण करके स्वयं भ्रमपथ में पतित हो जाते हैं और जगत् में जंजाल का जाल फैलाकर कुछेक कपटी व्यक्तियों को अपने स्तुतिकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल हो जाते हैं। उस प्रकार के इन सब भगवद्-विद्वेषियों के योग्य भूमिका केवल नरक-यन्त्रणा हैं, जो उन लोगों को अनन्त काल तक क्लेश देने के लिए प्रतीक्षारत है। छन्नावतार श्रीगौरसुन्दर ने अपने स्वरुप को गुप्त रखकर अपने भक्तों तक को भी उसे समझने नहीं दिया। अनन्त नरक-प्राप्ति योग्य घृणित मायाबद्धजीव, जिनकी प्रत्येक दिन तीन अवस्थाएँ होती रहती हैं, वे यदि प्रभु को जीव मानते हुये उन्हें अपने समान जानकर अपने प्रिय लोगों की वंचना करके इस प्रकार अपने स्तव को संग्रह कराने में विशेष यत्नशील होते हैं, तब उस प्रकार के वंचक और वंचित, दोनों ही मनुष्य नाम की योग्यता खोकर विष्ठाभोजी वराह के चारों पैरों के अभाव में दो पैर वाले पशु के रूप मे परिणत होते हैं। इस प्रकार के दो पैर वाले ये पशु बाहर कभी भी चार पैर नही दिखा सकते हें। हाँ, उनको जन्मान्तर में इस प्रकार का विष्ठाभोजी चतुष्पदत्व अवश्य प्राप्त होता है। श्रीचैतन्यदेव ने अपने वराह-अवतार के चार पैरों का प्रदर्शन किया था और उसके अनुकरण से क्षुद्र जीव को, जो वह नहीं है, उस रूप का अभिनय करने की चेष्टा करने पर नितान्त हास्यास्पद होना पड़ता है।

(२७) गौः भाः—भगवान् की वराहमूर्ति और उनका अनुष्ठान देखकर मूरारि गुप्त भय से कम्पित कलेश्वर (शरीर से काँपते हुये) होकर कहने लगे,—'मैं आपके अनुरूप स्तवन करने में असमर्थ हूँ, अपना स्तवन करने में तो केवल आप ही समर्थ हैं।' मुरारि द्वारा स्तवन करने में संकोच करने पर विशेषतः भीषण वराहमूर्ति को देखकर शंकित होने पर, प्रभु ने कहा था कि तुझको भय करने ही आवश्यकता नहीं है, तुम इतने दिनों में भी जान नहीं पाये हो कि, मैं कौन हूँ? प्रकृत प्रस्ताव से मैं ही विष्णु के अवतारों का एकमात्र मालिक हूँ। भगवान् की इन सब लीलाओं की चर्चा प्रचारित होने पर जगत् के सभी लोक श्रीगौरसुन्दर को भगवत्स्वरूप से जान सके थे। यद्यपि भगवान् ने अपनी ये सब लीलायें अपने पार्षद भक्तों को ही प्रपंच में प्रकट करके दिखाई थीं तथापि उनके प्रति दृढ़ श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति भी इन सब कथाओं की तथा उनको कृष्ण रूप से और अवतारी रूप से जान पाये थे और मेरे जैसे बाद में जन्मे अधस्तन-जनों के मंगल के लिए उन्होंने उनकी लीला-कथाओं को लिपिबद्ध किया था। सेवोन्मुख वैष्णव ही सेव्यवस्तु की कथा को सुष्ठुभाव से वर्णन कर सकते हैं। जड़भोग परायण कवि, साहित्यकार अथवा लेखक,—ये सब किसी प्रकार से भी भगवान् का चरित्र यथायथ रूप से वर्णन करने में कभी भी समर्थ नहीं होते हैं। जड़ दार्शनिकों के त्रिगुण के अन्तर्गत आध्यक्षिक विचार भी गौरसुन्दर के लोकातीत विष्णु-विक्रम समूह को समझने में कभी समर्थ नहीं हो सकते हैं। स्वाभाविक अपराध-वशतः सेवा-विमुख होने के कारण वे साधुओं के प्रकृष्ट संग के अभाव में अपने-अपने दम्भ और मूढ़ता का प्रकाशन करने की चेष्टा में श्रीचैतन्य-चरणों में अपराध मात्र ही प्राप्त करेंगे। किन्तु सेवापरायण सौभाग्यवान् भक्तगण भगवान् के लोकातीत विक्रम से अवगत होकर मायिक विचारों के चगुंल से परित्राण पाने में समर्थ हो जाते हैं, जबकि भगवान् के आलौकिक पराक्रम से अपरिचित अन्य लोगों की विचार प्रणाली को अपराध के कारण अधोक्षज-शब्द का अर्थ स्फूर्ति नहीं हो पाता है। वे अधोक्षज श्रीचैतन्यदेव को अचिद्विलास-विशिष्ट बद्धजीव ही समझते रहे हैं। इस कारण वे श्रीचैतन्य के प्रियतम श्रीगुरुदेव मे मनुष्य बुद्धि कर बैठते हैं और वैष्णवों के प्रति ईर्ष्या प्रदर्शन के कारण मतभेद उपस्थापित करते हैं।

(२८-२९) गौः भाः—मुरारि ने कहा,—इस प्रकार के सुविशाल ब्रह्माण्ड-समूह असंख्य और गुरुभार विशिष्ट (अतिभारी) हैं। उन सब ब्रह्माण्डों को जिन अनन्तदेव का मात्र एक फन सदा धारण किये रहता है, वे ही अनन्तदेव अपनी सहस्रजिह्वाओं आपका सम्यक् रूप से स्तवन करते हैं औरप्रकार के स्तवन करते हैं और उस प्रकार के स्तवद्वारा आपका वर्णन करने पर भी उनकी तृप्ति नहीं होती है, उन अनन्तदेव का अतिक्रम करकेआपका सुष्ठुभाव से स्तवन करने मे अन्य कोई भी समर्थ नहीं है।

(३०) गौः भाः—संसार के सभी लोग वेदों के अनुगत होकर सामाजिक भाव से जगत् में निवास करते हैं। वे वेद भी आपके सम्पूर्ण तत्त्व का वर्णन करने में असमर्थ हैं।

(३१) गौः भाः—भुवनों की संख्या अनन्त है,वे असंख्य भुवन-समूह आपके रोमकूप में अवस्थान करते हैं।

(३२) गौः भाः—हे नित्यानन्द विश्वम्भर! आप जब जिन लीलाओं को प्रकाशित करते हैं, उन सब लीलाओं की कथा से सीमा-विशिष्ट

वेद भी कैसे अवगत हो सकते हैं? आध्यक्षिक ज्ञान-सम्पन्न त्रिगुणबद्ध की दृष्टि में अन्यतम वेद भी अधोक्षज वैकुण्ठ तत्त्व का पूर्णतः वर्णन करने में असमर्थ हैं। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में निपुण जो व्यक्ति अपनी-अपनी आध्यक्षिक चेष्टाओं से जो सब प्रयास करते हैं, उनके लिए वेदशास्त्र,भक्तों के प्राप्य वास्तविक सत्य को प्रदान नहीं करते हैं।

(३३) गौः भाः—"यावानहं यथाभावों यद्रूप गुणकर्मकः। तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥" (भाः २/९/३१)। साधारण मायाबद्ध जीव के देव शरीर में अवस्थान करने के समय भी भगवान् के शक्ति-समूह के परिचय में अनभिज्ञता दूर नहीं होती है। भगवान् जिनके प्रति कृपा करते हैं, वे ही इन सब कथाओं को जान सकते हैं। "यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणते तनूं स्वाम्॥"

(३५) गौः भाः—सब श्रुतियाँ आध्यक्षिक इन्द्रिय जन्य ज्ञान-सम्पन्ना मुमुक्षुओं की वंचना करने के लिए शब्द की अज्ञरूढ़ि वृत्ति ही उनके सम्मुख प्रकाशित करती हैं। आध्यक्षिक मायावादी अधिरोहवाद का अवलम्बन करके वेदों का अध्ययन करते हैं। इस कारण वेदशास्त्रों के उनके सम्मुख अनुकूल भाव से परिद्रष्ट होने पर भी, उस प्रकार के वेद की मोहनशक्ति के प्रति भगवान् का क्रोध भी 'जीव पर दया' का ही उत्कृष्ट उदाहरण है। वास्तव में जो वेदशास्त्र उनकी सेवा में नियुक्त हैं, उनके प्रति प्रभु के क्रोध की कोई भी सम्भावना नहीं है। केवल निर्विशेष परायण वेदपाठियों के अमंगल के प्रति ही उनका क्रोध है।

प्रभु द्वारा निर्विशेष मतवाद का खण्डन—

''हस्त पद मुख मोर नाहिक लोचन।
एइमत वेदे मोरे करे बिड़म्बन॥३६॥
काशीते पड़ाय बेटा प्रकाश-आनन्द।
सेइ बेटा करे मोर अंग खण्ड-खण्ड॥३७॥
बाखानये वेद, मोर विग्रह ना माने'।
सर्व अंगे हैल कुष्ठ, तबु नाहि जाने॥३८॥
सर्वयज्ञमय मोर ये अंग पवित्र।
अज-भव-आदि गाय याहार चरित्र॥३९॥
पुण्य पवित्रता पाय ये-अंग-परशे।
ताहा 'मिथ्या' बले बेटा केमन साहसे?४०॥
शुनह मुरारिगुप्त, कहि मत सार।
वेदगुह्य कहि एइ तोमार गोचर॥४१॥
आमि यज्ञवराह—सकलवेदसार।
आमि से करिनु पूर्वे पृथिवी उद्धार॥४२॥

(३६-४२) प. अनु०—"मेरे हाथ, पाँव, मुख और आँख नहीं है"—यह कहकर वेद मेरी विडम्बना करते हैं। काशी में बेटा प्रकाशानन्द पढ़ाता है; पढ़ाता क्या है, मेरे शरीर के खण्ड-खण्ड करता है। वह वेद की व्याख्या करता हे, परन्तु मेरे विग्रह को नहीं मानता है, इसी से उसके समस्त अंगों में कोढ़ हो गया है, फिर भी उसकी आँखें नही खुलती हैं। मेरे जो पवित्र अंग सर्व यज्ञ-मय हैं, जिन मेरे अंगों के स्पर्श से पुण्य और पवित्रता की प्राप्ति होती है, उन्हें वह बेटा, 'मिथ्या' कहने का साहस कैसे करता है? अरे मुरारि गुप्त सुनो! मैं तुम्हें सार मत बताता हूँ। वेद में भी जो गुप्त हैं, उसे मैं तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष करता हूँ। मैं यज्ञवराह सब वेदों का सार हूँ। मैंने ही पूर्वकाल में पृथ्वी का उद्धार किया था।

(३६) गौः भाः—निर्विशेष विचार-परायण व्यक्ति भगवान् की नित्य श्रीमूर्ति को न समझकर, वेद कथित प्राकृत हाथ पैरों मुखादि का आरोप करके, 'भगवद्वस्तु का

आकार नहीं है, विलास नहीं है' आदि विचार रखते हैं। विद्वद्रूढ़ि वृत्ति से शब्द के अर्थ में प्रविष्ट होने पर समझा जाता है कि, भगवान् के जड़ीय हाथ पैर मुखादि के बदले चिन्मय हाथ-पैर-मुख-नेत्रादि हैं। 'अपाणि-पादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' (श्वेः३/१९) इत्यादि श्रुतियाँ उसका उच्चः स्वर से कीर्तन कर रही हैं। जो सब लोग वेद के तात्पर्य को न समझकर विडम्बित होते हैं, उनके प्रति करुणा प्रदर्शन के लिए श्रीगौरहरि उस दृष्टि से देखे गये वेद का आदर नहीं कर रहे हैं।

(३७) गौः भाः—'प्रकाशानन्द'—नामक एक केवलद्वैतावादी संन्यासी-अध्यापक वेद की व्याख्या के समय मेरे अप्राकृत नित्य अंगों को विखण्डित करता है। अनभिज्ञतावश कुछ लोग कावेरी-प्रवासी व्यंकटभट्ट के अनुज प्रबोधानन्द के साथ इस प्रकाशानन्द का साम्य समझते हैं। भक्तमाल नामक सहजिया ग्रन्थ में ऐसे भ्रम-दोषों के प्रवेश करने का कारण, आजकल के लेखकों में भी वही भ्रम-दोष थोड़ा-बहुत प्रवेश कर गया है।

(३८) गौः भाः—यह सत्य है कि प्रकाशानन्द उपनिषद् आदि की व्याख्या करता था, किन्तु भगवान् के चिन्मय विग्रह में नित्याधिष्ठान स्वीकार नहीं करता था, इसीलिए अपराधी होने के कारण उसके शरीर में सर्वत्र कुष्ठरोग हो गया था। तब भी उसमें ज्ञान का उदय नहीं हुआ।

(३९) गौः भाः—मैं यज्ञेश्वर विष्णु हूँ, मेरे चिन्मय-अंगों में किसी प्रकार की अपवित्रता या दोष का आरोप सम्भव नहीं हैं। मेरा चरित्र ब्रह्मा-शिवादि के गान का विषय है।

सकलयज्ञमय अंग—"क्रौड़ीं तनुं सकल-यज्ञ-मयीमनन्तः" (भाः२/७/१) और भाः३/१३/३२-४४ श्लोक द्रष्टव्य हैं।

(४०) गौः भाः—भगवद्-अंग नित्य हैं, उनमें किसी प्रकार से अनुपादेयता (व्यर्थता, निष्प्रयोजनीयता), अवरता (अनुत्कृष्टता), हेयता (त्याज्यता) खण्डिता-वस्था आदि आरोपित नहीं हो सकते हैं। इस प्रकार परम-पावन करने वाले भगवद्-अंग के स्पर्श से जिन सब वस्तुओं का स्वल्प-पवित्रता है, वे भी प्रचुर-परिणाम में पवित्र होती है हैं। इसलिए उस प्रकार के नित्य शरीर को किस साहस से 'अनित्य' कहते हैं, यह समझ में नहीं आता है।

(४२) गौः भाः—मैंने यज्ञवराह-रूप धारण करके वेदहीन पृथ्वी को आध्यक्षिक-ज्ञानरूप-जल से उद्धार किया था। मैं सब वेदों की सार-वस्तु हूँ।

सेवकों के प्रति द्रोह प्रभु को असहनीय—

संकीर्तन आरम्भे मोहार अवतार।
भक्तजन लागि' दुष्ट करिमु संहार॥४३॥
सेवकेर द्रोह मुञि सहिते ना पाँरो।
पुत्र यदि हय मोर, तथापि संहारोँ॥४४॥
पुत्र काटेँ आपनार सेवक लागिया।
मिथ्या नाहि कहि गुप्त शुन मन दिया॥४५॥
ये काले करिनु मुञि पृथिवी उद्धार।
हइल क्षितिर गर्भ परशे आमार॥४६॥
हइल 'नरक' नामे पुत्र महाबल।
आपने पुत्रेरे धर्म कहिलुँ सकल॥४७॥
महाराज हइलेन आमार नन्दन।
देव-द्विज-गुरू-भक्त करेन पालन॥४८॥
दैवदोषे ताहार हइल दुष्ट संग।
वाणेर संसर्गे हैल भक्तद्रोहे रंग॥४९॥
सेवकेर हिंसा मुञि ना पार्रो सहिते।
काटिनु आपन पुत्र सेवक राखिते॥५०॥

जनमे जनमे–तुमि सेवियाछ मोरे।
एतेक सकल तत्त्व कहिल तोमारे॥''५१॥
शुनिया मुरारि गुप्त प्रभुर वचन।
विह्वल हइया गुप्त करेन क्रन्दन॥५२॥
मुरारि–सहित गौरचन्द्र जय जय।
जय यज्ञ–वराह—सेवक–रक्षामय॥५३॥
एइ मत सर्व–सेवकेर घरे घरे।
कृपाय ठाकुर जानायेन आपनेर॥५४॥
चिनिया सकल भृत्य—प्रभु आपनार।
परानन्दमय चित्त हइल सबार॥४४॥
पाषण्डीरे आर केह भय नाहि करे।
हाटे घाटे सबे 'कृष्ण' गाय उच्चस्वरे॥५६॥
प्रभु–संगे मिलिया सकल भक्तगण।
महानन्दे अहर्निश करये कीर्तन॥५७॥
मिलिला सकल भक्त, वह नित्यानन्द।
भाइ ना देखिया बड़ दुःखी गौरचन्द॥५८॥

(४३–५८) प. अनु०—मेरा यह अवतार संकीर्तन–प्रचार के लिए हुआ है। मैं भक्तजनों की रक्षा के लिए दुष्टों का संहार करूँगा। अपने सेवक से द्रोह को मैं सहन नहीं कर सकता हूँ। वह द्रोही चाहे मेरा पुत्र ही क्यों न हो, उसे भी मैं मार डालता हूँ। अपने सेवक के लिए मैं अपने पुत्र को भी मार देता हूँ। मुरारि गुप्त! यह मैं मिथ्या नहीं कह रहा हूँ। ध्यान देकर सुनो! जिस समय मैंने पृथ्वी का उद्धार किया था, उस समय मेरे स्पर्श से पृथ्वी के गर्भ ठहर गया था। उससे 'नरक' नाम का एक बड़ा बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। उस अपने पुत्र को मैंने धर्म का सब तत्त्व समझा दिया था। मेरा पुत्र महाराज बन गया और वह देव, द्विज, गुरु और भक्तों का पालन करने लगा। परन्तु दुर्भाग्यवश वह दुष्ट–संग में पड़ गया। बाणासुर के दुष्ट संग से उस पर भक्त–द्रोह का रंग चढ़ गया। परन्तु मैं तो अपने सेवकों के प्रति हिंसा सहन नहीं कर सकता। इसी से अपने सेवकों की रक्षा के लिए मैं अपने पुत्र 'नरकासुर' को काट डाला। तुमने जन्म–जन्म में मेरी सेवा की है।" प्रभु के वचनों को सुनकर मुरारि गुप्त आनन्द आनन्द में विह्वल होकर रोने लगे।

मुरारिगुप्त के साथ श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। सेवकों की रक्षा करना ही जिनका धर्म है, उन यज्ञवराह भगवान् की जय हो।

इस प्रकार प्रभु श्रीगौरचन्द्र सब सेवकों के घर–घर जाकर कृपापूर्वक अपने स्वरूप को प्रकट करने लगे। सेवकों के हृदय भी अपने प्रभु को पहचान कर परमानन्द से पूर्ण हो गये। अब तो कोई भी भक्त, पाखण्डियों का भय नहीं करते थे। सब हाट और घाट में, सर्वत्र ऊँचे स्वर से 'कृष्ण कृष्ण' गा रहे थे, और सब भक्त प्रभु केसाथ मिल–

कर बड़े आनन्द से रात–दिन कीर्तन कर रहे थे। एक नित्यानन्द को छोड़कर सब भक्त प्रभु से आ मिले थे—परन्तु भाई को न देखकर प्रभु बड़े दुःखी थे।

(४३) गौः भाः—मैंने संकीर्तन आरम्भ करने से पहले साधारण कर्मफल–बाध्य ब्राह्मण–वटु के रूप से जगत् को मोहित किया था; किन्तु अब संकीर्तन के प्रचार के लिए मैं वैकुण्ठ से प्रपंच में अवतीर्ण हुआ हूँ,—मैंने यह सब लोगों को बता दिया है। मेरे यहाँ पर अवतरित होने के कारण यही है कि, भक्त–विद्वेषी असुरगण जो भक्तों को उनकी पारमार्थिक–उपद्रुत (उपद्रव–ग्रस्त) करते हैं, उन सब उपद्रवों और बाधा–विघ्नों से उनकी रक्षा करने के लिए मैं उन भक्त–द्वेषीगणों का ध्वसं करूँगा।

(४४–४५) गौः भाः—मैं अपने भक्तों से विद्वेष करने वालों के आचरण को तनिक

भी सहन कर सकता हूँ। यदि मेरा पुत्र भी मेरे भक्त से विद्वेष करता है, तो मैं उस प्रिय पुत्र का विनाश करने के लिए भी प्रस्तुत हूँ, यहाँ तक कि–मैं भगवद्–भक्त के लिए अपने निज पुत्र को भी काटकर फेंक सकता हूँ—यह सत्य बात मैं यथार्थ रूप में ही तुम्हारे सामने कह रहा हूँ, यह मेरी कोई अतिशयोक्ति (बढ़ा–चढ़ा कर कही हुई बात) नहीं है।

(४६) गौः भाः—मैंने जब जल में डूबी धरणी (पृथ्वी) को ऊपर उठाया था, तब उसके साथ मेरे संस्पर्श से उसके गर्भ का संचार हुआ था। भाः १०/५८/३८ श्लोक की श्री वैष्णवतोषणी से उद्धृत श्री–विष्णुपुराण वचन में पृथ्वी की उक्ति—"यदाहमुद्धृता नाथ, त्वया शूकर–मर्तिना। त्वत्स्पर्शसम्भवः पुत्रस्तदायं मय्यजायत॥"

(४७) गौः भाः—उसी संस्पर्श से मेरा 'नरक'–नामक एक महाबलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ था। उसे मैंने धर्मोपदेश दिया था।

(४९) गौः भाः—मेरे सदुपदेशों को प्राप्त करके उसका जीवन कुछेक दिनों तक तो पवित्र रहा; फिर काल के प्रभाव से बाण–राजा के दुष्ट संसर्ग के कारण उसमें भक्तों के प्रति विरुद्धाचरण का कौतुहल उपस्थित हो गया।

(५०) गौः भाः—मैं किसी प्रकार भी अपने प्रिय भृत्यों के प्रति व्यक्तियों की ईर्ष्या, मत्सरता या द्वैष को सहन नहीं कर सकता हूँ। इसलिए भक्तों का पक्ष ग्रहण करके मैंने अपने प्रिय पुत्र को भी काटकर फेंक दिया था।

(५३) गौः भाः—भक्तों की रक्षा करने वाले यज्ञवराह की जय हो ओर मुरारि के साथ गौरचन्द्र की बारम्बार जय हो।

(५६) गौः भाः—जब गौरहरि ने सबके निकट अपना रूप प्रकाशित किया था, उस समय निकट अपना रूप प्रकाशित किया था, उस समय सभी लोग जड़ता की नाना प्रकार की असुविधाओं का परित्याग करके चिन्मय–आनन्द में परिप्लुत हो गये थे। इसीलिए वे सब भक्त सर्वक्षण हाट और घाट, सब स्थानों पर उच्चस्वर से कृष्णगान करते हुये पाखण्डियों के कल्पित राजपथ से भयभीत नहीं हुये।

(५८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के साथ सर्वक्षण कीर्तन के रंग में नित्यानन्द के अतिरिक्त और सभी ने योगदान किया था। यह देखकर महाप्रभु, नित्यानन्द के विरह में विशेष रूप से दुःखितहुये थे।

नित्यानन्द प्रभु का आख्यान–

निरन्तर नित्यानन्द स्मरे विश्वम्भर।
जानिलेन नित्यानन्द—अनन्त ईश्वर॥५९॥
प्रसगें शुनह नित्यानन्देर आख्यान।
सूत्ररूपे जन्म–कर्म किछु कहि तान॥६०॥
राढ़देशे एकचाका–नामे आछे ग्राम।
याँहे जन्मिलेन नित्यानन्द भगवान्॥६१॥
'मौड़श्वर'—नामे देव आछे कत दूरे।
यारे पूजियाछे नित्यानन्द हलधरे॥६२॥
सेइ ग्रामे वैसे विप्र हाड़ाइ पण्डित।
महा–विरक्तेर प्राय दयालु–चरित॥६३॥
ताँर पत्नी पद्मावली नाम पतिव्रता।
परमा वैष्णवीशक्ति—सेइ जगन्माता॥६४॥
परम–उदार दुइ ब्राह्मण ब्राह्मणी।
ताँर घरे नित्यानन्द जन्मिला आपनि॥६५॥
सकल पुत्रेर ज्येष्ठ—नित्यानन्द राय।
सर्व–सुलक्षण देखि' नयन जुड़ाय॥६६॥
तान बाल्यलीला आदिखण्डेते विस्तर।

एथाय कहिले हय ग्रन्थ बहुतर॥६७॥
एइमत कतदिन नित्यानन्द राय।
हाड़ाइ पण्डितेर घरे आछेन लीलाय॥६८॥
गृह छाड़िवारे प्रभु करिलेन मन।
ना छाड़े जननी तात दुःखेर कारण॥६९॥
तिलमात्र नित्यानन्दे ना देखिते माता।
युगप्राय हेन वासे, 'ततोऽधिक पिता॥७०॥
तिलमात्र नित्यानन्द–पुत्रेरे छाड़िया।
कोथाओ हाड़ाइ ओझा ना याय चलिया॥७१॥
किवा कृषिकर्मे, किवा यजमान–घरे।
किवा हाटे, किवा वाटे यत कर्म करे॥७२॥
पाछे यदि नित्यान्दचन्द्र चलि' याय।
तिलार्द्धे शतेकवार उलटिया चाय॥७३॥
धरिया धरिया पुन आलिंगन करे।
ननीर पुतली येन मिलाया शरीरे॥७४॥
एइमत पुत्रसंगे बुले सर्व ठाञि।
प्राण हैला नित्यानन्द, शरीर हाड़ाइ॥७५॥
अन्तर्यामी नित्यानन्द इहा सब जाने।
पितृसुख–धर्म पालि' आछे पिता–सने॥७६॥

(५९–७६) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर निरन्तर नित्यानन्द का स्मरण करते रहते थे। विश्वम्भर के मन के इस दुःख को अन्तर्यामी नित्यानन्द भी जान गये। अब प्रसंगवेश नित्यानन्द प्रभु की कथा भी सुनो। मैं सूत्र–रूप में उनके जन्म–कर्म का कुछ वर्णन कर रहा हूँ। राढ़देश में 'एकाचाका' नामक ग्राम है, जहाँ भगवान् श्रीनित्यानन्द का प्राकट्य हुआ था। वहाँ से थोड़ी दूर पर 'मौड़ेश्वर' नाम के महादेव हैं, जिनकी पूजा हलधर नित्यानन्द प्रभु ने की थी।

उस ग्राम में हाड़ाइ पण्डित नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। वे बड़े विरक्त और दयालु स्वाभाव के थे। उनकी पत्नी पद्मावती बड़ी पतिव्रता, परम वैष्णवी–शक्ति–युक्त और जगन्माता थीं। ब्राह्मण–ब्राह्मणी दोनों बड़े उदार थे। उनके ही घर में स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रकट हुये थे। उनके सब पुत्रों में श्रीनित्यान्द राय ज्येष्ठ (सबसे बड़े) थे। वे ऐसे सर्व–सुलक्षण युक्त थे कि उनक दर्शन करके सबके आदि नयन शीतल हो जाते थे। उनकी बाललीला का वर्णन आदिखण्ड में विस्तारपूर्वक किया है। अतः ग्रन्थ विस्तार–भय से उनका वर्णन पुनः नहीं किया जा रहा है। इस प्रकार कुछ दिन नित्यानन्द राय हाड़ाइ पण्डित के घर में लीला करते रहे। फिर प्रभु ने घर छोड़ने का विचार किया, परन्तु माता–पिता दुःखी होंगे, यह सोचकर वे तुरन्त घर नहीं छोड़ सके। एक पल भी भी नित्यानन्द को न देखने पर उनकी माताा को एक युग के समान अनुभव होता था और पिता को तो उससे भी अधिक प्रतीत होता था। पिता हाड़ाइ ओझा तो पल भर के लिए भी नित्यानन्द को छोड़कर कभी कहीं नहीं जाते थे, चाहे खेत पर जाना हो या फिर यजमान के घर अथवा हाट–बाजार में जाना हो या रास्ते में, कोई भी कार्य क्यों न हो, नित्यानन्दचन्द्र यदि उनको पीछे–पीछे आते नहीं दीखते थे तो वे आधे क्षण में सौ–सौ बार मुडकर पीछे देखते थे और उन्हें पकड़–पकड़ कर बारम्बार उनका आलिंगन करते थे—मानों नित्यानन्दचन्द्र मक्खन की पुतली हों, जिसे वे अपने शरीर में ही मिला लेते हों। इस प्रकार पुत्र को लेकर ही सर्वत्र आते–जाते थे। तात्पर्य यह है कि नित्यानन्द, हाड़ाइ पण्डित के शरीर के प्राण ही बन गये थे। अन्तर्यामी नित्यानन्द यह सब जानते थे। अतः पिता हो सुख पहुँचाना, जो पुत्र का धर्म है, उसे पालन करते हुये वे सदा पिता के साथ ही रहते थे।

(५९) गौः भाः—विश्वम्भर नित्यानन्द के अभाव में सर्वक्षण उनकी चिन्ता करते-करते उनके स्वरूप को जान गये थे। महाप्रभु श्रीनित्यानन्द प्रभु को अनन्त-वासुदेव ईश्वर-तत्त्व के रूप में जानतेथे।

(६२) गौः भाः—भगवान् नित्यानन्द ने गंगा के पश्चिमांश राढ़देश में एकचक्रा-नामक ग्राम में जन्मग्रहण किया था। उसी के थोड़ी दूर पर मौड़ेश्वर (अन्यमत से मयूरेश्वर) नामक एक शिवलिंग विराजमान है। प्रभु नित्यानन्द ने किसी समय वहाँ शिवजी की पूजा की थी।

(६३-६६) गौः भाः—उस एक चक्रा-ग्राम में हाड़ाइ पण्डित नाम के एक उदारचरित्र, विषय-विरक्त ब्राह्मण रहते थे। उनकी पतिव्रता पत्नी जगन्माता पद्मावती देवी थीं। वे विष्ण ु की प्रबला शक्ति को धारण करने वाली जगन्माता थीं। उनके सभी पुत्रों में प्रभु नित्यानन्द सबसे बड़े थे।

(६९-७३) गौः भाः—प्रभु नित्यानन्द साधारण कर्मफलाभिलाषी मायाबद्ध-जीवों की भाँति माता-पिता के स्नेह में आबद्ध न रहकर जीवों के मंगल के के लिए घर छोड़ने की इच्छा करते थे, पर पमवत्सल माता-पिता उनको एक मूहूर्त के लिए भी नहीं छोड़ते थे। इसलिए नित्यानन्द प्रभु दुःखी रहते थे। माता-पिता थोड़े समय के लिए भी उनको आँखों से दूर न रखने की अभिलाषा से सर्वदा की उनको अपने पास रखते थे। वे घर के कामों में, खेती के काम में और यजमान के कार्यों में, भ्रमण के समय, द्रव्यादि-संग्रह के समय सर्वदा ही, 'कहीं पुत्र घर को छोड़ न दे'—इस आशंका से अपने पीछे-पीछे चलने वाले पुत्र के ऊपर बारम्बार दृष्टिपात करते रहते थे।

(७४-७५) गौः भाः—पिता सर्वत्र पुत्र को साथ लेकर ही आते-जाते थे और पुत्र-वात्सल्य को कारण सर्वक्षण उन्हें अपनी गोद में ही रखते थे। जैसे शरीर और प्राण एकत्र समाविष्ट रहकर एकत्व का परिचय देते हैं; वैसे ही नित्यानन्द प्रभु के पिता हाड़ाइ पण्डित शरीर के समान और पुत्र शरीर के साथ सम्बद्ध प्राणों की भाँति सदा के सदा एक साथ अवस्थित रहते थे।

(७६) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु साक्षात् परमात्मा विष्णु थे, इसलिए यह सब उनकी सम्यक् उपलब्धि का विषय था। पिता के साथ पितृसुख को बढ़ाने के लिए वे उसी प्रकार के भाव से पिता की सेवा में नियुक्त थे।

संन्यासी की अद्भुत भिक्षा—

दैवे एकदिन एक संन्यासी सुन्दर।
आइलेन नित्यानन्द-जनकेर घर॥७७॥
नित्यानन्द-पिता ताने भिक्षा कराइया।
राखिलेन परम-आनन्दयुक्त हञा॥७८॥
सर्वरात्रि नित्यानन्द-पिता ताँ संगे।
आछिलेन कृष्णकथा-कथन-प्रसंगे॥७९॥
गन्तुकाम संन्यासी हइला ऊषाकाले।
नित्यानन्द-पिता-प्रति न्यासिवार बले॥८०॥
न्यासी बले, ''एक भिक्षा आछये आमार''।
नित्यानन्द-पिता बले, ''ये इच्छा तोमार''॥८१॥
न्यासी बले, ''करिवाङ तीर्थ पर्यटन।
संहति आमार भाल नाहिक ब्राह्मण॥८२॥
एइ ये सकल-ज्येष्ठ नन्दन तोमार।
कत दिन लागि' देह' संहति आमार॥८३॥
प्राण-अतिरिक्त आमि देखिव उहाने।
सर्व-तीर्थ देखिवेन विविध-विधाने''॥८४॥
शुनिया न्यासीर वाक्य शुद्ध-विप्रवर।
मने मने चिन्ते बड़ हइया कातर॥८५॥

''प्राणभिक्षा करिलेन आमार संन्यासी।
ना दिलेओ 'सर्वनाश हय' हेन वासि॥८६॥
भिक्षुकेरे पूर्वे महापुरूष-सकल।
प्राणदान दियाछेन करिया मंगल॥८७॥
रामचन्द्र पुत्र—दशरथेर जीवन।
पूर्वे विश्वामित्र ताने करिला याचन॥८८॥
यद्यपिह राम-बिने राजा नाहि जीये।
तथापि दिलेन—एइ पुराणेते कहे॥८९॥
सेइ त' वृतान्त आजि हइल आमारे।
ए-धर्मसंकटे कृष्ण! रक्षा कर 'मोरे॥''९०॥
दैवे से-इ वस्तु, केने नहिब से मति?
अन्यथा लक्ष्मण केने गृहते उत्पत्ति?९१॥
भाविया चलिला विप्र ब्राह्मणीर स्थाने।
आनुपूर्वे कहिलेन सब विवरणे॥९२॥
शुनिया बलिला पतिव्रता जगन्माता।
''ये तोमार इच्छा प्रभु! सेइ मोर कथा॥''९३॥

(७७-९३) प. अनु०—दैवयोग से एकदिन उक सुन्दर संन्यासी श्रीनित्यानन्द के पिता के घर आये। श्रीनित्यानन्द के पिता ने उनकी भिक्षा (भोजन) कराकर अपने यहाँ बड़े आनन्द से ठहराया और सारी रात श्रीकृष्ण ाकथा कहते-सुनते हुये वे उनके ही पास बड़े आनन्द से रहे। प्रातःकाल संन्यासी जाने के लिए तैयार हुये तो नित्यानन्द के पिता से बोले,-"मेरी एक भिक्षा है।" नित्यानन्द के पिता ने कहा,—"जैसी आपकी इच्छा।" संन्यासी ने कहा,—"मेरे मन में तीर्थ भ्रमण का विचार है, परन्तु मेरे साथ में कोई अच्छा-सा ब्राह्मण नहीं है। यह तो आपका सबसे बड़ा पुत्र है, उसे कुछ दिन के लिए मेरे साथ जाने के लिए दे दें। मैं अपने प्राणों से भी अधिक इसकी देखभाल करूँगा और नाना प्रकार के सब तीर्थो के दर्शन भी इसको हो जाएँगे। संन्यासी के वचनों को सुनकर शुद्ध हृदयवाले विप्रवर बड़े दुःखी हुये और मन-ही-मन सोचने लगे कि,—"सन्यासी ने पुत्र की नहीं, मेरे प्राणों की ही भिक्षा माँगी। अब यदि नहीं देता हूँ तो कहीं हमारा सर्वनाश न हो जाए। पूर्वकाल में सब महापुरूष भिक्षुकों को आनन्दपूर्वक अपने प्राणों तक का दान करते रहे हैं। विश्वामित्र ने दशरथ से उनके जीवन-स्वरूप पुत्र श्रीरामचन्द्र को माँगा था। यद्यपि श्रीराम के बिना राजा दशरथ जीवित नहीं रह सकते थे, तथापि उन्होंने पुत्र को दे दिया—ऐसा ही तो पुराण कहते हैं। वैसा ही प्रसंग आज मेरे सामने भी आ गया है। हे कृष्ण! इस धर्म-संकट से मेरी रक्षा करो।" दैवयोग से हाड़ाइ पण्डित राजा दशरथ ही तो हें, फिर इनकी भी बुद्धि वैसी ही क्यों न होगी? यदि ये दशरथ न होते तो इनके घर लक्ष्मण (नित्यानन्द) क्यों जम्म लेते? मन-ही-मन ऐसा सोच-विचार करते हुए हाड़ाइ पण्डित अपनी ब्राह्मणी के पास गये और क्रमानुसार सब बातें कह सुनायीं। सुनकर पतिव्रता जगन्माता बोलीं,—"आपकी जो इच्छा है प्रभु, वही मेरी भी समझें।"

(७८) गौः भाः—हाड़ाइ पण्डित ने परमानन्दित होकर अभ्यागत (अतिथिरूप में आये हुये) एक सुन्दर संन्यासी को अपने घर में भिक्षा कराई। संन्यासियों का स्वतन्त्रभाव से पंचसूना-यज्ञ में अधिकार न होने के कारण वे ब्राह्मणों के घर में भोजनादि करके निर्वाह करते हैं। तुर्याश्रम (चतुर्थाश्रम) में स्थित संन्यासियों की भोजनादि के विषय में निष्कपट सेवा ही गृहस्थ का प्रधान कर्तव्य हैं।

(७९) गौः भाः—हाड़ाइ पण्डित ने संन्यासी को भोजनादि कराकर उनके साथ कृष्णकथा-प्रसंग में रात्रि का सारा समय अतिवाहित (व्यतीत) किया।

(८०) गौः भाः—संन्यासीगण गृहस्थ के घर में अधिक समय बिताकर उनके स्नेह में आबद्ध नहीं होते हैं, इसीलिए दूसरे दिन प्रभात में जब संन्यासी, पण्डित का घर परित्याग करके अन्यत्र जाने के लिए तैयारी कर रहे थे, तब वे हाड़ाइ पण्डित से कुछ कहने के लिए उद्यत हुये।

(८१–८४) गौः भाः—वैष्णव-संन्यासी ने कहा,—मेरी एक प्रार्थना है। उसके उत्तर में हाड़ाइ पण्डित ने उनको प्रार्थना बताने की अनुमति दी। संन्यासी ने कहा,—मैं अभी तीर्थ-पर्यटन में व्यस्त हूँ। अग्नि प्रज्वलित करके रन्धनादि कार्य-करना संन्यासी का धर्म नहीं है। कहीं भी ब्राह्मण का अभाव होने पर भोजन के समय भोज्य की प्राप्ति के लिए मुझे सहयोगी के रूप में एक ब्राह्मण सहचर की आवश्यकता है। कुछ दिनों के लिए अपने ज्येष्ठपुत्र को मेरे साथ भेज देने पर मैं उसको अपने प्राणों से भी अधिक स्नेह करूँगा; साथ ही तुम्हारे पुत्र को भी नाना-तीर्थों में पर्यटन से विशेष शिक्षा प्राप्त होगी।

(८२) गौः भाः—संहति,—सहित, संग में।

(८६) गौः भाः—वैष्णव-संन्यासी की हृदय-विदारक बात को सुनकर ब्राह्मण अत्यन्त कातर हो गये और मन-ही-मन विचार करने लगे कि,—'मैं तो शरीर मात्र हूँ, मेरा ज्येष्ठपुत्र मेरा प्राण है, इसलिए संन्यासी इस प्राण का अपहरण करके मेरे शरीर मात्र को यहाँ फेंककर चले जायेंगे। यदि मैं उनकी प्रार्थना को पूरी नहीं करता हूँ, तब भी विषय विपदा है'।

(८८–८९) गौः भाः—विश्वामित्र कि आवेदन पर राजा दशरथ ने प्राणसम पुत्र को उनके हाथों में समर्पित कर दिया था,—यह कथा प्राचीन इतिहास में देखी जाती है। यद्यपि राम के विरह में दशरथ के प्राणों की रक्षा होनी कठिन थी, फिर भी दशरथ ने प्राणसम पुत्र को प्रदान किया था।

(९०–९१) गौः भाः—हे कृष्ण! मेरे इस विषम विपद में दशरथ की जैसी अवस्था हुई थी, उसी अवस्था में मुझे अवस्थित देखकर मेरे दोदुल्यमान (चंचल) चिन्ता-स्रोत से मेरी रक्षा करो। दैवयोग से मैं वही दशरथ हूँ और मेरा पुत्र वही राम है; अन्यथा मेरे पुत्र का ऐसा विचार क्यों होता? यदि ऐसा न होता तो मेरे पुत्र में ऐसे विरागभाव के लक्षण क्यों दिखाई देते?

संन्यासी को पुत्र दान से ओझा की अवस्था—

आइला संन्यासीस्थाने नित्यानन्द-पिता।
न्यासीरे दिलेन पुत्र, नोयाइया माथा॥९४॥
नित्यानन्द संगे चलिलेन न्यासिवर।
हेन मते नित्यानन्द छाड़िलेन घर॥९५॥

(९४–९५) प. अनु०—तब श्रीनित्यानन्द के पिता संन्यासी के समीप आये और मस्तक नीचा का अपने पुत्र को उन्हें दे दिया। इसके बाद संन्यासी प्रवर नित्यानन्द को साथ लेकर चल दिये। इस प्रकार से श्रीनित्यानन्द ने गृह-त्याग किया।

अप्राकृत वात्सल्यरस जड़ासक्ति नहीं है—

नित्यानन्द गेले मात्र हाड़ाइ पण्डित।
भूमिते पड़िला विप्र हइया मूर्च्छित॥९६॥
से विलाप क्रन्दन करिब कोन् जने?
विदरे पाषाण काष्ठ ताहार श्रवणे॥९७॥
भक्तिरसे जड़प्राय हइल विह्वल।
लोके बले "हाड़ो ओझा हइल पागल"॥९८॥
तिन मास ना करिला अन्नेर ग्रहण।
चैतन्यप्रभावे सबे रहिल जीवन॥९९॥

प्रभु केने छाड़े या'र हेन अनुराग?
विष्णुवैष्णवेर एइ अचिन्तय-प्रभाव॥१००॥

(९६-१००) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द के चले जाते ही हाड़ाइ पण्डित मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। पुत्र के लिए ऐसा विलाप और क्रन्दन कौन कर सकता है, जिसे सुनकर काष्ठ और पाषाण भी विदीर्ण हो जाएं। वे भक्ति रस में विह्वल होकर जड़-सरीखे हो गये। लोग कहने लगे कि,—"हाड़ाइ ओझाा तो पागल हो गया है।" तीन महीनों से उन्होंने अन्न ग्रहण नहीं किया, केवल चैतन्य के प्रभाव से ही वे जीवित रहे। भला जिनका ऐसा अनुराग था, उनको प्रभु (नित्यानन्द) ने क्यों छोड़ दिया? विष्णु और वैष्णवों का यह प्रभाव अचिन्त्य है।

(९८-९९) गौः भाः—भक्तिमान् हाड़ाइ उपाध्याय पुत्र को प्रदान करके उन्मत्त-से हो गये। भगवद्-भक्ति रस मे विह्वल होकर वे लोगों की दृष्टि में जड़-सदृश परिलक्षित होने लगे। साधारण मनुष्य अन्नपानादि ग्रहण करते हैं, परन्तु हाड़ाइ पण्डित ने बिना अन्नादि के ही तीन महीने व्यतीत कर दिये। तब भी साधारण व्यक्ति के समान उनके शरीर का पतन नहीं हुआ। यह सत्य है कि उनका जीवन रहा,—परन्तु फिर भी निर्जीवता ही अवशिष्ट थी।

(१००) गौः भाः—यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि,—भगवान् नित्यानन्द ने भक्तवत्सल होकर पिता के इस प्रकार के अभिनिवेश (अनुराग) का परित्याग क्यों कर दिया? इसके उत्तर में यह कहा का सकता है कि, विष्ण ु-वैष्णवों की शक्ति (महिमा) अतुलनीय है। उनकी अपरमित शक्ति मनुष्य के परिमित ज्ञान से नहीं समझी जा सकती।

जीवों के उद्धार के लिए माता-पिता का त्याग असंगत नहीं है—

स्वामिहीना देवहूति-जननी छाड़िया।
चलिला कपिल-प्रभु निरपेक्ष हइया॥१०१॥
व्यास-हेन वैष्णव जनक छाड़ि' शुक।
चलिला, उलटि नाहि चाहिलेन मुख॥१०२॥
शची-हेन जननी छाड़िया एकाकिनी।
चलिलेन निरपेक्ष हइ' न्यासिमणि॥१०३॥

(१०१-१०३) प. अनु०—पतिहीना देवहूति-माता को छोड़कर भगवान् श्रीकपिलदेव भी निरपेक्ष होकर चले गये थे और श्रीशुकदेव भी श्रीव्यास जैसे वैष्णव पिता हो छोड़कर चले गये थे, एकबार भी उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा था तथा श्रीशची जैसी माता को छोड़कर संन्यासीमणि (श्रीगौरचन्द्र) भी निरपेक्ष होकर चले गये थे।

परमार्थ में त्याग का तात्पर्य जानने वाले अत्यन्त विरल—

परमार्थे एइ त्याग—त्याग कभु नहे।
ए सकल कथा बुझे कोन् महाशये॥१०४॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार कारणे।
महाकाष्ठ द्रवे, येन इहार श्रवणे॥१०४॥
येन पिता—हाराइया श्रीरघुनन्दने।
निर्भरे शुनिले ताहा कान्दये यवने॥१०६॥

(१०४-१०६) प. अनु०—इस प्रकार त्यागना पारमार्थिक दृष्टि से त्यागना नहीं हैं—इस बात को समझने वाले व्यक्ति अति विरल हैं। ये सब लीलाएँ जीवों के उद्धार के निमित्त होती हैं, इनके सुनने से कठोर काठ भी पिघल जाता है। जैसे रघुनन्दन अपने पिता को त्यागकर चले गये थे, उस प्रसंग को यवन भी निःशंक होकर सुनते हैं और खूब रोते हैं।

(१०१-१०६) गौः भाः—जैसे कपिल देव

ने अपने पिता के स्वधाम चले जाने पर अपनी शोकार्त माता देवहूति का परित्याग करके निरपेक्षता को प्रदर्शित किया था, जैसे शुकदेव ने अपने पिता महात्मा व्यास का परित्याग करके निरपेक्षता दिखाई थी और जैसे शचीनन्दन ने असहाय जननी का एकाकी अवस्था ग्रहण किया था, उसी प्रकार जीवों के उद्धार के लिए मूलसंकर्षण से अभिन्न श्रीबलदेव के स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु ने निजानुभव चिन्मय आनन्द से तीर्थों का दर्शन करते हुये भ्रमण का अभिनय किया था। साधारण लोग परमार्थ के उद्देश्य से इस त्याग के महत्व और इसकी प्रयोजनीयता को सहसा समझ नहीं सकते हैं। जीव की नित्यवृत्ति है—कृष्णानुसन्धान। उसकी तुलना में जो त्यागादि कठोर भाव समूह हें उसमें वे लोग गुरुत्व उत्पादन करने में असमर्थ हैं। जो परमार्थ-पथ पर अग्रसर हैं, वे ही समझ सकते हैं कि, श्रीनित्यानन्द प्रभु का ऐसे वत्सल माता-पिता को किसी दूसरे विशेष कारण से त्यागकर चले जाना पूर्णरूप से संगत और प्रयोजनीय है। रामचन्द्र जी के वनवास से पुत्र-विरह के कारण पिता (दशरथ जी) का विलास, यवनों तक के हृदय को भी सुनकर संसार प्रमत्त व्यक्तियों का अति कठिन हृदय भी अलौलिक रस से सिक्त हो जाता है।

(१०६) गौः भाः—निर्भरे,—परिपूर्णभाव से, अतिशयरूप से।

निर्भरे,.....यवने,—यवन भी उसे सुनकर निर्भरे, अर्थात् अतिशयरूप से क्रन्दन करते हैं।

नित्यानन्द प्रभु का गृहत्याग और तीर्थ-भ्रमण—

हेन मते गृह छाड़ि' नित्यानन्द-राय।
स्वानुभावानन्दे तीर्थ भ्रमिया बेड़ाय॥१०७॥
गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, द्वारामती।
नर-नारायणाश्रम गेला महामति॥१०८॥
बौद्धालय गिया गेला व्यासेर आलय।
रंगनाथ, सेतुबन्ध, गेलेन मलय॥१०९॥
तबे अनन्तेर पुर गेला महाशय।
भ्रमण निर्जन-वने परम-निर्भय॥११०॥
गोमती, गण्डकी गेला सरयु, कावेरी।
अयोध्या, दण्डकारण्ये बुलेन विहरि'॥१११॥
त्रिमल्ल, व्येंकटनाथ, सप्तगोदावरी।
महेशेर स्थान गेला कन्यका-नगरी॥११२॥
रेवा, महिष्मती, मल्लतीर्थ, हरिद्वार।
यँहि पूर्वे अवतार हइल गंगार॥११३॥
एइ मत यत तीर्थ नित्यानन्द-राय।
सकल देखिया पुनः आइला मथुराय॥११४॥
चिनिते ना पारे केह अनन्तेर धाम।
हुँकार करये देखि' पूर्व-जन्मस्थान॥११५॥
निरवधि बाल्यभाव, आन नाहि स्फुरे।
धूलाखेला खेले वृन्दावनेर भितरे॥११६॥
आहारेर चेष्टा नाहि करेन कोथाय।
बाल्यभावे वृन्दावने गड़ागड़ि याय॥११७॥
केह नाहि बुझे ता'न चरित्र उदार।
कृष्णरस बिने आर न करे आहार॥११८॥
कदाचित् कोन दिन करे दुग्ध-पान।
सेह यदि अयाचित केह करे दान॥११९॥
एइमते वृन्दावने वैसे नित्यानन्द।
नवद्वीपे प्रकाश हइला गौरचन्द्र॥१२०॥
निरन्तर संकीर्तन—परम-आनन्द।
दुःख पाय प्रभु ना देखिया नित्यानन्द॥१२१॥
नित्यानन्द जानिलेन प्रभुर प्रकाश।
ये अवधि लागि, करे वृन्दावने वास॥१२२॥

(१०७-१२२) प. अनु०—इस प्रकार श्री-नित्यानन्दराय घर को छोड़कर स्वानुभावानन्द से तीर्थों का भ्रमण करने लगे। महामति प्रभु

नित्यानन्द गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, द्वारिका तथा नर-नारायण के बदरिकाश्रम को गये। फिर बौद्धाश्रम से होते हुये वे महर्षि व्यास के आश्रम, रंगनाथ, सेतुबन्ध और मलय पर्वत को गये। वहाँ से श्रीनित्यानन्द महाशय अनन्तपुर को गये। निर्जन वन में उन्होंने बड़े निर्भय होकर भ्रमण किया। फिर गोमती, गण्डकी, सरयु, कावेरी, अयोध्या और दण्डकारण्य तक आनन्दपूर्वक विहार किया। वहाँ से त्रिमल्ल, वेंकटनाथ, सप्तगोदावरी, महेश के स्थान और कन्याकुमारी को गये। फिर रेवा, माहिष्मती, मल्लतीर्थ और हरिद्वार गये; जहाँ पूर्व काल में गंगा का अवतार हुआ था। इस प्रकार श्रीनित्यानन्दराय ने जितने भी तीर्थ हैं, उन सबके दर्शन किये और फिर वे दूसरी बार मथुरा में आ गये। इसी बीच किसी ने भी श्रीनित्यानन्द को नहीं पहचाना। प्रभु अपने पूर्व-स्थान को देखकर हुँकार करने लगे। वहाँ वे निरन्तर बाल्यभाव में ही आविष्ट रहे,—इसके अतिरिक्त उनको कुछ भी स्फूर्त न होता। वे वृन्दावन की रज में लोट-पोट होते रहते। उनके उदार चरित्र को कोई भी नहीं समझ पाता, वे एक कृष्ण-रस के अतिरिक्त और कुछ भी भोजन नहीं करते। कभी किसी दिन दूध पी लेते, परन्तु वह भी यदि कोई बिना माँगे दे जाय तो। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु वृन्दावन में निवास कर रहे थे और नवद्वीप में श्रीगौरचन्द्र का प्रकाश हो रहा था। प्रभु गौरचन्द्र निरन्तर संकीर्तन के परम आनन्द में निमग्न रहते थे—फिर भी, श्रीनित्यानन्द को न देखकर वे बड़े दुःखी थे। श्रीनित्यानन्द, महाप्रभु के प्रकाश को जान गये थे, जिस प्रकाश की प्रतीक्षा में वे वृन्दावन में वास कर रहे थे।

(१०७) गौः भाः—स्वादुभावानन्दे,—निजानुभव रूप चिन्मय आनन्द में।

(१०८-११४) गौः भाः—आदि खण्ड ९म अध्याय में तीर्थपर्यटन प्रसंग द्रष्टव्य है।

(१०९) गौः भाः—बौद्धालय—कपिलवस्तु, बुद्धगया, सारनाथ और काशीनगर।

(११७-११९) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु के श्रीवृन्दावन की धूलि में लोट-पोट होने आदि की लीला समूह को कोई भी समझ न सका। शरीर की पुष्टि के लिए सभी को आहार्य (भोज्य-पदार्थों) का संग्रह करना पड़ता है। स्वरूप की वृत्ति उन्मेषित (जाग्रत) होने पर उस सबका परित्याग करके विष्णु-वैष्णव को कृष्णसेवा रस के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं होती है। नित्यानन्द प्रभु ने किसी-किसी दिन अयाचित भाव से (बिना माँग) उपलब्ध केवल दुग्धपान करके शरीर की रक्षा की थी।

(१२१) गौः भाः—महाप्रभु जब नवद्वीप में परमानन्द के साथ निरन्तर संकीर्तन प्रचार में व्यस्त थे, उसी समय वे नित्यानन्द प्रभु के न आने के कारण दुःखित हुये थे।

(१२२) गौः भाः—प्रभु श्रीनित्यानन्द ने महाप्रभु के महाप्रकाश की अपेक्षा से ही वृन्दावन में तब तक निवास किया था।

ये अवधि लागि,—जिस प्रकाशकाल की अपेक्षा के लिए।

नित्यानन्द प्रभु का नवद्वीप में आगमन और नन्दन आचार्य के घर में अवस्थान—

जानिया आइला झाट नवद्वीपपुरे।
आसिया रहिला नन्दन-आचार्येर घरे॥१२३॥
नन्दन-आचार्य महाभागवतोत्तम।
देखि महातेजोराशि येन सूर्यसम॥१२४॥
महा-अवधूत वेश प्रकाण्ड शरीर।
निरवधि गम्भीरता देखि महाधीर॥१२५॥

अहर्निश वदने बलये कृष्णनाम।
त्रिभुवने अद्वितीय चैतन्येर धाम॥१२६॥
निजानन्दे क्षणे क्षणे करये हुँकार।
महामत्त येन बलराम–अवतार॥१२७॥
कोटि चन्द्र जिनिया वदन मनोहर।
जगतजीवन हास्य सुन्दर अधर॥१२८॥
मुकुता जिनिया श्रीदशनेर ज्योतिः।
आयत अरुण दुइ लोचन सुभाति॥१२९॥
आजानुलम्बित भुज सुपीवर वक्ष।
चलिते कोमल बड़ पदयुग दक्ष॥१३०॥
परम कृपाय करे सबारे सम्भाष।
शुनिले श्रीमुखवाक्य कर्मबन्ध नाश॥१३१॥
आइला नदीयापुरे नित्यानन्द–राय।
सकल भुवने जय–जय ध्वनि गाय॥१३२॥
से महिमा बले हेन के आछे प्रचण्ड।
ये प्रभु भांगिला गौरसुन्दरेर दण्ड॥१३३॥
वणिक् अधम मूर्ख ये करिला पार।
ब्रह्माण्ड पवित्र हय नाम लैले याँर॥१३४॥
पाइया नन्दनाचार्य हरषित हञा।
राखिलेन निजगृहे भिक्षा कराइया॥१३५॥
नवद्वीपे नित्यानन्दचन्द्र आगमन।
इहा येइ शुने, ता'रे मिले प्रेमधन॥१३६॥
नित्यानन्द–आगमन जानि' विश्वम्भर।
अनन्त हरिष प्रभु हइला अन्तर॥१३७॥
पूर्व–व्यपदेशे सर्व–वैष्णवेर स्थाने।
अनन्त हरिष प्रभु हइला अन्तर॥१३८॥
''आरे भाइ, दिन दुइ तिनेर भितरे।
कोन महापुरुष एक आसिवे एथारे''॥१३९॥
दैवे सेइ दिन विष्णु पूजि' गौरचन्द्र।
सत्वरे मिलिला यथा वैष्णवेर वृन्द॥१४०॥

(१२३–१४०) प. अनु०—गौरसुन्दर का प्रकाश हो गया है—यह जानकर नित्यानन्द प्रभु तुरन्त ही नवद्वीपपुर में आ पहुँचे और नन्दनाचार्य के घर में आकर ठहरे। महा–भागवतोत्तम नन्दनाचार्य प्रभु के सूर्य के समान महातेजपुंज–स्वरूप में दर्शन किये। उनका महा–अवधूत का वेश, प्रकाण्ड (अति विशाल) शरीर, निरन्तर गम्भीरता तथा बड़े धीर हैं—ऐसा देखा। दिन–रात श्रीमुख से बस, श्रीकृष्णनाम का ही उच्चारण करते रहते हैं, त्रिभुवन में श्रीचैतन्य चन्द्र के वे अद्वितीय धाम (प्रकाश) हैं। अपने निजानन्द में मत्त होकर वे क्षण–क्षण में हुँकार करते हैं। ऐसे महामत्त हैं वे, जैसे स्वयं श्रीबलराम ही हों। उनका मनोहर श्रीमुखमण्डल कोटि–कोटि चन्द्रमाओं को भी जीतने वाला है। सुन्दर अधर हैं और उन अधरों पर जगत को जीवन–प्रदान करने वाली मधुर मुस्कान है। मोतियो की छवि को भी जीतने वाली उनकी श्री दन्त–पंक्तियों की ज्योति है तथा उनके विशाल अरुण और सुन्दर दो नयन हैं। जानु–पर्यन्त लम्बी उनकी भुजाएँ हैं और विशाल वक्षस्थल है। चलने में चतुर उनके कोमल चरण–युगल हैं। वे परम कृपापूर्वक सबके साथ वार्तालाप करते हैं। उनके श्रीमुख के वचनों का श्रवण करने से कर्मबन्धन नष्ट हो जाते हैं।

जब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने नदिया नगर में प्रवेश किया तो समस्त आकाश उनकी जय–जयकार–ध्वनि से गूँजने लगा। जिन प्रभु नक श्रीगौरसुन्दर साक्षात् दण्ड भी तोड़ डाला हो, उनकी महिमा का वर्णन कर सके—ऐसा कौन सामर्थ्यवान् है। जिन्होंने वणिक्, अधम और मूर्खों तक का उद्धार कर दिया, जिनका नाम लेने से ब्रह्माण्ड पवित्र होता है, ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु को पाकर नन्दनाचार्य बड़े ही प्रसन्न हुये और भिक्षा (भोजन) कराकर उन्हें अपने ही घर में ठहरा लिया। नवद्व ीप में श्रीनित्यानन्दचन्द्र के आगमन ही इस

कथा को जो सुनेगा, उसे अवश्य ही प्रेमधन प्राप्त होगा।

श्रीनित्यानन्द प्रभु का आगमन जानकर श्रीविश्वम्भर प्रभु मन-ही-मन अति प्रसन्न हुये। यद्यपि प्रभु पहले ही सब वैष्णवों के समक्ष नित्यानन्द प्रभु के आने की बात किसी बहाने से प्रकट कर चुके थे, परन्तु कोई भी उनके अभिप्राय को नहीं समझ सका था। प्रभु ने कहा था कि,—"अरे भाइयों! दो तीन दिन के भीतर ही कोई एक महापुरूष यहाँ आने वाले हैं।" दैव—योग से उस दिन श्रीविष्ण ु-पूजन करके श्रीगौरचन्द्र शीघ्र ही वैष्णवों से आ मिले थे।

(१२३) गौः भाः—झाट,—शीघ्र।

नन्दनाचार्य—चैः चः आदिखण्ड १०/३९ और चैः भः मध्य खण्ड १७ श अध्याय द्रष्टव्य है।

(१२४) गौः भाः—महाभागवतोत्तम, —सर्वश्रेष्ठ उत्तमाधिकारी ही भगवदभक्त है। "सर्वभूतेषु यः पश्येद्-भगवद्भावमात्मनः। भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥" अर्थात् जो दृश्य जगत की भोग्य वस्तुओं को न देखकर अन्तर भावमय भगवत्-सम्बन्ध से संश्लिष्ट (पूर्णरूप से युक्त) और देह-देही के भेद से रहित वैकुण्ठवस्तु का दर्शन करते हैं, जिनके दर्शन में जड़ प्रतीति के लिए भोक्ता भाव का उदय नहीं होता है तथा सर्वक्षण सेवा-निरत होकर जो ज्ञेय वस्तु (जानने योग्य वस्तु) भगवान् की सेवा करते रहे हैं, समस्त प्राणियों का जो इस दुष्टि से दर्शन करते हें कि प्राणिमात्र भगवत्सेवा की ओर उन्मुख हैं और उन्हीं में अवस्थित हैं, वे ही भागवतोत्तम कहलाते हैं। ऐसे मुक्त पुरुषों के अग्रणी होने के कारण महाभागवतोत्तम श्रीनित्यानन्द प्रभु भगवत् सेवकों की सर्वोत्कृष्ट मूल आकर-वस्तु हैं। वे परम दीप्ति-विशिष्ट और चिदालोक (चिन्मयलोक) के आधार हैं। उनसे ही निःसृत आलोक राशि सर्वत्र विकीरित होकर (चारों तरफ फैलकर) जीव-मात्र के स्वरूप का उदबोधन (जागरण) करती है। उनके आश्रितजन भी उसी तरह ज्योतिर्मय हो सकते हैं। जड़प्रतीति में चिदालोक का अभाव है, चिन्मय भाव की अनुभूति के बिना जीव के स्वरूप-बोध की मलिनता दूर नहीं होती है। उनसे निःसृत अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाला चिदालोक जब किसी प्रकार से किसी की भी चित्त-गुफा में प्रविष्ट हो जाता है, तब उसके अज्ञानतमो का नाश कर देता है।

(१२५) गौः भाः—जिन्होंने संन्यास विधि से सिद्धि प्राप्त की है और फिर संन्यास के प्रति जिनमें स्वाभाविक उदासीनता आ गई है, उनकी ही 'अवधूत'-संज्ञा है। अवधूतगण का बाह्म चिन्हों में अनादर देखकर अनेक व्यक्तियों को भ्रान्ति हो जाती है। विवित्सा (जानने की इच्छा) का प्रदर्शन करने वाली संन्यासी, सिद्धि प्राप्त करने से ही विद्वतसंन्यासी या अवधूम नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु ऐसे अवधूतों में सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके गाम्भीर्य और अतिशय धैर्य का नन्दनाचार्य ने दर्शन किया।

(१२६) गौः भाः—वे ही नित्यानन्द अनुक्षण कृष्ण नामोच्चारण में व्यस्त हैं। श्रीचैतन्यदेव श्रीनित्यानन्द के आधार से त्रिभुवन में व्याप्त (विस्तारित) हुये हैं। श्रीनित्यानन्द ही चैतन्यदेव के दूसरे अद्वितीय आलोकर हैं। बद्ध जीवों का जड़भोगरूप भोक्ता-अभिमान, जो 'तमः' शब्द से वाच्य है, उसे विदूरित करने के लिए वे प्रबल मार्त्तण्ड हैं। श्रीनित्यानन्द ही श्रीचैतन्यदेव के दश प्रकार के सेवक के लीलाभिनय में सिद्धहस्त हैं। उनकी तुलना अन्य किसी वस्तु

से नहीं हो सकती है। श्रीनित्यानन्द जीवनजगत् के सर्वदा साथ रहने वाले भगवत् प्रकाश के मेरुदण्ड स्वरूप हैं।

(१२७) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु बीच-बीच में आनन्द-प्रकाशक हुँकार ध्वनि द्वारा अपनस परिचय देने के लिए जगत में लीला करते हें। जो सर्वक्षण भगवान् चैतन्यदेव के प्रेम-प्रदायिनी लीला की सहायता करने के लिए सर्वतोभाव से उन्मत्त हैं। ब्रज में श्री बलदेव प्रभु जैसे श्रीकृष्ण के सेवा कार्य में सर्वतोभाव से नियुक्त हैं, वैसे ही गौड़देश में भी चैतन्य-विहार-भूमिका में श्रीनित्यानन्द का प्रेमान्मत्त भाव और आनन्दोच्छास सभी जीवों के हृदयों की मलिनता को नीराजित (परिमार्जित) करने के लिए कर्णकुहरों (कर्णछिद्रों) के सहयोग से चित्त पर अधिकार करते हैं। 'निजानन्द' कहने का प्रयोजन यह है कि किसी को भी ऐसा भ्रम न हो कि, हमारे प्रभु नित्यानन्द हमारी ही भाँतिलघु-जातिय मायाबद्ध जीव विशेष हैं। इस 'निज'-शब्द का अर्थ है—भगवद्बोधक। अचिद्विलास परायण विचारों में बद्धजीव का आनन्द-धारा और आनन्द के मध्य व्यवधान (बाधाएँ) वर्तमान रहता हैं। नित्यानन्द प्रभु स्वयं महाविष्णुतत्त्व के एकमात्र स्वत्त्वाधिकारी है; इसलिए उनमें प्रापंचिक देह-देही का विचार लाने से 'निजानन्द' शब्द की यथार्थ उपलब्धि कराने में व्याघात उत्पन्न होगा।

(१२८) गौः भाः—जगत्जीवन हास्य..... .. अधर,—जगत् में प्राणिमात्र को जीवनशक्ति प्रदान करने वाले श्रीनित्यानन्द प्रभु का हास्य उनके शोभनीय होठों पर विराजमान रहता है।

(१२९) गौः भाः—मुकुता.....सुभाति, —जिनकी दन्त-शोभा से निःसृत किरणों ने मुक्ताओं की शोभा को भी पराजित कर दिया है। उनके विस्तृत और अरुणकान्ति वाले नयनयुगल ने मुखमण्डल की शोभा का विस्तार किया है।

(१३०) गौः भाः—उनके दोनों हाथ जानु-पर्यन्त होने पर भी चलने में विशेष निपुण हैं।

(१३१) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु के श्रीमुख से निकले हुए वाक्य जिनके कर्णरन्ध्रों में प्रविष्ट होते हैं, उनकी फिर जड़जगत् में भोग्य-दर्शन की सम्भावना नहीं रहती है। जीव कर्त्तृत्वाभिमान से अपने आपकी मायिक वस्तु विशेष समझकर कर्म में प्रवृत्त होते हैं।

नित्यानन्द प्रभु के वाक्यों का श्रवण करने पर जीव की जड़भोग-पिपासा दूर होकर उसमें आत्मवृत्ति का उदय होता है। वे परम अनुकम्पापयी वाणी के द्वारा सबके सन्तोष का विधान करते हैं।

(१३३) गौः भाः—वे साक्षात् बलदेव प्रभु हैं, इसलिए उनकी महिमा की अन्य किसी वस्तु के साथ तुलना नहीं हो सकमी है। जिन्होंने गौरसुन्दर-कृत विधि के आनुगत्य की प्रदर्शन-लीला का अतिक्रम करके उनका वैधदण्ड भंग किया था, उनके बल के साथ दूसरे किसी की भी शक्ति की तुलना नहीं हो सकती है। गौरसुन्दर द्वारा निर्दिष्ट विधि का पालन करने को सभी बाध्य हैं। वे चतुर्दश भुवन के पतिरूप से स्वयं लोगों के आदर्श बनकर विधिपालन की मर्यादा दिखा रहे थे। उस समय नित्यानन्द प्रभु ने उस विधि से असहमत होकर विधिपालन की उस आदर्श लीला की परिवर्तित किया था। अन्त्यखण्ड २य पः द्रष्टव्य है।

(१३४) गौः भाः—नित्य-कृष्णदास प्रपंच के वर्णधर्म में अवस्थित रहकर तृतीय स्तर की विनिमय (लेन-देन) की वृत्ति में अवस्थान

करते हैं। इस प्रकार के सामाजिक जनों को वैश्य या वणिक कहा जाता है। उस प्रकार के वणिकजन अपनी आजीविका चलाने की चेष्टा में रुपयों का सूद–ग्रहण, गोपालन, कृषि–कार्य और व्यावहारिक वस्तुओं के क्रय–विक्रय आदि में समय व्यतीत करते हैं। कृष्ण की विस्मृति के फल से जीव की वणिक–वृत्ति में ही रुचि होती है और वैसी वासना के कारण वे वणिक के घर में जन्म ग्रहण करते हैं। अन्यान्य सामाजिक लोग वणिकजनों के मुखापेक्षी (आश्रित) होने के कारण उनको श्रेष्ठी (सेठ), आढ्य (धनवान्), महाजन आदि मर्यादा सूचक उपाधियों द्वारा विभूषित करते हैं। वे भी उन सब उपाधियों को प्राप्त करके अपने आपको सम्मानित समझते हैं। व्यवहारिक वस्तुओं की मर्यादा के भेद से वणिक की श्रेष्ठता और निकृष्टता निरूपित होती है। जो मादक द्रव्यों का व्यवसाय करते हैं, वे भी वणिक हैं किन्तु अन्याय व्यावसायिक वस्तुओं की तुलना में उन पदार्थों के गर्हित (निन्दित) माने जाने के कारण उक्त व्यवसायी वैश्य को निकृष्ट माना जाता हैं। स्वर्ण आदि के अभिनिवेश से मानव का हरिसेवा प्रवृत्ति रूप आत्मधर्म विशेषरूप से जड़ीभूत हो जाता है, इस कारण से स्वर्ण व्यवसायी नितान्त निन्दित होकर निकृष्ट वैश्य नाम से अभिहित होते हैं। ऐसे कुल में जन्मे हुये और प्राक्तन संस्कार विशिष्ट वंश में पैदा हुये व्यक्तियों को भी उनके जड़ अभिनिवेश से मुक्त करके श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उनको आचार्य की पदवी प्रदान की थी। बाह्य परिचय तो तात्कालिक मात्र है। उस परिचय से विच्छिन्न होने पर तथा जीव का स्वरूप जाग्रत होता है। वे मुक्त होकर हरिसेवा करने का व्रत धारण करते हैं।

जगत् के विचार से कुछ उच्च, कुछ मध्यम और कुछ अधम नाम से संज्ञित होते हैं। अभिज्ञजन के विचार से कोई पण्डित (विज्ञ) कोई अनभिज्ञ और कोई मूर्ख नाम से अभिहित होते हैं। यह सब बाह्य परिचय आगन्तुक (अनित्य), अस्थायी रूप से नित्य कृष्णदास की बुद्धि को आवृत करके जड़ के साथ उसे संश्लिष्ट कर देता है।

चेतन धर्म की विलुप्तता के कारण भगवत् सेवा से विमुख होकर सुप्त चेतन–आत्मा अपना नित्य–परिचय भूल जाती है। श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने उपदेशों–द्वारा जीवों को इस जड़ अभिनिवेश से मुक्त करके उनके नित्य कल्याण का विधान करते हैं। उस समय जीव, आध्यक्षिक दर्शन से मुक्त होकर पारमार्थिक राज्य में प्रवेश करता हैं। जो व्यक्ति जड़ीय विचार युक्त कार्यों में अपने को नियुक्त रखते हैं, उनकी दृष्टि में मुक्त पुरुषगण का बाह्य परिचय व्याघात उत्पादन करके उनको कर्मबन्धन में आबद्ध कर देता है। अपार कृपामय नित्यानन्द–प्रभु ने वणिक–वृत्ति–युक्त और वणिक वंशोद्भूत व्यक्तियों तथा मूर्ख और लोक–निन्दित व्यक्तियों का महान उपकार करने की चेष्टा करते हुये सभी को जागतिक विचार से अवसर दिया था। नित्यानन्द प्रभु का नाम सुनने पर जगत के सब लोगों की पाप–प्रवृति का प्रशमन होकर पवित्रता का उदय होता है। वणिक, अधम और मूर्ख व्यक्ति भी पवित्र होकर ब्रह्मज्ञ और भगवद्भक्त बन जाते हैं। तब उनकी पवित्रता के प्रति किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता है। अन्त्य ५म पः द्रष्टव्य है।

(१३६) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु के नवद्व ीप में शुभागमन प्रसंग को जो श्रवण करते हैं, वे उनकी कृष्णप्रेम–प्रदान–लीला में अभिज्ञ

होकर कृष्णप्रीति प्राप्त करते हैं।

(१३८) गौः भाः—गौरसुन्दर ने नित्यानन्द के आगमन से पहले ही सभी वैष्णवों को संकेत से किसी महापुरुष के आगमन की बात बताई थी; किन्तु वैष्णव-श्रोता श्रीगौरसुन्दर-द्वारा कथित वाक्य के मर्माभ्यन्तर में प्रवेश नहीं कर सके।

महाप्रभु को नित्यानन्द का स्वप्न में दर्शन—

सबाकार स्थाने प्रभु कहेने आपने।
''आजि आमि अपरूप देखिलुँ स्वपने॥१४१॥
तालध्वज एक रथ—संसारेर सार।
आसिया रहिल रथ—आमार दुयार॥१४२॥
ता'र माझे देखि एक प्रकाण्ड शरीर।
महा एक स्तम्भ स्कन्धे, गति नहे स्थिर॥१४३॥
वेत्र बान्धा एक कमण्डलु वाम हाते।
नीलवस्त्र परिधान, नीलवस्त्र माथे॥१४४॥
वाम-श्रुतिमूले एक कुण्डल विचित्र।
हलधरभाव हेन बुझि ये चरित्र॥१४५॥
'एइ बाड़ी निमाजि पण्डितेर हय हय?'
दश-बार विश-बार एइ कथा कय॥१४६॥
महा अवधूत-वेश परम प्रचण्ड।
आर कभु नाहि देखि एमन उद्दण्ड॥१४७॥
देखिया सम्भ्रम बड़ पाइलाम आमि।
जिज्ञासिल आमि, 'कोन् महाजन तुमि'?१४८॥
हासिया आमारे बले,—'एइ भाइ हय।
तोमाय आमाय कालि हैव परिचय'॥१४९॥
हरिष बाड़िल शुनि' ताहार बचन।
आपनारे वार्सो मुजि येन सेइ-सम॥''१५०॥
कहिते प्रभुर बाह्य सब गेल दूर।
हलधर भावे प्रभु गर्जये प्रचुर॥१५१॥
''मद आन' मद आन''' बलि' प्रभु डाके।
हुँकार शुनिते येन दुह कर्ण फाटे॥१५२॥
श्रीवास पण्डित बले,—''शुनह गोसाजि।
ये मदिरा चाह तुमि, से तोमार ठाजि॥१५३॥
तुमि या'रे विलाओ, सेइ से ताहा पाय।'' कम्पित
भक्तगण दूरे रहि' चा'य॥१५४॥
मने मने चिन्ते सब वैष्णवेर गण।
''अवश्य इहार किछु आछये कारण''॥१५५॥
आर्या तर्ज्जा पड़े प्रभु अरुण-नयन।
हासिया दोलाय अंग, येन संकर्षण॥१५६॥
क्षणेके हइला प्रभु स्वभाव-चरित्र।
स्वप्न-अर्थ सबारे बाखाने राममित्र॥१५७॥
''हेन बुझि, मोर चित्ते लय एक कथा।
कोन महापुरुषेक आसियाछे एथा॥१५८॥
पूर्वे आमि बलियार्छो तोमा' सबार स्थाने।
'कोन महाजन सने हैव दरशने'॥१५९॥

(१४१-१५९) प. अनु०—सबके सामने प्रभु कहने लगे कि,—"आज मैंने एक विलक्षण स्वप्न देखा है। एक रथ है, वह रथ क्या है, संसार का सार है। उस पर ताल की ध्वजा है। वह रथ मेरे घर के द्वार पर आकर ठहरा है। उस रथ में एक विशालकाय पुरुष हैं, जिनके कन्धे पर एक स्तम्भ (हलमूसल) है और जिनकी चाल स्थिर नहीं है। उनके बायें हाथ में वेत्र से बन्धा हुआ एक कमण्डलु है। वे नीले वस्त्र पहने हुये हैं और सिर पर भी उन्होंने नीला वस्त्र बाँध रखा है। उनके बाएँ कान में एक विचित्र कुण्डल है। चरित्र से वे हलधर जैसे प्रतीत होते हैं। 'यह घर निमाइ पण्डित का है न?' बस, इसी एक बात को वे दस-बीस बार कहते हैं। महा अवधूत का-सा उनका परम प्रचण्ड वेश है। ऐसा उद्दण्ड पुरुष तो मैंने कभी नहीं देखा। उन्हें देखकर मुझको बड़ा सम्भ्रम हुआ और मैंने पूछा कि 'आप कौन महापुरुष हैं? हँसकर वे मुझसे बोले—'यह मैं आपका भाई हूँ, मेरा

और आपका परिचय कल होगा।' उनके वचनों को सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैं भी अपने को वैसा ही समझने लगा।" ऐसा कहते-कहते प्रभु की बाह्य-दशा लुप्त हो गई और वे हलधर के भाव से आविष्ट होकर बहुत गरजना करने लगे। "मद लाओ! मद लाओ॥" कह-कहकर प्रभु पुकारने लगे—उस हुँकार को सुनकर ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों कान फट जाएँगे। तब श्रीवास पण्डित बोले,—"हे गुसाईं! सुनिये! जिस मदिरा को आप चाहते हैं, वह तो आप ही के पास है। आप उस मदिरा को जिसे देते हैं, वही उसे पाता है।" वैष्णवगण काँपते हुये दूर खड़े-खड़े देख रहे थे। वे लोग मन-ही-मन सोच रहे थे कि,—"इसमें अवश्य ही कुछ कारण है।" प्रभु अरुण नेत्रों से 'आर्या' और 'तर्जा' पढ़ते हुये बलराम ही भाँति हँसकर अपने अंगों को हिलाने लगे। कुछ समय पश्चात् प्रभु अपनी स्वाभाविक दशा में आ गये और वे बलराम-मित्र महाप्रभु सबके सामने स्वप्न का अर्थ समझाने लगे,—"मेरे चित्त में तो यह बात ऐसे आती है कि यहाँ कोई एक महापुरुष आया हुआ है। पहले भी मैं तुम लोगों से कह चुका हूँ कि, 'किसी महापुरुष के दर्शन होने वाले है।'

(१४२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने स्वप्न-दर्शन की कथा कहने के बहाने से बताया कि, मैंने देखा है कि श्रीबलदेव प्रभु का तालध्वज रथ मेरे द्वार पर आया हुआ है। यह तालध्वज-रथ संसार की असारता के पार जाकर सार-प्रदान करने का नियुक्त है। संसार में सब कुछ ही अनित्य है किन्तु बलदेव के तालध्वज-रथ के आकर्षणकारीगण संसार की सार वस्तुओं के ही आकर्षण में समर्थ हैं। तालध्वज-रथ की उच्चता अन्य सब रथों की अपेक्षा उन्नत है, जैसे तालवृक्ष अन्यान्य वृक्षों की अपेक्षा उच्चतम शीर्ष-स्थान का प्रदर्शन करता है, वैसे ही जीव-जगत के मनोरथ-समूह तालवृक्ष के साथ तारतम्य के विचार से नितान्त छोटे आकार वाले लगते हैं। श्रीबलदेव प्रभु के रथ के शीर्ष पर जो तालवृक्ष था, वह फलों के साथ सुशोभित था।

(१४३) गौः भाः—उसी तालध्वज-रथ के भीतर एक विशालकाय महापुरुष हैं, उनके कन्धे पर स्तम्भ, अर्थात् हल-मूसल हैं। वे स्थैर्यभाव (स्थिरता के भाव) को अपसारित (परित्यक्त) करके चांचल्य में प्रमत्त हैं।

(१४४) गौः भाः—बलदेव की भाँति ही उनके उत्तम एवं निम्न, दोनों अंगों पर नीलावस्त्र विराजमान है। वेत्र से बना हुआ एक कमण्डलु उन्होंने बायें हाथ में धारण किया हुआ है।

(१४५) गौः भाः—बायें कान में एक विचित्र शोभा-विशिष्ट स्वर्णालंकार है। उनका चरित्र देखने पर सहज ही ज्ञात होता है कि, वे बलदेव के भाव में निमग्न हैं।

(१४६) गौः भाः—उसी स्वप्न में देखे गये महापुरुष वृन्दावन से हिन्दी-भाषा की शिक्षा लेकर मेरे घर के द्वार पर आकर दस-बीस स्थानीय लोगों से पूछ रहे हैं—"यह मकान निमाई पण्डित का ही है न?"

(१४९) गौः भाः—उन्होंने हँसकर मुझसे कहा,—"मैं तुम्हारा भाई हूँ। अगले दिन हम दोनों आपस में परिचय करेंगे।"

(१५०) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा,—'स्वप्न में देखे गये पुरुष के वाक्यों को सुनकर मेरे आनन्द की वृद्धि हुई और उनका दर्शन करके उनके अनुकरण में 'मैं जैसे वही हूँ—विचार आया।'

(१५२) गौः भाः—प्रभु इस प्रकार से

वर्णन करते-करते अचानक 'मद्य लाओ' ऐसा कहकर चीत्कार करने लगे, उससे सुनने वालों के कान विदीर्ण होने लगे।

(१५३-१५४) गौः भाः—प्रभु का बलदेव पण्डित में इस प्रकार से तर्जन-गर्जन सुनकर श्रीवास पण्डित ने कहा,—"आप पान करने के लिए जिस आसव (मदिरा) की प्रार्थना कर रहे हैं, वह कहीं भी नहीं मिलेगी। वह तो एकमात्र आपके पास ही है। आप जिसको उस प्रकार की मद्य प्रदान करते हैं, वही उसे प्राप्त करता है।

(१५६) गौः भाः—आर्या,—छन्द-विशेष।

जिन छन्दों में अक्षरों की संख्याविधि अतिक्रान्त होती है, परन्तु वे छन्द के-से आकार वाले होते हैं। गद्य से उनका पार्थक्य प्रदर्शित रहता है, उसे आर्या रूप कहा है।

तर्ज्जा,—छन्दोबद्ध पदसमूह। साथ-साथ रचित गीत चलित भाषा में 'तर्ज्जा' कहलाता है।

(१५७) गौः भाः—कुछ समय के बाद स्वास्थ्य प्राप्त करने पर बलराम के सखा श्रीगौरसुनदर स्वप्न का अर्थ सबके सामने वर्णन करने लगे। 'राम-मित्र' शब्द से रामसेवक 'हनुमान' उद्दिष्ट होने पर मुरारिगुप्त ने ही प्रभु के स्वप्न-वृतान्त की व्याख्या की है।

स्वभाव-चरित्र हइला,—स्वाभाविक, अर्थात् सहज अवस्था प्राप्त हुई।

नित्यानन्द का अनुसंधान—

चल हरिदास! चल श्रीवास पण्डित!
चाह गिया देखि के आइसे कोन् भित॥''१६०॥
दुइ महाभागवत प्रभुर आदेशे।
सर्व-नवद्वीप चाहि' बुलये हरिषे॥१६१॥
चाहिते चाहिते कथा कहे दुइ जन।
''ए बुझि आइला किवा प्रभु संकर्षण॥''१६२॥
आनन्दे विह्वल दुँहे चाहिया बेड़ाय।
तिलार्द्धेक उद्देश कोथाओ नाहि पाय॥१६३॥
सकल नदीया तिन-प्रहर चाहिया।
आइला प्रभुर स्थाने कार्हो ना देखिया॥१६४॥
निवेदिल आसि', दोंहे प्रभुर चरणे।
''उपाधिक कोथाओ नाहिल दरशन॥१६५॥
कि वैष्णव, कि संन्यासी, कि गृहस्थ स्थल।
पाषण्डीर घर आदि—देखिलुँ सकल॥१६६॥
चाहिलाम सर्व-नवद्वीप यार नाम।
सबे ना चाहिलुँ प्रभु! गिया अन्य ग्राम''॥१६७॥

(१६०-१६७) प. अनु०—हरिदास और श्रीवास पण्डित! जाओ, जाकर पता लगाओ कि कौन कहाँ आया है। प्रभु के आदेश से दोनों महाभागवत बड़े प्रसन्न होकर सारे नवद्व ीप में ढूँढ़ते हुये घूमने लगे। ढूँढते-ढूँढ़ते वे दोनों आपस में कहने लगे कि,—"ऐसा मालूम होता है कि संकर्षण प्रभु ही आये हैं" वे दोनों आनन्द में विह्व होकर सर्वत्र खोजते फिरे, परन्तु आधा तिल मात्र भी कहीं अता-पता नहीं लगा। तीन प्रहर तक समस्त नदीया में खोजने पर भी जब वे महापुरुष कहीं नहीं मिले तो दोनों लौटकर प्रभु के पास आए। आकर दोनों ने प्रभु के श्रीचरणों में निवेदन किया कि,—"हमे आपके बताये हुये लक्षणों वाले किसी भी महापुरुष के दर्शन नहीं हुये। क्या वैष्णव, क्या संन्यासी, क्या गृहस्थ और क्या पाखण्डी, सबके घर हमने देख डाले। प्रभो! समस्त नवद्वीप में हमने खोज लिया, केवल बाहर के गाँवों में हम नहीं गये।"

(१६१) गौः भाः—हरिदास ठाकुर और श्रीवास पण्डित, दोनों ही महाभागवत हैं। श्रीगौरसुन्दर की इच्छा के अनुसार वे नवद्व ीप में स्थित श्रीमायापुर आदि समस्त पल्ली

पर परमानन्द के साथ स्वप्नदृष्ट महापुरुष का अनुसन्धन (खोज) करने लगे।

(१६५-१६७) गौः भाः—उन दोनों ने वापस आकर प्रभु से कहा कि, उपाधियुक्त अर्थात् बाह्य-चिन्ह युक्त किसी नवीन व्यक्ति का अनुसंधान वे नहीं कर पाये। उन्होंने तीन प्रहर तक नवद्वीप में क्या वैष्णव, क्या संन्यासी और क्या गृहस्थ, सभी के स्थानों पर अनुसंधान किया, यहाँ तक कि वैष्णव-विद्वैषी पाखंडियों के घरो को देखना भी बाकी नहीं रखा। उन्होंने केवल नवद्वीप के बाहर के गाँवों में अनुसंधान नहीं किया।

नित्यानन्द का तत्व गूढ़—

दोंहार बचन शुनि' हासे गौरचन्द्र।
छले बुझाइल 'बड़ गूढ़ नित्यानन्द'॥१६८॥
एइ अवतारे केह गौरचन्द्र गाय।
नित्यानन्द-नाम शुनि' उठिया पलाय॥१६९॥
पूजये गोविन्द येन, न माने' शंकर।
एइ पापे अनेके याइब यम-घर॥१७०॥
बड़ गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।
चैतन्य देखाय यारे, से' देखिते पारे॥१७१॥
ना बुझि' ये निन्दे' ता'न चरित्र अगाध।
पाइयाओ विष्णुभक्ति हय ता'र बाध॥१७२॥
सर्वथा श्रीवास आदि ताँ'र तत्त्व जाने।
ना हइल देखा कोन कौतुक-कारणे॥१७३॥

(१६८-१७३) प. अनु०—उन दोनों के वचनों को सुनकर श्रीगौरसुन्दर हँसने लगे—मानों वे हँसने छल से यह समझा रहे हों कि, —'नित्यानन्द तत्त्व बड़ा गूढ़ है'। इस अवतार में कोई-कोई गौरचन्द्र का नाम तो लेते हैं, परन्तु नित्यानन्द का नाम सुनते ही उठ भागते हैं। जैसे कोई श्रीगोविन्द की पूजा तो करते हैं, परन्तु शंकर को नहीं मानते। इस पाप के फलस्वरूप यम के घर जाना पड़ता है। इस अवतार में नित्यानन्द बड़े गूढ़ हैं, श्रीचैतन्यचन्द्र जिसको कृपा कर दिखावें, वही उन्हें देख सकता है। उनके अगाध चरित्र की जो बिना समझे-बूझे निन्दा करते है, वे विष्णु-भक्ति पाकर के भी वंचित रह जाते हैं। केवल श्रीवास आदि मुख्य भक्तजन ही उनके तत्त्व को भली प्रकार जानते हैं, परन्तु उनको भी जो वे नहीं मिले, इसका कारण उनका कोई कौतुक ही समझना चाहिए।

(१६८) गौः भाः—श्रीगौरलीला में प्रच्छन्नभाव के कारण कृष्ण-बलदेव को सहसा कोई पहचान हीं सकता है। नित्यानन्द भी परम गोपनीय प्रच्छन्न बलदेव तत्त्व हैं। महाप्रभु ने हरिदास और श्रीवास को हँसते हुये नित्यानन्द का गुप्त रहस्य भाव के द्वारा समझा दिया।

(१६९-१७०) गौः भाः—जैसे भगवान की पूजा करके भी अनेक लोग भक्तपूजा से उदासीन रहकर भक्त के प्रति विद्वेष भाव का पोषण करते हैं और उसके फलस्वरूप उनकी यम के घर में दण्डित होने की योग्यता बन जाती है, उसी प्रकार भगवान् गौरसुन्दर के प्रति श्रद्धान्वित होकर भी जो लोग बलदेव प्रभु नित्यानन्द के प्रति श्रद्धा का अभाव प्रदर्शन करते हैं, उनको उस अपराध के कारण दुर्भाग्य के फलस्वरूप दण्डित होना पड़ता है।

श्रीरुद्रदेव वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं, वे आचार्य और विष्णुभक्ति के शिक्षक है, इसलिए उनके प्रति अवज्ञा करने पर जीव का कोई मंगल नहीं होता है। महादेव से जैसे विष्णुस्वामि सम्प्रदाय की शिष्य-परम्परा का क्रम उत्पन्न हुआ है, वैसे ही श्रीनित्यानन्द की कृपा से जगत् में शुद्धभक्तिधर्म का प्रचार हुआ है। "अर्च्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयन्ति ये। न ते विष्णुप्रसादस्य भाजनं दाम्भिका जनाः।"

अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दन और कार्ष्णसमूह (वैष्णवगण)—के मध्य शक्ति-शक्तिमान् के अभेद विचार से दोनों एक ही वस्तु हैं। जो एक दूसरे में, अर्थात् विष्णु और वैष्णव में विरोध में विरोध मानते है, उनके मंगल की कोई भी सम्भावना नहीं है।

(१७१) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के प्रिय सेवकगण ही उनकी कृपा से नित्यानन्द के स्वरूप से अवगत हो सकते हैं। मायाबद्ध-जीव-द्व ारा श्रीनित्यानन्द का चरणाश्रय पाना सम्भव नहीं है। श्रीचैतन्य के कृपारूप चैतयगुरु की अनुकम्पा से ही नित्यानन्द-तत्त्व की उपलब्धि होती है। साधारण चैतन्यविमुख अनभिज्ञ व्यक्ति चैतन्यभक्त के रूप में वृथा गर्व करने की चेष्टा में अत्यन्त निगूढ़ नित्यानन्द की लीला को समझने में असमर्थ होते हैं। जिनकी चेतनता जाग्रत नहीं हुई है, उनका नित्यानन्द की अप्रकाशित रहस्यमयी लीला में प्रवेश का अधिकार नहीं है। अनभिज्ञ मूढ़जन नित्यानन्द की लीलाओं को देखकर उनके प्रति वितृष्ण ा का भाव प्रदर्शित करते हैं। इसके कारण यम द्वारा दण्डित होकर अशेष क्लेश भोगना ही उनके परिणाम में लक्षित होता है।

(१७२) गौः भाः—उनके अगाध समुद्र-सदृश गाम्भीर्ययुक्त चरित्र में चांचल्य का दर्शन करके जो लोग उनके चरणों का आश्रय पाने से वंचित होते हैं और उनकी परमोच्च गौरकृष्ण-सेवा की बात न समझकर निन्दा करते हैं, वे नित्यस्वरूप से कृष्णदास होने पर भी कृष्णदास्य से विच्युत होकर सांसारिक प्रभुत्व में फँसकर अपने सर्वनाश का साधन करते हैं।

(१७३) गौः भाः—श्रीवास पण्डित आदि नित्यसिद्ध भगवत् पार्षदगण ने श्रीनित्यानन्द प्रभु का अनुसंधान करके उन्हें बाहर न कर पाने की जिस लीला का प्रदर्शन किया है, उसके बीच में अनेक रहस्य निहित हैं। बलदेव प्रभु ने अपने आपको छिपाकर हरिदास और श्रीवास पण्डित को अपना स्वरूप नहीं दिखाया। इससे इंगित किया गया है कि, प्रथम दृष्टि से बाह्य आचरण या उपाधि द्वारा नित्य-सत्य वस्तु के दृष्टिगोचर होने की सम्भावना नहीं है।

प्रभु के साथ सबका नित्यानन्द के दर्शनार्थ जाना—

क्षणके ठाकुर बले ईषत् हासिया।
"आइसा आमार संगे सबे देखि गिया॥"१७४॥
उल्लासे प्रभुर संगे सर्व-भक्तगण।
'जय कृष्ण' बलि' करिला गमन॥१७५॥
सबा लञा प्रभु नन्दन-आचार्येर घर।
जानिया उठिल गिया श्रीगौरसुन्दर॥१७६॥
बसियाछे एक महापुरुष-रतन।
सबे देखिलेन—येन कोटिसूर्यतम॥१७७॥
अलक्षित आवेश बुझन नाहि याय।
ध्यानसुखे परिपूर्ण हासये सदाय॥१७८॥
महा-भक्तियोग प्रभु बुझिया ताँहार।
गणसह विश्वम्भर हैला नमस्कार॥१७९॥
सम्भ्रमे रहिला सर्वगण दाण्डाइया।
केह किछु ना बलेन रहिल चाहिया॥१८०॥
सम्मुखे रहिला महाप्रभु विश्वम्भर।
चिनिलेन नित्यानन्द—प्राणेर ईश्वर॥१८१॥

(१७४-१८१) प. अनु०—क्षण भर में प्रभु थोड़ा मुस्कराकर बोले,—"चलो मेरे साथ! चल कर देखें, वे कहाँ हैं?" तब तो सभी भक्तगण उल्लास से 'जय कृष्ण' कहते हुये प्रभु के साथ चल पड़े। श्रीगौरसुन्दर सब जानते थे। इसलिए वे सब भक्तों को साथ लेकर सीधे नन्दनाचार्य के घर जा पहुँचे। वहाँ जाते ही सबने देखा के एक महापुरुष-शिरोमणि विराजमान हैं। कोटि सूर्य के समान जिनका

तेज है। वे किसी अलक्षित आवेश मे विद्यमान हैं, जो किसी की भी समझ में नहीं आ रहा है। ध्यानसुख से परिपूर्ण वे निरन्तर हँस रहे है। प्रभु विश्वम्भर ने उनके महाभक्तियोग को पहचान कर अपने परिकर सहित उनको नमस्कार किया। सम्भ्रम से सब भक्त-लोग खड़े रह गये—कोई कुछ नहीं कह रहा है, केवल उनकी ओर सब लोग देख रहे हैं। महाप्रभु विश्वम्भर भी उनके सामने खड़े हैं, इधर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने भी अपने प्राणों के नाथ को पहिचान लिया।

(१७८) गौः भाः—सेवान्मुख दृष्टि से न देखने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु का आवेश समझ में नहीं आता है। अनकी अवस्था बाहर से हास्ययुक्त है, किन्तु हृदय में वे सर्वक्षण चैतन्य-सेवा-सुख में मग्न रहते हैं।

(१७९) गौः भाः—गौरहरि ने सब अनुगत जनों के साथ उनको महाभक्तियोग में अवस्थित देखकर नमस्कार किया।

केदार-राग—

विश्वम्भर-मूर्ति येन मदनसमान।
दिव्य गन्ध-माल्य दिव्य वास परिधान॥१८२॥
कि हय कनकद्युति से देहेर आगे।
से वदन देखिते चान्देर साध लागे॥१८३॥
मनोहर श्रीगौरांग नित्यानन्दन राय।
भक्त-जन-संगे नगरे बेड़ाय॥१८४॥ध्रु॥
से दन्त देखिते कोथा मुक्तार दाम।
से केशबन्धन देखि' ना रहे गेयान॥१८५॥
देखिते आयत दुइ अरुण नयन।
आर कि कमल आछे हेन हय ज्ञान॥१८६॥
से आजानु दुइ भुज, हृदय सुपोन।
ता'हे शोभे सूक्ष्म यज्ञसूत्र अति क्षीण॥१८७॥
ललाटे विचित्र ऊर्ध्व-तिलक सुन्दर।
आभरण बिना सर्व-अंग मनोहर॥१८८॥
किवा हय कोटि मणि से नखे चाहिते।
से हास्य देखिते किवा करिव अमृते॥१८९॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्द-चाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥१९०॥

(१८२-१९०) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर की मूर्तिकामदेव के समान है। वे दिव्य गन्ध-माल्यऔर दिव्य वस्त्रों से विभूषित हैं। उनकी उज्जवल गौरदेह के आगे कंचन की ज्योति भला क्या है? उनके मुख को देखने की लालसा चन्द्रमा को भी रहती हैं। मनोहर गौरांग-नित्यानन्द राय भक्तों के साथ नगर में भ्रमण कर रहे हैं। उनके दाँतों की शोभा के सामने मुक्ताओं की क्या शोभा है और उनके उस केश-बन्धन को देखकर तो सुध-बुध ही नहीं रहती है। उनके दोनों विस्तीर्ण अरुण नयनों को देखकर यही प्रश्न उठता है कि क्या इनको छोड़कर और भी कोई कमल है? घुटने तक लम्बी दो भुजाएँ हैं, विशाल हृदय है, उसके ऊपर शुभ्र और अति सूक्ष्म यज्ञ-सूत्र शोभित है। ललाट पर सुन्दर विचित्र ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) है और बिना आभूषणों के ही वे सर्वांग-मनोहर हैं। उनकी नखावली के दर्शन करने पर कोटि-कोटि मणि भी तुच्छ प्रतीत होती हैं और उनका वह हास्य देख लिया तो फिर अमृत लेकर क्या करना।

श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, उन वृन्दावन दास ने उनके युगल श्रीचरणों को कुछ यशोगान किया है।

(१८२) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु की परमगम्भीर-मूर्ति है। वे कोटि मदन-सदृश विलास-भूषणों से अलंकृज और सौरभमय कुसुम मालिकाओं से शोभित हैं, उज्जवल-वस्त्र-पहने हुये वे स्वयं सौन्दर्य के मूर्तिमान विग्रह हैं।

(१८३) गौः भाः—उनकी अंगकान्ति ने परमोज्ज्वल स्वर्ण की दीप्ति को भी प्रभावहीन कर दिया है। कवि जन जिस चन्द्र की शोभा की अतुलनीयता का वर्णन करते हैं, वह चन्द्र भी उनके मुखमण्डल के दर्शनों को उत्सुक रहते हैं, ऐसे अपरूप (अद्‌भुत रूप वाले सौन्दर्य के मूर्तिमान विग्रह ही श्रीगौरसुन्दर हैं।

(१८५) गौः भाः—दास,—श्रेणी। केशबन्धन,— खोंपा, वेणी, यहाँ पर घुँघराले बालों का 'चूड़ा'।

(१८६) गौः भाः—गौरसुन्दर के प्रशस्त अरुण नयन-कमलों के निकट अन्य पद्‌मो की शोभा लक्षित नहीं होती है।

(१८७) गौः भाः—सुपीन-हृदय,—उन्नत वक्ष। अतिक्षीण,—अतिसूक्ष्म। उन्नत वक्ष की तुलना में बारीक सूत्र-गुच्छ।

(१८९) गौः भाः—गौर सुन्दर के नखसमूह को लक्ष्य करने पर देखा जाता है कि, कोटि मणियां की शोभा उनके पदनखों में देदीप्यमान है। उनका अमृत-निन्दी हास्य अनुपम शोभा का प्रदर्शन कर रहा है।

इति चैतन्यभागवत मध्यखण्डे
नित्यानन्दमिलनं नाम तृतीयोऽध्यायः।
इति गौड़ीय भाष्य में प्रथम अध्यायः समाप्त

O

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय का कथासार

इस अध्याय में भक्तवृन्द के निकट नित्यानन्द की महिमा-प्रकाश करने के लिए श्रीगौरसुन्दर का कौशल, श्रीवास को भागवत का श्लोक-पाठ करने के लिए महाप्रभु का आदेश, श्रीमद्भागवत का श्लोक-श्लोक करने पर नित्यानन्द की मूर्च्छा और उनमें विविध सात्त्विक विकारों की उत्पत्ति, महाप्रभु द्वारा नित्यानन्द को गोद में धारण करना, महाप्रभु और नित्यानन्द का संकेत से वार्तालाप (कथोपकथन), निताइ द्वारा महाप्रभु के अवतार-मर्म का प्रकाश तथा ग्रन्थकार द्वारा नित्यानन्द की महिमा आदि विषय वर्णित हुये है।

नन्दनाचार्य के भवन में नित्यानन्द का आगमन और अवस्थान जानकर महाप्रभु के द्वारा अपने परिकरों के साथ वहाँ जाकर नित्यानन्द को दण्डवत् प्रणाम करने के बाद उनके सम्मुख खडें होने पर बलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु समस्त इन्द्रियों से अपने नित्यसेव्य श्रीगौरसुन्दर के रूपादि के आस्वादन की लीला करते रहे। अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर ने नित्यानन्द प्रभु की महिमा का प्रकाशन करने के लिए श्रीवास को श्रीमद्भागवत के एक श्लोक का पाठ करने का आदेश दिया। प्रभु का संकेत पाकर श्रीवास द्वारा श्रीकृष्ण के वृन्दावन लीला-सूचक एक श्लोक का पाठ करने मात्र से प्रेममयविग्रह श्रीनित्यानन्द प्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़े। महाप्रभु के आदेश के कारण श्रीवास पण्डित द्वारा बार-बार श्लोक पाठ करते रहने पर कुछ समय के बाद नित्यानन्द प्रभु बाह्यज्ञान प्राप्त करके दोबारा श्लोक सुनकर भूमि पर गिर पड़े। सभी भयभीत होकर श्रीकृष्ण से उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगे। भावावेश में नित्यानन्द के विविध आंगिक विकारों ने प्रकाश पाने पर सभी ने उस अद्भुत प्रेमानन्द-दर्शन से पुलकित होकर नित्यानन्द को पकडकर रखने की असमर्थ होने पर महाप्रभु ने स्वयं नित्यानन्द को अपनी गोद में ले लिया। कुछ देर बाद नित्यानन्द के बाह्यज्ञान प्राप्त करने पर वैष्णवगण आनन्दध्वनि करने लगे। नित्यानन्द के प्रभाव को जानने वाले गदाधर इस विपरीत भाव को देखकर, अर्थात् जो नित्यानन्द अनन्त-रूप से दस देहों द्वारा गौरसुन्दर की सेवा करते हैं, वे ही आज महाप्रभु की गोद में अवस्थित हैं—यह देखकर मन-ही-मन हँसने लगे। गौरसुन्दर ने नित्यानन्द के दर्शन करके विविध स्तुति-वाक्यों द्वारा नित्यानन्द के गूढ़ चरित्र का प्रकाश किया। दोनों के द्वारा एक दूसरे के साथ संकेत से अनेक आलाप (वार्तालाप) होने के बाद, किस स्थान से नित्यानन्द की नवद्वीप में शुभविजय (यात्रा) हुई है, इस विषय में महाप्रभु द्वारा पूछने पर नित्यानन्द प्रभु ने अपने तीर्थभ्रमण का रहस्य बताने के माध्यम से महाप्रभु के अवतार का मर्म भी प्रकाशित कर दिया अर्थात् महाप्रभु ही अभिन्न ब्रजेन्द्रनन्दन हैं और वे स्वयं ही

औदार्य विग्रह रूप से नवद्वीप में अवतीर्ण हुये हैं, इस रहस्य को अपने मुख से व्यक्त कर दिया। महाप्रभु और नित्यानन्द के आपसी आलाप को सुनकर भक्तगण अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। उन्होंने दोनों के आलाप में मर्म को न जानकर भी इतना तो समझ ही लिया कि,—दोनों लम्बे समय से परिचित हैं और दोनों ही सेव्य-विग्रह हैं। नित्यानन्द प्रभु विषय जातीय विग्रह होने पर भी अभिन्न ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीगौरसुन्दर की नित्यानन्द की कृपा के बिना किसी को गौरसुन्दर की सेवा में अधिकार प्राप्त नहीं होता है। नित्यानन्द प्रभु गौरसुन्दर के अभिन्न तनु हैं। जो संसार-समुद्र से पार होकर भक्तिसागर में निमज्जित होने की वाञ्छा करते हैं, उनकी अभीष्ट-प्राप्ति का एकमात्र उपाय नित्यानन्द की चरणसेवा ही है।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

जय जय जगत्जीवन गौरचन्द्र।
अनुक्षण हउ स्मृति तव पदद्वन्द्व ॥ध्रु॥

(ध्रु) प. अनु०—हे जगत् के जीवन श्रीगौरचन्द्र! आपकी जय हो, जय हो। हे प्रभो! हमें सब समय आपके युगल श्रीचरणों की स्मृति हो।

गौरसुन्दर से नित्यानन्द की अवस्था—

नित्यानन्द-सम्मुखे रहिला विश्वम्भर।
चिनिलेन नित्यानन्द आपन ईश्वर॥१॥
हरिषे स्तम्भित हैला नित्यानन्द-राय।
एकदृष्टि हइ' विश्वम्भर-रूप चाय॥२॥

(१-२) प. अनु०—प्रभु श्रीविश्वम्भर श्रीनित्यानन्द के सम्मुख खड़े थे, श्रीनित्यानन्द ने भी अपने ईश्वर को पहचान लिया था। तब श्रीनित्यानन्द ने भी अपने ईश्वर को पहचान लिया था। तब श्रीनित्यानन्दराय हर्ष के कारण स्तम्भित हो गये और श्रीविश्वम्भर के रूप को एकटक होकर देखने लगे।

नित्यानन्द की आंगिक चेष्टाओं का प्रकार—

रसनाय लिहे येन, दरशने पान।
भुजे येन आलिंगन, नासिकाये घ्राण॥३॥
एइ मत नित्यानन्द हइया स्तम्भित।
ना बले ना करे किछु, सबेइ विस्मित॥४॥

(३-४) प. अनु०—वे जिह्वा से मानों रसग्रहण कर रहे थे, आँखों से रूपामाधुरी का पान कर रहे थे, भुजाओं से प्रभु का आलिंगन कर
रहे थे और नाक से मानों श्रीअंगों की सुगन्ध ले रहे थे। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु स्तम्भित से हो गये, वे न कुछ बोलते और न कुछ करते—यह देख कर सब विस्मित हो रहे थे।

(३) गौः भाः—गौरसुन्दर का रूप दर्शन करके नित्यानन्द ने जैसे जिह्वा-द्वारा रसग्रहण, आँखों द्वारा उसका पान, हाथों द्वार उनका आलिंगन और नासिका-द्वारा उनके अंग-गन्ध का आस्वादन करने की लीला का प्रदर्शन किया।

नित्यानन्द का प्रकाश करने में
गौरचन्द्र का कौशल—

बुझिलेन सर्व-प्राणनाथ गौर-राय।
नित्यानन्द जानाइते सृजिला उपाय॥५॥
इंगिते श्रीवास-प्रति बलिल ठाकुरे।
भागवतेर एक श्लोक पाठ करिवारे॥६॥
प्रभुर इंगित बुझि' श्रीवास पण्डित।
कृष्णध्यान एक श्लोक पड़िल त्वरित॥७॥

(५-७) पत्र. अनु०—सबके प्राणनाथ

श्रीगौरराय सब कुछ समझ गये और श्रीनित्यानन्द (के स्वरूप) को प्रकाशित करने के लिए एक उपाय सोचा। श्रीगौरचन्द्र ने श्रीवास पण्डित को श्रीमद्भागवत का एक श्लोक पढ़ने के लिए संकेत किया। प्रभु का संकेत समझकर श्रीवास पण्डित ने शीघ्रता से श्रीकृष्ण–ध्यान सम्बन्धी एक श्लोक का पाठ किया।

(५) गौः भाः—सभी के हृदयाधिपति गौरसुन्दर ने नित्यानन्द की सेवाप्रवृत्ति हृदयंगम की और उनके निज–स्वरूप की उपलब्धि कराने के लिए उपाय सोचकर श्रीवास पण्डित का संकेत से कृष्ण के रूप वर्णन के सूचक एक श्लोक का पाठ करने के लिए कहा।

तथाहि श्रीभागवत में (१०/२१/५)—

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं।
विभ्रद्वासः कनक–कपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन गोपवृन्दै—
र्वृन्दानण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥८॥

(८) अन्वय—(श्रीकृष्णः) वर्हापीडं (वर्हाणां शिखिपुच्छानां आपीडः शिरोभूषणं तं तथा) कर्णयोः कर्णिकारं (पुष्पविशेषं) कनक कपिशं (कनकवत् कपिशं अर्थात् पीतं) वासः (वस्त्रं) वैजयन्तीं (पंचकर्णपुष्पग्रथितां तदाख्यां) मालां नटवरवपुः च विभ्रत् (धारयन्) अधर–सुधया वेणोः रन्ध्रान् (छिद्राणि) आपूरयन् गोपवृन्दैः गीतकीर्त्तिः (स्तुतमाहात्म्यः सन्) स्वपदरमणं (स्वपदयौः निजचरणयौः रमणं रतिः नटनं वा यस्मिन् तत्) वृन्दारण्यं प्राविशत्।

(८) अनुवाद—उस समय नटवरवपु श्रीकृष्ण ने चूड़ा में मोरपंखभूषण, दोनों कानों में कनेर के फूल, श्रीअंग पर सुनहरा पीताम्बर और नाले में वैजयन्ती माला धारण करके अधरा मृत द्वारा वंशी के छिद्रों को पूरित करते हुये शंखचक्रादि लक्षणों से युक्त अपने पादपद्मों की रति या लीलास्थली वृन्दावन में प्रवेश किया। तब गोपगण उनका माहात्मय कीर्तन कर रहे थे।

श्रीकृष्ण का वृन्दावन–लीला–स्मारक श्लोक सुनने पर नित्यानन्द के अंग–विकार—

शुनि' मात्र नित्यानन्द श्लोक–उच्चारण।
पड़िला मूर्च्छित हञा—नाहिक चेतन ॥९॥
आनन्दे मूर्च्छित हैला नित्यानन्द–राय।
''पड़, पड़'' श्रीवासेरे गौरांग शिखाय ॥१०॥
श्लोक शुनि' कतक्षणे हइला चेतन।
तबे प्रभु लागिलेन करिते क्रन्दन ॥११॥
पुनः पुनः श्लोक शुनि' बाड़ये उन्माद।
ब्रह्माण्ड भेदये हेन शुनि' सिंहनाद ॥१२॥
अलक्षिते अन्तरिक्षे पड़ये आछाड़।
सबे मने भावे, किवा चूर्ण हैल हाड़ ॥१३॥

(९–१३) प. अनु०—श्लोक का उच्चारण सुनने मात्र से ही श्रीनित्यानन्द प्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़े और चेतना–शून्य से हो गये। श्रीनित्यानन्द को आनन्द से मूर्च्छित देखकर श्रीगौरांग प्रभु श्रीवास से कहने लगे कि "पढ़ो, फिर पढ़ो"। श्लोक सुनकर कुछ समय पश्चात् प्रभु चेतन हुये और फिर रोना शुरु कर दिया। श्लोक को बारम्बार सुन–सुनकर उनका प्रेमान्माद बढ़ने लगा और वे ब्रह्माण्ड भेदनकारी सिंहनाद करने लगे। लोगों का लक्ष्य अतिक्रम करके वे इतने वेग से शून्य में उछलकर भूमि पर पछाड़ खाकर गिर पड़े कि उसे देखकर सब लोग यही समझने लगे कि कहीं इनकी हड्डी–पसली चूर–चूर न हो गई हो।

(१३) गौः भाः—अलक्षिते,—लोगों का लक्ष्य अतिक्रम करके। देखने वाले लोग पहले कल्पना ही नहीं कर पाये कि, श्लोक

सुनने-से वैसी अवस्था होगी।

अन्तरीक्षे,—भूमि के उपरिभाग में, शून्य-प्रदेश में अर्थात् छलांग लगाकर।

आंगिक विकार दर्शन से वैष्णवों का भयभीत होना—

अन्येर कि दाय, वैष्णवेर लागे भय।
''रक्ष कृष्ण, रक्ष कृष्ण'' सबे सडरय॥१४॥

(१४) प. अनु०—उस समय औरों की तो बात ही क्या है, वैष्णवों को भी भय लगने लगा और वे सब "हे कृष्ण! रक्षा करो! हे कृष्ण! रक्षा करो!" कहते हुये कृष्ण का स्मरण करने लगे।

नित्यानन्द का दोबारा विविध अंगविकार—

गड़ागड़ि याय प्रभु पृथिवार तले।
कलेवर पूर्ण हैल नयनेर जले॥१५॥
विश्वम्भर-मुख चाहि' छाड़े घनश्वास।
अन्तरे आनन्दे, क्षणे क्षणे महा-हास॥१६॥
क्षणे नृत्य, क्षणे नत, क्षणे बाहुताल।
क्षणे योड़-योड़ लम्फ देइ देखि भाल॥१७॥

(१५-१७) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द भूमि पर लोट-पोट हो रहे थे, नेत्रों के जल से उनका समस्त शरीर भीग गया था। वे श्रीविश्वम्भर प्रभु की और देख-देखकर लम्बी-लम्बी श्वास छोड़ रहे थे। हृदय का आनन्द से पूर्ण था, क्षण में खिलखिला कर हँस पड़ते थे, क्षण में नृत्य करने लगे थे और क्षण में भूमि पर लोट-पोट हो जाते थे, फिर क्षण में भुजा फटकारते हुये ताल ठोंकते और क्षण में दोनों चरण मिलाकर कूदते—ये सभी क्रियाएँ बड़ी सुन्दर दिखायी देती थीं।

(१७) गौः भाः—बाहुताल,—कुश्ती के अखाड़े में द्वन्द्वयुद्ध में आह्वान अथवा आक्रमण करने के उपक्रम (पहली अवस्था) के समय भुजा के ऊपर हाथों द्वारा आघात।

योड़-योड़-लम्फ अर्थात् युग्मपद से कूदना; अन्य पाठ में योड़-योड़-लम्फ—घोड़े के समान कूदना अथवा शब्द करते हुये छलाँग लगाना।

नित्यानन्द के प्रेमानन्द-दर्शन से परिकरों सहित महाप्रभु के हर्षाश्रु—

देखिया अद्भुत कृष्ण-उन्माद-आनन्द।
सकल वैष्णव-संगे कान्दे गौरचन्द्र॥१८॥

(१८) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के अद्भुत श्रीकृष्ण-प्रेमोन्माद के दर्शन कर सभी वैष्णवों के साथ श्रीगौरसुन्दर भी आनन्द से रोने लगे।

नित्यानन्द को पकड़कर रखने में वैष्णवों की असमर्थता—

पुनः पुनः बाड़े सुख अति अनिवार।
धरेन सबाइ—केह नारे धरिवार॥१९॥

(१९) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द का प्रेमानन्द सुख पुनः पुनः बढ़ता ही जा रहा था, किसी प्रकार रोके नहीं रुक रहा था। सब वैष्णव उनको पकड़ने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु पकड़ नहीं पा रहे थे।

(१९) गौः भाः—अनिवार,—जिसे रोका न जा सके।

वैष्णवों के विफल होने के कारण महाप्रभु द्वारा नित्यानन्द को गोद में धारण करना—

धरिते नारिला यदि वैष्णव-सकले।
विश्वम्भर लइलेन आपनार कोले॥२०॥

(२०) प. अनु०—जब सब वैष्णवजन मिलकर भी उनकरे पकड़ न सके तो वैष्ण

ावजन मिलकर भी उनको पकड़ न सके तो श्रीविश्वम्भर ने स्वयं उनको गोद में ले लिया।

महाप्रभु की गोद में जाने मात्र से
नित्यानन्द की स्थिरता—

विश्वम्भर–कोले मात्र गेला नित्यानन्द।
समर्पिया प्राण ता'ने हइला निष्पद॥२१॥
या'र प्राण ता'ने नित्यानन्द समर्पिया।
आछेन प्रभुर कोले अचेष्ट हइया॥२२॥

(२१–२२) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर की गोद में जाते ही श्रीनिवासनन्द ने अपने प्राणों को उन्हें समर्पित कर दिया तथा शान्त हो गये। जिनके प्राण हैं, उन्हें समर्पित करके श्रीनित्यानन्द महाप्रभु की गोद में अचेष्ट पड़े रहे।

दोनों प्रभुओं की प्रेमलीला दर्शन से
रामलक्ष्मण के साथ गौरनिताइ की उपमा—

भासे नित्यानन्द चैतन्येर–प्रेमजले।
शक्तिहत लक्ष्मण–ये–हेने राम–कोले॥२३॥
प्रेमशक्ति–वाणे मूर्च्छा गेला नित्यानन्द।
नित्यानन्द कोले करि' कान्दे गौरचन्द्र॥२४॥
कि आनन्द–विरह हइल दुइ जने।
पूर्वे येन शुनियाछि श्रीराम–लक्ष्मणे॥२५॥
गौरचन्द्रे नित्यानन्दे स्नेहेर ये सीमा।
श्रीरामलक्ष्मण वहि नाहिक उपमा॥२६॥

(२३–२६) प. अनु०—श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीचैतन्य चन्द्र के प्रेम–जल में बहने लगे; मानों शक्तिहत लक्ष्मण ही श्रीरामचन्द्र की गोद में सो रहे हों। प्रेमभक्ति के बाण से श्रीनित्यानन्द मूर्च्छित हो गये थे और उनको गोद में लेकर श्रीगौरचन्द्र रो रहे थें। उस समय उन दोनों भाइयों में वैसा ही आनन्दमय–विरह छा गया था। जैसे सुनते हैं कि पूर्वकाल में श्रीराम–लक्ष्मण के मध्य उपस्थित हुआ था। श्रीगौरचन्द्र और श्रीनित्यानन्दचन्द्र में स्नेह की जो सीमा है, उसकी उपमा श्रीराम और लक्ष्मण के अतिरिक्त और कहीं नहीं है।

(२३–२४) गौः भाः—रामचन्द्र ने जैसे शक्तिशेल से क्लिष्ट (पीड़ित) लक्ष्मण को गोद में धारण किया था, वैसे ही गौरसुन्दर ने नित्यानन्द को प्रेमविह्वल और निष्पद (निश्चेष्ट) अवस्था में गोद में धारण किया था। यहाँ पर प्रेमभक्ति ने बाण की भाँति कार्य किया है।

निताइ की बाह्यज्ञान प्राप्त होने
पर भक्तों की हर्षध्वनि—

बाह्य पाइलेन नित्यानन्द कतक्षणे।
हरिध्वनि जयध्वनि करे सर्व–गणे॥२७॥

(२७) प. अनु०—कुछ ही क्षणों में श्रीनित्यानन्द ने बाह्यज्ञान प्राप्त किया। तब सब भक्तवृन्द हरिध्वनि और जयध्वनि करने लगे।

दोनों प्रभुओं के विपरीत भावदर्शन
से गदाधर का हास्य—

नित्यानन्द कोले करि' आछे विश्वम्भर।
विपरीत देखि' मने हासे गदाधर॥२८॥
''ये अनन्त निरवधि धरे विश्वम्भर।
आजि ता'र गर्व चूर्ण—कोलेर भितर॥''२९॥

(२८–२९) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर प्रभु श्री नित्यानन्द को गोद में लिये हुये हैं,—इस उलटी–रीति को देखकर गदाधर मन–ही–मन हँसने लगे, "जो अनन्तदेव निरन्तर श्रीविश्वम्भर प्रभु को धारण करते हैं, आज वे ही उन्टे श्रीविश्वम्भर की गोद में आ गये है"—इसलिए आज उनका गर्व चूर्ण हो गया है।

(२८) गौः भाः—नित्यानन्द–प्रभु को गौरसुन्दर की गोद में देखकर गदाधर को

विस्मय उत्पन्न हुआ कि—"कहाँ नित्यानन्द प्रभु गौरसुन्दर को धारण करके सेवा करते हैं और कहाँ आज यहाँ पर उसके विपरीत गौरसुन्दर, नित्यानन्द को धारण करके उसकी प्रतिकूलता का भाव प्रदर्शित कर रहे हैं।"

गदाधर और नित्यानन्द एक दूसरे के प्रभाव के ज्ञाता—

नित्यानन्द–प्रभावेर ज्ञाता—गदाधर।
नित्यानन्द—ज्ञाता गदाधरेर अन्तर॥३०॥

(३०) प. अनु०—श्रीगदाधर, श्रीनित्यानन्द के प्रभाव को जानने वाले हैं और श्रीनित्यानन्द भी गदाधर के हृदय को जानते हैं।

(३०) गौः भाः—गदाधर,—गौरसुन्दर की नितान्त निज शक्ति है; इसलिए वे गौर–सेवक नित्यानन्द के विचित्र प्रभाव को जानते हैं। नित्यानन्द भी गदाधर के हृदय के भाव से थोड़ा–बहुत अवगत है।

नित्यानन्द के दर्शन से भक्तों की तन्मयता—

नित्यानन्द देखिया सकल भक्तगण।
नित्यानन्दमय हैल सबाकार मन॥३१॥

(३१) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द के दर्शन कर–करके समस्त भक्तों के मन नित्यानन्दमय हो गये हैं।

नित्यानन्द और गौरसुन्दर के एक दूसरे केदर्शन से आनन्दाश्रु—

नित्यानन्द गौरचन्द्र देहि दोंहा देखि'।
केह किछु नाहि बले, झरे मात्र आँखि॥३२॥
दोंहे दोहाँ देखि' बड़ हरिष हइला।
दोंहार नयनजले पृथिवी भासिला॥३३॥

(३२–३३) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द और श्रीगौरचन्द्र परस्पर एक दूसरे को देख रहे थे, मुख से कोई कुछ नहीं कह रहा था, केवल आँखों स ेजल बह रहा था। एक दूसरे को देख–देखकर वे अत्यन्त भिगो रहे थे।

चारों वेदों का सार भक्तियोग—

विश्वम्भर बले,—''शुभ दिवस आमार।
देखिलाङ भक्तियोग—चारिवेद–सार॥३४॥

(३४) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर ने कहा,—"आज मेरे बड़ा शुभ दिन है, जो आज मैंने चारों वेदों का सार जो भक्तियोग है, उसके प्रत्यक्ष दर्शन किये है।

(३४) गौः भाः—भक्तियोग ही चारों वेदों का उद्दिष्ट और निर्यासरूप (सारस्वरूप) है। वेदशास्त्र भक्ति को ही एकमात्र 'सार' रूप में निर्देशित करते है जीव का पूर्ण ज्ञानोदय होने पर ही उसमें आत्मा की नित्यवृति भक्ति का उदय होता है। सेवामय चित्त ही भगवान् स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञान प्राप्ति के बाद सेवामय होकर अवस्थित रहता है।

गौर–द्वारा नित्यानन्द की स्तुति—

''ए कम्प, ए अश्रु, ए गर्जन हुहुँकार।
एह कि ईश्वरशक्ति वइ हय आर॥३५॥
सकृत ए भक्तियोग नयने देखिले।
ताहारेओ कृष्ण ना छाड़ेन कोनकाले॥३६॥
बुझिलाम—ईश्वरेर तुमि पूर्णशक्ति।
तोमा' भजिले से जीव पाय कृष्णभक्ति॥३७॥
तुमि कर चतुर्दश भुवन पवित्र।
अचिन्त्य अगम्य गूढ़ तोमार चरित्र॥३८॥
तोमा देखिवेक हेन आछे कोन् जन।
मूर्त्तिमन्त तुमि कृष्णप्रेमभक्ति–धन॥३९॥
तिलार्द्ध तोमार संग ये जनार हय।
कोटि पाप थाकिलेओ ता'र मन्द नय॥४०॥
बुझिलाम—कृष्ण मोरे करिवे उद्धार।

तोमा' हेन संग आनि' दिलेन आमार॥४१॥
महाभाग्ये देखिलाम तोमार चरण।
तोमा भजिले से पाइ कृष्णप्रेमधन॥''४२॥
आविष्ट हइया प्रभु गौरांगसुन्दर।
नित्यानन्दे स्तुति करे—नाहि अवसर॥४३॥

(३५-४३) प. अनु०—यह कम्प, यह अश्रु, यह गर्जन और हुँकार—यह सब क्या ईश्वरशक्ति के अतिरिक्त किसी और में हो सकते हैं? एक बार भी इस भक्तियोग के दर्शन कर लेने पर उसको श्रीकृष्णचन्द्र कभी भी नहीं छोड़ते हैं। मैं समझ गया कि तुम ईश्वर की पूर्णशक्ति हो। जो जीव तुम्हारा भजन करता है, वह कृष्णभक्ति पाता है। तुम चौदह भुवनों को पवित्र करने वाले हो, तुम्हारा चरित्र अचिन्तय, अगस्य एवं गूढ़ है। ऐसा कौन है जो तुमको देख भी सके, तुम तो मूर्तिमान् कृष्णप्रेमभक्ति-धन हो। जिस व्यक्ति को तिलार्द्ध काल के लिए भी तुम्हारा संग प्राप्त होता है, उसमें कोटि-कोटि पाप रहने पर भी उसका कभी अमंगल नहीं होता है। मैं जान गया हूँ कि श्रीकृष्ण मेरा उद्धार करेगे, तभी तो तुम्हारे जैसे महापुरुष का संग मुझे प्राप्त कराया है। बड़े भाग्य से आज मुझे तुम्हारे श्रीचरणों के दर्शन मिले हैं। जो तुमको भजता है, वह श्रीकृष्णप्रेम रूपी धन को प्राप्त करता है।" इस प्रकार प्रेमाविष्ट होकर श्रीगौरांगसुन्दर श्रीनित्यानन्द की स्तुति निरन्तर करते रहे।

(३६) गौः भाः—नित्यानन्द के इस प्रकार सेवा-प्रवृत्ति रूप मानसिक और आंगिक-विकारों का दर्शन करने वाले सौभाग्यवान् सेवक का परित्याग श्रीकृष्ण कभी भी नहीं कर सकते हैं।

(३७-४३) गौः भाः—गौरसुन्दर आवेश से निरवच्छिन्न भाव से (निरन्तर) नित्यानन्द की स्तुति करते रहे। उन्होंने कहा,—"तुम भगवान् की, पूर्णशक्ति, सन्धिनीशक्तिमत् विग्रह हो। तुम्हारी सेवा करने से ही जीवों में श्रीकृष्णसेवा की प्रवृति प्रकाशित होती है। हे नित्यानन्द, तुम सत्य, जन, महः, तमः, भूः भूवः और स्वर—इन सप्त ऊर्ध्व लोकों और अतलादि सप्त निम्नलोकों को अनायास ही पवित्र करने में समर्थ हो। जीव के चिन्तन से परे है। तुम्हारे गुप्त भावसमूह में जीव का दुष्प्रवेश (प्रवेश) करना कठिन) है। तुम्हारे तत्त्व को जानने में कोई भी समर्थ नहीं है। तुम साक्षात् कृष्णप्रेमशक्ति के मूर्त्तविग्रह हो। थोड़े समय के लिए भी जो तुम्हारा संग प्राप्त करते हैं, उनके कोटि पाप रहने पर भी उनको 'मन्दभाग्य', नहीं कहा जाना चाहिए। पापी होने पर भी वे सौभाग्यवान् हैं। मैंने भली भाँति समझ लिया है, मेरा उद्धार करने के लिए ही भगवान् कृष्ण ने मुझे तुम्हारा साक्षात्कार कराया है। जो तुम्हारा भजन करेगा, उसे ही कृष्णप्रेमधन की प्राप्ति होगी। मैंने जब तुम्हारें पादद्मों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त किया है, तभी मेरे भी विशेष सौभाग्य का उदय हुआ है।"

दोनों प्रभुओं का संकेत से वार्तालाप—

नित्यानन्द-चैतन्येर अनेक आलाप।
सब कथा ठारेठारे, नाहिक प्रकाश॥४४॥
प्रभु बले,—''जिज्ञासा करिते करि भय।
कोन् दिक हइते शुभ करिले विजय?''४५॥
शिशुमति नित्यानन्द—परम-विह्वल।
बालकेर प्राय येन वचन चंचल॥४६॥
'एइ प्रभु अवतीर्ण' जानिलेन मर्म।
करयोड़ करि' बले हइ' बड़ नम्र॥४७॥
प्रभु करे स्तुति, शुनि' लज्जित हइया।

व्यपदेशे सर्व कथा कहेन भांगिया॥४८॥

(४४–४८) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द और श्रीचैतन्यचन्द्र में बहुत कुछ वार्तालाप हुआ, परन्तु वह सब संकेत से ही हुआ, प्रकट रूप में नहीं। प्रभु श्रीविश्वम्भर ने कहा,—"यह पूछने में भी मुझे भय होता है कि आपका शुभागमन कहाँ से हुआ है?" नित्यानन्द प्रभु परम-विह्वल हैं। बालक की-सी उनकी सरल मति है और बालक के जैसे ही उनके चंचल वचन हैं। 'ये ही हैं वे प्रभु, जिन्होंने अवतार लिया है,—इस रहस्य को वे समझ गये और हाथ जोड़कर बड़े विनम्र होकर बोले—प्रभु के मुख से अपनी स्तुति सुनकर वे बड़े लज्जित थे। फिर वे छल से सब बातें खोल-खोल कर कहने लगे।

(४४) गौः भाः—ठारे-ठारे,—इंगित से, स्पष्ट शब्दों में न कहकर, इशारे से।

(४५) गौः भाः—महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु से पूछा,—"श्रीपाद, तुमने कहाँ से यहाँ पर शुभागमन किया है?"

(४८) गौः भाः—व्यपदेशे,—छलना से, इंगित से।

नित्यानन्द के मुख से प्रभु के
अवतार का मर्म-प्रकाशन—

नित्यानन्द बले,—"तीर्थ करिल अनेक।
देखिल कृष्णेर स्थान यतेक॥४९॥
स्थान मात्र देखि, कृष्ण देखिते ना पाइ।
जिज्ञासा करिल तबे भाल-लोक-ठाञि॥५०॥
सिंहासन सब केने देखि आच्छादित।
कह भाइ सब, कृष्ण गेला कोन् भित?५१॥
ता'रा बले,—'कृष्ण गियाछेन गौड़देशे।
गया करि' गियाछेन कतेक दिवसे॥'५२॥
नदीयाय शुनि' बड़ हरि-संकीर्तन।
केह बले—'एथाय जन्मिला नारायण॥'५३॥
पतितर त्राण बड़ शुनि नदीयाय।
शुनिया आइलुँ मुञि पातकी एथाय॥"५४॥

(४९–५४) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द ने कहा,—"मैंने अनेक तीर्थ किये और श्रीकृष्ण के जितने-जितने धाम हैं, उन सबका दर्शन किया, परन्तु वहाँ तो केवल स्थान-ही-स्थान दिखायी दिये, श्रीकृष्ण के तो कहीं भी दर्शन नहीं हुये। तब सज्जन लोगों से मैंने पूछताछ की। क्यों सब सिंहासन ढके दिखायी दे रहे हैं। कहो भाइयों! श्रीकृष्ण कहाँ चले गये? उन्होंने कहा,—'श्रीकृष्ण तो गौड़देश गये हैं। वे कुछ दिन पहले ही गया की यात्रा करके घर लौटे हैं।' नदिया में सुनते हैं कि आजकल वहाँ पर बड़ा हरि संकीर्तन होता है। किसी ने बताया था कि,—"नारायण ने यहीं पर जन्म लिया है।" यहाँ पतितों का बडा उद्धार होता है। यह सुनकर मैं पातकी भी नदिया में चला आया हूँ।"

(४९–५१) गौः भाः—नित्यानन्द ने कहा,—मैंने बहुत-से तीर्थों का भ्रमण किया, किन्तु वहाँ जिन-जिन स्थानों से कृष्ण का सम्बन्ध है, उन सबको ही कृष्णशून्य देखा। लोगों से पूछा,—"इन स्थानों पर सिंहासन खाली क्यों पड़े हैं? यहाँ इन पर विराजित होने वाले कृष्ण इन स्थानों और सिंहासनों को छोड़कर कहाँ चले गये हैं?"

(५२) गौः भाः—पूछने पर सज्जन लोगों ने कहा,—"कृष्ण माथुर मण्डल छोड़कर गौड़देश के नवद्वीपमण्डल में चले गये हैं। वे कुछ दिन पहले गये हैं।"

(५३–५४) गौः भाः—नित्यानन्द ने कहा,—"मैं पाप के भार से खिन्न हूँ। लोगों से सुना कि, नारायण ने नवद्वीप-श्रीमायापुर में

जन्मग्रहण करके हरिसंकीर्तन का आरम्भ किया है। उसे सुनकर मैं पतित उद्धार की कामना से आपके निकट यहाँ पर आया हूँ।"

महाप्रभु द्वारा दोबारा नित्यानन्द की स्तुति—

प्रभु बोले,—''आमरा-सकल भाग्यवान्।
तुमि-हेन भक्तेर हइल उपस्थान॥५५॥
आजि कृतकृत्य हेन मानिल आमरा।
देखिल ये तोमार आनन्द-वारिधारा॥''५६॥

(५५-५६) प. अनु०—प्रभु ने कहा,—"हम सब बड़े ही सौभाग्यशाली हैं, जो आप जैसे भक्त यहाँ पर आकर उपस्थित हुये हैं। आज हम सब अपने को कृत्कृत्य मान रहे हैं, जोकि हमने आज आपके प्रेमानन्द की अश्रुधाराओं के दर्शन किये।"

(५५-५६) गौः भाः—प्रभु ने उसके उत्तर में कहा,-"आज हम लोगों का परम सौभाग्य है। आप जैसे भगवत्-सेवक के आगमन से और आपके आनन्दाश्रु-दर्शन से हम लोग कृतार्थ हुये हैं।"

उपस्थान,—उप (समीप में) + स्था (रहना) + अन् (भावे—अनट्) उपस्थिति, समीप में आगमन।

भक्तों की बातचीत के द्वारा अपने भावों का प्रकाशन—

हासिया मुरारि बले,—''तोमरा तोमरा।
उहा त' ना बुझि किछु आमरा सबारा॥''५७॥
श्रीवास बलेन,—''उहा आमरा कि बुझि?
माधव-शंकर येन दोंहे दोंहा पूजि॥''५८॥
गदाधर बले,—''भाल बलिला पण्डित।
सेइ बुझि, येन रामलक्ष्मण-चरित॥''५९॥
केह बले,—''दुइजन येन दुइ काम।''
केह बले,—''दुइजन येन कृष्ण-राम॥''६०॥
केह बले,—''आमि किछु विशेष ना जानि।
कृष्ण-कोले येन 'शेष' आइला आपनि॥''६१॥
केह बले,—''दुइ सखा येन कृष्णार्जुन।
सेइ मत देखिलाम स्नेहपरिपूर्ण॥''६२॥
केह बले,—''दुइजने बड़ परिचय।
किछुइ ना बुझि सब ठारेठारे कय॥''६३॥
एइमत हरिषे सकल-भक्तगण।
नित्यानन्द-दरशने करेन कथन॥६४॥

(५७-६४) प. अनु०—श्रीमुरारि गुप्त ने हँसते हुये कहा,—"आप और आप—दोनों ही जानें ये सब बातें। हम सब तो कुछ भी नहीं समझ पा रहे हैं।" फिर श्रीवास पण्डित ने कहा,—"भला, हम लोग क्या समझेंगे? यहाँ तो मानों माधव और महादेव, दोनों ही एक-दूसरे की पूजा कर रहे हैं।" तब गदाधर ने कहा,—"ठीक कहा पण्डितजी!" मुझे तो इन दोनों का चरित्र राम-लक्ष्मण जैसा लगता है।" किसी ने कहा कि,—"ये दोनों जने मानों तो दो कामदेव हैं।" कोई कहने लगा कि, —"ये दोनों जने तो श्रीकृष्ण-बलराम हैं।" किसी ने कहा कि,—"मैं और तो कुछ जानता नहीं हूँ—बस, मुझे तो ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण की गोद में स्वयं शेषजी आ गये हैं।" कोई बोला,—"ये दो सखा तो श्रीकृष्ण और अर्जुन जैसे हैं। वैसा ही भरपूर स्नेह भी उनमें दिखायी दे रहा हैं।" कोई कहने लगा कि,—"इन दोनों में बड़ा परिचय है—तभी तो सब बातें संकेत-ही-संकेत में कर लेते हैं और हम कुछ भी नहीं समझ पाते हैं।" इस प्रकार सब भक्तलोग श्रीनित्यानन्द के दर्शनों से हर्षित होकर आपस में बातें करने लगे।

(५७) गौः भाः—मुरारि ने हँसकर कहा, —"गौर और नित्यानन्द में जो कुछ वार्तालाप हुआ है, उसे तो उन्होंने ही आपस में समझा है, हम उसमें प्रवेश नहीं कर पायें हैं।" आमरा

सबारा,—हम सबने।

(५८) गौः भाः—श्रीवास ने कहा,—"हम इन दोनों (महाप्रभु और नित्यानन्द) की बातें समझने में असमर्थ हैं। जैसे पूर्वकाल में हरिद्व ार ने एक दूसरे की पूजा का विधान करके लोगों में विस्मय उत्पन्न कर दिया था, वैसी ही अवस्था यहाँ भी है।"

(५९) गौः भाः—गदाधर ने कहा,—"श्रीवास पण्डित ने ठीक ही कहा है। मैं भी समझ रहा हूँ कि, रामलक्ष्मण क आपस में सन्मिलन के समय जैसे भाव का उदय हुआ था, यह भी वैसा ही
है।"

(६०) गौः भाः—किसी-किसी ने कहा, —"श्रीगौर और श्रीनित्यानन्द—दोनों ही कामदेव जैसे हैं। ये जगत् के समस्त सौन्दर्य और सब गुणों के आधार-स्वरूप हैं।" फिर किसी ने कहा,—"ये दोनों ही कृष्ण और बलराम हैं।"

(६१) गौः भाः—किसी-किसी ने कहा, —"हम लोग अधिक कुछ तो समझ नहीं पा रहे हैं, परन्तु हम लोगों के मन में ऐसा विचार आ रहा है कि, कृष्ण की गोद में भगवान् 'शेष' ने स्वयं आकर स्थान प्राप्त किया है।"

(६२) गौः भाः—किसी-किसी ने कहा, —"इनका आपसी बन्धुत्व कृष्णार्जुन के सखाभाव की तरह पास्परिक स्नेह से सिक्त है।"

(६३) गौः भाः—किसी-किसी ने कहा, —"दोनों में परस्पर इस प्रकार का तालमूल है कि इनके आपसी स्नेह को जन्म अन्य लोग कुछ भी नहीं समझ पा रहे है; केवल कितने ही उद्देश्य पूर्ण संकेत-मात्र ही देख रहे हैं।"

निताइ-गौर की साक्षात् लीला-श्रवण की फलश्रुति—

नित्यानन्द गौरचन्द्र दोंहे दरशन।
इहार श्रवणे हय बन्ध-विमोचन॥६५॥

(६५) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द और श्रीगौरचन्द्र की मिलन-कथा का श्रवण करने से सब बन्धन टूट जाते हैं।

नित्यानन्द की विविध सेवा।

संगी, सखा, भाइ, छात्र, शयन, वाहन।
नित्यान्द वहि अन्य नहे कोन जन॥६६॥
नानारूपे सेवे प्रभु आपन-इच्छाय।
या'रे देन अधिकर, सेइ जन पाय॥६७॥

(६६-६७) प. अनु०—प्रभु के संगी, सखा, भाई, छत्र, शय्या और वाहन—इत्यादि सब नित्यानन्द ही हैं, उनके बिना और दूसरा कोई नहीं है। श्रीनित्यानन्द अपनी इच्छा से नानारूप धारण करके प्रभु की सेवा करते रहते हैं। वे जिसको सेवा का अधिकार देते हैं, वही प्रभु की सेवा पा सकता
है।

(६६) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु के अतिरिक्त दूसरा कोई भी गौरसुन्दर का संगी, बन्धु, भ्राता, धूप से बचाने वाला छत्र, विश्राम देने वाली शय्या और अभिगमन करने के लिये यान और वाहन नहीं हो सकता है। एकमात्र वे ही सर्वतोभाव से गौरसुन्दर की सेवा करने में समर्थ हैं।

"छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान, वसन। भूषण, आराम, आवास, यज्ञसूत्र, सिंहासन॥ एत मूर्त्ति-भेद करि' कृष्णसेवा करे।" (चैः चः आ ५/१२३-१२४)।

(६७) गौः भाः—इनकी कृपा होने से ही श्रीगौरसेवा में जीव का अधिकार होता है। वे सभी सेवाओं के अधिकारी हैं, इनकी कृपाप्रदत्त सेवा में ही दूसरे को अधिकार प्राप्त करना

सम्भव है।

नित्यानन्द का चरित्र महादेव की भी समझ से बाहर—

आदिदवे महायोगी ईश्वर चैष्णव।
महिमार अन्त इहा ना जानये सब॥६८॥

(६८) प. अनु०—आदिदेव महायोगी ईश्वर और वैष्णव श्रीमहादेव भी इनकी महिमा को नहीं जानते हैं।

(६८) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु की सेवा की महिमा की परिधि को जानना महादेव तक के लिए असम्भव है। यद्यपि रुद्रदेव-ईश्वर वस्तु एवं महासंयत हैं, तथापि वे भी नित्यानन्द के समान सर्वतोभाव से श्रीगौर की सेवा के विधान में असमर्थ हैं।

नित्यानन्द की निन्दा का फल—

ना जानिया निन्दे' ताँ'र चरित्र अगाध।
पाइयाओ विष्णुभक्ति हय ता'र बाध॥६९॥

(६९) प. अनु०—नित्यानन्द प्रभु के अत्यन्त अगाध चरित्र को न जानने के कारण जो उनकी निन्दा करते हैं, वे विष्णु-भक्ति प्राप्त करके भी बाधा को प्राप्त हो जाते हैं।

(६९) गौः भाः—जो नित्यानन्द प्रभु की दुरधिगम्य (दुर्बोध) लीला का अनुगमन करने में असमर्थ होकर उनकी सेवा से रहित होते हैं और उनकी निन्दा करते हैं, उनको किसी भाग्य से विष्णुभक्ति यदि प्राप्त हो भी गई, तो भी उसमें बाधा और विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

ग्रन्थकार की लालसामयी प्रार्थना—

चैतन्येर प्रिय देह—नित्यानन्द राम।
हउ मोर प्राणनाथ—एइ मनस्काम॥७०॥

(७०) प. अनु०—श्रीचैतन्यचन्द्र की प्रिय देह हैं श्रीनित्यानन्द राम। वे मेरे प्राणनाथ हों—यही मेरी मनोकामना है।

(७०) गौः भाः—अन्य पाठ में,—प्रिय सेह। 'प्रिय देह'—पाठ से—'अभिन्न विग्रह' जानना होगा।

निताइ के कृपाबल से चैतन्यभक्ति की प्राप्ति—

ताँहार प्रसादे हैल चैतन्य मति।
ताँहार आज्ञाय लिखि चैतन्येर स्तुति॥७१॥

(७१) प. अनु०—उनकी कृपा से ही मेरी श्रीचैतन्यचन्द्र में प्रीति हुई है और उनकी आज्ञा से ही मैं श्रीचैतन्य-चरित्र लिख रहा हूँ।

निताइ-गौर का अभेदत्व—

'रघुनाथ','यदुनाथ'—येन नाम भेद।
एइमत भेद—'नित्यानन्द', 'बलदेव'॥७२॥

(७२) प. अनु०—जैसे 'रघुनाथ' और 'यदुनाथ' में केवल नाम का ही भेद है, ऐसे ही 'नित्यानन्द' और 'बलदेव' में भी केवल नाम-मात्र का भेद है।

(७२) गौः भाः—जैसे राघव (रामचन्द्र) और यादव (कृष्ण) में वस्तुगण अभेद रहने पर भी लीला-तारतम्य से नाम का भेद परिदृष्ट होता है, वैसा ही कृष्णाभिन्न गौरसुन्दर के साथ नित्यानन्द-बलदेव की लीला के भेद के कारण नाम-मात्र का भेद देखा जाता है।

भक्तिकामी को निताइ के भजन से अभीष्ट की प्राप्ति—

संसारेर पार हइया भक्तिर सागरे।
ये डुबिवे से भुजुक निताइचाँदेरे॥७३॥

(७३) प. अनु०—जो कोई संसार-सागर से पार होकर भक्ति-समुद्र में डूबना चाहता

हो, वह नित्यानन्द चन्द्र का भजन करे।

अध्याय की फलश्रुति—

ये वा गाय एइ कथा हइया तत्पर।
सगोष्ठीरे तारे वर–दाता विश्वम्भर॥७४॥
जगते दुर्लभ बड़ विश्वम्भर–नाम।
सेइ प्रभु चैतन्य—सबार धनप्राण॥७५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥७६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे नित्यानन्दमिलनं नाम चतुर्थोऽध्यायः। (७४–७६) प.

अनु०—जो कोई व्यक्ति प्रेमभक्ति–पूर्वक इस चरित्र को जायेगा, उसको परिवार–सहित श्रीविश्वम्भर देव वरदान देंगे। विश्वम्भर नाम जगत् में बड़ा दुर्लभ है। वे प्रभु श्रीचैतन्यचन्द्र ही सबके प्राणधन हैं। श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल श्रीचरणों का कुछ यशोगान कर रहे हैं।

(७४) गौः भाः—जो उन्हीं नित्यानन्द के आनुगत्य में गौरसुन्दर की सेवा में तत्पर होकर उनकी कथा का कीर्तन करते हैं, उनको बन्धु–बाधुवों के साथ महाप्रभु वरदान देते हैं।

(७५) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव विश्व के सर्वस्व और चतुर्दश भुवनों के प्राणस्वरूप हैं। 'विश्वम्भर' नाम संसार में बड़ा ही दुर्लभ है। वे विश्वम्भर ही श्रीचैतन्य हैं श्रीविश्वम्भर के प्रियतम सेवक श्री नित्यानन्द–चरणाश्रय की महिमा का गान करने वाले व्यक्ति भी दुर्लभ हैं। सभी के वैसे सौभाग्य के उदय की सम्भावना नहीं है। इसलिए ही विश्वम्भर–नाम का दुर्लभत्व है।

इति गौड़ीय–भाष्य में चतुर्थऽधयाय समाप्त

O

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीवास के गृह में व्यापूजा का अधिवास-कीर्तन, महाप्रभु का बलदेव-भाव एवं अद्वैत आचार्य को बुलवान के छल से अपने अवतार-मर्म का प्रकाश, नित्यानन्द का अपने हाथों से अपने दण्डकमण्डलु तोड़ना, श्रीवास के आचार्यत्व में नित्यानन्द की व्यासपूजा-लीला, श्रीगौरसुन्दर का नित्यानन्द को अपने षड्भुज-स्वरूप का प्रदर्शन, नित्यानन्द की मूर्च्छा, नित्यानन्द का स्वरूप, विष्णु-वैष्ाव तत्त्व, व्यास पूजा में कीर्तनानन्द आदि विषय वर्णित हुये है।

श्रीमन् महाप्रभु द्वारा नवद्वीप लीला के समय एकदिन नित्यानन्द के समक्ष व्यासपूजा का प्रस्ताव प्रस्तुत करने पर नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु का संकेत पाकर श्रीवास गृह में व्यासपूजा-सम्पादन का अभिप्राय प्रकट किया। महाप्रभु द्वारा इस प्रकार के गुरुत्तर कार्य का भार ग्रहण करने के विषय में पूछने पर श्रीवास पण्डित ने परमानन्द से उसका अनुमोदन किया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवास के कथन से आनन्दित होकर नित्यानन्द आदि प्रमुख भक्तों को साथ लेकर श्रीवास के गृह में प्रवेश किया एवं घर का द्वार बन्द करके व्यासपूजा का अधिवास कीर्तन आरम्भ किया। नित्यानन्द प्रभु के बलदेव के भाव से आविष्ट होकर विष्ाु-सिंहासन पर जाकर बैठ गये एवं नित्यानन्द प्रभु से बलदेव के हाथ में स्थित हल और मूसल देने की प्रार्थना की। नित्यानन्द प्रभु ने उनके हाथों में हल और मूसल पकड़ा दिये। उस समय किसी-किसी ने प्रभु नित्यानन्द को महाप्रभु के लिए हल और मूसल देते हुये प्रत्यक्ष रूप से देखा और किसी ने केवल हाथों के ही दर्शन किये। बलराम-भाव मे स्थित महाप्रभु-द्वारा 'वारुणी' माँगने पर, भक्तगण प्रथम तो कर्तव्य निश्चित करने में असमर्थ रहे; किन्तु बाद में उन्होंने युक्ति निर्धारण करके महाप्रभु के हाथों में गंगाजल से भरा पात्र प्रदान कर दिया। महाप्रभु ने भी गंगाजल को कादम्बरी (मदिरा) समझ कर पी लिया। भक्तगण महाप्रभु के तात्कालिक भाव की के तात्कालिक भाव की प्रीति के उद्देश्य से बलदेव-स्तुति द्वार उनका स्तवन करने लगे। फिर महाप्रभु 'नाड़ा', 'नाड़ा' कहकर किसी का आह्वान करने लगे। भक्तगण प्रभु के सम्बोधन को समझने में जब असमर्थ रहे तो उन्होंने प्रभु से पूछा। महाप्रभु ने कहा कि, अद्वैत आचार्य ही—'नाड़ा' हैं, वे अद्वैत की हुंकार से ही गोलोक से भूलोक पर युगधर्म नाम-संकीर्तन का प्रचार करने के लिए अवतीर्ण हुये हैं। विद्या, धन, यश, तपस्या और कुल के अभिमान में मत्त वैष्णवापराधी को छोड़कर अन्य सभी को वे ब्रह्मादिकों को दुर्लभ प्रेमभक्ति-रस का वितरण करेंगे। भक्तगण उसे सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुये। महाप्रभु ने भक्तजनों का प्रेमालिंगन करके जब अपने इस चांचल्य के लिए उनसे क्षमा प्रार्थना की तो भक्तजन अपना हास्य न रोके

सके। नित्यानन्द प्रभु द्वारा प्रेमरस में विह्वल होकर अत्यन्त चाचंल्य प्रदर्शित करने पर महाप्रभु ने उन्हें स्थिर कराया और अपने घर चले गये। भक्तजन भी अपने-अपने घरों को चले गये। नित्यानन्द प्रभु श्रीवास के घर में ही रहे। उन्होंने रात में हुँकार करते हुये अपने दण्ड-कमण्डलु तोड़-फोड़कर फेंक दिये। प्रातः रामाइ पण्डित ने यह सब देखकर इस विषय में श्रीवास पण्डित से कहा। श्रीवास ने उसे घटना को बताने के लिए रामाइ को महाप्रभु के पास भेजा।

महाप्रभु सुनते ही श्रीवास के घर आये एवं भग्न दण्ड-कमण्डलु उठाकर नित्यानन्द तथा अन्य भक्तजनों सहित गंगास्नान को चल दिये एवं दण्ड-कमण्डलु को गंगा में प्रवाहित कर दिया। गंगास्नान के समय नित्यानन्द प्रभु द्वारा विविध चांचल्य प्रकाशित करने पर महाप्रभु व्यासपूजा सम्पादन के लिए शीघ्र स्नान समापन का आदेश देकर उन्हें अपने साथ घर वापस ले आये। भागवतजन उपस्थित होकर वहाँ कृष्णकीर्तन करने लगे। उसके पश्चात् व्यासपूजा के आचार्य श्रीवास पण्डित ने यथाविधि समस्त पूजन-कार्य सम्पन्न करके नित्यानन्द के हाथ में माला देकर मंत्रोच्चारण सहित व्यासदेव के लिए नमस्कार करने को कहा। पर नित्यानन्द प्रभु ऐसा न करके माला हाथ में लेकर चारों तरफ देखने लगे। श्रीवास ने महाप्रभु को बुलाकर नित्यानन्द के विषय में जब उनसे निवेदन किया तो श्रीमन्महाप्रभु ने वहाँ उपस्थित होकर नित्यानन्द प्रभु को व्यासपूजा करने का आदेश दिया। उस पर नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु के मस्तक पर माला प्रदान कर दी। महाप्रभु तत्क्षण षड्भुजमूर्ति के रूप में प्रकट हो गये। नित्यानन्द प्रभु षड्भुजमूर्ति के हाथों में शंख, चक्रादि अस्त्र समूह का दर्शन करके संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पड़े। नित्यानन्द को जाग्रत करके महाप्रभु कहने लगे कि, "नित्यानन्द की कृपा के बिना कोई भी प्रेमभक्ति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। नित्यानन्द के प्रति द्वेष रखने वाला व्यक्ति महाप्रभु का भजन करने पर भी महाप्रभु का प्रिय नहीं हो सकता।" नित्यानन्द गौरसुन्दर के कथन से चैतन्य प्राप्तकर उनकी षड्भुजमूर्ति के दर्शन से बड़े आनन्दित हये। साक्षात् बलराम नित्यानन्द प्रभु, सृष्टि-स्थिति-प्रलय के एकमात्र कारण हैं एवं नित्य-सत्ताविशिष्ट होने पर भी हर अवतार मे कृष्णदास्य की शिक्षा देना ही उनका नित्य स्वभाव है। कृष्ण अवतार में यद्यपि बलराम ज्येष्ठ थे, फिर भी उन्होंने हृदयस्थ दास्यभाव का परित्याग नहीं किया। बलराम और नित्यानन्द में भेद मानना अत्यन्त मूढ़ता और अपराधजनक है। सेवाविग्रह का अनादर करने से विष्णु स्थान में अपराध होता है। ब्रह्मा-महेश्वरादि की वन्दनीया होने पर भी कमला मिस प्रकार भगवान् की चरणसेवा में ही विशेष रति रखती हैं, उसी प्रकार नित्य सेव्य विग्रह श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा करना ही सर्वशक्तिमान बलदेव का नित्य स्वभाव है और सेवाविग्रह बलराम का यशः कीर्तन करना ही सेव्यविग्रह कृष्ण का नित्य स्वभाव है। परमार्थ में दोनों एक दूसरे के सर्वक्षण दर्शन करते रहने पर भी वे अवतार के अनुरूप जिन लीलाओं को करते रहते हैं, वे अचिन्त्य हैं। ईश्वर का लीला समूह ही-वेद है। भक्तियोग के बिना उसे समझा नहीं जा सकता है। गौरसुन्दर की कृपा से उनके अनुगत हुये कुछ विशिष्ट व्यक्ति ही भगवान् की लीला कथाओं को जान पाते हैं। भगवान् के नित्यसेवा-विग्रह वैष्णवजन परम ज्ञानवन्त

होते हैं, उनकी पारस्परिक कलह–लीला केवल कौतुक–मात्र है। इसको देखकर यदि कोई एक का पक्ष लेकर दूसरे पक्ष की निन्दा करता है तो उसकी अधोगति हो जायेगी। वैष्णव–हिंसा की बात तो दूर रही, यदि कोई व्यक्ति सभी प्राणियों में विष्णु का अधिष्ठान न जानकर जीवहिंसा करता है, तो प्राकृत बुद्धि से की गई उसकी विष्णुपूजा निष्फल हो जाती है एवं जीवहिंसा के कारण वह अशेष दुर्गति को प्राप्त होता है। प्रजापीड़न की अपेक्षा वैष्णव–निन्दा से सौ गुना अधिक पाप संचित होता है। इसलिए वैष्णव–अपराधी का कभी भी मंगल नहीं होता है। इसलिए वैष्णव–अपराधी का कभी भी मंगल नहीं होता है। जो श्रद्धापूर्वक अर्चामूर्ति में विष्णु की पूजा करते हैं, किन्तु विष्णुभक्तों का आदर नहीं करते हैं अथवा सब जीवों के प्रति दया का भाव नहीं रखते हैं वे भक्ताधम या प्राकृतभक्त हैं। व्यासपूजा की समाप्ति के बाद महाप्रभु ने भक्तजनों को कीर्तन करने का आदेश दिया। नित्यानन्द एवं महाप्रभु भक्तों–सहित महामत्त होकर कीर्तन में नृत्य करते–करते विभिन्न सात्विक भावों का प्रदर्शन करने लगे। शचीमाता विपुल (अधिक) पुलक–सहित वह सब देख रही थीं। वे नित्यानन्द और गौरसुन्दर दोनों को देखकर उन्हें अपना पुत्र समझने लगीं। व्यासपूजा के आनन्द में दिन समाप्त होने पर महाप्रभु ने श्रीवास पण्डित के निकट व्यासजी के नैवेद्य माँगकर सब भक्तों को अपने हाथों से प्रसाद वितरण किया। भागवतजनों ने परमानन्द के साथ उसको ग्रहण किया। श्रीवास के दास और दासियों को भी महाप्रभु नक प्रसाद प्रदान किया।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

जय नवद्वीप–नवप्रदीप—
प्रभावः पाषण्डगजैकसिंहः।
स्वनामसंख्याजपसूत्रधारी
चैतन्यचन्द्रो भगवान्मुरारिः ॥१॥
जय जय सर्वप्राणनाथ विश्वम्भर।
जय नित्यानन्द–गदाधरेर ईश्वर॥२॥
जय जय अद्वैतादि–भक्तेर अधीन।
भक्तिदान देह' प्रभु उद्धारह दीन॥३॥

(१) अन्वय—नवद्वीप–नवप्रदीपप्रभावः (नव प्रदीपस्य नूतनदीपस्य प्रभाव इति नवप्रदीपप्रभावः, नवद्वीपस्य तदाख्यधाम्नो नवप्रदीपप्रभावः, तद्धाम्नो नूतनोज्ज्वलदीपस्वरूप इत्यर्थः,यद्वा नवसंख्यक–द्वीपात्मकस्य धाम्नो नवसु द्वीपेषु नवसंख्यकप्रदीप–प्रभावो नवसंख्यक दीप–स्वरूप इत्यर्थः) पाषण डगजैकसिंहः (पाषण्डा नास्तिका दुर्ज्जना गजाः इव तेषां दलने एकः प्रधानोऽद्वितीयों वा सिंहस्वरूपः इत्यर्थः) स्वनाम–संख्याजप–सूत्रधारी (स्वनाम्नां 'हरेकृष्ण' इति षोडशस्वनाम्नां संख्यया संख्याक्रमेण जपः तस्य सूत्रं जपसंख्यारक्षार्थं मालिका सूत्रं ग्रन्थिसूत्रं वा तत् धरति यः स एवंविधः) चैतन्यचन्द्रः (अस्यां नवद्वीपलीलायां चैतन्यनाम्ना प्रसिद्धोऽवतारी) भगवान् मुरारिः (श्रीकृष्णः) जय (विजयतामित्यर्थः)।

(१) अनुवाद—जो नवद्वीप के नवीन प्रदीस्वरूप हैं, जो पाखण्डीरूपी हाथियों का दमन करने के लिए अद्वितीय सिंह–सदृश हैं एवं जो "हरेकृष्ण" इत्यादि निजनाम समूह की जप–संख्या की रक्षा क निमित्त (गिनती रखने हेतु) ग्रन्थिविशिष्ट सूत्र धारण किये हुये हैं वे ही चैतन्यचन्द्र नामक भगवान् मुरारि जययुक्त हों।

(२–३) प. अनु०—सबके प्राणनाथ विश्वम्भर की जय हो, जय हो। नित्यानन्द, गदाधर के ईश्वर की जय हो, जय हो। अद्वैतादि

भक्तों के अधीन रहने वाले की जय हो, जय हो। हे प्रभो! आप भक्ति का दान करके दीनों का उद्धार करो।

(३) गौः भाः—"जो भक्तिहीन हैं, उन सब अज्ञानी अभक्तजनों को कृष्णसेवा-प्रवृत्ति प्रदान करके उनका संसार के सुखभोग से उद्धार करो।"—श्रीअद्वैत की इस अभिलाषा के अनुसार ही जगत् में भक्ति का प्रचार करने के लिए भगवान गौरसुन्दर अवतीर्ण हुये हैं। निमित्त प्रपंच में उनके आगमन का कारण हुआ है, इसलिए अद्वैत की प्रार्थना पूर्ण करने के कारण गौरसुन्दर उनके अधीन हैं।

तथ्य—"प्रसारित-महाप्रेम-पीयूष-रस-सागरे। चैतन्य-चन्द्रे प्रकटे जो दीनो दीन एव सः॥-" (चैतन्यचन्द्रामृत)।

नित्यानन्द के साथ भक्तों का कृष्णकथा—रस में विह्वल रहना—

हेनमते नित्यानन्द-संगे कुतुहले।
कृष्णकथा-रसे सबे हइला विह्वले॥४॥
सबे महाभागवत परम उदार।
कृष्णरसे मत्त सबे करेन हुँकार॥५॥
हासे प्रभु नित्यानन्द चारिदिके देखि'।
बहये आनन्द-धारा सबाकार-आँखि॥६॥

(४-६) प. अनु०—इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ कौतुहल पूर्वक श्रीकृष्णकथा-रस का आस्वादन करते हुये सब भक्तजन विह्वल हो गये। वे सब महाभागवत हैं, परम उदार हैं और कृष्णरस में उन्मत्त होकर वे सब हुये हुँकार कर रहे हैं। नित्यानन्द प्रभु चारों तरफ देखते हुये हँस रहे हैं एवं सबके नेत्रों से आनन्द की धाराएँ बह रही हैं।

महाप्रभु का नित्यानन्द के समक्ष व्यासपूजा का प्रस्ताव—

देखिया आनन्द महाप्रभु विश्वम्भर।
नित्यानन्द-प्रति किछु करिला उत्तर॥७॥
''शुन शुन नित्यानन्द श्रीपाद गोसाईं।
व्यास-पूजा तोमार हइवे कोन् ठाञि?८॥
कालि हैवे पौर्णमासी व्यासेर पूजन।
आपने बुझिया बल, यारे लय मन॥''९॥

(७-९) प. अनु०—इस अपूर्व आनन्द को देखकर महाप्रभु विश्वम्भर ने नित्यानन्द से कुछ ऐसा कहा "श्रीपाद गोसाईं, नित्यानन्द! सुनिये! आपकी व्यासपूजा किस जगह होगी? कल आषाढ़ी पूर्णमासी है, व्यासपूजा की तिथि है। जहाँ आपकी इच्छा हो, वह सोच-समझकर आप बता दें।

(८) गौः भाः—व्यासपूजा,—संवित् शक्ति-अधिष्ठित अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दन का अभिज्ञान-विग्रह 'वेद' नाम से प्रसिद्ध है। श्रीभगवान् की त्रिविध शक्तियों के अन्तर्गत जीव-शक्ति में चेतन-धर्म का वैशिष्ट्य वर्तमान है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के विलास में ही अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दन अवस्थित हैं। मूर्त्तिमान् वेद भगवान् शब्दादर्शरूप से अक्षरयुक्त होकर अभिधेय वेदशास्त्र के रूप में प्रकटित हैं। सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-तत्त्वात्मक वेदशास्त्र जिस समय से अद्वयज्ञान-रूप सविशेष धर्म का परित्याग कर देते हैं। जो लोग जड़ विशेष की ही प्रधानता स्थापित करते हैं, उनकी जड़ता में सिद्धिरूप निर्विशेष विचार उनके अस्तित्व का विनाश कर देता है। श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास ने वेद को तीन प्रकार के विभागों किया है। जड़ीय ज्ञानवादी लोगों के लिए ऋक् साम औ यजुः वेद हैं, जो जीवों को कर्मकाण्ड में आबद्ध करते हैं। इस प्रकार वेद के प्रकृत

(असल) तात्पर्य के विषय में वे विवर्त (भ्रम) उन्पन्न करते हैं। निर्विशेषवादियों के विचार से गुरू, लघु प्रभृति विशिष्टता की नित्यता नहीं रहने के कारण वे श्रीवोदव्यास को गुरुरूप से वरण करने में असमर्थ रहते हैं और उन्हें बलपूर्वक उन लोगों के अज्ञानधर्म के मूल प्रचारक के रूप मे मानते हैं। श्रीमद्व्यास के तात्पर्य को समझने में असमर्थ होने के कारण ये लोग प्रच्छन्न बौद्ध प्रकृतिवाद का अवलम्बन लेकर परमेश्वर की सेवा से रहित होते हैं एवं 'मैं स्वगत–सजातीय–विजातीय–भेद से रहित 'ब्रह्म' रूप हूँ', ऐसा चिन्तन करते हैं; उनके साथ मतवैषम्य संस्थापित करते हुये असल गुरुदास्य में अवस्थित श्रीमदानन्द तीर्थ ने श्रीवास के अधस्तन जन के सर्वप्रधान स्थान पर अधिकार किया था। मध्व परम्परा में श्रीमान् लक्ष्मीपति तीर्थ की अथवा श्रीमाधेवन्द्रपुरीपाद की वही कथा हमें देखने को मिलती है। यद्यपि पंचोपासक या मायावादियों के बीच गुरु–पूजा या व्यास–पूजा की प्रथा प्रचलित है, तथापि उस व्यासपूजन में गर्व विचार ही प्रबल है। शुद्धभक्ति के अभाव के कारण उनके द्वारा की गई श्रीव्यासपूजा कभी भी सार्थक नहीं हो सकती। मायावादी–सम्प्रदायों में आषाढ़ी–पूर्णिमा के दिन व्यासपूजा अभिनय का विधान देखा जाता है। श्रुति कहती हैं,—जिस मुहूर्त्त में विराग उपस्थित होगा, उसी मुहूर्त्त में जड़भोगों का अंत होने पर भगवत् सेवा में रुचि होगी। उसमें उपयुक्त और अनुपयुक्त समय का विचार नहीं है। जड़भोगों से निवृत्त होने पर ही जीव परिव्राजक होकर आचार्य के चरणों को ही आश्रय ग्रहण करते हैं। उस आचार्य चरणाश्रय को ही दूसरी भाषा में 'व्यासपूजा' कहते हैं। श्रीव्यासपूजा चारों आश्रमों का ही निश्चित अनुष्ठान है; परन्तु तुर्याश्रमी (संन्यासी) जन इसे यत्न के साथ सम्पादित करते हैं। आर्यावर्त्त में श्रीव्यासदेव के अनुगत सम्प्रदायों के अन्तर्गत जो व्यक्तिगण हैं, वे वेदानुग–सम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी लोग प्रतिवर्ष अपने–अपने जन्म दिन पर पूर्वगुरु की पूजा का विधान करते हैं। पूर्णिमा–तिथि ही—यतिधर्म ग्रहण का प्रशस्त काल है। सविशेषवादी और निर्विशेषवादी सभी गुरुदेव की पूजा करते हैं। इसलिए साधारण रूप से आषाढ़ी–पूर्णिमा को ही गुरु–आविर्भाव की तिथि मानकर व्यासपूजा का आवाहन होता है। श्रीगौड़ीय मठ के सेवकगण प्रतिवर्ष माघी कृष्ण पञ्चमी तिथि में उनके गौरव के पात्र–बोध से श्रीव्यासपूजा का आनुकूल्य रूप से विधान करते हैं। श्रीव्यासपूजा का आनुकूल्य रूप से विधान करते हैं। श्रीव्यासपूजा की पद्धति विभिन्न शाखाओं में थोड़ी–बहुत पृथक् है। चारों आश्रमों में अवस्थित संस्कार–सम्पन्न सभी द्विजगण श्रीव्यासगुरु के आश्रय में रहकर प्रतिदिन स्वधर्मानुष्ठान में श्रीव्यासदेव की थोड़ी बहुत पूजा करते रहते हैं। किन्तु वार्षिक अनुष्ठान के विचार से यह अपने–अपने गुरु की पूजा का स्मारक दिवस है। श्रीव्यासपूजा का नामान्तर है 'पाद्यार्पण' (श्रीगुरुपादपद्मों मेंसमर्पण) और उसका उद्देश्य है उसके द्वारा श्रीगुरुदेव का मनोवाञ्छित सुष्ठु भगवत्–सेवन—यही सूचित करता है। इसीलिए हमारे शुभानुध्यायी निमायक ने पूर्वगुरु श्रील ठाकुर नरोत्तम श्रीरूपानुगरूप से आदिगुरू को अर्घप्रदान करने के उद्देश्य से कहा था,—"श्रीचैतन्य–मनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले। स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्॥" परम कृपा –परवश श्रीचैतन्यदेव की कृष्णप्रेम–प्रदान–लीला,—जिसका श्रीरूप ने अपने अनुयायी जनों के नित्यसेवा की विमुखता–रूप व्याधि से मुक्ति दिलाने

वाली औषध और पथ्य के रूप में निर्देश किया है, वही गौड़ीय की व्यासपूजा का आदर्श उपायन है।

नित्यानन्द का उत्तर—

नित्यानन्द जानिलेन प्रभुर इंगित।
हाथे धरि' आनिलेन श्रीवास पण्डित॥१०॥
हासि' बले नित्यानन्द,—''शुन विश्वम्भर।
व्यास-पूजा एइ मोर वामनार घर॥''११॥

(१०-११) प. अनु०—महाप्रभु के संकेत को नित्यानन्द प्रभु समझ गये और श्रीवास पण्डित का हाथ पकड़कर उन्हें महाप्रभु के सामने ले आये। फिर हँसकर नित्यानन्द प्रभु ने कहा,—"सुनिए विश्वम्भर! मेरी व्यासपूजा इस ब्राह्मण के घर में होगी।"

(१०) गौः भाः—जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभु परिव्राजक के आश्रित और श्रीमध्व-सम्प्रदाय के अनुगत लीलाभिनय करने वाले लक्ष्मीपति यति के ब्रह्मचारी थे। इसलिए प्रत्येक पूर्णिमा को क्षौर-विधान (मस्तक-मुण्डन) के बाद यतिकृत्य विचार से व्यासपूजा का दिन आ गया है, यह मालूम हुआ। श्रीमहाप्रभु ने पूर्णिमा तिथि आती देखकर, 'श्रीनित्यानन्द प्रभु कहाँ व्यासपूजा करेंगे,' इस विषस में जिज्ञासा की। साम्प्रदायिक संन्यासी या ब्रह्मचारी ही पूर्णिमा तिथि में यति के कृत्य के अन्तर्गत व्यासपूजा करते हैं। श्रीगुरुसेवा की पुष्पांजलि और श्रद्धा (श्रीगुरुवर्ग का तर्पण एवं श्राद्ध) ही 'श्रीव्यासपूजा' का उद्देश्य है। श्रीगौरसुन्दर ने उस समय तक संन्यास ग्रहण की लीला का प्राकट्य नहीं किया था। किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु तीर्थपाद यतिवर के सेवक-लीलाभिनयरूप से नैष्ठिक ब्रह्मचर्यानुष्ठान-लीला में नियुक्त थे। उनके ब्रह्मचारी नाम से हम 'श्रीनित्यानन्द-स्वरूप'—शब्द का प्रयोग देखते हैं। पहले समय में ही 'तीर्थ और 'आश्रम'—इन दोनों यतिओं के ब्रह्मचारीगण 'स्वरूप' नाम से प्रसिद्ध थे।

(११) गौः भाः—वामनार घर—श्रीवास केघरमें।

श्रीवास द्वारा अपने भाव में
व्यासपूजा का आग्रह—

श्रीवासेर प्रति बले प्रभु विश्वम्भर।
''बड़ भार लागिल ये तोमार उपर॥''१२॥
पण्डित बलेन,—''प्रभु किछु नहे भार।
तोमार प्रसादे सर्व—घरेइ आमार॥१३॥
वस्त्र, मुद्‌ग, यज्ञसूत्र, घृत, गुया, पान।
विधियोग्य यत सज्ज सब विद्यमान॥१४॥
पद्धतिपुस्तक मात्र मागिया आनिव।
कालि महाभाग्य, व्यासपूजन देखिव॥''१५॥

(१२-१५) प. अनु०—तभी विश्वम्भर प्रभु श्रीवास से बोले कि "यह तो तुम्हारे ऊपर बड़ा भार आ पड़ा"। श्रीवास पण्डित ने कहा, —"कुछ भी नहीं है प्रभो! आपकी कृपा से मेरे घर में सब कुछ है।"वस्त्र, मूँग, यज्ञोपवीत, घी, सुपारी और पान इत्यादि सब पुस्तक नहीं है—सो माँग कर ले आऊँगा। यह तो मेरा बड़ा भाग्य है, जो मैं कल व्यासपूजा के दर्शन करूँगा।"

(१५) गौः भाः—नाना प्रकार के यति-सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न प्रकार की श्रीव्यासपूजा पद्धतियाँ प्रचलित हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जो व्यासपूजा-पद्धति प्राप्त की थी, उनके अनुसार ही श्रीवास के घर में व्यासपूजा होगी, यह निश्चित हुआ।

श्रीवास के वचनों से महाप्रभु
और भक्तजनों की प्राप्ति—

प्रीत हैला महाप्रभु श्रीवासेर बोले।
'हरि हरि' ध्वनि करे वैष्णव सकले॥१६॥

(१६) प. अनु०—श्रीवास के वचनों से श्रीमहाप्रभु बड़े प्रसन्न हुये और सब वैष्णवों ने 'हरि–हरि' ध्वनि की।

भक्तजनों के साथ महाप्रभु का श्रीवास–गृह में गमन—

विश्वम्भर बोले,—''शुन श्रीपाद गोसाईं।
शुभ–कर, सबे पण्डितेर घर याइ॥''१७॥
आनन्दित नित्यानन्द प्रभुर वचने।
सेइ क्षणे आज्ञा लइ' करिला गमने॥१८॥
सर्वगणे चलिला ठाकुर विश्वम्भर।
रामकृष्ण बेड़ि' येन गोकुलकिंकर॥१९॥
प्रविष्ट हइला मात्र श्रीवासमन्दिरे।
बड़ कृष्णानन्द हैल सबार शरीरे॥२०॥

(१७–२०) प. अनु०—श्रीविश्वम्भर प्रभु बोले,—"सुनिये श्रीपाद गोसाईं, हम सब पण्डित श्रीवास के घर चलें।" प्रभु के वचन से आनन्दित होकर नित्यानन्द प्रभु आज्ञा लेकर तत्काल चल दिये। सबको साथ लेकर ठाकुर विश्वम्भर भी चल पड़े। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे ग्वाल–बाल बलराम और कृष्ण को घेर कर चल रहे हों। श्रीवास पण्डित के घर में प्रवेश करते ही सबके शरीर में कृष्णानन्द छा गया।

महाप्रभु की आज्ञा से निजजनों के अतिरिक्त औरों के लिए द्वारा बन्द—

कपाट पड़िल तबे प्रभुर आज्ञाय।
आप्तगण बिना आर याइते ना पाय॥२१॥

(२१) प. अनु०—तब प्रभु की आज्ञा से किवाड़ बन्द कर दिये गये, जिसमें निजजनों के अतिरिक्त और कोई भीतर न आ सके।

(२१) गौः भाः—श्रीगौर–नित्यानन्द ने श्रीवास के घर में प्रवेश करते ही बाहर का द्वार बन्द करने का आदेश दिया। तब श्रीवास के घर में प्रभु के अनुगत भक्तों को छोड़कर और कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सका। श्रीगौरसुन्दर के सभी अनुष्ठान कीर्तन–द्वारा साधित होते थे। इसलिए इस आनुष्ठानिक क्रिया का दर्शन करने की जिनकी योग्यता नहीं थी, उनको रोकने के लिए द्वार में सांकल लगा दी गई।

व्यासपूजा का अधिवास–कीर्तनानन्द—

कीर्तन करिते आज्ञा करिला ठाकुर।
उठिल कीर्तनध्वनि, बाह्य गेल दूर॥२२॥
व्यास–पूजा–अधिवास उल्लास कीर्तन।
दुइ प्रभु नाचे, बेड़ि' गाय भक्तगण॥२३॥
चिर दिवसेर प्रेमे चैतन्य–निताइ।
दोंहे दोंहा ध्यान करि' नाचे एक ठाञि॥२४॥
हुँकार करये केह, केह वा गर्जन।
केह वा मूर्च्छा याय, केह करये क्रन्दन॥२५॥
कम्प, स्वेद, पुलकाश्रु, आनन्द–मूर्च्छा यत।
ईश्वरेर विकार कहिते जानि कत॥२६॥
स्वानुभावानन्दे नाचे प्रभु दुइजन।
क्षणे कोलाकुलि करि' करये क्रन्दन॥२७॥
दोहाँर चरण दोंहे धरिवारे चाय।
परम चतुर दोंहे केह नाहि पाय॥२८॥
परम आनन्दे दोंहे गड़ागड़ि याय।
आपना ना जाने दोंहे आपन लीलाय॥२९॥
बाह्य दूर हइल, वसन नाहि रय।
धरये वैष्णगण, धरण ना याय॥३०॥
ये धरये त्रिभुवन, के धरिव ता'रे।
महामत्त दुइ प्रभु कीर्तने विहरे॥३१॥
'बोल, बोल' बलि' डाके श्रीगौरसुन्दर।
सिंचित आनन्द–जले सर्व–कलेवर॥३२॥

चिरदिने नित्यानन्द पाइ' अभिलाषे।
बाह्य नाहि, आनन्द सागर–माझे भासे॥३३॥
विश्वम्भर नृत्य करे अति मनोहर।
निज शिर लागे गिया चरण–उपर॥३४॥
टलमल भूमि नित्यानन्द पदतले।
भूमिकम्प हेन माने वैष्णव सकले॥३५॥
एइमत आनन्दे नाचेन दुइ नाथ।
से उल्लास कहिवारे शक्ति आछे कात॥३६॥

(२२–३६) प. अनु०—तब महाप्रभु ने कीर्तन करने की आज्ञा दी। कीर्तन–ध्वनि शुरू होते ही सबका बाह्यज्ञान चला गया। व्यासपूजा के अधिवास कीर्तन के उल्लास में दोनों प्रभु नाचने लगे और भक्तगण उनको घेर कर कीर्तन करने लगे। श्रीचैतन्य और निताइ (नित्यानन्द) का प्रेम चिरकालीन है। वे दोनों एक दूसरे का ध्यान करते हुये एक ही स्थान पर नाच रहे थे। उनमें से किसी ने हुँकार किया तो किसी ने गर्जन। कोई मूर्च्छित हो गया तो कोई क्रन्दन करने लगा। कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु, आनन्द–मूर्च्छा आदि ईश्वर के उन प्रेमविकारों को भला मैं कहाँ तक कह सकता हूँ। दोनों प्रभु अपने–अपने भाव के आनन्द में नाचने लगे। और कभी–कभी परस्पर आलिंगन करके क्रन्दन भी करने लगे और कभी दोनों ने एक दूसरे के चरणों को पकड़ना चाहा, परन्तु दोनों ही परम चतुर हैं, अतएव कोई किसी के चरण भूमि पर लोट–पोट होने लगा। अपनी लीला के आवेश में दोनों ही अपने आपको भूल गये। उनका बाहरी ज्ञान जाता
रहा, वस्त्र शरीर पर नहीं रहे। वैष्णवगण दोनों को पकड़ना चाहते थे, पर वे पकड़ मैं नहीं आ रहे थे। जो त्रिभुवन को धारण करने वाले हैं, उनको भला कौन धारण कर सकता है? महामत्त होकर दोनों प्रभु कीर्तन में विहार करने लगे। 'बोलो' कहते हुये श्रीगौरसुन्दर उच्च ध्वनि करने लगे। प्रेमानन्द के जल से उनका सारा भीग गया। उधर श्रीनित्यानन्द भी चिरकालिक मनोवांछित वस्तु को प्राप्त करके बाह्य ज्ञान–शून्य हो गये और आनन्द के सागर में बहने लगे। प्रभु विश्वम्भर अति मनोहर नृत्य करने लगे। उनका मस्तक उनके चरणों में जाकर लगने लगा। नित्यानन्द के चरणों के भार से पृथ्वी कम्पित होन लगी। यह देखकर सब वैष्णवजनों ने समझा कि भूकम्प हो रहा है। इस प्रकार जिस आनन्द में दोनों प्रभु नाच रहे थे, उसके उल्लास का वर्णन करने की शक्ति किस में है?

(२२) गौः भाः—श्रीव्यासपूजा प्रारम्भ करने से पूर्व श्रीगौरसुन्दर ने भक्तों को कीर्तन करने की आज्ञा दी। प्रभु के अंतरंग सेवकों केअतिरिक्त और किसी को व्यासपूजा के अधिवास–कीर्तन में प्रवेश का अधिकार नहीं दिया गया था। गौरप्रभु की आज्ञा से जब भक्तों ने उच्च स्वर से कीर्तन आरम्भ किया, तब बाह्य जगत् की सब प्रकार की चिन्ताएँ एवं अनुभूतियाँ समाप्त हो गईं।

(२३) गौः भाः—व्यासपूजा होगी, इसलिए भक्तगणों के उल्लासमय कीर्तन में श्रीगौर–नित्यानन्द दोनों ने नृत्य आरम्भ किया। भक्तजन उनको घेरकर दोनों ने नृत्य आरम्भ किया। भक्तजन उनको घेरकर कीर्तन का आनन्द लेने लगे।

(२४) गौः भाः—श्रीचैतन्य और नित्यानन्द, —दोनों नित्यकाल से परस्पर प्रीतिसम्बन्ध में आबद्ध हैं। एक दूसरे के ध्यान में संलग्न रहकर उन्मत्त भाव से एक स्थान में नृत्य करते हैं। भगवान्—सेवक (भक्त) के ध्यान मे मस्त और भक्त हैं। इस 'ध्यान' शब्द का

तात्पर्य केवल जड़चिन्तनपरक नहीं हैं। चिन्मय अनुशीलन को 'ध्यान' शब्द से उद्दिष्ट किया जाता है अर्थात् उस में जड़-स्थूल-भाव-रहित केवल चिद्विलास ही अवस्थान करता है। जिस प्रकार जड़ेन्द्रिय-समूह अपने आकर (मूल वस्तु) मन की सेवा करने के उद्देश्य से स्थूल जगत् से सूक्ष्म-भाव में वस्तु-विषयक भावसमूह ग्रहणपूर्वक जड़-स्थूल भोग कामना का त्याग करके केवल नित्य चिन्मय वस्तु (भगवान्) की प्रसन्नता का विधान करने पर चिद्विलास की विचित्रता जगत् में अवतीर्ण होती है। जगत् से उत्पन्न हुआ काम, इस प्रकार अवतीर्ण चिन्मय काम से अलग है।

(२५) गौः भाः—बद्धजीव के हृदय में चेतना हे उदय होने पर शारीरिक विकार-समूह की उत्पत्ति होती है। उसे समय उसकी जागतिक अनुभूति लुप्त हो जाती है और चिद्विलास की विचित्रता बाहरी जगत् पर व्यास हो जाती है। इस अभिनय के आदर्श को प्रदर्शित करने के लिए श्रीचैतन्यलीला में प्रकृति से परे चतुर्दश भुवनों के ऊपर परिव्याप्त श्रीगौरसुन्दर ने गोष्ठी-सहित प्रेम के साथ नृत्य किया था। स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन माया-बद्ध जीवों के अज्ञान-अंधकार को नष्ट करने के लिए जिन लोकातीत लीलाओं को जगत-प्रपचं में प्रकट कर रहे हैं, उनमें जागतिक बद्धभाव आरोपित करना बिलकुल असंगत है। माया-बद्ध जीव साधन दशा में अवस्थित होकर अप्राकृत भगवत् तत्त्व की गौरवलीला को नहीं समझ सकता है।

(२८) गौः भाः—साधारण जगत् में जड़ीय अंहकार में मत व्यक्ति के चरण स्पर्श किये जाने पर वह गर्व अनुभव करते हुये स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगता है, किन्तु विष्णु-वैष्णव में इस प्रकार के जड़ीय अहंकार का अभाव होता है। इसलिए वे परस्पर एक-दूसरे के चरण स्पर्श करने में पीछे नहीं रहते। वैष्णवों का अलौकिक कौशल साधारण अहंकार-परायण मानवों की समझ का विषय नहीं है।

(३१) गौः भाः—श्रीगौर-नित्यानन्द, दोनों ही समस्त जगत को धारण करने वाले हैं। जगत् के अन्दर रहने वाले सृष्टामानव समस्त जगत को धारण करने वाले को किस प्रकार धारण कर सकते हैं?

(३३) गौः भाः—चिरदिन—नित्यकाल। जड़ जगत की अनुभूति में तीन प्रकार का ताप विद्यमान रहता है, जबकि चिद्विलास-राज्य की अस्मिता में नित्य नव-नवायमान आनन्द का उल्लास वर्तमान रहता हैं।

निजप्रकाशविग्रह बलदेवतत्व की लीला के प्रदर्शन से महाप्रभु का बलराम-भाव से विष्णु-सिंहासन पर आरोहण—

नित्यानन्द प्रकाशिते प्रभु का विश्वम्भर।
बलराम-भावे उठे खट्टार उपर॥३७॥
महामत्त हैला प्रभु बलराम भावे।
'मद आन, मद आन,' बलि' घन डाके॥३८॥

(३७-३८) प. अनु०—तब विश्वम्भर प्रभु नित्यानन्द के स्वरुप को प्रकाशित करने के लिए बलराम के भावावेश में श्रीविष्णु के सिंहासन पर विराजमान हो गये। बलराम के भाव में प्रभु महामत्त हो गये और 'मद लाओ' कहकर बारम्बार पुकारने लगे।

(३७) गौः भाः—यद्यपि विश्वम्भर बलदेव तत्व नहीं हैं हैं, तथापि अपने प्रकाश-स्वरूप बलदेव के भाव को ग्रहण करके वे सिंहासन पर विराजमान हुये। श्रीनित्यानन्द—बलदेवतत्त्व हैं। बलदेव-तत्त्व में जो लीला-समूह वर्तमान है, उनका प्रदर्शन करने के उद्देश्य से स्वयं-रूप

ब्रजेन्द्रनन्दन ने बलदेव के भाव से विभाजित होने की लीला का प्रदर्शन किया।

महाप्रभु-द्वारा नित्यानन्द से हल-मूलक देने की प्रार्थना और नित्यानन्द प्रभु-द्वारा उन्हें पदान करना—

नित्यानन्द-प्रति बले श्रीगौरसुन्दर।
झाट देह' मोरे हल-मूषल सत्वर॥३९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा प्रभु नित्यानन्द।
करे दिला, कर पाति' लइया गौरचन्द्र॥४०॥

(३९-४०) प. अनु०—फिर नित्यानन्द से गौरसुन्दर बोले,—"शीघ्र ही मुझे हल-मूसल दो।" नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु की आज्ञा पाकर हल-मूसल उनके हाथों में दे दिये और उन्होंने ले लिये।

(४०) गौः भाः—श्रीगौरहरि की आज्ञा पाकर नित्यानन्द प्रभु ने अपने हाथों से श्रीगौरसुन्दर के हाथों में उनके प्रार्थित हल-मूसल आदि प्रदान किये। स्वयं श्रीगौरसुन्दर ने भी अपने श्रीकरकमलों से उन्हें ग्रहण किया।

किसी-किसी को हल-मूसल का प्रत्सक्ष दर्शन, किसी को केवल शून्य हाथों-द्वारा आदान-प्रदान-दर्शन—

कर देखे केह, आर किछुइ ना देखे।
केह वा देखिल हल-मूसल प्रत्यक्षे॥४१॥

(४१) प. अनु०—किसी को तो सिर्फ हाथ ही दिखाई दिये और कुछ भी नहीं दिखाई दिया। किन्तु किसी-किसी ने प्रत्यक्ष भाव से हल-मूसल देखे।

(४१) गौः भाः—किसी-किसी दर्शक ने हल-मूसल आदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखे, केवल परस्पर एक दूसरे के हाथों में आदान-प्रदान की क्रिया-किसी ने हल-मूसल आदि के प्रत्यक्ष रूप से दर्शन किये।

प्रभु की कृपा से ही प्रभुतत्त्व का ज्ञान—

या'रे कृपा करे, सेइ ठाकुरे से जाने।
देखिलेओ शक्ति नाहि कहिते कथने॥४२॥
ए बड़ निगूढ़ कथा केह मात्र जाने।
नित्यानन्द व्यक्त सेइ सर्व-जन-स्थाने॥४३॥

(४२-४३) प. अनु०—जिन पर वे प्रभुकृपा करते हैं वे ही उनको जान सकते हैं। केवलमात्र देखने भर से उनके स्वरूप का वर्णन करने की शक्ति किसी में नहीं है। यह पूर्वोक्त चरित-कथा अति गूढ़ है। इसे कोई बिरला ही जान सकता है और उन्हीं सब भाग्यवानों के समक्ष नित्यानन्द प्रकाशित हैं।

(४२) गौः भाः—तथ्य—"पश्यमानोऽपि तु हरिं न तु वेत्ति कथञ्चन। वेत्ति किञ्चित् प्रसादेन हरेरथ गुरोस्तथा"॥—(ब्रह्मतर्क में)। "अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि। जानाति तत्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥"—(भाः १०/१४/२९)। "चक्षुर्विना यथा दीपं यथा दर्पणमेव च। समीपस्थं न पश्यन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः॥ (पाद्मोत्तर खण्ड में ५० अः)।

महाप्रभु की वारुणी के लिए प्रार्थना औरभक्त-प्रदत्त गंगाजल के पान से कादम्बरी-ज्ञान।

नित्यानन्द-स्थाने हल-मूसल लइया।
'वारुणी' 'वारुणी' प्रभु डाके मत्त हञा॥४४॥
कारो बुद्धि नाहि स्फुरे, ना बुझे उपाय।
अन्योन्ये सबार वदन सबे चाय॥४५॥
युकुति करये सबे मनेते भाविया।
घट भरि' गंगाजल सबे दिल लैया॥४६॥
सर्वगणे देय जल, प्रभु करे पान।
सत्य येन कादम्बरी पिये, हेन ज्ञान॥४७॥

(४४–४७) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द से हल–मूसल ग्रहण करते हुये प्रभु मतवाले होकर 'वारुणी' 'वारुणी' कहकर पुकारने लगे। उस समय किसी की बुद्धि ने काम नहीं किया और ऐसी हालत में क्या करना चाहिये, यह भी किसी की समझ में नहीं आया। बस, सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। फिर सबने मन्त्रणा करके एक घड़ा–भर गंगाजल प्रभु को दे दिया। सब लोग जल दे रहे थे और प्रभु पी रहे थे और समझ रहे थे कि सचमुच ही कादम्बरी (वारुणी) पी रहा हूँ।

(४४–४५) गौः भाः—नित्यानन्द से गौरचन्द्र ने बलदेव का हल–मूसल आदि ले लिया और फिर उच्च स्वर से 'वारुणी' 'वारुणी' कहकर 'मद्य' माँगने लगे। पास का श्रोता–वर्ग यह नहीं समझ सका कि 'मद्य' 'वारुणी' आदि शब्दों द्वारा कौन–सी वस्तु लाने का निर्देश दिया जा रहा है। श्रीगौरचन्द्र किसलिए नित्यानन्द से मद्य की प्रार्थना कर रहे हैं, इसे ने समझकर उपस्थित भक्तगण विस्मित होकर एक दूसरे को देखने लगे।

(४७) गौः भाः—कादम्बरी,—[(कु (नील) है अम्बर (वसन) जिनका, कादम्बर (बलराम) + ष्ण स्त्रीलिंग में ईप्] गुड़ से बना हुआ मद्य।

भक्तों द्वारा बलराम का स्तुति–पाठ, महाप्रभु का 'नाहा' 'नाड़ा' उच्चारण एवं भक्तों के जिज्ञासा करने पर 'नाड़ा' के संज्ञा संकेत द्वारा अपने अवतार का मर्म प्रकाश—

चतुर्द्दिके राम–स्तुति पड़े भक्तगण।
'नाड़ा' 'नाड़ा' 'नाड़ा' प्रभु बले अनुक्षण॥४८॥
सघने ढुलाय शिर 'नाड़ा' बले।
नाड़ार सन्दर्भ केह ना बुझे सकले॥४९॥
सबे बलिलेन,—''प्रभु, 'नाड़ा' बल का'रे?''
प्रभु बले,—''आइलुँ मुञि याहार हुँकारे॥५०॥
'अद्वैत आचार्य' बलि' कथा कह या'र।
सेइ 'नाड़ा' लागि' मोर एइ अवतार॥५१॥
मोहारे आनिला 'नाड़ा' वैकुण्ठ थाकिया।
निश्चिन्ते रहिल गिया हरिदास लैञा॥५२॥
संकीर्तन–आरम्भे मोहार अवतार।
घरे घरे करिमु कीर्त्तन–परचार॥५३॥

(४८–५३) प. अनु०—चारों ओर भक्तजन बलराम की स्तुति पढ़ने लगे और प्रभु निरन्तर 'नाड़ा' 'नाड़ा' कहने लगे। प्रभु जोर–जोर से सिर हिलाते हुये 'नाड़ा' 'नाड़ा' कहे जा रहे थे, परन्तु 'नाड़ा' के गूढ़ अर्थ को कोई भी नहीं समझ पाया। तब उन्होंने पूछा,–प्रभु बोले, "जिसकी हुँकार से मैं आया हूँ, जिसे तुम लोग 'अद्वैत आचार्य' कहते हो, उसी 'नाड़ा' के लिए मेरा यह अवतार है। वही नाड़ा मुझे वैकुण्ठ से ले आया और अब वह हरिदास को लेकर वहाँ निश्चिन्त जा बैठा है। संकीर्तन को शुरु करने के लिए ही मेरा यह अवतार है। मैं घर–घर में कीर्तन के प्रचार करूँगा।"

(४८) गौः भाः—राम स्तुति,—बलराम का स्तवन। नाड़ा का अर्थ मध्य २/२६४ संख्या गौड़ीय भाष्य में दिखाया गया है।

(४९) गौः भाः—सन्दर्भ,—तथ्य, गूढ़ार्थ, रहस्य।

"गूढार्थश्च प्रकाशश्च सारोक्तिः श्रेष्ठता तथा। नानार्थवत्त्वं वेद्यत्वं सन्दर्भः कथ्यते बुधैः॥"

(५३) तथ्य—"स्वर्णगौरः सुदीर्घागस्त्रिस्रोत–तीर–संभवः। दयालुः कीर्तनग्राही भविष्याामि कलौ युगे॥"—(सौरपुराण)। "कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगा–स्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्तन–प्रायैर्यजन्ति हि युमेधसः॥"— (भाः ११/५/३२)।

वैष्णव-अपराधी को छोड़कर और सभी को प्रेम-प्रदान करने की प्रभु की प्रतिज्ञा—

विद्या-धन-कुल-ज्ञान-तपस्यार मदे।
मोर भक्तस्थाने या'र आछे अपराधे॥५४॥
से अधम सबारे ना दिमु प्रेमयोग।
नगरिया प्रति दिमु ब्रह्मादिर भोग॥''५५॥

(५४-५५) प. अनु०—विद्या, धन, कुल, ज्ञान, तपस्या आदि कि अभिमान के कारण जिन लोगों ने मेरे भक्तों के प्रति अपराध किया है, उन लोगों को मैं अपना यह प्रेमभक्ति-योग नहीं दूँगा। उनको छोड़कर शेष सभी नगरवासियों को, ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ इस प्रेमयोग को प्रदान करूँगा।

(५४-५५) गौः भाः—विद्याभिमान, धनाभिमान, कुलाभिमान, ज्ञानाभिमान और तपोभिमान से ग्रस्त व्यक्तियों का भगवद्-भक्तों के प्रति अपराध बनता है। ये वैष्णव-अपराधी होने से कृष्णप्रेम के अधिकारी नहीं है। ब्रह्मा आदि को लभ्य इस भगवत्प्रेम को मैं श्रीमायापुर नवद्वीपवासी प्रत्येक जन को प्रदान करूँगा। मानवों की अपेक्षा देवता भगवान को अधिक प्रिय हैं। प्रापंचिक अधिकार समूह देवताओं के स्वरूप का परिचय नहीं है। सभी देवता भगवान की आराधना करते हैं एवं भगवद्-विषयों में प्रीति के तारतम्य के अनुसार उनमें उत्कृष्टता और निकृष्टता देखी जाती है। लक्ष्मीदेवी से श्रीसम्प्रदाय, चतुर्मुख (ब्रह्मा) से ब्रह्म-माध्व-सम्प्रदाय, रुद्रदेव से विष्णु-स्वामी-सम्प्रदाय और चतुःसन (ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों) से निम्बार्क-सम्प्रदाय की उन्पत्ति हुई है। ये साम्प्रदायिक आचार्य-देवगण केवल आधिकारिक परिचय से ही भगवद्-भक्त नहीं है। आदि गुरु का काम करने से उनकी भगवद् उपासना की बात प्रमाणित हुइ है। प्रापंचिक सम्बन्ध में जड़ीय इन्द्रियों पर निर्भर व्यक्तियों के विचारानुसार उनके जड़ भोगों के साथ लिप्त रहने पर भी विशुद्ध हरि-सेवा ही उनका नित्य धर्म है। "जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥"—श्रीकुन्ती देवी के इस वाक्य से जाना जाता है कि 'जन्म' शब्द से कुल, 'ऐश्वर्य' शब्द से धन, 'श्रुत' शब्द से ज्ञान, विद्या और तपस्या का अंहकार लक्षित हुआ है। श्रीहरिकीर्तन के प्रभाव से प्रेमभक्ति प्राप्त होती है। इसलिए जिनका जन्म, ऐश्वर्य, श्रुत और श्री का मद प्रबल है वे भगवान् को, भगवान् का आश्रय ग्रहण करने के लिए, पुकारने में रुचि नहीं रखते हैं। अतः उनको प्रेमभक्ति प्राप्त नहीं होती, परन्तु निष्किञ्जन वैष्णव मद-रूपी शत्रु के वश में नहीं रहते; इसलिए उनकी कृष्णकीर्तन में स्वाभाविक रुचि होती है। विद्या आदि कि अभिमान में मत्त व्यक्ति का वैष्णव-चरणों में अपराध होना स्वाभाविक है; क्योंकि ऐसा होना उसके नैसर्गिक धर्म में देखा जाता है। ब्रह्मा आदि का भोग ही—प्रेमयोग है।

महाप्रभु को बाह्यदशा की प्राप्ति, भक्तों का आलिंगन और अपराध क्षमा-लीला के दर्शन से भक्तों का हास्य एवं नित्यानन्द का प्रेमावेश—

शुनिया आनन्दे भासे सर्वभक्तगण।
क्षणेके सुस्थिर हैला श्रीशचीनन्दन॥५६॥
'कि चांचल्य करिलाङ'—प्रभु जिज्ञासय।
भक्त सब बले'—किछु उपाधिक नय''॥५७॥
सबारे करेन प्रभु प्रेम-आलिंगन।
''अपराध मोर ना लइवा सर्वक्षण''॥५८॥
हासे सर्वभक्तगण प्रभुर कथाय।
नित्यानन्द-महाप्रभु गड़ागड़ि याय॥५९॥

सम्वरण नहे नित्यानन्देर आवेश।
प्रेम–रसे विह्वल हइला प्रभु 'शेष'॥६०॥
क्षणे हासे, क्षणे कान्दे, क्षणे दिगम्बर।
बाल्यभावे पूर्ण हैल सर्व–कलेवर॥६१॥
कोथाय थाकिल दण्ड, कोथा कमण्डलु।
कोथा वा वसन गेल, नाहि आदि–मूल॥६२॥
चंचल हइला नित्यानन्द महाधीर।
आपने धरिया प्रभु करिलेन स्थिर॥६३॥

(५६–६३) प. अनु०—प्रभु के वचनों को सुनकर सब भक्त लोग आनन्द में बहने लगे। कुछ समय पश्चात् महाप्रभु श्रीशचीनन्दन स्थिर होकर पूर्व दशा में आ गये और पूछने लगे कि, "मैंने क्या चंचलता कर डाली है।" सब भक्त बोले, "आपने जो केया, ठीक किया है।" तब प्रभु सबका प्रेमपूर्वक आलिंगन करने लगे और कहने लगे,—"आप लोग कभी भी मेरे अपराध को ध्यान में न लावें।" प्रभु की बात पर सब भक्तगण हँसने लगे और नित्यानन्द प्रभु तो प्रभु तो भूमि पर लोठ–पोट हो गये। नित्यानन्द का भावावेश शांत ही नहीं हो पा रहा था। आज प्रेमरस में 'शेष' प्रभु विह्वल हो रहे थे। क्षण भर में प्रभु हँसने लगते, क्षण भर में रोने लगते और क्षण भर में दिगम्बर होकर घूमने लगते। इस प्रकार के बाल्यभाव से उनका श्रीअंग परिपूर्ण हो गया। कहीं दण्ड पड़ा हुआ है तो कहीं कमण्डलु और कहीं वस्त्र। इनका कहीं कोई ठिकाना ही नहीं रहा। इस प्रकार महाधीर नित्यानन्द अत्यन्त चंचल हो गये। तब प्रभु ने स्वयं उनको पकड़कर स्थिर किया।

(५७) गौः भाः—श्रीगौरहरि ने यह सब कहकर श्रोताओं के अधिकार की विवेचना करते हुये उनसे पूछा, "मेरे वचनों से किसी प्रकार के धृष्टता तो नहीं हुई?" भक्तों ने उत्तर दिया,—"आपके वचनों में स्थूल–सूक्ष्म किसी प्रकार की उपाधि से सम्बन्धित अवास्तव कथा अभिव्यक्त नहीं हुई है। जीवमात्र ही व्यावहारिक स्थूल –सूक्ष्मात्मक दृश्यजगत् के क्षण–भंगुर वाक्यों में व्यक्त रहते हैं। आपका कथन नित्य ज्ञानान्दप्रद, उपाधि–विहीन एवं वास्तविक सत्य है।"

(६०) गौः भाः—'शेष'–नामधारी विष्णु जिनकी कला की कला है, उन नित्यानन्द को ही यहाँ 'शेष' कहा गया है। अंशी का अवस्थान है अथवा अंशी और अंश दोनों ही विष्णुतत्त्व है,—इस कारण नित्यानन्द प्रभु को 'शेष' कहने से किसी प्रकार का तत्त्व–विरोधी नहीं हुआ है। "कृष्णेर शेषता पात्रा 'शेष' नाम धरे॥ सेइ त' अनन्त या'र कहि एक कला। हेन प्रभु नित्यानन्द के जाने ताँ'र लीला॥"—(चैः चः आः ५/१२४–१२५)

महाप्रभु के वाक्य से नित्यानन्द को स्थिरता की प्राप्ति—

चैतन्येर वचन–अंकुश सबे माने।
नित्यानन्द–मत्तसिंह आर नाहि जाने॥६४॥
''स्थिर हओ, कालि पूजिवारे चाह व्यास।''
स्थिर कराइया प्रभु गेला निज वास॥६५॥

(६४–६५) प. अनु०—नित्यानन्द मतवाले सिंह की तरफ केवल एक चैतन्य प्रभु के वचनरूपी अंकुश को ही मानते हैं और किसी को नहीं। प्रभु ने कहा,—"शांत हो जाओ श्रीपाद। कल तो आप व्यासपूजा करना चाहते हैं।" इस प्रकार उनको स्थिर कराकर प्रभु अपने घर को चले गये।

(६४) गौः भाः—वचनांकुश—मस्ती हाथी के नियामक लोह–दण्ड को 'अंकुश' कहतेहैं।श्रीचैतन्यदेव के वाक्य–रूप लोह–दण्ड

जीव की मत्तता और उच्छृंखलता के संशोधक हैं। इसलिए 'वंचनांकुश' शब्द का प्रयोग किया गया है।

नित्यानन्द द्वारा भावावेश में अपना दण्ड-कमण्डलु भंग—

भक्तगण चलिलेन अपनार घरे।
नित्यानन्द रहिलेन श्रीवास मन्दिरे॥६६॥
कथो रात्रे नित्यानन्द हुँकार करिया।
निजदण्ड-कमण्डलु फेलिला भांगिया॥६७॥

(६६-६७) प. अनु०—भक्तगण भी अपने-अपने घरों को चले गये। नित्यानन्द श्रीवास के घर में ही रह गये। कुछ रात होने पर नित्यानन्द ने हुँकार करते हुये अपने दण्ड-कमण्डलु को तोड़ दिया।

(६७) गौः भाः—यति और ब्रह्मचारी के व्यवहार में आने वाले जलपात्र को 'कमण्डलु' कहते हैं। गुहस्थियों के बहुत से बर्तन होते हैं। यतियों का एकमात्र पात्र—कमण्डलु है। उसके द्वारा ही सब प्रकार के काम करने लगे हैं। लौकी—(अलाबु) को 'यति-पात्र' कहकर शास्त्रों में वर्णित किया गया है। ब्रह्मचारियों के लिए यति-सेवा का विधान है। इसलिए उनको गुरु का कमण्दडलु वहन करना होता है। उपकुर्वाण-ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारी जो गृहस्थ होने की इच्छा रखते हों) गृहस्थ अध्यापक से शिक्षा ग्रहण करने के लिए उनके पास आश्रम-विशेष में वास करते हैं। ब्रह्मचारी परिव्राजक संन्यासी का यति-पात्र (कमण्डलु) वहन करते हैं। किसी-किसी के मत से श्रीनित्यानन्दस्वरूप श्रीलक्ष्मीपति तीर्थ के साथ ब्रह्मचारी रूप से अवस्थित थे, अतः वे कमण्डलु और ब्रह्मचारी का दण्ड (खादिर-पलाश-वंश में से अन्यतम) रखते थे; किसी के मत में श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद के ब्रह्मचारी के रूप में प्रभु नित्यानन्द ने भ्रमण किया था। वर्तमान काल में 'तीर्थ' और 'आश्रम' नामक संन्यासियों के ब्रह्मचारी को 'स्वरूप' शब्द से अभिहित किया जाता है। 'सरस्वती', 'भारती' और 'पुरी' सम्प्रदायों के यतियों द्वारा ब्रह्मचारी को चैतन्य'-शब्द से पुकारा जाता है। श्रीनित्यानन्द प्रभु का ब्रह्मचारी नाम' स्वरूप' था। इसलिए कोई-कोई उनको माध्वेन्द्रपुरी की बजाय लक्ष्मीपति तीर्थ का अनुगत मानते हैं। दण्ड—एकदण्ड एवं त्रिदण्ड भेद से दो प्रकार के होते हैं। (अः १/१५७ एवं २/१६२) गौड़ीय-भाष्य द्रष्टव्य है।

श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अपने दण्ड और कमण्डलु आदि को व्यासपूजा के पहले उच्छृंखलता पूर्वक तोड़ कर रख दिया। प्रेम-विकार में वैधी भक्ति के उपादान समूह और बाहरी निष्ठा को त्याग दिया जाता है। परन्तु अनाधिकारी व्यक्ति यदि विशृंखलता का साधन करने के लिए वैधी भक्ति के विधान का त्यागकर 'अकाल-पक्व' रसिक बनने की इच्छा करता है तो वह रसिक नहीं हो सकता।

ईश्वर का चरित्र दूसरों की समझ से परे—के बुझये ईश्वरेर चरित्र अखण्ड।

केने भांगिलेन निज कमण्डलु-दण्ड॥६८॥
प्रभाते उठिया देखे रामाइ पण्डित।
भांगा दण्ड-कमण्डलु देखिया विस्मित॥६९॥

(६८-६९) प. अनु०—ईश्वर के इस अखण्ड चरित्र को कौन समझ सकता है कि उन्होंने अपना दण्ड-कमण्डलु क्यों तोड़ा। प्रातःकाल उठकर राइमा पण्डित ने देखा के दण्ड-कमण्डलु टूटा पड़ा है। यह देखकर वे विस्मित रह गये।

(६८) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अपने कमण्डलु और दण्ड को किस उद्देश्य से तोड़ा,

उस पर विचार करने पर बहुतों के हृदय में अनेक धारणाओं का उदय होगा। उन सब आध्यक्षिक धारणाओं के साथ नित्यानन्द प्रभु के उद्देश्य की कहाँ तक संगति है, यह विचार का विषय है। कुछ कहते हैं—भगवद्-उपासना में विधि-चिह्नों की कोई आवश्यकता नहीं है। राग-मार्गी के पथ पर ये सब मात्र रुकावटें हैं। और दूसरे कहते हैं,—रागमार्ग में बाधा समझकर अनधिकारी व्यक्तियों द्वारा विधि का उल्लंघन करने से उच्छृंखलता उत्पन्न होती है। "श्रुति-स्मृति-पुराणदि पंचरात्रविधिं विना। ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातयैव केवजलम्॥" श्रीनित्यानन्द प्रभु की तरह के अवधूत परमहंसों का वैध यति कि ब्रह्मचारी चिह्नों को धारण करना जगत् की आंशिक दृष्टि में नाना प्रकार की भक्ति-बाधक धारणायें उत्पन्न करेगा, इसलिए वर्णाश्रम की विधिसमूह से अतीत प्रभु नित्यानन्द ने इस प्रकार की आनुष्ठानिक क्रिया को त्याग दिया। परन्तु जड़ीय अभिनिवेश युक्त व्यक्ति अगर उनका अनुकरण करते हुये कृत्रम भाव के अवलम्बन द्वारा अपनी महिमा बढ़ाने की चेष्टा से अनधिकार पूर्वक काम करेंगे तो उससे उनका कोई मंगल नहीं हो सकता। जो अनधिकारी व्यक्ति है, वे बाह्य प्रदर्शन से अधिकारी नहीं हो सकता है। "नैतत् समाचरेज्जतु मनसापि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन् मौद्याद् यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्॥"—(भाः१०/३३/३१) आदि उपदेशों का अनादर नहीं होना चाहिए। "को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्। क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि यसेगमायाम्॥" (भाः १०/१४/२१)।

नित्यानन्द की लीला बताने के लिए महाप्रभु के समीप श्रीवास का रामाइ को भेजना—

पण्डितेर स्थाने कहिलेन ततक्षणे।
श्रीवास बलेन,—''जाओ ठाकुरेर स्थाने॥''७०॥

(७०) प. अनु०—रामाइ ने तुरन्त जाकर श्रीवास पण्डित को जब यह बात सुनाई तो वे बोले के, "तुम प्रभु के पास जाओं।"

(७०) गौः भाः—'ठाकुरेर स्थानें'—श्रीगौरसुन्दर के पास।

रामाइ के दण्ड-कमण्डलु तोड़ने की बात महाप्रभु का आगमन, नित्यानन्द को लेकर गंगास्नान के लिए जाना और दण्ड को गंगा में प्रवाहित करना—

रामाइर मुखे शुनि' आइला ठाकुर।
बाह्य नाहि, नित्यानन्द हासेन प्रचुर॥७१॥
दण्ड लइलेन प्रभु श्रीहस्ते तुलिया।
चलिलेन गंगास्थाने नित्यानन्द लैया॥७२॥
श्रीवासादि सबाइ चलिला गंगास्नाने।
दण्ड थुइलेन प्रभु गंगाय आपने॥७३॥

(७१-७३) प. अनु०—रामाइ के मुख से समाचार सुनकर प्रभु वहाँ आये, तो देखते हैं कि नित्यानन्द को होश नहीं है और वे खूब हँस रहे हैं। प्रभु ने दण्ड को अपने हाथ में लिया और नित्यानन्द प्रभु को साथ लेकर गंगास्थान के लिए चल दिये। श्रीवासादि सब भक्त भी साथ ही गंगास्नान को चले। वहाँ प्रभु ने स्वयं दण्ड को गंगा में प्रवाहित कर दिया।

(७३) गौः भाः—महाप्रभु ने स्वयं नित्यानन्द-स्वरूप के दण्ड को गंगा में प्रवाहित किया।

नित्यानन्द की चंचलता—

'चंचल श्रीनित्यानन्द ना माने वचन।
तबे एकबार प्रभु करये तर्जन॥७४॥

कुम्भीर देखिया ता'रे धरिवारे याय।
गदाधर–श्रीनिवास करे 'हाय हाय'॥७५॥
साँतारे गंगार माझे निर्भय–शरीर।
चैतन्येर वाक्ये मात्र किछु हय स्थिर॥७६॥

(७४–७६) प. अनु०—गंगा में तैरते हुये चंचल नित्यानन्द किसी की बात नहीं मान रहे थे। तब एकबार प्रभु ने तर्जना की। उस समय नित्यानन्द एक मगरमच्छ को देखकर उसे पकड़ने के लिए जा रहे थे। इसे देखकर गदाधर और श्रीवास 'हाय हाय' करने लगे; किन्तु वे निर्भय होकर गंगा में तैरते रहे। केवल चैतन्यदेव के कहने से ही कुछ स्थिर हुये।

व्यास पूजन के लिए महाप्रभु
द्वारा निताइ को आदेश—

नित्यानन्द–प्रति डाकि' बले विश्वम्भर।
''व्यास–पूजा आसि' झाट करह सत्वर॥''७७॥

(७७) प. अनु०—विश्वम्भर ने पुकार कर नित्यानन्द से कहा,—"अब शीघ्र चलकर व्यासपूजा करो।"

प्रभु के कहले से नित्यानन्द का महाप्रभु के
साथ वापस आना एवं भक्तों का कीर्तन—

शुनिया प्रभुर वाक्य उठिला तखने।
स्नान करि' गृहे आइलेन प्रभु–सने॥७८॥
आसिया मिलिला सब–भागवतगण।
निरवधि 'कृष्ण' 'कृष्ण' करिछे कीर्तन॥७९॥

(७८–७९) प. अनु०—प्रभु के वचन सुनकर वे तत्क्षण जल से निकल आये और स्नान करके प्रभु के साथ घर आ गये। सब भक्तजन भी वहाँ आकर मिल गये जो कृष्ण–कृष्ण कीर्तन कर रहे थे।

व्यास–पूजा के आचार्य श्रीवास द्वारा
समस्त कार्यों का सम्पादन—

श्रीवासपण्डित व्यास–पूजार आचार्य।
चैतन्येर आज्ञाय करेन सर्व–कार्य॥८०॥
मधुर मधुर सबे करेन कीर्तन।
श्रीवासमन्दिर हैल वैकुण्ठभवन॥८१॥
सर्व–शास्त्र–ज्ञाता सेइ ठाकुर पण्डित।
करिला सकल कार्य ये विधिवोधित॥८२॥

(८०–८२) प. अनु०—श्रीवास पण्डित व्यासपूजा के आचार्य थे। वे श्रीचैतन्यचन्द्र की आज्ञा से सब कार्य कर रहे थे। इधर सब भक्तजन मधुर–मधुर कीर्तन कर रहे थे। श्रीवास का घर वैकुण्ठधाम बना हुआ था। श्रीवास पण्डित सब शास्त्रों के ज्ञाता थे। उन्होंने शास्त्रविधि के अनुसार व्यासपूजा का सब कार्य सम्पन्न किया।

(८२) गौः भाः—श्रीवासपण्डित ने व्यासपूजा का पौरोहित्य किया। विधि के अनुसार ही सारी आनुष्ठानिक क्रियाओं का सम्पादन हुआ। श्रीवास पण्डित सब शास्त्रों में पारंगत थे। उनका गृह—साक्षात् वैकुण्ठ था। वहाँ खुब कीर्तन हुआ।

श्रीवास द्वारा नित्यानन्द के हाथ में माला देकर
व्यास को नमस्कार करने हेतु अनुरोध—

दिव्य–गन्ध सहित सुन्दर वनमाला।
नित्यानन्द हाते दिया कहिते लागिया॥८३॥
''शुन शुन नित्यानन्द एइ माला धर।
वचन पड़िया व्यासदेवे नमस्कार'॥८४॥
शास्त्रविधि आछे माला आपने से दिवा।
व्यास तुष्ट हैले सर्व अभीष्ट पाइवा॥'' ८५॥

(८३–८५) प. अनु०—फिर दिव्य गन्धयुक्त एक सुन्दर वनमाला नित्यानन्द के हाथ में देकर श्रीवास पण्डित बोले,—"सुनो नित्यानन्द, सुनो।

यह माला लो और मंत्र पढ़कर व्यासदेव को नमस्कार करो। शास्त्र की ऐसी विधि है कि माला स्वयं चढ़ानी चाहिये। व्यासदेव के प्रसन्न होने पर सब अभीष्ट वस्तुएँ मिल जायेंगी।"

(८४) गौः भाः—श्रीवास पण्डित ने सुगन्धयुक्त वनफूलों की माला नित्यानन्द के हाथ में देकर व्यासदेव को नमस्कार करने के लिए कहा।

गूढ़ भाव के साथ नित्यानन्द का चारों तरफ देखना—

यत शुने नित्यानन्द—करे, 'हय हय'।
किसेर वचन–पाठ प्रबोध ना लय॥८६॥
किवा बले धीरे धीरे बुझन ना याय।
माला हाते करि' पुनः चारि दिके चाय॥८७॥

(८६–८७) प. अनु०—नित्यानन्द ने जो कुछ भी सुना, उस पर केवल 'हाँ हाँ कर दिया। कौन से मंत्र का पाठ करें, यह समझने पर भी वे नहीं मान रहे थे। धीरे–धीरे क्या कुछ कह रहे थे, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था। माला हाथ में लेकर वे बहुत देर तक चारों ओर देखते रहे।

श्रीनिवास द्वारा महाप्रभु को नित्यानन्द के व्यवहार के बारे में बताना, महाप्रभु का निताइ के निकट जाना और नित्यानन्द का व्यासावतारी गौर के मस्तक पर माल्यार्पण—

प्रभुरे डाकिया बले श्रीवास उदार।
''ना पूजने व्यास एइ श्रीपाद तोमार॥''८८॥
श्रीवासरे वाक्य शुनि' प्रभु विश्वम्भर।
धाइया सन्मुखे प्रभु आइला सत्वर॥८९॥
प्रभु बले,—''नित्यानन्द शुनह वचन।
माला दिया कर झाट व्यासेर पूजन॥''९०॥
देखिलेन नित्यानन्द प्रभु विश्वम्भर।
माला तुलि' दिया ताँर मस्तक–उपर॥९१॥

(८८–९१) प. अनु०—तब उदार श्रीवास, प्रभु को पुकार कर कहने लगे कि "आपके श्रीपाद (नित्यानन्द) व्यासपूजा नहीं कर रहे हैं।" श्रीवास के वचनों को सुनकर प्रभु विश्वम्भर शीघ्र नित्यानन्द के सम्मुख आये और बोले—"नित्यानन्द! मेरी बात सुनो! माला अर्पण करके शीघ्र व्यास की पूजा कर डालो"। श्रीनित्यानन्द ने प्रभु विश्वम्भर को देखा और माला उठाकर उनके मस्तक पर अर्पण की दी।

(९१) गौः भाः—श्रीवास की बात को श्रीनित्यानन्द ने नहीं माना। वे माला को हाथ में लेकर अस्पष्ट स्वर से कुछ बोलते–बोलते चारों तरफ देखने लगे। श्रीव्यास के उद्देश्य से नमस्कार या माला प्रदान न करने पर और नित्यानन्द के इस प्रकार के व्यवहार से श्रीवास द्वारा महाप्रभु को अवगत कराने पर, महाप्रभु ने आकर माल्यार्पण द्वारा श्रीव्यासपूजा करने के लिए श्रीनित्यानन्दप्रभु को आदेश दिया तो नित्यानन्द ने उनके ही मस्तक के ऊपर माला समर्पित कर दी। श्रीव्यास जिनके आवेशवतार हैं, उन मूलतत्त्व पर माला समर्पित करके श्रीनित्यानन्द की व्यासपूजा का समाधान हुआ। भगवान् श्रीचैतन्यदेव के अपने प्रकाशावतार–समूह में शक्ति एवं भक्त—सभी तत्त्व समाहित हैं। इसलिए "यथा तरोर्मूलनिषेचनेन" श्लोक के तात्पर्यानुसार एवं "सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव–शब्दितं" श्लोक के विचारानुसार इस मूल आकर (आधार) तत्त्व—श्रीचैतन्य–

देव की पूजा से सब गुरुओं की पूजा ही सम्पन्न हो ताजी है। श्रीगुरुपारम्पर्य–वर्णन में भी शास्त्र कहते हैं,—"श्रीकृष्ण–ब्रह्म–देवर्षि–व
ादरायण–संज्ञकान्। श्रीमध्व–श्रीपद्मनाभ–श्रीमन्

नृहरि-माधवान्॥ अक्षेभ्य-जयतीर्थ-श्रीज्ञानसिंधु-निधीन्। श्रीविद्यानिधि-राजेन्द्र-जय-धर्मान् क्रमाद्वयम्॥ पुरषोत्तम-ब्रह्मण्य-व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः॥ ततो लक्ष्मीपतिं-श्रीमन्माधवेन्द्रंच भक्तितः। तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैतनित्यानन्दान जगद्गुरून्।देवमीश्वर-शिष्यं श्रीचैतन्यंच भजामहे"॥

विश्वम्भर द्वारा षड्भुज प्रदर्शन; उसके दर्शन से नित्यानन्द की मूर्च्छालीला एवं भीत भक्तजनों का कृष्णस्मरण—

चाँचर चिकुरे माला शोभे अति भाल।
छय भुज विश्वम्भर हइला तत्काल॥९२॥
शंख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल-मूषल।
देखिया मूर्च्छित हइला निताइ विह्वल॥९३॥
षड्भुज देखि' मूर्च्छा पाइला निताइ।
पड़िला पृथ्वीतले—धातु-मात्र नाइ॥९४॥
भय पाइलेन सब वैष्णवेर गण।
''रक्ष कृष्ण, रक्ष कृष्ण'', करेन स्मरण॥९५॥
हुँकार करेन जगन्नाथेर नन्दन।
कक्षे तालि देइ' घन विशाल गर्जन॥९६॥

(९२-९६) प. अनु०—प्रभु की घुघँराली अलकावली पर जैसे ही माला अतिशय सुशोभित हुई कि उसी क्षण विश्वम्भर षड्भुज हो गये। प्रभु की छह भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, हल और मूसल को देखकर विह्वल नित्यानन्द मूर्च्छित हो गये। षड्भुज के दर्शन से मूर्च्छित होकर वे पृथ्वी पर गिर पड़े एवं संज्ञा-शून्य हो गये। यह देखकर सब वैष्णवजन भयभीत हो गये और "हे कृष्ण! रक्षा करो, हे कृष्ण! रक्षा करो, "ऐसा कहकर भगवान् का स्मरण करने लगे। जगन्नाथ-नन्दन श्रीगौरसुन्दर हुँकार करने लगे और बगल बजाते हुये बारम्बार विशाल गर्जन करने लगे।

(९३) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव ने अत्यन्त शोभायमान माला को धारण करते हुये अपने षड्भुज रूप का प्रदर्शन किया। उन षड्भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म, श्रीहल और मूसल देखकर नित्यानन्द प्रेम में विह्वल होकर मूर्च्छित हो गये।

महाप्रभु द्वारा नित्यानन्द को चेतन कराते हुये नित्यानन्द के अवतार-मर्म का प्रकाश—

मूर्च्छा गेल नित्यानन्द षड्भुज देखिया।
आपने चैतन्य तोले गाय हात दिया॥९७॥
''उठ उठ नित्यानन्द, स्थिर कर चित।
संकीर्तन शुनह तोमार समीहित॥९८॥
ये कीर्तन निमित्त तोमार अवतार।
से तोमार सिद्ध हैल, किवा चाह आर?९९॥

(९७-९९) प. अनु०—नित्यानन्द प्रभु षड्भुज दर्शन करके मूर्च्छित होकर पड़े हैं। स्वयं श्रीचैतन्यदेव ने अपने हाथों से पकड़कर उन्हें उठाया और कहा—"उठो! उठो! नित्यानन्द, चित्त को स्थिर करो और अपने मनोवांछित संकीर्तन का श्रवण करो। जिस कीर्तन के निमित्त तुमने अवतार ग्रहण किया है, वह तो सिद्ध हो गया। अब तुम और क्या चाहते हो?

(९७-९८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर का षड्भुज रूप देखकर प्रभु नित्यानन्द जब मूर्च्छित हो गये, तब महाप्रभु उनको अपने हाथों से उठाते हुये बोले,—"स्थिरचित्त होकर अपने द्वारा चालित संकीर्तन का श्रवण करो।"

(९९) गौः भाः—इस जगत में हरिकथा का नितान्त अभाव होने के कारण तुम उसी कथा-कीर्तन को करने-कराने के लिए गोलोक से इस लोक में अवतीर्ण हुये हो। वह तुम्हारा कार्य अब सिद्ध हो रहा है, तुम्हारी और

क्या प्रार्थना है?"

प्रेमभक्ति के एकमात्र भण्डारी नित्यानन्द प्रभु–

तोमार से प्रेमभक्ति, तुमि प्रेममय।
बिना तुमि दिले कारो भक्ति नाहि हय॥१००॥
आपना सम्वरि' उठ, निज–जन चाह।
याहारे तोमार इच्छा, ताहारे बिलाइ॥१०१॥

(१००–१०१) प. अनु०—तुम प्रेममय हो और प्रेमभक्ति तुम्हारी ही वस्तु है। तुम्हारे दिये बिना किसी को भक्ति नहीं मिल सकती। अपने आपको संभाल कर उठो, स्वजनों की ओर देखो ओर जिसको तुम्हारी इच्छा हो, उसे प्रेमभक्ति प्रदान करो।

(१००) गौः भाः—तुम भगवान् के सर्वप्रधान भक्त—मुकुन्द-प्रेष्ठ हो। तुमको छोड़कर कोई भी भगवान् की सेवा प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। प्रेमभक्ति तुम्हारी ही सम्पत्ति है, तुम साक्षात् सेवाविग्रह हो।

(१०१) गौः भाः—तुम प्रेमभक्ति में विह्वल होकर अपने आपको भूल गये हो। अब इस प्रकार की चित्तवृत्ति का संवरण कर लो एवं जिसको तुम्हारी इच्छा हो, उसी को प्रेम का वितरण करो। तुम अपने अनुगत जनों के ऊपर शुभ दृष्टिपात करो।

नित्यानन्द-विरोधी गौर-प्रिय नहीं हैं–

तिलार्द्धेक तोमार याहार द्वेष रहे।
भजिलेओ से आमार प्रिय कभु नहे॥"१०२॥

(१०२) प. अनु०—जिसको मन में आपके प्रति तिलार्द्ध भी द्वेषभाव होगा, वह मेरा भजन करने पर भी मेरा कभी नहीं हो पायेगा।

(१०२) गौः भाः—हे नित्यानन्द, जिस व्यक्ति का तुम्हारे प्रति अति सामान्य-सा भी असंतोष है एवं उसके वशीभूत होकर वह तुम्हारी सेवा में द्वेषबुद्धि रखता है तो इस प्रकार का व्यक्ति यदि मेरा भजन भी करता है, तब भी मैं कभी भी उसका आदर नहीं कर सकता।

नित्यानन्द को चेतना-प्राप्ति और षड्भुज दर्शन से आनन्द–

पाइला चैतन्य निताइ प्रभुर वचने।
हइला आनन्दमय षड्भुज दर्शने॥१०३॥

(१०३) प. अनु०—प्रभु के वचनों से नित्यानन्द को चेतना प्राप्त हो गई। वे प्रभु के षड्भुज दर्शन से परम आनन्दित हुये।

(१०३) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु के वाक्य से नित्यानन्द को चेतना हुई। वे श्रीगौरसुन्दर केषड्भुज दर्शन से आनन्द में मग्न हो गये।

षड्भुजादि-दर्शन से नित्यानन्द के विस्मय का रहस्य–

ये अनन्त–हृदये वैसेन गौरचन्द्र।
सेइ प्रभु अविस्मय जान नित्यानन्द॥१०४॥
छयभुजदृष्टि ताने कोन् अद्भुत।
अवतार–अनुरूप ए सब कौतुक॥१०५॥
रघुनाथ–प्रभु येन पिण्डदान कैला।
प्रत्यक्ष हइला ताहा दशरथ लइला॥१०६॥
से यदि अद्भुत, तबे एहो अद्भुत।
निश्चय सकल एइ कृष्णेर कौतुक॥१०७॥

(१०४–१०७) प. अनु०—जिन अनन्तदेव के हृदय में श्रीगौरसुन्दर निवास करते हैं, उन्हें ही प्रभु नित्यानन्द जानो, उसमें वितसमय मत करो। उनके लिए षड्भुज का दर्शन कौन-सी अद्भुत बात है? यह सब अवतार के अनुरूप ही उनका कौतुक है। जब श्रीरामचन्द्र ने पिण्डदान किया, तो दशरथ ने प्रत्यक्ष होकर उसे ग्रहण किया था। उसको यदि अद्भुत

कहा जाये तो यह भी अद्‌भुत है। निश्चय ही ये सब श्रीकृष्ण की कौतुकमयी लीलाएँ हैं।

(१०४) गौः भाः—जिन अनन्तदेव के हृदय में श्रीगौरचन्द्र सदा निवास करते हैं, वे प्रभु अनन्तदेव ही—'नित्यानन्द' हैं। इसमे विस्मित होने या सन्देह करने का कोई भी कारण नहीं है। निःसन्देह श्रीनित्यानन्द प्रभु का 'श्रीबलराम' का ही स्वरूप जानना।

(१०५) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द-प्रभु द्व ारा श्रीगौरसुन्दर के षड्‌भुजस्वरूप का दर्शन क्या आश्चर्य की बात है? गौरलीला की प्रयोजनीयता के अनुसार ऐसे कौतुहलपूर्ण दर्शन तो होते ही रहते हैं। श्रीगौरसुन्दर—अवतारी तत्त्व हैं। अतः उनके द्वारा प्रकाश-तत्त्व के हल-मूसल एवं विष्णु -विग्रह के चारों अस्त्रों को छह भुजाओं में धारण काना कोई विचित्र बात नहीं है। श्रीनित्यानन्द प्रभ ुउसी मूल विष्णुवस्तु के अन्तर्भुक्त अपने स्वरूप के हल-मूसल और शंख-चक्रादि चारों अस्त्रों का दर्शन करने में समर्थ हैं। इसलिए ही श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने 'कृष्ण चैतन्य'—संज्ञा में स्वयंरूप-तत्त्व से प्रकाश, अवतार, शक्ति, भक्त आदि—ये सब पृथक् नहीं हैं। इन सबमें से प्रत्येक ही भिन्न-भिन्न भाव से कृष्ण-चैतन्य के अन्तर्भुक्त होकर उन श्रीकृष्णचैतन्य के साथ अपने वैशिष्ट्य का सम्पादन करते हैं। इस अचिन्त्य-भेदोभेद-तत्त्व का प्रदर्शन कराने के लिए ही श्रीगौरलीला में श्रीनित्यानन्द प्रभु को षड्‌भुज दर्शन कराया गया था।

(१०६) गौः भाः—जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र के द्वारा अपने पिता दशरथ की मृत्यु पर पिण्ड प्रदान करते समय दशरथ ने स्वयं आकर पिण्ड ग्रहण किया था, उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीगौरसुन्दर की माला द्व ारा पूजा करते समय उनमें सन्निविष्ट षड्‌भुज स्वरूप को देखा था।

(१०७) गौः भाः—यदि दशरथ द्वारा रामचन्द्र से पिण्ड ग्रहण करना लोगों की समझ से बाहर होने के कारण विस्मय उत्पादन कर सकता है, तो इस घटना से भी विस्मय उत्पन्न होगा, इसमें क्या विचित्रता है? यह सब कृष्ण की अलौलिक लीला है।

गौरकृष्ण का नित्यदास्य ही—बलदेवाभिन्न नित्यानन्द का नित्य स्वभाव—

नित्यानन्दस्वरूपेर स्वभाव सर्वथा।
तिलार्द्धेक दास्यभाव ना हय अन्यथा॥१०८॥
लक्ष्मणेर स्वभाव ये हेन अनुक्षण।
सीतावल्लभेर दास्य मन-प्राण-धन॥१०९॥
एइमत नित्यानन्दस्वरूपेर मन।
चैतन्यचन्द्रेर दास्ये प्रीत अनुक्षण॥११०॥
यद्यपिह अनन्त ईश्वर निराश्रय।
सृष्टि-स्थिति-प्रलयेर हेतु जगन्मय॥१११॥
सर्व-सृष्टि-तिरोभाव ये समये हय।
तखनो अनन्तरूप 'सत्य' वेदे कय॥११२॥
तथापिह श्रीअनन्तदेवेर स्वभाव।
निरवधि प्रेम-दास्यभावे अनुराग॥११३॥
युगे युगे प्रति अवतारे अवतारे।
स्वभाव ताँहार दास्य, बुझह विचारे॥११४॥
श्रीलक्ष्मण-अवतारे अनुज हइया।
निरवधि सेवेन अनन्त, दास्य पाइया॥११५॥
अन्न-पानि-निद्रा छाड़ि' श्रीरामचरण।
सेवियाओ आकांक्षा ना पूरे अनुक्षण॥११६॥
ज्येष्ठ हइयाओ बलराम-अवतारे।
दास्ययोग कभु ना छाड़िलेन अन्तरे॥११७॥
'स्वामी करि' शब्दे से बलेन कृष्ण प्रति।
भक्ति बिना कखन ना हय अन्य मति॥११८॥

सेइ प्रभु आपने अनन्त महाशय।
नित्यानन्द महाप्रभु जानिह निश्चय॥११९॥
इहाते ये नित्यानन्द–बलराम प्रति।
भेद–दृष्टि हेन करे, सेइ मूढ़मति॥१२०॥

(१०८–१२०) प. अनु०—नित्यानन्दस्वरूप का यह एक नित्य स्वभाव है कि उनसे आधे पल के लिए भी दास्य–भाव का त्याग नहीं होता है। जैसे लक्ष्मणजी का ऐसा स्वभाव था कि वे सीतावल्लभ श्रीरामचन्द्रजी के दास्य में निरन्तर अपने मन–प्राण–धन को लगाये रखते थे; उसी प्रकार नित्यानन्दस्वरूप का मन भी निरन्तर श्रीचैतन्यचन्द्र के दास्य में लगा रहता था। यद्यपि श्रीअनन्तदेव ईश्वर हैं, निराश्रय हैं, अर्थात् सबके आश्रयरूप होने के कारण उनका कोई भी आश्रय नहीं है। वे सृष्टि–स्थिति–प्रलय के हेतु हैं तथा जगन्मय है। जिस समय सारी सृष्टि का लय हो जाता है, उस समय भी अनन्तदेव नित्य विराजमान रहते हैं—ऐसा वेद कहते हैं। फिर भी श्रीअनन्तदेव का ऐसा स्वभाव है कि वे निरन्तर प्रेममय दास्यभाव में ही अनुराग युक्त रहते हैं। विचार करके देख लीजिए कि प्रत्येक युग में और प्रत्येक अवतार में उनका दास–स्वभाव ही रहा है। श्रीलक्ष्मण–अवतार में छोटे भाई बनकर अनन्तदेव दासभाव से निरन्तर श्रीराम की सेवा करते रहे। अन्न, जल और निद्रा का त्याग करके श्रीराम के चरणकमलों की सेवा निरन्तर करते रहने पर भी, उनकी सेवा की लालसा पूरी नहीं हुई और बलराम–अवतार में बड़े भाई होने पर भी उन्होंने अपने हृदय से दास्यभाव को कभी नहीं छोड़ा। वे कृष्ण को 'स्वामी' कहकर पुकारते थे और कहते थे कि भक्ति को छोड़कर मेरी अन्य मति न हो। वे प्रभु अनन्त महाशय स्वयं ही नित्यानन्द महाप्रभु हैं—इसे निश्चय जानो। इतने पर भी जो नित्यानन्द और बलराम में भेद–बुद्धि रखता है—वह मूढ़मति है।

(१०८) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द–स्वरूप की स्वाभाविक भृत्य–लीला में अति सूक्ष्म काल के लिए भी भगवत्–सेवा का राहित्य नहीं है। निरन्तर श्रीगौरसुन्दर के सर्वविध दास्य को छोड़कर वे और कोई काम नहीं करते। "ईश्वरेर सेवा बिना नाहि जाने आर॥" (चैः चः आः ५/१२०)।

(१०९) गौः भाः—जिस प्रकार सीता–वल्लभ श्रीरामचन्द्र की सेवा में लक्ष्मण की निरन्तर स्वाभाविक प्रवृत्ति थी, उसी प्रकार भगवान् श्रीगौरसुन्दर की सेवा में नित्यानन्द की सर्वक्षण अप्रतिहत चेष्टा थी।

(१११) गौः भाः—यद्यपि भगवान् विष्ण ु अन्तरहित, सबके आश्रय, सबके प्रभु एवं अन्य किसी वस्तु का आश्रय स्वीकार करने के अयोग्य हैं, तब भी वे सब जगत् में प्रविष्ट होकर इस जगत् की उत्पत्ति–स्थिति और प्रलय के कारण रूप से प्रतिष्ठित हैं।

(११२) गौः भाः—वेदशास्त्र कहते हैं,—वे अनन्त हैं, ईश्वर हैं, निराश्रय हैं, सर्वजगत् में प्रविष्ट हैं और दृश्य जगत् की सृष्टि–स्थिति तथा प्रलय के एकमात्र कारण हैं; ऐसे होने पर भी वे उन–उन लीलाओं को प्रकट कराने के लिए विभिन्न समयों पर प्रपंच में अनन्त रूप से प्रकाशित होते हैं।

(११३) गौः भाः—सांसारिक दृष्टि से वे अनन्त स्वरूपों में अधिकारी स्वभाव का प्रदर्शन करने पर भी निरन्तर अपनी चेष्टाओं से सेव्य–सेवक भाव में अवस्थित रहते हैं। वे भजनीय वस्तु के भजन का परित्याग कर दें, ऐसा परिवर्तन उनके अपने स्वरूप में कभी भी नहीं हुआ।

(११६) गौः भाः—श्रीलक्ष्मण जल, भोजन और निद्रा का परित्याग करके श्रीरामचन्द्र की सेवा में सतत व्यस्त रहते हुये भी मन में निरन्तर ऐसा ही विचारते रहे कि इच्छानुसार सेवा नहीं हो पा रही है। इस प्रकार उनकी सेवाबुद्धि इतनी विपुल थी कि श्रीराम की सेवा से उनको कभी तृप्ति नहीं हो पाती थी।

(११७) गौः भाः—श्रीरामवतार में वे छोटे भाई थे, इसलिए जड़ीय दृष्टि से वहाँ पृथक् सेव्य-सेवक भाव का वैषम्य नहीं बनता है; किन्तु श्रीकृष्णावतार में अग्रज और पूज्य होने पर भी वे निरन्तर छोटे भाई की तरह भृत्य-वृत्ति में अवस्थित रहे। "कभु गुरु कभु सखा, कभु भृत्य-लीला। पूर्वे येन तिन भावे ब्रजे कैल खेला॥ वृष हञा कृष्णसने माथामाथि-रण। कभु कृष्ण करे ताँर पाद-संवाहन॥ आपनाके भृत्य करि' कृष्णे प्रभु जाने। कृष्णेर कलार कला आपनाके माने॥"—(चैः चः आदि ५/१३५-१३७)।

(११८) गौ भाः—श्रीबलदेव-प्रभु कृष्ण को 'स्वामी' अर्थात् प्रभु-शब्द से संबोधित करते थे। कृष्ण-सेवा को छोड़कर बलराम की कोई अन्य अभिलाषा नहीं है।

(११९) गौः भाः—जो प्रभु भगवान् की 'अनन्त' होकर सेवा करते हैं, उनको 'नित्यानन्द' रूप से जानना, और जो प्रभु सेवक-नित्यानन्द प्रभु की नित्यसेवा नित्यकाल ग्रहण करते हैं, उन्हें 'महाप्रभु चैतन्य' रूप से जानना—(चैः चः आदि ७/१४ द्रष्टव्य) है।

(१२०) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु ही साक्षात् बलराम हैं। जो नित्यानन्द प्रभु को बलराम के अलावा अन्य कोई तत्त्व समझते हैं, वे मायामूढ़ हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, ऐसा समझना चाहिए।

सेवाविग्रह की अवज्ञा करने वाला सेव्यविग्रह विष्णु का अपराधी—

सेवाविग्रहेर प्रति अनादर यार।
विष्णुस्थाने अपराध सर्वथा ताहार॥१२१॥

(१२१) प. अनु०—सेवाविग्रह के प्रति जिनका अनादर है, वे सदा विष्णु के समक्ष अपराधी हैं।

(१२१) गौः भाः—भजनीय वस्तु को 'सेव्य-विग्रह' कहते हैं। जो भजनीय वस्तु की सेवा करते हैं, उनको 'सेवाविग्रह' कहते हैं। स्वयं रूप ब्रजेन्द्रनन्दन नित्य-सेव्य वस्तु हैं। स्वयं प्रकाश बलदेव—नित्यसेवक वस्तु हैं। आलंकारिक भाषा में कृष्ण को विषय-विग्रह एवं बलदेव आदि वस्तु और शक्ति समूहों को 'आश्रय-विग्रह' या 'सेवक-विग्रह' कहते हैं। जो सेवा-विग्रह के प्रति अनादर करके सेव्य का आदर करते हैं, उनके प्रति सेव्य कभी भी सन्तुष्ट नहीं होते हैं एवं उनकी विरक्ति का विषय बनकर भ्रान्तद्रष्टा अपराध-पंक में निमग्न हो जाते हैं। "ये में भक्तजनाः पार्थ न म भक्ताश्च ते जनाः। मद्भक्तानांच ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥"—(आदिपुराण)।

ब्रह्मा-महेश्वरादि की वन्दनीया कमला का नित्य-स्वभाव श्रीभगवत्पादपद्म-सेवा—

ब्रह्मा-महेश्वर-वन्द्य यद्यपि कमला।
तबु ताँ'र स्वभाव चरणसेवा-खेला॥१२२॥

(१२२) प. अनु०—यद्यपि लक्ष्मीजी ब्रह्मा, महेश्वरादि की वन्दनीया है, फिर भी उनका स्वभाव प्रभु के चरणकमलों की सेवा करनी ही है।

(१२२) गौः भा—स्वयंप्रकाश बलदेव प्रभु संकर्षण और अन्यान्य विष्णुमूर्तियों को नित्य प्रकट कराकर सभी से पूजा ग्रहण करते हैं, ऐसा होने पर भी उनकी सेवा प्रवृत्ति

स्वाभाविक बनी रहती है। इस बात के समर्थन में लक्ष्मीदेवी का उदाहरण देते हुये कहते हैं,—कि ब्रह्मा और महेश्वर के द्वारा पूज्य होने पर भी लक्ष्मी की स्वाभाविकी चेष्टा में कृष्णसेवा ही देखी जाती है। चतुर्मुख और महाकाल की वन्दनीया एवं सबकी पूज्या होते हुये भी लक्ष्मीदेवी निरन्तर भगवत्–सेवा करती रहती हैं। "श्रीरूपिणी कक्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजने हरिसद्मानि मुक्तदोषा। संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव यदनुग्रहण ोऽन्ययत्नः॥"—(भाः३/१५/२१ अर्थात्—जिन लक्ष्मीदेवी का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ब्रह्मादि देवता भी यत्न करते रहते हैं, वे ही मनोहर मूर्तिधारणी लक्ष्मीदेवी श्रीहरि के सुवण र्णसंयुक्त स्फटिकमय भवन में चंचलता का परित्याग करके (अथवा प्रसारित बाहुलता के द्वारा) समय–समय पर नूपुरों की मधुर झनकार करती हुई हस्तधृत लीलाकमल द्वारा मानों उस घर की मार्जन–सेवा में नियुक्त हों, ऐसा लक्षित होता है। "ब्रह्मोदयो बहुतिथं यदपांग मोक्षकामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः। सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता॥"—(भाः१/१६/३२) अर्थात् ब्रह्मादि देवगण, जो भगवान् के शरणापन्न हैं, उन्होंने भी जिन कमला देवी की किंचित् कृपा–कटाक्ष–प्राप्ति की आशा से बहुकाल तक तपस्या की थी, वे ही कमलादेवी अपने निवास–स्थान कमलादेवी अपने निवास–स्थान कमलवन का परित्याग करके अनुराग के साथ श्रीकृष्ण के निर्मल चरण–कमलों के सौन्दर्य की निरन्तर सेवा करती रहती हैं।

शेषदेव का स्वाभाविक धर्म—भगवत्–सेवा—

सर्वशक्तिसमन्वित 'शेष' भगवान्।
तथापि स्वभावधर्म, सेवा से ताहान॥१२३॥

(१२३) प. अनु०—उसी प्रकार 'शेष' भगवान् यद्यपि सर्वशक्तिसम्पन्न हैं, फिर भी उनका स्वाभाविक धर्म प्रभु की सेवा करना ही है।

(१२३) गौः भाः—शेष भगवान् समस्त धारण–
शक्ति को अंगीकार करते हुये सबके विचार से सर्वशक्तिसम्पन्न तत्त्व हैं। उनका भी स्वाभाविक धर्म—भगवान् की सेवा करना है—"सेइ त' 'अनन्त' शेष—भक्त–अवतार। ईश्वरेर सेवा बिना नाहि जाने आर॥"—(चैः चः आः ५/१२०)।

भक्तवशवर्ती भगवान् की भक्तमाहात्म्य—
कीर्तन में ही प्रीति—

अतएव ताँहार ये स्वभाव कहिते।
सन्तोष पायेन प्रभु सकल हइते॥१२४॥
ईश्वरेर स्वभाव—केवल भक्तवश।
विशेषे प्रभुर मुखे शुनिते ए यश॥१२५॥

(१२४–१२५) प. अनु०—अतएव उन भक्तों का जैसा स्वभाव है, उसका वर्णन करने से प्रभु सबसे अधिक प्रसन्न होते हैं। ईश्वर का स्वभाव है कि वे केवल भक्त के वश हैं, विशेष करके प्रभु के मुख से भक्तों को ऐसा यश सुना जाता है।

(१२४) गौः भाः—भक्त का स्वभाव वर्णन करने पर महाप्रभु को सर्वाधिक सन्तोष होता है।

(१२५) गौः भाः—भगवान् भक्त के अधीन हैं। यह अधीनता उनका स्वभाव है। "अहं भक्त–पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः॥ मयि निर्बन्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः। वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥"—(भाः

९/४/६३, ६६) अर्थात् श्रीभगवान् ने कहा, —हे द्विज! हे मुने! मैं भक्त के अधीन हूँ (रुद्रादि देवता जिस प्रकार मेरे अधीन होने के कारण तुम्हारी रक्षा करने में समर्थ नहीं हुये, उसी प्रकार मैं भी भक्त के अधीन हूँ, इसलिए तुम्हारी रक्षा करने में असमर्थ हूँ)। इसलिए अस्वतन्त्र की तरह हूँ। मुक्ति तक की इच्छा न रखने वाले भक्तों ने मेरे हृदय को ग्रास कर दिया है। भक्त की बात क्या कहूँ, भक्त के पाल्य जनसमूह भी मेरे प्रिय हैं। सती स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने सत्पति को वशीभूत कर लेती हैं उसी प्रकार मुझमें आसक्तचित्त वाले समदृष्टि सम्पन्न साधुओं ने इस प्रकार भक्ति के प्रभाव से मुझको वशीभूत कर रखा है। "भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।"—(माठर-श्रुतिवचन) अर्थात् भक्ति ही जीव को भगवान् के निकट ले जाती है, भक्ति ही जीव को भगवद् दर्शन कराती है, परम पुरुष भगवान् एकमात्र भक्ति के ही वश में हैं, भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

ग्रन्थकार द्वारा पुराण-प्रमाण का अवलम्बन करके विष्णु-वैष्णवत्त्व का वर्णन—

स्वभाव कहिते विष्णु-वैष्णवेर प्रीत।
अतएव वेदे कहे स्वभावचरित॥१२६॥
विष्णु वैष्णवेर तत्त्व ये कहे पुराणे।
सेइमत लिखि आमि पुराण प्रमाणे॥१२७॥

(१२६-१२७) प. अनु०—परस्पर के स्वभाव का वर्णन करने में विष्णु और वैष्णवजन—दोनों प्रसन्न होते हैं। अतएव वेद इन्हीं दोनो के स्वभाव-चरित का वर्णन करते हैं। विष्णु और वैष्णवों का तत्त्व जैसा पुराणों में कहा गया है, उसी पुराण-प्रमाण के अनुसार मैं उसका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ।

(१२६) गौः भाः—भगवान् के मुख से भक्त का यशोगान सुनने में विशेषता है। विष्णु एवं वैष्णव-दोनों एक दूसरे के स्वभाव का वर्णन करने में प्रसन्न होते हैं। इसलिए वेदशास्त्र विष्णु-वैष्णवों की स्वाभाविक लीला का गान करते हैं।

नित्यानन्दस्वरूप का अभिमान—

नित्यानन्द स्वरूपेर एइ वाक्य-मन।
''चैतन्य—ईश्वर, मुञि ताँ'र एकजन॥''१२८॥
अहर्निश श्रीमुखे नाहिक अन्य कथा।
''मुञि ताँ'र, सेह मोर ईश्वर सर्वथा॥१२९॥
चैतन्येर संगे ये मोहारे स्तुति करे।
सेइ से मोहार भृत्य, पाइवेक मोरे॥''१३०॥
आपने करियाछेन षड्भुज दर्शन।
ता'र प्रीते कहि ता'न ए सब कथन॥१३१॥

(१२८-१३१) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द की वाणी और मन में बस यही बात है कि "श्रीचैतन्यदेव मेरे ईश्वर हैं और मैं उनका एकजन हूँ।" "मैं उनका हूँ और वे सब प्रकार से मेरे स्वामी हैं।" इस बात के अतिरिक्त उनके श्रीमुख से और कोई दूसरी बात कभी निकलती ही नहीं हैं। " जो जन श्रीचैतन्यदेव के साथ मेरी स्तुति करता है, वही मेरा सेवक है और वही मुझ को प्राप्त करता है। प्रभु ने स्वंय षड्भुज दर्शन कराया था। उन्हीं की प्रसन्नता के लिए उन बातों को मैं कह रहा हूँ।"

(१२८) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु मन से एवं वाणी से चैतन्यदेव को अपना प्रभु समझते हैं एवं अपने को उनका एकजन दासविशेष मानते हैं। "आपनाके भृत्य करि, कृष्णे प्रभु जाने।"—(चैः चः आः ५/१३७)।

(१२९) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द के मुख में यह वाक्य सर्वदा वर्तमान रहता है कि 'भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान् का हूँ।' उसमें अन्य किसी बात के लिए कोई स्थान नहीं है।

(१३०) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द कहते हैं, —श्री चैतन्यदेव मेरे प्रभु हैं एवं मैं उनका सेवक हूँ—इस प्रकार की स्तुति जिसके मुख से सुनने मे आयेगी, वही मेरा वास्तविक अनुगत भृत्य है और वही मुझ को सेव्यरूप से प्राप्त करेगा।

(१३१) गौः भाः—ग्रन्थकार कहते हैं—श्री नित्यानन्द प्रभु ने श्रीगौरसुन्दर के षड्भुज स्वरूप का दर्शन किया था। उनकी उसी लीला का वर्णन करने से नित्यानन्द प्रसन्न होंगे।

अपने हृदय मे गौरलीला के दृष्टा निताइ द्वारा प्रकट रूप से अवतारोचित क्रीड़ा का प्रदर्शन—

परमार्थे नित्यानन्द ताहान हृदय।
दोंहे दोंहा देखिते आछेन सुनिश्चय॥१३२॥
तथापिह अवतार-अनुरूप-खेला।
करेन ईश्वरसेवा, के बुझिवे लीला॥१३३॥

(१३२-१३३) प. अनु०—परमार्थ के विचार से यद्यपि नित्यानन्द सदा प्रभु के हृदय में विद्यमान रहते हैं और निश्चित रूप से दोनों एक दूसरे को देख भी रहे हैं; फिर भी वे अवतार के अनुरूप क्रीड़ करते हैं, वे स्वयं ईश्वर की सेवा करते हैं। इस लीला-रहस्य को भला कौन समझ सकता है?

ईश्वर-लीला का प्रकाश करना ही वेदादि का उद्देश्य—

सेइ ये स्वीकारा प्रभु करये आपेन।
ताहा गाय, वर्णे वेदे, भारते, पुराणे॥१३४॥
ये कर्म करये प्रभु, सेइ हय 'वेद'।
ताहि गाय सर्ववेदे छाड़ि' सर्वभेद॥१३५॥

(१३४-१३५) प. अनु०—नित्यानन्द प्रभु स्वयं ही इस सेवा को स्वीकार करते हैं और उसी का वेद, महाभारत, पुराण आदि गा-गाकर वर्णन करते हैं। प्रभु तो कर्म करते हैं, वही वेद हो जाता है, फिर उसे ही सारे वेद सब भेदभावों को छोड़कर गाया करते हैं।

(१३२-१३४) गौः भाः—यद्यपि श्रीनित्यानन्द श्रीगौरसुन्दर की सब लीलाओं का हृदय में दर्शन करते हैं एवं श्रीगौरसुन्दर भी नित्यानन्द को अपनी सब लीलाओं का दर्शन कराते हैं, फिर भी लोगों को बोध कराने के लिए अवतारोचित लीलाओं का प्रकट रूप से भी प्रदर्शन करते हैं। स्वयं ईश्वर होते हुये भी नित्यानन्द प्रभु भगवान् की सेवा करते हैं। यह लीला साधारणजन की समझ के बाहर है। नित्यानन्द की सेवक-लीला की कथाएँ वेद, महाभारत और पुराणों में वर्णित हैं।

(१३५) गौः भाः—भगवान् जो-जो कार्यकरते हैं, उन्हीं सब कार्यों का वेदसमूह गान करते हैं। उनके द्वारा अनुष्ठित क्रियाओं को प्रकाशित करना ही वेद का उद्देश्य है। भगवान् की क्रियाएँ ही वेद का वास्तविक प्रतिपाद्य सत्य है। अद्वयज्ञान भगवान् की कथाओं में पार्थक्य स्थापित करते हुये वेद में कोई भी बात नहीं कही गई है। अद्वयज्ञान हरि की कथाएँ ही सब विषमताओं का परित्याग करते वेद हुये वेद में कीर्तित हुई हैं।

भक्तियोग के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से भगवान् की लीलाओं को जानना कठिन—

भक्तियोग बिना इहा बुझन ना पाय।
जाने जन-कत गौरचन्द्रेर कृपाय॥१३६॥

(१३६) प. अनु०—भक्तियोग के बिना इस लीला रहस्य को समझना असम्भव है।

कुछ लोग की श्रीगौरचन्द्र की कृपा से इसे जान पाते हैं।

(१३६) गौः भाः—जिन व्यक्तियों की अनात्मवृत्ति प्रबल है, अर्थात् जो मनोधर्मी हैं, उन सब मानवों को भक्ति के स्वरूप को बोध नहीं हुआ है। जिनको श्रीमहाप्रभु की कृपा प्राप्त हो जाती है, वे ही कुछ लोग भक्तियोग से गौरलीला की उपलब्धि कर सकते हैं।

वैष्णवों में भेद दर्शन करने वालों की दुर्गति—

नित्यशुद्ध ज्ञानवन्त वैष्णवसकल।
तबे ये कलह देख, सब कुतूहल॥१३७॥
इहा ना बुझिया कोन कोन बुद्धि–पाश।
एके वन्दे, आरे निन्दे, याइवेक नाश॥१३८॥

(१३७–१३८) प. अनु०—सब वैष्णवजन नित्यशुद्ध ज्ञानसम्पन्न हैं, फिर भी उसमें परस्पर जो कलह देखने में आती है, वह सब एक कौतुक मात्र है। इस रहस्य की बात को न समझ पाने के कारण किसी–न किसी की बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह एक की वन्दना एवं दूसरे की निन्दा करके विनाश को प्राप्त होता है।

(१३५) गौः भाः—भगवान् जो–जो कार्य करते हैं, उन्हीं सब कार्यों का वेदसमूह गान करते हैं। उनके द्वारा अनुष्ठित क्रियाओं को प्रकाशित करना ही वेद का उद्देश्य है। भगवान् की क्रियाएँ ही वेद का वास्तविक प्रतिपाद्य सत्य है। अद्वयज्ञान भगवान् की कथाओं में पार्थक्य स्थापित करते हुये वेद में कोई भी बात नहीं कही गई है। अद्वयज्ञान हरि की कथाएँ ही सब विषमताओं का परित्याग करते हुये वेद में कीर्तित हुई हैं।

(१३६) प. अनु०—भक्तियोग के बिना इस लीला रहस्य को समझना असम्भव है। कुछ लोग ही श्रीगौरचन्द्र की कृपा से इसे जान पाते हैं।

(१३६) गौः भाः—जिन व्यक्तियों की अनात्मवृत्ति प्रबल है, अर्थात् जो मनोधर्मी हैं, उन सब मानवों को भक्ति के स्वरूप का बोध नहीं हुआ है। जिनको श्रीमहाप्रभु की कृपा प्राप्त हो जाती है, वे ही कुछ लोग भक्तियोग से गौरीलीला की उपलब्धि कर सकते हैं।

(१३७–१३८) प. अनु०—सब वैष्णवजन नित्यशुद्ध ज्ञानसम्पन्न हैं, फिर भी उनमें परस्पर जो कलह देखने में आती है, वह सब एक कौतुक मात्र है। इस रहस्य की बात को न समझ पाने के कारण किसी–न–किसी की बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह एक की वन्दना एवं दूसरे की निन्दा करके विनाश को प्राप्त होता है।

(१३७) गौः भाः—सभी शुद्ध वैष्णवजन नित्य–शुद्ध–ज्ञान हैं। उस प्रकार के अप्राकृत वैष्णवों के बीच में जो परस्पर मतभेद दिखाई देता है, वह केवल चमत्कारिता की वृद्धि हेतु वर्तमान है। वास्तव में आत्मधर्मियों के बीच कोई भी वास्तविक मतभेद नहीं होता है। मनोधर्मियों के बीच में ही मतभेद वर्तमान रहता है। आत्मधर्मियों के मतभेद का रूप तो आत्मधर्म की विचित्रता का ही विस्तार करता है। उसमें जड़ीय भोग और त्याग का या मिथ्याभक्ति का कोलाहल (शोरगुल) नहीं है।

(१३८) गौः भाः—जो लोग इस बात को बिना समझे, एक वैष्णव में नित्यशुद्ध ज्ञान है, दूसरे वैष्णव में वह नहीं है'; ऐसा विचार करते हैं, उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, ऐसा जानना होगा। इसमें एक गूढ़ रहस्य की बात यही है कि, वैष्णव एवं अवैष्णव रहस्य की बात यही है कि, वैष्णव एवं अवैष्णव के बीच जो पार्थक्य विद्यमान है, तो उनकी उस

प्रकार की भ्रान्ति वैष्णवों में परस्पर एक दूसरे में विवर्त (रज्जू में सर्प का भ्रम) उपस्थित करा देगी।

तथाहि नारदीये–

''अभ्यर्च्चयित्वा प्रतिमासु विष्णुं
निन्दन् जने सर्वगतं तमेव।
अभ्यर्च्च्य पादौ हि द्विजस्य मूर्द्धि्न
प्रहृत्य वाज्ञो नरकं प्रयाति॥''१३९॥

(१३९) अन्वय—प्रतिमासु विष्णु अभ्यर्च्चयित्वा (सम्पूज्य) जने (जनहृदयस्थितं) सर्वगतं तं एवं विष्णुं निन्दन् (अवजानन् जनः) हि (नूनं) द्विजस्य (विप्रस्य) पादौ (पदयुंग) अभ्यर्च्च्य (सम्पूज्य पश्चात्) मूर्द्धि्न (तस्यैव मस्तके) प्रहृत्य (प्रहारं कृत्वा) अज्ञः वा (मूढ़ इव स यथा नरकं याति तथा इत्यर्थः) नरकं प्रयाति (गच्छाति)।

(१३९) अनुवाद—जैसे कोई मूढ़ व्यक्ति पहले ब्राह्मण के चरणों की पूजा करके और फिर उसी के मस्तक पर प्रहार करके नरक में जाता है, वैसे ही मस्तक पर प्रहार करके नरक में जाता है, वैसे ही जो प्रतिमा में विष्णु की पूजा करते हुये उनके जनों के प्रति द्वेष करते हैं, वे निखिल प्राणियों के हृदय में स्थित विष्णु की ही अवज्ञा करते हैं और नरक में जाते हैं।

(१३९) तथ्य—भाः ३/२९/२१–२४ एवं ११/५/१४–१५ श्लोकों का अवलोकन करें।

जीव–हिंसक की विष्णुपूजा
निष्फल और दुःखजनक–

वैष्णवहिंसार कथा से थाकुक दूर।
सहज जीवेरे ये अधम पीड़ा करे॥१४०॥
विष्णु पूजियाओ ये प्रजार पीड़ा करे।
पूजाओ निष्फले याय आर दुःखे मरे॥१४१॥
सर्वभूते आछेन श्रीविष्णु, ना जानिया।
विष्णुपूजा करे अति प्राकृत हइया॥१४२॥
एक हस्ते येन विप्रचरण पाखाले।
आर हस्ते ढेला मारे माथाय, कपाले॥१४३॥
ए सब लोकेर कि कुशल कोन क्षणे।
हइयाछे, हइवेक? बुझ भावि' मने॥१४४॥

(१४०–१४४) प. अनु०—वैष्णवों की हिंसा की बात तो दूर, जो अधम लोग विष्णु की पूजा करते हुये साधारण जीवों की हिंसा करते हैं अथवा साधारण प्राणियों को पीड़ा पहुँचाते हैं, उनकी पूजा भी निष्फल हो जाती है और वे दुःख पाकर मरते हैं। ऐसे लोग, श्रीविष्णु सर्वभूत में निवास करते हैं, इसे न जानकर अति प्राकृत मूढ़ होकर विष्णु की पूजा करते हैं। मन में विचार करो कि जो लोग एक हाथ से विप्र के चरण धोते हैं और दुसरे हाथ से उसके माथे पर पत्थर मारते है; ऐसे लोगों का क्या कभी कुशल हुआ है, या होगा।

(१४०–१४१) गौः भाः—जो लोग जानकर अथवा अनजाने में ही निष्कपट हरिसेवा में आसक्त वैष्णवों की हिंसा करते हैं, उनका अमंगल अनिवार्य है—इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त जो लोग मनुष्य–नाम से अयोग्य होकर, जीवों की हिंसा करके उनको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे 'विष्णुभक्त' के रूप में परिचित होने की इच्छा करने पर भी उनकी विष्णुभक्ति सेव्य–वस्तु के निकट नहीं ले जा सकती है। उनकी विष्णु–पूजा भी दुःख में बदल जाती है। जीव के प्रति दया का अभाव होने से दम्भपूर्वक जो विष्णु–सेवक होने का अभिमान करते हैं, उनको भक्ति के बदले में त्रिविध–ताप ही प्राप्त होते हैं।

(१४२) गौः भाः—प्रकृति से सृष्ट (उत्पन्न) बद्धजीव, जो इन्द्रिय-ज्ञान के आधार पर विभिन्न योग्य वस्तुओं की कल्पना करता है, वही 'प्राकृत' है। सम्पूर्ण जगत् में अणु-परमाणु के अभ्यन्तर में, स्थूलपिण्ड-महापिण्ड के अभ्यन्तर में भगवान् विष्णु को अधिष्ठान नहीं है, प्राणी मात्र के हृदय में अन्तर्यामी रूप से भगवान् के अधिष्ठान का अभाव है—ऐसी बुद्धि रखकर विष्णुपूजा की जो छलना है, वह विष्णु पूजा नहीं है, वह प्राकृत मूढ़ता मात्र है।

(१४०-१४३) गौः भाः—जीव की हिंसा करने से उस जीव के हृदय में स्थित विष्णु की हिंसा हो जाती है, जैसे कोई एक हाथ में ब्राह्मण के सिर पर पत्थर के टुकड़ो से आघात करे एवं दूसरे हाथ से उस ब्राह्मण क चरण धोये यह विपरीत मालूम पड़ता है; उसी प्रकार भगवान् से अभिन्न वैष्णवों की पूजा से उदासीन होकर विष्णु की पूजा करना भी विपरीत है। ऐसी पूजा, पूजा ने होकर उसके दुःखों का कारण होती है।

(१४४) गौः भाः—जो लोग हरि-गुरु-वैष्णवों में असमानता स्थापित करके एक ही पूजा एवं अन्यों की निन्दा करते हैं, उनका न कभी कोई मंगल हुआ है और न कभी होगा—यह विचार करने से ही समझ में आता हैं।

जीवहिंसा एवं वैष्णव-निन्दा में पार्थक्य—

यत पाप हय प्रजा-जनेरे हिंसिले।
ता'र शतगुण हय वैष्णव निन्दिले॥१४५॥

(१४५) प. अनु०—जितना पाप सामान्य प्रजाजनों की हिंसा करने से होता है, उससे सौ गुना पाप वैष्णव की निन्दा करेन से होता है।

(१४५) गौः भाः—मानव-मात्र के हृदय में भगवान् विष्णु का अधिष्ठान है, यद्यपि वैष्णवजन साधारण मानवों की तरह दिखाई देते हैं, परन्तु उनके हृदय में जो विष्णु अधिष्ठित हैं, उनकी सेवा की ओर वे वैष्णव सर्वदा उन्मुख रहते हैं। एक व्यक्ति विष्णु-सेवा को छोड़कर रजोगुण और तमोगुण में अवस्थित है, दूसरा वैष्णव सत्वगुण में स्थित रहकर सर्वदा विष्णु-सेवा में लगा हुआ है। इसलिए इन दोनों के बीच में जो विशेषता है, जो विचित्रता है, उस पर विचार करने से मालूम होता है कि विष्णु-सेवा-परायण वैष्णव की हिंसा करने से साधारण जनों की हिंसा की अपेक्षा सौ गुना पाप अथवा अपराध उपस्थित होता है। "नाश्चर्मेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु। सेर्ष्यं महापुरुषपादपांयुभिर्निरस्ततेजः सु तदेव शोभनम्॥"—(भाः ४/४/१३) अर्थात् जो जड़देह को ही 'आत्मा' मानते हैं, ऐसे असत् पुरुष यदि निरन्तर महद्व्यक्तियों की निन्दा करते हैं, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? यद्यपि महापुरुष अपनी निन्दा सहन कर लेते हैं, तथापि उनकी पदरेणु-समूह उस निन्दा सहन नहीं कर पाती और वह निन्दक का तेज नष्ट कर देती है। अतएवं महापुरुषों की निन्दा-जैसा निकृष्ट कार्य उन दुष्ट व्यक्तियों को ही शोभा देता है। परिणाम में उन्हें उस निन्दा का प्रतिफल भी भोगना पड़ता है। " यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तम। करोति तस्य नश्यन्ति अर्थ-धर्म-यशः-सुताः॥ निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्। पतन्ति पितृभिः सार्द्धं महारौरवसंज्ञिते॥ हन्ति निन्दित वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति। क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट्॥ पूर्वं कृत्वा तु सम्मानमवज्ञां कुरुते तु यः। वैष्णवानां महीपाल सान्वयो याति संक्षयम्॥"—(स्कन्दपुराण)। "जन्म'-प्रभति यतकिंचित् सुकृतं समुपार्ज्जितम्। नाशमायाति तत् सर्वं पीडयेद्यदि वैष्णवान्॥"—(अमृतसारोद्ध

रे)। "करपत्रैश्च फाल्यन्ते सुतीव्रैर्यमशासनैः। निन्दां कुर्वन्ति ये पाप वैष्णवानां महात्मनाम्॥ पूजियौ भगवान् विष्णु–र्जन्मान्तरशतैरपि। प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चाप–मानिते॥"—(द्व ारका माहत्म्य)। "ये निदन्ति हृषीकेशं तद्भक्तं पुण्यरूपिणम्। शतजन्मर्ज्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्॥ ते पतन्ति महाघोरे कुम्भीपाके भयानके। भक्षिताः। कीटसंघेन यावत् चन्द्रदिवाकरौ॥ तस्य दर्शनमात्रेण पुण्यं नश्यति निश्चितम्। गंगां स्नात्वा रविं दृष्ट्वा तदा विद्वान् विशुद्धयति॥"—(ब्रः वैः कृष्णजन्मखण्डे)।

प्राकृत–भक्त के लक्षण—

श्रद्धा करि' मूर्ति पूजे भक्त ना आदरे'।
मूर्ख, नीच, पतितेरे दया नाहि करे॥१४६॥
एक अवतार भजे, ना भजये आर।
कृष्ण–रघुनाथे करे भेद–व्यवहार॥१४७॥
बलराम–शिव–प्रति प्रीत नाहि करे।
'भक्ताधम' शास्त्रे कहे ए सब जनारे॥१४८॥

(१४६–१४८) प. अनु०—जो मूर्ति की पूजा तो श्रद्धा से करते हैं, किन्तु भक्त का आदर नहीं करते; जो मूर्खों, नीचों और पतितों पर दया नहीं करते, जो एक अवतार को तो भजते हैं, किन्तु दूसरे को नहीं भजते, जो श्रीकृष्ण और श्रीराम के प्रति भेद का व्यवहार करते हैं; बलराम एवं शिव में जो भक्ति भाव नहीं रखते हैं, ऐसे सब लोगों को शास्त्र में 'भक्ताधम' कहा गया है।

(१४६–१४८) प. अनु०—जो मूर्ति की पूजा तो श्रद्धा से करते हैं, किन्तु भक्त का आदर नहीं करते; जो मूर्खों, नीचों और पतितों पर दया नहीं करतेश जो एक अवतार को तो भजते हैं, किन्तु दूसरे को नहीं भजते, जो श्रीकृष्ण और श्रीराम के प्रति भेद का व्यवहार करते है; बलराम एवं शिव में जो भक्ति भाव नहीं रखते हैं, ऐसे सब लोगों को शास्त्र में 'भक्ताधम' कहा गया है।

(१४६–१४८) गौः भाः—जो श्रद्धापूर्वक भगवान् की पूजा तो करते रहते हैं, किन्तु उन भक्तों का पूजन नहीं करते, जो भगवान् के विच्छेद–रहित संबन्ध–युक्त सेवक होते हैं, अथवा जो बालिश (मुर्ख), भगवत्–पूजा–रहित नीच व्यक्तियों को सदुपदेश देकर एवं भगवद्विरोधी–पाखण्डी आदि व्यक्तियों का कुसंग छोड़कर उन पर दया नहीं करते, उनको शास्त्र में 'भक्ति–वर्जित अधम' कहकर वर्णित किया गया है। जो राम के उपासक हैं, वे यदि कृष्ण भक्तों की हिंसा करते हैं, अथवा जो कृष्णभक्त–ब्रुव हैं, वे यदि श्रीराम–सीता के उपासकों की निन्दा करते हैं तो उनको भी भक्त श्रेणी से दूर करके 'अधम' शब्द से अभिहित किया जायेगा। विष्णु विभिन्न नित्यमूर्त्तियों में, असंख्य वैकुण्ठों में वास करते हैं। विष्णु के उन अधिष्ठानों में या भक्तों के अधिष्ठानों में, जिनकी प्रीति नहीं है, उन्हे 'अधम' कहते हैं। बलदेव, लक्ष्मी, गरुड़, वायु, रुद्र आदि भगवद्सेवकों की जो निन्दा करते हैं, उनकी विष्णुपूजा सिद्ध नहीं होती है। इसीलिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है, कनिष्ठाधिकार में अवस्थित भक्त प्राकृत–राज्य में पतन के योग्य होता है। "अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥"—(भाः ११/२/४७)।

वैष्णवजन सामान्य और साम्प्रदायिक भेद से 'बिद्ध' और 'शुद्ध' वैष्णव नामों से विख्यात हैं। रुद्रदेव से विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय का, ब्रह्मा से श्रीमध्य–सम्प्रदाय का, श्रीलक्ष्मीदेवी से रामानुज–सम्प्रदाय का एवं सनकादि से निम्बार्क–सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। इन

चारों सम्प्रदायों के बीच में परस्पर विरोध भाव को लेकर भाव को लेकर जो एक दूसरे की निन्दा करते हैं, उनको कनिष्ठाधिकार के कारण भ्रष्ट होकर पतित होना पड़ता है। सभी देवी-देवता भगवान की सेवा का भार लेकर नित्यकाल यापन करते हैं एवं उनका अधिकार-युक्त सेवाभार प्रपंच में दिखाई देता है; उसे देखने से उनकी स्वरूप ज्ञान से देवी-देवताओं का असम्मान करने से विष्णुभक्ति नहीं रह सकती है। श्रीगुरुवर्ग को और देवी-देवताओं को विष्णुभक्ति से रहित मानने पर अपराध होता है। देवी-देवताओं के आधिकारिक भाव की पूजा करके जीव यदि कृष्ण-सेवा भूल जाता है तो उसके द्वारा जीव का कोई मंगल नहीं होता है। इसलिए ही ठाकुर नरोत्तम कहते हैं,—"हृषीके गोविन्द-सेवा, ना पूजिव देवीदेवता, एइ त' अनन्य-भक्तिकथा।" भगवत्-सेवा में अनन्यता देवी-देवताओं की निन्दा नहीं है। सभी देवी-देवता भगवान् के आश्रित हैं। इसलिए भगवत्-सेवानिष्ठ होने से ही सब देवी-देवताओं की पूजा हो जाती है। किसी एक देवी-देवता की पूजा करने से दूसरे देवी-देवता असंतुष्ट होते हैं, किन्तु भगवान् की पूजा करने से उनके अधीन रहने वाले सबकी पूजा हो जाती है; साधारण जीव की निन्दा की अपेक्षा वैष्णव की निन्दा सौ गुने पाप की वृद्धि करती है। इसलिए इस प्रकार के कार्य में कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अग्रसर नहीं होता है।

तथाहि भागवत में ११/२/४७—

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥१४९॥
प्रसंगे कहिल भक्ताधमेर लक्षणे।
पूर्ण हैला नित्यानन्द षड्भुजदर्शने ॥१५०॥

(१४९) अन्वयः—यः (गुरवे आत्मानं निवेद्य)हरये (भगवते) अर्चायां (श्रीविग्रहे) श्रद्धयाः (दीक्षितः सन् मिश्रत्वेन भक्त्याभासेन पांचरात्रिक विधानेन) पूजां ईहते (करोति किन्तु) तद्भक्तेषु (हरिजनेषु) पूजां न (ईहते भक्ततारतम्यज्ञानाभावात्) अन्येषु च (अभक्तेषु च पूजां न ईहते अर्थात् हरिविमुखसंगंच वर्ज्जयतीत्यर्थः) स भक्तः प्राकृतः (कनिष्ठः,वैष्णवप्रायः, न तु शुद्ध इत्यर्थः) स्मृतः (कथित)ः।

(१४९) अनुवादः—जो श्रीगुरुदेव के समक्ष आत्मसमर्पण पूर्वक दीक्षित होकर मिश्र भक्त्याभास के साथ पांचरात्रिक विधान से श्रीविष्णु कीअर्चामूर्ति की पूजा करते हैं तथा भक्ततारतम्य ज्ञान के अभाव के कारण हरिजनों की पूजा नहीं करते; परन्तु हरि विमुखों के संग का त्याग करते हैं, वे भक्त 'प्राकृत', 'कनिष्ठ' या 'वैष्णव-प्राय' नाम से पुकारे जाते हैं, वे शुद्धभक्त नहीं हैं

(१५०) प. अनु०—यहाँ प्रसंगवश अधम भक्त के लक्षण कहे गये हैं। षड्भुज दर्शन करे नित्यानन्द परम आनन्द को प्राप्त हुये।

(१५०) गौः भाः—अधम भक्त का लक्षण है—हरिपूजा की छलना से भक्तपूजा का त्याग। उसके फलस्वरूप विष्णुपूजा से उसकी सेवानिवृत्ति की सम्भावना है। जो परिकरवैशिष्ट्य के साथ भगवान् की पूजा करते हैं एवं भक्तपूजा की महिमा भगवान् की पूजा से श्रेष्ठ समझते हैं, वे ही उन्नत भक्त हैं और उनके पतन की सम्भावना बहुत ही कम है। वे भली प्रकार जानते हैं, कि—"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाःप्रकाशन्ते महात्मनः॥"—(श्वेताश्वः ६/२३)।

नित्यानन्द के षड्भुज-दर्शन के आख्यान की फलश्रुति—

एइ नित्यानन्देर षड्भुज-दरशन।
इहा ये शुनये, तार बन्धविमोचन॥१५१॥

(१५१) प. अनु०—जब श्रीनित्यानन्द के इस षड्भुज-दर्शन प्रसंग को जो सुनेगा, वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जायेगा।

बाह्याज्ञान होन पर नित्यानन्द का प्रेमक्रन्दन—

बाह्य पाइ' नित्यानन्द करेन क्रन्दने।
महानदी बहे दुइ कमल नयने॥१५२॥

(१५२) प. अनु०—जब श्रीनित्यानन्द बाह्यदशा में आये तो वे रोने लगे, उनके कमल-तुल्य दोनों नयनों से अश्रुओं की महानदी बहने लगी।

व्यासपूजा के अन्त में भक्तों के साथ महाप्रभु का कीर्तन-विलास—

सबा प्रति महाप्रभु बलिला वचन।
''पूर्ण हैल व्यासपूजा, करह कीर्तन॥''१५३॥
पाइया प्रभुर आज्ञा सबे आनन्दित।
चौदिके उठिल कृष्ण-ध्वनि आचम्बित॥१५४॥
नित्यानन्द-गौरचन्द्र नाचे एकठाञि।
महामत्त दुइ भाइ कारो बाह्य नाइ॥१५५॥
सकल वैष्णव हैला आनन्दे विह्वल।
व्यासपूजा-महोत्सव महाकुतूहल॥१५६॥
केह नाचे, केह गाय, केह गड़ि' याय।
सबेइ चरण धरे, ये याहार पाय॥१५७॥

(१५३-१५७) प. अनु०—तब महाप्रभु ने सब भक्तों से कहा कि "व्यासपूजा तो पूरी हो गयी, अब कीर्तन करो!" प्रभु की आज्ञा पाकर सब लोग बड़े आनन्दित हुये और चारों ओर अचानक कृष्णनाम की ध्वनि होने लगी। श्रीनित्यानन्द और श्रीगौरचन्द्र एक स्थान पर नृत्य करने लगे। दोनों भाई महामत्त हो रहे हैं, किसी को भी बाहर की सुध नहीं है। सभी वैष्णव आनन्द से विह्वल हो रहे हैं, इस प्रकार व्यासपूजा-महोत्सव को महान् कुतूहल हुआ। कुछ नाच रहे थे, कुछ गा रहे थे और कुछ धरती पर लोट रहे थे, जिसे जिसका चरण मिल रहा था, वह उसका चरण पकड़ रहा था।

(१५३) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा,—"भक्तराज नित्यानन्द द्वारा की गई उपासना के अन्त में व्यासपूजा पूर्णता को प्राप्त हो चुकी है। अब तुम सब भक्तजन हरिकीर्तन करो"। बहुत से व्यक्ति व्यास को भक्त जानकर एवं श्रीगुरुवैष्णव में मर्त्य-बुद्धि रखते हुए उनकी पूजा पर ध्यान नहीं देते हैं, इसलिए नित्यानन्द की श्रीवासादि सब भक्त-परिकर सहित गौर-पूजा की यह लीला प्रदर्शित हुई है।

(१५७) गौः भाः—वैष्णवजन एक दूसरे के चरणों की राज लेकर अपनी दीनता प्रकट करते हैं, जबकि सांसारिक जीव नाना प्रकार के ऊँचे-नीचे विचारों से अपने अंहकार में विमूढ़ होकर अपनी ऊँची मर्यादा की स्थापना करने हेतु दूसरों से सम्मान ग्रहण की इच्छा करते हैं। वैष्णव—अमानी होते हैं, इसलिए वे सांसारिक अनभिज्ञ (अनजान) जनों की तरह अपना मान बढ़ानें के लिए यत्न नहीं करते हैं। वे सबको सम्मान देते हैं। इसलिए ऊँच-नीच के विचार से रहित महाभागवत अधिकार में कुत्ता, गधा, चण्डाल, विद्या-विनय से सम्पन्न ब्राह्मण—ये कभी वैष्णवों के प्रणम्य हैं। जिनकी भेद-दृष्टि प्रबल है, वे कभी भी ब्रह्मज्ञ नहीं हो सकते, अर्थात् वे समग्र अद्वयज्ञान के अधिकारी नहीं है। हर जीव में और हर जड़ परमाणु में विष्णु अधिष्ठित हैं एवं वे सभी हरि-मन्दिर हैं, यह बात त्रिगुण में फँसे, तथाकथित ब्राह्मण नहीं समझ सकते

हैं। वैष्णव ही उनके श्रीगुरुदेव के स्थान पर अधिकार पाकर उनको वेदमंत्र का उपदेश देते रहते हैं। "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥" विषम दृष्टि से गूढ़ अर्थ प्रकाशित नहीं होते हैं, वह दृष्टि तो बाह्य आदि वैकुण्ठ के अन्तर्वर्त्ती तत्त्व का अनुसंधान पाने में असमर्थ हैं। मायाबद्ध जीव—'अवैष्णव' और मायामुक्त जीव—'वैकुण्ठ' या 'वैष्णव' है। इसलिए उनमें बंधन और मोक्ष की उपलब्धि सर्वदा वर्तमान रहती है। इस कारण वे तृण से भी अधिक तुच्छ (तृणादपि सुनीच) और वृक्ष से भी अधिक सहनशील बने रहकर, स्वयं का सम्मान न चाहकर दूसरों को सम्मान देते हुये सर्वदा शब्द-द्वारा और गीत-द्वारा कृष्ण सेवा करते रहते हैं।

शचीमाता का निताइ-गौर को देखकर दोनों की अपनी पुत्र जानना—

चैतन्य-प्रभुर माता—जगतेर आइ।
निभृते बसिया रंग देखने तथाइ॥१५८॥
विश्वम्भर-नित्यानन्द देखेन यखने।
'दुइ जन मोर पुत्र' हेन वासे मने॥१५९॥

(१५८-१५९) प. अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की माता—जगन्माता शचीदेवी वहीं पर एकान्त में बैठी हुई यह सब लीला देख रही थीं। जिस समय उन्होंने श्रीविश्वम्भर और नित्यानन्द को एक साथ देखा, तो उनके मन में ऐसी अनुभूति हुई कि 'ये दोनों मेरे ही पुत्र हैं'।

(१५८) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव की माता शचीदेवी सब जगद्वासियों की पूज्य हैं। उन्होंने निर्जन में बैठकर गौर-नित्यानन्द की आलौकिक लीलाओं का दर्शन किया एवं दोनों को अपना ही पुत्र समझा।

व्यासपूजा की लीला का संक्षेप में उल्लेख—

व्यास-पूजा-महोत्सव परम उदार।
अनन्त-प्रभु से पारे इहा वर्णिवार॥१६०॥
सूत्र करि' कहि किछु चैतन्यचरित।
ये-ते-मते कृष्ण गाहिलेइ हय हित॥१६१॥

(१६०-१६१) प. अनु०—व्यास-पूजा का महोत्सव तो अतिशय महान् है। इसका वर्णन एकमात्र अनन्तदेव ही कर सकते हैं। मैंने तो सूत्ररूप से कुछ चैतन्य-चरित कहा हैं, क्योंकि जिस किसी भी प्रकार से श्रीकृष्ण का गुणगान करने से हित (मंगल) ही होता है।

(१६१) गौः भाः—श्रीव्यास-पूजा, आचार्य-पूजा, नर-पूजा एवं कृष्ण के विभिन्न अवतारों की पूजा करते समय सर्वोत्तम जन कृष्णगीत की पूजा करके सब जगत का हित साधन करते हैं।

व्यासपूजा के समापन पर कीर्तन का आनन्द—

दिन अवशेष हैल व्यासपूजारंगे।
नाचेन वैष्णवगण विश्वम्भर-संगे॥१६२॥
परम आनन्दे मत्त भागवतगण।
'हा कृष्ण' बलिया सबे करेन क्रन्दन॥१६३॥

(१६२-१६३) प. अनु०—व्यासपूजा के आनन्द में दिन बीत गया; किन्तु वैष्णजन श्रीविश्वम्भर के साथ नाच रहे थे। सभी भक्तजन परमानन्द में मत्त थे एवं 'हा कृष्ण' कह-कहकर क्रन्दन कर रहे थे।

कीर्तन की समाप्ति के बाद प्रभु द्वारा प्रसाद वितरण एवं भक्तों द्वारा प्रसाद ग्रहण—

एइ मते निज भक्तियोग प्रकाशिया।
स्थिर हैला विश्वम्भर सर्वगण लैया॥''१६४॥
ठाकुर पंडित-प्रति बले विश्वम्भर।
''व्यासेर नैवेद्य सब आनह सत्त्वर॥''१६५॥

ततक्षणे आनिलेन सर्व–उपहार।
आपनेइ प्रभु हस्ते दिलेन सवार॥१६६॥
प्रभु हस्तेर द्रव्य पाइ' ततक्षण।
आनन्दे भोजन करे भागवतगण॥१६७॥

(१६४–१६७) प. अनु०—इस प्रकार अपने भक्तियोग को प्रकाशित करके श्रीविश्वम्भर अपने भक्तों के सहित स्थिर हो गये। फिर श्रीवास से विश्वम्भर ने कहा कि "व्यासपूजा के सब नैवेद्य को शीघ्र ले आओ।" वे तत्काल सब सामग्री ले आये, उसे प्रभु ने स्वयं अपने हाथों से सबको बाँट दिया। प्रभु के श्रीहस्त का प्रसाद पाकर तुरन्त ही सब भागवतजन आनन्द से उसे खाने लगे।

(१६४) गौः भाः—भक्तियोग के अनुष्ठान असंख्य हैं। श्रीगौरसुन्दर ने व्यासपूजा को प्रकट कराकर भक्ति का प्रचार किया है।

भक्तसंसर्ग से ही जनगणों को ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति—

यतेक आछिल सेइ बाड़ीर भितरे।
सबारे डाकिया प्रभु दिला निज करे॥१६८॥
ब्रह्मादि पाइया याहा भाग्य–हेन माने।
ताहा पा वैष्णवेर दासदासीगणे॥१६९॥
ए सब कौतुक यत श्रीवासेर घरे।
एतेके श्रीवास–भाग्य के बलिते पारे॥१७०॥
एइ मत नाना दिने नाना से कौतुके।
नवद्वीपे हय, नाहि जाने सर्वलोके॥१७१॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचन्द्र जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥१७२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे व्यासपूजा वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।

(१६८–१७२) प. अनु०—घर के भीतर जितने भी मनुष्य थे, सबको बुला–बुलाकर प्रभु ने अपने हाथों से प्रसाद दिया। जिस प्रसाद को पाकर ब्रह्मा आदि भी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं, उसी प्रसाद को वैष्णवों के दासदासीजन तक पा रहे थे। यह सब जितना आनन्द श्रीवास के घर में हुआ, उनके कारण श्रीवास के भाग्य की सराहना कौन कर सकता है। इस प्रकार अनेक दिनों तक विभिन्न प्रकार के आनन्द नवद्वीप में होते रहे, किन्तु उनको सब लोग नहीं जानते हैं। श्रीकृष्णचैतन्य और श्रीनित्यानन्द चन्द्र जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल–श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(१६९) गौः भाः—ब्रह्मादि देवगण सर्वोच्च अधिकार प्राप्त करते हुये भगवत्–प्रसाद पाकर कृतार्थ होते हैं। वैष्णव के घर के भृत्य आदि सब उसी सर्वोच्च जनों द्वारा प्राप्य अनुग्रह के अधिकारी बने। ब्रह्मादि–देवताओं को दुर्लभ भगवद्कृपा को भक्त–घर के संसर्ग में रहने वाले व्याक्तियों ने अपुण्यवान् होने पर भी प्राप्त किया।

इति गौड़ीय–भाष्य में पंचम अध्याय समाप्त

O

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमहाप्रभु द्वारा रामाइ को अपने प्रकाश की वार्ता और नित्यानन्द प्रभु के आगमन का समाचार बताने के लिए अद्वैताचार्य के समीप में प्रेरण, पूजोपकरण के साथ महाप्रभु के निकट स्त्री-सहित अद्वैतप्रभु का आगमन एवं महाप्रभु की परीक्षा हेतु गुप्तभाव से नन्दनाचार्य के घर में अवस्थान, आचार्य की गुप्त लीला को अच्छी तरह जानने वाले अन्तर्यामी महाप्रभु के साथ उनका मिलन और ऐश्वर्य का दर्शन; महाप्रभु द्वारा अद्वैत के समीप अपने प्रकाशतत्त्व का कथन आदि विषय वर्णित हुये हैं।

श्रीवास के घर पर व्यासपूजा की समाप्ति के बाद श्री श्रीमन्महाप्रभु ने नित्यानन्दप्रभु और भक्तजनों के साथ कीर्तन-विलास में प्रमत्त रहते समय एकदिन ईश्वर के आवेश में श्रीवास के अनुज श्रीरामाइ पण्डित से कहा कि तुम अद्वैत के समीप जाओं और उन्हें मेरे प्रकाश का समाचार दो। और कहो कि जिसके लिए तुमने बहुत आराधनादि की हैख वे प्रभु भक्तियोग वितरण करने के लिए जगत में अवतीर्ण हुये है उन्हें एकांत में नित्यानन्द के नवद्वीप में आगमन का समाचार और उनका अपूर्व प्रभाव भी बता देना तथा उन्हें आदेश देना कि वे अपने पूजोपकरण एवं स्त्री-सहित यहाँ आकर उपस्थित हों।

महाप्रभु से आदेश पाकर रामाइ आनन्द में विह्वल होकर अद्वैत के निकट उपस्थित हुये। सर्वज्ञ अद्वैत प्रभु भक्तियोग के प्रभाव से पहले ही जान गये थे कि रामाइ ने महाप्रभु का आदेश लेकर यहाँ आगमन किया है। रामाइ को देखने मात्र से अद्वैत ने उससे कहा कि ऐसा मालूम होता है कि महाप्रभु ने मुझे लिवा लाने के लिए तुम्हें भेजा है। अद्वैत का ऐसा प्रभाव देखकर रामाइ ने उनसे प्रभु के निकट चलने का अनुरोध किया। इस पर अद्वैत प्रभु आनन्द से विह्वल होकर अज्ञ की भाँति दोबारा रामाइ से आगमन का कारण पूछने लगे। तब रामाइ ने उन्हें महाप्रभु का आदेश ज्यों-का-त्यों सुनाते हुये उनसे पूजोपकरण सहित चलने का अनुरोध किया। अद्वैतप्रभु रामाइ की बात सुनकर आनन्द से मूर्च्छित हो गये एवं बाद में होश आने पर हुँकार करते हुये आनन्द प्रकट करने लगे। महाप्रभु के प्रकाश का समाचार सुनकर अद्वैतपत्नी सीतादेवी पुत्र अच्युतानन्द एवं अनुचरवर्ग के साथ आनन्द में अश्रुपात करने लगीं। अद्वैत प्रभु ने रामाइ से पुनः महाप्रभु के आदेश के बारे में पूछा और अपने लालसामय अभीष्ट के संबन्ध में रामाइ को बताया एवं पूजा के सब उपहारों मे रामाइ को बताया एवं पूजा के सब उपहारों का संग्रह करके स्त्री-सहित महाप्रभु के दर्शन-हेतु चल दिये। महाप्रभु की परीक्षा लेने के अभिप्राय से रास्ते में रामाइ को अपने आगमन की बात प्रभु के निकट कहने के निए निषेध करते हुये "वे नहीं आये," इस प्रकार महाप्रभु को बताने को आदेश

देकर नन्दनाचार्य के घर में अवस्थान करने लगे। सर्वान्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर ने आचार्य के संकल्प को जानकर विष्णु–सिंहासन पर विराजमान होकर अद्वैत के हृदय का भाव सबके सामने प्रकाशित कर दिया। नित्यानन्द ने महाप्रभु के इशारे को समझकर उनके सिर पर छत्र धारण किया। गदाधर आदि भक्तवृन्द उनकी नाना प्रकार की सेवा करने लग। कुछ भक्तों ने स्तव–पाठ करना आरम्भ कर दिया। उसी समय रामाइ ने आकर महाप्रभु को साष्टांग दण्डवत् किया तो महाप्रभु ने उसे अद्वैत के संकल्प की बात बताकर उनको अपने निकट ले आने का आदेश किया। महाप्रभु का पुनः आदेश पाकर रामाइ ने अद्वैत प्रभु को लाने के निमित्त नन्दनाचार्य के घर जाकर अद्वैत प्रभु को सब समाचार अवगत कराया। तब स्त्री–सहित अद्वैत प्रभु ने आनन्द पूर्वक दूर से साष्टांग दण्डवत् और स्तव–पाठ करते–करते महाप्रभु के सन्मुख आकर प्रभु के अपूर्व महा ऐश्वर्य के दर्शन किये। महाप्रभु के प्रभाव के दर्शन करके अद्वैताचार्य निर्वाक् (मौन) और स्तब्धप्राय हो गये। परम दयालु विश्वम्भर ने उस समय उनके निकट अपने प्रकाश–तत्त्व का विशेष रूप से वर्णन किया। उसके श्रवण से अद्वैत, महाप्रभु की अपूर्व महिमा और दया की कथा का कीर्तन करने लगे। उसी समय प्रभु का आदेश पाकर अद्वैत ने उनके श्रीचरणों का प्रक्षालन करके पंचोपचार से उनकी पूजा की एवं "नमो ब्रह्मण्यदेवाय" आदि श्लोक का उच्चारण करते हुये ब्रजेन्द्रनन्दन से अभिन्न महाप्रभु का स्तवन करते समय ऐसा वर्णन किया कि महाप्रभु साक्षात् कृष्ण–संकीर्तन के प्रकाश–हेतु अवतीर्ण हुये हैं एवं उनसे ही सब अवतारों का प्रकाश हुआ है। उसके बाद महाप्रभु द्वारा अद्वैताचार्य को कीर्तन में नृत्य करने का आदेश दिये जाने पर सब भक्तजनों ने मिलकर अपूर्व कीर्तनानन्द में भाग लिया एवं अद्वैत प्रभु अपूर्व नृत्य करते हुये आनन्द में विभोर हो गये। इसके पश्चात् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की सेवा के विषय में नित्यानन्द और अद्वैत–प्रभु के मध्य जो असामान्य अलौकिक–प्रीति नित्य वर्तमान है, उस संबन्ध में दोनों ने परस्पर कलह–लीला का अभिनय किया। अद्वैत प्रभु के नृत्य के दर्शन से वैष्णवजन परमानन्दित हुए। महाप्रभु के आदेश से अद्वैत के नृत्य बन्द करने पर प्रभु विश्वम्भर ने अपने गले की माला उनको प्रदान कर दी। इसके बाद उन्हें वर माँगने को कहा। महाप्रभु का दर्शन पाकर अपने परम सौभाग्य की सराहना करते हुये अद्वैत प्रभु ने विद्या–धन–कुलादि के अभिमान में मत्त होकर वैष्णवों की निन्दा करने वाले लोगों को छोड़कर स्त्री, शूद्र और मूर्ख आदि सबको ही जो ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ है, उस कृष्णप्रेम को देने का वा माँगा। इस पर श्रीगौरसुन्दर ने भी श्रीअद्वैत की प्रार्थना पर अपनी सम्मति प्रदान कर दी। बाद में अद्व ैताचार्य की प्रार्थना प्रकृष्ट रूप से फलवती हुई। स्त्री के साथ अद्वैत वहीं पर अवस्थान करने लगे।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

जयति जयति देवः कृष्णचैतन्यचन्द्रो
जयति जयति कीर्तिस्तस्य नित्या पवित्रा।
जयति जयति भृत्यस्तस्य विश्वेशमूर्ते—
र्जयति जयति नृत्यस्तस्य सर्वप्रियाणाम् ॥१॥
जय जय जगत्–जीवन गौरचन्द्र।
दान देह' हृदये तोमार पदद्वन्द्व ॥२॥
जय जय जगत्मंगल विश्वम्भर।

जय जय यत गौरचप्द्रर किकंर॥३॥
जय श्रीपरमानन्दपुरीर जीवन।
जय दामोदर–स्वरूपेर प्राणधन॥४॥
ज रूप–सनातन–प्रिय महाशय।
जय जगदीश–गोपीनाथेर हृदय॥५॥
जय जय द्वारपाल–गोविन्देर नाथ ।
जीव प्रति कर प्रभु शुभ दृष्टिपात॥६॥
हेनमते नित्यानन्दसंगे गौरचन्द्र।
भक्तगण लैया करे संकीर्तन–रंग॥७॥
एखने शुनह अद्वैतेर आगमन।
मध्यखण्डे ये–मते हइल दरशन॥८॥

(१) गौः भाः—आदि १म अध्याय ५म श्लोक देखिये।

(२–८) प. अनु०—जगत के जीवन गौरचन्द्र की जय हो, जय हो। आप मेरे हृदय पर अपने श्रीचरण-युगल प्रदान करें। जगतमंगल विश्वम्भर की जय हो, जय हो! श्रीपरमानन्दपुरी के जीवन-स्वरूप प्रभु की जय हो! दामोदर-स्वरूप के प्राणधन प्रभु की जय हो! रूप-सनातन के प्रिय महाशय की जय हो! जगदीश-गोपीनाथ के हृदय-स्वरूप प्रभु की जय हो! द्वारपाल गोविन्द के नाथ की जय हो, जय हो! हे प्रभो! जीवों के प्रति शुभ दृष्टि कीजिये।

इस प्रकार नित्यानन्द के साथ श्रीगौरचन्द्र, भक्तों को लेकर संकीर्तन महोत्सव करने लगे। इस मध्यखण्ड में अब श्रीअद्वैत के आगमन का और उन्होंने जिस प्रकार से महाप्रभु के दर्शन किये, यह प्रसंग सुनो!

(५) गौः भाः—गोपीनाथ—सार्वभौम के बहिन के पति।

(६) गौः भाः—गोविन्द—ईश्वरपुरी का सेवक एवं महाप्रभु का सहचर।

महाप्रभु द्वारा अपने प्रकाश के विषय में बताने के लिये रामाइ को अद्वैत के पास भेजना—

एक दिन महाप्रभु ईश्वर आवेशे—
रामाइरे आज्ञा करिलेन पूर्णरसे॥९॥
''चलह रामाइ तुमि अद्वैतेर वास।
ताँर स्थाने कह गिया आमार प्रकाश॥१०॥

(९–१०) प. अनु०—एकदिन महाप्रभु ने ईश्वर के आवेश में पूर्णानन्द में मग्न होकर रामाइ को आदेश दिया कि, "रामाइ! तुम अद्वैत के घर जाओं और उनको मेरे 'प्रकाश' का संवाद सुनाओ।

(१०) गौः भाः—रामाइ—श्रीवास के कनिष्ठ भ्राता।

महाप्रभु का स्वमुख से निज अवतार-मर्म का प्रकाश—

याँ'र लागि' करिला विस्तर आराधन।
याँ'र लागि' करियाछ विस्तर क्रन्दन॥११॥
याँ'र लागि' करिला विस्तर उपवास।
से–प्रभु तोमार आसि' हइला प्रकाश॥१२॥
भक्तियोग बिलाइते ताँ'र आगमन।
आपने आसिया झाट कर विवर्त्तन॥१३॥

(११–१३) प. अनु०—उनसे कहना कि जिनको प्रकट करने के लिए आपने बहुत आराधना की है, जिनके लिए आपने बहुत उपवास किये हैं, आपके वे ही प्रभु अब आकर प्रकट हो गये हैं। भक्तियोग का दान करने के लिए उनका आविर्भाव हुबा है आप शीघ्र आकर स्वयं उपस्थित हो जाइये।

(१३) गौः भाः—झाट—झटिति, शीघ्र।

विवर्त्तन,—वि-वृत्—(वर्तमान रहना) + अनद् (भावे) कार्य आरम्भ करना, नृत्य, भ्रमण, परिवर्तन, उपस्थित होना। आप शीघ्र

आकर यहाँ स्वयं उपस्थित हो जायें, अर्थात् आकर मिल जायें।

अद्वैत को नित्यानन्द के आगमन का समाचार बताने हेतु महाप्रभु का आदेश—

निर्जने कहिओ नित्यानन्द–आगमन।
ये किछु देखिला, ताँ रे कहिओ कथन॥१४॥

(१४) प. अनु०—एकान्त में नित्यानन्द के आगमन का समाचार भी देना और उसके साथ ही जो कुछ तुमने देखा है, वह सब कहना।

अद्वैत को अपनी स्त्रीसहित महाप्रभु के पूजोपकरण के साथ ले आने के लिए प्रभु का आदेश—

आमार पूजार सर्व उपहार लञा।
झाट असिवारे बल सस्त्रीक हइया॥''१५॥

(१५) प. अनु०—उनको, मेरी पूजा के सब उपहार लेकर स्त्री–सहित शीघ्र यहाँ आने के लिए कहना।"

रामाइ का अद्वैत के समीप गमन—

श्रीवास–अनुज राम आज्ञा शिरे धरि'।
सेइक्षणे चलिला स्मङरि' 'हरि हरि'॥१६॥
आनन्दे विह्वल—पथ ना जाने रामाइ।
श्रीचैतन्य–आज्ञा लइ' गेला सेइ ठाञि॥१७॥

(१६–१७) प. अनु०—श्रीवास पण्डित के छोठे भाई रामाइ महाप्रभु की आज्ञा को शिरोधार्य करके उसी समय 'हरि–हरि' स्मरण करते हुये चल पड़े। रामाइ आनन्द में ऐसे विह्वल होकर चले जा रहे थे।कि मार्ग का भी ध्यान नहीं रहा; फिर भी चैतन्य का आदेश लेकर वहाँ पहुँच ही गये।

अद्वैत को रामाइ का नमस्कार एवं आनन्दधिक्य से उनकी वाणी में अवरोध—

आचार्सेरे नमस्कारि' रामाइ पण्डित।
कहिते ना पारे कथा आनन्दे पूर्णित॥१८॥

(१८) प. अनु०—रामाइ पण्डित ने श्रीअद्वैताचार्य को नमस्कार किया, परन्तु आनन्द में विभोर हो जाने के कारण वे मुख से कुछ न कह सके।

रामाइ के कहने से पहले ही भक्तियोग के प्रभाव से सर्वज्ञ अद्वैत को सभी विषयों का ज्ञान—

सर्वज्ञ अद्वैत भक्तियोगेर प्रभावे।
'आइल प्रभुर आज्ञा' जानियाछे आगे॥१९॥
रामाइ देखिया हासि' बलेन वचन।
''बुझि आज्ञा हैल आमा निवार कारण''॥२०॥

(१९–२०) प. अनु०—सर्वज्ञ अद्वैत–प्रभु भक्तियोग के प्रभाव से पहले ही जान गये कि मेरे लिए प्रभु का आदेश आया है। वे रामाइ को देखकर हँसते हुये बोले,—"मालूम होता है, मुझको लिवा लाने के लिए तुमको आदेश हुआ है।"

रामाइ द्वारा अद्वैत से चलने के लिए अनुरोध—

करजोड़ करि' बले रामाइ पण्डित।
''सकल जानिया आज, चलह त्वरित॥''२१॥

(२१) प. अनु०—रामाइ पण्डित हाथ जोड़कर बोले,—"अब आप तो सब जान ही गये हैं—अतएव शीघ्र चलिये।"

भगवत्–सेवानन्द में अद्वैत की देह–विस्मृति—

आनन्दे विह्वल हञा आचार्य गोसाञि।
हेन नाहि जाने, देह आछे कोन् ठाञि॥२२॥

(२२) प. अनु०—तब तो गोसाईं अद्वैत आचार्य आनन्द में विह्वल हो गये, उनको ज्ञान

ही नहीं रहा कि शरीर कहाँ है?

(२२) गौः भाः—अद्वैताचार्य-प्रभु भगवत्सेवानन्द में इस प्रकार विह्वल हो गये, उनको ज्ञान ही नहीं रहा कि बाह्य-शरीर के संबन्ध में उनको ज्ञान का अभाव हो गया।

अद्वैत-लीला साधारण को बोधगम्य नहीं—

के बुझये अद्वैतेर चरित्र गहन।
जानियाओ नाना मत करये कथन॥२३॥

(२३) प. अनु०—श्रीअद्वैत के गंभीर चरित्र को कौन समझ सकता है। वे सब कुछ जानते हुये भी विचित्र-विचित्र बातें करने लगे।

(२३) गौः भाः—अद्वैत की लीला इस प्रकार गूढ़ है कि, सब कुछ जानते हुये भी वे अनजान की भाँति अपने को प्रकाशित करते हैं।

महाप्रभु के अवतार-तत्त्व के बारे में सर्वज्ञ होकर भी अद्वैत का इस विषय जैसा भाव—

''कोथा प गोसाञि आइला मानुष-भितरे?
कोन् शास्त्रे बले नदीयाय अवतरे?२४॥
मोर भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म-ज्ञान मोर।
सकल जानये श्रीनिवास भाइ तोर॥''२५॥

(२४-२५) प. अनु०—"मनुष्यों के बीच ये गोसाईं अर्थात् ईश्वर कहाँ से आ गये? कौन-से शास्त्र में यह लिखा हुआ है कि वे नदीया में अवतनित होंगे? मेरी भक्ति, मेरे वैराग्य और मेरे अध्यात्म-ज्ञान के बारे में तेरे भाई श्रीनिवास को पूरी जानकारी है।"

(२४) गौः भाः—जगत के त्राता हरि नदीया में आकर मनुष्यों के बीच मनुष्यों की भाँति अवतरित होंगे, यह बात कौन-से शास्त्र में लिखी हुई है,—इस विषय के बारे में पूछा।

(२५) गौः भाः—श्रीमद् अद्वैत-आचार्य ने रामाइ को सम्बोधित करते हुये कहा,—हे रामाइ, तुम्हारे सबसे बड़े भाई श्रीवास को भक्ति, वैराग्य और अध्यात्म-ज्ञान के विषय में मेरी दक्षता की सारी बातें पता है।

अद्वैत के चरित्र के बारे में
रामाइ को सब कुछ ज्ञात—

अद्वैतेर चरित्र रामाइ भाल जाने।
उत्तर ना करे किछु, हासे मने मने॥२६॥

(२६) प. अनु०—अद्वैत के चरित्र को रामाइ से पूछा,—"कहिये! कहिये! रामाइ पण्डित,—किस कारण अचानक तुम्हारा यहाँ आना हुआ?"

सुकृतिवान् के लिए अद्वैत के चरित्र को जानना आसान, किन्तु दुष्कृतियों के लिए बहुत कठिन—

एइमत अद्वैतेर चरित्र अगाध।
सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्यबाध॥२७॥

(२७) प. अनु०—अद्वैत का चरित्र ऐसा अगाध था, कि वह सुकृतिशालियों के लिए मंगलदायी तथा दुष्कृतियों के लिए मंगलमय कार्यों में रूकावटें खड़ी कर देने वाला था।

(२७) गौः भाः—साधारण मानव अद्वैत प्रभु के गूढ़ चरित्र के मर्म को नहीं समझ सकते थे; बहुत भाग्यशाली ही अद्वैत-प्रभु के उद्देश्य को समझने में समर्थ होकर उससे लाभ उठाते थे, जबकि असत्कर्म करने वाले मन्दभाग्य व्यक्ति उनके चरित्र को न समझकर उनके प्रतिकूल आचरण करके अपने अमंगल का ही साधन किया करते थे।

अद्वैत की रामाइ से फिर एकबार आने के कारण की लिज्ञासा—

पुनः बले,—''कह कह रामाइ पण्डित।

कि कारणे तोमार गमन आचम्भित?''२८॥

(२८) प. अनु०—अद्वैत प्रभु ने फिर एकबार रामाइ से पूछा,—**''कहिये! कहिये! रामाइ पण्डित,—किस कारण अचानक तुम्हारा यहाँ आना हुआ?**"

रामाइ के द्वारा अद्वैत को महाप्रभु के आदेश का ज्ञापन—

बुझिलेन आचार्य हइला शान्तचित।
तखन कान्दिया कहे रामाइ पण्डित॥२९॥
''याँ'र लागि' करियाछ विस्तर क्रन्दन।
याँ'र लागि' करिला विस्तर आराधन॥३०॥
याँ'र लागि' करिला विस्तर उपवास।
से–प्रभु तोमार आसि' हइला प्रकाश॥३१॥
भक्तियोग विलाइते ताँ'र आगमन।
तोमारे से आज्ञा करिवारे विवर्त्तन॥३२॥
षड़ङ्ग पूजार विधि–योग्य सज्ज लञा।
प्रभुर आज्ञाय चल सस्त्रीक हइया॥३३॥
नित्यानन्दस्वरूपेर हैल आगमन।
प्रभुर द्वितीय देह, तोमार जीवन॥३४॥
तुमि से जानह ताँ'रे, मुञि कि कहिमु।
भाग्य थाके मोर, तबे एकत्र देखिमु॥''३५॥

(२९–३५) प. अनु०—जब रामाइ पण्डित ने देखा कि अद्वैत आचार्य अब शान्तचित्त हो गये हैं, तब वे रोते हुये कहने लगे। "जिनके लिए आपने बहुत आँसू बहाए हैं, जिनके लिए बहुत आराधनाएँ की हैं और जिनके लिए आपने बहुत से उपवास भी कर रखे हैं, उन्हीं प्रभु ने आपके लिए अपने को प्रकशित किया है। भक्तियोग का दान करने के लिए उनका आगमन हुआ है। इसलिए आपको उनके साथ मिलने की आज्ञा हुई है। विधि अनुसार षड़ंग पूजा के लिए जरूरी सब सामग्री लेकर अपनी पत्नी के साथ आप वहाँ चलिये। यही प्रभु की आज्ञा है। श्रीमन्महाप्रभु के द्वितीय देहस्वरूप तथा आपके जीवन–सर्वस्व श्रीनित्यानन्दस्वरूप भी वहाँ आये हुये हैं। आप ही उनको भली प्रकार जानते हैं, मैं उनके बारे में क्या कहूँ। यदि मेरा भाग्य होगा, तो मैं आप सबको एक साथ दर्शन करूँगा।"

(३३) गौः भाः—षड़ग–पूजाजल, आसन, वस्त्र, दीप, अन्न एवं ताम्बूल—ये अर्चनमार्ग के षड़ंग हैं। गोमय (गोबर), गोमूत्र, दधि, दुग्ध, घृत एवं गोरोचन—ये मांगलिक षड़ंग है। प्रणिपात, स्तवन, सर्वकर्मार्पण, परिचर्या, चरण–स्मरण एवं कथा–श्रवण—ये भजन–मार्ग के षड़ंग हैं।

महाप्रभु की प्रकाश की बात सुनकर अद्वैत का आनन्द–प्रकाश—

रामाइर मुखे यबे एतेक शुनिया।
तखने तुलिया बाहु कान्दिते लागिया॥३६॥
कान्दिया हइला मूर्च्छा आनन्द–सहित।
देखिया सकल–गण हइला विस्मित॥३७॥
क्षणेके पाइया बाह्य करये हुँकार।
'आनिलुँ', 'आनिलुँ' बले 'प्रभु आपनार'॥३८॥
''मोर लागि' प्रभु आइला वैकुण्ठ छाड़िया।''
एत बलि' कान्दे पुनः भूमिते पड़िया॥३९॥

(३६–३९) प. अनु०—जब रामाइ के मुख से यह सब समाचार सुना तो अद्वैत दोनों हाथ ऊपर उठाकर रोने लगे। आनन्द के साथ रोते–रोते वे मूर्च्छित हो गये। यह देखकर सभी विस्मित हो गये। थोड़ी ही देर में बाह्यज्ञान प्राप्त होने पर 'ले आया', 'ले आया'—'मैं अपने प्रभु को ले आया'—यह कहर वे हुँकार करने लगे। "मेरे लिए प्रभु वैकुण्ठ छोड़कर आ गये"—ऐसा कहते हुये वे फिर भूमि पर गिरकर रोने लगे।

महाप्रभु की प्रकाश-वार्ता श्रवण से
सपरिवार सीतादेवी का आनन्द-क्रन्दन—

अद्वैत-गृहिणी पतिव्रता जगन्माता।
प्रभुर प्रकाश शुनि' कान्दे आनन्दिता॥४०॥
अद्वैतेर तनय 'अच्युतानन्द' नाम।
परम बालक सेहो कान्दे अविराम॥४१॥
कान्देर अद्वैत-पत्नी पुत्रेर सहिते।
अनुचर सब बेड़ि' काँन्दे चारि भिते॥४२॥
केवा कोन् दिके काँन्दे नाहि परापर।
कृष्णप्रेममय हैल अद्वैतेर घर॥४३॥
स्थिर हय अद्वैत हइते नारे स्थिर।
भावावेशे निरवधि दोलाय शरीर॥४४॥

(४०-४४) प. अनु०—जगन्माता पतिव्रता अद्वैत-पत्नी सीतादेवी प्रभु के प्राकट्य का समाचार सुनकर आनन्द सहित रोने लगीं। 'अच्युतानन्द'—अद्वैत का पुत्र, जो अभी निरा बालक ही था—वह भी बराबर रोये जा रहा था। अद्वैत-पत्नी अपने पुत्र के साथ मिलकर रो रही थीं; चारों ओर से सब सेवक भी उनको घेरकर रोने लगे। किसी को अपने-पराये का ज्ञान नहीं रहा और कौन किस दिशा में रो रहा है, इसका भी उस समय किसी को कुछ पता नहीं था। अद्वैत का भवन कृष्णप्रेम से परिपूर्ण हो गया। अद्वैत स्वयं को सम्भालने की कोशिश में असफल होकर भावावेश में निरन्तर अपने शरीर को हिलाये जा रहे थे।

(४१) गौः भाः—अद्वैत का पुत्र अच्युतानन्द उस समय उक बालक ही था। अनुमान किया जाता है कि १४२३ शकाब्द में अच्युतानन्द का आविर्भाव हुआ था।

भावविह्वल अद्वैत के द्वारा रामाइ से फिर
एकबार महाप्रभु के आदेश के बारे में
पूछताछ—

रामाइरे बले—"प्रभु कि बलिला मोरे?"
रामाइ बलेन,—"झाट चलिवार तरे॥"४५॥

(४५) प. अनु०—श्रीअद्वैताचार्य ने फिर एकबार रामाइ से प्रश्न किया,—"मेरे लिए प्रभुजी ने क्या आज्ञा भेजी है?" रामाइ ने उत्तर दिया,—"शीघ्र चले आने के लिए।"

अद्वैत की लालसामयी प्रभु-प्रीति—

अद्वैत बलये,—"शुन रामाइ पण्डित।
मोर प्रभु हन, तबे मोहार प्रतीत॥४६॥
आपन ऐश्वर्य यदि मोहारे देखाय।
श्रीचरण तुलि' देह मोहार माथाय॥४७॥
तबे से जानिमु मोर हय प्राणनाथ।
सत्य सत्य एइ मुञि कहिलुँ तोमात॥"४८॥

(४६-४८) प. अनु०—अद्वैत ने कहा,—"सुनो रामाइ पण्डित!" यदि वे मेरे प्रभु हैं, तो मुझे तभी विश्वास होगा, जब वे मेरे प्रभु हैं, तो मुझे तभी विश्वास होगा, जब वे अपना ऐश्वर्य मुझे दिखाएँ और अपने श्रीचरण को उठाकर मेरे मस्तक पर रख दें। यह बात मैं तुम से एकदम सत्य कह रहा हूँ कि मैं तभी यह समझूँगा कि वे मेरे प्राणनाथ हैं।"

रामाइ का उत्तर—

रामाइ बलेन,—"प्रभु मुञि कि कहिमु।
यदि मोर भाग्ये थाके, नयने देखिमु॥४९॥
ये तोमार इच्छा प्रभु, सेइ से ताँहार।
तोमार निमित्त प्रभु एइ अवतार॥"५०॥

(४९-५०) प. अनु०—रामाइ ने कहा,—मैं क्या कहूँ प्रभो! यदि मेरे भाग्य में होगा तो मैं भी अपनी आखों से यह सब देखूँगा। जो आपकी इच्छा है प्रभो, वही तो उनकी भी है। हे प्रभो! आपके निमित्त ही यह अवतार हुआ है।

रामाइ के वचन सुनकर अद्वैत का आनन्द–

हइला अद्वैत तुष्ट रामेर वचने।
शुभयात्रा–उद्योग करिला ततक्षणे॥५१॥

(५१) प. अनु०—रामाइ की बात सुनकर अद्वैत बड़े प्रसन्न हुये और तुरन्त ही शुभयात्रा के लिए उद्योग करने लगे।

पूजन–सामग्री–सहित चलने को तैयार होने के लिए अद्वैत–द्वारा सीतादेवी को आदेश एवं पत्नी के साथ यात्रा–

पत्नीरे बलिला,—''झाट हओ सावधान।
लइया पूजार सज्ज चल आगुयान॥''५२॥
पतिव्रता सेइ चैतन्येर तत्त्व अशेष विधाने॥५३॥
क्षीर, दधि, सर, ननी, कर्पूर, ताम्बूल।
लइया चलिला यत सब अनुकूल॥५४॥
सपत्नीके चलिला अद्वैत–महाप्रभु।
रामा'ये निषेधे, इहा ना कहिवा कभु॥५५॥

(५२–५५) प. अनु०—श्रीअद्वैताचार्य अपनी पत्नी से बोले,—"तुरन्त सावधानी के साथ पूजा के लिए जरूरी सब सामग्री लेकर तुम तत्त्व को जानती थीं। अतएव पूजा–विधि के अनुरूप सुगन्ध, माला, धूप, वस्त्र, दूध, दही, सुन्दर नवनीत, कर्पूर, पान इत्यादि समस्त आवश्यक सामग्रियों को लेकर वह चल पड़ी। अद्वैत–महाप्रभु भी पत्नी के साथ चल दिये। उन्होंने रामाइ को मना कर दिया कि तुम इस विषय में किसी की कुछ मत कहना।

अद्वैत के आने का समाचार महाप्रभु को बात न हो, इसके लिए उनके द्वारा रामाइ को निषेध–आज्ञा प्रदान–

'ना आइला आचार्य', तुमि बलिवा वचन।
देखि मोर प्रभु तबे कि बले तखन॥५६॥
गुप्ते थार्को मुञि नन्दन–आचार्येर घरे।
'ना आइला' बलि' तुमि करिवा गोचरे॥५७॥

(५६–५७) प. अनु०—तुम ऐसा कहना कि 'आचार्य नहीं आये।' देखें, तब मेरे प्रभु क्या कहते हैं। मैं नन्दन आचार्य के घर में गुप्त भाव में रहूँगा और तुम कह देना कि, 'वे नहीं आये हैं।'

सर्वान्तर्यामी महाप्रभु–द्वारा अद्वैत के संकल्प को अपने हृदय से जानकर श्रीवास–भवन की ओर प्रस्थान–

सबार हृदये वैसे प्रभु विश्वम्भर।
अद्वैत–संकल्प चित्ते हइल गोचर॥५८॥
आचार्येर आगमन जानिया आपने।
ठाकुर पण्डित–गृहे चलिला तखने॥५९॥

(५८–५९) प. अनु०—प्रभु विश्वम्भर तो सबके हृदय में विराजमान हैं। अद्वैत का अभिप्राय उन्होंने अपने मन में जान लिया। आचार्य आये हुये हैं, यह जानकर महाप्रभु उसी समय श्रभ्वास पण्डित के झार की ओर चल पड़े।

प्रभु के साथ भक्तजनों का मिलन–

प्राय यत चैतन्येर निज भक्तगण।
प्रभुर इच्छाय सब मिलिला तखन॥६०॥

(६०) प. अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभ के अपने जितने भी भक्त थे, वे प्रायः सभी प्रभु की इच्छा से उसी समय वहाँ आरि मिल गये।

प्रभु के आवेशभाव को समझकर सभी का संशक अवस्थान–

आवेशित चित्त प्रभुर सबाइ बुझिया।
संशके आछेन सबे नीरव हइवा॥६१॥

(६१) प. अनु०—सभी यह समझ गये कि प्रभु का चित्त भावावेश में है। इसलिए

वे सभी मौन और सशंकित थे।

हुकाँर करते हुये प्रभु का विष्णु-सिंहासन पर आरोहण और भावावेश में अद्वैत के आने का समाचार विज्ञापित करना—

हुँकार करिया प्रभु त्रिदशेर राय।
उठिया बसिया प्रभु विष्णुर खट्टाय॥६२॥
'नाड़ा आइसे', 'नाड़ा आइसे'—बले बारे बारे।
'नाड़ा चाहे मोर ठाकुराल देखिवारे॥''६३॥

(६२-६३) प. अनु०—त्रिदश-राय (देवताओं के स्वामी) प्रभु विश्वम्भर हुँकार करते हुये विष्णु-सिंहासन पर चढ़कर बैठ गये। प्रभु बार-बार कहने लगे कि 'नाड़ा आ रहा है', 'नाड़ा आ रहा है'—"नाड़ा मेरी ठकुराई देखना चाहता है।"

(६२) गौः भाः—त्रिदशेर राय—(त्रि-अधिक-त्रिरावृत्त)—दश परिमाण, अर्थात् ३३-संख्या-युक्त, जिसमें से द्वादश आदित्य रुद्र, अष्ट वसु एवं दो अश्विनीकुमार—ये ३३ देवता प्रधान हैं। इनको ही 'त्रिदश' नाम से जाना जाता है। राय, राया अथवा राओ, राजा) ३३ करोड़ देवताओं के ईश्वर, सेव्य, सर्वेश्वररेश्वर।

(६३) गौः भाः—श्रीवास के भाइयों में से सबसे छोटे श्रीरामाइ से अद्वैत नहीं आये, इसमें महाप्रभु का विचार कैसा होता है, यह मैं देखना चाहता हूँ। मैं नन्दनाचार्य के घर में छिपकर रहूँगा, किन्तु तुम जाकर महाप्रभु से वैसा ही कहना।" अद्वैत के इस विचार को अन्तर्यामी श्रीगौरांग जान गये एवं श्रीवास के भवन में उनके गृह-देवता नारायण के सिंहासन पर विराजमान होकर "नाड़ा आ रहा है "नाड़ा आ रहा है", "नाड़ा आ रहा है" ऐसा कह-कहकर बारम्बार जोर-जोर से चित्कार करने लगे। प्रभु ने यह भी कहा कि,—"नाड़ा (अद्वैताचार्य) मेरे अन्तर्यामी रूप की परीक्षा लेना चाहता है, मैं उसका कर्म-कौशल समझ पाता हूँ या नहीं, इस विषय में शायद उसे सन्देह है—अथवा यह भी हो सकता है कि मुझे बाह्यजगत में प्रकाशित करने के लिए उसने अपने उस कपट भाव का विस्तार किया हो।"

महाप्रभु की अवस्था को देखकर नित्यानन्द आदि द्वारा समयोचित्त सेवा—

नित्यानन्द जाने सब प्रभुर इंगित।
बुझिया मस्तके छत्र धरिया त्वरित॥६४॥
गदाधर बुझि' देय कर्पूर ताम्बूल।
सर्वजने करे सेवा येन अनुकूल॥६५॥
केहो पड़े स्तुति, केहो कोन सेवा करे।
हेनइ समये आसि' रामाइ-गोचरे॥६६॥

(६४-६६) प. अनु०—प्रभु के हर संकेत को नित्यानन्द प्रभु जानते हैं। प्रभु का इंगित समझकर किया। गदाधर ने भी संकेत को समझते हुये कर्पूर-युक्त पान प्रदान किया। उपस्थित सभी जन, उस समय जिस-जिस सेवा की आवश्यकता थी, उसे पूरा करने लगे। कुछ स्तुति पाठ करने लगे, कुछ किसी अन्य सेवा में मग्न हो गये। उसी समय वहाँ रामाइ पण्डित दृष्टि गोचर हुये।

अन्तर्यामी महाप्रभु के द्वारा रामाइ को अद्वैत के विषय में बतलाना—

नाहि कहितेइ प्रभु बले रामाइरे।
''मोरे परीक्षिते नाड़ा पाठाइल तोरे''॥६७॥
'नाड़ा आइसे' बलि' प्रभु मस्तक ढुलाय।
''जानिआओ मोरे नाड़ा चालये सदाय॥६८॥
एथाइ रहिला नन्दन-आचार्येर घरे।
मोरे परीक्षिते 'नाड़ा' पाठाइल तोरे॥६९॥

(६७-६९) प. अनु०—रामाइ कुछ कहते,

उससे पहले ही प्रभु उनसे बोले,—"मेरी परीक्ष करने के लिए नाड़ा ने तुमको भेजा है।" 'नाड़ा आ रहा है,' ऐसा कहकर प्रभु अपना मस्तक हिलाने लगे और कहने लगे कि, "जानते हुये भी नाड़ा हमेशा मेरी परीक्षा करता है। अब भी नन्दन आचार्य के घर में परीक्षा करता है। अब भी नन्दन आचार्य के घर में रहकर नाड़ा ने तुम्हें मेरी परीक्षा के लिए भेजा है।

(६८) गौः भाः—जानते हुये भी अद्वैत हमेश मुझे प्रवृत्त-धर्म के मार्ग पर चलाते रहते हैं।

अद्वैत को लाने के लिए महाप्रभु का आदेश—

आन गिया शीघ्र तुमि हेथाइ ताहाने।
प्रसन्न श्रीमुखे आमि बलिल आपने॥''७०॥

(७०) प. अनु०—तुम जाकर शीघ्र उनको यहाँ ले आओ—यह मैं अपने प्रसन्न श्रीमुख से तुम्हे कह रहा हूँ।"

रामाइ का अद्वैत के पास जाकर महाप्रभु का आदेश सुनाना—

आनन्दे चलिला पुनः रामाइ पण्डित।
सकल अद्वैतस्थाने करिला विदित॥७१॥

(७१) प. अनु०—रामाइ पण्डित आनन्द से पुनः चल पड़े और उन्होंने अद्वैत के पास पहुँचकर उनको सब वृत्तान्त सुना दिया।

रामाइ के मुँह से प्रभु का आदेश सुनकर अद्वैत का अपनी पत्नी के साथ प्रभु के सामने आना—

शुनिया आनन्दे भासे अद्वैत-आचार्य।
आइला प्रभुर स्थाने सिद्ध हैल कार्य॥७२॥
दूरे थाकि' दण्डवत् करिते करिते।
सस्त्रीके आइसे स्तव पड़िते पड़िते॥७३॥
पाइया निर्भये-पद आइला सम्मुखे।
निखिल ब्रह्माण्डे अपरूप वेश देखे॥७४॥

(७२-७४) प. अनु०—सब कुछ सुनकर अद्वैताचार्य आनन्द में मग्न हो गये और प्रभु के पास चले आये। इसी तरह उनका जो संकल्प था, वह पूरा हुआ। दूर से ही दण्डवत् करते हुये और स्तुति पढ़ते हुये वे अपनी पत्नी के साथ निर्भय पद प्राप्त करके प्रभु के सामने आ गये और अखिल ब्रह्माण्ड भर में विलक्षण का अद्वितीय रूप और वेश का दर्शन करने लगे।

(७२) गौः भाः—अद्वैत का यह अभिप्राय था कि, उनके कार्य के द्वारा जगत में महाप्रभु का अन्तर्यामी (सबके हृदय में विराजमान होकर सबके हृदय का भाव जानने वाला) स्वरूप और उनकी सर्वज्ञता प्रकाशित हो जाये। इसलिए अपने को उन्होंने नन्दन-आचार्य के घर में छिपाने रखा और कपट भाव का अवलम्बन करके अपने आने की बात को महाप्रभु से प्रकट न करने के लिए रामाइ से कहा। अब जब सभी बातें श्रीमहाप्रभु ने अपने श्रीमुख से प्रचारित कर दीं तो उससे उनके परमेश्वर स्वरूप की जानकारी सभी को हो गई और इस तरह अद्वैत का संकल्प सिद्ध हो गया।

(७४) गौः भाः—निर्भयपद—श्रीगौरसुन्दर का अभयचरणारविन्द। अखिल ब्रह्माण्ड में "सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मन।"—(भाः११/२/४५) इस श्लोक के अनुसार सर्वत्र गौरसुन्दर का दर्शन अथवा इष्ट-दर्शन।

महाप्रभु के बहुविध ऐश्वर्य को देखकर अपनी पत्नी के साथ अद्वैत का सम्भ्रम प्रणिपात और कुछ भी कहने में असमर्थ हो जाना—

श्रीराग—

जिनिया कन्दर्पकोटी लावण्य सुन्दर।
ज्योतिर्मय कनकसुन्दर कलेवर॥७५॥
प्रसन्नवदन कोटिचन्द्रेर ठाकुर।
अद्वैतेर प्रति येन सदय प्रचुर ॥७६॥
दुइ बाहु दिव्य कनकेर स्तम्भ जिनि'।
जहिँ दिव्य आभरण रत्नेर खिचनि॥७७॥
श्रीवस्त, कौस्तुभ–महामणि शोभे वक्षे।
मकर कुण्डल वैजयन्ती–माला देखे॥७८॥
कोटि महासूर्य जिनि' तेजे नाहि अन्त।
पादपद्म रमा, छत्र धरये अनन्त॥७९॥
किवा नख, किवा मणि ना पारे चिनिते।
त्रिभंगे बाजाय बाँशी हासिते हासिते॥८०॥
किवा प्रभु, किवा गण, किवा अलंकार।
ज्योतिर्मय बइ किछु नाहि देखे आर॥८१॥
देखे पड़ियाछे चारि–पंच–छय–मुख।
महाभये स्तुति करे नारदादि–शुक॥८२॥
मकरवाहन–रथ एक वरांगना।
दण्ड–परमाणे आछे येन गंगासमा॥८३॥
तबे देखे—स्तुति करे सहस्त्र–वदन।
चारिदिके देखे ज्योतिर्मय देवगण॥८४॥
उलटि' आचाय्र देखे चरणेर तले।
सहस्त्र सहस्त्र देव पड़ि' 'कृष्ण' बले॥८५॥
ये पूजार समये ये देव ध्यान करें
ताहा देखे चारिदिगे चरणेर तले॥८६॥
देखिया सम्भ्रमे दण्ड–परमाण छाड़ि'।
उठिला अद्वैत—अद्‌भुत देखि' बड़ि॥८७॥
देखे शत फणाधर महानागगण।
ऊर्ध्वबाहु स्तुति करे तुलि' सब फण॥८८॥
अन्तरीक्षे परिपूर्ण देखे दिव्यरथ।
गज–हंस–अश्वे निरोधिल वायुपथ॥८९॥
कोटि–कोटि नागबधू सजल–नयने।
'कृष्ण' बलि' स्तुति करे देखि विद्यमाने॥९०॥
क्षिति अन्तरीक्षे स्थान नाहि अवकाशे।
देखे पड़ियाछे महा–ऋषिगण पाशे॥९१॥
महा–ठाकुराल देखि' पाइला सम्भ्रम।
पति–पत्नी किछु बलिवार नहे क्षम॥९२॥

(७५–९२) प. अनु०—उन्होनें देखा कि अपने सुन्दर लावण्य से कोटि कन्दर्पों को जीतने वाले प्रभु का ज्योतिमर्य स्वर्ण जैसा सुन्दर कलेवर है। कोटि–कोटि चन्द्रमाओं के ठाकुर अपने प्रसन्न वदन–सहित जिस तरह से विराजित है, उससे प्रतीत होता है कि वे अद्वैत के प्रति अत्यन्त दयावान हैं। दिव्य कंचन स्तम्भों से भी अधिक मनोहर दोनों भुजाएँ रत्नजटित दिव्य अलंकारो से सजी हुई हैं। वक्षस्थल श्रीवत्स और कौस्तुभ–महामणि से शोभित है। कानों में मकराकृति कुण्डल–सहित गले में वैजयन्तीमाला शोभा दे रही है। कोटि महासूर्यों के तेज से भी आगे बढ़कर उनका अन्तहीन तेज है। रामादेवी उनके चरण कमलों की सेवा कर रही हैं और अनन्तदवे मस्तक के ऊपर छत्र धारण किये हुये हैं। उनके नख हैं या मणि, अद्वैत पहचान नहीं पा रहे। उन्होंने देखा कि त्रिभंग रूप, प्रभु हँसते हुये वंशी बजा रहे हैं। चाहे प्रभु हों, चाहे सेवकरण हों, चाहे अलंकार ही क्यों न हों, सब कुछ ज्योतिर्मय हैं। ज्योति के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। वे देखते हैं कि चार–पाँच और छह मुखवाले सब देव वहाँ पड़े हुये हैं और बड़े डर के मारे शुक–नारद इत्यादि सब उनकी स्तुति कर रहे हैं। गंगा–जैसी एक वरांगना, जिसका मकरवाहन रथ है, वह प्रभु को दण्डवात् प्रणाम कर रही है। फिर वे सहस्त्र–वदन को स्तुति करते हुये देखते हैं। पलट कर आचार्य ने देखा कि प्रभु के चरणों में नीचे हजारों देवता पड़े हुये हैं तथा

'कृष्ण' ' कृष्ण' कह रहे हैं। पूजा के समय जिन–जिन देवताओं का वे ध्यान किया करते थे, वे सभी देवता उन्हें चारों ओर प्रभु के चरणों के नीचे दिखाई देने लगे। बड़े ही अद्‌भुत उस आश्चर्य को देखकर सम्भ्रम–सहित दण्डवत् प्रणाम को छोड़ कर अद्वैत उठकर खड़े हो गये, तो क्या देखते हैं कि सौ फनों वाले महानागगण अपनी फनरूपी भुजाओं का ऊपर उठाकर प्रभु की स्तुति कर रहे हैं। आकाश गजों, हंसों और अश्वों द्वारा चालित दिव्यरथों से भर गया है और इससे वायु का मार्ग रुक गया है। उन्होंने यह भी देखा कि कोटि–कोटि नाग–पत्नियाँ अश्रुपूर्ण नेत्रों से 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहकर स्तुति कर रही हैं। पृथ्वी और आकाश में कहीं भी खाली स्थान नहीं है। सब महान ऋषि–महर्षि भी उन्हें आस–पास पड़े हुये दिखाई दिये। प्रभु की इस प्रभुता के दर्शन करके पति–पत्नी बड़े भारी सम्भ्रम को प्राप्त हुये और कुछ भी कहने में समर्थ नहीं रहे।

(७७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर की दोनों भुजाओं ने स्वर्णस्तम्भ की शोभा को जीत लिया था। उन दोनों भुजाओं में दिव्य अलंकारों का समूह स्वर्णस्तम्भ में जटित मणिओं की भाँति शोभा पा रहा था।

(७८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभ–महामणि सुशोभित थे। कानों में मकराकृत कुण्डल और गले में लटकी हुई वैजयन्ती–मालिका को उन्होंने देखा।

(८०) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के नखों की शोभा मणि किरणों का–सा विस्तार कर रही थी; उससे ऐसा भ्रम हो रहा था कि वे नख नहीं हैं, साक्षात् मणि हैं।

(८१) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु को, उनके भक्तों को अथवा प्रभु द्वारा पहने हुये भूषण–समूह को देखा तो वहाँ ज्योतिर्मय पदार्थ ही दिखाई दिये; और कुछ भी दृष्टिगत नहीं हुआ।

(८२) गौः भाः—और यह भी देखा कि, चतुर्मुख ब्रह्मा, पंचमुख शिव, षड्‌मुख कार्तिकेय इत्यादि प्रणत अवस्था में जिनके निकट पड़े हुये हें तथा नारद शुकदेव आदि सन्त्रस्त होकर स्तवन कर रहे हैं।

(८३) गौः भाः—मकर के द्वारा चालित रथ में विराजमान एक गंगा जैसी अपूर्व सुन्दर नारी दण्डवत् प्रणति निवेदन कर रही है।

(८९) गौः भाः—गज–हंस–अश्व—ये इन्द्र, सरस्वती इत्यादि देवी–देवताओं के वाहन समूह हैं।

(९२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के इस प्रकार के महा ऐश्वर्य को देखकर अपनी पत्नी सहित आचार्य निर्वाक और स्तब्धप्राय हो गये।

अद्वैत के प्रति महाप्रभु द्वारा जीवों के सौभाग्य हेतु अपने प्रकाश–तत्त्व का वर्णन—

परम–सदय–मति प्रभु विश्वम्भर।
चाहिया अद्वैत–प्रति करिला उत्तर॥९३॥
''तोमार संकल्प लागि' अवतीर्ण आमि।
विस्तर आमार आराधना कैले तुमि॥९४॥
शुतिया आछिलुँ क्षीरसागर–भितरे।
निद्राभंग हइल मोर तोमार हुँकारे॥९५॥
देखिया जीवेर दुःख ना पारि सहिते।
आमारे आनिले सब जीव उद्धारिते॥९६॥
यतेक देखिले चतुर्द्दिके मोर गण।
सबार हइल जन्म तोमार कारण॥९७॥
ये वैष्णव देखिते ब्रह्मादि भावे मने।
तोमा हइते ताहा देखिवेक सर्वजने॥''९८॥

(९३–९८) प. अनु०—परम सदय–हृदय प्रभु विश्वम्भर अद्वैत की ओर देख करके

बोले, "तुम्हारा संकल्प पूरा करने के लिए मैं अवतरित हुआ हूँ। बहुत आराधना की है तुमने मेरी। क्षीर-सागर के भीतर मैं सोया था। तुम्हारी हुँकार ने मेरी निद्रा भंग कर दी। जीवों का दुःख देखकर तुम उसे सहन नहीं कर पाये और मुझे ले आये सब जीवों का उद्धार करने के लिए। चारों ओर जितने भी मेरे गणों को तुम देख रहे हो, उन सबके आविर्भाव का कारण तुम हो। जिन वैष्णवों का पवित्र दर्शन करने के लिए ब्रह्मा आदि भी मन-ही-म कामना किया करते हैं, उनको तुम्हारे कारण अब सब लोग देख पायेंगे।"

महाप्रभु के तत्त्व को श्रवण करके
अद्वैत द्वारा आनन्द का प्रकाश—

रामकिरि रागः

एतेक प्रभुर वाक्य अद्वैत शुनिया।
ऊर्ध्वबाहु करि' कान्दे सस्त्रीक हइया॥९९॥
''आजि से सफल मोर दिन परकाश।
आजि से सफल हैल यत अभिलाष॥१००॥
आजि मोर जन्म-कर्म सकल सफल।
साक्षाते देखिलुँ तोर चरणयुगल॥१०१॥
घोषे मात्र चारि वेदे, यारे नाहि देखे।
हेन तुमि मोर लागि' हैला परतेके॥१०२॥
मोर किछु शक्ति नाहि तोमार करुणा।
तोमा बइ जीव उद्धारिव कोन् जना॥''१०३॥

(९९-१०३) प. अनु०—प्रभु की ये सब बातें सुनकर अद्वैत हाथ ऊपर उठाकर पत्नी-सहित रोने लगे। अद्वैत कहने लगे, —"आज ही मेरे लिए दिन का प्रकाश सफल हुआ है,—आज ही मेरी सब अभिलाषाएँ पूरी हुई हैं। मेरा जन्म-कर्म सब आज सार्थक हुआ, जो मैंने आपके युगल चरणों के साक्षात् दर्शन किये। जिनके बारे मे चारों वेद केवल सार्वजनिक जानकारी ही देते हैं, परन्तु जिनको देख नहीं पाते हैं,—वे ही प्रभु आज मेरे लिए प्रत्यक्ष भाव में गोचरीभूत हुये हैं। इसमें कोई शक्ति नहीं है। यह तो आप अपनी करुणा का प्रकाश करते हुये प्रकट हुये हैं। आपके बिना कौन जीवों का उद्धार कर सकता है?"

(१०२) गौः भाः—चारों वेद जिनका दर्शन करने में असमर्थ होकर केवल वाक्यों के द्व ारा ही वर्णन मात्र करते हैं, उन्हीं का आज मैंने अपनी आँखों से दर्शन किया है।

महाप्रभु के द्वारा अद्वैत को अपनी
पूजा करने का आदेश—

बलिते बलिते प्रेमे भासेन आचार्य।
प्रभु बले,—''आमार पूजार कर कार्य॥''१०४॥

(१०४) प. अनु०—ऐसा कहते हुये आचार्य प्रेमानन्द में प्रवाहित होने लगे। इसी बीच प्रभु ने कहा—"मेरी पूजा का कार्य आरम्भ करो।"

अद्वैत के द्वारा श्रीचैतन्य-चरणों की पूजा—

पाइया प्रभुर आज्ञा परम हरिषे।
चैतन्यचरण पूजे अशेष विशेषे॥१०५॥
प्रथमे चरण धुइ' सुवासित जले।
शेषे गन्धे परिपूर्ण पादपद्मे ढाले॥१०६॥
चन्दने डुबाइ' दिव्य तुलसीमंजरी।
अर्घ्येर सहित दिला चरण-उपरि॥१०७॥
गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, पंच-उपचारे।
पूजा करे प्रेमजले बहे अश्रुधारे॥१०८॥
पंचशिखा ज्वालि' पुनः करेन वन्दना।
शेषे 'जय-जय'-ध्वनि करये घोषणा॥१०९॥
करिया चरणपूजा षोड़शोपचारे।
आरबार दिला माल्य-वस्त्र-अलंकारे॥११०॥
शास्त्रदृष्टये पूजा करि' पटल-विधाने।
एइ श्लोक पड़ि' करे दण्ड-परणामे॥१११॥

(१०५-११३) प. अनु०—प्रभु की आज्ञा पाकर अद्वैत आचार्य परम हर्ष के साथ उनके श्रीचरणों की अशेष विशेष प्रकार से पूजा करने लगे। पहले सुगन्धित जल से चरणों को धोया और उसके बाद पादपद्मों पर गन्ध द्रव्य का लेपन किया। तत्पश्चात् दिव्य तुलसी की मंजरी को चन्दन में डुबोकर अर्घ्य के साथ चरण कमलों पर चढ़ाया। गन्ध, पुष्प, धूप दीप आदि पंच उपचार सहित वे पूजा करने लगे। साथ-ही-साथ उनके नेत्रों से प्रेमजलरूपी अश्रुधारा बह रही थी। फिर पंचप्रदीप जलाकर आरती करके प्रणाम करते हुये अन्त में उन्होंने 'जय' 'जय' की ध्वनि प्रदान की। षोडशोपचार सहित पूजा करने के पश्चात् पुनः वरमाला, वस्त्र और अलंकार प्रदान किये। शास्त्रीय विधि को दृष्टि में रखते हुये पांचरात्रिक विधान के अनुसार पूजा करने के बाद उन्होंने इस श्लोक को दोहराते हुये दण्डवत प्रणाम किया। "गो-ब्राह्मण के हितकारी ब्रह्मण्यदेव को नमस्कार है। जगत् के हितकारी कृष्ण को, गोविन्द को बारम्बार नमस्कार है।" इस श्लोक की आवृत्ति करते हुये नमस्कार करने के पश्चात् अन्त में वे विभिन्न शास्त्रों के अनुसार स्तुति करने लगे।

(१०८) गौः भाः—गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, एवं नैवेद्य—ये पंचोपचार कहे जाते हैं—(हः भः विः ११/४८)

(१०९) गौः भाः—पंचशिखा,—पंचप्रदीप।

(११०) गौः भाः—षोडशोपचार—"आसन-स्वागते सार्घ्ये पाद्यमाचम-नीयकम्। मधुपर्काचमस्नानवसनाभरणानि च॥ सुगन्धासुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम्। पर्यायेदर्च्चा-नाया-मुपचारांस्तु षोडशः॥" क्वचिच्च—"आसनावाहनां-चैव पाद्यार्घ्याचमनीयकम्। स्नानं वासो भूषणं च गन्धः पुष्पं च धूपकः। प्रदीपश्चैव नैवेद्यं पुष्पांचजलिरतः परमः। प्रदक्षिणं नमस्कारो विसर्गश्चैव षोडश॥"—(हः भः विः ११/४६, ४९)।

अर्थात्—आसन, स्वागत, अर्घ्य पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वसन, आभरण, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं वन्दना—ये षोडशोपचार हैं। किसी-किसी के मतानुसार—आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्पांजलि, प्रदक्षिण, नमस्कार एवं विसर्जन को षोडशोपचार कहते हैं।

(१११) गौः भाः—पटल-विधान—पांचरात्रिक विधि—जो विभिन्न परिच्छेदों में (पटल में) निर्णीत की गई है।

श्रीअद्वैत आचार्य प्रभु ने शास्त्रीय दृष्टि से पांचरात्रिक विधानानुसार महाप्रभु का अर्चन किया था। "शास्त्र-दृष्टये" एवं "पटल-विधान"—इन दोनों शब्दों के द्वारा अद्वैत आचार्य ने जो श्रीगौर-मन्त्र द्वारा गौर को पूजा की थी, उसी को श्रीचैतन्य भागवत-ग्रन्थ के रचयिता ने गौर सेवोन्मुख व्यक्तियों के सामने सांकेतिक भाषा में प्रकाशित किया है। इस पटल-विधान को हम श्रीध्यानचन्द्र की पद्धतियों में और ऊदर्ध्वाम्नायतन्त्र इत्यादि पांचरात्र शास्त्रों में देख सकते हैं। उसमें गौरमन्त्र के द्वारा गौर-पूजा की विधियाँ एवं प्रयोग-पद्धतियाँ वर्णित हुई हैं। अद्वैत आचार्य ने शास्त्रों का अवलोकन करके पांचरात्रिक विधानानुसार महाप्रभु का पूजन किया था और पूजा के अन्त में गौरसुन्दर के विष्णुत्व को जगत में प्रचारित करने के लिए "नमो ब्रह्मण्यदेवाय" प्रभृति स्तव द्वारा महाप्रभु की स्तुति की थी। "नमो ब्रह्माण्यदेवाय" श्लोक के द्वारा श्रीचैतन्य भागवत-ग्रन्थ के रचयिता ने गौरमन्त्र का विरोध नहीं किया है।

तथाहि—

''नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो–ब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥''११२॥
एइ श्लोक पड़ि' आगे नमस्कार करि'।
शेषे स्तुति करे नाना–शास्त्र–अनुसारि'॥११३॥

(११२) गौः भाः—मध्य २/१३७ श्लोक द्रष्टव्य है।

अद्वैत के द्वारा महाप्रभु को स्तवन—

जय जय सर्व–प्राणनाथ विश्वम्भर।
जय जय गौरचन्द्र करुणासागर॥११४॥
जय जय भक्तवचन–सत्यकारी।
जय जय महाप्रभु महा–अवतारी॥११५॥
जय जय सिंधुसुता–रूप–मनोरम।
जय जय श्रीवत्य–कौस्तुभ विभूषण॥११६॥
जय जय 'हरे–कृष्ण'–मन्त्रेर प्रकाश।
जय जय निज–भक्ति–ग्रहण–विलास॥११७॥
जय जय महाप्रभु अनन्तशयन।
जय जय जय सर्वजीवेर शरण॥११८॥
तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि नारायण।
तुमि मत्स्य, तुमि कूर्म, तुमि सनातन॥११९॥
तुमि से वराह प्रभु, तुमि से वामन।
तुमि कर युगे युगे वेदेर पालन॥१२०॥
तुमि रक्षकुल–हन्ता जानकी–जीवन।
तुमि गुह–वरदाता, अहल्या–मोचन॥१२१॥
तुमि से प्रह्लाद–लागि' कैले अवतार।
हिरण्य वधिया 'नरसिंह'—नाम या'र॥१२२॥
सर्वदेव–चूड़ामणि तुमि द्विजराज।
तुमि से भोजन कर नीलाचल–माझ॥१२३॥
तोमारे से चारिवेदे बुले अन्वेषिया।
तुमि एथा आसि' रहियाछ लुकाइया॥१२४॥
लुकाइते बड़ प्रभु तुमि महावीर।
भक्तजने तोमा धरि' करये बाहिर॥१२५॥
संकीर्तन–आरम्भे तोमार अवतार।
अनन्त ब्रह्माण्डे तोमा बइ नाहि आर॥१२६॥
एइ तोर दुइखानि चरण–कमल।
इहार से रसे गौरी–शंकर विह्वल॥१२७॥
एइ से चरण रमा सेवे एकमने।
इहार से यश गाय सहस्त्रवदने॥१२८॥
एइ से चरण ब्रह्मा पूजये सदाय।
श्रुति–स्मृति–पुराणे इहार यश गाय॥१२९॥
सत्यलोक आक्रमिल एइ से चरणे।
बलि–शिर धन्य हैल इहार अर्पणे॥१३०॥
एइ से चरण हइते गंगा–अवतार।
शंकर धरिला शिरे महावेग या'र॥१३१॥
कोटि वृहस्पति जिनि' अद्वैतेर बुद्धि।
भालमते जाने सेइ चैतन्येर शुद्धि॥१३२॥

(११४–१३२) **प. अनु०**—सबके प्राणनाथ श्री विश्वम्भर की जय हो, जय हो। करुणासागर श्री गौरचन्द्र की जय हो, जय हो। भक्तों के वचनों को सत्य करने वाले प्रभु की जय हो, जय हो। महा–अवतारी महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीलक्ष्मी के मन को लुभाने वाले रूपधारी आपकी जय हो, जय हो। श्रीवत्स–कौस्तुभ से विभूषित प्रभु की जय हो, जय हो। 'हरे–कृष्ण' मन्त्र के प्रकाशकारी की जय हो, जय हो। जीव को अपनी भक्ति ग्रहण कराने के लिए उनके विलास की जय हो। जीव को अपनी भक्ति ग्रहण कराने के लिए उनके विलास की जय हो, जय हो। अनन्त–शयनकारी महाप्रभु की जय हो, जय हो। सब जीवों के आश्रय की जय हो, जय हो। तुम विष्णु हो, तुम कृष्ण हो, तुम नारायण हो। तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म हो, तुम सनातन हो। तुम ही युग–युग में वेदों को पालन करते हो। राक्षस–कुल का नाश करने वाले जानकी–जीवन राम भी तुम हो। तुम ही

गुह के वरदाता और अहल्या के उद्धार–कर्ता हो। तुमने ही प्रह्लाल के लिए अवतार ग्रहण किया और हिरण्यकशिपु को मारकर 'नरसिंह' नाम हुआ। सर्वदेव–चूड़ामणि द्विजराज तुम ही हो। तुम ही नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में भोजन करते हो। चारों वेद तुम्हारे ही अनुसंधान में इधर–उधर फिरते रहते हैं और तुम यहाँ आकर छिपे बैठे हो। हे प्रभो! छिपने में तो तुम बड़े पराक्रमी हो। परन्तु भक्तजन तुमको पकड़कर बाहर ले आते हैं। परन्तु भक्तजन तुमको पकड़कर बाहर ले आते हैं। संकीर्तन के आरम्भ में ही तुम्हारा यह अवतार हुआ है। संकीर्तन के आरम्भ में ही तुम्हारा यह अवतार हुआ है। अनन्त ब्रह्माण्डों में तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। तुम्हारे इन दोनों चरण–कमलों की सेवा के आनन्द में गौरी और शंकर सदा विह्वल रहते हैं। एकाग्रचित्त से रमा भी इन्हीं चरणों की सेवा करती रहती हैं। सहस्त्रवदन भगवान शेष भी इन्हीं चरणों का यश गया करते हैं। ये ही वे चरण हैं, जिनकी पूजा ब्रह्माजी निरन्तर किया करते हैं। श्रुति–स्मृति–पुराण भी इन श्रीचरणों का ही गुण गाया करते हैं। इन्हीं चरणों ने सत्यलोक को आवरण किया था और इनको अर्पण करने से महाराज बलि का सिर धन्य हुआ था। इन्हीं चरणों से उन गंगाजी का प्रादर्भाव हुआ है, जिनके महान वेग को भगवान् शंकर ने अपने सिर पर धारण किया था।

अद्वैताचार्य की बुद्धि कोटि बृहस्पतियों से भी बढ़कर थी। चैतन्य के तत्त्व को वे अच्छी तरह जानते थे।

(११६) गौः भाः—सिन्धुसुता–रूप–मनोहर–रत्ना– कर–तनया श्रीलक्ष्मीदेवी की सुन्दरता जिनके मानसिक उल्लास को बढ़ावा देती है। समुद्र–मन्थन के समय लक्ष्मीदेवी सिन्धु से आविर्भूत हुई थीं। इसलिए उनका नाम 'सिन्धुसुता' है। "ततश्चाविरभूत् साक्षाच्छ्रीरमा भगवत्परा। रंजयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामिनी यथा॥"—(भाः ८/८/८)।

(११७) गौः भाः—'हरेकृष्ण'–मन्त्र,—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"—यही महामन्त्र है। इस महामन्त्र के प्रकाशकर्त्ता श्रीगौरसुन्दर की बारम्बार जय हो। इससे यह सूचित हो रहा कि, जो लोग श्रीगौरसुन्दर के द्वारा प्रकाशित 'हरे कृष्ण'—महामन्त्र कीर्तन के विरुद्ध हैं, वे गौरांग के ही विरोधी हैं।

श्रीगौरसुन्दर—साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण होते हुये भी वे जीवों को अपनी भजन–मुद्रा सिखाने के लिए अपने ही भगवद्–भक्ति को ग्रहण (या आचरण) करने की लीला कर रहे हैं, अथवा जीवों को अपनी भक्ति ग्रहण कराने के लिए ही उनका यह विलास या भक्त के रुप में लीला का प्रकाश है।

(११९) गौः भाः—'तुम मत्स्य हो', 'तुम कूर्म हो', 'तुम ही वराह हो', 'तुम ही वामन हो' आदि वाक्यों के द्वारा अद्वैत प्रभु ने इसी बात की जानकारी दी है कि महा अवतारी महाप्रभु में ही सब स्वांश आदि अवतार समूह विराजमान हैं—अंशी में अंश समूह का नित्यावस्थान विराजमान है। श्रीअद्वैत प्रभु ने इसी बात की जानकारी दी है। अद्वैत प्रभु ने इसी बात की जानकारी दी है। अद्वैत प्रभु का ११५ संख्या का वाक्य द्रष्टव्य है।

(१२१) रक्षकुलहन्ता,—भगवान् गौरसुन्दर ने अपने रामावतार में रावणादि राक्षस कुल के विनाश की लीला का प्रकाशन किया था। गुह वरदाता—चांडाल कुल में आविर्भूत गुहक को जिन्होंने वरदान दिया था। अहल्या–मोचन—जिन्होंने अहल्या को मुक्त

किया था।

(१२३) गौः भाः—नीलाचल श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में तुम अर्चाविग्रह के रूप में विराजमान होकर भक्तों द्वारा प्रदत्त नैवेद्य स्वीकार करते हो। श्रीदुर्गादेवी 'नीला' नाम से जानी जाती हैं। जगद्रूपिणी 'नीला' अपने नाम से जानी जाती हैं। जगद्रूपिणी 'नीला' अपने वरणीय भगवान् को इस प्रपंच में श्रीर्चामूर्ति के रूप में प्रकट कराती हैं। वहाँ नैवेद्य के रूप में प्रदान की गई भोजनीय वस्तुओं को भगवान् स्वीकार करते हैं। वे जगत् के नाथ होते हुये भी स्वयं वैकुण्ठ-वस्तु हैं और वैकुण्ठ-धाम में ही नित्य विराजमान हैं। जगत् के निवासियों से सेवा ग्रहण करने की अभिलाषा से वे प्रपंच में अर्चामूर्त्ति हुये हैं।

(१३०) गौः भाः—श्रीवामनदेव के चरण कमलों ने समग्र सत्यलोकर का आवरण किया था। (भाः ८/२०/३३-३४ श्लोक द्रष्टव्य है) । भगवान के चरणों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से सत्य को प्रतिष्ठा हो ही नहीं सकती। अन्य सभी काल्पनिक सत्य समूह केवल कपटता हैं। भगवान ही सत्य-स्वरूप है, यह तथ्य श्रीपद् भागवत के आदि श्लोक में एवं "सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं"—(१०/२/२६) इत्यादि श्लोक-समूह में स्पष्टतः उल्लिखित है।

(१३२) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के परतत्त्व-विषय में श्रीअद्वैत प्रभु सबसे अधिक जानते हैं। उनकी निर्मल बुद्धि कोटि-संख्यक वृहस्पतियों की बुद्धि से भी श्रेष्ठ है।

स्तव करते-करते अद्वैत का प्रभु के चरणों में गिरना-

वर्णिते चरण—भासे नयनेर जले।
पड़िला दीघल हइ' चरणेर तले॥१३३॥
सर्वभूत अन्तर्यामी श्रीगौरांग-राम।
चरण तुलिया दिला अद्वैत-माथाय॥१३४॥

(१३३-१३४) प. अनु०—महाप्रभु के श्रीचरण-युगलों की महिमा का वर्णन करते-करते अद्वैत आचार्य अश्रुजल-प्रवाह में बहते-बहते प्रभु के चरणों में लम्बे होकर पड़ गये। सब जीवों के अन्तर्यामी श्रीगौरांगराय ने अपना श्रीचरण उठाकर अद्वैत के मस्तक पर रख दिया।

(१३३) गौः भाः—दीघल—दीघल—(दीर्घ शब्द से) दीर्घाकार, दीर्घ। यहाँ दीर्घ भाव में लम्बे होकर गिर पड़े।

अद्वैत के हृदय का भाव जानने वाले महाप्रभु के द्वारा अद्वैत के सिर पर चरण रखना—

चरण अर्पण शिरे करिला यखन।
'जय जय' महाध्वनि हइल तखन॥१३५॥

(१३५) प. अनु०—अद्वैत के सिर पर जब प्रभु ने अपना चरण अर्पित किया, तब 'जय हो' की महाध्वनि होने लगी।

अपूर्वता का दर्शन करके सबके द्वारा हरि-सम्बन्धी कोलाहल और नानाप्रकार के भावों को प्रकाशन—

अपूर्व देखिया सबे हइला विह्वल।
'हरि, हरि' बलि' सबे करे कोलाहल॥१३६॥
गड़ागड़ि याय केह, मालसाट मारे।
का'रो गला धरि' केह कान्दे उच्चैःस्वरे॥१३७॥

(१३६-१३७) प. अनु०—इस अपूर्व (अद्भुत) चरित्र को देखकर सभी विह्वल हो गये और 'हरि, हरि' कहते हुये कोलाहल करने लगे। कोई भूमि पर गिरकर लोट-पोट होने लगा, कोई मल्लवीरों की भाँति उछलने लगा और कोई किसी के गले लगकर जोर-जोर से रोने लगा।

(१३७) गौः भाः—मालसाट्—[मल्ल–(द्रः) साट्—छुट् (वस्त्र छाटा छश वास) मल्ल की सज्जा और प्रारम्भ।

अपने मस्तक पर श्रीचैतन्य–चरणों को प्राप्त करके अद्वैत की मनोञ्छाओं की पूर्णरूप से सिद्धि—

सस्त्रीके अद्वैत हइला पूर्ण–मनोरथ।
पाइया चरण शिरे पूर्व–अभिमत॥१३८॥

(१३८) प. अनु०—अद्वैत ने जैसा चाहा था, वह पूर्ण हुआ। अपने मस्तक पर श्रीचरणों को पाकर अद्वैत ने पत्नी–सहित अपनी मनोकामनाएँ पूरी कर लीं।

कीर्तन में नृत्य करने के लिए अद्वैत को महाप्रभु का आदेश—

अद्वैतेरे आज्ञा कैला प्रभु विश्वम्भर।
''आरे नाड़ा! आमार कीर्तने नृत्य कर॥''१३९॥
पाइया प्रभुर आज्ञा अद्वैत–गौसाईं।
नाना–भक्तियोगे नृत्य करे सेइ ठाञि॥१४०॥

(१३९–१४०) प. अनु०—प्रभु विश्वम्भर ने अद्वैत को आज्ञा दी—"अरे नाड़ा! मेरे कीर्तन में नृत्य करो।"

अद्वैत के द्वारा नानाविध भावावेश में नृत्य—

उठिल कीर्तनध्वनि अति मनोहर।
नाचेर अद्वैत गौरचन्द्रेर गोचर॥१४१॥
क्षणे वा विशाल नाचे, क्षणे वा मधुर।
क्षणे वा दशने तृण धरये प्रचुर॥१४२॥
क्षणे घुरे, उठे, क्षणे पड़ि' गड़ि' याय।
क्षणे घनश्वास छाड़ि' क्षणे मूर्च्छा पाय॥१४३॥
ये कीर्तन यखन शुनये' सेइ हय।
एक भावे स्थिर नहे आनन्दे नाचय॥१४४॥
अवशेषे आसि' सबे रहे दास्यभावे।
बुझन ना याय सेइ अचिन्त्य–प्रभावे॥१४५॥

(१४१–१४५) प. अनु०—अति मनोहर कीर्तन ध्वनि उठने लगी और अद्वैत आचार्य गौरसुन्दर के सामने नाचने लगे। किसी क्षण तीव्रता के साथ और किसी क्षण मधुर भाव से वे नृत्य करने लगे। किसी क्षण वे दाँतों में बहुत सारे तृणों को उठा लेते थे। वे किसी पल घूमने, किसी पल उठने और किसी परल गिरकर लोट–पोट होने लगे और फिर पल भर में लम्बी–लम्बी साँसें छोड़ते हुये वे मूर्च्छित हो गये। जब जैसा कीर्तन उन्होंने सुना, उसी कीर्तन के भावानुसार वैसा ही हो जाते। इस प्रकार किसी एक विशेष भाव में स्थिर न रहते हुये वे आनन्द सहित नाचते रहे। अन्त में केवल दास्यभाव में रह गये। भाव का प्रभाव अचिन्त्य होता है, उसे समझना कठिन है।

(१४२) गौः भाः—विशाल—असंकुचित, (संकोच–रहित) विस्तीर्ण (फैला हुआ)।

नित्यानन्द को देखकर अद्वैत की भ्रूकुटी एवं नित्यानन्द का हास्य—

धाइया धाइया याय ठाकुरेर पाशे।
नित्यानन्द देखिया भ्रूकुटि करि' हासे॥१४६॥
हासि' बले,—''भाल हैल आइया निताइ।
एतदिन तोमार नागालि नाहि पाइ॥१४७॥
याइबे कोथाय आजि राखिमु बान्धिया।''
क्षणे बले प्रभु, क्षणे बले मातालिया॥१४८॥
अद्वैत–चरित्रे हासे नित्यानन्द–राय।
एक मूर्त्ति, दुइ भाग—कृष्णेर लीलाय॥१४९॥

(१४६–१४९) प. अनु०—नृत्यरत अद्वैत दौड़–दौड़कर ठाकुर के पास जाते हैं, फिर नित्यानन्द को देखकर भौंहें तिरछी करके हँसते हैं। हँसकर उन्होंने कहा,—"अच्छा हुआ

निताई जो तुम आ गये। इतने दिनों तक तुम दिखाई नहीं दिये। अब कहाँ जाओगे? आज बाँधकर रखूँगा।" ऐसा कहते हुये वे नित्यानन्द को कभी 'प्रभु' शब्द-द्वारा, तो कभी 'प्रमत्त' शब्द-द्वारा सम्बोधित करने लगे। अद्वैत के व्यवहार को देखकर नित्यानन्द हँस पड़े। ये दोनों कृष्ण की लीला में एक ही मूर्ति के दो भाग हैं।

(१४८) मातालिया,—प्रमत्त, माताल (मतवाला)।

अनेक प्रकार के भावों से नित्यानन्द के द्वारा प्रभु की सेवा—

पूर्वे बलियाछि नित्यानन्द नानारूपे।
चैतन्येर सेवा करे अशेष कौतुके॥१५०॥
कोन रूपे कहे, कोन रूपे करे ध्यान।
कोन रूपे छत्र-शय्या, कोन रूपे गान॥१५१॥

(१५०-१५१) प. अनु०—पहले कह दिया गया है कि नित्यानन्द, सम्पूर्ण कौतुक के साथ, नानारूपों में चैतन्य की सेवा करते हैं। किसी रूप में वे बोलते हैं और किसी रूप में ध्यान करते हैं। किसी रूप में वे छत्र हैं, किसी रूप में सेज हैं और किसी रूप में गुणगान करते हैं।

चैतन्य के प्रिय नित्यानन्द और अद्वैत का रहस्य एवं माहात्म्य—

नित्यानन्द-अद्वैते अभेद करि' जान।
एइ अवतारे जाने यत भाग्यवान्॥१५२॥
ये किछु कलह-लीला देखह दोहाँर।
से सब अचिन्त्य-रंग ईश्वर-व्यभार॥१५३॥
ए दु'येर प्रीति येन अनन्त-शंकर।
दुइ कृष्णचैतन्येर प्रिय-कलेवर॥१५४॥

(१५२-१५४) प. अनु०—यह जान लेना चाहिए, कि नित्यानन्द और अद्वैत के बीच में कोई अन्तर नहीं है। जितने भी भाग्यवान जन हैं, वे सब इस अवतार में ऐसा ही मानते हैं। इन दोनों के बीच जो कुछ कलह-लीला दिखाइ देती है, वह सग वस्तुतः ईश्वर के व्यवहार के अचिन्त्य कौतुक और विनोद है। अनन्तदेव और शंकर में परस्पर जैसी प्रीति है, वैसी ही प्रीति इन दोनों के मध्य एक-दूसरे के प्रति है। दोनों ही श्रीकृष्णचैतन्य के प्रिय कलेवर हैं।

(१५३) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैत की विचार-भेदजनित पारस्परिक उक्तियों को सुनकर कुछ लोग इन दोनों में भेद की कल्पना किया करते हैं; किन्तु चिन्ता के अतीत (अचिन्त्य) वस्तु के बारे में उन लोगों को ऐसा नहीं सोचना चाहिए। भगवान् की विचित्र लीलाएँ को सभी लोग समझ नहीं सकते हैं; क्योंकि वे लीलाएँ मानव-चिन्तन के लिए अगम्य, वे चिन्ता के अतीत राज्य में अवस्थित हैं।

(१५४) गौः भाः—अनन्तदेव जैसे भगवान् के साथ प्रीति-सम्बन्ध से जुड़े हैं एवं रुद्रदेव (शंकर जी) जैसे भगवत् सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं, उन दोनों की भगवान् के प्रति जैसे अतुलनीय सेवा-निष्ठा वर्तमान है, उसी प्रकार श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैत प्रभु के हृदय में भी श्रीकृष्णचैतन्यदेव की सेवा के विषय में एक अलौलिक-प्रीति विराजमान है। श्रीचैतन्य को आनन्द देने के लिए ही दोनों ने अपना-अपना प्राकट्य किया है।

नित्यानन्द और अद्वैत में भेद दृष्टि रखने वालों को दुर्गति की प्राप्ति—

ये ना बुझि' दोहाँर कलह, पक्ष धरे।
एके वन्दे, आरे निन्दे, सेइ जन मरे॥१५५॥

(१५५) प. अनु०—इन दोनों के बीच की अप्राकृत (दिव्य) कलह को न समझकर जो किसी एक का पक्षपात करते हैं, अर्थात् जो एक की वन्दना और दूसरे की निन्दा करते हैं, वे विनाश को प्राप्त होते हैं।

(१५५) गौः भाः—जो लोग श्रीनित्यानन्द एवं श्रीअद्वैत के बीच परस्पर उनके अपने–अपने भावोचित्त वचनों को न समझ पाने के कारण 'कलह' मानते हैं और उनमें से एक के पक्ष को ठीक ठहराते हुये दूसरे पक्ष का दोष निकालने में लगे रहते हैं तथा इस विचार के कारण वे एक ही वन्दना और दूसरे की निन्दा किया करते हैं, उनका सर्वनाश होना निश्चित है।

अद्वैत का नृत्य देखकर वैष्णवों की प्रीति—

अद्वैतेर नृत्य देखि' वैष्णवसकल।
आनन्द–सागरे मग्न हैला विह्वल॥१५६॥

(१५६) प. अनु०—अद्वैत के नृत्य को देखकर सभी वैष्णव विह्वल होकर आनन्द–सागर में मग्न हो गये।

महाप्रभु की आज्ञा से अद्वैत का नृत्य से विरत होना—

हइल प्रभुर आज्ञा—रहिवार तरे।
ततक्षणे रहिलेन,—आज्ञा करि' शिरे॥१५७॥

(१५७) प. अनु०—नृत्य को समाप्त करने के लिए जब प्रभु ने आज्ञा दी, तब उस (आज्ञा) दी, तब उस (आज्ञा) को शिरोधार्य करते हुये अद्वैत आचार्य ने नृत्य रोक दिया।

महाप्रभु के द्वारा अद्वैत को प्रसादी माला प्रदान और व माँगने के लिए कहना—

आपन गलार माला अद्वैतेरे दिया।
'वर माग', 'माग'—बलेन हासिया॥१५८॥
शुनिया अद्वैत किछु ना करे उत्तर।
'माग माग' पुनः पुनः बले विश्वम्भर॥१५९॥

(१५८–१५९) प. अनु०—महाप्रभु ने अपने गले की माला अद्वैत को प्रदान की; फिर हँसते हुये कहने लगे,—"वर माँगा, वर माँगो"। इसे सुनकर अद्वैत ने जब कुछ उत्तर नहीं दिया, तब प्रभु विश्वम्भर पुनः बारम्बार कहने लगे कि, 'माँग, लो! माँग लो।'

अद्वैत के द्वारा उत्तर प्रदान और अपनी अभिलाषाओं का ज्ञापन—

अद्वैत बलये,—''आर कि मागिमु वर?
ये वर चाहिलुँ, ताहा पाइलुँ सकल॥१६०॥
तोमारे साक्षात् करि' आपने नाचिलुँ।
चित्तेर अभीष्ट यत सकल पाइलुँ॥१६१॥
कि चाहिमु प्रभु, किया शेष आछे आर।
साक्षाते देखिलुँ प्रभु, तोर अवतार॥१६२॥
कि चाहिमु, किवा नाहि जानह आपने।
किवा नाहि देख तुमि दिव्य–दरशने॥''१६३॥

(१६०–१६३) प. अनु०—अद्वैत बोले, —"और कौन–सा वर माँगू? जो वर मुझे चाहिये था, वह संपूर्ण रूप से मुझे मिल गया है। साक्षात् आपके सामने मैंने नृत्य किया है। उससे ही मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो गये हैं। मैं क्या माँगू, प्रभो अब कुछ और शेष रह ही क्या गया है? आपके अवतार का साक्षात् दर्शन कर लिया। मैं क्या चाहूँगा, यह क्या आप नहीं जानते हैं? क्या अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा आप उसे नहीं देख रहे हैं?"

महाप्रभु के द्वारा अद्वैत के निकट अपने अवतार–कार्य का प्रकाशन—

माथा ढुलाइया बले प्रभु विश्वम्भर।

''तोमार निमित्त आमि हइलुँ गोचर॥१६५॥
घरे घरे कीर्तन परचार।
मोर यशे नाचे येन सकल-संसार॥१६५॥
ब्रह्मा-भाव-नारदादि यारे तप करे।
हेन भक्ति बिलाइसु, वलिलुँ तोमारे॥''१६६॥

(१६४-१६६) प. अनु०—सिर हिलाते हुये प्रभु विश्वम्भर बोले,—"मैं तुम्हारे ही निमित्त प्रकट हुआ हूँ।" मैं घर-घर में कीर्तन का ऐसा प्रचार करुँगा, कि सारा संसार मेरे यश में नाचने लगेगा। ब्रह्मा, शिव, नारद आदि जिस भक्ति को पाने के लिए तप किया करते हैं, उसी भक्ति को मैं सर्वसाधारण में वितरण करूँगा। यह मैं तुमसे कह देता हूँ।"

(१६४) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने कहा,—"मैं प्रत्येक घर-घर में कृष्ण-कथा कीर्तन का प्रचार करूँगा। जिससे इस पृथ्वी के सभी लोग मेरे प्रति कृतज्ञ होकर मेरा यशोगान और गुणगान करते हुये नृत्य करेंगे।"

(१६६) गौः भाः—"ब्रह्मा-शंकर-नारद-इत्यादि देवगण जिस भक्ति (भगवत्-प्रेम) के लिए तपस्या किया करते हैं, उस भक्ति को मैं पामर पर्यन्त सभी को प्रदान करके लोगो का उपकार करूँगा—यह बात मैं तुमसे कह रहा हूँ।"

विद्या, धन, कुल, तपस्या आदि के अंहकार के कारण मदमत्त वैष्णव-अपराधी को छोड़ चांडाल तक को प्रेम वितरण के लिए अद्वैत के द्वारा प्रभु से अनुरोध-रूप वर की प्रार्थना—

अद्वैत बलये,—''यदि भक्ति बिलाइबा।
स्त्री शूद्र-आदि यत मूर्खेरे से दिवा॥१६७॥
विद्या-धन-कुल-आदि तपस्यार मदे।
तोर भक्त, तोर भक्ति, ये-ये-जन बाधे॥१६८॥
से पापिष्ट-सब देखि' मरुक पुड़िया।
आचंडाल नाचुक तोर नाम गुण गाञा''॥१६९॥

(१६७-१६९) प. अनु०—अद्वैत बोले,—"यदि भक्ति को वितरण करना है, तो स्त्री, शूद्र आदि जितने भी मूर्ख और अज्ञानी हैं, उस सबको भी दे दीजिएगा। विद्या, धन, कुल तपस्या आदि के अपने-अपने विद्या, धन, कुल, तपस्या इत्यादि के अभिमान से जो व्यक्ति आपकी भक्ति और आपके भक्तों के विरोधी है, वे सब महापापी लोग आपकी इस उदारता को देखकर जल मरें। आप कुछ ऐसा कीजिए कि चांडाल तक आपके नामों और आपके गुणों का कीर्तन करके नाच उठें।"

(१६७) गौः भाः—अद्वैत ने कहा,—"यदि ब्रह्मादि के लिए भी दुर्लभ भगवद् भक्ति को जगत में सबके लिए वितरित करना है, तो जिन लोगों को समाज में दीन-हीन अयोग्य समझा जाता है, उन लोगों को भी यह प्रेमभक्ति प्रदान करनी होगी। 'स्त्री, शूद्र और मूर्ख, ये सब भगवत् सेवा के अनधिकारी है'—ऐसी धारणा अभी तक साधारण जनों में विद्यमान है। उस विचारधारा को परिवर्तित करके आप उन सब अयोग्य प्रदान कीजिए ताकि आपके द्वारा स्थापित कीर्तन-प्रथा उन सबके मध्य भी प्रचारित हो जाये।

(१६८) गौः भाः—जो लोग विद्यामद, धनमद, कुलमद, तपस्यामद इत्यादि अशुभकारी अंहकारों में अवस्थित हैं, जो भाग्यहील और मत्सर-प्रकृति के व्यक्ति हैं, वे आपकी भक्ति के स्वरूप और भक्तों की महिमा को नहीं जानते हैं, वे ही यह प्रेमभक्ति प्रदान करनी होगी। 'स्त्री, शूद्र और मूर्ख, ये सब भगवत् सेवा के अनधिकारी हैं'—ऐसी धारणालाभ-रूप भक्ति के मार्ग में बाधा खड़ी करते हैं, वे पाप-परायण चित्त वाले हैं।

महाप्रभु के द्वारा अद्वैत के
वचनों को ंगीकार–

अद्वैतेर वाक्य शुनि' करिया हुँकार।
प्रभु बले,—''सत्य ये तोमार अंगीकार॥''१७०॥
ए सब वाक्येर साक्षी सकल–संसार।
मूर्ख–नीच–प्रति कृपा हइल ताँहार॥१७१॥
चंडालादि नाचये प्रभुर गुण–गाने।
भट्ट–मिश्र–चक्रवर्ती सबे निन्दा जाने॥१७२॥
ग्रन्थ पड़ि' मुण्ड मुड़ि' कारो बुद्धि–नाश।
नित्यानन्द–निन्दा करे' याइवेक नाश॥१७३॥
अद्वैतेरे बले प्रेम पाइल जगते।
ए सकल कथा कहि मध्यखण्ड हैते॥१७४॥

(१७०–१७४) प. अनु०—अद्वैत के वचन सुनकर हुँकार करते हुये प्रभु बोले,—"तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य मुझे स्वीकार है।" सारा संसार इन वचनों का साक्षी है। मूर्खों और नीचा पर उनकी कृपा हुई है। चांडाल आदि तो प्रभु के गुणगान में नाच उठते हैं; किन्तु भट्ट, मिश्र, चक्रवर्ती आदि नामधारी सब लोग केवल निन्दा करना ही किसी–किसी की बुद्धि पढ़कर और सिर मुँडाकर भी किसी–किसी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। नित्यानन्द की निन्दा करने वालों का विनाश ही होगा। अद्वैत के बल पर ही जगत को प्रेम मिला है, ये सब बातें मध्यखण्ड में उल्लिखित हैं।

(१६९–१७०) गौः भाः—अद्वैत ने कहा—'वे सब अहंकारी पापी लोग जगत की सभी श्रेणियों में भक्तों को और उनकी अलौकिकी भक्ति को देखकर मत्सरता की ज्वाला में जलते हुये मर जाएँ और जो समाज के द्वारा निन्दित और तिरस्कृत चांडाल आदि नामों को धारण करने वाले व्यक्ति हैं, वे आनन्द–सहित भगवान् की प्रेमभक्ति का परिचय प्रदान करें। उनके महान नृत्य को देखकर के मात्सर्य–परायण दाम्भिक–सम्प्रदाय अन्तर की ज्वाला से दग्ध हो जाएँ, यह देखकर मैं आनन्दित होऊँगा। अद्वैत के इन वचनों का भगवान् गौरसुन्दर ने अनुमोदन किया।

(१७१) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु एवं श्रीअद्वैत प्रभु के बीच के इस कथोपकथन की सत्यता के प्रमाण हेतु जगत् के लोगों के द्वारा निन्दित एवं समाज की निम्न श्रेणियों में रहने वाले व्यक्ति साक्षी हैं। आज भी लौकिक विचारों से अनभिज्ञ एवं मूर्ख कहे जाने वाले लोग भगवद्–भक्ति के प्रभाव से, पंडिताभिमानी जनों को सभी भक्ति–विषयक प्रसंगों में पराजित करने में समर्थ हैं। कुकर्मों के फलस्वरूप नीच जाति में उत्पन्न होकर भी चैतन्य की कृपा से उन लोगों को जिस प्रकार भक्ति के विषय में सहज ही श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है, वह भगवान् के अनुग्रह का ही निदर्शन है।

(१७२) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव का गुणगान करते समय चांडाल आदि सभी मूर्ख–नीच कहे जाने वाले सम्प्रदाय प्रभु के गुणों को ग्रहण करके नृत्य करते हैं; परन्तु भट्ट, मिश्र, चक्रवर्ती प्रभृति ऊँचे कुल में जन्में पण्डित लोगों ने प्रायः यही समझ रखा है कि चैतन्य की निन्दा करना ही उनका काम हैं। "वेदाध्यायरता नित्यं नित्यं वै यज्ञयाजकाः। अग्निहोत्ररता नित्यं विष्णुधर्मपरांमुखाः। निन्दति विष्णुभक्ततांश्च वेद–बाह्याः सुरेश्वरी॥" (पाद्मोत्तर में ५० अः)।

(१७३) गौः भाः—भगवान् की सेवा में रुचि न रखने वाले व्यक्तियों को अपनी–अपनी वाचालता का प्रदर्शन करने के कारण उनके भीतर विद्या का गर्व उत्पन्न होने पर किसी–किसी का विद्या–प्राप्ति जनित

बुद्धि तथा वृत्ति का विनाश हो जाता है। वे सब नित्यानन्द के अलौलिक आचरण को समझने में समर्थ न होकर अपने विनाश का आवाहन करते रहते हैं। "वेदैः पुराणैः सिद्व न्तैभिन्नैर्विभ्रान्तचेजसः। निश्चयं नाधिगच्छन्ति किं तत्त्वं किं परं पदम्॥"—

शुद्धा सरस्वती की कृपा से ही
चैतन्य के तत्त्व का स्फुरण—

चैतन्य–अद्वैते यत हैल प्रेमकथा।
सकल जानेन सरस्वती जगन्माता॥१७५॥
सेइ भगवती सर्व–जनेर जिह्वाय।
अनन्त हइया चैतन्येर यशः गाय॥१७६॥

(१७५–१७६) प. अनु०—चैतन्य और अद्वैत के बीच में जितनी भी प्रेम की बातें हुई हैं, उन सबके बारे में जगन्माता सरस्वती सब कुछ जानती हैं। वे भगवती देवी ही सब भक्तों की जिह्वा पर विराजमान हो जाती हैं, और इस प्रकार वे ही अनन्त रूप अपनाकर चैतन्य के यश का कीर्तन करती रहती हैं।

(१७५) गौः भाः—शब्दगानकारिणी (शब्दों को गाने वाली) शुद्धा सरस्वती जगत् के भाव–सूमहों`को उत्पत्ति स्थल हैं। वे श्रीचैतन्य और नित्यानन्द के बीच सारे कथोपकथनों को जानती हैं।

(१७६) गौः भाः—वे जगदीश्वरी सरस्वती ही सेवोन्मुख जनता ही जिह्वा पर विराजमान होकर श्रीचैतन्यदेव की महिमा का कीर्तन करती हैं।

ग्रन्थकार के द्वारा अपने दैन्य
भाव का ज्ञापन—

सर्व–वैष्णवेर पाये मोर नमस्कार।
इथे अपराध किछु नहुक आमार॥१७७॥

(१७७) प. अनु०—सभी वैष्णवों के श्रीचरणों में मेरा नमस्कार है। इस विषय में मेरा कोई अपराध न होवे।

(१७७) गौः भाः—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर महाशय हर एक वैष्णव के चरणों में गिरकर उनसे अपने अपराधों से मुक्त होने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। प्रकृत प्रस्ताव के अनुसार जिनकी स्वरूप में विष्णुभक्ति उदित हो गई है, वे सब निरन्तर भगवान् एवं भक्तों के सेवा–विधान में तत्पर रहते हैं। उनके द्वारा किये जा रहे भक्ति के अनुष्ठानों में बाधा डाल कर किसी को भी अपराध अर्जित करना उचित नहीं हैं। यही ग्रन्थकार के आदर्श जीवन में प्रतिफलित हुआ है। इस कारण विष्ण ुभक्ति–रहित भक्ति–विरोधी पाखंडी–सम्प्रदाय यदि स्वयं को अभिमान से वैष्णव गुरु के रूप में अवैधभाव से प्रतिष्ठित करके ठाकुर वृन्दावन दास जैसे प्रमुख भक्तजनों से सम्मान प्राप्ति की दुराशा का पोषण करते हैं, तो भक्तद्वेषी होने के कारण उन सबको अनन्तकाल तक नरक में रहना पड़ेगा।

पत्नी के साथ अद्वैत का नवद्वीप
में ही रह जाना—

सस्त्रीके आनन्द हैला आचार्य–गोसाईं।
अभिमत पाइ' रहिलेन सेइ ठाञि॥१७८॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥१७९॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे श्रीअद्व ैतमिलंन नाम षष्ठोऽध्यायः।

(१७८–१७९) प. अनु०—पत्नी के साथ आचार्य–गोसाईं बहुत आनन्दित हुये और प्रभु की सहमति मिल जाने पर वे नवद्वीप में रह गये। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्दचाँद जिनके

जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल–चरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(१७८) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के विचारों एवं भक्तिसिद्धान्तों से अवगत होकर श्रीअद्वैतप्रभु अपनी पत्नी, (ईश्वरी) के साथ बड़े आनन्दित हुए और श्रीचैतन्यदेव का अनुमोदन पाकर वे दोनों उसी स्थान (नवद्वीप) में कुछ दिन के लिए ठहर गये।

इति गौड़ीय–भाष्य में षष्ठ अध्याय समाप्त

O

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में, श्रीवासभवन में श्रीनित्यानन्द का अवस्थान, मालिती द्वारा वात्सल्य भाव से श्रीनित्यानन्द की सेवा, महाप्रभु का 'पुण डरीक'—नाम लेते हुये क्रन्दन करना, गदाधर और मुकुन्द का पुण्डरीक विद्यानिधि के समीप गमन, विद्यानिधि के भोगविलास के दर्शन से गदाधर को संशय, गदाधर की चित्तवृति के ज्ञाता मुकुन्द द्वारा भागवत के एक श्लोक का उच्चारण करने मात्र से पुण्डीक को प्रेमविकार, गदाधर द्वारा वैष्णवापराध मार्जनलीला के प्रकाशन हेतु विद्यानिधि से दीक्षा ग्रहण का प्रस्ताव एवं पुण्डरीक द्वारा इसमें सम्मति-प्रदान करने की लीलाओं का वर्णन हुआ है।

प्रत्यक्ष रूप से नित्यानन्द प्रभु श्रीधाम-मायापुर में श्रीवास के घर रहने लगे। उनके उस समय निरन्तर बाल्यभाव में स्थित रहने के कारण मालिनी देवी अपने पुत्ररूप से उनकी सेवा किया करती थीं।

एक दिन महाप्रभु अपने प्रिय पार्षद 'पुण्डीक विद्यानिधि' का नाम ले-लेकर क्रन्दन करने लगे, परन्तु भक्तजन उनके अभिप्राय को नहीं समझ पाये। महाप्रभु से पूछने पर उन्होंने विद्यानिधि का परिचय दिया एवं 'वे शीघ्र ही श्रीमायापुर में आयेंगे, 'ऐसा बताया। पुण्डरीक विद्यानिधि नवद्वीप में आकर परमभोगी की लीला का अभिनय करते हुये गूढ़भाव से रहने लगे। वैष्णवों के मध्य केवल भक्तश्रेष्ठ मुकुन्द चट्टग्राम में अवतीर्ण होने के कारण विद्यानिधि के तत्त्व को जानते थे। महाप्रभु अन्तर्यामी रूप से उनके आगमन के बारे में जानकर आनन्दित हुये, किन्तु उन्होंने उनके आगमन की बात किसी के भी निकट प्रकट नहीं की। वासुदेव और मुकुन्द, पुण्डरीक विद्यानिधि की समस्त महिमा से परिचित थे।

एक दिन मुकुन्द गदाधर को एक अद्‌भुत वैष्णव का दर्शन कराने की बात कहकर उन्हें अपने साथ लेकर विद्यानिधि के निकट गये। वहाँ विद्यानिधि ने गदाधर का परिचय पूछा। मुकुन्द द्वारा गदाथर का परिचय पाकर विद्यानिधि परम आनन्द से उनके साथ वार्तालाप करने लगे। किसी विषयी व्यक्ति की तरह दिव्य पलंग पर विराजमान विद्यानिधि के ताम्बूल-चर्वणादि व्यवहार को देखकर जन्म से ही विरक्त गदाधर के मन में उनके प्रति कुछ संशय हुआ। तभी गदाधर के मन में उनके प्रति कुछ संशय हुआ। तभी गदाधर के चित्त का भाव जानकर मुकुन्द ने श्रीमद्‌भागवत से श्रीकृष्ण की महिमा सूचक एक श्लोक पढ़ा। उस श्लोक को सुनने-मात्र से पुण्डरीक विद्यानिधि अपने आपको संभालने में असमर्थ हो गये। वे प्रेमावेश में मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े एवं उनमे विविध सात्विक भाव प्रकट होने लगे। उनके पदाघात से वहाँ का सब साज-समान इधर-उधर बिखर गया। विद्यानिधि का अद्‌भुत प्रभाव देखकर गदाधर, उनके प्रति अवज्ञा का भाव आने के कारण पश्चाताप करने लगे एवं उन्होनें विद्यानिधि से दीक्षा ग्रहण करने अपने अपराध का मार्जन कराने-हेतु

मुकुन्द के निकट प्रस्ताव रखा। गदाधर का अभिप्राय जानकर मुकुन्द आनन्द-सहित गदाधर की प्रशंसा करने लगे। दो प्रहर समय बीतने वर विद्यानिधि को चेतना हुई। उनके प्रभाव को देखकर गदाधर की आँखों में आँसू आ गये। यह देखकर विद्यानिधि परम सम्भ्रम के साथ वहाँ बैठे रहे। तब मुकुन्द ने गदाधर का अभिप्राय विद्यानिधि को बताया। उन्होंने परमानन्द के साथ अपने तुल्य शिष्य की प्राप्ति के लिए निज भाग्य की प्रशंसा करते हुये गदाधर को दीक्षा प्रदान करने का शुभदिन निर्दिष्ट कर दिया।

एक दिन विद्यानिधि कुछ अधिक रात में महाप्रभु के निकट आये। प्रेमातिशय वशतः (अत्यधिक प्रेम के वशीभूत होकर) वे उन्हें बिना दण्ड्वत किये ही मूर्च्छित हो गये। कुछ देर के बाद चेतना आने पर वे हुँकार पूर्वक विविध प्रकार की उक्तियों-सहित क्रन्दन करने लगे। उधर महाप्रभु भी अपने परम प्रिय भक्त के दर्शन करके उनका नाम ले-लेकर क्रन्दन करने लगे एवं उनको अपनी गोद में उठाकर प्रेमाश्रुओं की वर्ष करने लगे। बाद में होश आने पर उन्होंने विद्यानिधि को सब वैष्णवों से मिलवाया एवं उनकी विशेष रूप से प्रशंसा की। विद्यानिधि को जब बाह्य दशा का बोध दशा का बोध हुआ तो उन्होंने महाप्रभु को दण्डवत् किया तथा सभी वैष्णवों से यथायोग्य संभाषण किया। विद्यानिधि के प्रति अवज्ञा के कारण हुये अपने अपराध का मार्जन कराने हेतु गदाधर ने विद्यानिधि से दीक्षा-ग्रहण की अनुमति महाप्रभु से माँगी। प्रभु ने आनन्द सहित उसका अनुमोदन कर दिया। इस प्रकार गदाधर ने विद्यानिधि से दीक्षा ग्रहण की।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

नाचरे चैतन्य गुणनिधि।
असाधने चिन्तामणि हाते दिल विधि॥ ध्रु ॥१॥

(१) प. अनु०—गुणनिधि श्रीचैतन्यचन्द्र नाच रहे हैं। अहो! विधाता ने बिना कुछ साधन किये ही हमारे हाथ में यह चिन्तामणि पकड़ा दी है।

(१) गौः भाः—जो मणि मानव को मनोवाच्छित फल देने में समर्थ हो, उसे 'चिन्तामणि' कहते हैं। श्रीचैतन्यदेव—सभी सद्गुण-समुद्र के प्रधानतम रत्न हैं। उनका अद्भुत विक्रम, सब कलाओं और विद्याओं में कुशल नर्तक के नृत्य के समान है। मैं साधन के विषय में पूर्णतः असमर्थ और अयोग्य हूँ। फिर भी, मुझे अयोग्य जानते हुये भी विधाता ने मेरे हाथ में उसी दुर्लभ वस्तु को साधन बिना ही प्रदान कर दिया है।

गोष्ठी-सहित श्रीगौरसुन्दर की जयध्वनि—

जय जय श्रीगौरसुन्दर सर्वप्राण।
जय नित्यानन्द-अद्वैतेर प्रेमधाम॥२॥
जय श्रीजगदानन्द-श्रीगर्भ-जीवन।
जय पुण्डरीक-विद्यानिधि-प्राणधन॥३॥

(२-३) प. अनु०—सबके प्राणस्वरूप श्रीगौरसुन्दर की जय हो, जय हो। नित्यानन्द और अद्वैत के प्रेमधाम (प्रेमाश्रय) की जय हो। श्रीजगदानन्द और श्रीगर्भ के जीवन-स्वरूप की जय हो। श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के प्राण-धन प्रभु की जय हो।

(२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर सब प्राणियों के मूल प्राण हैं। वे नित्यानन्द और अद्वैत—इन दोनों प्रभुओं के एकमात्र प्रीतिभाजन हैं, आश्रय हैं। ऐसे ही चैतन्यदेव की बार-बार जय हो।

महाप्रभु की नित्यानन्द के
साथ विविध लीलाएँ—

जय जगदीश–गोपीनाथेर ईश्वर।
जय हउक यत गौरचन्द्र–अनुचर॥४॥
हेनमते नवद्वीपे श्रीगौरांग–राय।
नित्यानन्द–संगे रंग करये सदाय॥५॥
अद्वैत लइया सब वैष्णवमण्डल।
महा–नृत्य–गीत करे कृष्ण–कोलाहल॥६॥

(४–६) प. अनु०—श्रीजगदीश और श्रीगौपीनाथ के ईश्वर की जय हो। श्रीगौरचन्द्र के जितने भी अनुचर हैं, उन सब की जय हो। इस प्रकर नवद्वीप में श्रीगौरांग राय नित्यानन्द के साथ सदा लीला–कौतुक करते रहते थे और श्रीअद्वैत को संग लेकर समस्त वैष्णव–कोलाहल में मग्न रहते।

(६) गौः भाः—समाज में दो प्रकार के लोग रहते हैं,—उनमें विष्णुभक्ति परायणगण का समाज वैष्णव–मण्डल' (दैवसमाज) के नाम से प्रसिद्ध है, और विष्णुमण्डल' (असुर समाज) के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीअद्वैत प्रभु उसी वैष्णव–समाज के अधिपति थे। "द्वौ भूतसगौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। विष्णुभक्तः स्मृतौ दैव आसुरस्तद्विपर्ययः"॥—(पद्मपुराण)।

बद्धजीवगण अपनी–अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए कोलाहल करते रहते हैं, किन्तु भगवद् भक्तजन कृष्णसेवा के उद्देश्य से प्रचुर नृत्यगीत आदि करते हुये अपनी–अपनी सेवावृत्ति के अनुरूप हर्ष को प्रकट करते हैं।

नित्यानन्द की बाल्य–भाव के साथ श्रीवास के गृह में अवस्थिति और मालिनी की वात्सल्य–भाव से नित्यानन्द की सेवा—

नित्यानन्द रहिलेन श्रीवासे घरे।
निरन्तर बाल्यभाव, आन नाहि स्फुरे॥७॥
आपनि तुलिया हाते भात नाहि खाय।
पुत्रप्राय करि' अन्न मालिनी योगाय॥८॥

(७–८) प. अनु०—श्रीनित्यानन्द श्रीवास के घर में रहने लगे। वे निरन्तर बाल–भाव में ही रहते थे। वे अपने हाथों से भात तक नहीं खाते थे, बल्कि श्रीमालिनी देवी पुत्र की तरह अपने हाथों से उन्हें भात खिलाया करती थीं।

(८) गौः भाः—जिस प्रकार छोटे बालक अपने हाथ से अन्न ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं, इसलिए उनकी जननी उनको खाने योग्य भोज्य पदार्थों को खिलाया करती हैं, उसी प्रकार श्रीवास की पत्नी मालिनी देवी भी नित्यानन्द प्रभु की वात्सल्य भाव से सेवा करते हुये उन्हें अपने हाथों से भोजन कराती थीं।

पुण्डरीक विद्यानिधि का आख्यान—

एबे शुन श्रीविद्यानिधिर आगमन।
'पुण्डरीक' नाम—श्रीकृष्णेर प्रियतम॥९॥
प्राच्यभूमि चाटिग्राम धन्य करिवारे।
तथा ता'ने अवतीर्ण करिला ईश्वरे॥१०॥

(९–१०) प. अनु०—अब श्रीविद्यानिधि के आगमन का वृत्तान्त सुनो। 'पुण्डरीक' नाम के ये भक्त श्रीकृष्ण को बहुत ही प्यारे थे। पूर्व देश क ेचटगावँ की भूमि को धन्य करने के लिए ईश्वर ने वहाँ उनको अवतीर्ण किया था।

(९) गौः भाः—'श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि'—नाम के पण्डित कृष्ण के बहुत ही प्रिय भक्त थे।

वेदशास्त्रों में पुण्डरीकाक्ष भगवान् की कथा है। उनके आश्रित भक्त 'पुण्डरीक विद्यानिधि' नाम से प्रसिद्ध हैं।

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकपेवमक्षिणी तस्योदिति नाम से एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद॥"—(छान्दोग्यो उपनिषद् में १/६/७)

गौड़देश के सुदूर पूर्वप्रान्त में स्थित

चटग्राम -प्रदेश की पवित्रता का वर्द्धन करने के लिए भगवान् ने अपने प्रिय भक्त पुण्डरीक विद्यानिधि को वहाँ अवतीर्ण कराया था। विद्यानिधि का जन्मस्थान चटग्राम-जिला के हाटहाजारी थाना के अन्तर्गत 'मेखल' गाँव के नाम से प्रसिद्ध है।

पुण्डरीक के लिए महाप्रभु की उत्कण्ठा—

नवद्वीपे करिलेन ईश्वर प्रकाश।
विद्यानिधि ना देखिया छाड़े घनश्वास॥११॥
नृत्य करि' उठिया बसिया गौर-राय।
'पुण्डरीक बाप' बलि' कान्दे उभराय॥१२॥
''पुण्डरीक आरे मोर बापरे बन्धुरे।
कबे तोमा देखिव आरे रे बापरे॥''१३॥
हेन चैतन्येर प्रियपात्र विद्यानिधि।
हेन सब भक्त प्रकाशिला गौरनिधि॥१४॥
प्रभु ये क्रन्दन करे ता'न नाम लइया।
भक्त सब केह किछु ना बुझेन इहा॥१५॥

(११-१५) प. अनु०—जब नवद्वीप में ईश्वर ने अपना ऐश्वर्य प्रकाशित किया, तब वहाँ विद्यानिधि को न देखकर वे लम्बी-लम्बी साँसे छोड़ने लगे। एक दिन नृत्य सम्पन्न करके बैठे, तो वे 'पुण्डरीक बाप 'पुकार-पुकार कर रोने लगे। "मेरे पुण्डरीक! हे मेरे बाप! हे मेरे बन्धु! अरे हे बाप! मैं कब तुमको देख पाऊँगा।" इस प्रकार विद्यानिधि चैतन्य के ऐसे सब भक्तों को श्रीगौरनिधि ने प्रकाशित किया। उनका नाम ले-लेकर प्रभु जिस प्रकार रो रहे थे, उस विषय में कोई भी भक्त कुछ भी नहीं समझ पा रहा था।

(११) गौः भाः—जब श्रीमहाप्रभु नवद्व ीप-नगर में अपनी वैकुण्ठ-लीला का ऐश्वर्य प्रकाशित कर रहे थे, उस समय वहाँ पुण्डरीक विद्यानिधि की अनुपस्थिति का अनुभव करते हुये उन्होंने लम्बी-लम्बी साँसों का परित्याग किया था।

(१३) गौः भाः—पुण्डरीक ब्रजलीला में श्रीराधिका के पिता थे, इसलिए श्रीगौरसुन्दर ने उनको 'बाप' (पिता) कहकर संबोधित किया था।

सबका ही 'पुण्डरीक'-अर्थ से 'कृष्ण'-ज्ञान; 'विद्यानिधि' पद-युक्त रहने से किसी प्रिय भक्त का अनुमान—

सबे बले 'पुण्डरीक' बलेन कृष्णेरे।
'विद्यानिधि'-नाम शुनि' सबेइ विचारे॥१६॥
'कोन प्रिय-भक्त' इहा सबे बुझिलेन।
बाह्य हैले प्रभु-स्थाने सबे बलिलेन॥१७॥
''कोन् भक्त लागि' प्रभु करह क्रन्दन?
सत्य आमा-सबा-प्रति करह कथन॥१८॥
आमा-सबार भाग्य हउक ता'ने जानि।
ताँ'र जन्म-कर्म कोथा? कह प्रभु शुनि॥''१९॥

(१६-१९) प. अनु०—वे सब कहने लगे—'पुण्डरीक' तो श्रीकृष्ण को कहते हैं; परन्तु साथ में विद्यानिधि नाम सुनकर सब ही सोच में पड़ गये। अन्त में इतना तो वे सब समझ ही गये कि यह कोई प्रिय भक्त है। जब प्रभु को बाह्य स्थिति का ज्ञान हुआ तो सब उनसे पूछने लगे, "हे प्रभो! आप किस भक्त के लिए क्रन्दन कर रहे हैं, यह हमें सच-सच बताइये। उसको जानने को हम सबको भी सौभाग्य मिल जाये। उसका जन्म-कर्म कहाँ हुआ, कहिये न प्रभो, हम भी तो सुनें।"

(१६) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के मुख से 'पुण्डरीक'—शब्द सुनकर प्रथम तो भक्तजन उसे 'कृष्ण'-वाचक समझ बैठे, क्योंकि उस समय पुण्डरीक विद्यानिधि के सम्बन्ध में उन्हें

कुछ भी पता नहीं था।

प्रभु-द्वारा विद्यानिधि का परिचय वर्णन—

प्रभु बले—"तोमरा सकले भाग्यवान्।
शुनिते हइल इच्छा ताँहार आख्यान॥२०॥
परम अद्‌भुत ताँर सकल चरित्र।
ताँ'रे नाम-श्रवणेओ संसार पवित्र॥२१॥

(२०-२१) प. अनु०—तब प्रभु बोले कि, "तुम सब बड़े भाग्यवान हो, तो उनका वृतान्त सुनने की तुम्हारी इच्छा हुई है। उनका सम्पूर्ण चरित्र बड़ा ही अद्‌भुत है। उनका नाम सुनने मात्र से ही संसार पवित्र हो जाता है।

विषयी के आवरण में विद्यानिधि द्वारा मूढ़जन को वंचना—

विषयी प्राय ताँ'र परिच्छद-सब।
चिनिते ना पारे केह, तिँहो ये वैष्णव॥२२॥

(२२) प. अनु०—उनकी वेश-भूषा, लगभग सब विषयी के समान है। वेषभूषा से उनको कोई नहीं पहचान सकता कि वे वैष्णव हैं।

(२२) गौः भाः—कृष्ण की लीला विषयी जनों के जड़ीय ज्ञान के द्वारा जानने योग्य नहीं हैं। कृष्ण के दासजन भी कभी-कभी उसी प्रकार अपने स्वरूप को छिपा कर विषयी जैसे आचरण का प्रदर्शन करते हुये जगत के जीवों को बंधना कर देते हैं। साधारण भोगदृष्टि रखने वाले मूढ़ व्यक्ति कृष्ण को भी असत् नायक समझकर उनके प्रति श्रद्धाहीन हो जाते हैं। कोई-कोई व्यक्ति कृष्ण को इतिहास-प्रसिद्ध एक मानव समझकर उनको भी जन्म-मरण युक्त अवस्था के वशीभूत समझते हैं। और उनका वास्तविक परिचय पाने में असमर्थ रह जाते हैं। कृष्ण के भक्तजन भी अनेक बार अयोग्य व्यक्तियों के सामने अपने स्वरूप का प्रदर्शन करने में संकोच करते हुये विषयीजनों की -सी लीला चेष्टाओं का अभिनय करते रहते हैं। बाह्य वेश को देखकर जो व्यक्ति भ्रमित होने के योग्य हैं, उनके लिए प्रच्छन्न गौरावतार में पुण्डरीक विद्यानिधि ने भी अपने को विषयी के भेष में स्थापित कर रखा था।

विद्यानिधि का जन्मस्थान और उनका चरित्र—

चाटिग्रामे जन्म विप्र परम-पण्डित।
परम-स्वधर्म सर्व-लोक-अपेक्षित॥२३॥
कृष्णभक्ति-सिंधु-माझे भासे निरन्तर।
अश्रु-कम्प-पुलक-वेष्टित कलेवर॥२४॥

(२३-२४) प. अनु०—महाप्रभु आगे बताते हैं, चटगांव के विप्रकुल में उनका जन्म हुआ, वे परम पण्डित एवं सब लोगों में प्रतिष्ठित थे। वे कृष्ण-भक्ति रूपी समुद्र में निरन्तर बहते रहते एवं उनकी देह सदा अश्रु, कम्प एवं पुलक आदि सात्त्विक भावों से सजी हुई व्याप्त रहती।

(२३) गौः भाः—विद्यानिधि सब लोगों के समादर के पात्र थे। पण्डित होने से विद्यार्थीजन उनका बड़ा सम्मान करते थे। कुलीन होने से ब्राह्मणकुल का आदर भी उन्हें प्राप्त था। धर्मप्राण जन उनको परम धार्मिक जानकर उनसे धर्मशिला ग्रहण किया करते थे।

(२४) गौः भाः—जिस प्रकार से विषयी-जन कृष्णेतर विषयों में आसक्त होकर विषयभोगों में लगे रहते हैं, पुण्डरीक विद्यानिधि उस प्रकार के नहीं थे। वे निरन्तर कृष्णसेवा में लगे रहते थे तथा उनका शरीर अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्त्विक भावों से सदा सज्जित रहता था।

विद्यानिधि ना करेन पदस्पर्श भये।

गंगास्थान ना करेन पदस्पर्श भये।
गंगा दरशन करे निशार समये॥२५॥
गंगाय ये-सब लोक करे अनाचार।
कुल्लोल, दन्तधावन, केश-संस्कार॥२६॥
ए सकल देखिया पायेन मने व्यथा।
एतेके देखेन गंगा निशाय सर्वथा॥२७॥
विचित्र विश्वास आर एक शुन ता'न।
देवार्चन-पूर्वे करे गंगाजल पान॥२८॥
तबे से करेन पूजा-आदि-नित्य-कर्म।
इहा सर्व-पण्डितेरे बुझायेन धर्म॥२९॥

(२५-२९) प. अनु०—महाप्रभु ने आगे कहा, वे पैरों से छू जाने के भय से गंगास्थान नहीं करते और गंगा के दर्शन भी रात्रि के समय करते हैं। गंगा जी में कुल्ला, दन्तधावन एवं केश संस्कार-आदि जिन-जिन अनाचरणीय कार्यों को लोग करते हैं, उन्हें देख-देखकर उनके चित्त को बड़ा दुःख होता है। इस कारण वे सर्वदा रात्रि में ही गंगाजी के दर्शन किया करते हैं। उनके एक और विचित्र विश्वास की बात सुनो! वे देव-पूजन करने से पहले गंगाजल का पान किया करते हैं, फिर पूजा-आदि नित्य-कर्म करते हैं, इस प्रकार के दिव्य आचरण द्वारा सब पण्डितों को वे धर्म की शिक्षा दिया करते हैं।

(२५) गौः भाः—कर्मकाण्ड में उन्मत्त जनता की तरह वे पाप-नाश के लिए गंगा में डुबकी मार कर स्नान कभी नहीं करते थे; किन्तु विष्णुपादोदक होने के कारण गंगाजल मे उनकी अचल श्रद्धा थी एवं इसी प्रबल मर्यादा-बोध के कारण पादस्पर्श के भय से गंगा में स्नान न करने पर भी वे रात्रि में उस समय श्रीगंगा का दर्शन करते थे, जब कोई व्यक्ति वहाँ पर स्नान नहीं कर रहा होता था। विष्णु के चरणोदक में लोग स्नान कर रहे हैं, यह देखना भी उन्हें असह्य था।

(२६) गौः भाः—कुल्लोल—कुल्ला।

(२७) गौः भाः—मर्यादा-पथ पर चलने वाले श्रीरामानुज-सम्प्रदाय के वैष्णव-जन-गंगाजी में डुबकी लगाकर स्नान नहीं करते हैं, वे केवल गंगाजल को अपने मस्तक पर धारण करके अपनी पवित्रता का सम्पादन करते हैं। वैष्णवविद्वेषी जन गंगाजल को अपने मस्तक पर धारण करके अपनी पवित्रता का सम्पादन करते हैं। वैष्णवविद्वेषी जन गंगाजल को विष्णुपादोदक जानकर भी अथवा अनजाने ही उस गंगाजल में आचमन, मुख-प्रक्षालन और दन्त-धावन आदि कार्य करते हैं। भक्तश्रेष्ठ पुण्डरीक की विष्णुभक्ति अत्यन्त प्रबल थी, इसलिए वे अवैष्णवों के इस प्रकार के आचरण से बड़े दुःखी होते थे। रात के समय जब ऐसे लोग वहाँ नहीं रहते थे, तब गंगा के दर्शन में और चिन्मय-सलिला का सम्मान करने में उनकी विशेष आसक्ति थी।

(२९) गौः भाः—साधारण पण्डिताभिमानी व्यक्ति अपने-अपने पापों का प्रक्षालन करने के लिए गंगा में स्नानादि करते हैं; किन्तु पुण्डरीक विद्यानिधि उन सब मूर्खों को गंगा की महिमा समझाने के लिए स्वयं पूजा के प्रारम्भ में गंगाजल का पान करते थे। भगवत्-पूजा की विधि ठीक प्रकार से सिखाने के लिए ही उनका यह अनुसरणीय आचरण था।

चाटिग्राम एवं नवद्वीप-दोनों स्थलों पर विद्यानिधि का वासस्थान—

चाटिग्रामे आछेन, एथायओ बाड़ी आछे।
आसिवेन सत्प्रति, देखिवा किछु पाछे॥३०॥

(३०) प. अनु०—उनका घर चटगाँव में है और यहाँ भी है। अब वे यहाँ आने वाले

हैं, तब कुछ दिन पश्चात् तुम सब उनको देख पाओगे।

(३०) गौः भाः—यद्यपि पुण्डरीक विद्यानिधि का स्थायी निवास चटगाँव में था, पर श्रीमायापुर में भी उनका एक गंगावास-घर था। उस समय गौड़देश की सब पण्डित-मण्डलियाँ नवद्वीपनगर आकर अपनी-अपनी चतुष्पाठी स्थापित किया करती थीं।

पुण्डरीक के अचानक दर्शन से उनको 'विषयी' समझना—

ताँरे झाट केहइ चिनिते ना पारिवा।
देखिले 'विषयी' मात्र ज्ञान से करिवा॥३१॥

(३१) प. अनु०—महाप्रभु ने आगे कहा, शीघ्र ही कोई उन्हें पहचान नहीं पायेगा। जो व्यक्ति उन्हें देखेंगे, वे उन्हें 'विषयी' मात्र ही समझेंगे।

पुण्डरीक के अदर्शन से महाप्रभु की बेचैनी—

ताँरे ना देखिया आमि स्वस्ति नाहि पाइ।
सबे ताँरे आकर्षिया आनह एथाइ॥''३२॥
कहि ताँर कथा प्रभु आविष्ट हइला।
'पुण्डरीक बाप' बलि' कान्दिते लागिला॥३३॥
महा उच्चैःस्वरे प्रभु रोदन करेन।
ताँहार भक्तेर तत्त्व तिँहो से जानेन॥३४॥
भक्ततत्त्व चैतन्य-गोसाईं मात्र जाने।
सेइ भक्त जाने, यारे कहेन आपने॥३५॥

(३२-३५) प. अनु०—उन पुण्डरीक को देखे बिना मुझे शान्ति नहीं है, अतएव तुम सब उनको आकर्षण करके यहाँ ले आओ।"

पुण्डरीक की चर्चा करते करते प्रभु आवेश में आ गये और 'पुण्डरीक बाप' कहकर रोने लगे। प्रभु बड़े ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे। वास्तव में अपने भक्तों का तत्त्व वे ही जानते हैं। केवल श्रीचैतन्य गोसाईं ही भक्तों के तत्त्व को जानते हैं, अथवा वे भक्त जानते हैं जिनसे प्रभु स्वयं ही कह देते हैं।

महाप्रभु द्वारा विद्यानिधि का नवद्वीप में आकर्षण—

ईश्वरेर आकर्षण हैल ताँर प्रति।
नवद्वीपे आसिते ताँहार हैल मति॥३६॥
अनेक सेवक-संगे अनेक सम्भार।
अनेक ब्राह्मण-संगे शिष्य-भक्त ताँर॥३७॥

(३६-३७) प. अनु०—जब विद्यानिधि के प्रति ईश्वर का आकर्षण हुआ, तब उनकी नवद्वीप में आने की इच्छा हुई और वे बहुत से सेवकों, ब्राह्मणों, शिष्यों और भक्तों के साथ बहुत-सा साज-सामान लेकर वहाँ आ गये।

पुण्डरीक का नवद्वीपे गूढ़भाव से अवस्थान—

आसिया रहिला नवद्वीपे गूढ़द्वीपे गूढ़रूपे।
परम भोगीर प्राय सर्व लोके देखे॥३८॥
वैष्णव-समाजे इहा केह नाहि जाने।
सबे-मात्र मुकुन्द जानिलस सेइक्षणे॥३९॥

(३८-३९) प. अनु०—नवद्वीप में आकर पुण्डरीक विद्यानिथि गुप्तरूप से रहने लगे। सब लोगों को वे एक परम भोगी के समान दिखाई देते थे। विद्यानिधि के आगमन की बात उस समय वैष्णव-समाज में कोई नहीं जान पाया था, केवल मात्र मुकुन्द को ही इसकी जानकारी थी।

(३८) गौः भाः—भगवान् के आकर्षण से पुण्डरीक अपने श्रीधाम मायापुर नवद्वीप वाले गृह में आकर रहने लगे। वहाँ उन्हें कोई नहीं जानता था। उनके वास्तविक स्वरूप को जानने में समर्थ लोग उन्हें 'भोगी, विषयी' मानकर भ्रान्त हुये। आचार्य-वैष्णव-गुरु के

ऐश्वर्य और उनकी भगवत्सेवा की रीति को मूढ़जन नहीं समझते हैं तथा उन्हें भी वे अपने समान ही मानते हुये भ्रमित रहते हैं। पुण्डरीक के विषय में भी उसी प्रकार की भ्रान्ति होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

विद्यानिधि के परिचय-ज्ञाता—एकमात्र मुकुन्द—

श्रीमुकुन्द वेज ओझा ताँ'र तत्त्व जाने।
एक संगे मुकुन्देर जन्म चाटिग्रामे॥४०॥

(४०) प. अनु०—श्रीविद्यानिधि के तत्त्व को वैद्य श्रीमुकुन्द उपाध्याय ही जानते थे; क्योंकि मुकुन्द का जन्म भी चटगाँव में ही हुआ था।

(४०) गौः भाः—कोई भी वैष्णव श्रीपुण डरीक को तब तक वास्तविक रूप में नही जानता था, केवल वैद्य उपाध्याय मुकुन्द दत्त ही उनके विषय में जानते थे; क्योंकि वे भी चटगाँव-निवासी थे।

विद्यानिधि के आगमन से प्रभु का आनन्द एवं अन्यों के निकट उनके आगमन का गोपन—

विद्यानिधि-आगमन जानिया गोसाईं।
ये आनन्द हइल, ताहार अन्त नइ॥४१॥
कोन वैष्णवेरे प्रभु ना कहे भांगिया।
पुण्डरीक आछेन विषयी-प्राय हैया॥४२॥

(४१-४२) प. अनु०—श्रीविद्यानिधि के आगमन को जानकर प्रभु को जो आनन्द हुआ, उसकी सीमा नहीं है। परन्तु प्रभु ने किसी वैष्णव के आगे यह भेद प्रकाशित नहीं किया। उधर पुण्डरीक भी विषयी जैसे बनकर निवास कर रहे थे।

(४२) गौः भाः—विद्यानिधि के श्रीधाम मायापुर आगमन के बारे में जानकर श्रीगौरसुन्दर को अपार आनन्द हुआ; किन्तु उन्होंने अपने अनुगत किसी भी वैष्णव को पुण्डरीक के आगमन का वृत्तान्त नहीं बताया। इसलिए वैष्णवजन पुण्डरीक को विषयी जनों में से ही कोई एक जानकर उनकी सेवा करने के लिए तत्पर नहीं हुये।

पुण्डरीक के प्रेम-भक्ति की महिमा मुकुन्द और वासुदेव की परिज्ञात—

यत किछु ताँ'र प्रेमभक्तिर महत्त्व।
मुकुन्द जानेन, आर वासुदेव दत्त॥४३॥

(४३) प. अनु०—पुण्डरीक के प्रेम-भक्ति की जो कुछ भी महत्ता थी, उसे मुकुन्द और वासुदेव दत्त ही जानते थे।

(४३) गौः भाः—पुण्डरीक की प्रगाढ़ प्रेमसेवा की महिमा वैद्य उपाध्याय मुकुन्द और वासुदेव दत्त ठाकुर जानते थे।

मुकुन्द द्वारा गदाधर के समीप पुण्डरीक-वार्त्ता का ज्ञापन—

मुकुन्देर बड़ प्रिय पण्डित-गदाधर।
एकान्त मुकुन्द ताँर संगे अनुचर॥४४॥
यथाकार ये वार्त्ता, कहेन आसि' सब।
"आजि एथा आइला एक अद्भुत वैष्णव॥४५॥
गदाधर पण्डित, शुनह सावधाने।
वैष्णव देखिते ये वाञ्छह तुमि मने॥४६॥
अद्भुत वैष्णव आजि देखाव तोमारे।
सेवक करिया येन स्मरह आमारे।।"४७॥

(४४-४७) प. अनु०—पण्डित गदाधर मुकुन्द के बहुत ही प्रिय थे और मुकुन्द उनके एकान्त अनुचर थे। जहाँ कहीं जो कुछ बातें होती थीं, मुकुन्द आकर वह सब उनको सुना दिया करते थे। अतएव यह बात भी सुनाई कि "आज एक अद्भुत वैष्णव

यहाँ आये हैं। हे गदाधर पण्डित! सावधान होकर सुनो—आपके मन में तो वैष्णव दर्शन की इच्छा है। मैं आज आपको एक अद्‌भुत वैष्णव के दर्शन कराऊँगा। आप मुझे अपने सेवक के रूप में स्मरण कर लिया करें।"

(४६) गौ भाः—यदि मैं आपको एक लोकातीत वैष्णव महापुरुष का संग कराऊँ, तब उसके बदले आप मुझको अपेन 'भृत्य' के रूप में स्मरण करते रहना—यही मेरा पुरस्कार होगा।

गदाधर का पुण्डरीक के दर्शन को जाना—

शुनि' गदाधर बड़ हरिष हइला।
सेइक्षणे 'कृष्ण' बलि' देखिते चलिला॥४८॥

(४८) प. अनु०—यह सुनकर गदाधर बड़े प्रसन्न हुये और 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुये वे उसी क्षण उनके दर्शन करने को चल पड़े।

पुण्डरीक के दर्शन करके गदाधर का उनको प्रणाम एवं पुण्डरीक द्वारा गदाधर का सम्मान—

बसिया आछेन विद्यानिधि महाशय।
सम्मुखे हइल गदाधरेर विजय॥४९॥
गदाधर पण्डित करिला नमस्कार।
बसाइया आसने करिया पुरस्कार॥५०॥

(४९-५०) प. अनु०—विद्यानिधि महाशय अपने आवास पर बैठे हुये थे कि तभी सामने से श्रीगदाधर आ गये। उन्होंने आकर विद्यानिधि को प्रणाम किया और विद्यानिधि ने सत्कार पूर्वक उनको आसन पर बैठाया।

पुण्डरीक द्वारा मुकुन्द से गदाधर का परिचय पूछना—

जिज्ञासिला विद्यानिधि मुकुन्देर स्थाने।
"किवा नाम इहार, थाकेन कोन् ग्रामे?५१॥
विष्णुभक्ति-तेजोमय देखि कलेवर।
आकृति, प्रकृति—दुइ परम सुन्दर॥"५२॥

(५१-५२) प. अनु०—फिर विद्यानिधि ने मुकुन्द से पूछा—"इनका क्या नाम हैं? ये कौन से ग्राम में रहते हैं? इनकी देह विष्णुभक्ति के तेज से तेजोमय दिखाई दे रही है। इनकी आकृति और स्वभाव—दोनों ही परम सुन्दर हैं।"

मुकुन्द द्वारा गदाधर का परिचय प्रदान—

मुकुन्द बलेन,—'श्रीगदाधर' नाम।
शिशु हैते संसारे विरक्त भाग्यवान्॥५३॥
'माधव मिश्रेर पुत्र' कहि व्यवहारे।
सकल वैष्णव प्रीति वासेन इँहारे॥५४॥
भक्तिपथे रत, संग भक्तेर सहिते।
शुनिया तोमार नाम आइला देखिते॥५५॥

(५३-५५) प. अनु०—मुकुन्द बोले,—"इनका नाम 'श्रीगदाधर' है, ये भाग्यवान् बचपन से ही संसार से विरक्त हैं। व्यवहार में ये 'माधव मिश्र' के पुत्र कहे जाते हैं। सब वैष्णव इनसे प्रीति करते हैं। ये भक्तिपथ में आसक्त हैं एवं भक्तों का ही संग करते हैं। ये आपका नाम सुनकर आपके दर्शनों के लिए आये हैं।"

(५३-५५) गौः भाः—पुण्डरीक विद्यानिधि द्वारा श्रीगदाधर के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उसके उत्तर में मुकुन्द ने कहा,—"व्यावहारिक जगत् के प्राकृत ज्ञान के अनुसार ये 'माधव मिश्र' नाम के एक ब्राह्मण के पुत्र हैं—बाल्यकाल से ही ये वैराग्य धर्म में अवस्थित हैं (अर्थात मुकुन्द ने पहले उनके वर्णाश्रम के आश्रय का परिचय दिया) और फिर बताया कि ये सब वैष्णवों के प्रीति-भाजन हैं।"

गदाधर का परिचय प्राप्त करके विद्यानिधि को हर्ष—

शुनि' विद्यानिधि बड़ सन्तोष हइला।
परम गौरवे सम्भाषिवारे लागिया॥५६॥

(५६) प. अनु०—यह सुनकर विद्यानिधि को बड़ा सन्तोष हुआ वे बड़े आदर के साथ उनसे वार्तालाप करने लगे।

बहिरंगजनों को वंचना देने हेतु विद्यानिधि द्वारा विलासिता का प्रदर्शन—

बसिया आछेन पुण्डरीक महाशय।
राजपुत्र हेन करियाछेन विजय॥५७॥
दिव्य-खट्टा हिंगुले, पितले शोभा करे।
दिव्य-चन्द्रातप तिन ताहार उपरे॥५८॥
ताँहे दिव्य-शय्या शोभे अति सूक्ष्म-वासे।
पट्ट-नेत-बालिश शोभये चारि पाशे॥५९॥
बड़ झारि, छोट झारि गुटि पाँच सात।
दिव्य-पितलेर वाटा, पाका पान ता'त॥६०॥
दिव्य आलवाटि दुइ शोभे दुइ पाशे।
पान खाञा अधर देखि' हासे॥६१॥
दिव्य-मयूरेर पाखा लइ' दुइ जने।
बातास करिते आछे देहे सर्वक्षणे॥६२॥
चन्दनेर ऊर्ध्वपुण्ड्र-तिलक कपाले।
गन्धेर सहित तथि फागुबिन्दु मिले॥६३॥
कि कहिव से वा केशभारेर संस्कार।
दिव्य-गन्ध आमलकी बहि नाहि आर॥६४॥
भक्तिर प्रभावे देह—मदन-समान।
ये ना चिने, तार हय राजपुत्र-ज्ञान॥६५॥
सम्मुखे विचित्र एक दोला साहवान्।
विषयीर प्राय येन व्यभार-संस्थान॥६६॥

(५७-६६) प. अनु०—पुण्डरीक महाशय ऐसे विराजमान थे, जैसे कोई राजकुमार पधारे हो। हिंगुल और पीतल से निर्मित सुन्दर पलंग शोभायमान था, उसके ऊपर तीन सुन्दर चँदोवे तने हुये थो। पलंग के ऊपर अति महीन वस्त्रों की सुन्दर सेज सजी हुई थी, चारों ओर रेशमी वस्त्र के तकिये शोभा दे रहे थे। पाँच-सात छोटे-बड़े जल-पात्र रखे हुये थे, पीतल का एक सुन्दर पानदान रखा हुआ था।

पलंग के दोनों ओर दो सुन्दर पीकदानियाँ शोभ दे रही थीं। वे पान चबा रहे थे और होठों को देख-देखकर हँस रहे थे। दो सेवक सुन्दर मोर पंखों के बने पंखों से निरन्तर उनकी हवा कर रहे थे। ललाट पर चन्दन का ऊर्ध्वपुंड्र (तिलक) था, जिस पर सुगन्धित-युक्त लाल अबीर की बिन्दी शोभा का तो कहना ही क्या? उनमें दिव्य गन्ध-युक्त आमले के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। भक्ति के प्रभाव से उनकी देह मदन (कामदेव) के समान दिखाई दे रही थी। जो व्यक्ति उन्हें पहचानते नहीं थे, वे उन्हें राजकुमार ही समझ रहे थे। सामने एक विचित्र डोला (पालकी) रखा हुआ था। उनके व्यवहार में आने वाला सब साज-सामान विषयी लोगों का-सा था।

(५८) गौः भाः—दिव्य-खट्टा—सुन्दर ऊँचा पलंग। हिंगुल—पारद-बहुल मिश्र धातु विशेष, रंजन द्रव्य विशेष। पितल—पीतल से बना हुआ। चन्द्रातन्प—चँदोवा।

(५९) गौः भाः—पट्टनेत—रेशमी वस्त्र। 'नेत्र'-चलती भाषा में नेता, या खण्डवस्त्र को कहते हैं। बालिश—तकिया।

(६०) गौः भाः—झारि—झारि, जलपात्र, गडुआ-टोंटीदार लोटा। पितलेर बाटा—पान रखने का पात्र, पानदानी। आलवाटि-पीकदानी, पतोद्ग्राह।

(६३) गौः भाः—फागुबिन्दु—लाल अबीर की बिन्दी।

(६४) गौः भाः—दिव्यगन्धा आमलकी—तेल

में मिलाकर मस्तक पर लगाये जाने वाला एक सुगन्धित मसाला।

(६६) गौः भाः—दोला (डोला) साहवान्—पाठ-

भेद में दोला साहमान् या सवाहन—दोला साओयान्—साज-सामानयुक्त डोला। 'साओयान'-शब्द से बिस्तरादि शय्या का सामान समझा जाता है।

पुण्डरीक के बाह्य विषयी-रूप को देखकर आजन्म-विरक्त गदाधर को स्नेह—

देखिया विषयी-रूप देव गदाधर।
सन्देह विशेष किछु जन्मिल अन्तर॥६७॥
आजन्म-विरक्त गदाधर महाशय।
विद्यानिधि-प्रति किछु जन्मिल संशय॥६८॥
भाल त' वैष्णव, सब विषयीर वेश।
दिव्यभोग, दिव्यवासए दिव्यगन्ध केश॥६९॥
शुनिया त' भाल भक्ति आछिल इहाने।
आछिल ये भक्ति, सेह गेल दरशने॥७०॥

(६७-७०) प० अनु०—उनके इस विषयी रुप को देखकर गदाधर देव के मन में कुछ विशेष सन्देह उत्पन्न हो गया। गदाधर महाशय जन्म से ही विरक्त थे; अतएव विद्यानिधि के प्रति उनके मन में इस विषय में कुछ संशय उत्पन्न हुआ, कि ये अच्छे वैष्णव हैं क्योंकि इनकी सब वेश-भूषा तो विषयी जनों की-सी है—दिव्यभोगए दिव्यवस्त्र एवं दिव्य सुगन्धित केश! इनका नाम सुनकर तो इनके प्रति बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई थीए परन्तु इनके प्रति जो भक्ति थीए वह सब इनके दर्शन करके चली गई।

(७०) गौः भाः—पण्डित गदाधर गोस्वामी बचपन से ही ब्रह्मचर्य का पालन और विलास की वस्तुओं से सब प्रकार से पृथक् रहने को ही 'धर्म' का रूप मानते थे। इधर पुण्डरीक विद्यानिधि के विलास के सब सामान को देखकर उनके मन में विचार हुआ किए पुण्डरीक अति विलासी होने से विष्णुभक्ति-रहित एवं अपनी इन्द्रियों की सेवा में लगे रहने वाले व्यक्ति हैं। मुकुन्द से पुण्डरीक विद्यानिधि की उत्तम भक्ति के बारे में सुनकर उन्होनें मन में सोचा था कि बाह्य विषयों से विरागयुक्त कोई व्यक्ति ही पुण्डरीक होगा, जिसके हम दर्शन करेंगे; किन्तु वहाँ उसके विपरीत देखकर उनकी पूर्व संचित श्रद्धा की हानि हो गई।

गदाधर-चित्त के ज्ञाता मुकुन्द द्वारा विद्यानिधि की भक्ति-महिमा का प्रकाशरम्भ—

बुझि' गदाधर-चित्त श्रीमुकुन्दानन्द।
विद्यानिधि प्रकाशिते करिला आरम्भ॥७१॥

(७१) प० अनु०—गदाधर के मनोभाव को समझकर श्रीमुकुन्दान ने श्रीविद्यानिधि के स्वरूप को प्रकट करना आरम्भ किया।

(७१) गौः भा०—मुकुन्द ने गदाधर के चित्त की चंचलता को देखकर विद्यानिधि के स्वरूप को उनके समक्ष सुष्ठुभाव से प्रकाशित करना आरम्भ किया।

कृष्ण-कृपा से गदाधर—सर्वज्ञाता—

कृष्णेर प्रसादे गदाधर-अगोचर।
किछु नाहि अवेद्य, कृष्ण से मायाधर॥७२॥

(७२) प० अनु०—कृष्ण की कृपा से गदाधर के लिए कुछ भी अगोचर नहीं थाए वे सब कुछ जानते थे। तथापि मायापुरी कृष्ण की यह एक लीला है।

(७२) गौः भाः—कृष्ण—मायाधीश है; वे माया के प्रकाश में साधारण जन के बोध

को नष्ट करने में समर्थ हैं। वे कृष्ण गदाधर के प्रति सदा सुप्रसन्न थे। इसजिए गदाधर भगवत्कृपा से सब कुछ जानते थे।

मुकुन्द द्वारा भागवत के श्लोक का पाठ—

मुकुन्द सुस्वर बड़ कृष्णेर गायन।
पड़िलेन श्लोक—भक्तिमहिमा-वर्णन ॥७३॥
"राक्षसी पूतना शिशु खाइते निर्दया।
ईश्वरे बधिते गेला कालकूट लइया ॥७४॥
ताहारेओ मातृपद दिलेन ईश्वरे।
ना भजे अबोध जीव हेन दयालेरे॥" ७५॥

(७३-७५)—प० अनु०—मुकुन्द का कंठ सुरीला था। वे श्रीकृष्ण के गायाक थे। उन्होंने भक्तिमहिमा-सूचक एक श्लोक पढा। 'बच्चों को खाने वाली एक बड़ी निर्दयी राक्षसी पूतना कालकूट विष स्तनों में लगाकर श्रीकृष्ण को मारने को गई। परन्तु उसको भी भगवान् ने माता की पदवी दे दी। अहो! अबोध जीव ऐसे दयालु प्रभु को भी नहीं भजते हैं।'

(७५) गौः भाः—जो किसी व्यक्ति के अमंगल की कामना करता हैए तो वह उपद्रव-पीड़ित व्यक्ति उसके बारे में जानने पर उसके प्रति प्रतिहिंसा करने की चेष्टा करता है। कृष्ण ने मातृस्वरूप में उपस्थित, किन्तु अपने को मारने की चेष्टा करने वाली पूतना को भी मुक्ति प्रदान की थी। पूतना की तरह अपराध करने वालों को भी श्रीकृष्ण उनके किये हुये कर्मों का सुफल प्रदान करते हैंए यह देखकर भी जो लोग दयालु कृष्ण के अनुग्रह की प्रार्थना नहीं करते हैं, उन लोगों के लिए ग्रन्थकार अनुताप करते हैं।

तथाहि श्रीमदभागवत् में ३/२/२३—

अहोबकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालु शरणं व्रजेम ॥७६॥

(७६) अन्वय—अहो (आश्चर्य) असाध्वी (दुष्टा) बकी (पूतना) जिघांसया (हन्तुमिच्छया) स्तनकालकूटं (स्तने म्रक्षितं विषं) यं (श्रीकृष्णं) अपाययत्, अपि (तथापि सा) धात्र्युचितां ("अम्बिका च किलिम्बा च धात्रिके) गतिं लेभे (लब्ध्वती), ततः (तस्मात् श्रीकृष्णात्) अन्यं (अपरं) कं दयालुं शरणं व्रजेम (गच्छेम कं वा भजेम इत्यर्थः)।

(७६) अनुवाद—अहो कैसा आश्चर्य है! बकासुर की बहिन दुष्टा पूतना ने प्राण विनाश की इच्छा से प्रेरित होकर जिन कृष्ण को कालकूट मिश्रित स्तन पान कराया था, उसे भी श्रीकृष्ण ने धात्रीप्राप्य (गोलोक में श्रीकृष्ण की स्तन्यदात्री अम्बिका-किलिम्बा को प्राप्त) गति प्रदान की थी, उन परम दयालु कृष्ण के अतिरिक्त और किसके शरणापन्न हों?

श्रीमद्भागवत् १०/६/३५—

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम् ॥७७॥

(७७) अन्वय—रुधिराशना (रक्तपायिनी) लोक-बालघ्नी (जनानां शिशुनाशिनी) राक्षसीपूतना जिंधासया अपि (हननेच्छया अपि) हरये (कृष्णाय) स्तनं दत्त्वा सदगतिं आप (गोलोक-गतिं प्राप)।

(७७) अनुवाद—रक्तपायिनी एवं लोक-शिशु घातिनी राक्षसी पूतना ने हनन करने की इच्छा से श्रीकृष्ण को स्तन पान कराते हुये भी गोलोक की गति प्राप्त की थी।

श्रीमद्भागवत-श्लोक के श्रवण से पुण्डरीक

को प्रेमाविकार और मूर्च्छा—

शुनिलेन मात्र भक्तियोगेर वर्णन।
विद्यानिधि लागिलेन करिते क्रन्दन॥७८॥
नयने अपूर्व बहे श्रीआनन्दधार।
येन गंगादेवीर हइल अवतार॥७९॥
अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार।
एककाले हइल सबार अवतार॥८०॥
'बोल, बोल' बलि' महा लागिला गर्जिते।
स्थिर हइते ना पारिला, पड़िला भूमिते॥८१॥
लाथि आछाड़ेर घाये यतेक सम्भार।
भांगिल सकलए रक्षा नाहि कारो आर॥८२॥
कोथा गेल दिव्य वाटाए दिव्य गुया पान।
कोथा गेल झारि, याते करे जलपान॥८३॥
कोथाय पड़िल गिया शय्या पदाघाते।
प्रेमावेशे दिव्यवस्त्र चिरे दुइ हाते॥८४॥
कोथा गेल से वा दिव्य–केशेर संस्कार।
धूलाय लोटा'ये करे क्रन्दन अपार॥८५॥
''कृष्णरे ठाकुर मोर, कृष्ण मोर प्राण।
मोर से करिले काष्ठ–पाषाण–समान॥''८६॥
अनुपात करिया कान्दये उच्चैःस्वरे।
''मुइ से वंचित हैलूँ हेन अवतारे॥''८७॥
महा–गड़ागड़ि दिया ये पाड़े आछाड़।
सबे मने भावे,—''किवा चूर्ण हैल हाड़॥''८८॥
हेन से हइल कम्प भावेर विकारे।
दश जने धरिलेओ धरिते ना पारे॥८९॥
वस्त्र, शय्या, झारि, वाटी—सकल सम्भार।
पदाघाते सब गेल किछु नाहि आर॥९०॥
सेवक–सकल ये करिल सम्वरण।
सकल रहिल सेइ व्यवहार धन॥९१॥
एइमत कतक्षण प्रेम प्रकाशिया।
आनन्दे मूर्च्छित हइ' थाकिया पड़िया॥९२॥
तिल–मात्र धातु नाहि सकल–शरीरे।
डुबिलेन विद्यानिधि आनन्द–सागरे॥९३॥

(७८–९३) प० अनु०—भक्तियोग का वर्णन सुनने मात्र से ही विद्यानिधि क्रन्दन करने लगे। नेत्रों से आनन्द की अपूर्व धाराएँ बहने लगीं—मानों गंगादेवी का अवतार हो गया हो। अश्रु, कम्प, स्वेद, मूर्च्छा, पुलक, हुँकार आदि सब सात्त्विक विकार एक ही समय में प्रकट हो गये। 'बोलो, बोलो' कहकर वे महान गर्जना करने लगे। वे स्थिर नहीं रह पाये और भूमि पर गिर पड़े। उनके पद प्रहार से सारा साज–सामान नष्ट हो गया, कुछ भी नहीं बच सका। कहाँ गया वह सुन्दर पान का बाटा (पात्र)? कहाँ गये वे सुन्दर पान, सुपारी और कहाँ गया वह जलपात्र जिससे जल पीते थे? पदाघात से शय्या कहीं की कहीं जा पड़ी, प्रेमावेश में दोनों हाथों से अपने सुन्दर वस्त्रों को वे चीरने लगे। उन सुन्दर केशों का संवारना कहाँ चला गया? अब तो वे धूल में लोट रहे थे और बहुत क्रन्दन कर रहे थे। "हे मेरे ठाकुर कृष्ण, हे मेरे प्राणकृष्ण! मुझे प्राणकृष्ण! मुझे तुमने काष्ठ–पाषाण के समान बना दिया है।" इस प्रकार अनुताप करते हुये ऊँचे स्वर से रोने लगे और कहने लगे,—"ऐसे अवतार में भी मैं ही एक वंचित रह गया।" भूमि पर लोट–पोट होते हुये जब वे पछाड़ खाकर गिरे तो सब सोचने लगे "कि कहीं इनकी हड्डी–पसली तो चूर–चूर नहीं हो गई।" भाव–विकारों से उनका शरीर ऐसा काँपने लगा, कि दस व्यक्तियों द्व ारा पकड़ने पर भी उन्हें पकड़कर नहीं रखा जा सका। पदाघात से वस्त्र, शय्या, जलपात्र, बाटी—सब कुछ नष्ट हो गयाए कुछ भी नहीं बच सका। जिन व्यवहार की वस्तुओं को सेवकों ने संभाल लिया, बस वे ही बची रह सकीं । इस प्रकार कुछ समय तक प्रेम–प्रकाश

करके फिर वे आनन्द में मूर्च्छित होकर गिर कर पड़े रहे। उनके समस्त शरीर में तिल भर भी धातु नहीं रहीए विद्यानिधि सम्पूर्ण रूप से आनन्द-सागर में डूब गये थे।

(७८-८०) गौः भाः—गायक-मुकुन्द द्वारा भक्ति-योग-महिमा का कीर्तन सुनने मात्र से विद्यानिधि आनन्द परिप्लुत (विभोर) हो गये एवं उनकी देह में अकृत्रिम अष्ट सात्त्विक-विकारों का समूह दिखाई दिया।

पुण्डरीक के प्रेमदर्शन से गदाधर का विस्मय और उनकी चिन्ता—

देखि' गदाधर महा हइला विस्मित।
तखने से मने बड़ हइला चिन्तित॥९४॥
''हैन महाशये आमि अवज्ञा करिलुँ।
कोन् वा अशुभक्षणे देखिते आइलुँ॥''९५॥

(९४-९५) प० अनु०—यह देखकर गदाधर को महान् विस्मय हुआ और वे मन में बड़े चिन्तित हुये, "मैंने ऐसे महाशय की अवज्ञा कर डाली, न जाने मैं किस अशुभ घड़ी में इनके दर्शन करने को चला था।"

(९४-९५) गौः भाः—गदाधर पण्डित ने विद्यानिद्यि महाशय के विलास के उपकरणों और उनकी भोगों में निपूणता को देखकर उनमें भगवद् भक्ति का अभाव है, ऐसा मन में विचार किया था; किन्तु मुकुन्द के मुख से पूतना के प्रति कृष्ण के अनुग्रह की कथा सुनकर विद्यानिधि के शरीर में जिस विलास के उपकरणां के प्रति जैसी उनकी उदासीनता हुई, उसे देखकर गदाधर को भारी विस्मय हुआ।

साधारण मूढ़ व्यक्ति रूपए रस गन्ध, शब्द, स्पर्श आदि विषयों में किस प्रकार निस्पृह हैं और उन सब वस्तुओं को सान्निध्य पाकर भी उनमें आसक्त न होकर वे अन्तःस्थित प्रवृति के बल से केवल कृष्णसेवा में उत्कण ठा रखते हैं यह देखकर गदाधर अति विस्मित हुये एवं ऐसे महाभावत का साधारण विलासी पुरुष के सामान मानने के कारण उनसे वैष्ण ाव-अपराध हुआ है, यह सोचकर वे चिन्ति हो गये।

मुकुन्द के निकट गदाधर द्वारा आत्मभाव का ज्ञापन—

मुकुन्देरे परम सन्तोषे करि' कोले'।
सिंचिलेन अंग ताँर प्रेमानन्द-जले॥९६॥
''मुकुन्द, आमार तुमि कैले बन्धुकार्य।
देखाइले भक्त विद्यानिधि भट्टाचार्य॥९७॥
एमत वैष्णव किवा आछे त्रिभुवने।
त्रिलोक पवित्र हय भक्ति-दरशने॥९८॥
आजि आमि एड़ाइनु परम संकटे।
सेहो ये कारण तुमि आछिला निकटे॥९९॥
विषयीर परिच्छद देखिया उहान।
'विषयी-वैष्णव' मोर चित्ते हैला ज्ञान॥१००॥
बुझिया आमार चित्त तुमि महाशय।
प्रकाशिला पुण्डरीक-भक्तिर उदय॥१०१॥
यतखानि आमि करियाछि अपराध।
ततखानि कराइवा चित्तेर प्रसाद॥१०२॥
ए पथे प्रविष्ट यत, सब भक्तगणे।
उपदेष्टा अवश्य करेन एकजने॥१०३॥

(९६-१०३) प० अनु०—फिर परम सन्तुष्ट होकर गदाधर ने मुकुन्द को अपनी गोद में ले लिया और उनके अंगों को अपने प्रेमाश्रुजल से सींचने लगे। वे बोले—"मुकुन्द! तुमने मेरे साथ यह बन्धु का कार्य किया है, जो मुझे भक्त विद्यानिधि भट्टाचार्य के दर्शन कराये हैं। ऐसा वैष्णव क्या त्रिभुवन में कोई और है? इनकी भक्ति से तीनों लोक पवित्र हो रहे हैं। आज मैं एक घोर संकट से बच गया,

वह भी केवल इस कारण से कि तुम समीप थे। इनकी विषयी की पोशाक देखकर मेरे चित्त ने इनको 'विषयी-वैष्णव' समझ लिया था। किन्तु तुम मेरी भावना को समझ गये और पुण्डरीक की भक्ति को प्रकाशित करके दिखा दिया। जितना मैंने पुण्डरीक के चरणों में अपराध किया है, उतनी की कृपा मुझे इनसे दिलवा देना। इस भक्तिमार्ग में प्रवेश करने वाले सब भक्तजन किसी एक व्यक्ति को उपदेष्टा (गुरु) अवश्य बनाते हैं।

(९७) गौः भाः—पुण्डरीक विद्यानिधि वास्तव में 'भक्ति-विद्यानिधि' हैं। साधारण लोग उनको विद्यानिधि ही कहते हैं। इस प्रकार भक्ति विद्यानिधि के स्वरूप की उपलब्धि होने पर गदाधर ने जड़ विचार-परायण मूर्खजनों की दृष्टि से, भक्त की दृष्टि का पार्थक्य प्रदर्शित किया। भगवद्-भक्त के उपदेशों के प्रति जिसकी आस्था नहीं है, वे अनेक बार अभक्तजनोति आदर्शों को भक्तजनों की क्रियाओं के समान समझ लेते हैं।

श्रीनवद्वीप-धाम प्रचारिणी-सभा के सदस्यगण और श्रीविश्ववैष्णव-राजसभा के सेवकों को भक्तिसूचक पदवी द्वारा भक्त का सम्मान निर्देशित करते हैं, उसको न समझकर अभक्तजन भ्रान्ति में पड़ जाते है एवं भक्त और अभक्त के पार्थक्य का निर्णय करने में ही श्रीगौरलीला में पुण्डरीक और गदाधर ने इस लीला का प्रदर्शन किया है।

(९९) गौः भाः—क्योंकि मुकुन्द ने गदाधर पण्डित विद्यानिधि की भक्ति के दर्शन करने का सुयोग प्रदान किया था एवं विद्यानिधि के द्वारा जड़-विलास में मत्त व्यक्ति के-से आदर्श का दर्शन कराने का अभिनय किये जाने से गदाधर प्रभु ने भ्रान्ति-लीला के प्रकाश में पुण्डरीक जैसे परम वैष्णव को साधारण बुद्धिवाले मनुष्य की तरह समझ लिया था, जिससे वैष्णव-अपराध रूप विपद् सम्भव थीए वह विपद् मुकुन्द के गान से दूर हुई थी, अतः उसके लिए कृतज्ञ होने से ही गदाधर की यह उक्ति है।

जड़ विषयों में मत्त व्यक्ति, वैष्णवों की क्रियामुद्राओं को न समझ पाने के कारणए उनके प्रति-प्रतिपल ही विचार-दोष उपस्थित होता रहता है एवं वह वैष्णवों के निकट अपराध संचित करता रहता है; किन्तु सुकृति रहने से उसे वैष्णवीपराधी होकर विपथगामी नहीं होना पड़ेगा। फल्गुवैराग्य रहने से युक्तवैराग्य का-सा उत्तम परिणाम नहीं होता है, परन्तु दर्शक में प्रकृत दर्शन के अभाव के कारण केवल अपराध संचित होता रहता है। चैतन्याश्रित जन युक्तवैराग्य और फल्गुवैराग्य के मध्य जो भेद है, उसको समझ सकते हैं, इसलिए जगत् के साधारण मूर्ख और लोभी जनो की अपेक्षा वे सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं। वे ही जगत् में गुरु का कार्य करने में समर्थ हैं। चैतन्यदेव के आनुगत्य के बिना बहुत से मनुष्य प्रपंच दर्शन में अपनी-अपनी मूर्खता का ही आदर करते रहते हैं।

(१००-१०१) गौः भाः—वैष्णवजन तो हमेशा ही विषय शून्य होते हैं। जो भाग्यहीन लोग सत्यदर्शन से विमुख होते हैं, वे ही बाह्य वेश-भूषा को देखकर वैष्णव-गुरु में श्रद्धाहीन होते हैं। विषयी लोग रूप, रस आदि विषयों को ग्रहण करने में लगे रहते हैं; किन्तु जड़ विषय वर्जित भगवद्भक्त दूसरे लोगों की दृष्टि में उस प्रकार के विषयों के ग्राहक जैसे दिखाई देने पर भी वस्तुतः वे विषयों से बहुत दूर रहते हैं। भगवद्भक्तों के एकमात्र विषय हैं श्रीकृष्ण। कृष्ण-सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई इच्छा उनकी नहीं होती

है। विषयी लोग इस बात को न समझते हुये भक्तों की गणना भी अपने जैसे लोगों में ही कर लेते हैं। प्रथम दृष्टि में किसी वैष्णव के विषयी वेश को देखकर उस वैष्णव को विषयी समझ लेना अपराध का कारण है। छन्नावतारगौरसुन्दर और उनके पार्षदजन अयोग्य दर्शकों को जिस रूप में दिखाई देते है, उससे प्राकृत-साहजिक-धर्म की उत्पत्ति हुई है। प्राकृत सहजियागण अपराधी और भगवद्भक्ति से वर्जित हैं।

गदाधर पुण्डरीक विद्यानिधि के बारे में मुकुन्द-द्वारा कथित 'वैष्णव'-बुद्धि नहीं कर पाये बल्कि उनके बाह्य अनुष्ठान और विलास द्रव्यों द्वारा परिवेष्टित उनकी अवस्था को देखकर उनको 'विषयी' समझने का जो बोध हुआ हैए वह अज्ञान के कारण हुआ है। इस बात को जानकर ही पुण्डरीक के निकट पूतना के प्रसंग का कीर्तन करना मुकुन्द के लिए प्रयोजनीय था।

(१०२) गौः भाः—गदाधर ने कहा,—"मैनें पुण्डरीक विद्यानिधि को न समझते हुये उन जैसे भक्त के चरणों में जो अपराध किया है, तुम (मुकुन्द) उस अपराध समूह को विनट करने के लिए मेरे प्रति प्रसन्न हो जाओ। उससे ही मेरे चित्त की मलिनता दूर होगी और मैं तुम्हारे अनुग्रह की प्राप्ति के योग्य हो पाऊँगा।"

गदाधर द्वारा पुण्डरीक से दीक्षा-ग्रहण करने के लिए मुकुन्द के समीप प्रस्ताव—

ए पथेते आमि उपदेष्टा नाहि करि।
इहानेइ स्थाने मंत्र-उपदेश धरि॥१०४॥
इहाने अवज्ञा यत करियाछि मने।
शिष्य हैले सब दोष क्षमिवे आपने॥''१०५॥
एत भावि' गदाधर मुकुन्देर स्थाने।
दीक्षा करिवार कथा कहिलेन ताने॥१०६॥

(१०४-१०६) प० अनु०—मैंने अभी तक किसी को उपदेष्टा (गुरु) नहीं बनाया है—अतएव विद्यानिधि से ही मैं मन्त्र-उपदेश ग्रहण करुँगा। मैंने अपने मन से इनकी अवज्ञा की है, अतः इनका शिष्य बन जाने से ये मेरे दोषों को आप ही क्षमा कर देंगे।"

ऐसा विचार करके गदाधर ने मुकुन्द के निकट विद्यानिधि से दीक्षा दिलवा देने के लिए अनुरोध किया।

(१०४-१०५) गौः भाः—गदाधर ने कहा,—"सभी कार्यों में उपदेश आवश्यक होता है एवं उपदेशक का आश्रय ग्रहण नहीं करने से उस कार्य में प्रविष्ट होना संभव नहीं है। मैंने उपदेशक के रूप में अभी तक किसी को भी स्थिर नहीं किया है, इसी कारण मेरी ऐसी दुर्गति हुई है। मैं अब पुण्डरीक का ही आश्रय ग्रहण करूँगा ऐसा करने से मेरे द्वारा उनके चरणों में जो अपराध हुआ है, वह विनष्ट हो जायेगा।

गदाधर के प्रस्ताव से मुकुन्द का सन्तोष—

मुकुन्द बड़ सन्तोष हइला।
भाल भाल' बलि' बड़ श्लाघिते लागिला॥१०७॥
प्रहर-दुइते विद्यानिधि महाधीर।
बाह्य पाइ' बसिलेन हइया सुस्थिर॥१०८॥

(१०७-१०८) प० अनु०—यह सुनकर मुकुन्द को बड़ा सन्तोष हुआ। वे 'उत्तम-उत्तम' कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। दो प्रकार के बाद महाधीर विद्यानिधि को बाह्यज्ञान हुआ और वे सुस्थिर होकर बैठ गये।

(१०८) गौः भाः—दो प्रहर अर्थात् पंद्रह दण्ड या छह घण्टे तक पुण्डरीक ने

बाह्यज्ञान-रहित होकर हरिसेवा की थी। पुनः बाह्यदशा प्राप्त होने पर वे स्थिर हुये।

गदाधर द्वारा प्रेमाश्रु-मोचन—

गदाधर पण्डितेर नयनेर जल।
अन्त नाहिए धारा अंग तितिल सकल॥१०९॥

(१०९) प० अनु०—गदाधर पण्डित के नेत्रों से इस प्रकार जल बह रहा था कि जिसका कोई अन्त नहीं। उससे उनका सारा शरीर भीग गया।

प्रीति से विद्यानिधि द्वारा गदाधर को गोद में धारण—

देखिया सन्तोष विद्यानिधि महाशय।
कोले करि' थुइलेन आपन हृदय॥११०॥

(११०) प० अनु०—यह देखकर विद्यानिधि महाशय को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने गदाधर को गोद में लेकर अपने हृदय से लगा लिया।

मुकुन्द द्वारा गदाधर के प्रस्ताव से विद्यानिधि को अवगत कराना—

परम सम्भ्रमे रहिलेन गदाधर।
मुकुन्द कहेन ताँर मनेर उत्तर॥१११॥
''व्यवहार-ठाकुराल देखिया तोमार।
पूर्वे किछु चित्त-दोष जन्मिल उहाँर॥११२॥
एबे तार प्रायशित चिन्तिला आपने।
मन्त्रदीक्षा करिवेन तोमारइ स्थाने॥११३॥
विष्णुभक्त, विरक्त, शैशवे बृद्धरीत।
माधव मिश्रेर कुलनन्दन-उचित॥११४॥
शिशु हइते ईश्वरेर संगे अनुचर।
गुरु-शिष्य योग्य पुण्डरीक-गदाधर॥११५॥
आपने बुझिया चित्ते एक शुभ दिने।
निज इष्टमन्त्र-दीक्षा कराह इहाने॥''११६॥

(१११-११६) प० अनु०—गदाधर पण्डित बड़े सम्भ्रम के साथ प्रतीक्षारत थे, तब मुकुन्द उनके मन की बात कहने लगे,—"आपका बाह्य ऐश्वर्य देखकर इनके मन में कुछ दोष उत्पन्न हो गया था, अब स्वयं चिन्तन करते हुये इन्होंने यह प्रायश्चित स्थिर किया है कि ये आप से मन्त्रदीक्षा लेंगे। ये विष्णुभक्त हैं, विरक्त हैं और बचपन से ही बड़े-बूढ़ो की तरह आचरण करते आये हैं। श्रीमाधव मिश्र के योग्य पुत्र के लिए ऐसा उचित ही है। ये बचपन से ही प्रभु के अनुचर बनकर उनके साथ रहते आये हैं। इसलिए पुण्डरीक एवं गदाधर—दोनों ही गुरु और शिष्य होने योग्य हैं। अब आप सोच-विचार कर किसी शुभ दिन इनको अपने इष्टमन्त्र की दीक्षा प्रदान करें।"

(११४) गौः भाः—शैशवे बृद्धरीत—बालक स्वभाव से क्रीड़ासक्त होता है एवं वृद्ध के स्वभाव में अभिज्ञता-जनित चिन्तन-स्त्रोत विद्यमान रहता है। किन्तु पण्डित गदाधर गोस्वामी आयु में कम होने पर भी बचपन से ही वृद्धों और प्रौढ़ो की तरह यथार्थ चिन्तनशील थे।

गदाधर को दीक्षा देने के लिए विद्यानिधि की सम्मति—

शुनिया हासेन पुण्डरीक विद्यानिधि।
आमारे त' महारत्न मिलाइला विधि॥११७॥
कराइमु इहाते सन्देह किछु नाइ।
बहु जन्म-भाग्ये से एमत शिष्य पाइ॥११८॥
एइ ये आइसे शुक्ल-पक्षेर द्वादशी।
सर्व-शुभलग्न इथि मिलिवेक आसि'॥११९॥
इहाते संकल्प-सिद्धि हइवे तोमार।
शुनि' गदाधर हर्षे हैला नमस्कार॥१२०॥

(११७-१२०) प० अनु०—यह सुनकर पुण्डरीक विद्यानिधि हँसकर और बोले—विधाता ने एक महारत्न को मुझसे मिला दिया है। मैं अवश्य दीक्षा दूँगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। ऐसा शिष्य तो बहु जन्मों के भाग्य से ही कहीं मिलता है। यह जो शुक्ल-पक्ष की द्वादशी आ रही है, इसमें सब शुभलग्न आकर मिलेंगे। उसी दिन तुम्हारा संकल्प सिद्ध होगा। यह सुनकर गदाधर ने बड़े हर्ष के साथ उनको नमस्कार किया।

(११९) गौः भाः—प्रत्येक चन्द्रमास में शुक्ल पक्षीय द्वादशी होती है। प्रत्येक तिथि में न्यूनाधिक द्वादशलग्न अनुक्रम से संघटित होते हैं। जो लग्न सर्व सुखफल को उत्पन्न करता है, उस क्षण को निर्देशित करने के लिए 'सर्वशुभलग्न' शब्द का प्रयोग हुआ है।

विद्यानिधि के आगमन-संवाद से महाप्रभु को हर्ष—

सेदिन मुकुन्द-संगे हइया विदाय।
आइलेन गदाधर यथा गौर-राय॥१२१॥
विद्यानिधि आगमन शुनि' विश्वम्भर।
अनन्त हरिष प्रभु हइला अन्तर॥१२२॥

(१२१-१२२) प० अनु०—उस दिन मुकुन्द के साथ वहाँ से विदा होकर गदाधर, जहाँ श्रीगौरचन्द्र थे, वहाँ आये। उनसे विद्यानिधि के आगमन की बात सुनकर विश्वम्भर प्रभु के हृदय में अपार हर्ष हुआ।

विद्यानिधि का महाप्रभु के समीप गुप्त-रूप से आगमन एवं प्रभुदर्शन से मूर्च्छा—

विद्यानिधि महाशय अलक्षित-रूपे।
रात्रि करि' आइलेन प्रभुर समीपे॥१२३॥
सर्व-संग छाड़ि' एकेश्वर-मात्र हैया।
प्रभु देखि' मात्र पड़िलेन मूर्च्छा हैया॥१२४॥
दण्डवत् प्रभुरे ना पारिला करिते।
आनन्दे मूर्च्छित हञा पड़िला भूमिते॥१२५॥

(१२३-१२५) प० अनु०—एकदिन विद्यानिधि महाशय रात्रि में गुप्तरूप से प्रभु के पास आये। सबका संग छोड़कर वे अकेले ही गये और प्रभु को देखने मात्र से मूर्च्छित होकर गिर पड़े। प्रभु को दण्डवत् भी नहीं कर पाये कि आनन्द में मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

प्रेमावेश में पुण्डरीक की हुँकार और क्रन्दन—

क्षणेके चैतन्य पाइ' करिला हुँकार।
कान्दे पुनः आपनाके करिया धिक्कार॥१२६॥
''कृष्णरेए पराण मोर, कृष्ण, मोर बाप।
मुञि अपराधीरे कतेक देह' ताप॥१२७॥
सर्व जगतेर बाप, उद्धार करिला।
सबे मात्र मोरे तुमि एकेला वंचिला॥''१२८॥

(१२६-१२८) प० अनु०—कुछ देर में चेतना पाकर वे हुँकार करने लगे और फिर अपने को धिक्कारते हुये रोने लगे। "हे मेरे प्राण कृष्ण। हे मेरे बाप कृष्ण! मुझ अपराधी को तुम अब और कितना ताप दोगे? हे सर्वजगत् के पिता! तुमने सब का उद्धार किया, केवल एक मुझे ही छोड़ दिया।"

विद्यानिधि के क्रन्दन से वैष्णवों का अश्रुपात—

'विद्यानिधि'-हेन कोन वैष्णव ना चिने।
सबेइ कान्देन-मात्र ताँहारे क्रन्दने॥१२९॥

(१२९) प० अनु०—ये 'विद्यानिधि' हैं, उस रूप में कोई भी वैष्णव उन्हें नहीं पहचानता थाए परन्तु उनके क्रन्दन मात्र से वे सब रोने लगे।

महाप्रभु द्वारा विद्यानिधि को गोद में धारण करना—

निज प्रियतम जानि' श्रीभक्तवत्सल।
संभ्रमे उठिया कोले कैला विश्वम्भर॥१३०॥

(१३०) प० अनु०—श्रीभक्तवत्सल विश्वम्भर अपने प्रियतम को आया जानकरए संभ्रम के साथ जल्दी से उठे और उनको अपनी गोद में भर लिया।

महाप्रभु का 'पुण्डरीक-बाप' कहकर संबोधन करने से भक्तों को पुण्डरीक के परिचय की प्राप्ति—

'पुण्डरीक बाप' बलि कान्देन ईश्वर।
''बाप देखिलाम आजि नयनगोचर॥''१३१॥
तखन से जानिलेन सर्व-भक्तगण।
विद्यानिधि गोसाञि हैल आगमन॥१३२॥
तखन से हैल सब वैष्णव-रोदन।
परम अद्‌भुत-ताहा ना याय वर्णन॥१३३॥
विद्यानिधि वक्षे करि' श्रीगौरसुन्दर।
प्रेम-जले सिंचिलेन ताँर कलेवर॥१३४॥

(१३१-१३४) प० अनु०—'पुण्डरीक बाप' कहकर ईश्वर रोने लगे और कहने लगे कि "आज बाप के साक्षात् दर्शन पाये है।" तब सब भक्तजन जान गये कि विद्यानिधि गोसाईं का आगमन हुआ। उस समय सब वैष्णवों में जो क्रन्दन हुआ, वह बड़ा ही अद्‌भुत था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीगौरसुन्दर ने विद्यानिधि को अपनी छाती से लगाकर अपने प्रेमाश्रुजल से उनके शरीर को अभिषिक्त कर दिया।

विद्यानिधि को 'प्रभु का प्रिय' जानकर भक्तों की उनके प्रति संभ्रम-दृष्टि—

'प्रियतम प्रभुर' जानिया भक्तगणे।
प्रीत, भय, आप्तता सबार हइल ताने॥१३४॥
वक्षः हैते विद्यानिधि ना छाड़े ईश्वरे।
लीन हैला येन प्रभु ताँहार शरीरे॥१३६॥
प्रहरेक गौरचन्द्र आछेन निश्चले।
तबे प्रभु बाह्य पाइ' डाकि 'हरि' बले॥१३७॥

(१३५-१३७) प० अनु०—विद्यानिधि को 'प्रभु का प्रियतम' जानकर उनके प्रति भक्तों के हृदय मे प्रीति, भय तथा आत्मीयता के भाव उदित हो गये। विद्यानिधि अपने वक्षःस्थल से प्रभु को पृथक् करना नहीं चाह रहे थेए ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों प्रभु उनके शरीर में लीन हो गये हैं। श्रीगौरचन्द्र एक प्रहर तक अचल पड़े रहेए फिर प्रभु को बाह्य बोध हुआ और वे 'हरि' बोलकर कहने लगे—

(१३६) गौः भाः—महाप्रभु ने जब विद्यानिधि को प्रेमालिंगन प्रदान किया, तब विद्यानिधि ने अपनी छाती से उनका इस प्रकार गाढ़ आलिंगन किया कि दोनों का पृथक् अस्तित्त्व दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा था—जैसे दोनों एक ही गये हों।

पुण्डरीक को पाकर महाप्रभु की हर्ष से विविध उक्तियाँ एवं सब वैष्णवों के साथ पुण्डरीक का मिलन कराना—

''आजि कृष्ण वांछा-सिद्धि करिला आमार।
आजि पाइलाङ सर्व-मनोरथ-पार॥''१३८॥
सकल वैष्णव-संगे करिला मिलन।
पुण्डरीक लइया सबे करेन कीर्तन॥१३९॥
''इँहार पदवी—'पुण्डरीक विद्यानिधि'।
प्रेम-भक्ति विलाइते गड़िलेन विधि'।
एइमत ताँर गुण वर्णिया वर्णिया।
उच्चैः स्वरे 'हरि' बले श्रीभुज तुलिया॥१४१॥
प्रभु बले,—''आजि शुभ प्रभात आमार।
आजि महामंगल से वासि आपनार॥१४२॥
निद्रा हैते आजि उठिलाम शुभक्षणे।
देखिलाम 'प्रेमनिधि' साक्षात् नयने॥''१४३॥

(१३८-१४३) प० अनु०—"आज श्रीकृष्ण ने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी है। आज मैं अपने सब मनोरथों को पाने में समर्थ हो गया हूँ।" फिर प्रभु ने सब वैष्णवों के साथ उनका मिलन कराया। तत्पश्चात् सब लोग पुण्डरीक विद्यानिधि' है। प्रेमभक्ति का वितरण करने के लिए विधाता ने इनका निर्माण किया है।" इस प्रकार उनके गुणों का वर्णन करते हुये गौरसुन्दर अपनी श्रीभुजाओं को ऊपर उठाकर ऊँचे स्वर से 'हरिबोल' कहते जा रहे थे। प्रभु ने आगे कहा कि "आज मेरा शुभ प्रभात है। आज मैं अपना परम मंगल मानता हूँ। आज मैं बड़े शुभ मुहूर्त्त में निद्रा से उठा हूँ जो कि मैंने 'प्रेमानिधि' के अपने नेत्रों से साक्षात् दर्शन किये है।"

पुण्डरीक को बाह्यज्ञान एवं उनके द्वारा अद्वैताचार्य, महाप्रभु एवं भक्तों को यथायोग्य सम्मान प्रदर्शन-

श्रीप्रेमनिधिर आसि' हैल बाह्यज्ञान।
तखने से प्रभु चिनि' करिला प्रणाम॥१४४॥
अद्वैतदेवेर आगे करि' नमस्कार।
यथोयोग्य प्रेम-भक्ति करिला सबार॥१४५॥
परानन्द हैलेन सर्व भक्तगणे।
हेन प्रेमनिधि पुण्डरीक दरशने॥१४६॥
क्षणेके ये हैल प्रेम-भक्ति आविर्भाव।
ताहा वर्णिवार पात्र—व्यास महाभाग॥१४७॥

(१४४-१४७) प० अनु०—इतने में 'प्रेमनिधि' को भी बाह्यज्ञान हो गया। तब उन्होंने प्रभु को पहचान कर प्रणाम किया। फिर अद्वैताचार्य के आगे नमस्कार करके अन्य सबके प्रति यथायोग्य प्रेमभाव से व्यवहार किया। पुण्डरीक प्रेमनिधि के दर्शन से सब भक्तों को बहुत ही आनन्द हुआ। उस समय वहाँ जो प्रेमभक्ति का आविर्भाव हुआउसका वर्णन करने में सक्षम पात्र एकमात्र महाभाग श्रीव्यास जी ही हैं।

(१४७) गौः भाः—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास कृष्ण की लीलाओं और वैष्णवों को चरित्र लिखने में पूर्णरूप से दक्ष हैं। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरा साहित्य-संभार और नैपुण्य भगवान् तथा भक्तों के चरित्र-वर्णन में सम्पूर्ण भाव से समर्थ नहीं है।

वेदव्यास -जिन्होंने इस प्रकार के वर्णन द्वारा जगत् को धन्य किया है, वे ही ग्रन्थकार की अपूर्णता को पूर्ण करने में समर्थ हैं।

पुण्डरीक से दीक्षा ग्रहण करने के लिए गदाधर द्वारा प्रभु के समीप अनुमति-प्रार्थना-

गदाधर आज्ञा मागिलेन प्रभु-स्थाने।
पुण्डरीक-मुखे मन्त्र-ग्रहण-कारणे॥१४८॥
''ना जानिया उहान अगम्य व्यवहार।
चित्ते अवज्ञान हइयाछिल आमार॥१४९
एतेके उहान आमि हइवाङ शिष्य।
शिष्य-अपराध गुरु क्षमिवे अवश्य॥''१५०॥

(१४८-१५०) प० अनु०—तब गदाधर ने पुण्डरीक के मुख से मन्त्र ग्रहण करने के लिए प्रभु से आया माँगी; वे बोले कि "उनके अगम्य व्यवहार को न समझ सकने के कारण मेरे चित्त में उनके प्रति अवज्ञा का भाव उत्पन्न हुआ था। इसलिए (उसके परिहार स्वरूप) मैं उनका शिष्य होना चाहता हूँ, क्योंकि शिष्य के अपराध को गुरु अवश्य क्षमा कर देंगे।"

महाप्रभु द्वारा दीक्षा ग्रहण के लिए गदाधर का अनुमोदन-

गदाधर-वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला।

''शीघ्र कर, शीघ्र कर'' बलिते लागिला॥१५१॥

(१५१) प० अनु०—गदाधर की बात से महाप्रभु को बड़ा सन्तोष हुआ और वे "शीघ्र करो!" ऐसा कहने लगे।

पुण्डरीक से गदाधर द्वार दीक्षा-ग्रहण—

तबे गदाधरदेव प्रेमनिधि-स्थाने।
मन्त्र-दीक्षा करिलेन सन्तोषे आपने॥१५२॥
विद्यानिधि की अनिर्वचनीय महिमा—
कि कहिव आर पुण्डरीकेर महिमा।
गदाधर-शिष्य याँर, भक्तेर सेइ सीमा॥१५३॥

(१५२) प० अनु०—तब गदाधरदेव ने अपने सन्तोष के लिए प्रेमनिधि से मन्त्र-दीक्षा ग्रहण कर ली।

(१५३) प० अनु०—गदाधर-जैसे श्रेष्ठ भक्त जिनके शिष्य हैं, उन पुण्डरीक की महिमा का इससे बढ़कर और क्या वर्णन करूँ।

विद्यानिधि का आख्यान वर्णन करके ग्रन्थकार द्वारा उनकी कृपा की प्रार्थना—

कहिलाङ किछु विद्यानिधिर आख्यान।
एइ मोर काम्य—येन देखा पाङ तान॥१५४॥

(१५४) प० अनु०—मैंने यहाँ विद्यानिधि का कुछ संक्षिप्त आख्यान कहा है। मेरी यही कामना है कि मुझे उनके दर्शन मिल जायें।

पुण्डरीक और गदाधर—परस्पर योग्य गुरु-शिष्य—

योग्य गुरु-शिष्य—पुण्डरीक-गदाधर।
दुइ कृष्णचैतन्येर प्रिय-कलेवर॥१५५॥

(१५५) प० अनु०—श्रीपुण्डरीक और गदाधर दोनों योग्य गुरु-शिष्य हैं और दोनों ही श्रीकृष्णचैतन्य के प्रिय कलेवर हैं।

ग्रन्थकार द्वारा पुण्डरीक-गदाधर के मिलन-उपाख्यान की फलश्रुति—

पुण्डरीक, गदाधर—दुइर मिलन।
ये पडे, ये शुने, तारे मिले प्रेमधन॥१५६॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥१५७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे पुण्डरीक-गदाधर मिलनं नाम सप्तमोऽध्यायः।

(१५६-१५७) प० अनु०—श्रीपुण्डरीक और गदाधर के इस मिलन प्रसंग को जो पढ़ेगे अथवा सुनेंगेए वे प्रेमधन पायेंगे। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे है।

इति गौड़ीय-भाष्य में सप्तम अध्याय समाप्त

O

अष्टम अध्याय

अष्टम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में, श्रीनित्यानन्द का श्रीवास-भवन में अवस्थानए मालिनी-द्वारा वात्सल्य भाव से नित्यानन्द की सेवा, महाप्रभु के द्वार श्रीवास की नित्यानन्द के प्रति प्रीति की परीक्षाए नित्यानन्द के प्रति श्रीवास की दृढ़ श्रद्धा महाप्रभु-द्वारा श्रीवास को वरदानए बाल्यभाव में नित्यानन्द की विविध लीलाएँ, शचीमाता का स्वप्न-समाचारए महाप्रभु-द्वार निताइ को निमन्त्रणए नित्यानन्द का प्रभु के घर में भोजन करना, शचीमाता के द्वारा ऐश्वर्य-दर्शन, गौरनिताइ का अद्‌भुत आवेश, शिवगायन के कंधो पर महाप्रभु का सवार होना, रात को संकीर्तन करने के लिए संकल्प लेनाए श्रीवास के मन्दिर में हर रात को संकीर्तन का विलास, हिंसा के मारे पाखण्डियों के द्वारा विविध उक्तियाँ, द्वार बन्द करके गणसहित महाप्रभु का कीर्तन, विष्णु के सिंहासन पर महाप्रभु का आरोहण और अद्‌भुत भाव में भोजन करना—आदि प्रसंग वर्णित हुये हैं।

नवद्वीप में महाप्रभु के आनन्द-सहित बहुविध विलास करते समय नित्यानन्द श्रीवास के भवन में रहने लगे। निरन्तर बाल्यभाव में अवस्थान करने के कारण नित्यानन्द अपने हाथों से भोजन नहीं किया करते थे। मालिनी उनकी पुत्र की भाँति वात्सल्य भाव से सेवा किया करती थीं। एक दिन श्रीवास की परीक्षा लेने के लिए महाप्रभु ने कहा, —जिसके कुलशील का कुछ पता नहीं, ऐसे अवधूत नित्यानन्द को अपने घर में आश्रय क्यों दिया? अपनी जाति और कुल के सम्मान की रक्षा-हेतु उन्हें घर में जगह देना उचित नहीं है। इसके उत्तर में श्रीवास ने महाप्रभु से कहा, जिन्होंने एकदिन के लिए भी महाप्रभु का भजन किया है, वे श्रीवास के प्रियपात्र हैं। विशेष रूप से नित्यान्द तो महाप्रभु के अभिन्न-विग्रह हैं। यदि कभी भी वे मदिरा भी पी जायें या यवनी से मिलने भी चले जाये या श्रीवास के जातिए प्राण, धन आदि का नाश भी कर दें, तब भी उनके प्रति श्रीवास के हृदय में जो श्रद्धा वर्तमान है, उसमें तिलमात्र की भी कमी नहीं आयेगी। वे विचलित नहीं होंगे। श्रीवास की नित्यानन्द के प्रति इस निष्ठा को देखकर के महाप्रभु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनको यह वर दिया कि, भले ही लक्ष्मीदेवी भी किसी दिन अभाव नहीं होगा एवं श्रीवास के घर में रह रहे कुत्ता-बिल्ली आदि में भी महाप्रभु के प्रति निश्चय भक्ति बनी रहेगी। इसके बाद वे नित्यानन्द की देखभाल का उत्तरदायित्व श्रीवास के हाथों में सौंपकर अपने घर चले गये।

नित्यानन्द-प्रभु नदीया के हर स्थान पर भ्रमण करने लगे; कभी गंगा में तैरने लगते तो जल-प्रवाह में शरीर में शरीर के बह जाने के कारण अपार आनन्द अनुभव करते। कभी मुरारि और गंगादास आदि के घरों में, तो कभी महाप्रभु के भवन में चले जाते। नित्यानन्द को देखकर शचीमाता उनके प्रति परम स्नेह

जताती थीं। बाल्यभाव में कभी शचीमाता के चरण-स्पर्श करने जाते, तो वे (शचीदेवी) दूर भाग जातीं। एकदिन शचीमाता ने स्वप्न में कुछ विचित्रताएँ देखीं। उन्होंने महाप्रभु के निकट स्वप्न-वृत्तान्त का वर्णन करते हुये कहा कि, महाप्रभु एवं नित्यानन्द—दोनों पाँच साल के बालकों को वेश धारण कर विष्णु के मन्दिर में घुस गये हैं। वहाँ नित्यानन्द ने कृष्ण का और महाप्रभु ने बलराम का हाथ पकड़ते हुये आपस में मारपीट करना शुरू कर दिया है। राम-कृष्ण बहुत गुस्से में आकर गौर-नित्यानन्द को अनधिकारी करार देते हुये घर से निकल जाने को कहते हैं। इस पर निताइ ने कहा, पूर्व-युग अर्थात् द्व ापर युग में कृष्ण-बलराम का लीलाधिकार था, किन्तु वर्तमान कलियुग में उन दोनों का कोई अधिकारी हैं। राम-कृष्ण ने कहा किए 'हम गौर-निताइ को बाँध करके और घर में बन्द करके चले जायेंगे।' इस तरह सभी आपस में झगड़ा करते हुये और फिर खींच-तान करते-करते खाने लगे। तभी नित्यानन्द ने शचीमाता को 'अपनी-जननी' कहकर सम्बोधित किया और भूख मिटाने के लिए अन्न माँगाए उसी समय शचीमाता की निद्रा भंग हो गई।

स्वप्न-वृत्तान्त सुनकर दूसरों को यह सब कहने के लिए महाप्रभु ने शचीमाता को मना कर दिया, और कहा, उनके घर में स्थित श्रीविग्रह— बहुत ही प्रत्यक्ष (जाग्रत) है; वे नैवेद्य-आदि भेंट करने पर उसमें से आधे भाग का भोजन कर लेते हैं। उनका यह सन्देह था कि, सम्भवतः लक्ष्मीदेवी आधी सामग्री खा लेती हैं; परन्तु आज उनका यह भ्रम दूर हो गया। इसलिए नित्यानन्द को भोजन कराना तुम्हारा कर्तव्य है। महाप्रभु नित्यानन्द के पास गये और उन्हें निमन्त्रण किया; साथ ही प्रभु के घर में किसी प्रकार की चपलता प्रकाशित करने को मना कर दिया। महाप्रभु के इस बात के उत्तर में नित्यानन्द ने कहा कि, केवल पागल ही चंचल स्वभाव के होते हैं। महाप्रभु सबको अपने-जैसे समझते हैं। इस प्रकार दोनों वार्तालाप करते-करते महाप्रभु के घर चले आये और गदाधर आदि निजगण-सहित एक साथ आसनों पर बैठ गये।

ईशान द्वारा पाद-प्रक्षालन के लिए जल प्रदान किये जाने के बाद महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु साक्षात् राम-लक्ष्मण की भाँति एक साथ भोजन करने बैठे। परिवेषण करते समय शचीमाता ने तीन भागों में भोजनीय सामग्रियाँ प्रदान कीं। यह देखकर वे दोनों हँसने लगे। तभी शचीदेवी ने गौर-निताइ के अंगों में साक्षात् कृष्ण-बलराम के चिन्हों का दर्शन किया और मूर्च्छित हो गईं। तब महाप्रभु ने उनको उठाया।

महाप्रभु नदीया में बहुविध विलास की इच्छा से भक्तों के मन्दिरों में गये और अपने को अलग-अलग व्यक्तियों के निकट अलग-अलग रूपों में प्रकटित किया। एक दिन एक शिवगायक के डमरू बजाकर शिवगीत गान करते समय महाप्रभु ने स्वयं में शिवमूर्ति को प्रकटित किया और गायक के कंधों के ऊपर चढ़ गये। बाद में बाह्य चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने अवतरण करते हुये उसको भिक्षा प्रदान की। कृतार्थ होकर शिवगायक अपने घर की ओर चल दिये।

महाप्रभु ने एकबार अपने गणों को बुलाया और हर रात संकीर्तन-विलास करने के लिए अपना अभिप्राय व्यक्त किया एवं तदनुसार कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। पाखंडीगण उसे सुनकर नाना प्रकार से निन्दा करते हुये चारों ओर बदनामी फैलाने लगे।

कीर्तन–श्रवण से महाप्रभु पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर शचीमाता चिन्तित होकर श्रीकृष्ण के निकट प्रार्थना करने लगीं। उन्होंने कहा—परम आनन्द में पछाड़ खाकर भूमि पर गिर जाने से भी यद्यपि महाप्रभु कोई पीड़ा अनुभव नहीं करते, तथापि माता के प्राण उसे सहन नहीं कर पाते। इसलिए ऐसा करना, कि मुझे इसकी जानकारी न हो। महाप्रभु जननी के हृदय के भाव को जान गये एवं उस समय के महाप्रभु के संकीर्तन–विलास के समय शचीमाता आविष्ट–चित्त रहती थीं और वे कुछ भी जान नहीं पाती थीं। श्रीहरिवासर के दिन श्रीवास के आंगन में कीर्तन आरम्भ हो जाने पर महाप्रभु की देह में बहुविध प्रेमविकार प्रकाशित होने शुरू हो गये। महाप्रभु की आज्ञा से द्वार बन्द करके संकीर्तन होते रहने से अन्दर जाने में असमर्थ पाखंडियों ने बहुविध कटुक्तियों के द्वारा गण–सहित महाप्रभु की निन्दा करनी शुरू की दी। महाप्रभु के सभी भक्तगणों ने उन पाखंडियों के वचनों पर ध्यान नहीं दिया और कीर्तन के विलास में मग्न रहे।

एकदिन कीर्तन के उपरान्त महाप्रभु ने शालग्राम–शिलाओं को गोद में लेकर विष्णु के सिंहासन पर आरोहण किया और वे अपने तत्त्व को प्रकाशित करके भक्तगणों के द्व ारा दी गई समस्त उपहार–सामग्री का भोजन करने लगे। इस प्रकार लगभग दो–सौ व्यक्तियों की भोजन करने के बाद भी वे और नैवेद्य की माँग करने लगे। तब भक्तगण ने उसे प्रदान करने में असमर्थ होने के कारण केवल ताम्बूल प्रदान किया। इसके बाद महाप्रभु ने अद्वैत प्रभु को वर माँगने के लिए कहा। इस प्रकार कुछ क्षण तक अवस्थान करने के पश्चात् वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। बाद में बाद में बाह्य चेतना आने पर वे कीर्तन करने लगे। ऐसे आनन्द के कोलाहल के बीच महाप्रभु नवद्वीप में लीलाएँ करने लगे।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

गोष्ठी–सहित श्रीगौरसुन्दर का जयगान—

जय जय श्रीगौरसुन्दर सर्वप्राण।
जय नित्यानन्द–अद्वैतेर प्रेमधाम॥१॥
जय श्रीजगदानन्द–श्रीगर्भ–जीवन।
जय पुण्डरीक–विद्यानिधि–प्राणधन॥२॥
जय जगदीश–गोपीनाथेर ईश्वर।
जय हउ यत गौरचन्द्र–अनुचर॥३॥
हेनमते नवद्वीपे श्रीगौरांगराय।
नित्यानन्द संगे रंग करये सदाय॥४॥
अद्वैत लइया सर्व–वैष्णवमण्डल।
महा–नृत्य–गीत करे कृष्ण–कोलाहल॥५॥

(१–५) प० अनु०—सर्व जीवों के प्राण–स्वरूप श्रीगौरसुन्दर की जय हो! जय हो! नित्यानन्द–अद्वैत के प्रेमधाम की जय हो। श्रीजगदानन्द–श्रीगर्भ के जीवन–स्वरूप की जय हो। पुण्डरीक विद्यानिधि के प्राणधन की जय हो। जगदीश–गोपीनाथ के ईश्वर की जय हो। गौरचन्द्र के जितने भी अनुचर हैं, उन सबकी जय हो। इस प्रकार से नवद्वीप में नित्यानन्द के साथ मिलकर श्रीगौरांग राय निरन्तर आनन्द में क्रीड़ा करते हैं, और अद्वैताचार्य सारी वैष्ण व मण्डली को लेकर कृष्ण–कोलाहल सहित महा नृत्यगीत करते हैं।

बाल्यभाव में नित्यानन्द का श्रीवास के घर में अवस्थान और मालिनीदेवी द्वारा वात्सल्य भाव से नित्यानन्द की सेवा—

नित्यानन्द रहिलेन श्रीवासेर घरे।
निरन्तर बाल्यभाव, आन नाहि स्फुरे॥६॥
आपने तुलिया हाते भात नाहि खाय।
पुत्रप्राय करि' अन्न मालिनी योगाय॥७॥
नित्यानन्द अनुभाव जाने पतिव्रता।
नित्यानन्द सेवा करे, येन पुत्र–माता॥८॥

(६–८) प० अनु०—श्रीवास के घर में नित्यानन्द ठहरे हुये थे। निरन्तर बाल्यभाव में स्थित होने के दूसरा कोई भाव उनमें दिखाई ही नहीं देता था। वे अपने हाथों से उठाकर अन्न नहीं खाते थे, अपितु उन्हें पुत्र-तुल्य समझकर मालिनी ही अन्न खिलाया करती थीं। नित्यानन्द के भाव को पतिव्रता मालिनी जानती थीं। इसलिए माता जैसे पुत्र का लालन-पालन करती है, इसलिए माता जैसे पुत्र का लालन-पालन करती है, वैसे ही वे नित्यानन्द की सेवा किया करती थीं।

नित्यानन्द के प्रति श्रद्धा के सम्बन्ध में महाप्रभु द्वारा श्रीवास की परीक्षा—

एकदिन प्रभुश्रीनिवासेर सहित।
बसिया कहेन कथा—कृष्णेर चरित॥९॥
पण्डितेरे परीक्षये प्रभु विश्वम्भर।
''एइ अवधूते केने राख निरन्तर?१०॥
कोन् जाति, कोन् कुल, किछुह ना जानि।
परम उदार तुमि,—बलिलाम आमि॥११॥
आपनार जातिकुल यदि रक्षा चाओ।
तबे झाट एइ अवधूतेरे घुचाओ॥''१२॥

(९–१२) प० अनु०—एकदिन श्रीनिवास के साथ बैठकर प्रभु श्रीकृष्ण-चरित्र के बारे में बात कर रहे थे। उसी समय पण्डित श्रीवास की परीक्षा लेते हुये प्रभु विश्वम्भर कहने लगे—"इस अवधूत (नित्यानन्द) को निरन्तर घर में क्यों रखे हुये हो? कौन-सी जाति अथवा कौन-से कुल के हैं ये, इसके बारे में हमें कुछ भी नहीं पता। तुम तो परम उदार हो परन्तु हम तुमको बतला देते हैं कि यदि अपनी जाति और अपने कुल की रक्षा करना चाहते होए तो इस अवधूत को तुरन्त विदा करो।"

महाप्रभु के छल को समझने में सफल श्रीवास के द्वारा उत्तर प्रदान एवं नित्यानन्द के प्रति सुदृढ़ विश्वास का ज्ञापन—

ईषत् हासिया बले श्रीवास पण्डित।
''आमारे परीक्ष'' प्रभु, ए नहे उचित॥१३॥
दिनेक ये तोमा भजे, सेइ मोर प्राण।
नित्यानन्द—तोर देह, मो ह'ते प्रणाम॥१४॥
मदिरा–यवनी यदि नित्यानन्द धरे।
जाति–प्राण–धन यदि मोर नाश करे॥१५॥
तथापि मोहार चित्ते नहिव अन्यथा।
सत्य सत्य तोमारे कहिलुँ एइ कथा॥''१६॥

(१३–१६) प० अनु०—कुछ हँसकर श्रीवास पण्डित बोले,—"मेरी परीक्षा कर रहे हो प्रभु! यह उचित नहीं है। एकदिन भी जो आपका भजन करता है, वह मेरा प्राण (परमप्रिय) है। फिर नित्यानन्द तो आपके देह स्वरूप ही है—यह हमारी वात्सल्यमयी सेवा से प्रमाणित हो रहा है। यदि नित्यानन्द मदिरा और नवनी को भी ग्रहण करलें, यदि वे मेरी जाति, प्राण और धन का भी नाश कर दें; तब भी उनके प्रति मेरा हृदय नहीं बदल सकता—यह बात मैं आपसे बिलकुल सच-मुच कहा रहा हूँ।"

(६–१४) गौः भाः—नित्यानन्द-प्रभु बालक-जैसे स्वभाव का प्रकाश करते हुये श्रीवास के घर में अवस्थान कर रहे थे। श्रीवास की पत्नी मालिनी देवी वात्सल्य रस में निमग्न होकर उनको पुत्र की भाँति भोजन

करवाया करती थीं। इसलिए नित्यानन्द के प्रति श्रीवास के अनुराग को जानने के लिए श्रीमहाप्रभु उनसे बोले,—"अज्ञात-कुलशील नित्यानन्द के साथ इतना मेलजोल अच्छा नहीं है।" इसके उत्तर में श्रीवास बोले,—"मैं जानता हूँ, नित्यानन्द —आपकी ही देह हैं। भगवत्-तत्त्व में देह-देही भेद नहीं होता है, यह हमारी वात्सल्य रसमयी सेवा से प्रमाणित हो रहा है। नित्यानन्द की सेवा और आपकी सेवा में हमारे लिए कोई अन्तर नहीं है। मैं आपका भक्त हूँ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आपसे जिसकी सेवा-प्रवृत्ति है, वही मेरे हृदय की आराध्य-वस्तु है। इस प्रकार विपरीत उक्तियों के द्वारा मेरी परीक्षा लेना आपका कर्त्तव्य नही है।"

(१०) गौः भाः—'अवधूत'—देहसंस्कार-रहितो जडोऽवधूतः—(वल्लभः), अवधूतः निरस्तः शिश्नोदर पराभिमतो यस्य सः—(सिद्धांत-प्रदीपः), यो विलङ्घ्या-श्रमान् वर्णान् आत्मन्येव स्थितः पुमान्। अति-वर्णाश्रमी योगी अवधूतः स उच्यते॥ 'अ'क्षरत्वाद्' व' रेण्यत्वात् 'धू'त—संसार बन्धनात्। 't'त्त्वमस्यर्थ
सिद्धत्त्वात् 'अवधूतो'ऽभिधीयते—(शब्दसारः)।

(१५-१६) गौः भाः—मदिरा पीने वाले उन्मत्त जनगण विभिन्न प्रकार के कुकर्म करने में लगे होने के कारण समाज में रहने वाले व्यक्तियों की दृष्टि में अत्यन्त घृणा के पात्र होते है। मदिरा के द्वारा जीवों की बुद्धि-वृत्ति विनष्ट हो जाती है एवं कुत्सित कार्यों में प्रवृति बढ़ जाती है। प्राकृत रूप पर आसक्त भोगी-सम्प्रदाय जाति, कुल और आचरण आदि का विचार न करके यवनी के साथ संसर्ग किया करते हैं। इससे उन लोगों की जाति और कुल कलंकित हो जाते है। इससे उन लोगों का अधःपतन होता है। प्रजापत्य और ब्राह्म-विवाह को छोड़कर पैशाच-राक्षस आदि विवाह एवं सवर्ण विवाह कि अतिरिक्त असवर्ण-विवाह तथा नीच-म्लेच्छ आदि का संसर्ग आदि जाति दोष के कारण हैं। मदिरा-पान के द्वारा जीवों की बुद्धि-वृत्ति पाप के रास्ते पर चल पड़ती है, इसलिए उन मदिरासेवी व्यक्तियों में यवनी-संसर्ग की रुचि प्रकाशित होती है। सामाजिक विचारों से ये सब विषय विशेष घृणा के योग्य हैं। प्रभु नित्यानन्द वत्सल-रस के आश्रित आश्रयगणों की अति प्रिय वस्तु हैं। जगद्गुरु अवधूत श्रीनित्यानन्द यदि कभी भी ऐसा सबसे बड़ा घृणित कार्य भी कर बैठें, तब भी उनके प्रति श्रीवास का अनुराग कम नहीं होगा। श्रीवास कह रहे हैं कि श्रीनित्यानन्द प्रभु यदि उनकी जाति का विनाश कर दें, या उनको मार भी डालें, अथवा उनके धन आदि का अपहरण करलें, तब भी नित्यानन्द के प्रति उनकी सेवा-प्रवृति का लेशमात्र भी ह्रास नहीं होगा। प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि, प्रेमास्पद में उसके प्रति लौकिक वितृष्णा उत्पन्न करा देने वाला कोई भी लक्षण पूर्ण रूप से दिखाई देने पर भी, उस प्रेमी ही भावनाएँ विपरीत नहीं हो जाती हैं। 'श्रीनित्यानन्द प्रभु में मैं नित्यकाल से अनुरक्त हूँ, उनमें थोड़ा-बहुत लौकिक नश्वर विरोधी भाव भी दिखाई दे, तब भी मैं उनके प्रति अनुराग का पक्षपाती बना रहूँगा। प्रकृत प्रस्ताव (प्रसंग) में श्रीनित्यानन्द प्रभु उत्तम नीति परायणता के परमोच्च आदर्श हैं। यदि कोई उनकी निन्दा करने की भावना से उनको सर्वाधिक नीचता के साथ जोड़ने की प्रयास भी करे, तब भी मेरे विचार से नित्य आनन्दमय वस्तु की सेवा का परित्याग करना किसी भी रूप से विवेक युक्त नहीं होगा।' दुर्बल हृदय और पाप प्रवण-चित्त वाले

लोग ही नित्यानन्द महिमा की उन सब बातों को समझने में असमर्थ होने के कारण उन्हें विकृत भाव से ग्रहण करते हैं इससे उनकी नीति विरूद्ध घृणित रूचि का परिचय मिलता है। अदूरदर्शिता से पूर्ण एवं सत्य वस्तु में प्रवेशाधिकार से वंचित भाव कभी भी श्री श्रीमान् नित्यानन्द प्रभु की अप्राकृत गंभीर लीलाओं में प्रवेश करने में समर्थ नहीं हो सकते। पापियों की बुद्धि को उलट देने वाली कृष्ण की स्तेय (चोरी) लीला अथवा बाह्य विचार से उनकी लाम्पट्य जैसी लीलाएँ अधम रूचिविशिष्ट लोगों के लिए अधिक अंमगल उत्पन्न करवा देती है; परन्तु जड़वासनारहित भगवत्-सेवा-परायण व्यक्तियों की परम श्रेष्ठता का प्रदर्शन करवाने के लिए जिन सब नित्य-लीलाओं का विस्तार हुआ है, उनसे जीवों के स्वभाव में स्थित नित्य-सेवा-प्रवृति का उन्मेष होता है। कृष्णदास कविराज-प्रभु के भ्राता श्रीचैतन्यदेव में साधारण अनुराग विशिष्ट थे, फिर भी प्रभु श्रीनित्यानन्द के लोकातीत प्रेम को समझने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने अपने सर्वनाश का आह्वान किया था। उनके अनुरूप आचरण करने वाले अन्य बाउल, प्राकृत-सहजिया प्रभृति अपसम्प्रदायीजन; जिनका चित्त नरक की ओर जाने के लिए व्याकुल होता रहता है, उन लोगों में भी श्रीनित्यानन्द प्रभु के ऊपर दुर्नीतियों का आरोप करने की प्रवृति दिखाई देती है। श्रीनित्यानन्द प्रभु कभी भी नीतिशास्त्र-विरुद्ध कार्य करने के अभिलाषी नहीं थे। आध्यात्मिकता के नाम पर आसुरिक दृष्टि के सहयोग से उनके प्रति उन्हीं सब भावों को आरोप—जिनके इन्द्रिय जन्य ज्ञान में प्रतिभात होता है, उन सब भाग्यहीन जनगणों के संग का सब प्रकार से परित्याग करके श्रीनित्यानन्द के चरणों की शरण में आये हुये जनगण का पदानुसरण करना ही सर्वतोभाव से उचित कार्य है।

उत्तर सुनकर महाप्रभु के द्वार आनन्द-सहित हुँकार और श्रीवास को वर-प्रदान—

एतेक शुनिया यदि श्रीवासेर मुखे।
हुँकार करिया प्रभु उठे तार बुके॥१७॥
प्रभु बोले,—"कि बलिला पण्डित श्रीवास?
नित्यानन्द-प्रति तोर एतइ विश्वास? १८॥
'मोर गोप्य नित्यानन्द', जानिया से तुमि।
तोमारे सन्तुष्ट हइया वर दिये आमि॥"१९॥
"यदि लक्ष्मी भिक्षा करे नगरे नगरे।
तथापि दारिद्रय तोर नहिवेक घरे॥२०॥
विड़ाल-कुक्कुर-आदि तोमार बाड़ीर।
सबार आमाते भक्ति हइवेक स्थिर॥२१॥
नित्यानन्दे समर्पिलुँ आमि तोमा' स्थाने।
सर्वमते संवरण करिवा आपने॥"२२॥

(१७-२२) प० अनु०—श्रीवास के मुख से इतना सुनते ही हुँकार करते हुये प्रभु उसकी छाती पर सवार हो गये। प्रभु बोले,—"यह तुमने क्या कहा श्रीवास पण्डित? नित्यानन्द के प्रति तुम्हारा इतना विश्वास है? मेरे गुप्त नित्यानन्द को तुमने जान लिया। मैं सन्तुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ।" "भले ही लक्ष्मी को नगर-नगर में घूम-घूम कर भिक्षा करनी पड़े, तब भी तुम्हारे घर में दरिद्रता कभी नहीं आयेगी। तुम्हारे रूप से दृढ़ भक्ति हो जायेगी। मैंने नित्यानन्द को तुम्हारे हाथों मे सौंप दिया है। तुम सर्वतोभाव (सब प्रकार से) से उनकी सेवा में लगे रहना।"

(१९-२१) गौः भाः—नित्याननद प्रभु सर्वतोभाव (सब प्रकार से) से मेरी (गौरसुन्दर की) रक्षणीय वस्तु हैं—इस रहस्य को तुम (श्रीवास) समझते हो, इसे जानकर मेरे आनन्द

की सीमा नहीं रही है। सर्वेश्वर्य के अधिपति भगवान् नारायण के वक्षःस्थल पर स्थित लक्ष्मीदेवी अथवा धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी ऐश्वर्य से विच्युत होकर यदि दरिद्रता के कारण द्वार–द्वार पर भिक्षा भी करने लगे, तब भी नारायणी के प्रभाव से तुम्हारे यहाँ कभी भी किसी वस्तु के 'अभाव' की स्थिति नहीं रहेगी। भगवद्–भक्ति की विचार धारा तुममें जिस प्रकार से परिस्फुट हुई है, उसके कारण अभक्तगणों के यहाँ जो पार्थिव अभाव की चिन्ता दिखाई देती है, वह तुममें अवस्थान नहीं कर पायेगी। इसलिए धन और धान से लक्ष्मीमन्त (धनी) कर देने की अधिकारिणी साक्षात् लक्ष्मीदेवी के लिए भी यदि किसी दिन अभाव उपस्थित हो जाए, तब भी तुमको अभाव नही होगा। भगवान् के प्रति तुम्हारी इस तरह की सेवा–प्रवृत्ति है कि, तुम्हारी अथवा तुम्हारे भाई–रिश्तेदारों की बात तो दूर रही, तुम्हारे घर के पाले–पोसे हुये बिल्ली, कुत्ते आदि अवर (छोटे) जीवकुल की भी मुझमें अचल भक्ति रहेगी।

आलबन्दारू–ऋषि कहते हैं,—'यदि ऐसा भी हो, कि भगवान् की इच्छा के अनुसार मुझको इस धरा धाम में फिर जन्म लेना पड़े, तो इतना ही हो, कि मैं भक्त के घर का कुत्ता, बिल्ली आदि अथवा कीट आदि बनूँ, जिससे के उस स्वरूप में भी मुझे भगवद्–भक्त का संग मिल जाये।' सम्राट् कुलशेखर कहते हैं,—'यदि जन्म–जन्म में मुझे भगवत् सेवा–प्रवृति–विशिष्ट व्यक्तियों के संग रहने का अवसर–मिलता रहे, तो मुक्ति भी मेरे लिए वरण के योग्य नहीं है।' भगवद् भक्तों के संग का इतना प्रभाव है कि उन लोगों को थोड़ा–बहुत संग भी जब अवर (निकृष्ट) प्राणियों को मिल जाता है तो उनको भी भगवत्–सेवोन्मुखता की प्राप्ति का सुयोग उपलब्ध हो जाता है। किसी वैष्णव ने गाया है,—"वैष्णवेर गृहे यदि हइताम कुक्कुर। एँठो दिया तराइतेन वैष्णव ठाकुर"। अर्थात् "यदि मैं वैष्णव के घर का कुत्ता होता, तो उच्छिष्ट प्रसाद खिलाकर वैष्णव ठाकुर मेरा उद्धार कर देते"।

(२२) गौः भाः—"नित्यानन्द तुम्हारी उपासनीय वस्तु हैं। उनकी निरन्तर सेवा करने के लिए मैंने उन्हें तुमको सौंप दिया है। तुम सभी प्रकार से उनकी सेवा में संलग्न रहना।"—ऐसा आशीर्वाद महाप्रभु ने दिया। श्रीवास आदि शुद्ध भक्तों की संधिनी शक्ति में अधिष्ठित भगवद्–विग्रह की मर्यादामयी सेवा विशेष रूप से प्रशंसा के योग्य है। श्रीगौरसुन्दर की लीला में पाँच प्रकार के रसों से युक्त राधा–गोविन्द–मिलित–तनु श्रीमन् श्रीदामोदर–स्वरूप आदि शक्ति वर्ग में श्रीगौरसुन्दर की राधा भाव–विभावित–चेष्टाएँ मधुरस की लीलाओं के उपकरण के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं, परन्तु यह कहकर कृष्ण की लीला को स्तब्ध करके उनकी औदार्य–लीलाओं में मधुर भाव की कल्पना करना रसाभास दोष से दूषित है। श्रीवास आदि का वात्सल्य युक्त दास्यरस शुद्ध भक्ति का आदर्श है। वह नित्यानन्दनुग जनगणों की आराध्य वस्तु है। श्रीरूपगोस्वामी–प्रभृति के अनुग–सम्प्रदाय में श्रीगदाधर–प्रमुख शक्ति तत्त्व की आराधना परिपूर्ण रूप से दिखाई देती है। काशीश्वर, गोविन्द, आदि परिकर–वर्ग में सरल सहज दास्य, श्रीरामानन्द, परमानन्द–प्रभृति के सख्यावरण में मधुर–रति का पूर्ण विकास और गौड़ मंडल, क्षेत्र मंडल एवं ब्रजमंडल प्रभृति आधार–समूह में शान्त–रस का सेवन भगवद् भक्तगणों को दृष्टिगोचर होता है।

नदीया नगर में नित्यानन्द की
बाल्यभाव में लीला—

श्रीवासेरे वर दिया प्रभु गेला घर।
नित्यानन्द भ्रमे सब नदीया—नगर॥२३॥
क्षणेके गंगार माझे एड़ेन साँतार।
महास्त्रोते लइ' याय, सन्तोष अपार॥२४॥
बालक—सबार संगे क्षणे क्रीड़ा करे।
क्षणे याय गंगादास मुरारिर घरे॥२५॥
प्रभुर बाड़ीते क्षणें यायेन धाइया।
बड़ स्नेह करे आइ ताहाने देखिया॥२६॥
बाल्यभावे नित्यानन्द आइर चरण।
धरिवारे याय, आइ करे पलायन॥२७॥

(२३—२७) प० अनु०—श्रीवास को वर देने के पश्चात् प्रभु अपने घर चले गये। इधर नित्यानन्द सारे नदीया नगर में भ्रमण करने लगे। कभी गंगा में जाकर वे तैरने लगते। प्रबल-धारा-प्रवाह बहते हुये उनको अपार सुख मिलता था। कभी वे सभी बालकों के साथ खेलने लगते, तो कभी गंगादास, मुरारि के घर चले जाते। कभी दौड़कर प्रभु के भवन में पहुँच जाते। उनको वहाँ देखकर आई उन पर बहुत ही स्नेह करती थीं। बाल्यभाव में कभी नित्यानन्द आई के चरण पकड़ने का लपकते, तो आई भाग जातीं।

शचीमाता के द्वारा नित्यानन्द से
सम्बंधित स्वप्न का दर्शन एवं
गोपनीयता-अवलम्बनपूर्वक महाप्रभु को
उनका निवेदन—

एकदिन आइ किछु देखिला स्वपने।
निभृते कहिला पुत्र—विश्वम्भर—स्थाने॥२८॥
''निशि—अवशेषे मुञि देखिलुँ स्वप्न।
तुमि आर नित्यानन्द—एइ दुइ जन॥२९॥
वत्सर—पाँचेर दुइ छावयाल हइया।
मारामारि करि' दोंहे बेड़ाओ धाइया॥३०॥
दुइजने सान्धाइला गोसाईंर घरे।
राम—कृष्ण लइ' दोंहे हइला बाहिरे॥३१॥
तार हाते कृष्ण, तुमि लइ' बलराम।
चारि जने मारामारि मोर विद्यमान॥''३२॥
राम—कृष्ण—ठाकुर बलये क्रुद्ध हइया।
''के तोरा ढांगाति, दुइ बाहिराओं गिया॥३३॥
ए बाड़ी, ए घर, सब आमा देहाँकार।
ए सन्देश, दधि, दुग्ध यत उपहार॥''३४॥
नित्यानन्द बलये,—''से—काल गेल बये।
ये काले खाइये दधि—नवमी लुटिये॥३५॥
घुचिल गोयाला—हैल विप्र—अधिकार।
आपना चिनिया छाड़ सब उपहार॥३६॥
प्रीते यदि ना छाड़िवा खाइवा मारण।
लुटिया खाइले वा राखिवे कोन् जन?''३७॥
राम—कृष्ण बले,—'आजि मोर दोष नाइ।
बान्धिया एड़िमु दुइ ढंग एइ ठाञि॥३८॥
दोहाइ कृष्णेर यदि आजि करौं आन।'
नित्यानन्द प्रति तर्ज्ज गर्ज्ज करे राम॥३९॥
नित्यानन्द बले,—'तोर कृष्णेरे कि डर।
गौरचन्द्र विश्वम्भर—आमार ईश्वर॥'४०॥
एइमते कलह करये चारि जन।
काड़ाकाड़ि करि' सब करये भोजन॥४१॥
काहारो हातेर केह काड़ि' लइ' खाय।
काहारो मुखेर केह मुख दिया खाय॥४२॥
'जननी' बलिया नित्यानन्द डाके मोरे।
''अन्न देह' माता, मोरे क्षुधा बड़ करे॥''४३॥
'जननी' बलिया नित्यानन्द डाके मोरे।
''अन्न देह' माता, मोरे क्षुधा बड़ करे॥''४३॥
एतेक बलिते मुञि चेतन पाइलुँ।
किछु ना बुझिलुँ मुञि, तोमारे कहिलुँ॥४४॥

(२८—४४) प० अनु०—एकदिन आई ने

स्वपन में कुछ देखा। उन्होंने इसके बारे में पुत्र विश्वम्भर को एकान्त में बताया। 'रात के अन्त में मैंने आज एक स्वप्न देखा है। उसमें तुम और नित्यानन्द—दोनों पाँच वर्ष के दो बालक होकर आपस में मारपीट करते हुये तेजी से इधर-उधर घूम रहे हो। फिर तुम दोनों ठाकुरजी के घर में घुस गये हो और राम-कृष्ण को लेकर बाहर आ गये। नित्यानन्द के हाथ में कृष्ण हैं और तुम्हारे हाथ में बलराम। फिर तुम चारों ने मेर सामने परस्पर मारपीट करना शुरू कर दिया है। क्रुद्ध होकर ठाकुर—राम कृष्ण कह रहे हैं,—"तुम दोनों चोर कौन हो? निकल जाओं यहाँ से। यह भवन, यह घर, सब हमारे हैं। यह सन्देश (पनीर से निर्मित मिठाई), दही, दूध—सभी उपहार हम दोनों के हैं।" नित्यानन्द बोले,—"वह समय बीत गया—जब तुम दोनों लूट-लूट कर दही और नवनीत खाया करते थे। अब ग्वालाओं का राज्य गया—अब तो ब्राह्मणों का अधिकर है। अपने को पहचानों और यह सब उपहार हमारे लिए छोड़ दो। प्रेम से यदि नहीं छोड़ोगे तो मार खाओगे। लूट कर खाने से भी कौन रोक सकता है?" राम-कृष्ण बोले,—" आज हमारा कोई दोष नहीं है। तुम दोनों चोरों को हम यहीं बाँधकर डाल देंगे।" "मुझे कृष्ण की दुहाई है, जो ऐसा न करूँ।"—ऐसा कहते हुये बलरामजी नित्यानन्द के प्रति तर्जन-गर्जन करने लगे। गौरचन्द्र विश्वम्भर मेरे ईश्वर हैं।' इस तरह से आपस में झगड़ा करते हुये चारों जने खींच-तान कर सभी सामग्रियों का भोजन करने लगे। कोई किसी के हाथ का द्रव्य छीनकर खाने लगा तो कोई किसी के मुख का द्रव्य मुख से खींच कर खा रहा था। तभी 'हे जननी' कहकर नित्यानन्द मुझे पुकारने लगे और कहने लगे,—"हे माता! मुझे भोजन दीजिए, बहुत भूख लगी है।" वे ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय मेरी नींद टूट गई। मेरी तो कुछ समझ मैं ही नहीं आया। इसलिए तुमसे कह रही हूँ।

(३१) गौः भाः—सान्धाइला—प्रवेश किया है।

(२८-३३) गौः भाः—श्रीधाम-मायापुर में शची के घर में नारायण की शिलामूर्ति के अतिरिक्त राम और कृष्ण के और भी दो विग्रह थे। शचीदेवी ने स्वप्न में जो कुछ देखा था, उसी का महाप्रभु के सामने वर्णन करती हुई वे कह रही हैं कि, नित्यानन्द और तुम (विश्वम्भर)—दोनों पाँच वर्ष के बालकों के रूप में हमारे ठाकुर के घर में घुस कर रमा और कृष्ण के विग्रहों को हाथों में उठाकर उनसे कलह कर रहे थे। कृष्ण के साथ नित्यानन्द का और राम के साथ तुम्हारा, परस्पर वाद-विवाद एवं हाथापाई-रूप, खूब प्रीतिजनक कलह मैंने स्वप्न में देखा है। रामकृष्ण-विग्रह कर रहे हैं कि,—तुम दोनों शठ हो तुम हमारे घर में बलपूर्वक प्रवेश करके हमारी भोजनीय सामग्री छीनकर खा रहे हो, इस प्रकार वे दोनों क्रोध का भाव प्रदर्शित कर रहे हैं।

(३३) गौः भाः—ढांगति—ठग, खल, शठ, चतुर, चोर।

(३६) गौः भाः—ब्रजलीला में तुम दोनों ने गोपतनय राम-कृष्ण बनकर दही, पनी प्रभृति गव्य (गो दुग्ध से बने पदार्थ) खूब खाये हैं। कुछ समय बीत जाने के बाद अब तुम ब्राह्मण वटु के रूप में प्रकटित हुये हो। इसलिए अब वर्तमान समय के अधिकार को जानो और उन सभी उपहारों के प्रति लोभ का परित्याग कर दो।

(३८) गौः भाः—एड़िमु—रखेंगे।

नित्यानन्द द्वारा उन दोनों के बारे में जानकारी दे दिये जाने पर रामकृष्ण ने कहा, —"तुम दोनों को बाँधकर हम इसी स्थान पर डाल देंगे और हम दोनों यहाँ से चले जायेंगे। इससे कोई हमारा अपराध नहीं होगा। यद्यपि राम-कृष्ण उस स्थान पर अर्चाविग्रह के रूप में अवस्थित थे तथापि गौर-नित्यानन्द के अधिकार की स्थापना हो जाने से उन्होंने उन दोनों को राम-कृष्ण के आसन पर प्रतिष्ठित करके उस स्थान का परित्याग कर देने की इच्छा व्यक्त की।

स्वप्न के विवरण को सुनकर महाप्रभु का हास्य एवं जननी को प्रत्युत्तर दान—

हासे प्रभु विश्वम्भर शुनिया स्वपन।
जननीर प्रति बोले मधुर वचन॥४५॥
''बड़इ सुस्वप्न तुमि देखियाछ माता।
आर कारो ठाञि पाछे कह एइ कथा॥४६॥
आमार घरेरे मूर्त्ति परतेक बड़।
मोर चित्त तोमार स्वप्नेते हैल दड़॥४७॥
मुञि देखों बारे नैवेद्येर साजे।
आधाआधि ना थाके, ना कर्हो कारे लाजे॥४८॥
तोमार बधूरे मोर सन्देह आछिल।
आजि से आमार मने सन्देह घुचिल॥''४९॥
हासे लक्ष्मी जगन्माता स्वामीर वचने।
अन्तरे थाकिया सब स्वप्नकथा शुने॥५०॥

(४५-५०) प० अनु०—स्वप्न का वृत्तांत सुनकर प्रभु विश्वम्भर हँस पड़े और मधुर वचनों से माता को सम्बोधित करते हुये कहने लगे, "बड़ा ही अच्छा सपना देखा है तुमने माता। मगर किसी और से इसके बारे में कुछ मत कहना। मेरे घर की मूर्त्तियाँ बहुत ही प्रत्यक्ष हैं। तुम्हारे स्वप्न से मेरे मन ही यह धारणा और भी दृढ़ हुई है। मैं बारम्बार देखता हूँ कि नैवेद्य के सामान से आधा भाग गायब हो जाता है, किन्तु लज्जावश मैं किसी को कुछ कहता नहीं था। तुम्हारी वधू पर मैंने सन्देह किया था; किन्तु आज मेरे मन का वह सन्देह दूर हो गया।" स्वामी (पति) के वचनों को सुनकर जगन्माता लक्ष्मीदेवी (विष्णुप्रिया) हँसने लगीं। वे घर के भीतर रहकर सारी-स्वप्न-कथा सुन रही थीं।

(४७) गौः भाः—श्रीशचीदेवी की सारी बातें सुनकर महाप्रभु ने कहा,—"हमारे घर में विराजमान राम-कृष्ण की मूर्तियाँ बहुत ही प्रत्यक्ष प्रभाव वाली हैं—तुम्हारे स्वप्न दर्शन से मेरा हृदय इस विषय में विशेष रूप से दृढ़ हुआ है।"

(४९) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर जब विष्णुप्रिया देवी के द्वारा पकाई गई भोज्य सामग्री को निवेदित करते थे, तब उन्होंने लक्ष्य किया था कि, नैवेद्य (निवेदित की गई वस्तु) का आधा भाग श्रीविग्रहों ने स्वीकार कर लिया है। इस विषय में महाप्रभु बोले,—"इसे देखकर मेरे मन में यह सन्देह हुआ करता था कि, तुम्हारी पुत्रवधु विष्णुप्रिया देवी उसे ग्रहण कर लिया करती थी; परन्तु आज तुम्हारे स्वप्न की बात सुनकर मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि, श्रीविग्रहगण साक्षात् नैवेद्य के अनेकांश का भोजन करके शेष भाग को हमारे लिए छोड़ दिया करते हैं।" श्रीमन् महाप्रभु की इस बात को सुनकर जगन्माता विष्णु-प्रिया देवी भीतर किसी दूसरे घर में रहकर मन-ही-मन हँस रही थीं।

महाप्रभु द्वारा नित्यानन्द को भोजन करवाने के लिए जननी से अनुरोध और फिर नित्यानन्द को निमन्त्रण एवं आदेश—

विश्वम्भर बले,—''माता, शुनह वचन।
नित्यानन्दे आनि' झाट कराह भोजन॥''५१॥
पुत्रेर वचने शची हरिष इहला।
भिक्षार सामग्री यत करिते लागिला॥५२॥
नित्यानन्द स्थाने गेला प्रभु विश्वम्भर।
निमन्त्रण गिया ताने करिला सत्त्वर॥५३॥
''आमार बाड़ीते आजि गोसाञि भिक्षा।
चंचलता ना करिवा''—कराइला शिक्षा॥५४॥
कर्ण धरि' नित्यानन्द 'विष्णु, विष्णु' बले।
''चंचलता करे यत पागल–सकले॥५५॥
ये बुझिये मोरे तुमि वासह चंचल।
आपनार मत तुमि देखह सकल॥''५६॥
एत बलि' दुइजने हासिते हासिते।
कृष्ण–कथा कहि' कहि' आइला बाड़ीते॥५७॥
हासिया बसिया एक ठाँइ दुइजन।
गदाधर–आदि आर परमाप्तगण॥५९॥

(५१–५८) प० अनु०—विश्वम्भर बोले, —"हे माता, मेरी बात सुनो! तुम नित्यानन्द को बुलवाकर उन्हें तुरन्त भोजन करवाओं।" पुत्र के वचन से आनन्दित होकर शची भिक्षा के लिए सामग्री तैयार करने लगीं। उधर नित्यानन्द के पास शीघ्र जाकर प्रभु विश्वम्भर ने उनको भोजन का निमन्त्रण दे दिया; उन्होंने कहा, "गोसाईं की भिक्षा आज हमारे घर में है। साथ ही यह शिक्षा भी दी कि, चंचलता मत करना।" अपने कान पर हाथ लगाकर नित्यानन्द 'विष्णु–विष्णु' कहने लगे और बोले, "सिर्फ सब पागल ही चंचलता करते हैं।" "ऐसा तुम सभी को अपने जैसा समझते हो।" इतना कहकर, दोनों हँसते–हँसते कृष्ण–कथा की चर्चा करते हुये घर में चले आये। वहाँ हँसते हुये दोनों एक जगह बैठ गये एवं गदाधर आदि परम प्रियजन भी बैठ गये।

(५३–५७) गौः भाः—स्वप्न के विवरण को सुनकर महाप्रभु ने नित्यानन्द को अपने घर में प्रसाद स्वीकार करने के लिए निमन्त्रित किया और भिक्षा के समय किसी प्रकार की भी चंचलता प्रदर्शित करने से मना कर दिया। इस पर नित्यानन्द ने कहा,—"विष्णु, विष्णु"! सिर्फ पागल ही चंचलता करते हैं। तुम सभी को अपने जैसा देखते हो, तुम स्वयं चंचल हो—'कृष्णरस मे पागल हो, इसलिए सारे जगत मे रहने वाले सभी लोंगो को ऐसा ही समझते हो, मुझे भी—ऐसा कहते हुये दोनों ने श्रीजगन्नाथ मिश्र के भवन में आगमन किया।

शचीभवन में गौरनित्यानन्द की भोजनलीला—

ईशान दिलेन जल धुइते चरण।
नित्यानन्द संगे गेला करिते भोजन।
कौशल्यार घरे येन श्रीराम–लक्ष्मण॥६०॥
एइ मत दुइ प्रभु करये भोजन।
सेइ भाव, सेइ प्रेम, सेइ दुइजन॥६१॥

(५९–६१) प० अनु०—वहाँ ईशान ने चरण धोने के लिए जल दिया और पाद–प्रक्षालन के बाद नित्यानन्द के साथ प्रभु भोजन करने को गये। दोनों प्रभु, जैसे कौशल्या के घर में श्रीराम–लक्ष्मण की भाँति, एक साथ भोजन करने के लिए बैठे। इस प्रकार दोनों प्रभु भोजन करने लगे। वही दोनों का भाव था, वही प्रेम था, वे दोनों वे ही थे।

परिवेषण के समय ऐश्वर्य–दर्शन से शचीमाता का मूर्च्छित हो जाना–

परिवेशन करे आइ परम सन्तोषे।
त्रिभाग हइल भिक्षा, दुइ जन हासे॥६२॥
आरबार आमि' आइ दुइ जने देखे।
वत्सर पाँचेर शिशु देखे परतेके॥६३॥
कृष्ण–शुक्ल–वर्ण देखे दुइ मनोहर।

दुइ जन चतुर्भुज, दुइ दिगम्बर॥६४॥
शंख, चक्र, गदा, श्रीहल–मुषल।
श्रीवत्स–कौस्तुभ देखे मकर–कुण्डल॥६५॥
आपनार वधू देखे पुत्रेर हृदये।
सकृत देखिया आर देखिते ना पाये॥६६॥
पड़िया मूर्च्छित हइया पृथिवीर तले।
तितिल वसन सब नयनेर जले॥६७॥
अन्नमय सर्व घर हइल तखने।
अपूर्व देखिया शची बाह्य नाहि जाने॥६८॥

(६२–६८) प० अनु०—परम आनन्द के साथ आई परिवेषण करने लगीं। तीन भागों में सजी हुई भिक्षा (भोजन सामग्री) देखकर दोनों हँसने लगे। फिर दोबारा आकर जब आई ने दोनों को देखा तो दोनों उन्हें पाँच वर्ष के शिशुओं की भाँति दिखाई दिये। कृष्णवर्ण और शुक्लवर्ण वाले उन दोनों का बड़ा मनोहर रूप था, वे दोनों चतुर्भुज–दिसम्बर स्वरूप में दिखाई दिये। उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म और श्रीहल–मूसल देखे। श्रीवत्स–कौस्तु और मकर–कुण्डल भी देखा। उन्होंने अपनी वधू को भी पुत्र के हृदय में देखा। एक बार देखकर वे फिर नहीं देख पाईं और मूर्च्छित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़ीं। नेत्रों के जल से उनके सारे वस्त्र भीग गये। उस समय सारा घर अन्नमय हो गया था। इस अपूर्व दृश्य को देखकर शची का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया।

(६२–६३) गौः भाः—श्रीगौर–नित्यानन्द दोनों जब भोजन करने के लिए बैठ गये, तब शचीमाता उनको प्रसाद वितरण करने लगीं। दोनों को प्रसाद वितरण करते समय भ्रमवश उन्होंने तीन जनों के लिए भोजन परोस दिया, यह देखकर श्रीगौर–नित्यानन्द हँसने लगे। शचीदेवी ने तीन जनों के लिए भोजन परोसने के पश्चात् दोबारा आकर देखा तो पाया कि गौर एवं नित्यानन्द दोनों खा रहे हैं। उस समय शचीमाता ने उन्हें पाँच वर्ष के शिशुओं के रूप में देखा।

(६६) गौः भाः—श्रीशचीदेवी ने देखा,—पाँच वर्ष के दोनों ही शिशु वस्त्रविहीन हैं; उनमें एक के वक्ष पर कौस्तुभ है और दूसरे के हाथों में हलमूसल। दोनों ही शिशु चतुर्भज–धारी हैं। उन्होंने देखा कि एक शिशु के वक्ष में पुत्रवधु विष्णुप्रिया देवी चतुर्भुज–धारी हैं। उन्होंने देखा कि एक शिशु के वक्ष में पुत्रवधू विष्णुप्रिया देवी विराजमान है। केवल एक बार ही इस रूप का दर्शन वे कर सकीं; फिर नहीं देख पाईं।

"आपनार वधू देखे पुत्रेर हृदये" अर्थात् श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में शचीमाता ने श्रीलक्ष्मीदेवी के दर्शन किये। "श्रीः प्रेक्ष्य कृष्णसौन्दर्य तत्र लुब्ध्वा ततस्तपः। कुर्वतीं प्राह तां कृष्णः किन्ते तपसि कारणम्? विजिहीर्षे त्वया गोष्ठे गोपीरूपेति साऽब्रवीत्। तद् दुर्लभमिति प्रोक्तालक्ष्मीस्तं पुनरब्रवीत्॥ स्वर्णरेखेव ते नाथ वस्तु–मिच्छा–मि वक्षसि। एवमस्त्विति सा तस्य तद् रूपा वक्षसि स्थिता॥"—(पाद्म में) अर्थात् श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का अवलोकन करके उन पर मुग्ध हो गईं। उसके लिए तपस्या में प्रवृत्त होने पर श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा,—"तुम्हारी तपस्या का कारण क्या है?" लक्ष्मी ने कहा,—"मैं गोपीरूप धारण करके वृन्दावन में तुम्हारे साथ विहार करने की अभिलाषा करती हूँ।" श्रीकृष्ण ने कहा, —"यह सुदुर्लभ है।" उस पर लक्ष्मी ने फिर कहा,—"नाथ, मैं स्वर्णरेखा की भाँति तुम्हारे वक्षःस्थल में विराजमान होना चाहती हूँ।" तब श्रीकृष्ण ने कहा—"अच्छा ऐसा ही होगा।" तभी से लक्ष्मी भी स्वर्णरेखा के रूप में श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में निवास करने लगीं।

(६७–६८) गौः भाः—आँखों के आसुओं से वस्त्र–समूह भीग गया। भगवद्–दर्शन के समय मुक्त दर्शन से बाह्य प्रतीति विलुप्त हो जाती हैं। इस अन्तदर्शा का लाभ भाग्यहीनों के लिए असम्भव है। इसलिए आध्यक्षिक (प्राकृत जड़ इन्द्रियों पर निर्भर) सम्प्रदाय उसकी नित्यता को उपलब्ध करने में असमर्थ रहते हैं। आध्यक्षिक व्यक्तियों के विचार से इन्द्रियाग्राह्य–ज्ञान में ही सभी वस्तुएँ अवस्थित हैं। तुरीय–प्रभृति अप्राकृत दर्शन पर साधारण जनों का अधिकार न रहने के कारण वे उसमें अपनी आस्था स्थापित करने से विमुख हो जाते हैं।

महाप्रभु के द्वारा जननी की मूर्च्छाभंग और आश्वासन—

आथेव्यथे महाप्रभु आचमन करि'।
गाये हात दिया जननीरे तोले धरि'॥६९॥
''उठ उठ माता, तुमि स्थिर कर चित्त।
केने वा पड़िला पृथिवीते आचम्बित''॥७०॥

(६९–७०) प० अनु०—महाप्रभु ने तुरन्त आचमन करके जननी को हाथ पकड़कर उठा लिया और बोले,—"उठिये माता, उठिए! अपने चित्त को स्थिर कीजिए! आप किस कारण से अचानक पृथ्वी पर गिर पड़ीं?"

होश आने पर शची के द्वारा निरूत्तर क्रन्दन एवं प्रेमभाव—

बाह्य पाइ' आइ आथेव्यथे केश बान्धे।
ना बलये किछु आइ गृहमध्ये कान्दे॥७१॥
महा दीर्घश्वास छाड़े कम्प सर्व–गाय।
प्रेमे परिपूर्ण हैला, किछु नाहि भाय॥७२॥
ईशान करिला सब गृह उपस्कार।
यत छिल अवशेष—सकल ताँहार॥७३॥
सेविलेन सर्वकाल आइरे ईशान।
चतुर्द्दश–लोकमध्ये महाभाग्यवान्॥७४॥
एइ मत अनेक कौतुक प्रतिदिने
मर्मी–भृत्य बइ इहा केह नाहि जाने॥७५॥
मध्यखण्ड कथा येन अमृतेर भाण्ड।
ये कथा शुनिले घुचे अन्तर पाषण्ड॥७६॥
एइ मत गौरचचन्द्र नवद्वीप–माझे।
कीर्तन करेन सब भक्त–समाजे॥७७॥
यत यत स्थाने सब पार्षद जन्मिला।
अल्पे अल्पे सबे नवद्वीपेरे आइला॥७८॥
सबे जानिलेन ईश्वरे अवतार।
आनन्द–स्वरूप चित्त हइल सबार॥७९॥
प्रभुर प्रकाश देखि' वैष्णव–सकल।
अभय परमानन्दे हइला विह्वल॥८०॥

(७१–८०) प० अनु०—बाह्य होने पर आई ने तुरन्त अपने केशों को बाँधा और बिना कुछ बोले घर के भीतर आकर रोने लगीं। वे बड़ी लम्बी–लम्बी साँसें छोड़ने लगीं और प्रेम में परिपूर्ण होकर काँपने लगीं और उनको कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। ईशान ने ही सारे घर का परिष्कार किया। इसके बाद उन्होंने अवशिष्ट प्रसाद का भोजन किया। ईशान ने सर्वदा आई की सेवा की थी। वस्तुतः चतुर्द्दश लोंकों में वे महाभाग्यवान् हैं।

इस तरह वहाँ अनेक प्रकार के कौतुक प्रतिदिन होने लगे, जिन्हें मर्मी–भृत्य के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जान पाया। मध्यखण्ड की कथा अमृत–कलश जैसी है। इस कथा को सुनने से अन्तर का पाखण्ड भाव दूर हो जाता है। इस प्रकार गौरचन्द्र नवद्वीप में सारी भक्त–मण्डाली को साथ लेकर कीर्तन करने लगे। जिन पार्षदों ने अलग–अलग स्थानों पर जन्म लिया था, वे सभी एक के बाद एक नवद्वीप में आ गये।

ईश्वर के अवतार को सभी ने जान लिया था। सभी का हृदय आनन्द-स्वरूप हो गया था। प्रभु ने प्रकाश को देखकर सभी वैष्णव निर्भय होकर परमानन्द में विह्वल रहते थे।

(७३-७४) गौः भाः—ईशान प्रभु के घर के भृत्य थे। उन्होंने इधर-उधर फैले अन्न आदि को इकट्ठा करके गृह का पूर्ण परिष्कार किया। ईशान के भाग्य की तो सीमा ही नहीं। उन्होंने प्रभु की जननी के सेवाकार्य में अपना सारा जीवन बिता दिया था। संन्यास ग्रहण के पश्चात् भी भृत्य ईशान अपने प्रभु की जननी और प्रभु की पत्नी की सेवा का सौभाग्य पाकर जगत् के धन्य भृत्यगणों में भी परमधन्य अथवा धन्यातिधन्य हुये थे।

(७५) गौः भाः—मर्मी-भृत्य—मूर्ख आध्यक्षिक (प्राकृत-ज्ञान-सम्पन्न) लोग सेवा-रहित होकर भोग बुद्धि से हम पृथ्वी पर विचरण करते हैं। वे सब केवल बाहरी जगत् में झाँकने की क्षमता रखने के कारण रहस्यात्मक सत्य के उद्घाटन में असमर्थ रहते हैं। अन्तरंग सेवकगण ही बाह्य जगत् की धारणाओं पर विमुग्ध हुये बिना प्रकृत प्रस्ताव में अन्तर्हित सत्य को उपलब्ध करने में समर्थ होते हैं।

महाप्रभु एवं पार्षदगणों के हृदय का पारस्परिक भाव एवं व्यवहार—

प्रभुओं सबारे देखे प्राणेर समान।
सबेइ प्रभुर पारिषदेर प्रधान॥८१॥
वेदे याँरे निरवधि करे अन्वेषण।
से प्रभु सबारे करे प्रेम-आलिंगन॥८२॥
निरन्तर सबार मन्दिरे प्रभु याय।
चतुर्भुज-षड्भुजादि विग्रह देखाय॥८३॥
क्षणे याय गंगादास-मुरारिर घरे।
आचार्यरत्नेर क्षणे चलेन मन्दिरे॥८४॥
निरवधि नित्यानन्द थाकेन संहति।
प्रभु-नित्यानन्देर विच्छेद नाहि कति॥८५॥

(८१-८५) प० अनु०—प्रभु अपने सभी पार्षदों को अपने प्राणों के समान देखते थे; प्रभु के पार्षदों में सभी प्रधान थे। जिन प्रभु को अन्वेषण वेद निरन्तर करते रहते हैं, वे ही प्रभु प्रेम से सबका आलिंगन किया करते थे। प्रभु सभी के घरों में निरन्तर जाते रहते थे और सभी को अपने चतुर्भुज, षड्भुज आदि स्वरूप दिखाया करते थे। वे क्षण-भर में गंगादास मुरारि के घर चले जाते, तो एक क्षण में आचार्यरत्न के मन्दिर में पहुँच जाते। नित्यानन्द तो सब समय उनके साथ रहते ही थे। प्रभु और नित्यानन्द के बीच कभी भी विच्छेद नहीं होता था।

(८१) गौः भाः—प्रत्येक भक्त अपने हृदय की सभी प्रवत्तियों के द्वारा सर्वतोभाव से प्रभु की सेवा करता रहता है। प्रभु भी उन सबकी सेवा ग्रहण करते हुये प्रत्येक को अपना प्रियतम मानते हैं। ऐसा परिचछन्न (आच्छादित चेतन सम्पन्न) जीवों के प्रति प्रयोग नहीं किया जा सकता, इसलिए श्रीचैतन्यचन्द्र के अवतारी होने का प्रचार निरन्तर होता रहा है। प्रत्येक भक्त ही अपने-अपने रस से भागवत्-सेवा में अपने को यथोचित नियुक्त रहा है। प्रत्येक भक्त ही अपने-अपने रस से भगवत्-सेवा में अपने को यथोचित्त नियुक्त करके भगवान् की पूर्ण प्रीति का पात्र बनता है। सभी समझते हैं कि "भगवान् मुझे जितना प्यार करते है; उतना और किसी को नहीं करते।" एक ही प्रधानता और दूसरे की अप्रधानता-हेतु जो विषमता जगत् में ईर्ष्या को उत्पन्न कराती है, वैसी विचारधारा शुद्धभक्तगणों के बीच

अपना स्थान नहीं बना पाती।

(८२) गौः भाः—चिन्मय वृत्ति–द्वारा भगवान् हर समय ही आकर्षण और अनुशीलनता की वस्तु होते हैं। सारा चेतन जगत् सेवा–तत्परता से सर्वक्षण एकमात्र जिनका अनुसंधान किया करता है, वे ही सेव्य भगवान् इसके बदले में सभी को अपना प्रेमभाजन मानकर प्रीतिपूर्वक आलिंगन द्वारा उनका मनोरथ पूर्ण किया करते हैं

(८३) गौः भाः—शंख–चक्र–गदा–पद्मयुक्त चारों भुजाओं को धारण करके महाप्रभु ने अनेक भाग्यवान् व्यक्तियों को अपने नारायण–स्वरूप का दर्शन कराया और किसी–किसी का तो अपना षड्भुज स्वरूप भी दिखाया। श्रीनृसिंह की दो भुजाएँ, श्रीराम की दो भुजाँए और श्रीकृष्ण की दो भुजाएँ एक साथ मिलकर षड्भुज रूप हुआ। नृसिंह के दाएँ हाथ में भक्त–वात्सल्य एवं बाएँ हाथ में नाखूनों के द्वारा भक्तद्वेषी का विदारण, रामचन्द्र के धनुर्वाण–युक्त दो हाथों से भोगी–सम्प्रदाय की प्रतिष्ठाशा का संहार एवं कृष्ण के दोनों हाथों में मुरली के द्वारा प्रेमभाजनजनों को अपनी ओर आकर्षण,—इन तीनों लीलाओं को एक ही अवतार में प्रदर्शन करने के लिए श्रीगौरसुन्दर ने षड्भुज स्वरूप को दर्शाया था। किसी–किसी समय उनके षड्भुज स्वरूप में धन की अभिलाषा, प्रतिष्ठा की आशा एवं काम–भोग की तत्परता के अवसान (समापन) की दूसरी कथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। राम की दोनों भुजाओं में धनुर्वाण, कृष्ण की दोनों भुजाओं में मुरली एवं चैतन्यदेव की दोनों भजाओं में हम दण्ड–कमण्डलु के दर्शन करते हैं। इससे रमा की कनक–लंका विध्वंसी दो भुजाएँ, ब्रजेन्द्रनन्दन की रतिलोलुप मदन–विध्वंसी मुरलीधर दो भुजाएँ और जीवों की कामिनी–आहरण चेष्टारूप प्रतिष्ठाशा नष्ट करने वाली दो भुजाएँ ज्ञापित होती हैं। अद्वयज्ञान के फथ से अलग नाना प्रकार के मतवादों और पथों के पथिकगणों को भक्ति से विमुख कराकर जिन्होंने जगत् में कुतर्क–जंजाल को उपस्थित किया था, श्रीगौर प्रभु के एक हाथ दूसरे हाथ में प्रेम–रस–भाजन–स्वरूप कमण्डलु को धारण करके उन्होंने आध्यक्षिक प्रतिष्ठा के अभिलाषी मनुष्यों के कैतव–मूल (छल–छद्म) को उन्मूलित किया है।

(८५) गौः भाः—परम उत्कृष्ट विचारों और कार्यो के प्रदर्शन के लिए हर समय नित्यानन्द के साथ महाप्रभु के अवस्थान की लीला प्रदर्शित हुई है।

महाप्रभु के बहुविध अचिन्त्य भावावेश—

नित्यानन्द–स्वरूपेर बाल्य निरन्तर।
सर्वभावे आवेशित प्रभु–विश्वम्भर॥८६॥
मत्स्य, कूर्म्म, वराह, वामन, नरसिंह।
भाग्य–अनुरूप देखे चरणेर भृंग॥८७॥
कोनदिन गोपीभावे करेन रोदन।
कारे बले 'रात्रि–दिन'—नाहिक स्मरण॥८८॥
कोनदिन उद्धव–अक्रूर–भाव हय।
कोनदिन राम–भावे मदिरा याचय॥८९॥
कोनदिन चतुर्मख–भावे विश्वम्भर।
ब्रह्म–स्तव पड़ि' पड़े पृथिवी उपर॥९०॥
कोनदिन प्रहलाद–भावेते स्तुति करे।
एइमत प्रभु भक्ति–सागरे विहरे॥९१॥
देखिया आनन्दे भासे शची–जगन्माता।
'बाहिराय पुत्र पाछे'—एइ मनःकथा॥९२॥
आइ बले,—''बाप, गिया कर गंगास्थान।''
प्रभु बले,—''बल माता, 'जय कृष्ण राम'॥९३॥
यत किछु करे शची पुत्रेर उत्तर।

'कृष्ण' बइ किछु नाहि बले विश्वम्भर॥९४॥
आचिन्त्य आवेश सेइ बुझन ना याय।
यखन ये हय, सेइ अपूर्व देखाय॥९५॥

(८६-९५) प० अनु०—नित्यानन्द-स्वरूप स्वभाव से निरन्तर बाल्य भाव में अवस्थित रहते थे और विश्वम्भर प्रभु सभी भावों से आवेशित रहते थे। उनके श्रीचरणों में भ्रमर-रूपी भृत्यगण अपने भाग्य के अनुसार उनमें मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, नरसिंह इत्यादि रूपों का दर्शन करते रहते थे। किसी-किसी दिन वे गोपीभाव मे आकर रोते रहते थे। उस समय दिन-रात किसे कहते हैं, इसका भी कुछ स्मरण उन्हें नहीं रहता था। किसी-किसी दिन उद्धव और अक्रूर के भाव उनमें दिखाई देते थे तो किसी-किसी दिन बलराम के भाव में आकर वे मदिरा माँगने लगते थे। किसी-किसी दिन चतुर्मख ब्रह्मा के भाव से आवेशित होकर वे ब्रह्म-स्तव पढ़ते हुये पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ते थे। किसी-किसी दिन प्रह्लाद के भाव में स्थित होकर वे स्तुति करते रहते थे। इस प्रकार प्रभु निरन्तर भक्ति के सागर में ही बहते रहते थे। यह सब देख-देखकर जगन्माता शची सदा आनन्द में विभोर रहती थीं। केवल एक बात उनके मन में अवश्य उभरती रहती थी कि,—"कहीं पुत्र घर से चला न जाए।" आइ कहतीं,—"पुत्र! जाकर गंगास्नान कर आओ।" प्रभु कहते,—"माता, 'जय कृष्ण-राम' कहो!" शचीदेवी जो कुछ भी कहती थीं, उसके उत्तर में विश्वम्भर 'कृष्ण' के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहते थे। वह आवेश अचिन्त्य था, उसको समझा नहीं जा सकता। प्रभु जब जिस रूप को अपनाते थे, उसी रूप में वे अपूर्व दिखाई देते थे।

(८७) गौः भाः—महाप्रभु मर्यादा-मार्ग के उपासनीय तत्त्व के रूप में विभिन्न वैकुण्ठ-पति-समूह एवं मत्स्य, कुर्म्म, वामन, नृसिंह, रामादि नैमित्तिक परव्योमपति समूह के रूपों में भगवद् भक्तों की योग्यतानुसार अपना स्वरूप प्रदर्शित करने लगे। विष्णु की विभिन्न मूर्तियों का दर्शन करके भेद बुद्धिविशिष्ट व्यक्तिगण उनमें देवान्तर की कल्पना न किया करें, इसी को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से भगवान् ने विभिन्न प्रकार के स्तावकों (सेवकों) की रूचि (भावना) के अनुसार अपने नित्य विग्रह-समूह को प्रदर्शित किया था। भगवद्-उपासना का परित्याग करके कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा के लोभ में जो सब मानव भगवान् के अनित्य रूप की कल्पना करके अपने भोगों के चरितार्थता का आस्फालन (गर्व) किया करते हैं, उनको उससे मुक्त करने के लिए ही भगवान् निमित्त का छल अपनाकर प्रपंच में अपनी नित्यमूर्तियों के प्राकट्य द्वारा अवतरण लीलाएँ प्रदर्शित करते रहते हैं। अवतारी श्रीमन् महाप्रभु में उन सभी नित्य लीलाओं का प्राकट्य अलग-अलग नित्य सेवकगणों में उच्छलित (प्रकाशित) होकर उन लोगों की आत्मविद्या की पराकाष्ठा लीला के रूप में प्रदर्शित हुआ था।

(८८) गौः भाः—किसी समय मधुर-रति के आश्रय से उपासना करने वाले उपासकों के अनुगत जनगण के निकट उन्होंने (गौरांग महाप्रभु ने) गोपीभाव की चेष्टाओं को प्रदर्शित करते समय दिन-रात बाह्य स्मृति के अभाव का प्रदर्शन करके माथुर-विरह आदि-लीलाओं का प्रदर्शन किया।

(८९) गौः भाः—किसी समय (गौर प्रभु) अक्रूर के विचार से क्षुभित होकर गोपीजनों के भाव में विभावित रहते थे। किसी समय उद्धव के द्वारा दिये गये आश्वासन वाक्यों

से थोड़ा–सा धीरज धारण करते, किन्तु दूसरे ही क्षण उच्छृंखलतामय विप्रलम्भ पर अधिरूढ़ महाभाव का प्रदर्शन करने लगते। किसी समय अपने को 'रोहिणेय' (रोहिणी का पुत्र बलराम) समझकर मदिरापन की अभिलाषा प्रकट करने लगते। इससे किसी को ऐसा नहीं समझना चाहिए कि, उन्होंने "अन्तः शाक्तो बहिः शैवः सभायां वैष्णवो मतः" इस विचार की शिक्षा भक्तगण को दी है। विष्णु की विभिन्न लीलाएँ केवल सेव्यवस्तु के एकमात्र अधिकार के अन्तर्गत हैं,—इसकी जानकारी देने के लिए एवं आश्रय जातीय विभिन्न अंशों में जीव–समूह नित्य अवस्थित हैं,—इस बात के उपदेश–प्रसंग में, श्रीगौर अवतार में श्रीकृष्णचन्द्र ने जो–जो लीलाएँ प्रदर्शित की हैं, वे विषय एवं उनको आश्रय जातीय विभिन्न अंश (जीव) न समझ बैठे, इसलिए ही श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत जनों ने विशेष रूप से सतर्क किया है। श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत जनों का विरोध करने वाले साहित्यिक सम्प्रदाय जड़ कार्यों के विनोद में व्यस्त रहने के कारण श्रीगौर के आनुगत्य से विक्षिप्त होकर श्रीगौर के निजजनों के विरोध करने लगते हैं। श्रीचैतन्यदेव ने उस प्रकार के अंमगल के निराकरण के लिए अपनी लीलाओं में अलग–अलग प्रतिद्वन्द्वी भाव–समूहों का प्रदर्शन किया है। बद्धजीव, वामन (बौने) के द्वार चन्द्रमा को छूने के प्रयास की भाँति, उच्छृंखल होकर अपने को अथवा उसकी अपनी जाति क विभिन्न अंश–स्वरूप जीवों को 'भगवदावतार' कल्पित न किया करें, इसका निषेध करने के लिए ही आचार्य के निजी–स्वरूप का प्रदर्शन करते हुये विषय एवं आश्रय विग्रह की परस्पर वास्तविक रूप से सेव्य–सेवक–भाव–विन्यास (क्रम से सजाई हुई) लीलाएँ प्रदर्शित की गई हैं।

(९०) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव अपने को श्रीब्रह्म सम्प्रदाय के परम्परानुवर्ती रूप में प्रदर्शित करते हुये वेदानुग–स्तावकगणों का मंगल करने की इच्छा से ब्रह्मस्तवों का पाठ किया करते थे एवं अपने विरिंचित्व के ज्ञानपार्थ लोगों के बीच प्रचार करते थे।

(९१) गौः भाः—किसी–किसी दिन गौर प्रभु प्रह्लाद की भाँति भक्ति के प्रचारक बनकर स्तवन आदि किया करते थे। वे भक्ति–समुद्र के विभिन्न भाव–धाराओं में विचरण लीला का प्रदर्शन करेन के उद्देश्य से आश्रय के आनुष्ठानिक भाव–समूह की शिक्षा देते थे। उन्होंने यह दिखाया है कि आश्रय के विभिन्न अंश–स्वरूप जीवसमूह विषयजातीय (उपास्य स्वरूप श्रीविष्णु) के विग्रह नहीं बन सकते।

(९२) गौः भाः—प्रभु के विभिन्न उन्माद जैसे भाव समूहों को देखकर जगन्माता शचीदेवी आनन्द में निमग्न हो गईं; परन्तु मन–ही–मन वे उद्विग्न भी थीं। इसका कारण यह आशंका थी कि, प्रभु कहीं घर को त्यागकर न चले जायें।

(९५) गौः भाः—जब कोई आवेश प्रभु में उपस्थित होता था, तब वह पहले कभी दिखाई न दिये जाने के कारण अपूर्व जैसा लगता था। उसे साधारण व्यक्ति समझ नहीं पाते थे और वे सब आवेश उनके चिन्तन–राज्य के परे की वस्तु होकर रह जाते थे।

शिवगीत सुनकर महाप्रभु का शंकरावेश एवं शिव–गायक के कंधो पर आरोहण—

एकदिन आसि' एक शिवेर गायन।
डम्बुर बाजाय, गाय शिवेर कथन॥९६॥
आइल करिते भिक्षा प्रभुर मन्दिरे।

गाहये शिवेर गीत, बेड़ि' नृत्य करे॥९७॥
शंकरेर गुण शुनि' प्रभु विश्वम्भर।
हइला शंकर मूर्ति दिव्य–जटाकर॥९८॥
एक लम्फे उठे तार कान्धेर उपर।
हुँकार करिया बले—'मुञि से शंकर'॥९९॥
केह देखे जटा, शिंगा, डमरु बाजाय।
'बोल बोल' महाप्रभु बलये सदाय॥१००॥
से महापुरुष यत शिव–गीत गाइल।
परिपूर्ण फल तार एकत्र पाइल॥१०१॥
सेइ त' गाइल गीत निरपराधे।
गौरचन्द्र आरोहण कैला तार कान्धे॥१०२॥
बाह्य पाइ' नामिलेन प्रभु–विश्वम्भर।
आपने दिलेन भिक्षा झुलिर भितर॥१०३॥
कृतार्थ हइया सेइ पुरुष चलिल।
'हरिध्वनि' सर्वगणे मंगल उठिल॥१०४॥
जय पाइ' उठे कृष्णभक्तिर प्रकाश।
ईश्वर सहित सर्व–दासेर विलास॥१०५॥

(९६–१०५) प० अनु०—एकदिन कोई शिव–गायक आकर, डमरू बजाते हुये शिव की महिमा गाने लगे। महाप्रभु के घर में वे भिक्षा करने आये थे। वे शिव के गीत गाकर घूमते हुये नृत्य करने लगे। शंकर के गुणों को सुनकर विश्वम्भर प्रभु दिव्य तटाधारी शंकर–स्वरूप हो गये तथा एक छलांग लगाकर उस शिवगायक के कंधों पर चढ़ गये और हुँकार करते हुये बोले,—"मैं ही शंकर हूँ।" किसी ने उनमें जटा, सिंगा आदि को देखा, किसी ने देखा कि वे डमरू बजा रहे हैं। उस समय महाप्रभु निरन्तर 'बोल बोल' कहते जा रहे थे। उस महापुरूष ने जीवन भी जितने भी शिवगीत गाये थे, उनका परिपूर्ण फल उनको एक साथ आज मिल गया था। उन्होंने बिना अपराध के ही गीत गाये थे। उसी के फलस्वरूप भगवान् गौरचन्द्र ने स्वयं उनके कंधों पर आरोहण किया था। बाह्य चेतना प्राप्त होने पर प्रभु विश्वम्भर नीचे उतरे और अपने ही हाथों से स्वयं उसकी झोली में भिक्षा प्रदान की। वे महापुरूष कृतार्थ होकर चले गये। उपस्थित सभी भक्तमण्डली के मध्य से मंगलमय 'हरिध्वनि' उठने लगी। जयध्वनि होने से कृष्ण भक्ति का प्रकाश प्रस्फुटित होने लगा—ईश्वर के साथ उनके सभी दासों का विलास दिखाई देने लगा।

(९७) गौः भाः—शिव–महिमा के गीत गाते हुये घूम–घूम कर नृत्य करते हैं।

(१०२) गौः भाः—शिव–गीत के गायक–द्वारा निरपराध पूर्वक शिव का कीर्तन हुआ था, उसी के फलस्वरूप उसके कंधों पर गौरसुन्दर ने आरोहण किया था।

कीर्तन–विलास के लिए महाप्रभु के द्वारा किया गया प्रस्ताव—

प्रभु बले,—"भाइ–सब, शुन मन्त्रसार।
रात्रि केने मिथ्या याय आमा सबाकार॥१०६
आजि हैते निर्बन्धित करह सकल।
निशाय करिब सबे कीर्तन–मंगल॥१०७॥
संकीर्तन करिया सकल गण–सने।
भक्तिस्वरूपिनी गंगा करिब मज्जने॥१०८॥
जगत उद्धार हउ शुनि' कृष्णनाम।
परमार्थे तोमरा सबार धन–प्राण॥"१०९॥

(१०६–१०९) प० अनु०—प्रभु कहने लगे,—"सुनों भाइयों! मन्त्रणाओं की सार कथा सुनो! हम सबकी रात यों ही बेकार क्यों चली जाए? आज से सभी यह दृढ़ संकल्प कर लो कि, रात को हम सब मिलकर मंगलमय कीर्तन करेंगे। सबके साथ संकीर्तन करते हुये हम सब भक्ति स्वरूपिणी गंगा

में स्नान करेंगे। कृष्ण नाम को सुनकर इस जगत् का उद्धार हो जाए। परमार्थ में तुम लोग सबके धन प्राण हो।"

(१०७) गौः भाः—निर्बन्धित—दृढ़संकल्प। सभी मिलकर यह दृढ़संकल्प कर लो कि, आज से प्रत्येक रात को कीर्तनरूपी मंगलमय उत्सव मनायेंगे।

सोलह नाम तथा बत्तीस अक्षरों वाले महामन्त्र से बिना पतित हुये, निर्बन्ध (स्थिर संख्या) पूर्वक नित्य निशाकाल में कीर्तन करने का संकल्प ले लिया।

वैष्णवों का आनन्द एवं केवल पार्षदगण के संग कीर्तन विलास का आरम्भ—

सर्व–वैष्णवेर हइल शुनिया उल्लास।
आरम्भिला महाप्रभु कीर्तन–विलास॥११०॥
श्रीवास–मन्दिरे प्रति निशाय कीर्तन।
कोनदिन हय चन्द्रशेखर भवन॥१११॥
नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास।
विद्यानिधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास॥११२॥
गंगादास, वनमाली, बिजय, नन्दन।
जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान, नारायण॥११३॥
काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुड़ाइ।
गोविन्द, गोविन्दानन्द, आछेन तथाइ॥११४॥
गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान, श्रीधर।
सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर॥११५॥
ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम, संजयादि यत।
अनन्त चैतन्य–भृत्य नाम जानि कत॥११६॥
सबेइ प्रभुर नृत्ये थाकेन संहति।
पारिषद बइ आर केह नाहि तथि॥११७॥
प्रभुर हुँकार, आर निशा हरिध्वनि।
ब्रह्माण्ड भेदये येन हेनमत शुनि॥११८॥

(११०–११८) प० अनु०—सभी वैष्णव यह सुनकर उल्लसित हुये। महाप्रभु ने कीर्तन का विलास आरम्भ किया। प्रत्येक रात को श्रीवास के मन्दिर (घर) में और किसी-किसी दिन चन्द्रशेखर के भवन मे कीर्तन होने लगा। नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत, श्रीवास, विद्यानिधि, मुरारि, हिरण्य, हरिदास, गंगादास, वनमाली, विजय, नन्दन, जगदानन्द, बुद्धिमन्त खान, नारायण, काशीश्वर, वासुदेव, राम, गरुड़ाइ, गोविन्द और गोविन्दानन्द वहीं उपस्थित थे। गोपीनाथ, जगदीश, श्रीमान, श्रीधर, सदाशिव, वक्रेश्वर, श्रीगर्भ, शुक्लाम्बर, ब्रह्मानन्द, पुरुषोत्तम, संजय आदि और जितने भी भक्त थे, वे सब चैतन्य के अनन्त भृत्यों में से थे। उन सभी का नाम मैं कैसे जान सकता हूँ, प्रभु के नृत्य में सभी एकत्र थे। प्रभु के पार्षदो को छोड़कर और अन्य कोई वहाँ नहीं था। प्रभु की ब्रह्माण्ड को भेदन जैसी हुँकार और हरिध्वनि रात को सुनाई देने लगी।

(११८) गौः भाः—जगत् के लोग दिन में विषयकार्यों में मस्त रहते हैं और रात को नींद में डूब जाते है। परन्तु प्रभु के आश्रित भक्तगण रात्रि के समय नींद में न डूब कर रात को भी उसी प्रकार हरिकीर्तन करने लगे, जैसे वे दिन में निरन्तर हरिकीर्तन किया करते थे।

प्रभु की हुँकार एवं हरिध्वनि को सुनकर पाखण्डियों की मत्सरता—

शुनिया पाषण्डी–सब मरये बलूगिया।
निशाय एगुला खाय मदिरा आनिया॥११९॥
एगुला सकले मधूमती–सिद्धि जाने।
रात्रि करि' मन्त्र जपि' पंचकन्या आने॥१२०॥
चारि प्रहर निशा—निद्रा याइते ना पाइ।
'बोल बोल' हुँहकार, शुनिये सदाइ॥१२१॥

बलूगिया मरये यत पाषण्डीर गण।
आनन्दे कीर्तन करे श्रीशचीनन्दन॥१२२॥

(११९–१२२) प० अनु—उसे सुनकर सभी पाखण्डी ईर्ष्या से जलने लगे और कहने लगे कि, वे लोग मदिरा लाकर रात को पीते हैं। वे सब मधुमती सिद्धि को जानते हैं। वे रात में मन्त्र का जाप करके पाँच प्रकार की कन्या को ले आते हैं। चार प्रहर वाली रात में हमें नींद नहीं आ पाती है। 'बोल, बोल' शब्द की हुँकारें हमें निरन्तर सुनाई देती रहती हैं। ऐसा कहकर पाखण्डी लोगा दम्भ के साथ हाथ–पैर पीटते हुये दुःख प्रकाश करने लगे। परन्तु श्रीशचीनन्दन आनन्द–सहित कीर्तन करने में मस्त रहे।

(११९) गौः भाः—जो लोग भगवद् भक्ति के विरोधी थे, उन लोगों में पाखण्ड भाव बहुत अधिक था। उन सभी का कहना था कि, ये (भक्तगण) अकारण ही रात–भर शोर मचाते हुये मरे जा रहे हैं। रात को मदिरा पीकर ये सब हल्ला–गुल्ला करते रहते हैं।

बलगिया,—वलग +'भाव में अ' वलगा—आस्फालन सहित नृत्य।

(१२०) गौः भाः—भक्तगण मधमती नाम की सिद्धि को प्राप्त करके मन्त्र के प्रभाव से पाँच प्रकार की कुमारी कन्याओं को बुलाकर उनके साथ व्यभिचार किया करते हैं। तामस स्वभाव के तान्त्रिकों के पंच 'म' कार एवं वीर आचार–आदि नाना प्रकार के लोकनिन्दित आचरणों के कारण मध्ययुग अपवित्र था। भक्ति से विद्वेष करने वाले जनसमूह निष्काम भाव से कीर्तन करने वाले भक्तगणों के प्रति इस प्रकार के कुस्सित भावपूर्ण आरोप लगाने से भी पीछे नहीं रहे थे।

मधुमती सिद्धि,—उपास्य–नायिका–विशेष; यथा—'तथा मधुमती–सिद्धिर्जायते नात्र संशयः। देवचेटी शतशतं तस्या वश्या भवन्ति हि॥ स्वर्गे मर्त्ये च पाताले स यत्र गंतुमिच्छति। तत्रैव चेटिकाः सर्वा नयन्ति नात्र संशय॥"—(इति कृकलासदीपिकायां ३यः पटलः)।

(१२१–१२२) गौः भाः—रात्रिकाल—चार प्रहर। भक्तगण रोज रात में ही हरिनाम ध्वनि के द्वारा जीवों को तामसिक भाव के आश्रय से दूर रखने की कोशिश करते थे। इससे उन लोगों की नींद में व्याघात होता था। इस कारण वे नाराज होते थे, परन्तु शचीनन्दन कीर्तन के आनन्द में मस्त रहते थे।

कीर्तन श्रवणमात्र से महाप्रभु का
भावावेश में भूमि पर गिर जाना एवं
यह देखकर शची का दुःख—

शुनिले कीर्तन मात्र प्रभुर शरीरे।
बाह्य नाहि थाके, पड़े पृथिवी उपरे॥१२३॥
हेन से आछाड़ प्रभु पड़े निरन्तर।
पृथ्वी हय खण्ड खण्ड, सबे पाय डर॥१२४॥
से कोमल शरीरे आछाड़ बड़ देखि'।
'गोविन्द' स्मरये आइ मुदि' दुइ आँखि॥१२५॥
प्रभु से आछाड़ खाय वैष्णव–आवेशे।
तथापिह आइ दुःख पाय स्नेह वशे॥१२६॥
आछाड़ेर आइ ना जानेन प्रतिकार।
एइ बोल बले काकु करिया अपार॥१२७॥
''कृपा करि' कृष्ण, मोरे देह' एइ वर।
ये समये आछाड़ खायेन विश्वम्भर॥१२८॥
मुञि येन ताहा नाहि जानों से समय।
हेन कृपा कर मोरे कृष्ण महाशय॥१२९॥
यद्यपिह परानन्दे ताँर नाहि दुःख।
तथापिह ना जानिले मोर बड़ सुख॥''१३०॥

(१२३–१३०) प० अनु०—कीर्तन सुनने मात्र से प्रभु के शरीर में बाह्य चेतना नहीं रहती थी और वे पृथ्वी पर गिर जाते थे।

वे निरन्तर ऐसी पछाड़ें खाते थे कि, जैसे पृथ्वी खण्ड–खण्ड हो जाती थी। यह देखकर सभी को डर लगता था। उस कोमल शरीर से बड़ी–बड़ी पछाड़ें खाते देखकर आई दोनों आँखें बंद करके गोविन्द का स्मरण करने लगती थीं। यद्यपि प्रभु वैष्णव आवेश में ऐसी पछाड़ें खाया करते थे; फिर भी स्नेहवश आई को दुःख होता था। पछाड़ों को कोई भी हल आई को नहीं सूझ रहा था। अत्यन्त व्याकुलचित्त होकर बस वे यही कहती रहती थीं—"हे कृष्ण, कृपया मुझे यह वर दीजिए कि, जिस जानकारी न हो। हे कृष्ण! मुझपर ऐसी ही कृपा कीजिए।"च यद्यपि परम आनन्द में मग्न रहने के कारण गौरांग का कोई दुःख नहीं होता, तथापि, यदि मैं न जानूँ, तेा मुझे बहुत सुख मिलेगा।

(१२४) गौः भाः—आश्रयरहित होकर प्रभु के भूमि के ऊपर गिर जाने से भूमि विदीर्ण हो जाती थी, इससे सबको आशंका होती थी।

(१३१–१३७) प० अनु०—आई के हृदय की इच्छा को जानकर गौरचन्द्र ने उन्हें उनकी इच्छानुसार परम आनन्द प्रदान किया। जब तक प्रभु हरिसंकीर्तन करते थे, उतने समय तक आई का बाह्यज्ञान लुप्त हेा जाता था। उतने समय तक आई का बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता था। गौरप्रभु आनन्द में निरन्तर नृत्य करते रहते थे। तथा उनको बीच में रखकर उनके चारों ओर सभी अनुचर रातदिन गाते रहते थे। किसी–किसी दिन महाप्रभु कि मन्दिर (घर) में भक्तगण कीर्तन करते थे और श्रीशचीनन्दन नृत्य करते थे, तो कभी रोते हुये कहते थे, "मैं दास हूँ।" भाइयों! अनन्त ब्रह्माण्ड में उनके समान और कोई नहीं है। प्रभु जैसा नृत्य करते थे, भक्तवृन्द महा आनन्द में वैसा ही कीर्तन करते थे।

जननी के हृदय की इच्छा को जानकर गौरसुन्दर के द्वारा जननी को परमानन्द दान—

आइर चित्तेर इच्छा जानि' गौरचन्द्र।
सेइ मत ताँहारे दिलेन परानन्द॥१३१॥
यतक्षण प्रभु करे हरि–संकीर्तन।
आइर ना थाके किछु बाह्य ततक्षण॥१३२॥
प्रभुर आनन्दे नृत्ये नाहि अवसर।
रात्रि–दिने वेड़ि' गाय सब अनुचर॥१३३॥
कोनदिन प्रभुर मन्दिरे भक्तगण।
सबेइ गायेन, नीचे श्रीशचीनन्दन॥१३४॥
कखन ईश्वरभावे प्रभुर प्रकाश।
कखन रोदन करे, बले 'मुञि दास'॥१३५॥
चित्त दिया शुन भाइ प्रभुर विकार।
अनन्त ब्रह्माण्डे सम नाहिक याहार॥१३६॥
येमते करेन नृत्य प्रभु गौरचन्द्र।
तेमते से महानन्दे गाय भक्तवृन्द॥१३७॥

(१३१–१३२) गौः भाः—क्योंकि प्रभु को भूमि पर गिरता हुआ देखकर जननी को कष्ट होता था, इसलिए प्रभु ने हरिसंकीर्तन के समय शचीदेवी को आनन्द में आविष्ट करके उनकी बाह्य चेतना का अपहरण कर लिया था ताकि शचीदेवी आनन्द को छोड़कर दुःख का अनुभव न कर पायें।

(१३६) गौः भाः—महाप्रभु के प्रेम–विकारों के साथ चतुर्दश भुवन में, कभी भी, किसी भक्त के विकारों की तुलना नहीं हो सकती। जो–कपट स्वभाव के व्यक्ति दूसरे लोगों को ठगने के लिए प्रभु की भाँति प्रेम–विकारों को प्रदर्शन करते हैं, जानना होगा कि, उन लोगों में प्रेम का अभाव है।

श्रीवास–प्राङ्गण में श्रीहरिवासर के समय प्रातःकाल कीर्तन एवं नृत्य का शुभारम्भ—

श्रीहरिवासरे हरि–कीर्तन–विधान।

नृत्य आरम्भिला प्रभु जगतेर प्राण॥१३८॥
पुण्यवन्त श्रीवास–अंगने शुभारम्भ।
उठिल कीर्तन ध्वनि 'गोपाल गोविन्द'॥१३९॥
ऊषःकाल हैते नृत्य करे विश्वम्भर।
यूथ यूथ हैल यत गायन सुन्दर॥१४०॥
श्रीवासपण्डित लइया एक सम्प्रदाय।
मुकुन्द लइया आर जन–कत गाय॥१४१॥
लइया गोविन्द घोष आर कत–जन।
गौरचन्द्र–नृत्ये सबे करेन कीर्तन॥१४२॥
धरिया बुलेन नित्यानन्द महाबली।
अलक्षिते अद्वैत लयेन पदधूलि॥१४३॥
गदाधर–आदि यत सजल नयने।
आनन्दे विह्वल हैल प्रभुर कीर्तने॥१४४॥

(१३८–१४४) प० अुन०—श्रीहरिवासर में (एकादशी में आदि उपवास के दिन) हरि–कीर्तन का विधान है। इस विधान को मानते हुये जगत के प्रभु, सबके प्राण–स्वरूप श्रीविश्वम्भर ने नृत्य का शुभारम्भ किया। पुण्यवान् श्रीवास के आंगन में इसका शुभारम्भ हुआ। चारों ओर 'गोपाल गोविन्द' बोलकर कीर्तन की ध्वनि गूँज उठी। उषाकाल से ही विश्वम्भर ने नृत्य करना आरम्भ कर दिया था। विभिन्न सम्प्रदाय के गायकों ने सुन्दर कीर्तन सहित उनका साथ दिया। श्रीवास पण्डित एक सम्प्रदाय को लेकर और मुकुन्द कुछ और भक्तों के साथ मिलकर कीर्तन करने लगे। गोविन्द घोष कुछ और भक्तों को साथ लेकर सभी मिलकर एक साथ गौरचन्द्र के नृत्य में कीर्तन करने लगे। महाबली नित्यानन्द प्रभु को धारण करते हुये घूमने लगे और अद्वैत अलक्षित रहकर प्रभु के चरणों की धूल लेने लगे। गदाधर आदि सभी के नेत्रों से आनन्द में अश्रुधारा बहने लगी और प्रभु के कीर्तन में वे आनन्द से विह्वल हो गये।

(१३८) गौः भाः—श्रीहरिवासर–एकादशी आदि उपवास के दिन भगवान् गौरसुन्दर ने नृत्य के साथ विहित हरिकीर्तन का आरम्भ किया।

श्रीहरिवासर—श्रीहरि के दिन, अर्थात् एकादशी, द्वादशी एवं श्रीहरि की जन्म तिथि–समूह।

श्रीहरिवासर में उपवास–पूर्वक भक्ति के साथ हरि का चिन्तन एवं हरिमन्त्र का जाप करके एवं हरिकर्म परायण होकर तथा मन को सम्पूर्ण भाव से उनमें समर्पित करते हुये कामनाओं से परे होने पर निःसन्देह प्रह्लाद की तरह हरिधाम को प्राप्त किया जा सकता है। महती श्रद्धा के साथ गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अति उत्तम नैवेद्य, बहुविध उपहार, जाप, होम, प्रदक्षिण, नाना प्रकार की स्तुतियाँ, मनोरंजनपूर्ण नृत्य, गीत, वाद्य, दण्डवत्–नमस्कार एवं दिव्य जय शब्द आदि के साथ श्रीहरि का अर्चन करना एवं रात को श्रीहरिकथा कीर्तन करते हुये जागरण करना ही हरिपरायण जनों के कर्तव्य हैं।–(श्रीहरिभक्ति–विलास)

(१३९) गौः भाः—श्रीवास का आंगन अनेक पुण्यों का आश्रयस्थल था; क्योंकि, वहाँ 'गोपाल गोविन्द कीर्तन ध्वनि का शुभारम्भ हुआ था।

(१४०) गौः भाः—सूरज के उदय होने से पहले ही प्रभु ने स्वयं नृत्य करते हुये विभिन्न सम्प्रदायों के गायकों द्वारा कीर्तन करवाया था।

कीर्तन में महाप्रभु बहुविध अति
अद्भुत भावावेश–

शुनह चल्लिश पद प्रभुर कीर्तन।
ये विकारे नाचे प्रभु जगत–जीवन॥१४५॥
भाटियारी राग—
चौदिके गोविन्दध्वनि, शचीर नन्दन नाचे रंगे।

विह्वल हइला सब पारिषद संगे॥१४६॥
हरि ओ राम॥ ध्रु ॥
यखन कान्दये प्रभु प्रहरेक कान्दे।
लोटाय भूमिते केश, ताहा नाहि बान्धे॥१४७॥
से क्रन्दन देखि' हेन कोन् काष्ठ आछे।
ना पड़े विह्वल हैया से प्रभुर काछे॥१४८॥
यखन हासये प्रभु महा–अट्टहास।
सेइ हय प्रहरेक आनन्द–विलास॥१४९॥
दास्यभावे प्रभु निज महिमा ना जाने।
'जिनिलुँ जिनिलुँ' बलि उठे घने घने॥१५०॥
तथाहि—
जितं जितमिति अतिहर्षेण कदाचिद्युक्तो।
वदति तदनुकरणं करोति जितं जितमिति॥१५१॥
क्षणे क्षणे आपने ये गाय उच्चध्वनि।
ब्रह्माण्ड भेदये येन हेनमत शुनि॥१५२॥
क्षणे क्षणे हय अंग ब्रह्माण्डेर भर।
धरिते समर्थ केह नहे अनुचर॥१५३॥
क्षणे हय तुला हइते अत्यन्त पातल। हरिषे करिया कांधे बुलये सकल॥१५४॥
प्रभुरे करिया कांधे भागवतगण।
पूर्णानन्द हइ' करे अंगने भ्रमण॥१५५॥
यखने या हय प्रभु आनन्दे मूर्च्छित।
कर्णमूले सबे 'हरि' बले अति भीत॥१५६॥
क्षणे क्षणे सर्व अंगे हय महाकम्प।
महा शीते बाजे येन बालकेर दन्त॥१५७॥
क्षणे क्षणे महास्वेद हय कलेवरे।
मूर्त्तिमती गंगा येन आइला शरीरे॥१५८॥
कखन वा हय अंग ज्वलन्त अनल।
दिते मात्र मलयज शुखाय सकल॥१५९॥
क्षणे क्षणे अद्भुत बहये महाश्वास।
सम्मुख छाड़िया सबे हय एकपाश॥१६०॥
क्षणे याय सबार चरण धरिवारे।
पलाय वैष्णवगण चारिदिके डरे॥१६१॥
क्षणे नित्यानन्द–अंगे पृष्ठ दिया बसे।
चरण तुलिया सबाकारे चाहि' हासे॥१६२॥
बुझिया इंगित सब भागवतगण।
लुटये चरण–धूलि अपूर्व रतन॥१६३॥
आचार्य गोसाञि बले,—''आरे आरे चोरा।
भांगिल सकल तोर भारिभुरि मोरा॥''१६४॥
महानन्दे विश्वम्भर गड़ागड़ि याय।
चारिदिके भक्तगण कृष्णगुण गाय॥१६५॥
यखन उद्दण्ड नाचे प्रभु विश्वम्भर।
पृथिवी कम्पित हय, सबे पाय डर॥१६६॥
कखनो वा मधुर नाचये विश्वम्भर।
येन देखि नन्देर नन्दन नटवर॥१६७॥
पृथिवीर आलग हइया क्षणे याय।
केह वा देखये, केह देखिते ना पाय॥१६९॥
भावावेशे पाकल लोचने यारे चाय।
महात्रास पाञा सेइ हासिया पलाय॥१७०॥
भावावशे चंचल हइया विश्वम्भर।
नाचेन विह्वल हइया नाहि परापर॥१७१॥
भावावेशे एकबार धरे या 'र पाय।
आर बार पुनः ता 'र उठये माथाय॥१७२॥
क्षणे या 'र गला धरि' करये क्रन्दन।
क्षणेके ताहार कान्धे करे आरोहण॥१७३॥
क्षणे हय बाल्य–भावे परम चंचल।
मुखे वाद्य वाय येन छाओयाल–सकल॥१७४॥
चरण नाचाय क्षणे, खल खल हासे।
जानु–गति चले क्षणे, बालक–आवेशे॥१७५॥
क्षणे क्षणे हय भाव—त्रिभंगसुन्दर।
प्रहरेक सेइमत थाके विश्वम्भर॥१७६॥
क्षणे ध्यान करि' करे मुरलीर छन्द।
साक्षात् देखिये येन वृन्दावनचन्द्र॥१७७॥
बाह्य पाइ' दास्य भावे करये क्रन्दन।

दन्ते तृणे करि' चाहे चरण–सेवन ॥१७८॥
चक्राकृति हइ' क्षणे प्रहरेक फिरे।
आपन चरण गिया लागे निज शिरे ॥१७९॥
यखन ये भाव हय, सेइ अद्भूत।
निज नामानन्दे नाचे जगन्नाथ–सुत ॥१८०॥
घन घन हुँकारय सर्व अंग नड़े।
ना पारे हइते स्थिर, पृथिवीते पड़े ॥१८१॥
गौरवर्ण देह—क्षणे नानावर्ण देखि।
क्षणे क्षणे दुइ गुण हय दुइ आँखि ॥१८२॥
अलौकिक हइया प्रभु वैष्णव–आवेशे।
ये बलिते योग्य नहे, ताओ प्रभु भाषे ॥१८३॥
पूर्वे ये वैष्णव देखि' ' प्रभु' करि' बले।
''ए बेटा आमार दास,'' धरे तार चुले ॥१८४॥
पूर्वे ये वैष्णव देखि' धरये चरण।
तार वक्षै उठि करे चरण अर्पण ॥१८५॥

(१४५) प० अनु०—प्रभु के कीर्तन के उन चालीस पदों को सुनो; जिन पर विभिन्न विकारों के साथ जगत–जीवन प्रभु नृत्य करते थे।

(१४६) प० अनु०—चारों ओर से गोविन्द ध्वनि के बीच शचीनन्दन गौरहरि सभी पारिषद गणों के साथ बहुत ही आनन्द पूर्वक नृत्य करते–करते विह्वल हो रहे थे एवं 'हरि ओ राम' कीर्तन करते थे।

(१४७–१५०) प० अनु०—प्रभु जब रोने लगते, तो एक प्रहर तक रोते रहते। भूमि पर लोटते हुये उन्हें केशों को बाँधने तक का अवसर नहीं मिलता। काष्ठ के समान कठोर हृदय वाला ऐसा कोई नहीं था, जो इस क्रन्दन को देखकर विह्वल होते हुये प्रभु के निकट नहीं गिर पड़ा हो। जब प्रभु हँसते थे, तब एक प्रहर तक महा अट्टहास सहित आनन्द–विलास करने में लगे रहते थे। दास्यभाव में स्थित प्रभु अपनी महिमा को नहीं जान पाते थे। वे बारम्बार यही कहते रहते कि "मैंने जीत लिया, मैंने जीत लिया।"

(१४७) गौः भाः—प्रभु का केशगुच्छ बिखरा रहता था। क्रन्दन के समय एक प्रहर के भीतर उन बिखरे हुये केशों का बंधन करने का अवकाश उन्हें नहीं मिलता था।

(१५१) अन्वय—(महाप्रभुः) अतिहर्षेण युक्तः (सन्) 'जितं जितं' इति वदति (तदा भक्तगणोऽपि) 'जितं जितं इति (एवंरूपेण) तदनुकरणं (तस्य ध्वनेरनुकृतिं) करोति।

(१५१) अनुवाद—महाप्रभु अतिशय हर्षान्वित होकर 'जितं जितं कहना आरम्भ कर देते थे, तब भक्तगण भी जितं जितं का घोष करते हुए उनके द्वारा की गई ध्वनि का अनुकरण करने लगते थे।

(१५२–१८५) प० अनु०—क्षण–क्षण में वे प्रभु अपने आप इतनी उच्चध्वनि से कीर्तन करते थे कि, लगता था, जैसे वह ध्वनि ब्रह्माण्ड का भेदन कर रही हो। क्षण–क्षण में उनके श्रीअंग ब्रह्माण्ड जैसे भारी हो जाते थे। तब कोई भी अनुचर उनको संभालने में समर्थ नहीं होता था। क्षण–भर में वे रुई से भी अधिक हलके हो जाते थे। उस समय सभी उनको कंधों पर उठाकर आनन्द के साथ घूमने लगते थे। भागवतगण प्रभु को अपने कन्धों पर उठाकर पूर्ण आनन्द के साथ आंगन में भ्रमण करते थे। जब भी प्रभु आनन्द से मूर्च्छित हो जाते थे, तभी सब लोग भयभीत होकर उनके कानों के पास 'हरि' 'हरि' बोलने लगते। क्षण–भर में उनके सारे अंगों में महाकम्प होने लगता था। ऐसा कम्प जैसे बहुत ठंड में बालकों के दाँत बजने लगते हैं। क्षण–क्षण में उनके शरीर से बहुत–सा पसीना बहने लगता। तब ऐसा भान होता, मानों मूर्त्तिमती गंगा शरीर में आविर्भूत

हो गई हों। कभी–कभी उनके श्रीअंग जलती हुई आग की तरह गरम हो जाये; उस समय मलय–चन्दन उनके शरीर पर लगते मात्र से ही सूख जाता था। क्षण–भर में उनकी अद्‌भुत महा साँसे बहने लगतीं। उस समय सभी सामने से हटकर एक ओर हो जाते। क्षण–भर में वे सब वैष्णवों के चरण–स्पर्श करने के लिए जाते, तो डर के मारे वे (वैष्ाावगण) चारों दिशाओं में भाग जाते। क्षण में वे अपने पृष्ठ देश को नित्यानन्द के अंग से सटाकर बैठ जाते और चरण उठाकर सबकी ओर देखते हुये हँसने लगते। उस समय इशारे को समझते हुये सभी भागवतजन उनके श्रीचरणों की धूल रूप अमूल्य रत्न को लूटने लगते। आचार्य गोसाईं कहते,—"अरे ओ चोर, हमने तुम्हारी सारी गरिमा को समझ लिया है।" तब विश्वम्भर महान आनन्द में लोट–पोट हो जाते और भक्तगण चारों ओर से कृष्ण के गुणों का कीर्तन करने लगते। प्रभु विश्वम्भर जब उद्दण्ड नृत्य करेन लगते तब पृथ्वी काँप उठती और सब भयभीत हो जाते। कभी–कभी प्रभु विश्वम्भर मधर नृत्य भी करते थे। तब ऐसा प्रतीत होता था मानों नन्द के लाला नटवर कृष्ण नृत्य कर रहे हों। कभी–कभी वे कोटि सिंहों जैसी हुँकार किया करते थे। उस समय उनके अनुग्रह के कारण ही भागवतजनों के कानों की रक्षा हो पाती थी। किसी क्षण वे पृथ्वी से अलग होकर, अर्थात् भूमि का स्पर्श किये बिना ही गमन करते; उस गमन को कोई देख पाता, तो कोई नहीं। भावावेश में अग्निवर्ण लोचनों के द्वार वे जिसको भी देखते थे, वही महा भीत होकर हँसते हुये भाग विह्वल हाकर जब नृत्य करते थे, उस समय उनको अपने–पराये का कोई बोध नहीं रहता था। भावावेश में वे एकबार जिसके चरण स्पर्श करते थे; फिर उसी के सिर पर चढ़ जाते थे। एक क्षण जिसके गले लगकर वे क्रन्दन करते थे, दूसरे क्षण उसी के कन्धो पर चढ़ जाते थे। क्षण में बाल्यभाव में परम चंचलता का प्रदर्शन करते हुये वे मुँह से बालकों की भाँति बाजा बजाते थे, क्षण में चरणों को नचाते थे, क्षण में चरणों को नचाते थे, क्षण में खिलखिलाते हुये हँस पड़ते थे, तेा क्षण में बालकों के आवेश में आकर घुटनों के बल चलने–फिरने लगते थे। क्षण–भर में वे त्रिभंग सुन्दर भाव से भावित हो जाते थे। कभी वे ध्यान में मुरली की धुनें बजाते थे, उस समय वे साक्षात् वृन्दावनचन्द्र की भाँति दिखाई देते थे। फिर बाह्य भाव में आने पर दास्यभाव में क्रन्द्रन करने लगते थे और दाँतों में तृण दबाकर चरणों की सेवा करना चाहते थे। क्षण में वे एक प्रहर तक चक्र की तरह घूमते रहते थे; उस समय अपने चरण से वे अपने सिर को छू लेते थे। गौरप्रभु में जब जिस भाव का उदय होता था, वही अद्‌भुत–सा लता था। जगन्नाथ–नन्दन अपने नाम के आनन्द में नृत्य करते रहते थे। बारम्बार प्रभु हुँकार करते थे, उस समय उनके सारे अंग हिलते रहते थे, स्थिर नहीं हो पाते थे और पृथ्वी पर गिर जाते थे। उनकी गौरवर्ण देह में क्षण–क्षण में नाना प्राकर के वर्ण दिखाई देने लगते थे। क्षण–क्षण में उनकी दोनों आँखें दुगनी हो जाती थीं। वैष्णव–आवेश में अलौकिक भाव को प्राप्त करके प्रभु जो बात कहने के योग्य नहीं होती थी, उसे भी कहा देते थे। जिस वैष्णव को देखकर वे पहले 'प्रभु' कहकर उसे सम्बोधित किया करते थे, अब उसी के केशो को पकड़ कर कहने लगते कि, "यह व्यक्ति मेरा दास है।" पहले जिस

वैष्णव को देखकर उसके चरा स्पर्श किया करते थे, अब उसकी छाती पर सवार होकर उस पर अर्पण करने लगते थे।

(१५४) गौः भाः—किसी समय प्रभु की देह रुई से भी अधिक हलकी हो जाती थी। उस समय भक्तगण उनको कन्धों पर उठाकर नाना स्थानों में भ्रमण किया करते थे। पातल, —पतला, हलका, लघु।

(१५९) गौः भाः—किसी समय उनकी देह का तापमान जलती हुई आग की तरह उत्तप्त हो जाता था। उस समय देह में चन्दन लेपन करने मात्र से ही सूख जाता था। मलयज,-मलय पर्वत पर उत्पन्न होने वाला चन्दन।

(१६४) गौः भाः—अद्वैत प्रभु गौरसुनदर को 'चोरा' कहकर सम्बोधित करते हुये बोले, —"हम सभी ने तुम्हारी सारी गरिमा को समझ लिया।"

भारिभुरि—आडम्बर, गाम्भीर्य, आत्मश्लाघा, गरिमा, ठाटबाट।

(१६८) गौः भाः—कोटि सिंहनाद के समान प्रभु की हुँकार-ध्वनि, जो जीवों के कर्ण-रंध्रो को विदीर्ण करने में समर्थ थी, फिर भी उनके दुर्बल कर्ण-रंध्रों की रक्षा करने के लिए प्रभु उन लोगो के प्रति कृपावान् हो गये।

(१६९) गौः भाः—उनके शब्द से किसी समय पृथ्वी विदीर्ण हो जाती थी।

क्षण-क्षण में वे भूमि से अलग होकर अर्थात् भूमि का स्पर्श किये बिना गमन करते थे। कोई कोई भक्त उसे देख पाते थे, तो कोई-कोई नहीं देख पाते थे। आलग—आल्ग (अलग्न) अलग, पृथक् भिन्न।

(१७०) गौः भाः—पाकल,—रक्तवर्ण, लोहित, अग्निवर्ण।

(१७२) गौः भाः—कभी किसी भक्त के चरणों का स्पर्श करते थे, तो फिर कभी उसके मस्तक पर सवार हो जाते थे।

(१७४) गौः भाः—किसी समय परम चंचल बालक की भाँति बालोचित मुखवाद्य बजाया करते थे। वाय-('बाजाय' का संक्षिप्त रूप), बजाया करते थे।

छाओयाल,—शिशु, बालक, अर्वाचीन।

(१७५) गौः भाः—जानुगति चले,—घुटनों के सहारे भ्रमण करते थे।

जानुगति—जानु के द्वारा गति, (गमन), हामागुड़ि, (जानु चंक्रमण)

(१८१) गौः भाः—'हुँकारय' पाठान्तर में हुहुँकार।

प्रभु के आनन्द में मग्न भागवतगणों के द्वारा परस्पर आलिंगन बद्ध-होकर प्रेम से क्रन्दन—

प्रभुर आनन्द देखि' भागवतगण।
अन्योन्ये गला धरि' करये क्रन्दन॥१८६॥
सबार अंगेते शोभे श्रीचन्दन-माला।
आनन्दे गायेन कृष्ण-रसे हइ' भोला॥१८७॥
मृदंग-मदिरा बाजे शंख-करताल।
संकीर्तन-संगे सब हइल मिशाल॥१८८॥

(१८६-१८८) प० अनु—प्रभु के आनन्द को देखकर भागवतगण एक दूसरे के गले लगकर क्रन्दन करने लगे। सबके अंगों में श्रीचन्दन और मालाएँ शोभा पा रही थीं। कृष्ण-रस में आत्मविस्मृत होकर सभी आनन्द से कीर्तन कर रहे थे। मृदंग, मन्दिरा (मंजीरा), शंख करताल आदि की ध्वनियाँ संकीर्तन के साथ मिल गईं।

सुमंगल श्रीहरिसंकीर्तन एवं महाप्रभु की महिमा—

ब्रह्माण्ड भेदिल ध्वनि पूरिया आकाश।
चौदिकेर अंमगल याय सब नाश॥१८९॥

ए कोन् अद्भूत—या 'र सेवकेर नृत्य।
सर्वविघ्न नाश हय, जगत पवित्र॥१९०॥
से प्रभु आपने नाचे आपनार नामे।
इहार कि फल—किवा बलिव पुराणे?१९१॥
चतुर्द्दिके श्रीहरि–मंगल–संकीर्तन।
माझे नाचे जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन॥१९२॥
या 'र नामानन्दे शिव, से नाचे जाने।
या 'र यशे नाचे शिव, से नाचे आपने॥१९३॥
या 'र नामे बाल्मिकी हइला तपोधन।
या 'र नामे अजामिल पाइल मोचन॥१९४॥
या 'र नाम श्रवणे संसार–बन्ध घुचे।
हेन प्रभु अवतरि' कलियुगे नाचे॥१९५॥
या 'र नाम गाइ' शुक–नारद बेड़ाय।
सहस्र वदन–प्रभु या 'र गुण गाय॥१९६॥
सर्व–महा–प्रायश्चित ये प्रभुर नाम।
से प्रभु नाचये, देखे यत भाग्यवान॥१९७॥
हइल पापिष्ठ–जन्म, तखन ना हइल।
हेन महा–महोत्सव देखिते ना पाइल॥१९८॥

(१८९–१९८) प० अनु०—संकीर्तन ध्वनि ब्रह्माण्ड को भेदकर सारे आकाश में व्याप्त हो गई और उस हरिध्वनि के कारण चारों दिशाओं के सब अमंगलों का नाश हो गया, यह कौन–सी अद्भुत बात है। जिनके सेवक के नृत्य करने मात्र से ही सर्व विघ्नों का नाथ हो जाता है और जगत पवित्र हो जाता है, वे ही प्रभु जब स्वयं ही अपना नाम ले–लेकर नृत्य कर रहे हों तो इसका फल क्या होगा? इस बारे में पुराण क्या कहेंगे? चारों ओर होने वाले श्रीहरि मंगल संकीर्तन के बीच में जगन्नाथ मिश्र के नन्दन श्री–गौरांग महाप्रभु नृत्य कर रहे हों तो इसका फल क्या होगा? इस बारे में पुराण क्या कहेंगे? चारों ओर होने वाले श्रीहरि मंगल संकीर्तन के बीच में जगन्नाथ मिश्र के नन्दन श्री–गौरांग महाप्रभु नृत्य कर रहे हैं। जिनका नाम लेते समय, नाम–ग्रहण के आनन्द में निमग्न शिव को अपने पहने हुये वस्त्रों का भी ध्यान नहीं रहता हैं, जिनके यश के आनन्द में उन्मत्त शिव नृत्य करते रहते हैं, वे ही अपने आप नृत्य कर रहे हैं। जिनका नाम लेकर बाल्मीकी तपोधन हो गये, जिनके नाम से अजामिल मुक्त हो गये, जिनके नाम को सुनने से संसार के बंधन छूट जाते हैं, वे ही प्रभु अवतरित होकर कलियुग में नृत्य कर रहे हैं। जिनके नाम का कीर्तन करते हुये शुक–नारद परिभ्रमण किया करते हैं, सहस्र–वदन (शेषजी) जिनके गुणों को निरन्तर गाया करते हैं, जिन प्रभु का नाम सभी पापों को महान प्रायश्चित –स्वरूप है, उन महाप्रभु को सभी भाग्यवान् व्यक्ति नृत्य करते हुये देख रहे हैं। मुझ पापिष्ठ का जनम तो हुआ, परन्तु उस समय नहीं हुआ, इस कारण ऐसा महा–महोत्सव मुझे देखने को नहीं मिला।

(१९०) गौः भाः—वाग, गदगदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥—(भाः ११/१४/२४)। संकीतग्नध्वनिं श्रुत्वा ये च नृत्यन्ति वैष्णवाः। तेषां पादरजस्पर्शात् सद्य पूता वसुन्धरा (—नारद पंचरात्र)।

(१९१) गौः भाः—प्रभु—साक्षात् कृष्ण हैं। स्वयं अपना नाम उच्चारण करके नृत्य कर रहे हैं। पुराण–समूह इसके फल का वर्णन करने में अन्त नहीं पाते हैं।

(१९३) गौः भाः—भगवान् के भक्त महादेवजी भगवन्नाम के आनन्द में विभोर होकर अपने पहने हुये वस्त्रों को धारण किये रखना भूल जाते है। जिनके यश को कीर्तन

करते समय शिव आनन्द में नृत्य करने लगते हैं, उन्होने स्वयं नृत्य करना आरम्भ किया। यशे (यश में)—पाठ-भेद 'रसे' (रस में)।

(१९५) गौः भाः—भाः१/१/१६, १/२/१७-२१, २/२/३७, २/८/५, ३/९/५, ३/१३/४, ४/२९/४०, ६/१६/४४, १०/१/४, १०/१४/३, ११/६/९, ११/६/२४, १२/३/१५ प्रभृति श्लोक द्रष्टव्य हैं।

(१९८) गौः भाः—ग्रन्थकार अपनी दीनता को प्रकाशित करते हुये कह रहे हैं कि, —महाप्रभु के प्रकटकाल में उनका अभ्युदय न होने के कारण उनका जीवन पाप-पूर्ण हो गया; क्योंकि, भगवान् के नृत्य-महोत्सव को देखने का सौभाग्य उनको नहीं मिला।

कलियुग की प्रशंसा—

कलियुग प्रशंसिल श्रीभागवते।
एइ अभिप्राय ता'र जानि' व्याससुते॥१९९॥
निजानन्दे नाचे महाप्रभु विश्वम्भर।
चरणेर ताल शुनि अति मनोहर॥२००॥

(१९९-२००) प० अनु०—व्यास के पुत्र श्रीशुक देवजी ने श्रीमद्भागवत मे कलियुग की प्रशंसा की है, क्योंकि वे इसके अभिप्राय को जानते थे कि कलियुग में महाप्रभु का अवतार होगा। अपने आनन्द में महाप्रभु विश्वम्भर जब नृत्य करते थे, उस समय उनके चरणों की अति मनोहर ताल सुनाई देती थी।

(१९९) गौः भाः—व्यास-नन्दन श्रीशुकदेव ने कलियुग में श्रीगौरसुन्दर का अवतार होगा, यह जानकर ही श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में कलियुग की प्रशंसा की है। "कलिं सभाजन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः। यत्र संकीर्त्तनेनैै सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥ कलेर्द्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्योका महान् गुणः। कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥"—(भाः ११/५/३६, १२/३/५१)।

भागवत्-दास्य या भक्ति-सुख की महिमा एवं भक्ति से अनभिज्ञ जनों की निन्दा—

भाव-भरे माला नाहि रहये गलाय।
छिण्डिया पड़ये गिया भक्तेर पाय॥२०१॥
कति गेला गरुड़ेर आरोहण-सुख।
कति गेला शंख-चक्र-गदा-पद्म-रूप॥२०२॥
कोथाय रहिल सुख-अनन्त-शयन।
दास्यभावे धूलि लुटि' करये रोदन॥२०३॥
कोथाय रहिल वैकुण्ठेर सुखभार।
दास्य-सुखे सब सुख पासरिल ता'र॥२०४॥
कति गेल रमार वदन-दृष्टि-सुख।
विरही हैया कान्दे तुलि' बाहु-मुख॥२०५॥
शंकर-नारद-आदि या'र दास्य पाञा।
सर्वैश्वर्य तिरस्करि' भ्रमे दास हञा॥२०६॥
सेइ प्रभु आपनार दन्ते तृण करि'।
दास्य-योगे मागे सब-सुख परिहरि'॥२०७॥
हेन दास्ययोग छाड़ि' आर येवा चाय।
अमृत छाड़िया येन विष लागि' धाय॥२०८॥
से वा केने भागवत पड़े वा पड़ाय।
भक्तिर प्रभाव नाहि याहार जिह्वाय॥२०९॥
शास्त्रेरे ना जानि' मर्म अध्यापना करे।
गर्द्दभेर प्राय येन शास्त्र बहि' मरे॥२१०॥
एइमत शास्त्र बहे, अर्थ नाहि जाने।
अधम सभाय अर्थ-अधम बाखाने॥२११॥
वेदे भागवते कहे—दास्य बड़ धन।
दास्य लागि' रमा-अज-भवेर यतन॥२१२॥

(२०१-२१२) प० अनु०—भावावेश में माला गले में नहीं रहती, वह टूट भक्तों के चरणों में जाकर गिर पड़ती। कहाँ गया उनका गरुड़ के कंधों पर चढ़ने का सुख? कहाँ गया उनका शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी रूप? कहाँ रह

गया उनका शेष-शय्या पर शयन का सुख? अब तो वे प्रभु दास्यभाव में धूल पर लंठित होकर रो रहे हैं। कहाँ रही वैकुण्ठ की वह सुखराशि? अब तो दास्य-सुख में वक उन बाकी सब सुखों को भूल गये। कहाँ गया रमा के मुखकमल के अवलोकन का सुख? अब तो वे विरही होकर मुख एवं बाहुओं को ऊपर उठाकर रो रहे हैं। शंकर-नारद आदि जिनकी दासता को प्राप्त करके सारे ऐश्वर्य का तिरस्कार करते हुये दास बनकर भ्रमण किया करते हैं, वे ही प्रभु अब अपने दाँतों में तृण लिये सारे सुखों का परित्याग करके दास्य योग की माँग कर रहे हैं। ऐसे दास्य योग को त्याग कर जो व्यक्ति और कुछ माँगता है, वह मानों अमृत छोड़कर विष के लिए दौड़ रहा है। जिसकी जिह्वा पर भक्ति का प्रभाव नहीं है, वह श्रीभागवत को क्यों पढ़ता-पढ़ाता है? जो लोग शास्त्रों के तात्पर्य को बिना जाने ही अध्यापन का काम किया करते हैं, वे गधे की भाँति शास्त्रों का बोझ उठाकर घूमते हुये मर रहे हैं। इस प्रकार जो लोग अर्थ को समझे बिना शास्त्रों का बोझ वहन करते हैं, वे अधमों की सभी में अधम अर्थ का ही बखान करते हैं। वेद और भागवत में यही कहा गया है कि,—"दास्य-भाव सबसे बड़ा धन है।" इस दास्य को प्राप्त करने के लिए ही रमा, ब्रह्मा, शिव आदि देवता यत्न किया करते हैं।

(२०१-२०४) गौः भाः—वैकुण्ठनाथ ने अपने गले की माला (वैजयन्तीमाला) को तोड़कर भक्तों के पदतल में अर्पित कर दिया; गरुड़ के कन्धों पर चढ़कर भ्रमण करने का सुख उन्होंने त्याग दिया; उनके शंख-चक्र आदि आयुध-समूह विच्छिन्न हो गये; अनन्त (शेषनाग) पर शयन के सुख का उन्होंने परिहार कर दिया; और गौरसुन्दर की लीला में दास्यभाव से धूल में लुंठित होकर रोने लगे। प्रभुत्व के सुख को दूर हटाकर वे दास्यभाव के सुख में प्रमत्त हो गये।

(२०५) गौः भाः—सम्भोग-रस का विषय होकर लक्ष्मीजी के मुखारविन्द का अवलोकन करने के बदले वे अब मुख एवं बाहुओं को ऊपर उठाकर विरह-सागर में निमग्न होकर क्रन्दन करने लगे।

(२०६-२०७) गौः भाः—शंकर, नारद प्रभृति देवता अपने-अपने ऐश्वर्य का परित्याग करके जिनकी सेवा में व्यस्त रहते हैं, वे ही सेव्यतत्त्व आज दीनता का अवलम्बन करके दाँतों में तृण को धारण करके सेव्य के सुख-समूह का परित्याग करते हुये भक्ति योग के लिए प्रार्थना कर रहे हैं।

(२०८) गौः भाः—गौरसुन्दर के इस अभिनव आदर्श को देखकर भी जो व्यक्ति भक्ति-पथ को परित्याग करक दाम्भिक होकर सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्ति का समर्थन किया करते हैं, उनका विचार अमृत के स्थान पर विष पीकर जर्जरित हो जाने के समान है। "वासुदेव परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते। त्यक्त्वामृतं स मूढात्मा परित्यज्य मोहादन्यमु-पासते। स हेमराजिमुत्सृज्य पांशुराशिं जिघक्षति॥"—(महाभारत)। "श्रीहरेर्भक्तिदास्यं च सर्वमुक्तेः परं मुने। वैष्णवानामभिमतं सारात् सारं परात्परम्॥"—(नाः पः राः २/७/७)। "नास्ति दास्यात् परं श्रेयो नास्ति दास्यात् परं पदम्। नास्ति दास्यात् परो लाभो नास्ति दास्यात् परं सुखम्॥"—(हरिभक्तिकल्पलतिका)।

(२०९) गौः भाः—जो लोग भक्ति के सौन्दर्य को नहीं जानकर प्रभु बनने की इच्छा से दाम्भिकता के साथ भागवत-प्रवचन करते हैं, उन लोगो का वह प्रवचन केवल व्यर्थ

की बातें हैं।

(२१०–२११) गौः भाः—सभाय—पाठभेद से "स्वभाव"। अपने को पण्डित मानने वाले जो व्यक्ति भागवत के अध्यापक बनकर भक्तिविहीन विचारों के द्वारा अपने घमंड का प्रदर्शन करते हैं, वे भार ढोने वाले गधे की भाँति शास्त्रों के वाक्यों को केवल ढोते हैं, उनके द्वारा लाभान्वित नहीं होते हैं। वे केवल शास्त्रों को जानने के लिए व्यर्थ परिश्रम करते हुये कष्ट उठाते हैं। भक्ति वर्जित भागवत प्रवक्ता अयोग्य श्रोताओं के बीच भागवत के अर्थ की जैसी व्याख्या करते हैं; वह व्याख्या सर्वतोभाव से तुच्छ है। "विप्रै–र्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने। कारिता धनलोभेन कथासारस्तो गतः॥"—(पाद्मोत्तर ६३ अः)। "यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्वितः। तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति॥"—(मनु १२/११५। "भृतकाध्यापकों यश्च भृतकाध्यापितस्तथा। शूद्र शिष्यों गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ॥"—(मनु ३/१५६)। "अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतं। श्रवणं नैव कर्त्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः॥"—(पद्म पुराण)। "शुद्राणां सूपकारी च यो हरेर्नामविक्रयी। यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः॥"—(ब्रः वै)। "न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैभ्यसेद् बहुन। न व्याख्यामुपयंजीत नारभ्भा–नारभेत् क्वचित॥"—(भाः ७/१३/८)। "अहं वेद्मि शुको वेत्ति व्यासों वेत्ति न वेत्ति वा। भक्तया भागवतं ग्राह्यं न बुदध्या न च टीकया॥" (चैः चः मः २४/३१४ संख्याधृत प्राचीनकृत श्लोक में श्रीशिववाक्य)।

श्रीचैतन्य के वाक्यों में अविश्वासी जनगण की अचेतनता—

चैतन्येर वाक्ये यार नाहिक प्रमाण।
चैतन्य नाहिक ता 'र कि बलिव आन॥२१३॥

(२१३) प० अनु०—चैतन्य महाप्रभु के वाक्यों में जिनका दृढ़ विश्वास नहीं है, समझ लेना चाहिए कि उनमें चेतनता ही नहीं है। इस बारे में और अधिक क्या कहूँ?

(२१३) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के वाक्य ही प्रमाण–शिरोमणि हैं और भक्ति ही सबकी आराधनीय है। जिनका यह विचार नहीं है, वे चैतन्य–विमुखजन ही 'मूढ़' शब्द के द्व ारा सम्बोधन के योग्य हैं। वेदशास्त्र एवं वेदार्थ–स्वरूप भागवत, सभी प्रकार के भक्ति के ही प्राधान्य की स्थापना करते हैं। नारायण के लक्ष्मीसमूह एवं ब्रह्म–रुद्र आदि सभी देवगण भगवनान के सेवक हैं। "आराध्यों भगवान् व्रजेशतयस्यद्धाम वृन्दावनम्। रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता॥ श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्। श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥"—(श्रील चक्रवर्ती ठाकुर)

दास्यभाव में प्रभु का नृत्य—

दास्यभावे नाचे प्रभु श्रीगौरसुन्दर।
चौदिक कीर्त्तनध्वनि अति मनोहर॥२१४॥

(२१४) प० अनु०—चारों ओर अति मनोहर कीर्त्तन–ध्वनि हो रही थी और बीच में प्रभु श्रीगौरसुन्दर दास्यभाव में नृत्य कर रहे थे।

कीर्त्तनध्वनि श्रवण से अद्वैत का भक्तिभाव—

शुनिते शुनिते क्षणे हय मूरछित।
तृण–करे तखने अद्वैत उपनीत॥२१५॥
आपादमस्तक तृण निछिया लइया।
निज शिरे थुइ' नाचे भ्रकुटि करिया॥२१६॥
अद्वैतेर भक्ति देखि' सबार तरास।
नित्यानन्द–गदाधर–दुइ जने हास॥२१७॥

नाचे प्रभु गौरचन्द्र जगतजीवन।
आवेशेर अन्त नाहि हय घने घन॥२१८॥

(२१५–२१८) प० अनु०—कीर्तन ध्वनि सुनते–सुनते प्रभु क्षण–भर में मूर्च्छित हो गये। तब हाथ में तृण लिये अद्वैत उपस्थित हुये। सिर से पैरो तक स्वयं को तृणों द्व ारा आच्छादित करते हुये वे अपने सिर पर तृण रखकर भ्रकुटिपूर्वक नृत्य करने लगे। अद्वैत की भक्ति को देखकर सब डर गये। नित्यानन्द और गदाधर दोनों हँसने लगे। जगत् के जीवनस्वरूप प्रभु गौरचन्द्र नृत्य कर रहे थे। नृत्य करते समय उनके आवेशों का अन्त नहीं था; वे बार–बार और घने होते जा रहे थे।

(२१६) गौः भाः—निछिया—आवरण करके।

कीर्तन–नृत्य में महाप्रभु का अदृष्टपूर्व एवं अश्रुतपूर्व सात्विक विकार—

याहा नाहि देखि शुनि श्रीभागवते।
हेन सब विकार प्रकाशे शची–सुते॥२१९॥
क्षणे क्षणे सर्व अंग हय स्तम्भाकृति।
तिलार्द्धेक नोङाइते नाहिक शकति॥२२०॥
सेइ अंग क्षणे क्षणे हेनमत हय।
अस्थिमात्र नाहि येन नवनीतमय॥२२१॥
कखनो देखि ये अंग गुण–दुइ–तिन।
कखनो स्वभाव हैते अतिशय क्षीण॥२२२॥
कखनो वा मत्त येन ढुलि' ढुलि' याय।
हासिया दोलाय अंग आनन्द सदाय॥२२३॥

(२१९–२२३) प० अनु०—भक्ति के जिन सात्विक विकारों को श्रीमद्भागवत में भी नही देखा सुना गया, वे सब विकार शचीनन्दन में प्रकट हुये। क्षण–क्षण में उनके सारे अंग खंभे की–सी आकृति के हो जाते थे, उस समय उनको आधे तिल के बराबर भी नहीं झुकाया ज सकता था। वे ही अंग क्षण–भर में ऐसे हो जाते थे, मानों वे बिना किसी अस्थि के केवल नवनीत (मक्खन) से बने हों। कभी–कभी उनके अंग दो–तीन गुना बड़े हो जाते थे और कभी–कभी अपनी स्वाभाविक अवस्था से भी अत्यन्त दुबले–पतले दिखाई देते थे। कभी–कभी वे मस्त होकर झूमते हुये चलते थे। उस समय आनन्द में निमग्न होकर वे हँस–हँसकर अपने अंगों को हिलाते रहते थे।

(२१९) गौः भाः—श्रीमद्भागवत में भी जिन सात्विक विकारों के उदाहरण नहीं मिलते हैं, वे सभी गौरसुंदर के श्रीअंगों में प्रकाशित हुये थे।

भाव में आविष्ट महाप्रभु के द्वारा वैष्णवम की पूर्व लीलाओं के परिचय का निर्देश—

सकल वैष्णवे प्रभु देखि' एक एके।
भावेशे पूर्व नाम धरि' धरि' डाके॥२२४॥
'हलधर, शिव, शुक, नारद, प्रहलाद।
रमा, अज उद्धव' बलिया करे नाद॥२२५॥
एइ मत सबा देखि' नाना–मत बले।
येवा येइ वस्तु, ताहा प्रकाशये छले॥२२६॥
अपरूप कृष्णावेश, अपरूप नृत्य।
आनन्दे नयन भरि' देखे सब भृत्य॥२२७॥

(२२४–२२७) प० अनु०—सब वैष्णवों को देखकर प्रभु ने भावावेश में एक–एक करके सभी को उनके पूर्व नामों से पुकारा। वे हलधर, शिव, शुक, नारद, प्रह्लाद, रमा, अज, उद्धव आदि नामों को बोल–बोल कर उद्घोष करने लगे। इस प्रकार सभी को देखकर उन्होंने नाना भावों को पुकारा। जिसमें जो तत्त्व विद्यमान था, उसी तत्त्व को निपुणता के साथ उन्होंने प्रकाशित किया। उस अपरूप

अनोखे कृष्णावेश और अपरूप अनोखे नृत्य को सभी भृत्यों ने आनन्द-पूर्वक देखा था।

(२२६) गौः भाः—श्रीगौर-लीला में गौरसुन्दर पूर्व-पूर्व लीलाओं के पात्रों का नाम ले-लेकर अपने पार्षदों को आह्वान कर रहे थे। इसी के द्वार गौर सुन्दर के गणसमूह का निर्धारण किया गया था।

दरवाजा बन्द करके अंतरंग भक्तों के साथ कीर्तन एवं दूसरो का प्रवेश निषेध—

पूर्वे येइ सांधाइल बाड़ीर भितरे।
सेइ-मात्र देखे अन्ये प्रवेशिते नारे॥२२८॥
प्रभुर आज्ञाय दृढ़ लागियाछे द्वार।
प्रवेशिते नारे लोक सब नदीयार॥२२९॥
धाइया आइये लोक कीर्तन शुनिया।
प्रवेशिते नारे लोक, द्वारे रहे गिया॥२३०॥
सहस्र सहस्र लोक कलरब करे।
''कीर्तन देखिव,—झाट घुचाह दुयारे॥''२३१॥
यतेक वैष्णव सब कीर्तन-आवेशे।
ना जाने आपन देह, अन्य जन किसे॥२३२॥

(२२८-२३२) प० अनु०—जो पहले से ही श्रीवास के घर में आ चुके थे, केवल उन्होंने ही वह नृत्य देखा। दूसरा कोई प्रवेश करने में समर्थ नहीं हो पाया; क्योंकि प्रभु की आज्ञा से दरवाजे को अच्छी तरह से बन्द कर दिया गया था, इसलिए नदीया के अन्य लोगा अंदर नहीं आ सके। कीर्तन की ध्वनि सुनकर लोग दौड़ते हुये आये; परन्तु प्रवेश करने में असमर्थ होकर दरवाजे पर ही रुक गये। हजारों लोग शोर मचाते हुये कहने लगे, —"कीर्तन देखेंगे,—जल्दी से दरवाजा खोलो।" वहाँ उपस्थित वैष्णवों को कीर्तन के आवेश में जब अपनी देह का ही अनुसंधान नहीं था, तब और लोगों की तो बात ही क्या थी।

(२२८) गौः भाः—भगवान् के नृत्य-दर्शन के लिए इतने व्यक्ति एकत्र हुये थे कि, जो लोग श्रीवास के प्रांगण में पहले से ही प्रविष्ट हो चुके थे, उन्हें छोडकर दूसरा कोई भी उस जनसमूह में प्रवेश नहीं कर पाया।

(२२९) गौः भाः—लोकसव-नदीयार—पाठभेद में अन्य लोक नदीयार (नदीया के अन्य लोग)।

(२३२) गौः भाः—कीर्तन-आवेशे—पाठभेद में कीर्तनेर रसे (कीर्तन के रस में)।

पाखाण्डी लोगों का क्रोध, नाना प्रकार के निन्दा-वचन एवं भय-प्रदर्शन—

यतेक पाषण्डी-सब ना पाइया द्वार।
बाहिरे थाकिया मन्द बलये अपार॥२३३॥
केह बले,—''ए गुला-सकल मागि' खाय।
चिनिले पाइवे लाज द्वारा ना घुचाय॥''२३४॥
केह बोले,—''सत्य सत्य एइ से उत्तर।
नहिले केमने डाके ए अष्ट प्रहर॥'' २३५॥
केह बले,—''आरे भाइ! मदिरा आनिया।
सबे रात्रि करि' खाय लोक लुकाइया॥'' २३६॥
केह बले,—''भाल छिल निमाइ पण्डित।
तार केन नारायण कैल हेन चित्त॥''२३७॥
केह बले,—''हेन बुझि-पूर्वेर संस्कार।''
केह बले,—''संगदोष हइल ताहार॥२३८॥
नियामक बाप नाहि,—ताते आछे बाइ।
एतदिन संगदोषे ठेकिल निमाञि॥''२३९॥
केह बले,—''पासरिल सब अध्ययन।
मासेक ना चाहिले हय अवैयाकरण॥''२४०॥
केह बले,—''आरे भाइ सब हेतु पाइल।
द्वार दिया कीर्तनेर सन्दर्भ जानिल॥२४१॥
रात्रि करि' मन्त्र पड़ि' पंच कन्या आने।
नानाविध द्रव्य आइसे ता' सबार सने॥२४२॥

भक्ष्य, भोज्य, गन्ध, माल्य, विविध वसन।
खाइया ता' सबा–संगे विविध रमण॥२४३॥
भिन्न लोक देखिले ना हय ता'र संग।
एतेके दुयार दिया करे नाना रंग॥'' २४४॥
केह बले,—''कालि हउक याइव देयाने।
काँकाल बान्धिया सब निब जने जने॥२४५॥
ये ना छिल राज्य–देश, आनिया कीर्तन।
दुर्भिक्ष हइल—सब गेल चिरन्तन॥२४६॥
देवे हरिलेक वृष्टि, जानिक निश्चय।
धान्य मरि' गेल, कड़ि उत्पन्न ना हय॥२४७॥
खानि थाक, श्रीवासेर कालि करोँ कार्य।
कालि वा कि करोँ देखोँ अद्वैत–आचार्य॥२४८॥
कोथा हैते आसि' नित्यानन्द अवधूत।
श्रीवासेर घरे थाकि' करे एतरूप॥''२४९॥
एइ मते नानारूपे देखायेन भय।
आनन्दे वैष्णव–सब किछु ना शुनय॥२५०॥

(२३३–२५०) प० अनु०—जो पाखण्डी अन्दर जाने में असमर्थ रहे, उन्होंने बाहर रहकर अनके प्रकार से अपशब्द बोलने शुरू कर दिया । कोई कहने लगा,—"ये सब लोग भीख माँगकर खाते हैं। यदि पहचान लिये गये तो लज्जित होना पड़ेगा, इसलिए दरवाजा नहीं खोल रहे हैं।" कोई बोला,—"यह बात बिलकुल सच है। नहीं तो क्यों आठों पहर शोर मचाया करते हैं।" किसी ने कहा, "अरे भाई! बोला,—"निमाइ पण्डित बड़े भले थे, पर क्यों नारायण ने उनकी ऐसी हालत बना दी।" किसी ने कहा,—"लगता है, पूर्व जन्म के संस्कार ऐसे ही थे।" कोई बोला,—"यह कुसंग का परिणाम है, एक तो नियंत्रण रखने वाले पिता नहीं रहे, ऊपर से वायुग्रस्त हो गये। अब इतने दिनों मे उन पर बुरे संग को असर दिखाई दिया है।" किसी ने कहा, —"सारे अध्ययन को भूल गये हैं। महीने भी व्याकरण का अनुशीलन न करने पर लोग सारा व्याकरण भूल जाते हैं।" कोई बोला, —"अरे भाई! इसका कारण मिल गया, कि दरवाजा बंद करके कीर्तन क्यों करते हैं, इसके बारे में पूरा पता चल गया है। ये लोग रात को मन्त्र पढ़कर पाँच कन्याओं को बुलाते हैं। उनके हाथ बहुविध द्रव्य–साम्रगी भी लाई जाती है। भक्ष्य, भोज्य (खाने योग्य पदार्थ), गन्ध माला और अनेक प्रकार के वस्त्रों को भी ये लोग साथ में लाते हैं। लगता है, सब व्यक्ति खाना खाकर उन सब कन्याओं के साथ बहुविध रमण करते होंगे। दूसरों के सामने उन सबके साथ संग करना निर्बाध (बाधा–शून्य) नहीं है; इसलिए दरवाजा बन्द करके फिर अनेक प्रकार के खेल खेले जाते हैं। किसी ने कहा,—"कल अदालत मे जायेंगे। एक–एक करके सबको कमर से बाँध कर ले जाया जायेगा। हमारे देश और हमारे राज्य मे जो पहले कभी नहीं था, उस कीर्तन को ये लोग ले आये हैं। इससे अकाल फैला और हमने अपना परम्परागत सब कुछ खो दिया। निश्चित रूप से यह जान लो कि, उससे देवताओं ने पानी बरसाना बंद कर दिया, धान मर गया और हम धन–धान्य तथा रोजगार से वंचित हो गये। कुछ देर के लिए ठहर जाओ। श्रीवास को कल देख लेंगे। अद्वैत आचार्य भी क्या करते हैं, वह भी कल देखा जायेगा। यह नित्यानन्द अवधूत न जाने कहाँ से आ गया है। श्रीवास के घर में रहकर यह सब कुछ वही कर रहा है।" इस तरह नाना प्रकार से वे सब पाखंडी लोग इन सबको डर दिखा रहे थे, परन्तु आनन्द में मग्न इन वैष्णवों को वह सब कुछ सुनाई ही नहीं दिया।

(२३३–२३४) गौः भाः—जो लोग श्रीवास

के आँगन में प्रवेश करने में असमर्थ रहे, वे सब नाना प्रकार के कुवाक्यों का प्रयोग करते हुये कहने लगे,—"जिन व्यक्तियों के घर के अन्दर प्रवेश किया है, वे सभी भिक्षा-वृत्ति के द्वारा जीवन यापन करने वाले लोग हैं। उन्हें अपनी दुरावस्था दूसरों को दिखाने में लज्जा आती है, इसलिए उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया है। यदि ऐसा न होता, तो ये गृहस्थित लोग भूख के मारे इतना शोर क्यों मचावें?"

(२३६) गौः भाः—किसी-किसी ने यह विचार प्रकट किया कि, वे सब मदिरा पान करते हैं। उन्होंने लोकलाज से बचने के लिए, मदिरा लाकर गोपनीय ढंग से रात को पीने के लिए ही दरवाजा बन्द किया है।

(२३८) गौः भाः—किसी-किसी ने कहा, "निमाई पण्डित बुरी संगत में फँस गया है। लोगों की नजर बचाकर उसे असत् कार्य संपादन करने का मौका देने के लिए ही द्व ार को बन्द किया गया है।

(२३९) गौः भाः—नियामक—शासक, परिचालक। "निमाइ कि नियामक पिता अर्थात् अभिभावक नहीं रहे। फिर ऊपर से वे वायुग्रस्त भी हैं, और बुरे साथियों ने उनको अनुचित कार्य करने की ओर उन्मुख कर दिया है।"

वाइ—(वायु-शब्दज) वायुरोग, उन्माद, वातिक (वातुल)।

(२४०) गौः भाः—एक महीना तक व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन न करने से सभी सूत्र-समूह विस्मृत हो जाते हैं। इसलिए निमाइ पण्डित अब व्याकरण आदि शास्त्रों का पढ़ना-लिखना भूल गये हैं।

(२४१-२४४) गौः भाः—किसी ने कहा, —"दरवाजा बंद करने की सही पता हमें मिल गया है। वे रात को मन्त्रों के प्रभाव से पाँच प्रकार की कन्याओं को बुलाकर, नानाविध भक्ष्य द्रव्यों का भोजन करके तथ गंध-मालिका और बहुविध वस्त्रों द्वारा शरीर को सजाकर उन कन्याओं के साथ नाना प्रकार के विलासों में प्रमत्त रहकर बहुविध रंगरलियाँ मनाते रहते हैं और लोक लाज से बचने के लिए दरवाजा बन्द करके रखते हैं।

(२४५) गौः भाः—किसी ने कहा,—"कल ही हम इन लोगों के विरुद्ध न्यायालय में अभियोग उपस्थित करेंगे। जो लोग दरवाजा बंद करके कुकर्म में आसक्त हैं, उन सबको एक-एक करके कमर में रस्सा बाँध कर ले जाया जायेगा।"

देयाने,—(फारसी दीवान)—राजसभा, धर्माधिकरण, अदालत।

काँकाल,—कटि, कमर, मध्यदेश।

(२४६) गौः भाः—जो कभी भी इस देश में प्रचलित नहीं था, उस हरिकीर्तन को यहाँ लाकर संसार की सुख-स्वच्छन्दता में बाधा डाल दी गई है। सदा के लिए संसार-सुख विनष्ट हो गया है,—देश में दुर्भिक्ष दिखाई दे रहा है।

चिरन्तन,—[चिरम् + तन (भावार्थ में तनट्)] जो बहुत दिनों से एक ही रूप में चला आ रहा है, जो बहुत दिनों से प्रचलित, चिरकालीन।

(२४७) गौः भाः—किसी ने कहा,—"ऐसा कार्य वे अधिक दिनों तक नहीं कर पायेंगे। इसलिए एक दो दिन प्रतीक्षा करो। देखते हैं, वे क्या करते हैं।

कीर्तन का तात्पर्य एवं धर्मतत्त्व से अनभिज्ञ लोगों की नानाप्रकार कल्पना एवं कोलाहल—

केह बले,—"ब्राह्मणेर नहे नित्य-धर्म।
पड़ियाओं एगुला करये हेन कर्म॥"२५९॥
केह बले,—"एगुला देखिते ना युयाय।

ए गुलार सम्भाषे सकल–कीर्त्ति याय॥२५२॥
ओ नृत्य–कीर्तन यदि भाल लोक देखे।
सेह एइमत हय, देख परतेके॥२५३॥
परम सुबुद्धि छिल निमाइ पण्डित।
ए गुलार संगे तार हेन हैल चित॥'' २५४॥
केह बले,—''आत्म बिना साक्षात् करिया।
डाकिले कि कार्य हय, ना जानिल इहा॥२५५॥
आपन शरीर–माझे आछे निरंजन।
घरे हाराइया धन चाहे गिया वन॥''२५६॥
केह बाले—''कोन् कार्य परेरे चर्चिया।
चल सबे घरे याइ, कि कार्य देखिया॥२५७॥
केह बले–''ना देखिल निज कर्म–दोषे।
से सब सुकृति, ता' सबारे बलि किसे?''२५८॥
सकल पाषण्डी—ता'रा एक चाप हइया।
''एहो सेइ गण'' हेन बुझि याय धाञा॥२५९॥
''ओ कीर्तन ना देखिले कि हइवे मन्द?
शत शत बेड़ि' येन करे महाद्वन्द्व॥२६०॥
कोन जप, कोन तप, कोन तत्त्वज्ञान।
ताहा ना देखिये करि' निज कर्म–ध्यान॥२६१॥
चाल–कला–दुग्ध–दधि एकत्र करिया।
जाति नाश करि' खाय एकत्र हइया॥''२६२॥
परिहासे आसि' सबे देखिबार तरे।
''देखि, ओ पागल–गुला कोन् कर्म करे॥'' २६३॥
एतेक बलिया सबे चलिलेन घरे।
एक याय, आर आसि' बाजाय दुयारे॥२६४॥
पाषण्डी पाषण्डी येइ दुइ देखा हय।
गलागलि करि', सब हासिया पड़य॥२६५॥
पुनः धरि' लइ' याय येवा नाहि देखे।
केह वा निवृत हय कारो अनुरोधे॥२६६॥
केह बले,—''भाइ, एइ देखिल शुनिल।
निमाञि लइया सब पागल हइल॥२६७॥
ददुरी उठिया आछे श्रीवासेर बाड़ी।
दुर्गोत्सव येन साड़ि देइ हुड़ाहुड़ि॥२६८॥
'हइ हइ, हाय हाय'—एइ मात्र शुनि।
इहा सबा हैते हइल अयश–काहिनी॥२६९॥
महा–महा–भट्टाचार्य सहस्र येथाय।
हेन ढांगाइत–गुला बसे नदीयाय॥२७०॥
श्रीवास वामनारे एइ नदीया हैते।
घर भांगि' कालि लइया फेलाइव स्रोते॥२७१॥
ओ ब्राह्मण घुचाइले ग्रामेर कुशल।
अन्यथा यवने ग्रामे करिबेक बल॥''२७२॥

(२५१–२७२) प० अनु०—कोई बोला, —"नृत्य करना ब्राह्मणों का धर्म नहीं है। पढ़–लिखकर भी ये सब ऐसा कर्म करते हैं।" कोई बोला,—"इनका दर्शन करना भी उचित नहीं है। इनको देखने से सारी कीर्ति नष्ट हो जाती है। यदि अच्छे लोग भी इस नृत्य कीर्तन को देखते हैं, जो वे भी ऐसे ही हो जाते हैं, यह तो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहा है। निमाइ पण्डित तो परम उत्कृष्ट बुद्धि वाले थे। इन लोगों के संग से उनके हृदय का भाव भी ऐसा विकृत हो गया है।" कोई बोला,—"आत्मा का साक्षात्कार किये बिना यों ही पुकारने से क्या फल मिलेगा—यह वे नही जान पाये हैं। अपने शरीर में निरंजन (निष्पाप ब्रह्म) बसा हुआ है। उस धन (निरंजन) को घर में न ढूढ़कर बाहर वन में जाकर ढूँढते हैं" कोई बोला,—"दूसरों की चर्चा करने से क्या फायदा? चलो, सब घर को चलें, यह सब देखनें से क्या मिलेगा। कोई बोला,—"हम अपने कर्म–दोष के कारण नृत्य–कीर्तन नहीं देख पा रहे हैं जिन्होंने देखा, योगदान किया, वे सब सुकृतिशाली हैं। फिर हम कैसे उन्हें दोष दें?" यह सुनकर सभी पाखण्डी इकट्ठे होकर कहने लगे "यह भी उन्हीं लोगों में

से है—ऐसा समझकर उसकी ओर लपके और बोले, इस कीर्तन को न देखने से क्या बिगड़ेगा? यह कीर्तन तो ऐसा है, जैसे सौ-सौ लोग मिलकर एक साथ ऐसे घूमते हुये कोई भारी झगड़ा कर रहे हों। जप किसे कहते है, तपस्या कैसे ही जाती है,—तत्त्वज्ञान क्या है,—इन सब के बारे में उन लोगों की कोई जानकारी दिखाई नहीं देती है, वे अपने मतानुसार कर्म और ध्यान करते हैं। चावल, केले, दही, दूध—सबको मिलाकर खाते हुये वे लोग हम तो देखने को आये हैं कि, देखें तो सही,—वे सब पागल क्या कर्म कर रहे हैं?" इतना कहकर सब अपने-अपने घरों की ओर चल दिये।

एक जाता तो दूसरा आकर दरवाजा खटखटाने लगता। दो पाखण्डी जब परस्पर मिलते, तो एक दूसरे को गले से लगाकर इतने हँसते कि हँसी के मारे गिर पड़ते। जो नहीं देख पाया, उसकी फिर पकड़कर ले जाते। कोई-कोई दूसरों के अनुरोध पर लौटने को तैयार भी नहीं होता था। कोई कहत,—"भाई, यही देखा और सुना गया है कि निमाइ को लेकर सब पागल हो गये हैं। श्रीवास के भव में मेढ़कों का-सा कोलाहल मचा हुआ है, जैसे दुर्गापूजा के उत्सव में लोग व्यस्त और हो-हल्ला में मस्त रहते हैं। 'हइ हइ हाय हाय'—बस, इतना ही सुनाई देता हैं, वहाँ इन लपटों ने भी अपना अड्डा बना लिया है। ब्राह्मण श्रीवास को इस नदीया से भगा देंगे और उसके घर को तोड़-फोड़कर गंगा की धारा में बहा देंगे। गाँव का मंगल इसी में है कि, वह ब्राह्मण दूर हो जाये। नहीं तो, यवन हमारे गाँव के लिए भारी पड़ जायेंगे।"

(२५१) गौः भाः—हरिविमुख अभक्तों में से अपने को पण्डित मानने वाले किसी व्यक्ति ने कहा,—"भुसुरों (भूलोक के देवता, अर्थात् ब्राह्मणों) का धर्म, नाचना नहीं है। वह तो नट-आदि छोटे लोगों का काम है। शास्त्रों को अध्ययन करने पर भी ब्राह्मण समाज में इस प्रकार की नीचवृत्ति प्रचलित हो गई है—यह बहुत ही दुःख की बात है।"

(२५२) गौः भाः—किसी ने कहा,—"इनके दर्शन करने से भी ब्राह्मणों का पूर्व गौरव विनष्ट हो जाता है, इस कारण इन्हें देखना कदापि उचित नहीं है।"

(२५३) गौः भाः—"इन लोगों का इस प्रकार का नृत्य-कीर्तन यदि अच्छे-भले लोग भी अचानक कुतूहनवश देख लेते हैं, तो इससे उन लोगों को दिमाग भी खराब हो जाता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—उन लोगों की गोष्ठी का बढ़ते जाना।"

(२५५) गौः भाः—किसी एक ने कहा,—"आत्म-साक्षात्कार के बिना 'कृष्ण कृष्ण' कहकर पुकारने से किसी शुभ फल का उदय कैसे होगा?"

(२५६) गौः भाः—"नर शरीर में ही निष्पाप ब्रह्म का अवस्थान है। इसलिए कीर्तन करने वाले ये अनभिज्ञगण अपने घर में रखे धन का अनुसंधान न करके उसे पाने की आशा से वन-वन में भटक रहे हैं। उससे इन्हें क्या फल मिलेगा"? अहंग्रहापासक सम्प्रदाय की ऐसी उक्तियाँ,—भक्ति के स्वरूप निरूपण में व्याघात का निदर्शन मात्र हैं।

(२५७) गौः भाः—किसी ने कहा,—"दूसरों की आलोचना करना हमारे लिए लाभदायक नहीं हे। चलों, हम अपना-अपना काम करें।"

(२५८) गौः भाः—किसी ने कहा,—"हम लोग अपने-अपने कर्म-फल-दोष के कारण कीर्तन-विलास को नहीं देख पाये हैं। जिनको कीर्तन में योगदान करने का अथवा देखने

का सुअवसर मिला है, वे सब सुकृति अर्थात् भाग्यवान हैं। हम लोग भाग्यहीन हैं—उनको कैसे कुछ कहे?"

(२५९) गौः भाः—पाखण्डीगण इसे सुनकर—"यह भी उसी दल में से है"—ऐसा समझते हुये इकट्ठा होकर उसकी ओर दौड़े।

एकचाप [एक-(एकत्र)] + चाप (जमात, जमाव) समवेत, इकट्ठा होना।

(२६०) गौ० भा०—इन लोगों के उस कीर्तन में सम्मिलित न होने से हम लोगों की क्या हानि हो सकती है? इन लोगों का जो कीर्तन है, वह तो सौ लोगों के एक साथ मिलकर महायुद्ध जैसा है।

द्वन्द्व—विवाद, कलह, युद्ध।

(२६१-२६२) गौः भाः—इन लोगों में वास्तविक जप, वास्तविक तपस्या, तत्त्वज्ञानका संधान आदि कुछ भी तो हमें दिखाई नहीं देता है। ये सब अपने-अपने मतानुसार कर्म और ध्यान करते हैं एवं चावल, केले दही, दूध—इन सबको एक साथ मिलाकर सभी इकट्ठे होकर भोजन करते हुये अपनी जाति का नाश कर रहे हैं।

(२६५) गौः भाः—भक्ति के विरोधी दो पाखण्डी आपस में मिलने पर भक्तजनों की आलोचना करते हुये एक दूसरे को गले लगाकर इतनी जोर से हँसते हैं कि हँसते-हँसते जमीन पर गिर पड़ते है।

(२६८) गौः भाः—"श्रीवास के भवन में मेढ़कों की टर्र-टर्र कोलाहल आरम्भ हुआ है। दुर्गापूजा के उत्सव के समय जिस प्रकार लोग व्यस्त होकर जल्दबाजी से काम लेते हैं, उसी प्रकार से सब व्यस्त एवं कोलाहला में मत्त हैं।"

(२७०) गौः भाः—"जिस नदीया में हजारों पण्डित ब्राह्मण रहते हैं, उसी स्थान में आज कुछ शठ अथवा लम्पट व्यक्तियों ने अपना राज जमा लिया है।"

(२७०) गौः भाः—"जिस नदीया में हजारों पण्डित ब्राह्मण रहते हैं, उसी स्थान में आज कुछ शठ अथवा लम्पट व्यक्तियों ने अपना राज जमा लिया है।"

ढांगाइल—(ढ़ांगाति) छली, शठ, लम्पट, चोर।

(२७१) गौः भाः—ब्राह्मणापसद(ब्राह्मण-कुल-कलंक) श्रीवास को श्रीनवद्वीप से निकाल देना आवश्यक है। श्रीवास की पर्ण कुटीर तोड़कर हम गंगा के प्रवाह में फेंक देंगे।

(२७२) गौः भाः—श्रीवास-ब्राह्मण ने सारे गाँव के मंगल का विनाश किया है। ब्राह्मण ों का प्रभाव फीका पड़ जाने से यवनों की शक्ति बढ़ जायेगी।

ग्रन्थकार के द्वारा कोलाहलकारी पाखंडियों के भी भाग्य की प्रशंसा—

एइमत पाषण्डी करये कोलाहल।
तथापिह महाभाग्यवन्त से सकल॥२७३॥
प्रभु-संगे एकत्र जन्मिला एक ग्रामे।
देखिलेक, शुनिलेक से सब विधाने॥२७४॥

(२७३-२७४) प० अनु०—यद्यपि उन पाखण्डियों ने इस प्रकार से हो-हल्ला किया था, तथापि वे सब बहुत भाग्यशाली रहे। प्रभु के संग एक साथ एक गाँव में उन्होंने जन्म लिया और प्रभु एवं उनके भक्तों के द्वारा किया गया वह सब विधान उन्होंने देखा सुना।

श्रीचैतन्य के भक्तों का बहिर्मुख वाक्यों में बहरापन और कृष्णरस में मस्त हो जाना—

चैतन्येर गण-सब मत्त कृष्ण-रसे।
बहिर्मुख-वाक्य किछु कर्णे ना प्रवेशे॥२७५॥

''जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द वनमाली।''
अहर्निश गाय सबे हइ' कुतुहली॥२७६॥
अहर्निश भक्त–संगे नाचे विश्वम्भर।
श्रान्ति नाहि कारो, सबे सत्त्व–कलेवर॥२७७॥

(२७५–२७७) प० अनु०—चैतन्य के सभी भक्त कृष्ण-रस में मस्त थे। इसलिए बहिर्मुखियों का कोई भी वाक्य उनके कानों में प्रवेश नहीं कर पाया। सब भक्त दिन-रात "जय कृष्ण मुरारि मुकुन्द बनमाली" बोलते हुये बड़े ही आनन्द के साथ कीर्तन करते रहते थे। विश्वम्भर भी दिन रात भक्तों के संग नृत्य करते रहते थे। इसमें किसी को परिश्रम नहीं होता था, क्योंकि सभी सात्त्विक शरीरधारी थे।

चैतन्य के कीर्तन-विलास का काल निरूपण—

वत्सरेक नाम मात्र कत युग गेल।
चैतन्य–आनन्दे केह किछु ना जानिल॥२७८॥
येत महा–रस–क्रीड़ा कत युग गेल।
तिलार्द्धेक–हेन सब गोपिका मानिल॥२७९॥
एइमत अचिन्त्य कृष्णेर परकाश।
इहा जाने भाग्यवन्त चैतन्येर दास॥१८०॥

(२७८–२८०) प० अनु०—एक वर्ष के नाम पर कितने ही युग बीत गये; किन्तु चैतन्य के आनन्द से कोई कुछ जान नहीं पाया। महा रासक्रीड़ा में जैसे कितने ही युग बीत गये थे; परन्तु सारी गोपीकाओं ने इसे आधा पलमात्र समय माना था। कृष्ण का प्रकाश ऐसा ही अचिन्तनीय है। चैतन्य के भाग्यशाली दास ही इसे जानते हैं।

(२७९) गौः भाः—भाः१०/२९/१ एवं १०/३३/३८ श्लोकों पर श्रील चक्रवर्ती ठाकुर की सारार्थदर्शिनी-टीका दर्शनीय है।

अपने तत्त्व को प्रकाशित करने के लिए एक प्रहर रात बाकी रह जाने के समय महाप्रभु का विष्णु सिंहासन पर आरोहण—

एइमते नाचे महाप्रभु विश्वम्भर।
निशि अवशेष मात्र से एक प्रहर॥२८१॥
शालग्रामशिला–सब निज कोले करि'।
उठिला चैतन्यचन्द्र खट्टार उपरि॥२८२॥

(२८१–२८२) प० अनु०—इस प्रकार महाप्रभु विश्वम्भर नृत्य करते-करते जब रात बीतने में केवल एक ही प्रहर बाकी रह गया था। उसी समय सभी शालग्राम शिलाओं को अपनी गोद में लेकर चैतन्यचन्द्र सिंहासन के ऊपर बैठ गये।

प्रभु के भार से टूटते वाले सिंहासन में नित्यानन्द के स्पर्श से अनन्तदेव का अधिष्ठान—

मड़ मड़ करे खट्टा विश्वम्भर भरे।
आथेव्यथे नित्यानन्द खट्टा स्पर्श करे॥२८३॥
अनन्तेर अधिष्ठान हइल खट्टाय।
ना भांगिल खट्टा, दोले श्रीगौरांग–राय॥२८४॥

(२८३–२८४) प. अनु०—विश्वम्भर के भार से सिंहासन के चरमभरा कर टूट जाने का उपक्रम प्रारम्भ हुआ। उसे देखकर नित्यानन्द के व्यस्त होकर सिंहासन का स्पर्श किया। नित्यानन्द के स्पर्श से सिंहासन पर अनन्त का अधिष्ठान हो गया और इस कारण सिंहासन टूटने से बच गया तथा श्रीगौरांग राय इस पर आराम से झूलते रहे।

चैतन्य द्वारा आत्मतत्त्व का प्रकाशन—

चैतन्य–आज्ञाय स्थिर हइल कीर्तन।
कहे आपनार तत्त्व करिया गर्जन॥२८५॥
''कलियुगे मुञि कृष्ण, मुञि नारायण।

मुञि सेइ भगवान् देवकीनन्दन॥२८६॥
अनन्त ब्रह्माण्ड–कोटी–माझे नाथ।
यत गाओ, सेइ मुञि, तोरा मोर दास॥२८७॥

(२८५–२८७) प० अनु०—चैतन्य की आज्ञा से कीर्तन रूक गया। फिर महाप्रभु ने गर्जन करके अपना तत्त्व प्रकट करते हुये कहा,—"कलियुग में मैं ही कृष्ण हूँ, मैं ही नारायण हूँ, मैं ही वही देवकीनन्दन भगवान हूँ। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का मैं नाथ हूँ। जितना कुछ गाया गया है, वह मैं ही हूँ और तुम सब मेरे दास हो।

अपने आवेश में प्रभु के द्वारा
सम्पूर्ण नैवेद्य का भोजन—

तो–सबार लागिया आमार अवतार।
तोरा येइ देह,' सेइ आमार आहार॥२८८॥
आमारे से दियाछ सब उपहार।''
श्रीवास बलेन–''प्रभु सकल तोमार॥''२८९॥
प्रभु बले—''मुञि इहा खाइमु सकल।''
अद्वैत बलये—''प्रभु बड़इ मंगल॥''२९०॥
करे करे प्रभुरे योगाय सब दासे।
आनन्दे भोजन करे प्रभु निजावेशे॥२९१॥
दधि खाय, दुग्ध खाय, नवनीत खाय।
''आर कि आछये आन''—बलये सदाय॥२९२॥
विविध सन्देश खाय शर्करा–म्रक्षित।
मिश्रित, नारियल जल शस्येर सहित॥२९३॥
कदलक, चिपिटक, भर्जित–तण्डुल।
'आर आन' पुनः बले खाइया बहुल॥२९४॥
व्यवहारे जन–शत–दुइर आहार।
निमिषे खाइया बले—''कि आछये आर?''२९५॥
प्रभु बले—''आन आन, एथा किछु नाञि।''
भक्त सब त्रास पाइ' सडरे गोसाञि॥२९६॥

(२८८–२९६) प० अनु०—तुम सबके लिए ही मेरा अवतार हुआ है। तुम जो कुछ भी देते हो, वही मेरा भोजन है। तुमने मुझे ही यह सब उपहार दिये हैं। श्रीवास बोले, —"सब तुम्हारा ही है प्रभु।" प्रभु बोले,—"मैं यह सब खाऊँगा।" अद्वैत बोले,—"प्रभु! यह बहुत मंगलदायक होगा।" फिर सभी भक्त हाथों–हाथ प्रभु को आहार देने लगे। प्रभु अपने आवेश में आनन्द सहित भोजन करने लगे। वे दही, दूध, नवनीत सब खा गये और निरन्तर कहते रहे—"और क्या है लाओ!" उन्होने शक्कर के रस में पके हुये बहुविध सन्देशों (छेना से बनी मिठाई) और सितोपल (मिश्री) तथा नारियल के जल और शस्यों का आहार किया। केले, चिपिटक (चिड़वा), भुने हुये चावल आदि खूब खाकर वे फिर बोले, 'और लाओ'! लौकिक व्यवहार के अनुसार दो सौ लोगों का आहार पलक झपकते ही खा चुकने के पश्चात प्रभु ने फिर कहा, " और कुछ है? लाओ! लाओ!! यहाँ कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर सभी भक्त डर के मारे गोसाईं (भगवान्) का स्मरण करने लगे।

(२९५) गौः भाः—व्यवहारे,—लौकिक विचार से।

नैवेद्य के अभाव एवं स्वल्पता के कारण
भक्तगणों का संकोच एवं भगवान् के द्वारा
आश्वासन प्रदान—

करजोड़ करि' सब कय भय–वाणी।
''तोमार महिमा प्रभु आमरा कि जानि?२९७॥
अनन्त ब्रह्माण्ड आछे याहार उदरे।
तारे के करिब एइ क्षुद्र उपहारे?''२९८॥
प्रभु बले,—''क्षुद्र नहे भक्त उपहार।
झाट आन, झाट आन, कि आछये आर॥'' २९९॥
''कर्पूर ताम्बूल आछे'',—शुनह गोसाञि।

प्रभु बले,—''ताइ देह किछु चिन्ता नाञि॥''३००॥
आनन्द हइल, भय गेल सबाकार।
योगाय ताम्बूल सबे यार अधिकार॥३०१॥
हरिषे ताम्बूल योगोयेन सर्व–दासे।
हस्त पाति' लय प्रभु सबा चाहि हासे॥३०२॥
दुइ चक्षु पाकाइया करये हुँकार।
'नाड़ा नाड़ा नाड़ा' प्रभु बले बार बार॥३०३॥

(२९७–३०३) प० अनु०—इस पर भयभीत होते हुये सभी भक्त हाथ जोड़कर बोले, —"हे प्रभो! आपकी महिमा हम क्या जानें? अनन्त ब्रह्माण्डों की स्थिति जिनके उदर में है।" उनके लिए यह सब क्षुद्र उपहार कुछ भी नहीं है।" प्रभु बोले,—"भक्त को उपहार क्षुद्र नहीं होता है और जो कुछ भी हो, वह भी जल्दी लाओ, जल्दी।" "सुनो गोसाईं। हमारे पास तो अब केवल कर्पूर और ताम्बूल बचे हैं।" प्रभु बोले,—"कोई चिन्ता नहीं, वही दे दो।" यह सुनकर आनन्द हुआ और सभी भय से मुक्त हो गये। अधिकार के अनुसार सभी ताम्बूल (पान) देने लगे। आनन्द सहित सभी भक्त ताम्बूल प्रदान करते रहे और प्रभु सबकी ओर देखते हुये उनके हाथों से हँस–हँसकर ताम्बूल ग्रहण करते रहे। फिर दोनों आँखों की पुतलियाँ को घुमाकर प्रभु बारम्बार 'नाड़ा, नाड़ा,' कहते हूये हुँकार करने लगे।

(२९९) गौः भाः—तथ्य—"अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्ना भूर्येव मे भवेत्।" (भाः १०/८१/३)।

(३०३) गौः भाः—दोनो आँखों की पुतलियाँ घुमाकर महाप्रभु 'नाड़ा, नाड़ा' कहकर शोर मचाने लगे।

भक्तजनों का संत्रस्त भाव में
अवस्थान एवं सबको वर प्रार्थना करने
के लिए महाप्रभु का आदेश—

किछुह ना बले केह, मौन करि' बसे।
सकल भक्तेर चित्ते लागये तरासे॥३०४॥
महाशस्तिकर्ता–हेन भक्त–सब देखे।
हेन शक्ति नाहि कारो, हइबे सम्मुखे॥३०५॥
नित्यानन्द महाप्रभु–शिरे धरे छाति।
योड़करे अद्वैत सम्मुखे करे स्तुति॥३०६॥
महा–भये योड़हाते सब–भक्तगण।
हेँट माथा करि' चिन्ते चैतन्य–चरण॥३०७॥
ए ऐश्वर्य शुनिते याहार हय सुख।
सेइ अवश्य देखिव चैतन्य–श्रीमुख॥३०८॥
येखाने ये आछे, से आछये सेइखाने।
तदूर्द्ध्व हइते केह नारे आज्ञा–बिने॥३०९॥
'वर माग' बले अद्वैतेर मुख चाहि'।
''तोर लागि' अवतार मोर एइ ठाञि॥''३१०॥
एइमत सब भक्त देखिया देखिया।
'माग, माग' बले प्रभु हासिया हासिया॥३११॥
एइमत प्रभु निज ऐश्वर्य प्रकाशे।
देखि' भक्तगण सुख–सिन्धु–माझे भासे॥३१२॥

(३०४–३१२) प० अनु०—सभी भक्तजनों के हृदयों में भय व्याप्त हो गया। कोई कुछ नहीं बोला। सब मौन का अवलम्बन करके शांत रह गये। सभी भक्त उनको महान शासक के रूप में देख रहे थे। किसी में उनके सामने आने की शक्ति नहीं थी। नित्यानन्द ने महाप्रभु के सिर के ऊपर छत्र धारण किया और अद्वैत सामने हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। सभी भक्तजन महाभय से हाथ जोड़कर अपना सिर नीचे किये हुये चैतन्य–चरणों का चिन्तन करने लगे। प्रभु के इस ऐश्वर्य का श्रवण करने से जिसको सुख प्राप्त होता है, उसे निश्चित रूप से श्रीचैतन्य के मुखकमल दर्शन का सौभाग्य मिलेगा। तो चैतन्य के

मुखकमल दर्शन का सौभाग्य मिलेगा। जो जहाँ थे, वे वहीं रहे। बिना आज्ञा के कोई आगे नहीं बढ़ सका। फिर अद्वैत के मुख की ओर देखते हुये प्रभु बोले,—"वर माँग लो। 'तेरे लिए' ही हम यहाँ अवतरित हुये हैं।" ये इसी प्रकार सभी भक्तों को देख-देखकर हँसते हुये प्रभु कहने लगे, 'माँग लो, माँग लो'। इस प्रकार प्रभु ने अपने ऐश्वर्य का प्रकाश किया और इसे देखकर सभी भक्तजन सुख के सागर में प्रवाहित होने लगे।

चैतन्य का आनन्द-विलास अचिन्तनीय,
केवल भक्तजन ही वहाँ पँहुचने में समर्थ—

अचिन्त्य-चैतन्य-रंग-बुझन ना याय।
क्षणेके ऐश्वर्य करि' पुनः मूर्च्छा पाय॥३१३॥
बाह्य प्रकाशिया पुनः करये क्रन्दन।
दास्यभाव प्रकाश करये अनुक्षण॥३१४॥
गला धरि' कान्दे सब-वैष्णव देखिया।
सबारे सम्भाषे 'भाइ', 'बान्धव' बलिया॥३१५॥
लखिते ना पारे केह, हेन माया करे।
भृत्य बिना ताँर तत्त्व के बुझिते पारे?३१६॥
प्रभुर चरित्र देखि' हासे भक्तगण।
सबाइ बलेन—"अवतीर्ण नारायण॥"३१७॥

(३१३-३१७) प० अनु०—चैतन्य का प्रेम-विलास अचिन्तनीय है, वह सहज समझ में नहीं आता है। एक क्षण उन्होंने ऐश्वर्य का प्रकाश किया और दूसरे ही क्षण मूर्च्छित हो गये। फिर बाह्य चेतना को प्रकट करते हुये वे क्रन्द्रन करने लगे और उनमें निरन्तर दास्यभाव की अभिव्यक्ति होने लगी। सभी वैष्णवों को देखकर वे उनको गले लगाते हुये रोते रहे और 'भाई', 'बन्धु' कहकर सबसे सभाषण किया।

प्रभु ने ऐसी माया फैलाई कि किसी को वास्तविकता का पता ही न चला। कोई उनको समझ ही न पाया। भृत्य (दास) के अतिरिक्त और कौन उनके तत्त्व को समझ सकता है? प्रभु के चरित्र को देखकर भक्तजन हँसने लगे। सभी कहने लगे कि, "नारायण अवतीर्ण हुये है।"

श्रीगौरसुन्दर द्वारा ऐश्वर्य का संगोपन
करना एवं मूर्च्छित हो जाना तथा
भक्तजनों का क्रन्दन एवं चिन्ता—

कतक्षण थाकि' प्रभु खट्टार उपर।
आनन्दे मूर्च्छित हैला श्रीगौरसुन्दर॥३१८॥
धातु-मात्र नाहि,—पड़िलेन पृथिवीते।
देखि' सब पारिषद लागिया कान्दिते॥३१९॥
सर्व-भक्तगण युक्ति करिते लागिला।
आमा-सबा छाड़िया वा ठाकुर चलिला॥३२०॥
यदि प्रभु एमत निष्ठुर-भाव करे।
आमाराह एइक्षणे छाड़िव शरीरे॥३२१॥

(३१८-३२१) प०अनु—कुछ देर तक प्रभु श्रीगौरसुन्दर सिंहासन के ऊपर विराजमान रहे, फिर आनन्द में मूर्च्छित हो गये। शरीर में धातु नहीं रही और वे संज्ञा-शून्य होकर पृथ्वी पर गिर गये। यह देखकर सभी पारिषद वर्ग रोने लगे। सभी भक्तजन विचार करने लगे कि, शायद ठाकुर हम सबको छोड़कर चल दिये। यदि प्रभु ने इस प्रकार के निष्ठुर-भाव का प्रदर्शन किया, तो हम सभी इसी क्षण शरीर त्याग देंगे।

(३१९) गौः भाः—गौरसुन्दर आनन्द में मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गये। उनकी स्पंदनमयी जीवनी शक्ति दिखाई नहीं दे रही थी। इसलिए सभी पार्षदगण क्रन्दन करने लगे।

'धातु'—शब्द से वात-पित्त-कफात्मक नाड़ीत्रय।

भक्तजनों की चिन्ता से सर्वज्ञ ईश्वर
का बाह्य प्रकाश एवं भक्तजनों का
आनन्द कोलाहल—

एतेक चिन्तिते सर्वज्ञेर चूड़ामणि।
बाह्य प्रकाशिया करे महा–हरिध्वनि॥३२२॥
सर्वगणे उठिल आनन्द–कोलाहल।
ना जानि के कोन्‌दिगे हइल विह्वल॥३२३॥
एइमत आनन्द हय नवद्वीप–पुरे।
प्रेमरसे वैकुण्ठेर नायक विहरे॥३२४॥

(३२२–३२४) प० अनु०—भक्तों की इस प्रकार की चिन्ता से सर्वज्ञ–चूड़ामणि महाप्रभु श्रीविश्वम्भर बाह्य चेतना का प्रकाश करते हुये हरिध्वनि करने लगे। सब भक्त–मण्डली आनन्द कोलाफल में झूम उठी और पता नहीं, कौन कहाँ विह्वल हो गया। इस प्रकार नवद्वीपपुर में, जहाँ वैकुण्ठ के नायक प्रेमरस में विहार कर रहे थे, ऐसा अद्‌भुत आनन्द होने लगा।

(३२४) गौः भाः—नवद्वीपपुर—गौड़पुर, श्रीमायापुर पल्ली।

अध्याय की फलश्रुति—

ए सकल पुण्यकथा ये करे श्रवण।
भक्तसंगे गौरचन्द्रे रहु ता'र मन॥३२५॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥३२६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे ऐश्वर्य प्रकाशवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः।

(३२५–३२६) प० अनु०—इन सब पुण्य कथाओं का जो श्रवण करेंगे, उनका मन भक्ति–सहित गौरचन्द्र में लगा रहेगा। श्रीकृष्ण चैतन्य और श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय–भाष्य में अष्टम अध्याय समाप्त

O

नवम अध्याय

नवम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में, श्रीगौसुन्दर का 'सात-प्रहरिया' (इक्कीस घंटे का) महाप्रकाश और विष्णुसिंहासन पर उपवेशन, भक्तों द्वारा उनका अभिषेक, स्तुति एवं दशाक्षर गोपालमंत्र की विधि के अनुसार षोडशोपचार से महाप्रभु की पूजा और महाप्रभु-द्वारा भक्तप्रदत्त द्रव्य का भोजन, महाप्रभु द्वारा श्रीवासादि भक्तों का पूर्व वृत्तान्त कहना, भक्तों द्वारा सन्ध्या आरती, भक्तश्रेष्ठ श्रीधर का आख्यान एवं वैष्णचरित्र का माहात्मय आदि विषय वर्णित हुये हैं।

एक दिन महाप्रभु ने नित्यानन्द के साथ श्रीवास के गृह में आगमन किया। चारों तरफ से आये हुये भक्तवृन्दों ने प्रभु का संकेत समझकर कीर्तन आरम्भ किया। लोकशिक्षक श्रीगौरसुन्दर नित्यप्रति भक्त-भाव में नृत्य-कीर्तनादि किया करते थे एवं कभी अनजाने अपने भावावेश में विष्णु-सिंहासन पर विराजमान हो जाते थे। किन्तु आज परतत्त्व श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तभाव को छिपाकर और आवेशभाव को त्याग कर, आप जो स्वयं विष्णुवस्तु या विषयविग्रह है, उसे प्रकाशित करके निखिल आश्रित भक्तों की सेवा को ग्रहण करने के उद्देश्य से विष्णु-सिंहासन पर सप्त प्रहर (इक्कीस घंटे) तक विराजमान रहे। उन्होंने इस महाप्रकाश लीला में विष्णु के सब अवतारों के रूप-समूहों का प्रकाशन किया था।

उस दिन प्रभु के संकेतानुसार भक्तजनों ने परमानन्द चित्त से विविध उपायनों के साथ वैकुण्ठाधिपति षडैश्वर्यपूर्ण श्रीगौरनारायण का 'राजराजेश्वर-अभिषेक' सुसम्पन्न किया। भक्तों ने दशाक्षर गोपालमंत्र की विधि के अनुसार षोडशोपचार से महाप्रभु की पूजा करके बहुत प्रकार की स्तुति-वन्दनाएँ करते हुये श्रीगौरसुन्दर ही सर्वकारणकरण, सर्वेश्वरेयवर हैं एवं जीव के उद्धार-हेतु उन्होंने अपनी सेवा के प्राकट्य की अभिलाषा से भक्त-भाव को अंगीकार किया हैं, ऐसी बहुविध उनकी अप्राकृत गुण-लीलादि का वर्णन किया। उसके बाद श्रीगौसुन्दर ने पूजा के निमित्त निष्कपट पूर्वक अपने श्रीचरण प्रसारित कर दिये; तब सब भक्तों ने अपनी-अपनी अभिलाषानुसार संगृहीता नाना उपकरणों द्वारा श्रीगौरपादपद्म की पूजा की। महाप्रभु ने भी भक्तों की सेवा ग्रहण करने के अभिप्राय से स्वयं याचक होकर भक्तों के द्वारा प्रदत्त बहु प्रकार के भक्ष्य द्रव्यों का परम आनन्द से भोजन किया एवं श्रीवासादि भक्तवृन्दों के पूर्व वृत्तान्त समूह का वर्णन करने लगे। भक्तों के द्वारा सन्ध्या-आरती सम्पन्न होने के बाद श्रीगौरसुन्दर ने अपनी ऐश्वर्य प्रकाश-लीला का प्रदर्शन करने हेतु अपने अति प्रिय भक्त श्रीधर को बुला लाने के लिए भक्तों को आदेश किया। प्रभु के आदेश से वैष्णवजनों ने आधे रास्ते में पहुँचकर ही श्रीधर की उच्च हरिनाम ध्वनि को सुनते हुये उसके अनुसरण से श्रीधर के भवन की ओर गमन किया। बाहर के परिचय से

श्रीधर अत्यन्त दरिद्र थे, ऐसा होने पर भी वे महाप्रभु के आलौकिक भक्त थे। इसलिए वे कृष्ण-प्रेम-धन से नित्यकाल धनी थे। युधिष्ठिर की तरह महा सत्यवादी दरिद्र खोला बेचने वाले श्रीधर ने भगवत् सेवा में जो असामान्य आदर्श जगत में प्रदर्शित किया, वह सभी के लिए अनुसरण करने योग्य है। पाखण्डी जन मन में विचार करते थे कि श्रीधर दारिद्रय से पीड़ित होकर क्षुधा की ज्वाला (अत्यधिक भूख) से सारी रात्रि जागकर भगवान् का नाम कीर्तन करता है। वे नहीं जानते थे कि श्रीधर निखिल ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवी के पति की सेवा में सर्वदा लगे रहते हैं, उनके पास कभी भी वास्तविक दारिद्रय नहीं आ सकता। श्रीधर पाखण्डीजनों की बात पर ध्यान न देते हुये सर्वदा कृष्ण-नामरस-पान में विभोर रहते थे एवं रात्रि के समय अपने एवं जगत् के पारमार्थिक मंगल के लिए आर्त भाव से भगवान् को पुकारते थे। भक्तों के निकट महाप्रभु का नाम सुनने-मात्र से श्रीधर आनन्द से मूर्च्छित हो गये, तब भक्तजन उनको सावधानी से महाप्रभु के निकट ले आये। श्रीधर को देखकर महाप्रभु परमानन्दित हुये एवं श्रीधर भी प्रभु के दिव्य भुवनमोहन रूप का दर्शन करके अति मुग्ध हो गये।

प्रभु के विद्या विलास के समय श्रीधर केला, मूल, थोड़ आदि बेचकर अपना जीवन यापन करते थे। भगवान् भक्तों का द्रव्य ही परम आनन्द से ग्रहण करते हैं, किन्तु अभक्त के द्रव्य की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। इसको प्रदर्शित करने के लिए ही महाप्रभु श्रीधर से उन सब चीजों को छीनकर लेते थे एवं उसके लिए नाना प्रकार से कलह करते थे। महाप्रभु ने उन्हीं सब लीला-कथाओं का श्रीधर को स्मरण कराते हुये उनको अष्ट-सिद्धि देने की इच्छा प्रकट की थी। उसके पश्चात् महाप्रभु ने श्रीधर को अपने अपूर्व ऐश्वर्य को प्रदर्शन कराया। उसका प्रदर्शन करने मात्र से श्रीधर विस्मित होकर मूर्च्छित हो गये। श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा से जब श्रीधर की संज्ञा लौटी, तब प्रभु ने उसको स्तुति करने का आदेश दिया। श्रीधर द्वारा दैन्यपूर्वक अपनी मूर्खता का प्रकाशन करते हुये महाप्रभु की स्तुति करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो प्रभु के आदेश से शुद्धा सरस्वती उनकी जिह्वा पर अधिष्ठित हो गईं और तब से महाप्रभु की अपूर्व स्तुति करने लगे। श्रीधर के स्तव से सन्तुष्ट होकर महाप्रभु ने उन्हें वर माँगने को कहा। श्रीधर ने प्रभु से यही वर देने की प्रार्थना कि, जो नित्याप्रति उसके निकट खोल पाता लेने के लिए झगड़ा किया करते थे, वही जन्म-जन्म में उनके प्रभु हों। महाप्रभु ने श्रीधर को राज्येश्वर बनाने की इच्छा प्रकट की, पर श्रीधर ने उसे अस्वीकार करते हुये प्रभु से प्रभु के गुणगान करने की सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की। श्रीगौरभक्त किसी सांसारिक विषय के ग्राहक नहीं होते हैं। वे अप्राकृत भगवत् सेवा की ही प्रार्थना करते हैं। श्रीगौरसुन्दर की कृपा कटाक्ष प्राप्त जन धर्म, अर्थ, काम, अष्ट सिद्धियाँ,—यहाँ तक कि, मोक्ष तक को नितान्त हेय और तुच्छ जानकर कृष्ण पादपद्मों की सेवा की ही कामना करते हैं। अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने की उनकी इच्छा कभी नहीं होती। बाहर के परिचय से वैष्णव को नहीं पहचाना जा सकता। विषय-भोग में उन्मत्त व्यक्ति अप्राकृत वैष्णव ठाकुर श्रीधर के ऐश्वर्य और धन की महिमा नहीं जान सकता। जड़ीय इन्द्रिय ज्ञान से 'वैष्णवों का अभाव' समझने से भी वास्तव में उनको

कोई अभाव हो ही नहीं सकता। वे दीनहीन जीवों को हरिभजन की शिक्षा देने के लिए जगत् मे दरिद्रकुल में आविर्भूत होने पर भी वास्तव में दरिद्र नहीं होते हैं। दरिद्रकुल में जन्म ग्रहण करके किस प्रकार हरिभजन किया जा सकता है—उसका प्रदर्शन करना ही इस प्रकार की लीला का उद्देश्य है। वैष्णव-चरित्र जड़-इन्द्रिय-ज्ञान से नहीं समझा जा सकता। निष्कपट सरल भाव से वैष्णव के शरणागत होने पर ही उनकी कृपा होने से उन्हें पहचाना जा सकता है। वैष्णवों के बारे में जड़ इन्द्रिय-ज्ञान से विचार करने की चेष्टा न करके, वैष्णवापराध से दूर रहना बुद्धिमान का कर्तव्य है। वैष्णवपराध-विहीन जन ही मात्र एक बार कृष्णनाम ग्रहण करने से अनायास ही प्रेम प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा साधु निन्दारूप नामापराध आकर महान् अनर्थ की सृटि कर देता है।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

गौरनिधि कपट संन्यासी–वेशधारी।
अखिल–भुवन–अधिकारी ॥१॥
जय जगन्नाथ शचीनन्दन चैतन्य।
जय गौरसुन्दर संकीर्तन धन्य ॥२॥
जय नित्यानन्द–गदाधरेर जीवन।
जय जय अद्वैत–श्रीवास–प्राणधन ॥३॥
जय श्रीजयदानन्द–हरिदास–प्राण।
जय वक्रेश्वर–पुण्छरीक–प्रेमधाम ॥४॥
जय वासुदेव–श्रीगर्भेर प्राणनाथ।
जीव प्रति कर प्रभु शुभदृष्टिपात ॥५॥
भक्तगोष्ठी सहित गौरांग जय जय।
शुनिले चैतन्य–कथा भक्ति लभ्य हय ॥६॥
मध्यखण्ड कथा भाइ शुन एकचिते।
महाप्रभु गौरचन्द्र विहरे ये–मते ॥७॥

(१–७) प० अनु०—जिन चतुर्दश-भुवन-पति श्रीगौरनिधि ने बाहर से संन्यासी का वेश धारण किया हुआ है तथा जो श्रीजगन्नाथ मिश्र और शची के नन्दन हैं, ऐसे श्रीचैतन्य चन्द्र की जय हो। श्रीगौरसुन्दर के धन्य संकीर्तन की जय हो। श्रीनित्यानन्द और श्रीगदाधर के जीवन-स्वरूप प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत तथा श्रीवास के प्राणधन प्रभु की जय हो। श्रीजगदानन्द और श्रीहरिदास के प्राण-स्वरूप गौर की जय हो। श्रीवासुदेव और गर्भदेव के प्राणनाथ की जय हो। हे प्रभो! आप जीवों के प्रति शुभदृष्टि कीजिए। भक्तों की गोष्ठी सहित श्रीगौरांग की जय हो, जय हो। श्रीचैतन्यचन्द्र की कथा एकचित्त होकर सुनों कि किस प्रकार महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र ने विहार किया है।

(१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर—चतुर्दश-भुवनों के पति हैं। उन्होंने जगत् के जीवों को शिक्षा देने के लिए जड़-जगत् के समस्त भोगों का परिहार करके त्यागी का वेश धारण करते हुये मानव की योग्यता या अधिकार का प्रदर्शन किया।

(२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर का संकीर्तन सब प्रकार से श्रेष्ठ है। दस कीर्तन के विषय में भगवतलीला की पराकाष्ठा का सर्वोत्तम आदर्श वर्णित है एवं कीर्तन की यही उचित वर्णना है, इसलिए उसकी तुलना नहीं है।

(४) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर—श्रीवक्रेश्वर और श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि के प्रेम के आश्रय हैं, अर्थात श्री गौरहरि-विषय के आश्रित-तत्त्व वक्रेश्वर और पुण्डरीक ने उनका आश्रय प्राप्त किया।

वैष्णवों के मनोरथ को सिद्धि प्रदान करने हेतु चैतन्य का महाप्रकाश—

एबे शुन चैतन्येर महा–परकाश।
याँह सर्व–वैष्णवेर सिद्धि–अभिलाष॥८॥

(८) प० अनु०—अब श्रीचैतन्यचन्द्र के महाप्रकाश की कथा सुनो जिसमें सब वैष्णवों की अभिलाषाएँ पूर्ण हुई हैं,—

(८) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के महाप्रकाश का वर्णन सुनने से सब वैष्णवों का अभीष्ट पूर्ण हेाता है।

ग्रन्थकार–द्वारा प्रभु के सात–प्रहरिया भाव का सूत्र–वर्णन—

'सात–प्रहरिया–भाव' लोके ख्याति या'र।
येँहि प्रभु हइलेन सर्व अवतार॥९॥
अद्‌भुत भोजन येँहि, अद्‌भुत प्रकाश।
यारे तारे विष्णुभक्ति–दानेर विलास॥१०॥
राज–राजेश्वर–अभिषेक सेइ दिने।
करिलेन प्रभुरे सकल भक्तगणे॥११॥

(९–११) प० अनु०—जो संसार में 'सात–प्रहरिया भाव' नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें प्रभु ने सब अवतारों का प्रकाश किया था, जिसमें प्रभु ने अद्‌भुत भोजन किया था, एवं अद्‌भुत स्वरूप प्रकाश किया था तथा जिसमें जो कोई को विष्णुभक्ति दान का विलास वर्णन है। उसी दिन सब भक्तों ने मिलकर प्रभु का राज–राजेश्वर अभिषेक किया था।

(९) गौः भाः—साढ़े सात दण्ड का एक प्रहर, अर्थात् तीन घण्टे। सात प्रहर, अर्थात् तीन घण्टे। सात प्रहर में—इक्कीस घण्टे। श्रीगौरहरि ने इक्कीस घण्टो तक विष्णु के सब अवतारों की लीलाओं का प्रकाश किया था। उस समय उन्होंने आश्चर्यमयी लीलाओं का प्रकाश करके भोजन किया था एवं हरिभक्ति दान करके भक्तों को आनन्दित किया था।

श्रीनित्यानन्द के साथ महाप्रभु का श्रीवास के घर आगमन और धीर–धीरे वहाँ सब भक्तों का मिलन—

एकदिन महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर।
आइलेन श्रीनिवास पण्डितेर घर॥१२॥
संगे नित्यानन्दचन्द्र परम विह्वल।
अल्पे अल्पे भक्तगण मिलिला सकल॥१३॥

(१२–१३) प० अनु०—एकदिन महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर श्रीवास पण्डित के घर आये। अपने भाव में परम विह्वल श्रीनिवासचन्द्र उनके साथ थे। सब भक्तजन भी धीरे–धीरे वहाँ आ मिले।

आविष्टचित्त महाप्रभु का ऐश्वर्य प्रकाशपूर्वक चारों ओर निरीक्षण एवं प्रभु के संकेत से भक्तों का संकीर्तन आरम्भ—

आवेशित चित्त महाप्रभु गौर–राय।
परम ऐश्वर्य करि' चतुर्द्दिके चाय॥१४॥
प्रभुर इंगित बुझिलेन भक्तगण।
उच्चैःस्वरे चतुर्द्दिके करेन कीर्तन॥१५॥

(१४–१५) प० अनु०—महाप्रभु श्रीगौरराय आवेश में थे, वे परम ऐश्वर्य का प्रकाश करते हुये चारों ओर देख रहे थे। भक्तजन प्रभु के संकेत को समझ गये और वे चारों ओर से उच्चस्वर से कीर्तन करने लगे।

प्रभु द्वारा भक्तभावलीला का संगोपन करके भगवद्‌भाव में इक्कीस घण्टों तक विष्णु–सिंहासन पर विराजमान होना—

अन्य अन्य दिन प्रभु नाचे दास्यभावे।
क्षणेके ऐश्वर्य प्रकाशिया पुनः भांगे॥१६॥
सकल भक्तेर भाग्ये ए दिन नाचिते।
उठिया बसिया प्रभु विष्णुर खट्टाते॥१७॥ आर
सब दिने प्रभु भव प्रकाशिया।
वैसेन विष्णुर खाटे येन ना जानिया॥१८॥
सात–प्रहरिया–भावे छाड़ि सर्व माया।

बसिया प्रहर–सात प्रभु व्यक्त हैया॥१९॥
जोड़ हस्ते सम्मुखे सकल भक्तगण।
रहिलेन परम आनन्दयुक्त मन॥२०॥
कि अद्‌भुत सन्तोषेर हइल प्रकाश।
सबाइ बासेन येन वैकुण्ठ–विलास॥२१॥
प्रभुओ बसिया येन वैकुण्ठेर नाथ।
तिलार्द्धेक माया–मात्र नाहिक कोथात॥२२॥

(१६–२२) प० अनु०—अन्य–अन्य दिनों में तो प्रभु दास्यभाव से नृत्य करते थे और बीच–बीच में क्षण–भर कर देते थे। परन्तु समस्त भक्तों के भाग्य से उस दिन प्रभु नाचते–नाचते विष्णु–सिंहासन पर विराजमान हो गये। अन्य सब दिनों में तो प्रभु ऐश्वर्य भाव प्रकाशित करके विष्णु–सिंहासन पर ऐसे जा बैठते थे, जैसे वे कुछ जानते ही नहीं हैं; परन्तु आज सब माया को हटाकर से सात प्रहर तक अपने ईश्वर भाव को व्यक्त करते हुये वहाँ बैठे रहे। सब भक्त भी परमानन्द चित्त से उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहे। उस समय कैसा अद्‌भुत आनन्द का प्रकाश हुआ! सभी लोग यह समझ रहे थे कि साक्षात् वैकुण्ठ की ही लीला हो रही है। प्रभु भी ठीक वैकुण्ठनाथ की भाँति बैठ गये। उन्होंने आधा तिल मात्र भी कहीं माया का आवरण नहीं रखा।

(१७–१९) गौः भाः—विष्णुर खट्टा—अर्थात् भगवान् विष्णु का सिंहासन। अन्य–अन्य दिनों में महाप्रभु जैसे बिना जाने ही अपने भावावेश में विष्णु–सिंहासन पर विराजमान हो जाते थे, किन्तु उस दिन वे भक्तभाव–लीला का संगोपन करके भगवद्–भाव में इक्कीस घण्टों तक विष्णु–सिंहासन पर विराजमान रहे। उस दिन उन्होंने किसी प्रकार की माया का आवरण नहीं रखा। अपने स्वरूप का सम्पूर्ण भाव से प्रकाश किया, अर्थात् वे जो स्वयं विष्णु–वस्तु या विषय–विग्रह हैं, उसे सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित करके निखिल आश्रितजनों की सेवा ग्रहण की।

प्रभु के संकेत से भक्तों द्वारा प्रभु का अभिषेक गीत–कीर्तन एवं पुरुषसूक्त मंत्र से अभिषेक—

आज्ञा हैल,—''बल मोर अभिषेक–गीत।''
शुनि' गाय भक्तगण हइ' हरषित॥२३॥
अभिषेक शुनि' प्रभु मस्तक ढुलाय।
सबारे करेन कृपादृष्टि अ–मायाय॥२४॥
प्रभुर इंगित बुझिलेन भक्तगण।
अभिषेक करिते सबार हैल मन॥२५॥
सर्व–भक्तगणे बहि' आने गंगाजल।
आगे छाँकिलेन दिव्य वसने सकल॥२६॥
शेषे श्रीकर्पूर चतुःसम–आदि दिया।
सज्ज करिलेन सबे प्रेमयुक्त हैया॥२७॥
महा–जय–जय ध्वनि शुनि' चारिभिते।
अभिषेक–मंत्र सबे लागिया पड़िते॥२८॥
सर्वाद्ये श्रीनित्यानन्द 'जय जय' बलि'।
प्रभुर श्रीशिरे जल दिला कुतुहली॥२९॥
अद्वैत–श्रीवास–आदि यतेक प्रधान।
पड़िया पुरुषसूक्त करायेन स्नान॥३०॥
गौरांगेर भक्त सब महामंत्रवित्।
मंत्र पड़ि' जल ढाले हइ' हरषित॥३१॥
मुकुन्दादि गाय अभिषेक सुमंगल।
केह कान्दे, केह नाचे आनन्दे विह्वल॥३२॥
पतिव्रतागण करे 'जय–जयकार'।
आनन्दस्वरुप चित्त हइल सबार॥३३॥
बसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर।
भक्तगणे जल ढाले शिरेर उपर॥३४॥
नाममात्र अष्टोत्तरशत घट जल।

सहस्र घटेओ अन्त ना पाइ सकल॥३५॥

(२३—३४) प० अनु—और तब यह आज्ञा हुई कि "मेरे अभिषेक के गीत गाओ।" यह सुनकर भक्तजन हर्षित होकर गाने लगे। अभिषेक गान को सुनकर प्रभु आनन्द से झूमते हुये सिर हिलाने लगे और सब के ऊपर स्नेहपूर्ण कृपा-दृष्टिपात करने लगे। प्रभु ने अभिषेक करने के लिए संकेत किया, जिसे समझकर सबके मन में अभिषेक करने की अभिलाषा हुई। तब तो सब भक्तजन गंगाजल ढो-ढोकर लाने लगे। पहले उस जल को दिव्य वस्त्र से छाना गया, फिर उसमें श्रीकर्पूर, चतुःसम आदि मिलाकर प्रेमपूर्वक सज्जित कर लिया गया। चारों ओर से महा जय-जय ध्वनि होने लगी और सब भक्तजन अभिषेक मंत्र पढ़ने लगे। सर्वप्रथम बड़ी उत्कष्ठा से श्रीनित्यानन्द ने 'जय-जय' कहकर प्रभु के श्रीमस्तक पर जल डाला। पश्चात् श्रीअद्वैत, श्रीवास आदि प्रधान भक्तों ने पुरुषसूक्त पाठ करके प्रभु को स्नान कराया। श्रीगौरांग के सब भक्त महा मंत्रज्ञाता थे। वे सब हर्षित होकर मंत्र पढ़-पढ़ कर जल डालते रहे। मुकुन्द आदि भक्त अभिषेक के मंगल गीत गा रहे थे, कोई आनन्द में विह्वल होकर रो रहा था तो कोई नाच था। पतिव्रतायें जय-जयकार कर रही थीं, सभी का चित्त आनन्दस्वरुप हो रहा था। वैकुण्ठ के अधीश्वर प्रभु बैठे हुये थे एवं सभी भक्तजन सिर के ऊपर जल डाल रहे थे। एक सौ आठ घड़े तो केवल कहने के लिए ही हैं, वहाँ तो हजारों घड़ों से भी पूरा नहीं पड़ा।

(२३) गौः भाः—अभिषेक-गीत,—अभिषेक के समय योग्य स्तुति। राजराजेश्वर के सिंहासन पर अधिरोहण के समय प्रभु के आश्रितों ने सभी स्तुतियों और वन्दनाओं द्वारा तथा नाना उपहारों के साथ अभिषेक गान किया।

(२४) गौः भाः—अभिषेक शुनि'—अभिषेक-स्तव-गीत को सुनकर।

(२७) गौः भाः—चतुःसम,—कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु। कुंकमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्याच्चतुःसमम्॥—(हरिभक्तिविलास ६/११५ धृत गारुड़ वचन) अर्थात् दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुंकम या जाफरान (केसर) एवं एक भाग कर्पूर इन चारों द्रव्यों को एकत्र करने से चतुःसम होता है।

(३०) गौः भाः—पुरुष-सूक्त—"ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥ ॐ पुरुष ए वेदं सर्व यद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहित॥ ॐ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि॥ ॐ त्रिपादूर्द्धर्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनाऽशनेऽभि॥ ॐ ततो विराडजायत विराजो ऽधिपूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चात् पृषदात्यम्। पशूंस्ताँश्चक्रे वाय-व्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ ॐ तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजा वयः॥ ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषश्च ये॥ ॐ यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखंकिमस्य कौ बाहू का ऊरुपादा उच्येते॥ ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरूः तदस्य यद्वैशयः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥ ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन॥ ॐ यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वदन्तो

अस्यासीदात्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः॥ ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञंजन्त तन्वाना अबन्धनन् पुरूषं पशुम्॥ ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥"

(३५) गौः भाः—साधारण मांगलिक क्रिया में बहु उद्देश्य से १०८ संख्या कही गई है; किन्तु प्रकृत प्रस्ताव में सौ–सौ घटों से स्नान कराया गया था। स्नानविधि के संबंध में 'श्रीहरिभक्तिविलास' (१९/८८) में इस प्रकार लिखा है,—धनवान् होने से शक्ति के अनुसार सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, काँसा अथवा मिट्टी द्वारा निर्मित एक हजार, पाँच सौ, ढाई सौ, एक सौ आठ, चतुःषष्टि चौसठ), बत्तीस, सोलह अथवा उसमें भी असमर्थ होने पर चार कुम्भों द्वारा स्नान करायें।

देवताओं द्वारा छद्मवेश में गौर–अभिषेक—

देवता–सकले धरि' नरेर आकृति।
गुप्ते अभिषेक करे, ये हय सुकृति॥३६॥

(३६) प० अनु०—सब देवता, जो सुकृतिशाली थे, उन्होंने मनुष्य का रूप धारण कर गुप्त रूप से प्रभु का अभिषेक किया।

प्रभु पादपद्मों में पाद्यादि प्रदान की महिमा—

याँर पादपद्मे जलबिन्दु दिले मात्र।
सेह ध्याने, साक्षाते के दिते आछे पात्र?३७॥
तथापि तारे नाहि यमदण्ड हय।
हेन प्रभु साक्षाते सबार जल लय॥३८॥
श्रीवासेर दासदासीगणे आने जल।
प्रभु स्नान करे,—भक्त–सेवार एइ फल॥३९॥
श्रीवास की 'दुःखी' दास का सौभाग्य—
जल आने एक भाग्यवती 'दुःखी' नाम।
आपने ठाकुर देखि' बले,—'आन आन'॥४०॥
आपने ठाकुरे ता'र भक्तियोग देखि'।
'दुःखी' नाम घुचाइया थुइलेन 'सुखी'॥४१॥

(३७–३९) प० अनु०—प्रभु के चरणकमलों में साक्षात् जल देने का अधिकार भला कितनों को प्राप्त हो जाता है, ध्यान में भी उनके चरणों में जलबिन्दु देने वाले व्यक्ति को यमराज का दण्ड नहीं मिलता है, ऐसे प्रभु आज साक्षात् सबका जल ग्रहण कर रहे हैं। श्रीवास के दासदासी जल लाते हैं और प्रभु स्नान करते हैं, यह भक्तसेवा का फल है।

(३७–३८) गौः भाः—"यावन्ति जलविन्दूनि मम गात्रे निवेशयेत्। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥"— (हः भः विः १९/९६) अर्थात् जो मेरी देह पर जितनी संख्या में जलबिन्दु प्रदान करेंगे, वे उतने ही सहस्र वर्ष वैकुण ठलोक में वास करेंगे। ('स्वर्गलोके महीयते' इति वैकुण्ठलोक गच्छन् पथि इन्द्रादिभिर्भक्त्या विश्रमष्य(चिरमभ्यर्च्यत इत्यर्थः)।

(४०–४१) प० अनु०—जल लाने वालों में एक भाग्यवती दासी का नाम 'दुखी' था। उसको जल लाते देखकर प्रभु स्वयं कहने लगे—'लाओ लाओ'। और उसके भक्तिभाव को देखकर प्रभु ने स्वयं उसका 'दुःखी' नाम हटा कर 'सुखी' नाम रख दिया।

भक्तों के द्वारा प्रभु की दशाक्षर गोपाल–मंत्र से पूजा और विविध सेवा—

नाना वेदमंत्र पड़ि' सर्व–भक्तगण।
स्नान कराइया अंग करिला मार्जन॥४२॥
परिधान कराइला नूतन वसन।
श्रीअंगे लेपिया दिव्य सुगन्धि–चन्दन॥४३॥
विष्णुखट्टा पातिलेन उपस्कार करि'।
बसिलेन प्रभु निज खट्टार उपरि॥४४॥
छत्र धरिलेन शिरे नित्यानन्द राय।

कौन भाग्यवन्त रहि' चामर ढुलाय॥४५॥
पुजार सामग्री लइ' सर्व–भक्तगण।
पूजिते लागिया निज–प्रभुर चरण॥४६॥
पाद्य, अर्घ्य, आचमयी, गन्ध, पुष्प, धूप।
प्रदीप, नैवेद्य, वस्त्र, यथा अनुरूप॥४७॥
यज्ञसूत्र यथाशक्ति वस्त्र–अंलकार।
पूजिलेन करिया षोडश उपचार॥४८॥
चन्देन करिया लिप्त तुलसीमंजरी।
पुनः पुनः देन सबे चरण–उपरि॥४९॥
दशाक्षर गोपालमंत्रेर विधिमते।
पूजा करि' सबे स्तव लागिता पड़िते॥५०॥
अद्वैतादि करि' यत पार्षद–प्रधान।
पड़िला चरणे करि' दण्ड–परमाण॥५१॥
प्रेमनदी बहे सर्वगणेर नयने।
स्तुति करे सबे, प्रभु आमायाय शुने॥५२॥

(४२–५२) प० अनु०—अनेक वेदमंत्रों के द्वारा सब भक्तों ने प्रभु को स्नान कराया, श्रीअंग को पोंछा, नवीन वस्त्र धारण कराये और श्रीअंग पर दिव्य सुगन्धित चन्दन का लेप किया। पश्चात्, संस्कार करके विष्णु सिंहासन लगाया गया, तब प्रभु गौरसुन्दर अपने सिंहासन पर विराजमान हुये। श्रीनित्यानन्द राय ने शिर पर छत्र धारण किया, दूसरे एक भाग्यवान् चँवर करने लगे। फिर सब भक्तों ने पूजा को सामग्री लेकर अपने प्रभु के चरणों की पूजा की। प्रथम पाद्य और अर्घ्य देकर फिर आचमन कराया, फिर श्रीअंग में गन्धलेपन कर मालाएँ अर्पित कीं। धूप-दीप के बाद नैवेद्य समर्पित किया। श्रीअंगो में यथोचित वस्त्र, यज्ञसूत्र और यथाशाक्ति अलंकार धारण कराये। इस प्रकार षोडशोपचार से भक्तों ने प्रभु की पूजा सम्पन्न की। फिर भक्तों ने चन्दन-लिप्त तुलसी मंजरी प्रभु के श्रीचरणों के ऊपर बारम्बार प्रदान की। दशाक्षर गोपालमंत्र की विधि के अनुसार पूजा करने के पश्चात् सब भक्त प्रभु की स्तुति पढ़ने लगे। श्रीअद्वैताचार्य आदि प्रधान-प्रधान पार्षदों ने श्रीचरणों में पड़कर दण्डवत् प्रणाम किया। सब भक्तों के नेत्रों से प्रेम की नदी बह रही थी और सभी स्तुति कर रहे थे एवं प्रभु सरल भाव से सुन रहे थे।

(४८) गौः भाः—षोडशोपचार—मध्य ६/११० का गौड़ीय भाष्य द्रष्टव्य है।

(५०) गौः भाः—दशाक्षर गोपालमंत्र—गोतमीय तंत्र २य अध्याय एवं नारद-पंचरात्र ३/३ और ४/६८ श्लोकसमूह द्रष्टव्य हैं।

(५२) अमायाय शुने,—श्रीगौरसुन्दर—मायाधीश तत्त्व हैं, इसलिए जीव की तरह वे मायाबद्ध नहीं हैं। उन्होंने अपने नारायण-प्रकाश में मायिक विचारों से परे की लीला को प्रदर्शित किया है।

भक्तों के द्वारा गौर-स्तुति—

''जय जय जय सर्व–जगतेर नाथ।
तप्त जगतेरे कर शुभ दृष्टिपात॥५३॥
जय आदिहेतु, जय जनक सवार।
जय जय संकीर्तनाम्भ अवतार॥५४॥
जय जय वेद–धर्म साधुजनत्राण।
जय जय आब्रह्म–स्तम्भेर मूल–प्राण॥५५॥
जय जय पतितपावन गुणसिन्धु।
जय जय परम शरण दीनबन्धु॥५६॥
जय जय क्षीरसिन्धु–मध्ये गोपवासी।
जय जय भक्त–हेतु प्रकट विलासी॥५७॥
जय जय अचिन्तय–अगम्य–आदि–तत्त्व।
जय जय परम कोमल शुद्ध–सत्त्व॥५८॥
जय जय विप्रकुलपावन–भूषण।
जय वेदधर्म–आदि सवार जीवन॥५९॥
जय जय अजामिल–पतितपावन।

जय जय पूतना दुष्कृति–विमोचन॥६०॥
जय जय अदोष–दरशि रमाकान्त।''
एइ मत स्तुति करे सकल महान्त॥६१॥

(५३–६१) प० अनु०—सब जगत् के नाथ की जय हो, जय हो, जय हो। हे प्रभो! आप (दैहिक–दैविक–भौतिक) इन तीन पापों से दग्ध जगत् के प्रति शुभ दृष्टि कीजिए। आप सबके आदि हैं, आप की जय हो। आप सब के पिता हैं, आप की जय हो। संकीर्तन–आरम्भ के लिए आपका अवतार हुआ है, आपकी जय हो, जय हो। वेद–धर्म–प्रवर्तक आप की जय हो, आप की जय हो, जय हो। साधुजनों का परित्राण करने वाले आपकी जय हो, जय हो। ब्रह्मा से स्थाणु पर्यन्त सबके मूलप्राण स्वरूप आपकी जय हो, जय हो। पतितपावन गुणसिन्धु की जय हो, जय हो। परम शरण दीनबन्धु की जय हो, जय हो। भक्तों के लिए प्रकट लीला करने वाले, जय हो। अचिन्त्य, अगम्य, आदि तत्त्व–स्वरूप आपकी जय हो, जय हो। परम कोमल शुद्ध सत्त्व स्वरूप आपकी जय हो, जय हो। विप्रकुल–पावन ही जय हो, विप्रकुल–भूषण की जय हो। आप वेदधर्म के आदि हैं एवं सब के जीवन–स्वरूप हैं, आपकी जय हो, जय हो। पतित अजामिल को पावन करने वाले प्रभु की जय हो, जय हो। पूतना की दुष्कृति के विनाशक की जय हो, जय हो। अदोषदर्शी रमाकान्त की जय हो, जय हो। इस प्रकार सब बड़े बड़े पार्षदों ने प्रभु की स्तुतियाँ कीं।

(५३) गौः भाः—तप्त,—त्रिताप–दग्ध।

(५४) गौः भाः—शास्त्रों में संकीर्तन–विधि का उल्लेख रहने पर भी साधारण लोग जपदि–निर्जन–सेवा के पक्षपाती थे। किन्तु श्रीगौरसुन्दर ने कलियुग के अधिवासियों के आत्यन्तिक मंगल–विधान के लिए संकीर्तन–प्रथा की उपयोगिता प्रदर्शित की।

(५५) गौः भाः—साधुओं के परित्राण ाकारी नाम–कीर्तन रूप वेदधर्म के प्रवर्त्तक (श्रीगौरहरि) विशेष रूप से जययुक्त हों। ब्रह्मा से लेकर स्थायु–पर्यन्त समस्त दृश्य जगत् के मूलप्राण श्रीगौरहरि विशेषा रूप से जययुक्त हों।

(५७) गौः भाः—क्षीरसागर में शयन करने वाले व्यष्टिविष्णु–प्रतीति गोपकुल के अधिवासी–सूत्र से मूल आकर–वस्तु व्रजेन्दनन्दन ही गौरहरि हैं। उन्होंने अपनी सेवा की प्रकटन–अभिलाषा से भक्तों के निकट गौरलीला को व्यक्त किया था। अन्य पाठ में 'गुप्तवासी' है।

(५८–५९) गौः भाः—श्रीगौरहरि विशुद्ध सत्त्वमय और परम स्निग्ध हैं, वे मूर्त्तिमान–वेदधर्म हैं, सब जीवों के जीवन–स्वरूप एवं ब्राह्मण ाकुल के परम पवित्र अंलकार हैं।

प्रभु के परम–प्रकट–रूप दर्शन
से भक्तों को परमानन्द—

परम–प्रकट–रूप प्रभुर प्रकाश।
देखि' परानन्दे डुबिलेन सर्व–दास॥६२॥

(६२) प० अनु०—प्रभु ने इस प्रकाश में अपने परम रूप को प्रकट किया, जिसका दर्शन करके प्रभु के सब दास परमानन्द में डूब गये।

प्रभु का भक्तों के निकट माया के
आवरण से रहित अपने चरणों को
अर्पण और भक्तों द्वारा विविध प्रकार
से प्रभु के पादपद्मों की पूजा—

सर्व माया घुचाइया प्रभु गौरचन्द्र।
श्रीचरण दिलेन, पूजये भक्तवृन्द॥६३॥
दिव्य गन्ध आनि' केह लेपे श्रीचरणे।

तुलसीकमले मेलि' पूजे कोन जने॥६४॥
केह रत्न–सुवर्ण–रजत अलङ्कार।
पादपद्मे दिया दिया करे नमस्कार॥६५॥
पट्टनेत, शुक्ल, नील, सुपीत वसन।
पादपद्मे दिया नमस्कार सर्वजने॥६६॥
नानाविध धातुपात्र देह सर्वजने।
ना जानि कतेक आसि' पड़े श्रीचरणे॥६७॥

(६३–६७) प० अनु०—प्रभु श्रीगौरसुन्दर ने आज माया का आवरण अपने श्रीचरणों का अर्पण किया था एवं भक्तवृन्द उन चरणों की पूजा कर रहे थे। किसी ने दिव्य गन्ध लाकर प्रभु के श्रीचरणों में लगाई तो किसी ने तुलसीकमल दल रखकर उनके श्रीचरणों की पूजा की। कोई रत्न, स्वर्ण एवं चाँदी के अलंकारो को पादपद्मों में धारण कराकर नमस्कार कर रहा था। किसी ने शुक्ल, नील, पीत वर्ण के रेशमी वस्त्रादि को श्रीचरण कमलों में अर्पित कर नमस्कार किया। सब भक्तवृन्द नाना प्रकार के धातु-पात्र भी अर्पित कर रहे थे। इस प्रकार न जाने कितने भक्तों ने आकर श्रीचरणों में नमस्कार किया। सब भक्तवृन्द नाना प्रकार के धातु-पात्र भी अर्पित कर रहे थे। इस प्रकार न जाने कितने भक्तों ने आकर श्रीचरणों में नमस्कार किया।

(६४) गौः भाः—'गन्ध'—"चन्दनागुरुकर्पूरपंकं गन्धमिहोच्यते"।—(श्रीहरिभक्तिविलास ६/११४ धृत आगमवाक्य) अर्थात् चन्दन, अगुरु, कर्पूरपंक—इस सब का नाम गन्ध है; अथवा "कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु। कुंकुमस्य त्रयश्चैकः शशिनः स्याच्चतुःसमम्॥ कर्पूरं चन्दन दर्पः कुंकमंच चतुःसमम्। सर्वं गन्धमिति प्रोक्तं समस्त सुरवल्लभम्॥"—(श्री हरि-भक्तिविलास धृत ६/११५ गारुड़-वचन) अर्थात् दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुंकम और एक भाग कर्पूर—इन चारों द्रव्यों को एकत्र करने से उसे 'गन्ध' कहते हैं। यह गन्ध निखिल देवताओं को प्रिय है।

मेलि'—(मिल् धातु से) मिश्रित करना, मिलाना।

(६६) गौः भाः—पट्टनेत,—रेशमी वस्त्र, मटमैले रंग का रेशमी वस्त्र।

वैष्णवसेवा की महिमा—

ये चरण पूजिवारे सबार भावना।
अज, रमा, शिव करे ये लागि' कामना॥६८॥
वैष्णवेर दास–दासीगणे ताहा पूजे।
एइ मत फल हय, वैष्णवे ये भेजे॥६९॥
दुर्वा, धान्य, तुलसी लइया सर्वजने।
पाइया अभय सबे देन श्रीचरणे॥७०॥
नानाविध फल आनि' देन पदतले।
गन्धपुष्प, चन्दन, श्रीचरणे केह ढाले॥७१॥
केह पूजे करिया षोड़श उपचारे।
केह वा षड़ग–मते, येन स्फरे यारे॥७२॥
कस्तुरी, कुंकुम, श्रीकर्पूर, फागुधूलि।
सबे श्रीचरणे देइ हइ' कुतुहली॥७३॥
चम्पक, मल्लिका, कुन्दु, कदम्ब, मालती।
नाना पुष्पे शोभ श्रीचरण–नखपाँति।।७४॥

(६८–७४) प० अनु०—जिन श्रीचरणों को पूजने की इच्छा सबको रहती है, जिनको पूजने की कामना ब्रह्मा, लक्ष्मी और शिव भी करते रहते हैं; उन्हीं श्रीचरणों की पूजा आज वैष्णवों के दासदसी भी कर रहे थे। वैष्णवों की सेवा करने से ही ऐसा फल मिलता है। सब लोग अभय पाकर दूर्वा, धान, तुलसी लेकर श्रीचरणों में अर्पित कर रहे थे। कोई गन्ध, पुष्प, चन्दन आदि श्रीचरणों पर चढ़ा रहा था, कोई षोडशोपचार से पूजा कर रहा था तो कोई षडंगोपचार से ही। जिनको जैसी स्फर्ति

हो रही थी, वैसी ही पूजा वे कर रहे थे। सब बड़े आनन्द से कस्तूरी, कुंकुम, श्रीकर्पूर, अबीर आदि श्रीचरणों पर चढ़ा कदम्ब और मालती आदि नाना प्रकार के पुष्पों से शोभित हो रही थी।

(७२) गौः भाः—षडंग मते,—(मध्य ६/३३) द्रष्टव्य है)।

(७३) गौः भाः—फागुधूलि,—रक्तवर्ण चूर्णविशेष, अबीर, फाग।

(७४) गौः भाः—नखपाँति,—नखपंक्ति, नखश्रेणी।

महाप्रभु की इच्छानुसार भक्तों द्वारा प्रभु के श्रीहस्त में विविध नैवेद्य समर्पण एवं प्रभु द्वारा अपूर्व शक्ति का प्रकाश करके भक्तप्रदत्त समस्त द्रव्यों को भक्षण—

परम प्रकाश—वैकुण्ठेर चूड़ामणि।
'किछु देह' खाइ—प्रभु चाहेन आपनि॥७५॥
हस्त पाते प्रभु, देखे सर्व भक्तगण।
ये ये–मत देह, सब करेन भोजन॥७६॥
केह देइ कदलक, केह दिव्य मुद्‌ग दुग्ध॥७७॥
अमायाय महाप्रभु करेन भोजन॥७८॥
धाइल सकल–गण नगरे नगरे।
किनिया उत्तम द्रवय आनेन सत्त्वरे॥७९॥
केह दिव्य नारिकेल उपस्कार करि'।
शर्करा सहित देइ श्रीहस्त उपरि॥८०॥
नानाविध प्रचुर सन्देश देइ आनि'।
श्रीहस्ते लइया प्रभु खायेन आपनि॥८१॥
केह देय मोया, जम्बु, कर्कटिका फल।
केह देय इक्षु, केह देय गंगाजल॥८२॥
देखिया प्रभुर अति आनन्द प्रकाश।
दशवार पाँचवार देह कोन दास॥८३॥
शत शत जने वा कतेक देइ जल।
महायोगेश्वर पान करेन सकल॥८४॥
सहस्र सहस्र भाण्ड दधि, क्षीर, दुग्ध।
सहस्र सहस्र कान्दि–कला, कत मुद्‌ग॥८५॥
कतेक वा सन्देश, कतेक फल–मूल।
कतेक सहस्र वाटा कर्पूर ताम्बुल॥८६॥
कि अपूर्व शक्ति प्रकाशिला गौरचन्द्र।
केमते खायेन, नाहि जाने भक्तवृन्द॥८७॥

(७५–८७) प० अनु०—वैकुण्ठ के चूड़ामणि (श्रीगौरहरि) आज अपने ऐश्वर्य का परम प्रकाश करते हुये आप की माँग रहे थे कि कुछ खाने को दो। प्रभु को हाथ पसारते हुये सब भक्तों ने देखा। जिस किसी ने जो कुछ भी दिया, प्रभु उस सब को खा गये। किसी ने केले दिये तो किसी ने सुस्वाद मूँग दाल, किसी ने दही, किसी ने क्षीर या नवनीत और किसी ने दूध दिया। सब भक्तजन प्रभु के श्रीहस्त पर देते जा रहे थे और महाप्रभु सरल भाव से भोजन करते जा रहे थे। सब भक्तजन बाजार की तरफ दौड़–दौड़कर जा रहे थे एवं भक्तजन बाजार की तरफ दौड़–दौड़कर जा रहे थे एवं उत्तम–उत्तम द्रव्य खरीदकर शीघ्र आ रहे थे। कोई दिव्य नारियल का संस्कार करके उसमें शक्कर मिलाकर श्रीहस्त पर रख रहा था, कोई नाना प्रकार के बहुत से सन्देश लाकर प्रभु के श्रीहस्त में पकड़ा रहा था एवं प्रभु उन सबको खाते जा रहे थे। कोई खील के लड्डू, जामुन, ककड़ी दे रहा था, कोई गन्ना तो कोई गंगाजल। प्रभु के आनन्द प्रकाश के दर्शन करके कोई–कोई दास दस–पाँच बार भी दे रहा था। सैकड़ों भक्तों ने न जाने कितना जल दिया; परन्तु महायोगेश्वर प्रभु सबका पान कर गये। दही, दूध और खीर के हजारों पात्र सबका पान कर गये, हजारों केले के गुच्छे खा गये। कितनी ही मूँग दाल, कितने ही सन्देश, कितने ही फल, कन्दमूल उन्होंने खा लिये। कर्पूर मिले

पानों के हजारों पान-पात्र खाली हो गये। अहो! कैसी अपूर्व शक्ति आज श्रीगौरचन्द्र ने प्रकाशित की, इतना सब प्रभु कैसे खा गये, इसे भक्तवृन्द नहीं जान सके।

(८१) गौः भाः—सन्देश—आजकल पनीर से निर्मित मिठाई को सन्देश कहते हैं। किन्तु इस स्थान पर 'सन्देश' शब्द से विविध प्रकार की मिठाइयों को लक्ष्य किया गया है।

(८२) कर्कटिका फल—ककड़ी। जम्बु-जामुन।

(८६) वाटा,—पान रखने का पात्र।

भक्तार्पित द्रव्यग्रहण के बाद प्रसन्नचित्त प्रभु-द्वारा भक्तों के जन्म-कर्म-वृत्तान्त का कथन-

भक्तेर पदार्थ प्रभु खायेन सन्तोषे।
खादया सबार जन्म-कर्म कहे शेषे॥८८॥

(८८) प० अनु०—भक्तों के सभी पदार्थों को प्रभु सन्तुष्ट होकर खा गये और खाने के पश्चात सबके जन्म-कर्म के बारे में बताने लगे।

(८८) गौः भाः—भक्तों से सेवोपकरण ग्रहण करके प्रसन्न हुये प्रभु जीव के सौभाग्य, जन्म और सुकृत-कर्म की प्रशंसा करने लगे। किसी-किसी का विचार है कि महाप्रभु सर्वज्ञ के धर्म को अवलम्बन करके जीवों के पूर्वकृत सुकृतियों को बताने लगे।

प्रभु के मुख से अपने-अपने जन्म-कर्म वृत्तान्त का श्रवण करके भक्तों का आनन्द-

ततक्षणे से भक्तेर हय ये स्मरण।
सन्तोषे आछाड़ खाय, करके क्रन्दन॥८९॥

(८९) प० अनु०—उस समय जिस भक्त को जब पूर्व वृतान्त का स्मरण हुआ तो वह आनन्द से पछाड़ खाकर भूमि पर गिरकर क्रन्दन करने लगा।

महाप्रभु द्वारा देवानन्द से श्रीवास का भागवत-श्रवण-आख्यान वर्णन एवं उसके श्रवण से श्रीवास का प्रेमविकार—

श्रीवासेरे बले,—"आरे पड़े तोर मने।
भागवत शुनिलि ये देवानन्द-स्थाने ॥९०॥
पदे पदे भागवत—प्रेमरसमय।
शुनिया द्रविल अति तोमार हृदय॥९१॥
उच्चैः स्वर करि' तुमि लागिया कान्दिते।
विह्वल हइया तुमि पड़िया भूमिते॥९२॥
अबोध पड़ुया भक्तियोग ना बुझिया।
वल्गिया कान्देय केने,—ना बुझिल इहा॥९३॥
बाह्य नाहि जान तुमि प्रेमेर विकारे।
पड़ुया तोमारे निल बाहिर दुयारे॥९४॥
देवानन्द इथे ना करिल निवारण।
गुरु यथा अज्ञ, सेइमत शिष्यगण॥९५॥
बाहिर दुयारे तोमा एड़िल टानिया।
तबे तुमि आइला परम दुःख पाञा॥९६॥
दुःख पाइ' मने तुमि विरले बसिया।
आरबार भागवत चाहिते लागिया॥९७॥
देखिया तोमार दुःख श्रीवैकुण्ठ हइते।
आविर्भाव हइलाम तोमार देहेते॥९८॥
तबे आमि एइ तोर हदये बसिया।
काँदाइलु से आमार प्रेम-योग दिया॥९९॥
आनन्द हइल देह शुनि' भागवत।
सब तिति' स्थान हैल वरिषार मत॥"१००॥
अनुभव पाइया विह्वल श्रीनिवास।
गड़ागड़ि याय, कान्दे, बहे घनश्वास॥१०१॥

(९०-१०१) प० अनु०—प्रभु श्रीवास से बोले,—"अरे तुम को स्मरण है, तुमने देवानन्द के स्थान पर श्रीभागवत सुनी थी। श्रीभागवत पद-पद पर प्रेमरसमय है, उसे सुनकर तुम्हारा हृदय अति द्रवीभूत हो गया था। तब तुम ऊँचे स्वर से रोने लगे और विह्वल होकर

भूमि पर गिर गये थे। अबोध विद्यार्थीगण भक्तियोग के विषय में न समझकर आपस में कहने लगे के यह ऐसा जोर–जोर से इतना क्यों रोता है, कुछ समझ में नहीं आ रहा। प्रेम का विकार होने से तुम्हें बाहर की स्मृति नहीं रही थी। विद्यार्थियों ने तुमको उठाकर बाहर द्वार पर छोड़ दिया। इस पर देवानन्द ने भी उनको निषेध नहीं किया। जैसा अज्ञ गुरु, वैसे ही अज्ञ शिष्य। जब उन्होंने तुमको पकड़कर बाहर द्वार पर छोड़ दिया, तब तुम वहाँ से बड़े दुःखित होकर चले आये। मन में दुःख पाकर तुम एकान्त में जा बैठे, पुनः श्रीभागवत को उठाकर देखने लगे। तुम्हारा दुःख देखकर मैं श्रीवैकुण्ठ से आकर तुम्हारी देह में प्रकट हो गया। तब मैंने तुम्हारे हृदय में बैठेकर, तुम्हें निज प्रेमयोग प्रदान करके तुमको रुलाया था। तब तुमको श्रीभागवत सुनकर बहुत आनन्द हुआ और तुम्हारे नेत्रों के जल से वह स्थान ऐसा भीग गया था मानों वर्षा हुई हो। उक्त घटना को अनुभव करके श्रीवास आनन्द से विह्वल होकर भूमि पर लोटपोट होते हुये रोने लगे और लम्बी–लम्बी साँसें लेने लगे।

(९१) गौः भाः—भाः१/१/३, १/१/३, १२/१३/ १५ आदि श्लोक अनुशीलनीय है।

(९५) गौः भाः—अध्यापक देवानन्द के आश्रित विद्यार्थीगण श्रीवास की भक्ति के फल को देखकर कुछ भी नहीं समझ पाये और जड़ीय इन्द्रियों के ज्ञान के वशीभूत होकर श्रीवास के चरणों में अपराध कर बैठे। उन अज्ञानी विद्यार्थियों को इस कार्य से न रोकने के कारण अध्यापक देवानन्द को भी अपराध ने स्पर्श किया। भक्ति के विषय में अनभिज्ञ देवानन्द ने अपने छात्रों को जो शिक्षा दी थी, उस शिक्षा में उत्तम प्रकार की भक्ति से संबधित कोई शिक्षा नहीं थी। क्योंकि गुरु भक्तियोग के अधिकारी नहीं थे। इसलिए शिष्यों में भी भक्तियोग नहीं था।

आजकल अनेक व्यक्ति दयालु शुद्ध भक्तजनों की कीर्तन द्वारा प्रचार प्रणाली को देखकर कहते हैं कि घर में, एकान्त में बैठकर उपासना करना ही श्रेयस्कर है, इस प्रकार कीर्तन द्वार प्रचार करने से अंहकार, दम्भ एवं नाना प्रकार की विपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। किन्तु इस प्रकार देवानन्द पण्डित की तरफ भक्ति के विषय में अनभिज्ञ रहने से एवं भक्ति का प्रचार नहीं करने से अपराध होता है,—यही बताना इस लीला का उद्देश्य है। जगत् के प्रत्येक अनुष्ठान में भक्ति का दुर्भिक्ष देखा गया है। उस अभाव को दूर करने के लिए कीर्तन करना आवश्यक है। उसको रोकने के लिए कीर्तन नहीं करने से अपराध स्पर्श करेगा।

(९८) गौः भाः—श्रीदेवानन्द पण्डित का विद्यालय उस समय कुलिया में था। कुलिया–नवद्वीप के निकट गंगा के पश्चिम तट पर छोटा–सा नगर था। गंगा के पूर्वीय तट पर श्रीमायापुर में उस समय श्रीनवद्व ीप–नगर अवस्थित था। वर्तमान शहर 'नवद्व ीप' ही—प्राचीन कुलिया है। उसी को अपराध –भंजन स्थान कहा जाता है। काँचरापाड़ा के निकट चुँचुड़ा निवासी माधव दत्त द्वारा स्थापित कुलिया ग्राम को कोई–कोई देवानन्द पण्डित को कुलियाग्राम कहकर भ्रान्त होते हैं। आमाद–कोल, कोलेरगंज, कोलेर दह, गदखालिर कोल आदि प्राचीन कुलिया के अनेक नाम आज भी सुरक्षित रखे हुये है। सातकुलिया या घोपादि–ग्राम को कोई–कोई कुलिया बताकर भ्रमित हो जाते हैं। सातकुलिया—गंगा के पूर्व किनारे पर अवस्थित है; किन्तु श्रीचैतन्य

चन्द्रोदय नाटक और श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे सभी जानते हैं, कि कुलियाग्राम की स्थिति गंगा और उसके पूर्व में श्रीमायापुर अवस्थित नहीं है, इसलिए सातकुलिया को 'कुलिया' कहकरि निर्देशित नहीं किया जा सकता। वर्तमान रामचन्द्रपुर काँकड़ार मैदान के पश्चिमी भाग में गंगा नदी की प्राचीन खात (खाई) होना आवश्यक है एवं उसके पश्चिमांश में कुलिया ग्राम का कोई वर्णन भी नहीं है, इसलिए सुबुद्धिमान् व्यक्ति रामचन्द्रपुर आदि स्थानों को मोदद्रुम के अन्तर्गत मानते हैं। ईर्ष्या आदि स्थानों को मोदद्रुम के अन्तगर्त मानते हैं। ईर्ष्या परायण भक्तिद्वेषी कुछ साहित्यिक व्यक्ति धूर्ततावश प्राचीन नदीया के अवस्थान के अवस्थान की जो मीमांसा करते हैं, उसका मूल्य कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं है।

(१००) गौः भाः—तिति'—(ब्रजभाषा) भीगा हुआ, आर्द्र सिक्त।

अद्वैतादि भक्तगणों को अपने-अपने
वृत्तान्त के श्रवण से आनन्द—

एइ मत अद्वैतादि यतेक वैष्णव।
सबारे देखिया करायेन अनुभव॥१०२॥
आनन्दसागरे मग्न सब-भक्तगण।
बसिया करेन प्रभु ताम्बूल भोजन॥१०३॥
कोन भक्त नाचे, केह करे संकीर्तन।
केह बले 'जय जय श्रीशचीनन्दन'॥१०४॥

(१०२-१०४) प० अनु०—इसी प्रकार श्रीअद्वैतादि जितने वैष्णवजन थे, उन सबको देख-देखकर महाप्रभु ने उनसे संबधित बीती घटनाओं का अनुभव कराया। सब भक्तजन आनन्द सागर में मग्न थे और प्रभु बैठे हुये ताम्बूल खा रहे थे। कुछ भक्त नाच रहे थे, कुछ संकीर्तन कर रहे थे और कुछ 'जय-जय श्रीशचीनन्दन' बोल रहे थे।

(१०३) गौः भाः—राजराजेश्वर अभिमान में अभिषेक के समय प्रभु द्वारा ताम्बूल आदि विलास की वस्तुओं के सेवन को लक्ष्य करके यदि कोई प्रभु का अनुकरण करता है, तब उसका निश्चय अमंगल होगा। प्रसादी ताम्बूल मस्तक पर धारण करना ही महाजनों द्वारा अनुमोदित पन्था है। प्रसाद के बहाने ताम्बूल ग्रहण करने से जीव की भोग-प्रवृत्ति की प्रबल बुद्धि होती है। शुद्ध वैष्णवजन प्राकृत साहजिक होने से बचने के लिए असामान्य चतुराई के अनुसरण से विलास-द्रव्यादि के सेवन द्वारा शारीरिक उत्तेजना स्वीकार नहीं करते हैं। (भाः१/१७/३८ का गौड़ीय भाष्य द्रष्टव्य है)।

वहाँ अनुपस्थित भक्तों को प्रभु-द्वारा आह्वान,
उनका नैवेद्य लेकर भक्षण करना और
उनका पूर्व वृत्तान्त वर्णन—

कदाचित ये भक्त ना थाके सेइ स्थाने।
आज्ञा करि' प्रभु तारे आनान आपने॥१०५॥
''किछु देह' खाइ'' बलि' पातेन श्रीहस्त।
येइ याहा देन, ताहा खायेन समस्त॥१०६॥
खाइया बले प्रभु,—''तोर मने आछे?
अमूक निशाय आमि बसि' तोर काछे॥१०७॥
वैद्यरूपे तोर ज्वर करिलाम नाश।''
शुनिया विह्वल हइ' पड़े सेइ दास॥१०८॥

(१०५-१०८) प० अनु०—यदि कोई भक्त उस स्थान पर कभी उपस्थित नहीं था तो प्रभु ने स्वयं आदेश करके उसे बुला लिया। भक्त के आने पर प्रभु ने "कुछ दो, खाऊँगा" कहकर श्रीहस्त फैला दिया और जिसने भी जो कुछ दिया, उस सब को खा गये। खाकर किसी एक से प्रभु कहने लगे—"तुम्हें याद है, उस रात्रि को मैंने वैद्य के रूप में तुम्हारे

पास बैठकर तुम्हारा ज्वर नष्ट किया था।" यह सुनकर व दास विह्वल होकर गिर पड़ा।

महाप्रभु–द्वारा नौकाघाट पर गंगादास के विपद को वृतान्त वर्णन–

गंगादासे देखि' बले—"तोर मने जागे? राजभये
पलाइस् यबे निशाभागे?१०९॥
सर्वपरिवार–सने आसि खेयाघाटे।
कोथाओ नाहिक नौका, पड़िला संकटे॥११०॥
रात्रि शेष हैल, तुमि नौका ना पाइया।
कान्दिते लागिता अति दुःखित हइया॥१११॥
मोर आगे यवने स्पर्शिवे परिवार।
गंगा प्रवेशिते मन हइल तोमार॥११२॥
तबे आमि नौका निया खेयारिर रूपे।
गंगाय बहिया याइ तोमार समीपे॥११३॥
तबे तुमि नौका देखि' सन्तोष हइला।
अतिशय प्रीत करि' कहिते लागिला॥११४॥
आरे भाइ, आमारे राखह एइबार।
जाति, प्राण, धन, देह—सकल तोमार॥११५॥
रक्षा कर, परिवार–संगे कर पार।
एक तंका, एक जोड़ बखशीश् तोमार॥११६॥
तबे तोमा संगे परिकर करि' पार।
तबे निज वैकुण्ठ गेलाम आरबार॥"११७॥
शुनि' भासे गंगादास आनन्द सागरे।
हेन लीला करे प्रभु गौरांगसुन्दरे॥११८॥
"गंगाय हइते पार चिन्तिले आमारे।
मने पड़े पार आमि करिल तोमारे॥"११९॥
शुनिया मूर्च्छित गंगादास गड़ि' याय।
एइ मत कहे प्रभु अति अमायाय॥१२०॥

(१०९–१२०) प० अनु०—प्रभु गंगादास को देखकर बोले—"तुम्हें स्मरण है कि जब तुम राजा के भय से रात को भाग निकले थे, तब सपरिवार के साथ तुम नौकाघाट पर आये तो वहाँ कहीं भी नौका नहीं मिली और तब तुम संकट में पड़ गये थे। रात्रि समाप्त होने वाली थी; परन्तु नौका नहीं मिली। तब तुम अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगे थे। मेरे आगे ही यवन मेरे परिवार का स्पर्श कर लेंगे, ऐसी चिन्ता करके तुमने गंगा में प्रवेश करने का मन बना लिया था। तब मैं ही मल्लाह के रूप में गंगा में नौका चलाता हुआ तुम्हारे पास आया था। तब नौका देखकर तुम्हें सन्तोष हुआ और तुम अतिशय प्रीति पूर्वक मुझसे कहने लगे, 'अरे भाई! अब की बार मेरी रक्षा कर दो, यह मेरी जाति, प्राण, धन, देह सब तुम्हारे हैं। रक्षा करो! परिवार समेत पार कर दो, एक टका (रुपया) और एक जोड़ा धोती तुम्हें ईमान दूँगा। तब तुमको परिवार समेत पर करके मैं दोबारा वैकुण्ठ को चला गया था।" यह सुनकर गंगादास आनन्द–सागर में बहने लगे। गौरसुन्दर की ऐसी लीलाएँ हैं। प्रभु पुनः कहने लगे—"गंगा से पार होने के लिए मेरा चिन्तन करने पर मैंने ही तुम्हें पार होने के लिए मेरा चिन्तन करने पर मैंने ही तुम्हें पर किया था, तुम्हे स्मरण है?" सुनकर गंगादास मूर्च्छित हो गये और पुनः होश आने पर पृथ्वी पर लोट–पोट होने लगे। इस प्रकार प्रभु अति सरल भाव से भक्तों की बात उनसे कह रहे थे।

(१२०) गौः भाः—गंगादास पण्डित की पहले की घटना—जो और किसी को भी मालूम नहीं थी, उस वृत्तान्त को कहते हुये प्रभु ने कहा,—'जिस समय यवनराज के अत्याचार के भय से बचने के लिए तुम गंगा किनारे गये थे और वहाँ नौका लेकर मैंने ही तुम्हें गंगा के पार पहुँचाया था। उस घटना को तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता; किन्तु मुझको ज्ञात है। गंगादास उसे सुनकर मूर्च्छित हो गये। मायाबद्ध जीव में सर्वज्ञता–धर्म का

अभाव रहता है। मायाधीश होने से प्रभु के लिए कुछ भी अज्ञेय या दुर्गेय नहीं हैं।

भक्तों द्वारा प्रभु की विविध विलासमयी सेवा–

बसिया आछेन वैकुण्ठेर अधीश्वर।
चन्दन–मालाय परिपूर्ण कलेवर॥१२१॥
कोन प्रियतम करे श्रीअंगे व्यजन।
श्रीकेश संस्कार करे अति प्रियतम॥१२२॥
ताम्बूल योगाय कोन अति प्रिय भृत्य।
केह वामे, केह वा सम्मुखे करे नृत्य॥१२३॥

(१२१–१२३) प० अनु०— वैकुण्ठ के अधीश्वर विराजमान थे। चन्दन और मालाओं से उनके श्रीअंग परिपूर्ण थे। कोई प्रियतम भक्त उनका पंखा कर रहा था, कोई अति प्रियतम भक्त उनके केशों को संस्कार कर रहा था। कोई अति प्रिय दास उन्हें ताम्बूल अर्पण कर रहा था, कोई बायें तरफ तो कोई उनके सम्मुख नृत्य कर रहस था।

भक्तों द्वारा विविध उपचारों से प्रभु की सन्ध्याकालीन सेवा–

एइ मत सकल दिवस पूर्ण हैल।
सन्ध्या आसि' परम कौतुके प्रवेशिल॥१२४॥
धूप–दीप लइया सकल भक्तगण।
अर्चन करिते लागिलेन श्रीचरण॥१२५॥
शंख, घण्टा, करताल, मन्दिरा, मृदंग।
बाजायेन बहुविध, उठे नाना रंग॥१२६॥
अमायाय बसिया आछेन गौरचन्द्र।
किछु नाहि बले, यत करे भक्तवृन्द॥१२७॥
नानारविध पुष्य सबे पादपद्मे दिया।
'त्राहि प्रभो' बलि' पड़े दण्डवत् हञा॥१२८॥
केह काकु करे, केह करे जयध्वनि।
चतुर्दिके आनन्द–क्रन्दनमात्र शुनि॥१२९॥
कि अद्भुत सुख हैल निशार प्रवेशे।
ये आइये, सेइ येन वैकुण्ठे प्रवेशे॥१३०॥
प्रभुर हइल महा–ऐश्वर्य प्रकाश।
योड़हस्ते सम्मुखे रहिल सर्व–दास॥१३१॥

(१२४–१३१) प० अनु०—इसी प्रकार पूरा दिन व्यतीत हो गया और परम कौतुक के साथ संध्या ने प्रवेश किया। सभी भक्त धूप–दीप लेकर प्रभु के श्रीचरणों की आरती करने लगे। बहुत से भक्त शंख, घण्टा, करताल, कांसा, मृदंग आदि बजाते हुये आनन्द में विभोर हो गये। प्रभु सरल भाव से सिंहासन पर विराजमान थे, भक्तजन जो कुछ भी करें, प्रभु कुछ भी नहीं कह रहे थे। सब भक्तों ने नाना प्रकार के पुष्प प्रभु के पादपद्मों में अर्पित किये तथा 'प्रभो! रक्षा करो' ऐसा कहकर उनके सामने पड़ गये। कोई दैन्योक्ति करने लगा तो कोई जयध्वनि। बस चारों ओर आनन्द का ही क्रन्दन सुनाई पड़ता था। सन्ध्या के समय कैसा अद्भुत सुख हुआ, जो आता था, वह मानों वैकुण्ठ में प्रवेश कर रहा था। प्रभु अपने महा ऐश्वर्य का प्रकाश करके विराजमान थे और सब दास हाथ जोड़े सम्मुख खड़े थे।

गौरसुन्दर का स्वच्छन्द भाव से श्रीचरणों को प्रसारित करके लीला में अवस्थान–

भक्त अंगे अंग दिया पादपद्म मेलि'।
लीलामय आछेन गौरसिंह कुतूहली॥१३२॥
वरोन्मुख हइलेन श्रीगौरसुन्दर।
योड़हस्ते रहिलेन सब अनुचर॥१३३॥
सात–प्रहरिया–भावे सर्व जने जने।
अमायाय प्रभु कृपा करेन आपने॥१३४॥

(१३२–१३४) प० अनु०—भक्त के अंग पर अंग (हाथ) रख कर दोनों चरणकमलों को फैला कर गौरसिंह आनन्द से लीला में विराजमान थे। जब श्रीगौरसुन्दर वर देने को

उत्सुक हुये, तब सभी अनुचर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इस सातप्रहरिया भाव में सभी भक्तों के ऊपर से माया के आवरण को हटाकर प्रभु ने उन पर स्वयं कृपा की थी।

(१३२) गौः भाः—गौरसिंह ने आश्चर्यमयी अभूतपूर्व लीला में अवस्थित रहरक अपने भक्तभाव का संगोपन किया था। उनका इस प्रकार का अनुष्ठान कर्मफल–बाध्य बद्धजीवों की क्रिया नहीं हैं, इसलिए 'लीला' शब्द का प्रयोग किया गया है।

भक्तराज श्रीधर को ले आने के लिए प्रभु का आदेश—

आज्ञा हैल—''श्रीधरेरे झाट गिया आन।
आसिया देखुक मोर प्रकाश–विधान॥१३५॥
निरवधि भावे मोर बड़ दुःख पाञा।
आसिया देखुक मोरे झाट आन गिया॥१३६॥
नगरेर अन्ते गिया थाकिह बसिया।
ये मोरे डाकये तारे आनिह धरिया॥''१३७॥
धाइल वैष्णवगण प्रभुर बचने।
आज्ञा लइ' गेला त्वरा श्रीधरभवने॥१३८॥

(१३५–१३८) प० अनु०—प्रभु का आदेश हुआ कि "श्रीधर को शीघ्र ले आओ। वह आकर मेरे भी प्रकाश के विधान को देखे। बड़ा दुःख उठाता हुआ भी वह निरन्तर मेरा चिन्तन करता रहा है। उसे शीघ्र ले आओ, वह आकर मुझे देखे। नगर के शेषभाग में जाकर देखो, वहाँ जिसको मुझे पूकारते हुये सुनो, उसे पकड़ लाना।" प्रभु के वचनों को सुनकर वैष्णवजन 'जो आज्ञा' कहकर शीघ्र श्रीधर के घर की ओर चल दिये।

भक्तवर श्रीधर का आख्यान—

सेइ श्रीधरेर किछु शुनह आख्यान।
खोलकर पसार करि' राखे निज प्राण॥१३९॥
एकबार खोलना–गाछि किनिया आनय।
खानि खानि करि' ताहा काटिया बेचय॥१४०॥
ताहाते ये किछु हय दिवसे उपाय।
तार अर्द्ध गंगाय नैवेद्य लागि' याय॥१४१॥
अर्द्धेक सओदाय हय निज प्राण रक्षा।
एइमत हय विष्णु–भक्तेर परीक्षा॥१४२॥
महासत्यवादी तेँहा येन युधिष्ठिर।
यार येइ मूल्य बले, ना हय बाहिर॥१४३॥
मध्ये–मध्ये येवा जन तार तत्त्व जाने।
ताहार वचने मात्र द्रव्यखानि किने॥१४४॥
एइमत नवद्वीपे आछे महाशय।
'खोलाबेचा' ज्ञान करि' केह नाहि कृष्णनामे॥१४५॥
चारि प्रहर रात्रि निद्रा नाहि कृष्णनामे।
सर्वरात्रि 'हरि' बले दीर्घल आह्वाने॥१४६॥

(१३९–१४६) प० अनु०—उस श्रीधर का कुछ चरित्र सुनो। वह खोला की दुकान के द्वारा अपने प्राणों की रक्षा करता था। वह एक बार केले का वृक्ष खरीद करता था। और उसके टुकड़े–टुकड़े करके बेचा करता था। उससे दिन–भर में जो कुछ कमाई (आमदनी) होती थी, उसके आधे से श्रीगंगाजी को भोग लगाता था, और आधे से अपने प्राणों की रक्षा किया करता था। विष्णु–भक्तों की इसी प्रकार से परीक्षा हुआ करती है। वह युधिष्ठिर जैसा महान् सत्यावादी था। जो मूल्य एक बार कह दिया, उससे फिर कम नहीं करता था। बीच–बीच में जो लोग उसकी सत्यवादिता को जानते थे। इस प्रकार से श्रीधर महाशय नवद्वीप में रहते थें। परन्तु 'केले का वृक्ष बेचने वाला' समझकर कोई उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता था। वे कृष्णनाम लेते हुये रात्रि के चार प्रहर तक सोते नहीं थे। सारी रात ऊँचे लम्बे स्वर से 'हरि' बोलते रहते थे।

(१४०) गौः भाः—खोला—गाछि थोड़ (केला) वृक्ष के भीतर का कठिन भाग)।

(१४२) गौः भाः—सऔदा,—व्यवयास द्वारा प्राप्त धन, मुनाफा।

तथ्य—"यस्याहमनुगृहणामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।" "ब्रह्मन्, यमनुगृहमाणि तद्विशो विधुनोम्यहम्। यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥"—(भाः १०/८८/८ एवं ८/२२/२४ श्लोकद्वय)।

(१४५) गौः भाः—थोड़ (केला के भीतर का कठिन भाग) बेचने वाला श्रीधर, जो अलौकिक चैतन्यभक्त था, उसे कोई समझ नहीं पाया।

(१४६) गौः भाः—श्रीधर रात-भर सब समय उच्च स्वर से कृष्णनाम का उच्चारण करते थे। इससे मोहल्ले वालों के निद्रा-सुख भोग में बाधा उपस्थित होती थी। वर्तमान काल में शुद्ध भक्तों के नाम प्रचार के फल से बर्हिर्मुख साहित्यसेवी जगत् भगवद् भक्तों के श्रीमुखोच्चारित नामकीर्तन को सुनकर जैसे विरक्त होते हैं, वैसे ही असुविधा की बात बताये बिना नाना प्रकार का उपद्रव भी करते हैं। कुछ लोग विषय-फल प्राप्ति के उद्देश्य से, इन्द्रिय-तर्पण की वासना से, लोगो को ठगने के लिए भागवत-पाठ और भगवतकथा कीर्तन करके अर्थोपजन करते हैं और सुर-ताल-मान और लय के साथ कीर्तन की परिपाटी द्व ारा जीविका निर्वाह आदि अपकर्म करते हुये लोगों को दिखाना चाहते हैं कि हम भी शुद्ध भक्तों के समान हैं; किन्तु बुद्धिमान् जन उनके कपट एवं उनकी असच्चेष्टारूप कुटिलता को समझ लेते हैं। भगवत्भक्तों के कीर्तन का उद्देश्य—कृष्ण को आर्तस्वर से पुकारकर अपना मंगल और बहिर्मुख जगत् का कल्याण करना होता है, जबकि कपटीजनों का उद्देश्य-नामकीर्तन, वक्तृता, पाठ और सरस गान की छलना से अपनी जड़ेन्द्रियों को तृप्त करना होता है। इसलिए अधोक्षज (विष्णु) के सच्चे सेवक और जड़ेन्द्रिय तर्पण की कामना रखने वाले लोगों की आनुष्ठानिक क्रियाओं में स्वर्ग-नरक जैसा भेद रहता है।

दीर्घल—दीर्घ + ल (अस्त्यर्थ में) दैर्घयुक्त, दीर्घसाध्य। लम्बे स्वर से।

श्रीधर के संबन्ध में पाखण्डियों को अक्षज-विचार—

यतेक पाषण्डी बले,—"श्रीधरेर डाके।
रात्रे निद्रा नाहि याइ, दुइ कर्ण फाटे॥१४७॥
महाचाया-बेटा भाते पेट नाहि भरे।
क्षुधाय व्याकुल हञा रात्रि जागि' मरे॥"१४८॥
एइ मत षाषण्डी मरये मन्द बलि'।
निज कार्य करये श्रीधर-कुतुहली॥१४९॥
'हरि' बलि डाकिते ये आछये श्रीधर।
निशाभागे प्रेमयोगे डाके उच्चैःस्वर॥१५०॥

(१४७-१५०) प० अनु०—पाखण्डी लोग कहते थे कि श्रीधर की पुकार के कारण हम रात-भर सो नहीं पाते और हमारे दोनों कान विदीर्ण हो जाते हैं। गँवार का भात से पेट नहीं भरता है, इस कारण भूख से व्याकुल होकर वह सारी रात जागता रहता है। इस प्रकार पाखण्डी लोग अपशब्द बोल-बोल कर जलते-मरते थे, किन्तु श्रीधर आनन्दित होकर अपना कार्य करते रहते थे। वे रात्रि के समय बड़े ऊँचे स्वर से प्रेम के साथ 'हरि' 'हरि' पुकारते रहते थे।

(१४७-१४८) गौः भाः—पाखण्डी लोग नाम कीर्तन के तात्पर्य को नहीं जानकर कहते थे,—"दरिद्र श्रीधर उपार्जन में अक्षम होने के कारण अपने भोजन-वस्त्र आदि की व्यवस्था करने में असमर्थ है; इसलिए

वह बिना आहार के सारी रात भगवान् को विरक्त करने के लिए ऊँचे स्वर से चीत्कार करता हुआ साधारण व्यक्तियों की शांति भंग करता रहता है। यद्यपि इस प्रकार का दुष्कार्य श्रीधर की तरह के अत्यन्त असभ्य लोगों के लिए शोभनीय हो सकता है, परन्तु फिर भी रात्रि–जागरण द्वारा ऐसे कीर्तन का समर्थन नहीं किया जा सकता।"

(१४९) गौः भाः—गौरसुन्दर के पार्षद श्रीधर जिस प्रकार निर्बोध कपटी जनों के कुवाक्यों को अनसुना करके श्रीधर के अनुयायी दासजनों को भी शुद्धभक्ति के आश्रय में नाम प्रचार कार्य में अग्रसर होते हुये भगवत् सेवा–विरोधी जड़ीय अभिमान में मत्त लोगों द्वारा नाना प्रकार से आक्रांत होने पर भी उधर ध्यान नहीं देना चाहिए।

भक्तों द्वारा अर्द्धपथ पर श्रीधर की संकीर्तन ध्वनि का श्रवण एवं उसके अनुसरण से श्रीधर के घर उपस्थित होना—

अर्द्धपथ भक्तगण गेल मात्र धाञा।
श्रीधरेर डाक शुने तथाइ थाकिया॥१५१॥
डाक–अनुसारे गेला भागवतगण।
श्रीधरेरे धरिया लइया ततक्षण॥१५२॥
''चल चल महाशय, प्रभु देख गिया।
आमरा कृतार्थ हइ तोमा परशिया॥''१५३॥

(१५१–१५३) प० अनु०—भक्तजन अभी आधे रास्ते पर ही गये थे कि उनको वहीं से श्रीधर का ऊँचा सुनायी पड़ा। भागवतजनों ने ऊँचे स्वर का अनुसरण करते हुये तुरन्त ही श्रीधर को पकड़ लिया और बोले—"महाशय! चलिए, चलिए! प्रभु के दर्शन कीजिए। हम आज तुम्हारा स्पर्श पाकर कृतार्थ हुये।"

महाप्रभु के आदेश श्रवण से श्रीधर की मूर्च्छा और भक्तों का सर्तकता सहित श्रीधर को प्रभु के समीप ले आना—

शुनिया प्रभुर नाम श्रीधर मूर्च्छित।
आनन्दे विह्वल हइ' पड़िला भूमित॥१५४॥
आथेव्यथे भक्तगण लइया तुलिया।
विश्वम्भर आगे–निल आलग करिया॥१५५॥

(१५४–१५५) प० अनु०—प्रभु का नाम सुनकर श्रीधर तो मूर्च्छित ही हो गये और आनन्द में विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़े। भक्तों ने शीघ्र ही उनको उठाया और विशेष सावधानी सहित विश्वम्भर के आगे ले आये।

(१५५) गौः भाः—आलग करिया—विशेष सतर्कता के साथ, दृढ़ता परिहार पूर्वक।

श्रीधर के दर्शन से प्रभु को आनन्द एवं श्रीधर को प्रेमसेवा का वर्णन—

श्रीधर देखिया प्रभु प्रसन्न हइला।
''आइस, आइस, बलि' डाकिते लागिला॥१५६॥
विस्तर करिया आछ मोर आराधन।
बहु जन्म मोर प्रेमे त्यजिला जीवन॥१५७॥
एइ जन्मे मोरे सेवा करिला विस्तर।
तोमार खोलाय अन्न खाइ निरन्तर॥१५८॥
तोमार हस्तेर द्रव्य खाइनु विस्तर।
पासरिला आमा–संगे ये कैला उत्तर॥''१५९॥

(१५६–१५९) प० अनु०—श्रीधर को देखकर प्रभु प्रसन्न हो गये और "आओ, आओ" कहकर पुकारने लगे; फिर बोले "श्रीधर! तुमने मेरी बहुत आराधना की है और प्रेम में बहुत से जन्म बिताये हैं। इस जन्म में भी तुमने मेरी बहुत सेवा की है। तुम्हारे खोला (केला के वृक्ष के मोटे छिलके से निर्मित पात्र) पर मैंने सदा अन्न ग्रहण किया है। तुम्हारे हाथ के बहुत से पदार्थ मैंने खाये हैं। उस समय जो तुमने उत्तर दिया था सब तुम भूल गये हो।"

प्रभु के विद्याविलास के समय श्रीधर के साथ विविधलीलाओं के वर्णन के छल से ग्रन्थकार द्वारा भक्तवत्सल भगवान् के भक्तद्रव्य के लिए आग्रह एवं अभक्त के द्रव्य की उपेक्षा का वर्णन—

यखन करिला प्रभु विद्यार विलास।
परम उद्धत–हेन यखन प्रकाश॥१६०॥
सेइ काले गूढ़रूपे श्रीधरेर संगे।
खोला केना–वेचा–छले कैल बहु रंगे॥१६१॥
प्रतिदिन श्रीधरेर पसारेते गिया।
थोड़, कला, मूल, खोला आनेन किनिया॥१६२॥
प्रतिदिन चारि दण्ड कलह करिया।
तबे से किनये द्रव्य अर्द्धमूल्य दिया॥१६३॥
सत्यवादी श्रीधर यथार्थ मूल्य बले।
अर्द्धमूल्य दिया प्रभु निज हस्ते तोले॥१६४॥
उठिया श्रीधर दास करे काड़ाकाड़ि।
एइमत श्रीधर–ठाकुरेर हुड़ाहुड़ि॥१६५॥
प्रभु बले—''केने भाइ श्रीधर तपस्वी।
अनेक तोमार अर्थ आछे हेन वासि॥१६६॥
आमार हातेर द्रव्य लह ये काड़िया।
एतदिन के आमि, ना जानिस् इहा॥''१६७॥
परमब्रह्मण्य श्रीधर क्रुद्ध नाहि हय।
वदन देखिया सर्व द्रव्य काड़ि' लय॥१६८॥
मदनमोहन रूप गौरांगसुन्दर।
ललाटे तिलक शोभे उर्द्धव मनोहर॥१६९॥
त्रिकच्छ वसन शोभे कुटिल कुन्तल।
प्रकृति, नयन—दुइ परम चंचल॥१७०॥
शुक्ल यज्ञ–सूत्र शोभे वेड़िया शरीरे।
सूक्ष्मरूपे अनन्त ये–हेन कलेवरे॥१७१॥
अधरे ताम्बूल, हासे श्रीधरे चाहिया।
आरवार खोला लय आपने तुलिया॥१७२॥
श्रीधर बलेन,—''शुन ब्राह्मण ठाकुर।
क्षमा कर मोरे, मुञि तोमार कुक्कुर॥''१७३॥
प्रभु बले,—'जानि तुम परम चतुर।
खोलाबेचा अर्थ तोमार आछये प्रचुर॥'१७४॥
''आर कि पसार नाहि''—श्रीधर ये बले।
''अल्प कड़ि दि तथा किन'' पात–खोले॥१७५॥
प्रभु बले,—''योगानिया आमि नाहि छाड़ि।
थोड़ कला दिया मोरे तुमि लह कड़ि॥''१७६॥
रूप देखि, मुग्ध हइ' श्रीधर ये हाये।
गालि पाड़े विश्वम्भर परम सन्तोषे॥१७७॥
''प्रत्यह गंगारे द्रव्य देह' त किनिया।
आमारे वा किछु दिले मूल्येते छाड़िया॥१७८॥
ये गंगा पूजह तुमि, आमि तार पिता।
सत्य सत्य तोमारे कहिल एइ कथा॥''१७९॥
कर्ण हस्त देइ' श्रीधर 'विष्णु', 'विष्णु' बले।
उद्धत देखिया तारे देइ पात खोले॥१८०॥
एइमत प्रतिदिन करेन कन्दल।
श्रीधरेर ज्ञान—'विप्र परम चंचल'॥१८१॥
श्रीधर बलेन—''मुञि हारिलुँ तोमारे।
कड़ि बिनु किछु दिव, क्षमा कर मोरे॥१८२॥
एकखण्ड खोला दिव एकखण्ड थोड़।
एकखण्ड कला–मूल आरो दोष मोर?''१८३॥
प्रभु बले,—''भाल, भाल, आर नाहि दाय।''
श्रीधरेर खोले प्रभु प्रत्यह अन्न खाय॥१८४॥
भक्तेरे पदार्थ प्रभु हेनमते खाय।
कोटि हैलेओ अभक्तेर उलटि' ना चाय॥१८५॥
एइ लीला करिव चैतन्य हेन आछे।
इहार कारणे से श्रीधरे खोला बेचे॥१८६॥

(१६०–१८६) प० अनु०—जिस समय प्रभु ने विद्या विलास (अध्ययन) का आरम्भ किया था, उस समय प्रभु ने बड़ी उद्दण्डता जैसी दिखाई थी। तब अपने स्वरूप को छिपाते हुये प्रभु ने श्रीधर के साथ खोला खरीदने के छल से बहुत-सी लीलाएँ की थीं। प्रभु नित्याप्रिय श्रीधर की दुकान पर जाकर थोड़,

केला, मूल (कन्दमूल) और खोला खरीद कर ले आते थे। प्रतिदिन वे चार दण्ड (एक घण्टा छत्तीस मिनट) तक झगड़ते थे, तब आधे दामों में सामान खरीदते थे। सत्यवादी श्रीधर वास्तविक मूल्य बतलाते थे, परन्तु प्रभु उसका आधा मूल्य देकर सामान अपने हाथों से उठा लिया करते थे। तब श्रीधर उठकर महाप्रभु के हाथों से सामान छीनने लगते थे। इस प्रकार श्रीधर और श्रीगौरसुन्दर में बहुत देर तक छीनाझपटी चलती रहती थी। प्रभु कहते थे,—"क्यों भाई, तपस्वी श्रीधर! मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे पा बहुत धन है। तुम मेरे हाथों से द्रव्य छीन लेते हो, तुम इतने दिनों तक नहीं जान सके कि मैं कौन हूँ?" ब्रह्मण्यदेव श्रीगौरसुन्दर की सौम्यमूर्त्ति देखकर उनके द्वारा बलपूर्वक वस्तु ग्रहण करने पर भी श्रीधर क्रुद्ध नहीं होते थे। श्रीगौरसुन्दर का वह रूप कामदेव को भी मोहित कर लेने वाला था। उनके ललाट पर मनोहर ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक शोभा देता रहता था। वे त्रिकच्छ वस्त्र धारण किये हुये थे, सिर पर घुँघराले केश शोभा दे रहे थे। स्वभाव से ही दोनों नयन-कमल परम चंचल थे। शुक्ल यज्ञोपवीत शरीर पर शोभा दे रहा था, मानों श्रीअनन्तदवे ही सूक्ष्मरूप से श्रीअंग पर विराजमान हों। मुख मे पान होता था। और श्रीधर को देखकर वे हँसते रहते थे। वे फिर दोबारा जब खोला अपने हाथों में उठा लेते थे तब श्रीधर कहते थे—"हे ब्राह्मण श्रेष्ठ सुनो! मुझे क्षमा करो, मैं तो तुम्हारा कुत्ता हूँ।" प्रभु कहते—"मैं जानता हूँ, तुम बडें चतुर हों खोला बेचने से तुम्हारे पास बहुत धन हो गया है।" श्रीधर कहते—"क्या और दुकानें नहीं है?" "कम मूल्य देकर वहाँ से पात-खोल खरीद लेना?" प्रभु कहते—"मैं अपने दुकानदार को नहीं छोड़ सकता। थोड़ (केला पेड़ का गूदा) और केला देकर मुझ से दाम ले लो।" श्रीधर प्रभु का रूप विश्वम्भर बड़े प्रसन्न होते हुये डाँटते—"तुम नित्यप्रिय सामग्री खरीद कर गंगापूजा करते हो, मेरे लिए कुछ मूल्य छोड़ दोगे तो क्या हो जायेगो? तुम जिस गंगा की पूजा करते हो, उसका मैं पिता हूँ। तुमसे मैंने यह सत्य-सत्य बात कही है।" यह सुनकर श्रीधर झट से अपने कानों को पकड़कर 'विष्णु', 'विष्णु' कहने लगते एवं प्रभु को उद्धत देखकर उन्हें खोला-पत्ते दे देते। इस प्रकार प्रभु प्रतिदिन श्रीधर से झगड़ा किया करते थे। श्रीधर बस इतना ही जानते थे कि 'यह विप्र बड़ा की चंचल है।' श्रीधर कहते—"मैं तुमसे हार गया! मैं तुम्हें बिना मूल्य के ही कुछ दे दिया करूँगा—मुझे क्षमा करो। एक टुकड़ा खोला, एक टुकड़ा थोड़ और एक टुकड़ा केला-मूल मैं तुम्हें दिया करूँगा—फिर तो मेरा कोई दोष नहीं रहेगा।" प्रभु कहते—"अच्छा, अच्छा! अब और तुम्हें नहीं देना होगा।"

श्रीधर के खोले पर ही प्रभु प्रतिदिन अन्न खाते थे। भक्तों के पदार्थ प्रभु इसी प्रकार खाते हैं; किन्तु जो भगवान् होकर भी अभक्त हैं, उनकी ओर वे दृष्टिपात भी नहीं करते। श्रीचैतन्यचन्द्र श्रीधर के साथ इस प्रकार की लीलाएँ करेंगे, ऐसा ही विधान था। इसी कारण से श्रीधर खोला बेचते थे।

(१७०) गौः भाः—प्रभु के दोनों नेत्रों का स्वभाव अत्यन्त चंचल था।

(१७१) गौः भाः—छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान (तकिया) वस्त्र, आभूषण, आराम, आवास, यज्ञयूत्र और सिंहासन—इन दस रूपों से श्रीअनन्तदेव गौर-नारायण की सेवा करते रहते हैं।

(१७५) गौ भाः—प्रभु द्वारा बलपूर्वक सामान छीन लेने पर श्रीधर कहते,—"मेरे पास से न लेकर अन्य दुकानदारों से कम मूल्य में पत्ता-खोला क्यों नहीं खरीद लेते?"

(१७६) गौः भाः—प्रभु उसके उत्तर में कहते,—"मैं जिसके पास से नित्यप्रिय सामान खरीदता रहा हूँ, उसके पास से ही मूल्य देकर नित्यप्रति सामान खरीदूँगा।"

योगानिया—किसी वस्तु की पूर्ति करने वाला, प्रयोजनीय वस्तु के अभाव को पूरा करने वाला दुकानदार।

(१८५) गौः भाः—श्रीधर महाप्रभु के भक्त थे, इसलिए उनके निकट से ही महाप्रभु कम मूल्य देकर बलपूर्वक वस्तु खरीदकर श्रीधर की सेवा ग्रहण करते थे; किन्तु वैभव-सम्पन्न धनवान् अभक्त की ओर वे दृष्टिपात भी नहीं करते (गीः ९/२६ एवं भावः ७/९/११ श्लोक द्रष्टव्य हैं।

विष्णु-वैष्णवलीला को भागवत् कृपा के बिना समझना कठिन—

एइ लीला लागिया श्रीधरे बेचे खोला।
के बुझिते पारे विष्णु-वैष्णवेर लीला॥१८७॥
बिना प्रभु जानाइले केह नाहि जाने।
सेइ कथा प्रभु कराइला सङरणे॥१८८॥

(१८७-१८८) प० अनु०—इस लीला के लिए ही श्रीधर खोला बेचते थे। विष्णु और वैष्णव की लीला कौन समझ सकता है? बिना प्रभु की कृपा के कोई भी इसे नहीं जान सकता। इसलिए प्रभु ने उस प्रसंग को स्मरण कराया।

(१८७) गौः भाः—विष्णु-वैष्णव का मुख्य उद्देश्य साधारण दृष्टि से समझना सम्भव नहीं है। जिसके ऊपर भगवान् की कृपा होती है, वही विष्णु-वैष्णव संबंधी क्रियाओं से यथार्थतः अवगत हो पाता है।

प्रभु का ऐश्वर्य प्रकाश और उसके दर्शन से श्रीधर की मूर्च्छा—

प्रभु बले—''श्रीधर, देखह रूप मोर।
अष्टसिद्धि दान आजि करि' देङ तोर॥''१८९॥
माथा तुलि' चाहे महापुरुष श्रीधर।
तमाल श्यामल देखे सेइ विश्वम्भर॥१९०॥
हाते मोहन वंशी, दक्षिणे बलराम।
महाज्योर्मिय सब देखे विद्यमान॥१९१॥
कमला ताम्बूल देइ हातेर उपरे।
चतुर्मुख, पंचमुख आगे स्तुति करे॥१९२॥
महाफणी छत्र धरे शिरेर उपरे।
सनक, नारद, शुक देखे स्तुति करे॥१९३॥
प्रकृतिस्वरूपा सब जोड़हस्त करि'।
स्तुति करे चतुर्द्दिके परमा सुन्दरी॥१९४॥
देखी' मात्र श्रीधर हइला सुविस्मित।
सेइमत ढलिया पड़िला सुविस्मित॥१९५॥
'उठ उठ श्रीधर'—प्रभुर आज्ञा हैल।
प्रभुवाक्ये श्रीधर से चैतन्य पाइल॥१९६॥

(१८९-१९६) प० अनु०—प्रभु बोले—"श्रीधर! मेरे रूप को देखो! मैं आज तुम्हें अष्ट सिद्धियाँ प्रदान कर दूँ!" महापुरुष श्रीधर ने सिर उठाकर देखा तो विश्वम्भर के तमाल-श्यामल रूप के दर्शन हुये। उनके हाथों मोहिनी वंशी थी। दाहिनी ओर बलराम थे। सब कुछ श्रीधर को महाज्योतिर्मय रूप में दिखाई पड़ा। लक्ष्मी प्रभु के हाथ में ताम्बूल दे रही थीं। सामने ब्रह्मा, शिव सब स्तुति कर रहे थे। महाफणी शेष सिर के ऊपर छत्र धारण किये हुये थे और सनकादि नारद एवं शुकदेव, सब स्तुति करते हुये दिखाई दिये। उनके चारों ओर खड़ी

शक्ति स्वरूपिणी परम सुनदर रमणियाँ हाथ जोड़कर स्तुति कर रहीं थीं। यह सब देखने मात्र से श्रीधर परम विस्मित होकर मूर्च्छित हो गये और पृथ्वी पर लुढ़क गये। तब प्रभु की आज्ञा हुई—'श्रीधर उठो, उठो'। प्रभु के वचन से श्रीधर की चेतना प्राप्त हुई।

(१८९) गौः भाः—अष्टसिद्धि,—"अणिमा महिमा मूर्त्तेलघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः। प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्ति प्रेरणमीसिता॥" गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति। एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः॥—(भाः ११/१५/४५) अर्थात् श्रीभगवान् ने उद्धव को कहा,—'हे सौम्य, देह की सिद्धि तीन प्रकार की है—'अणिमा', 'लघिमा', 'महिमा', इन्द्रियों एवं उनके अधिष्ठात् देवता के रूप में संबन्धसिद्धि 'प्राप्ति', सुने हुये एवं देखे हुये विषयो का इच्छानुसार अनुभवकरने वाली सिद्धि का नाम है—'प्राकाम्य'; मायाशक्ति को इच्छानुसार प्रेरित करने वाली सिद्धि हैं 'इशिता'; विषय भोगों में आसक्त न होना 'वशिता है और कामनाओं से सुख देने वाली सिद्धि का नाम 'कामावसायिता' है—ये आठों सिद्धियाँ मुझमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। " अणिमा लघिया व्याप्तिः प्राकाम्य महिमा तथा। इशित्वंच वशीत्वंच तथा कामावसायिता"।—(नारद पंचरात्र २/८/२)।

(१९४) गौः भाः—प्रकृतिस्वरूपा—स्वर्ग की सुन्दरियाँ।

श्रीधर को स्तवपाठ करने के लिए महाप्रभु को आदेश, शुद्ध सरस्वती की कृपा से श्रीधर की गौरस्तुति—

प्रभु बले,—"श्रीधर आमारे कर स्तुति।"
श्रीधर बलये,–"प्रभु मुञि मूढ़मति॥१९७॥
कोन् स्तुति जानो मुञि कि मोर शकति।"
प्रभु बले,—"तोर वाक्य–मात्र मोर स्तुति॥"१९८॥
प्रभुर आज्ञाय जगन्माता सरस्वती।
प्रवेशिया जिह्वाय, श्रीधर करे स्तुति॥१९९॥
"जय जय महाप्रभु जय विश्वम्भर।
जय जय जय नवद्वीप–पुरन्दर॥२००॥
जय जय अनन्तब्रह्माण्डकोटि–नाथ।
जय जय शचीपुण्यवती–गर्भजात॥२०१॥
जय जय वेदगोप्य, जय द्विजराज।
युगे युगे धर्म पाल' करि नाना साज॥२०२॥
गूढ़रूपे साम्भाइल नगरे नगरे।
बिना तुमि जानाइले के जानिते पारे॥२०३॥
तुमि धर्म, तुमि कर्म, तुमि भक्ति, ज्ञान।
तुमि शास्त्र, तुमि वेद, तुमि सर्वध्यान॥२०४॥
तुमि सिद्धि, तुमि ऋद्धि, तुमि भोग, योग।
तुमि श्रद्धा, तुमि दया, तुमि मोह, लोभ॥२०५॥
तुमि इन्द्र, तुमि चन्द्र, तुमि अग्नि, जल।
तुमि सूर्य, तुमि वायु, तुमि धन, बल॥२०६॥
तुमि भक्ति, तुमि मुक्ति, तुमि अज, भव।
तुमि वा हइवे केन, तोमार ये सब॥२०७॥
पूर्वे मोर स्थाने तुमि आपने बलिला।
'तोर गंगा देख मोर चरण–सलिला॥'२०८॥
तबु मोर पाप–चित्ते नहिल स्मरण।
ना जानिल मुञि तोर अमूल्य चरण॥२०९॥
ये तुमि करिला धन्य गोकुल–नगर।
एखने हइला नवद्वीप–पुरन्दर॥२१०॥
राखिया बेड़ाओ भक्ति शरीर–भितरे।
हेन भक्ति नवद्वीपे हइल बाहिरे॥२११॥
भक्तियोगे भीष्म तोमा जिनिल समरे।
भक्तियोगे यथोदाय बान्धिल तोमारे॥२१२॥
भक्तियोगे तोमारे बेचिल सत्याभामा।
भक्ति वशे तुमि कान्धे कैला गोपरामा॥२१३॥
अनन्त ब्रह्माण्ड–कोटि बहे यारे मने।
से तुमि श्रीदाम–गोप बहिला आपने॥२१४॥

याहा हैते आपनार पराभव हय।
सेइ बड़ गोप्य, लोके काहारे न कथ॥२१५॥
भक्ति लागि' सर्वस्थाने पराभव पाञा।
जिनिया बेड़ाओ तुमि भक्ति लुकाइया॥२१६॥
से माया हइल चूर्ण, आर नाहि लागे।
हेर देख सकल भुवने भक्ति मागे॥२१७॥
से काले हारिला जन दुइ चारि स्थाने।
ए काले बान्धिव तोमा सर्व जने जने॥''२१८॥

(१९७–२१८) प० अनु०—प्रभु बोले, —"श्रीधर! मेरी स्तुति करो।" श्रीधर ने कहा, —"हे प्रभो! मैं तो मूढ़मति हूँ। मैं भला आपकी स्तुति क्या जानूँ, मुझमें क्या शक्ति है?" प्रभु ने कहा—"तेरे मुख के वचन ही मेरी स्तुति है।" प्रभु के आदेश से जगन्माता सरस्वती श्रीधर की जिह्वा पर आकर विराज गईं औश्र श्रीधर स्तुति करने लगा। "महाप्रभु विश्वम्भर की जय हो, जय हो, जय हो। नवद्वीप-पुरन्दर की जय हो, जय हो। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नाथ की जय हो, जय हो । पुण्यवती शचीमाता के गर्भ से प्रकट होने वाले प्रभु की जय हो, जय हो। हे वेदगोप्य तत्त्व! आपकी जय हो, जय हो। हे द्विजराज! आपकी जय हो। आप युग-युग में अनेक रूप धारण करके धर्म का पालन करते हैं। आप गूढ़रूप से नदिया नगर में विचरते रहे। यदि आप स्वयं अपने को प्रकाशित नहीं करें तेा आपको कौन जान सकता है। आप ही धर्म हैं, आप की शास्त्र हैं आप वेद हैं, आप सर्वध्यान-स्वरूप हैं। आप सिद्धि हैं, आर ऋद्धि हैं, आप भोग, योग हैं। आप श्रद्धा हैं, आप दया है। आप मोह, लोभ हैं। आप इन्द्र हैं, आप चन्द्र हैं, आप अग्नि और जल हैं। आप सूर्य हैं आप वायु हैं, आप की धन और बल हैं। आाप भक्ति हैं, आप मुक्ति हैं, आप ब्रह्मा एवं शिव हैं। आप ये सब कैसे होंगे, ये सब तो आपके हैं। आपने स्वयं ही मुझसे पहले कहा था कि 'देख! यह तेरी गंगा तो मेरे चरणों को जल है'। तब भी मेरे पापी चित्त को चेत्त नहीं हुआ और मैं आपके अमूल्य चरणयुगल को नहीं पहचान सका। आपने जिस गोकुल को धन्य किया था वे ही आप अब नवद्वीप के पुरन्दर (इन्द्र, स्वामी) हुये हैं। जिस भक्ति को आप अपने हृदय में धारण करके विचरते हैं, वही भक्ति अब यहाँ नवद्वीप में बाहर प्रकट हो गई है। भक्तियोग के प्रभाव से भीष्म ने आपको युद्ध में जीत लिया था। भक्तियोग के बल से यशोदा ने आपको बाँध लिया था। भक्तियोग से ही सत्यभामा ने आपको बेच दिया था और भक्ति के वशीभूत होकर ही आपने गोप-रमणी को अपने कन्धे पर चढ़ाया था। आपको तो अनन्त कोटि ब्रह्माण डों के प्राणी अपने हृदय में धारण करते हैं और आप स्वयं श्रीदाम गोप को अपने कन्धे पर ले गये थे। जिस के द्वारा आपकी पराजय होती है उसे लोग छिपाकर रखते हैं, किसी को बतलाते नहीं हैं। आप ाी भक्ति के द्वारा सर्वत्र पराजय पाकर उस भक्ति को छिपाकर, विजयी बने हुये विचरते हैं। अब यह आपकी माया चूर-चूर हो गई है, वह अब और नहीं चलने की है। कारण, यह देखो! वह अब और नहीं चलने की है। कारण, यह देखो! सब भुवनों के लोग भक्ति माँग रहे है। उस समय तो आप दो चार जनों से ही हारे थे, परन्तु इस समय तो आपकी सभी लोग अपने प्रेम में बाँध लेंगे।"

(२०८) गौः भाः—भाः १/१८/२१ और ८/१९/२८ श्लोक दर्शनीय हैं।

(२१२) गौः भाः—भक्तियोग से भीष्म

और यशोदा—(आदि १७/२६) गौड़ीय भाष्य दर्शनीय है)।

(२१३) गौः भाः—भक्तियो से सत्यभाषा—श्रीकृष्ण की द्वारका-लीला के समय एकदिन देवर्षि नारद देवराज इन्द्र द्वार प्रदत्त पारिजात-पुष्प हाथ मे लेकर श्रीकृष्ण के निकट उपस्थित हुये। श्रीकृष्ण उस समय रुक्मिणी के घर में अवस्थान कर रहे थे। नारद द्व ारा पारिजात पुष्प श्रीकृष्ण को उपहार में देने पर भगवान् कृष्ण ने उसे रुक्मिणी को प्रदान कर दिया। यह देखकर नारद द्वारा रुक्मिणी के सौभाग्य की प्रशंसा करते हुये 'ये ही सबसे अधिक स्वामी-सोहागिनी हैं'—यह बात सत्यभामा की नौकरानियों ने सुनकर सत्यभामा के कान में कह दिया। इससे सत्यभामा को अभिमान हो गया। कृष्ण जब उनके मन्दिर में पधारे तब उन्होंने सत्यभामा के मनोरंजन हेतु पूरा पारिजात वृक्ष ही सत्यभामा की पुरी में ले आने की प्रतिज्ञा की। उस समय नारद ने वहाँ जाकर 'पुण्यक-व्रत' की विशेष प्रशंसा की। उस सत्यभामा ने उस व्रत का पालन करने की। अभिलाषा की। उसके बाद अमरावती से पारिजात वृक्ष लाया गया। व्रतविधि के अनुसार श्रीकृष्णको पारिजात-वृक्ष से बाँधकर नारद को प्रदन कर दिया गया। (हरिवंश विष्ण ुपर्व ७६ अध्याय)।

(२१४) गौः भाः—भक्तियोग से श्रीदाम—श्रीकृष्ण ने गोप बालकों को बुलाकर एक नया खेल खेलने की इच्छा व्यक्त की। एक तरफ राम थे एवं दूसरी ओर कृष्ण थे। वे बाह्य (कंधे पर उठने योग्य) और वाहक (कंधे पर उठाकर ले जाने वाला जीतने वाले को कंधे पर चढ़ा कर ले जाता था। कृष्ण के हारने पर वे श्रीदाम को, भद्रसेन वृषाी को एवं प्रलम्बासुर बलदेव को अपने कन्धे पर चढ़ा कर चले—(भाः १०/१८ अध्याय द्रष्टव्य है)।

श्रीधर के स्तव-पाठ से वैष्णवों को विस्मय—

महा शुद्धा सरस्वती श्रीधरेर-शुनि'।
विस्मय पाइया सर्व वैष्णव-आगनी॥२१९॥

(२१९) प० अनु०—श्रीधर की ऐसी महा विशुद्ध वाणी को सुनकर सब श्रेष्ठ वैष्णव विस्मय को प्राप्त हुये।

(२१९) गौः भाः—आगनी—श्रेष्ठ, अग्रणी।

श्रीधर को वर प्रार्थना करने के लिए महाप्रभु को आदेश और श्रीधर का उत्तर—

प्रभु बले,—"श्रीधर बाछिया माग वर।
अष्ट सिद्धि दिमु आजि तोमार गोचर॥"२२०॥
श्रीधर बलेन—"प्रभु आरो भाँड़ाइवा?
थाकह निश्चिते तुमि, आर ना पारिवा॥"२२१॥
प्रभु बले,—दरशन मोर व्यर्थ नय।
अवश्य पाइवा वर, येइ चित्ते लय॥"२२२॥

(२२०-२२२) प० अनु०—तब प्रभु ने कहा,—"श्रीधर! अपनी पसंद का वर माँग लो। मैं आज प्रत्यक्ष रूप से अष्ट सिद्धियाँ तुमको दे दूँगा।" श्रीधर ने कहा—"प्रभो मुझे और भुलावा देना चाहते हो क्या? अब आप निश्चिन्त रहिए, आपकी और नहीं चलेगी।" प्रभु ने कहा,—"परन्तु मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। जो तुम्हारे चित्त में होगा, वही वरदान आज तुम्हें अवश्य मिल जायेगा।"

वर-प्रार्थना प्रंसग में श्रीधर का गौरदास्य के अतिरिक्त सब प्रकार की सिद्धि, ऐश्वर्यादि की उपेक्षा एवं महाप्रभु-द्वारा श्रीधर को भक्तियोग प्रदान—

'माग माग' पुनः पुनः बले विश्वम्भर।
श्रीधर बलये—"प्रभु, देह' एइ वर॥२२३॥

ये ब्राह्मण काड़ि' निल मोर खोलापात।
ये ब्राह्मण हउक मोर जन्म जन्म नाथ॥२२४॥
ये ब्राह्मण मोर संगे करिल कन्दल।
मोर प्रभु हउक ताँर चरणयुगल॥''२२५॥
बलिते बलिते प्रेम बाड़ये श्रीधरे।
दुइ बाहु तुलि' कान्दे महा-उच्चैःस्वरे॥२२६॥
श्रीधरेर भक्ति देखि' वैष्णव-सकल।
अन्योन्ये कान्देन सब हइया विह्वल॥२२७॥
हासि' बले विश्वम्भर—''शुनह श्रीधर।
एक महाराज्ये कर्रो तोमारे ईश्वर॥''२२८॥
श्रीधर बलये,—''मुञि किछुइ ना चाङ।
हेन कर प्रभु येन तोर नाम गाङ॥''२२९॥
प्रभु बले,—''श्रीधर आमार तुमि दास।
एतेक देखिला तुमि आमार प्रकाश॥२३०॥
एतेके तोमार मति भेद ना हइल।
वेदगोप्य भक्तियोग तोरे आमि दिल॥''२३१॥

(२२३-२३१) प० अनु०—जब विश्वम्भर बार-बार 'वर माँगो, वर माँगो', ऐसा कहने लगे, तब श्रीधर ने कहा,—"प्रभो! मुझे यह वर दीजिये कि जिस ब्राह्मण ने मेरे खोला-पत्ते छीने थे, वह ब्राह्मण जन्म-जन्म में मेरे नाथ हों। जिस ब्राह्मण ने मेरे साथ झगड़ा किया था, उसके युगल चरण मेरे प्रभु हों।" यह कहते कहते श्रीधर का प्रेमभाव बढ़ गया और वह दोनों भुजाएँ उठाकर बड़े जोर से रोने लगा। श्रीधर की भक्ति देखकर सब वैष्णजन विह्वल हो गये और आपस में रोने लगे। तब विश्वम्भर हँस कर कहने लगे,—"सुनो श्रीधर! मैं तुम्हें एक महाराज्य का स्वामी बनाये देता हूँ।" श्रीधर ने कहा—"मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस ऐसा कर दीजिए प्रभो! कि मैं आपका नाम गाता रहूँ।" प्रभु ने कहा, —"श्रीधर! तुम मेरे दास हो। इसलिए तुमने मेरा यह प्रकाश देखा। इतने पर भी तुम्हारी बुद्धि में भेद नहीं हुआ। अतएवं मैं तुम्हें वेदगोप्य भक्तियोग देता हूँ।

(२३१) गौः भाः—वेदगोप्य—आध्यक्षिक (जड़इन्द्रिय-सम्बन्धी) ज्ञानी सन्प्रदाय वेद-मंत्रों की व्याख्या अज्ञरूढ़ि-वृत्ति-द्वारा निजेन्द्रिय भोग के उद्देश्य से करते रहते हैं। वेदशास्त्र विद्व द्रूढ़ि वृत्ति का आश्रय करके अयोग्य जनों की दृष्टि का आवरण करते हैं। जो परम सौभाग्यवान हैं, वे ही वेद में सर्वत्र भजनीय वस्तु हरि-सम्बन्ध, भजन हरिभक्ति—अभिधेय, हरिप्रेमा—प्रयोजन की उपलब्धि कर सकते हैं। साधारण मूढ़जन वेदशास्त्रों में कर्मकाण्ड-विचार अर्थात् फलभोगवाद को ही लक्ष्य करते हैं। कोई-कोई अहंकार से आहत होकर मायावाद का आश्रय लेकर उपास्य, उपासक ब्रह्मानुसंधानवाद की स्थापना करने के कारण को भक्तियोग के उद्देश्य लाभ में विफल हो जाते हैं। भगवान् जिन पर कृपा करते हैं, मूर्तिमान वेद उनके हृदय में भक्तियोग का उदय कर देते हैं। भक्तियोग की प्राप्ति ही सबकी अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट वस्तु है। "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्त वरान् निबोधत" यह कठोपनिषद् वाणी की सार्थकता प्रमाण सिद्ध है। "तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढ़म,"—(श्वेताश्वः ५/६)। वेदविधि-अगोचर, रतनवेदीर पर, भज निति किशोर-किशोरी—(प्रेमभक्तिचन्द्रिका) ।—(गीः१८/६४-६६ एवं भाः २/२/३४ श्लोक मनन करने योग्य हैं)।

श्रीधर की वर-प्राप्ति पर
वैष्णवजनों की जयध्वनि—

जय जय ध्वनि हैल वैष्णव मण्डले।
श्रीधर पाइल पर, शुनिल सकले॥२३२॥

(२३२) प० अनु०—श्रीधर को जो वरदान मिला, उसे सभी ने सुना और वैष्णव मण्डली

में जय–जय की ध्वनि गूँज उठी।

बाह्यदृष्टि से श्रीचैतन्यानुग जनों में
दारिद्रय–मूर्खतादि की प्रतीति—

धन–नाहि, जन नाहि, नाहिक पाण्डित्य।
के चिनिवे ए सकल चैतन्येर भृत्य॥२३३॥

(२३३) प० अनु०—ओह! श्रीचैतन्यचन्द्र के अनुगत भृत्यों के पास न धन है, न जन हैं न पाण्डित्य है, इनको कौन पहचान सकता है।

(२३३) गौः भाः—आध्यक्षिक ज्ञान से, अर्थात् बाह्य परिचय से वैष्णव के स्वरूप को पहचानना कठिन कठिन है। अधिक धन रहने से ही उसकी अधिक वैष्णवता होगी—ऐसा नहीं है। बहुत से लोगों को इकट्ठा करने से ही अधिक पाण्डित्य रहने से वह विष्णुभक्त होगा—ऐसा भी नहीं। शास्त्रादि मे अधिक पाण्डित्य रहने से वह विष्णुभक्तहोगा—ऐसा भी नहीं है। हो सकता है कि श्रीचैतन्य के दासों के पास अधिक धन नहीं हो यह भी हो सकता है कि अधिक लोक संग्रह न कर सकते हों यह भी हो सकता हैं कि अधिक तर्क–वितर्कात्मक पाण्डित्य का अधिकर उनके पास नहीं हो; किन्तु इन सब वस्तुओं के प्रति वे वैष्णव क्यों उदासीन हैं, इस बात को समझने की योग्यता साधारण लोगों में नहीं है। श्रीचैतन्य–सेवा ही वे धन, जन, पाण्डित्य आदि की अपेक्षा अत्यधिक आदर देते हैं; इसलिए उनके गौरव, उनकी महिमा और श्रेष्ठता का सामान्य लोगों को दृष्टिगोचर होना सम्भव नहीं है।

विषयों का परिणाम और विषयहीन
श्रीधर के सौभाग्य की श्रेष्ठता—

कि करिवे विद्या, धन, रूप, यश, कुले।
अंहकार बाड़ि' सब पड़ये निर्मूले॥२३४॥
कला मूला बेचिया श्रीधर पाइला याहा।
कोटिकल्पे कोटिश्वर ना देखिवा ताहा॥२३५॥
अंहकार–द्रोहमात्र विषयेते आछे।
अधःपात–फल तार ना जानये पाछे॥२३६॥

(२३४–२३६) प० अनु०—विद्या, धन, रूप, यश, कुल—इनसे क्या होगा। ये सब तो अंहकार बढ़ाकर स्वयं भी मूल–सहित नष्ट हो जाते है। केला, कन्द–मूल बेचकर श्रीधर को जो भक्तियोग प्राप्त हुआ, ऐसे कोटिकल्पों में कोटीश्वर भी न देख सकेंगे। विषय भोग–वस्तुओं में केवल अंहकार और द्रोह मात्र है, उसका फल अधःपतन हैं, जिसका परिणाम लोग नहीं जानते हैं।

(२३४) गौः भाः—साधारण अभावग्रस्त लोग यही समझते हैं कि विद्या, धन, रूप, कीर्त्ति, वंश–मर्यादा—ये ही सब प्रयोजनीय वस्तु हैं। किन्तु "जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीरेधमानमदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥"—इस भागवत–पद्य का अनुशीलन न करने के कारण सांसरिक उन्नति की कामना रखने वाले ये लोग इन सब बातों को न समझकर भ्रान्ति के वशीभूत होकर केवल विद्या, धन, रूप, यश और कुलादि की वृद्धि हो—इस प्रकार की वासना करते रहते हैं। इसलिए वे अभागे हैं—चैतन्यदास्य के अलौकिक लोभ में उनको स्थान नहीं मिलता हैं।—(भाः १०/१०/८ एवं १०/७३/१० और कठोपनिषत् के १/२/६ श्लोक द्रष्टव्य हैं।

(२३५) गौः भाः—४३,२०००० सौरवर्ष का एक महायुग होता है। ऐसे सहस्र महायुगों में एक कल्प होता है। उस प्रकार के कल्प के करोड़ों गुने काल के भीतर कोटि–कोटि ऐश्वर्य के अधिकारी के लिए जो वस्तु दुर्लभ हैं, उसको ही 'थोड़–केला बेचने वाले ब्राह्मण कुल में उत्पन्न दरिद्र श्रीधर ने प्राप्त किया।

(२३६) गौः भाः—श्रीकृष्णपादपद्मों की सेवा ही जीव मात्र का एकमात्र विषय हैं। जिनमें कृष्णेतर वस्तुओं और विषयों को भोग प्रबल होता है, वे अंहकार के वशवर्त्ती होकर भक्ति-विद्वेषी हो जाते हैं। विषयों में आसक्त चित्त वाले व्यक्ति आगे आने वाले समय में अधः पतन को प्राप्त होते हैं। इसलिए ही ठाकुर नरोत्तम ने कहा है के, फलभोगवाद (कर्मकाण्ड) और फलत्यागवाद (ज्ञानकाण्ड); दोनों ही विषभाण्ड हैं। जिनकी इन दोनों विषयों में से किसी को भी भक्षण करेन की प्रबल रुचि है, उनका जीवन अधःपतित होता है। कर्मकाण्डरत मत्त जनगण इन्द्रिय तृप्ति की वासना से विषयों के पीछे दौड़ते हुये जन्म-जन्मान्तरों को प्राप्त करते हैं एवं स्वर्ग के पिंजरे में बन्द होकर तथा तात्कालिक इन्द्रिय-तर्पण में रत रहकर कृष्णसेवा-विमुखता इन्द्रिय-तर्पण में रत रहकर कृष्णसेवा-विमुखता को संग्रह करते रहते हैं। यही जीव की अधःपतनरुप अनात्मबुद्धि हैं।

आपात-प्रतीति के वशीभूत होकर वैष्णव-दर्शन की चेष्टा में दोष-दर्शन से दुर्गति—

देखि' मूर्ख दरिद्र ये सुजनेरे हासे।
कुम्भीपाके याय सेइ निज कर्मदोषे॥२३७॥
वैष्णव चिनिते पारे काहार शकति।
आछये सकल सिद्धि, देखये दुर्गति॥२३९॥
खोलावेचा श्रीधर ताहार एइ साक्षी।
भक्तिमात्र निल अष्ट-सिद्धिके उपेक्षि॥२३९॥
यत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख।
निश्चय जानिह सेइ परानन्दसुख॥२४०॥
विषयमदान्ध सब किछुइ ना जाने।
विद्यामदे धनमदे वैष्णव ना चिने॥२४१॥
भागवत पड़ियाओ का'रो बुद्धिनाश।
नित्यानन्द-निन्दा करे याइवेक नाश॥२४२॥

(२३७-२४२) प० अनु०—जो सज्जन (वैष्णव) को मूर्ख और दरिद्र देखकर हँसता है, वह अपने कर्मों के दोष से कुम्भीपाक नरक में जाता है। किस की शक्ति है कि वह वैष्णवों को पहचान सके। देखने में वैष्ाव दुर्दशा ग्रस्त दिखाई देता है हैं, पर सब सिद्धियाँ उसमें हैं। इसमा साक्षी है। खोल बेचने वाला श्रीधर, जिसने अष्ट सिद्धियों की अपेक्षा करके केवल मात्र भक्ति को ही स्वीकार किया। वैष्णवों में जितने व्यावहारिक दुःख दिखाई देते हैं, उनको निश्चय ही परानन्द सुख रूप से जानना चाहिए। विषय मदान्ध लोग इन सब बातों को नहीं जानते हैं। वे विद्या और धन के अभिमान में वैष्णवों को नहीं पहचान पाते हैं। किसी-किसी की बुद्धि तो भागवत पढ़कर भी नष्ट हो जाती है और वे श्रीनित्यानन्द की निन्दा करके विनाश को प्राप्त होते है।

(२३७) गौः भाः—जो इन्द्रिय-तर्पण में व्यस्त रहते हुये मत्तता के वशीभूत होकर वैष्णव में जागतिक पाण्डित्य और जागतिक ऐश्वर्य के अभाव को दर्शन करते हैं एवं उस प्रकार के अभाव को देखकर वैष्णव का उपहास करते हैं, वे अपने इन कर्मों के फल से कुम्भीपाक-नरक में कष्ट भोगते हैं। "यो हि भागवतं लोकमुपहासं नृपोत्तत। करोति तस्य नश्यन्ति अर्थधर्मयशः सुताः॥ निन्दां कुर्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्। पतनित पितृभिः सार्द्धं महारौरव संज्ञिते॥ हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान्नाभिनन्दति। क्रध्यते याति नो हर्ष दर्शने पतनानि षट्॥"—स्कन्दपुराण।

(२३८) गौः भाः—मूढ़जन लौकिक-ज्ञान में प्रमत्त होकर वैष्णवों को नहीं पहचान पाते हैं। सब सिद्धियाँ वैष्णवों के हाथों में रहती

हैं, इसलिए मूढ़ की दृष्टि से वे हर प्रकार से दुर्दशाग्रस्त एवं कष्ट भोगते हुये से दिखाई देते हैं।

(२३९) गौः भाः—जो अष्ट सिद्धियाँ, फलकामी इन्द्रियपरायण व्यक्तियों की परम आदरणीय है, उन सिद्धियों को अनायास ही पद्दलित करके लोगों के दृष्टि में दरिद्र श्रीधर ने भक्तियोग का वर प्राप्त किया। अपुनर्भव (मोक्ष), योगसिद्धि, रसाधिपत्य, पारमेष्ठय आदि सम्पद्—आत्मा का अनुभव न करने वाले व्यक्ति ही चाहते हैं, किन्तु आत्मविद् के चरणाश्रित वैष्णवों की इस प्रकार की याचना की तुच्छता की उपलब्धि उनका स्वाभाविक धर्म है। जिन्होंने श्रीधर की लीला पर विचार किया है, वे इस कथा को उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में ग्रहण कर सकते हैं।

(२४०) गौः भाः—भजनपरायण भक्त के पास बाहर के ऐश्वर्य के स्थान पर अभाव, स्वास्थ्य के स्थान पर अस्वास्थ्य, धन के स्थान पर दरिद्रता और पाण्डित्य के स्थान पर मूर्खता को देखकर जो लोग कर्मफलवादी व्यक्ति की तरह वैष्णवों को भी नाना प्रकार के अभावों से पीड़ित समझते हैं एवं उन्हें व्यवहारिक दृष्टि से कनक–कामिनी–प्रतिष्ठा आदि के लिए लालायित समझकर जो उनको 'दुखी' मानते हैं, उनकी मति भ्रष्ट है, ऐसा जानना होगा।

कायस्थकुल कमल–दिवाकर के रूप में परिचित श्रीदास गोस्वामी प्रभु ने किसी भी दिन व्यावहारिक दुःख से दुःखित होकर सौजन्य का परित्याग करके ब्रह्मज्ञ पण्डितों का असम्मान नहीं किया। दबिरखास और साकरमल्लिक के यवनाधिकारियों का भृत्यकार्य करेन पर भी व्यावहारिक दुःखित न होकर वे सदा श्रीचैतन्यचरण–सेवा में संलग्न रहे थे। किन्तु इस कारण जड़ेन्द्रियवादीगण उनको 'व्यावहारिक दुःख से पीड़ित' समझते थे।

ठाकुर हरिदास यवनकुल में प्रकट होने पर भी एवं ठाकुर उद्धारण दत्त सुवर्णवणिक (सुनार) कुल में उन्पन्न होने पर भी किसी दिन व्यावहारिक दुःख से दुःखित नहीं हुये थे। वे हमेशा ही हरि सेवानन्द में व्यस्त रहते थे, इसलिए दुःख भार से पीड़ित जनों की तरह उन्हें दुःखमग्न होने का मौका मिला ही नहीं।

कर्मकाण्डी और ज्ञानकाण्डी जनों के विचार से जो कुछ दुःख रूप से अनुमानित किया जाता है, वह सब परानन्द सुख के कारण के रूप में ही अनुभव में आयेगा। इसलिए ही श्रीगौरसुन्दर ने "नाहं विप्रो न च नरपतिः" श्लोक की अवतारणा करके जागतिक सुख–दुख–मिश्र अवस्था से अभिभूत होने का निषेध किया है। अनात्म–प्रतीति के कारण होने वाले दुःख की संभावना आत्मविदों में नहीं रहती है।

(२४१) गौः भाः—जड़ इन्द्रिय–ज्ञान के द्व ारा श्रुति में कहे गये विद्या के भेदों को नहीं समझा जा सकता है। ऋग् साम् यजु और अथर्व—इन चारों वेदों को, तथा वेदानुग विविध शास्त्रसमूह एवं आयुर्वेद, धनुर्वेद के उद्देश्य से नियोजित करते हैं, वे ही अज्ञरूढ़िवृति के आश्रय में अपरा–विद्यानुशीलन के पक्षपाती हैं और जो अपरा विद्या के हाथों से विमुक्त होकर शब्द की विद्वद्रूढ़ि वृत्ति का अनुगमन करते हैं, वे पराविद्या के सेवक होने से विद्या के अभिमान से अभिभूत नहीं होते हैं। जो अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित रहते हैं, ऐसे अभावग्रस्त व्यक्ति ही धनमद में दर्पित होते हैं। धनादि के बदले में इन्द्रियों से भोगे जाने वाले सुख की प्राप्ति होती है, इस प्रकार का यह इन्द्रिय–समूह कुछ

समय के लिए है और वह पूर्ण सुख ग्रहण कराने में असमर्थ है। इसलिए भक्ति पथ के पथिक वैष्णवजन विद्या, धन, रूप, यश और कुल के अभिमान में अन्धे होकर उन सब विषयोनुसन्धानों की ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। किन्तु मन्दभाग्य, अभावग्रस्त, त्रिगुण-ताड़ित, माया-द्वारा आवृत और अस्थिर चित्त वाले बद्धजीव बाह्य-परिचय में परम निपुण एवं अभिमान-पूर्वक विषय-मदान्ध होकर वैष्णवों की अति उच्च पदवी की महिमा को नहीं समझ पाते हैं। वे यह मानते हैं कि विष्णु-भक्त उन जैसे विषय मदान्ध नहीं हैं, इसलिए निर्बोध हैं; ऐसा सोचते हुये वे वैष्णवों को सम्मान का पात्र न मानकर अपने से हीन समझते हैं। उनकी निर्मल जीवात्मा-वृत्ति को यद्यपि किसी दोष द्वारा स्पर्शित करने की सम्भावना नहीं है, फिर भी औपाधिक अज्ञान की मदोन्मत्तता उनको सब विषयों में ही दोषी करती रहती है। उन बेचारों का कोई दोष नहीं है,—दोष केवल उनकी अविशुद्ध बुद्धि का है।

(२४२) गौः भाः— बहुतसे लोग श्रीब्रह्ममाध्यव- गौड़ीय के आनुगत्य में श्रीमद्भागवत का आलोचन न करके विद्या, धन, रूप, यश और कुल के अभिमान की लालसा में प्रमत्त मनुष्यों के निकट भागवत-पाठ करके भक्तिविद्वेष विचार का अवलम्बन करते हैं। श्रीनित्यानन्द-स्वरूप के आनुगत्य के अभाव में वे सात्विक अधिष्ठानयुक्त चैतन्यदास्य को त्यागकर वैष्णव-गुरु का असम्मान करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी भक्तिहीनता प्रकाशित होती है और उनमें, मैं वैष्णवों को उपदेशक हूँ, ऐसा अंहकार उदित होता है। सब प्राणियों में भगवद्भाव-दर्शन देता है; तब अंहकार का आश्रय लेते हुये वे हिंसा से अपने को भागवत के उपदेशक और मंत्रदाता-गुरु के वेश में प्रतिष्ठित करके दीक्षा देने की छलना आदि भक्ति-विरूद्ध कार्यों का आवाहन कर लेते हैं। किन्तु जो वैष्णव-गुरु के निकट श्रीमद्भागवत का पाठ करते हैं, उनमें स्वाभाविक दीनता आती है। वे स्वयं को तिनके से भी अधिक तुच्छ समझते हैं, जिससे श्रीमद्भागवत पाठ एवं उपदेश देने की वास्तविक योग्यता उनमें आती हैं। जो प्राणी चैतन्य की करुणा-कटाक्ष का एककण भी उपलब्ध कर लेता हैं, उसे सम्पूर्ण विश्व नित्यानन्दमय दिखाई देता है। नित्य वैष्णव दास को छोड़कर श्रीमद्भागवत का अध्यापक इस अपरा विद्या में पारंगत मनुष्यों के वश की बात नहीं है। अपरा विद्या का आश्रय लेने वाला व्यक्ति भागवत का अध्यापक होने को अभिमान करके भागवतदास होने के बदले भागवतजनों को प्रभु होने के अभिमान से उदर-पोषक बन जाता है। वह 'कारोबार' को ही 'धर्म' मानकर नाना प्रकार के भक्ति-विरोधी कार्यों को ही नित्यानन्द को आनुगत्य को निन्दा हैं।

श्रीधर के वर-प्राप्ति आख्यान की फलश्रुति—

श्रीधर पाइल वर करिया स्तवन।
इहा येइ शुने, ता'रे मिले प्रेमधन॥२४३॥

(२४३) प० अनु०—श्रीधर ने प्रभु की स्तुति करके वरदान प्राप्त किया, इस प्रसंग को जो भी सुनेंगे, उन्हें प्रेम-धन मिलेगा।

वैष्णवनिन्दा-विहीन को कृष्णकृपा सुलभ।

प्रेम-भक्ति हय प्रभु चरणारविन्दे।
सेइ कृष्ण पाय, ये वैष्णव नाहि निन्दे॥२४४॥
निन्दाय नाहिक कार्य, सबे पाप-लाभ।
एतेके ना करे, निन्दा महा-महा-भाग॥२४५॥
अनिन्दुक हइ' ये सकृत् 'कृष्ण' बले।

सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिव हेले॥२४६॥

(२४४–२४६) प० अनु०—उन्हीं लोगों की प्रभु के चरणारिवन्द में प्रेम–भाक्ति होती है और उन्हीं को श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है, जो वैष्णवों की निन्दा नहीं करते हैं। निन्दा से कोई काम नहीं बनता है, केवल पाप की प्राप्त होता है। इसलिए महामहा भागवन्त वैष्णवजन किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं। अनिन्दुक होकर जो एकबार भी श्रीकृष्ण का नाम लेता है, श्रीकृष्ण सत्य–सत्य (निश्चय ही) उस का सहज में ही उद्धार कर देते हैं।

(२४४) गौः भाः—जो भागवत–वैष्णव की निन्दा नहीं करते, जो वैष्णव को 'श्रीगुरुदेव' के रूप में देखते हैं और विष्णु–भक्तिरहित बाहर कि परिचय से परिचित गुरु–नामधारी व्यक्ति से दूर रहते हैं, उनके मन्द अनुष्ठानों की प्रशंसा नहीं करते; बल्कि जगत् की कल्याण–कामना से उन सबकी तृच्छता को उजागर करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को श्रीमहाप्रभु के पादपद्मों में शुद्धभक्ति प्राप्त होती है एवं गौर नित्यानन्द की कृपा से उन्हें श्रीकृष्ण–चरण प्राप्त होते हैं।

(२४५) गौः भाः—महा–महाभाग्यवन्त वैष्णवजन विष्णुभक्ति की ही प्रशंसा करते हैं, वे कभी भी भक्ति की निन्दा नहीं करते। जो कपटी और धूर्त लोग अवैष्णवता के परित्याग को 'निन्दा' बताकर लोगों की वंचना करते हैं, वे पाप में प्रमत्त है। 'जीवों पर दया' रूप जो भक्ति का अनुष्ठान है, उसमें उनकी रुचि नहीं हैं। विष्णु–भक्ति–विहीनता से लोगों को मुक्त करने का जो कार्य है, उसकी 'निदा' समझना पाप है। पापीजन ऐसा करके पाप की प्रशंसा करते हुये प्रकारान्तर से वैष्णवों की निन्दा कर बैठते हैं। इसलिए सुकृति–सम्पन्न वैष्णजन कभी भी किसी वैष्णव की निन्दा नहीं करते हैं। वे पापिष्ठ नहीं हैं। जो नाम मात्र के वैष्णव हैं और अपने की वैष्णव कहते हैं, वे कपटी हैं, इसलिए अभागे और पापी हैं।

(२४६) गौः भाः—वैष्णव–अपराध अर्थात् साधु–निन्दा से बचकर जो मनुष्य निरपराध से एकबार भी कृष्णनाम का उच्चारण करते हैं, उनको अनायास ही श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त हो जाता है, एवं वे मायिक बुद्धिहीनता से परित्राण पा जाते हैं। श्रीगौर–नित्यानन्द की सेवा के बिना किसी के लिए भी वैष्णव का दास्य पाना संभव नहीं हैं।

ग्रन्थकार का स्वाभाविक दैन्य ज्ञापन—

वैष्णवेर पाये मोर एइ नमस्कार।
श्रीचैतन्य–नित्यानन्द हउक प्राण मोर॥२४७॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचान्द जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥२४८॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे श्रीधरचरित वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।

(२४७–२४८) प० अनु०—वैष्णवों के चरणों में मेरा यहाँ नमस्कार निवेदन है कि श्रीचैतन्यचन्द्र एवं नित्यानन्द मेरे प्राण हों। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

इति गौड़ीय–भाष्य में नवम अध्यायः समाप्त

O

दशम अध्याय

दशम अध्याय का कथासार

इस अध्याय में पूर्व अध्यायों में वर्णित महाप्रभु की महा-प्रकाश-लीला का परिशिष्ट, महाप्रभु के द्वारा मुरारि को सपरिवार रामरूप के दर्शन एवं वरदान, हरिदास की महिमा का कीर्तन, हरिदास-द्वारा गौर-स्तुति, अद्वैत का पर्वू-वृत्तान्त कहना, गीता का पाठ-परिवर्तन, भक्तगण को बहुविध वरदान, मुकुन्द की उपेक्षा एवं कृपा, भक्ति को प्रभाव वर्णन, नारायणी का आख्यान एवं नित्यानन्द की महिमा आदि वर्णित हुये है।

श्रीधर को वर प्रदान करने के पश्चात् महाप्रभु ने अद्वैत आचार्य से वर माँगने को कहा। किन्तु उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धि की बात कहकर प्रकाश्य-भाव से किसी वर के लिए प्रार्थना नहीं की। महाप्रभु ने मुरारि गुप्त को परिकर-सहित श्रीरामरूप को दर्शन कराया एवं उनके स्वभाव को प्रकाशित कर दिया। तब मुरारि अपने हनुमत्-स्वरूप की उपलब्धि करके मूर्च्छित हो गये, पश्चात् महाप्रभु के वाक्यों से चेतनता प्राप्त करके प्रभु के आदेश के अनुसार चैतन्य एवं उनके अपने-जनगण का नित्यादास्य, चैतन्य चरणों का निरंतर स्मरण एवं गौर के गुणगान करने में सामर्थ्यवान् होने के लिए वर की प्रार्थना की। मुरारि को वर देते हुये प्रभु ने कहा कि, मुरारि की निन्दा करने वाले व्यक्ति का कोटि गंगास्नान एवं हरिनाम से भी उद्धार नहीं होगा। पश्चात् उन्होंने 'मुरारि गुप्त नाम का अर्थ प्रकट किया।

महाप्रभु ने हरिदास को अपना रूप दर्शन करने का आदेश दिया और बताया कि हरिदास का देह महाप्रभु को अपनी देह से भी बझकर है, हरिदास की जाति ही महाप्रभु की जाति है। हरिदास के दुःख को देखकर वे हाथ में सुदर्शन-चक्र लिए वैकुण्ठ से अवतरित हुये थे; परन्तु हरिदास अत्याचारी व्यक्तिगण की भी मंगल-कामना कर रहे थे। इसलिए उस संकल्प के प्रभाव से सुदर्शन भी निरस्त हो गया एवं जो प्रहार हरिदास के अंगों पर हो रहे थे, उन प्रहारों को महाप्रभु ने अपने अंगों पर ले लिया। उन सब प्रहारों के चिह्नों को महाप्रभु ने अपने अंगों में प्रदर्शित करते हुये कहा कि, हरिदास का दुःख सहन नहीं हो पाया, इसलिए वे अति-शीघ्र अवतीर्ण हुये हैं। श्रीकृष्ण भक्तों के अधीन हैंख वे भक्तों को छोड़ और कुछ नहीं जानते हैं। उस प्रकार के भक्तवत्सल कृष्ण के नाम का अनादर—दुर्दैव को फलमात्र है। प्रभु की अपरंपार कृपा की कथा सुनकर हरिदास मूर्च्छित होकर गिर पड़े। प्रभु के वाक्यों से चेतनता प्राप्त करने पर भी वे अधीर होकर क्रन्दन करने लगे; प्रभु के रूप का दर्शन उन्हें और नहीं हो सका। अति दीनता के साथ महाप्रभू की स्तुति करते हुये हरिदास बोले, दयालु गौरसुन्दर अपने चरण-स्मरण करने वाले कीट को भी कभी नहीं त्यागते; परन्तु इसके विपरीत भाव रखने वाले राजचक्रवर्ती का भी वे सर्वनाश कर

देते हैं। इस प्रसंग मैं द्रौपदी, प्रह्लाद, दुर्वासा के शाप की आंशका से भयभीत युधिष्ठिर एवं अजामिल के प्रसंगों का वर्णन करते हुये हरिदास ने गौरसुन्दर की शरणागत जनों के प्रति वत्सलता की पराकाष्ठा का कीर्तन किया। हरिदास ने अपनी हर प्रकार की अयोग्यता का प्रकाशन करते हुये इच्छा की कि चैतन्य के दासों के उच्छिष्ट (जूठन) में उनकी रूचि रहे, वही जन्म–जन्म में उनका एकमात्र साधन–भजन हो एवं महाप्रभु की कृपा उनको भक्त के घर में कुत्ता बनाकर रखे, —बस, ऐसे वर के लिए हरिदास ने प्रार्थन की। हरिदास के शरीर में महाप्रभु का निरंतर अवस्थान है। आधे पल के लिए भी हरिदास का संग करने वाले एवं हरिदास के शरीर में महाप्रभु का निरंतर अवस्थान है। आधे पल के लिए भी हरिदास का संग करने वाले एवं हरिदास में श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति के लिए निश्चितरूप से चैतन्य के चरणों को प्राप्त करना सुलभ है,—ऐसा भाव व्यक्त करते हुये महाप्रभु ने हरिदास को विष्णु–वैष्णव–चरणों में अपराध–रहित शुद्ध भक्ति का वर प्रदान किया। भक्तों की महिमा श्रवण करने से कृष्णभक्ति मिलती हैं—यह सभी शास्त्रों को उपदेश है। किसी के मतानुसार हरिदास ब्रह्मा, किसी के मतानुसार के प्रह्लाद के प्रकाश हैं। उनका संग—ब्रह्मा–शिव आदि के लिए भी वांछनीय है, उनका स्पर्श–गंगा का भी काम्य हैं। केवल यही नहीं—हरिदास के दर्शन मात्र से ही अनादि कर्मबंधन छिन्न हो जाते हैं। वैष्णवों की सर्वोत्तमता की स्थापना के लिए ही कभी–कभी वैष्णवगण नीचकुल में जन्मग्रहण के लिए ही कभी–कभी वैष्णवगण नीचकुल में जन्मग्रहण की लीला का प्रकाश करते हैं। महाप्रभु ने अद्वैत को उनके पूर्व मनोभावों की याद दिलाकर उनके द्वारा गीता–अध्यापन में सर्वत्र भक्ति की व्याख्या, किसी–किसी स्वप्न में भक्ति–परक अर्थ न मिलने पर उपवास, पाठ और अर्थ बतलाकर उपवास करने को मना करना आदि कथाओं को उल्लेख हुआ है एवं "सर्वतः पाणिपादन्तत्" श्लोक का पाठ संशोधित किया गया है। चैतन्य के गुप्त शिष्य आचार्य ने कहा, यही उनका परम महत्त्व है कि चैतन्य उनके प्रभु हैं। चैतन्य के महामहेश्वत्व को अस्वीकार करके जो व्यक्ति महाविष्णु के अवतार अद्वैत को स्वतन्त्र मानकर उनकी सेवा करते हैं, वे वस्तुतः अद्वैत–चरण में अपराधी है; उनका दशानन जैसी परिणाम होना अवश्यम्भावी है। अद्वैत को जो वैष्णवग्रगण्य चैतन्यदास मानते हैं, वे ही वास्तव में अद्वैतभक्त वैष्णव हैं एवं कृष्ण–चरण प्राप्त करने के अधिकारी हैं—यह अद्वैत की अपने श्रीमुख से निकली हुई बात है। महाप्रभु ने वहाँ एकत्र सब भक्तों को भी उनके द्वारा प्रार्थित वर प्रदान किया। उस समय तक मुकुन्द बाहर ही अवस्थान कर रहे थे। श्रीवास ने जब मुकुन्द के लिए कृपा की भिक्षा माँगी तब महाप्रभु ने कहा कि, मुकुन्द उनके दर्शन का अधिकारी नहीं है; क्योंकि, मुकुन्द प्रत्येक सम्प्रदाय से मिलकर विभिन्न सम्प्रदायों का भाव ग्रहण किया करता है। उसकी मति अभी अस्थिर है एवं भक्ति के प्रति उसकी निष्ठा नहीं है। वह 'खण्ड–जाठिया' है,—कभी 'जाठि' (लाठी) भी उठा लेता है। भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है,—इस बात को न मानना ही भगवान् के अंग में 'जाठि' (लाठी) भी उठा लेता है। भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है,—इस बात को न मानना ही भगवान् के अंग में 'जाठि' (लाठी) मारना है। यह बात सुनकर मुकुन्द ने उसी दिन अपनी देह त्याग देने का

संकल्प करते हुये श्रीवास के द्वारा महाप्रभु से पुछवाया कि, क्या वह (मुकुन्द) कभी भी दर्शन कर पायेगा या नहीं। इसके उत्तर में यह जानकर कि कोटिजन्म के पश्चात् दर्शन मिलेगा, मुकुन्द आनन्द पूर्वक आत्मविस्मृत होकर नृत्य करने लगा। तब महाप्रभु ने उसे अपने पास बुलाकर उसका सभी अपराध क्षमा कर दिया एवं अपनी हार स्वीकार करते हुये कहा कि,—"मुकुन्द ने भक्तिहीनता के लिए अपने को धिक्कारते हुये भक्तियोग के प्रभाव एवं भक्तिहीनता के भयावह परिण ाम के बारे में दृष्टांत सहित वर्णन किया। मुकुन्द के खेद-दर्शन से लज्जित विश्वम्भर ने अपनी भक्ति को श्रेष्ठत्व बताते हुये वेदों में उल्लिखित कर्मकाण्ड के फलस्वरूप सभी प्रकार के कर्म-बंधनों से मुक्ति दिलाने के लिए केवल अपनी भक्ति का ही प्रभुत्व स्थापित किया एवं मथुरावासी अभक्त धोबी की भाग्यहीनता की कथा का उल्लेख करते हुये मुकुन्द को यह वर दिया कि उनके सभी अवतारों में मुकुन्द उनके गायक बनेंगे। इस प्रकार श्रीवास के घर में महाप्रभु के द्वारा प्रत्येक दिन बहुविध लीलाएँ प्रकाशित करने पर भी भक्तिहीन, भाग्यहीन, कर्मीज्ञानी, अन्याभिलाषी व्यक्तियों को उन सबके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। एकमात्र चैतन्य के दासगण ही भक्तियोग के प्रभाव से इन सब लीलाओं के दर्शन करने के अधिकारी हैं। इसका प्रमाण है—श्रीवास के दासदासीगण। चैतन्य की लीला-नित्य है—चैतन्यकृपाप्राप्तजन आज भी चैतन्य की लीलाओं का अनुभव करते हैं। महाप्रभु ने भक्तजनों के अपने-अपने इष्टरूप को स्वयं में ही प्रदर्शित किया और सबको अपने अवतारी हाने की जानकारी दी।

महाप्रभु ने भक्तजनों को अपने गले की माला एवं चर्वित ताम्बूल-प्रसाद वितरित किया। उनके भोजन का अवशिष्ट अंश श्रीवास के भ्राता की पुत्री नारायणी ने ग्रहण किया। इस प्रकार नारायणी वैष्णव-समाज में महाप्रभु की 'अवशेष पात्री' नाम से विख्यात है। छोटी-सी बालिका होते हुये भी उसने प्रभु के आदेश से कृष्णप्रेम के आनन्द में क्रन्दन किया था।

इसके पश्चात् ग्रन्थकार ने श्रीमन् नित्यानन्द की महिमा का कीर्तन करते हुये अध्याय का समाप्त किया।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

मोर बँधुया। गौरगुणनिधिया ॥ध्रु० ॥
जय जय महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर।
जय जय नित्यानन्द अनादि ईश्वर ॥१ ॥

(१) प० अनु०—मेरे प्राणों के बंधु, श्रीगौरांग देव गुणों के सागर हैं। महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर की जय हो, जय हो। अनादि ईश्वर नित्यानन्द की जय हो, जय हो।

(१) गौः भाः—ध्रु। बँधुया,—'बंधु'-शब्द से, लौकिक-भाषा में आदर-सूचक शब्द। गुणनिधिया,—शब्द का लौकिक भाषा में आदर-सहित संभाषण। जिस प्रकार पूर्वी बंगलादेश में श्रीहट्ट के अधिवासीगण को "सिलेटिका", कलकत्ता के अधिवासियों को "कलकतिया" इत्यादि कहकर पुकारा जाता है, उसी प्रकार कवित्वमयी भाषा में यहाँ इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

महाप्रभु-द्वारा अद्वैत आचार्य को वर माँगने के लिए आदेश एवं आचार्य का उत्तर—

हेनमते प्रभु श्रीधररे वर दिया।
'नाड़ा नाड़ा नाड़ा' बले मस्तक ढुलाइया ॥२ ॥
प्रभु बले,—"आचार्य! मागह निज कार्य।"

''ये माँगिलु, ता पाइलुँ'' बलये आचार्य॥३॥
हुँकार करये जगन्नाथेर नन्दन।
हेन शक्ति नाहि कारो बलिते वचन॥४॥

(२-४) प० अनु०—इस प्रकार श्रीधर को वर देने के पश्चात प्रभु सिर हिला-हिलाकर 'नाड़ा-नाड़ा' कहकर पुकारने लगे। प्रभु बोले, —"आचार्य! अपना वांछित वर माँग लो।" आचार्य ने उत्तर दिया—"जो माँगा सो मिल गया।" यह सुनकर जगन्नाथ-नन्दन श्रीगौरहरि ने हुँकार की। तब किसर में ऐसी शक्ति नहीं रही कि कुछ कह सके।

(३) गौः भाः—महाप्रभु-द्वारा अद्वैत आचार्य से अपना मन-पसन्द वर माँगने के लिए कहने पर अद्वैत आचार्य ने इसके उत्तर में महाप्रभु से कहा कि,—"जिसके लिए मैंने प्रार्थना की थी, वह मुझे मिल चुका है"।

प्रभु के महाप्रकाश को देखकर गदाधर-आदि-द्वारा उनकी समयोचित बहुविध सेवा—

महाप्रकाश प्रभु विश्वम्भर राय।
गदाधर योगाय ताम्बूल, प्रभु खाय॥५॥
धरणी-धरेन्द्र नित्यानन्द धरे छत्र।
सम्मुखे अद्वैत-आदि सब महापात्र॥६॥

(५-६) प० अनु०—प्रभु विश्वम्भर का महान् प्रकाश हुआ है। यह देखकर गदाधर ने ताम्बूल (पान) प्रदान किया और प्रभु ने वह ताम्बूल खा लिया। धरणी-धेरन्द्र (धरती को धारण करने वाले) नित्यानन्द ने प्रभु के सिर के ऊपर छत्र धारण किया। अद्वैत आदि सभी महापात्र प्रभु के सामने उपसिथत थे।

(६) गौः भाः—धरणी-धरेन्द्र,—भगवान्' 'शेष'। जो नित्यानन्द के अंशविशेष हैं। "सेइ विष्णु 'शेष'—रूपे धरेन धरणी। छत्र, पादुका, शय्या, उपाधान (तकिया), वसन। आराम, आवास, यज्ञसूत्र, सिंहासन॥ एतमूर्त्ति, सिंहासन॥ एतमूर्त्ति भेद करि कृष्णसेवा करे। कृष्णेर शेषता पात्रा 'शेष' नाम धरे॥" (चैः चः आ ५/११७, १२३-१२४)। (भाः ५/१७/२१,२५/२ एवं १०/३/४९ श्लोक द्रष्टव्य है।

महाप्रभु के द्वारा मुरारियुग को अपनी लीलामय विचित्रता एवं उनके अभीष्ट देवता श्रीरामचन्द्र जी के रूप का अनुचरवर्ग-सहित प्रदर्शन; उसे देखकर मुरारि का मूर्च्छित हो जाना—

मुरारिरे आज्ञा हैल,—''मोर रूप देख।''
मुरारि देखये रघुनाथ परतेक॥७॥
दुर्वादलश्याम देखे सेइ विश्वम्भर।
वीरासने बसियाछे महाधनुर्द्धर॥८॥
जानकी-लक्ष्मण देखे वामेते दक्षिणे।
चौदिके करये स्तुति वानरेन्द्रगणे॥९॥
आपन प्रकृति वासे ये हेन वानर।
सकृत देखिया मूर्च्छा पाइल वैद्यवर॥१०॥
मूर्च्छित हइया भूमे मुरारि पड़िला।
चैतन्येर फाँदे गुप्त मुरारि रहिला॥११॥

(७-११) गौः भाः—रामावतार की लीला में मुरारि गुप्त रामदास हनुमान थे। इसलिए श्रीगौरसुन्दर ने अपनी महा-प्रकाश-लीला के समय, जिसकी सेवा में मुरारि की लगन थी, अपने उसी रामरूप का प्रदर्शन किया। मुरारि को आह्वान करके उन्होंने उनके अभीष्ट देवता एवं अपने लीलामय स्वरूप की विभिन्न विचित्रताओं को दिखाया। मुरारि अपने स्वभाव को हनुमत्-स्वभाव जानकर और उस मात्र से विभावित होकर मूर्च्छित हो गये।

महाप्रभु के द्वारा मुरारि को सान्त्वना देने के लिए रामलीला में उनके हनुमत्-मुरारि का वर्णन एवं मुरारि को चेतनता-प्राप्ति एवं

प्रेमक्रन्दन—

डाकि' बले विश्वम्भर,—''आरेरे वानरा।
पासरिलि, तोरे पोड़ाइल सीता–चोरा॥१२॥
तुइ तार पुरी पुड़ि' कैलि वंश क्षय।
सेइ प्रभु आमि, तोरे दिल परिचय॥१३॥
उठ उठ मुरारि, आमार तुमि प्राण।
आमि—सेइ राघवदेव, तुमि—हनुमान्॥१४॥
सुमित्रानन्दन देख तोमार जीवन।
या 'रे जीयाइले आनि' ये गंधमादन॥१५॥
जानकीरे चरणे करह नमस्कार।
या 'रे दुःख देखि' तुमि कान्दिला अपार॥''१६॥
चैतन्येर वाक्ये गुप्त चैतन्य पाइला।
देखिया सकल प्रेमे कान्दिते लागिला॥१७॥

(१२–१७) प० अनु०—मुरारि को पुकारते हुये महाप्रभु विश्वम्भर ने कहा,—"अरे ओ वानर! तू यह भूल गया है कि, सीता को चुराने वाले (रावण) ने तुझे जला दिया था। तूने लंकापुरी को जलाकर उसके वंश को नष्ट किया था। मैं वही प्रभु हूँ, यह मैंने तुझे अपना परिचय दिया है। उठो! उठो! मुरारि, तुम तो मेरे प्राण हो। मैं वही राघवेन्द्र हूँ और तुम वही हनुमान हो। अपने जीवन-स्वरूप इन सुमित्रानन्दन लक्ष्मण को देख लो, जिनको गंधमादन-पर्वत लाकर तुमने बचाया था। हे मुरारि, जानकी के इन चरण-कमलों में नमस्कार करो, जिनका दुःख देखकर तुम बहुत रोये थे।" चैतन्य के वाक्यों से मुरारि गुप्त को चेतना मिली और वे यह सब देखकर प्रेम से रोने लगे।

(१२) गौः भाः—सीता को चुराने वाले रावण ने तुम्हारे बदन को दग्ध किया था।

(१३) गौः भाः—ता'र पुरी—उसकी लंकानगरी।

मुरारि गुप्त का क्रन्दन देखकर भक्तजनों के हृदय की आर्द्रता—

शुष्क काष्ठ द्रवे शुनि' गुप्तेर क्रन्दन।
विशेषे द्रविला सब भागवतगण॥१८॥

(१८) प० अनु०—मुरारि गुप्त का क्रन्दन ऐसा था कि सुनकर सूखा काठ भी पिघल जाये। उसे सुनकर सभी भागवतजनों का हृदय विशेष रूप से द्रवीभूत हो गया।

मुरारि को वर-ग्रहण करने के लिए प्रभु को आदेश एवं मुरारि-द्वारा नित्य भगवद्-भक्तसंग और भगवद्-दास्य की प्रार्थना—

पुनरपि मुरारिरे बले विश्वम्भर।
''ये तोमार अभिमत, मागि' लह वर॥''१९॥
मुरारि बलये—''प्रभु आर नाहि चाङ ।
हेन कर प्रभु येन तोर गुण गाङ॥२०॥
ये–ते ठाँइ प्रभु केने जन्म नाहि मोर।
तथाइ तथाइ येन स्मृति हय तोर॥२१॥
जन्म जन्म तोमार ये सब प्रभु–दास।
ता सबार संगे येन हय मोर वास॥२२॥
तुमि प्रभु, मुञि दास—इहा नाहि यथा।
हेन सत्य कर प्रभु, ना फेलिह तथा॥२३॥
सपार्षदे तुमि यथा कर अवतार।
तथाइ तथाइ दास हइब तोमार॥''२४॥

(१९–२४) प० अनु०—विश्वम्भर पुनः मुरारि से बोले,—"अपना मन-पंसद वर माँग लो।" उत्तर में मुरारि ने कहा,—"हे प्रभु! मुझे और कुछ नहीं चाहिये। केवल ऐसा कीजिए जिससे कि मैं आपका गुण-कीर्तन करता रहूँ। चाहे जहाँ भी मेरा जन्म क्यों न हो, मुझे निरन्तर आपका स्मरण बना रहे। हे प्रभु, ऐसी कृपा कीजिए के जन्म-जन्म में आपके भक्तों के साथ मेरा निवास रहे। आप स्वामी हैं मैं दास हूँ—इस सम्बन्ध का ज्ञान मुझे नहीं रहे,

वहाँ मुझे मत डाल देना। बस, यही सत्य अंगीकार कर लें प्रभु कि पार्षदों के साथ आप जहाँ-जहाँ अवतार ग्रहण करें, वहाँ-वहाँ मैं भी आपका दास बनूँ"।

(२३-२४) गौः भाः—महाप्रभु ने मुरारि को वर देना चाहा, तो मुरारि ने कहा,—"जन्म-जन्म में आपकी सेवा क अतिरिक्त और कोई मेरी माँग नहीं हैं। ऐसा कीजिए कि किसी भी जन्म में मैं आपको भूलकर और कहीं न भटकने पाऊँ, ताकि प्रत्येक जन्म में ही मुझे आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे। ऐसा हो जाए कि सेवा-बुद्धि के अतिरिक्त दूसरी कोई बुद्धि मुझमें प्रवेश ही न कर सके।""मुकुन्द मूद्र्ध्ना प्रणिपत्य याचे भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम्। अविस्मृतिस्त्वच्चरणार विन्दे भवे भवे मेऽस्तु भवत्-प्रसादात्॥ नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे यद्-यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम्। एतत् प्रार्थ्य मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि त्वत्पादाम्भोरूहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥ दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तप्रकामम्। अविधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते नरकान्तप्रकामम्। मा द्राक्षं क्षीणपुण्यान् क्षणमपि भवतो भक्तिहीनान् पदाब्जे मा श्रौषं श्राव्यबन्धं तव चरितमपास्यान्यदाख्यानजातम्। मा स्प्राक्षं माधव त्वामपि भुवनपते चेतसाऽपह्नुवानान् मा भूवं त्वत्यपर्य्या-परिकर-रहितो जन्मजन्मान्तरेऽपि॥ मज्जन्मनःभृत्य-परिचालक-भृत्य-भूत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ।"—(मुकुन्दमालायां)। "अहं त्वकाम-स्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः। नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥"—(भाः ७/१०/६)। "भवबन्धविच्छ-दे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये। भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥"—(श्रीहनूमद्-वाक्यम्) "धर्मार्थ-काममोक्षेषु नेच्छा मम कदाचन त्वत् पादपंकज-स्याधो जीवितं दीयतां मम॥"—(नाः पः राः), "न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये। मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्-भक्तिरहैतुकी त्वयि" (शिक्षाष्टक), "नाथ, योनि-सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वच्युता भक्तिच्युतस्तु सदा त्वयि॥"—(विष्णुपुराण)।

मुरारि को प्रभु के द्वारा वर प्रदान एवं भक्तगण-द्वारा जयध्वनि—

प्रभु बले—''सत्य सत्य एइ वर दिल।''
महा महा जयध्वनि ततक्षणे हइल॥२५॥

(२५) प० अनु०—प्रभु ने कहा,—"सत्य-सत्य तुम्हें यह वर दान दिया।" भक्तों ने जब यह सुना तो वे महान् जयध्वनि करने लगे।

मुरारि का चरित्र—

मुरारिर प्रति सब-वैष्णवेर प्रति।
सर्वभूते कृपालुता—मुरारिचरित॥२६॥
ये-ते स्थान मुरारिर यदि संग हय।
सेइ स्थान सर्वतीर्थ-श्रीवैकुण्ठमय॥२७॥
मुरारि प्रभाव बलिते शक्ति का'र।
मुरारि वल्लभ-प्रभु सर्व अवतार॥२८॥

(२६-२८) प० अनु०—सभी वैष्णव मुरारि का अत्यन्त आदर करते थे। मुरारि का ऐसा स्वभाव था कि वे सभी प्राणियों के प्रति कृपालु थे। चाहे किसी भी स्थान पर मुरारि का साथ क्यों न हो, वही स्थान सब तीर्थों के आवास स्थल—श्रीवैकुण्ठ बन जाता है। सब अवतारों के स्वामी विश्वम्भर जिस मुरारि के प्राणधन हैं, उस मुरारि का प्रभाव वर्णन करने की शक्ति किसमें है?

वैष्णवों की निन्दा करने वालों को

गंगास्थान एवं हरि के नामाश्रय
से भी दुर्गति की प्राप्ति—

ठाकुर चैतन्य बले—''शुन सर्वजन।
सकृत मुरारि–निन्दा करे येज्ञजन॥२९॥
कोटि गंगास्नाने ता'र नाहिक निस्तार।
गंगा–हरि–नामे तारे करिव संहार॥''३०॥

(२९–३०) प० अनु०—ठाकुर श्रीचैतन्यचन्द्र बोले,—"सभी लोग ध्यान से सुनो। एक बार भी जो मुरारि की निन्दा करेगा, कोटि गंगास्नान करने से भी उसका उद्धार नहीं हो सकता। गंगास्नान और हरिनाम भी उसका संहार करने वाले बन जाएँगे।

(२९–३०) गौः भाः—भक्तों का विद्वेष करने वाले जो सब दाम्भिक लोग अपने को गंगा में नहाने वाला' एवं 'हरिनाम–परायण' समझकर भक्तों की निन्दा करते हैं, उन सब व्यक्तियों की कुबुद्धि को दूर करने के लिए ही श्रीगौरसुन्दर कहते हैं कि—"जो भक्त हर समय भगवत्–सेवा में लगा रहता है, उस प्रकार के मुरारि–जैसे भक्त की निन्दा यदि कोई व्यक्ति एकबार भी, मुख्यरूप से या गौणरूप से कर बैठता है एवं गंगाजल और हरिनाम के आश्रय के बल पर भक्त का विद्वेष भी करता रहता है, तो गंगाजल एवं हरिनाम के आश्रय के बल पर भक्त का विद्वेष भी करता रहता है, तो गंगाजल एवं हरिनाम भी उसका किसी प्रकार का कल्याण करने के स्थान पर उस पापिष्ठ का संहार ही करते है।" आजकल श्रीधाम–मायापुर में मुसलमानों एवं हिन्दुओं के निवास–स्थलों के बीच मुरारि गुप्त का स्थान वर्तमान है। जो दाम्भिक व्यक्ति इस श्रीधाम के प्रति विद्वेष का भाव रखते हुये एवं उनके स्थान की वर्तमान अवस्था की ओर द्वेष भाव प्रकट करते हैं, उनका विष्णु के चरणोदक से भी कुछ कल्याण नहीं हो सकता है। असद्गुरू से प्राप्त हरि–नाम भी नामापराध के कारण उन लोगों को संहार करके जन्म–जन्मों तक उनको विषय–भोगी बना देता है। वैष्णव–विद्वेष से इस प्रकार का भीषण जहरीला फल उत्पन्न होता है कि वह हरिनाम के बल पर पापाचरण करने वाले नामापराधी को मृत्यु के मुँह में पहुँचा देता है। कोटि संख्यक गंगास्नानों से भी उस व्यक्ति का उद्धार जीवों के प्रति श्रीगौरसुन्दा कस यही उपदेश एवं शासन वाक्य है कि "पूजितो भगवान् विष्णुर्जन्मान्तरशतैरापि। प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चापमानिते॥—(द्वारका–माहात्म्य में)। आदि ६/१६१ गौः भाः द्रष्टव्य है।

'मुरारिगुप्त' नाम का यौगिक तात्पर्य—

'मुरारि' वैसये गुप्ते इहार हृदये।
एतेके 'मुरारिगुप्त' नाम योग्य हये॥३१॥

(३१) प० अनु०—मुरारि अर्थात् श्रीकृष्ण गुप्त भाव से इनके हृदय में अवस्थान करते हैं, इसलिए इनका नाम 'मुरारि गुप्त' उचित ही है।

(३१) गौः भाः—मुरारि गुप्त के हृदय में भगवान् 'मुरारि' (चैतन्यदेव) गुप्तभाव से सदा वास करते हैं, इसलिए वे 'मुरारि गुप्त' नाम से अभिहित हुये थे। जो भक्ति–विद्वेषी हैं और मुरारि–नामधारी हैं, ऐसे व्यक्ति अपने को 'मुरारि गुप्त' भले ही समझते हों, किन्तु वस्तुतः वे नरक के रास्ते पर अग्रसर होत है, उन लोगों के शरीर में कभी भी 'मुरारि' गुप्तभाव से अवस्थान नहीं करते है; वे केवल लोगों को दिखाने भर के लिए मुरारि के अवस्थान की जानकारी देते हैं। परन्तु, वास्तव में मुरारि उन लोगों के हृदय से बहुत दूर

रहकर उन्हें कनक-कामिनी और प्रतिष्ठाशा के प्रति लालची बनाये रखते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों से दूर रहना ही गौरसुन्दर का अभिप्राय है। मुरारि-दास्य से वंचित होने के कारण मुरारि-विमुख जनगण प्रभु को ताम्बूल खिलाने के बदले स्वयं ताम्बूल खा जाते हैं। वे मादक-द्रव्यों के वशवर्ती रहने के कारण मुरारि गुप्त के दास कभी नहीं बन सकते हैं। आधुनिक युग में अपने को 'श्रीगौरांग का अवतार' कहकर प्रचारित होने की दुराशा से "मुरारि गुप्त के अवतार' के रूप में पहिचानने की जो लोग विडंबना करते हैं, उन लोगों को अपराध के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगने वाला हैं।

मुरारि के प्रति प्रभु की कृपा-दृष्टि से भक्तजनों का प्रेमक्रन्दन एवं इस आख्यान की फलश्रुति—

मुरारिरे कृपा देखि' भागवतगण।
प्रेमयोग 'कृष्ण' बलि करेन रोदन॥३२॥
मुरारि कृपा कैल श्रीचैतन्य राय।
इहा येइ शुने, सेइ प्रेमभक्ति पाय॥३३॥

(३२-३३) प० अनु०—मुरारि पर की गई कृपा को देखकर सभी भागवतगण प्रेमयोग में 'कृष्ण कृष्ण' कहकर क्रन्दन करने लगे। जो मुरारि के प्रति श्रीचैतन्यदेव की कृपा-कथा को सुनेगा, उसे प्रेमभक्ति प्राप्त होगी।

मुरारि एवं श्रीधर का प्रेमक्रन्दन—

मुरारि-श्रीधर कान्दे सम्मुखे पड़िया।
प्रभुओ ताम्बूल खाय गर्जिया गर्जिया॥३४॥

(३४) प० अनु०—प्रभु के सामने दण्डवत गिर कर मुरारि और श्रीधर क्रन्दन करने लगे और प्रभु भी गर्जन करते हुये ताम्बूल खाने लगे।

महाप्रभु के द्वारा अपने मुख से हरिदास की देह के श्रेष्ठत्त्व एवं अप्राकृतत्त्व का ज्ञापन—

हरिदास प्रति प्रभु सदस्य हइया।
'मोरे देख हरिदास'—बले डाक दिया॥३४॥
''एइ मोर देह हैते तुमि मोर बड़।
तोमार ये जाति, सेइ जाति मोर दृढ़॥३६॥
पापिष्ठ यवने तोमा यत दिल दुःख।
ताहा सङरिते मोर विदरये बुक॥३७॥

(३५-३७) प० अनु०—फिर हरिदास के प्रति दयावान् होकर प्रभु ने हरिदास को पुकारा और कहा—"मुझे देखो हरिदास"। मेरी अपनी देह से तुम्हारी देह श्रेष्ठ है। तुम जिस जाति के हो, वही मेरी भी जाति है। पापिष्ठ यवनों ने तुम्हें जो दुःख पहुँचाया है, उसे स्मरण करके मेरी छाती फटी जा रही है।

(३६) गौः भाः—महाप्रभु ठाकुर हरिदास को संबोधित करते हुये बोले,—"ब्राह्मणों से भिन्न तुम्हारे अहिन्दु-शरीर को मेरे ब्राह्मण-शरीर से अधम समझने का विचार कुछ लोग कर सकते हैं, परन्तु उन लोगों का विचार भ्रमपूर्ण है। मैं दृढ़ता के साथ कह रहा हूँ कि, तुम्हारी जाति और मेरी जाति में कोई नहीं हैं। तुम्हारा जाति और मेरी जाति में कोई भेद नहीं हैं। तुम्हारा जाति और मेरी जाति में कोई भेद नहीं है। तुम्हारा शरीर मेरे शरीर से हर प्रकार से श्रेष्ठ है। आधुनिक (आजकल के) हिन्दुजन अपनी देह को यवन देह की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हैं, ऐसा कहकर पाखण्डी हिन्दुजन अपनी अपनी जाति के गर्व भगवद्भक्त को 'अवर' (अधम) समझते हैं। इस विषय में उन लोगों की युक्तिप्रणाली विशेष दोषयुक्त है। जो शरीरधारी व्यक्ति सदा भगवान् की आदि बाहर की आध्यक्षिक दृष्टि से तुलना करने पर निम्न जाति वाला समझा जा सकता है,

परन्तु ऐसा विचार अपराधजनक है। शुक्र-शोणि ात से उत्पन्न देहधारी जनगण अपने-अपने हिन्दु अथवा अहिन्दु विचार की सहायता से अपनी श्रेष्ठता की स्थापना करने में लगे रहते हैं। हरिभजन की दृढ़ता एवं गाढ़ता के विषय में उदासीन रहने से ही उन लोगों की ऐसी विचारधारा बलवती होती है। तथाकपित पापिष्ठ यवन-देह अथवा पुण्यवान् हिन्दु-शरीर लौकिक-विचार से ही अपनी-अपनी श्रेष्ठता की स्थापना करते है। इस प्रकार के विचार के वशीभूत होकर वैष्णवों की निन्दा करके नरक के रास्ते पर चलने पर उन लोगों का मंगल नहीं होगा।

"दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण। सेइ काले कृष्ण तारे करे आत्मसम॥ सेइ देह करे ता'र चिदानन्दमय। अप्राकृत देहे ताँ'र चरण भजय॥" अर्थात् दीक्षा के समय जब भक्त भगवान् को आत्मसमर्पण करता है, उसी समय कृष्ण, भक्त को अपने समान बना देते हैं। इसी से भक्त की देह भी चिदानन्दमय हो जाती है और उस अप्राकृत चिदानन्दमय देह के सहारे वह भक्त निरन्तर श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का भजन करता रहता है। (चैः चः अ ४/१९२-१९३)।" प्राकृतदेहेन्द्रियादीनामेव भक्ति-संसर्गेणाप्राकृतत्वं स्पर्शमणिन्यायेनैव साधु बुध्यामहे। अचिन्त्शक्त्या भक्तयुपदेशकाल एव तस्य गुणातीतानि देहेन्द्रियमनांसि मया भक्तिमाहात्म्यदर्शनार्थमलक्षितमेव सृज्यन्ते, मिथ्याभूतानि तान्यत्लभितमेव लयं यान्ति।"—(भा/५/१२/

११ श्लोक की सारार्थदर्शिनी टीका), अर्थात् पारसमणि के स्पर्श से जैसे लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही भक्ति के संसर्ग में आने पर प्राकृत देह, इन्द्रिय आदि भी अप्राकृत तत्व को प्राप्त हो जाते हैं। भक्ति के उपदेश के समय से ही भगवान् भक्ति का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए अचिन्त्य शक्ति की सहायता से भक्त के त्रिगुणातीत देह, इन्द्रिय एवं मन को इस प्रकार से प्रकाशित करते हैं कि दूसरा कोई उसे देख न सके एवं असत्य से उत्पन्न जड़ देह, इन्द्रिय आदि का, दूसरों के द्वारा अलक्षित रूप से, विनाश कर देते हैं। 'अन्यैर अलक्षित' (दूसरों के द्वारा अलक्षित) कहने का तात्पर्य यह है कि, तत्त्व के बारे में अन्धे व्यक्ति उस भक्त के स्वरूप की उपलब्धि करने में असमर्थ होकर उसको पूर्व-परिचय से परिचित कराते रहते हैं एवं उसकी देह को भी जन्ममरणशील, हाड़-मांस की थैली समझकर वैष्णव के चरणों में अपराधी होते रहते हैं। "दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपूषश्च दोषैः न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्। गंगाम्भयां न खलु बुद्बुदफेनपंकैर्ब्रह्मद्रवत्वम- पगच्छति नीरधर्मैः॥"—(उपदेशामृत-श्लोक ६), "भक्तानां सच्चिदानन्दरूपगेन्द्रियात्मसु। घटते स्वानुरूषपेषु वैकुण्ठऽन्यत्र च स्वतः॥"—(वृहद् भागव-तामृत २/३/१३९ श्लोक), अर्थात् भक्त वैकुण्ठ के निवासी हों, अथवा अन्य किसी भी स्थान के ही निवासी क्यों न हों, उनके सेवा के उपयोगी सच्चिदानन्दमय देह स्वतः ही प्रकाशित होते है। भक्ति की स्फर्ति से उनके पांचभौतिक देह सच्चिदानन्दमय हो जाते हैं। इस प्रकार के देह का जन्म और मृत्यु भगवान् के सच्चिदानन्दमय देह के आविर्भाव-तिरोभाव की भाँति ही होता है। जो लोग भक्त एवं भगवान् आविर्भाव और तिरोभाव को कर्मों का फल भोगने के लिए विवश जीवों के जन्म-मृत्यु की भाँति समझते हैं, वे मुक्ति को मुक्ति को प्राप्त करने के बदले में बारम्बार प्रपंच में क्लेशों को प्राप्त करते रहते हैं; उन लोगों

को मुक्ति नहीं मिलती है।

(३७) गौः भाः—लोभ के वशवर्ती होकर मानव अपनी इच्छा के अनुसार चलना–फिरना आरम्भ करता है। इससे कभी–कभी पाप आकर उन्हें घेर लेता है। जिस समय तक निरपेक्षभाव एवं भजनीय वस्तु के प्रति सेवा–प्रवृति का अभाव रहता है उसी समय तक जीव भोगों के राज्य में नानाप्रकार के पाप–पुण्यों का आवाहान करते हैं। मुक्त–पुरूषों के साथ विरोध करना पापी का धर्म है। पुण्यवान् व्यक्ति मुक्त–विचारों पर आक्रमण नहीं करते हैं। इसलिए बद्ध विचार को ग्रहण भी नहीं करते हैं। इसलिए बद्ध विचार के प्रति उन श्रेयःपन्थियों की करुणा सदा वर्तमान रहती है। परन्तु पाप–पुण्य जाल में उलझे भोगी व्यक्ति जब, भगवद्–भक्तों को दुःख देने के लिए तत्पर होते हैं, तब भक्तगण साधारण लोगों की भाँति प्रतिशोध की आकांक्षा नहीं करते हैं। ऐसा न करने से इस प्रकार के मनोभाव स्वयं पापी को एक के बाद एक अनेक दुःखदायक क्लेशों मे आबद्ध करते रहते हैं। इससे भक्तों के हृदय में पाप–कर्म करने वालों के लिए दुःख का अनुभव होता है एवं भक्तों के भजन में बाधा डालने से भक्तों के कारण भगवान् को भी दुःख उपस्थित होता है।

प्रभु की हरिदास के प्रति प्रीति के ज्ञापन के लिए यवन–द्वारा हरिदास के प्रति अत्याचार, उसकी रक्षा करने के लिए चक्र को हाथ में लेकर वैकुण्ठ से महाप्रभु का आगमन, भक्त की शुभकामना के फलस्वरुप भक्तों की हिंसा करने वालों का उद्धार एवं प्रभु के द्वारा अपने ही अंगो पर भक्त के ऊपर किये गये आघातों को ग्रहण आदि का अपने मुख से वर्णन–

शुन शुन हरिदास तोमारे यखने।
नगरे नगरे मारि बेड़ाय यवने॥३८॥
देखिया तोमार दुःख चक्र धरि' करे।
नामिलुँ वैकुण्ठ हैते सबा काटिवारे॥३९॥
प्राणान्त करिया तोमा मारे ये–सकल।
तुमि मने चिन्त' ताहा सबार कुशल॥४०॥
आपने मारण खाओ, ताहा नाहि देख।
तखनओ ता सबारे भाल मने देख॥४१॥
तुमि भाल चिन्तले ना कारोँ मुञि बल।
मोर चक्र तोमा लागि' हइल विफल॥४२॥
काटिते ना पारोँ तोर संकल्प लागिया।
तोर पृष्ठे पड़ोँ तोर मारण देखिया॥४३॥

(३८–४३) प० अनु०—सुनो हरिदास, सुनो! यवन लोग जब तुम्हें नगर–नगर में ले जाकर मारने लगे, तब तुम्हारा दुःख देखकर उन सबका संहार करने के लिए मैं हाथ मे चक्र लेकर वैकुण्ठ से उतरा था, परन्तु आकर देखा कि, जो लोग तुम्हें जान से मार डालने के लिए तत्पर थे, तुम मन–ही–मन उन सबकी भी कुशल की कामना कर रहे थे। तुम जो मार खा रहे थे, उस पर तुम्हारी नजर ही नहीं थी—उस समय भी तुम मन में उन लोगों के कल्याण की कामना कर रहे थे। तुम्हारे उस शुभ चिन्तन के कारण मैं अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर पाया, इसलिए मेरा चक्र तुम्हारे कारण व्यर्थ हो गया। तुम्हारे संकल्प के कारण मैं उन लोगों को काट नहीं सका। वे तुमको मार रहे थे, यह देखकर मैं तुम्हारी पीठ पर पड़ गया था।

(३९) गौः भाः—भगवान् की इच्छा के अनुसार प्रपंच में विभिन्न प्रकार के नियमों को प्रर्वतन हुआ है। कर्मफलवादी उन्हीं भगवाद्–विधानों की आलोचना करते हैं।

कर्मफल भोगने का विवश लोगों का औपधिक सुख-दुःख अथवा तिरस्कार-

पुरस्कारय साधारण विधि-विधानों के अतीत होने पर भगवान् को स्वयं उस पर विचार करना पड़ता है। इस विषय में श्रीमद् भागवत् के नवम स्कंध में उल्लिखित अम्बरीष का उपाख्यान मनन करने योग्य है।

(४०) गौः भाः—इस जगत् मे सबसे अधिक क्लेश के प्रभाव से मानव की मुत्यु होती है। हिंसक लोग पाप-प्रवृत्ति की चरम सीमा पर पहुचँकर भगवद् भक्तों को घोर क्लेश प्रदान करके अपने इन्द्रिय वांछित सुखों को भोगा करते हैं। परन्तु ठाकुर हरिदास उस प्रकार के इन्द्रिय-सुखों से विरत रहकर सदा भगवान् को सुख देने के लिए यत्नशील रहते थे। इस कारण अपने दुःखों की ओर उनका कभी ध्यान ही नहीं गया। इतना ही नहीं, जो कष्ट दे रहे थे, उन लोगों के दुष्ट स्वाभाव को दूर करने की चिन्ता से वे उन लोगों के लिए मंगल प्रार्थना कर रहे थे। भगवद्-भक्त की सहनशीलता इतनी अधिक होती है कि, यदि कोई उनका मंगल भी चाहे, तब भी प्रतिशोध लेना तो दूर, उस पापी के मंगल की कामनाएँ ही वे निरन्तर करते रहते हैं। अपना अत्यन्त प्रिय कार्य करने वाले लोगों को साधारण मनुष्य जैसी कृपा एवं सहायता प्रदान किया करते है; वैसी ही करुणा अपने विद्रोहीगण के प्रति भी ठाकुर हरिदास के हृदय में वर्तमान थी।

प्रभु-द्वारा भक्त-प्रहारों को निजी अंग में ग्रहण करने के चिह्नों का प्रदर्शन—

तोहार मारण निज-अंगे करि लङ।
एइ तार चिह्न आछे, मिछा नाहि कङ॥४४॥

(४४) प० अनु०—तुम पर जो प्रहार हो रहे थे, उन्हें मैंने अपने अंगों पर ले लिया। मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ, उसके चिह्न अभी भी मेरी देह पर वर्तमान हैं।

(४२-४४) गौः भाः—क्योंकि ठाकुर हरिदास हिंसा करने वाले लोगों के लिए मंगल कामना कर रहे थे, इसलिए भगवान् नीच कार्य करने वालों के प्रति क्रोधित होने पर भी ठाकुर के अनुरोध पर उन लोगों को समुचित दंड नहीं दे पाये। इस कारण भक्त की रक्षा करने के लिए भगवान् ने स्वयं अपने अंगों पर विद्वेषियों के अस्त्र-आघातों को ग्रहण किया था।

भक्त-रक्षा ही गौर के शीघ्र अवतार का हेतु—

येवा गौण छिल मोर प्रकाश करिते।
शीघ्र आइलुँ तोर दुःख ना पारों सहिते॥४५॥

(४५) प० अनु०—मेरे प्राकट्य का जो भी गौण कारण है, वह तो है ही, परन्तु मैं इसलिए शीघ्र चला आया, क्योंकि, तुम्हारा दुःख मुझसे सहन नहीं हो पा रहा था।

(४५) गौः भाः—मुख्यरूप से भगवान् ने हरिदास ठाकुर के प्रति विद्वेषियों के आक्रमण का निवारण किया था, और गौणरूप से अपनी भक्तवत्सलता की जानकारी देने के लिए उन्होंने श्रीगौरसुन्दर के रूप में प्रकट होकर इस तथ्य का प्रकाशन किया था कि वे अपने भक्तों के दुःखों को सहन करने की सामर्थ्य नही रखते।

अद्वैताचार्य हरिदास के सविशेष ज्ञाता एवं महाप्रभु अद्वैत के प्रेम मे विवश—

तोमारे चिनिल मोर 'नाड़ा' भाल मते।
सर्वभावे मोरे बन्दी करिला अद्वैते॥''४६॥

(४६) प० अनु०—मेरे 'नाड़ा' (अद्वैत)

ने तुम्हें अच्छी तरह से पहचाना है अद्वैत ने मुझे सभी प्रकार से बन्दी बना रखा है।"

(४६) गौः भाः—अद्वैत प्रभु ठाकुर हरिदास को अच्छी तरह से पहचान पाये थे और अद्वैत-प्रभु भगवान् श्रीचैतन्य-देव की सम्पत्ति-विशेष हैं। अद्वैत-प्रभु की सेवा से विवश होकर भगवान् सभी प्रकार से उनके अधीन हैं, उनके प्रेम से बँधे हैं।

भक्त की महिमा को बढ़ाने के लिए प्रभु-द्वारा अकार्य-करण एवं अभाष्य-भाषण—

भक्त बाड़ाइते से ठाकुर भाल जाने।
कि ना बले, कि ना करे भक्तेर कारणे॥४७॥

(४७) गौः भाः—ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसे भगवान् भक्त की महिमा-वृद्धि के लिए नहीं करते हों—ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे भक्तों की महिमा बढ़ाने के लिए वे नहीं बोलते हों। भगवान् अभिज्ञ हैं। इसलिए उनके द्वारा ही अलौकिक कार्य करना संभव है।

भक्त के प्रति प्रभु की प्रीति का निदर्शन—

ज्वलन्त अनल प्रभु भक्त लागि' खाय।
भक्तेर किंकर हय आपन इच्छाय॥४८॥

(४८) प० अनु०—भक्त के लिए प्रभु जलती हुई आग को भी खा जाते है और अपनी इच्छा से ही वे भक्त के किंकर भी बन जाते हैं।

(४८) गौः भाः—श्रीकृष्ण द्वारा अनल भक्षण-एक बार मूंज के वन में प्रविष्ट होकर और गयों को उनकी इच्छा के अनुसार चरने के लिए छोड़कर गोप-बालक खेल का आनन्द ले रहे थे। उसी समय चारों ओर से दावानल प्रज्वलित हो उठी। तब गोपबालक श्रीकृष्ण की शरण में आये। भक्त-वत्सल भगवान् ने मूहूर्त-मात्र में सारे दावानल को पी डाला।—(भाः १०/११ वाँ अः द्रष्टव्य है)।

भक्त के कैंकर्य के विषय में पाण्डवों का दूत बनना, अर्जुन का सारथि बनना आदि प्रसंग शास्त्रों में देखे जाते हैं।

भगवान् का भक्त के वश में रहना एवं भक्त की असमोर्द्धता—

भक्त बइ कृष्ण आर किछुह ना जाने।
भक्तेर समान नाहि अनन्त भुवने॥४९॥

(४९) प० अनु०—भक्त के अतिरिक्त कृष्ण और कुछ भी नहीं जानते हैं। अनन्त भुवन में भक्त के समान कोई दूसरा नहीं है।

(४९) गौः भाः—गीः ९/२९, भाः ९/४/६३-६६, ६८ एवं भाः १०/८६/५९ श्लोक दर्शनीय हैं।

भगवद् भक्त के प्रति प्रीति-रहित अवस्था दुदैव का कारण है—

हेन कृष्णभक्तनामे ना पाय संतोष।
सेइ सब पापीरे लागित दैवदोष॥५०॥
भक्तेर महिमा देख चक्षु भरि'।
कि बलिला हरिदास-प्रति गौरहरि॥५१॥

(५०-५१) प० अनु०—ऐसे कृष्णभक्तों के नामों को सुनकर जिन्हें आनन्द नहीं मिलता हो, समझना चाहिए कि, उन सब पापियों को दैव-दोष लगा हुआ है। हे भाइयों! आँखे खोलकर भक्त की महिमा के दर्शन करो और सुनों कि भक्त हरिदास के प्रति गौर हरि ने क्या कहा।

प्रभु की कृपा-कथा सुनकर हरिदास की मूर्च्छा, प्रभु-द्वारा उनको चेतनता प्रदान एवं हरिदास के द्वारा गौर की स्तुति करते हुये अपने उदाहरण की सहायता से कृष्ण-स्मरण का फल-कीर्तन—

प्रभुमुखे शुनि' महाकारूण्य–वचन।
मूर्च्छित पड़िला हरिदास ततक्षण॥५२॥
बाह्य दूर गेल भूमितले हरिदास।
आनन्दे डुबिला, तिलार्द्धेक नाहि श्वास॥५३॥
प्रभु बले,—''उठ उठ मोर हरिदास।
मनोरथ भरि' देख आमार प्रकाश॥''५४॥
बाह्य पाइ' हरिदास प्रभुर वचने।
कोथा रूप–दरशन—करये क्रन्दने॥५५॥
सकल अंगने पड़ि' गड़ागड़ि याय।
महाश्वास बहे क्षणे, क्षणे मूर्च्छा पाय॥५६॥
महावेश हैल हरिदासेर शरीरे।
चैतन्य कराये स्थिर—तबु नहे स्थिरे॥५७॥
''बाप विश्वम्भर, प्रभु, जगतेर नाथ।
पातकीरे कर कृपा, पड़िल तोमात॥५८॥
निर्गुण अधम सर्वजातिवहिष्कृत।
मुञि कि बलिव प्रभु तोमार चरित?५९॥
देखिले पातक, मोरे परशिले स्नान।
मुञि कि बलिव प्रभु तोमार आख्यान?६०॥
एक सत्य करियाछ आपन वदने।
ये जन तोमार करे चरण–स्मरणे॥६१॥
कीटतुल्य हय यदि—ता'रे नाहि छाड़।
इहाते अन्यथा हैले नरेन्द्रे पाड़॥६२॥
एइ बल नाहि मोर—स्मरणविहीन।
स्मरण करिले मात्र राख तुमि दीन॥६३॥
सभामध्ये द्रौपदी करिते विवसन।
आनिल पापिष्ठ दुर्योधन–दुःशासन॥६४॥
संकटे पड़िया कृष्णा तोमा सङरिला।
स्मरणप्रभावे तुमि वस्त्रे प्रवेशिला॥६४॥
स्मरणप्रभावे वस्त्र हइल अनन्त।
तथापिह ना जानिल से सब दुरन्त॥६६॥
कोनकाले पार्वतीरे डाकिनीर गणे।
बेड़िया खाइते कैल तोमार स्मरणे॥६७॥
स्मरणप्रभावे तुमि आविर्भूत हञा।
करिला सबार शास्ति वैष्णवी तारिया॥६८॥
हेन तोमा–स्मरणविहीन–मुञि पाप।
मोरे तोर चरणे शरण देह' बाप॥६९॥
विष, सर्प, अग्नि, जले पाथरे बांधिया।
फेलिल प्रहलादे दुष्ट हिरण्य धरिया॥७०॥
प्रहलाद करिल तोर चरण स्मरण।
स्मरणप्रभावे सर्व दुःखविमोचन॥७१॥
का' रो वा भांगिल दन्त, का' रो तेजोनाश।
स्मरणप्रभावे तुमि हइला प्रकाश॥७२॥
पाण्डुपुत्र सङरिल दुर्वासार भये।
अरण्ये प्रत्यक्ष हैला हइया सदये॥७३॥
'चिन्ता नाहि युधिष्ठिर, हेर देख आमि।
आमि दिव मुनिभिक्षा, बसि' थाक तुमि'॥७४॥
अवशेष एक शाक आछिल हाँड़िते।
सन्तोषे खाइला निज सेवक राखिते॥७५॥
स्नाने सब ऋषिर उदर महा फुले।
सेइ मत सब ऋषि पलाइला डरे॥७६॥
स्मरणप्रभावे पाण्डुपुत्रेर मोचन।
ए सब कौतुक तोर स्मरणकारण॥७७॥
अखण्ड स्मरण—धम, इहाँ सबाकार।
तेञि चित्र नहे, इहा सबार उद्धार॥७८॥
अजामिल–स्मरणेर महिमा अपार।
सर्वधर्महीन ताहा बइ नाहि आर॥७९॥
दूतभये पुत्रस्नेहे देखि' पुत्रमुख।
सङरिल पुत्रनामे नारायणरूप॥८०॥
सेइ सङरणे सब खंडिल आपद्।
तेञि चित्र नहे भक्तस्मरण–सम्पद्॥८१॥

(५२–८१) प० अनु०—प्रभु के श्रीमुख के महान् करुणापूर्ण वचनों को सुनकर हरिदास तत्क्षण मूर्च्छित हो गये। उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। वे आनन्द के सागर में डूब गये एवं आधे पल के लिए

उनका साँस भी नहीं चलता था। उसी समय प्रभु बोले,—"उठो! उठो! मेरे हरिदास। प्राण भरकर मेरे प्रकाश को देख लो।" प्रभु के वचनों से हरिदास को बाह्यज्ञान हुआ। उन्होंने प्रभु का रूप देखना चाहा, परन्तु रूप–दर्शन कहाँ! वे तो केवल रोने लगे। सारे आँगन में गिरकर वे लोट–पोट होने लगे, क्षण में लम्बी साँस लेते, तो क्षण में मूर्च्छित हो जाते। हरिदास के शरीर में महान् आवेश का प्रकाश हुआ था। चैतन्य ने उनको स्थिर किया, फिर भी वे अस्थिर ही बने रहे। व्याकुल होकर वे कहने लगे,—"हे प्रभु! हे जगत् के नाथ! हे पिता! विश्वम्भर! मुझ पातकी पर कृपा कीजिए, पातकी तुम्हारी शरण मे आया हुआ है। मैं गुणहीन, अधम एवं नीच जाति का हूँ। आपके महान चरित्र के बारे में मैं क्या बोलूँ? मुझे देखने से पाप लगता है, मेरा स्पर्श करने से स्नान करना पड़ता है। ऐसा मैं आपके आख्यान (कथन) के बारे में क्या कहूँ? हे प्रभु! आपने अपने मुख से एक संकल्प किया है कि, जो आपके श्रीचरण–कमलों को स्मरण करता है, वह यदि कीट के समान भी हो, तो भी आप उसे त्यागते नहीं हैं, और यदि विपरीत हो, तब राजा को भी आप दण्डित करते हैं। यह (आपके चरणों के स्मरण की) शक्ति मुझसें नहीं है मैं आपका स्मरण नहीं कर पाता हूँ; परन्तु कोई दीन व्यक्ति यदि आपका स्मरण करे, तो आप उसकी रक्षा अवश्य करते हैं। सभा के बीच में द्रौपदी को विवसन (निर्वस्त्र) करने के लिए पापिष्ठ दुर्योधन दुःशासन को बुलाया। संकट में पड़ी कृष्णा (द्रौपदी) ने जब आपका स्मरण किया, तब उसी स्मरण के प्रभाव से आप स्वयं वस्त्र में प्रवेश कर गये। स्मरण–प्रभाव से आप स्वयं वस्त्र में प्रवेश कर गये। स्मरण–प्रभाव से द्रौपदी का वस्त्र अनन्त हो गया। तथापि वे सब दुष्ट (कौरव) नहीं जान पाये।

किसी समय पार्वती को डाकिनियों ने घेर लिया और उन्हें खाना चाहा। तब पार्वती ने आपका स्मरण किया। उस स्मरण के प्रभाव से आप आविर्भूत हुये और सबको शासित करके वैष्णवी की रक्षा की। ऐसे महामहिम आपका स्मरण मुझ जैसी पापी नहीं कर पाता है। हे प्रभो! मुझे अपने चरण–कमलों में शरण दीजिए प्रभो। दृष्ट हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को विष प्रदान किया, सर्प से दंशन करवाया, अग्नि में डाल दिया और पत्थर बाँधकर पानी में फेंक दिया। प्रह्लाद ने आपके चरणों का स्मरण किया। स्मरण के प्रभाव से प्रह्लाद के सभी दुःख दूर हुये। किसी अत्याचारी के दाँत टूटे तो किसी का तेज विनष्ट हुआ। स्मरण के प्रभाव से ही आप प्रकाशित हुये। दुर्वासा से भयभीत होकर पाण्डु के पुत्रों ने आपका स्मरण किया। आपने दयावान होकर अरण्य (वन) में उन्हें दर्शन दिये। आपने युधिष्ठिर से कहा,—"चिन्ता मत करो, देखो मैं आ गया हूँ। मैं मुनि को भिक्षा दूँगा, तुम बैठे रहो।" हाँडी में अवशिष्ट एक शाक–पात था। अपने सेवक की रक्षा के लिए आपने इधर उस (शाक–पात) का संतोष–पूर्वक भोजन किया, तो इधर स्नानरत मुनियों के पेट बहुत फूल गये। उसी अवस्था में सभी ऋषि डर के मारे भाग गये। स्मरण के प्रभाव से पाण्डु के पुत्रों को संकट से त्राण मिला। ये सब कौतुक आपके स्मरण के कारण संभव हुये। निरन्तर (अखंण्ड) स्मरण ही इन सब भक्तों का धर्म है। इसलिए इन सबका उद्धार हो जाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अजामिल द्वारा द्वारा किये गये

स्मरण की महिमा अपार है। यद्यपि अजामिल जैसा अधार्मिक दूसरा नहीं है। यमदूतों को देखकर अजामिल घबड़ा गया और पुत्र-स्नेह -वश पुत्र के मुख की ओर देखते हुये पुत्र के नाम के प्रभाव से उनकी सभी विपत्तियाँ दूर हो गई। इसलिए भक्तों की स्मरण-सम्पत्ति पर विस्मित होने का कोई कारण नहीं है।

(५२-५५) गौः भाः—महाप्रभु के श्रीमुख से भक्तों की प्रशंसा सुनकर हरिदास आनन्द से विह्वल होकर मूर्च्छित हो गये। महाप्रभु ने उनको चेतना प्रदान करके अपनी प्रकाश-लीला का दर्शन करने के लिए कहा। प्रभु के कहने पर हरिदास अन्तर्दशा का संगोपन करके बाह्यदशा में अवस्थित होकर क्रन्दन करते हुयेश 'कौन से स्थान पर रूप-दर्शन करना है', इसके बारे में विचार करने लगे। अप्राकृत अनुभूति में जो दिखाई देता है, वह बाह्य बुद्धि से अनुभव में नहीं आता। बहिर्जगत् में भोक्ता-भोग्य-भाव से दर्शन होता है तो अन्तर्जगत् में सेवक का सेव्य-दर्शन। स्वरूप को प्राप्त मुक्तजीव भगवद्-दर्शन में समर्थ होते हैं एवं भगवान् उनको अपने सेव्य-रूप का दर्शन कराते हैं।

(५७) गौः भाः—हरिदास की बाह्य चेतना के स्तब्ध हो जाने के कारण उनके अन्तःस्वरूप में चेष्टाओं का उदय हुआ, वही 'महावेश' शब्द-द्वारा यहाँ कथित हुआ है। जागतिक भाषा में 'आवेश' शब्द ऐहिक (इस जगत् की) अनुभूति के आपेक्षिक विचार से कुछ नया आविर्भूत होना है, परन्तु अप्राकृत-दर्शन में वही नित्य स्वभाव है।

(५८) गौः भाः—ठाकुर हरिदास महाप्रभु का स्तवन करते हुये कहते हैं,—"हे जगन्नाथ, हे विश्वपालक, हे जगतपिता, मुझ-जैसे ह्रदय जन के प्रति कृपा करने का भार ही के हाथों में सुरक्षित है।"

(५९) गौः भाः—"हे प्रभो, तुम्हारी लीला का वर्णन करने में मैं किस प्रकार से समर्थ होऊँगा? सामाजिक परिचय के अनुसार मैं उत्तम अथवा मध्यम वहीं हूँ, मैं अधम हूँ। जागतिक गुणों से मैं गुणी नहीं हूँ, सभी गुणों के विषय में मेरा दारिद्रय है। आर्य-जातिगण के वर्ण-विभाग में मैं नहीं आता। इसलिए तुम्हारें गुणों का वर्णन करने की कोई योग्यता मुझमें नहीं हैं।"

(६०) गौः भाः—"मैं पापकर्मी हूँ, किसी पुण्यवान् व्यक्ति के लिए मेरा दर्शन करना उचित नहीं है, यदि ऐसा होता है, तो दर्शन करने वालों को थोड़ा-बहुत पाप अवश्य लगेगा। मैं अस्पृश्य हूँ, यदि कोई व्यक्ति मेरा स्पर्श करता है, तो स्नान करना उसका कर्त्तव्य बन जाता है। इस प्रकार मैं सर्वथा अयोग्य हूँ, मैं आपके योग्य स्तवन कैसे कर सकता हूँ? मैं असमर्थ हूँ प्रभो।"

(६२) गौः भाः—"सबसे अधम प्राणी के समान होने पर भी आप किसी की त्याग नहीं देते हैं, जब कि सभी राजाओं ऊँचे सम्मान के आसन पर अधिष्ठित होने पर भी आप उसके गर्व को चूर-चूरकर देते हैं।"

(६३) गौः भाः—"दीन व्यक्ति यदि आपका स्मरण करता है तो आप उसे आश्रय प्रदान करते हैं, परन्तु मैं तो आपका स्मरण करने में भी असमर्थ हूँ।"

(६४-६५) गौः भाः—महाभारत में सभा पर्व के ६८/४१-४८ श्लोक द्रष्टव्य हैं।

(७०-७२) गौः भाः—"दिग्ग जैर्दन्दशूकैर्दन्दशूकै रभिचा- रावपातनैः। मायाभिः सन्निरोधैश्च। गरदानैरभोजनैः॥ हीमवाष्वग्नि-सलिलैः पर्वमाक्रमणैरपि। न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम्॥"-(भाः

७/५/४३–४४) अर्थात् दिगहस्ती, महासर्प, अभिचार, पर्वत के ऊपर से नीचे गिरा देना, माया–गर्त्त में बन्दी बना लेना, विष–प्रयोग, उपवास, हिम, वायु, अग्नि, जल एवं पत्थर आदि के निक्षेप द्वारा भी हिरण्यकशिपु निष्पाप पुत्र के प्राणों को नष्ट करने में सफल नहीं हो पाया। इस प्रसंग में विष्णुपुराण के १/१८–२० अध्याय द्रष्टव्य हैं।

(७६–७७) गौः भाः—महाभारत के वनपर्व में २६२ अः द्रष्टव्य है।

(७८) गौः भाः—भक्ति ही अंखण्ड परमधर्म है, यह सबके लिए उपयोगी है। अभक्ति—कर्म, ज्ञान, योग, तप, व्रत इत्यादि खंड धर्म माने जाते हैं। इसलिए ये सब 'इतर धर्म' (साधारण धर्म) के नाम से विख्यात हैं; इनके आश्रय में कुत्सित साम्प्रदायिकता एवं संकीर्णता विद्यमान रहती है। भगवान् ही एकमात्र भजनीय वस्तु हैं, इसलिए भगवान् विभिन्न लीलाओं को प्रदर्शन करके सभी का उद्धार करते हैं—यह उनकी आश्चर्य–चकित करने वाली विचित्र भंगिमा है।

(७९–८१) गौः भाः—"क्योंकि अजामिल ने आपके मायिक जगत् के विचारों का परित्याग करके आपके वास्तविक स्वरूप का अपने स्मरणपथ में उदय कराया था और शब्द की अज्ञरूढ़ि–वृत्ति को निरस्त किया था, उसी से उनकी भगवत्–सेवा–प्रवृत्ति जाग उठी। अजामिल ऐसे अधार्मिक थे कि, उनको कोई तुलना नहीं है। यमदूतों के द्वारा पकड़ लिये जाने के डर से पुत्र–दर्शन में जब उन्होंने 'नारायण' का नाम उच्चारण किया था, तब पुत्र के असामर्थ्य एवं दूतगण की बलवत्ता को देखकर भगवान् की कथा एवं उनका विक्रमसमूह अजामिल के स्मरण–पथ में उदित हुआ था। यद्यपि पुत्रनाम–उच्चारण के उद्देश्य से मुख से उन्होंने 'नारायण' शब्द से भगवान्–स्मृति के फलस्वरूप वे यमदूतों के आक्रमणों और प्रहारों से बच गये थे। भजन–वृत्ति –सम्पन्न भक्त भगवत्–स्मरण–रूप सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। इस कारण इसमें विस्मय का कोई कारण नहीं है।"

हरिदास द्वारा दीनता के साथ अपनी गौरभक्ति की अयोग्यता का ज्ञापन—

हेन तोर चरणस्मरणहीन मुञि।
तथापिह प्रभु मोरे न छाड़िवि तुञि॥८२॥
तोमा देखिवारे मोर कोन् अधिकार?
एक बइ प्रभु किछु ना चाहिव आर॥''८३॥

(८२–८३) प० अनु०—हे प्रभो, आपके श्रीचरण–कमलों की ऐसी महिमा है; फिर भी मैं उनका स्मरण नहीं कर पाता हूँ। परन्तु, हे प्रभो, आप मुझे त्याग मत दीजिएगा। आपके दर्शन का अधिकार मुझे कहाँ है? इस वर को छोड़कर मैं और कुछ नहीं चाहता।

(८२) गौः भाः—"अजामिल आपको उपलब्ध नहीं कर पाया। इसलिए दूर से उसने आपका स्मरण किया था। मुझसे ऐसे स्मरण की योग्यता भी नहीं है; परन्तु मैं आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त करके भी आपको भूल गया; फिर भी आपने कृपा करके मेरा परित्याग नहीं किया है,—यही आपकी अहैतुकी दया का परिचय है"।

प्रभु–द्वारा हरिदास को वर स्वीकार करने के लिए ओदश—

प्रभु बोले,—''बल बल—सकल तोमार।
तोमारे अदेय किछु नाहिक आमार॥''८४॥

(८४) प० अनु०—प्रभु बोले,—"कहो! कहो! सब कुछ तुम्हारा ही है। तुम्हें न देने

योग्य मेरा कुछ भी नहीं है।"

(८४) गौः भाः—हरिदास द्वारा विभिन्न प्रकार से दीनता के साथ अपने अनधिकार का ज्ञापन करने पर एवं प्रभु द्वारा उनको वर देने का अभिप्राय व्यक्त करने पर हरिदास ने केवल एक ही वर के लिए प्रार्थना की। इसके उत्तर में प्रभु ने हरिदास को अपनी प्रार्थना का विवरण देने के लिए कहा; साथ ही यह भी कहा कि,–ऐसा कुछ भी नही हैं, जिसे मैं तुम्हें न देकर अपने पास रख लूँ। मेरा जो कुछ भी है, वह सब तुम्हारा ही तो है।

हरिदास द्वारा ब्रह्मा आदि के आराध्य वैष्णवों के उच्छिष्ट के लिए प्रार्थना एवं अपने को उस प्रकार की दुर्लभ वस्तु प्राप्त करने में 'अयोग्य' मानकर अपराधी समझना—

करजोड़ करि' बले प्रभु हरिदास।
''मुञि अल्पभाग्य प्रभु करोँ बड़ आश॥८५॥
तोमार चरण भजे ये–सकल दास।
ता'र अवशेष येन हय मोर ग्रास॥८६॥
सेइ से भजन मोर हठ जन्म जन्म।
सेइ अवशेष मोर—क्रिया–कुलधर्म॥८७॥
तोमार स्मरणहीन पापजन्म मोर।
सफल करह दासोच्छिष्ट दिया तोर॥८८॥
एइ मोर अपराध हेन चित्ते लय।
महापद चाहोँ, ये मोहार योग्य नय॥८९॥
प्रभुरे नाथरे, मोर बाप विश्वम्भर।
मृत मुञि, मोर अपराध क्षमा कर॥९०॥

(८५–९०) प० अनु०—हाथ जोड़कर प्रभु हरिदास कहने लगे,—"हे प्रभो! मैं अल्प भाग्यशाली हूँ; फिर भी मैं बड़ी अभिलाषा कर रहा हूँ। ऐसा कृप कीजिए कि जो सब भक्त आपके चरणों को भजन करते हैं, उन सबका अवशिष्ट (उच्छिष्ट) प्रसाद मेरा भोजन बन जाए और जन्म–जन्म में वही अवशिष्ट–सेवन मेरा भजन बना रहे, वही कर्म बना रहे, वही मुझे अपना कुलधर्म दिखाई दे। मैं पापी हूँ, मेरा यह जन्म पाप–जन्म है, क्योंकि मैं आपका स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ। हे प्रभु, अपने दासों को उच्छिष्ट प्रसाद देकर मेरे इस जन्म को सफल कर दीजिए। मुझे लगता है कि मुझसे अपराध हो रहा है, क्योंकि, जिसके लिए मैं योग्य नहीं हूँ, वही महान् भाग्यशालियों का पद मैं आपसे माँग रहा हूँ। हे प्रभु! हे नाथ! हे परमपिता विश्वम्भर! मैं मरा हुआ हूँ, मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।

(८६) गौः भाः—हरिदास ने कहा, —"मेरी एकमात्र प्रार्थना यही है कि,—मैं श्रीचैतन्य के भक्तों का उच्छिष्ट भोजी बन जाऊँ।" भक्तपदधूलि, आर भक्तपद जल। भक्तभुक्तशेष—तिन साधनेर बल॥"—(चैः चः अः १६/६०) । अर्थात् भक्तों के चरणों की धूल और भक्तों के चरणों का जल एवं भक्तों द्वारा भोजन किये जाने के पश्चात् अवशिष्ट प्रसाद का ग्रहण—इन तीनों से साधन करने की शक्ति मिलती है।

(८७) गौः भाः—"मुझे मुक्ति नहीं चाहिए, बस, ऐसा हो जाए कि जन्म–जन्म में मैं वैष्णवों को सेवक बन सकूँ, वैष्णवों के उच्छिष्ट भोजन ही मेरे सभी कर्त्तव्यों में प्रधान कर्त्तव्य बन जाए। वैष्णव–कुल में अवस्थित होकर वैष्णवचित–धर्म और वैष्णवों का अवशिष्ट प्रसाद ग्रहण करना ही जन्म–जन्म में मेरा कर्त्तव्य बन जाए। वैदिक अनुष्ठानों को जो लोग कुल–धर्म के रूप में मानते हैं एवं आनुष्ठानिक वैदिक क्रियाओं का जो लोग बहुमानन (अधिक सम्मान) करते हैं, उन लोगों की उस प्रकार की आकांक्षाएँ देखकर

मैं कभी भी विचलित न हो जाऊँ। वे सब अनुष्ठान जागतिक अंहकार को उत्पन्न करने वाले होते हैं। अतः वे गौण कर्म हैं। मुख्य अनुष्ठान तो बस, वैष्णवों का उच्छिष्ट-भोजन ही है।" अहंकार-विमुढ़ जीव जैसे दुराशा से हतज्ञान (ज्ञानरहित) होकर जड़ जगत् में ऊँची आकांक्षाओं के वशवर्ती होते हैं, ठाकुर हरिदास की, चैतन्य की कृपा से, वैसी कोई औपाधिक प्रार्थना करने की इच्छा नहीं हुई। वे श्रीचैतन्यदेव की शिक्षा के अनुसार अत्यन्त दैन्य-रूपी अलंकार से विभूषित थे। उन्होंने मंगलों के आकर तृणादपि सुनीच होकर और उद्दाम वृत्ति का परित्याग करके तरु के समान सहनशीलता का अवलंबन किया था। सबको सम्मान प्रदान करते हुये और स्वयं अमानी रहते हुये वे वैष्णवों के पथावलम्बी होकर सदा कृष्णनाम कीर्तन करते रहते थे।

(८८) गौः भाः—"भगवत्-स्मृति-वर्जित मेरे इस पापमय जन्म को वैष्णवों के उच्छिष्ट के द्वारा सफल बना दीजिए।" भगवान् के सेवकों में जिनका अधिकार है, वह समस्त प्रभु-अभिमानी ब्राह्मणों के शिरोमणि एवं सर्वश्रेष्ठ है।

(८९) गौः भाः—"मैं बड़ा दाम्भिक हूँ, इसलिए आपसे तृण से भी सुनीच, तरु की भाँति सहनशील एवं अमानी-मानद होने की अतुलनीय सम्पत्ति के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ। उसे प्राप्त करने की योग्यता मुझमें नहीं है। वैष्णवों उच्छिष्ट-भोजी की पदवी, ब्रह्मा आदि का भी परमाराध्य विषय है; उस पद को प्राप्त करने के लिए मैंने अपनी इच्छा व्यक्त की है। लगता है, यह मुझसे अपराध हो गया है।"

(९०) गौः भाः—"हे पितः, हे प्रभो, हे स्वामिन् हे विश्वकर्त्ता! मैं जीवित अवस्था में भी मृततुल्य अर्थात् बुद्धिहीन हूँ, मेरा अपराध आप क्षमा कीजिए।"

वैष्णव के घर में कुकुर (कुत्ता) बनकर रहने से वैष्णव के उच्छिष्ट का मिलना सहज है, ऐसा कहकर हरिदास-द्वारा उस प्रकार की प्रार्थना—

शचीर नन्दन, बाप, कृपा कर मोरे।
कुक्कर करिया मोरे राख भक्तघरे॥''९१॥
प्रेमभक्तिमय हइला प्रभु हरिदास।
पुनः पुनः करे काकु,—ना पूरये आश॥९२॥

(९१-९२) प० अनु०—हे शचीनन्दन, हे पिता, मुझ पर कृपा कीजिए और भक्त के घर में मुझे कुत्ता बनाकर रखिए। (जिससे के मुझे अनायास ही वैष्णवों का अवशिष्ट प्रसाद मिल सके)। ऐसा कहते-कहते प्रभु हरिदास पूर्ण रूप से प्रेमभक्ति में तन्मय हो गये। इस प्रकार बारम्बार वे दीनता के साथ विनय कर रहे थे, किन्तु फिर भी उनको तृप्ति नहीं हो रही थी।

(९१) गौः भाः—"जैसे गृहस्वामी घर की सेवा के लिए पशु-जातीय कुत्ते को उच्छिष्ट-रूपी वेतन देकर गृह रक्षा-रूप कार्य में नियुक्त करते हैं, उसी प्रकार कृष्ण के संसार में वैष्णवगृह में मुझे प्रतिष्ठित कीजिए।"

प्रभु-द्वारा हरिदास के प्रति प्रीति का ज्ञापन एवं अपराध-रहित भक्ति का वरदान—

प्रभु बले,—''शुन शुन मोर हरिदास।
दिवसेको ये तोमार संगे कैल वास॥९३॥
तिलार्द्धेको तुमि यार संगे कह कथा।
से अवश्य आमा पावे, नाहिक अन्यथा॥९४॥
तोमारे ये करे श्रद्धा, से करे आमारे।
निरन्तर थाकि आमि तोमार शरीरे॥९५॥

तुमि–हेन सेवके आमार ठाकुराल।
तुमि मोरे हृदये बांधिया सर्वकाल॥९६॥
मोर स्थाने, मोर–सर्व–वैष्णवेर स्थाने।
बिना अपराधे भक्ति दिल तोरे दाने॥''९७॥

(९३–९७) प० अनु०—प्रभु बोले,—"सुनो, मेरे हरिदास, सुनो! एकदिन के लिए भी जिसने तुम्हारा संग किया है, आधे पल भी जिसके साथ तुमने बातचीत की है, वह निश्चित रूप से मुझे प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं निरन्तर तुम्हारे शरीर मे अवस्थान करता हूँ। तुम वैसे सेवकों के कारण ही मेरी 'ठाकुराई' प्रकाशित होती है। सदा–सर्वदा के लिए तुमने मुझे अपने हृदय में बन्दी बना लिया है। मेरे प्रति और मेरे सभी वैष्णवों के प्रति अपराध–रहित भक्ति तुमको दान कर दी है। यही तुमको वरदान देता हूँ।

(९३) गौः भाः—हरिदास की दीनतापूर्ण प्रार्थना सुनकर महाप्रभु ने कहा,—"तुम जगत् के सबसे ऊँचे स्थान पर विराजमान महापुरूष हो। तुम्हारे संग तुम्हारे भृत्य के रूप में यदि कोई भक्त एकदिन के लिए भी वास करे, अथवा कृपा करके तुम अति अल्प समय के लिए भी किसी के साथ बातचीत करो तो उसके लिए भी भगवत् चरणों की प्राप्ति निश्चित है।" श्रीहरिदास ठाकुर के कृपा–पात्रजन ही चैतन्य की सेवा प्राप्त करते हैं। दूसरों में चैतन्य–कृपा विकसित न होने के कारण उनको श्रीचैतन्य–भागवत (श्रीचैतन्य का श्रेष्ठ भक्त) बनने का अधिकार नहीं हैं।

(९५) गौः भाः—कनिष्ठ अधिकारी व्यक्ति, भक्त एवं अभक्त में अन्तर करने में असमर्थ होते हैं। इसलिए वे श्रद्धा के साथ बहुविध उपचार –सहित केवल भगवद्–विग्रह की अर्चना करते हैं। उन्नत अधिकार प्राप्त होने पर ये व्यक्ति भगवान् भक्त, बालिश (अज्ञ) एवं विद्वेषी—इन चार प्रकार की विशेषताओं को देखते हुये उनके प्रति क्रमशः प्रेम, मित्रता, कृपा एवं उपेक्षा भाव के अनुशीलन–द्वारा भगवान् की पूजा करते हैं। उस समय वे भगवद्–भ्ज्ञक्तों के हृदय–मन्दिर में स्थित भगवान् के प्रकाश का दर्शन करके उनको प्रणाम करते हैं उनके प्रति प्रणाम–द्वारा ही भक्तों के सेव्य प्रभु के प्रति सच्ची प्रणति विहित होती है। भगवान् की सेवा कैसे करनी चाहिए, इस विषय में भगवान् के भक्तों से उपदेश प्राप्त करने का अवसर उनको मिलता हैं। कनिष्ठ अधिकार में आंशिक–दृष्टि के कारण वास्तविक सौभाग्य का उदय नहीं होता है। वैष्णवों के संग के प्रभाव से जीवों की सारी भगवद् विमुखता एवं भक्त–विमुखता शनैः शनैः दूर हो जाती है। उत्तम अधिकारी की सेवा करते–करते उनमें भगवान् के अधिष्ठान का दर्शन करके जीव कृतार्थ हो जाता है। ठाकुर हरिदास महाभागवत के आदर्श स्थानीय हैं। इसलिए उनके प्रति सुदृढ़ विश्वास रखने श्रद्धा–विशिष्ट हो जाता है,—इसकी जानकारी देने के लिए ही महाप्रभु ने कहा,—"ठाकुर हरिदास के प्रति श्रद्धावान् व्यक्ति मेरे प्रति भी श्रद्धान्वित हैं। हरिदास के चिन्मय शरीर में भगवान् सदा सेवित होते रहते हैं। भक्त का शरीर चिन्मय होता है। अहंकार से संचालित जड़बुद्धि वाला अपराधी व्यक्ति भगवान् के देह एवं भक्त के देह को अचित्–परमाणुओं से बना हुआ मानकर नरक–यंत्रणा को प्राप्त करने के लिए भी यत्नशील रहता है।

(९६) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा, —"हरिदास–जैसे भगवद् भक्तों के द्वारा ही मेरे अप्राकृत वैकुण्ठ का अनुभव होता है। अनभिज्ञ व्यक्ति हरिदास की कृपा से ही

श्रीचैतन्यदेवको श्रीकृष्णचैतन्यदेव के रूप में जान सकते हैं। ठाकुर हरिदास ने चिन्मय रस में सरोबार होकर चैतन्यदेव को अपने हृदय में पूजा करने के लिए सदा के लिए बन्दी बनाकर रख लिया है।"

(९७) गौः भाः—प्रभु ने कहा—"हरिदास, मैं तुम्हें भजन करने का अधिकार देता हूँ। मेरे प्रति, अथवा किसी भी वैष्णव के प्रति किसी भी दिन तुम्हारे द्वारा कोई अपराध नहीं होगा। तुम सदा के लिए अपराध से निर्मक्त होकर केवला निर्मल भक्ति में स्थित रहते हुये कृष्णानुशीलन करते रहो और कृष्ण-भक्तों के मार्ग पर चलते रहो। क्योंकि, तुमने मेरे प्रति अथवा किसी वैष्णव के प्रति कभी कोई अपराध नहीं किया हैं, इसलिए मैंने तुमको कृष्णसेवा-प्रवृत्ति प्रदान की है।

हरिदास को वरदान मिलने पर भक्तगण-द्वारा जयध्वनि प्रदान—

हरिदास प्रति वर दिलेन यखन।
जय जय महाध्वनि उठिल तखन॥९८॥

(९८) प० अनु०—प्रभु ने जब हरिदास को यह वरदान दिया, तब चारों ओर महान् जयध्वनि गूँज उठी।

आभिजात्य-सत्क्रिया-आदि के द्वारा कृष्णभक्ति दुर्लभ है, उसे केवल तीव्र प्रीति से ही प्राप्त किया जा सकता है—

जाति, कुल, क्रिया, धने किछु नाहि करे।
प्रेमधन, आर्त्ति बिना ना पाइ कृष्णेरे॥९९॥

(९९) प० अनु०—जाति, कुल, क्रियाकर्म, सम्पत्ति—इन सबसे कुछ नहीं होता है। प्रेम एवं उत्कण्ठा के बिना कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(९९) प० अनु०—उत्कृष्ट वंश-परम्परा होने से कृष्णभक्ति नहीं मिलती है। ऊँची जाति, सत्क्रिया और बहुत धन-द्वारा भी कृष्णसेवा की प्राप्ति नहीं होती है। कृष्ण एकमात्र सुतीव्र प्रीति के द्वारा ही मिलते हैं। बिना प्रीति के, धनी आभिजात्य-सम्पन्न कर्मवीर व्यक्ति कृष्ण-भक्ति हो ही नहीं सकते हैं। "कृष्णभक्ति-रसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्र लौलाल्यपि मूल्यमेकलं जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥"—(पद्मावली)। " जन्मैश्वरर्यश्रुतश्रीभिरेधमानन्दः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम्॥"—(भाः१/८/२६), "निष्किंचना वयं शशवन्निष्किंचन जनप्रियाः। तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे॥"—(भाः १०/६०/१४) जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः। यद्यस्य न भवेत् स्तम्भस्तत्रायां मदनुग्रहः॥"—(भाः ८/२२/२६)।

किसी भी कुल में उत्पन्न होने से भी वैष्णव सर्वश्रेष्ठ, इसका प्रमाण,—निम्नकुल में उत्पन्न हरिदास को उस वस्तु की प्राप्ति, जो ब्रह्मा आदि के लिए भी दुष्प्राप्य है—

ये ते कुले वैष्णवेर जन्म केने नहे।
तथापिह सर्वोत्तम सर्वशास्त्रे कहे॥१००॥
एक तार प्रमाण-यवन हरिदास।
ब्रह्मादिर दुर्लभ देखिल परकाश॥१०१॥

(१००-१०१) प० अनु०—किसी भी कुल में वैष्णव का जन्म क्यों न हुआ हो, फिर भी वह (वैष्णव) सर्वोत्तम है, यही सब शास्त्रों का कहना है। इसका प्रमाण यह है कि, यवन हरिदास ने उस प्रकाश को देखा जो ब्रह्मा आदि के लिए भी दुर्लभ है।

(१००) गौः भाः—विष्णु-सेवा में प्रीति युक्त व्यक्ति किसी भी वंश में जन्मग्रहण क्यों न करे, उससे भक्ति में कोई बाधा

नहीं आती है। सभी शास्त्रों में वैष्णव को, जाति-कुल-क्रिया और धन के मद से मत्त व्यक्ति की अपेक्षा, 'श्रेष्ठ' माना गया है। जीवों की नित्य-प्रयोजन की वस्तु है—कृष्ण प्रेम। उस प्रेम का अधिकार मिल जाने से जागतिक विचार के अनुसार नीचता, स्वल्पता एवं अन्य विपर्यय का अभाव कोई बाधा नहीं डाल सकते है। "यन्नामधेयश्रवण ानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्। श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नुदर्शनात्॥ अहो वत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्। तेपुस्तपस्ते जुहुवः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥"—(भाः ३/३३/६-७), "न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद् दर्शनानन्नृणामखिल-पापक्षयः। यन्नामसकृच्छ्रवण ात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात्॥"—(भाः ६/१६/४४), ''मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुष बुद्धियोगाः। नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥"—(भाः७/९/९), "न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥"—(हः भः विः १०/९१),"पुक्कशः श्वपचो वापि ये चान्ये म्लेच्छजातयः। तेऽपि वन्द्या महाभागा हरिपादैकसेवकाः॥" (पद्मपुराण के स्वर्गखंड में आः २४ अः) "विष्णोरयं यतो ह्यारीत्तस्माद्व ैष्णव उच्यते। सर्वेषा चैव वर्णानां वैष्णवः श्रेष्ठ उच्यते॥"—(पाद्मोत्तर खंड में ३९ अः), "अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्यापि विलोमजाताः। दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमैकान्तपरायणस्य। योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः॥'' (भाः १/१८/१८-१९),"आराधनानां सर्वेषां विष्ण ुराराधनं परम्। तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्।"—(पद्मपुराण)। "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदिवेतरः। विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः।।"—(काशीखंड), "श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तों द्विजाधिकः। विष्णुभक्तिविहीनो यो यतिश्च श्वपचाधिकः॥"—(नारदीय पुराण), "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियःसताम्। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥"—(भाः ११/१४/२१), "किरातहूणान्ध पुलिन्दपुल्कसा आभीरशुम्भया यवनाः खशादयः। येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥"—(भाः २/४/१८), "नीचजाति नहे कृष्णभजने अयोग्य। सत्कुल विप्र नहे भतनेर अयोग्य। सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥ येइ भजे, सेइ बड़ अभक्त—हीन, छार। कृष्णभजने नाहि जाति कुलादि-विचार॥"—(चैः चः अ ४/६६-६७), "संकीर्णयोग्यः पूताः ये भक्ता मधुसूदने। म्लेच्छतुल्या कुलीनास्ते ये न भक्ता मधुसूदने। म्लेच्छातुल्या कुलीनास्तु ये न भक्ता जनार्दने॥"—(द्वारकामाहात्म्य में)।

(१०१) गौः भाः—हरिदास ने अहिन्दू-कुल में जन्मग्रहण किया था, परन्तु सर्वलोक पितामह विरिंचि (ब्रह्मा) भी जिस दर्शन से वंचित रह गये, वही अपूर्व सुदुर्लभ भगवद् दर्शन उन्होंने प्राप्त किया था।

वैष्णव में जातिबुद्धि से अधोगति की प्राप्ति—

ये पापिष्ठ वैष्णवेर जातिबुद्धि करे।
जन्म-जन्म योनिते डुबि' मरे॥१०२॥

(१०२) प० अनु०— जो पापिष्ठ जातिबुद्धि के विचार से वैष्णव को देखते हैं, वे जन्म-जन्म में अधम योनि का प्राप्त करते हैं।

(१०२) गौः भाः—बाह्य दृष्टि से वैष्णव को जाति-कुल-मर्यादा-रहित, निर्धन आदि समझकर ग्रहण के अयोग्य मानने से अतिशय पाप के प्रति आसक्ति बढ़ती है। इसके फलस्वरूप आत्मा दूषित होकर नीच योनि में

जन्म ग्रहण करती है। "शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा। वीक्ष्यते जातिसामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्॥" "श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्। वैष्णवोवर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्॥" "अच्चर्येविष्णौ शिलाधीर्गुरुषुनर–मतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिविष्णोवां वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः। श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धिर्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः।"—(पद्मपुराण)

हरिदास के द्वारा की गई स्तुति एवं वर–प्राप्ति आख्यान की फलश्रुति—

हरिदासस्तुति–वर शुने येइ जन।
अवश्य मिलिवे तारे कृष्णप्रेमधन॥१०३॥
ए वचन मोर नहे, सर्वशास्त्रे कय।
भक्ताख्यान शुनिले कृष्णेते भक्ति हय॥१०४॥

(१०३–१०४) प० अनु०—हरिदास के स्तवन और वर–प्राप्ति के प्रसंग को जो सुनते हैं, उन्हें कृष्ण–प्रेमधन अवश्य मिलता है। यह वचन मेरे नहीं हैं, सभी शास्त्र इस बात को कहते हैं कि, भक्त के आख्यान को सुनने से कृष्ण में भक्ति होती है।

(१०४) गौः भाः—श्रीमद्भागवत के १/२/१७–१८, १/५/२८, २/२/३७, २/८/४, ३/९/११, १०/३३/ ३९, १२/३/१२ प्रभृति श्लोक द्रष्टवय हैं।

हरिदास ठाकुर को स्मरण करने का फल—

महाभक्त हरिदास ठाकुर जय जय।
हरिदास सङरणे सर्व–पापक्षय॥१०५॥

(१०५) प० अनु०—महान् भक्त हरिदास ठाकुर की जय हो, जय हो,। हरिदास का स्मरण करने से सारे पाप धुल जाते हैं।

हरिदास का स्वरुप—

केह बले,—'चतुर्मख येन हरिदास।'
केह बले—'प्रहलादेर येन परकाश॥'१०६॥
सर्वमते महाभागवत हरिदास।
चैतन्यगोष्ठीर संगे याहार विलास॥१०७॥

(१०६–१०७) प० अनु०—कोई कहता है कि हरिदास चतुर्मख ब्रह्मा है, तो कोई मानता हैं कि वे प्रह्लाद के प्रकाश हैं। सभी मतों के अनुसार यह निर्णीत होता है कि, चैतन्य की गोष्ठी के साथ जिन्होंने विलास किया था, वे हरिदास ठाकुर महाभागवत् हैं।

अज (ब्रह्मा)–भव (शिव) के लिए भी हरिदास–संग वाञ्छनीय—

ब्रह्मा, शिव, हरिदास हेन भक्तसंग।
निरवधि करिते चित्तेर बड़ रंग॥१०८॥
हरिदासस्पर्श वांछा करे देवगण।
गंगाओ वाञ्छेन हरिदाससेर मज्जन॥१०९॥

(१०८–१०९) प० अनु०—ब्रह्मा और शिव के हृदय में निरवधि यही इच्छा रहती है कि, हरिदास–जैसे भक्त का संग मिल जाए। देवगण हरिदास के अंग–स्पर्श की कामना करते हैं। गंगा भी चाहती है कि हरिदास उनमें स्नान किया करें।

(१०८) गौः भाः—सर्वलोक–पितामह ब्रह्मा एवं सर्वसंहारक शिव हरिदास का संग प्राप्त करने के लिए सदा कुतूहल प्रकाशित करते रहते हैं।

(१०९) गौः भाः—पतितपावनी गंगा हरिदास कि अवगाहन की आशा करती रहती हैं। यह शास्त्र में वर्णित है कि, साधन करने के लिए भक्तपदरजः और भक्तपद–जल श्रेष्ठ साधन है। "भक्तपदधूलि और भक्तपदजल। भक्तभुक्तशेष,—तिन साधनेर बल॥"—(चैः चैः

अ १६/६०), "साधवों न्यासिनः शान्ता ब्रहिष्ठा लोकपावनाः। हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः॥"—(भाः ९/९/६)।

हरिदास-दर्शन का फल—

स्पर्शेर कि दाय, देखिलेइ हरिदास।
छिण्डे सर्व-जीवेर अनादि कर्मपाश॥११०॥

(११०) प० अनु०—स्पर्श की तो बात ही क्या है, हरिदास को देखने से ही जीवों के अनादि कर्मबन्धन टूट जाते है।

(११०) गौः भाः—ग्रन्थकार सभी शास्त्रों का सार-संग्रह पूर्वक कहते हैं,—"वैष्णव का दर्शन करने से, दर्शन करने वालों के सम्पूर्ण सौभाग्य का उदय होता है। अनादि वासनाओं के वशीभूत जीव कर्मरेज्जू-रूपी जाल में आबद्ध हैं। परम-युक्त हरिदास को देखने से वह अपनी भोग-पिपासा विदूरित करके सभी अनर्थो से मुक्त हो जाते है। जिनको दर्शन-मात्र से ही ऐसा होता है, उनके स्पर्श से इससे भी अधिक मंगल होने के विषय में शास्त्र स्पष्ट रूप से कहते हैं। "गंगार परश हइले पश्चाते पावन। दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण॥"—(श्रील नरोत्तम ठाकुर), "आपनः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्। ततः सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम्॥"—(भाः १/१/१४), "येषां संस्मरण ात् पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः। किं पुनदर्शन -स्पर्शपादशैचासना-दिभिः॥ सांनिध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि। सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः॥" (भाः १/१९/३३-३४), "न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलाम्याः। ते पुनन्त्यु-रुकालेन दर्शनादेव साधवः। ते पुनन्त्यु- रुकालेन दर्शनादेव साधवः॥"—(भाः १०/४८/३०)।

दैत्यकुल में उत्पन्न प्रह्लाद एवं पशुकुल में उत्पन्न हनुमान की वैष्णवता की भाँति हरिदास की वैष्णवता भी सर्वसिद्ध—

प्रह्लाद ये-हेन दैत्य, कपि हनुमान्।
एइ मत हरिदास 'नीचजाति' नाम॥१११॥

(१११) प० अनु०—जिस प्रकार प्रह्लाद दैत्यकुल के है; जिस प्रकार हनुमान कपिलकुल के है, उसी प्रकार हरिदास भी नाममात्र को 'नीचजाति' के हैं।

(१११) गौः भाः—प्रह्लाद हिरण्यकशिपु-दैत्यु के पुत्र हैं उन्हें देवता नहीं माना जाता। हनुमान पशुकुल में आविर्भूत हुये हैं—इनको सभ्य मानव नहीं कहा जा सकता। परन्तु जिस प्रकार विचार करेन पर प्रह्लाद एवं हनुमान को 'श्रेष्ठ वैष्णव' के रूप मे मानना परम प्रयोजन का विषय है, उसी प्रकार नीचकुल में आविर्भूत अहिन्दु हरिदा का भी वैसा ही उन्कृष्ट महाभागवत तत्त्व सर्वतोभाव से सिद्ध है।

श्रीमहाप्रभु के वाक्य सुनकर हरिदास, मुरारि एवं श्रीधर के आनन्दाश्रु—

हरिदास कान्दे, कान्दे मुरारि श्रीधर।
हासिया ताम्बूल खाय प्रभु विश्वम्भर॥११२॥

(११२) प० अनु०—हरिदास, मुरारि एवं श्रीधर आनन्दाश्रु बरसा रहे थे और प्रभु विश्वम्भर हँसकर ताम्बूल-चर्वण कर रहे थे।

नित्यानन्द के द्वारा महाप्रभु के सिर पर छत्र-धारण—

बसि' आछे महाज्योतिः खट्टार उपरे।
महाज्योतिः नित्यानन्द छत्र धरे शिरे॥११३॥
अद्वैतेर भिते चाहि' हासिया हासिया।
मनेर वृत्तांत ताँर कहे प्रकाशिया॥११४॥
''शुन शुन आचार्य, तोमारे निशाभागे।

भोजन कराइल आमि, ताहा मने जागे?११५॥
यखन आमार नाहि हय अवतार।
आमारे आनिते श्रम करिला अपार॥११६॥
गीताशास्त्र पड़ाओ, बाखान' भक्तिमात्र।
बुझिते तोमार व्याख्या केवा आछे पात्र॥११७॥
ये श्लोकेर अर्थे नाहि पाओ भक्तियोग।
श्लोकेर ना देह' दोष, छाड़ सर्वभोग॥११८॥
दुःख पाइ' शुति थाक करि' उपवास।
तबे आमि तोमा स्थाने हइ परकाश॥११९॥
तोमारि उपासे मुञि मानो उपवास।
तुमि मोरे येइ देह', सेइ मोर ग्रास॥१२०॥
तिलार्द्ध तोमार दुःख आमि नाहि सहि।
स्वप्ने आसि' तोमार सहित कथा कहि॥१२१॥
'उठ उठ आचार्य, श्लोकेर अर्थ शुन।
एइ अर्थ, एइ पाठ निःसन्देह जान॥१२२॥
उठिया भोजन कर, ना कर उपास।
तोमार लागिया आमि करिब प्रकाश॥'१२३॥
सन्तोषे उठिया तुमि करह भोजन।
आमि बलि, तुमि येन मानह स्वपन॥''१२४॥
एइ मत येइ येइ पाठे द्विधा हय।
स्वपनेर कथा प्रभु प्रत्यक्ष कहय॥१२५॥
यत रात्रि स्वप्न हय, ये दिने, यक्षणे।
यत श्लोक,—सब प्रभु कहिला आपने॥१२६॥
धन्य धन्य अद्वैतेर भक्तिर महिमा।
भक्ति–भक्ति कि बलिब?—एइ तार सीमा॥१२७॥

(११३–१२७) प० अनु०—महान् ज्योजिस्परूप महाप्रभु सिंहासन पर विराजमान थे और महान् ज्योतिस्वरूप नित्यानन्द उनके सिर पर छत्र धारण किये हुये थे। अद्वैत की ओर देखते हुये प्रभु हँसकर उनसे मन की बात कहने लगे। "सुनो, आचार्य, सुना! क्या तुम्हें स्मरण है कि रात को हमने तुमको भोजन करवाया था? जब मेरा अवतार नहीं हुआ था, तब मुझे यहाँ लाने के लिए तुमने बहुत परिश्रम किया था। गीताशास्त्र पढ़ाते थे, तो केवल भक्ति की ही व्याख्या करते थे। ऐसा कौन हैं, जो तुम्हारी व्याख्या को समझ सके। जिस श्लोक के अर्थ में तुम्हें भक्तियोग की महिमा दिखाई नहीं देती थी, उस श्लोक को दोषी न ठहराकर तुम (अपने को दोषी मानकर) सभी भोगों को त्याग कर देते थे। तब जाकर मैं तुम्हारे सामने प्रकाशित हुआ था। तुम्हारे उपवास करने से मेरा भी उपवास होता था, क्योंकि तुम मुझे जो देते थे, वही मेरा भोजन था। आधे पल के लिए भी मैं तुम्हारा दुःख सहन नहीं कर सकता था। इसलिए सपने में आकर तुमसे वार्तालाप किया था—'उठो आचार्य, उठो! श्लोक का अर्थ सुनलो! यही अर्थ है, यह पाठ तुम निःसन्देह जान लो। उठकर भोजन कर लो, उपवास मत करो, तुम्हारे हेतु मैं अपने को प्रकाशित करूँगा।' उठकर सन्तोष के साथ तुम भोजन कर लो। मैं ऐसा सचमुच कह रहा था और तुम इसे स्वप्न मान रहे थे। इस प्रकार जिन–जिन श्लोकों को पढ़ने मैं अद्वैत को परेशानी होती थी, उन सब के बारे में प्रभु ने स्वप्न में आकर समझाया था और उन्हीं सब बातों को अब वे प्रत्यक्ष रूप से कह रहे थे। जिस दिन, जिस रात, जिस क्षण स्वप्न में जितने भी श्लोकों का विचार हुआ था, उस सब के बारे में प्रभु ने अपने मुँह से बता दिया। धन्य है, अद्वैत की भक्ति की महिमा। भक्ति–शक्ति के बारे में क्या कहूँ—यही इसकी सीमा है।

(११४) गौः भाः—भित्ते—भित्ति में, दिशा की ओर,—उनके प्रति लक्ष्य करते हुये।

(११५) गौः भाः—परवर्ती १२३ एवं १२३ संख्या द्रष्टवय है।

(११८) गौः भाः—गीता–पाठ के समय जिस

श्लोक के अर्थ में भक्तियोग का संधान नहीं मिलता था, उस श्लोक को दोषी न ठहराकर तुम अपने आध्यक्षिक (इन्द्रियजनित) ज्ञान के लिए सभी भोगों का परित्याग कर देते थे।

(१२०) गौः भाः—भगवद्-भक्त के उपवास करने से भगवान् का भी भोजन नहीं होता हैं। अभक्त के पास से भगवान् कभी कोई सेवा ग्रहण नहीं करते है। भक्त-द्वारा प्रदत्त सामग्री ही भगवान् ग्रहण करते हैं।

(१२५) गौः भाः—साधारण लोगों के बीच गीता के जिन-जिन श्लोकों के अर्थ में भक्तियोग के तात्पर्य को समझने में बाधाएँ उत्पन्न होती थीं, निद्रा के समय अद्वैत-प्रभु उन श्लोकों का विचार (तात्पर्य) स्वयं महाप्रभु से सुन लिया करते थे।

(१२६) गौः भाः—जिन श्लोकों के लिए अद्वैत-प्रभु के हृदय में सन्देह उत्पन्न हुआ था, उन्हीं सब श्लोकों के बारे में महाप्रभु ने स्वतः प्रवृत्त होकर उनको स्मरण दिलाया था।

महाप्रभु के द्वारा 'सर्वतः पाणिपादन्तत्'
श्लोक-पाठ का संशोधन—

प्रभु बले,—"सर्व पाठ कहिल तोमारे।
एक पाठ नाहि कहि, आजि कहि तोरे॥१२८॥
सम्प्रदाय-अनुरोधे सबे मन्द पड़े।
'सर्वतः पाणिपादन्तत्'—एइ पाठ नड़े॥१२९॥
आजि तोरे सत्य कहि छाड़िया कपट।
'सर्वत्र पाणिपदन्तत्'—एइ सत्य पाठ॥१३०॥

(१२८-१३०) प० अनु०—प्रभु बोले,—"एक श्लोक छोड़ बाकी सभी श्लोकों के बारे में मैंने तूमको बताया था। उस एक श्लोक के बारे में मैं आज बता रहा हूँ। अपनी-अपनी सम्प्रदाय के अनुरोध से सभी लोग मन्द पाठ पढ़ते हैं—'सर्वतः पाणि-पादन्तत्'—यही पाठ लगभग सभी कहते हैं। बिना कपट के आज मैं तुमसी सच कह रहा हूँ कि, "सर्वत्र पाणिपादन्तत्"—यह पाठ ही सत्य है।

तथाहि (गीता १३-१३)—

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१३१॥
अति गुप्त पाठ आमि कहिल तोमारे।
तोमा बइ पात्र केबा आछे कहिबारे॥"१३२॥
चैतन्येर गुप्त शिष्य आचार्य गोसाईं।
चैतन्येर सर्व व्याख्या आचार्येर ठाञि॥१३३॥

(१३१) अन्वयः—(अथ परमात्मवस्तूपदिशति) सर्वतः पाणिपादं (सर्वतः सर्वत्र पाणयः पादाश्च यस्य तत्) सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं (सर्वतः अक्षीणि शिरांसि मुखानि च यस्य तत्) सर्वतः श्रुतिमत् (श्रवणन्द्रियैः युक्तं) तत् (परमाम्मवस्तु) लोके सर्व आवृत्य (व्याप्य) तिष्ठति (सर्वप्राणिप्रवृत्तिभिः रूपादिभिः सर्वव्यवहारास्पदत्वेन तिष्ठीतीत्यर्थः)।

(१३१) अनुवादः—जिनके हस्त, पद, नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्णसमूह सर्वत्र परिव्याप्त हैं, वही परमात्वस्तु निखिल चराचर में सभी वस्तुओं को अच्छादित करते हुये विराजमान है।

(१३१) तथ्य—श्वेताश्वतरोपनिषद में ३/१६ श्लोक द्रष्टवय है।

(१३२-१३३) प० अनु०—हमने यह अति गूढ़ पाठ तुमको कह दिया है। तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किससे यह कह सकता हूँ? तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किससे यह कह सकता हूँ?" आचार्य गोसाईं चैतन्य के गुप्त शिष्य थे।

महा आनन्द में विह्वल अद्वैत-द्वारा
क्रन्दन-सहित प्रत्युत्तर; अद्वैत की महानता
इसमें है कि महाप्रभु का नाम
ही है 'अद्वैत-नाथ'—

शुनिया आचार्य प्रेमे कान्दिते लागिला।

पाइया मनेर कथा महानन्दे भोला ॥१३४॥
अद्वैत बलये,—''आर कि बलिव मुञि।
एइ मोर महत्त्व ये मोर नाथ तुञि॥''१३५॥
आनन्दे विह्वल हैला आचार्य गोसाईं।
प्रभुर प्रकाश देखि' बाह्य किछु नाञि॥१३६॥

(१३४–१३६) प० अनु०—यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि, इन सब बातों में जिनको विश्वास नहीं होता है, उनकी अधोगति होती है।

श्रीगौरसुन्दर के द्वारा की गई व्याख्या में विश्वास न रखनेवाले व्यक्ति की अधोगति—

ए सब कथाय यार नाहिक प्रतीत।
अधःपात हय तार, जानिह निश्चित॥१३७॥

(१३७) गौ भाः—निर्विशेषवादी "सर्वतः" पाठ को बजाते हुये उसका 'सर्वत्र' के अर्थ में ही व्यवहार करते हैं। सविशेषवादी भगवत्ता के स्वरुप को स्वीकार करते हैं। निर्विशेषवादी इस जगत् को मिथ्या मानते हैं। इसलिए वे भगवत् स्वरूप के पाणि–पाद–कर्ण–चक्षु–क्षिर एवं वदन का नित्यत्व स्वीकार नहीं करते हैं। अचिन्त्यभेदाभेद–विचार में बाह्य दृष्टि से जिस प्रकार भोग्य रूपसमूह दिखाई देता है, उसके विपरीत भाव में नित्य–सेवा के लिए उपयोगी सेव्य इन्द्रिय समूह को उपलब्ध किया गया है। महाभागवत सर्वत्र भगवान् की पुरूषोत्तमत्ता एवं हृषीकेशत्व का दर्जन करते है। वे बाहरी जगत् के भोग्यभाव–समूह को देखने के बदले पुरूषोत्तम के भोक्तृत्व के कारण समूह (सब कुछ पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण के भोग के उपकरण–समूह) को देखते हैं। विशिष्टाद्वैत दर्शन के विचारक जैसे प्रपंच (जगत्) को भगवत–स्वरूप के स्थूल शरीर के रूप में मानते हैं, अथवा केवलाद्वैत विचारक जैसे प्रांपचिक दर्शन (जगत् की सत्ता) को परम सूक्ष्मदर्शन में कोई आवश्यकता नहीं है। प्रेमांजनच्छुरित भक्तिविलोचन द्वारा अंग–प्रत्यंग आदि सहित नित्यारूप का परिदर्शन करने में भगवद् भक्त को कभी भी कोई व्याघात नहीं होता है। सेवा–विमुखजनों को जो प्रांपचिक भोग–दर्शन होता है, उसके नश्वर जगत् में सच होने पर भी शुद्ध जीवात्मा के दर्शन में, उसमें अनर्थ का अवकाश नहीं है। जीवों का अर्थ सेव्य पर आश्रित हैं। इसलिए भोगबुद्धि के वशवर्ती होकर कर्मफल भोगने को विवश जीव जिस प्रकार जागतिक भोगों का आवाहन किया करते हैं, उस प्रकार की भोग–दृष्टि सर्वत्र नहीं रखनी चाहिए,—यही प्रभु का अभिप्राय है। अनर्थ रहने के समय, कर्मवादी नश्वर वस्तुओं को 'भोग्य' समझ लेते हैं एवं विराट् रूप को रूपक ओर काल्पनिक मानते हैं। फिर निर्भेद ब्रह्म का अनुसंधान करने के इच्छुक व्यक्ति प्रापंचिक रूप के अस्तित्व को इन्द्रिय कल्पित मानकर प्रापंचिक की नश्वर वास्तविक के प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं। शुद्ध अद्वैतवादी को बाहरी जगत् में चिदानन्द के दर्शन नहीं होते हैं। वे शुद्ध जीव में आनन्द का अभाव स्वीकार करते हैं, एवं जड़–जगत् में सच्चिदानन्द की अनुभूति के संबन्ध–निर्णय में भिन्न (विपरीत) भाव प्रकाशित करते हैं, अतः अचिन्त्यभेदाभेद विचार शुद्धअद्वैतवासियों की समझ में नही आता है। भगवद्–शक्तिमत्ता में सर्वत्र सच्चिदानन्द की अनुभूति वर्तमान हैं। इसकी जानकारी देने के लिए ही गीता में "सर्वत्र पाणिपादन्तत्" श्लोक की अवतारणा हुई है।

श्रीगौरसुन्दर के द्वारा प्रकाशित व्याख्या में एवं श्रीअद्वैत प्रभु–द्वारा उस व्याख्या को स्वीकार किये जाने में जो सत्य की स्थापना

हुई है, उसमें विश्वास न करने वाला व्यक्ति वास्तविक सत्य से वंचित हो जाता है और प्रापंचिक नश्वर प्रतीतिरूप अधोगति ही उनको मिलती है।

अद्वैताचार्य के दुर्ज्ञेय वचन महाभागवतगण के ही बोधगम्य हैं, वे कहीं सौभाग्य का उदय कराते हैं, तो कहीं भाग्य-विपर्यय करवा देते हैं; इस विषय में भागवत के प्रमाण—

महाभागवते बुझे अद्वैतेर व्याख्या।
आपने चैतन्य या'रे कराइल शिक्षा॥१३८॥
वेदे येन नानामत करये कथन।
एइमत आचार्येर दुर्ज्ञेय वचन॥१३९॥
अद्वैतेर वाक्य बुझिवार शक्ति कार?
जानिह, ईश्वरसंगे भेद नाहि या'रे॥१४०॥
शरतेर मेघ येन परभाग्ये वर्षे।
सर्वत्र ना करे वृष्टि, कोथाओ वरिषे॥१४१॥

तथाहि(भागवत १०/२०/३६)—

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम्।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा॥१४२॥
एइमत अद्वैतेर किछु दोष नाञि।
भाग्याभाग्य बुझि' व्याख्या करे सेइ ठाञि॥१४३॥

(१३८-१४३) प० अनु०—अद्वैत की व्याख्या को महाभागवत ही समझ सकते हैं। स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने उनको शिक्षा प्रदान की है। जिस प्रकार से वेद विभिन्न प्रकार के मतों को उल्लेख करने के कारण अगम्य हैं, उसी प्रकार आचार्य (अद्वैत) के वचनों का तात्पर्य समझना भी बहुत कठिन है। अद्वैत के वाक्यों को समझने की शक्ति भला किसमें है? यह जान लेना चाहिए कि, ईश्वर में और उनमें कोई अंतर नहीं है। शरत काल में बादल जैसे दूसरो के भाग्यानुसार सभी जगह पर नहीं बरसते, कहीं-कहीं बरसते हैं, वैसे ही अद्वैत के वाक्य किसी की समझ में आते हैं, तो किसी की में नहीं आते। इस प्रकार से इसमें अद्वैत को कोई दोष नहीं है। भाग्य के अनुसार वे जगह-जगह पर उचित व्याख्या करते हैं।

(१४२) अन्वयः—ज्ञानिनः (विद्वांसः गुरवः) काले (उपयुक्त समये) यथा (कास्मैचित् योग्याय) ज्ञानामृतं ददते (तत्त्वज्ञानं उपदिशन्ति) न वा (अन्येभयो न ददते च, अत्रायं भावः—न हुपाध्यायाः कर्मविद्यामिव ज्ञानिनः ज्ञानामृतं सर्वतो वितरन्ति, परन्तु कृपया क्वचिदेव एवं) गिरयः (पर्वताः अपि) शिवं (मंगलदायकं) तोयः (जलं) क्वचित् (कुत्रवित्) मुमुचुः (क्वचित्) न (मुमुचुः)।

(१४२) अनुवाद—(श्रीकृष्ण एवं बलराम के द्वारा ब्रजलीला के समय श्रीधाम वृन्दावन मे वर्षा और शरद्-ऋतुओं का वर्णन करते हुये श्रीशुकदेव ने कहा)—जैसे ज्ञानिगण योग्य शिष्य को भगवत्-तत्त्व के बारे में उपदेश रूप ज्ञानामृत प्रदान करते हैं, परन्तु अयोग्य शिष्य को नहीं, वैसे ही पर्वत-समूह भी किसी-किसी स्थान पर मंगलदायक जलराशि वर्षण कर रहे थे, तो कहीं-कहीं नहीं भी कर रहे थे।

(१३८) गौः भाः—श्रीअद्वैत प्रभु की व्याख्या अचिन्त्य अभेद-मूलक होने पर भी अचिन्त्यभेदाभेदात्मक है,—इस सत्य को केवल उत्तम वैष्णव ही समझ सकते हैं। अनभिज्ञ जनों का विचार यह है कि, श्रीअद्वैत प्रभु केवलाद्वैत-मत के प्रचारक हैं एवं श्रीगौरसुन्दर के द्वारा चिंतित अद्वैत-विरोधी द्वैतमत के उपदेशक हैं। अद्वैत की व्याख्या का तात्पर्य नहीं समझकर उनके वंश की मर्यादा का सही प्रकार से पालन करने में असमर्थ, परन्तु केवल नाम के वंशधारियों मं न्यूनाधिक मायावाद

प्रचारित होता रहा है। अतः उस भक्ति-विरोधी बीज के कारण वे आजकल भी शुद्धभक्ति के विरोध में बहुत कुछ बोलते रहते है। वे नहीं जानते कि श्रीचैतन्यदेव के द्वारा दी गई शिक्षा के अतिरिक्त अद्वैत प्रभु ने अन्य किसी प्रकार का आचरण नहीं किया है।

(१३९) गौः भाः—आचार्य (अद्वैत) के केवल नाम के वंशधारीगण आचार्य की व्याख्या को नहीं समझकर, भक्ति के प्रतिकूल विचार को ही भक्त के लिए स्वीकार्य मानते हैं और इसका विचार भी करते है। इसलिए आसाम देश में एवबंगाल के विभिन्न स्थानों में पंचोपासना-पद्धति को लोगों ने आदर सहित ग्रहण किया है। ठाकुर वृन्दावनदास कहते है कि जिस प्रकार से वेदों के विभिन्न मन्त्र-समूह बाहरीं दृष्टि से परस्पर-विरोधी हैं एवं इनसे केवलाद्वैत विचार, शुद्धाद्वैत विचार एवं द्वैताद्वैतविचार प्रभृति अनेक प्रकार के मतवादों की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार अद्वैत आचार्य के वाक्यों एवं व्यवहार-समूहों को भी न समझने के कारण लोग विभिन्न प्रकार के मतों को अद्वैत के मत के रूप में मानते है; परन्तु वास्तव में श्रीअद्वैत प्रभु ने श्रीचैतन्यदेव की शिक्षा दी है। परस्पर-विरोधी प्रतीत होने से भी उनकी व्याख्याएँ श्रीचैतन्य-द्वारा प्रकाशित व्याख्या अचिन्त्य-अभेद नाम से उद्दिष्ट होने पर साथ-ही-साथ भेदपरक भी है, इसलिए प्रापंचिक चिन्तन कोई विशेष व्यापार नहीं है।

(१४१) गौः भाः—शरत् ऋतु में एक ही समय में भी स्थानों पर वर्षा नहीं होती है। जहाँ वर्षा होती है एवं जहाँ नहीं होती है, उन सब स्थानों के अपने-अपने भाग्य के अनुसार ही ऐसा होता है। इसमें भाग्य-मात्र की अपेक्षा रहती है। श्रीअद्वैत प्रभु के वाक्य-समूह में भी सुकृतिवान के सौभाग्य का एवं दुष्कृति क दुर्भाग्य का उदय हुआ है।

वैष्णव-समाज ही अद्वैत के
चैतन्यानुगत्य में प्रमाण—

चैतन्यचरणसेवा अद्वैतेर काज।
इहाते प्रमाण सब वैष्णवसमाज॥१४४॥

(१४४) प० अनु०—सारा वैष्णव समाज इसका प्रमाण है कि चैतन्य-चरणों की सेवा ही अद्वैत का एकमात्र कार्य था।

(१४४) गौः भाः—शुद्ध वैष्णवगण कभी भी अद्वैत प्रभु को उचित मर्यादा प्रदान करने से करने से नहीं चूकते हैं। वे श्रीअद्वैत को श्रीचैतन्य की शिक्षा में दीक्षित जानकर उन (श्रीअद्वैत) को भी विष्णु का रूप ही मानते हैं। "एक महाप्रभु आर प्रभु दुइ जन। दुइ प्रभु सेवे महाप्रभुर चरण॥" अर्थात् दोनों प्रभु (अद्वैत) एवं नित्यानन्द एक महाप्रभु के चरणों की सेवा करते हैं),—जो इस विचार से सम्पन्न हैं, वे श्रीअद्वैताचार्य प्रभु का अभागे, अनभिज्ञ, अद्वैतानुयायी लोगों के साथ में कभी समान बोध नहीं करते हैं।

स्वतंत्र ईश्वर बुद्धि से अद्वैत की
सेवा अप्रियकारक—

सर्व-भागवतेर वचन अनादरि'।
अद्वैतेर सेवा करे' नहे प्रियंकरी॥१४५॥
प्रकृत अद्वैत-भक्त का लक्षण—
चैतन्येते 'महामहेश्वर'—बुद्धि या'र।
सेइ से—अद्वैत भक्त, अद्वैत—ताहार॥१४६॥

(१४५) प० अनु०—सभी भागवतों के वचनों का अनादर करके जो व्यक्ति की सेवा करते हैं, वे किसी को भी प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होते हैं।

(१४५) गौः भा०—श्रीचैतन्यदेव के सभी

भक्तों के वाक्यों का अनादर करते हुये जो केवलमात्र अद्वैत की सेवा करने के नाम पर भक्ति का अमर्यादा करते हैं, वे जगत् का मंगल-विधान नहीं करते हैं।

(१४६) प० अनु०—जो श्रीचैतन्यदेव की श्रीअद्वैत आचार्य के सेव्यविग्रह के रूप में जानते हैं, वे ही अद्वैत-प्रभु के सच्चे भक्त हैं। उनकी सेवा ही अद्वैत-प्रभु स्वीकार करते हैं और दूसरे लोग जो अद्वैत की सेवा के उद्देश्य से अद्वैत को 'विष्णु' मानते हुये श्रीचैतन्यचन्द्र को वृषभानुनंदिनी के रूप में मानते हैं, तथा इसी मतवाद का पोषण किया करते हैं, उनको कभी भी अद्वैत के अनुगत सेवकों के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ५० वर्ष पहले शांतिपुर नाम के गाँव में इस प्रकार के नवोद्भावित (नया सृष्ट) घृणित मतवाद का प्रचार हुआ था। कालना नामक स्थान पर इस मतवाद को ग्रन्थ के आकार में न छापे जाने पर भी, उस स्थान के निवासी न्यूनाधिक रूप में इस मत का षोषण करके नरक में जा पहुँचे हैं।

अद्वैत प्रभु को विष्णु ज्ञानपूर्वक गौरसुन्दर को उनके आश्रिता 'श्रीराधा' समझने वालों की 'अद्वैतभक्ति'—दशानन की शिवभक्ति की भाँति अमंगलजनक—

'सर्वप्रभु गौरचन्द्र',—इहा ये ना लय।
अक्षय-अद्वैतसेवा व्यर्थ ता'र हय॥१४७॥

(१४७) प० अनु०—"श्रीगौरचन्द्र सबके प्रभु है"—जो यह नहीं मानता है, उसकी अक्षय-अद्वैत सेवा व्यर्थ हो जाती है।

(१४७) गौः भाः—श्रीअद्वैत प्रभु उपादान-कारण विष्णु-तत्त्व हैं, उनकी सेवा—अक्षय है; परन्तु अद्वैत-सेव्य श्रीगौरसुन्दर सर्वसेव्य हैं—इस बात को अस्वीकार करते हुये जो अद्वैत प्रभु को महाप्रभु के 'सेव्य' मानने का अपराध करते हैं, उनकी अद्वैत-सेवा अर्थहीन हो जाती है। घृणित अद्वैत-सेवक अधमगण कहते हैं कि, श्रीगौरभक्त के द्वारा महाप्रभु के प्रति ऐकांतिकता का प्रकाश करने से वे अद्वैत के सेवा-विरोधी हैं। "चैतन्य-मालीर कृपाजलेर सेचने। सेइ जले पुष्ट स्कन्ध बाड़े दिने दिने॥ सेइ जले स्कन्धे करे शाखाते संचार। फले-फुले बाड़े, —शाखा हइल विस्तार॥ प्रथमें त' एकमत आचार्येर गण। पाछे दुइमत हैल दैवेर कारण॥ केहत' आचार्य-आज्ञाय, केह त' स्वतन्त्र। स्वमत कल्पना करे दैव-परतन्त्र॥ आचार्येर मत येइ, सेइ मत सार। ताँर आज्ञा लांघि' चले, सेइ त' असार॥ चौद्दभुवनेर गुरु—चैतन्य गोसाईं। ताँर गुरु—अन्य, एइ कोन शास्त्रे नाइ॥ माली दत्त जल अद्वैत-स्कंध योगाय। सेइ जले जीये शाखा, फल-फुल हय॥ इहार मध्ये माली-पीछे कोन शाखागण। ना माने चैतन्य-माली दुर्दैव कारण॥ सृजाइल जीयाइल, ताँरे ना मानिल। कृतघ्न हइला, ताँरे स्कन्ध क्रुद्ध हइल॥ क्रुद्ध हइला स्कन्ध तारे जल ना संचारे। जलाभावे कृश शाखा शुकाइया मरे॥ चैतन्यरहित देह—शुष्क काष्ठ-सम। जीवितेई मृत सेइ, मैले दंडे यम॥ केवल एगण प्रति नहे एइ दण्ड। चैतन्य-विमुख येइ, सेइ त' पाषण्ड॥ कि पंडित, कि तपस्वी, किवा गृही, यति। चैतन्य-विमुख येइ, तार एइ गति॥ ये ये लैल श्रीअच्युतानन्देर मत। सेइ आचार्येर गण—महाभागवत॥ सेइ सेइ—आचार्येर कृपार भाजन। अनायासे पाइल सेइ चैतन्यचरण॥" —(चैः चः आः १२/५, ७/१०, १६ और ६६-७४)

रघुनाथ से विद्वेष के कारण
दशानन की दुर्गति–

शिरच्छेदि' भक्ति येन करे दशानन।
ना मानये रघुनाथ—शिवेर कारण॥१४८॥
अन्तरे छाड़िल शिव, से ना जाने इहा।
सेवा व्यर्थ हैल, मैल सवंशे पुड़िया॥१४९॥
भाल मन्द शिव किछु भांगिया ना कय।
यार बुद्धि थाके, सेइ चित्ते बुझि' लय॥१५०॥
एइ मत अद्वैतेर चित्त ना बुझिया।
बोलाय 'अद्वैत भक्त' चैतन्य निन्दिया॥१५१॥
ना बले अद्वैत किछु स्वभाव कारणे।
ना धरे वैष्णव–वाक्य, मरे भाल मने॥१५२॥
याहार प्रसादे अद्वैतेर सर्वसिद्धि।
हेन चैतन्येर किछु ना जानये शुद्धि॥१५३॥
इहा बलितेइ आइसे धात्रा मारिबारे।
अहो! माया बलवती,—कि बलिव तारे?१५४॥
भक्तराज अलंकार,—इहा नाहि जाने।
अद्वैतेर प्रभु—गौरचन्द्र नाहि माने॥१५५॥
पूर्वे ये आख्यान हैल, सेइ सत्य हय।
ताहाते प्रतीति यार नाहि,—तार क्षय॥१५६॥

(१४८–१५६) प० अनु०—दशानन (रावण) ने अपने सिरों तक को भी काट कर शिव क ेप्रति अपनी भक्ति को दर्शाया था। परन्तु शिव के मूल कारण वह रघुनाथ (श्रीरामचन्द्र जी) को नहीं मानता था। इसलिए शिव ने मन से उसे त्याग दिया, किन्तु वह इस बात को जान नहीं पाया। इस कारण उसकी सेवा व्यर्थ हो गई और वह अपने वंश–सहित जलकर विनाश को प्राप्त हुआ। क्या अच्छा है, क्या बुरा है, इसके बारे में शिव ने रावण से खुलकर कुछ नहीं कहा। किन्तु जिसके पास बुद्धि है, वह हृदय में इस बात का अनुभव कर सकता है। इसी प्रकार अद्वैत के हृदय के भाव को बिना समझे कोई–कोई साथ–ही–साथ चैतन्य की निन्दा भी करते हैं। अपने स्वभाव के अनुसार इस विषय में अद्वैत कुछ नहीं कहते हैं; परन्तु जो 'वैष्णवों के वाक्यों' का अनादर करते हैं, वे मरते हैं। जिनकी कृपा से अद्वैत को सर्वसिद्धि उपलब्ध है, उन चैतन्य–तत्त्व के बारे में ये लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। इस बात को कहने से वे मारने के लिए दौड़ते हैं। यह देखकर 'अहो! माया बलवती है'—यह कहने के सिवाय उनके बारे में क्या कहें? 'भक्तराज' की उपाधि एक अलंकार है,—यह वे नहीं जानते हैं। गौरचन्द्र अद्वैत के प्रभु हैं—यह भी वे नहीं नहीं मानते हैं। पहले जिस आख्यान का वर्णन किया गया है, वही सच है। उसमें जिनका विश्वास नहीं है, उनका तो सर्वनाश निश्चित है।

(१४८) गौः भाः—दशानन रावण 'शिवभक्त' नाम से प्रसिद्ध थे। शिभक्त होने पर भी उन्होंने शिव के आराध्य रघुनाथ की सेवा करने के बदले उनकी सेविका सीता का हरण करने की दुर्बुद्धि का पोषण किया। उस रुद्रभक्त दशानन को, जिसने रघुनाथ का विद्वेष–रूप अपकार्य किया था, उसके फलस्वरुप अपनी बुद्धि बिगड़ जाने के कारण अपने मस्तकों को खोना पड़ा। रघुनाथ ही शिव के मूल कारण एवं आराध्यदेव हैं, यह बात दशानन की दशदिगदर्शी बुद्धि में नहीं आई। इसलिए वास्तव में रुद्रदेव ने उसकी सेवा स्वीकार नहीं की थी। जो शिव को संतुष्ट करते हुये उनकी सवी करने में समर्थ होते हैं, उन लोगों का मंगल होता है; किन्तु रावण की पूजा से रुद्र संतुष्ट नहीं हुये और इस कारण उसकी सेवा स्वीकार नहीं हुई।

फलस्वरूप रावण अपने वंशधरों सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार श्रीअद्वैत के वंश में, अद्वैत-सेवा-प्रवृति में विपर्यय (विपरीतता) आ जाने के कारण अद्वैत के वंशधर एवं वंशधरों के अनुगतजन—सभी विष्णु-वैद्वणवों के प्रति विद्वैष-भाव का पोषण करने के कारण वैष्णव-समाज से सदा-सदा के लिए, अतिवाड़ीगण की भांति विच्युत हो गये हैं। श्रीचैतन्य की निन्दा करके अद्वैत के जो अधस्तन (वंशधर) एवं उनके अनुयायी अद्वैत प्रभु की चैतन्य-सेवा-वृत्ति को नहीं समझ पाये हैं, उन लोगों के लिए विष्णु-भक्ति मे अवस्थान करना सम्भव नही हैं।

कोई-कोई कहता है वृकासुर ने महादेव से ऐसा वर प्राप्त कर लिया था कि वह अपना हाथ जिसके सिर पर रख दें, वही भस्मीभूत हो जोयगा,—प्राप्त वर की परीक्षा लेने के लिए वही असुर महादेव के सिर पर ही अपना हाथ रखना चाहता था। इस प्रकार से रुद्रदेव को ही उसने उद्विग्न कर दिया। बाद में भगवान् विष्णु के परामर्श से जब उस असुर ने अपने ही मस्तक पर अपना हाथ रखकर वर की परीक्षा की, तब वह विनाश को प्राप्त हुआ। शिव-भक्तिपरायण रावण ने भी ऐसी ही अवस्था में पतित हो जाने के कारण शिव के आराध्य रघुनाथ की सेवा करने के बदले प्राकृत सहजियागण की भाँति भक्ति के नाम पर भोगों का आवाहन किया था। यही रावण की अपने सिर काटकर देने वाली शिवभक्ति थी। रघुनाथ से विद्वेष करने के कारण एवं शिव की आराध्या सीतादेवी की सेवा से विमुख हो जाने के कारण उसके आराध्यदेव शिव दशानन के प्रति विमुख हो गये। अद्वैत के अधस्तन (वंशधर) एवं उनके अनुयायी केवल नाम के वैष्णवगण हैं—जो श्रीचैतन्य एवं श्रीचैतन्यभक्तगण के प्रति विद्वेष रखते हुये अपनी भक्ति की बहादुरी का डंका पीटते रहते हैं, वे भी अन्त में उसी प्रकार की दुर्दशा को प्राप्त करते हैं।

(१५३-१५४) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव रूपवान् पुरुषोत्तम हैं तो श्रीअद्वैत-प्रभु श्रीचैतन्य के भूषण-सदृश हैं। इस बात को न समझकर श्रीअद्वैत प्रभु को श्यामसुन्दर एवं श्रीगौरचन्द्र को अद्वैत-प्रभु के आश्रित मानने से महाप्रभु का जो निन्दावाद उन तथाकथित अद्वैतानुयायी लोगों के बीच में परिव्याप्त हुआ था, उसके कारण वे अवश्य ही भक्तिराज्य से निकाले जा चुके है।

चैतन्य-सेवक की सर्वश्रेष्ठ महत्तता—

यत यत शुन यार यतेक बड़ाञि।
चैतन्येर सेवा हइते आर किछु नाञि॥१५७॥

(१५७) प० अनु०—घमंड के मारे चाहे कोई कुछ भी कहे, किन्तु यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि, चैतन्य की सेवा से बढ़कर और कुछ भी नहीं है।

(१५७) गौः भाः—जो जितने अधिक परिमाण में श्रीचैतन्य-सेवापरायण है, वह उतना ही महान् है। ऊँच-नीच के निरूपण में श्रीचैतन्य के प्रति सेवानुराग की तारतम्यता ही एकमात्र कसौटी हैं।

अपने-अपने भाग्य के अनुसार गौर-निताइ की कृपा से भक्ति में आदर—

नित्यानन्द-महाप्रभु यारे कृपा करे।
यार येन भाग्य, भक्ति सेइ से आदरे॥१५८॥

(१५८) प० अनु०—नित्यानन्द और महाप्रभु जिन पर कृपा करते हैं, वे ही अपने-अपने भाग्य के अनुसार भक्ति को सम्मान प्रदान करते हैं।

(१५८) गौः भाः—जो जितने अधिक सेवोन्मुख हैं, वे उतने ही भाग्यशाली हैं एवं श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु उनकी भक्ति के परिमाण के अनुसार उनका उतना ही आदर करते हैं। भक्तजन भी उस परिमाण के अनुसार गौर–नित्यानन्द के चरणों में सेवा परायण होते हैं।

सभी को नित्यानन्द प्रभु का उपदेश—

अहर्निश लओयाय ठाकुर नित्यानन्द।
''बल भाइ सब—'मोर प्रभु गौरचन्द्र'॥''१५९॥
चैतन्य स्मरण करि' आचार्य गोसाईं।
निरवधि कान्दे, आर किछु स्मृति नाइ॥१६०॥
इहा देखि' चैतन्येते यार भक्ति नय।
ताहार आलापे हय सुकृतिर क्षय॥१६१॥

(१५९–१६१) प० अनु०—नित्यानन्द ठाकुर सभी को दिन–रात यही उपदेश प्रदान करते हैं कि, "बोलो भाइयों! गौरचन्द्र मेरे प्रभु हैं।" आचार्य गोसाईं (श्रीअद्वैत) चैतन्य का स्मरण करते हुये निरन्तर रोते रहते हैं, उन्हें और कुछ स्मरण ही नहीं हैं। यह सब देखकर भी चैतन्य के प्रति जिनके हृदय में भक्ति का उदय नहीं होता है, उनके साथ बातचीत करने से भी सुकृति का क्षय होता है।

(१६१) गौः भाः—श्रीअद्वैत–प्रभु निरन्तर श्रीचैतन्य का स्मरण करते रहते हैं और प्रेम से क्रन्दन करते रहते हैं। वे चैतन्य के चिन्तन के अतिरिक्त और किसी की चिन्ता नहीं करते हैं। यह सब देखकर भी जिन व्यक्तियों के हृदय में श्रीचैतन्यदेव के प्रति विशेष भाव से भक्ति का उदय नहीं होता है, ऐसे व्यक्तियों के साथ बातचीत करने से जीवों का सौभाग्य उदय होना तो दूर, उल्टे भक्ति से ही वे वंचित हो जाते हैं।

वैष्णवाग्रगण्य–बुद्धि–द्वारा अद्वैत की सेवा से शुद्ध वैष्णवाग्रगण्य एवं कृष्णपद की प्राप्ति—

वैष्णवाग्रगण्य–बुद्धये ये अद्वैत गाय।
सेइ से वैष्णव, जन्मे जन्मे कृष्ण पाय॥१६२॥
अद्वैतेर सेइ से एकान्त प्रियतर।
ए मर्म ना जाने यत अधम किंकर॥१६३॥

(१६२–१६३) प० अनु०—अद्वैत आचार्य वैष्णवों के अग्रणी हैं, इस बुद्धि (विचार) से जो अद्वैत के गुणों का कीर्तन करते हैं, वे ही वैष्णव हैं, वे ही जन्म–जन्म में श्रीकृष्ण को प्राप्त करते हैं तथा वे ही अद्वैत के एकान्त प्रियपात्र हैं और जो उनके अधम किंकर है, उन्हें इस रहस्य के बारे में कुछ भी पता नहीं हैं।

(१६२) गौः भाः—वैष्णवों में अद्वैत सर्वश्रेष्ठ हैं, इस ज्ञान से जो श्रीअद्वैत प्रभु की सेवा करेंगे, उन्हें ही 'वैष्णव' कहा जायेगा, और जो अद्वैत–प्रभु को विषय–जातीय अर्थात् 'कृष्ण' के रूप में मानेंगे और श्रीगौरसुन्दर को आश्रय जातीय अर्थात् भक्त के रूप में मानेंगे, वे कभी भी कृष्णपादपद्मों की प्राप्ति नहीं कर पायेंगे। जो अद्वैत प्रभु को वैष्णव–श्रेष्ठ के रूप में जानेंगे वे ही सभी जन्मों में कृष्णसेवा के अधिकारी होंगे।

(१६३) गौः भाः—श्रीअद्वैत–प्रभु के प्रकृत (यथार्थ) दासगण यह जानते हैं कि श्रीअद्वैत, श्रीचैतन्य के आश्रित हैं और वे उनके सर्वाधिक प्रिय हैं। दूसरे, जो अद्वैत–प्रभु को नित्यकृष्णदास के रूप में नहीं जानते हैं, वे अपने को अद्वैत के भृत्य समझते हुये भी नितान्त अधम प्रकृति के लोग हैं। प्रकृत (वास्तविक) सत्य का आवरण करके जो व्यक्ति भक्ति की छलना से अपने अहंकार को प्रकाशित करते हैं, वे अद्वैत के प्रीतिभाजन कभी नहीं हो सकते।

अद्वैत को 'श्रीचैतन्याश्रित' जानने वालों को ही अद्वैत-प्रीति की प्राप्ति—

सबार ईश्वर प्रभु गौरांगसुन्दर।
ए कथाय अद्वैतेरे प्रीति बहुतर॥१६४॥
अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा।
इहाते सन्देह किछु ना कर सर्वथा॥१६५॥
अद्वैतेरे बलिया गीतार सत्य पाठ।
विश्वम्भर लुकाइल भक्तिर कपाट॥१६६॥

(१६४-१६६) प० अनु०—"प्रभु श्रीगौरांग सुन्दर सबके ईश्वर हैं"—इस बात को अद्वैत बहुत आदर देते हैं। अद्वैत ने अपने श्रीमुख से जो कुछ भी कहा हैं, उसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिए। अद्वैत को गीता का सत्य पाठ सुनाकर विश्वम्भर ने मानों भक्ति के किवाड़ो को बन्द कर दिया।

(१६६) गौः भाः—अद्वैत के अधस्तन-ब्रवगण (तथाकथित वंशधर) एवं उन वंशधरों के अनुगतजन चिरकाल से ही श्रीअद्वैत-प्रभु के स्वरूपज्ञान—विपर्यय-

हेतू, उनको श्रीचैतन्य की शिक्षा से शिक्षित न मानकर मायावाद का आश्रय लेने से, भक्ति से वंचित हो गये हैं, एवं कर्म-ज्ञान आदि (अभीक्त) को ही गीतार्थ के रूप में मानते रहे हैं, और उसी का प्रचार करते रहे हैं। श्रीअद्वैत-प्रभु को ही अन्तरंग-भक्त जानकर श्रीचैतन्यदेव ने शिक्षा दी थी; परन्तु उनके अनुगत-ब्रुव (बनावटी अनुयायी) अधम किंकरगणों को मायावाद-रूपी कूप में डालकर एवं कृष्णभक्ति संबन्धी किवाड़ो को बन्द करके कर्मराज्य में सुख दुःखो का भोग करने के लिए 'स्मार्त' बना दिया था। 'अद्वैत की सन्तान' के रूप में परिचित होने की आकांक्षा रखने वाले इन मनुष्यों में आज भी कर्मवाद का प्राचर्य एवं मायावाद के प्रति आग्रह देखने को मिलता है। इसलिए इन लोगों को भक्तिपथ के आचरणशील पथिक के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। बल्कि, यह बात अच्छी तरह से जान लेनी चाहिए कि, ये लोग सेवा-मन्दिर के बन्द दरवाजे के बाहर ही खड़े हुये हैं।

श्रीविश्वम्भर की सबको अपना-अपना मन-चाहा वर प्रदान की अभिलाषा—

श्रीभुज तुलिया बले प्रभु विश्वम्भर।
''सबे मोरे देख, माग यार येइ वर॥''१६७॥
आनन्दित हैला सबे प्रभुर वचने।
यार येइ इच्छा, मागे ताहार कारणे॥१६८॥

(१६७-१६८) प० अनु०—अपनी सुन्दर भुजा को ऊपर उठाकर प्रभु विश्वम्भर बोले, "सब मेरी ओर देखो, और मन-चाहा वर माँग लो।" प्रभु के वचन सुनकर सभी आनन्दित हुये और इस कारण सबने अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार वर माँग लिये।

अद्वैत के द्वारा जन्म, ऐश्वर्य, श्रुत आदि के अभिमान से रहित व्यक्तियों के लिए कृपा की भिक्षा—

अद्वैत बलये,—''प्रभु मोर एइ वर।
मूर्ख, नीच, पतितेरे अनुग्रह कर॥''१६९॥

(१६९) प० अनु०—अद्वैत बोले,—"हे प्रभु! आप मूर्ख, नीच और पतितों पर कृपा कीजिए। बस, इसी वर की मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ।"

(१६७-१६९) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने जब वर देना चाहा, तब श्रीअद्वैत ने प्रार्थना कर रहा हूँ।"

सबके द्वारा बहुविध भावों के साथ भक्ति के अनुकूल व की प्रार्थना—

केह बोले,—''मोर बापे ना देय आसिवारे।
तार चित्त भाल हउक देह' एइ वरे॥''१७०॥
केह बले शिष्य प्रति, केह पुत्र प्रति।
केह भार्या, केह भृत्य, यार यथा रति॥१७१॥
केह बले,—'आमार हउक गुरु-भक्ति'।
एइ मत वर मागे, यार येइ युक्ति॥१७२॥

(१७०-१७२) प० अनु०—कोई बोला, —"मेरे पिताजी मुझे यहाँ नही आने देते हैं। आप यह वर दीजिए कि उनके हृदय का भाव अच्छा हो जाए।" इसी प्रकार अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कोई शिष्य के लिए, कोई पुत्र के लिए, कोई पत्नी के लिए तो कोई भृत्य के लिए वर माँगने लगा। किसी ने प्रार्थना की,—"आप ऐसा वर दीजिए कि मुझसे गुरु के प्रति भक्ति हो जाए।" इस प्रकार से सभी व्यक्तियों ने अपने-अपने विचार के अनुसार वर माँग लिए।

(१७०) गौः भाः—किसी व्यक्ति ने वर के लिए याचना करते हुये कहा,-"मेरे शुभाकांक्षी अभिभावक पिताजी मुझे भक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ने से मना करते हैं। आप ऐसा वर दीजिए, जिससे कि उनके हृदय का भाव परिवर्तित हो जाए और वे मेरे कृष्णानुशीलन में बाधा उत्पन्न न करें।"

(१७१-१७२) गौः भाः०—कोई-कोई वर-प्रार्थना में बोला,—"मेरे शिष्य, मेरे पुत्र, मेरी पत्नी, मेरे भृत्यगण आपके प्रति सेवा के लिए तत्पर हो जाएँ।" किसी ने कहा, —"मेरी गुरू-पादपद्मों में सेवा-प्रवृति की वृद्धि हो जाए।" अपनी-अपनी बुद्धि एवं युक्ति के अनुसार उन्होंने विभिन्न प्रकार के वरों की प्रार्थना की थी।

विश्वम्भर-द्वारा सबको प्रार्थित वर प्रदान—

भक्तवाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर।
हासिया हासिया सबाकारे देन वर॥१७३॥

(१७३) प० अनु०—भक्तों के वाक्यों को सत्य करने वाले प्रभु विश्वम्भर ने हँसते हुये सबको वर प्रदान किये।

प्रभु के कीर्तनकारी मुकुन्द का
अवस्थान पर्दे के पीछे—

मुकुन्द आछेन अन्तःपटेर बाहिरे।
सम्मुख हइते शक्ति मुकुन्द ना धरे॥१७४॥
मुकुन्द सबार प्रिय परम महान्त।
भालमते जाने सेइ सबार वृत्तांत॥१७५॥
निरवधि कीर्तन करये प्रभु शुने।
कोन जन ना बुझे,—तथापि दण्ड केने॥१७६॥
ठाकुरेह नाहि डाके, आसिते ना पारे।
देखिया जन्मिल दुःख सबार अन्तरे॥१७७॥

(१७४-१७७) प० अनु०—मुकुन्द घर के पर्दे के पीछे खड़े थे। उनमें प्रभु के सामने आने की शक्ति नहीं थी। परम महान् मुकुन्द सबके प्रिय थे। वे सबका वृत्तान्त भली-भाँति जानते थे। वे निरन्तर कीर्तन किया करते थे और प्रभु सुनते रहते थे। तथापि यह दण्ड किसलिए था, कोई समझ नहीं पर रहा था। ठाकुर भी उन्हें नहीं बुलाते थे, इसलिए वे आ नहीं था। यह देखकर सबके हृदय में दुःख हुआ।

(१७४) गौः भाः—अन्तः पट—अन्तः (अभ्यन्तर) का पट (परदा) भीतर का वस्त्र।

महाप्रभु के चरणों में मुकुन्द
के लिए श्रीवास-द्वारा निवेदन,
इसमें महाप्रभु की अनिच्छा—

श्रीवास बलेन—''शुन जगतेर नाथ।
मुकुन्द कि अपराध करिल तोमात?१७८॥

मुकुन्द तोमार प्रिय, मो' सबार प्राण।
केवा नाहि द्रवे शुनि' मुकुन्देर गान?१७९॥
भक्तिपरायण सर्वदिगे सावधान।
अपराध ना देखिया कर अपमान॥१८०॥
यदि अपराध थाके, तार शास्ति कर।
आपनार दासे केने दूरे परिहर?१८१॥
तुमि ना डाकिते नारे सम्मुख हइते।
देखुक तोमारे प्रभु, बल भाल मते॥''१८२॥
प्रभु बले,—''हेन वाक्य कभु ना बलिवा।
ओ बेटार लागि मोरे कभु ना साधिवा॥१८३॥
'खड़ लय, जाठि लय', पूर्वे ये शुनिला।
अइ बेटा सेइ हय, केह ना चिनिला॥१८४॥
क्षणे दन्ते तृण लय, क्षणे जाठि मारे।
ओ खड़जाठिया बेटा ना देखिवे मोरे॥''१८५॥

(१७८–१८५) प० अनु०—श्रीवास ने कहा, —"हे जगत् के स्वामी, सुनिए! आपके चरणों में मुकुन्द ने क्या अपराध किया है? मुकुन्द तो आपके प्रिय है और हम आपके प्राण हैं। ऐसा कौन हैं जो मुकुन्द का कीर्तन सुनकर द्रवीभूत नहीं होता? वे भक्तिपरायण है और सभी कार्यों को सावधानी के साथ करते हैं। उनका कोई अपराध दिखाई नहीं देता, फिर आप उनको अपमानित करते रहते हैं। यदि उन्होनें कोई अपराध किया है, तो आप उन्हें दण्डित कीजिए। आप अपने सेवक को दूर क्यों रखते हैं? आपके बिना बुलाये वे आपके सामने नहीं आ सकते हैं। हे प्रभो, आप कृपया उन्हें बुलाइए, ताकि वे भी आकर आपके दर्शन कर सकें।" प्रभु कहने लगे, —"ऐसे वचन फिर कभी मत कहना, उसके लिए कभी मुझसे अनुरोध भी मत करना। पहले जो सुना करते थे कि, 'तृण भी लेते हैं, लाठी भी लेते है' वह उसी प्रकार का व्यक्ति है। तुम मे से कोई भी उसको पहचान नहीं पाया। क्षण में वह दाँतों में तृण ले लेता है, और क्षण में लाठी से मारने लगता है। वह 'खढ़जाठिया' (कभी दांभिक, कभी विनम्र) व्यक्ति मेरे दर्शन करने में समर्थ नहीं हैं।"

(१८१) गौः भाः—श्रीवास ने मुकुन्द का प्रसंग चलाते हुये उनको सम्मुख बुलाने के लिए प्रभु के सामने प्रस्ताव रखा। इसके उत्तर में प्रभु क्रोधित होकर कहने लगे—"उस पर कृपा करने के लिए कभी भी मुझसे अनुरोध मत करना"।

(१८५) गौः भाः—कभी मुकुन्द दाँतों में तृण धारण करके अपनी दीनता प्रकाशित करता है तो कभी मुझ पर आक्रमण करता है। उसके विचार के अनुसार उसका एक हाथ हमारे चरणों में है और दूसरा हमारी गरदन पर। जब मौका मिलता है, तब वह मेरा अनुगतजन बन जाता है, फिर किसी और अन्य समय वह मेरी निन्दा करता है। मुकुन्द–समन्यवादी है। जब जैसी सुविधा होती है, वह उसी परिचय से अपने अमंगल को वरण करता है। इसलिए उसे वर देने को कोई प्रयोजन में अनुभव नहीं करता हूँ। कभी वह अद्वैत के साथ मिलकर 'योग–वाशिष्ठ'–नामक ग्रन्थ का आदर करते हुये मायावाद का समर्थन करने लगता है; तो कभी मायावाद का परित्याग करके कृष्णानुशीलन करने की इच्छा से अपनी दीनता प्रकाशित करने लगता है। जब मैं "तृण से भी अधिक सुनीच तथा तरु की भाँति सहनशील" होकर दूसरों को मान–दान करते हुये अपने सम्मान की आकांक्षा को त्यागकर सदा हरिभजन करने का उपदेश देता हूँ, तब मुकुन्द 'अद्वैत का दास' होने का सहारा लेकर 'ब्रह्म' हो जाने की इच्छा से सहनशीलता का परित्याग करके वेदांत की अनुचित व्याख्या वाले योग–वाशिष्ठ को

समर्थन देने लगता है। फिर कभी वैष्णवों का संग करने की इच्छा से श्रीमद् भागवत की दीनता से भूषित होने की चेष्टा करते हुये वह 'भक्त' के रूप में अपना परिचय देता है।

श्रीवास–द्वारा पुनः निवेदन किये जाने पर महाप्रभु का प्रत्युत्तर–

महावक्ता श्रीनिवास बले आर बार।
''बुझिते तोमार शक्ति कार अधिकार?१८६॥
आमरा त मुकुन्दरे दोष नाहि देखि।
तोमार अभय पादपद्य तार साक्षी॥''१८७॥
प्रभु बले,—''ओ बेटा यखन यथा याय।
सेइमत कथा कहि' तथाइ मिशाय॥१८८॥
वाशिष्ट पड़ये यवे अद्वैतेर संगे।
भक्तियोगे नाचे गाय तृण करि' दन्ते॥१८९॥
अन्य सम्प्रदाये गिया यखन साम्भाय।
नाहि माने भक्ति, जाठि मारये सदाय॥१९०॥
''भक्ति हइते वड़ आछे,'—ये इहा वाखाने।
निरन्तर जाठि मोरे मारे सेइ जने॥१९१॥
भक्तिस्थाने उहार हइल अपराध।
एतेके उहार हइल दरशनबाध॥''१९२॥

(१८६–१९२) प० अनु०—महान, वक्ता श्रीनिवास फिर एकबार बोले,—"आपकी शक्ति को समझने का अधिकर भला किसको है? हमें तो मुकुन्द का कोई दोष दिखाई नहीं देता है। आपके अभय पादपद्म इस बात के साक्षी हैं।" प्रभु कहने लगे,—"यह व्यक्ति जब जहाँ जाता है, तब वहाँ के मत को अपना लेता है और उसी के अनुसार व्यवहार करने लगता है। जब अद्वैत के साथ होता है, तब योग–वशिष्ठ का अध्ययन करता है और जब भक्तियोग में आता है, तब दाँतों में तृण लिये नृत्य और कीर्तन करने लगता है। जब दूसरे सम्प्रदायों से मिलता है, तब भक्ति को नहीं मानता है, सदा लाठी मारता है जो ऐसी व्याख्या करते हैं कि, 'भक्ति से भी बढ़कर कुछ और है'—वे निरन्तर मुझ पर लाठी से प्रहार करते रहते है। यह भक्ति–महारानी के चरणों का अपराधी है; इसलिए वह मेरे दर्शन नहीं कर पायेगा।"

(१९०) गौः भाः—मुकुन्द जब मायावादियों के सम्प्रदाय में प्रवेश करता है, तब भक्ति के नित्यत्त्व को अस्वीकार करके तर्कयुद्ध में भक्तजनों पर आक्रमण करता है। साम्भाय—प्रवेश करताहै। अन्य सम्प्रदाय—माया वाद–सम्प्रदाय।

(१९१) गौः भाः—कर्म, ज्ञान, योग, स्वाध्याय– प्रभृति सभी अभिधेय भक्ति के समान अथवा भक्ति से भी श्रेष्ठ साधन हैं, —जो लोग ऐसा कहते हैं, वे ही मेरे ऊपर प्रहार करते हैं।

जाठि–छड़ी या लाठी। पंजाब में 'जाट' नाम का एक लगुड़धारी सम्प्रदाय वर्तमान है। आगे उनमें से अनके लोगों ने नानक–द्वारा प्रवर्तित शिष्य–सम्प्रदाय में प्रवेश किया है।

(१९२) गौः भाः—जो लोग कर्म, ज्ञान, योग, तपस्या–प्रभृति का अवलम्बन करते हैं, उन सब व्यक्तियों को भक्ति का स्वरूप समझ में नहीं आता है और इसलिए वे भक्तिदेवि के चरणों में अपराध कर बैठते हैं। उन सब अपराधीजनों को भगवद्–भक्तगण संग प्रदान नहीं करते हैं। इस कारण मैं भी कर्मी अथवा मायावादी को किसी भी अवस्था में अपने सामने नहीं देखना चाहूँगा।

महाप्रभु के वाक्यों को सुनकर मुकुन्द–द्वारा विचार एवं खेद में देह को त्याग देने का संकल्प–

मुकुन्द शुनये सब बाहिरे थाकिया।

ना पाइव दरशन—शुनिलेन इहा ॥१९३ ॥
गुरु–उपरोधे पूर्वे ना मानिलुँ भक्ति।
सब जाने महाप्रभु—चैतन्येर शक्ति ॥१९४ ॥
मने चिन्ते मुकुन्द परम भागवत।
''ए देह राखिते मोर ना हय युक्त ॥१९५ ॥
अपराधी शरीर छाड़िव आजि आमि।
देखिव कतेक काले—इहा नाहि जानि ॥''१९६ ॥

(१६३–१९६) प० अनु०—बाहर रहकर मुकुन्द ने यह सब सुना और यह भी सुना कि, वह दर्शन नहीं कर पायेगा। गुरू की शिक्षा अनुसार पहले मैंने भक्ति को स्वीकार नहीं किया–इस बात को महाप्रभु जानते हैं। चैतन्य की यही शक्ति है कि, वे सब कुछ जानते हैं। परम भागवत मुकुन्द ने मन में ऐसा विचार किया और निर्णय लिया कि, "अपने इस शरीर को रखना उचित नहीं है।" "इस अपराध–भरे शरीर को मैं आज ही त्याग दूँगा। फिर कब प्रभु के दर्शन कर सकूँगा,–यह मैं नहीं जानता हूँ।

(१९४) गौः भाः—इससे पहले मैंने साम्प्रदायिक शिक्षा–क्रम के अनुसार भक्ति की सर्वश्रेष्ठता को स्वीकार नहीं किया था–इस बात को महाप्रभु जानते हैं। कृष्णभक्ति–शक्तिमत्तत्त्व श्रीचैतन्यदेव की शक्ति है, इस कारण मैं अपराधी हूँ। शुद्ध जीव की नित्यवृत्ति को ही 'भक्ति' कहते हैं। जीवमात्र ही इस भक्ति–वृत्ति में अवस्थित है; किन्तु दुर्भागयवश इस भक्ति को छोड़ने पर वे अन्य–प्रवृत्तिरूपी अपराधों का आहरण (संग्रह) कर लेते हैं।

(१९७–१९८) प० अनु०—मुकुन्द बोले,–"हे ठाकुर श्रीवास, सुनो! क्रपया प्रभु से पूछो तो सही कि,–क्या मैं कभी भी उनके दर्शन कर पाऊँगा? ऐसा कहते हुये मुकुन्द जोर–जोर से रोने लगे और मुकुन्द का दुःख देखकर भागवतगण भी क्रन्दन करने लगे।

मुकुन्द–द्वारा श्रीवास के माध्यम से
महाप्रभु से जिज्ञासा एवं अनुताप—

मुकुन्द बलेन,—''शुन ठाकुर श्रीवास।
'कभु कि देखिमु मुञि' बल प्रभुपाश?''१९७ ॥
कान्दये मुकुन्द हइ' अझोर नयने।
मुकुन्देर दुःखे कान्दे भागवतगणे ॥१९८ ॥

(१६७–१९८) गौः भाः—महाप्रभु के वाक्य को सुनकर मुकुन्द समझ गये कि प्रभु उनके प्रति बहुत असंतुष्ट हैं एवं उन्हें दर्शन नहीं देंगे। इसलिए श्रीवास को सम्बोधित करते हुये मुकुन्द ने कहा,–"कितने दिनों के बाद मैं महाप्रभु के सामने आने का अधिकार प्राप्त करूँगा?" ऐसा कहते हुये मुकुन्द दुःखित होकर बहुत क्रन्दन करने लगे।

दीर्घकाल के पश्चात् महाप्रभु से कृपा–प्राप्ति
की आशा में मुकुन्द–द्वारा आनन्द–प्रकाश—

प्रभु बले—''आर यदि कोटि जन्म हय।
तबे मोर दरशन पाइवे निश्चय ॥''१९९ ॥
शुनिल निश्चय प्राप्ति प्रभुर श्रीमुखे।
मुकुन्द सिंचित हइला परानन्दसुखे ॥२०० ॥
'पाइव पाइव बलि' करे महानृत्य।
प्रेमेते विह्वल हइला चैतन्येर भृत्य ॥२०१ ॥
महानन्दे मुकुन्द नाचये सेइखाने।
'देखिवेन' हेन वाक्य शुनिया श्रवणे ॥२०२ ॥

(१९९–२०२) प० अनु०—प्रभु बोले,—" यदि मुकुन्द के कोटि जन्म और हों, तब उसे निश्चित रूप से मेरे दर्शन मिलेंगे।" प्रभु के श्रीमुख से 'निश्चित प्राप्ति' की बात सुनकर मुकुन्द परानन्द सुख से सिंचित हो गये। 'मुझे मिलेंगे, मुझे मिलेंगे।' कहकर वे महानृत्य करने लगे। चैतन्य के भृत्य प्रेम में

विह्वल हो गये। 'देख सकेंगे' यह बात कानों से सुनकर असी स्थान पर मुकुन्द महा आनन्द में नृत्य करने लगे।

(१९९) गौः भाः—उत्तर में प्रभु ने कहा, —"कोटि जन्म के पश्चात् मुकुन्द को दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

(२००–२०१) गौः भाः—प्रभु के मुख से 'कोटि' जन्म के बाद भक्ति मिलेगी एवं उनके दर्शन की प्राप्ति होगी, यह जानकर मुकुन्द आनन्दित हो गये; क्योंकि, भगवत् भक्तों के विचारानुसार मायावादीगण का नित्य विनाश होता है,—इसलिए वे कभी भी भक्ति के अधिकारी नहीं होंगे यह जानकर मुकुन्द को परम सुख हुआ कि, उसे इस नित्य विनाश वाली व्यवस्था के अधीन नहीं आना पड़ेगा। जीवों की नित्यवृति भक्ति निर्भेद–ब्रह्मानुसंधान के फल की प्राप्ति के समय सदा के लिए लुप्त हो जाती है "सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः' एवं—महाप्रसाद का असम्मान करने से "ब्रह्मवन्निर्विकारं हि यथा विष्णुस्थैव तत्। विकारं ये प्रकुर्वन्ति भक्षणे तद्विजातयः॥ कुष्ठव्याधिसमावर्तते पुनः॥" एवं—"यो व्यक्ति न्यायरहिमन्याये शृणोति यः। तावुभौ नरकं घोरं व्रजतः कालमक्षयम्"—इत्यादि श्लोको का विचार मुकुन्द के चिंतास्त्रोत में आ गया था; इस कारण उसके हृदय में निराशा छा गयी थी। फिर जब उसने सुना कि, 'कोटि जन्म के पश्चात भक्ति मिलेगी'—तब उस आश्वासनपूर्ण वाणी के कारण उसको निराशा से मुक्ति मिली और परानन्द सुख का उदय हुआ। श्रीचैतन्य की अपार करुणा का स्मरण करके उसने प्रेमविह्वलित हृदय से प्रचंड नृत्य आरम्भ कर दिया। दर्शन–प्राप्ति होगी, यही मुकुन्द के उल्लास का कारण था।

भक्तवशवर्त्ती भगवान्–द्वारा भक्तसेवा के वशीभूत होकर अपने संकल्प में परिवर्तन—

मुकुन्दे देखिया प्रभु हासे विश्वम्भर।
आज्ञा हैल,—'मुकुन्देरे आनह सत्वर॥'२०३॥
सकल वैष्णव डाके 'आइसह मुकुन्द'।
ना जाने मुकुन्द किछु पाइया आनन्द॥२०४॥
प्रभु बले—''मुकुन्द, घुचिल अपराध।
आइस, आमारे देख, धरह प्रसाद॥''२०५॥
प्रभुर आज्ञाय सबे आनिल धरिया।
पड़िल मुकुन्द महापुरुष देखिया॥२०६॥
प्रभु बले—''उठ उठ मुकुन्द आमार।
तिलार्द्धेक अपराध नाहिक तोमार॥२०७॥
संगदोष तोमार सकल हइल क्षय।
तोर स्थाने आमार हइल पराजय।
'कोटि जन्मे पाइवा' हेन बलिलाम आमि।
तिलार्द्धेक सब ताहा घुचाइले तुमि॥२०९॥
अव्यर्थ आमार वाक्य—तुमि से जानिला।
तुमि आमा सर्वकाल हृदये बांधिला॥२१०॥
आमार गायन तुमि, थाक आमा संगे।
परिहासपात्र–संगे आमि कैल रंगे॥२११॥
सत्य यदि तुमि कोटि अपराध कर।
से–सकल मिथ्या, तुमि मोर प्रिय दृढ़॥२१२॥
भक्तिमय तोमार शरीर—मोर दास।
तोमार जिह्वाय मोर निरन्तर वास॥''२१३॥

(२०३–२१३) प० अनु०—मुकुन्द को देखकर प्रभु विश्वम्भर हँसने लगे। उन्होंने सबको आज्ञा दी कि, "मुकुन्द को तुरन्त ले आओ।" सभी वैष्णवों ने पुकार, 'आ जाओ मुकुन्द'। यह सुनकर मुकुन्द आनन्द में सब कुछ भूल गये। प्रभु ने कहा—"मुकुन्द, तुम्हारा अपराध दूर हुआ। आ जाओ, मुझे देखो, और यह प्रसाद ले लो।" प्रभु की आज्ञा से सब लोग मुकुन्द को पकड़कर ले आये। महाप्रभु

के दर्शन करके मुकुन्द भूमि पर गिर गये। यह देखकर प्रभु बोले,—"उठ जाओ, मेरे मुकुन्द, उठ जाओ! अब तुममें आधा तिल-मात्र भी अपराध नहीं है। तुम्हारा संग-जनित सब दोष दूर हुआ। मैं तुमसे हार गया। मैंने ऐसा कहा था कि, 'कोटि जन्म के पश्चात् दर्शन मिलेगा', किन्तु तुमने आधे पल में ही सब अपराध को हटा दिया। मेरा वाक्य कभी भी व्यर्थ नहीं होता है—यह तुमने जान लिया है और तुमने सदा के लिए मुझे अपने हृदय में बन्दी बना दिया है। तुम मेरे गायक हो, मेरे साथ रहो। तुम मेरे परिहास के पात्र हो, इसलिए हमने तुम्हारे साथ यह रंग जमाया है। सचमुच यदि तुम कोटि अपराध भी करोगे, तब भी वे सब मिथ्या हो जाएँगे। तुम यह शरीर भक्ति से भरपूर है। तुम्हारी जिह्वा पर मैं निरन्तर वास करता हूँ।"

(२०८) गौः भाः—भगवान् प्रेम में बँधे हैं। प्रेम के द्वारा ही भक्त भगवान् को इस प्रकार विवश करने में समर्थ होते हैं। वे सदा भगवान् के अभिप्राय को परिवर्तित करने में भी सफल हो जाते हैं। महाप्रभु ने कहा,—मुकुन्द! मेरी असाधारण शक्ति ने भी तुम्हारी प्रीति-सेवा के सामने पराजय स्वीकार कर ली है। तुम भगवान् के नित्यदास हो। परन्तु कुछ देर के लिए बुरे संग का प्रभाव तुम पर पड़ गया था और तुम अपनी नित्यवृत्ति को भूल गये थे। इसका कारण तुम्हारा संग-दोष था। अब भगवान् के नित्य-भक्तजनों के संगप्रभाव से तुम्हारी अभक्तिपथ की अनित्यरुचि परिवर्तित होकर नित्य रुचि के रूप में उदित हुई है। अतएव तुम्हारी भगवद्-विमुखता पूर्ण रूप से दूर हो गई है। तुम भगवद् भक्ति प्राप्त करोगे। लेकिन व्यवधानों का विचार कर मैंने अपराध के अनुसार तुम्हें फिर से भक्ति मिलने का समय 'कोटिजन्म' निर्धारित किया था, परन्तु तुमने उत्कट सेवा-प्रवृत्ति के जोर से मेरे-द्वारा निर्दिष्ट काल का निमेष-मात्र में ही अतिक्रमण करने की शक्ति प्राप्त कर ली। तुम्हारी शक्ति के सामने मेरी शक्ति ने पराजय स्वीकार की ली है।

(२१०) गौः भाः—तुम्हारी भक्ति का परिमाण अत्यन्त अधिक है। इसलिए तुमने मेरा वचनादेश शिरोधार्य किया एवं विश्वास किया कि, तुम्हारी भक्ति वृत्ति फिर जाग उठेगी। तुमने यह दृढ़ धारण भी कर ली थी कि, कोटि जन्म के बाद ही भक्ति मिलेगी। क्योंकि तुमने मुझे हृदय में बिठाकर सदा के लिए बन्दी बना लिया है एंव मेरे वचनों में सुदृढ़ आस्था की स्थापना कर ली, इसलिए, वास्तव में मैं अब तुम्हारे प्रति कभी भी अप्रसन्न नहीं हो सकता हूँ।

(२११) गौः भाः—तुम सदा भगवान् का कीर्तन करते रहते हो। इस कारण मैं निरन्तर तुम्हारे संग रहता हूँ। फिर मैंने यह जो कहा कि, कोटि जन्म के पश्चात् ही तुम्हें दर्शन मिलेगा, समझ लो कि, यह एक रहस्यमात्र है। तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो, इस कारण तुम्हारे साथ परिहास करने की प्रवृति मेरे स्वभाव में है।

(२१२) गौः भाः—नित्य भक्त, भजन में निपुण भक्त कभी भी अपराध नहीं करते हैं। यदि उस प्रकार की अपराध जैसी कोई बात प्रकाश में आती भी है, तब भी उस अपराध के लिए उन्हें कोई दण्ड ग्रहण नहीं करना पड़ता है। तुम्हारे जैसे भक्त के कोटि-कोटि अपराध होने पर भी तुम्हारा जैसा दृढ़-संकल्प एवं भक्ति के प्रति आदर से वह सब अपराध नहीं रह सकते हैं।

(२१३) गौः भाः—भगवद् भक्त के शरीर

में जो अंग–प्रत्यंग आदि वर्तमान हैं, वे सब अंग–प्रत्यंग आदि निरन्तर कृष्ण सेवा के लिए उद्यत रहते हैं। श्रीगौरसुन्दर—साक्षात नाममय हैं। इसलिए वे सदा मुकुन्द की जिह्वा पर वास करते थे। कृष्णदासों में प्रभु की नित्य उपलब्धि के लिए अनुक्षण सेवा–वृत्ति वर्तमान रहती है। इस कारण भगवान् को भी विवश होकर भक्त की जिह्वा पर निरन्तर अधिष्ठित रहना पड़ता है।

भक्ति का प्राधान्य स्वीकार न करने के कारण मुकुन्द का क्रन्दन एवं आत्म धिक्कार–रूप उदाहरण सहित भक्तिहीनता की निन्दा एवं भक्तियोग की प्रशंसा—

प्रभुर आश्वास शुनि' कान्दये मुकुन्द।
धिक्कार करिया आपनारे बले मन्द॥२१४॥
''भक्ति न मानिलुँ मुञि एइ छार मुखे।
देखिलेइ भक्तिशुन्य कि पाइव सुखे? २१५॥
विश्वरूप तोमार देखिल दुर्योधन।
याहा देखिवारे वेदे करे अन्वेषण॥२१६॥
देखिआओ सवंशे मरिल दुर्योधन।
ना पाइल सुख, भक्ति–शून्येर कारण॥२१७॥
हेन भक्ति ना मानिल आमि छार मुखे।
देखिले कि हैब आर मोर प्रेमसुखे?२१८॥
यखने चलिला तुमि रुक्मिणीहरणे।
देखिल नरेन्द्र तोमा गरुड़वाहने॥२१९॥
अभिषेक हैल राजराजेश्वर नाम।
देखिल नरेन्द्र सब ज्योतिर्मय–धाम॥२२०॥
ब्रह्मादि देखिते याहा करे अभिलाष।
विदर्भ–नगरे ताहा करिला प्रकाश॥२२१॥
ताहा देखि' मरे सब नरेन्द्रेर गण।
ना पाइल सुख,—भक्तिशून्येर कारण॥२२२॥
सर्वयज्ञमय रूप–कारण शूकर।
आविर्भाव हैला तुमि जलेर भितर॥२२३॥
अनन्त पृथिवी लागि' आछये दशने।
ये प्रकाश देखिते देवेर अन्वेषणे॥२२४॥
देखिलेक हिरण्य अपूर्व दरशन।
ना पाइल सुख, भक्तिशून्येर कारण॥२२५॥
आर महाप्रकाश देखिल तार भाइ।
महागोप्य, हृदये श्रीकमलार ठाञि॥२२६॥
अपूर्व नृसिंहरूप कहे त्रिभुवने।
ताहा देखि' मरे भक्तिशून्येर कारणे॥२२७॥
हेन भक्ति मोर छार मुखे ना मानिल।
ए बड़ अद्भुत,—मुख खसि' ना पड़िल॥२२८॥
कुब्जा, यज्ञपत्नी, पुरनारी, कलाकार।
कोथाय देखिल तारा प्रकाश तोमार?२२९॥
भक्तियोगे तोमारे पाइल तारा सब।
सेइखाने मरे कंस देखि' अनुभव॥२३०॥
हेन भक्ति मोर छार मुखे ना मानिल।
एइ बड़ कृपा तोर,—तथापि रहिल॥२३१॥
ये भक्तिप्रभावे श्रीअनन्त महाबली।
अनन्त ब्रह्माण्ड धरे हइ' कुतूहली॥२३२॥
सहस्र फणार एक फणे बिन्दु येन।
यशे मत्त प्रभु, नाहि जाने आछे हेन॥२३३॥
निराश्रये पालन करेन सबाकार।
भक्तियोगप्रभावे ए सब अधिकार॥२३४॥
हेन भक्ति ना मानिलुँ मुञि पापमति।
अशेष जन्मेओ मोर नाहि भाल गति॥२३५॥
भक्तियोगे गौरीपति हइला शंकर।
भक्तियोगे नारद हइला मुनिवर॥२३६॥
वेदधर्मयोगे नाना शास्त्र करि' व्यास।
तिलार्द्धेके चित्ते नाहि वासेन प्रकाश॥२३७॥
महागोप्य ज्ञाने भक्ति बलिला संक्षेपे।
सबे एइ अपराध—चित्तेर विक्षेपे॥२३८॥
नारदेर वाक्ये भक्ति करिला विस्तारे।

तबे मनोदुःख गेल,—तारिला संसारे॥२३९॥
कीट हइ' ना मानिलुँ मुञि हेन भक्ति।
आर तोमा देखिवारे आछे मोर शक्ति?''२४०॥

(२१४–२४०) प० अनु०—प्रभु–द्वारा दिये गये आश्वासन को सुनकर मुकुन्द रोने लगे और अपने को धिक्कारते हुये अपनी बुराइयों के बारे में कहने लगे। "मैं बहुत अभागा हूँ, मैंने भक्ति को स्वीकार नहीं किया। मुझ जैसा भक्तिरहित व्यक्ति आपके दर्शनों से क्या सुख प्राप्त कर पायेगा? दुर्योधन ने आपके उस विश्वरूप का दर्शन किया था, जिसे देखने के लिए स्वयं वेद अन्वेषण किया करते हैं, परन्तु विश्वरूप को देख करके भी दुर्योधन अपने वंश–सहित विनाश को प्राप्त हुआ; क्योंकि भक्तिहीनता के कारण उसे विश्वरूप का दर्शन करके भी कोई सुख नहीं मिला। उस भक्ति को मुझ जैसे भाग्यहीन व्यक्ति ने भी ग्रहण नहीं किया है, फिर अब आपको देखन से मुझे वह प्रेमसुख कहाँ से मिलेगा? जब आप रूक्मिणी देवी का हरण करने के लिए चल पड़े थे, तब राजाओं ने आपको गरुड़ के कंधों पर बैठ कर जाते हुये देखा था। राजराजेश्वर नाम से आपका अभिषेक हुआ था। उस समय सब राजाओं ने ज्योतिर्मय–धाम के रूप में आपके दर्शन किये थे। ब्रह्मा आदि भी जिस रूप को देखने के लिए सदा लालायित रहते हैं, उसे आपने विदर्भ–नगर में प्रकाशित किया था। आपके उस प्रकाश को देखकर सभी राजा हिंसा से जलने लगे—भक्ति–हीनता के कारण किसी को कोई सुख नहीं मिला। सर्वयज्ञमय कारण–शूकर के रूप में आप जल के भीतर आविर्भूत हुये थे। उस समय आपने अनन्त पृथ्वी को अपने दाँतों पर धारण किया था। उस प्रकाश को देखने के लिए देवता भी आपका सदा अनुसंधान किया करते हैं। हिरण्याक्ष ने आपके उस अपूर्व रूप का दर्शन किया परन्तु भक्तिहीनता के कारण उसे कोई सुख नहीं मिला। आपका एक और परम गोपनीय महाप्रकाश—जिसमें कमला आपके हृदय में विराजमान हैं, उसे उसके भाई हिरण्यकुशिपु ने देखा। उस प्रकाश को त्रिभुवन अपूर्व नृसिंहरूप में जानता है। किन्तु, उस रूप के दर्शन करके भी भक्ति–हीनता के कारण हिरण्यकशिपु मारा गया। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की भक्ति को मैंने नही माना, फिर भी मेरा मुँह अभी तक जहाँ जी तहाँ सुरक्षित है। कुब्जा, यज्ञपत्नी, पुरनारी, मालाकार—इन्होंने कहाँ देखा था आपका प्रकाश? भक्तियोग–द्वारा ही इन्होंने आपको प्राप्त किया था। कंस भी केवल मरते समय ही आपके स्वरूप का अनुभव कर पाया। भाग्यहीनता के कारण ऐसी महान् भक्ति को मैंने नहीं माना। तथापि आपने मुझ पर बहुत कृपा की है कि मैं जीवित हूँ। जिस भक्ति के प्रभाव से महाबली श्रीअनन्तदेव कुतुहल के साथ अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, धारण करते समय वे ऐसा अनुभव करते हैं कि अनन्त ब्रह्माण्ड उनके हजारों फनों में से एक फन पर मानों बिन्दु की भाँति बसे हुये हैं। क्योंकि अनन्त प्रभु आपके यशोगान में मस्त रहते हैं, इसलिए फण पर अनन्त ब्रह्माण्ड बसे हुये हैं,—इस बात का उन्हें ज्ञान भी नहीं रहता है। उनका अपना कोई आश्रय नहीं है, फिर भी वे सबका पालन–पोषण करते हैं। भक्तियोग के प्रभाव से ही उनका यह अधिकार है। मैं पापमति वाला हूँ, इसलिए मैंने इस भक्ति को आदर नही दिया। इसलिए अनके जन्मों में भी मुझे अपनी सद्गति होने की कोई आशा नही है।

भक्तियोग के कारण ही शंकर गौरीपति हुये हैं, भक्तियोग से ही नारद 'मुनिवर' बने है। व्यासदेव ने वेदधर्म की सहायता से नाना शास्त्रों को प्रणयन किया था। फिर भी, वे आधे पल के लिए भी हृदय में आनन्द का अनुभव नहीं कर पाये। क्योंकि उन्होंने परम गोपनीय विचार से भक्तियोग का संक्षेप से वर्णन किया, उनके चित्तविक्षेप का केवल यही एक अपराध था। पहले सभी शास्त्रों की रचना करने के बाद भी उन्हें संतुष्टि नहीं मिली, क्योंकि वही अपराध था उनका,—उनका मन भटक गया था। बाद में नारद के आदेशानुसार उन्होंने भक्ति का सविस्तार वर्णन किया, इस प्रकार उनके मन का दुःख दूर हुआ और संसार का उद्धार किया। मैं कीट-समान हूँ, इसलिए इस प्रकार की महान, भक्ति का मैंने सम्मान नहीं किया। अब आपको देख पाने की शक्ति मुझमें कहाँ रही?"

(२१५) गौः भाः—मुकुन्द ने कहा,—"मैं सेवारहित हूँ, अभागा व्यक्ति हूँ इसलिए मैंने काय, मन और वाक्य से भक्ति की प्रधानता को स्वीकार नहीं किया। भक्ति-सुखमय वस्तु है। मैं भक्तिहीन हूँ,—आपको देखने से भी क्या मुझको सुख मिलेगा?"

(२१६) गौः भाः—दुर्योधन-द्वारा विराटरूप का दर्शन—कुरूक्षेत्र में युद्धारम्भ होने से पहले महाराज युधिष्ठिर ने निरर्थक संग्राम से बचने के लिए कौरवपति दुर्योधन के पास श्रीकृष्ण को दूत के रूप में भेजा था और उनके माध्यम से आधा राज्य प्रदान करके दुर्योधन से संधि करने के लिए कहा था। दुर्योधन ने इसे स्वीकार न करके श्रीकृष्ण को ही बाँधने को षडयन्त्र रच डाला। इससे भगवान् श्रीकृष्ण क्रोधित हुये और दुर्योधन से बोले, —"दुर्योधन, तुम मुझे अकेला समझकर बाँधने की अभिलाषा कर रहे हो, परन्तु तुम्हारी यह धारणा मूढ़ता की परिचालक है। देख लो, तुम्हारे निकट ही पांडव, अंधक, वृष्णिगण, आदित्य, रुद्र, वसु, ऋषि आदि सब उपस्थित हैं।" ऐसा कहकर उच्च हास्य करते हुये श्रीकृष्ण के अंगों से विद्युत की भाँति रूपवान् और अग्निसदृश तेजस्वी अंगुष्ठ-परिमित देवगण, पाण्डवगण, अंधक एवं वृष्णिगण आविर्भूव होने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्ण अपने अंगों में विश्वरूप-प्रकाश के द्वारा दुर्योधन को संत्रस्त, भयभीत और कंपित करते हुये सभा को छोड़कर चले गये। (महाः भाः उद्योगपर्व १३०-१३१ अः)।

(२१७) गौः भाः—प्राकृत-विचारपरक व्यक्ति सभी प्राकृत जगत् को नश्वर विराट्रूप की भाँति देखते हैं। प्राकृत-ज्ञान में बलवान् दुर्योधन उस विश्वरूप को देखकर के भी भगवत्-स्वरूप के दर्शन से वंचित ही रहा, परिणामस्वरूप अपने वंश-सहित विनाश को प्राप्त हुआ। क्योंकि पुण्य कर्मों के प्रभाव से दुर्योधन भगवान् की बहिरंग शक्ति-द्वारा रचित जगत् में ईश्वर के दर्शन करते हुये भी, ईश्वर में प्राकृत बुद्धि रखने के कारण भगवद्स्वरूप के दर्शन नहीं कर पाया और इसी स्वरूप-दर्शन के अभाव के कारण सेवोन्मुख नहीं हो सका, इसलिए भक्ति-सुख की प्राप्ति दुर्योधन के भाग्य में सम्भव नहीं हो पायी; बल्कि भगवद्विरोधी हो जाने के कारण सेवाविमुख व्यक्तियों के योग्य दण्डस्वरूप संपूर्ण वंश के साथ उसका विनाश हो गया।

(२१८-२२२) गौः भाः—श्रीकृष्ण-द्वारा रुक्मिणीहरण-लक्ष्मीदेवी के अंश से उत्पन्न रूक्मिणी देवी ने विदर्भ के अधिपति भीष्मक की कन्या के रुप में जन्मग्रहण किया था। वे लोगों से श्रीकृष्ण के रूप-गुण आदि के बारे

में सुनकर मन-ही-मन उनके प्रति अनुरागिनी हो गई। राजा भीष्मक द्वारा श्रीकृष्ण को योग्य-पात्र समझकर उनके हाथों में रुक्मिणी के भाई कृष्णद्वेषी रुक्मी ने इस प्रस्ताव को नकार दिया और निर्णय लिया कि, शिशुपाल के हाथों में रुक्मिणी को समर्पित किया जाए। यह सुनकर रुक्मिणी बहुत ही दुःखित हुई और उसने श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग का उल्लेख करते हुये एक पत्र एक विश्वस्त ब्राह्मण के हाथों श्रीकृष्ण के समीप भिजवाया। उसने अनुरोध किया कि, शिशुपाल आकर उसको ग्रहण कर लें एवं ग्रहण करने के कौशल के बारे में भी श्रीकृष्ण को निर्देश प्रदान किया। भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण के साथ रथ मे आरोहण करके विवाह के पहले दिन विदर्भ राज्य मे उपस्थित हो गये। ब्राह्मण ने रुक्मिणी के पास आकर उन्हें श्रीकृष्ण के आगमन एवं उनके अभिप्राय के बारे सब कुछ बताया। विवाह के पहले दिन कुल-प्रथा के अनुसार रुक्मिणी अम्बिका देवी के मन्दिर में चर्चा-हेतु गईं। वहाँ से बाहर आने पर श्रीकृष्ण ने उनको अपने रथ में उठा लिया और शिशुपाल के हिताकांक्षी राजाओं को पराजित करके अपने धाम को प्रस्थान किया—(भाः १०/५३-५४ अः)।

(२२३-२२५) गौः भाः—प्रलय कें अंत में सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जब जलमग्न-पृथ्वी के उद्धार की चिंता में निमग्न थे, तभी उनके नासारंध्र (नासिका के छिद्र) से एक सूक्ष्म वराह बाहर आया और उसने क्षण-भर में प्रकांड हाथी का-सा विराट रूप धारण कर लिया। इन वराह भगवान् ने पशु की भाँति घ्राण के द्वारा पृथ्वी का अन्वेषण करते करते जल के भीतर प्रवेश करके पृथ्वी को दाँतों पर धारण किया और उसे रसातल से ऊपर ले आये। उस समय हिरण्याक्ष जब गदा को हाथ में लेकर भगवान् के उस कार्य में बाधा डालने के लिए उपस्थित हुआ तो भगवान् वराहदेव ने अनायास ही हिरण्याक्ष का विनाश कर दिया। (भाः ३/१३ अध्याय)।

(२२६-२२७) गौः भाः—हिरण्याक्ष के मारे जाने पर उसके विष्णु-द्वेषी भाई हिरण्यकशिपु के अपने पुत्र विष्णुभक्त प्रह्लाद के प्रति विद्वेष करते रहने पर भगवान् ने नृसिंहदेव के रूप में अवतीर्ण होकर उसका संहार किया—(भाः ७/१-८ अः द्रष्टव्य है)।

(२३०) गौः भाः—पुरनारियों का कृष्णदर्शन—श्रीकृष्ण अक्रूर के द्वारा मथुरा मे लाये जाने के पश्चात् गोपवृन्द सहित जब मथुरापुरी की विचित्र शोभा को देखते हुये जा रहे थे, तब नगर की स्त्रियों ने अपने-अपने हाथों में लिये हुये कार्यों का परित्याग करके कृष्ण के विषय में तो कुछ बर्हिद्वारो पर आने लगीं। कृष्ण के विषय में तो वे पहले से ही अवगत थीं, किन्तु कृष्ण-दर्शन से उनके हृदय का दुःख अब दूर हुआ। प्रासाद के ऊपर स्थित स्त्रियाँ हर्ष और उल्लास के साथ कृष्ण के ऊपर पुष्पवृष्टि करती हुईं निरंतर कृष्णदर्शन के सौभाग्य को प्राप्त करने वाली गोपियाँ की प्रशंसा करने लगीं।

मालाकर द्वारा कृष्णदर्शन श्रीकृष्ण कंस की सभा में प्रविष्ट होने से पहले सुवेषयुक्त और अनुलिप्त होने की इच्छा से सुदामा नाम के माला कर (माली) के घर जा पहुँचे। भक्त सुदामा के द्वारा पाद्य, अर्घ्य एवं अनुलेपन से श्रीकृष्ण की पूजा करते हुये स्तवन करने पर श्रीकृष्ण ने उनके प्रति प्रसन्न होकर उन्हें मन चाहा वर प्रदान किया—(भाः १०/४१ अः)।

कुब्जा के कृष्णदर्शन—सुदामा के घर में निकलने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने

रास्ते में कुब्जकृति (कुबड़ी) सैरिन्ध्री को अंग-विलेपन-पात्र हाथों में लेकर आते हुये देखा तो उनके निकट अंगविलेपन के लिए प्रार्थना की। कुब्जा ने श्रीकृष्ण के रूप दर्शन से विमुग्ध होकर उनको घना अनुलेपन प्रदान किया। इस पर श्रीकृष्ण ने उन त्रिबक्रा सैरिन्ध्री के दोनों पैरों के अग्रभाग को दबाकर और ठोड़ी पकड़कर उनकी देह-रूपी यष्टि को उन्नत करके उनको रूप यौवन से सम्पन्न उत्तम युवती के रूप में परिणत कर दिया। इसके पश्चात् कुब्जा के द्वारा श्रीकृष्ण को अपने घर ले जाने की अभिलाषा व्यक्त किये जाने पर श्रीकृष्ण कंस-वध के उपरांत उनके भवन में कुछ देर ठहरे और उसकी प्रार्थना को पूरा किया।(भाः १०/४२ अः)।

यज्ञपत्नीगण का कृष्णदर्शन—एकदिन वृन्दावन में गोचारण करते-करते गोप बालकों ने भूख से व्याकुल होकर श्रीकृष्ण के निकट भोजन की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने उनको याज्ञिक ब्राह्मणों के पास भेज दिया, किन्तु उन ब्राह्मणों ने उनकी प्रार्थना को ठुकरा दिया। फिर श्रीकृष्ण ने गोप-बालकों को याज्ञिकों की पत्नियों के पास अन्न माँगने के लिए भेजा। विप्र-पत्नियों ने चारों प्रकार के भोज्य-पदार्थों सहित श्रीकृष्ण के पास आकर उनको भोजन प्रदान किया—(भाः १०/२३)।

(२३६) गौः भाः—भक्तियोग में गौरीपति—भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा सती को शंकर की प्रकृति (पत्नी) के रूप में प्रदान करने का अभिप्राय व्यक्त करने पर शिव की उक्ति, —"नेच्छामि गृहणीं नाथ वरं देहि मदिप्सितम्। त्वद्भक्तिविषये दास्ये लालसा वर्द्धतेऽनिशम्। तृप्तिनं जायते नामजपने पादसेवने॥ त्वन्नाम पंचवक्त्रेण गुणंच मंगलालयम्। स्वप्ने जागरणे शश्वद् गायन् भ्रमाम्यहम्॥ आकल्प कोटि-कोटिंच त्वदरूप-ध्यानतत्परम्॥ भोगेच्छा-विषये नैव योगे तपसि मन्मनः॥ त्वत् सेवने पूजने च वन्दने नामकीर्तन। सदोल्लसितमेषांच विरतौ विरतिं लभेत्॥ स्मरणं कीर्तनं नाम-गुणयोः श्रवणं जपः। त्वच्चारुरूपध्यानं त्वदपादमेवा-भिवंदनम्। समर्पणंचात्मनश्च नित्यं नैवेद्यभोजनम्। वरं वरेश देहीदं नवधाभक्ति-लक्षणम॥" (ब्रः वैः ब्रह्मखंड षष्ठ अः) "यच्छौचनिः सृत सरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूद्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।" अर्थात् भगवच्चरण-प्रक्षालन जल से समुत्पन्न सरित्-श्रेष्ठ गंगा के पवित्र जल को मस्तक पर धारण करके शिव 'शिव' (मंगलमय) हुये हैं।—(भाः ३/२८/२२)। "अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः। सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम्॥ तं त्वा जगत्स्थित्यान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम्। अनन्वमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम्॥"—(भाः १०/६३/४३-४४)।

भक्तियोग मे नारद—देवर्षि नारद ने प्राचीनकाल में वेदार्थ-वेत्ता मुनियों की परिचारिका के गर्भ से जन्मग्रहण किया था। चातुर्मास्य के उपलब्ध में मुनिगणों के एकस्थान पर रुके रहने के कारण उन नारदजी ने स्थिर चित्त से उन मुनियों की सेवा करते हुये उनका उच्छिष्ट भोजन किया था। इसके फलस्वरूप उनका चित्त-रूपी दर्पण परिमार्जित हो गया और भागवत धर्म में उनकी रूचि हो गई। पश्चात् उन्हीं मुनिगण ने दूसरे स्थान पर जाते समय उनको गुह्यतम भगवद्ज्ञान प्रदान किया। कालवश अपनी जननी की परलोक-प्राप्ति के बाद उन्होंने संग-रहित होकर एवं लज्जा त्याग कर भगवान् के नामों का कीर्तन करते-करते अनेक देशों में भ्रमण करने के उपरांत एक वृक्ष के नीचे ध्यानयोग की सहायता से श्रीहरि के दर्शन किये। इसके नाम-कीर्तन करते-करते

देह त्याग के पश्चात् उन्होंने श्रीहरि के पार्षदत्व को प्राप्त किया—(भाः१/५-६ अः)।

(२३७-२३९) तथ्य—भाः १/४ अः द्रष्टव्य है।

मनोदुःख से मुकुन्द का क्रन्दन—

बाहु तुलि' काँदये मुकुन्द महादास।
शरीर चलये—हेन वहे महाश्वास॥२४१॥

(२४१) प० अनु०—इसके पश्चात् प्रभु के महान् दास मुकुन्द हाथों को ऊपर उठाकर क्रन्दन करने लगे। लम्बी-लम्बी साँसे जोर से चलने पर उनका शरीर कांपने लगा।

मुकुन्द की महिमा—

सहजे एकांत भक्त,—कि कहिव सीमा?
चैतन्यप्रियेर माझे याहार गणना॥२४२॥

(२४२) प० अनु०—मुकुन्द सहज सरल एकांत भक्त थे। चैतन्य के प्रिय भक्तों में उनकी गणना की जाती है उनकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है?

मुकुन्द के खेद-दर्शन से महाप्रभु की अपनी भक्ति एवं मुकुन्द की प्रशंसा एवं उनको वरदान—

मुकुन्देर खेद देखि' प्रभु विश्वम्भर।
लज्जित हइया किछु करिला उत्तर॥२४३॥
'मुकुन्देर भक्ति मोर बड़ प्रियंकरी।
यथा गाओ तुमि, तथा आमि अवतारि॥२४४॥
तुमि यत कहिले' सकल सत्य हय।
भक्ति बिना आमा देखिलेओ किछु नय॥२४५॥
एइ तोरे सत्य कहों, बड़ प्रिय तुमि।
वेदमुखे बलियाछि यत किछु आमि॥२४६॥
ये-ये कर्म कैले हय ये-ये-दिव्यगति।
ताहा घुचाइते पारे काहार शक्ति?२४७॥
मुञि पारों अन्यथा करिवारे।
सर्वविध-उपरे मोहार अधिकारे॥२४८॥
मुञि सत्य करियाछों आपनार मुहे।
मोर भक्ति बिना कोन कर्मे किछु नहे॥२४९॥
भक्ति ना मानिले हय मोर मर्मदुःख।
मोर दुःखे घुचे तार दरशनसुख॥२५०॥
रजकेओ देखिल,—मागिल तार ठाञि।
तथापि वंचित हैल—याते प्रेम नाञि॥२५१॥
आमा देखिवारे सेइ कत तप कैल।
कत कोटि देह सेइ रजक छाड़िल॥२५२॥
पाइलेक महाभाग्ये मोर दरशन।
ना पाइल सुख, भक्ति-शून्येर कारण॥२५३॥
भक्ति-शून्य जने मुञि ना करि प्रसाद।
मोर दरशनसुख तार हय बाद॥२५४॥
भक्तिस्थाने अपराध कैले घुचे भक्ति।
भक्तिर अभावे घुचे दरशनभक्ति॥२५५॥
यतेक कहिला तुमि, सब मोर कथा।
तोमार मुखेते केन आसिव अन्यथा?२५६॥
भक्ति विलाइमु मुञि—बलिल तोमारे।
आगे प्रेमभक्ति दिल तोर कण्ठस्वरे॥२५७॥
यत देख आछे मोर वैष्णव-मंडल।
शुनिले तोमार गान द्रवये सकल॥२५८॥
''आमार येमन तुमि वल्लभ एकांत।
एइ मत हउ तोरे सकल महान्त॥२५९॥
येखाने येखाने हय मोर अवतार।
तथाय गायन तुमि हइवे आमार॥''२६०॥

(२४३-२६०) प० अनु०—मुकुन्द का खेद देखकर प्रभु विश्वम्भर कुछ लज्जित होते हुये बोले,—'मुकुन्द! तुम्हारी भक्ति मुझे बहुत प्यारी है, जहाँ तुम कीर्तन करते हो, वहाँ मैं अवतार लेकर आ जाता हूँ। जो कुछ तुमने कहा, वह सब सत्य है कि बिना भक्ति के मुझे देखने से भी कुछ लाभ नहीं है। मैं

तुमसे सत्य कहता हूँ कि तुम मेरे बहुत प्रियपात्र हो। वेद के माध्यम से मैंने जो कुछ भी कहा है, जिस-जिस माध्यम से मैंने जो कुछ भी कहा है,—जिस-जिस कर्म के करने से जिन-जिन दिव्यगतियों की प्राप्ति होती है, उन सबको अन्यथा करने की शक्ति किसमें है? किन्तु मैं सबको अन्यथा कर सकता हूँ, क्योंकि, सारी विधियों के ऊपर मेरा अधिकार है। मैंने अपने मुँह से केवल एक सत्य कहा है, बिना मेरी भक्ति के केवल कर्म करने से कुछ होने वाला नहीं है। भक्ति को नहीं मानने से मुझे दुःख होता है और मुझे दुःख पहुँचने से वे दर्शन-सुख से वंचित हो जाते हैं। रजक ने भी मुझे देखा, मैनें उससे भी माँगा फिर भी वह वंचित हो गया; क्योंकि उसमें प्रेम नहीं था। मेरे दर्शन के लिए उसने बहुत तपस्या की थी, कोटि जन्मों में कोटि शरीरों को विसर्जन किया था। फिर बड़े भाग्य से वह मेरे दर्शन करने में सक्षम हुआ, परन्तु भक्ति-हीनता के कारण उसे दर्शन-सुख नहीं मिला। जिसमें भक्ति नहीं है, मैं उस पर कृपा नहीं करता हूँ, इसलिए मेरे दर्शन करने पर भी उसे सुख नहीं मिलता है। भक्तिदेवी के चरणों में अपराध होने पर भक्ति नष्ट हो जाती है और भक्ति का अभाव होने से दर्शन करने की शक्ति चली जाती है। जो कुछ भी तुमने कहा है, वह सब मेरी ही कथा है। तुम्हारे मुँह से दूसरी बात निकलेगी ही क्यों? हमने तुमसे कहा कि हम भक्ति को वितरित करेंगे। इस कार्यक्रम के अनुसार पहले हमने तुम्हारे कण्ठस्वर में प्रेमभक्ति प्रदान की है। तुम मेरी जिस वैष्णव-मंडली को देख रहे हो, वह सबके सब तुम्हारे कीर्तन को सुनकर द्रवीभूत हो जाते हैं। जैसे तुम मेरे एकांत प्रिय हो, उसी प्रकार तुम सभी भागवत जनों के प्रिय बन जाओ। जहाँ-जहाँ मेरे अवतार को प्राकट्य होगा, वहाँ-वहाँ तुम मेरे गायक बनकर रहोगो।"

(२४३) गौः भाः—मुकुन्द—सरल भक्त हैं। वास्तव में वे अव्यभिचारिणी भक्ति के ही सेवक हैं। इसलिए उनकी महिमा की सीमा का वर्णन करने की योग्यता प्राप्त करना कोई सहज काम नहीं है। श्रीमुकुन्द श्रीचैतन्यदेव के प्रियभक्त के पर्याय में माने जाते हैं।

(२४४) गौः भाः—जहाँ भक्ति के साथ भगवान् का कीर्तन होता है, वहीं 'नामकीर्तन' के रूप में भगवान् अवतरण किया करते हैं। भजनानन्दी मुकुन्द भगवान् के अत्यन्त प्रिय थे; इसलिए मुकुन्द के कीर्तन में भगवान् गौरसुन्दर सर्वत्र ही अवतीर्ण होते हैं।

(२४५) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने कहा,—"मुकुन्द, बिना भक्ति के मेरे दर्शन करने की इच्छा करने पर भी मेरे दर्शन नहीं होते हैं, यह बात परम सत्य है"। "अतः श्रीकृष्ण ानामादि न भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः। सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥" सेवा के लिए उन्मुखता न आने पर सेव्यवस्तु की सेवा होने के बजाय असेव्य-वस्तु की सेवा हो जाती है। "नामाक्षर बाहिराय बटे, तबु नाम कभु नय।" नाम और नामी अभिन्न हैं। जिनको सेव्य-सेवक-रूप सम्बंध का ज्ञान नहीं है, वे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-रूप चतुर्वर्ग का अतिक्रमण करके कृष्णप्रेम का सन्धान नहीं पाते हैं। "चक्षुर्बिना यथा दीपं यथा दर्पण ामेव च। समीपपस्थं न पश्यन्ति तथा विष्णु बहिर्मुखाः॥"—(पाद्मोत्तर ५० अः)।

(२४७-२४८) गौः भाः—नामकीर्तन में अनुरक्त तुम मेरे बहुत प्रिय हो—यह बात सर्वतोभाव से सत्य है। वेदशास्त्रों में अधिकार के अनुसार कर्मरत एवं वेदों के

शिरोभाग (सार-रूप) उपनिषदों में मोक्ष की इच्छा रखने वाले ज्ञानी जनों के लिए जो कथाएँ वर्णित हुई हैं, वे सब उन कर्मियों एवं ज्ञानियों के लिए विधि-मात्र है। परन्तु उन सभी विधि-निषेध के परे मेरी आज्ञा सबसे बलवान् है। "दैवाधीनं जगत् सर्वं जन्मकर्म शुभाशुभम्। संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात् परं बलम्। कृष्णायत्तंच तद्दैव स च दैवात् परतस्ततः। भजन्ति सततं सन्तः परमात्मानमीश्वरम्॥ दैवं वर्द्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया। न दैवबद्धस्तद्भक्तश्चाविनाशी च निर्गुणः॥—(ब्रह्मवैवर्त में)

(२४९) गौः भाः—भगवत्-सेवा के बिना किसी भी नित्य-नैमित्तिक कर्म के द्वारा उपाधियुक्त आत्मा को मंगल की प्राप्ति नहीं होती है—इस बात को मैंने 'सत्य' मानकर अपने मुँह से उसकी स्थापना की है। अर्थात् वेदशास्त्रों में यह विधि-निषेध के बारे में बताई गई है। 'श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैति'—

(कैवल्योपनिषद्)। 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'—

(ब्रः सू ३/२/२४)। 'विज्ञानघनानन्दघनसच्चिदानन्दैकरसे भक्तियोगे तिष्ठति।'— (अथर्वशिरसि एवं गोपालो त्तरतापन्याम् १/७९)। 'ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध-सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यति निष्फलं ध्यायमानः।'—(मुण्डक में ३/१८)। 'प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्'—(ब्रः सूः ३/२/२६)। 'श्रेयः सृतिं' भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्ध्ये। तेषामसौ क्लेशल एवं शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥'—(भाः १०/१४/४)। 'न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥'—(भाः११/१४/२०)। "भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी"—(माठर श्रुति)। "पुरुषः स परः पार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया॥"—(गीता ८/२२)। "नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ भक्तया त्वनन्यया शक्य अहं एवंविधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतम॥"—(गीताः ११/५३-५४)।" नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकसुतः। ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥"—(भाः १०/९/२१)। "भक्तिस्थ परमो विष्णुस्तथैवैनां वशे नयेत्। तथैव दर्शनं यातः प्रदद्यान्तुक्तिमेतया॥ स्नेहानुबन्धो यस्तस्मिन् बहुमानपुरः सरः। भक्तिरित्युच्यते सैव कारणं परमीशितुः॥"। "कत्ये कृष्ण वश हय, भक्त्ये तारे भजि।" "अतएव भक्त्ये—कृष्णप्राप्तिर उपाय॥"—(चैः चः मध्य २० अः)। "न धनेन समृद्धेन न वै विपुलया धिया। एकेन भक्तियोगेन समीपे दृश्यते क्षणात्॥ तोयं दुर्ध्वा तु वस्त्रेण कृतकार्यं कथं भवेत्। प्राप्य देहं विना भक्तिं क्रियते स वृथाश्रमः॥ बाहूभ्यां सागरं तर्त्तुं यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति। संसार-सागरं तद्वद् विष्णु-भक्तिं विना नरं॥"—(पाद्मोत्तर ५० अः)। "धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता। मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि।"—(भाः ११/१४/२२)।

(२५०) गौः भाः—मुण्डक-उपनिषद् में वर्णित सेव्य-सेवक तत्त्व के बारे में जिनको कुछ पता नहीं है, उन लोगों की विचार-पद्धति के देखकर मेरे मन में बहुत दुःख होता है। जिससे मेरे हृदय में अप्रीति का उदय होता हैं। अभक्तजन मेरे दर्शन करने में अक्षम होने के कारण मेरी सविशेष मूर्त्ति को देख नहीं पाते हैं; निर्विशेष-विचारपरक होकर वे सदा के लिए मेरे दर्शन करने से वंचित हो जाते हैं। वे बुद्धिहीनता के कारण प्रापंचिक विचारों का अवलम्बन करके द्रष्ट-दृश्य-दर्शन की आवश्यकता को समझ नहीं पाते हैं, और

इसलिए निर्भेद–ब्रह्मवाद को ही चरम लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते है। इस कारण वे सच्चिदानन्द–विग्रह के सेवा–सुख से सदा के लिए वचिंत हो जाते है।

(२५१) गौः भाः—कृष्ण जब मथुरा जा रहे थे, तब कंसराज के रजक (धोबी) ने कृष्ण के दर्शन किये। रजक ने जब माल्य एवं वस्त्रों को कृष्ण के दर्शन के लिए समर्पित करना अस्वीकार कर दिया, तब कृष्ण ने रजक का संहार किया। भगवद्–दर्शन में प्रेम का अभाव रहने से ऐसी ही गति मिलती है। बहुत प्रीति होने के कारण मुकुन्द को भगवद्–दर्शन प्राप्त हुआ था। यदि उनमें प्रीति न होती, तो कोटि जन्मों तक अपेक्षा करने के बाद ही उनको दर्शन में भक्तिसुख प्राप्त होता।

(२५२–२५४) गौः भाः—अल्प भाग्य से भगवद्–दर्शन नहीं मिलता। रजक ने कोटि–कोटि जन्म लिये थे। भगवद्–दर्शन प्राप्त करके भी सेवोन्मुख न होने के कारण उसे 'भगवद्–अनुग्रह' नहीं मिला। "भक्तिहीन मानवों के प्रति मैं कभी भी प्रसन्न नहीं होता हूँ। कर्मफलकांक्षी व्यक्ति हजार–हजार सत–कर्मों के प्रभाव से मेरी कृपा–प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। इसलिए दर्शन लाभ करने पर भी वे दर्शन–सुख से वंचित हो जाते हैं।"

(२५५) गौः भाः—जो भक्ति का विरोधी होकर अपराधी बन जाता है, उसमें सेवा–प्रवृत्ति बिन्दुमात्र भी नहीं रहती है। जो सेवा–प्रवृत्ति से वंचित है, उसका भगवद्–दर्शन वृथा होता है। सेवान्मुख व्यक्ति के अतिरिक्त अन्यों में भगवत–दर्शन वृथा होता है। सेवोन्मुख व्यक्ति के अतिरिक्त अन्यों में भगवद्–दर्शन से भक्तिसुख के उदय होने की सम्भावना नहीं है। वे भगवान् को अपना 'भोग्य' समझने हुये सेवा–बुद्धि के अभाव के कारण दर्शन–शक्ति के वास्तव फल—नित्यसुख को प्राप्त करने में असमर्थ रह जाते हैं।

(२५६) गौः भाः—"मुकुन्द, जो कुछ मुझे कहना था वह सब तुमने कह दिया; क्योंकि तुम मेरे एकांत भक्त हो, इसलिए सच बोलने के अतिरिक्त तुम्हारे मुँह से अन्य प्रकार की उक्ति निकल ही नहीं सकती हैं।"

(२५७) गौः भाः—जीव अपने अंहकार एवं अपनी बुद्धि के बल पर भगवत् सेवा में प्रवृत्त नहीं हो सकता है। भगवान् की अनुकम्पा ही जीवों के लिए सेवोन्मुखता का प्रधान कारण है। महाप्रभु ने कहा,—"मुकुन्द, मैंने ही तुमको प्रेमभक्ति का अधिकारी बनाया है। तुम्हारे कीर्तन के द्वारा ही मैं भक्ति–मार्ग का प्रचार करूँगा।"

(२५८) गौः भाः—मेरे अनुगत सभी विष्णुभक्त तुम्हारे सेवोन्मुख गीत को सुनकर अपने हृदय के काठिन्य को कोमल करने में समर्थ होंगे।

(२५९) गौः भाः—ऐकान्तिक भक्ति के बल पर जिस प्रकार से तुम मेरे प्रिय बने हो, उसी प्रकार से मेरे भक्तजनों के भी प्रिय हो जाओ।

(२६०) गौः भाः—तुम मेरे नित्यसंगी होकर सदा कीर्तन करते रहो। मैं जहाँ भी अवतीर्ण होता हूँ, वहाँ पार्षद के रूप में तुम हरि–गुण–गान के अधिकरी बनोगे।

मुकुन्द को वर मिलने पर महान जयध्वनि—

मुकुन्देरे एत यदि वर दान कैल।
महाजय–जयध्वनि तखनि हइल॥२६१॥
'हरिबोल हरिबोल जय जगन्नाथ।'
'हरि' बलि निवेदय युड़ि' दुइ हाथ॥२६२॥
मुकुन्देर स्तुति–वर शुने येइ जन।

सेह मुकुन्देर सने हइव गायन॥२६३॥

(२६१–२६३) प० अनु०—प्रभु ने जब मुकुन्द को यह वरदान दिया, तब चारों ओर महान्–जय–जयध्वनि गूँज उठी। 'हरिबोल, हरिबोल, जय जगन्नाथ' एवं 'हरि' कहकर सभी दोनो हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे। मुकुन्द के स्तवन और वर के बारे में जो सुनेगा, वह भी मुकुन्द के साथ सुन्दर कीर्तन करने में समर्थ होगा।

निगूढ़ चैतन्यलीला केवल
सुबुद्धिजन के जानने योग्य—

ए सब चैतनयकथा वेदेर निगूढ़।
सुबुद्धि मानये इहा, ना मानये मूढ़॥२६४॥

गौर–मुकुन्द–संवाद की फलश्रुति—

शुनिते ए सब कथा यार हय सुख।
अवश्य देखिवे सेइ चैतन्येर मुख॥२६५॥

(२६४) प० अनु०—यह सब चैतन्यकथा वेदों का निगूढ़ तात्पर्य है। सुबुद्धिजन ही इसे समझते और मानते हैं; किन्तु मूढ़ व्यक्ति इसे अस्वीकार कर देते हैं।

(२६५) प० अनु०—यह सब कथा सुनकर जिन्हें सुख मिलता है, वे अवश्य ही श्रीचैतन्यदेव के दर्शन कर सकेंगे।

(२६५) गौः भाः—श्रीगौर–मुकुन्द–संवाद सुनकर जिनके आनन्द मिलता है, वे ही श्रीचैतन्यदेव के स्वरूप का दर्शन कर सकते हैं।

भक्तजनों द्वारा वांछित वर की प्राप्ति और
अपने–अपने इष्ट के अनुसार अवतारी
श्रीचैतन्य में उस–उस अवतार का दर्शन—

एइमत यत यत भक्तेर मण्डल।
येइ कैल स्तुति, वर पाइल सकल॥२६६॥
श्रीवास पण्डित अति महा–महोदर।
अतएव तान गृहे ए सब विहार॥२६७॥
यार येन–मत इष्ट प्रभु आपनार।
सेइ देखे विश्वम्भर सेइ अवतार॥२६८॥
महा–महा–परकाश इहारे से बलि।
एइ मत करे गौरचन्द्र कुतूहली॥२६९॥
एइ मत दिने दिने प्रभुर प्रकाश।
सपत्नीके देखे सब चैतन्येर दास॥२७०॥

(२६६–२७०) प० अनु०—इस प्रकार से जितनी भी भक्त–मण्डलियाँ हैं, उनमें–से सभी ने स्तवन किया और सभी को वरदान मिला। श्रीवास पण्डित की महान् उदारता के कारण उनके घर में ही यह सब लीला–विलास सम्पन्न हुआ था। सभी ने प्रभु विश्वम्भर में अपने–अपने इष्ट के दर्शन किये। यही महा–महाप्रकाश कहलाता है, जिसे कुतूहली श्रीगौरचन्द्र ने इस प्रकार से प्रकट किया। इस तरह दिनों दिन प्रभु का स्वरूप प्रकाशित होने लगा और चैतन्य के सभी दासगण अपनी–अपनी पत्नियों के साथ इस प्रकाश को देखने लगे।

बहिदर्शन से निरपेक्ष एवं प्राकृत
विचार–रहित व्यक्ति को ही भगवद्–
विलास के दर्शन का अधिकार—

देह–मने निर्विशेषे ये हयेन दास।
सेइ से देखिते पाय ए सब विलास॥२७१॥

(२७१) प० अनु०—जो भक्त देह और मन से उनके दास होते हैं, वे ही इस सब भगवद्–विलास का दर्शन कर सकते हैं।

(२७१) गौः भाः—प्रापंचिक–विचार की सहायता से भगवान् की लीला–कथाओं का समझ में आना सम्भव नहीं है। परन्तु बहिदर्शन से निरपेक्ष होकर प्राकृत–विचार–रहित

जनगण ही भगवान् के विलास–समूह का दर्शन कर सकते हैं। "येषां स एवं भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदों यदि निर्व्यलीकम्। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये॥" अर्थात् भगवान् अनन्तदेव जिनके प्रति दयालु होते हैं, वे यदि निष्कपट होकर काय–मन–वाणी से भगवान् के चरणों में शरणापन्न होजायें, तो वे इस दुस्तर अलौकिक मायासागर को पार कर सकते हैं। इन सब शरणागत भक्तों को कुक्कर–गीदड़ के भक्षण योग्य इस देह में 'मैं' और 'मेरा' बोलकर कोई अभिमान नहीं रहता है।—(भाः २/७/४२)। "नाययात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणते तनूं स्वाम्॥" अर्थात् इस परमात्मा को वेद–आदि–शास्त्रों के अध्ययन–द्वारा नहीं किया जा सकता है, मेधाशक्ति अथवा अनेक शास्त्रों के श्रवण द्वारा भी इसे नहीं पाया जा सकता। जो व्यक्ति उन परमात्मा को ही एकमात्र प्रभु के रूप में वरण कर लेते हैं, केवल उन्हीं व्यक्तियों के निकट वे अपना अप्राकृत–स्वरूप प्रकाशित करते हैं एवं वे ही व्यक्ति उनको प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।—(मुण्डक ३/२/३, कठ १/२/२३)।

भक्ति के बिना कर्म, ज्ञान,
योग, ब्रह्मचर्यादि की निष्फलता—

सेइ नवद्वीपे आर कत कत आछे।
तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी माझे माझे॥२७२॥
यावतकाल गीता–भागवत सबे पड़े।
केह वा पड़ाय, कारो धर्म नाहि नड़े॥२७३॥
केह केह परिग्रह किछु नाहि लय।
वृथा आकुमारधर्मे शरीर शोषय॥२७४॥

(२७२–२७४) प० अनु०—उस नवद्वीप मे अनेक तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी और योगी थे। उनमें से कोई–कोई कभी–कभी गीता–भगवान् भी पढ़ते–पढ़ाते थे, परन्तु कोई भी अपना धर्म त्याग नहीं करता था। कोई–कोई तो जीवनभर अविवाहित रहकर व्यर्थ ही शरीर का शोषण किया करते थे।

(२७२–२७३) गौः भाः—नवद्वीप नगर में अनके संन्यासी, तपस्वी, केवलाद्वैत–वेदान्ती, योगपरायण व्यक्ति रहते थे। इनमें से अनेक गीता भागवत्–पाठ भी करते थे एवं उन सब ग्रन्थों की दूसरी के निकट व्याख्या करके तपस्या, त्याग, निर्भेद–ब्रह्मानुसंधान आदि अपने–अपने प्रार्थित धर्मो से परमात्मा की समीपता प्राप्ति का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था।

(२७४) गौः भाः—कोई–कोई व्यक्ति भीष्म की भाँति भीषण प्रतिज्ञाबद्ध होकर एवं जीवन भी अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य पालन–पूर्वक अपने शरीर को क्लेश देते हुये जीवन–निर्वाह करते थे; इनमें से कोई–कोई 'किसी से कुछ भी सेवा ग्रहण नहीं करेंगे', ऐसा कहकर भीषण प्रतिज्ञा भी करते थे; तथापि उन लोगों को भक्ति की श्रेष्ठता उपलब्ध नहीं हो पाती थी। इसलिए उनकी वे सब चेष्टाएँ–मात्र क्लेश के रूप में पर्यवसित हो जाती थीं।

पार्थिव अभिमान में मस्त जनगण की
श्रीवास–भवन के महाप्रकाश–दर्शन में
असमर्थता, परन्तु वैष्णवों के दास–
दासियों के लिए उसकी सुलभता—

सेइखाने हेन वैकुण्ठेर सुख हैल।
वृथा अभिमानी एकजन ना देखिल॥२७५॥
श्रीवासेर दास–दासी याहारे देखिल।
शास्त्र पड़िआओ केह ताहा ना जानिल॥२७६॥
मुरारिगुप्तेर दासे ये प्रसाद पाइल।
केह माथा मुड़ाइया ताहा ना देखिल॥२७७॥

(२७५–२७७) प० अनु०—उन व्यर्थ अभिमानियों में से एक भी वहाँ के वैकुण्ठ-सुख को देख नहीं पाये। श्रीवास के दास-दासियों ने जिनको देखने का सौभाग्य प्राप्त किया, कोई-कोई शास्त्र पढ़कर भी उन प्रभु के दर्शनों से वंचित रह गया। मुरारि-गुप्त के दास को जो कृपा-प्रसाद मिला, उसे कोई-कोई सिर मुण्डन करके भी नहीं देख पाये। श्रीवास के दास-दासियों ने जिनको देखने का सौभाग्य प्राप्त किया, कोई-कोई शास्त्र पढ़कर भी उन प्रभु के दर्शनों से वंचित रह गया। मुरारि-गुप्त के दास को जो कृपा-प्रसाद मिला, उसे कोई-कोई सिर मुण्डन करके भी नहीं मिल पाये।

(२७५) गौः भाः—श्रीवास के आँगन में भगवान् के आविर्भाव के कारण वैकुण्ठ का जो महाप्रकाश हुआ था, पार्थिव अभिमान से प्रमत्त व्यक्तियों में-से कोई भी उस मायातीत वैकुण्ठसुख को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सके।

(२७६) गौः भाः—स्वाध्याय एवं वेदोच्चारण में लगे हुये अध्यापकगण शास्त्रों में कुशलता प्राप्त करके भी भगवान् श्रीगौरसुन्दर के दर्शन नहीं कर पाये; किन्तु भक्ताग्रणी श्रीवास के किंकर-किंकरीगण अनायास ही उस परम दुर्लभ-वस्तु का दर्शन करने में समर्थ हो गये।

धन-जन्म-आभिजत्य पाण्डित्य आदि के गौरव से चैतन्यदेव की कृपा दुष्प्राप्य; वे केवल भक्ति के वशीभूत हैं—

धने, कुले, पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ।
केवल भक्तिर वश चैतन्य गोसाञि॥२७८॥
बड़ कीर्ति हैले चैतन्य नाहि पाइ।
'भक्तिवश सबे प्रभु'—चारिवेदे गाइ॥२७९॥
सेइ नवद्वीपे हेन प्रकाश हइल।
यत भट्टाचार्य,—एकजने ना जानिल॥२८०॥

(२७८–२८०) प० अनु०—धन, कुल और पण्डित्य के बल पर श्रीचैतन्य को उपलब्ध नहीं किया जा सकता है। श्रीचैतन्य गोसाईं केवल भक्ति के ही वशीभूत हैं। बड़े-बड़े कीर्तिमान स्थापित हो जाने से ही श्रीचैतन्य नहीं मिल जाते हैं। चारों वेद यही गान करते हैं कि,—'प्रभु केवल भक्ति-द्वारा ही लभ्य है।' नवद्वीप में इस प्रकार को प्रकाश हुआ। परन्तु जितने भी भट्टाचार्य थे, उनमें से किसी को भी इसका ज्ञान नहीं हुआ।

(२७७–२७८) गौः भाः—प्रायशित आदि करने में व्यस्त जनगण अथवा ब्रह्मचारी एवं यतिगण केशादि मुँड़वाकर जिस सौभाग्य को प्राप्त नहीं कर पाये थे, उसी सौभाग्य को मुरारि गुप्त के भृत्यों ने बिना किसी दैन्य एवं कार्पण्य के भी भगवान् के अनुग्रह से सहज ही पा लिया था। बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि,—सबसे अधिक धनी व्यक्ति ही सबसे बड़ा वैष्णव होता है; कोई-कोई ऐसा विचार भी रखते हैं कि,—आभिजात्य-सम्पन्न कुल के अग्रणी होने से ही श्रीचैतन्य के अनुगग्रह को प्राप्त किया जा सकता है; और कोई-कोई ऐसा भी सोचते हैं कि, शास्त्रों में अगाध अधिकार मिलने से ही श्रीचैतन्यदेव को वश में किया जा सकता है; परन्तु इस प्रापंचिक (सांसरिक) गरिमा के द्वारा श्रीचैतन्यदेव कभी भी वश में नहीं होते हैं। इन सब धन, कुल, पाण्डित्य आदि के न रहने पर भी ऐकान्तिक भक्ति के प्रभाव से श्रीचैतन्यदेव भक्त-देव भक्त-प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं।

(२७९) गौः भाः—अनेक शिष्य बनाकर एवं अनेक वैष्णव-सम्मेलन करके प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर भी अथवा अनेक मन्दिर-निर्माण आदि जनकल्याणकारी अनुष्ठानों में कीर्ति मिलने पर भी श्रीचैतनयदेव को अनुग्रह नहीं

मिल सकता है। चारों वेद ऐसा ही वर्णन करते हैं कि, केवलमात्र निष्कपट प्रेमभक्ति के द्वारा ही श्रीचैतन्यदेव को प्राप्त किया जा सकता है "मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभाव-बल-पौरुष-बुद्धियोगाः। नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥"—(भाः ७/९/९) "व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किन्तत् सुदाम्नो धनम्। वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं भक्त्या तुष्यन्ति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥"—(श्रीचैतन्यमंगल)

(२८०) गौः भाः—पाण्डित्य के गौरव से फूला हुआ पण्डितसमाज नवद्वीप की महिमा का एकाधिकार पूर्वक कीर्तन करने पर भी भगवान् गौरसुन्दर के आविर्भाव एवं उनके स्वरूप प्रकाश को समझने में असमर्थ ही रहा।

जलहीन सरोवर के साथ दुष्कृतियुक्त व्यक्ति के भाग्य की तुलना—

दुष्कृतिर सरोवरे कभु जल नहे।
एमन प्रकाशे कि वंचित जीव हये?२८१॥

(२८१) प० अनु०—दुष्कृतिकारी जन के सरोवर में कभी जल नहीं होता है; अन्यथा इस प्रकार के स्वरूप-प्रकाश से क्या जीव वंचित रह सकते हैं।

(२८१) गौः भाः—जो भाग्यहीन हैं और अपनी-अपनी भाग्यहीनता को ही अगाध जलाशय के रूप में मान रहे हैं, वास्तव में उस प्रतीयमान जलाशय में सदा जल का अभाव ही रहता है, ऐसा जानना होगा। क्योकि; श्रीचैतन्यदेव की प्रकट-लीला के दर्शन से जो वंचित रह गये, वे जलहीन मीन की भाँति आश्रय-रहित हो गये। "प्रसारित महाप्रेम पीयूष-रससागरे। चैतन्यचन्द्रे प्रकटे यो दीनो दीन एव सः॥" "अवतीर्णे गौरचन्द्रे विस्तीर्णे प्रेमसागरे। सुप्रकाशित रत्नौघे यो दीनो दीन एव सः॥" "अवतीर्णे गौरचन्द्रे विस्तीर्णे प्रेमसागरे। ये न मज्जन्ति मज्जन्ति ते महानर्थ सागरे॥"—(चैतन्यचन्द्रामृत ५/३४-३६)

भगवान् की लीला नित्य है, उनके आविर्भाव-तिरोभाव दर्शन से उनको 'काल-क्षोभ्य' मानना उचित नहीं, केवल भगवान् के कृपा-प्राप्त व्यक्तियों को अपने-अपने भाग्य के अनुसार सदैव भगवद् वस्तु की उपलब्धि—

ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद।
आविर्भाव, तिरोभाव—एइ कहे वेद॥२८२॥
अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे।
यखने याहारे करे दृष्टि-अधिकारे॥२८३॥
सेइ देखे,—आर देखिवारे शक्ति नाइ।
निरन्तर क्रीड़ा करे चैतन्य गोसाईं॥२८४॥

(२८२-२८४) प० अनु०—प्रभु की इन सब लीलाओं का कभी अन्त नहीं होता है। वेद इसका वर्णन केवल आविर्भाव-तिरोभाव कहकर करते हैं। आज भी श्रीचैतन्यदेव इन सब लीलाओं को प्रकाश कर रहे हैं। जिसे वे देखने की शक्ति प्रदान करते हैं, केवल वे ही इन सब लीलाओं को देख सकते हैं, केवल वे ही इन सब लीलाओं सम्भव नहीं है। श्रीचैतन्यप्रभु की ये सब लीलाएँ निरन्तर चलती ही रहती हैं।

(२८२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर का विचित्र लीला-विलास कर्मफल-विवश जीवों के लिए उपयोगी कोई आनुष्ठानिक क्रियामात्र नहीं है। भगवान् का क्रियाकलाप नित्य है,—इसलिए, लीला के प्रपंच मे अवतरण एवं प्रपंच से निष्क्रमण (तिरोभाव) के दर्शन से इस लीला को कोई कालक्षोभ्य (काल के अधीन) कर्मविशेष

समझना उचित नहीं है। "आविर्भावा-तिरोभावा स्वपदे तिष्ठति"—(गोपालोत्तरपनी)।

(२८३) गौः भाः—श्रीचैतन्यलीला—नित्य है। जब जिसका सौभाग्य उदित होता है, तब ही वह उस लीला के दर्शन में समर्थ हो जाता है। सार्वकालिक श्रीचैतन्य लीलाएँ काल के अधीन होकर प्रपंच में आई हुई थीं, ऐसी बात नहीं है। भक्तिपूर्ण हृदय में सेवा के लिए अभिप्राय रहने पर हर समय ही वे (भक्त) श्रीचैतन्य लीला को पुष्ट कर सकते है। इस बात को श्रीचैतन्यमठ के सेवकगण सदैव जान सकते हैं। किन्तु जो श्रीचैतन्य विरोधी हैं, श्रीगौड़ीय मठ-विरोधी हैं, ऐसे कर्मी एवं प्राकृत सहजियागण की दृष्टि श्रीचैतन्यविहार के दर्शन करने में समर्थ नहीं होती है। "चेदद्यापि दिदृक्षेरण उत्कण्ठार्ता निज-प्रियाः। तां तां लीलां ततः कृष्णों दर्शयेत् तान् कृपानिधिः॥—(श्रीलघुभागवता-मृत)।

(२८४) गौः भाः—शुद्धभक्तगण श्रीचैतन्यदेव की कृष्ण-कीर्तन-लीला का दर्शन सदैव करते करते रहते हैं। प्रपंच में जड़ भोगों में लिप्त जनगण में चैतन्य लीला-दर्शन की शक्ति नहीं रहती है।

भक्तगण-द्वारा अपने-अपने इष्टामन्त्र के अनुसार श्रीचैतन्यदेव के उस-उस मूर्ति के रूप में दर्शन एवं उसके द्वारा महाप्रभु की अपने अवतारित्व की स्थापना—

ये मन्त्रेते ये वैष्णव इष्ट ध्यान करे।
सेइ मत देखये ठाकुर विश्वम्भरे॥२८५॥
देखाइया आपने शिखाय सबाकारे।
ए सकल कथा भाइ शुने पाछे आरे॥२८६॥

(२८५-२८६) प० अनु०—जो वैष्णव जिस मंत्र के द्वारा अपने इष्टदेव का ध्यान करते हैं, उस इष्टदेव को वे ठाकुर विश्वम्भर में देख लेते हैं। ऐसा दिखाकर गौरसुन्दर स्वयं सबको ऐसी शिक्षा देते हैं, कि यह सब बातें और दूसरा न सुन पाये।

(२८४) गौः भाः—लीलामय विष्णु अनेक स्वरूपों में अपनी नित्यलीला का विस्तार करके महावैकुण्ठ में अवस्थित रहते हैं। भगवान् के उस-उस लीलाधारी स्वरूप के दर्शन करने के लिए मनन धर्म से त्राणीकांक्षी (जो इस संसार से पर होना चाहते हैं। जनगण उस मन्त्र के द्वारा भगवान् की उस-उस लीला का दर्शन करते हैं। श्रीचैतन्यदेव विभिन्न भक्तों के निकट विभिन्न सेव्य स्वरूपों के रूप में आविर्भूत होते हैं। "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।"—गीता के इस श्लोक के अनुसार श्रीगौरसुन्दर अपने को प्रकाशित करते हुये विभिन्न श्रेणियों के भक्तों के निकट लीलामय विष्णु के अधिष्ठान समूह का प्रदर्शन करते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि, विश्वम्भर विष्णुतत्त्व नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है कि विष्णु क े अतिरिक्त अन्य देवताओं की मूर्तियों के दर्शन करने पर उन सब को भी विष्णुमूर्त्ति नहीं समझा जाये; क्योंकि, विष्णु के बिना अन्य देवमूर्तियों में पूर्णता का अभाव है। "त्वं भक्तियोगपरिभावितहृसरोजे आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्। यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥—(भाः ३/९/११) "अपि चैवमेके"—(ब्रः सूः ३/२/१३)। "स्थान-विशेषात् प्रकाशादिवत्।—(ब्रः सू ३/२/३५) "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" (गीता ४/११)। यादृशो भावितस्त्वीशस्तादृशो जीव आभजेत्।"—(तन्त्रसार में)। "एइ श्लोकेर अर्थ कहि संक्षेपेर सार। भक्तेर इच्छाय कृष्णेर सर्व अवतार॥"—(चैः चः आः ३/१११)। "आमाके त ये से भक्त भजे येइ भावे। तारे ये से

भावे भजि,—ए मोर स्वभावे॥"—(चैः चः आः४/१९)। "अतएव श्रीकृष्णचैतन्यगोसाई। सर्व अतवार लीला करि' सबारे देखाई।"—(चैः चः अः ५/१३३)।

(२८६) गौः भाः—महाप्रभु ने विष्णु के विभिन्न अवतारों की लीलाओं को अपने में दिखाकर सबको अपने अवतरित्व के बारे में शिक्षा प्रदान की है। जो जैसी शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनसे परवर्ती जनगण वैसी ही शिक्षा को सुनने के अधिकार को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवान् के नित्य पार्षदो के दास-दासी-पर्याय (तत्जातीय) रूप से अवस्थित जनगण को भगवत-लीला-कृपा-हृदयंगम करने का सौभाग्य—

''जन्म जन्म तोमरा पाइले मोर संग।
तोमा सबार भृत्येओ देखिवे मोर रंग॥''२८७॥

(२८७) प० अनु०—जन्म-जन्म में तुम सब मेरा संग प्राप्त करते रहोगे और तुम सबके भृत्यगण भी मेरे इस आनन्द-विलास को देख पायेंगे।

(२८७) गौः भाः—भगवान् जब पृथ्वी पर लीला करते हैं, तब उनके साथ उनके पार्षदगण भी आगमन करके उनकी सेवा करने का अधिकार प्राप्त करते हैं। उन पाषदों के भृत्य-पर्याय में अवस्थित जनगण भी उन सब लीला-कथाओं को हृदयंगम करेन का सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

भक्तगण को महाप्रभु द्वारा प्रसादीमाला एवं ताम्बूल प्रदान—

आपन गलार माला दिला सबाकारे।
चर्वित ताम्बूल आज्ञा हइल सबारे॥२८८॥
महानन्दे खाय सबे हरषित हइया।
कोटिचन्द्र-शारदमुखेर द्रव्य पाइया॥२८९॥

(२८८-२८९) प० अनु०—महाप्रभु ने अपने गले की माला एवं चर्वित ताम्बूल (पान) सबको प्रदान किया। कोटि शरत-चन्द्र-सदृश श्रीमुखारविन्द का द्रव्य पाकर वे सब महानन्द में हर्ष के साथ प्रसादी ताम्बूल खाने लगे।

(२८९) गौः भाः—महाप्रभु विषय-विग्रह होने के कारण माला, चन्दन, ताम्बूल आदि विलास के उपकरणों को ग्रहण करने के अधिकारी है। सभी विलासोपाकरणों को उनकी ही सेवा का अधिकारी प्रापत है। भक्तगण उनके द्वारा स्वीकृत माला-चन्दन आदि को प्रसाद-बुद्धि से ग्रहण कर सकते हैं। उनके भोगोपकरण-ताम्बूल आदि उच्छिष्ट ग्रहण करने के समय जीवों की सेवा-प्रवृति समृद्ध होती है। भगवान् ने इन ताम्बूल आदि का उपयोग किया है,—इस बुद्धि से भगवान् के प्रसाद का ग्रहण करते समय उल्लास उपस्थित होने से जीवों का अन्य भोगवासनाओं में और उल्लास नहीं रहता है। यदि बद्धजीव अपनी भोगवासनाओं की तृप्ति के लिए सेवा के छल से उन सब विलासोपकरणों को ग्रहण करते हैं, तो इससे उनका अमंगल होगा।

ग्रन्थकार की जननी नारायणी की श्रीचैतन्य के भोजनावशेष प्राप्ति—

भोजनेर अवशेष यतेक आछिल।
नारायणी पुण्यवती ताहा से पाइल॥२९०॥
श्रीवासेर भातृसुता—बालिका अज्ञान।
ताहारे भोजन-शेष प्रभु करे दान॥२९१॥
परम आनन्दे खाय प्रभुर प्रसाद।
सकल वैष्णव ताँरे करे आशीर्वाद॥२९२॥
धन्य धन्य एइ से सेविल नारायण।
बालिका स्वभावे धन्य इहार जीवन॥२९३॥

(२९०-२९३) प० अनु०—भोजन के बाद जो कुछ अवशेष बचा हुआ था, उसे पुण्यवती

नारायणी ने ग्रहण किया। वह अबोध बालिका श्रीवास के भाई की लड़की थी। उसी को महाप्रभु भोजनावशेष प्रदान करते थे। प्रभु से मिला प्रसाद वह परम आनन्द के साथ खाती थी और सभी वैष्णव उसको आशीर्वाद प्रदान करते थे। धन्य है, धन्य है वे नारायणी जिसने वास्तव में ही नारायण की सेवा की है। बालिका स्वभाव में भी उसका जीवन धन्य है।

महाप्रभु के द्वारा नारायणी को
कृष्णप्रेमानन्द में क्रन्दन करने की
आज्ञा एवं बालिका-द्वारा वैसा क्रन्दन—

खाइले प्रभुर आज्ञा हय,—"नारायणी।
कृष्णेर परमानन्दे कान्द देखि शुनि॥"२९४॥
हेन प्रभु चैतन्येर आज्ञार प्रभाव।
'कृष्ण' बलि कान्दे अति बालिका-स्वभाव॥२९५॥

(२९४-२९५) प० अनु०—प्रसाद खाने के बाद प्रभु ने नारायणी को कृष्णप्रेम के परम आनन्द में क्रन्दन करने की आज्ञा प्रदान की। प्रभु चैतन्यदेव की आज्ञा का ऐसा प्रीााव हुआ कि, अतिशय बालिका-स्वभाव वाली नारायणी 'कृष्ण' कहकर उसी समय क्रन्दन करने लगी।

नारायणी का 'चैतन्यावशेषपात्री' आख्यान—

"अद्यापिह वैष्णवमण्डले एइ ध्वनि।
गौरांगेर अवशेष-पात्र नारायणी॥"२९६॥

(२९६) प० अनु०—"आज भी वैष्ाव-मंडली में यह ध्वनि गूंजती है कि, श्रीगौरांग के अवशेष की पात्र नारायणी है।"

(२९६) गौः भाः—ग्रन्थकार अपनी जननी की कथा के प्रसंग में उस प्राचीन कथा का उल्लेख कर रहे है। जिसमें उनकी जननी ने भगवान् से अवशेष-पात्र को ग्रहण किया था।

महाप्रभु के आदेश से भक्तों का
तुरन्त प्रभु के सामने आ जाना—

यारे येन आज्ञा करे ठाकुर चैतन्य।
से आसिया अविलम्बे हय उपसन्न॥२९७॥

(२९७) प० अनु०—ठाकुर श्रभ्चैतन्यदेव जब जिसे जैसी आज्ञा करते हैं, वह तुरन्त उसी समय आकर सामने उपस्थित हो जाता है।

(२९७) गौः भाः—उपसन्न—[उप (समीप में)—सद, (गमन करना, जाना)+कर्त्तृ—क्त] समीप आगत् उपस्थित।

चैतन्यलीला में विश्वास न करने वाले
व्यक्ति का अधःपात अनिवार्य—

ए सब वचने यार जानिह प्रतीत।
सद्य अधःपात तार जानिह निश्चित॥२९८॥

(२९८) प० अनु०—यह निश्चितरूप से जान लेना चाहिए कि इन सब वचनों में जिनका विश्वास नहीं है, उनका तुरन्त अधःपतन होने वाला है।

चैतन्य का दासत्व ही नित्यानन्द एवं
अद्वैत की प्रधान महिमा—

अद्वैतेर प्रिय प्रभु चैतन्य ठाकुर।
इथे अद्वैतेर बड़ महिमा प्रचुर॥२९९॥
चैतन्येर प्रिय अति—ठाकुर निताइ।
एइ से महिमा तान चारि वेदे गाइ॥३००॥

(२९९-३००) प० अनु०—ठाकुर श्रीचैतन्यदेव अद्वैत के प्रिय प्रभु हैं। इसी से अद्वैत की बड़ी भारी महिमा है। ठाकुर श्रीनित्यानन्द भी चैतन्यदेव के अति प्रिय हैं। इसीलिए चारों वेदों मे उनकी महिमा गाई गई है।

चैतन्यदास्य-वर्जित व्यक्ति जगत् के पूज्य होने पर भी भक्तों के लिए अनादर का पात्र है—

'चैतन्येर भक्त' हेन—नाहि या'र नाम।
यदि सेव्य वस्तु—तबु तृणेर समान॥३०१॥

(३०१) प० अनु०—जिनके नाम एवं काम से यह पता नहीं चलता कि, वे 'चैतन्य के भक्त हैं,' वे यदि सेव्य वस्तु (परम वन्दनीय) भी हैं, तब भी तृण के समान हैं।

(३०१) गौः भाः—श्रीचैतन्यदास्य-वर्जित व्यक्ति कितना ही पूजनीय क्यों न हो, उसका कभी भी आदर नहीं किया जा सकता है। श्रीचैतन्यभक्त जगत् में चाहे कितने ही अनादर का पात्र क्यों न समझा जाता हो, वस्तुतः वही परम आदरणीय है।

चैतन्य-दासत्व ही नित्यानन्द प्रभु स्वरूपाभिमानी, उनकी कृपा से ही चैतन्य-रति की प्राप्ति—

नित्यानन्द कहे,—'मुञि चैतन्येर दास।'
अहर्निश आर प्रभु ना करे प्रकाश॥३०२॥
ताहान कृपाय हय चैतन्येते रति।
नित्यानन्द भजिले आपद नाहि कति॥३०३॥

(३०२-३०३) प० अनु०—नित्यानन्द कहते हैं,—'मैं श्रीचैतन्य का दास हूँ,' इसके अतिरिक्त दिन रात प्रभु और कुछ भी प्रकाशित नहीं करते हैं। नित्यानन्द की कृपा से ही श्रीचैतन्य मैं रति प्राप्त की जा सकती है। नित्यानन्द का भजन करने से कभी कहीं से भी विपत्ति नहीं आती हैं।

(३०२) गौः भाः—नित्यानन्द के स्वरूपाभिमान में चैतन्यदास्य को छोड़कर और कुछ भी प्रकशित नहीं होता है।

(३०३) गौः भाः—कति—[सं—कुत्र, व्रज, प्रावांकथि (द्रः)] कहीं भी।

ग्रन्थकार के द्वारा लालसामयी प्रार्थना—

आमार प्रभुर प्रभु गौरांगसुन्दर।
ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर॥३०४॥
धरणीधरेन्द्र नित्यानन्देर चरण।
देह' प्रभु गौरचन्द्र आमारे शरण॥३०५॥

(३०४-३०५) प० अनु०—गौरांगसुन्दर मेरे प्रभु के प्रभु हैं। यह मेरे लिए बहुत बड़ा भरोसा है और इसी भरोसे को मैं अपने हृदय मे निरन्तर धारण किये रहता हूँ। हे प्रभु गौरचन्द्र! मुझे धरणीधरेन्द्र नित्यानन्द के चरणों में शरण दीजिए।

(३०५) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द-बलराम के अंश-विग्रह—भगवान् शेषशयी बलराम।

ग्रन्थकार के द्वारा नित्यानन्द की प्रीति के कारण ही चैतन्यचरित वर्णन—

बलरामप्रीते गाइ चैतन्यचरित।
करे बलराम प्रभु जगतेर हित॥३०६॥

(३०६) प० अनु०—बलराम की प्रीति के लिए मैं श्रीचैतन्य के चरित्र का गान कर रहा हूँ। बलराम प्रभु जगत् का हित करते रहते हैं।

नित्यानन्द का चैतन्यदासाभिमान एवं उनकी कृपा से ही गौर-दास्य की प्राप्ति तथा गौरतत्त्व एवं भक्तितत्त्व का हृदयंगम—

चैतन्येर दास्य बइ निताइ ना जाने।
चैतन्येर दास्य नित्यानन्द करे दाने॥३०७॥
नित्यानन्दकृपाय से गौरचन्द्र चिनि।
नित्यानन्दप्रसादे से भक्ति-तत्त्व जानि॥३०८॥
सर्व वैष्णेर प्रिय नित्यानन्दराय।
सबे नित्यानन्दस्थाने भक्ति-पद पाय॥३०९॥

(३०७-३०९) प० अनु०—चैतन्य के दास्य के अतिरिक्त निताइ (नित्यानन्द) और कुछ नहीं जानते हैं। नित्यानन्द कृपा-पूर्वक चैत्न्यदास्य को दान करते रहते हैं। नित्यानन्द की कृपा से ही गौरचन्द्र को पहचाना जाता

है। नित्यानन्द की कृपा से ही भक्तितत्त्व जाना जाता है। सभी वैष्णव नित्यानन्द का आदर करते हैं। नित्यानन्द से सभी को भकित मिलती हैं

नित्यानन्द की अवज्ञा करने का परिणाम—

कोन पाके यदि करे नित्यानन्दे हेला।
आपने चैतन्य बले,—'सेइ जन गेला॥'३१०॥

(३१०) प० अनु०—किसी कारणवश यदि कोई नित्यानन्द की अवज्ञा करता हो, तो चैतन्यदेव के कथनानुसार,—'उसका सर्वनाश हो गया।'

(३१०) गौः भाः—यदि कोई भाग्यहीन होकर अपनी दुर्दशावश नित्यानन्द प्रभु की अवज्ञा करता है, तो श्रीचैतन्यदेव के विचार के अनुसार वह सर्वनाश को अपना रहा है।

नित्यानन्द की महिमा बखान करने वाली वाक्यावली महादेव अथवा सब लोगों के लिए ही अगोचर—

आदिदेव महायोगी ईश्वर वैष्णव।
महिमार अन्त इँहा ना जानये सब॥३११॥

(३११) प० अनु०—महायोगी आदिदेव महादेव वैष्णव होने पर भी उनकी महिमा के बारे में सब कुछ नहीं जानते हैं।

(३११) गौः भाः—महायोगी आदिदेव महादेव वैष्णव होने पर भी बलराम के महिमात्मक चरम कथासमूह को सर्वतोभाव से नहीं जानते हैं।

कोई-कोई इस पद का अर्थ ऐसे भी करते हैं कि, सभी जन वैष्णवाग्रगण्य महादेव की महिमा का अन्त नहीं जानते हैं। अथवा, नित्यानन्द प्रभु ही वैभव-तत्त्व का मूल आकर-स्वरूप हैं। इस कारण वे ही आदिदेव हैं। वे दशविध भाव से कृष्णसेवा के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में नियुक्त नहीं है। इसलिए वे महा संयमी है। वे ही कारण-विष्णु, समष्टि-विष्णु एवं व्यष्टि-विष्णु के उत्पत्ति-स्थल हैं, इसलिए परमेश्वर हैं। वे कृष्णभक्त हैं, इसलिए वैष्णव हैं। सब लोग नित्यानन्द की उस महिमा की चरम सीमा को समझने में समर्थ नहीं होते हैं।

निरपराध-पूर्वक कृष्णनाम का उच्चारण करने वालों के लिए चैतन्यचरण-प्राप्ति सुलभ—

काहारे ना करे निन्दा, 'कृष्ण कृष्ण' बले।
अजय चैतन्य सेइ जिनिवेक हेले॥३१२॥

(३१२) प० अनु०—जो किसी की निन्दा न करते हुये केवल 'कृष्ण कृष्ण' बोलते हैं, वे अनायास ही अजेय श्रीचैतन्य को जीत लेते है।

(३१२) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव को अहंकार ग्रस्त विमूढ़ात्मा जीव आध्यक्षिक ज्ञान से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। किसी की भी निन्दा ने करते हुये जो सदा 'कृष्ण-कृष्ण'—ऐसा उच्चारण करते रहते हैं, वे अजित चैतन्यदेव को अनायास ही अपने प्रेम में बन्दी बना सकते हैं। "ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्। स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङमनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोकयाम्॥" अर्थात् जो लोग इन्द्रियजनित ज्ञान के अवलम्बन से इन्द्रियातीत वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा हैं, उन्हें आरोहणदी अथवा अश्रौतपंथावलम्बी कहते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ भी चेष्टा न करने पर भी जो अपने-अपने वर्ण एवं आश्रमधर्म में अवस्थित रहते हुये साधु के मुख से उचारित आपकी लीला-कथा का श्रवण एवं काय-मन-वाणी से उसका सत्कार-अनुमोदन आदि करते हुये जीवन धारण करते हैं, वे

दूसरा कोई कर्म भले न भी करें, फिर भी उन लोगों के द्वारा आप अखिल लोक में अजित होकर भी जित, अर्थात, वशीभूत हो जाते हैं। (भाः १०/१४/३)।

सबका मान–सम्मान करना ही भागवत धर्म–

'निन्दाय नाहिक लभ्य'—सर्व शास्त्रे कय।
सबार सम्मान भागवत–धर्म हय॥३१३॥

(३१३) प० अनु०—सभी शास्त्र यही कहते हैं कि किसी की भी निन्दा करने से भगवान् नहीं मिलते हैं। सबको उचित सम्मान प्रदान करना ही भागवत–धर्म है।

(३१३) गौः भाः—आत्माभरी (दाम्भिक) होकर अपनी श्रेष्ठता की स्थापना के लिए दूसरों की निन्दा करना उचित नहीं है। निन्दा करने वाले व्यक्ति दूसरों का असम्मान करने के कारण भागवत–धर्म से विच्युत हो जाते हैं। कुत्ते से लेकर गधे, चांडाल आदि तक सभी के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने का विधान श्रीगौरसुन्दर ने "अमानिना मानदेन" श्लोक मे किया हैं।

मध्यखंड की लीलाकथा अमृत–तुल्य है,
पाखंडीगण के विचार से वह कडुवी है।

मध्यखण्डकथा येन अमृतेर खण्ड।
महा–निम्ब–हेन वासे यतेक पाषंड॥३१४॥
केह येन शर्कराय निम्ब–सादु पाय।
तार दैव,—शर्करार स्वादु नाहि याय॥३१५॥

(३१४–३१५) प० अनु०—मध्यखण्ड की यह कथा अमृत के खण्ड जैसी (मधुर) है; परन्तु पाखंडी लोगों को वह महा नीम जैसी कड़वी लगती है। किसी व्यक्ति को यदि चीनी में नीम का स्वाद अनुभव होता है, तो इससे चीनी की मधुरता तो दूर नहीं हो जाती है। इसका कारण दैव है, इसका कारण दैव है, जिसके कारण उसे चीनी की मिठास का अनुभव नहीं हो पा रहा है।

(३१४) गौः भाः—श्रीचैतन्य की यह मध्य–खण्ड की लीला–कथा—साक्षात् अमृतस्वरूप है। परन्तु जो लोग भगवान् के द्वारा दी गई शक्ति से शक्तिमान देवगणों को भगवान् के समान समझते हैं, वे सब मूढ़ व्यक्ति मानों अमृत को नीम से भी अधिक कड़वा मान रहे हैं।

दुर्भाग्यशाली व्यक्ति की अनर्थयुक्त
प्रतीति के कारण चैतन्य की परानन्द–
प्रतिष्ठा के श्रवण में अप्रीति–

एइमत चैतन्येर परानन्दयश।
शुनिते ना पाय सुख हइ' दैव–वश॥३१६॥

(३१६) प० अनु०—यद्यपि श्रीचैतन्य को परानन्द–यश इस प्रकार का (परम आनन्दप्रद) हैं, परन्तु जो व्यक्ति इसे सुनकर सुख प्राप्त नहीं कर पाता है, वह दैवाधीन है।

(३१५–३१६) गौः भाः—कोई–कोई व्यक्ति अपने दुर्भाग्य के कारण मीठी वस्तु को कडुवा अनुभव करता है। उसके दुर्भाग्य के कारण जिस अनर्थ–मिश्रित प्रतीति का उदय होता है, उससे वास्तव में मीठे द्रव्य का स्वाद नष्ट नहीं हो जाता है। भाग्यहीन जन ही चैतन्य की परानन्द–प्रतिष्ठा के बारे में सुनकर प्रसन्न नहीं होता है।

चैतन्य में दोषदर्शनकारी संन्यासी की दुर्गति
एवं चैतन्य–नाम–कीर्तनकारी संबन्धज्ञानरहित
पक्षी को गौरधाम की प्राप्ति–

संन्यासीओ यदि नाहि माने गौरचन्द्र।
जानिह ये खल जन जन्म अन्ध॥३१७॥
पक्षि–मात्र यदि बले चैतनयेर नाम।

सेइ सत्य याइवेक चैतन्येर धाम॥३१८॥

(३१७–३१८) प० अनु०—संन्यासी होकर भी यदि कोई व्यक्ति श्रीगौरसुन्दर को नहीं मानता है, तो जान लेना चाहिए कि, वह खल जन्म–जन्म का अन्धा है, इसके विपरीत यदि कोई पक्षी भी श्रीचैतन्य का नाम लेता है, तो वह निश्चित रूप से श्रीचैतन्य के धाम को प्राप्त कर लेता है।

(३१७) गौः भाः—आश्रम–धर्म की सर्वोच्च सीमा में स्थित संन्यासी भी यदि श्रीगौरचन्द्र में दोष–दर्शन करके उनकी निन्दा करता है, तो वह निन्दा करने वाला यति भी अपनी दृष्टि–हीनता के कारण जन्म–जन्म में अन्धा होता है। पीठ पीछे निन्दा एवं खलता वास्तव दर्शन में रुकावट डालती है।

(३१८) गौः भाः—सम्बंधज्ञान–रहित पक्षी भी यदि 'श्रीचैतन्य' शब्द को अनुकरण करके उच्चारण करें, तो वे भी वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके जन्मांतर में श्रीचैतन्यदेव के धाम को उपलब्ध कर सकते हैं। श्रीधाम–मायापुर में पशु, पक्षी, गुल्म, लता एवं अनभिज्ञ मानवगण भी श्रीचैतन्यदेव की कथा का श्रवण करके अपने सौभाग्य को प्राप्त कर लेते हैं।

ग्रन्थकार–द्वारा चैतन्यजय कीर्तन, नित्यानन्द–चरण में परम रति की प्रार्थना एवं चैतन्य के पथावलम्बीजन का अभिवादन—

जय गौरचन्द्र नित्यानन्देर जीवन।
तोर नित्यानन्द मोर हउ प्राणधन॥३१९॥
या'र या'र संगे तुमि करिला विहार।
से सब गोष्ठीर पाये मोर नमस्कार॥३२०॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥३२१॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे
महामहाप्रकाश वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः।

(३१९–३२१) प० अनु०—नित्यानन्द के जीवन स्वरूप गौरचन्द्र की जय हो। हे प्रभु! ऐसी कृपा कीजिए कि आपके नित्यानन्द मेरे प्राणधन बन जाएँ। जिस–जिस गोष्ठी के साथ आपने विहार किया है, उन सब गोष्ठियों के श्रीचरणों में मैं नमस्कार करता हूँ। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्द दोनों मेरे प्राणस्वरुप हैं। मैं वृन्दावन दास उनके मुगल चरणों का निरन्तर स्मरण करके हुये उनकी महिमा का कीर्तन करता हूँ।

(३२०) गौः भाः—हे गौरचन्द्र! जिन्होंने आपके संग का सुख प्राप्त किया है एवं आपकी सेवा करके धन्य हुये हैं, उन सब वैष्णवों के पादपद्मों में मेरा नमस्कार है।

इति गौड़ीय–भाष्य में दशम अध्याय समाप्त

O

एकादश अध्याय

एकादश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में नित्यानन्द का बाल्यभाव में श्रीवास के घर अवस्थान, गौर-नित्यानन्द के बीच कौतुक पूर्ण आलाप, कौवे द्वारा श्रीवास की कृष्ण सेवा के घृतपात्र का अपहरण, नित्यानन्द के आदेश से कौवे द्वारा घृतपात्र का प्रत्यार्पण, मालिनी के द्वारा नित्यानन्द के प्रति शची का पुत्र-जैसा स्नेह, नित्यानन्द के द्वारा क्षीर-सन्देश-भोजन के समय ऐश्वर्य का प्रकाश आदि विषय वर्णित हुये हैं।

गौरसुन्दर ने नवद्वीप में साधारणजनों के लिए अगोचर जो लीलाएँ की थीं, निष्कापट गौर-सेवा के फलस्वरूप श्रीवास को अपने घर में ही गोष्ठी सहित उन सब लीलाओं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नित्यानन्द श्रीवास के घर में बालक-भाव से रहते थे। वे श्रीवास के पित एवं मालिनी को माता मानते थे। अचिन्त्य-शक्ति के प्रभाव से मालिनी के स्तनों में दुग्ध-संचार करके वे उसका पान किया करते थे। मालिनी ने नित्यानन्द के इ बाल्यभाव एवं अचिन्त्य प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप से देखकर भी किसी के सामने उसे प्रकाशित नही किया। क्योंकि महाप्रभु ने उनको इस बात को प्रकाशित करने के लिए मना कर दिया था।

गौरसुन्दर-द्वारा नित्यानन्द को किसी के साथ झगड़ा करने अथवा श्रीवास के घर में किसी प्रकार की चंचलता करने के लिए मना करने पर नित्यानन्द ने गौरसुन्दर को ही दोषी ठहरा दिया। गौरसुन्दर नित्यानन्द के अपयश से लज्जित होते हैं, इस बात की जानकारी देने पर नित्यानन्द ने उनके आदेश का पालन करना अंगीकार कर लिया एवं हँसते-हँसते उसी क्षण दिगम्बर होकर अपना परिधेय वस्त्र मस्तक में बाँध लिया और छलाँग लगाते हुये आँगन में घूमने लगे। तब महाप्रभु ने बाह्यज्ञान-रहित नित्यानन्द ने पकड़कर अपने ही हाथों से उन्हें कपड़े पहना दिये।

निरन्तर इसी प्रकार से बाल्यभाव में रहने के कारण नित्यानन्द अपने हाथों से अन्न ग्रहण नहीं किया करते थे। मालिनी अपने पुत्र की भाँति नित्यानन्द को अपने हाथ से अन्न खिलाया करती थीं। एकदिन श्रीवास के घर से एक कौवा कृष्णसेवा के घृतपात्र को मुँह में लेकर भाग गया। श्रीवास के तीव्र-व्यवहार-भय से भयभीत होकर मालिनी ने क्रन्दन करना शुरू कर दिया। इसे देखकर नित्यानन्द ने मालिनी को आश्वासन देकर कौवे को घृतपात्र लौटा देने के लिए आदेश किया। निताइ के आदेश से कौवे ने भी उसी क्षण उस पात्र को लाकर मालिनी के पास रख दिया। नित्यानन्द के प्रभाव को देखकर मालिनी आनन्द में मूर्च्छित हो गईं एवं बाद में विविध प्रकार से नित्यानन्द का स्तवन करने लगीं। तब नित्यानन्द ने आत्मसंगोपनार्थ बाल्यभाव-प्रकाश-पूर्वक मालिनी के निकट खाना खिलाने की प्रार्थना की। नित्यानन्द को देखते ही मालिनी के दुग्ध-रहित स्तनों से

क्षरित होकर दुग्ध बाहर आने लगा एवं निताइ ने उसका पान किया।

एकदिन महाप्रभु जननी को आनन्द देने के लिए विष्णुप्रिया देवी के निकट बैठकर उनसे ताम्बूल-सेवा ग्रहण कर रहे थे। उसी समय नित्यानन्द बाह्यज्ञानहीन भाव में दिगम्बर के रूप में आँगन में आकर उपस्थित हुये। उस समय महाप्रभु ने इस प्रकार की अवस्था का कारण पूछा, किन्तु भावावेश में नित्यानन्द ने उसके विपरीत ही उत्तर दिया। अन्त में महाप्रभु ने स्वयं आकर अपने ही हाथों से उन्हें कपड़े पहनाये। नित्यानन्द के शिशुभाव का दर्शन करके शचीदेवी हँसने लगीं। शची नित्यानन्द को साक्षात् विश्वरूप समझकर विश्वम्भर की भाँति ही उनके प्रति स्नेह-प्रदर्शन करती थीं। नित्यानन्द द्वारा कुछ भोजनीय पदार्थ के लिए प्रार्थना करने पर शचीदेवी ने पाँच क्षीर-सन्देश उनको लाकर दिये। नित्यानन्द ने एक सन्देश खाया, बाकी चारों को भूमि पर फेंक दिया। उन्होंने आग्रह-सहित फिर से शचीमाता से खाना माँगा। इस पर शची ने घर के भीतर प्रवेश किया तो देखा कि वहाँ पहले दिये गये चारों संदेश रखे हुये हैं। शचीमाता उन्हें लेकर नित्यानन्द के पास आईं और उन्हें जब नित्यानन्द को देने लगीं तो देखा कि, नित्यानन्द उन्हीं सन्देशों को भूमि से उठा—उठाकर खा रहे हैं। नित्यानन्द के इस प्रभाव को देखकर शची ने यह समझ लिया कि, वे 'ईश्वर' हैं। फिर बाल्यभाव में नित्यानन्द शची के चरण-स्पर्श करने के लिए बढ़े तो शचीदेवी दूर भाग गईं। नित्यानन्द के इस प्रकार के अगाध चरित्र सुकृतिवान् के लिए अशेष कल्याणकर होने पर भी दुष्कृतियों के लिए सर्वनाशकारी हैं। गंगादेवी भी नित्यानन्द के श्रीचरणों को ही ग्रन्थकार अपने हृदय के अंतरतम प्रदेश में धारण करने के लिए सदैव इच्छुक रहते हैं।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

राग—मल्लार—

निधि गौरांग कोथा हैते आइला प्रेमसिन्धु।
अनाथेर नाथ प्रभु, पतित-जनेर बन्धु ॥ध्रु॥
जय जय विश्वम्भर द्विजकुलसिंह।
जय हउ तोर यत चरणेर भृंग॥१॥
जय श्रभ्परमानन्दपुरीर जीवन।
जय दामोदरस्वरूपेर प्राणधन॥२॥
जय रूपसनातनप्रिय महाशय।
जय जगदीश-गोपीनाथेर हृदय॥३॥

(ध्रु) प० अनु०—अनेक गुणों से विभूषित, प्रेम-सिन्धु-स्वरूप श्रीगौरांग कहाँ से आये? महाप्रभु श्रीगौरांग अनाथों के नाथ और पतितजनों के बन्धु हैं।

(१-३) प० अनु०—द्विजकुल में सिंह-स्वरूप श्रीविश्वम्भर की जय हो, जय हो। हे प्रभु, आपके श्रीचरणों के जितने भी भृंग (अनुरागी) हैं, उन सबकी जय हो। श्रीपरमानन्द पुरी के जीवन-स्वरूप आपकी जय हो। आप दामोदरस्वरूप के प्राणधन हैं, आपकी जय हो। रूप-सनातन के प्रिय महाशय आपकी जय हो! जय हो। जगदीश-गोपीनाथ के हृदय स्वरूप आपकी जय हो।

(ध्रु) गौः भाः—रत्नाकर (समुद्र) में जितने प्रकार के रत्न हैं, उनमें से नवविधि की श्रेष्ठता निर्धारित है। प्रेम के रत्नाकर-स्वरूप श्रीगौरसुन्दर किस प्रकार के आश्चर्यमय प्रेमसागर के अधिवासी हैं, इसकी जानकारी देने के लिए ग्रन्थकार कुतुहलवश अपूर्वता की ज्ञापना कर रहे हैं। परम दुर्लभ गौरविधि पतितजनों

के उद्धारकर्त्ता बांधव एवं आश्रयविहीनजनों के एकमात्र पालक हैं।

नवद्वीप में महाप्रभु-द्वारा सामान्यजनों की दृष्टि से अगोचर बहुविध लीला-विलास—

हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
क्रीड़ा करे, नहे सर्वनयन-गोचर॥४॥

(४) प० अनु०—इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर ने नवद्वीप में बहुविध लीला-विलास किया। परन्तु उसे देखने का सौभाग्य सभी को प्राप्त नहीं हुआ।

श्रीवास का सौभाग्य एवं निष्कपट भाव से महाप्रभु की सेवा का फल—

नवद्वीपे मध्यखण्डे कौतुक अनन्त।
घरे बसि' देखये श्रीवास भाग्यवन्त॥५॥
निष्कपटे प्रभुर सेविला श्रीनिवास।
गोष्ठी संगे देखे प्रभुर महा-परकाश॥६॥

(५-६) प० अनु०—मध्यखण्ड में नवद्वीप के अनन्त कौतुक वर्णित हुये हैं। उन सबको सौभाग्यशाली श्रीवास ने अपने घर में ही देखा। श्रीनिवास ने निष्कपट भाव से प्रभु की सेवा की थी और इसके फलस्वरूप गोष्ठी-सहित उनको प्रभु का महा-प्रकाश देखने को मिला।

श्रीवास के भवन में नित्यानन्द का ब्रजबालक-भाव से अवस्थान एवं श्रीवास और उनकी पत्नी को पिता-माता ज्ञान पूर्वक मालिनी का स्तनपान—

श्रीवासरे घरे नित्यानन्देर वसति।
'बाप' बाल्य-भावे बाह्य नाहि जाने॥७॥
अहर्निश बाल्य-भावे बाह्य नाहि जाने।
निरवधि। मालिनीर करे स्तनपाने॥८॥

(७-८) प० अनु०—श्रीवास के घर में नित्यानन्द अवस्थित थे। वे श्रीवास को 'पिता' कहकर सम्बोधित करते हुये उनसे बहुत प्रीति करते थे। दिन-रात बाल्यभाव में रहने के कारण उन्हें बाह्य बोध नहीं रहता था और निरन्तर वे मालिनी के स्तन से दुग्ध पान किया करते थे।

नित्यानन्द की अचिन्तय शक्ति के प्रभाव से मालिनी के दुग्धहीन स्तनों से दुग्ध का क्षरण, इससे मालिनी को विस्मय एवं गौर के आदेश से उसका संगोपन—

कभु नाहि दुग्ध, परशिले मात्र हय।
ए सब अचिन्त्य-शक्ति मालिनी देखय॥९॥
चैतन्येर निवारणे कारे नाहि कहे।
निरवधि बाल्यभाव मालिनी देखये॥१०॥

(९-१०) प० अनु०—वास्तव में मालिनी के स्तनों में कभी दुग्ध नहीं रहता था; परन्तु नित्यानन्द के स्पर्शमात्र से उनमें दुग्ध आ जाता था और इस सब अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव को मालिनी देखा करती थीं। श्रीचैतन्य के निषेध करने पर उन्होंने यह बात किसी से नहीं कही। मालिनी इस बाल्यभाव का निरन्तर ही अवलोकरन किया करती थीं।

(७-९) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु ब्रजबालक-स्वरूप में अवस्थित रहते हुये श्रीवास एवं मालिनी को पिता-माता बुद्धि से देखा करते थे। मालिनी को माता के आसन पर स्थित प्रौढ़ा गोपी मानते हुये एवं अपने को गोपशिशु समझते हुये नित्यानन्द मालिनी के स्तन-पान की लीला का अभिनय किया करते थे। मालिनी के अपने स्तनों में दुग्ध न होने पर भी नित्यानन्द के उस प्रकार के लीलाभिनय से उनमें दुग्ध-समागम देखकर मालिनी विस्मित हुआ करती थीं।

(१०) गौः भाः—श्रीवास की पत्नी मालिनी

देवी नित्यानन्द प्रभु को सदा अपनी सन्तान की भाँति ही देखा करती थीं; किन्तु इन सब लोकातीत विषयों को महामहिमामय महाप्रभु के आदेशानुसार वे किसी के समक्ष प्रकाशित नहीं करती थीं।

नित्यानन्द के द्वारा अन्नवृष्टि एवं दिगम्बर वेष में छलांग लगाने आदि के प्रसंग में गौर-नित्यानन्द के बीच परस्पर प्रणय-आलाप—

प्रभु विश्वम्भर बले,—''शुन नित्यानन्द।
काहारो सहित पाछे कर तुमि द्वन्द्व ॥११॥
चंचलता ना करिवा श्रीवासेर घरे।''
शुनिया श्रीनित्यानन्द 'श्रीकृष्ण' सडरे।
''आमार चांचल्य तुमि कभु ना पाइवा।
आपनार मत तुमि कारे ना वासिया॥''१३॥
विश्वम्भर बले—'आमि तोमा भाल जानि।'
नित्यानन्द बले—'दोष कह देखि शुनि'॥
हासि बले गौरचन्द्र—'कि दोष तोमार?
सब घरे अन्नवृष्टि कर अवतार॥'१५॥
नित्यानन्द बले,—'इहा पागले से करे।
ए छलाय घरे भात ना दिवे आमारे?१६॥
आमारे ना दिया भात सुखे तुमि खाओ।
अपकीर्ति आर केन बलिया वेड़ाओ?'१७॥
प्रभु बोले—'तोमार अपकीर्त्ये लाज पाइ।
सेइ से कारणे आमि तोमारे शिखाइ॥'१८॥
हासि बले नित्यानन्द—'बड़ भाल भाल।
चांचल्य देखिले शिखाइवा सर्वकाल॥१९॥
निश्चय बुझिला तुमि, आमि से चंचल।'
एत बलि' प्रभु चाहि' हासे खल खल॥२०॥

(११-२०) प० अनु०—विश्वम्भर प्रभु ने कहा,—"सुनो! नित्यानन्द, तुम किसी के साथ झगड़ा मत कर बैठना। श्रीवास के घर में चंचलता मत करना।" यह सुनकर नित्यानन्द ने 'श्रीकृष्ण' का स्मरण किया और कहने लगे—"आप कभी भी मेरी चंचलता नहीं देख पायेंगे। आप किसी और को अपने जैसा मत समझिगा।" विश्वम्भर बोले,—'मेरा कुछ दोष तो बताइये'—प्रभु ने मुस्कुराकर कहा—'क्या दोष है तुम्हारा? तुम सारे घर में अन्न की वृष्टि करते हो।' नित्यानन्द बोले,—'ऐसा तो पागल करते हैं, इसी छल से तुम घर में मुझे भात नहीं खिलाओगे? मुझे भात न देकर तुम आराम से खाते रहते हो। इस अपकीर्ति का ढिंढोरा और क्यों पीट रहे हो!' प्रभु बोले,—'तुम्हारे अपयश से मैं स्वयं को लज्जित अनुभव करता हूँ। इस कारण मैं तुम्हें शिक्षा दे रहा हूँ।' नित्यानन्द हँसकर बोले,—'बहुत अच्छी बात है। मेरी चंचलता देखने पर आप मुझे हर समय शिक्षा दीजिएगा। आपने निश्चित रूप से यह तय कर लिया है कि, मैं चंचल हूँ।' इतना कहकर वे महाप्रभु की ओर देखते हुये खिलखिलाकर हँसने लगे।

(११-१५) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द की अलौकिक चेष्टाओं को जानकर उनको उस प्रकार की चंचलता करने को मना करने पर नित्यानन्द ने उसमें आपत्ति की। आपत्ति को सुनकर महाप्रभु ने हँसकर नित्यानन्द के दोषों के बारे में बताया। दोषों के बारे में बताया। दोषों का वर्णन करते हुये महाप्रभु ने कहा,—तुम सभी स्थानों पर अन्न-वर्षण-लीला का अवतरण कराते हो। 'भोज्य' वस्तु को 'अन्न' कहते हैं। जिस समय शिशुओं में चर्वणशक्ति नहीं होती है, उस समय उनके लिए तरल पदार्थ (दुग्ध-इत्यादि) ही भोज्य अथवा पेय होता है। तरल पदार्थ के वर्षण अथवा प्रस्रवण का भोज्य के रूप में ग्रहण करने से दुग्ध को ही शिशु का

आहार समझा जाता है। जब शिशु बड़ा हो जाता है, तब मातृस्तन में दुग्ध का अभाव नहीं होता था।

(१६) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द-प्रभु ने महाप्रभु के द्वारा दिखाये गये दोषों की बात सुनकर कहा,—'उन्मत्त (पागल) जन ही ऐसा आचरण करते हैं। उस प्रकार की चंचलता को दूर करना तो ठीक है, किन्तु इसी छल से मुझे भोजनीय द्रव्य से वंचित कर देना आपका कर्तव्य नहीं हैं।'

(१७) गौः भाः—ब्रजलीला के उद्दीपन से श्रीबलदेव की कान्हाइ के प्रति इस भक्ति से नित्यानन्द और गौरसुन्दर के बीच इस प्रकार की प्रेम-कलह व्यंजित होती है। आप (कृष्ण) सदैव नन्द के घर में अवस्थान करके यशोदा के निकट से भोज्य-सामग्री ग्रहण करके सुख प्राप्त करते रहते हैं और मैं जब उस प्रकार से अन्न ग्रहण करने जाता हूँ तो मेरी चंचलता की बात आप सब से कह देते हैं एवं मेरी निन्दा करते हैं; यह केवल आपकी स्वार्थपरता है। भवगान् का भोजनादि शची के घर में होता था। वहाँ अपना भाग न मिलने पर नित्यानन्द ने ब्रजभाव से विभाजित होकर गौरसुन्दर के साथ परस्पर कथोपकथन में इस प्रकार के उक्ति समूह का उच्चारण किया था।

ब्रजलीला के उद्दीपन से अलौकिक चेष्टायुक्त नित्यानन्द को दिगम्बर-वेष, महाप्रभु के द्वारा वस्त्र पहनाना एवं प्रभुवाक्य से नित्यानन्द-द्वारा चंचलता का परिहार।

आनन्दे ना जाने बाह्य, कोन् कर्म करे।
दिगम्बर हइ' वस्त्र बान्धिलेन शिरे॥२१॥
जोर जोर लम्फ देइ हासिया हासिया।
सकल अंगले बुले ढुलिया ढुलिया॥२२॥
गदाधर, श्रीनिवास आर हरिदास।
शिक्षार प्रसादे सबे देखे दिग्वास॥२३॥
डाकि' बले विश्वम्भर,—'ए के कर कर्म?
गृहस्थेर बाड़ीते एमत नहे धर्म॥२४॥
एखनि बलिला तुमि—आमि कि पागल?
एइक्षणे निज वाक्य घुचिल सकल॥'२५॥
या'र बाह्य नाहि, ता'र वचने कि लाज?
नित्यानन्द भासये आनन्द-सिन्धु-माझ॥२६॥
आपने धरिया प्रभु पराय वसन।
एमत अचिन्त्य नित्यानन्देर कथन॥२७॥
चैतन्येर वचन-अंकुश मात्र माने।
नित्यानन्द मत्तसिंह आर नाहि जाने॥२८॥

(२१-२८) प० अनु०—नित्यानन्द आनन्द में इतने मस्त हो गये कि उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। उन्होंने दिगम्बर होकर अपना कपड़ा सिर पर बाँध लिया और जोर-जोर से हँसते हुये वे छलाँग लगाने लगे तथा सारे आँगन में झूमते-झामते घूमने लगे। शिक्षा के प्रभाव से गदाधर, श्रीनिवास और हरिदास सभी दिक्-रूपी वस्त्र को ही परिधान के रूप में देख रहे थे। यह देखकर विश्वम्भर पुकारते हुये बोल—"यह क्या कर रहे हो? गृहस्थी के घर में ऐसा करना धर्म नहीं है। अभी आपने कहा था कि,—मैं क्या पागल हूँ? किन्तु अभी, इसी क्षण आपके उस वाक्य का अर्थ व्यर्थ हो गया है।" नित्यानन्द आनन्द-सिंधु में बहते रहे। जिसको बाह्यज्ञान नहीं है, उसे अपने बचन की क्या लज्जा? फिर प्रभु ने स्वयं उन्हें सम्भाला और कपड़ा पहना दिया। ऐसा अचिन्त्य है नित्यानन्द का कथन। मस्त सिंहरूपी नित्यानन्द केवल चैतन्य का वचन-अकुंश ही मानते हैं और किसी का नहीं।

(२१-२२) गौः भाः—ब्रजलीला के उद्दीपन से नित्यानन्द के अलौकिक चेष्टा समूह में

हम उनको नग्न होकर परिधेय वसन का अपने सिर पर लपेटते हुये देखते हैं। यह सब उनके बहिर्जगत के विचार से उदासीन होकर आनन्द-विह्वलित अवस्था में ब्रजलीला का अभिनय-मात्र है। बहिर्जगत के विचार से उस समय प्रभु नित्यानन्द बड़े हो चुके थे, परन्तु स्वरूप-विचार से बाल लीला के अभिनयकारी नित्यानन्दप्रभु के बारे में प्रत्यक्षवादी जन जो विचार रखते हैं, नित्यानन्द प्रभु उस रूप विचार से परे है। दोनों पैरों से छलांग लगाना एवं हँसमुख होकर उद्देश्य-रहित भाव से क्रीड़ा-प्रदर्शन इस जगत् के विचार-व्यवहार के अनुकूल नहीं है।

(२४) गौः भाः—जो बाह्य चेतना को खो चुके हैं, उनके लिए अपने मनमानी (असंगत) वाक्यों को उच्चारण करने में क्या लज्जा? नित्यानन्द प्रभु आनन्द-सिन्धु में मग्न रहने के कारण बहिर्जगत के अच्छे-बुरे के प्रति दृष्टि सम्पन्न नहीं थे।

मालिनी के द्वारा अपने ही हाथों से नित्यानन्द के मुँह में अन्नप्रदान एवं पुत्र मानकर नित्यानन्द की बहुविध सेवा—

आपने तुलिया हाथे भात नाहि खाय।
पुत्रप्राय करि' अन्न मालिनी योगाय॥२९॥
नित्यानन्द-अनुभव जाने पतिव्रता।
नित्यानन्द-सेवा करे येन पुत्रमाता॥३०॥

(२९-३०) प० अनु०—श्रीवास के घर में नित्यानन्द अपने हाथों से भात (अन्न) नहीं खाते थे। पुत्र मानकर मालिनी अपने हाथों से नित्यानन्द के मुँह में अन्न प्रदान किया करती थीं। पतिव्रता मालिनी नित्यानन्द के अनुभव को जानती थी। इसलिए माता जैसे पुत्र की सेवा करती है, वैसे ही वे नित्यानन्द की सेवा किया करती थीं।

(३०) गौः भाः—पतिव्रता श्रीवास-पत्नी मालिनी देवी नित्यानन्द के प्रति वात्सल्यमयी दृष्टि रखती थीं। जिस प्रकार से जननी अपने पुत्र की सेवा करती है, उसी प्रकार से मालिनी देवी नित्यानन्द को पुत्र मानकर उनकी सेवा करती थीं।

कौवे-द्वारा श्रीकृष्ण के सेवा-भाजन का अपहरण और कौए को पुनः खाली चोंच आता हुआ देखकर श्रीवास से धमकी मिलने की आशंका से मालिनी का दुःख—

एकदिन पितलेर बाटी निल काके।
उड़िसा चलिल काक ये वनेते थाके॥३१॥
अदृश्य हइया काक कोन् राज्ये गेल।
महाचिन्ता मालिनीर चित्तेते जन्मिल॥३२॥
बाटी थुइ-सेइ काक आइल आर बार।
मालिनी देखये शून्य-वदन ताहार॥३३॥
महातीव्र ठाकुर-पण्डित-व्यवहार।
श्रीकृष्णेर घृतपात्र हइल अपहार॥३४॥
शुनिले प्रमाद हबे हेन मने गणि'।
नाहिक उपाय किछु, कान्दये मालिनी॥३५॥

(३१-३५) प० अनु०—एकदिन एक कौवा पीतल की एक कटोरी ले उड़ा और उस वन की दिशा में जाने लगा जहाँ वह रहता था। कौवा कहीं अनदेखे स्थान में जाकर छिप गया, यह देखकर मालिनी बड़ी ही चिन्तित हो गई। कटोरी कहीं रखकर कौवा फिर से लौट आया। मालिनी ने देखा कि, उसका मुँह खाली है। पण्डित श्रीवास ठाकुर बहुत गुस्सा करने वाले थे। श्रीकृष्ण के घृतपात्र का अपहरण हुआ है, यह सुनते ही श्रीवास मुझको बहुत अपहरण हुआ है, यह सुनते ही श्रीवास मुझको बहुत डांटेगे, यह सोचकर और इससे बचने का कोई उपाय न देखकर

मालिनी क्रन्दन करने लगीं।

(३४-३५) गौः भाः—श्रीकृष्ण के परम भक्त थे; उनकी पत्नी की अन्यमनस्कता के कारण भगवान् के सेवा-भाजन को कौवा ले गया, इससे श्रीवास पण्डित अत्यन्त क्रुद्ध होंगे, श्रीवास पण्डित द्वारा इस प्रकार के व्यवहार की बात को सोचकर मालिनीदेवी बहुत ही दुःखित हुई थीं।

मालिनी के क्रन्दन को देखकर नित्यानन्द-द्वारा इसके कारण के बारे में पूछताछ एवं उनके दुःख को दूर करने का आश्वासन—

हेनकाले नित्यानन्द आइला सेइ स्थाने।
देखये मालिनी कान्दे अझोर नयने॥३६॥
हासि' बले नित्यानन्द,—''कान्द कि कारण।
कोन् दुःख बल?—सब करिब खण्डन॥''३७॥

(३६-३७) प० अनु०—उसी समय नित्यानन्द उस स्थान पर आ गये और सेवा कि मालिनी बहुत रो रही हैं। यह देखकर हँसते हुये नित्यानन्द ने पूछा,—"क्यों रो रही हो? कहो, कौन-सा दुःख है? सब दूर कर देंगे।"

नित्यानन्द के निकट मालिनी द्वारा कौवा-वृत्तांत वर्णन एवं सर्वन्तर्यामी नित्यानन्द की प्रेरणा से कौए-द्वारा वृत्तपात्र का प्रत्यानयन—

मालिनी बलये,—''शुन श्रीपाद गोसाईं।
घृतपात्र काके लइ' गेल कोन् ठाञि॥''३८॥
नित्यानन्द बले,—''माता, चिन्ता परिहर।
आमि दिव वाटी, तुमि क्रन्दन सम्बर॥''३९॥
काक प्रति हासि' प्रभु बलये वचन।
''काक, तुमि वाटी झाट आनह एखन॥''४०॥
सबार हृदये नित्यानन्देर बसति।
तार आज्ञा लंघिवेक काहार शक्ति?४१॥
शुनिया प्रभुर आज्ञा काक उड़ि' याय।
शोकाकुली मालिनी काकेर दिके चाय॥४२॥
क्षणेके उड़िया काक अदृश्य हइल।
वाटी मुखे करि' पुनः सेखाने आइल॥४३॥
आनिया थुइल वाटी मालिनीर स्थाने।
नित्यानन्द-प्रभाव मालिनी भाल जाने॥४४॥

(३८-४४) प० अनु०—मालिनी बोली,—"सुनो, श्रीपाद गोसाईं! यह कौवा घृतपात्र (कटोरी) को न जाने कहाँ ले गया है। नित्यानन्द बोले—"माता, चिन्ता मत करो। हम कटोरी ला देंगे, तुम रोना बन्द करो।" फिर कौए के प्रति हँसते हुये नित्यानन्द कहने लगे,—"कौवा, तुम झट अभी कटोरी लेकर आओ।" सबके हृदय में नित्यानन्द का निवास है। नित्यानन्द की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति किसमें है? प्रभु की आज्ञा सुनकर कौए उड़कर चल दिया, शोक से व्याकुल मालिनी कौए की ओर देख रही थीं। एक क्षण में कौवा उड़कर अदृश्य हो गया। फिर चोंच में कटोरी लिए हुये उसी स्थान पर लौट आया और उसने कटोरी लाकर मालिनी के सामने रख दी। अब नित्यानन्द के प्रभाव को मालिनी भली-भाँति जान गईं।

नित्यानन्द-प्रभाव-दर्शन से अतिशय आनन्द में मलिनी की मूर्च्छा एवं नित्यानन्द का स्तवन—

आनन्दे मूर्च्छित हैला अपूर्व देखिया।
नित्यानन्द-प्रति स्तुति करे दाण्डाइया॥४५॥
''ये जन आनिल मृत गुरुर नन्दन।
ये जन पालन करे सकल भुवन॥४६॥
यमेर घर हइते ये आनिते पारे।
काकस्थाने वाटी आने,—कि महत्त्व तारे?४७॥
याँहार मस्तकोपरि अनन्त भुवन।
लीलाय ना जाने भर, करये पालन॥४८॥

अनादि अविद्या ध्वसं हय याँर नामे।
कि महत्त्व ताँर, वाटी आने काकस्थाने?४९॥
ये तुमि लक्ष्मणरूपे पूर्वे वनवासे।
निरन्तर रक्षक आछिला सीतापाशे॥५०॥
तथापिह मात्र तुमि सीतार चरण।
इहा बइ सीता नाहि देखिले केमन॥५१॥
तोमार से वाणे रावणेर वंश–नाश।
से तुमि ये वाटी आन, केमन प्रकाश?५२॥
याहार चरणे पूर्वे कालिन्दी आसिया।
स्तवन करिल महा–प्रभाव जानिया॥५३॥
चतुर्द्दश–भुवन–पालन–शक्ति याँर।
काकस्थाने वाटी आने—कि महत्त्व ताँर?५४॥
तथापि तोमार कार्य अल्प नाहि हय।
येइ कर, सेइ सत्य, चारि वेदे कय॥''५५॥

(४५–५५) प० अनु०—इस अपूर्व आश्चर्य को देखकर मालिनी आनन्द से मूर्च्छित हो गई, फिर खड़े होकर नित्यानन्द का स्तवन करने लगीं। स्तवन में उन्होंने कहा,—"जिन्होंने मृत गुरुपुत्र को वापस ला दिया, जो सारे भुवनों का पालन करते हैं, यम के घर से जो ला सकते हैं, वे कौए के पास से कटोरी ले आये,—इसमें क्या बड़ाई है? जिनके मस्तक के ऊपर अनन्त भुवन विराजमान हैं, परन्तु लीला के आनन्द में उनके भार का जिन्हें पता नहीं है और जो उन भुवनों का निरन्तर पालन करते रहते हैं, जिनके नाम से अनादि अविद्या ध्वंस हो जाती है, वे कौए से कटोरी वापस ले आये हैं, इसमें उनकी क्या बड़ाई है? जो तुम पहले लक्ष्मण के रूप में वनवास के समय निरन्तर रक्षक बनकर सीमा के निकट रहते थे, परन्तु केवल सीता के चरणो का ही दर्शन करते थे, सीता कैसी हैं, यह कभी नहीं देखा। तुम्हारे वाणों के द्वारा ही रावण का वंश विनाश को प्राप्त हुआ है, ऐसे तुम जो कटोरी वापस ले आये, यह तुम्हारा कौन–सा भारी प्रभाव है? जिनके महान् प्रभाव को जानकर पहले कालिन्दी (यमुना) ने आकर जिनके चरणों में स्तवन किया है, वे कौए से कटोरी ले आये,—इसमें उनकी क्या बड़ाई है? फिर भी तुम्हारे किसी भी कार्य का महत्त्व कुछ कम नहीं है। तुम जो भी करते हो, वही सत्य है, यही चारों वेद कहते हैं।"

(४६–४७) गौः भाः—"ये जन आनिल मृत गुरुर नन्दन"—भगवान् बलदेव एवं श्रीकृष्ण मथुरा लीला के समय ब्रह्मचर्य–अवलम्बन–पूर्वक अवन्तीपुरवासी सान्दीपनि मुनि के निकट विद्या पढ़ने के लिए गये थे। उन्होंने लोगों के लिए अनेक प्रकार से गुरु की सेवा करते हुये चौसंठ दिनों में चौंसठ–कला–विद्याओं को सीखा था। विद्या की समाप्ति पर गुरु को दक्षिणा देने की इच्छा प्रकट करने पर सान्दीपनि ने उनकी अतिमर्य चेष्टाओं को देखकर उनसे प्रभास तीर्थ के महासागर में मृत अपनी सन्तान को माँगा था। रामकृष्ण–द्वारा रथारोहण से प्रभासतीर्थ में गमन करके समुद्र के निकट गुरुपुत्र के लिए प्रार्थना करने पर समुद्र ने बताया कि पंचजन नामक असुर के द्वारा गुरुपुत्र का विनाश कर दिया गया है। यह सुनकर उन दोनों ने जल के भीतर पंचजनपुरी में जाकर उस असुर का विनाश किया। परन्तु उसके उदर में गुरुपुत्र के न मिलने पर वे यमलोक में गये। यमराज ने श्रीकृष्ण और बलराम की पूजा करके उनके आदेशानुसार मृत गुरुपुत्र को सजीव करके प्रत्यर्पित कर दिया।—(भाः—१०/४५ अः)

(४८) गौः भाः—भाः ५/१७/२१; ५/२५/२, १२; ६/१६/४८ एवं आदि १/१३ गौड़ीय भाष्य द्रष्टव्य है।

(४९) गौः भाः—भाः ३/९/१५; ६/२/७; ६/२/११,१२; ६/१/२४, ३१; ६/१/४४; शिक्षाष्टक के १म श्लोक; भः रः सिः दःविः १/५१ प्रभृति श्लोक अनुशीलनीय हैं।

(५०) गौः भाः—रामायण, अरण्यकांड २४श एवं ४३ श अः द्रष्टव्य है।

(५१) गौः भाः—"ध्यात्वा मूहूर्त्तं तानाह किं मां वक्ष्यसि शोभने। दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टो तवानघे।"—(रामायण उः कांड ५८/२१) अर्थात् लक्ष्मण ने (सीतादेवी से) कहा, —"शोभने! आप क्या कह रही हैं? पुण्यशीले! मैंने आपका रूप पहले कभी भी नही देखा हैं, केवल आपके चरणयुगल देखे हैं।"

(५२) गौः भाः—भाः के ९/१० अध्याय एवं रामायण का लंकाकाण्ड द्रष्टव्य है।

(५३) गौः भाः—यदुकुल में अवस्थान के समय एकबार भगवान् बदेव सुहृद्गणों का दर्शन करने के लिए ब्रज में गये। वे वहाँ चैत्र एवं वैशाख के दो मास अवस्थित रहे। श्रीबलदेव ने उस समय वरुण दो मास अवस्थित रहे। श्रीबलदेव ने उस समय वरुण के द्वारा प्रेरित वारुणी का पान करके गोपियों के साथ विहार करते हुये श्रीयमुना में जलकेलि करने की इच्छा से यमुना का आह्वान किया, परन्तु यमुना ने श्रीबलदेव को 'मत्त' समझकर उनका आदेश ठुकरा दिया था। तब भगवन् रोहिणीनन्दन (बलदेव) क्रुद्ध होकर यमुना का हल के अग्रभाग के द्वारा आकर्षण करने लगे। इस पर भयभीत यमुना ने बलदेव का चरण कमलों के प्रान्त में पतित होकर बहुविध स्तवन के द्वारा क्षमा प्रार्थना की।—(भाः १०/६५ अः)।

(५४) गौः भाः—"स एवेदं जगद्धाता भगवान् धर्मरूपधृक्। पुष्णाति स्थापयन् विश्वं तिर्यक्-नर-सुरादिभिः।"—(भाः २/१०/४३)।

मालिनी के स्तवन से नित्यानन्द का हास्य एवं मालिनी के उस समय के भाव सको दूर करने की इच्छा से नित्यानन्द-द्वारा बाल्यभाव में मालिनी के निकट भोजन करने की इच्छा का प्रकाशन—

हासे नित्यानन्द तान शुनिया स्तवन।
बाल्यभावे बले,—''मुञि करिव भोजन॥''५६॥

(५६) प० अनु०—मालिनी के द्वारा किये गये स्तवन को सुनकर नित्यानन्द हँस पड़े और बाल्यभाव में बोले—"मैं भोजन करूंगा।"

नित्यानन्द-दर्शन से मालिनी के स्तन से दुग्ध का क्षरण एवं नित्यानन्द-द्वारा स्तन्य-पान—

नित्यानन्द देखिले ताहार स्तन झरे।
बाल्यभावे नित्यानन्द स्तन पान करे॥५७॥

(५७) प० अनु०—नित्यानन्द को देखने से ही मालिनी के स्तनों से दुग्ध झरने लगा और बाल्यभाव में अवस्थित नित्यानन्द स्तन पान करने लगे।

नित्यानन्द का आचिन्त्य चरित्र—

एइमत अचिन्त्य नित्यानन्देर चरित।
आमि कि बलिव, सब जगते विदित॥५८॥

(५८) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द का चरित्र अचिन्त्य महिमा-सम्पन्न है। मैं क्या कहूँ, सारे जगत् को इसकी जानकारी हैं।

नित्यानन्द-तत्त्व के बारे में जानकर व्यक्ति को उनकी अलौकिक लीलाओं की सत्यता की उपलब्धि—

करये दुर्ज्ञेय कर्म, अलौकिक येन।
ये जानये तत्त्व, ये मानये सत्य हेन॥५९॥

(५९) प० अनु०—नित्यानन्द सारे दुर्ज्ञेय

और अलौकिक कर्मों को करते हैं। जो इनके तत्त्व को जानते हैं, वे सब इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

भावाविष्ट नित्यानन्द-द्वारा नदीया के हर स्थान पर भ्रमण—

अहर्निश भावावेश परम उद्दाम।
सर्व-नदीयाय बुले ज्योतिर्मय-धाम॥६०॥

(६०) प० अनु०—दिन-रात भावावेश में परम उद्दाम रहकर ज्योतिर्मय-धाम स्वरूप श्रीनित्यानन्द ने सारे नदीया नगर में भ्रमण किया।

तत्त्व के बारे में अनभिज्ञ अभक्तजनों की नित्यानन्द-पादपद्म के स्वरूप-विचार मे भ्रान्ति एवं ग्रन्थकार के द्वारा आदर्श इष्टनिष्ठा का प्रदर्शन—

किवा योगी नित्यानन्द, किवा तत्त्वज्ञानी।
याहार येमत इच्छा, ना बलये केनि॥६१॥
ये से केने नित्यानन्द-चैतन्येर नहे।
तबु से चरण मोर रहुक हृदये॥६२॥

(६१-६२) प० अनु०—कोई कहता है कि नित्यानन्द योगी हैं, कोई कहता है कि नित्यानन्द तत्त्वज्ञानी हैं। अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार उनके बारे में कोई कुछ भी क्यों न कहें, श्रीचैतन्य के नित्यानन्द जैसे भी हों, उनके चरण, हर अवस्था में, मेरे हृदय में विराजमान रहें।

ग्रन्थकार के द्वारा गुरु-नित्यानन्द-विद्वेषी के मस्तक पर पादस्पर्श के द्वारा चैतन्य की ओर उन्मुखीकरण-रूप अहैतुकी कृपा का प्रदर्शन—

एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे।
तबे लाथि मारौं जार शिरेर उपरे॥६३॥

(६३) प० अनु०—इतना परिहार (निराकरण) करने पर भी जो पापी उनकी निन्दा करते हैं, उनके सिर के ऊपर मैं लात मारता हूँ।

महाप्रभु की देख-रेख में नित्यानन्द को श्रीवास के घर अवस्थान—

एइमत आछे प्रभु श्रीवासेर घरे।
निरवधि आपने गौरांग रक्षा करे॥६४॥

(६४) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द प्रभु ने श्रीवास के घर में अवस्थान किया और गौरांग ने स्वयं ही उनकी रक्षा की।

जननी की प्रीति-हेतु महाप्रभु के द्वारा विष्णुप्रिया के निकट अवस्थान एवं उनसे सेवाग्रहण करना—

एकदिन निजगृहे प्रभु विश्वम्भर।
बसि' आछे लक्ष्मीसंगे परम सुन्दर॥६५॥
योगाय ताम्बूल लक्ष्मी परम हरिषे।
प्रभुर आनन्दे ना जानये रात्रिदेशे॥६६॥
यखन थाकये लक्ष्मीसंगे विश्वम्भर।
शचीर चित्तेते हय आनन्द विस्तर॥६७॥
मायेर चित्तेर सुख ठाकुर जानिया।
लक्ष्मीर संगेते प्रभु थाकेन बसिया॥६८॥

(६५-६८) प० अनु०—एक दिन प्रभु विश्वम्भर अपने घर में विष्णुप्रिया देवी के साथ बैठे हुये थे। दोनों एक साथ परम सुन्दर लग रहे थे। परम हर्ष के साथ विष्णुप्रिया देवी ने उन्हें ताम्बूल प्रदान किया और प्रभु के आनन्द में वे दिन-रात के अन्तर को भूल गईं। जब विश्वम्भर विष्णुप्रिया के साथ रहते थे, तब शचीदेवी के हृदय में बहुत आनन्द होता था। ठाकुर ने जब यह जाना कि, विष्णुप्रिया देवी के साथ रहने से माता को सुख मिलता है, तब माता को आनन्द देने के लिए प्रभु उनके साथ-साथ रहने लगे।

(६५) गौः भाः—लक्ष्मीसंगे (लक्ष्मी के साथ)— विष्णुप्रिया के साथ।

(६६) गौः भाः—दिशे, (दिशा में) —(दिशा शब्द)—[दिश्+अ (स्-भावे) आप्स्त्री] उत्तर-पूर्वादि दिक्, संधान। रात्रिदिशे-रात्रि का संधान।

प्रभु के घर में नित्यानन्द का आगमन एवं बाल्यभाव में दिगम्बर वेष से दण्डायमान हो जाना—

हेनकाले नित्यानन्द आनन्द-विह्वल।
आइला प्रभुर बाड़ी परम चंचल॥६९॥
बाल्येभावे दिगम्बर रहिला दाण्डाइया।
काहारे ना करे लाज परानन्द पाइया॥७०॥

(६९-७०) प० अनु०—ऐसे समय में आनन्द-विह्वल, परम चंचल नित्यानन्द, प्रभु के भवन में आ पधारे और आकर परम आनन्द के साथ लज्जाविहीन होकर बाल्यभाव को अपनाकर दिगम्बर वेष में खड़े हो गये।

महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्द से दिगम्बर-वेष का कारण पूछने पर बाह्यज्ञान-रहित नित्यानन्द द्वारा भावावेश में भिन्न प्रकार के उत्तर प्रदान एवं हास्य—

प्रभु बले,—"नित्यानन्द, केने दिगम्बर?"
नित्याननद 'हय हय' करये उत्तर॥७१॥
प्रभु बले,—"नित्यानन्द, परह' वसन।"
नित्यानन्द बले,—"आजि आमार गमन॥"७२॥
प्रभु बले,—"नित्यानन्द, इहा केने करि?"
निताइ बलेन,—"आर खाइते ना पारि॥"७३॥
प्रभु बले,—"एक कहि, कह केने आर?"
निताइ बलेन,—"आमि गेनु दशबार॥"७४॥
क्रुद्ध हइया बले प्रभु,—"मोर दोष नाञि।"
नित्यानन्द बले,—"प्रभु, एथा नाहि आइ॥"७५॥
प्रभु कहे,—"'कृपा करि' परह' वसन।"
नित्यानन्द बले,—"आमि करिव भोजन॥"७६॥
चैतन्य-आवेशे मत्त नित्यानन्दराय।
एक शुने, आर बले, हासिया वेडाय॥७७॥

(७१-७७) प० अनु०—प्रभु ने पूछा—"नित्यानन्द, दिगम्बर क्यों हो गये हो?" नित्यानन्द ने उत्तर में हाँ हाँ कर दिया। प्रभु बोले,—"नित्यानन्द कपड़े पहन लो।" नित्यानन्द बोले,—"आज मुझे जाना है।" प्रभु बोले,—"नित्यानन्द, ऐसा क्यों करते हो?" निताइ कहने लगे,—"और खा नहीं सकता।" प्रभु बोले,—"पूछता हूँ कुछ, और उत्तर देते हो कुछ ऐसा क्यों?" निताइ बोले,—"मैं दस बार गया हूँ।" क्रुद्ध होकर प्रभु बोले,—"मेरा कोई दोष नहीं है।" नित्यानन्द बोले,—"प्रभु यहाँ आई (माता) नहीं हैं।" प्रभु कहने लगे, — "कृपया कपड़े पहन लीजिए।" नित्यानन्द बोले,—"मैं भोजन करूँगा।" इस प्रकार से चैतन्य के आवेश में नित्यानन्द मस्त होकर प्रश्नों को उल्टा-पुलटा उत्तर देते हुये हँसकर घूमने-फिरने लगे।

महाप्रभु-द्वारा नित्यानन्द को अपने हाथों से वस्त्र पहनाना—

आपने उठिया प्रभु पराय वसन।
बाह्य नाहि—हासे पद्मावतीर नन्दन॥७८॥

(७८) प० अनु०—प्रभु ने उठकर अपने ही हाथों से उनको कपड़े पहनाये। उधर बाह्यज्ञान-रहित पद्मावती के नन्दन (नित्यानन्द) हँसते रहे।

नित्यानन्द के चरित्र-दर्शन से शची का आनन्द एवं उनके वाक्य-श्रवण से उन्हें अपना पुत्र समझकर गौर-निताइ के प्रति समान स्नेह का प्रकाशन—

नित्यानन्दचरित्र देखिया आइ हासे।
विश्वरूप–पुत्र–हेन मने मने वासे॥७९॥
सेइमत वचन शुनये सब मुखे।
माझे माझे सेइरूप आइ मात्र देखे॥८०॥
काहारे ना कहे आइ, पुत्र–स्नेह करे।
सम–स्नेह करे नित्यानन्द–विश्वम्भरे॥८१॥

(७९–८१) प० अनु०—नित्यानन्द के चरित्र को देखकर माता हँसने लगीं। उन्होंने मन–ही–मन यह समझा कि नित्यानन्द उनके विश्वरूप जैसे पुत्र हैं एवं विश्वरूप जैसी बातें करते हैं। कभी–कभी केवल माता ही नित्यानन्द को विश्वरूप के रूप में देख पाती थीं। यह बात माता ने किसी से नहीं कहीं, वे पुत्र की भाँति नित्यानन्द से स्नेह करती थीं। वस्तुतः वे नित्यानन्द और विश्वम्भर को समान रूप से स्नेह करती थीं।

बाह्यज्ञान मिलने पर नित्यानन्द–द्वारा वस्त्र–परिधान एवं शची–द्वारा दिये गये सन्देशों को भोजन करते समय शची के साथ बहुविध कौतुक—

बाह्य पाइ' नित्यानन्द परिला वसन।
सन्देश दिलेन आइ करिते भोजन॥८२॥
आइ–स्थाने पंच क्षीर–सन्देश पाइया।
एक खाय, आर चारि फले छड़ाइया॥८३॥
'हाय हाय'—बले आइ—'केने फेलाइया?'
नित्यानन्द बले,—''केने एक ठाञि दिला?''८४॥
आइ बले,—''आर नाहि, तबे कि खाइया?''
नित्यानन्द बले,—''चाह, अवश्य पाइवा॥''८५॥
घरेर भितरे आइ अपरूप देखे।
सेइ चारि सन्देश देखये परतेके॥८६॥
आइ बले,—''सन्देश कोथाय पड़िल?
घरेर भितरे कोन् प्रकारे आइल?''८७॥
धूला घूलाइया सेइ सन्देश लइया।
हरिषे आइला आइ अपूर्व देखिया॥८८॥
आसि' देखे नित्यानन्द सेइ लाडु खाय।
आइ बले,—''बाप, इहा पाइला कोथाय?८९॥
नित्यानन्द बले,—''याहा छड़ाया फेलिलुँ।
तोर दुःख देखि' ताइ चाहिया आनिलुँ॥''९०॥

(८२–९०) प० अनु०—बाह्यज्ञान प्राप्त होने पर नित्यानन्द ने वस्त्र पहन दिये। तब माता ने उन्हें भोजन करने के लिए सन्देश प्रदान किया। माता से पाँच क्षीर–सन्देश पाकर उन्होंने एक खाया और बाकी चार नीचे फेंक दिये। माता कहने लगी,—'अरे–अरे' 'क्यों फेंक दिये?' नित्यानन्द बोले,—"एक साथ क्यों दे दिये?" माता बोली,—"और नहीं हैं, क्या खाओगे?" नित्यानन्द बोले,—"देखो, और भी अवश्य मिलेंगे।" यह सुनकर माता घर के भीतर गईं और वहाँ एक अपूर्व बात देखी। घर के भीतर ही उन्हें चारों सन्देश प्रत्यक्ष भाव में दिखाई दिये। माता बोली,—"सन्देश कहाँ गिरे थे? परन्तु घर के भीतर वे किस प्रकार से आ गये?" इस अपूर्वता को देखकर हर्ष के साथ माता धूल पोंछ कर उन सन्देशों को ले आई। आकर माता ने देखा कि, नित्यानन्द उन्हीं लड्डुओं (सन्देशों) को खा रहे हैं। यह देखकर माता कहने लगीं,—"बेटा, ये कहाँ से मिले?" नित्यानन्द बोले,—"तुम्हारा दुःख देखकर हम उन्हीं को माँग लाये हैं, जो हमने छितरा कर फेंका था।"

(८२) गौः भाः—सन्देश—दूध की बनाई हुई एक बंगाली मिठाई।

(८६) गौः भाः—परतेके—प्रत्यक्ष भाव में, साक्षात् भाव में।

नित्यानन्द के चरित्र–दर्शन से शचीमाता का विस्मय एवं उनको 'ईश्वर' मानना—

अद्‌भुत देखिया आइ मने मने गणे।
नित्यानन्दमहिमा ना जाने कोन जने?९१॥
आइ बले,—''नित्यानन्द, केने मोरे भाँड़'?
जानिल ईश्वर तुमि, मोरे माया छाड़॥''९२॥

(९१-९२) प० अनु०—इस अद्‌भुत महिमा को देखकर आई (माता) मन-ही-मन सोचने लगीं कि, ऐसा कौन है, जो नित्यानन्द की महिमा को नहीं जानता हो? माता बोली, —"नित्यानन्द, क्यों मुझे रहस्य के घेरे में रखते हो? मैं जान गयी हूँ कि तुम 'ईश्वर' हो। अब, कृपया मुझसे अपनी माया हो दूर हटा दो।

(९२) गौः भाः—जीवों की प्रतारणा (छलना) करने के लिए भगवान् जीवों के विचारों में विभिन्न प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न करवा देते हैं। तब बद्धजीव असत्य वस्तु को 'सत्य' के रूप में देखने लगते हैं। यही ईश्वर का प्रभाव है।

बाल्यभाव में विवश नित्यानन्द-द्वारा
शची क चरण स्पर्श करेन की अभिलाषा
एवं शचीमाता का भाग जाना—

बाल्यभावे नित्यानन्द आइर चरण।
धरिवारे याय,—आइ करे पलायन॥९३॥

(९३) प० अनु०—बाल्यभाव-प्राप्त नित्यानन्द माता के चरण स्पर्श करने को गये तो माता दूर भाग गईं।

नित्यानन्द कि चरित्र-दर्शन से सुकृतिमान्
जीवों को सुफल-प्राप्ति एवं मन्द
भाग्यशाली के कार्य में बाधा—

एइमत नित्यानन्द-चरित्र अगाध।
सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्यवाध॥९४॥

(९४) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द के चरित्र अगाध प्रभावशील हैं। सुकृतिवान जीवों का लिए उनके चरित्र मंगलदायक हैं, किन्तु दुष्कृतिकारियों के लिए वे उनके कार्य में बाधास्वरूप हैं।

(९४) गौः भाः—भाग्यवान् जीव नित्यानन्द के चरित्र से सुफल प्राप्त करते हैं। भाग्यहीन जीव उनके बारे में बुरी धारणाओं को षोषण करके अपने कार्य में बाधा उत्पन्न कर लेते हैं।

नित्यानन्द-निंदक को देखकर
गंगा का भी पलायन—

नित्यानन्द-निन्दा करे ये पापिष्ठ जन।
गंगाओं ताहारे देखि' करे पलायन॥९५॥

(९५) प० अनु०—जो पापिष्ठ व्यक्ति नित्यानन्द की निन्दा करता है, उसे देखकर गंगा भी दूर भाग जाती हैं।

(९५) गौः भाः—अनादि-कर्मबंधन में आबद्ध जीव नित्यसत्य भगवद्‌वस्तु नित्यानन्द के स्वरूप को उपलब्ध करने में असमर्थ होकर उनकी निन्दा कर बैठते हैं। परन्तु इससे निन्दक का जो अपराध होता है, उस प्रकार के अपराधी को देखकर पापहारिणी गंगा, उसका पाप-हरण करने की बात तो दूर, उसे देखकर स्वयं दूर भाग जाती हैं। भगवान् के रुष्ट होने पर श्रीनित्यानन्द-गुरुदेव भगवान् के क्रोध को प्रशमित (शान्त) कर सकते है; परन्तु श्रीगुरु-नित्यानन्द के चरणों में अपराध करने पर उसका उपशमन (तुष्ट) होना परम दुःसाध्य है।

नित्यानन्द ही—वैष्णवाधिराज 'अनन्त' हैं, जो
पृथ्वीधारी 'शेष' रूप से प्रकाशित है—

वैष्णेर अधिराज अनन्त ईश्वर।
नित्यानन्द-महाप्रभु शेष महीधर॥९६॥

(९६) प० अनु०—नित्यानन्द-महाप्रभु ही वैष्णवाधिराज ईश्वर 'अनन्तदेव' और महीधर 'शेषदेव' है।

(९६) गौः भाः—अनन्त—"यस्याद्ब्रह्मादयो देवा मुनसयश्चोग्रतेजसः। न तेऽन्तमधिगच्छति तेनामन्तस्त्वमुच्छसे॥"—(मत्स्य पुराण में २/४८/३७); "योऽनन्त शक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वादयमनन्तमाहुः"
—(भाः १/१८/१९); "न ह्यन्ती यद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयते"—(भाः ४/३०/३१); "अनन्तशक्तिः परमोऽनन्तवीर्यः सोऽनन्तः।"—(ऋग्वेद)।

ग्रन्थकार द्वारा नित्यानन्द-चरण प्राप्ति के लिए फिर से प्रार्थना—

ये ते केने नित्यानन्द चैतन्ये नहे।
तबु से चरण-धन रहुक हृदये॥९७॥

(९७) प० अनु०—चैतन्य के नित्यानन्द जैसे भी हों, हर अवस्था में उनके चरण-धन मेरे हृदय में रहें।

ग्रन्थकार के द्वारा दीनतापूर्ण उक्ति के माध्यम से वैष्णव-वन्दना एवं बलराम-नित्यानन्द के दासत्व की प्रार्थना-

वैष्णेर पाये मोर एइ मनस्काम।
मोर प्रभु नित्यानन्द हउ बलराम॥९८॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥९९॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे श्रीनित्यानन्द चरित वर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः।

(९८-१००) प० अनु०—वैष्णवों के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि नित्यानन्द-बलराम मेरे प्रभु हो जाएँ। श्रीकृष्णचैतन्य एवं श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल-श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय-भाष्य में एकादश अध्याय समाप्त

O

द्वादश अध्याय

द्वादश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में नित्यानन्द का बाल्यभाव, गंगा में संतरण (तैरना)–लीला, बाल्य–भाव से दिगम्बर वेष में महाप्रभु के सामने आना, महाप्रभु के द्वारा और भक्तगण को प्रदान, नित्यानन्द का महत्त्व–वर्णन, भक्तगण द्वारा श्रीनित्यानन्द पादोदक पान् पादोदक पान के प्रभाव से सभी की प्रेम–चंचलता एवं महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्द का स्वरूप एवं प्रसाद–महिमा आदि विषय वर्णित हुये हैं।

नित्यानन्द–प्रभु नवद्वीप–लीला–प्रकाश काल में कृष्ण के आनन्द में विभोर होकर बालक की भाँति व्यवहार करते थे एवं उनके द्वारा वर्षाकाल में कुंभीर (घड़ियाल) आदि से परिपूर्ण गंगा में निर्भय होकर संतरण करते रहने से सभी भयभीत हो जाते थे। कभी–कभी वे आनन्द में मूर्च्छित होकर तीन–चार दिनों के लिए अचेतन–प्राय अवस्था में पड़े रहते थे। एकदिन नित्यानन्द बाल्यभाव से दिगम्बर वेष में "मेरा प्रभु है निमाइ पण्डित" ऐसा कहकर हुँकार करते–करते श्रीगौरसुन्दर के समीप में आ गये, तब महाप्रभु ने हँसकर अपने मस्तक पर रखा हुआ वस्त्र उनको पहना दियाए श्रीअंग में दिव्य गंध आदि लेपन कर दिया एवं माल्य प्रदानपूर्वक सम्मुख आसन पर बिठाकर उनका स्तवन करने लगे। नित्यानन्द के सहज और सरल भाव से महाप्रभु से सेवा ग्रहण की एवं प्रकाश्य स्तवन का श्रवण किया। पश्चात् महाप्रभु ने नित्यानन्द से एक कौपीन माँग ली और योगेश्वरों के लिए भी वांछनीय उस कौपीन को खंड–खंड करके भक्तों को प्रदान किया एवं उनको उस कौपीन के टुकड़े को मस्तक पर बाँध कर रखने का आदेश देकर नित्यानन्द के स्वरूपतत्त्व एवं कृपा–माहात्मय का वर्णन किया। महाप्रभु के आदेशानुसार सभी ने परमानन्द के साथ कौपीन के टुकड़ों को अपने–अपने सिर पर बाँध लिया। महाप्रभु–द्वारा भक्तोजनों को नित्यानन्द का पादोदक ग्रहण करने का आदेश प्रदान किये जाने पर वे सभी निताइ का पादोदक बारम्बार पान करने लगे। पादोदक–पान से मस्त हुये भक्तजनों ने अपने–अपने जीवन को धन्य समझा एवं अपने–अपने सौभाग्य और पादोदक की महिमा की प्रशंसा करने लगे।

पादोदक–पान के कारण प्रेम से चंचल होकर उन्होने परम आनन्द में कृष्णकीर्तन आरम्भ कर दिया। गौर–नित्यानन्द ने भी इसमें भाग लिया और पूरे दिन कीर्तन चलता रहा। कीर्तन के अंत में भक्तों के साथ आसन ग्रहण करके गौरसुन्दर ने निष्कपट भाव से सबको यह कहा कि, नित्यानन्द के चरण–शिव–ब्रह्मा आदि के द्वारा भी वन्दनीय हैं, उन चरणों में श्रद्धा–भक्ति करने से ही मेरे प्रति वास्तविक भक्तिश्रद्धा की जाती है, नित्यानन्द से द्वेष करने वाला मेरा प्रिय नहीं है, परन्तु नित्यानन्द के अंग का वातास (वायु) भी जिसका स्पर्श कर लेता है, उसे कृष्णकृपा मिल जाती है। भक्तों ने महा आनन्द में जय–ध्वनि करके

महाप्रभु के श्रीमुख से निकली इस बाता को शिरोधार्य कर लिया है।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

जय विश्वम्भर सर्ववैष्णवेर नाथ।
भक्ति दिया जीवे प्रभु कर आत्मस्यात्॥१॥

(१) प० अनु०—सभी वैष्णवों के नाथ श्रीविश्वम्भर की जय हो। हे प्रभो! भक्ति का दान देकर आप भी जीवों को आत्मसात् कीजिए।

नवद्वीप में गौर–नित्यानन्द की बहुविधि–लीला—

हेन लीला नित्यानन्द–विश्वम्भर–संगे।
नवद्वीपे दुइ जने करे बहु रंगे॥२॥

(२) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द और विश्वम्भर दोनों ने साथ मिलकर नवद्वीप में बहुत आनन्दपूर्ण लीला–विलास किया।

कृष्णप्रेम के आनन्द में उत्तम निताइ–द्वारा बालक जैसे स्वभाव का प्रदर्शन–

कृष्णानन्दे अलौकिक नित्यानन्दराय।
निरवधि बालकेर प्राय व्यवसाय॥३॥

(३) प० अनु०—नित्यानन्द राय अलौलिक श्रीकृष्णलीला के आनन्द में निरवधि (निरन्तर) बालक की भाँति व्यवहार करते रहते थे।

(३) गौः भाः—जड़ीय आनन्द में मस्त जनगण कृष्णानन्द के साथ संधान (जुड़ाव) नहीं रखते हैं। प्रभु नित्यानन्द सदा कृष्णानन्द में मस्त रहते थे, अतः उनका स्वभाव निरन्तर बालक की भाँति प्रतीत होता था। विषय में मस्त रहने वाले लोग जैसे विषय–संबधी कुटिलता का आश्रय लेकर बालक के जैसे सरल भाव को खो देते हैं, नित्यानन्द के चरित्र में वैसा लौकिक भाव दिखाई नहीं देता था।

भक्तों के साथ नित्यानन्द का मधुर सम्भाषण एवं नृत्य–गीत आदि के विलास—

सबारे देखिया प्रीत मधुर सम्भाष।
आपना–आपनि नृत्य–वाद्य–गीत–हास॥४॥

(४) प० अनु०—सबको देखकर उनके साथ नित्यानन्द प्रेमभाव से मधुर संभाषण किया करते थे। वे अपने आप ही नृत्य करते रहते थेए वाद्य बजाते रहते थे, गीत गाते रहते थे और हँसते रहते थे।

भावावेश से नित्यानन्द की हुँकार एवं उसे सुनकर सबको विस्मय की प्राप्ति—

स्वानुभावानन्दे क्षणे करेन हुँकार।
शुनिले अपूर्व–बुद्धि जन्मये सबार॥५॥

(५) प० अनु०—अपने अनुभव के आनन्द में वे क्षण भर में हुँकार करने लगते, जिसे सुनने से सबको एक अपूर्वता का अनुभव होता था।

वर्षाकाल में घड़ियालों से भरी गंगा के जल में निडर होकर नित्यानन्द की बहुविध–क्रीड़ा–

वर्षाते गंगाय ढेउ कुम्भीरे वेष्टित।
ताहाते भासये, तिलार्द्धेक नाहि भीत॥६॥

(६) प० अनु०—वर्षाकाल में गंगा की धारा में बहुत सारे कुंभीर (घडियाल) दिखाई देते थे। उन घड़ियालों से भरी हुई गंगा के जल में क्रीड़ा करने से नित्यानन्द रत्ती भर भी भयभीत नहीं होते थे।

अनन्तदेव नित्यानन्द का कारण–वारि–ज्ञान से गंगाजल में शयन एवं सभी को इसके बारे में अज्ञतावश विपद की आशंका–

सर्वलोक देखि' डरे करे—'हाय हाय'।

तथापि भासेन हासि' नित्यानन्दराय॥७॥
अनन्तेर भावे प्रभु भासेन गंगाय।
ना बुझिया सर्वलोक करे—'हाय हाय'॥८॥

(७-८) प० अनु०—सभी लोग यह देखकर डर के मारे 'हाय हाय' कर रहें थे, परन्तु नित्यानन्द हँसते हुये आराम से गंगाजल तैर रहे थे। अनन्तदेव के भाव से नित्यानन्द गंगा में तैर रहे थे, किन्तु सब लोग उस भाव को न समझकर 'हाय हाय हाय' कर रहे थे।

(८) गौः भाः—अनन्तदेव नित्यकाल कारण ावारि में शयन करते हैं। नित्यानन्द उसी भाव से गंगा में तैरते उस भाव को न समझने के कारण विपद की आशंका कर रहे थे।

कृष्णनन्द में विभोर नित्यानन्द का तीन-चार दिन तक बहिःसंज्ञा-रहित होकर अवस्थान—

आनन्दे मूर्च्छित वा हयेन कोन क्षण।
तिन चारि दिवसेओ ना हय चेतन॥९॥

(९) प० अनु०—किसी समय नित्यानन्द आनन्द से मूर्च्छित हो जाते थे। जब ऐसा होता था, तब वे तीन-चार दिनों तक सचेत नहीं होते थे।

(९) प० अनु०—किसी-किसी समय नित्यानन्द कृष्णानन्द में विभोर होकर तीन-चार दिन तक बाह्य-ज्ञान से रहित अवस्था में रहते थे।

नित्यानन्द की अचिन्तय-लीलाओं का अनन्तमुखों से भी वर्णन करने में ग्रन्थकार-द्वारा असमर्थता—

एइमत आर कत अचिन्त्य कथन।
अनन्त-मुखेते नारि करिते वर्णन॥१०॥

(१०) प० अनु—इस प्रकार की और भी कितनी ही अचिन्य लीला-कथाएँ हैं। अनन्त मुखों से भी उन सबका वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है।

बाल्यभाव से दिगम्बर वेष में महाप्रभु के निकट नित्यानन्द का आगमन एवं हुँकार-पूर्वक महाप्रभु के प्रभुत्व की ज्ञापना—

दैवे एकदिन यथा प्रभु बसि' आछे।
आइलेन नित्यानन्द ईश्वर काछे॥११॥
बाल्यभावे दिगम्बर हास्य श्रीवदने।
सर्वदा आनन्दधारा बहे श्रीनयने॥१२॥
निरवधि एइ बलि' करेन हुँकार।
''मोर प्रभु निमाइ पण्डित नदीयार॥''१३॥

(११-१३) प० अनु०—दैवयोग से एकदिन. जहाँ प्रभु विश्वम्भर बैठे हुये थे, वहीं नित्यानन्द अपने ईश्वर बाल्यभाव से दिगम्बर वेष में थे एव उनकी आँखों से निरन्तर आनन्दधारा बह रही थी और वे निरवधि (निरन्तर) यही कहकर हुँकार कर रहे थे कि, "नदीया के निमाइ पण्डित मेरे प्रभु हैं।"

(१२) गौः भाः—जैसे अभाव से पीड़ित बालक हमेशा क्रन्दन करते हुये अपने कष्ट का परिचय देते हैं, उसके विपरीत भाव से श्रीनित्यानन्द हँसमुख रहकर आनन्दाश्रु बरसाते रहते थे। कभी-कभी पहना हुआ वस्त्र ढीला हो जाता था। तब वे बालक की भाँति लज्जा के प्रतिकूल मधुर आचरण करते थे।

नित्यानन्द की महाज्योतिर्मय दिगम्बर-मूर्त्ति के दर्शन से महाप्रभु को हास्य एवं अपने सिर के वस्त्र द्वारा निताइ की लज्जा का निवारण—

हासे प्रभु देखि' तान मूर्त्ति दिगम्बर।
महाज्योतिर्मय तनु देखिते सुन्दर॥१४॥
आथेव्यथे प्रभु निज मस्तकेर वास।
पराइला थुइलेन—तथापिह हास॥१५॥

(१४-१५) प० अनु०—महाप्रभु उनके दिगम्बर वेश को देखकर हँसने लगे। नित्यानन्द का महाज्योतिर्मय श्रीअंग देखने में

बहुत सुन्दर था। प्रभु ने तुरन्त अपने मस्तक का वस्त्र उनको पहना दिया—फिर भी नित्यानन्द का हँसना बन्द नहीं हुआ।

(१५) गौः भाः—जब नित्यानन्द ने आनन्द में विह्वल होकर पहने हुये वस्त्र को उतार दिया, तब महाप्रभु ने अपने मस्तक के वस्त्र द्वारा उनकी लज्जा का निवारण किया। महाप्रभु-द्वारा उस प्रकार के अनुष्ठान के समय भी नित्यानन्द बालक की भाँति हँसकर अपना स्वभाव व्यक्त करते थे।

महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्द को आसन, दिव्यगंध एवं माल्य प्रदान तथा नित्यानन्द की महिमा का प्रकाश करने हेतू नित्यानन्द की स्तुति—

आपने लेपिला तान अंग दिव्यगंधे।
शेषे माल्य परिपूर्ण दिलेन श्रीअंगे॥१६॥
बसिते दिलेन निज सम्मुखे आसन।
स्तुति करे प्रभु, शुने सर्व भक्तगण॥१७॥
''नामे नित्यानन्द तुमि, रूपे नित्यानन्द।
एइ तुमि नित्यानन्द राम-मूर्तिमन्त॥१८॥
नित्यानन्द-पर्यटन, भोजन, वेभार।
नित्यानन्द बिना किछु नाहिक तोमार॥१९॥
तोमारे बुझिते शक्ति मनुष्येर कोथा?
परम सुसत्स—तुमि यथा, कृष्ण तथा॥''२०॥

(१६-२०) प० अनु०—महाप्रभु ने अपने ही हाथों से उनके श्रीअंग में दिव्यगंध का लेपन किया, फिर उनको माला पहनाई। इसके बाद अपने सामने बैठने के लिए आसन प्रदान किया और सभी भक्तजनों को सुनाकर स्तुति करने लगे,—"आप नाम से नित्यानन्द हैं और रूप से भी नित्यानन्द हैं। ऐसे नित्यानन्द स्वरूप आप साक्षात् बलराम हैं। आपका पर्यटन, भोजन, व्यवहार—सब नित्यानन्दमय है। आप नित्यानन्द के अतिरिक्त और कुछ नही जानते हैं। मनुष्य में यह शक्ति कहाँ, कि वह आपको समझ सके? यह परम सत्य है कि, जहाँ आप हैं, वहीं कृष्ण हैं।"

(१८) गौः भाः—महाप्रभु ने स्तवन करते समय नित्यानन्द से कहा,—'आप नाम में नित्यानन्द हैं एवं साक्षात् नित्यानन्द-रूप हैं; आपका आनन्द-प्रवाह स्तब्ध नहीं होता है। आप साक्षात् बलराम हैं। "बलरामो ममैवांशः सोऽपि तत्र भविष्यति। नित्यानन्द इति ख्यातो न्यासिचूडामणिः क्षितौ।।"—(वृहद् यामल में) "सेइ कृष्ण—नवद्वीपे श्रीचैतन्यचन्द्र। सेइ बलराम—संगे श्रीनित्यानन्द।।" (चैः चः आः ५/६)।

(१९) गौः भाः—श्रीमनमहाप्रभु ने कहा,—हे नित्यानन्द! भ्रमण, भोजन एवं सभी प्रकार के व्यवहारों में आपके निरवच्छिन्न (निरन्तर) आनन्द का कोई अवरोध नहीं हैं।

(२०) गौः भाः—जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ आप भी हैं। कृष्ण जिस प्रकार से नित्यतत्त्व हैं, वैसे ही आप भी सदैव उनके निकट वर्तमान रहने वाले नित्यतत्त्व हैं। मानव का त्रिगुणात्मक ज्ञान आपको समझने में समर्थ नहीं हो पाता है; क्योंकि आप तुरीय वस्तु (परात्पर तत्त्व) हैं।

चैतन्य के प्रेमरस में निमग्न निताइ-द्वारा सर्वत्र महाप्रभु की इच्छा के अनुसार ही सब कार्यों का सम्पादन—

चैतन्येर रसे नित्यानन्द महामति।
ये बलेन, ये करेन—सर्वत्र सम्मति॥२१॥

(२१) प० अनु०—महामति नित्यानन्द चैतन्य के प्रेमरस में निमग्न होकर महाप्रभु की इच्छा के अनुरूप ही सब कुछ करते और बोलते थे।

नित्यानन्द से महाप्रभु-द्वारा कौपीन माँगना, उसे खण्ड-खण्ड करके सभी वैष्णवों में उसका वितरण एवं उसे मस्तक में धारण करने के लिए आदेश प्रदान-

प्रभु बले,—''एकखानि कौपीन तोमार।
देह'—इहा बड़ इच्छा आछये आमार''॥२२॥
एत बलि' प्रभु तार कौपीन आनिया।
छोट करि' चिरिलेन अनेक करिया॥२३॥
सकल-वैष्णवमण्डलीरे जने जने।
खानि खानि करि' प्रभु दिलेन आपने॥२४॥
प्रभु बले,—''ए वस्त्र बांधह सबे शिरे।
अन्येर कि दाय—इहा बांछे योगेश्वरे॥२५॥

(२२—२५) प० अनु०—प्रभु ने कहा, —"मेरी बड़ी इच्छा है कि, आपकी एक कौपीन मुझे मिल जाए, कृपा उसे दे दीजिए।" ऐसा कहकर प्रभु ने एक कौपीन ले ली और उसके टुकड़े करके अनेक अंशों में उसे विभक्त कर दिया। फिर सभी वैष्णवों को एक-एक टुकड़ा प्रदान किया। उसके बाद प्रभु बोले, —"यह वस्त्र-खण्ड सभी अपने सिर पर बाँध लो। दूसरों के बारे में क्या कहूँ,—योगेश्वर भी इसकी कामना करते हैं।

(२२) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द ने तीर्थ भ्रमणकारी संन्यासी के साथ विचरण करते समय ब्रह्मचारी के कौपीन ग्रहण किया था। ब्रह्मचारी के चिह्न-स्वरूप उस कौपीन को महाप्रभु ने भिक्षा में माँगने की इच्छा प्रकट की थी। कौपीन धारण करने वाले व्यक्ति थोड़े-से वस्त्र की सहायता से लज्जा का निवारण करते हैं। विषयों में मस्त जनगण 'सभ्यता' नामक कपट का आश्रय लेकर अनेक प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों से सज्जित होकर सरलता के अभाव का पोषण करते हैं और उसी को 'भद्रता' मानते हैं। मन में व्यभिचार को पुष्ट करने के लिए वस्त्रों-द्वारा केवल बाहरी अंगों का जो आच्छादन होता है, उसे निरस्त करने के आदर्श को सामने रखते हुये कौपीन-ग्रहण करना आश्रमधर्म की श्रेष्ठता को सूचक होता है।

(२५) गौः भाः—नित्यानन्द के आदर्श को मानते हुये विषयों से मुक्त जनों के चिह्न-स्वरूप उस कौपीन को थोड़े-थोड़े प्रसाद के रूप में अनेक खंडों में विभक्त करके महाप्रभु ने भक्तजनों के सिर पर स्थापित कर दिया। योगेश्वर शिव-नारद आदि भी उस प्रकार की कौपीन को सिर पर धारण करके ही विषय-भोगों से निवृत्त हो पाते हैं। हे भक्तमण्डली! तुम लोग भी इस परम दुर्लभ कौपीन के अंशों को सिरों पर धारण करके जड़भोगों से निवृत्त और कृष्णप्रेम में उन्मत्त हो जाओ। भक्तराज नित्यानन्द ने जिस प्रकार से सांसरिक भोगों को या त्यागकर भगवत्सेवा में आसक्ति का प्रदर्शन किया है, वैसे ही अनन्त विष्णु के विभिन्नांश स्वरूप तुम सब ही अपनी-अपनी आसक्ति को त्यागकर कृष्ण के बारे में जानों एवं हर पल उनकी सेवा में नियुक्त रहो।

कृष्ण की पूर्णशक्ति नित्यानन्द के प्रसाद से ही विष्णु-भक्ति को प्राप्त किया जा सकता है—

नित्यानन्दप्रसादे से हय विष्णु-भक्ति।
जानिह—कृष्णेर नित्यानन्द पूर्ण-शक्ति॥२६॥

(२६) प० अनु०—नित्यानन्द की कृपा से ही विष्णुभक्ति प्राप्त की जा सकती है। यह जान लेना चाहिए कि, नित्यानन्द कृष्ण की पूर्ण शक्ति है।

(२६) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा, —श्रीनित्यानन्द प्रभु को कृष्ण की पूर्णशक्ति के रूप में जानना चाहिए। कृष्ण के जितने

भी सेवक हैं, उनमें वे सर्व-प्रधान हैं। केवलमात्र उनकी कृपा से ही विष्णुभक्ति मिलती है। वे 'संधिनी शक्ति' में अधिष्ठित विष्णुविग्रह हैं। स्वयं विष्णु होकर भी वे परतम विष्णुतत्त्व के सेवक हैं। उनके अनुग्रह से ही जीवों में हरिभजन की प्रवृत्ति का उन्मेष होता है। श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीवार्षभानवी (वृषभानुजा) की अनुजा (छोटी बहिन) की रूप में मधुर रति का पोषण किया करते हैं। इसलिए श्रीठाकुर नरोत्तम ने कहा है,-"हेन निताइ बिने भाइ, राधाकृष्ण पाइते नाइए दृढ़ करि' हेन निताइ पाय॥" जगद्गुरुवाद में श्रीनित्यानन्द ही गुरु-तत्व के आकर-स्वरुप हैं। महान्त जगद् गुरुवाद में श्रीमहानन्द के अवतार के रुप में ही (मर्यादा-मार्ग) कहे जाते हैं। श्रीमहान्त-गुरुदेव कृष्ण के प्रेष्ठतत्त्व हैं। इसलिए वे नित्यानन्द के साथ अभिन्न श्रीचैतन्य-प्रकाश एवं नित्यानन्दस्वरूप से विख्यात हैं। शौक्र पद्धति (वंश परम्परा) में नित्यानन्द के वंश का परिचय भक्तिपथ का कोई भी पथिक स्वीकार नहीं करता है। अभक्त विष्णुसेवा-विरोधी-स्मार्तमण्डली, उस रूप शौक्रवंश के परिपन्थी (विरोधी) हैं। आम्नाय परंपरा में नित्यानन्द वंश, शौक्र-पंरपरा में स्थित नहीं है। इसलिए विभिन्न ग्रामीण-परिचयों में श्रीवीरभद्र प्रभु की शिष्य-परंपरा में श्रीनित्यानन्द-शौक्रवंशधारा की उत्पत्ति हुई है। ख्रिष्टीय १९वीं शताब्दी के शेषभाग में वेनियाटोला (कलकत्ता) के किसी व्यक्ति ने 'नित्यानन्द-वंश-विस्तार' नामक जिस पुस्तक की रचना की है, वह आधुनिक एवं इतिहास-विरुद्ध है।

नित्यानन्द का स्वरूप एवं महात्मय—

कृष्णेर द्वितीय—नित्यानन्द बइ नाइ।
संगी, सखा, शयन, भूषण, बन्धु, भाइ॥२७॥
वेदेर अगम्य नित्यानन्देर चरित्र।
सर्वजीव-जनक, रक्षक, सर्वमित्र॥२८॥
इहार व्याभार सब कृष्णरसमय।
इहाने सेविले कृष्ण-प्रेमभक्ति हय॥२९॥

(२७-२९) प० अनु०—नित्यानन्द को छोड़कर कृष्ण का और दूसरा कोई नहीं है। नित्यानन्द कृष्ण के साथी, सखा, शयन, भूषण, बंधू, भाई—सब कुछ हैं। नित्यानन्द का चरित्र वेदों के लिए भी अगम्य है। वे सभी जीवों के जनक, रक्षक और सभी के मित्र हैं। उनका सम्पूर्ण व्यवहार कृष्णरसमय है। उनकी सेवा करने से कृष्ण में प्रेमभक्ति का उदय होता है।

(२७) गौः भाः—कृष्ण के दूसरे प्रकाश श्रीबलदेव प्रभु ही—श्रीगौरसुन्दर के प्रकाश नित्यानन्द हैं, अतएव द्वितीय हैं। कृष्ण—अद्वितीय हैं, नित्यानन्द द्वितीय हैं। नित्यानन्द के अतिरिक्त अद्वितीय कृष्ण के तत्त्व-विचार में अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। वे गौरांग के साथी, गौरांग के सखा, गौरांग के शयन-भ्रमण का आधार, गौरांग के अलंकार, गौरांग के आत्मीय एवं बड़े भाई हैं।

(२८) गौः भाः—नित्यानन्द का चरित्र वेदपाठक तत्त्वविद्गणों के लिए भी दुर्गम वस्तु है। नित्यानन्द से मूल महावैकुण्ठ मे वासुदेव का संकर्षणरूप पांचरात्रगण विचार करते हैं, वह नित्यानन्द का अंशगत परिचय नहीं है। नित्यानन्द तो स्वयं प्रकाशवस्तु हैं। उनसे ही प्रकट होकर कारणार्णवशयी विष्णु, गर्भोदकशायी विष्णु एवं क्षीरोदकशायी विष्णु—ये तीनों अर्णवत्रय (तीन समुद्र) में शयन कर रहे हैं। व्यष्टि-विष्णु, समष्टि-विष्णु एवं कारण-विष्णु,—ये अनिरुदद्ध, प्रद्युम्न एवं

संकर्षण के रूप में प्रतिष्ठित हैं। संधिनी शक्ति में अधिष्ठित विष्णुविग्रह से ही कारणोदकशायी विष्णु एवं उनसे नैमित्तिक अवतार समूह तथा तटस्थशक्ति-परिणाम से परिचित जीवतत्त्व का उदय होता है। इसलिए वे सब जीवों के जनक हैं। वे सभी जीवों के पालक हैं, इसलिए सभी के 'रक्षक' एंव सभी के एकमात्र आश्रय हैं, इसलिए सभी के 'बंधु' (मित्र) हैं। नित्यानन्द प्रभु—ईश्वर हैं। जीवगण—उनके भेदांश हैं, अर्थात् तटस्थ-शक्ति-परिणात सेवक हैं। "चिच्छक्ति-विलास एक—'शुद्धसत्त्व' नाम। शुद्धसत्त्वमय यत वैकुण्ठादि धाम॥ षड्विधैश्वर्य ताँहा सकल चिन्मय। संकर्षणेर विभूति सब, —जानिह निश्चय॥ 'जीव' नाम तटस्थाख्य एक शक्ति हय। महासंकर्षण—सब जीवेर आश्रय॥"—(चैः चः आः ५/४३-४५)।

(२९) गौः भाः—कृष्ण की रस-सेवा के समाधान के उद्देश्य में नित्यानन्द के सभी उद्यम (चेष्टा) हैं, इसलिए इनकी सेवा करने से ही कृष्णप्रेमभक्ति-पिपासुजनों में सेवा-वृत्ति का सब प्रकार से उन्मेष होता है। "जय जय नित्यानन्द चरणारविन्द। याँहा हैते पाइनु श्रीराधागोविन्द॥"—(चैः चः आः ५/२०४)।

श्रीमन् नित्यानन्द के अधोवस्त्र को सिर पर बाँधकर यतन के साथ पूजा करने के लिए भक्तों के प्रति महाप्रभु का आदेश एवं भक्तगण द्वारा वैसा करना—

भक्ति करि' इहान कौपीन बाँध' शिरे।
महायत्ने इहा पूजा कर गिया घरे॥''३०॥

(३०) प० अनु०—भक्ति-पूर्वक इनकी कौपीन को सिर पर बाँध लो और घर में जाकर महा यत्न के साथ इसकी पूजा किया करो।"

प्रभु से आदेश मिलने पर भक्तों-द्वारा निताइ की कौपीन को आदर-सहित सिर पर बाँधना—

पाइया प्रभुर आज्ञा सर्वभक्तगण।
परम आदरे शिरे करिला बंधन॥३१॥

(३१) प० अनु०—प्रभु की आज्ञा पाकर सभी भक्तजनों ने परम आदर और सम्मान के साथ उस कौपीन के टुकड़े को सिर पर बाँध लिया।

(३१) गौः भाः—महाप्रभु से आदेश मिल जाने पर भक्तों ने नित्यानन्द के लज्जा-वस्त्र (कौपीन) के खंडो को मस्तकों पर बाँध लिया एवं प्रभु की आज्ञा के अनुसार उसे परम यत्न के साथ अपने घरों में ले जाकर वे नित्य पूजा-सहित उसका समादर करने लगे। भगवान् के अथवा भक्तों के, नाभि के नीचे के अंग-प्रत्यंग के साथ संलग्न वस्तुओं को अपने निम्न अंगों से संलग्न वस्तुओं के समान वस्तुओं को अपने निम्न अंगों से संलग्न वस्तुओं के समान मानना भक्ति-शास्त्र के पूर्णतः विपरीत है। पूज्यजनों की पदधूलि (चरण-रज) एवं उनको अधोवस्त्र आदि वस्तुएँ भक्तिपिपासु व्यक्तियों का भजनबल है। इनसे समानता करने वाला अथवा घृणा करने से भक्तिपथ के पहले सोपान 'श्रद्धा' में व्याघात होता है। "भक्तपदधूलि आर भक्त पदजल। भक्त-भुक्त-शेष,—एइ तिन साधनेर बल॥" (चैः चः अः १६/६०)। "छाड़िया वैष्णवसेवा, निस्तार पेयेछ केवा"—इस विचार मे स्थित न होने तक विष्णुभक्ति की प्राप्ति की कोई संभावना नहीं है। अपने मल-मूत्र एवं अपनों से निम्न विचार-विशिष्ट मनुष्यों के मल-मूत्र के साथ पूजनीय जन के मल-मूत्र के साथ पूजनीय जन के मल-मूत्र को समान धारा में विचारना कर्तव्य नहीं है। उस प्रकार का विचार उपस्थित होने से हरि-गुरु-वैष्णव सेवा

में व्याघात होता है। परन्तु जो हरि-गुरु-वैष्णव नहीं हैं उसे हरि-गुरु-वैष्णव मानने से श्रद्धावान् होने के बदले में श्रद्धाविहीन होकर श्रद्धेयजनों के अनुग्रह से वंचित होना पड़ता है। वही सेवा-विमुखता अथवा अभक्ति है।

नित्यानन्द के पादोदक की महिमा बताते हुये महाप्रभु का भक्तों को निताइ का पादोदक-पान करने का आदेश एवं भक्तों के द्वारा वैसा करना—

प्रभु बले,—"शुनह सकल भक्तगण।
नित्यानन्द-पादोदक करह ग्रहण॥३२॥
करिलेइ मात्र एइ पादोदक पान।
कृष्ण दृढ़ भक्ति हय, इथे नाहि आन॥"३३॥
आज्ञा पाइ' सबे नित्यानन्देर चरण।
पाखलिया पादोदक करये ग्रहण॥३४॥
पाँचबार दशबार एकजने खाय।
बाह्य नाहि, नित्यानन्द हासये सदाय॥३५॥

(३२-३५) प० अनु०—प्रभु बोले,—"सभी भक्तजन, सुनो! तुम सब नित्यानन्द का पादोदक ग्रहण कर लो। इस पादोदक को ग्रहण करने मात्र से कृष्ण में दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है, यह बात सच है।" आज्ञा पाकर सभी ने नित्यानन्द के चरण प्रक्षालन करके उनका चरणोदक ग्रहण किया। एक-एक व्यक्ति पाँच-पाँच, दस-दस बार उस चरण-जल को पी रहा था। ऐसा करने से बाह्यज्ञान रहित नित्यानन्द हँस रहे थे।

स्वयं महाप्रभु के द्वारा कौतुक-सहित नित्यानन्द के पादोदक का वितरण एवं उसे पान करने से वैष्णवों-द्वारा बहुविध आलाप एवं प्रेममत्त भाव—

आपने बसिया महाप्रभु गौर-राय।
नित्यानन्द-पादोदक कौतुके लोटाय॥३६॥
सबे नित्यानन्द-पादोदक करि' पान।
मत्तप्राय 'हरि' बलि' करये आह्वान॥३७॥
केह बले,—"आजि धन्य हइल जीवन।"
केह बले,—"आजि सब खंडिल बन्धन॥"३८॥
केह बले,—आजि हइलाम कृष्णदास।"
केह बले,—"धन्य दिवस-प्रकाश॥"३९॥
केह बले,—"पादोदक बड़ स्वादु लागे।
एखनो मुखेर मिष्ठता नाहि भांगे॥"४०॥
कि से नित्यानन्द-पादोदकेर प्रभाव।
पानमात्र सबे हैला चंचल-स्वभाव॥४१॥
केह नाचे, केह गाय, केह गड़ि' याय।
हुँकार गर्जन केह करये सदाय॥४२॥
उठिल परमानन्द कृष्णेर कीर्तन।
विह्वल हइया नृत्य करे भक्तगण॥४३॥
क्षणके श्रीगौरचन्द्र करिया हुँकार।
उठिला लागिया नृत्य करिते अपार॥४४॥
नित्यानन्द-स्वरूप उठिला ततक्षण।
नृत्य करे दुइ प्रभु बेड़ि' भक्तगण॥४५॥
का'र गाये केवा पड़े केवा का'रे धरे।
केवा का'र चरणेर धूलि लय शिरे॥४६॥
केवा का'र गला धरि' करये रोदन।
केवा कोन् रूप करे,—ना याय वर्णन॥४७॥
प्रभु करियाओ का'रो किछु भय नाञि।
प्रभु-भृत्य-सकले नाचये एक ठाञि॥४८॥
नित्यानन्द-चैतन्ये करिया कोलाकुलि।
आनन्दे नाचेन दुइ प्रभु कुतूहली॥४९॥
पृथिवी कम्पिता नित्यानन्द-पद-ताले।
देखिया आनन्दे सर्वगणे 'हरि' बले॥५०॥

(३६-५०) प० अनु०—महाप्रभु श्रीगौर-राय स्वयं बैठकर आनन्द के साथ नित्यानन्द का पादोदक वितरण कर रहे थे। सभी नित्यानन्द के पादोदक का पान कर रहे थे सभी मत्तों

की भाँति 'हरि' बोलकर पुकार रहे थे। कोई कहता,—"आज जीवन धन्य हो गया", तो कोई कहता,—"आज सारे बंधन टूट गये"। कोई कहता,—"आज हम कृष्ण के दास बने है", तो कोई कहता,—"आज के दिन को प्रकाश धन्य हुआ।" कोई कहता,—"पादोदक बड़ा ही स्वादिष्ट लगता है, अभी भी मुँह का मीठापन दूर नहीं हुआ है।" नित्यानन्द के पादोदक में न जाने क्या प्रभाव था कि पान करने मात्र से सभी का स्वभाव चंचल–सा हो गया। उसे पीकर कोई नृत्य करने लगा, कोई गीत गाने लगा, कोई भूमि पर लोट–पोट होने लगा, कोई निरन्तर हुँकार–गर्जन करने लगा। इस प्रकार से परमानन्द–स्वरूप कृष्ण–कीर्तन की गूँज उठने लगी और भक्तगण विह्वल होकर नृत्य करते हुये उठकर अपार नृत्य करना शुरू कर दिया। यह देखकर नित्यानन्द–स्वरूप भी उठकर खड़े हो गये और चारों ओर नृत्यरत भक्तों के बीच दोनों प्रभुओं ने एक साथ नृत्य करना आरम्भ कर दिया। कोई किसी के शरीर से जाकर टकरा रहा था, कोई किसी को पकड़ रहा था तो कोई किसी की चरण–रज सिर पर धारण रहा था तो कोई किसी को गले लगकर क्रन्दन कर रहा था। कौन–कौन क्या–क्या कर रहा था, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये दोनों प्रभु हैं, इस बात का भी कोई डर किसी को नहीं था। प्रभु और भृत्य एकसाथ मिलकर नृत्य कर रहे थे। नित्यानन्द और चैतन्य दोनों प्रभुओं ने परस्पर आलिंगन किया और फिर दोनों आनन्द–सहित नृत्य कर रहे थे। नित्यानन्द के पद–ताल से पृथ्वी काँप रही थी, इसे देखकर सभी भक्तगण आनन्द के साथ 'हरि–हरि' बोल रहे थे।

(३९–४०) गौः भाः—श्रीश्रीगौरसुन्दर की आज्ञानुसार श्रीनित्यानन्द के पदप्रक्षालित जल को ग्रहण करते हुये किसी ने कहा,—"पदप्रक्षालित का पादोदक बड़ा ही स्वादिष्ट है; पादोदक पान के स्वाद से उत्पन्न मीठापन अभी तक नहीं गया। पादोदक पान करने पर उसे पी लेने के बाद भी मुँह में मीठापन निरन्तर बना रहता है।" साधारण मूढ़ व्यक्ति श्रीनित्यानन्द पादोदक में साधारण जलबुद्धि रखने के कारण पार्थिव आशा–पाश–रज्जु में आबद्ध रहते हैं। परन्तु पादोदक का स्वभाव ही ऐसा है कि, उसका पान करने वाले भक्त अपने आत्मस्वरूप को समझकर और उसे उपलब्ध करने में पारंगत होकर अपने नित्य भगवतद् दास्य–स्वरूप को समझ लेते है।। फिर किसी–किसी ने कहा, —"सभी अंमगल दूर होकर आज हमारे अपने स्वरूप की उलब्धि के सुप्रभाव का उदय हुआ है।" जो श्रीनित्यानन्द के श्रीपादपद्मों की तुलना अन्य जीवों के निम्न अंगों के साथ करने में रूचि दिखाते हैं, उनमें कृष्णभक्ति का अभाव है, ऐसा मानना होगा। प्रभु का पादोदक–पान करने वाले जन में ऐसी उन्मत्ता आती है कि वह निरन्तर मुख से भगवान् को पुकारते रहने के प्रयास से जुड़ जाता है। जो लोग जड़रस (विषय–रस) में प्रमत्त होकर अपने को 'गुरु' मानते हुये नित्यानन्द समझते हैं, उन सब नारकीयजनों को जड़ीय अनुभूति उनकी अहंकार विमूढ़ात्मता को ही बड़ावा देती है।

नृत्य के उपरान्त भक्तों के साथ महाप्रभु का उपवेशन एवं आस्फालन के साथ सभी के निकट नित्यानन्द की महिमा का प्रकाशन—

प्रेमरसे मत्त दुइ वैकुण्ठ–ईश्वर।
नाचेन लइया सब प्रेम–अनुचर॥५१॥
ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद।

'आविर्भाव', तिरोभाव' मात्र कहे वेद॥५२॥
एइमत सर्वदिन प्रभु नृत्य करि'।
बसिलेन सर्व–गण–संगे गौरहरि॥५३॥
हाते तिन तालि दिया श्रीगौरसुन्दर।
सबारे कहेन अति अमाया–उत्तर॥५४॥
प्रभु बले,—''एइ नित्यानन्दस्वरूपेरे।
ये करये भक्ति–श्रद्धा, से करे आमारे॥५५॥
इहान चरण—शिव–ब्रह्मार वन्दित।
अतएव इहाने करिह सबे प्रीत॥५६॥
तिलार्द्धेक इहाने याहार द्वेष रहे।
भक्त हइलेओ से आमार प्रिय नहे॥५७॥
इहान वातास लागिवेक या'र गाय।
ताहारेओ कृष्ण ना छाड़िवे सर्वथाय॥''५८॥

(५१–५८) प० अनु०—प्रेमरस में मत्त होकर वैकुण्ठ के दोनों ईश्वर सभी अनुचरों (भक्तों को साथ लेकर नृत्य कर रहे थे। उनकी इन सब लीलाओं को कभी अन्त नहीं होता है। वेद इन लीलाओं का केवल 'आविर्भाव', तिरोभाव' कहते हैं। दिनभर इस प्रकार से नृत्य करने के पश्चात् प्रभु सभी भक्तों के साथ बैठ गये। हाथों से तीन तालियाँ बजा–कर श्रीगौरसुन्दर माया–रहित होकर सभी भक्तों से कहने लगे। प्रभु बोले, —"इन नित्यानन्दस्वरूप में जो भक्ति–श्रद्धा करते हैं। शिव और ब्रह्मा भी इनके चरणों की वन्दना किया करते हैं। अतएवए तुम सब इनसे प्रीति रखना। क्षणभर के लिए भी जो इनमें द्वेष करता हैं, वह मेरा भक्त होने पर भी मेरा प्रिय नहीं है। इनकी हवा भी जिसके शरीर का स्पर्श कर लेती है, उसे फिर कृष्ण किसी भी अवस्था में त्याग नहीं देते हैं।"

(५५–५७) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीगौरसुन्दर—अभिन्न–कलेवर हैं। श्रीनित्यानन्द की चरणसेवा द्वारा ही श्रीगौरसुन्दर की सेवा प्राप्त की जा सकती है। श्रीनित्यानन्द के चरण–कमल–ब्रह्मा एवं शिव आदि समस्त गुणावतारों के आराध्य वस्तु हैं। जो लोग इस परमाराध्य वस्तु के प्रति अनुरागरहित होकर थोड़े समय के लिए भी उनके प्रति विद्वेष–भाव का पोषण करते हैं एवं बहिरंगा शक्ति (माया) की सेवा करने में लग जाते हैं, वे कभी भी श्रीगौरसुन्दर के प्रीतिभाजन नहीं बन सकते हैं।

(५८) गौः भाः—वायु के द्वारा सूक्ष्म गंध संचारित होती है। श्रीनित्यानन्द के शरीर की गंध के संस्पर्श से भी कृष्णभक्ति इतनी दृढ़ता को प्राप्त कर लेती है कि, भजनीय वस्तु कृष्ण किसी भी अवस्था में उस गंध द्वारा स्पर्शित व्यक्ति का परित्याग नहीं कर सकते हैं।

महाप्रभु के वाक्य–श्रवण से
भक्तगण की जयध्वनि—

शुनिया प्रभुर वाक्य सर्व–भक्तगण।
महा जय–जय–ध्वनि करिला तखन॥५९॥

(५९) प० अनु०—उस समय महाप्रभु की बात सुनकर सभी भक्तगण 'जय हो' 'जय हो' की ध्वनि का जोर–जोर से उच्चारण करने लगे।

नित्यानन्द के अलौकि चरित्र के
श्रवण का फल—

भक्ति करि' ये शुनये ए सब आख्यान।
ता'र स्वामी हय गौरचन्द्र भगवान्॥६०॥

(६०) प० अनु०—जो भक्ति–सहित इस सब आख्यान को सुनते हैं, वे अपने स्वामी (प्रभु) के रूप में भगवान् श्रीगौरसुन्दर को प्राप्त करते हैं।

(६०) गौः भाः—जो लोग श्रीनित्यानन्द

प्रभु की लोकातीत चरित्र–कथा का श्रद्धा के साथ श्रवण करते हैं, वे कभी भी श्रीचैतन्य दास्य से किसी प्रकार से भी विमुख नहीं हो सकते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रति सेवोन्मुख व्यक्ति ही सर्वतोभाव से श्रीगौरसुन्दर का दास्य करने में समर्थ होते हैं। 'स्वामी'–शब्द मिल जाने से ही गौरनारी–सम्प्रदाय को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि, कांचनलता आदि कल्पित नदीया नागरीगण की भाँति वे ही जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द प्रभु के अभिन्न कलेवर श्रीगौरसुन्दर को व्याभिचार के रंग में रंजित कर प्राकृत विचारों का तांडव नृत्य दिखा संकेगे।

चैतन्य के प्रिय महाभाग्यवान् प्रत्यक्षदर्शी जनगण ही नित्यानन्द–प्रभाव बोध में समर्थ—

नित्यानन्दस्वरूपरे ए सकल कथा।
ये देखिल, से ताँहारे जानये सर्वथा॥६१॥
एइ मत कत नित्यानन्देर प्रभाव।
जाने यत चैतन्येर प्रिय महाभाग॥६१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥६३॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यवते श्रीनित्यानन्द महिमावर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः।

(६१–६३) प० अनु०—नित्यानन्द–स्वरूप की इन सब कथाओं का जिन्होंने साक्षात् दर्शन किया है, वे ही नित्यानन्द को भलीभाँति जानते हैं। इस प्रकार नित्यानन्द प्रभु का कितना प्रभाव है, उसे चैतन्य के प्रिय महाभाग्यवान् जन ही भली प्रकार जानते हैं। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल–चरणों की महिमा का गान करते हैं।

(६२) गौः भाः—श्रीचैतन्य के परमप्रिय महाभाग्यवान् जनगण ही श्रीनित्यानन्द के प्रभाव को जानने में समर्थ हैं।

इति गौड़ीय–भाष्य में द्वादश अध्याय समाप्त

O

त्रयोदश अध्याय

त्रयोदश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में महाप्रभु का नित्यानन्द और हरिदास के द्वारा घर-घर में कृष्णकीर्तन, कृष्णभजन एवं कृष्ण शिक्षा-प्रचार का प्रवर्तन, जगाइ-माधाइ के निकट प्रचार, माधाइ के द्वारा नित्यानन्द पर आक्रमण, घटनास्थल पर महाप्रभु का आगमन एवं सुदर्शन-चक्र का आह्वानश दोनों भाइयों का गौर-पादपद्म में शरणागत होना, गौर-नित्यानन्द के द्वारा जगाइ-माधाइ को क्षमा प्रदान एवं उद्धार, देवगण द्वारा गौरसेवा, वैष्णव के चरणों में अपराध का परिणाम इत्यादि वर्णित हुआ है।

श्रीगौरसुन्दर के लीला-समूह को केवल प्रेमदृष्टि से ही उपलब्ध किया जा सकता है। इसलिए प्रभु के प्रति प्रीति-रहित साधारण लोग उनको केवलमात्र 'निमाइ पण्डित' समझते थे। परन्तु सुकृतिवान् जनगण ही अपने-अपने अधिकार के अनुसार उनके प्रकाश-समूह का दर्शन किया करते थे। एकदिन महाप्रभु ने नित्यानन्द एवं हरिदास को प्रत्येक के द्वार पर जाकर कृष्णभजन, कृष्णकीर्तन एवं कृष्णशिक्षा-प्रचार-रूप भिक्षा करने की एवं दिन के उपरान्त इसके परिणाम के बारे में उनको बताने की आज्ञा प्रदान की। इस प्रकार की अद्‌भुत भिक्षा का आदेश सुनकर पहले तो सभी हँस पड़े। फिर नित्यानन्द और हरिदास उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हुये द्वार-द्वार पर जाकर उस प्रकार की भिक्षा करने लगे। गृहस्थीगण दोनों संन्यासियों को सम्भ्रम-सहित भिक्षा ग्रहणार्थ निमंत्रित करने के लिए आते तो वे महाप्रभु के आदेश के अनुरूप मात्र 'कृष्णकीर्तन, कृष्णभजन एवं कृष्णशिक्षा करने की अनुरोध-रूप भिक्षा करके कहीं अन्यत्र चले जाते। अपूर्व भिक्षा की रीत को देखकर सज्जनगण आनन्दित होकर जब उनको पागल समझकर चैतन्य की निन्दा करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते तो कोई-कोई उनको पागल समझकर चैतन्य की निन्दा करने लगता, अथवा कोई श्रीवास के घर कृष्णकीर्तन में प्रवेशाधिकार न मिलने पर ईर्ष्या के साथ उनको आक्रमण एवं धर्मधिकरण (कानून) का भय दिखाता। परन्तु चैतन्य के बल से बली नित्यानन्द और हरिदास इससे जरा भी विचलित अथवा भयभीत नहीं हुये और अपना कार्य करते रहे।

एक दिन दोनों को महा-पापिष्ठ जगाइ-माधाइ नामक दो मद्यप दिखाई दिये। दोनों की दुर्गति की पराकाष्ठा को देखकर परम दयालु पतितपावन नित्यानन्द एवं हरिदास के हृदय विचलित हो उठे। उन्होंने दोनों भाइयों को महाप्रभ की पतितोद्धारण लीला का ज्वलन्त उदाहरण-स्थल समझकर सभी विपत्तियों को स्वीकार करते हुये उनको महाप्रभु के परम मंगलजनक आदेश की जानकारी देने के लिए संकल्प कर लिया एवं ऊँचे स्वर से कृष्णभजन की बात कहने लगे। जगाइ-माधाइ को अनेक पापाचरण करने पर भी वैष्णवपराध करने का अवसर कभी नहीं

मिला था, इसलिए गौर–नित्यानन्द की कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो सका। वैष्णवनिन्दा—बड़ा ही गुरुतर अपराध है, यह सर्वमंगलों का बाधक एवं सारे अधःपतन का हेतु है। एकमात्र वैष्णव–कृपा को छोड़कर सर्व–महाप्रायश्चित स्वरूप कृष्णनाम से भी वैष्णवापराध का क्षालन नहीं होता है, इस बात की सभी शास्त्र ऊँचे स्वर से घोषणा करते हुये जगत् को सावधान कर रहे हैं। नित्यानन्द और हरिदास की पुकार सुनकर, हमारे स्वच्छन्द विहार में इन यतियों ने व्याघात उत्पन्न किया है, ऐसा समझकर दोनों दस्युओं ने दोनों संन्यासियों का पीछा करना शुरू कर दिया। दोनों ने भागकर भक्त–मण्डली के बीच समासीन गौरसुन्दर के चरणों में पहुँचकर सारा वृत्तांत सविस्तार निवेदित किया एवं उनसे अनुरोध किया कि इन पातकीयों का उद्धार करके अपने 'पातकीपावन' नाम को सार्थक करने की कृपा करें। दोनों पापियों के प्रति 'नित्यानन्द की कृपा–दृष्टि के कारण ही दोनों का उद्धार सम्भव हो सका है'—महाप्रभु द्वारा ही दोनों का उद्धार सम्भव हो सका है'—महाप्रभु द्वारा इस बात की जानकारी देने पर समवेत वैष्णवगण दोनों पातकियों का उद्धार निश्चित जानकर महान् आनन्द में हरिध्वनि करने लगे। हरिदास ठाकुर द्वारा अद्वैताचार्य से नित्यानन्द की बहुविध चंचलता एंव इस कारण अपनी विपन्नता के विषय में वर्णन करने पर अद्वैत प्रभु नित्यानन्द की निन्दा के छल से उनकी महिमा का कीर्तन करने लगे।

उधर जगाइ–माधाइ ने गंगातीर पर आकर महाप्रभु के स्नान–घाट पर ही अड्डा जमा दिया, इससे सभी के मन में आतंक पैदा हो गया। दोनो मद्यपायी (शराबी) रात्रि के समय महाप्रभु के संकीर्तन की ध्वनि सुनकर और शराब के नशे में उसे मंगलचंडी का गीत समझकर नृत्य करने लगे एवं महाप्रभु को देखकर उनके कीर्तन की प्रशंसा करने लगे। नित्यानन्द प्रभु ने उन दोनों का उद्धार करने के लिए एकदिन रात के समय उनके निकट गमन किया तो माधाइ ने नित्यानन्द के मस्तक पर आघात किया। जगाइ ने व्यथित होकर माधाइ होकर माधाइ को रोका और उसके इस कृत्य के लिउ उसे अनेक प्रकार से डाँटा–फटकारा। नित्यानन्द पर आघात का समाचार पाकर महाप्रभु सांगोपागो के सहित वहाँ उपस्थित हुये एवं नित्यानन्द के रक्तरंजित शरीर को देखकर दोनों पापियों को दंड देने के लिए सुदर्शन चक्र का आह्वान किया। जगाइ–माधाइ ने अपनी आँखों से सुदर्शन चक्र के दर्शन किये। दयालु नित्यानन्द प्रभु ने जगाइ के द्वारा रक्षित होने की जानकारी महाप्रभु को दी और महाप्रभु से दोनों भाइयों के उद्धार की भिक्षा माँगी। 'जगाइ ने नित्यानन्द को बचाया हैं, यह बात सुनकर महाप्रभु ने जगाइ को कृपापूर्वक प्रेमभक्ति का वर प्रदान कर दिया। जगाइ के सौभाग्य दर्शन से माधाइ का भी हृदय परिवर्तित हो गया और वह महाप्रभु के चरणों में पकड़कर कातरता पूर्वक क्षमा याचना करने लगा। लेकिन महाप्रभु उस पर कृपा करने के लिए राजी नहीं हुये; किन्तु उन्होंने माधाइ के कातर आवेदन से द्रवीभूत होकर उसे नित्यानन्द के चरणों में शरण ग्रहण करने का उपदेश दिया एवं माधाइ पर कृपा करने के लिए अपने आप ही नित्यानन्द प्रभु से भी अनुरोध किया। महाप्रभु के आदेश से नित्यानन्द ने माधाइ का दृढ़ आलिंगन किया एवं उसके शरीर में प्रवेश कर गये। इस प्रकार से जगाइ–माधाइ का उद्धार हुआ और वे दोनों प्रभुओं का स्तवन करने लगे।

महाप्रभु ने उनको फिर पाप कर्म करने के लिए मना किया। उन दोनों के द्वारा प्रभु की बात को स्वीकार कर लेने पर महाप्रभु ने भी उनके कोटि-कोटि जन्मों के पापभार को ग्रहण कर लिया। महाप्रभु की कृपा प्राप्त करके जगाइ-मघाइ आनन्द से मूर्च्छित भाइयों को महाप्रभु अपने घर ले आये और घर का द्वार बन्द करके वैष्णवों के साथ दोनों भाइयों को लेकर विराजमान हो गये। महान् प्रेमविकार में दोनों भाई भूमि पर लोट-पोट होने लगे। गौरसुन्दर की इच्छा से दोनों भाइयों की जिह्वा पर शुद्धा सरस्वती अधिष्ठित हो गई और वे बहुविध भाव से श्रीश्रीगौरनित्यानन्द का तत्त्वपूर्ण स्तवन करने लगे। मदिरा पीने वालों के मुँह से इस प्रकार की भगवत्-स्तुति सुनकर सभी भगवान् की कृपा-महिमा का अनुभव करके विस्मित हो गये। उन दिन से महाप्रभु ने जगाइ-माधाइ को अपने भक्तों में ग्रहणकर लिया स्वयं सभी वैष्णवों के निकट उनके अपराधों के लिए क्षमा और कृपा की याचना की। जगाइ-माधाइ सभी भक्तों के चरणों में लुंठित होकर और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके निरपराधी हो गये। और उन दोनों के सारे पाप वैष्णव-निन्दकों में संचारित हो गये। महाप्रभु के आदेशानुसार के आदेशानुसार सभी भागवतजनों ने विपुल संकीर्तन का आरम्भ किया एवं दोनों भाइयों को लेकर गणों-सहित महाप्रभु इसमें नृत्य करने लगे। कीर्तन के उपरांत धूल-धूसरित देह सहित सभी को उन्होंने 'महाभागवत' कहकर सम्बोधित किया एवं उनके प्रति महाभागवतोचित श्रद्धा करने के लिए सभी को आदेश देते हुये कहा कि, इसको अन्यथा मान करके इनका उपहास करने से वैष्णवापराध के कारण सर्वनाश उपस्थित हो जायेगा।

श्रीश्रीमहाप्रभु सभी को लेकर गंगा पर गये। वहाँ बिना संकोच के सभी ने मिलकर तुमुलभाव से जलक्रीडा में सभी जन महाप्रभु में हार गये। श्रीश्रीअद्वैत और नित्यानन्द की जलक्रीड़ा में अद्वैत में प्रभु ने कटूक्ति के छल से नित्यानन्द की महिमा एवं अपने विष्णुस्वरूप का प्रकाशन किया। जलक्रीड़ा के उपरांत महाप्रभु ने जगाइ-माधाइ को अपने गले की प्रसादी माला प्रदान करके सभी को भोजनार्थ विदा कर दिया। उस समय देवतागण नित्य आकर चैतन्यलीला के दर्शन एवं चैतन्यदेव की बहुविध सेवा करते थे; किन्तु प्रभु की कृपा के बिना अन्य कोई व्यक्ति उन्हें देख नहीं पाता था।

पश्चात् ग्रन्थकार ने वैष्णवापराध के भीषण परिणाम की कथा का कीर्तन करके अध्याय को समाप्त किया।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

आजानुलम्बितभुजौ कनकावदातौ
संकीर्तनैकपितरौ कमलायताक्षौ।
विश्वम्भरौ द्विजवरौ युगधर्मपालौ
वन्दे जगत्प्रियकरौ करुणावतारौ॥१॥
जय जय महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर।
जय नित्यानन्द सर्वसेव्यकलेवर॥२॥

(१) प० अनु०—(चैः भाः) आदिखंड १ अः द्रष्टव्य।

(२) प० अनु०—महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर की जय हो, जय हो। सर्वसेव्यकलेवर श्रीनित्यानन्द की जय हो।

(२) गौः भाः—सर्वसेव्यकलेवर—श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु—स्वयं-प्रकाशतत्त्व हैं; इसलिए जिन सब व्यष्टियों को लेकर समष्टि होती

है, उन सभी के भजनीय वस्तु हैं। उनसे ही सभी कारणों के कारण कारणोदशायी महाविष्णु, सर्वभूतान्तर्यामी समष्टि गर्भोदोकशायी विष्णु एवं व्यष्टि विष्णु अनिरूद्ध,—ये सभी प्रकटित हुये हैं। 'सर्व', एवं 'असर्व'—वस्तु–समूह के सेव्य कृष्ण सर्वसेव्य–कलेवर नित्यानन्द की ही सेवा ग्रहण करते हैं। कृष्ण की सर्वशक्ति से प्रसूत सब वस्तुएँ ही नित्यानन्द की सेवा करती हैं।

(३–४) प० अनु०—इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर नवद्वीप में क्रीड़ा करते थे, परन्तु सभी व्यक्ति इसे देख नहीं पाते। लोग यही देखते थे कि, पहले जो निमाइ–पण्डित थे, वे अभी भी ऐसे ही हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ दिखाई नहीं देता था।

गौरसुन्दर की लीला को केवल प्रेमदृष्टि से प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये प्रेम–रहित जन के निकट गौरसुन्दर केवल मात्र 'निमाइ पण्डित' के रूप में प्रतिभात है—

हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
क्रीड़ा करे,—नहे सर्वनयनगोचर॥३॥
लोके देखे,—पूर्वे येन निमाञि पण्डित।
अतिरिक्त आर किछु ना देखे चरित॥४॥

(३–४) प० अनु०—इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर नवद्वीप में क्रीड़ा करते थे, परन्तु सभी व्यक्ति इसे देख नहीं पाते थे। लोग यही देखते थे कि, पहले जो निमाइ–पण्डित थे, वे अभी भी ऐसे ही हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ दिखाई नहीं देता था।

(३) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के लीला–समूह को एकमात्र प्रेमदृष्टि से ही उपलब्ध किया जा सकता है। इसलिए जहाँ प्रीति का अभाव है, वहाँ भगवान् की लीलाएँ दिखाई नहीं देती हैं। "प्रेमांजनच्छुरित–भक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेऽपि विलोकयन्ति। यं श्यामसुन्दरमचिन्त्य–गुण–स्वरूपं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥" अर्थात्, जिन अचिन्त्य गुणों वाले, श्यामसुन्दर को सन्तजन प्रेमांजन से रंगे हुये भक्ति–रूपी नेत्रों से अपने हृदय में सदा ही निहारते रहते हैं, मैं उन आदि पुरुष गोविन्द को भजता हूँ।

भाग्यवान के भावमय दर्शन में गौरसुन्दर के द्वारा उसके लिए अधिकारोचित आत्मप्रकाश एवं बहिःप्रज्ञाचालित जन के समक्ष आत्मगोपन—

यखन प्रविष्ट हय सेवकेर मेले।
तखन भासेन सेइमत कुतूहले॥५॥
या'रे येन भाग्य, तेन ताहारे देखाय।
बाहिर हइले सब आपना लुकाय॥६॥

(५–६) प० अनु०—गौरसुन्दर जब सेवकों के बीच में प्रविष्ट होते थे, तब उनके साथ मिलकर उनकी भाँति आनन्द में विभोर रहते थे। जिसका जैसा भाग्य था, उसको वे वैसा ही रूप दिखाते थे। परन्तु बाहर आ जाने पर वे अपने आपको छिपा लेते थे।

(६) गौः भाः—वास्तव–वस्तु सर्वशक्तिमान् है। इसलिए अणुचित् जीवों की व्यक्तिगत भावयुक्त दृष्टि से देखने पर उनके अधिकार के अनुसार ही वह दिखाई देता है। बहिः प्रज्ञाचालित दृष्टि से प्रेममय विग्रह का दर्शन करना सम्भव नहीं है, वह छिपा रहता है; इसलिए वह अधोक्षज है।

महाप्रभु द्वारा नित्यानन्द और हरिदास को सभी जगह पर कृष्णभजन, कृष्णकीर्तन एवं कृष्णशिक्षा के प्रचारार्थ आदेश प्रदान—

एकदिन आचम्बिले हैल हेन मति।
आज्ञा कैल नित्यानन्द–हरिदास–प्रति॥७॥
"शुन शुन नित्यानन्द, शुन हरिदास।

सर्वत्र आमार आज्ञा करह प्रकाश॥८॥
प्रति घरे घरे गिया कर एइ भिक्षा।
'बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा॥'९॥
इहा बइ आर ना बलिबा, बलाइया।
दिन-अवसाने आसि' आमारे कहिबा॥१०॥
तोमरा करिले भिक्षा, सेइ, ना बलिब।
तबे आमि चक्रहस्ते सबारे काटिव॥''११॥

(७-११) प० अनु०—एकदिन महाप्रभु की अचानक कुछ ऐसी इच्छा हुई और उन्होंने नित्यानन्द तथा हरिदास को आज्ञा प्रदान करते हुये कहा,—"सुनो, सुनो नित्यानन्द! सुनो हरिदास! सभी जगह मेरे आदेश का प्रचार करो। हर एक के घर में जाकर यह भिक्षा करो,—'कृष्ण कहिए, कृष्ण का भजन कीजिए, कृष्ण के बारे में शिक्षा प्राप्त कीजिए।' इसके अतिरिक्त और कुछ भी मत कहना, उन्हें बोलने भी मत देना। दिन के उपरांत आकर मुझे समाचार दिया करो। तुम लोगों के भिक्षा करने पर जो इसे ग्रहण नहीं करेंगे, उन सबको मैं हाथ में चक्र लेकर काट डालूँगा।

(७) गौः भाः—जो लोग अंकिचन होते हैं, वे किसी वस्तु के लिए लोभ के वशवर्ती नहीं होते हैं। अंकिचन नहीं होने से वास्तविक वस्तु का प्रयोजन उपलब्ध नहीं होता है। ऐसे लोगों को नश्वर वस्तु-समूहों का आकर्षण प्रलुब्ध किया करता है। श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वाध्याय में नियुक्त ब्राह्मणकुल में अवतीर्ण हुये थे। ठाकुर श्रीहरिदास की उस प्रकार की आनुष्ठिानिक ब्राह्मणता नहीं थी। श्रीचैतन्यदेव के प्राकट्य के समय भारत के विभिन्न स्थानों पर शकजाति, ग्रीकजाति एवं यावनिक आचरविशिष्ट जाति-समूह ने अपनी-अपनी बस्तियाँ स्थापित कर रखी थीं। श्रीचैतन्यदेव के प्राकट्य के समय भारत के विभिन्न स्थानों पर शकजाति, ग्रीकजाति एवं यावनिक आचारविशिष्ट जातिसमूह ने अपनी-अपनी बस्तियाँ स्थापित कर रखी थीं। असिन्धु तटवासी वैदेशिक जातियों की वासस्थली होने के कारण नवद्वीप नगर में भी मनुष्यों के बीच विचारों की विषमता का प्राबल्य था। इसलिए प्रचारक के रूप में भगवान् गौरसुन्दर ने उभय-विश्वास सम्पन्न सामाजिक व्यक्तियों के बीच में प्रचारकार्य के लिए भगवद्-भजन-परायण दोनों पुरुषोत्तमों (नित्यानन्द एवं हरिदास) को नियुक्त किया था। आर्य-आचार-युक्त एवं यावनिक आचार सम्पन्नजन एक दूसरे की बातों पर ध्यान नहीं देंगे, ऐसा जानकर, दोनों का ही भगवद् भक्ति में समक्षिक अधिकार है, इस बात की जानकारी देने के लिए दोनों को ही हरि-कीर्तन के लिए योग्यता प्रदान की थी।

(८) गौः भाः—वर्णाश्रम से बहिर्भूत, वर्णाश्रम का पालन करने वाले एवं वर्णाश्रमातीत, सभी लोगों के लिए तथा उदभिद (वृक्षादि), स्थावर, जंगम आदि सभी जीवों के लिए ही प्रभु ने यह आज्ञा प्रदान की है। व्यक्ति विशेष, सम्प्रदाय विशेष,—जो जितना कर सकता हो, उसे महाप्रभु के आदेशानुसार प्रचारित इस बात को उतना महाप्रभु के आदेशानुसार प्रचारित इस बात को उतना अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

(९) गौः भाः—भिक्षुक—दाता के मुखापेक्षी (निर्भरशील) होते हैं, अतएव दाता ऊँचे स्थान पर स्थित हैं, भिक्षुक निम्न-स्तर पर अवस्थित है, ऐसा समझकर दाता भिक्षुकों के प्रति दयापरवश होते हैं। अनुग्रह प्रार्थना का नाम ही—'भिक्षा' है। अनुग्रह करने वाले व्यक्ति ऊँचे स्थान से अवतरण करके अभावग्रस्त भिक्षुक को मध्य पथ में उन्नत करते हैं। भिक्षु के वेष मे जब चतुर्दशभुवनपति प्रभु नित्यानन्द एवं सर्वलोक पितामह शुद्धभक्तराज नामाचार्य

ठाकुर हरिदास भिक्षा करने के लिए गये, तब उनके भिक्षा–योग्य वस्तु किंचन सम्प्रदाय के लिए प्रदेय नहीं हैं, ऐसा जानकर गौरसुन्दर ने उनको एक अलौकिक राज्य मे उपनीत कराने के लिए भिक्षा में नियुक्त किया था।

'बल कृष्ण'—कृष्ण से अलग शब्द न्यूनाधिक अविद्वद्रूढ़ि वृत्ति में अवस्थित हैं। शब्द का विद्वद्रूढ़ित्त्व उपलब्ध होने से वे (शब्द) कृष्ण को ही लक्ष्य करते हैं एवं तादृश वृत्ति–सम्पद कृष्ण से अभिन्न है। जो कृष्ण का कीर्तन करते हैं, वे सुनने वालों का मंगल–विधान करते हैं एवं आत्ममंगल–साधन करके भगवत्–स्मरण–जनित आनन्द–समुद्र में अवस्थित होते है। शब्द समूह जब कृष्ण से अलग वस्तु के निर्देशक होते हैं, उस समय बद्धजीव अपने स्वरूप को भूलकर अपने लिए भोक्तृपद (भोक्ता आसन) का वरण कर लेते हैं। उस समय उनका इन्द्रियसमूह हृषीकेश (इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण) की सेवा से विमुख होकर घृणित स्वार्थ के वश में आकर हृषीकेश की बहिरंगा शक्ति के ऊपर प्रभुत्व करता रहता है। 'श्रीकृष्ण'—शब्द का कीर्तन करो,—श्रीभगवान् की यह आज्ञा—उनकी महावदान्यता (अतिशय उदारता का प्रकृष्ट परिचय है। 'कृष्ण'—शब्द ही अभिन्न कृष्ण है—इस बात की शिक्षा श्रीकृष्ण ही गुरुरूप से दे सकते हैं। उस शिक्षा से दीक्षित होकर उस शिक्षा की प्रचार–परायणता ही श्रीचैतन्यदास्य है—यह समझाने के लिए ही श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं श्रीनामाचार्य हरिदास ने भगवान् की आज्ञा का पालन किया था। जो नित्यानन्दप्रभु को गुरुतत्त्व का आकर जानकर, संसार के बंधनों से मुक्त श्रीनामाचार्य हरिदास के मुख से, सम्बोधन के पदरूप में अवतीर्ण 'कृष्ण'—शब्द का उच्चारण करेंगे, वे ही सभी प्रापंचिक बाधाओं का अतिक्रमण करके जीव के स्वरूप–प्रयोजन—कृष्ण प्रेम को प्राप्त करने में सक्षम होंगे। श्रीगौरसुन्दर ने नित्यानन्दप्रभु द्वारा मानव–मात्र को ही कृष्ण–कीर्तन करने का अधिकार प्रदान किया। जो इस अधिकार को प्रदान करता है, वह कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं हो सकता है। क्योंकि, जिसके पास उस प्रकार की देने योग्य वस्तु नहीं है, वह उसे कहाँ से देग? नाम–नामी—अभिन्न हैं, इसलिए नाम कीर्तन होने से ही कृष्णप्रेम अवश्यम्भावी है—यह बात कृष्ण ही कह सकते हैं। कृष्ण को छोड़कर अन्य चिन्ताओं में रत जनगण के लिए वह दुष्प्राप्य है—इसलिए कृष्णकीर्तन के अतिरिक्त अन्य शब्द का आवाहन करने से जड़ में आबद्ध होना पड़ता है। 'जगत् के सभी लोग कृष्णकीर्तन में मस्त रहें'—यह आज्ञा आकर–तत्त्व श्रीजगद्–गुरूदेव एवं श्रीनामाचार्य के लिए कथित होने पर भी, वे दोनों आचार्य जब भगवद्–आज्ञा का पालन करते हैं, तब जो कोई सुकृति सम्पन्न व्यक्ति उसे ग्रहण करता है, वह भी आचार्य का कार्य करने का अधिकर पा लेता है, वह भी आचार्य का कार्य करने का अधिकर पा लेता है—वही श्रीचैतन्य के दास्य में आत्मनियोग करने में समर्थ होता है। भिक्षा की भाषा में "बल कृष्ण" शब्द—जीवों का उद्धार करने वाला है। सुनने वाले जीवों के निकट जब यह उपस्थित होता है, तब वे चैतन्यदेव की आज्ञा का पालन करके प्रापंचिक विचार से मुक्त हो जाते हैं एवं भगवद् प्रकाश–स्वरूप आचार्यवतार का कार्य करने वाले हैं। एकमात्र जगद्गुरुवाद निरस्त होकर महान्त–गुरुओं में गुरुतत्त्व का प्रकाश–समूह जीवोद्धार का कार्य करता है।

'भज कृष्ण',—श्रीचैतन्यदेव ने दोनों प्रचारकों

को बद्धजीवों के निकट कृष्णभजन करने के लिए प्रार्थना करने का आदेश प्रदान किया। जीव कृष्णविमुख होकर कृष्ण से अलग वस्तुओं की ओर आकर्षित हो जाने के कारण वस्तु-समूह की दुबर्लता देखकर उनका 'ईश्वर' अनने की वासना में भोग प्रवृत्ति का आश्रय ले लिया करते हैं। इसलिए कृष्ण-भजन छोड़कर एवं इन्द्रिय भोग्य व्यापार को 'वस्तु' समझकर उसके प्रभु होने की वासना किया करते हैं। इस प्रकार का कार्य ही उनके भजन में बाधक होता है। कृष्णभजन-विमुखजनों के लिए प्रपंच में बहुविध अधिकार (?) वर्तमान हैं। उन सब अधिकारों को प्राप्त करने के लिए काम-क्रोध आदि छह रिपुओं की सेवा में संलग्न जीव कृष्णभजन को छोड़कर अपने आप को दृश्य जगत् का भोक्ता समझकर अंमगल का आवाहन करते हैं। जीवों के कल्याणर्थ महावदान्य श्रीविश्वम्भर ने श्रीनित्यानन्द एवं श्रीहरिदास, इन दोनों प्रभुओं को नामाश्रय में कृष्णभजन करने एवं उसके प्रचार का आदेश प्रदान किया था।

'कर कृष्ण शिक्षा'—कृष्ण ही एकमात्र शिक्षणीय (सीखने योग्य) वस्तु है। "कर्त्तामीशं पुरूषं ब्रह्मयोनिं" ऐसे ईश्वर को जानकर जब स्वरूप-ज्ञान से जाग्रत जनगण नित्य चिन्मय वस्तु के दर्शन करते हैं, तब कृष्ण से अलग शिक्षा की अकिंचितकरता (निरर्थकता) समझ में आती है। कृष्ण ही जगत् की समस्त वस्तुओं का आकर्षण करते हैं। उनका सौन्दर्य असामान्य एवं अतुलनीय है। वे पूर्णज्ञानमय हैं, वे ही कृष्ण से अलग वस्तु को विराग-भाजन करने में समर्थ हैं। वे कार्ष्ण के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं के साथ विलास-कार्य से विमुख हैं। कृष्ण-शिक्षा के प्रभाव से जीवों को अपना नित्यत्व उपलब्ध होता है। उस प्रकार की शिक्षा जीवों की सारी अविद्या एवं अज्ञान का विनाश करती है और कृष्ण-शिक्षा के बल से, अन्य वस्तुओं के सान्निध्य से उत्पन्न निरानन्द के अनुभव का अवकाश ही नहीं रहता है। कृष्णशिक्षा प्राप्त करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है—चित्तदर्पण परिमार्जित होता है—भव-महादावाग्नि निर्वापित (शान्त) होती है— परम श्रेय की उपलब्धि होती है—यह भी उपलब्ध होता है कि, कृष्ण-शिक्षा ही सभी विद्याओं की तात्पर्य स्वरूप वास्तव वस्तु है। ऐसा होने से आत्मा कलुषित नहीं रह पाता है; परन्तु स्निग्ध होता है एवं हर पल परम सुख प्राप्त होता है। कृष्ण-भिक्षा सब प्रकार के अभिधेयों को धिक्कारने वाली, सभी प्रकार के ऐश्वर्यो को प्रदान करने वाली एवं सर्वमाधुर्य की सर्वोत्तमत्वप्रदायिका है। कृष्णशिक्षा जीवों की भोगप्रवृति को निवारण करने वाली एवं मोक्ष को भी तुच्छ बना देने वाली है। इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले सभी जीवों के लिए कृष्ण-शिक्षा ही परमोपयोगी हैं।

(१०) गौः भाः—कृष्णकीर्तन् कीर्तन के द्वारा कृष्ण सेवन, सेवारत अवस्था में कृष्णशिक्षा से शिक्षिका होना ही—जीवों का एकमात्र कर्तव्य है। ऐसा अनुष्ठान करने की भिक्षा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की भिक्षा की याचना तुम किसी के निकट नहीं करोगे एवं किसी को भी अन्य प्रकार की शिक्षा प्रदान नहीं करोगे। दिवाभाग के सभी समय जीव-कुल की मंगल कामना से पूर्वकथित भिक्षा संपादन करके सायं काल आकर मुझे सब कुछ बताओगे। वास्तव में तुम दोनों जीवों का हित करने की चेष्टा में रत हो, ऐसा जानने से मुझमें परम प्रीति का उदय होगा। यही मेरा कार्य है। तुम दोनों मेरे दक्षिण एवं वाम हस्त-स्वरूप हो।

(११) गौः भाः—"तुम्हारी भिक्षा–प्रार्थना से जो विमुख होंगे, मैं उन्हें अशेष यंत्रणाएँ देकर विनष्टकर दूँगा।" अनेक व्यक्ति इस प्रकार की विवेचना करते हैं कि, दयामय होकर भी भगवान् ने निष्ठुरता सूचक अंमगल समूहों का संनिवेश इस पृथ्वी पर क्यों किया है? इसके समाधान में "तत्तेऽ नुकम्पां" श्लोक ही यथेष्ट उत्तर है। यदि जीव कृष्णविमुख होकर अन्य चेष्टाओं में दिन बिताते हैं, तब पार्थिव स्वभाव की विधि के अनुसार अनुपादेयता (जो उत्कृष्ट नहीं है) के परिच्छेद के लिए उन्हें क्लेश प्राप्त करना ही पड़ेगा।

प्रभु की आज्ञा को सुनकर
वैष्णवों का हास्य—

आज्ञा शुनि' हासे सब वैष्णवमण्डल।
अन्यथा करिते आज्ञा का'र आछे बल?१२॥

(१२) प० अनु०—प्रभु की आज्ञा सुनकर सभी वैष्णव मण्डली हँसने लगी। फिर भी ऐसी शक्ति भला किसमें है, जो प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करे।

साक्षात् नित्यानन्द–सेव्य गौरसुन्दर की बातों में
प्रतीति न रखने वाला व्यक्ति निर्बोध है—

हेन आज्ञा, याहा नित्यानन्द शिरे बहे।
इथे अप्रतीत या'र, से सुबुद्धि नहे॥१३॥

(१३) प० अनु०—ऐसी आज्ञा, जिसे नित्यानन्द अपने सिर पर वहन करते हैं, उसमें जिसका विश्वास नहीं है, वह व्यक्ति सुबुद्धिमान् नहीं है।

गौरभक्ति का परित्याग करके अद्वैत के
विमुखमोहन मायावाद में आस्था जताने वालों
का अद्वैत के द्वारा संहार—

करये अद्वैत–सेवा, चैतन्य ना माने।
अद्वैत ताहारे संहारिवे भाल मने॥१४॥

(१४) प० अनु०—जो अद्वैत की सेवा करता है, परन्तु चैतन्य को नही मानता है, उनका अद्वैत अच्छे प्रकार से ध्वसं कर देंगे।

(१४) गौः भाः—जो लोग श्रीचैतन्यदेव के भक्तिपथ का परित्याग करके अद्वैत प्रभु के विमुख–मोहन मायावाद में आस्था रखते हैं; उन सब मरणशील जीवों को अद्वैतप्रभु रूद्रवृत्ति का आवाहन करके ध्वस्त कर देंगे। श्रीचैतन्य के अनुचरणगण अपने स्वरूप के अनुचैतन्यत्व को समझते हुये भक्तिपथ में स्थित होते हैं, एवं चैतन्य विमुख केवलाद्वैतवादी लोग श्रीअद्वैत प्रभु के मायाजाल में आबद्ध होकर सेवा–वैमुख को ग्रहण करने पर तत्पर रहते है। भाग्य ही कल्याण एवं अमंगल का विधाता है। क्योंकि, बद्धजीव अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हुये स्वेच्छाचारी होकर सेवा–विमुखता प्राप्त करते है; एवं स्वतंत्रता के सदुपयोग के द्वारा श्रीकृष्ण के चरणों के समीप में उपनीत (उपस्थित) होने की योग्यता प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

हरिदास एवं नित्यानन्द के द्वारा
प्रभु–आज्ञा–प्रचारर्थ यात्रा एवं सभी को
वैसा करने के लिए अनुरोध।

आज्ञा शिरे करि' नित्यानन्द–हरिदास।
ततक्षणे चलिलेन पथे आसि' हास॥१५॥
आज्ञा पाइ' दुइ जने बुले घरे घरे।
"बल कृष्ण, गाओ कृष्ण, भजह कृष्णेरे॥१६॥
कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्ण से जीवन।
हेन कृष्ण बल भाइ हइ' एकमन॥"१७॥
एइमत नदीयाय प्रति घरे घरे।
बुलिया बेड़ामन दुइ जगत्–ईश्वरे॥१८॥

(१५–१८) प० अनु०—गौरसुन्दर की आज्ञा

शिरोधार्य करके नित्यानन्द और हरिदास उसी क्षण चल पड़े और रास्ते में आकर वे हँसे। आज्ञा पाकर दोनों जने घर-घर जाने लगे और 'सभी से 'कृष्ण' बोलने, 'कृष्ण' कीर्तन करने और 'कृष्ण' भजन करने का अनुरोध करने लगे।" वे सभी से कहते थे कि, "हे भाइयों! कृष्ण प्राण हैं, कृष्ण धन हैं, कृष्ण ही जीवन है; इसलिए एकाग्रचित्त होकर आप सभी कृष्ण कहिए।" इस प्रकार से दोनों जगदीश्वर नदीया के घर-घर में गये। और कृष्णनाम का प्रचार करने लगे।

(१७) गौः भाः—कृष्ण ही—मूल प्राण हैं; उनके प्रति उन्मुख होना ही कृष्णप्राण का परिचय है। कृष्णविमुख जीव—प्राणहीन हैं। कृष्ण से अलग वस्तु-समूह 'अधन'-शब्द-वाच्य है। कृष्ण ही सर्वार्थसिद्धिप्रद हैं। कृष्ण-विमुखता ही जड़ एवं मृत होने का परिचायक है। कृष्ण से अलग वस्तु समूह माया के विक्रम से विभूषित है। इसलिए शब्दशास्त्रों में कृष्ण से अलग जो कुछ कथा-कीर्तन करने का उपदेश दिया गया है, उसके द्वारा जीवों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक मंगल नहीं होता है। कृष्ण ही सर्वताभाव से सेवनीय वस्तु है। इसलिए कृष्णकीर्तन ही एकमात्र श्रौतपन्था है। "हरिर्हि साक्षात् भगवान् शरीरिणाम् आत्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।"—(भाः५/१८/१३)।

(१८) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुर—ये दोनों ही जगदीश्वर हैं। जगत् के सभी लोग भ्रान्तपथों को ही अपना 'गन्तव्य' (असली ठिकाना) समझकर विपत्ति में फँस जाते हैं। ये दोनों ईश्वर विपथगामी भ्रान्त जीवकुल के नियामक होकर उनका मंगल विधान करते है। प्रजल्प (वृथा वार्तालाप) से बचाकर वाक्यों के द्वारा भगवत् सेवा कार्य के पथप्रदर्शक ठाकुर हरिदास जीव के कुचिंताओ से ग्रस्त मन को संयमित कराते हैं, शरीर को एवं शारीरिक अंग-प्रत्यंगों को, कृष्णभजन-विमुखता से रक्षा करने वाले चिन्तन स्रोत का आवाहन करके उनको शारीरिक दुर्गति से विमुक्त करते हैं एवं प्रभु नित्यानन्द जगत् के निरानन्द को हटाकर जीवकुल को नित्यानन्द में निमज्जित करते हैं।

लोगों के द्वारा निमन्त्रित होने पर दोनों के द्वारा सभी के निकट प्रभु-आज्ञा पालन-मात्र की भिक्षा—

दोहान संन्यासीवेश—यान या'र घरे।
आथेव्यथे आसि' भिक्षा-निमंत्रण करे॥१९॥
नित्यानन्द-हरिदास बले,—''एइ भिक्षा।
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्णशिक्षा॥''२०॥

(१९-२०) प० अनु०—दोनों संन्यासी के वेष में थे और वे जिसके भी घर में जाते थे, वह सम्मान और सम्भ्रम सहित उन दोनों को भिक्षा के लिए निमंत्रित करता था। भिक्षा का निमंत्रण मिलने पर नित्यानन्द एवं हरिदास कहते,—"यही हमारी भिक्षा है कि आप सभी कृष्ण कहिए, कृष्ण का भजन करिए और कृष्ण शिक्षा कीजिए।"

(१९-२०) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु और ठाकुर हरिदास संन्यासी के वेष में थे। संन्यासी-वेष अथवा यति-भेक—भिक्षुक का वेष होता है। वे दोनों जिनके घर पर जाते थे, वे ही व्यस्तता पूर्वक उनको निमन्त्रित करते थे। वे दोनों प्रभु कुछ और भिक्षा नहीं करके केवल प्रभु के आदेश प्रचार-द्वारा सभी को कृष्णकीर्तन, कृष्णभजन एवं कृष्णशिक्षा करने का अनुरोध-मात्र किया करते थे।

दोनों प्रभुओं के वाक्यों से सज्जनगण

को आनन्द एवं विभिन्न जनों की विभिन्न रूप कल्पना–

एइ बोल बलि' दुइजन चलि' याय।
ये हय सुजन, सेइ बड़ सुख पाय॥२१॥
अपरूप शुनि' लोक दु–जनार मुखे।
नाना जने नाना कथा कहे नाना सुखे॥२२॥
'करिब, करिब'—केह बलये सन्तोषे।
केह बले,—''दुइजन क्षिप्त मन्त्रदोषे॥२३॥
तोमरा पागल हैलादुष्टसंग दोषे।
आमा–सबा पागल करिते आइस किसे?२४॥
भव्य–सभ्य–लोक सब हइल पागल।
निमाइ पण्डित नष्ट करिल सकल॥''२५॥
ये–गुला चैतन्यनृत्ये ना पाइल द्वार।
ता'र बाड़ी गेले मात्र बले,—'मार मार'॥२६॥
केह बले,—''ए दु'जन किबा चोरचर।
छला करि' चर्चिया बुलये घरे घर॥२७॥
एमत प्रकट केने करिबे सुजने?
आर बार आसे यदि लइब देयाने॥''२८॥
शुनि' शुनि' नित्यानन्द–हरिदास हासे।
चैतन्येर आज्ञाबले ना पाय तरासे॥२९॥
एइमत घरे घरे बुलिया बुलिया।
प्रतिदिन विश्वम्भर स्थाने कहे गिया॥३०॥

(२१–३०) प० अनु०—ऐसा उपदेश देते हुये दोनों प्रभु चले जाते थे। जो सज्जन थे, उन्हें इससे बहुत सुख मिलता था। दोनों के मुँह से अपरूप बातें सुनकर विभिन्न भावमय सुखों के साथ विभिन्न प्रकार की बातें कहते थे। कोई सन्तोष और प्रसन्नता के साथ कहता, 'करेगे, करेगे'—तो कोई कहता, —"ये दोनों मन्त्रदोष से पागल हो गये हैं। दुष्ट–संग–दोष के कारण तुम लोग तो पागल हो ही गये हो, हम सबको क्यों पागल बनाना चाहते हो? सब भव्य–सभ्य लोग पागल हो गये हैं। निमाइ पण्डित ने सब को नष्ट कर दिया है।" चैतन्य के नृत्य में जिन लोगों को प्रवेशाधिकार नहीं मिला था, उनके घर जाने से वे गुस्से में आकर कहने लगते,—'मारो, मारो'। कोई कहता,—"सम्भवतः ये दोनों चारों के चर (जासूस) हैं, जो छल–पूर्वक घर–घर मे जाकर सब कुछ देख आते हैं। कोई भला आदमी ऐसे क्यों घूमेगा? यदि फिर आये तो दीवान (न्यायालय) में ले जायेंगे।" ये सब बातें सुन–सुनकर (नित्यानन्द) और हरिदास हँसते थे। उनको डर नहीं लगता था, क्योंकि वे चैतन्य की आज्ञा का पालन कर रहे थे। इस प्रकार से वे प्रतिदिन प्रचारकार्य के लिए घर–घर जाते और प्रचार के उपरांत विश्वम्भर को इसके बारे में समाचार दे दिया करते थे।

(२१) गौः भाः—सुजन (सजन)—भगवद्–भक्त। जो लोग उच्चाभिलाषी होकर आरोहवाद का आश्रय लेते हैं, उन लोगों को 'ब्राह्मण' कहा जा सकता है; परन्तु जो 'आरूढ़' होकर आरोहवाद की अकर्मण्यता को अनुभव कर लेते हैं एवं इसके फलस्वरूप तृणादपि–सुनीच–भाव को ग्रहण करते हुये तथा प्रपंच की सभी लोभनीय वस्तुओं की आकांक्षा का परित्याग करते हुये तरू (वृक्ष) की भाँति सह्यगुण–सम्पन्न हो जाते हैं, वे ही 'सुजन' हैं। कृष्णोन्मुख व्यक्ति ही 'सुजन' हैं, कृष्ण के अतिरिक्त ऐश्वर्य आदि की इच्दा रखने वाले भिक्षुगण ही बुभुक्षु अथवा मुमुक्षु 'ब्राह्मण' हैं। जो ब्राह्मण–सेवापरायण हैं, वे ही 'सुजन' कहलाते हैं। जिनमें सेवापरता नहीं है, उनकी संज्ञा सुजन के बदले मायावादी 'दुर्ज्जन' है। इस कारण ही शास् सज्जनों के बारे में कहते हैं कि;—"श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्। वैष्णवों वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्।" कृष्णोन्मुखता ही जगत् में सौजन्य (सद्गुण)

की आकर (आधार) है। सौजन्य से भूषित जनगण कृष्णसेवा के परामर्श से परमानन्द को प्राप्त करते हैं।

(२२) गौः भाः—अपरूप—अपूर्व, अश्रुतपूर्व, अत्याश्चर्य। जो रूप अन्य सभी रूपों को अपत्वे (निकृष्टता) में परिणत कर देता है।

(२३) गौः भाः—सज्जनगण उपदेशमयी भिक्षा से संतुष्ट होकर उसे पालन करने के लिए सम्मत होते हैं, परन्तु कुछ भाग्यहीन व्यक्ति उन लोगों को उन्माद के रोग से दुष्ट कहकर स्थिर करते हैं।

मन्त्रदोष से—मंत्रणा अथवा परामर्श के दोष से। मन्त्रार्थ की उपलब्धि में विकार के कारण मन्त्रग्रहण के फलस्वरूप अंमगल को प्राप्त करके।

(२५) गौः भाः—भव्यसभ्य—शांत-शिष्ट, भद्र, सुजन, सद्वंश के, सभा में बैठने के योग्य।

(२६) गौः भाः—देयान,—(फारसी) में दीवान, राजसभा, धर्माधिकरण, अदालत, विचारलय, दरबार।

सज्जन होने पर वे इस प्रकार घर-घर में जाकर और बिना प्रयोजन की बातें कहकर क्यों घूमेंगे-फिरेंगे? दूसरी बार आने पर ही उनकी पकड़कर विचार के लिए धर्माधिकरण (न्यायालय) में भेज देंगे।

दोनों के द्वारा बहुविध पापकर्मरत जगाइ-माधाइ के दर्शन—

एकदिन पथे देखे दुइ मातोयाल।
महादस्युप्राय दुइ मद्यप विशाल॥३१॥
से दुइ जनार कथा कहिते अपार।
ता'रा नाहि करे,—हेन पाप नाहि आर॥३२॥
ब्राह्मण हइया मद्य-गोमांस-भक्षण।
डाका-चुरि, परगृह दाहे सर्वक्षण॥३३॥
देयाने ना देय देखा, बोलाय कोटाल।
मद्य-मांस बिना आर नाहि याय काल॥३४॥
दुइ जन पथे पड़ि' गड़ागड़ि याय।
याहारे ये पाय, सेइ ताहारे किलाय॥३५॥
दूरे थाकि' लोक सब पथे देखे रंग।
सेइखाने नित्यानन्द-हरिदास-संग॥३६॥
क्षणे दुइ जने प्रीत, क्षणे धरे चुले।
'च'कार 'व'कार-शब्द उच्च करि' बले॥३७॥
नदीयार विप्रेर करिल जाति-नाश।
मद्येर विक्षेपे कारे करये आश्वास॥३८॥

(३१-३८) प० अनु०—एकदिन रास्ते में उन्होंने महादस्युप्राय और बहुत मदिरा पीने वाले दो मतवालों को देखा। उन दोनों की कथा अपार है। ऐसा कोई पापकर्म है, जो उन दोनों ने नही किया हो। ब्राह्मण होकर भी वे हर समय मद्यपान, गोमांस-भक्षण, डाका-चोरी और दूसरों के घर में आग लगाने जैसे कुकृत्य करते रहते थे। कोतवाल का बुलावा वे नही सुनते थे, न ही वे धर्माधिकरण (न्यायालय) में जाते थे। हर समय मद्य और मांस सेवन कर वे मस्ती में रहते थे। दोनों रास्ते में गिरकर लोट-पोट होते थे और जिसे देखते, उसे ही मारते थे। सभी लोग दूर से ही उनका रंग-ढंग देखते थे। एकदिन ऐसी ही स्थिति में उन्हें नित्यानन्द और हरिदास मिल गये। उस समय वे दोनों क्षण-भर पहले आपस में बहुत प्रेम कर रहे थे, तो दूसरे ही क्षण एक दूसरे के केशों को खींचने लगे। साथ ही ऊँची आवाज में 'च'कार, 'व'कार (अशलील शब्द) बोलने लगे। इन दोनों ने नदीया की ब्राह्मण जाति का नाश कर दिया था। कभी-कभी मदिरा-पान के विक्षेप मे ये दोनों किसी-किसी को आश्वासनपूर्ण वचन भी

प्रदान करते रहते थे।

(३१) गौः भाः—विशाल मद्यप,—अतिरिक्त मदिरा–पान–रत।

(३३) गौः भाः—कोटाल, —(संस्कृत—कोट्टपाल), बंगला–प्राकृत कोट्आल, फारसी—कोतवाल) नगर–पालक, नगर–रक्षक, प्रहरी, चौकीदार, पहरेदार।

शहर के कोतवाल अर्थात् फौजदार के आह्वान को अस्वीकार करके वे राजकर्मचारियों के समक्ष एवं धर्माधिकरण (अदालत) में उपस्थित नही होते थे। अपराधियों के शान्ति–स्थापक (नियंत्रण करने वाले) उनको उपस्थित होने का आदेश देते थे; परन्तु वे हर समय ऐसे आदेशों की उपेक्षा करते रहते थे।

(३७) गौः भाः—जगाइ–माधाइ, दोनों में परस्पर कभी सद्भाव रहता था तो कभी परस्पर केश–आकर्षण (प्रभृति–विरोधी भाव) दिखाई देता था। वे परस्पर 'च'–कार, 'व'–कार इत्यादि अश्लील शब्दों के द्वारा एक दूसरे को सम्बोधित किया करते थे।

(३८) गौः भाः—दोनो मद्यप (शराबी) मद्यपान करके उन्मत्तता के साथ कभी ब्राह्मण गण की जाति का नाश करने की चेष्टा करते थे जो कभी अनुनय–विनसय या विक्रम का प्रकाश करते थे। मद्यपान के प्रभाव से मनुष्यों का सुध–बुध लुप्त हो जाता है; इसलिए हिताहित–विचार–रहित होकर कभी–कभी तोषाबंदी और कभी–कभी प्रचंड वाक्यों का प्रयोग करना उनके लिए स्वाभाविक होता है।

सर्वप्रकार के पापीचारी मद्यप जगाइ–माधाइ का वैष्णवापराध रहित चरित्र—

सर्व पाप सेइ दुइर शरीरे जन्मिल।
वैष्णवेर निन्दा–पाप सबे ना हइल॥३९॥
अहर्निश मद्यपेर संगे रंगे थाके।
नहिल वैष्णवनिन्दा एइ सब पाके॥४०॥

(३९–४०) प० अनु०—उन दोनों के शरीर से सभी पापों का जन्म हुआ परन्तु वैष्णव–निन्दा–रूपी पाप उन्होंने कभी नहीं किया। दिन–रात दोनो मद्यपों के साथ मजे में रहते थे, इसलिए वैष्णव निन्दा का अवसर ही उन्हें नहीं मिला।

(३९) गौः भाः—जिस समय तक जगाइ–माधाइ द्वारा भगवद्भक्त–वैष्णवों के प्रति आक्रमण नहीं किया गया था, उस समय ते उनका 'अपराध' नहीं हुआ था, केवल पाप हुआ था। वैष्णवों की निन्दा होने से सभी सद्गुण विनष्ट हो जाते हैं और अपराध संचित होने लगते हैं।

समाज के सर्वोच्च स्तम्भ—चतुर्थ आश्रम में अवस्थित होने पर भी वैष्णवनिन्दक मद्यप की अपेक्षा अधिक अधार्मिक—

ये सभाय वैष्णवेर निन्दामात्र हय।
सर्व–धर्म थाकिलेओ तबु हय क्षय॥४१॥
संन्यासी–सभाय यदि हय निन्दा–कर्म।
मद्यपेर सभा हइते से सभा अधर्म॥४२॥

(४१–४२) प० अनु०—जिस सभी में वैष्णवों की निन्दामात्र होती है, वह सभी सर्व–धर्म–सम्पन्न होने पर भी नाश को प्राप्त होती है। संन्यासी सभा में यदि निन्दाकर्म होता है, तब वह सभी मद्यप की सभा से भी अधिक अधार्मिक मानी जाती है।

(४२) गौः भाः—संसार के अच्छे–बुरे, सभी कार्यो से विरत, चतुर्थाश्रम (संन्यास) सर्वोत्तम सम्प्रदाय है। इस प्रकार के सर्वश्रेष्ठ समाज में भी यदि वैष्णवों की निन्दा होती है, तब वहाँ मद्यम–समाज के अधर्म से भी अधिक अधर्म है—यही जानना होगा।

मद्यप के बुरे अध्यास के छूट जाने से मंगल की संभालना, परन्तु मत्सर-परमिन्दर की किसी काल में भी गति नहीं—

मद्यपेर निष्कृति आछये कोनकाले।
परचर्च्चकेर गति नहे कभु भाले॥४३॥

(४३) प० अनु०—मद्यप का तो कभी उद्धार हो सकता है; परन्तु दूसरों की निन्दा करने वालो को कभी भी अच्छी गति मिलने की संभावना नहीं है।

(४३) गौः भाः०—मदिरा-पान रत जनगण मादक द्रव्य-सेवन से विकृत-मस्तिक होकर असत् कार्य करते है। उनका वह बुरा व्यसन जब तक नहीं छूटता है, तब तक वे कुकर्म करने में रत रहते हैं। घटनाक्रम से मद्यपान-पिपासा शेष (समाप्त) हो जाने से उनको और पाप नहीं करना पड़ता है। परन्तु परनिन्दाकारियों के भाग्य में कभी भी किसी दिन भी मंगल लाभ करने की संभावना नहीं है। शास्त्र कहते हैं,— "परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्। विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च॥"—(भाः ११/२८/१)। अपने मंगल और अमंगल का विचार करना ही कर्तव्य है। ऐसा न करके जो लोग दूसरों की निन्दा आदि कार्यों में व्यस्त रहकर अपनी असद्वृत्ति को प्रश्रय देते हैं, उन्हें कभी भी सुविधा की प्राप्ति नहीं होती है। परहिंसा-प्रवृत्ति को 'मत्सरता' कहते हैं। निर्मत्सर न होने से प्रापंचिक अमंगल से छुटकारा नहीं मिलता है। जो लोग परचर्चा में व्यस्त हैं, वे कभी भी अपने मंगल को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। परनिन्दारत व्यक्ति को आत्मरहित के बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिलता हैं, अतः वे मंगल की दिशा की ओर अग्रसर नहीं हो सकते हैं।

शास्त्रज्ञानी को भी, दुर्बुद्धि के वश से नित्यानन्द अथवा नित्यानन्द ये अभिन्न जनों की निन्दा से सर्वनाश की प्राप्ति—

शास्त्र पड़िआओ का'रो का'रो बुद्धि-नाश।
नित्यानन्द-निन्दा करे, हबे सर्वनाश॥४४॥

(४४) प० अनु०—शास्त्रों का अध्ययन करते हुये भी किसी-किसी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। बुद्धि का नाश होने के कारण वे नित्यानन्द की निन्दा करते हैं, इससे उसका सर्वनाश हो जाता है।

(४४) गौः भाः—शास्त्रों को पढ़कर भी शास्त्रों के हितोपदेश को ग्रहण न करने से अनेक व्यक्तियों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, हर समय परहिंसा प्रवृत्ति के कारण शास्त्रों के तात्पर्य की ओर ध्यान न देना ही उनका स्वभाव हो जाता है। जो लोग श्रीगुरुपादपद्म के आकर जगद्गुरु-नित्यानन्द के अनुष्ठान में दोष देखकर उनकी निन्दा करते हैं, वे सर्वतोभाव से अमंगल का वरण करते हैं। इसलिए ही "दृष्टैःस्वभावजनितैः" एवं "अपि चेत् सुदुराचारों" इत्यादि श्लोकों की अवतारणा हुई है। जो लोग अपनी संकीर्ण बुद्धि-द्वारा श्रीगुरुपादपदम् के दोष दर्शन करते हैं, वे श्रीगुरुदेव के निकट कोई मंगल ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते हैं। उनके विचार के अनुसार गुरुदेव के अंमगल में पतित हो जाने के कारण उनका उद्धार करना ही शिष्य का कर्तव्य है—इस प्रकार के विचार से विशेष अमंगल होता है।

जगह-माधाइ को कुकर्मरत देखकर हरिदास-नित्यानन्द के द्वारा उन दोनों के बारे में जानकारी लेना—

दुइ जने किलकिलि गालागालि करे।
नित्यानन्द हरिदास देखे थाकि' दूरे॥४५॥

लोकस्थाने नित्यानन्द जिज्ञासे आपने।
''कोन् जाति दुइ जन, हेन मति केने?''४६॥
लोक बले,—''गोसाञि, ब्राह्मण दुइजन।
दिव्य पिता–माता, महाकुलेते उत्पन्न॥४७॥
सर्वकाल नदीयाय पुरुषे पुरुषे।
तिलार्द्धेको दोष नाहि ए दोहाँर वंशे॥४८॥
एइ दुइ गुणवन्त पासरित धर्म।
जन्म हइते एमत करये पापकर्म॥४९॥
छाडिल गोष्ठीते बड़ दुर्जन देखिया।
मद्यपेर संगे बुले स्वतंत्र हइया॥५०॥
एइ दुइ देखि' सब नदीया डराय।
पाछे का'रो कोनदिन वसति पोड़ाय॥५१॥
हेन पाप नाहि, याहा ना करे दुइजन।
डाका–चुरि, मद्य–मांस करये भोजन॥''५२॥

(४५–५२) प० अनु०—दोनों—जगाइ-माधाइ एक दूसरे को मुरक्का मार रहे थे और गाली दे रहे थे। नित्यानन्द और हरिदास ने दूर से यह देखा। नित्यानन्द ने लोगों से पूछा,—"ये दोनों कौन-सी जाति के हैं, और उनकी ऐसी मति कैसे हो गई?" लोगों ने बताया,—"हे गोसाईं, ये दोनों ब्राह्मण हैं। दोनों के पिता-माता दिव्य प्रकृति के हैं, दोनों महाकुल में उत्पन्न हुये हैं। नदीया में इन दोनों के वंश-परम्परा से कभी आधा-तिल-मात्र भी दोष दिखाई नहीं दिया है। ये दोनों गुणवान अपने धर्म को भूल गये हैं और जन्म से ही इस प्रकार के पास कर्म कर रहे हैं। इन्हें बड़ा ही दुर्जन देखकर गोष्ठी ने इनको त्याग दिया है और अब ये दोनों स्वतन्त्र होकर मद्यपों के साथ घूमते-फिरते रहते है। इन दोनों को देखकर सारे नदीयावासी डरते हैं। सभी चिंता में रहते हैं कि कहीं उनके घर में ये आग न लगा दें। ऐसा कोई पाप नहीं है, जो ये दोनों न करते हों। डाका-चोरी मद्य-मांस-भोजन सब पाप ये करते हैं।"

(४५) गौः भाः—दुइजने (दोनों) जगाइ एवं माधाइ उभय।

(४७) गौः भाः—पाठभेद में—'दिव्य पिता, माता—मह-कुलेते उत्पन्न।' नित्यानन्द प्रभु द्वारा पूछने पर प्रतिवेशीगण (पड़ोसियों) ने कहा,—ये दोनों ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये हैं एवं इनके पिता-माता के कुल सर्वजन-द्व ारा प्रशंसित हैं।

(४८) गौः भाः—पुरुषानुक्रम से ये नदीया के अधिवासी हैं; इनके वंश के प्रति किसी को भी किसी प्रकार का थोड़ा-सा भी दोषारोपण करते हुये नहीं सुना है। जिनका यह कहना है कि, पुत्र पौत्रादिगण माता-पिता का स्वभाव प्राप्त करते हैं, उन्होंने इन दोनों में स्वभाव-विपर्यय को लक्ष्य किया है। जड़वस्तु से चेतन आविर्भूत होता है, यह धारणा ठीक नहीं है। अचित के साथ पृथक् चेतन का आकस्मिक समागम होता है—यही धारणा उचित लगती है। गुण-कर्म विभाग के अनुसार स्वभाव निर्णीत होता है। जो स्थूल शरीर का निमित्त एवं उपादान कारण होता है, वह कभी भी चेतन का उद्भव-स्थल नहीं होता है। प्राण परित्याग के स्थूल परिचय की पहचान होती है। "स्थूल से दैवक्रमानुसार आत्मा उद्भुत हुई है,"—इस चिन्तन-स्रोत की प्रशंसा नहीं की जा सकती है। परन्तु "स्वकर्मफलभुक्" विचार ही प्रबल है। स्थूल देह—कारण है, कर्त्ता नहीं।

(५२) गौः भाः—जगाइ-माधाइ के पाप की सीमा नहीं है। बल-पूर्वक पर-द्रव्यों के सेवन के कारण स्वेच्छाचारिता जैसे दुर्गुण ही इनमें प्रबल भाव से विद्यमान थे, इस कारण सभी प्रकार के पाप कर्मों में संलग्न रहना ही उन दोनों की योग्यता थी। कोई-कोई कहता है कि,—"आहार-आदि की शुद्धि एवं नैतिक

चरित्र का विपर्यय होने पर भी अनात्मा से आत्मा के पृथक् होने के कारण अनात्मा के कार्य के लिए आत्मा उत्तरदायी नहीं है।" वस्तुतः स्वरूप-विस्मृत जीव ही इस प्रकार की अविवेचना (अविवेक) के फल एवं अत्यासक्ति-जनित अमंगल भोगते हैं।

जगाइ-माधाइ की दुरवस्था के श्रवण से नित्यानन्द के द्वारा उनके उद्धार के उपाय की चिंता—

शुनि' नित्यानन्द बड़ करुण-हृदय।
दुइयेर उद्धार चिन्ते' हइया सदय॥५३॥
''पातकी तारिते प्रभु कैला अवतार।
एमत पातकी कोथा पाइवेन आर?५४॥
लुकाइया करे प्रभु आपना प्रकाश।
प्रभाव ना देखे लोके,—करे उपहास॥५५॥
ए दुइयेरे प्रभु यदि अनुग्रह करे।
तबे से प्रभाव देखे सकल संसारे॥५६॥
तबे हङ नित्यानन्द—चैतन्येर दास।
ए दुइयेरे कराङ यदि चैतन्य प्रकाश॥५७॥
एखन येमन मत्त, आपना ना जाने।
एइमत हय यदि श्रीकृष्णेर नामे॥५८॥
'मोर प्रभु' बलि' यदि कान्दे दुइजन।
तबे से सार्थक मोर यत पर्यटन॥५९॥
ये जे जन ए दु'येर छाया परशिया।
वस्त्रेर सहित गंगास्नान करे गिया॥६०॥
सेइ सब जन यदि ए दोँहारे देखि'।
गंगास्नान-हेन माने, तबे मोरे लिखि॥''६१॥
श्रीनित्यानन्द-प्रभुर महिमा अपार।
पतितेर त्राण लागि, याँर अवतार॥६२॥

(५६-६२) प० अनु०—बड़े ही करुण-हृदय नित्यानन्द यह सब सुनकर और सदय होकर उन दोनों के उद्धार के बारे में सोचने लगे—"पातकी का उद्धार करने के लिए ही प्रभु ने अवतार ग्रहण किया है। ऐसे पातकी उन्हें और कहाँ मिलेंगे? आत्मगोपनपूर्वक प्रभु अपना प्रकाश कर रहे हैं। इसलिए लोग प्रभु के प्रभाव को नही देख पाते हैं, ऊपर से उनका उपहास करते हैं। यदि इन दोनों पर प्रभु ने अनुग्रह किया, तब सारा संसार उनके प्रभाव को देख सकेगा। तभी मैं नित्यानन्द-चैतन्य का दास कहलाऊँगा, जब इन दोनों में चैतन्य का प्रकाश करा सकूँ। अभी जैसे अपने-आपको भूलकर मस्ती में हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण के नाम में सब कुछ भूलकर मस्त हो जायें, 'मेरे प्रभु' कहकर यदि ये दोनों क्रन्दन करें, तभी मेरा इस प्रकार घूमना-फिरना सार्थक हो जायेगा। जो-जो लोग अभी इन दोनों की छाया का स्पर्श करके वस्त्रों के साथ गंगा-स्नान किया करते हैं, वे सभी यदि इन दोनों को देखकर अपने को गंगास्नान किया हुआ जैसा पवित्र मानने लगें, तब मेरा नाम सार्थक होगा।" श्रीनित्यानन्द प्रभु की महिमा अपरम्पार है। पतितों का उद्धार करने के लिए ही इनका अवतार हुआ है।

(५४) गौः भाः—पातक—'पातयति अधोगमयति दुष्क्रियाकारिणम्' इति। गृहस्थाश्रमी के 'काम' 'क्रोध' एवं 'लोभ' नाम के तीन प्रधान रिपु वर्तमान हैं, मानवगण इन तीनों शत्रुओं के द्वारा आक्रांत होकर पापाचरण करते हैं। मानवों द्वारा किये गये ये पाप समूह 'अतिपातक', 'महापातक', 'अनुपातक', 'उपपातक', 'जातिभ्रशंकर', 'संकरीकरण', 'अपात्रीकरण', 'मलावह' एवं 'प्रकीर्णक' नामों से माने जाते हैं।

मातृगमन, कन्यागमन एवं पुत्रवधू गमन—ये तीन प्रकार के पाप 'अतिपातक' कहलाते हैं।

ब्रह्महत्या, सुरापान, ब्राह्मण के सुवर्ण की

चोरी करना एवं गुरु-पत्नी-गमन—ये चारों प्रकार के पाप एवं इस प्रकार के पापियों के साथ विशेष संसर्ग ही 'महापातक' हैं।

अनुपातक—ये पैंतीस प्रकार के होते हैं—(१) नीच जाति का होकर अपने-आपको उच्चजाति का बताकर परिचय देना। (२) जिस दोष के प्रकाश से प्राणदंड हो सकता है, उस दोष के बारे में राजा को बताना। (३) गुरुजनों पर मिथ्या दोषों को आरोपित करना—ये तीनों पाप ब्रह्महत्या के समान हैं। (१) वेद को त्याग देना अथवा वेद पढ़कर भूल जाना। (२) वेद की निन्दा करना। (३) कुटिल बात कहकर घुमा-फिराकर साक्ष्य देना—(यह दो प्रकार का है; एक,—किसी विषय के बारें में जानकारी होने से उसे छिपाकर रखना। दो,—सत्य का गोपन करके मिथ्या बोलना)। (४) मित्र के प्राण नष्ट कर देना। (५) विष्ठा आदि के उत्पन्न द्रव्यों का भोजन करना। (६) न खाने योग्य द्रव्य का भोजन करना। ये छह प्रकार के अनुपातक सुरापान के समान हैं।

(१) किसी के जमा किये हुये धन को धोखा देकर ले जाना, (२) मनुष्यों का अपहरण करना, (३) घोड़े को चुराना, (४) रूपा (चाँदी) की चोरी करना, (५) भूमि की चोरी करना,—ये सात प्रकार के अनुपातक सुवर्ण हरण करने के समान हैं। (१) सगी बहन के साथ गमन, (२) कुमारी के साथ गमन, (३) नीच जाति की स्त्री के साथ गमन, (४) मित्र-पत्नी के साथ गमन, (५) अपनी धर्मपत्नी से उत्पन्न पुत्र से भिन्न दूसरे पुत्रों की स्त्री से गमन, (६) पुत्र की असवर्ण स्त्री के साथ गमन, (७) मातृष्ष्सा (मौसी) के साथ गमन, (८) पितृष्वसा (बुआ) के साथ गमन, (९) सास के साथ गमन, (१०) मातुलानी (मामी) के साथ गमन, (११) पुरोहित की स्त्री के साथ गमन, (१२) बहन के साथ गमन, (१३) आचार्य की स्त्री के साथ गमन, (१४) शरणागता स्त्री के साथ गमन, (१५) रानी के साथ गमन, (१६) ऐसी स्त्री के साथ गमन, जिसने गृहस्थाश्रम का परित्याग कर दिया हो, (१७) श्रोत्रिय-स्त्री के साथ गमन, (१८) साध्वी स्त्री के साथ गमन एवं (१९) उच्चवर्ण की स्त्री के साथ निम्नवर्ण के पुरुष द्वारा गमन—ये उन्नीस प्रकार के अनुपातक गुरुपत्नी हरण के समान हैं। गोवध, अयाज्ययाजन, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, पिता, माता एवं गुरु का त्याग, स्वाध्यायत्याग एवं आलस्य द्वारा अग्नित्याग, पुत्रत्याग, अर्थात् पुत्र का जातकर्म-संस्कार न करना, ज्येष्ठ के अविवाहित रहने प भी कनिष्ठ का विवाह, इस प्रकार से ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ को कन्यादान अथवा ऐसे विवाह-कार्य में पौरोहित्य करना, अरजस्का (रजस्वला) से पहले कन्यादूषण, वृद्धि के द्वार जीविका, स्त्रीस्मभोग-आदि द्वारा ब्रह्मचारी की व्रतच्युति, तडाग, उद्यान अथवा स्त्री-पुत्रादि का विक्रय करना, षोडश वर्ष का हो जाने पर भी उपनयन न होना, पितृव्य-प्रभृति (चाचा-ताऊ आदि) बांधवों का त्याग, वेतन लेकर वेद का अध्यापन, वेतनग्राही अध्यापन से वेद का अध्ययन, अविक्रेय वस्तु का विक्रय, राजा की आज्ञा से सुवर्ण आदि की खान में काम करना, बृहत सेतु-आदि में काम, औषधि नष्ट करना, भार्या आदि का उपवति के द्वारा जीविका निर्वाह करना, श्येन आदि आभिचारिक योग का प्रयोग अथवा मंत्र द्वारा निरपराधी का अनिष्ट करना, ज्वलतीय काष्ठ के लिए हरे वृक्षों का काटना, ऐवपित्रादि के उद्देश्य के अतिरिक्त अपने लिए पाक-यज्ञ आदि का अनुष्ठान, लसुन आदि निन्दित खाद्य

पदार्थों का भोजन, अग्न्याधन, (अग्निहोत्र) न करना, सोने के अतिरिक्त भी अनय वस्तुओं की चोरी करना, देव, ऋषि एवं पितरों के ऋण परिशोध न करना, असत्शास्त्रों का पढ़ना, गीतवाद्य मे आसक्ति, धान्य, ताम्र एवं लोहे आदि धातुओं एवं पशुओं की चोरी, मद्य-पायिनी स्त्री के साथ गमन, स्त्री, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की हत्या एवं नास्तिकता—ये सब 'उपपातक' हैं।

दण्ड आदि के द्वारा ब्राह्मण को कष्ट देना, लसुन पुरीष (विष्टा) आदि वस्तुओं एंव मद्य को सुँघना, कुटिलता, पशु-मैथुन एवं पुं मैथुन—ये सब पाप 'जातिभ्रशंकर' हैं। ग्राम्य और आरण्य पशुहिंसा-पाप—'संकरीकरण' होता है।

निन्दित कार्य करने वाले व्यक्ति के निकट से धनग्रहण, वाणिज्य एवं कुसीद (ब्याज) के द्वारा जीविका-निर्वाह, असत्य भाषण एवं शूद्रसेवा—ये सब पाप—'अपात्रीकरण' हैं।

पक्षीहत्या, जलचरहत्या, मत्स्यादि जलजप्राणियों की हत्या, कृमिहत्या, कीटहत्या एवं मद्यसंश्लिष्ट (मिश्रित) द्रव्यों का भोजन—ये सब पाप—'मलावह' हैं।

जिन अन्य पापों के बारे में यहाँ नही लिखा गया है, वे सब पाप—'प्रकीर्णक' कहलाते हैं—(विष्णु-सहिता, प्रायश्चितविवेक एवं मनुसंहिता द्रष्टव्य हैं)।

महाभारत के दानधर्म में दस प्रकार के पाप उल्लिखित हुये हैं—प्राणिहत्या, चोर्य एवं परदाहरण—ये तीन प्रकार के पाप 'कायिक', असतप्रलाप, पारुष्य, पैशुन्य (अप्रिय भाषण, पीठे पीछे निन्दा) एवं मिथ्या वाक्य कथन—ये चार प्रकार के 'वाचिक' एवं परधन की चाह, सर्वजीवों में दयाशून्यता एवं 'कर्मों का फल मिल जाए'—ऐसी कामना, ये त्रिविध पाप 'मानसिक' हैं।

(५५) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु जगत् के संसार बंधनों को विच्छिन्न कर देने वाले एकमात्र कर्ता हैं। वे अपने स्वरुप का प्रदर्शन न करके उसे छिपाकर रखते हैं। जो उनको समझ नहीं सकते हैं, वे उनको अपना जैसा मानव मानकर उनके द्वारा अनुष्ठित कार्यों को हँसकर ठुकरा देना चाहते हैं।

(५६-५७) गौः भाः—जगाइ-माधाइ की भाँति पापिगण-अनुचित-शक्ति हैं। किन्तु उस भाव के प्रकाशित न होने के कारण एवं अचित-विचार की प्रबलता रहने के कारण उनमें आत्मप्रतीति-प्राप्त करने की योग्यता नहीं रहती है। यदि श्रीमन्महाप्रभु कृपापरवश होकर उनकी नित्य अनुचिद्वृति का उद्घाटन करा देते हैं, तब वे अपने आपको चैतन्य का दास होने की अनुभूति को उपलब्ध करने में समर्थ हो जाते हैं।

(६१) गौः भाः—नीति-परायण धार्मिक जन समझते हैं कि पापिष्ठ की छाया का भी स्पर्श होने से वस्त्र-सहित गंगास्नान करना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभु की दया पाकर उन दोनों के पवित्र चरित्र वाले हो जाने पर गंगास्नान से जो पवित्रता अर्जित हुई है, परिवर्तित पाप-निर्मुक्त व्यक्तिद्वय के दर्शन से वही (गंगास्नान की) पवित्रता अर्जित हुई है, ऐसा विश्वास उन (नीतिपरायण) लोगों में उत्पन्न होने पर ही मेरा नाम सार्थक हो पायेगा।

(६२) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द की महिमा का वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। भगवान् श्रीगौरसुन्दर की प्रकाश-मूर्ति श्रीनित्यानन्द—स्वयं-प्रकाश वस्तु हैं। पतितों का उद्धार करने के लिए ही वे अवतीर्ण हुये हैं।

हरिदास के प्रति निताइ का अपने मनोभाव का

ज्ञापन एवं उन दोनों का उद्धार करने के लिए हरिदास से अनुरोध–

एतेक चिन्तिया प्रभु हरिदास–प्रति।
बले,—''हरिदास, देख दोहाँ दुर्गति॥६३॥
ब्राह्मण हइया हेन दुष्ट व्यवहार।
ए दोहाँर यमघरे नाहिक निस्तार॥६४॥
प्राणान्ते मारिल तोमा ये यवनगणे।
ताहारओ करिला तुमि भाल मने मने॥६५॥
यदि तुमि शुभानुसंधान कर मने।
तबे से उद्धार पाय एइ दुइजने॥६६॥
तोमार संकल्प प्रभु ना करे अन्यथा।
आपने कहिला प्रभु एइ तत्त्वकथा॥६७॥
प्रभुर प्रभाव सब देखुक संसार।
चैतन्य करिल हेन दुइर उद्धार।
येन गाय अजामिल–उद्धार पुराणे।
साक्षाते देखुन एबे ए तिन भुवने''॥६९॥

(६३–६९) प० अनु०—इतना सोचकर नित्यानन्द प्रभु हरिदास से बोले,—"हरिदास, दोनों की दुर्गति देखो। ये ब्राह्मण होकर ऐसा दुष्ट व्यवहार करते रहते हैं। यम–घर में इन दोनों का निस्तार नहीं होगा। जिन यवनों ने तुम्हें जान से मारना चाहा था, उन सब के लिए भी तुमने मन–ही–मन भलाई की प्रार्थना की थी। यदि तुम मन ही से इन दोनों के शुभचिंतक बन जाओ तो इन दोनों का भी उद्धार हो जाए। तुम्हारा संकल्प प्रभु कभी व्यर्थ नहीं होने देते हैं, यह तत्त्व की बात प्रभु ने अपने आप ही कही है। ऐसा करो कि सारा संसार यह देखे कि, चैतन्य ने इस प्रकार इन दोनों का उद्धार किया। पुराण में जैसे अजामिल–उद्धार के बारे में वर्णन किया गया है, उसी प्रकार की एक और घटना को अब ये तीनों भुवन साक्षात् रूप से देखें।"

(६४) गौः भाः—मानव पाप से निवृत होकर पुण्य–संग्रह के फलस्वरूप सर्वोत्तम ब्राह्मण–कुल में जन्म लेते है। ब्राह्मण–परिचय ही जगत् में सर्वोत्तम परिचय है। ब्राह्मण सर्वमान्य हैं एवं उनका आदर्श ही सबके लिए अनुसरणीय है। पापप्रवृति के वशीभूत होकर जीवगण ब्राह्मण से भिन्न कुल के परिचय से गौरव का अनुभव करते हैं, परन्तु असली ब्राह्मण के परिचय में कोई दोष नहीं रह सकता है। जो पाप करते हैं, दण्डदाता यम उनको विशेष क्लेश प्रदान करते हैं। विशेषतः पुण्यों के प्रभाव से ब्राह्मण कुल में जन्मग्रहण करके, सत्शिक्षा प्राप्त करने का परम सुयोग प्राप्त करके भी जो आत्मविस्मृत होकर विभिन्न प्रकार के अपराधों में निमग्न हो जाते हैं, यम के घर में उनको अशेष क्लेशों से किसी प्रकार भी परित्राण नहीं मिलता है।

(६५) गौः भाः—आम्बुया–मुलुक के काजियों ने ठाकुर हरिदास पर जान से मार देने के लिए प्रहार किया था। तथापि ठाकुर हरिदास ने किसी प्रकार के प्रतिशोध की आकांक्षा न करते हुये सहिष्णुता का अवलम्बन लेकर उनके मंगल की ही कामना की थी। (आदि १६ श अः १०८–११३) पयार द्रष्टव्य हैं।)।

(६६–६७) गौः भाः०—ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोद ने लिखा है, —"गलवस्त्रकृतांजलि वैष्णव निकटे। दन्ते तृण करि' दाँड़ाइव निष्कपटे॥ काँदिया काँदिया जानाइव दुःखग्राम। संसार–अनल हैते मागिव विश्राम॥ संसार–अनल हैते मागिव विश्राम॥ शुनिया आमार दुःख वैष्णव ठाकुर। आमा लागि' कृष्ण दयामय। ए–हेन पामर प्रति हबेन सदय॥"

(६९) गौः भाः—त्रिभुवन,—स्वर्ग, पृथवी

और पाताल, चतुर्दश लोक,—ऊपर के छह लोक नीचे के सात लोक एवं पृथ्वी। प्रपंच के श्रीनवद्वीप धाम में जगाइ-माधाइ के उद्धार की लीला श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में लिखित पूर्वकाल के अजामिल—उपाख्यान की भाँति केवल शास्त्रीय उपाख्यान मात्र नही है; अथवा व्यवहारिक जगत् में भी भूतकाल की घटनामात्र नहीं है; अपितु यह तो वर्तमान काल में भी श्रीचैतन्य लीला में देखने को मिलती है।

हरिदास की दोनों के उद्धार के विषय में निश्चय-प्रतीति एवं दैन्यसूचक उत्तर—

नित्यानन्दतत्त्व हरिदास भाल जाने।
पाइल उद्धार दुइ—जानिलेन मने॥७०॥
हरिदास प्रभु बले,—"शुन महाशय।
तोमार ये इच्छा, सेइ प्रभुर निश्चय॥७१॥
आमारे भांडाओ, येन पशुरे भांडाओ।
आमारे से तुमि पुनः पुनः ये शिखाओ॥"७२॥
हासि' नित्यानन्द ताने दिला आलिंगन।
अत्यन्त कोमल हइ' बलेन वचन॥७३॥
"प्रभुर ये आज्ञा लइ' आमरा बेड़ाइ।
ताहा कहि एइ दुइ मद्यपेर ठाञि॥७४॥
सबारे भजिते 'कृष्ण' प्रभुर आदेश।
तार मध्ये अतिशय-पापीरे विशेष॥७५॥
बलिबार भार मात्र आमा दोंहाकार।
बलिले ना लय यबे,—सेइ भार ताँर॥"७६॥

(७०-७६) प० अनु०—नित्यानन्दतत्त्व के बारे में हरिदास भली-भाँति जानते थे। उनका अभिप्राय सुनकर हरिदास समझ गये थे कि उन दोनों का उद्धार बस होने ही वाला है। हरिदास प्रभु बोले,—"सुनिए महाशय! आपकी जो इच्छा है, वही प्रभु की भी इच्छा है। मुझसे अपना स्वरूप छिपाकर रखना पशु से स्वरूप छिपाकर रखने के बराबर है। बारम्बार आप मुझे इस प्रकार से शिक्षा देते हैं।" यह सुनकर नित्यानन्द ने हँसते हुये उन्हें आलिंगन प्रदान किया और बहुत ही कोमल भाव-सहित उनसे कहा,—"प्रभु की जिस आज्ञा को लेकर हम घूम रहे हैं, उसे इन दोनों मद्यपों के निकट कहना चाहिए। प्रभु ने यह आज्ञा दी है कि सभी 'कृष्ण' भजन करें। इनमें भी अतिशय पापियों को विशेष रूप से कहने के लिए आदेश किया है। केवल कहने का उत्तरदायित्त्व हम पर हैं, कहने से भी यदि ग्रहण नहीं किया,—तो बाकी कार्य वे (प्रभु) स्वयं सम्भालेंगे।"

(७०) गौः भाः—ठाकुर हरिदास जगत् में नामाचार्य के रूप में अभिनय कर रहे हैं, अत नाम-ग्रहणकारियों के मूल स्वरूप श्रीगुरूदेव-तत्त्व के बारे में उत्कृष्ट रूप से जानकारी श्रीहरिदास को ही है। वे ही ठाकुर हरिदास इस घटना को देखकर जगाइ-माधाइ के उद्धार की निश्चितता के बारे में जान सकते हैं।

(७१) गौः भाः—हरिदास ने श्रीनित्यानन्द प्रभु से कहा,—"आपकी जो अभिलाषा है, वही श्रीगौरसुन्दर के सम्पूर्ण समर्थन का विषय है।"

(७२) गौः भाः—हरिदास ने कहा,—कृष्ण के निकट मेरा आवेदन—वैष्णवमाहात्म्य एवं भगवान् के प्रति दावी (प्रार्थना) की शिक्षामात्र है। परन्तु मैं पशु सदृश हूँ, मुझमें हिताहित विवेक नहीं है। आपकी बातों से यदि मैं आपने आपको वैष्णव समझने लगूँ एवं मेरे आवेदन से दयामय कृष्ण दोनों पापियों का उद्धार करेंगे—ऐसा समझ लूँ, तो इससे मेरा पशुत्व ही सिद्ध होता है। यद्यपि मैं विवाहित-विवेक-रहित पशु हूँ, तथापि मुझसे अपना स्वरूप छिपाये रखने का आपका यह

कार्य—मेरे पशुत्व का ही ज्ञापक मात्र है। मैं कृष्णविस्मृत जीव हूँ, इसलिए स्वरूप का उद्‌घाटन करके मुझे भगवत्‌–सेवापर करने के लिए आपकी प्रबल इच्छा है, इसलिए आपके अनुष्ठान में मेरे लिए बहुविध शिक्षणीय विषय हैं।

(७४) गौः भाः—यद्यपि जगाइ–माधाइ मदिरापान से उन्मत्त होने के कारण लौकिक नीति की बात अथवा जागतिक हित के विषय में सुनने को उद्यत (राजी) नहीं है; तथापि दयामय गौरसुन्दर का आदेश पालन करने के लिए हम नाम–प्रचार क उत्तरदायित्व को ग्रहण करके नीच प्राणियों से लेकर जन साधारण तक सबके निकट भगवद्‌–आज्ञा का प्रचार कर रहे हैं। पापिष्ठ लोक ऐहिक हित की बात भी नहीं समझ पाते हैं; इसलिए उनके निकट प्रकृति से परे अलौकिक राज्य के बारे में कुछ कहना अप्रासंगिक है,—ऐसा बहुत सारे समझते हैं। परन्तु पापी में ही इन सब बातों को ग्रहण करने की अधिक योग्यता एंव अधिकर है।

(७६) गौः भाः—श्रील नित्यानन्द एवं श्रील हरिदास के प्रति श्रीमहाप्रभु की आज्ञा थी कि,—सभी से अनुरोध करना ताकि सभी कृष्णभजन करें। प्रभु की इच्छा के अनुसार उस अनुनय–विनय को यदि श्रोतृवर्ग नहीं सुनकर अपने अमंगल का आवाहन करता है, तो फललाभ का अंश आज्ञादाता महाप्रभु को ही मिलेगा।

सज्जनों के मना करने पर भी
प्रभु–आज्ञा–ज्ञापनार्थ हरिदास और नित्यानन्द
का पापीद्वय के निकट गमन एवं प्रभु–
आज्ञा का प्रचार—

बलिते प्रभुर आज्ञा से दु'येर स्थाने।
नित्यानन्द–हरिदास करिला गमने॥७७॥
साधुलोके माना करे—''निकटे ना याओ।
नागाल पाइले पाछे पराण हाराओ॥७८॥
आमरा अन्तरे थाकि पराण–तरासे।
किसेर संन्यासीज्ञान ओ–दु'येर ठाञि?
ब्रह्मवधे–गोवधे याहार अन्त नाइ॥''८०॥
तथापिह दुइ जन 'कृष्ण कृष्ण' बलि'।
निकटे चलिला दोंह महा–कुतूहली॥८१॥
शुनिवारे पाय हेन निकट थाकिया।
कहेन प्रभुर आज्ञा डाकिया डाकिया॥८२॥
''बल कृष्ण, भज कृष्ण, लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन प्राण॥८३॥
तोमा–सबा लागिया कृष्णेर अवतार।
हेन कृष्ण भज, सब छाड़ अनाचार॥''८४॥

(७७–८४) प० अनु०—प्रभु की आज्ञा कहने के लिए नित्यानन्द और हरिदास उन दोनों के पास चल दिये। सज्जन लोगों ने उन्हें मना किया,—"पास मत जाइए—यदि पकड़े गये, तो हो सकता है कि, जान से हाथ धोना पड़े। डर के मारे हम लोग तो दूर–दूर जा रहे हैं? वे दोनों, सन्यासियों के बारे में क्या जानें? उन दोनों ने अनेक ब्राह्मणों और गायों का वध किया है।" फिर भी दोनों (नित्यानन्द और हरिदास) 'कृष्ण कृष्ण' कहकर महा–आनन्द के साथ उन दोनों के पास चले गये। पास जाकर, थोड़ी–सी दूर रहकर, ताकि वे सुन सकें, नित्यानन्द और हरिदास ने उन दोनों को प्रभु की आज्ञा सुना दी। "बोलो कृष्ण, भजों कृष्ण, लो कृष्ण का नाम। कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन–प्राण। तुम सबके लिए कृष्ण का अवतार हुआ। सभी अनाचारों का त्यागकर कृष्ण का भजन किया करो।"

(७८) गौः भाः—परमार्थ के बारे में अनभिज्ञ

लोगों ने साधारण विचार का अवलम्बन करके 'असाधु के निकट हरिकथा-प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है',—इस विचार से ठाकुर हरिदास एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु को जगाइ-माधाइ के पास जाने से मना किया। असत् व्यक्तियों को सद्पदेश प्रदान करने से वे उसे ग्रहण करने के बदले आक्रामक हो जाते हैं। श्रीगौरसुन्दर की आज्ञानुसार श्रीनित्यानन्द एवं ठाकुर हरिदास का अनुसरण करते हुये आज भी श्रीगौड़ीय मठ जिन सब अलौकीक प्रचार की बातों को जगत् में कह रहे हैं, उन्हें स्थान विशेष पर ग्रहण करने की बात तो दूर रही, गौड़ीय मठ के प्रचारकवर्ग पर कभी-कभी आक्रमण करके प्रचार में व्याघात कियो जाने के दृष्टान्त प्रतिदिन ही (अथवा बहुधा बीच-बीच में ही) लक्षित होते हैं।

(७९) गौः भाः—सज्जनगण इन दोनों पापियों से दूर-दूर ही रहते थे। इनको डर था कि, असाधुगण के द्वारा वे आक्रान्त हो सकते हैं। वे श्रीनित्यानन्द और हरिदास को कह रहे थे,—"आप लोगों का साहस अत्यधिक है। इसलिए उस साहस के बल पर आप दोनों पापियों के निकट जा रहे हैं।

(८०) गौः भाः—ब्रह्मवध एवं गोवध—सबसे अधिक गुरुतर पाप हैं। इस प्रकार के पाप उन्होंने असंख्य बार किये हैं। आप दोनों परिव्राजक हैं, जगत् का मंगल करने के उद्देश्य से सर्वत्र गमनागमन करते हैं। परन्तु आप लोगों की महानता को समझने की क्षमता इन दोनों पापियों में नहीं हैं। वे आप लोगों को चतुर्थाश्रमी (संन्यासी) और ब्रह्मनिष्ठ जानने के बदले में आप पर आक्रमण कर बैठेंगे।

(८१) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द और हरिदास श्रीमहाप्रभु के आदेशानुसार शिक्षाष्टक के प्रथम श्लोक में उक्त सात प्रकार के मंगलमूर्त्त कृष्णनामों का उच्चारण करते-करते उनके सम्मुख उपस्थित हुये। कृष्णनाम एवं कृष्ण के बीच का मायिक भेदज्ञान श्रीनित्यानन्द और हरिदास में नहीं था। उन्होंने शब्द की अज्ञरूढ़िवृत्ति का आश्रय लेकर नामोच्चारण नहीं किया था। इसलिए वे महा-कुतूहल का प्रकाशन करते हुये अग्रसर हुये।

(८४) गौः भाः—स्वयंरूप कृष्ण पार्षद 'आकृष्ट' ृगण-सहित जो नित्यलीला को ब्रजभूमि में प्रकट करते हैं, वे जीवों का मन्दभाग्य दूर करने के लिए ही ऐसा करते हैं। इसलिए कृष्णभजन के अतिरिक्त अन्य कोई सेवा करना आचार-हीनता मात्र है। अतएव सम्बन्ध-ज्ञान से अपने आपको 'आकृष्ट' जानकर तुम सभी अपने आत्मा की नित्यवृत्ति को उन्मेषित कर लो। जीवों को स्वरूप उपलब्धि हो जाने पर उनकी प्रापंचिक सेवाविमुखिनी आचारहीनता और शेष नहीं रह सकती है। उस समय कृष्णभजन की प्रवृत्ति प्रबल होती है। निरपेक्ष कृष्ण की तटस्थ-शक्ति युक्त जीव मुक्तावस्था में कुछ कम सौभाग्यशाली होने के कारण श्रीरामचन्द्र का भजन किया करते हैं। श्रीरामभजन में प्रकृति से परे कृष्ण की सर्वशक्तिमत्ता के सम्पूर्ण प्रकाश का अवकाश नहीं है। श्रीरामचन्द्र के आकर (मूलरूप) श्रीबलदेव के प्रकाशतत्त्व में जो अप्राकृत रासलीला वर्णित हुई हैं, वह रघुनन्दन राम में वैसी नहीं है। दण्डकारण्यवासी ऋषिगण की चेष्टा से ही दशरथी राम की रासलीला की अनुपयोगिता निरुपित हुई है। स्वयंरूप श्रीकृष्ण-विलास एवं श्रीबलदेव के स्वयं प्रकाश की विचित्रता गोलोक वृन्दावन में प्रकटित है। स्पष्ट रूप से उस लीला का सौभाग्य बताने के लिए ही कृष्ण ने स्वयं अवतीर्ण होकर श्रीगौरलीला की अवतारणा

ही है। इस अवतरण कार्य के मुख्यत्व के विचार से औदार्यभाव का माधुर्य–विग्रह ही श्रीकृष्णचन्द्र के अवतार का मुख्य उद्देश्य है। जो व्यक्ति पाप और पुण्य के आश्रित होकर प्रापंचिक भूमिका में अनित्य की उपलब्धि में अवस्थित हैं, उनके कारण ही श्रीकृष्णचन्द्र का श्रीराधा–गोविन्दमिलित–तनु श्रीगौरांग के नित्यरूप मे अवतरित हुआ है। भजनीय विग्रह कृष्णचन्द्र ने रसभेद से भजनकारी कृष्ण के आश्रय–विग्रह समूह सम्मिलित तनु श्रीगौरसुन्दर के रूप में अवतीर्ण होकर जगत् के प्रापंचिक विचाररूप अनाचार का त्याग करके कृष्ण–भजन का तारतम्य श्रीगौरसुन्दर की कृष्णप्रेम–प्रदान–लीला में अभिव्यक्त हुआ है। जिन सौभाग्यशाली व्यक्तियों ने श्रीराम–सीता,श्रीराम–वज्रांगजो, श्रीलक्ष्मी–नारायण, श्रीविष्वकसेन–(गरूड़–नारायण एवं श्रीवासुदेव –संकर्षण–प्रद्युम्न–अनिरूद्ध(व्यूह–चतुष्टय) की सेवा मे निरत रहने के कारण निर्मलता को प्राप्त किया है, उनके सौभाग्य की परिपूर्णता में ब्रजेन्द्रनन्दन की सेवा ही सर्वोत्तम है। इन औदार्य–प्रचारकारी कृष्णचन्द्र ने जगद्गुरु के रूप में परम निर्मल जीवात्मागणों को जो उपदेश प्रदान किया है, इसमें दुःसंग परित्याग पूर्वक भगवद् उपासना के तारम्य का विचार करने वाले, कृष्ण की तटस्थ शक्ति–स्वरूप जीव के लिए ही एवं स्वयंरूप कृष्ण अवतीर्ण हुये हैं। जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द एवं जगद्गुरु ठाकुर हरिदास ने महाप्रभु से साक्षात् आज्ञा पाकर तथा जगद्गुरु के प्रकाशविशेष होकर, जगत् को कृष्ण के औदार्यमय कृष्ण ने महामहोपदेशक के रूप में सभी दुःसंग परित्याग–पूर्वक सर्वोत्तम विचित्र–विलास–सम्पन्न पंचसाभिषिक्त स्वयंरूप वस्तु की उपासना की शिक्षा दे रहे है। तुम सब दुःसंग का परित्याग करके उन सच्चिदानन्द स्वरूप का संग प्राप्त करो एवं अपने आपको उनकी पंचरमयी सेवा का अन्यतम उपकरण जानकर सर्वकाल उनका ही भजन किया करो। काम की पूर्णांगता दाम्पत्य में अवस्थित है, उससे कम वात्सल्य में, उससे कम सख्य में, उस से कम दास्य में एवं उससे कम शांत में अवस्थित है। इसके विपरीत परित्याग करने योग्य प्रापंचिक विपरीत अनुभूति अनाचार में गिनी जाती है। कृष्ण के प्रकाशविग्रह के विलाससमूह, कृष्ण से अभिन्न होने पर भी द्व ादश–रसमय–मूर्त्ति कृष्ण ही स्वयंरूप, स्वयंगुण, स्वयंपरिकर वैशिष्ट एवं स्वयं लीलामय हैं। उनका ही प्रकाशतत्त्व—श्रीबलदेव प्रकाशरूप, प्रकाशगुण, प्रकाश–परिकर वैशिष्ट और प्रकाश लीलामय हैं। इसलिए उनके भजन से कृष्ण का ही भजन होता हैं। फिर "ये यथा मां प्रपद्यन्ते" के विचार से "तांस्तथैव भजाम्यहम्"—यह स्वयंरूप कृष्ण की उक्ति ही विचार करने योग्य है। किसी–किसी के विचार से वासुदेवादि चतुर्व्यूहात्मक कृष्ण, किसी के विचार से सीतारामादि कृष्ण और किसी कि विचारानुसार रेवतीरमणदि कृष्ण का भजन परम, आदरणीय है। उन सब कृष्णों का भजन होने पर भी "मैं ही कृष्ण हूँ, मेरा भजन करो"—इस बात का तात्पर्य जिनकी उपलब्धि का विषय होता है, वे ही श्रीकृष्णचन्द्र की औदार्यमयी मूर्ति श्रीगौरसुन्दर का दर्शन करने की योग्यता प्राप्त करते हैं। भक्ताधिराज विष्णु–समूह के मूल आकर श्रीबलदेव नित्यानन्द प्रभु एवं भक्ताधिराज नामाचार्य आदिगुरु विरिंचि (ब्रह्मा) —इन सब बातों को ऊँचे स्वर से छन्नावतार (गौरसुन्दर) के प्रकटकाल में अपने आपको कृष्णलीला के अभिन्न विग्रह जानकर शिष्टा सरस्वती के प्रकाश–पूर्वक भाग्यहीन जनों के निकट आवरण कर रहे है। कृष्ण–रसमय हैं;

इसलिए वे सभी रसों के एकमात्र आश्रय-विग्रह अथवा सभी आश्रितों के एकमात्र विषयविग्रह हैं। श्रीकृष्ण स्वयंरूप वस्तु हैं, परमात्मा का रूप-रहित आंशिक प्रकाशमात्र नहीं हैं, रूपरहित बृहद्बोधक पदार्थमात्र नहीं हैं; वे ब्रह्म-परमात्मा आदि सर्व-कारण का कारण हैं। स्वयंरूप कृष्ण की पूर्णतमता ही—बलदेव हैं, अंश ही कारण ार्णवशयी भगवान् हैं, कला ही—गर्भोकशायी भगवान् हैं, विकला—क्षीरोदकशायी भगवान् हैं। सभी उस स्वयंरूप कृष्ण के विषयविग्रह हैं; आश्रित—विषय विग्रह के प्रकाश विशेष हैं। इसलिए कृष्ण एवं 'आकृष्ट' कृष्णभक्तगण प्रापंचिक दृष्टि से खंडित भावयुक्त वस्तुविशेष नहीं है। सभी प्रकार से वे ही पूर्ण पुरुष हैं। उस पूर्णत्व का आंशिक-प्रकाश प्रापंचिक व्यापकता का आकर है, जिसके अंश में कला-विकला अवस्थित हैं। उस कृष्णभजन के अतिरिक्त आकृष्ट आत्मा का और दूसरा कोई काम नहीं है। आकृष्ट आत्मा जब विक्षिप्त होकर वैकुण्ठ से दृष्टि हटाकर माया के प्रति दृष्टि निक्षेप करती है, तब जाकर ब्रह्माण्ड का सृजन होता है एवं तटस्थलशक्ति की परिणति क्रम के अनुसार जैवधर्म में जड़भोग आकर उसे कृष्ण से विमुख करा देते हैं। कृष्ण विमुखता से ही बद्धजीव में ब्रह्म-परमात्मा-इत्यादि आंशिक धारणाएँ आकर जीव को उन्मत्त बनाकर ब्रह्म-परमात्मा के आंशिक विचार से जडभाव में अपना आवरण बना देते हैं। कृष्ण ही सभी रसों के एकमात्र आश्रय हैं, एवं मूल प्रकाशविग्रह बलदेव में भी सर्वरसाश्रयत्व विद्यमान हैं। वे बलदेव प्रभु कृष्ण का ही भजन किया करते हैं। "यथा तरोर्मूलनिषेचनेन" के विचारानुसार ही कृष्णभजन के तारतम्य के विषय में किसी प्रकार का अनाचार नहीं करना पड़ता है। तब रसभेद से श्रीचैतन्यचरणों का आश्रय लेकर कोई मधुर-रति कि आश्रय विग्रह के आनुगत्य में सुष्ठुभाव से अवस्थित होता है, कोई वात्सल्य रति के आश्रयविग्रह के आनुगत्य में अपना सौभाग्य स्पष्ट रूप से जताता है। सार्द्धद्वयरस (ढाई रस) के आकृष्ट रसिकगण जब गोलोक-वृन्दावनीय पूर्णाधार से गोलार्द्धाधार वैकुण्ठ-सेवा में निरत होते है; तब उनकी उदारता न्यूनता को प्राप्त करके ऐश्वर्यमार्ग में मर्यादाविशिष्ट हो जाती है। बद्धजीवों का अनाचार एवं मुक्त भगवद् उपासकों का अनाचार—पूर्ण रूप से भिन्न है। वैकुण्ठ में अनाचार—पूर्णाचार का अभाव है, ब्रह्माण्ड का अनाचार—दुराचार है, जो सर्वतोभावेन परिताज्य है बद्धजीव के लिए महावैकुण्ठ की शक्ति की अपेक्षा राम-वैकुण्ठ की शक्ति अधिक वरणीय है। इसलिए सीताराम अथवा हनुमद्रामोपासकगण जिस रस के रसिक हैं, वह रस महा-वैकुण्ठ में विष्वकसेन-नारायण एवं लक्ष्मी-नारायण से निरपेक्ष-विचार में वैशिष्ट की स्थापना करता है। शक्ति-रहित शक्तिमान् के अविशेष-विचार में वासुदेव आदि जिस व्यूह की उपासना होती है, उस प्रकार का उपास्य तत्त्व कलीब ब्रह्म का केवल ज्ञान से श्रेष्ठता की स्थापना करता है, जड़ की अवरता का आरोप यहाँ सम्भव नहीं है। उपास्य वस्तु माया के अधीन नहीं है। वह स्वतंत्र इच्छानुसार चलती है एवं अबाध गतिविशिष्ट है; इसलिए कृष्णभजन के लिए वासुदेव-कृष्ण, लक्ष्मी-गोविन्द-कृष्ण, सीताराम-कृष्ण की उपासना की उत्तरोत्तर सेवन की उत्कर्षता के अनुसार श्रीराधागोविन्द की उपासना की सर्वोत्तमता वे ही राधा-कृष्ण मिलित-तनु औदार्यविग्रह ब्रजेन्द्रनन्दन दिखा रहे हैं। इस प्रकार की दया अपरिचित एवं

अपरिसीम है। इसलिए ही महाप्रभु ने स्वयंरूप प्रकाशविग्रह (नित्यानन्द प्रभु) के द्वारा और जगत् विधाता ठाकुर हरिदास के द्वारा सभी स्थानों पर हरिसेवा की शिक्षा देनी आरम्भ की।

नित्यानन्द–हरिदास के वाक्यश्रवण से जगाइ–माधाइ को क्रोध एवं दोनों का पश्चात् धावन, नित्यानन्द–हरिदास का बहुविध उक्ति–सहित भयभीत होकर प्रस्थान करने का अभिनय, इसे देखकर सज्जनों में आतंक एवं पाखंडियों की हास्यसूचक उक्ति—

डाक शुनि' माथा तुलि' चाहे दुइजन।
महाक्रोधे दुइ जन अरुण–लोचन॥८५॥
संन्यासी–आकार देखि' माथा तुलि' चाय।
'धर धर' बलि दोंहे धरिवारे याय॥८६॥
आथेव्यथे नित्यानन्द–हरिदास धाय।
'रह रह' बलि' दुइ दस्यु पाछे याय॥८७॥
धाइया आइसे पाछे, तर्जगर्ज करे।
महा भय पाइ' दुइ प्रभु धाय डरे॥८८॥
लोक बले,—''तखनइ ये निषेध करिल।
दुइ संन्यासीर आजि संकट पड़िल॥''८९॥
यतेक पाषंडी सब हासे मने मने।
''भंडेर उचित शास्ति कैल नारायणे॥''९०॥
''रक्ष कृष्ण, रक्ष कृष्ण''—सुब्राह्मणे बले।
से स्थान छाड़िया भये चलिला पलाय।
धरिलुँ, धरिलुँ बलि' लाग नाहि पाय॥९२॥
नित्यानन्द बोले,—''भाल हइल वैष्णव।
आजि यदि प्राण बाँचे—तबे पाइ सब॥''९३॥
हरिदास बले,—''ठाकुर आर केने बल?
तोमार बुद्धिते अपमृत्व्ये प्राण गेल॥९४॥
मद्यपेरे कैले येन कृष्ण–उपदेश।
उचित ताहार शास्ति—प्राण अवशेष॥''९५॥
एत बलि' धाय प्रभु हासिया हासिया।
दुइ दस्यु पाछे धाय तर्जिया गर्जिया॥९६॥
दोहाँर शरीर स्थूल,—ना पारे चलिते।
तथापिह धाय दुइ मद्यप त्वरिते॥९७॥

(८५–९७) प० अनु०—कृष्ण की भजन करो—यह वाक्य सुनकर दोनों ने सिर उठाकर देखा। महाक्रोध से उन दोनों की आँखे रक्तवर्ण हो रही थीं। संन्यासी का रूप देखकर उन दोनों ने सिर उठाकर उधर देखा और 'पकड़ो, पकड़ो' कहकर दोनों को पकड़ने के लिए वे दोनों दौड़ने लगे। त्रस्त होकर नित्यानन्द और हरिदास भाग लिये और दोनों दस्यु भी 'ठहरो! ठहरो!!, कहते हुये दस्यु पीछा कर रहे थे और महाभय से भयभीत होकर दोनों प्रभु भाग रहे थे। लोग कह रहे थे—"हम सबने उसी समय मना किया था। अब दोनों संन्यासी संकट में पड़ गये। जितने भी पाखण्डी थे, वे सभी मन–ही–मन मुस्कराने लगे। और कहने लगे कि—"नारायण ने इन भण्डों (भाँडों) को उचित दंड प्रदान किया है।" सद्ब्राह्मण कह रहे थे,—"रक्षा करो कृष्ण, रक्षा करो! और भयभीत होकर सभी उस स्थान को छोड़कर खिसक रहे थे। पीछे दोनों दस्यु भाग रहे थे, आगे दोनों ठाकुर पलायन कर रहे थे। 'पकड़ लिये, पकड़ लिये' कहते हुये भी वे दोनों दस्यु उन्हें छू नहीं पा रहे थे। नित्यानन्द बोले,—"अच्छे वैष्णव बने, यदि आज प्राण बच गये, तो समझो, सब कुछ मिल गया।" हरिदास बोले,—"और कुछ क्यों कहते हो? तुम्हारी बुद्धि के कारण ही आज हम मृत्यु के मुँह में जा पड़े हैं; क्योंकि शराबियों को कृष्ण का उपदेश तुमने ही प्रदान किया था। उसी का उचित दण्ड मिल रहा है—केवल जान बच जाए।" ऐसा कहकर दोनों प्रभु हँसते हुये भाग रहे थे और दोनों दस्यु

तर्जन-गर्जन करते हुये उनके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। दोनों शराबियों का शरीर स्थूल था, अतः अच्छी तरह चल नहीं पा रहे थे। फिर भी दोनों उनका पीछा करते चले जा रहे थे।

(८८) गौः भाः—दोनों प्रभु—नित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुर। नित्यानन्द-स्वरूप एवं हरिदास ठाकुर दोनो ही वैष्णव संन्यासी हैं।

(९०) गौः भाः—भक्ति के विरोधी व्यक्ति ऐकान्तिक विष्णुभक्तिपरायण मनुष्यों के प्रति विरोध भाव का पोषण करते हैं। उन सब विरुद्धवासियों के विचार से ऐकान्तिक भक्तगण 'भण्ड' हैं। भक्तों के विरोधी होने के कारण उनके कुत्सित विचारों में भक्तों के लिए अमंगल की आकांक्षा विद्यमान रहती है। भक्त-विद्वेषी होकर भी ये सब व्यक्ति अपने आप को नारायण का सेवक समझते हैं। परन्तु वास्तव में भगवद्विमुख होने के कारण विद्वेषी जन सत्य के मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं।

(९१) गौः भाः—कुविचारपरायण लोगों के विचारों की भाँति सदब्राह्मणगण के विचार नहीं होते हैं। भगवद् भक्तों की रक्षा-कामना से सद्ब्राह्मण कृष्ण को पुकारने लगे। भक्तों का शुभ चाहना ही सज्जन ब्राह्मणों का धर्म है। विरोधी लोगों के लिए ब्राह्मण धर्म से च्युत होकर निकृष्टवृत्ति की प्राप्ति एवं भक्ति-विरोधी कार्य करना अनिवार्य है।

(९३) गौः भाः—कुविचारपरायण लोगों के विचारों की भाँति सद्ब्राह्मणगण के विचार नहीं होते हैं। भगवद् भक्तों की रक्षा-कामना से सद्ब्राह्मण कृष्ण को पुकारने लगे। विरोधी लोगों के लिए ब्राह्मण्य धर्म से च्युत होकर निकृष्टवृत्ति की प्राप्ति एवं भक्ति-विरोधी कार्य करना अनिवार्य है।

(९३) गौः भाः—नित्यानन्द प्रभु ने कहा, —'जगाइ-माधाइ को कृष्णोपदेश करने से वे वैष्णव हो जायेंगे, ऐसा समझना दूर की बात थी, अब यदि उन लोगों के दुर्दमनीय आक्रमण से हमारे प्राण बच जाएँ, तो यही बहुत है।'

(९४) गौः भाः—हरिदास ठाकुर ने कहा, —'हे प्रभो नित्यानन्द, आपने श्रीचैतन्यदेव की आज्ञानुसार जीवों के लिए जो मंगल कामना की है, उसी कारण ये दस्यु अनहोनी मौत से हम दोनों का प्राण-संहार करने में समर्थ हुये हैं। अब इन बातों पर और अधिक सोचने-विचारने से क्या लाभ होगा?

(९५) गौः भाः—हरिदास ठाकुर ने कहा, — श्रद्धारहित जन को हरिनाम प्रदान करने से अपराध होता है। इन दोनों अयोग्य दुष्टों को उपदेश करने के लिए जब हम अग्रसर हुये हैं, तो हमारे इस अपराध से उत्पन्न उचित दण्ड हमारे ललाट में लिपिबद्ध हो गया है।

प्रभुद्वय के प्रति जगाइ-माधाइ की उक्ति—

दुइ दस्यु बोले,—''भाइ, कोथारे याइवा।
जगा-माधार ठाञि आजि केमते एड़ाइवा?९८॥
तोमरा ना जान, एथा जगा-माधा आछे।
खानि रह' उलटिया हेर देख पाछे॥''९९॥
त्रासे धाय दुइ प्रभु वचन शनिया।
'रक्ष कृष्ण, रक्ष कृष्ण, गोविन्द' बलिया॥१००॥

(९८-१००) प० अनु०—दोनों दस्यु बोले, —"अरे भाई कहाँ जाओगे? जगाइ-माधाइ से आज कैसे बच पाओगे? क्या तुम लोग नहीं जानते हो कि, यहाँ जगाइ-माधाइ रहते हों? थोड़ा रूको, और पलट कर देखो कि, हम तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहे हैं।" उन दोनों के वचनों का सुनकर दोनों प्रभु—'हे कृष्ण रक्षा करो! हे कृष्ण! हे गोविन्द, रक्षा करो! ऐसा कहने लगे।

(९९) गौः भाः—जगाइ-माथाइ नित्यानन्द

और हरिदास से कह रहे हैं,—तुम्हें यह जानता चाहिए था कि, जगाइ–माथाइ नाम के दो दस्यु यहाँ निवास करते हैं, कोई भी उन दोनों के दुष्ट–आचरण से बच नहीं सकता है। तुम लोग कुछ देर के लिए ठहर जाओं, और देखो कि हम दोनों तुम्हारे पीछे–पीछे आ रहे हैं।

प्रभुद्वय का परस्पर दोषोरोप–द्वारा आनन्द–कलह—

हरिदास बले,—''आमि ना पारि चलिते।
जानियाओ आसि आमि चंचल–सहिते
राखिलेन कृष्ण काल–यवनेर ठाञि।
चंचलेन बुद्ध्ये आजि पराण हाराइ॥''१०२॥
नित्यानन्द बले,—''आमि नहि ये चंचल।
मने भावि' देख, तोमार प्रभु से विह्वल॥१०३॥
ब्राह्मण इहया येन राज–आज्ञा करे।
ता'न–बोले बुलि सब प्रति घरे घरे॥
कोथाओ ये नाहि शुनि,—सेइ आज्ञा ता'न।
'चोर, ढंग' बइ लोक नाहि बोले आन॥१०५॥
ना करिले आज्ञा ता'न सर्वनाश करे।
करिलेओ आज्ञा ता'न एइ फल धरे॥१०६॥
आपन प्रभुर दोष ना जानह तुमि।
दुइ जने बलिलाम,—दोषभागी आमि॥''१०७॥
हेनमते दुइजने आनन्द–कन्दल।
दुइ दस्यु धाय पाछे देखिया विकल॥१०८॥
धाइया आइला निज ठाकुरेर बाड़ी।
मद्येर विक्षेपे दस्यु पड़े रड़ारड़ि॥१०९॥

(१०१–१०९) प० अनु०—हरिदास कहने लगे,—"मैं चल नहीं पा रहा हूँ, यह जानकर भी मुझे चंचल के साथ चलना पड़ रहा है। काल–यवन से तो कृष्ण ने हमारी रक्षा कर ली थी, किन्तु आज चंचल की बुद्धि के कारण जान गँवाना पड़ रही है।" नित्यानन्द बोले,—"मैं तो चंचल नही हूँ। जरा सोचकर देखो, तुम्हारे प्रभु ही प्रेम से विह्वल हो रहे हैं। ब्राह्मण होकर ऐसी आज्ञा करते हैं, जैसे कोई राजा करता है। उनके कहने पर ही हम घर–घर जा रहे हैं। उनकी जैसी आज्ञा है वैसी कभी कहीं नहीं सुनी गई। लोग हमको 'चोर, ढोंगी' के सिवाय और कुछ नहीं कहते हैं। आज्ञा पालन ने करने पर वे सर्वनाश कर देते और पालन करने पर भी ऐसा फल मिल रहा है। अपने प्रभु का दोष तुम नहीं जान रहे हो। फिर हम दोनों ने मिलकर ही उनसे कहा था—और दोष का भागीदार मैं अकेला हो गया।" इस प्रकार की आनन्द–कलह उन दोनों के बीच में हो रही थी और दोनों को व्याकुल–चित्त देखकर दोनों दस्यु उनके पीछे भाग–भाग रहे थे। भागते–भागते दोनों प्रभु अपने ठाकुर के भवन में आ गये। उधर मद्यपान के विक्षेप में उन्मत्त दोनों दस्यु भी द्रुतगति से उनके पीछे–पीछे चले आ रहे थे।

(१०१) गौः भाः—हरिदास ठाकुर ने नित्यानन्द प्रभु से कहा,—मैं दौड़ नहीं सकता हूँ—यह जानकर भी तुम्हारे जैसे द्रुतगमनकारी, हर समय हर–कार्य में अग्रसर एवं चंचल–स्वभाव वाले व्यक्ति के साथ आ गया हूँ।

(१०२) गौः भाः—हरिदास कह रहे हैं, —कृष्ण ने मुझे आम्बुया–मलकु (प्रदेश) के काजी–रूपी यवन के हाथों से कुछ दिन पहले बचा लिया था, परन्तु आज मैं 'नित्यानन्द'—नाम धारी एक चंचल के बुद्धिदोष से जान गँवाने जा रहा हूँ।

(१०३) गौः भाः—हरिदास के कथन का नित्यानन्द ने विरोध किया और कहा,—प्रभु की विह्वलता को देखकर ही हम चंचल हो गयें, परन्तु मैं स्वयं चंचल नहीं हूँ। महाप्रभु–भिक्षुक

ब्राह्मण हैं; उन्होंने राजा की भाँति हर एक के घर में हरिनाम-प्रचार के लिए आदेश प्रदान किया है, मैं उनकी ही आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

(१०५) गौः भाः—नित्यानन्द कह रहे हैं, —जैसी आज्ञा श्रीगौरसुन्दर ने की है वैसी पहले मैंने किसी और से नही सुनी है। उनकी आज्ञा का पालन करने से लोग हमें अनधिकार-प्रवेशकारी और चौर्यवृत्तिपरायण व्यक्ति समझते हैं और कोई-कोई तो हमको कपट-वेषधारी ढ़ोगी समझते हैं।

(१०७) गौः भाः—महाप्रभु की इच्छानुसार तुम और मैं (हम दोनों) मिलकर हर एक के घर में हरिनाम का उपदेश कर रहे हैं; परन्तु तुमने केवल मुझे दोषी बना दिया है; यह दुख की बात है। मैं अकेला दोषी नहीं हूँ, इसमें महाप्रभु को भी दोष स्पर्श कर रहा है।

(१०९) गौः भाः—जगाइ एवं माधाइ दोनों खूब मदिरा पीकर हरिदास एवं नित्यानन्द के पीछे दौड़ने लगे।

रड़ारड़ि,—द्रुतगमन, (तेज चलना), दौड़ा-दौड़ी।

प्रभुद्वय के अदर्शन से दस्युद्वय की निवृत्ति; दोनों प्रभु का स्थैर्य एवं परस्पर आलिंगन-पूर्वक प्रभु के समीप में गमन एवं दस्युद्वय का वृत्तांत कथन—

देखा ना पाइया दुइ मद्यप रहिल।
शेषे हूड़ाहूड़ि दुइजनेइ बाजिल॥११०॥
मद्येर विक्षेपे दुइ किछु ना जानिल।
आछिल वा कोन स्थाने, कोथा वा रहिल?॥१११॥
कतक्षणे दुइ प्रभु उलटिया चाय।
कोथा गेल दुइ दस्यु देखिते ना पाय॥११२॥
स्थिर हइ' दुइ जने कोलाकुलि करे।
हासिया चलिला यथा प्रभु विश्वम्भरे॥११३॥
बसियाछे महाप्रभु कमललोचन।
सर्वांग-सुन्दर रूप मदनमोहन॥११४॥
चतुर्दिके रहियाछे वैष्णवमंडल।
अन्योन्ये कृष्णकथा कहेन सकल॥११५॥
कहेन आपन-तत्त्व सभा-मध्ये रंगे।
श्वेतद्वीप-पति येन सनकादि-संगे॥११६॥
नित्यानन्द हरिदास हेनह समय।
दिवस-वृत्तांत यत सम्मुखे कहय॥११७॥
''अपरूप देखिलाप आजि दुइजन।
परम मद्यप, पुनः बलाय ब्राह्मण॥११८॥
भालरे बलिल तारे—'बल कृष्ण-नाम'।
खेदाड़िया आनिलेक, भाग्ये रहे प्राण''॥११९॥

(११०-११९) प० अनु०—जब दोनों प्रभुओं को शराबी नहीं देख पाये तो वे रूक गये। बाद में दोनों के बीच में झगड़ा शुरू हो गया। मद्य के विक्षेप में दोनों कुछ भी नहीं जान पाये कि, कहाँ आ गये? कुछ समय के पश्चात् दोनों ने पलट कर पीछे देखा, परन्तु उन्हें दिखाई नहीं दिया कि दोनों दस्यु कहाँ गये। स्थिर होकर दोनों ने परस्पर आलिंगन किया और हँसकर वहाँ चल दिये। जहाँ प्रभु विश्वम्भर विराजमान थे। कमल-लोचन महाप्रभु बैठे हुये थे। उनका सर्वांग-सुन्दर मदनमोहन रूप था। चारों ओर वैष्णवमंडली विराजित थी और सभी वैष्णव आपस में कृष्ण की चर्चा कर रहे थे। श्वेतद्वीप-पति जैसे सदकादियों के साथ आनन्द-सहित अपने तत्त्व के विवेचन करते हैं, उसी प्रकार से महाप्रभु अपने तत्त्व के बारे में सभा के बीच सभी को बता रहे थे। उसी समय नित्यानन्द और हरिदास, प्रभु के सामने आये और उस दिन की घटनावली के बारे में प्रभु को जानकारी देने लगे—"आज हम दोनों ने एक अपूर्व (अनोखी बात) को

देखा। दो परम मद्यपायी, जो ब्राह्मण कहलाते हैं, उनको जैसे ही हमने कृष्णनाम बोलने को कहा, इसके फलस्वरूप उन दोनों ने बहुत दूर तक हमारा पीछा किया, यह तो हमारा भाग्य है कि हमारी जान बच गई।"

महाप्रभु के द्वारा दस्युद्वय के बारे में पूछताछ और गंगादास एवं श्रीनिवास का उत्तर–

प्रभु बले,—''के से दुइ, किया तार नाम?
ब्राह्मण हइया केने करे हेन काम?''१२०॥
सम्मुखे आछिला गंगादास श्रीनिवास।
कहये यतेक तार विकर्म–प्रकाश॥१२१॥
''से–दुइर नाम प्रभु—'जगाइ–माधाइ'।
सुब्राह्मणपुत्र दुइ—जन्म एइ ठाञि॥१२२॥
संगदोषे से दोहाँर हेन हैल मति।
आजन्त मदिरा बइ आन नाहि गति॥१२३॥
से–दुइ'र भये नदीयार लोक डरे।
हेन नाहि, यार घरे चुरि नाहि करे॥१२४॥
से–दुइ'र पातक कहिते नाहि ठाञि।
आपने सकल देख, जानह गोसाञि॥''१२५॥

(१२०–१२५) प० अनु०—प्रभु बोले,—"वे दोनों कौन हैं, और उनके नाम क्या हैं? वे ब्राह्मण होकर भी ऐसा काम क्यों करते हैं?" सामने बैठ गंगादास और श्रीनिवास ने उन दोनों के विकर्म-प्रकाश (दुष्कर्मो की ख्याति) के बारे में सब कुछ बताया। वे बोले,—"हे प्रभु! उन दोनों के नाम हैं 'जगाइ-माधाइ'। दोनों अच्छे ब्राह्मण घराने के हैं। उन दोनों का यहीं जन्म हुआ है। संगदोष के कारण उन दोषों की मति ऐसी विकृत हो गई है। जन्म से ही मदिरा-पान के अतिरिक्त अन्य विषयों में उन दोनों की दिलचस्पी नहीं है। नदीया के सभी लोग उनसे डरते हैं। ऐसा कोई नहीं है, जिसके घर में उन दोनों ने चोरी न ही हो। उन दोनों के पापकर्मों की कोई सीमा नहीं है। हे गोसाई! आप सब कुछ देखते और जानते भी हैं।

(१२०) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा,—ब्राह्मण होकर मदिरा पान करना कर्त्तव्य नही है। दस्युवृत्ति अवलम्बन करके वैष्णवों के पीछे दौड़ना ब्राह्मणों का धर्म नहीं है।

(१२२–१२३) गौः भाः—जगाइ-माधाइ,—इन दोनों पुत्रों का पिता तो स्वधर्मपरायण ब्राह्मण हैं; परन्तु उनके इन दोनों पुत्रों में परहिंसा और दस्युवृत्ति जैसे अपकर्म असत्-संग के प्रभाव से उत्पन्न हुये हैं।

दस्युद्वय के कर्मों के कारण महाप्रभु की सक्रोध उक्ति, नित्यानन्द के द्वारा दोनों के उद्धार के लिए प्रार्थना, प्रभु का आश्वासन एवं वैष्णवों की जयध्वनि–

प्रभु बले—''जनों जानौं सेइ दुइ बेटा।
खंड खंड करिमु आइले मोर हेथा॥''१२६॥
नित्यानन्द बले,—''खंड खंड कर तुमि।
से दुइ थाकिते कोथा' ना याइव आमि॥१२७॥
किसेर वा एत तुमि करह बड़ाइ।
आगे सेइ दुइजने 'गोविन्द' बलाइ॥१२८॥
स्वभावेइ धार्मिक बलये 'कृष्ण'–नाम।
ए दुइ विकर्म बइ नाहि जाने आन॥१२९॥
ए दुइ उद्धारौं यदि दिया भक्ति–दान।
तबे जानि 'पातकि–पावन' हेन नाम॥१३०॥
आमारे तारिया यत तोमार महिमा।
ततोधिक ए दु'येर उद्धारेर सीमा॥''१३१॥
हासि' बले विश्वम्भर,—''हइल उद्धार।
येइक्षणे दरशन पाइल तोमार॥१३२॥
विशेष चिन्तह तुमि एतेक मंगल।
अचिराते कृष्ण ता'र करिब कुशल॥''१३३॥
श्रीमुखेर वाक्य शुनि' भागवतगण।

'जय–जय'—हरिध्वनि करिला तखन॥१३४॥
'हइल उद्धार',—सबे मानिला हृदये।
अद्वैतेर स्थाने हरिदास कथा कहे॥१३५॥

(१२६–१३५) प० अनु०—प्रभु बोले, —"जानता हूँ, उन दोनों को मैं जानता हूँ। मेरे यहाँ आने पर मैं उन दोनों को खंड–विखंड कर दूँगा।" नित्यानन्द बोले,—"आप खंड–विखंड करते रहिए, परन्तु उन दोनों के होते हुये मैं कही नहीं जाऊँगा। किस बात पर आपकी इतनी महिमा है। पहले तो आप इन दोनों से 'गोविन्द' कहलवा लीजिए। धार्मिक व्यक्ति तो अपने स्वभाव के अनुसार ही 'कृष्ण'–नाम का उच्चारण किया करते हैं। परन्तु ये दोनों विकर्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते हैं। यदि आप इन दोनों को भक्ति–दान देकर इनका उद्धार कर दें, आपका 'पातकि–पावन' नाम सार्थक हो जाएगा। मेरे उद्धार में आपकी जितनी महिमा है, उससे भी अधिक महिमा है इन दोनों के उद्धार में।" विश्वम्भर ने हँसकर कहा,—"जिस क्षण उनको तुम्हारा दर्शन मिला, उसी क्षण उन दानों का उद्धार हो गया। विशेष रूप से, तुम उन दोनों का इतना मंगल–चितंन कर रहे हो, इसलिए अल्प समय में ही कृष्ण उन दोनों का मंगल करेंगे।" श्रीमुख के वचन सुनकर तब भागवतगण 'हरि–हरि'—बोलकर जयध्वनि करने लगे। हृदय से सभी मान गये कि 'उन दोनों का उद्धार हो गया।' इधर हरिदास अद्वैत के साथ बात करने में लग गये।

(१२७) गौः भाः—जब महाप्रभु ने कहा कि, वे जगाइ–मधाइ को खंड–विखंड कर देंगे, तब नित्यानन्द ने कहा,—"उन दोनों के जीवित रहते तक मैं आपकी आज्ञा का पालन करने में समर्थ नहीं होऊँगा।"

(१२९–१३०) गौः भाः—धार्मिक व्यक्ति अपने स्वभाव से ही कृष्णनाम का अलावा का उच्चारण करते है। परन्तु ये दोनों मन्दकर्म के अलावा कोई अच्छी बात ग्रहण करने के पात्र नहीं हैं। इसलिए सबसे पहले आप यदि इन दोनों से 'गोविन्द'–नाम उच्चारण करा सकें, तब आपके 'पतितपावन'–नाम ही महिमा सुरक्षित रहेगी एवं आपके वाक्य की सार्थकता सिद्ध हो जायेगी।

अद्वैत के पास हरिदास द्वारा
नित्यानन्द–चांचल्य–कथन एवं उत्तर प्रदान के
माध्यम से अद्वैत के द्वारा व्याजस्तुति—

''चंचलेर संगे प्रभु आमारे पाठाय।
'आमि थाकि कोथा, से वा कोन् दिके याय?'॥१३६॥
बर्षाते जाह्नवी–जले कुम्भीर बेड़ाय।
साँतार ऐड़िया ता'रे धरिवारे याय॥१३७॥
कुले थाकि' डाक पाड़ि' करि 'हाय हाय'।
सकल–गंगार माझे भासिया बेड़ाय॥१३८॥
यदि वा कुलेते उठे बालक देखिया।
मारिवार तरे शिशु याय खेदाड़िया॥१३९॥
तार पिता–माता आइसे हाते ठेंगा लइया।
ता'—सबा पाठाइ आमि चरणे धरिया॥१४०॥
गोयालार घृत–दधि लइया पलाय।
आमारे धरिया तारा मारिवारे चाय॥१४१॥
सेइ से करये कर्म—येइ युक्ति नहे।
कुमारी देखिया बले,—मोरे विवाहिए॥१४२॥
चड़िया षाँड़ेर पीठे 'महेश' बोलाय।
परेर गाभीर दुग्ध दुहि' दुहि' खाय॥१४३॥
आमि शिखाइले गालि पाड़ये तोमारे।
'कि करिते पारे तोर अद्वैत आमारे?'१४४॥
'चैतन्य बलिस् यारे 'ठाकुर' करिया।
से वा कि करिते पारे आमारे आसिया?१४५॥

किछुइ ना कहि आमि ठाकुरेर स्थाने।
दैवयोगे आजि रक्षा पाइल पराणे॥१४६॥
महा–मातोयाल दुइ पथे पड़ि' आछे।
कृष्ण–उपदेश गिया कहे तार काछे॥१४७॥
महाक्रोधे धाइया आइल मारिवार।
जीवन–रक्षार हेतु—प्रसाद तोमार॥''१४८॥
हासिया अद्वैत बले,—''कोन चित्र नहे।
मद्येपर उचित—मद्यप–संग हये॥१४९॥
तिन मातोयाल–संग एकत्र उचित।
नैष्ठिक हइया केने तुमि तार भित?१५०॥
नित्यानन्द करिव सकले मातोयाल।
उहान चरित्र मुञि जानि भाले भाल॥१५१॥
एइ देख तुमि—दिन दुइ तिन व्याजे।
सेइ दुइ मद्यप आनिव गोष्ठीमाझे॥''१५२॥
बलिते अद्वैत हइलेन क्रोधावेश।
दिगम्बर हइ' बले अशेष विशेष॥१५३॥
''शुनिव सकल चैतन्येर कृष्णभक्ति।
केमने नाचये गाय, देखोँ तान शक्ति॥१५४॥
देख कालि सेइ दुइ मद्यप आनिया।
निमाइ–निताइ दुइ नाचिवे मिलिया॥१५५॥
एकाकार करिवेक एइ दुइ जने।
जाति लइ' तुमि आमि पलाइ यतने॥''१५६॥

(१३६–१५६) प० अनु०—"प्रभु मुझे चंचल (नित्यानन्द) के साथ भेजते हैं। मैं कहीं और रहता हूँ और वह कहीं और? वर्षा के समय गंगा के जल में कुम्भीर (मगरमच्छ) रहते हैं। वे तैरते हुये उन कुम्भीरों के पकड़ने के लिए जाते हैं। मैं तट पर खड़े होकर 'हाय हाय' पुकारता रहता हूँ, परन्तु वे गंगा में बहते रहते हैं, तो उस बच्चे को खदेड़ते हुये मारने के लिए दौडते हैं। इस पर उस बच्चे के पिता–माता हाथ में लाठी लेकर आ जाते हैं। मैं उनके चरण पकड़कर उन्हें वापस भेजता हूँ। कभी किसी ग्वाले का घी और दही लेकर वे भाग जाते हैं और वे ग्वाले मुझे पकड़कर मारना चाहते हैं। नित्यानन्द ऐसे कर्म करते हैं, जो युक्तिपूर्ण नहीं होते हैं। कुमारी कन्या को देखकर कहते हैं,—'मुझसे विवाह कीजिए!' साँड़ की पीठ पर बैठकर अपने आपको 'महेश' बतलाते हैं और दूसरों की गाभी (गाय) को दुग्ध दोहन करके पीते हैं। मैं उन्हें समझाना चाहूँ, तो वे आपको गाली देते हैं और कहते हैं, 'तेरा अद्वैत मेरा क्या करेगा? जिसे तू 'ठाकुर' मानता है और 'चैतन्य' के नाम से सम्बोधित करता है, वह भी आकर मेरा क्या बिगाड़ सकता है?' इन सब बातों के बारे में मैं ठाकुर को कुछ नहीं बताता हूँ और आज तो दैवयोग से ही हमारी जान बच गई है। दो बड़े शराबी रास्ते में पड़े हुये थे। उन दोनों के निकट जाकर से (नित्यानन्द) उनको कृष्ण–उपदेश करने लगे। महाक्रोध में भरकर वे दोनों हमें मारने के लिए भागे। आपकी कृपा के कारण ही हमारे जीवन की रक्षा हुई है।" यह सब सुनकर हँसते हुये अद्वैत बोले,—"इसमें कोई विचित्र बात नहीं है। एक मद्यपायी (शराबी) के साथ दूसरे मद्यपायी का संग होता है। तीन मतवाले एक साथ रहें,—यही तो उचित है। परन्तु तुम तो नैष्ठिक हो, तुम इनके साथ क्यों रहते हो? परन्तु तुम तो नैष्ठिक हो, तुम उनके इनके साथ क्यों रहते हो? नित्यानन्द सबको मतवाला कर देगें। उनके चरित्र को मैं भली–भाँति जानता हूँ। देख लेना तुम—दो–तीन दिन के अन्दर वे दोनों मद्यपों को हमारी गोष्ठी में ले आयेंगे।" ऐसा कहते हुये अद्वैत क्रोध के आवेश में आ गये और दिगम्बर होकर सब कुछ विशेष प्रकार से बोलने लगे—"चैतन्य की कृष्णभक्ति के बारे

में तुम सभी शीघ्र ही सुन सकोगे। सभी उनकी शक्ति भी देख पायेंगे कि वे कैसे नृत्य करते हैं और गाते हैं। देख लेना, कल उन दोनों मद्यपों को यहाँ लाकर निमाइ-निताइ, दोनों मिलकर एक साथ नाचेंगे। ये दोनों सबको एकाकार कर देंगे। चलो, अपनी-अपनी जाति को लेकर हम और तुम यहाँ से यत्न-पूर्वक भाग चलें।"

(१४९-१५०) गौः भाः—हरिदास ने अद्वैत प्रभु के निकट नित्यानन्द की नानाप्रकार की चंचलता की बातें कहकर अंत में जगाह-माधाइ की कथा का उल्लेख करके कहा कि, नित्यानन्द उन दोनों मद्यपों के निकट कृष्णनाम कहने के लिये गये थे। इससे वे उन दोनों के क्रोध के पात्र बन गये। उन दस्युद्वय के हाथों से आपके अनुग्रह से ही आज हमारे प्राण बच पाये हैं। इसके उत्तर में अद्वैत प्रभु ने कहा,-" हरिदास, श्रीनित्यानन्द प्रभु हरिरस-मदिरापान से अति मत्त रहते हैं और जगाह-माधाइ नाम के दो व्यक्ति साधारण मद्यपान से मतवालें हैं। इसलिए उन तीनों मतवालों का परस्पर संग करना ही कर्तव्य है। तुम भगवान् में निष्ठावान् व्यक्ति हो, इसलिए आगे से उनके समीप गमन करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

(१५१) गौः भाः—नित्यानन्द का चरित्र मैं भली भाँति जानता हूँ। वे दो-तीन दिन के भीतर उन दोनों मदिरापानरत दस्युओं को वैष्णव-गोष्ठी में ले आयेंगे।

अद्वैत की उक्ति सुनकर हरिदास को हँसी एवं भरोसा—

अद्वैतेर क्रोधावेशे हासे हरिदास।
मद्यप-उद्धार चित्ते हइल प्रकाश॥१५७॥

(१५७) प० अनु०—अद्वैत के क्रोधावेश पर हरिदास हँसने लगे। उन्होनें हृदय में यह अनुभव किया कि दोनों मद्यपों का उद्धार हो गया है।

अद्वैत की प्रेमचेष्टा समझने में अक्षम जनगण का पक्षपातित्व एवं उसका परिणाम—

अद्वैतेर वाक्य बुझे काहार शकति?
बुझे हरिदास प्रभु—यार येन मति॥१५८॥
एबे पापी-सब अद्वैतेर पक्ष हैया।
गदाधर-निन्दा करे, अद्वैतेर पक्ष हैया।
ये पापिष्ठ एक वैष्णवेर पक्ष हय।
अन्य वैष्णवेरे निन्दे, सेइ याय क्षय॥१६०॥

(१५८-१६०) प० अनु०—अद्वैत के कथन को समझने की शक्ति किसमें है? प्रभु हरिदास समझ सकते हैं—जैसी जिनकी मति है (वे उतनी ही समझ रखते हैं)। अभी सभी पापी अद्वैत का पक्ष लेकर गदाधर की निन्दा कर रहे हैं और इस कारण जलन से मर रहे हैं। जो पापिष्ठ किसी एक वैष्णव का पक्ष लेकर दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, वह विनाश को प्राप्त होता है।

(१५९) गौः भाः—अद्वैत प्रभु की प्रेमचेष्ट को समझ लोग समझ नहीं सकते। श्रीअद्वैत प्रभु की कुछ सन्तान एवं कुछ अभक्त शिष्यब्रुव वैष्णवता के स्वरूप को समझने में असमर्थ होकर अद्वैत प्रभु को केवलाद्वैतवादी मानकर और उनका पक्ष लेकर श्रीगौरसुन्दर के प्रियवर पात्र पण्डित श्रीगदाधर गोस्वामी का गर्हण (निन्दा) करते है। अद्वैत-सन्तान श्रीअच्युता-नन्द प्रभु ने पण्डित श्रीगदाधर गोस्वामी का आनुगत्य स्वीकार किया था। इसलिए अद्वैत के कुछ मायावादी वंशधर अच्युत-गुरू पण्डित श्रीगदाधर गोस्वामी प्रभु की भी अवज्ञा करते थे। इससे उन लोगों

का अमंगल होता था। अद्वैत प्रभु के अवैध शिष्यगण एवं सन्तानसमूह ने जब यह देखा कि, श्रीअद्वैत प्रभु के अप्रकट (तिरोहित) हो जाने के पश्चात् उनके अत्यन्त अन्तरंग शिष्यों ने पण्डित श्रीगदाधर गोस्वामी के आनुगत्य में हरिभजन करना शुरू किया है, तब उन लोगों का हृदय जलने लगा। वे आध्यक्षिक (जड़ इन्द्रियजन्य)–ज्ञान की दृष्टि से अपने को वंश का गौरव एवं प्रभु अद्वैत को विष्णु समझकर तथा अपने आपको 'विष्णुसन्तान' मान करके श्रीगदाधर प्रभु के भजन प्रयासी जनों पर आक्रमण करने लगे।

(१६०) गौः भाः—पापचित्त हरिविमुखजन यह समझते हैं कि, शुद्धवैष्णवों के बीच भी परस्पर मतभेद होता है और इसलिए उन लोगों को अपस्वार्थपरक मानकर वे एक का पक्ष ग्रहण करके दूसरे के भजनानुष्ठान की निन्दा किया करते हैं। परन्तु उभय वैष्णव ही वस्तुतः––भगवत् सेवापरायण हैं; उन वैष्णवों के बीच परस्पर वैषम्य की कल्पना करके एक जन असत् मत के समर्थनकारी हैं, एवं दूसरे उन लोगों की मंगलाकांक्षा करते हुये शोधन की प्रार्थना करते हैं, इससे उनको विरोधी जानकर उनकी गर्हण (निन्दा) करते हुये वैष्णवों के बीच परस्पर भेद की सम्भावना है—इस प्रकार का मतवाद प्रचारित करते रहते हैं एवं इसके फलस्वरूप वे अपने ही सर्वनाश का आह्वान करते रहते हैं।

मद्यप–द्वय के द्वारा महाप्रभु के घाट पर आगमन एवं अवस्थान, इससे सभी को शंका—

सेइ दुइ मद्यप बेड़ाय स्थाने स्थाने।
आइल—ये–घाटे प्रभु करे गंगास्थाने॥१६१॥
दैवयोग सेइ स्थाने करिलेक थाना।
बेड़ाइया बुले सर्वठाञि देइ' हाना॥१६२॥
सकल लोकेर चित्त हइल सशंक।
किबा बड़, किबा धनी, किबा महारंक॥१६३॥
निशा हइले केह नाहि याय गंगा–स्नाने।
यदि याय—तबे दश–विशेर गमने॥१६४॥

(१६१–१६४) प० अनु०—वे दोनों मद्यप हर स्थान पर घूमते–घूमते उस घाट पर आ गये, जहाँ महाप्रभु गंगास्थान किया करते थे। फिर दैवयोग से वहीं अपना अड्डा बनाकर उन्होंने हर जगह हमला करना शुरू कर दिया। यह देखकर बड़े, छोटे, धनी, दरिद्र—सभी के मन में शंका उत्पन्न हो गई। रात को कोई भी गंगास्नान करने के लिए नहीं जाता था। यदि जाते भी थे, तो दस–बीस एक साथ मिलकर जाते थे।

(१६३) गौः भाः—बड़े, छोटे, धनी, दरिद्र सभी नवद्वीपवासी दस्युद्वय के व्यवहार से भयभीत हो गये।

रंक—कृपया, दरिद्र।

(१६४) गौः भाः—जो त्रिसन्धया–स्नान करते थे, वे सन्ध्या होने के पश्चात् गंगास्नान के लिए जाते समय जगाइ–माधाइ के द्वारा आक्रान्त होने की आंशका से दस–बीस एक साथ मिलकर गंगा में स्नान करने के लिए जाते थे।

महाप्रभु की कीर्तनध्वनि के श्रवण से दस्युद्वय–द्वारा मत्तता हेतु नृत्य एवं कृष्णकीर्तन को मंगलचंडी का गीत समझना—

प्रभुर बाड़ीर काछे थाके निशाभागे।
सर्वरात्रि प्रभुर कीर्तन शुनि' जागे॥१६५॥
मृदंग मन्दिरा बाजे कीर्तनेर संगे।
मद्येर विक्षेपे तारा शुनि' नाचे रंगे॥१६६॥
दूर थाकि' सब ध्वनि शुनिबारे पाय।

शुनिलेइ नाचिया अधिक मद्य खाय॥१६७॥
यखन कीर्तन करे, दुइ जन रहे।
शुनिया कीर्तन पुनः उठिया नाचये॥१६८॥
मद्यपाने विह्वल—किछु नाहि जाने।
आछिल वा कोथाय, आछये कोन् स्थाने॥१६९॥
प्रभरे देखिया बले,—"निमाइ पण्डित।
कराइबा सम्पूर्ण मंगलचंडीर गीत॥१७०॥
गायेन सब भाल, मुञि देखिवारे चाँऊ।
सकल आनिया दिव—यथा येइ पाँऊ॥"१७१॥
दुर्जन देखिया प्रभु दूरे दूरे याय।
आर पथ दिया लोक सबाइ पलाय॥१७२॥

(१६५–१७२) प० अनु०—रात को वे दोनों प्रभुओं के आवास के निकट रहते थे और सारी रात प्रभु का कीर्तन सुनकर जागते रहते थे। कीर्तन के समय मृदंग और मदिरा (मंजीरा) भी साथ बजते थे। उसे सुनकर दोनों मदिरा के नशे में आनन्द-पूर्वक नाचते थे। वे दोनों दूर से ही उस ध्वनि को सुन सकते थे और सुनने-मात्र से नृत्य करते हुये और अधिक मदिरा पान करते थे। जब कीर्तन होता था, तब दोनों वहीं रहते थे। फिर कीर्तन सुनकर खड़े होकर दोनों नृत्य करने लगते थे। मदिरापान से विह्वल वे दोनों कुछ भी नहीं जान पाते थे। कहाँ थे, कहाँ आ गये, एवं कहाँ हैं, इसके बारे में उन दोनों को कुछ भी पता नहीं था। प्रभु को देखकर वे कहते थे,—"निमाइ पण्डित! मंगलचंडी का गीत सम्पूर्ण कीजिएगा। सभी अच्छा कीर्तन करते हैं, हम देखना चाहते हैं। जहाँ जो कुछ भी हाथ लगेगा, हम सब कुछ लाकर आपको दे दिया करेंगे।" दुर्जनों को देखकर प्रभु दूर रहते थे और बाकी सब लोग दूसरे रास्तों से भाग जाते थे।

(१६५–१७१) गौः भाः—जगाइ-माधाइ दस्युद्वय ने नदीया नगर के नानास्थानों में अपनी वृत्ति चरितार्थ करने के बाद महाप्रभु के भवन के घाट के निकट अड्डा बनाया। प्रभु के कीर्तन की ध्वनि के साथ-साथ उनके मद्यपान का अनुष्ठान भी जम गया। महाप्रभु के साथ साक्षात्कार होने पर कृष्णकीर्तन वाद्यों को 'मंगलचंडी के गीत' समझकर उसकी भाँति तामस-भजन की आनुष्ठानिक सम्पूर्णता की पूर्णांगसिद्धि के बारे में पूछा। दोनों दस्युओं ने कहा,—"हम मंगलचंडी के गीत के लिए प्रयोजनानुसार सभी द्रव्य संग्रह करके ला देंगे।"

दस्यु का उद्धार करने के लिए नित्यानन्द का आगमन, मद्यपों-द्वारा नित्यानन्द के परिचय को जिज्ञासा, अवधूत-नाम-श्रवण से माधाइ का क्रोध एवं प्रभु के सिर पर मुटकी (मिट्टी के वर्तन के टुकड़े) द्वारा आघात—

एकदिन नित्यानन्द नगर भ्रमिया।
निशाय आइसे, दोंहे धरिलेक गिया॥१७३॥
'केरे केरे' बलि' डाके जगाइ माधाइ।
नित्यानन्द बलेन,—"प्रभुर बाड़ी याइ॥"१७४॥
मद्येर विक्षेपे बले,—"किवा नाम तोर?"
नित्यानन्द बले,—" 'अवधूत' नाम मोर॥"१७५॥
बाल्यभावे महामत्त नित्यानन्दराय।
मद्यपेर संगे कथा कहेन लीलाय॥१७६॥
'उद्धारिव दुइजन'—हेन आछे मने।
अतएव निशाय आइला सेइ स्थाने॥१७७॥
'अवधूत' नाम शुनि' माधाइ कुपिया।
मारिल प्रभुर शिरे मुटकी तुपिया।
फुटिल मुटकी शिरे,—रक्त पड़े धारे।
नित्यानन्द-महाप्रभु 'गोविन्द' सङरे॥१७९॥

(१७३–१७९) प० अनु०—एकदिन नित्यानन्द नगर-भ्रमण के पश्चात् रात को लौट रहे थे कि दोनों ने उनको पकड़ लिया। 'कौन है?

कौन है'? कहकर जगाइ–माधाइ पुकारने लगे। नित्यानन्द ने कहा,— "मैं प्रभु के भवन जा रहा हूँ।" मद्यपान के विक्षेप में उन्होंने पूछा, —"तेरा नाम क्या है?" नित्यानन्द ने कहा, —" 'अवधूत' मेरा नाम है।" नित्यानन्द राय बाल्यभाव में महामत्त होकर इस प्रकार से मद्यप के साथ बात करने की लीला कर रहे थे। उनके मन में ऐसा विचार था कि 'दोनों का उद्धार करना है'; इसलिए रात को उसी स्थान पर चले गये थे। 'अवधूत' नाम सुनते ही माधाइ ने क्रोधित होकर प्रभु के सिर पर मटकी (टूटी हांडी का टुकड़ा) के द्वारा प्रहार कर दिया। मटकी के टुकड़े सिर पर लगने से रक्तधारा प्रवाहित होने लगी। नित्यानन्दमहाप्रभु 'गोविन्द' का स्मरण करने लगे।

(१७८) गौः भाः—मुटकी—टूटी हुई हांडी।

माधाइ के कार्य में जगाइ–द्वारा बाधा डालना—

दया हइल जगाइर रक्त देखि' माथे।
आरवार मारिते धरिल तार हाते॥१८०॥
''केने हेन करिले निर्दय तुमि दृढ़।
देशान्तरी मारिया कि हैवा तुमि बड़?१८१॥
एड़ एड़ अवधूते, ना मारिह आर।
संन्यासी मारिया कोन् भाल वा तोमार?''१८२॥

(१८०–१८२) प० अनु०—सिर पर रक्त देखकर जगाइ के मन में दया आ गई। माधाइ ने फिर एकबार मारना चाहा तो जगाइ ने उसका हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़कर जगाइ कहने लगा,—"क्यों ऐसा किया? तुम बड़े निर्दयी हो। देशांतरी (परदेशी) को मारकर क्या तुम बड़े बन जाओगे? छोड़ दो अवधूत को, छोड़ दो, उन्हें और मत मारो। संन्यासी को मारकर तुम्हारा क्या भला होगा"?

(१८१) गौः भाः—देशांतरी—विदेशी व्यक्ति।

प्रत्यक्षदर्शियों के द्वारा प्रभु के निकट नित्यानन्द–संवाद– ज्ञापन, पार्षदों के साथ महाप्रभु का आगमन, चक्र का आह्वान एवं दस्युद्वय के द्वारा चक्रदर्शन—

आथेव्यथे लोके गिया प्रभुरे कहिला।
सांगोपांगे ततक्षण ठाकुर आइला॥१८३॥
नित्यानन्देर अंगे सब रक्त बहे धारे।
हासे नित्यानन्द सेइ दु'येर भितरे॥१८४॥
रक्त देखि' क्रोधे प्रभु बाह्य नाहि जाने।
'चक्र, चक्र, चक्र आसि' उपसन्न हैला।
जगाइ माधाइ ताहा नयने देखिला॥१८६॥

(१८३–१८६) प० अनु०—त्रस्त होकर लोगों ने जाकर प्रभु को समाचार दिया और प्रभु भी तुरन्त पार्षदों–सहित वहाँ चले आये। नित्यानन्द के सारे श्रीअंग से रक्तधारा बह रही थी। फिर भी नित्यानन्द दोनों के बीच में हँस रहे थे। रक्त देखकर प्रभु का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और प्रभु बारम्बार 'चक्र' का आह्वान करने लगे। सम्भ्रम–सहित चक्र आकर प्रभु के सामने उपस्थित हो गया और जगाइ–माधाइ ने अपनी आँखों से उसको देख लिया।

भक्तों की शंका एवं निताइ–द्वारा प्रभु के समीप निवेदन—

प्रमाद गणिला सब भागवतगण।
आथेव्यथे नित्यानन्द करे निवेदन॥१८७॥
''माधाइ मारिते प्रभु राखिल जगाइ।
दैवे से पड़िल रक्त, दुःख नाहि पाइ॥१८८॥
मोरे भिक्षा देह' प्रभु, ए दुइ शरीर।
किछु दुःख नाहि मोर—तुमि हओ स्थिर॥''१८९॥

(१८७–१८९) प० अनु०—सब कुछ देखकर उपस्थित भागवतजन घबड़ा गये। इसी बीच नित्यानन्द ने सम्भ्रम और सम्मान–सहित महाप्रभु से निवेदन किया—"प्रभु! माधाइ जब मार रहा

था, तब जगाइ ने मेरी रक्षा की। दैवयोग से रक्त निकल गया है, किन्तु मुझे दुःख नहीं मिला है। प्रभु! ये दोनों शरीर मुझे कृपया भिक्षा के रूप में दान दीजिए। मुझे कोई दुःख नहीं है,—आप स्थिर हो जाइए।"

(१८३–१८९) गौः भाः—माधाइ के द्वारा श्रीनित्यानन्द को चोट पहुँचाने का समाचार मिलने पर श्रीगौरसुन्दर ने वहाँ आकर सुदर्शन-चक्र का आह्वान किया। सुदर्शन-चक्र को देखकर दोनों मद्यप भयभीत हो गये। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु से कहा,—"रक्तपात से मुझे बहुत कष्ट नहीं हुआ है। माधाइ ने जब मुझ पर आक्रमण किया था, तब जगाइ ने मुझे बचा लिया था; तथापि दैवानुसार केवल रक्तपात हुआ है। इसमें उन लोगों का कोई दोष नहीं है। दस्युद्वय के शरीर पर प्रत्याघात करके कोई फल नहीं मिलेगा। आप स्थिन हो जाइए और इन दोनों के शरीरों को मुझे भिक्षा में दे दीजिए।"

प्रभु द्वारा जगाइ का आलिंगन एवं कृपा—

'जगाइ राखिल',—हेन वचन शुनिया।
जगायेरे आलिंगिला प्रभु सुखी हैया॥१९०॥
जगायेरे बले'—''कृष्ण कृपा करु तोरे।
नित्यानन्द राखिया किनिलि तुञि मोरे॥१९१॥
ये अभीष्ट चित्ते देख,—ताहा तुमि माग'।
आजि हैते हउ तोर प्रेमभक्तिलाभ॥''१९२॥

(१९०–१९२) प० अनु०—'जगााइ ने रक्षा की',—ऐसा वचन सुनते ही प्रभु ने प्रसन्न होकर जगाइ को गले से लगा लिया। प्रभु ने जगाइ से कहा,—"कृष्ण की कृपा तुझे मिल जाए, नित्यानन्द की रक्षा करके तूने मुझे खरीद लिया है। अपना मन-चाहा वर तू मुझसे माँग ले। आज से तुझे प्रेमभक्ति मिल जाए।"

(१९०–१९२) गौः भाः—भक्तवत्सल भगवान् गौरसुन्दर ने नित्यानन्द प्रभु के मुख से यह सुनकर कि 'माधाइ के आक्रमण से जगाइ ने रक्षा की है,' जगाइ को प्रेम-पूर्वक गले से लगा लिया और कहा—"आक्रमण से नित्यानन्द की रक्षा करके तुमने जो कार्य किया है है, उससे मैं तुम्हारे हाथों बिक गया हूँ। मेरे आशीर्वाद से तुम्हें कृष्ण में प्रेमभक्ति प्राप्त हो जाये।"

जगाइ के सौभाग्य से वैष्णवों की जयध्वनि एवं जगाइ की मूर्च्छा—

जगायेरे वर शुनि' वैष्णवमंडल।
'जय जय' हरिध्वनि करिला सकल॥१९३॥
'प्रेम-भक्ति हउ' करि' यखन बलिला।
तखनि जगाइ प्रेमे मूर्च्छित हइला॥१९४॥

(१९३–१९४) प० अनु०—जगाइ को दिए गए वरदान को सुनकर सभी वैष्णवमंडली ने 'जय-जय' बोलकर हरिध्वनि की। प्रभु ने जब कहा कि 'प्रेम-भक्ति मिल जाए', तभी जगाइ प्रेम से मूर्च्छित हो गये।

प्रभु-द्वारा जगाइ को अपने चतुर्भुजरूप का दर्शन एवं उसके वक्ष पर श्रीचरण की स्थापना; जगाइ का आनन्द-क्रन्दन-

प्रभु बले,—''जगाइ, उठिया देख मोरे।
सत्य आमि प्रेम-भाक्ति दान दिल तोरे॥''१९५॥
चतुभुर्ज शंख-चक्र-गदा-पद्म-धर।
जगाइ देखिल सेइ प्रभु विश्वम्भर॥१९६॥
देखिया मूर्च्छित हइया पड़िल जगाइ।
वक्षे श्रीचरण दिला चैतन्य-गोसाञि॥१९७॥
पाइया चरणधन लक्ष्मीर जीवन।
धरिल जगाइ-येन अमूल्य रतन॥१९८॥
चरणे धरिया काँदे सुकृति जगाइ।

एमत अपूर्व करे गौरांग–गोसाईं॥१९९॥

(१९५–१९९) प० अनु०—प्रभु ने कहा,—"जगाइ, उठकर मुझे देखो। सचमुच हमने तुमको प्रेम–भक्ति का दान दिया है।" जगाइ ने विश्वम्भर को चतुर्भुजरूप में शंका–चक्र–गदा–पद्म–सहित दर्शन किये। देखकर जगाइ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और चैतन्य गोसाईं ने उसकी छाती पर श्रीचरण की स्थापना की दी। लक्ष्मीदेवी के जीवन–स्वरूप उस चरण–धन को पाकर जगाइ ने उसे ऐसे पकड़ लिया जैसे वह कोई अमूल्य रत्न हों। सृकृतिमान जगाइ चरण पकड़कर क्रन्दन करने लगे। इस प्रकार गौरांग ने वहाँ अद्‌भुत अपूर्वता का प्रदर्शन किया।

जगाइ–माधाइ का चरित्र—

एक जीव, दुइ देह—जगाइ–माधाइ।
एक पुण्य, एक पाप, वैसे एक ठाञि॥२००॥

(२००) प० अनु०—जगाइ–माधाइ दोनों एक प्राण दो शरीर थे। दोनों का पाप पुण्य एक ही था, और दोनों साथ–साथ ही स्थान पर रहते थे।

(२००) गौः भाः—जगाइ और माधाइ दोनों एक साथ रहते थे, कभी–कभी उनमें कोई सत् कार्य के कारण दूसरे को असत् कार्य से निवारण करता था, तो अन्य समय दूसरा पापकार्य में प्रवृत्त होने पर पहले वाला उसे पाप से बचाता था। वैसे दोनों ही दुष्ट थे। जगाइ को पुरस्कार मिला देखकर माधाइ का चित्त भी परिवर्तित हो गया।

जगाइ के अनुग्रह–लाभ–दर्शन से माधाइ का चित्त परिवर्तन, नित्यानन्द–चरण धारणपूर्वक अनुग्रह–प्रार्थना एवं महाप्रभु का उत्तर—

जगाइरे प्रभु यबे अनुग्रह कैल।
माधाइर चित्त ततक्षणे भाल हैल॥२०१॥
आथेव्यथे नित्यानन्दे–वसन एड़िया।
पड़िल चरण धरि' दण्डवत् हैया॥२०२॥
"दुइजने एकठाञि कैल प्रभु पाप।
अनुग्रह केने प्रभु कर दुइ भाग?२०३॥
मोरे अनुग्रह कर,—लँऊ तोर नाम।
आमारे उद्धार करिवारे नाहि आन॥"२०४॥
प्रभु बले,—"तोर त्राण नाहि देखि मुञि।
नित्यानन्द–अंगे रक्त पाड़िलि से तुञि॥"२०५॥

(२०१–२०५) प० अनु०—प्रभु ने जब जगाइ पर अनुग्रह किया, तब उसे देखकर माधाइ का हृदय भी उसी समय अच्छा हो गया। सम्भ्रम और सम्मान–सहित माधाइ नित्यानन्द के वस्त्र को एक तरफ हटाकर और उनके चरणों को पकड़कर दण्डवत् प्रणाम करते हुये गिर पड़ा। माधाइ कहने लगा,—"प्रभु! दोनों ने एक साथ मिलकर पाप किया है। अब अनुग्रह को दोनों भागों में क्यों बाँटते हो? मुझपर भी अनुग्रह कीजिए, ताकि मैं भी आपका नाम ले सकूँ। आपके सिवाय मेरा उद्धार करने वाला और कोई नहीं है।" यह सुनकर महाप्रभु बोले,—"तेरा उद्धार कैसे होगा, यह मुझे नहीं दिखाई दे रहा है, क्योंकि तूने नित्यानन्द के अंग से रक्त बहाया है।"

(२०३) गौः भाः—माधाइ ने कहा,—"हम दोनों ने एक साथ मिलकर पापकर्म किये हैं। एक के प्रति अनुग्रह एवं दूसरे के प्रति निग्रह—इस प्रकार से दो प्रकार के विचार ठीक नहीं हैं।"

माधाइ द्वारा कृपा–प्रार्थना–प्रसंग में प्रभु सहित वाद–प्रतिवाद—

माधाइ बलये,—"इहा बलिते ना पार।
आपनार धर्म प्रभु आपनि केने छाड़?॥२०६॥

वाणे विन्धिलेक तोमा ये असुरगणे।
निज–पद ता' सबारे तबे दिले केने?''॥२०७॥
प्रभु बले,—''ताहा हैते तोर अपराध।
नित्यानन्द–अंगते करिलि रक्तपात॥२०८॥
आमा हैते एइ नित्यानन्द–देह बड़।
तोर स्थाने एइ सत्य कहिलाम दृढ़''॥२०९॥
''सत्य यदि कहिला ठाकुर मोर स्थाने।
बलह निष्कृति मुञि पाइव केमने?॥२१०॥
सर्व रोग नाश', वैद्यचूड़ामणि तुमि।
तुमि रोग चिकित्सिले सुस्थ हइ आमि॥२११॥
ना कर कपट प्रभु, संसारेर नाथ।
विदित हइला,—आर लुकाइवा कात?''॥२१२॥

(२०६–२१२) प० अनु०—माधाइ ने कहा, —"यह आप नहीं कह सकते हैं। आप अपने धर्म को क्यों त्याग रहे हैं? जिन असुरों ने आपको वाणों द्वारा बिद्ध किया था, उन असुरों को आपने अपना मद क्यों समर्पित किया?" प्रभु बोले,—"तेरा अपराध इससे भी अधिक है, तूने नित्यानन्द के अंग से रक्त बहाया है। नित्यानन्द-देह मुझसे भी बढ़कर है। मैंने दृढ़ता के साथ तेरे सामने इस सच को प्रकाशित कर दिया है।" "यदि यह सत्य मुझसे आपने कह दिया है, तो कृपया यह भी बता दीजिए कि मुझे छुटकारा कैसे मिलेगा? आप सब रोगों का नाश करने वाले वैद्य चूड़ामणि हैं। कृपापूर्वक आपके द्वारा चिकित्सा करने से मैं स्वस्थ हो जाऊँगा। हे संसार के नाथ, हे प्रभु, आप कपट मत कीजिए। सभी आपको जान गये है,—अब और किससे आप अपने को छिपा सकेंगे?

(२०५–२०९) गौः भाः—माधाइ की बात सुनकर महाप्रभु ने कहा कि, तुमने नित्यानन्द के अंग में आघात किया है, इसलिए उसका परित्राण नहीं होगा। इसके उत्तर में माधाइ ने कृष्णलीला एवं रामलीला की कथा का उल्लेख किया और कहा,—"पूर्व में असुरों ने विष्णु से विद्वेष करके भी मुक्ति प्राप्त की है। फिर उसी स्थिति में हम जैसे असुर क्यों परित्राण लाभ नहीं कर पायेंगे"? इस प्रसंग में महाप्रभु ने कहा,—'विष्णु के सेवक नित्यानन्द के अंग में चोट पहुँचाना, विष्णु-विद्वेष से भी गुरुतर अपराध है। श्रीनित्यानन्द के प्रति दुष्टता करना मेरे ऊपर आक्रमण करने से भी बड़ा अपराध है।'

(२१२) गौः भाः—कात,—किससे, किस के पास।

नित्यानन्द के चरणों में आश्रय-ग्रहणार्थ प्रभु द्वारा माधाइ को आदेश एवं माधाइ के द्वारा उपदेश का पालन—

प्रभु बले,—''अपराध कैले तुमि बड़।
नित्यानन्दचरण धरिया गिया पड़॥''२१३॥
वाणे विन्धिलेक तोमा ये असुरगणे।
पाइया अमूल्य धन निताइ–चरण॥२१४॥
ये चरण धरिले ना याइ कभु नाश।
रेवती जानेन येइ चरण–प्रकाश॥२१५॥

(२१३–२१५) प० अनु०—प्रभु बोले, —"तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है। अब नित्यानन्द के चरण पकड़कर उनसे ही क्षमा प्रार्थना करो।" प्रभु की आज्ञा पाकर माधाइ ने तब अनमोल धन-स्वरूप नित्यानन्द के चरणों को पकड़ लिया। ये वे ही चरण हैं, जिन्हें पकड़ने से कभी किसी का नाश नहीं होता है। उन चरणों की महिमा को रेवती भलीभाँति जानती हैं।

माधाइ पर कृपा करने के लिए महाप्रभु-द्वारा नित्यानन्द से अनुरोध—

विश्वम्भर बले,—''शुन नित्यानन्दराय।
पड़िल चरणे—कृपा करिते युयाय॥२१६॥
तोमार अंगते येन कैल रक्तपात।
तुमि से क्षमिते पार—पड़िल तोमात॥''२१७॥

(२१६-२१७) प० अनु०—विश्वम्भर बोले, —"सुनों नित्यानन्द राय! यह तुम्हारे चरणों में गिरा हुआ है, अब इस पर कृपा करना उचित है। इसने तुम्हारे अंग से रक्त बहाया है, अब यह तुम्हारी शरण में आया हुआ है, तुम चाहो तो इसे क्षमा कर सकते हो।"

नित्यानन्द द्वारा अपने सौभाग्य के विनिमय में प्रभु के निकट माधाइ के लिए कृपाभिक्षा—

नित्यानन्द बले,—''प्रभु, कि बलिव मुञि?
वृक्षद्वारे कृपा कर—सेह शक्ति तुञि॥२१८॥
कोन जन्मे थाके यदि आमार सुकृत।
सब दिलुँ माधाइरे,—शुनह निश्चित॥२१९॥
मोर यत अपराध,—किछु दाय नाइ।
माया छाड़, कृपा कर,—तोमार माधाइ॥''२२०॥

(२१८-२२०) प० अनु०—नित्यानन्द बोले, —"प्रभु, मैं क्या कहूँ? आप ही वह शक्ति है जो वृक्ष के माध्यम से भी कृपा करते हैं। यदि किसी जन्म में मेरी कोई सुकृति रही हो, तो आप यह निश्चितरूप से जान लीजिए कि, उस सबको मैंने माधाइ को दे दिया है। इसने जो मेरा अपराध किया है, उसमें इसका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। माधाइ आपका है, —आप निर्मायिक (माया रहित) भाव से उस पर कृपा कीजिए।"

(२१८) गौः भाः—"विपद् के समय आप देवताओं की रक्षा किया करते हैं—मानव आदि प्राणियों पर संकट उपस्थित होने पर आप उनकी रक्षा करते हैं। मानवादि-प्राणियों की भाँति चेतनविशिष्ट न होने पर भी उद्भिद् समूह (वृक्ष आदि) की रक्षा करने की शक्ति भी आपमें है।"—श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु से ऐसा कहा।

(२१९-२२०) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा,—मेरे प्रति माधाइ ने कोई अपराध नहीं किया हैं। जन्म-जन्म में मैंने आपकी जो सभी सेवाएँ की हैं, उनका सौभाग्यफल आज माधाइ ने दौरात्म्य-पूर्वक आपके निकट से प्राप्त किया है। इसलिए मेरे प्रति माधाइ का जो अपराध हुआ है। अतएव विचार-कपटारूप माया का परित्याग करके माधाइ पर अहैतुकी कृपा कीजिए।

माधाइ को अलिंगन दानार्थ महाप्रभु-द्वारा नित्यानन्द को आदेश—

विश्वम्भर बले;—''यदि क्षमिला सकल।
माधाइरे कोल देह', हउक सफल॥''२२१॥

(२२१) प० अनु०—विश्वम्भर बोले,—"यदि सब कुछ क्षमा कर दिया है, तो माधाइ को अपनी गोद में भर लो ताकि उसका जीवन सफल हो जाये।"

नित्यानन्द-द्वारा माधाइ को कृपा-दान—

प्रभुर आज्ञाय कैल दृढ़ आलिंगन।
माधाइर हइल सर्व बन्धनमोचन॥२२२॥
माधाइर देहे नित्यानन्द प्रवेशिला।
सर्व-शक्ति-समन्वित माधाइ हइला॥२२३॥

(२२२-२२३) गौः भाः—प्रभु की इच्छा से श्रीनित्यानन्दप्रभु ने आक्रमणकारी माधाइ का प्रेमालिंगन करके उनमें अपनी शक्ति संचारित कर दी। नित्यानन्द के शक्तिबल से माधाइ सभी सद्गुणों से सम्पन्न हो गये। प्रापंचिक भोग-प्रवृत्ति-रहित होकर एवं भगवान् के सेवाधिकार की प्राप्तिरूप विशिष्ट शक्ति

से सम्पन्न होकर वे पुण्यश्लोक (पवित्र कीर्ति वाले) के रूप में उभर आये।

जगाइ-माधाइ के द्वारा गौरनित्यानन्द की स्तुति, महाप्रभु के द्वारा उन लोगों को उपदेश एवं कृपा, जगाइ-माधाइ द्वारा वैसा करना अंगोकार एवं प्रभु से कृपा प्राप्त होकर आनन्दमूर्च्छा—

हेनमते दु'जनेते पाइल मोचन।
दुइ जने स्तुति करे दु'येर चरण॥२२४॥
प्रभु बले,—''तोरा आर ना करिम् पाप।''
जगाइ-माधाइ बले,—''आर नारे बाप॥''२२५॥
प्रभु बले,—''शुन शुन तोरा दुइ जन।
सत्य सत्य आमि तोरे करिलाम मोचन॥२२६॥
कोटि कोटि जन्मे यत आछे पाप तोर।
आर यदि ना करिस,—सब दाय मोर॥२२७॥
तो-दोंहार मुखे मुञि करिव आहार।
तोर देहे हइवेक मोर अवतार॥''२२८॥
प्रभुर शुनिया वाक्य जगाइ-माधाइ।
आनन्दे मुर्च्छित हइ' पड़िल तथाइ॥२२९॥

(२२४-२२९) प० अनु०—इस प्रकार दोनों को बंधनों से छुटकारा मिल गया और इसके पश्चात् दोनों, दोनों प्रभुओं के चरणों का स्तवन करने लगे। प्रभु बोले,—"तुम लोग अब और पाप मत करना।" जगाइ-माधाइ बोले,—"और पाप अब कभी नहीं करेंगे।" प्रभु बोले,—"तुम दोनों अच्छी तरह से सुन लो! सचमुच ही हमने तुम दोनों को मुक्त कर दिया है। यदि और पाप न करो, तो कोटि-कोटि जन्मों से जितने भी पाप तुमनें संचित किये हैं, उन सब पापों का उत्तरदायित्व मेरा है। तुम दोनों के मुँह से मैं भोजन किया करूँगा। तुम्हारे शरीर में मेरा अवतार होगा।" प्रभु की बात सुनकर जगाइ-माधाइ आनन्द से मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़े।

(२२५) गौः भाः—भगवद्विमुखजन प्रपंच में भोग के लोभ से आच्छन्न होकर नानाविध पापों का संचय करते रहते हैं। परम करूणामय गौरहरि ने दस्युद्वय को भविष्य में पापप्रवृत्ति में रत होने से मना कर दिया। जगाइ-माधाइ ने प्रभु के आदेश का सर्वतोभाव से स्वीकार करके, आगे कभी भी पाप नहीं करेंगे—ऐसी प्रतिज्ञा की।

(२२६-२२७) गौः भाः—भगवत्सेवोन्मुखजन जड़भोगों से विरत होकर कृष्ण के लिए अखिल चेष्टाविशिष्ट होते है। तब वे जो कछ भी करते हैं, वह कृष्ण के निमित्त से करते हैं। उन लोगों में संसार के पाप-पुण्यों की प्राप्ति क लिए और भोग-प्रवृत्ति शेष नहीं रहती है। उस समय भक्त आत्म-समर्पण पूर्वक चिदानन्दमय अनुभूति में डूबकर अनुक्षण भगवद्-सेवा ही करते रहते है। अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर जीव माया-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। उन लोगों का प्रत्येक कार्य भगवत्सेवा के उद्देश्य से अनुष्ठित होने के कारण उन लोगों के स्नान, भोजन, निद्रा, इत्यादि—सभी कार्य कृष्ण सेवा-तात्पर्यपरक होकर वैकुण्ठानुष्ठान में प्रतिष्ठित हो जाते है। उस समय बद्धजीवों का कोटि-कोटि जन्मों का पाप विदूरित हो जाते है। उनके पाप एवं संचित कुभोग आदि सब भगवान् की माया में विलीन हो जाते हैं। माया की विक्षेपात्मिका एंव आवरणी शक्ति विक्रम प्रकाश नहीं कर सकती है। आत्मसमर्पित स्वरूपोपलब्ध भक्त बहुत जल्दी ही विमुक्ति की गोद में ललित-पालित होते रहने के कारण किसी भी प्रकार के पापपुण्य आदि का प्रश्रय नहीं देते हैं। "सर्व धर्मान् परित्यज्य" श्लोक द्वारा अभिव्यक्त कृष्ण का यह अभिप्राय जीवकुल के सन्ताप का नाश करने वाला है।

(२२८) गौः भाः—तथ्य—"नारायणपरो विद्वान् यस्यान्नं प्रीतमानसः। अश्नाति तद्वरेरास्यं गतमन्नं न संशयः।" "भक्तस्य रसनाग्रेण रसमश्नामि पद्मज।" अर्थात् हरि-परायण सुधी व्यक्ति प्रसन्नचित्त से जिस अन्न का सेवन करते हैं, वह अन्न भगवान् के मुख में पहुँचता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" मैं भक्तों के जिह्वाग्र से रस का आस्वादन करता हूँ।"—(हः भः विः १०/२६५-२६६)।

दोनों को अपने घर मे ले जाकर प्रभु-द्वारा उन्हें कीर्तन में योगदान करने का अधिकार-प्रदान—

मोह गेल दुइ विप्र आनन्द-सागरे।
बुझि' आज्ञा करिलेन प्रभु विश्वम्भरे॥२३०॥
''दुइ जने तुलि' लह आमार बाड़ीते।
कीर्तन करिब दुइ जनेर सहिते॥२३१॥
ब्रह्मार दुर्लभ आजि ए दोँहारे दिव।
ए दोहाँरे जगतेर उत्तम करिब॥२३२॥
ए दुइ-परशे ये करिल गंगास्नान।
ए दोँहारे बलिबे से गंगार समान॥२३३॥
नित्यानन्द-प्रतिज्ञा अन्यथा नाहि हय।
नित्यानन्द-इच्छा एइ जानिह निश्चय॥''२३४॥
जगाइ-माधाइ सब वैष्णवे धरिया।
प्रभुर बाड़ीर अभ्यन्तरे गेला लञा॥२३५॥

(२३०-२३५) प० अनु०—मोहमुक्त हुये दोनों ब्राह्मणों को आनन्द-सागर में डूबे हुये देखकर प्रभु विश्वम्भर ने यह आज्ञा प्रदान की। प्रभु ने कहा कि—"इन दोनों को उठाकर मेरे घर ले चलो, इन दोनों के साथ कीर्तन करेंगे। ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ वस्तु आज हम इन दोनों को देंगे। जगत् में इन दोनों को उत्तम बनायेगे। इन दोनों का स्पर्श हो जाने पर जो गंगा-स्नान करते रहे हैं, वे ही अब इन दोनों को गंगा के समान (पवित्र) मानेंगे। नित्यानन्द की प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं होती है। नित्यानन्द की प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं होती है। निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि यह सब कुछ नित्यानन्द की इच्छा से ही हुआ है।" सभी वैष्णवों ने जगाइ-माधाइ को साथ में लेकर प्रभु के भवन के अभ्यंतर में प्रवेश किया।

(२३०) गौः भाः—जगाइ-माधाइ ने पवित्र ब्राह्मणकुल में जन्मग्रहण करके भी ब्राह्मणकुल की प्रतिष्ठा का परित्याग करके दस्युवृत्ति को अपनाया था। अब भगवान् की कृपा से उन लोगों को पुनर्जीवन मिल गया था। प्रापंचिक भोगों की मूढ़ता दूर हो जाने से उन्होंने सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनरूप त्रि-तत्त्वात्मक वेदशास्त्रों में पारंगति को प्राप्त कर लिया था। स्वरूपतः वे गौड़ीय-विचार में प्रतिष्ठित होकर भगवत्-सेवा में नियुक्त रहने के कारण चिदानन्दमय हो गये। मदनमोहन, गोविन्द एवं गोपीनाथ, उन लोगों की एकमात्र अनुशीलन की वस्तु के रूप में प्रतिभात होने लगे थे, इस कारण उनका मायामोहित भाव दूर हट गया।

(२३२) गौः भाः—अहैतुकी कृपा-पारावार श्रीगौरसुन्दर ने दस्युद्वय के सकल अपराधों को क्षमा करके एवं उन लोगों को हरिकीर्तन-श्रवण कराकर, कीर्तन में योगदान करने का अधिकार प्रदान किया। वे जागतिक दृष्टि से समाज-विद्रोही पाखण्डी थे। अत्यन्त अधम अवस्था से उठाकर इन लोगों को सर्वोत्तम विष्णु सेवाधिकार प्रदान किया गया। प्राणिकुल के पितामह ब्रह्मा भी आधिकारिक-विचार से जिस सौभाग्य को प्राप्त करने से वंचित हैं, उससे भी अधिक सौभाग्य को प्राप्त होकर आज उन्होंने सर्वोत्तम वैष्णवता को प्राप्त किया है। श्रीगौरसुन्दर की कृपा कितनी बड़ी है,

इसकी कोई सीमा नहीं है। वे नितांत अधम, अयोग्यजनों को भी निर्हैतुक दयापरवश होकर चिरकाल के लिए सर्वोत्तम बना सकते हैं।

(२३३) गौः भाः—दस्युद्वय के दर्शन-स्पर्शन से जीवों की पाप-प्रवृत्ति जागरित होती थी; परन्तु भगवद् कृपालब्ध दस्युद्वय का पाप-दर्शन आज पाप-दर्शन के स्थान पर पाप-निवृत्तिकारिणी गंगा के स्पर्शन की भाँति पवित्रता को प्राप्त हो गया है।

(२३५) गौः भाः—वैष्णवगण दस्युद्वय को अपना आत्मीय समझकर अपने गणों में उनकी गिनती करते हुये श्रीगौरसुन्दर के भवन में ले गये।

गृहद्वार को बन्द करके पार्षद-सहित
महाप्रभु-द्वारा जगाइ-माधाइ को साथ में
लेकर उपवेशन एवं उभय का प्रेमविकार—

आप्तगण साम्भाइला प्रभुर सहिते।
पड़िल कपाट, का'रो शक्ति नाहि याइते॥२३६॥
बसिल आसिया महाप्रभु विश्वम्भर।
दुइ पाशे शोभे नित्यानन्द-गदाधर॥२३७॥
सम्मुखे अद्वैत बैसे महापात्रराज।
चारिदिके वैसे सब-वैष्णवसमाज॥२३८॥
पुण्डरीक विद्यानिधि, प्रभु हरिदास।
गरूड़, रामाइ, श्रीनिवास, गंगादास॥२३९॥
वक्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य।
ए सब जानेन चैतन्येर सब कार्य॥२४०॥
अनेक महान्त आर चैतन्य बेड़िया।
आनन्दे बसिया जगाइ-माधाइ लइया॥२४१॥
लोमहर्ष, महा-अश्रु, कम्प सर्व-गाय।
जगाइ-माधाइ दोंहे गड़ागड़ि याय॥२४२॥

(२३६-२४२) प० अनु०—प्रभु के साथ आप्तगणों (भक्तजनों) ने भवन के अभ्यंतर में प्रवेश किया और इसके बाद दरवाजा बन्द हो गया। अब किसी में यह शक्ति नहीं थी कि अन्दर जाए। महाप्रभु विश्वम्भर आकर सबके सामने विराजमान हुये थे। और नित्यानन्द एवं गदाधर उनकी दो दिशाओं में शोभायमान हो गये। महापात्रराज अद्वैत सामने बैठे और चारों ओर सभी वैष्णव-समाज ने अपना-अपना आसन ग्रहण किया। इनमें पुण्डरीक विद्यानिधि, प्रभु हरिदास, गरूड़, रामाइ, श्रीनिवास, गंगादास, वक्रेश्वर पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य प्रमुख रूप से वर्तमान थे। ये सब चैतन्य के सभी कार्यों को जानते थे। अनेक महान्त भी चैतन्य को घेरकर जगाइ-माधाइ को साथ लिये हुये आनन्द-सहित विराजमान हो गये। जगाइ-माधाइ दोनों रोमहर्ष, महा-अश्रु और सारे शरीर में कम्प के सहित लोट-पोट हो रहे थे।

(२३६) गौः भाः—आप्तगण साम्भाइल, —प्रभु के निजी अंतरंगजन एवं आत्मसात्कृत दस्युद्वय ने प्रभु के गृह में प्रवेश किया। वहाँ दूसरों के प्रवेश का निवारण करने के लिए द्वार बन्द कर दिया गया था।

चैतन्यलीला का वैशिष्टय एवं उसमें
विश्वास न रखने वालों का परिणाम—

का'र शक्ति बुझिते चैतन्य-अभिमत्त।
दुइ दस्यु करे दुइ महाभागवत॥२४३॥
तपस्वी संन्यासी करे परम पाषण्ड।
एइ मत लीला ता'न अमृतेर खण्ड॥२४४॥
इहाते विश्वास या'र, सेइ कृष्ण पाय।
इथे या'र सन्देह, से अधः पाते याय॥२४५॥

(२४३-२४५) प० अनु०—श्रीचैतन्यदेव की लीलाओं को समझने की शक्ति किसमें है? वे कभी दोनों दस्युओं को दो महाभागवत बना देते हैं तो कभी तपस्वी और संन्यासी

को भी पाखण्डी बना देते हैं। इस प्रकार उनकी सभी लीलाएँ अमृत –खण्ड के तुल्य हैं। जो इनमें विश्वास करता है, उसे कृष्ण मिल जाते हैं और इनमें जिसको सन्देह हैं, उसका अधःपतन हो जाता है।

(२४३) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव की लीलाएँ अत्यन्त गंभीर हैं एवं साधारण विचार की सहायता से उनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है। अनेक जन्मों तक हरिसेवा के आनुकूल्य में अग्रसर होन पर भी जीव को जो महाभागवत–अधिकार नहीं मिलता है, वह क्षणमात्र में ही अनधिकारी दस्युद्वय की प्राप्ति का विषय बन गया। इसलिए उनकी इस शक्ति का विचार करने का अधिकार किसी को भी नहीं है।

(२४४) गौः भाः—इतर देवयाजी (कृष्णेतर देवों के पूजनकारी) पाखण्डीकुल अपनी–अपनी वासनाओं की चाहत से जो दुराचार कर रहे थे, उससे मुक्त होकर वे दोनों हरिसेवा में नियुक्त हो गये। यह मधुर–लीला श्रीगौरसुन्दर के द्वारा जीवकुल को अमृतावंश प्रदान रकने का समुत्कृष्ट आदर्श है।

(२४५) गौः भाः—जो लोग श्रीकृष्ण की गौरलीला को समझने में असमर्थ होकर विषयभोगों में प्रमत्त होते हैं, वे कभी भी सेवोन्मुखता को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए उन लोगों में जड़ के प्रति अभिनिवेश होना अनिवार्य है एवं नानाविध सांसारिक क्लेश उन लोगों को दबाव में रखकर निम्नस्तर पर अवस्थित कर देते हैं; परन्तु श्रीगौरभक्तगण अनायास ही कृष्णसेवा करने में समर्थ हो जाते हैं। जो लोग जड़जगत् पर प्रलुब्ध (मोहित) होकर भोगों की कामना करते हैं, वे भगवत्सेवा की अपेक्षा जड़विषयों के स्वामी होनेके लिए ही प्रयत्न करते रहते हैं; इसीलिए उन लोगों का अधःपतन अनिवार्य है। कृष्ण–सेवोन्मुखता की प्राप्ति ही एकमात्र परमार्थ है एवं सभी प्रकार क आपेक्षिक प्रयोजन–लाभों में सर्वोत्तम है—इस उपलब्धि के न रहने से जीव अमंगल की स्थिति से और अधिक अमंगल की स्थिति की ओर अवतरण करता रहता है। जागतिक ब्राह्मी, खरोष्टी एवं सानकी भाषाएँ एवं शब्दोद्दिष्ट विषय–समूहों पर जीवों के प्रलुब्ध होने से वे जीव माया की आवरणी और विक्षेपात्मिका शक्तियों के द्वारा जड़विषयभोगों की ओर आकृष्ट होते हैं। तब प्रपंच में सुष्ठुभाव से आहार–विहार आदि में उनकी श्रद्धा समृद्ध होने लगती है, यही उनके अधःपतन का कारण है। बहिर्मुख जीव चित्–साहित्य के अनुशीलन से दिन–प्रतिदिन अपनी वैमुख्यवृत्तियों में रूचि प्राप्त करते हैं। श्रीगुरुपादपद्म की कृपा से जिसको विद्वद्रूढ़िवृत्तिशिष्ट शब्द की प्राप्ति होती है, उसका प्रकृति से परे नित्यचिद्विलास वैचित्र में आग्रह बढ़ जाता है। तब वह शब्द की अविद्वद्रूढ़ि के आश्रय से विभिन्न भोगोपकरणों को शब्द का उद्दिष्ट विषय न मानकर विष्णु ही सभी–इन्द्रियों की नित्यागति हैं, यह समझ लेता है एवं गुरुकृपा से तथा गुरु–वाक्य श्रवण से वह दृढ़–श्रद्धान्वित हो जाता है। उस समय श्रीराधा–मदनमोहनरूपीकृष्ण ज्ञान, जड़भोग विषयानुभूति से उसकी रक्षा किया करता है। अभिधेय कृष्णभक्ति प्राप्त करने के लिए उस समय श्रीराधा मदनमोहन श्रीराधा मदनमोहन श्रीराधागोविन्द प्रदान करने के लिए आविर्भूत होते हैं एवं उस समय वह जीव श्रीगोपीजनवल्लभ की रासस्थली में अपने प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करता है श्रीगौरसुन्दर के श्रीचरणों में श्रद्धा करने की महिमा ऐसी ही है। गौरविद्वेषी शब्दोच्चारणकारी

एवं शब्दार्थविद्गणों की कपटता में मूढ़ता प्राप्त व्यक्ति का कभी भी श्रद्धा-वृत्ति-युक्त होना संभव नहीं है।

शुद्धा सरस्वती की कृपा से जगाइ-माधाइ द्वारा गौरस्तुति—

जगाइ-माधाइ दुइ जने स्तुति करे।
सबार सहित शुने गौरांगसुन्दरे॥२४६॥
शुद्धा सरस्वती दुइ जनेर जिह्वाय।
बसिया चैतन्यचन्द्र-प्रभुर आज्ञाय॥२४७॥
नित्यानन्द-चैतन्येर प्रकाश एकत्र।
देखिलेन दुइ जने—या'र येइ तत्त्व॥२४८॥
एइ मते स्तुति करे दुइ महाशय।
ये स्तुति शुनिले कृष्ण-भक्ति लभ्य हय॥२४९॥
''जय जय महाप्रभु जय विश्वम्भर।
जय जय नित्यानन्द-विश्वम्भर-धर॥२५०॥
जय जय निजनाम-विनोद आचार्य।
जय नित्यानन्द चैतन्येर सर्वकार्य॥२५१॥
जय जय जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन।
जय जय नित्यानन्द चैतन्यशरण॥२५२॥
जय जय शची-पुत्र करुणार सिन्धु।
जय जय नित्यानन्द चैतन्येर बन्धु॥२५३॥
जय राजपण्डितदुहिता प्राणेश्वर।
जय नित्यानन्द कृपामय कलेवर॥२५४॥
सेइ जय प्रभु—तुमि यत कर काज।
जय नित्यानन्दचन्द्र वैष्णवाधिराज॥२५५॥
जय जय शंख-चक्र-गदा-पद्म-धर।
प्रभुर विग्रह—जय अवधूतवर॥२५६॥
जय जय अद्वैतजीवन गौरचन्द्र।
जय जय सहस्रवदन नित्यानन्द॥२५७॥
जय गदाधर-प्राण, मुरारि-ईश्वर।
जय हरिदास-वासुदेव-प्रियकर॥२५८॥
पापी उद्धारिले यत नाना अवतारे।
परम अद्भुत—ताहा घोषये संसारे॥२५९॥
आमा-दुइ पातकीर देखिया उद्धार।
अल्पत्व पाइल पूर्व महिमा तोमार॥२६०॥
अजामिल-उद्धारेर यतेक महत्त्व।
आमार उद्धारे सेहो पाइल अल्पत्व॥२६१॥
सत्य कहि,—आमि किछु स्तुति नाहि करि।
उचितेइ अजामिल मुक्ति-अधिकारी॥२६२॥
कोटि ब्रह्म बधि' यदि तब नाम लय।
सद्य मोक्ष-पद ता'र वेदे सत्य कय॥२६३॥
हेन नाम अजामिल कैला उच्चारण।
तेञि चित्र नहे अजामिलेर मोचन॥२६४॥
वेद-सत्य स्थापिते तोमार अवतार।
मिथ्या हय वेद तबे, ना कैले उद्धार॥२६५॥
मोरा द्रोह कैलुँ प्रिय शरीरे तोमार।
तथापिओ आमा-दुइ करिले उद्धार॥२६६॥
एबे बुझि' देख प्रभु, आपनार मने।
कत कोटि अन्तर आमरा दुइ जने॥२६७॥
'नारायण'-नाम शुनि' अजामिल-मुखे।
चारि महाजन आइला, सेइ जन देखे॥२६८॥
आमि देखिलाम तोमा—रक्त पाड़ि' अंगे।
सांगोपांग, अस्त्र, पारिषद सब संगे॥२६९॥
गोप्य करि' राखिछिला ए सब महिमा।
एबे व्यक्त हइल प्रभु, महिमार सीमा॥२७०॥
एबे से हइल वेद—महाबलवन्त।
एबे से बड़ाञि करि' गाइव अनन्त॥२७१॥
एबे से विदित हइल गोप्य गुणग्राम।
''निर्लक्ष्य-उद्धार''—प्रभु, इहार से नाम॥२७२॥
यदि बल—कंस-आदि यत दैत्यगण।
ताहाराओ द्रोह करि' पाइल मोचन॥२७३॥
कत लक्ष्य आछे तथि, देख निज-मने।
निरन्तर देखिलेक से नरेन्द्रगणे॥२७४॥
तोमा सने युझिलेक क्षत्रियेर धर्मे।

भये तोमा निरवधि चिन्तिलेक मर्मे॥२७५॥
तथापि नारिल द्रोहपाप एड़ाइते।
पड़िल नरेन्द्र–सब वंशेर सहिते॥२७६॥
तोमारे देखिया निज जीवन छाड़िला।
तबे कोन् महाजने तारे परशिला॥२७७॥
आमारे परशे एबे भागवतगणे।
छाया छुञि' येइ जन कैला गंगास्नाने॥२७८॥
सर्वमते प्रभु, तोर ऐ महिमा बड़।
काहारे भाण्डिव? सबे जानिलेक दढ़॥२७९॥
महाभक्त गजराज करिल स्तवन।
एकान्त शरण देखि' करिला मोचन॥२८०॥
दैवे से उपमा नहे असुरा पूतना।
अघ–बक–आदि यत केह नहे सीमा॥२८१॥
छाड़िया से देह ता'रा गेल दिव्यगति।
वेद बिने ताहा देखे काहार शकति?२८२॥
ये करिला एइ दुइ पातकि–शरीरे।
साक्षाते देखिल इहा सकल संसारे॥२८३॥
यतेक करिला तुमि पातकि–उद्धार।
का'रो कोनरूप लक्ष्य आछे सबाकार॥२८४॥
निर्लक्ष्ये तारिला ब्रह्मदैत्य दुइजन।
तोमार कारुण्य सबे इहार कारण॥''२८५॥
बलिया बलिया कान्दे जगाइ–माधाइ।
एमत अपूर्व करे चैतन्य–गोसाईं॥२८६॥

(२४६–२८६) प० अनु०—जगाइ–माधाइ दोनों जने स्तवन करने लगे। सबके साथ गौरांगसुन्दर भी उसे सुन रहे थे। चैतन्यचन्द्रप्रभु की आज्ञा से शुद्धा सरस्वती दोनों की जिह्वा पर अधिष्ठित हो गयी थीं। नित्यानन्द और चैतन्य महाप्रभु का प्रकाश एकसाथ हुआ था। जिनका जैसा प्रकाश–तत्त्व है, वह इन दोनों ने देखा था फिर दोनों महाशय इस प्रकार से स्तुति करने लगे, जिसे सुनने से कृष्ण–भक्ति प्राप्त होती है।

"महाप्रभु श्रीविश्वम्भर की जय हो, जय हो, जय हो! विश्वम्भर को धारण करने वाले नित्यानन्द की जय हो, जय हो। निजनाम–विनोद आचार्य की जय हो, जय हो। चैतन्य के सर्वकार्यस्वरूप नित्यानन्द की जय हो! जय हो। चैतन्य के सर्वकार्यस्वरूप नित्यानन्द की जय हो! जय हो। जगन्नाथ मिश्र के नन्दन की जय हो, जय हो। चैतन्य–शरण नित्यानन्द की जय हो, जय हो। करूणासिन्धु–स्वरूप शचीपुत्र की जय हो, जय हो। चैतन्य के बन्धु नित्यानन्द की जय हो, जय हो। राजपण्डितदुहिता के प्राणेश्वर की जय हो। कृपामय कलेवर स्वरूप नित्यानन्द की जय हो। आप जितने भी कर्म किया करते हैं, —हे प्रभु! उन सब कर्मों की जय हो। जय हो। वैष्णवाधिराज नित्यानन्दचन्द्र की जय हो। शंख–चक्र–गदा–पद्म–धर की जय हो, जय हो। प्रभु के विग्रहस्वरूप अवधूतवर की जय हो। अद्वैत जीवन गौरचन्द्र की जय हो, जय हो। सहस्रवदन नित्यानन्द की जय हो, जय हो। गदाधर के प्राण और मुरारि के ईश्वर की जय हो। हरिदास–वासुदेव के प्रियंकर की जय हो। विभिन्न अवतारों में आपने जितने भी पापियों का उद्धार किया है, वह सब बड़ा अद्‌भुत है—इसकी घोषणा सारा संसार कर रहा है। परन्तु हम जैसे दो पातकियों का उद्धार देखकर आपकी पूर्व महिमा कम हो गई है। कारण, अजामिल–उद्धार का जो महत्त्व है, वह हम दोनों के उद्धार से छोटा पड़ गया है। सच कहते हैं,—हम कोई स्तवन नहीं कर रहे हैं। मुक्ति का अधिकारी होना अजामिल के लिए उचित ही था। क्योंकि कोटि ब्रह्म–संहार करने पर भी यदि कोई आपका नाम लेता है, तो तुरन्त उसको मोक्ष–पद मिल जाता है—वेद इस सच्चाई को कहते हैं। आपके

इस प्रकार के प्रभावशाली नाम का उच्चारण अजामिल ने किया था। इस कारण अजामिल का मोचन कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वेदों के सत्य की स्थापना करने के लिए आपका अवतार हुआ है। यदि आपने उद्धार नहीं किया होता, तो वेद मिथ्या हो जाते। हम दोनों ने आपके प्रिय शरीर के प्रति द्रोह का आचरण किया था। फिर भी आपने हम दोनों का उद्धार कर दिया। हे प्रभु! अब आप ही सोचकर देखिये कि, आपमें और हममें कितने कोटिप्रभेद वर्तमान हैं। अजामिल के मुख से 'नारायण' नाम सुनकर चार महाजन उपस्थित हुये, यह अजामिल ने स्वयं देखा। हमने आपके शरीर में से रक्त बहाकर देखा कि, आप अपने साथ सांगोपांग, अस्त्र, पारिषद सबको लेकर विराजमान हैं। इस सब महिमा का अपने गोपान करके रखा था। हे प्रभु! अब महिमा को आपने गोपन करके रखा था। हे प्रभु! अब महिमा की सीमा व्यक्त हो गई है। अब वेद स्वयं महाबलवन्त हो गया है। तब अनन्तदेव उच्च कण्ठों से (सहस्रों मुखों से) आपकी महिमा का कीर्तन किया करेंगे। आपकी गोपनीय गुणग्राम अब प्रकाशित हो गया है। हे प्रभु! "निर्लक्ष्य-उद्धार" (अयोग्य जीव का उद्धार) इसे कहते हैं। यदि आप ये कहें कि कंस-आदि दैत्यगणों ने भी द्रोहाचरण करके अंत में मोक्ष को प्राप्त किया था, परन्तु आप स्वयं मन में विचार कीजिये, गुप्तभाव से वहाँ कितने सारे उद्देश्य मौजूद थे। उन राजाओं ने निरन्तर आपको देखा था। क्षत्रिय धर्मानुसार उन सबने आपके साथ युद्ध किया था, परन्तु डर के मारे हृदय में निरन्तर वे आपका ही चिन्तन करते रहे थे। तथापि द्रोहपाप से उनको छुटकारा नहीं मिला और सभी राजा अपने अपने वंश के साथ मारे गये। आपके दर्शन करके उन्होनें तो अपने जीवन का त्याग कर दिया, फिर किस महापुरुष का उनको स्पर्श प्राप्त हो पाया? जो भगवतजन हमारी छाया का स्पर्श होने के कारण गंगा में स्नान किया करते थे, वे अब हमें स्पर्श कर रहे हैं। हे प्रभु! सब प्रकार से आपकी यह महिमा महान है। इसे किससे छिपाकर रखेंगे? उसे तो अब सभी अच्छी तरह से जान गये हैं। महाभक्त गजराज ने आपका स्तवन किया और आपने उसे एकांत शरण देखकर मुक्ति दिला दी। असुरी पूतना ही केवल दैविक उपमा नहीं है। अघबक आदि सभी असुरों के प्रति आपकी कृपा की कोई सीमा नहीं है। वे सब अपने-अपने शरीरों को त्याग कर दिव्यगति को प्राप्त हुये हैं। बिना वेद इसे देखने की शक्ति किसमें है? इन दो पातकी-शरीरों का आपने जिस प्रकार से उद्धार किया है, इसे सारे संसार ने साक्षात्रूप से देखा है। आपने जितने भी पातकियों का उद्धार किया है, इसे सारे संसार ने साक्षात्रूप से देखा है। आपने जितने भी पातकियों का उद्धार किया है, सभी में कुछ-न-कुछ कारण वर्तमान था। परन्तु हम दोनों ब्रह्मदैत्य में कोई भी हेतु नहीं होने पर भी अपने हमारा उद्धार किया है। केवल आपकी करूणा ही हमारा कारण है।" ऐसा कहते हुये जगाइ-माधाइ क्रन्दन करने लगे। चैतन्य गोसाईं ने इस प्रकार की अपूर्वता (अनोखी लीला) का प्रकाशन किया।

(२४७) गौः भाः—'शुद्धा सरस्वती' शब्द का तात्पर्य जीवों की शब्द के विषय में विद्व द्रूढ़िवृत्ति की सेवामयी मूर्त्ति की अवतारणा है। विद्धा सरस्वती जीव को पुष्करावादी, सानकी, खरोष्ठी एवं ब्राह्मी भाषाओं के शब्दसमूहों के साथ शब्दों का भेद उत्पन्न कराती है, इससे वे सरस्वती देवी की विद्धोपचार-सहित पूजा

करने की चाहत से सरस्वतीपति बनना चाहते हैं; परन्तु शुद्धा–सरस्वती के पति 'नारायण' हैं—यह बात उनकी उपलब्धि में नहीं आती है। इसलिए विद्धा सरस्वती बनने की चेष्टा से वे लोग अंत में रावण के ही शिष्य बन जाते हैं।

(२५०) गौः भाः—नित्यानन्द–प्रभु विश्वम्भर की दस प्रकार से सेवा करके उनको धारण करते हैं। इसलिए उनका नाम है—'विश्वम्भरधर'। श्रीनित्यानन्द का चरणाश्रय छोड़कर जीव विश्वम्भर के विषय में कोई भी धारण नहीं कर सकता है।

(२५१) गौः भाः—''आचार्य मां विजानीयान्ना–वमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्तर्यबुध्यासूयेत गुरुः॥" "आपनि आचरि' धर्म जीवरे शिखाय।" श्रीगौरसुन्दर, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैत प्रभु—ये सब विष्णुतत्त्व एवं श्रीअद्वैतत्त्व हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु परात्पर तत्त्व एवं श्रीअद्वैत प्रभु—परतत्त्व हैं। श्रीगौरलीला में इन सभी ने अपने आचरण के द्वारा नाम–विनोद–लीला का आचार एवं प्रचार किया है। जिन लोगों का अपना आचरण श्रीचैतन्य–शिक्षा के अनुकूल होता है, वे ही श्रीनित्यानन्द के अधिकारी होने के लिए श्रीतिन्यानन्द–चरणाश्रय के अधिकारी होने के लिए श्रीनित्यानन्द–चैतन्य के सभी कार्य—अपने नाम विनोदरूप आचार में प्रतिष्ठित हैं। श्रीनित्यानन्द–चैतन्य के सभी कार्य—आचार्य श्रीअद्वैतप्रभु के आचरण में संशिलष्ट हैं। केवलाद्वैत–विचार से श्रीअद्वैत की वाणी में अचिन्त्यभेदाभेद के सर्वकार्य की प्रतिष्ठा प्रचारित हुई है। उस प्रचार के अनुकूल आचरण का परित्याग करके 'आचार्यनन्दन'—परिचय के आकांक्षी, बलराम, स्वरूप ने जो आचार–बहिर्भूत कार्य किया है, वह चैतन्य–नित्यानन्द के सब कार्यों की प्रतिकूल चेष्टा है। कृष्ण एवं गोपाल का आचरण–नाम विनोदाचार्य का तात्कालिक अनुकरण–मात्र है। श्रीमद् अच्युताचार्य ने श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी के आचरण का अनुगमन किया है, अतः उनका आचार्यत्व सर्वतोभावेन समादृत है। जिस समय निजी–नाम–विनोदाचार्य श्रीअद्वैत प्रभु के आचरण की विस्मृति ने उनके अनुगत परिचय के आकांक्षी जनों में प्रबलता प्राप्त की थी, उस समय श्रीनिवास आचार्य, श्रीगौड़ीयगण की आचार्य–पदवी पर प्रतिष्ठित हुये थे। विषय–जातीय आचार्य प्रकाशावतारगण ने आश्रयजातीय आचार्य में श्रीगौर–नित्याननद का सभी कार्यसमूह निहित किया है। मुम्बई प्रदेश में नामदेवाचार्य ने नामकौमुदीकार लक्ष्मीधर कि विचार के अनुकूल जिस कीर्तन का प्रचार किया था, उस रूप ऐश्वर्यमिश्रित विट्ठलाचार्य को सम्पूर्णभाव में ग्रहण न करने पर भी आचार्य श्रीनिवास के नाम–कीर्तन के साथ नाम–रसास्वादन की लीला गौड़ीय–वैष्णव–जगत ने प्राप्त की थी। अचिन्त्यभेदाभेद विचार पर आक्रमण न करके निजी–नाम–विनोदाचार्यों के अचिन्त्यभेदाभेद–विचार ग्रहण का सही आदर्श है। जो लोग नित्यानन्द–चैतन्य का सभी कार्य करने के लिए सर्वतोभावेन प्रविष्ट हैं, उनकी शुद्धभक्ति के स्रोत श्रीनामविनोद का सर्वकार्य प्रतिष्ठित होता है।

'निजी–नाम'–शब्द से 'कृष्णनाम' को ही उद्दिष्ट किया जाता है। जो कृष्णनाम—नामी के साथ अभिन्न है—जिस कृष्णनाम संकीर्तन के प्रचारक श्रीकृष्ण–चैतन्यदेव ने नाम–संकीर्तनकारी के रूप में कृष्णभजन का सर्वांग सौन्दर्य प्रकटित किया है–जिन नित्यानन्द ने गौड़ीयजनों के नामाचार्य होकर निजी–नाम–विनोदाचार्य श्रीहरिदास के साथ श्रीनवद्वीपनगर के घर–घर में श्रीचैतन्यशिक्षा का प्रचार किया था, उन

निजी-नाम विनोदाचार्यगण की नित्यकाल जय हो, जय हो। प्राचीन नचद्वीप के पल्ली विशेष श्रीगोद्रुमद्वीप में जिन्होंने श्रीनित्यानन्द के नामहट्ट स्थानपूर्वक आचरण-नैपुण्य प्रदर्शन किया है, उन सब निजी-नाम-विनोदाचार्यगण की बारम्बार जय हो। "नदीया गोद्रुमे नित्यानन्द-महाजन। पातियाछे नामहट्ट जीवेर कारण"॥ जिस श्रीगोद्रुम में नित्यानन्द के नामहट्ट-प्रचार के फलस्वरुप वर्तमान गौड़ीयब्रुवजगत् (केवल प्रचार के गौड़ीयजन) में अपराध रहित नामभजन की कथा प्रचारित हुई है, उस 'निजी-नाम'-शब्द से गौण नाम परिर्जित शब्द की अविद्वद्रूढ़िवृत्ति सम्पूर्णभाव से निरस्त हुई है। जिस नित्यानन्द के नामहट्ट-स्थापन-प्रभाव से श्रीअद्वैतादि भक्तवृन्द ने नदीया के घाट-घाट पर नामानन्द वितरण किया था, उस अचिन्त्यभेदाभेद-वेदान्त-प्रतिपाद्य नामभजन प्रणाली के आचरणशीलजनों की सभी प्रकार से जय हो, जय हो।

(२५४) गौः भाः—श्रीसनातनमिश्र ने राजपंडित वंश में जन्मग्रहण किया था। श्रीगीतगोविन्द के लेखक जयदेव आदि कविगण 'राजपंडित' नाम से विख्यात थे। उस राजपंडितवंश में ही दुहितृ बनकर श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीश्रीगौर-नारायण की सेवा करने के लिए अवतरित हुई थीं। श्रीगौरनारायण का ऐश्वर्य से हटकर विप्रलम्भ-चेष्टा-प्रदर्शन देखकर श्रीलक्ष्मी स्थिर न रह पायीं। वे भगवान् की विप्रहम्भलीला की सेवा करने के लिए वैकुण्ठ के सारे ऐश्वर्य का परिहार करके श्रीचैतन्यलीला के समय श्रीचैतन्य-सेवा में अपना विप्रलम्भानुगत्य (विरह भाव में अवस्थान) प्रकटित किया था। श्रीकृष्ण की गौरलीला में सम्भोगरस की विचार-समृद्धि के लिए जो विप्रलम्भ दुर्भागरस के लिए परम वरणीय है, उसे दिखाने के लिए ही गौरसुन्दर का राजपंडित-दुहितृप्राणेश्वरत्व (राजपंडित की कन्या का प्राणेश्वर होना) है। उस लीला की जय हो। ब्राह्मी, खरोष्टी, सानकी, पुष्करासादी इत्यादि आकर-भाषा समूह से उत्थित विभिन्न भाषाओं के शब्दसमूह जिस पाण्डित्य को प्रकाशित करते हैं, वह पाण्डित्य विद्वद्रूढ़िवृत्ति के प्रकाश से क्षीणप्रभ (दुर्बल) हो जाता है। जड़ भोग-पिपासा जीव को अविद्या-ग्रस्त करके अविद्या-ग्रस्त करके सेवाविमुख करवा देती है। परन्तु श्रीजयदेव आदि चिन्मय कविसमूह ने अष्टाध्यायी गीतगोविन्द के प्रारम्भिक-श्लोक में उन लोगों के वंश में उत्पन्न शक्ति के शक्तिमत्तत्त्व-विज्ञान में आने वाले विचार का प्राकट्य साधन किया था।

(२५५) गौः भाः—श्रीनिवासनन्द प्रभु—वैष्णवाधिरीराज हैं। भगवत्सेवा के लिए सदैव उत्कण्ठित रहते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उसी कृष्णान्वेषण लीला में कृष्णसेवा का सर्वोत्कृष्ट आदर्श प्रदर्शित करके भगवान् गौरसुन्दर के आधिराज्य (कृपाधिकार) को प्राप्त किया है। श्रीनित्यानन्द ने जिस प्रकार से कृष्णप्रेम-प्रदान लीला में चैतन्य-महावदान्य का वितरण किया है, वैसी कृपा गौड़ीय के प्रति और किसी ने नहीं की है। उनकी कृपा से श्रीगदाधर-श्रीरूप-श्रीसनातन-श्रीस्वरूप-रघुनाथ आदि ने ऐसी आशा का संचार किया है कि भगवान् गौरसुन्दर के अंतरंग जनों की सेवा का अधिकार लाभ प्रपंच में आने वाले सभी जीवों को मिलने की संभावना है—ऐसे "पातियाछे नामहट्ट जीवेर कारण" उन वैष्णवाधिराज नित्यानन्द का नामविनोद कार्य ही उनका आचार्यत्व है। उस वस्तु की बारम्बार जय हो।

(२६३) गौः भाः—तथ्य—"ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्यहाघवान्। श्वादः पुक्कशको वापि शुद्ध्यरन् यस्य कीर्तनात्"॥—(भाः ६/१३/८);

"ब्रह्महा हेमधारी वा बालहा गोघ्न एव च।
मुच्यते नाममात्रेण प्रसादात् केशवस्य तु॥"
—(पाद्मोत्तर ५१ अः)।

इस जगत् में जितने प्रकार के अपराध हो सकते हैं, उनमें सबसे बड़ा अपराध है वैष्णव–ब्राह्मण से विद्वेष करना एवं विष्णुभक्ति को त्यागकर ब्राह्मणता का संहार करना। इसके समान अपराध और नहीं है। चतुर्दश–लोकों में ब्रह्मज्ञ की श्रेष्ठता है। उस ब्रह्मज्ञ कुल में एकमात्र विष्णुभक्ति ही ब्रह्मज्ञता का उपान्त (परम) फल है एवं विष्णुभक्ति के प्रभाव से भगवद्प्रेम ही चरम–फल के रूप में कथित हुआ है। भक्ति विद्वेषी जीवों की नामभजन में रूचि नहीं होती है। तभी उनमें भक्ति को छोड़कर अन्य पथ–ग्रहण करने का अनुराग दिखाई देता है। उसको ही 'ब्रह्मवध' कहते है; परन्तु उस प्रकार का ब्रह्मवध करने पर भी यदि भक्त की कृपा से उत्पन्न हुये भावानुगमन से जीव में नामभजन प्रवृत्ति का उदय होता है, तब कोटि–कोटि ब्रह्मज्ञवधों के अपराध से मुक्त होकर वह नाम–नामी की अभिन्नता उपलब्ध कर लेता है। उस समय जीव के लिए शब्द की अविद्वद्रूढ़ि स्तब्ध हो जाती है। कृष्णनाम ही—कृष्ण है। उससे अलग अन्य शब्द–आदि जब तक विद्वद्रूढ़ि में प्रकाशित नहीं होते, तब तक उसमें भेदकल्पना के कारण महा–अमंगल का वरण करके जीव कृष्णवैमुख्य प्राप्त करने के लिए शब्द समूह का अन्यार्थ करने में व्यस्त रहता है। अचिन्त्य–भेदाभेद–विचार (चिन्तन के अतीत भिन्नता एवं अभिन्नता का विचार) शब्द की अविद्वद्रूढ़िवृत्ति के अवरता–वैषम्य (निकृष्ट–भोग) को निरस्त करके चिन्तनीय भोग्य जगत् के भेद का नाश करता है। इस कारण प्रापंचिक भोग–बुद्धि से जीवों को परित्राण मिलता है।

(२६४) गौः भाः—अजामिल नानाप्रकार के कुभोगों में आबद्ध था। भगवान् के नामोच्चारण के प्रभाव से उसको उनसे मुक्ति मिली थी। साधारण विचार से वैकुण्ठनाम को प्रांपचिक शब्द समझने से जो अविचार उपस्थित होता है, उससे ब्रह्मवध–आदि अपराध वैकुण्ठ नाम के द्वारा अपसारित (दूर) नहीं होते हैं। परन्तु जो लोग सम्बन्धाभिधेय–प्रयोजनविशिष्ट हैं, वे ही समझ सकते हैं कि, वैकुण्ठ–नामोच्चारण के फलस्वरूप अजामिल को मुक्ति मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(२६५) गौः भाः—हम लोग पाप–परायण जीव हैं। वैकुण्ठ–नाम के द्वारा ही हम लोगों का उद्धार होने की बात वेद–शास्त्रों में कथित हुई है। उसी सत्यज्ञान की स्थापना करने के लिए ही आपका अवतार हुआ है। यदि आप हम लोगों का उद्धार न करें, तो बौद्ध–जैन आदि वेद–विरोधी सम्प्रदाय सम्बन्ध–अभिधेय–प्रयोजन ज्ञान को 'मिथ्या' मानने लगेंगे।

(२६६) गौः भाः—वेद–विरोधी तार्किक–सम्प्रदाय का विचार यह है कि, वे लौकिक कर्मफल के ऊपर अधिक विश्वास करते हैं। हम लोगों ने दस्युवृत्ति का अवलम्बन करके आपके ऊपर आक्रमण किया था, तर्कहत विचार से हम लोगों के प्रति दण्डविधान करना ही आपका स्वभाव होना उचित है; परन्तु इसके प्रतिकूल आपने हम लोगों का उद्धार किया है। यह लोकातीत ज्ञान—वेद–प्रतिपाद्य है।

(२६७) गौः भाः—हमारा द्रोह और आपकी कृपा—इन दोनों विषयों की विवेचना करने से यह जानकारी मिलती है कि, आपमें और हममें कितने कोटि का प्रभेद है।

(२६८) गौः भाः—अजामिल ने जिस समय 'नारायण' नाम उच्चारण किया था, उस समय चार 'वैकुण्ठदूतों' उनके निकट आगमन किया था, अजामिल ने उनके दर्शन किये थे।

(२६९) गौः भाः—विद्वेषपूर्वक हम लोगों के द्वारा आपके अंग पर आघात करने के कारण आपका रक्तपात हुआ है। इसके फलस्वरूप हमें आपका अंग, उपांग, अस्त्र एवं पारिषद—सभी का परिचय मिला है। 'अंग' शब्द से—नित्यानन्द और अद्वैत, 'उपांग' शब्द से—श्रीवास आदि भक्तगण, 'अस्त्र'—हरिनाम एवं 'पार्षद'—गदाधर, दामोदर, स्वरूप इत्यादि। अन्य-विचार से—'अंग' शब्द से कृष्ण का परम-मनोहरत्व, 'उपांग' शब्द से—भूषण, महाभाववैशिष्ट—अस्त्र, सर्वदैकांतवासी—पार्षदसमूह।

(२७१) गौः भाः—आपके प्रभाव एवं आचरण से सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनततव परम परिस्फुट हुआ है। अतएव अब अनन्तदेव ऊँचे स्वर से वैदिक सत्य का कीर्तन करने में सक्षम होंगे।

(२७२) गौः भाः—आपका गोपनीय गुणग्राम (गुणसमूह) अभी सबके सामने इस लोक में प्रकाशित हुआ है। अहैतुकी कृपा-पूर्वक अयोग्य जीवों के उद्धार का यह ज्वलंत दृष्टांत है।

(२७४-२७६) गौः भाः—आपके मन में गुप्तभाव से कितने सारे उद्देश्य हैं, उन्हें स्वयंवरकाल में विरोधकारी नृपतिवृन्द ने देखा है।—(भाः १०/५३-५४ अः द्रष्टव्य है)।

(२७८) गौः भाः—जो सब भागवत् हमारी छाया का स्पर्श हो जाने से गंगास्नान करके पाप-निर्मुक्त होते थे, वे ही अब हम लोगों को स्पर्श कर रहे हैं।

(२८०) गौः भाः—तथ्य—त्रिकुट-पर्वत के द्रोणीदेश में वरूण क ऋतुमत-उद्यान में एक परम-मनोहर सरोवर विद्यमान है। किसी समय एक गज करिणीगण सहित वहाँ आया और जलक्रीड़ा में मत्त हो गया। तब एक बलवान् कुम्भीर (ग्राह) ने गजेन्द्र के पैर को पकड़ लिया। गजेन्द्र इससे छुटकारा पाने की चेष्टा में हजार साल तक उस कुम्भीर के साथ युद्ध करके भी उसके ग्रास से मुक्त नहीं हो पाया एवं क्रमशः हीनबल एवं अनन्योपाय होकर उसने इन्द्रद्युम्न-नामक स्तोत्र के द्वारा श्रीहरि का स्तवन किया। इस पर भगवान् हरि ने वहाँ आविर्भूत होकर चक्र के द्वारा नक्र (ग्राह) का वदन छिन्न करके गजेन्द्र को मुक्ति प्रदान की—(भाः ८/२/३ अः)।

अपूर्व-दर्शन से वैष्णवों का
विस्मय एवं गौरस्तुति—

यतेक वैष्णवगण अपूर्व देखिया।
जोड़हाते स्तुति करे सबे दाण्डाइया॥२८७॥
''ये स्तुति करिल प्रभु ए दुइ मद्यपे।
तोर कृपा बिना इहा जाने का'र बापे॥२८८॥
तोमार अचिन्त्य शक्ति के बुझिते पारे?
यखन येरूपे कृपा करह याहारे॥''२८९॥

(२८७-२८९) प० अनु०—इस अपूर्वता (अनोखी लीला) को देखकर सभी वैष्णव खड़े होकर हाथ जोड़ते हुये स्तवन करने लगे। वैष्णवों ने कहा,—"हे प्रभो! इन दोनों मद्यपों ने जो स्तवन किया है, उसे आपकी कृपा के बिना समझने में किसकी योग्यता है? आपकी अचिन्त्य शक्ति को कौन जान सकता है? कब किस पर किस प्रकार से आप कृपा करेंगे, यह केवल आप ही जानते हैं।

महाप्रभु के द्वारा जगाइ-माधाइ को सेवक

के रूप में अंगीकार करना एवं वैष्णवकृपा

का वैशिष्ट दिखाने के लिए वैष्णवों के निकट दोनों के लिए कृपाभिक्षा–

प्रभु बले,—''ए दुइ मद्यप नहे आर।
आजि हैते एइ दुइ सेवक आमार॥२९०॥
सबे मिले अनुग्रह कर ए दु'येरे।
जन्मे जन्मे आर येन आमा ना पासरे॥२९१॥
येरूपे याहार ठाँइ आछे अपराध।
क्षमिया ए दुइ प्रति करह प्रसाद॥''२९२॥

(२९०–२९२) प० अनु०—प्रभु बोले,—"ये दो अब और मद्यप नहीं रहे हैं। आज से ये दोनों मेरे सेवक हैं। तुम सब मिलकर इन दोनों पर कृपा करो, ताकि जन्म–जन्मान्तर में भी ये कभी मुझे भूल न जाएँ। जिस किसी के निकट जिस प्रकार का भी अपराध इन दोनों ने किया है, उस सब अपराध को आप क्षमा करके इन दोनों के प्रति कृपा कर दीजिए।

जगाइ–माधाइ द्वारा भक्तों के चरण पकड़ना एवं भक्तों का आशीर्वाद–

शुनिया प्रभुर वाक्य जगाइ–माधाइ।
सबार चरण धरि' पड़िला तथाइ॥२९३॥
सर्व–महाभागवत् कैल आशीर्वाद।
जगाइ–माधाइ हैल निरपराध॥२९४॥

(२९३–२९४) प० अनु०—प्रभु के वाक्य सुनकर जगाइ–माधाइ ने सभी वैष्णवों के चरणों को पकड़कर प्रणाम किया। सभी महाभागवतों ने उन दोनों को आशीर्वाद दिया और जगाइ–माधाइ दोनों निरपराध हो गये।

महाप्रभु के द्वारा जगाइ–माधाइ को आश्वासन प्रदान, नित्यानन्द–कृपा का वैशिष्ट–कीर्तन, दोनों का पाप–ग्रहण एवं इसके प्रसाणस्वरूप अपने अंग में कृष्णवर्ण प्रदर्शन, उसे देखकर अद्वैत की उक्ति–

प्रभु बले,—''उठ उठ जगाइ–माधाइ।
हइला आमार दास—आर चिंता नाइ॥२९५॥
तुमि–दुइ यत किछु करिले स्तवन।
परम सुसत्य—किछु ना हय खंडन॥२९६॥
ए शरीरे कभु का'रो हेन नाहि हय।
नित्यानन्द–प्रसादे से जानिह निश्चय॥२९७॥
तो–सबार यत पाप मुञि निलुँ सब।
साक्षाते देखह भाइ, एइ अनुभव॥''२९८॥
दुइ जन–शरीरे पातक नाहि आर।
इहा बुझाइते हैला कालिया–आकार॥२९९॥
प्रभु बले,—''तोमरा आमारे देख केन?''
अद्वैत बलये—''श्रीगोकुलचन्द्र येन॥''३००॥

(२९५–३००) प० अनु०—प्रभु बोले,—"उठ जाओ, जगाइ–माधाइ! उठ जाओ। तुम दोनों मेरे दास बन गये हो। अब आगे कोई चिन्ता की बात नहीं है। तुम दोनों ने जो कुछ भी स्तवन किया है, वह परम सुसत्य है। उसका कुछ भी खंडन नहीं किया जा सकता है इस शरीर के द्वारा कभी भी किसी का ऐसा नहीं होता है। यह निश्चितरूप से जान लो कि, नित्यानन्द की कृपा से ही यह सब कुछ हुआ है। तुम दोनों के सभी पाप मैंने ले लिये हैं। हे भाई, इस अनुभव का साक्षात् दर्शन कर लो।" दोनों के शरीर में और पातक शेष नहीं रह गया था, इसे समझाने के लिए प्रभु ने कालिया का आकार (कृष्णवर्ण) धारण कर लिया। प्रभु बोले,—"तुम सब मुझे कैसा देख रहे हो? "अद्वैत बोले,—"आप साक्षात् श्रीगोकुलचन्द्र जैसे दिखाई दे रहे हैं।"

(२९८) गौः भाः—महाप्रभु ने कहा,—"हे भाइयों! जगाइ–माधाइ के जितने भी पाप हैं, वे सब मैंने ग्रहण कर दिए हैं। तुम सब इसका अनुभव कर सकोगे।"

(२९९) गौः भाः—जगाइ-माधाइ के सारे पापों ने महाप्रभु के कलेवर में आश्रय ग्रहण के सारे पापों ने महाप्रभु के कलेवर में आश्रय ग्रहण कर लिया था, इसलिए उनका शरीर काला हो गया। अद्वैतप्रभु ने कहा,—"गौरसुन्दर साक्षात् श्रीगोकुलचन्द्र (कृष्ण) की भाँति प्रतीत हो रहे हैं।"

(३००) गौः भाः—केन,—किस रूप, कैसा।

अद्वैत की उक्ति सुनकर प्रभु का हास्य एवं वैष्णवों की हरिध्वनि—

अद्वैत-प्रतिभा शुनि' हासे विश्वम्भर।
'हरि'-बलि' ध्वनि करे सब-अनुचर॥३०१॥

(३०१) प० अनु०—अद्वैत की प्रतिभा सुनकर विश्वम्भर हँसने लगे और सभी अनुचर वैष्णवगण 'हरि' बोलकर ध्वनि करने लगे।

कृष्णकीर्तन से जगाइ-माधाइ के पातकों का वैष्णवनिन्दक के शरीर में आश्रय एवं दोनों की पापों से मुक्ति—

प्रभु बले,—"काला देख दुइर पातके।
कीर्तन करह—सब याउक निन्दके॥"३०२॥

(३०२) प० अनु०—प्रभु बोल,—"दोनों के पातकों (पापों) के कारण तुम मुझे काला देख रहे हो। कीर्तन करो, ताकि सभी पाप वैष्णव-निन्दकों के पास चले जायें।"

प्रभु के कथन से सभी का उल्लास एवं नृत्यकीर्तन—

शुनिया प्रभुर वाक्य सबार उल्लास।
महानन्दे हइल कीर्तन-परकाश॥३०३॥
नाचे प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द-संगे।
बेड़िया वैष्णव सब यशः गाय रंगे॥३०४॥
नाचये अद्वैत—या'र लागि' अवतार।
याहार कारणे हैल जगत्-उद्धार॥३०५॥
कीर्तन करये सबे दिया करतालि।
सबाइ करेन नृत्य हये कुतूहली।
प्रभु-प्रति महानन्दे का'रो नाहि भय।
प्रभु-संगे कत लक्ष ठेलाठेलि हय॥३०७॥

(३०३-३०७) प० अनु०—प्रभु के वाक्यों को सुनकर सबमें उल्लास छा गया और सभी महान् आनन्द में कीर्तन करने लगे। प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द के साथ नृत्य कर रहे थे और उनको घेरकर सभी वैष्णव आनन्द-सहित उनके यश का कीर्तन कर रहे थे। जिनके कारण प्रभु का अवतार हुआ था, जिनके कारण जगत् का उद्धार हुआ था, वे अद्वैत प्रभु भी नृत्य करने लगे। हाथों से ताली बजा-बजाकर सभी कीर्तन कर रहे थे। कुतूहलवश सभी नृत्य भी कर रहे थे। महान् आनन्द में विभोर होने के कारण कोई भी प्रभु से भयभीत नहीं था-प्रभु के साथ कितने ही असंख्य बार उनकी धक्कम-धक्का हो रही थी।

जगाइ-माधाइ के उद्धार की लीला के दर्शन से शचीमाता एवं विष्णुप्रिया को आनन्द—

वधूसंगे देखे आइ घरेर भितरे।
वसिया भासये आइ आनन्द-सागरे॥३०८॥

(३०८) प० अनु०—आई (माता) घर के भीतर से पुत्र-वधू के साथ सब कुछ देख रही थीं और देख-देखकर आई आनन्द-सागर में बह रही थीं।

(३०८) गौः भाः—विष्णुप्रिया के साथ शचीमाता ने घर के भीतर से जगाइ-माधाइ के उद्धार की लीला का दर्शन किया। इससे वे आनन्द में मग्न हो गई।

मद्यपद्वय के सौभाग्य से सभी को अनिवार्य प्रेमावेश—

सबेइ परमानन्द देखिया प्रकाश।
काहारो ना घुचे कृष्णावेशेर उल्लास॥३०९॥
या'र अंग परशिते रमा भय पाय।
से प्रभुर अंग–संगे मद्यम नाचय॥३१०॥

(३०९–३१०) प० अनु०—प्रभु के प्रकाश को देखकर सभी परमानन्द में निमग्न हो रहे थे। किसी का भी कृष्णावेश–उल्लास थम नहीं रहा था। जिनके अंगों का स्पर्श करने में रमा को भी भय होता है, उन प्रभु के अंग–संग में मद्यप नृत्य कर रहे हैं।

वैष्णवनिन्दा न करने वालों के लिए चैतन्यकृपा सुलभ एवं वैष्णव–निन्दकों को दुर्गति की प्राप्ति—

मद्यपेरे उद्धारिला चैतन्य–गोसाईं।
वैष्णवनिन्दके कुम्भीपाके दिला ठाञि॥३११॥
निन्दाय ना बाड़े धर्म—सबे पाप लाभ।
एतेके ना करे निन्दा सब महाभाग॥३१२॥
दुइ दस्यु दुइ महाभागवत करि'।
गणेर सहित नाचे गौरांग–श्रीहरि॥३१३॥

(३११–३१३) प० अनु०—चैतन्य महाप्रभु ने मद्यपों का तो उद्धार कर दिया, परन्तु वैष्णवनिन्दकों को कुम्भीपाक नरक में धकेल दिया है। निन्दा से धर्म को बढ़ावा नहीं मिलता है—इससे तो केवल पाप प्राप्त होता है। इसीलिए कोई भी महाभाग निन्दा नहीं करता है। दोनों दस्युओं को भी महाभागवत बनाकर गौरांग श्रीहरि ने अपने निजजनों के साथ नृत्य किया।

(३१२) गौः भाः—इस जगत् में भगवान् के भक्त किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं। निन्दा करने वाला 'पापी' अथवा 'अधार्मिक' नाम से विख्यात होता है। अविद्यमान दोष के आरोप का नाम—निन्दा है। जो लोग अवांतर उद्देश्य के वशवर्ती होकर परद्रोह की मानसिकता से दूसरों की प्रशंसा सहन नहीं कर पाते और अवैध रूप से दोषारोपण किया करते हैं, उन लोगों को दिन–प्रतिदिन अमंगल मिलता रहता है। अनिन्दनीय वैष्णवों के ऊपर जो व्यक्ति विद्वेष–पूर्वक दोषों का आरोप करता है, उसे कुम्भीपाक नरक में गिरकर भयानक यंत्रणाएँ भोगनी पड़ती हैं। "सर्व महागुणगण वैष्णव–शरीरे"—इस बात को बिना समझे, जो सब पापमतिजन अवैष्णव के साथ वैष्णव का समज्ञान करते हैं, (अर्थात वैष्णवों और अवैष्णवों को समान समझते हैं, उन लोगों को भी कोई सुविधा नहीं मिलती है। अवैष्णव के आचरण की निन्दा करना 'सदुपदेश' कहलाता है। विष्णुभक्ति को छोड़कर जीवों को प्रत्येक अनुष्ठान निन्दनीय है। विष्णुभक्ति के छल से पापिष्ठजन कभी–कभी निन्दित कर्म किया करते हैं। उसके परिहार के लिए किये गये उपदेश को 'निन्दा' नहीं कहा जा सकता।

महाप्रभु की कृपा से दोनों दस्युओं को महाभारत तत्त्व की प्राप्ति; प्रभु के निकट उपविष्ट वैष्णवों का धूल–धूसरित अवस्था में भी मलिनता–रहित–ज्ञान—

नृत्यावेश बसिया ठाकुर विश्वम्भर।
बसिया चौदिके बेड़ि' वैष्णव–मण्डल॥३१४॥
सर्व–अंगे धूला चारि–अंगुलि–प्रमाण।
तथापि सबार अंग 'निर्मल' गेयान॥३१५॥

(३१४–३१५) प० अनु०—नृत्य के आवेश में ठाकुर विश्वम्भर विश्राम के लिए एक स्थान पर बैठ गये। चारों ओर से उनको घेरकर वैष्णव–मण्डली ने अपना–अपना आसन ग्रहण

कर लिया। सभी के अंगों में चार-चार अंगुल परिमाण में धूल जमी हुई थी, फिर भी सभी के अंग निर्मल लग रहे थे।

गौरसुन्दर के द्वारा जगाइ-माधाइ के देह को आत्मसात् करना एवं दोनों देहों का अप्राकृतत्त्व ख्यापन—

पूर्ववत् हैला प्रभु गौरांगसुन्दर।
हासिया सबारे बले प्रभु विश्वम्भर॥३१६॥
''ए दु'येरे पापी-हेन ना करिह मने।
ए दुयेर पाप मुञि दहिलुँ आपने॥३१७॥
सर्वदेहे मुञि करोँ, बोलो, चलोँ, खाँउ।
तबे देहपात, सबे मुञि चलि याँउ॥३१८॥
येइ देहे अल्प दुःखे जीव डाक छोड़े।
मुञि बिना सेइ देह पुड़िले ना नड़े॥३१९॥
तबे ये जीवेर दुःख—करे अहंकार।
''मुञि करोँ, बलोँ बलि' पाय महा-पार॥३२०॥
एतेके के मुँह कैल दुइ जने।
करिलाम आमि, घुचाइलाम आपने॥३२१॥
इहा जानि' ए दु'येरे सकल वैष्णव।
देखिवा अभेद-दृष्टेय येन तुमि-सब॥३२२॥

(३१६-३२२) प० अनु०—प्रभु श्रीगौरांगसुन्दर पहले जैसी अवस्था में लौट आये। फिर विश्वम्भर हँसकर सभी से कहने लगे—"इन दोनों को पापी-जैसा मत समझना, इन दोनों के पापों को मैंने दग्ध कर डाला है। सबके देह में 'मैं' करता हूँ, बोलता हूँ, चलता हूँ खाता हूँ। जब 'मैं' चला जाता हूँ, तब देह का विनाश हो जाता है। जिस देह में थोड़े से दुःख के कारण जीव दुःखी हो जाता है, मेरे बिना वही देह दग्ध होने पर भी हिलता तक नहीं है। केवल अंहकार के कारण ही जीवों को दुःख होता है। "मैं करता हूँ, मैं बोलता हूँ," ऐसी भावना से उसे बड़ा दुख मिलता है। उन दोनों ने जो कुछ भी किया है, वह मैंने ही किया और मैंने ही इससे छुटकारा दिलवाया—यह जानकर सभी वैष्णव इन दोनों को अभेद-दृष्टि से देखें। इस प्रकार से देखें, जैसे अपने-आपको देख रहे हों।

(३१५-३१६) गौः भाः—श्रीमन् महाप्रभु को चारों ओर से घेरकर जो सभी वैष्णव बैठे हुये थे, उनके सारे अंगों मे चार-चार अंगुल परिमाण में धूल लगी हुई थी, यद्यपि बहिर्दर्शन से उन लोगों में मलिनता दिखाई दे रही थी, किन्तु वस्तुत वे सभी पूर्णप्रज्ञ एवं मलिनता-रहित परमज्ञानी थे।

(३१८) गौः भाः—दिव्यज्ञान प्राप्त होने पर जीवों में त्रिविध अंहकार नहीं रहता है। उस समय जीव भगवत् पादपद्मों में आत्मसमर्पण करके मुक्त हो जाता है। "दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण। सेइकाले कृष्ण ता'र करे आत्मसम॥ सेइ देह करे ता'र चिदानन्दमय। अप्राकृत देहे कृष्णेर चरण भजय॥" श्रीगौरसुन्दर जगाइ-माधाइ की देह को आत्मसमात् करके उनके द्वारा जो कुछ भी आनुष्ठानिक कार्य करवा रहे हैं, बुलवा रहे हैं, जिस प्रकार से आचरण एवं भोजन करवा रहे हैं, जिस प्रकार से आचरण एवं भोजन करवा रहे हैं, वह सभी विष्णुसेवा के अनुकूल साधित करवा रहे हैं, वह सभी विष्णुसेवा के अनुकूल साधित होता जा रहा है। इस प्रकार से सेव्य भगवान् शरणागत जीव को भगवत्-सेवोन्मुख कराकर सेवकाश्रय के साथ पंचभौति-देह को प्रपंच में संरक्षित करके चले आते हैं।

(३१९) गौः भाः—बद्धजीव थोड़ा-सा दुःख-दर्द पाकर उसे सहन न करने के कारण चिल्लाने लगता है; किन्तु उस देह से जब भगवान् एवं भक्त चले जाते हैं, तब शरीर को अग्नि में दग्ध करने पर

भी वह अपने अधिष्ठान का परिचय नही देता है। भगवान्—अप्राकृत विभु–चैतन्य हैं, जीव—अनुचित पदार्थ है। चेतन के अभाव में चिन्मयी सेवा–प्रवृत्ति न रहने से त्रिविध अंहकार के वशवर्त्ती होकर से इस स्वतंत्रता का यही उपयोग होता है, परन्तु भगवत् सेवा–विमुखजनों का त्रिविध–अहंकार चालित इन्द्रियसमूह शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्त होकर न्यूनाधिक अचिद् धर्म का ही परिचय प्रदान करता है।

(३२०) गौः भाः—जीव भगवत्विमुख होकर अपने–आपको प्रकृति के अन्तर्गत एवं प्राकृत समझने लगता है, इससे त्रिविध अहंकार आकर उसे दुःख के सागर में निमग्न कर देता है। तभी वह त्रिताप से जर्जरित होकर "मैं कर्ता हूँ", "मैं भोक्ता हूँ" इत्यादि रूपों में अभिमान–विशिष्ट हो जाता है।

(३२१) गौः भाः—प्रभु बता रहे हैं कि जगाइ–माधाइ इसी प्रकार के अंहकार में मत्त होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे थे। मैंने स्वयं उनके उस अमंगल का नाश किया है, अर्थात् मैंने उन लोगों को स्वाधीन इच्छा के दुरूपयोगजनित "किया है" "कहा है" इत्यादि कुविचारों से मुक्त कर दिया है।

भक्तों के मुँह से भगवान् का
आहार ग्रहण करना—

शुन एइ आज्ञा मोर, ये हओ आमार।
ए दुये'रे श्रद्धा करि' ये दिव आहार॥३२३॥
अनन्त ब्रह्माण्ड–माझे यत मधु वैसे।
से हय कृष्णेर मुखे दिले प्रेमरसे॥३२४॥
ए दु'येर वट मात्र दिवे येइ जन।
ता'र से कृष्णेर मुखे मधु–समर्पण॥३२५॥

(३२३–३२५) प० अनु०—महाप्रभु ने कहा, —जो मेरा है, वह मेरी इस आज्ञा प्रदान करेगा, वह अनन्त ब्रह्माण्ड में जितने भी मधु हैं, उन्हें कृष्ण के मुँह में प्रदान करने से जैसे प्रेमरस से भरभूर हो जायेगा। इन दोनों को जो वट–मात्र (थोड़ा–सा) भी आहार प्रदान करेगा; उसने कृष्ण के मुँह में मधु–समर्पण किया है। ऐसा समझना होगा।

(३२५) गौः भाः—भगवान् भक्त के मुँह से आस्वादन करते हैं। भक्त अभक्तों की भाँति किसी जड़द्रव्य का भोग नहीं करता है। वह सभी द्रव्यों का भगवान् को भोग लगाकर उनके उच्छिष्ट (जूठा) ग्रहणरूप सेवा–कार्य में सदैव नियुक्त रहता है। इसलिए किसी भगवद्–भक्त को थोड़ी–सी भोजन–सामग्री देने से श्रीकृष्ण को मिष्ठान प्रदान करने का फल प्राप्त होता है। इस प्रसंग में इस अध्याय के २२८ वें श्लोक पर गौड़ीय–भाष्य द्रष्टव्य है।

नग्नमातृक–न्याय अवलम्बनपूर्वक भक्त की
पूर्वावस्था का विचार–दोषावह है—

ए दुइ–जनेरे ये करिब परिहास।
ए दु'येर अपराधे ता'र सर्वनाश॥''३२६॥

(३२६) प० अनु०—जो लोग इन लोगों का परिहास करेंगे, वे इन दोनों के चरणों में अपराधी होकर सर्वनाश को प्राप्त हो जायेंगे।"

(३२६) गौः भाः—पूर्व पापों पर विचार करके जो लोग "नग्नमातृक–न्याय" अवलम्बन–पूर्वक जगाइ–माधाइ को परवर्ती समय (भविष्य) में भी पापी समझेंगे, वे इनके चरणों में अपराधी होकर अपने सर्वनाश का आह्वान करेंगे। "न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्" एवं "अपि चेत् सुदुराचारों" श्लोकद्वय इस प्रसंग में विचेचनीय हैं।

जगाइ–माधाइ के प्रति वैष्णवगण
का वैष्णवोचित सम्मान प्रदर्शन—

शुनिया वैष्णवगण कान्दे महाप्रेमे।
जगाइ–माधाइ–प्रति करे परणामे॥३२७॥

(३२७) प० अनु०—महाप्रभु से यह सुनकर वैष्णवगण महाप्रेम के वश होकर क्रन्दन करने लगे। और जगाइ–माधाइ के प्रति प्रणति–निवेदन करने लगे।

भक्तगण के साथ प्रभु का गंगास्नानार्थ गमन एवं बहुविध जलक्रीड़ा–

प्रभु बले,—''शुन सब भागवतगण।
चल सबे याइ भागीरथीर चरण॥''३२८॥
सर्वगण–सहित ठाकुर विश्वम्भर।
पड़िला जाह्नवी–जले वनमालाधर॥३२९॥
कीर्तन–आनन्दे यत भागवतगण।
शिशुप्राय चंचलचरित्र सर्वक्षण॥३३०॥
महाभव्य बृद्ध सब—सेइ शिशुमति।
एइ मत हय विष्णुभक्तिर शकति॥३३१॥
गंगास्नान महोत्सवे कीर्तनेर शेषे।
प्रभु–भृत्य–बुद्धि गेल आनन्द–आवेशे॥३३२॥
जल देय प्रभु सर्ववैष्णवेर गाय।
केह नाहि पारे—सबे हारिया पलाय॥३३३॥
जलयुद्ध करे प्रभु या'र या'र संगे।
कतक्षण युद्ध करि' सबे देय भंगे॥३३४॥
क्षणे केलि अद्वैत–गौरांग–नित्यानन्दे।
क्षणे केलि हरिदास–श्रीवास–मुकुन्दे॥३३५॥
श्रीगर्भ, श्रीसदाविश, मुरारि, श्रीमान्।
पुरुषोत्तम, मुकुन्द, संजय, बुद्धिमन्तखान्॥३३६॥
विधि, गंगादास, जगदीश नाम।
गोपीनाथ, हरिदास, गरुड़ श्रीराम॥३३७॥
गोविन्द, श्रीधर, कृष्णानन्द, काशीश्वर।
जगदानन्द, गोविन्दानन्द, श्रीशुक्लाम्बर॥३३८॥
अनन्त चैतन्य–भृत्य—कत जानि नाम।
वेदव्यास हैते व्यक्त हइव पुराण॥३३९॥
अन्योन्ये सर्वजन जलकेति करे।
परानन्द–रसे केह जिने, केह हारे॥३४०॥
गदाधर–गौरांगे मिलिया जलकेलि।
नित्यानन्द–अद्वैते खेलये दोर्हे मिलि॥३४१॥

(३२८–३४१) प० अनु०—प्रभु बोले, —"सभी भागवतगण सुनो! चलो, हम सब मिलकर भागीरथी चलें! ऐसा कहते हुये सभी के साथ ठाकुर विश्वम्भर जाह्नवी के जल में स्नान करने के लिए उतरे। कीर्तन के आनन्द में सभी भागवतगण शिशुओं की भाँति हर समय चंचलता करने लगे। परम शिष्टाचारविशिष्ट जन (वृद्धजन) भी शिशुओं जैसे व्यवहार में मस्त हो गये। ऐसी ही होती है विष्णुभक्ति की शक्ति। गंगास्नान रूपी महोत्सव में और कीर्तन के अंत में आनन्द–आवेश से प्रभु–भृत्य स्वामी–सेवक का अन्तर दूर हो गया। सभी वैष्णवों के शरीरों में प्रभु ने जल प्रदान किया। कोई उनसे टक्कर नहीं ले सकता था—सभी हार स्वीकार कर भाग जाते थे। जिन–जिनके साथ प्रभु ने जलयुद्ध किया, कुछ देर तक युद्ध करने के बाद सभी को भागना पड़ा। क्षण में अद्वैत–गौरांग–नित्यानन्द के बीच क्रीड़ा होती थी, तो क्षण में हरिदास–श्रीवास और मुकुन्द के बीच। श्रीगर्भ, श्रीसदाशिव, मुरारि, श्रीमान् पुरुषोत्तम, मुकुन्द, संजय, बुद्धिमन्तखान, विद्यानिधि, गंगादास, जगदीश, गोपनीय, हरिदास, गरुड़, श्रीराम, गोविन्द, श्रीधर, कृष्णानन्द, काशीश्वर, जगदानन्द, गोविन्दानन्द, श्रीशुक्लाम्बर आदि। अनन्त चैतन्य–भृत्य है, मैं कितनों का नाम जानता हूँ। वेदव्यास द्वारा भावीकाल में पुराण में यह व्यक्त होगा। परस्पर सभी जलकेलि कर रहे थे। सभी परानन्द रस में विभोर थे, कोई जीता रहा था, तो कोई हार रहा था। गदाधर और गौरांग मिलकर जलकेलि

कर रहे थे, उधर नित्यानन्द और अद्वैत दोनों मिलकर एका साथ क्रीड़ा कर रहे थे।

(३२९) गौः भाः—वनमालाधर,—श्रीकृष्ण, श्रीमन्–महाप्रभु।

(३३१) गौः भाः—महाकाव्य, —परम–शिष्टाचार–विशिष्ट; जिस प्रकार की योग्यता सज्जनसमाज में प्रयोजनीय है, उस प्रकार की योग्यता सज्जनसमाज में प्रयोजनीय है, उस प्रकार के गुणों से सम्पन्न; सभ्य—अचंचल।

(३३९) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के भृत्यों की संख्या–असंख्या है। श्रीकृष्ण–द्वैपायन व्यासदेव पुराणादि ऐतिह्यपूर्ण (इतिहास युक्त) ग्रन्थों में चैतन्य के भृत्यगणों की कथा लिपिबद्ध करेंगे।

जलक्रीड़ा के प्रसंग में अद्वैत–
नित्यानन्द की प्रेमकलह—

अद्वैत–नयने नित्यानन्द कुतूहली।
निर्घाते मारिया जल दिल महाबली॥३४२॥
दुइ चक्षु अद्वैत मेलिते नाहि पारे।
महा–क्रोधावेशे प्रभु गालागालि पाड़े॥३४३॥
''नित्यानन्द–मद्यपे करिल चक्षु काण।
कोथा हइते मद्यपेर हैल उपस्थान॥३४४॥
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाइ।
कोथाकार अवधूते आनि' दिल ठाञि॥३४५॥
शचीर नन्दन चोरा एत कर्म करे।
निरवधि अवधूत–संहति विहरे॥''३४६॥
गौरचन्द्र बले,—''मुखे नाहि वास लाज।
हारिले आपने—आर कन्दले कि काज?''३४७॥
गौरचन्द्र बले,—''एकबारे नाहि जानि।
तिनबार हइले से हार–जित मानि॥''३४८॥
आरबार जलयुद्ध अद्वैत–निताइ।
कौतुका लागिया एक–देह—दुइ ठाञि॥३४९॥
दुइजने जलयुद्ध—केह नाहि पारे।
एकबार जिने केह, आर बार हारे॥३५०॥
आरबार नित्यानन्द संभ्रम पाइया।
दिलेन नयने जल निर्घात करिया॥३५१॥
अद्वैत पाइया दुःख बले,—''मातालिया।
संन्यासी ना हय कभु ब्राह्मण वधिया॥३५२॥
पश्चिमार घरे घरे खाइयाछे भात।
कुल, जन्म, जाति केह ना जाने कोथात॥३५३॥
पिता, माता गुरु,—नाहि जानि ये किसरूप?
खाय, परे सकल, बलाय 'अवधूत'॥''३५४॥
नित्यानन्द–प्रति स्तव करे व्यपदेशे।
शुनि' नित्यानन्द–प्रभु गणसह हासे॥३५५॥
''संहारिमु सकल, मोहार दोष नाइ।''
एत बलि' क्रोधे ज्वले आचार्य–गोसाञि॥३५६॥
आचार्येर क्रोधे हासे भागवतगण।
क्रोधे तत्त्व कहे—येन शुनि' कुवचन॥३५७॥
हेन रस–कलेहर मर्म ना बुझिया।
भिन्न–ज्ञाने निन्दे, वन्दे, से मरे पुड़िया॥३५८॥
नित्यानन्द–गोराचाँद या'रे कृपा करे।
सेइ से वैष्णव–वाक्य बुझिवारे पारे॥३५९॥
सेइ कतक्षणे दुइ महाकुतूहली।
नित्यानन्द–अद्वैते हइल कोलाकुलि॥३६०॥
महा–मत्त दुइ प्रभु गौरचन्द्र–रसे।
सकल गंगार माझे नित्यानन्द भासे॥३६१॥

(३४२–३६१) प० अनु०—महाबली नित्यानन्द ने कुतूहलवश अद्वैत की आँखों में जल से आघात किया। इससे अद्वैत दोनों आँखें खोलने में असमर्थ हो गये और महाक्रोध के आवेश में प्रभु को गाली देने लगे। "नित्यानन्द–मद्यप ने हमारी आँख को काना बना दिया है। यह मद्यप कहाँ से आ गया? असल में श्रीनिवास पण्डित की कोई जाति नहीं है। न जाने कहाँ के रहने वाले इस 'अवधूत' को बुलवाकर अपने घर में जगह दे दी। चोरा शचीनन्दन

इतने सारे कर्म करता है। निन्तर अवधूत' को बुलवाकर अपने घर में जगह दे दी। चोरा शचीनन्दन इतने सारे कर्म करता है। निरन्तर अवधूत के साथ विहार करता है।" नित्यानन्द बोले,—"तुमको लज्जा नहीं होती है। अपने-आप हारे हो-अब झगड़ा किस बात का?" गौरचन्द्र बोले,—"एक बार में निर्णय नहीं लिया जा सकता। तीन बार होने से हार-जीत का निर्णय होगा।" फिर एक बार अद्वैत और निताइ के बीच जलयुद्ध हुआ। केवल कौतुक के कारण एक ही देह के दो प्रकाश हुये थे। दोनों में जलयुद्ध हुआ। कोई भी सक्षम नहीं हो पाया। कोई एक बार जीतता है, तो दूसरी बार हार जाता है। फिर नित्यानन्द ने उत्साह के साथ अद्वैत की आँखों में जल मार दिया। दुःखित होकर अद्वैत कहने लगे, —"मतवाले! ब्राह्मण का वध करके कभी कोई संन्यासी नहीं बन सकता है। पश्चिम देश के घर-घर में इसने अन्न ग्रहण किया है। इसके कुल, जन्म, जाति के बारे में कोई कुछ नहीं जानता है। इसके पिता, माता, गुरू आदि के बारे में भी कोई जानकारी नहीं है। सब कुछ खाता है, सब कुछ पहनता है और अपने-आपको 'अवधूत' कहलवाता है।" इस प्रकार से अद्वैत प्रभु ने छलपूर्वक नित्यानन्द का स्तवन किया और इसे सुनकर गण-सहित नित्यानन्द प्रभु हँसने लगे। "मैं सबका संहार कर दूँगा, इसमें मेरा कोइ दोष नहीं है"—ऐसा कहते हुये अद्वैत-आचार्य क्रोध में जलने लगे। आचार्य का क्रोध देखकर भागवतगण हँसने लगे। क्रोध के माध्यम से आचार्य ने जिस तत्त्व को प्रकाशित किया, वह सुनने में कुवचन-जैसा सुनाई देता था। इस प्रकार की रस-कलह के मर्म को न समझकर जो भिन्न-ज्ञान से एक की निन्दा और दूसरे की वन्दना करता है, वह अपराध से दग्ध होगा। नित्यानन्द-गौरचन्द्र जिन पर कृपा करते हैं, वे ही वैष्णव-वाक्यों को समझ सकते हैं। कुछ ही समय के बाद दोनों महाकूतहली नित्यानन्द और अद्वैत परस्पर आलिंगन करने लगे। दोनों प्रभु गौरचन्द के रस में महा मत्त थे। उधर नित्यानन्द फिर गंगा में बहने लगे।

(३४४) गौः भाः—नित्यानन्द-प्रभु द्वारा श्रीअद्वैत प्रभु की दोनों आँखों में जल की बौछार मारने पर अद्वैत-प्रभु प्रणयकलह की छलना से नित्यानन्द को 'मद्यप' शब्द से संबोधित करके बोले,—"यह मतवाला कहाँ से आ गया है? इसने मेरी देखने की शक्ति को रुद्ध करके मुझे अंधा बना दिया है।"

(३४५) गौः भाः—श्रीनिवास-पण्डित ने अवधूत श्रीनित्यानन्द को यहाँ लाकर बसाया है एवं हम लोगों के साथ समान भाव से मिलने की योग्यता प्रदान की है। परन्तु हमें इनके पूर्व परिचय के बारे में कुछ भी नहीं है। वंश-मर्यादा एवं आभिजात्य से वंचित तथा अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले अवधूत को महाप्रभु के साथ हर समय रहने देना उचित नहीं है।

(३४७) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द-प्रभु ने श्रीअद्वैत से कहा,—"तुम जलयुद्ध में हार गये हो, फिर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती है। फिर निसंकोच होकर झगड़ने के लिए आ रहे हैं।,

(३५२) गौः भाः—निरन्तर आँखों में जल-प्रक्षेप करने से यंत्रणा पाकर अद्वैत प्रभु बोले,—"मतवाला होकर ब्राह्मण वध करने से ही क्या कोई संन्यासी बन जाता है?"

(३५३) गौः भाः—जिन लोगों में स्वदेश का अभिमान प्रबल होता है, वे ही विदेशियों के प्रति कुवाक्यों का प्रयोग करते हैं। पूर्वी देश के लोग पश्चिम देश के लोगां की

'पश्चिमा' कहकर गर्हण किया करते हैं—उन लोगों के जाति–वंश की हीनता का सम्पादन करते हैं। नित्यानन्द कौन से कुल में उत्पन्न हुये हैं, कौन–सी श्रेणी के व्यक्ति है, यह कोई नही जानता है, कहाँ लोगों के घर में भोजन किया करते हैं।

(३५५) गौः भाः—इनके पिता–माता कौन हैं, अथवा ये किस प्रकार के गुरू के शिष्य हैं, इसका परिचय भी नहीं मिलता है, ये अपने आप को अवधूत नाम से प्रदर्शित करते हैं एवं सभी से भोजन आदि ग्रहण करते हैं।

(३५५) गौः भाः—अद्वैत की उक्तियाँ—छल से भरी हुई हैं। वे प्रकारान्तर से श्रीनित्यानन्द की प्रशंसा का ही ज्ञापन करती है। श्रीअद्व ैतवाक्य–श्रवण से श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं उनके अनुगत जन सभी हँसने लगे।

(३५८) गौः भाः—जो मूर्ख लोग अद्व ैत–नित्यानन्द के बीच की रसभरी कलह के अभ्यंतर में प्रवेश करने में असमर्थ होकर एक की निन्दा एवं दूसरे की वन्दना करते हैं, वे इस अविचार के कारण अपराध–दावानल में दग्ध हो जाते हैं।

हर रात को कीर्तन के उपरांत प्रभु
की जलक्रीड़ा, उसे देखने में मनुष्य की
असमर्थता—

हेन मते जलकेलि कीर्तनेर शेषे।
प्रतिरात्रि सबा लइया करे प्रभु रसे॥३६२॥
ए लीला देखिते मनुष्येर शक्ति नाइ।
सबे देखे देवगण संगोपे तथाइ॥३६३॥

(३६२–३६३) प० अनु०—इस प्रकार से कीर्तन के उपरांत प्रत्येक रात को महाप्रभु सबको लेकर आनन्द पूर्वक जलक्रीड़ा किया करते थे। इस लीला को देखने की शक्ति मनुष्यों में नही है। केवल देवतागण ही छिपकर इस लीला को वहाँ देखने में सक्षम होते थे।

स्नान के उपरांत हरिध्वनि—

सर्वगणे गौरचन्द्र गंगा–स्नान करि'।
कुले उठि' उच्च करि' बले 'हरि हरि'॥३६४॥

(३६४) प० अनु०—गंगा–स्नान के उपरांत सबके साथ प्रभु श्रीगौरचन्द्र तट आकार ऊँची आवाज में 'हरि हरि' बोलते थे।

प्रभु के द्वारा सबको प्रसादी
माला–चन्दन–प्रदानानंतर विदा देना एवं
जगाइ–माधाइ का सभी के निकट समर्पण—

सबारे दिलेन माला–प्रसाद–चन्दन।
विदाय हइला सबे करिते भोजन॥३६५॥
जगाइ–माधाइ समर्पित सबा–स्थाने।
आपन गलार माला दिल दुइजने॥३६६॥

(३६५–३६६) प० अनु०—प्रभु ने सबको माला–प्रसाद और चन्दन प्रदान किया। इसके बाद भोजन करने के लिए सभी ने विदा ली। प्रभु ने जगाइ–माधाइ को भी उन सबके हाथों में सौंप दिया और अपने गले की माला उन दोनों को पहना दी।

गौरलीला–नित्य है—

ए सब लीलार कभु अवधि ना हय।
'आविर्भाव', 'तिरोभाव' मात्र वेदे कय॥३६७॥

(३६७) प० अनु०—इन सब लीलाओं का कभी अंत नहीं होता है। वेद कहते हैं कि, इन सब लीलाओं का केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' मात्र होता है।

महाप्रभु का अपने घर मे
आगमन एवं भोजन–

गृहे आसि' प्रभु धुइलेन श्रीचरण।
तुलसीर करिलेन चरण–वन्दन॥३६८॥

भोजन करिते बसिलेन विश्वम्भर।
नैवेद्यान्न आनि' माये करिला गोचर॥३६९॥
सर्व–भागवतेरे करिया निवेदन।
अनन्त ब्रह्माण्डनाथ करेन भोजन॥३७०॥
परम सन्तोषे महाप्रसाद पाइया।
मुखशुद्धि करि' द्वारे बसिला आसिया॥३७१॥
वधूसंगे देखे आइ नयन भरिया।
महानन्दसागरे शरीर डुबाइया॥३७२॥

(३६८–३७२) प० अनु०—घर में आकर प्रभु ने अपने श्रीचरणों को धोया और फिर तुलसी की वन्दन की। तत्पश्चात् प्रभु भोजन करने के लिए बैठे, दिया। सभी भागवतजनों को निवेदित करके पश्चात् अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ भोजन करने लगे। परम संतोष के साथ प्रभु ने महाप्रसाद ग्रहण किया और मुखशुद्धि के उपरांत द्वार पर आकर बैठ गये। महान् आनन्द-सागर में विभोर होकर वधू के साथ शचीमाता यह सब देख रही थीं।

शचीमाता के भाग्य की असीमता एवं 'आई' शब्द के उच्चारण का फल—

आइर भाग्येर सीमा के बलिते पारे?
सहस्रवदन–प्रभु, यदि शक्ति धरे॥३७३॥
प्राकृत–शब्देओ येवा बलिवेक 'आइ'।
'आइ'—शब्दप्रभावेओ ता'र दुःख नाइ॥३७४॥
पुत्रेर श्रीमुख देखि' आइ जगन्माता।
निज देह आइ नाहि जाने आछे कोथा॥३७५॥
विश्वम्भर चलिलेन करिते शयन।
तखन विदाय हय गुप्ते देवगण॥३७६॥

(३७३–३७५) प० अनु०—आई (माता) के भाग्य की सीमा का वर्णन कौन कर सकता है? एकमात्र सहस्र मुखवाले प्रभु अनन्त देव ही इसमें समर्थ हैं, यदि उनमें शक्ति हो, तब। प्राकृत-शब्द से भी जो व्यक्ति 'आई' का उच्चारण करेंगे, 'आइ'-शब्द के प्रभाव से उनको कोई दुःख नहीं होगा। जगन्माता आई पुत्र के श्रीमुख को देखकर अपनी देह की सुध-बुध भी भुल गई थीं।

(३७४) गौः भाः—'आर्या' संस्कृत का शब्द है। चलित भाषा में 'आई' शब्द के रूप में उसका प्रयोग हुआ है। श्रीगौरसुन्दर की जननी को जो लोग 'आई' कहकर सम्बोधित करेंगे, उनके सभी दुःख दूर हो जायेंगे।

(३७५) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के श्रीमुख-दर्शन से जननी शचीदेवी आत्मविस्मृत (अपने आपको भूली हुई) हो गई थीं। भगवन्मुख-सौन्दर्य पर विमुग्ध होकर वे अपना जननी होने का बोध एवं पुत्र वात्सल्य तक भूल गई थीं।

(३७६) प० अनु०—जब विश्वम्भर सोने के लिए चले गये, तब देवताओं ने भी गुप्तभाव से विदा ले ली।

देवगण-द्वारा अलक्ष्य में गौरसेवा, इस सम्बध में प्रभु के द्वारा भक्तों से प्रश्न एवं भक्तों-द्वारा उत्तर-प्रदान—

चतुर्मुख, पंचमुख–आदि देवगण।
निति आसि' चैतन्येर करये सेवन।
देखिते ना पाय इहा केह आज्ञा बिने।
सेइ प्रभु–अनुग्रह बले का'रो स्थाने॥३७८॥
कोन दिन बसिया थाकाये विश्वम्भर।
सम्मुखे आइला मात्र कोन अनुचर॥३७९॥
'ओइखाने थाक'—प्रभु बलये आपने।
चारि–पाँच–मुख–गुला लोटाय अंगने॥३८०॥
पड़िया आछये यत—नाहि लेखाजोखा।
''तोमरा सबेरे कि ए–गुला ना देय देखा?''३८१॥
करजोड़ करि' बले सब भक्तगण।
''त्रिभुवने करे प्रभु तोमार सेवन॥३८२॥

आमरा-सबार कोन् शक्ति देखिवार?
बिने प्रभु, तुमि दिले दृष्टि अधिकार॥''३८३॥
ए सब अद्भुत चैतन्येर गुप्तकथा।
सर्व सिद्धि हय,—हय शुनिले सर्वथा॥३८४॥
इहाते सन्देह किछु ना भाविह मने।
अज-भव निति आइसे गौरांगेर स्थाने॥३८५॥

(३७७-३८५) प० अनु०—चतुर्मख ब्रह्मा और पंचमुख शिव आदि देवगण नित्य आकर चैतन्य की सेवा किया करते थे। किन्तु प्रभु की आज्ञा बिना कोई उनकी इस सेवा को देख नहीं पाया था। उन्हीं प्रभु ने अनुग्रह-पूर्वक किसी को इसके बारे में बताया भी था। किसी दिन प्रभु विश्वम्भर बैठे हुये थे। उसी समय उनके सामने कोई एक अनुचर आकर उपस्थित हो गया। 'वही ठहरा'!—प्रभु ने स्वयं उससे कहा। प्रभु के आँगन में उस समय चार-पाँच मुँहवाले सभी देवता लोट-पोट हो रहे थे। आंगन में ऐसे कितने (देवता) बड़े हुये थे, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं था। प्रभु ने भक्तजनों से पूछा—"क्या तुम्हें इन सबके साक्षात् दर्शन नहीं हो रहे हैं?" हाथ जोड़कर सभी भक्तगण कहने लगे, "हे प्रभु! तीनों भुवन आपकी सेवा करते हैं। हममे उन सबको देखने की शक्ति कहाँ है? हे प्रभु, यदि आप हमें देखने की शक्ति प्रदान करें, तभी हम देख सकते हैं।" चैतन्य की ये सब गुप्तकथाएँ अद्भुत हैं। इन्हें सुनने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस विषय में मन में कोई सन्देह रखना उचित नहीं है। गौरांग के निकट अज-भव (ब्रह्मा-शिव) नित्य आगमन किया करते थे।

(३८२) गौः भाः—लेखाजोखा,—संख्या एवं परिमाण।

वैष्णवपराधी को छोड़कर प्रभु-द्वारा बाकी सबका उद्धार—

हेन मते जगाइ-माधाइ परित्राण।
करिला श्रीगौरसुन्दर जगतेर प्राण॥३८६॥
सबार करिब गौरचन्द्र से उद्धार।
व्यतिरिक्त वैष्णवनिन्दक दुराचार॥३८७॥

(३८६-३८७) प० अनु०—इस प्रकार से जगत् के प्राणस्वरूप श्रीगौराचन्द्र ने जगाइ-माधाइ का परित्राण किया। वैष्णवनिन्दक दुराचारी के अतिरिक्त गौरचन्द्र बाकी सभी का उद्धार करेंगे।

वैष्णवपराध के परिणाम—

शूलपाणिसम यदि भक्तनिन्दा करे।
भागवत-प्रमाण—तथापिह शीघ्र मरे॥३८८॥

(३८८) प० अनु०—शूलपाणि (शिव) के समान भी कोई यदि भक्तों की निन्दा करता है, तो भागवत प्रमाण है कि वह शीघ्र विनाश को प्राप्त होता है।

तथाहि (भागवत ५/१०/२५॥

महद्विमानात् सकृताद्धि मादृक्।
नंक्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः॥३८९॥
हेन वैष्णव निन्दे यदि सर्वज्ञ हइ'।
से जनेर अधःपात—सर्व शास्त्रे कइ॥३९०॥
सर्व-महा-प्रायश्चित ये कृष्णेर नाम।
वैष्णवापराधे सेह ना मिलये त्राण॥३९१॥
पद्मपुराणेर एइ परम वचन।
प्रेमभक्ति हय इहा करिले पालन॥३९२॥

(३८९) अन्वय—(भरतं प्रति रहूगणस्य उक्तिः) स्वकृतात् हि महद्विमानात् (महतां भगतद्-भक्तानां विमानात् अनादरात्) मादृक (मादृशः जनः) शूलपाणिः (रुद्र इव अतिसमर्थः) अपि अद्रात् (क्षिप्रं) नश्यति (विनंक्ष्यति)।

(३८९) अनुवादः—(भरत के प्रति रहूगण की उक्ति)—महत्-जनों की अवहेलना करने से उस स्वकृत अवमानना के फलस्वरूप मेरा जैसा व्यक्ति शूलपाणि की भाँति विशेष सामर्थ्यवान् पुरूष होने पर भी तुरन्त ही विनष्ट हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(३९०–३९२) प० अनु०—सभी शास्त्र यही कहते हैं कि यदि सर्वज्ञ होकर भी वैष्णवों की निन्दा करता है, तो उसका अधःपतन निश्चित है। जिस कृष्ण के नाम से सभी महान (पातकों का) प्रायश्चित हो जात है, वैष्णव के चरणों में अपराध करने पर उस कृष्णनाम से भी परित्राण नहीं मिलता है। यह परम वचन पद्मपुराण में उल्लिखित है। इसका पालन करने से प्रेमभक्ति की प्राप्ति होती है।

(३९०) गौः भाः—सर्वसिद्धियों को प्राप्त करके भी यदि कोई वैष्णव की निन्दा करता है, तो वह निश्चित रूप से अधःपतित हो जाता है, सभी शास्त्रों में ऐसा कहा गया है।

(३९१) गौः भाः—भाष्स—स्मृति आदि में कथित सभी प्रकार के प्रायश्चितों की अपेक्षा श्रीनाम की पाप-निवारणी-शक्ति सर्वाधिक प्रबल है; परन्तु हरि के जन के निकट अपराध होने पर उस प्रकार के नाम को ग्रहण करने वालों को भी अपराध से कभी भी परित्राण नहीं मिलता है। नामापराध के बीच में साधुनिन्दा ही आदि अपराध है। नामापराध होने से नामाभास एवं नाम ग्रहण की फल प्राप्ति भी सम्भव नहीं होती है।

तथाहि (पद्मपुराण) ब्रह्मखण्ड में)—

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते।
यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगरिहाम्॥३९३॥

(३९३) अन्वयः—सतां (साधूनां भागवतानां इत्यर्थः) निन्दा नाम्नः (सकाशात्) परमं (प्रधानं) अपराधं (नामापराधं) वितनुते (विस्तारयति) यतः (येभ्यः सदभ्यः 'नाम') ख्यातिं (लोके प्रसिद्धिं) यातं (प्राप्तं)-(खेदे, नाम तेषां) तद् सतां) विगरिहाम् (विगर्हां निन्दां, इकारागमश्छन्दोऽनुरोधात्) कथं सहते (अपि तु सोढुं न शक्नुयादेव)।

(३९३) अनुवादः—सज्जनों की निन्दा 'श्रीनाम' के निकट महान् अपराध का विस्तार करती है। हाय! 'नाम' (श्रीनाम-प्रभु) ने जिन भक्तों के निकट इहलोक में ख्याति अर्जित की है, उनकी निन्दा वे नाम-प्रभु कैसे सहन करें? (अर्थात् कभी भी सहन नहीं कर सकते हैं; परन्तु वह नाम नामापराधी का विषय सर्वनाश आनयन करते हैं)।

जगाइ-माधाइ-उद्धार आख्यायिका
की फलस्श्रुति—

येइ शुने एइ महा-दस्युर उद्धार।
तारे उद्धारिव गौरचन्द्र-अवतार॥३९४॥

(३९४) प० अनु०—इन महान दस्युओं के उद्धार की कथा को जो सुनेंगे, उनका श्रीगौरचन्द्र उद्धार करेंगे।

ग्रन्थकार के द्वारा गौरसुन्दर का जयगान
एवं दैन्य के साथ कृपा-प्रार्थना—

ब्रह्मदैत्यतारण गौरांग जय जय।
करुणासागर प्रभु परम सदय॥३९५॥
सहस्त्र करुणासिन्धु महा-कृपामय।
दोष नाहि देखे प्रभु—गुणमात्र लय॥३९६॥
हेन-प्रभु-विरहे ये पापि-प्राण रहे।
सबे परमायु-गुण,—आर किछु नहे॥३९७॥
तथापिह एइ कृपा कर महाशय।
श्रवणे वदने येन तोर यश लय॥३९८॥
आमार प्रभुर प्रभु गौरांगसुन्दर।

यथा वैसे तथा येन हँउ अनुचर॥३९९॥
चैतन्य–कथार आदि अन्त्य नाहि जानि।
येत–मते चैतन्येर यशः से बाखानि॥४००॥
गण–सह प्रभु–पादपद्मे नमस्कार।
इथे अपराध किछु नहुक आमार॥४०१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥४०२॥

इति श्रीचैतन्य भागवते मध्यखंडे
जगाइ–माधाइ–
उद्धार–वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥

(३९५–४०२) प० अनु०—करुणासागर प्रभु परम दयालु एवं ब्रह्मदैत्यों के उद्धारक गौरांग की जय हो, जय हो। अदोषदर्शी सहस्र करूणासिन्धु महा–कृपामय प्रभु केवल गुणमात्र ही ग्रहण करते हैं। ऐसे प्रभु के विरह में भी जो पापी प्राण की रक्षा कर रहे है, इसका कारण केवल परमायु–गुण ही है,—और कुछ नहीं। फिर भी हे महाशय! ऐसी कृपा कीजिए कि आपके यश का श्रवण और कीर्तन कर सकूँ। गौरांगसुन्दर हमारे प्रभु के प्रभु हैं। ऐसा हो जाए कि, वे जहाँ रहें, वहाँ मैं उनका अनुचर बनकर रह सकूँ। चैतन्य–कथा का आदि अन्त मैं नहीं जानता हूँ फिर भी जैसे–तैसे मैं चैतन्य के यश का बखान कर रहा हूँ। गण–सहित प्रभु के पादपद्मों में मेरा नमस्कार है कि इससे मुझसे कोई अपराध न हो जाए। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल–चरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(३९५) गौः भाः—जगाइ–माधाइ का उद्धार करने के कारण श्रीमन्महाप्रभु 'ब्रह्मदैत्य–तारण' के नाम से अभिहित हुये। जगाइ–माधाइ विप्रकुल में उत्पन्न होने पर भी भगवद् विमुखता के कारण 'दैत्य'–संज्ञा से अभिहित हैं।

(३९७) गौः भाः—महाप्रभु—परम करुणामय अदोषदर्शी हैं। वे किसी का थोड़ा–सा भी अपराध ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे महाप्रभु के श्रीचरणों की सेवा को छोड़कर जो पापी अपने प्राणों की रक्षा में लगा रहता है, उसका जीवन ही व्यर्थ है; प्राक्तन कर्म के फलस्वरूप जीवित बचे रहना मात्र सम्भव होता है। परन्तु इस प्रकार बचे रहना कभी भी आदरणीय नहीं है।

इति गौड़ीय–भाष्य में त्रयोदश अध्याय समाप्त

O

चतुर्दश अध्याय

चतुर्दश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में ब्रह्मा-शिवादि देववृन्द द्वारा प्रतिदिन श्रीचैतन्य-सेवा एवं जगाइ-माधाइ के उद्धार-दर्शन से विस्मय, यमराज द्वारा चित्रगुप्त के निकट दोनों पाप का परिणाम और उसके उपशम के विषय में प्रश्न, यमराज को विस्मय और मूर्च्छा, अज-भवादि द्वारा उनके कर्ण में कृष्णकीर्तन सुनाना, यमदेव को चैतन्य-प्राप्ति और उनके साथ देवताओं का आनन्द पूर्वक नृत्यकीर्तन आदि विषय वर्णित हुये हैं।

ब्रह्मा-शिवादि देवगण प्रतिदिन महाप्रभु के निकट साधारण लोगों की दृष्टि से छिपकर आते और उनकी विविध प्रकार की सेवा एवं उनकी दैनन्दिन समस्त लीलाओं का दर्शन करके वापस अपने-अपने लोक में लौट जाया करते थे। दोनों महापातकियों के उद्धार दर्शन से देवगण महाप्रभु की अपार महिमा को उपलब्ध करके बड़े विस्मित हुये एवं गौरसुन्दर की कृपा से अपने भी उद्धार की आश का पोषण करते हुये विशेष आनन्द का अनुभव करने लगे। जगाइ और हुये विशेष आनन्द का अनुभव करने लगे। जगाइ और माधाइ के पापों का परिणाम कितना था एवं किस प्रकार से वह सम्पूर्ण रूप से दूर हुआ, इस विषय में जब यमराज ने चित्रगुप्त से पूछा तो उसके उत्तर में चित्रगुप्त ने कहा कि इन दोनों ने इतने अधिक पाप किये थे कि यदि एक लाख कायस्थ (मुनीम) एक मास तक उनके पापों को पढ़कर सुनाते रहें एवं यमराज लाख कानों से सुनते रहें, फिर भी उनका अन्त नहीं पाया जा सकता था। निरंतर दूतों के मुख से उनके पापों की वार्ता सुनकर कायस्थजन उसको लिखने मे प्रमाद का अनुभव करते थे। उन सब पापों के एण्डस्वरूप मिलने वाली यन्त्रणा को वे दोनों किस प्रकार सहन करेंगे, इस विषय में चिन्ता करके वे विशेष दुःख का अनुभव किया करते थे। किन्तु महाप्रभु की अपार करुणा से तिलमात्र समय में ही उनके सब पाप नष्ट हो गये।

चित्रगुप्त के मुख से जगाइ-माधाइ के उद्धार का वृत्तांत सुनकर यमराज कृष्णप्रेम में रथ के ऊपर मूर्च्छित हो गये एवं चित्रगुप्त आदि उनके अनुगतजन उनको पकड़कर क्रन्दन करने लगे। ब्रह्मा, शिव एवं नारदादि देवमुनिवृन्द दोनों असुरों के उद्धार के वृत्तांत एवं महाप्रभु की असीम दया के विषय में कीर्तन करते हुये जा रहे थे कि रास्ते में यमराज को रथ के ऊपर अचेतन अवस्था में देखकर उसका कारण पूछा।

चित्रगुप्त ने उनको सब वृत्तांत कह सुनाया। देववृन्द यमराज के कृष्णप्रेमावेश को समझकर उनके कानों में कृष्णकीर्तन करने लगे। उससे सूर्यनन्दन यमराज की चेतना लौट आई; उसके बाद यमराज और देवगण मिलकर प्रेमाचन्द्र में जगाइ-माधाइ के उद्धार एवं महाप्रभु की अपार महिमा का कीर्तन करते हुये नृत्य-गीत और कोलाहल करते हुये महाप्रभु के निकट

जगाइ–माधाइ की तरह अपने–अपने उद्धार की प्रार्थना करने लगे।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

हेमकिरणीया।

गौरांगसुन्दर–तनु प्रेमभरे भेल डगमगिया।
नाचत भालि गौरांग रंगिया॥ध्रु॥१॥

(१) प० अनु०—स्वर्णवर्ण श्रीगौरांग सुन्दर का शरीर प्रेम में डगमग रहा है एवं वे अपूर्व नृत्य कर रहे हैं।

चतुर्मुखादि–देवगणों की चैतन्यसेवा एवं श्रीचैतन्य–कृपा के बिना उनके दर्शनों की अन्यों में असामर्थ्यता—

चतुर्मख पंचमुख आदि देवगण।
निति आसि चैतन्येर करये सेवन॥२॥
आज्ञा बिना केह इहा देखिते ना पारे।
ताँरा पुनि ठाकुरेर सबे सेवा करे॥३॥

(२–३) प० अनु०—ब्रह्मा–शिवादि देवगण नित्यप्रति आकर श्रीचैतन्यदेव की सेवा करते थे। प्रभु की आज्ञा के बिना कोई इस सेवा को देख नहीं सकता था। परन्तु वे सब पुनः पुनः आकर ठाकुर की निरन्तर सेवा करते रहते थे।

(२) गौः भाः—चतुर्मुख—ब्रह्मा। पंचमुख—शिव। निति—नित्य, सर्वदा।

श्रीचैतन्यदेव—अधोक्षज (इन्द्रियातीत) वस्तु हैं। अधोक्षज शरीर में ब्रह्मा–शिवादि देवगण जिस प्रकार से चैतन्यदेव की सेवा किया करते हैं, प्रभु की अनुकम्पा के बिना किसी को भी उनके दर्शनों की योग्यता प्राप्त नहीं होती है।

(३) गौः भाः—पुनि—(पुनः शब्द से उत्पन्न, प्राचीन बंगला पद्य में से) पुनर्बार, दोबारा।

जगाइ–माधाइ के उद्धार दर्शनों के बाद देवगणों का चैतन्यलीला का वर्णनं करते हुये अपने–अपने स्थानों पर गमन—

सर्व दिन देखे प्रभु यत लीला करे।
शयन करिले प्रभु सबे चले घरे॥४॥
ब्रह्मदैत्य–दु'येर से देखिया उद्धार।
आनन्दे चलिला ताइ करिया विचार॥५॥
''एमत कारुण्य आछे चैतन्येर घरे।
एमत जनेरे प्रभु करये उद्धारे॥६॥
आजि बड़ चित्ते प्रभु दिलेन भरसा।
'अवश्य पाइव पार', धरिलाम आशा''॥७॥
एइ मत अन्योरे करि' संकथन।
महानन्दे चलिला सकल देवगण॥८॥

(४–८) प० अनु०—महाप्रभु जिन लीलाओं को सारे दिन किया करते थे, देवगण उन्हें सदा देखा करते थे और प्रभु के शयन करने पर वे सब अपने–अपने घर चले जाया करते थे। दोनों ब्रह्मदैत्यों का उद्धार देखकर वे आज उस पर विचार करते हुये आनन्द से चले जा रहे थे। "अहो! श्रीचैतन्यदेव में ऐसी भी करुणा है, वे प्रभु ऐसे जनों का भी उद्धार करते हैं। प्रभु ने आज हमारे चित्त को बड़ा भरोसा दिया है। अब हमें भी यह आशा हो गई है कि हम भी अवश्य पार हो जायेंगे।" इस प्रकार परस्पर बड़े आनन्दपूर्वक वार्तालाप करते हुये देवगण चले जा रहे थे।

धर्मराज यम द्वारा जगाइ–माधाइ–उद्धार–लीला के दर्शन, चित्रगुप्त के निकट उनके विषय में प्रश्न एवं चित्रगुप्त का उत्तर—

प्रभुस्थाने नित्य आइसे यम धर्मराज।
आपने देखिल प्रभु चैतन्येर काज॥९॥

चित्रगुप्त स्थाने जिज्ञासये प्रभु यम।
''किवा ए दु'येर पाप, किवा उपशम॥''१०॥
चित्रगुप्त बले,—''शुन धर्म यमराज।
ए विफल परिश्रमे आर किवा काज?''११॥
लक्षेक कायस्थ यदि एक मास पड़ि।
तथापि पाइते अन्त शीघ्र नहे बड़ि॥१२॥
तुमि शदि शुन लक्ष करिया श्रमण।
तथापिह शुनिवारे तुमि से भाजन॥१३॥
ए–दु'येर पाप निरन्तर दूते कहे।
लिखिते कायस्थ–सब उत्पात गणये॥१४॥
ए–दु'येर पाप यत कहे अनुक्षण।
ताहा लागि' दूत कत खाइल मारण॥१५॥
दूत बले,—''पाप करे सेइ दुइ जने।
लेखाइते भार मोर, मोर मार केने॥१६॥
ना लिखिले हय शास्ति, हेन लागि' लिखि।
पर्वतप्राण गड़ा आछे तार साक्षी॥१७॥
आमराओ कान्दियाछि ओ–दुइ लागिया।
केमते वा ए यातना सहिव आसिया॥१८॥
तिल–मात्रे महाप्रभु सब कैला दूर।
एबे आज्ञा कर गड़ा डुबाइ प्रचुर''॥१९॥

(९–१९) प० अनु०—प्रभु के समीप धर्मराज भी नृत्य आया करते थे। उन्होंने स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु के कार्य को देखा। प्रभु यमराज ने चितगुप्त से पूछा कि "इन दोनों के क्या-क्या पाप थे एवं उनकी कैसे निवृत्ति हुई।" तब चित्रगुप्त ने कहा,—"हे धर्मराज! सुनिये! इस विषय में निष्फल परिश्रम करने से क्या लाभ?" इनके पापों को यदि एक लाख कायस्थ (मुनीम) एक महीने तक पढ़े तो भी पढ़कर उन्हें समाप्त नहीं कर पायेंगे। आप यदि लाख कानों से सुनें तो ऐसे सुनने वाले एक आप ही होंगे। इन दोनों के पापों का दूत निरन्तर कहते रहते हैं, जिन्हें लिखते-लिखते मुनीम उत्पात समझते हैं। इन दोनों के पापों को दूत निरन्तर कहते ही रहते हैं और इसके लिए दूतों को कितनी ही मार खानी पड़ती है। दूत कहते हैं,—"पाप तो ये दोनों करते हैं और लिखाने का जिम्मा हमारे ऊपर है तो हमें रास्तें मारते क्यों हैं?" इन लिखने से दण्ड मिलता है, इसलिए मुनीमों को भी लिखना पड़ता है। लिखे हुये बही खातों को ढ़ेर लगकर पर्वत के समान हो गया है, यही उनके पापों का साक्षी है। हम भी उन दोनों के लिए रोये हैं कि वे दोनों नरक मे आकर इनती यातनाएँ कैसे सहेंगे। परन्तु महाप्रभु ने क्षण-मात्र में उन सब पापों को दूर कर दिया। अब आज्ञा करिये—इस पर्वत समान ढेर को कहीं समुद्र में डुबा दें।"

(१२) गौः भाः—पाप-पुण्य का पुरस्कार और तिरस्कार देने वाले देवता धर्मराज यम हैं। वे संख्या में चतुर्दश हैं। चित्रगुप्त उनके मध्य में प्रधान लेखक हैं। कायस्थगण चित्रगुप्त के वंशधर हैं। वे मानव के पाप-पुण्यों की गणना करके लिखकर रखते हैं। एक मास तक एक लाख मुनीम यदि इन दोनों पापियों के पापों की तालिका बनाएँ, तब भी पूरे पापों को लिख पाना सम्भव नहीं होगा, पाप बढ़ते हैं।

(१९) गौः भाः—इन दोनों पापिष्ठों के पापांकन का पर्वतसमान 'गठन'—इनके पापों की साक्षी है। दूत कहते हैं,—"महाप्रभु ने जब अति अल्प समय में ही दोनों के पाप नष्ट कर दिये, तब चित्रगुप्त के आदेश करने से उन पर्वत-समान पापों को सागर के गंभीर जल में डुबो दिया जा सकता है।"

(२०) प० अनु०—यमराज ने ऐसी महिमा कभी नहीं देखी थी, जितने भी पातकियों को उद्धार हुआ था, उनकी यह चरम सीमा थी।

अलौकिक गौरमहिमा–दर्शन से भागवतधर्म–वेत्ता यमराज का विस्मय और मूर्च्छा–

कभु नाहि देखे यम एमत महिमा।
पातकी–उद्धार यत एइ तार सीमा॥२०॥

(२०) गौः भाः—श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने अब तक जितने भी पातकियों का उद्धार किया था, —ये दोनों उनकी अवधि थे, अर्थात् श्रीगौरसुन्दर ने इतने दिनों तक इस प्रकार से दयापरवश होकर किसी का भी उद्धार नहीं किया था।

चित्रगुप्त आदि यमभृत्यगणों का क्रन्दन–

स्वभाव वैष्णव यम—मूर्त्तिमन्त धर्म।
भागवत–धर्मेर जानये सब मर्म॥२१॥
यखन शुनिला चित्रगुप्तेर वचन।
कृष्णावेशे देह पासरिला ततक्षण॥२२॥
पड़िला मूर्च्छित हैया रथेर उपरे।
कोथाओ नाहिक धातु सकल शरीरे॥२३॥
आथेव्यथे चित्रगुप्त आदि यत गण।
धरिया लागिया सबे करिते क्रन्दन॥२४॥

(२१–२४) प० अनु०—यमराज का वैष्णव स्वभाव है, वे मूर्तिमान् धर्म हैं और भागवत धर्म के मर्म को जानने वाले हैं। जब उन्होंने चित्रगुप्त के वचन सुने तो उसी क्षण कृष्ण–भक्ति के आवेश में देह की सुध भूल गये और मूर्च्छित होकर रथ के ऊपर गिर गये। समस्त शरीर में कहीं भी धातु न रही। तब चित्रगुप्त आदि सभी जनों ने शीघ्र उनको सम्हाला और उनको पकड़कर सब रोने लगे।

(२१) गौः भाः—भागवत धर्मवेत्ता यमराज—द्वादश महाजनों में अन्यतम हैं। "स्वयम्भूर्नारदः शुम्भुः कुमारः कपिलो मनुः। प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।" (भाः ६/३/२०–२१)।

देवगण–द्वारा 'पातकीतारण' की महिमा का कीर्तन और अपने स्थानों को गमन–

सर्व–देव रथे यान कीर्तन करिया।
रहिल यमेर रथ शोकाकुल हैया॥२५॥
दुइ ब्रह्म–असुरेर मोचन देखिया।
सेइ गुण–कर्म सबे चलिला गाइया॥२६॥
शंकर, विरिंचि, शेष–आदि देवगण।
नारदादि गाय सेइ दु'येर मोचन॥२७॥

(२५–२७) प० अनु०—अपने–अपने रथ पर बैठे हुये सब देवता प्रभु की लीला का कीर्तन करते हुये चले जा रहे थे, परन्तु यमराज का रथ गणों के शोकाकुल होने से वहीं रह गया। दोनों ब्रह्म–असुरों का उद्धार देखकर, प्रभु के उन्हीं गुण–कर्मों को गाते हुये सब देवता जा रहे थे। शिव, ब्रह्मा, शेषादि देवगण एवं नारदादि—सभी दोनों असुरों की मोचन लीला का गान कर रहे थे।

(२६) गौः भाः—गुण–कर्मों के भेद से सुर अथवा असुर का निर्णय होता है। भगवद्भक्त के गुण और भगवत् सेवा–प्रवृत्ति जीव के बासुरी बद्धभाव का विमोचन करके किसा प्रकार उसे अखिल सद्गुणनिलय श्रीभगवान् की सेवा में नियुक्त करते हैं, देवगण उनकी उसी सब महिमा का गान करते–करते चले जा रहे थे। जितने भी प्रापंचिक गुण–धर्म हैं, वे सभी नश्वर हैं। आत्मा के गुण एवं आत्मा के कर्म वैकुण्ठ मे अवस्थित हैं। मुक्त पुरुष के गुणकर्मों का कीर्तन करने से सभी जीवों का बद्धभाव विशेष रूप से दूर हो जाता है।

किसी–किसी के अलौकिक अभूतपूर्व अमन्दोदय, गौरकरुणा के दर्शन से क्रन्दन–

केह केह ना जानये आनन्द–कीर्तन।
कारुण्य देखिया केह करये क्रन्दन॥२८॥

(२८) प० अनु०—कीर्तन के आनन्द में कोई-कोई तो अपने को भी भूल गया एवं कोई-कोई प्रभु की अद्‌भुत करुणा को देखकर क्रन्दन करने लगा।

यमराज को अचेत देखकर देवताओं का अपने अपने रथों को रोक देना एवं यमराज के कानों में कृष्णकीर्तन सुनाना—

रहियाछे यम रथे, देखे देवगणे।
रहिल सकल रथ यम-रथ-स्थाने॥२९॥
शेष, अज, भव, नारदादि ऋषिगणे।
देखे पड़ि' आछे यमदेव अचेतने॥३०॥
विस्मित हइला सबे ना जानि' कारण।
चित्रगुप्त कहिलेन सब विवरण॥३१॥
'कृष्णोवश'-हेन जानि' अज पंचानन।
कर्णमूले सबे मिलि' करये कीर्तन॥३२॥

(२९-३२) प० अनु०—जब देवताओं ने देखा के यमराज का रथ रूका हुआ है, तब सभी अपने-अपने रथों को यमराज के रथ के पास ले आये। वहाँ आकर शेष भी, ब्रह्मा, शिव और नारदादि ऋषियों ने देखा के यमराज रथ पर अचेत पड़े हैं इसका कारण न जानने से सब बड़े विस्मित हुये, तब चित्रगुप्त ने सब कारण सुनाये। उनमें कृष्णभक्ति का आवेश हुआ है—ऐसा जानकर ब्रह्मा, शिवादि सब मिलकर उनके कानों में कृष्णकीर्तन करने लगे।

देवसंकीर्तन-श्रवण से यमराज-द्वारा भगवतप्रेम में नृत्य—

उठिलेन यमदेव कीर्तन शुनिया।
चैतन्य पाइया नाचे महामत्त हैया॥३३॥
उठिल परमानन्द देव-संकीर्तन।
कृष्णेर आवेशे नाचे सूर्येर नन्दन॥३४॥

(३३-३४) प० अनु०—कीर्तन सुनकर यमदेव उठ बैठे। चेतनता लौट आने पर वे महामत्त होकर नाचने लगे। सूर्यनन्दन यमराज कृष्ण के आवेश में नाच रहे थे। उससे देवताओं के संकीर्तन में परमानन्द का उदय हो गया।

(३४) गौः भाः—सूर्येर नन्दन—यमराज सूर्य के पुत्र हैं। वे प्राकृत विचार से असंयत और आध्यक्षिक जनों को पुरस्कार और तिरस्कार प्रदान करने वाले हैं। उन्होंने जब वैकुण्ठ-कीर्तन का श्रवण करके प्रापंचिक देवाधिकार से अवसर प्राप्त किया, तब वे भगवत् प्रेम में उन्मत्त होकर संकीर्तन-रस में बड़े आवेग से नृत्य करने लगे।

यमनृत्य-दर्शन से देवताओ द्वारा नृत्य एवं कीर्तन—

यम-नृत्य देखि' नाचे सर्व-देवगण।
नारदादि-संगे नाचे अज-पंचानन॥३५॥
देवगण-नृत्य शुन सावधान हइया।
अति गुह्य—वेदे व्यक्त करिवेन इहा॥३६॥

श्रीरागः

नाचइ धर्मराज,छाड़िया सकल लाज,
कृष्णावेशे ना जाने आपना।
सड़रिया श्रीचैतन्य, बले,—''अति धन्य धन्य,
पतितपावन धन्यबाना॥''३७॥
हुंकार गरजन, महा-पुलकित प्रेम,
यमेर भावेर अन्त नाइ।
विह्वल हइया यम, करे बहु क्रन्दन,
सङरिया गौरांग-गोसाईं॥३८॥
यमेर यतेक गण, देखिया यमेर प्रेम,
आनन्दे पड़िया गड़ि' याय।
चित्रगुप्त महाभाग, कृष्णे बड़ अनुराग,

मालसाट पुरि' पुरि' धाय॥३९॥
नाचे प्रभु शंकर, हइया दिगम्बर,
कृष्णावेशे वसन ना जाने।
वैष्णवेर अग्रगण्य, जगत करये धन्य,
कहिया तारक–'राम'–नामे॥४०॥
आनन्दे महेश नाचे, जटाओ नाहिक बांधे,
देखि' निज प्रभुर महिमा।
कार्तिक–गणेश नाचे, महेशेरे पाछे पाछे,
सङरिया कारुण्येर सीमा॥४१॥
नाचये चतुरानन, भक्ति याँर प्राणधन,
लइया सकल परिवार।
कश्यप, कर्दम, दक्ष, मनु, भृगु, महा–मुख्य,
पाछे नाचे सकल ब्रह्मार॥४२॥
सबे महाभागवत, कृष्णरसे महामत्त,
सबे करे भक्ति अध्यापना।
बेड़िया ब्रह्मार पाशे, कान्दे छाड़ि' दीर्घश्वासे,
सङरिया प्रभुर करुणा॥४३॥
देवर्षि नारद नाचे, रहिया ब्रह्मार पाछे।
नयने बहये प्रेमजल।
पाइया यशेर सीमा, कोथा वा रहिल वीणा,
ना जानये आननदे विह्वल॥४४॥
चैतन्येर प्रिय भृत्य, शुकदेव करे नृत्य,
भक्तिर महिमा शुक जाने।
लोटाइया पड़े धूलि, 'जगाइ–माधाइ' बलि',
करे बहु दण्ड–परणामे॥४५॥
नाचे इन्द्र सुरेश्वर, महावीर बज्रधर,
आपनारे करे अनुताप।
सहस्र–नयने धार, अविरत बहे याँ'र,
सफल हइल ब्रह्मशाप॥४६॥
प्रभुर महिमा देखि', इन्द्रदेव बड़ सुखी,
गड़ागड़ि याय परवश।
कोथा गेल बज्रसार, कोथाय किरीटी–हार, इहारे
से बलि कृष्ण–रस॥४७॥
चन्द्र, सूर्य, पवन, कुबेर, वह्नि, वरुण,
नाचे सब यत लोकपाल।
सबेइ कृष्णेर भृत्य, कृष्णरसे करे नृत्य,
देखिया कृष्णेर ठाकुराल॥४८॥
नाचे सब देवगण, सबे उल्लसित–मन,
छोट–बड़ ना जाने हरिषे।
कत हय ठेलाठेलि, तबु सबे कुतूहली,
नृत्य–सुख कृष्णेर आवेश॥४९॥
नाचे प्रभु भगवान्' अनन्त' याँहार नाम,
विनतानन्दन करि' संगे।
सकल वैष्णवराज, पालन याँहार काज,
आदिदेव, सेह नाचे रंगे॥५०॥
अज, भव, नारद, शुक–आदि यत देव,
अनन्त बेड़िया सबे नाचे।
गौरचन्द्र अवतार, ब्रह्मदैत्य–उद्धार,
सहस्र–वदने गाय माझे॥५१॥
केह कान्दे, केह हासे, देखि' महा–परकाशे,
केह मूर्च्छा पाय सेइ ठाञि।
केह बले,—''भाल भाल, गौरचन्द्र ठाकुराल,
धन्य धन्य जगाइ–माधाइ॥''५२॥
नृत्य–गीत–कोलाहले, कृष्ण–यशः–सुमंगले,
पूर्ण हैल सकल आकाश।
महा–जय–जय ध्वनि, अनन्त ब्रह्माण्डे शुनि,
अमंगल सब गेल नाश॥५३॥
सत्यलोक–आदि जिनि', उठिल मंगलध्वनि,
स्वर्ग, मर्त्त्य, पूरिल पाताल।
ब्रह्मदैत्य–उद्धार, बइ नाहि शुनि आर,
प्रकट गौरांग–ठाकुराल॥५४॥
हेन महा–भागवत, सब देवगण यत,
कृष्णावेशे चलिलेन पुरे।
गौरांगचाँदेर यशः, बिने आर कोन रस,

काहार वदने नाहि स्फुरे॥५५॥

(३५–५५) प० अनु०—यमराज के नृत्य को देखकर सभी देवता नाचने लगे एवं नारदादि के साथ ब्रह्मा और शिव भी नाचने लगे। देवताओं के नृत्य को सावधान होकर सुनो, यह अत्यन्त गुह्य है, इसको वेद व्यक्त करने वाले है।

सभी लज्जा–संकोच छोड़कर धर्मराज नाच रहे हैं। वे कृष्णावेश में अपने को भूल गये हैं। श्रीचैतन्यदेव का स्मरण करते हुये वे कहते हैं,—"आप अति धन्य हैं, आपके पतितपावन वेश को धन्य है।" यमराज महान् प्रेमावेश में कभी हुँकार करते हैं और कभी गरजते हैं, उसका शरीर पुलकित हो रहा है। उनके भावों का अन्त नहीं है। श्रीगौरांग का स्मरण करके यमराज विह्वल हो रहे हैं और बहुत रो रहे हैं। यमराज के जितने गण हैं, वे सभी उनके ऐसे प्रेम हो देखकर आनन्द में भूमि पर लोट–लोट हो रहे हैं। महाभाग्यवान् चित्रगुप्त का कृष्ण में बड़ा अनुराग है। वे तो ताल ठोक–ठोक कर उछलते फिर रहे हैं। प्रभु शंकर दिगम्बर होकर नाच रहे हैं। कृष्ण के आवेश में शरीर पर वस्त्र हैं कि नहीं, इसकी सुध भी उन्हें नहीं है। वे वैष्णवों में अग्रगण्य हैं और तारक 'राम' नाम कहकर जगत् को धन्य कर रहे हैं। अपने प्रभु की महिमा देखकर शिवजी आनन्द में नाच रहे हैं, वे जटाओं को भी नहीं बाँध पा रहे हैं। कार्तिकेय और गणेश भी महेश के पीछे–पीछे प्रभु की असीम कृपा का स्मरण करके नाच रहे हैं। भक्ति ही जिनका प्राणधन है, वे ब्रह्माजी अपने परिवार सहित नाच रहे हैं और ब्रह्माजी के पीछे कश्यप, कर्दम, दक्ष, मनु, भृगु आदि महान् मुख्यजन भी नाच रहे हैं। सभी महाभागवत हैं, कृष्ण–रस में महामत्त हैं, सब भक्ति की शिक्षा देते हैं। वे ब्रह्माजी को घेरे हुये हैं, प्रभु की करुणा का स्मरण करके रोते हुये वे दीर्घश्वास त्याग रहे हैं। ब्रह्माजी के पीछे देवर्षि नारद भी नाच रहे हैं, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। वे प्रभु के यश की सीमा पाकर आनन्द में विह्वल हो रहे हैं, वीणा कहाँ पड़ी है, कुछ भी सुध नहीं है। श्रीचैतन्यदेव के प्रियभृत्य श्रीशुकदेव भी नाच रहे हैं। श्रीशुकदेव भक्ति की महिमा जानते हैं, वे जगाइ–माधाइ का नाम लेकर धूल में लोट–पोट हो रहे हैं और बहुविध दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं। महावीर बज्रधारी देवराज इन्द्र भी नाच रहे हैं तथा अपने को धिक्कार दे रहे हैं। उनके सहस्र नेत्रों से निरन्तर अश्रु–धाराएँ बह रही हैं, आज ब्रह्म–शाप उनके लिए सफल हो गया। प्रभु की महिमा को देखकर इन्द्रदेव बड़े प्रसन्न हो रहे हैं और भाव में विवश होकर भूमि पर लोट–पोट हो रहे हैं। कहाँ गया उनका बज्र! कहाँ गया उनका किरीट (मुकुट) और हार! इसका नाम है कृष्ण–रस। चन्द्र, सूर्य, पवन, कुबेर, अग्नि, वरूण आदि सब लोकपाल नाच रहे हैं। सभी कृष्ण के भृत्य हैं, सबके मन में उल्लास है, हर्ष से सब छोटे–बड़े का भेद भूल गये हैं। परस्पर एक दूसरों को वे कितनी बार धक्का दे रहे हैं, तब भी उन सबको बड़ा आनन्द आ रहा है। सभी कृष्ण के आवेश में सुख से नाच रहे हैं। प्रभु भगवान् जिनका नाम है श्रीअनन्तदेव, वे गरुड़ के साथ नाच रहे है। वे श्रीअनन्तदेव, वे गरुड़ के साथ नीच रहे हैं। वे वैष्णवराज हैं वे भी आनन्द से नाच रहे हैं। ब्रह्मा शिव, नारद, शुक आदि जितने देव हैं, से सब अनन्तदेव को घेरकर नाच रहे हैं। सबके मध्य में सहस्रवदन शेषजी गौरचन्द्र अवतार तथा ब्रह्मदैत्य–उद्धार का कीर्तन कर

रहे हैं। महाप्रकाश को देखकर कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है और कोई वहीं मूर्च्छित पड़ा है। कोई कहता है, "श्रीगौरचन्द्र का प्रभाव बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, धन्य–धन्य हैं जगाइ–माधाइ। कृष्णयश के सुमंगलमय नृत्यगीत के कोलाहल से आकाश पूर्ण हो गया। अनन्त ब्रह्माण्ड में महा जय–जयकार की ध्वनि सुनाई दे रही है। जिससे सब अमंगल नष्ट हो रहे हैं। उस मंगलध्वनि ने सत्यलोक आदि को जय कर स्वर्ग, मर्त्य और पाताल को भर दिया है। ब्रह्मदैत्य उद्धार की चर्चा के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है, श्रीगौरांगदेव का प्रभाव प्रकट हो रहा है। इस प्रकार महाभागवत देवगण कृष्णा वेश में अपने–अपने लोक को जा रहे हैं। श्रीगौरांगचाँद के यश को छोड़कर और कोई रस किसी के भी मुख से स्फुरित नहीं हो रहा है।

(४२) गौः भाः—कश्यप—(कश्यं सोमरसादिजनितं मद्यं पिबतीति)—ब्रह्मा के मानसपुत्र 'मरीचि के औरस से और कर्दम–दुहिता 'कला' के गर्भ से इनका जन्म हुआ है। शुक्ल–यजुर्वेद आदि वैदिक संहिता के मतानुसार इन्होंने हिरण्यवर्ण ब्रह्मा से जन्म ग्रहण किया। "हिरण्यवर्णाः शुचयः यावका यासु जातः कश्यपो यास्विद्रः"—(तैत्तिरीय–संहिता ५/६/१/१) ये एक प्रजापति हैं। साम, यजुः और अथर्व–संहिता के मतानुसार वे चन्द्र आदि देवताओं के जनक (पिता) हैं। श्रीमद्भागवत के मतानुसार उन्होंने दक्ष की १७ कन्याओं से विवाह किया था। उनके गर्भ से १७ जाति उत्पन्न हुई थीं—(१) अदिति के गर्भ से देवगण, (२) दिति के गर्भ से दैत्यगण, (३) दनु के गर्भ से दानव, (४) काष्ठा के गर्भ से अश्वादि, (५) अरिष्टा के गर्भ से गन्धर्वगण, (६) सुरसा के गर्भ से राक्षस, (७) इला के गर्भ से वृक्ष, (८) मुनि के गर्भ से अप्सरागण, (९) क्रोधवशा के गर्भ से सर्प, (१०) ताम्रा के गर्भ से श्येन, गृध्र आदि, (११) सुरभि के गर्भ से गाय–महिषादि, (१२) सरमा के गर्भ से श्वापद (मांसाहारी जन्तु), (१३) तिमि के गर्भ से जलजन्तु, (१४) विनता के गर्भ से गरुड़ और अरुण, (१५) कद्रु के गर्भ से नाग, (१६) पतंगी के गर्भ से पतंग एवं (१७) यामिनी के गर्भ से शलभ उत्पन्न हुये हैं। किन्तु महाभारत एवं अन्यान्य पुराणादि में कश्यप की त्रयोदश भार्याओं का उल्लेख है; यथा,—(१) अदिति, (२) दिति, (३) दनु, (४) विनता, (५) यसा, (६) कद्रु, (७) मुनि, (८) क्रोधा, (९) अरिष्टा, (१०) इरा, (११) ताम्रा, (१२) इला एवं (१३) प्रधा।

कर्दम—स्वायम्भुव–मन्वन्तर के प्रजापति विशेष हैं। वे ब्रह्मा के पुत्र हैं। ब्रह्मा के आदेश से सृष्टि करेन हेतु इन्होंने सरस्वती के किनारे विन्दुसर–तीर्थ में दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी। बाद में स्वायम्भुव मनु की कन्या का पाणिग्रहण करके कला आदि नौ कन्याओं को उत्पन किया। भगवान् कपिलदेव इनके औरम से आविर्भूत हुये थे।

दक्ष—ये एक प्रजापति हैं। महाभारत–पुराणादि के मतानुसार ब्रह्मा के दक्षिण अंगूठे से इनका जन्म हुआ। इससे पहले मानस सृष्टि–द्वारा वृद्धि नहीं हो रही है, तब उन्होंने पहले मैथुन द्वारा प्रजा की सृष्टि की। तब से मनुष्य, पशु पक्षी आदि की मैथुन–द्वारा सृष्टि होती है।

श्रीमद्भागवत के मत से—स्वायम्भुव मनु की कन्या प्रसूति के साथ इनका विवाह हुआ। प्रसूति के गर्भ से १६ कन्याओं का जन्म हुआ। उसमें से १३ धर्म को, एक अग्नि को, एक पितृगण को और एक महादेव को प्रदान की गई थी। किसी समय में विश्वस्रष्टृगण

के यज्ञ में सब देवता बैठे हुये थे। उस समय दक्ष के उपस्थित होने पर ब्रह्मा और शिव को छोड़कर सभी देवता उठ खड़े; किन्तु महादेव द्वारा किसी प्रकार का सम्मान प्रदर्शित नहीं करने पर दक्ष क्रोध में उन्मत्त होकर उनकी निन्दा करते रहे तथा उनको यज्ञभाग से वंचित कर दिया। बाद में स्वयं वृहस्पति के यज्ञ आरम्भ करने पर शिव को छोड़कर त्रिलोक में स्थित सभी अधिवासियों को निमंत्रित किया। सती के पितृयज्ञ में जाने की इच्छा प्रकट करने पर महादेव ने उनको अनुमति नहीं दी; सती ने बिना अनुमति के ही यज्ञस्थल में जाकर शिवनिन्दा श्रवण से देह को त्याग दिया।

नारद से सती के प्राणत्याग का संवाद सुनकर महादेव बहुत क्रुद्ध हुये एवं भूमि पर जटा निक्षेप-पूर्वक वीरभ्रद को उत्पन्न किया। वीरभद्र ने यज्ञस्थल में गमन करके यज्ञ ध्वसं किया एवं पशुमारण यंत्र से दक्ष का विनाश साधन किया। बाद में ब्रह्मा के स्तव से प्रसन्न महादेव की कृपा से बकरे का सिर धारण कर दक्ष ने पुनर्जीवन प्राप्त किया। सती भी हिमालय क्षेत्र में मेनका के गर्भ से दोबारा जन्मग्रहण कर शिव को प्राप्त हुई। दक्ष की असिक्ली-नाम की भार्या के गर्भ से साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उसमें १० धर्म को, १७ कश्यप को, २७ चन्द्र को एवं दो-दो करके भूल, अंगिरा एवं कृपाश्व को प्रदान की गईं।

दक्ष ने पंचजनी नाम की पत्नी के गर्भ से दस हजार पुत्र उत्पादन करके उनको प्रजासृष्टि का आदेश दिया, परन्तु 'हर्याश्व' नाम के दस हजार पुत्र नारद के उपदेश से पारमहंस्य धर्म में अनुरक्त हो गये। दक्ष ने पुत्रों के लिए शोक प्रकाश करके दोबारा 'सवलाश्व' नाम के एक हजार पुत्र उन्पन्न किये और उनको प्रजासृष्टि का आदेश प्रदान किया; परन्तु वे भी देवर्षि नारद के उपदेश से हर्याश्व जनों की प्रति को प्राप्त हुये। उससे क्रुद्ध होकर दक्ष से नारद को यह शाप दिय, कि नारद को सर्वलोकों में भ्रमण करना होगा, उनको कहीं भी स्थान नहीं मिलेगा।

भृगु—विष्णुपुराण के मत से ये ब्रह्मा के मानसपुत्र एवं दस प्रजापतियों में से एक हैं। दक्ष कन्या ख्याति के साथ विवाह हुआ था। ख्याति के गर्भ से विष्णुपत्नी-लक्ष्मी एवं 'धाता' और 'विधाता' नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुये। महात्मा मेरु की आयति और नियति नाम की दो कन्याओं से इन दोनों का विवाह हुआ, बाद में इनका वंश विस्तृत होकर 'भार्गव' नाम से विख्यात हुआ।

महाभारत के मत से—बहिर्यज्ञ में दीक्षित ब्रह्मा का हुताशन में आहुति प्रदान करने के समय देवकन्याओं का दर्शन करके वीर्य स्खलित हुआ। तब सूर्यदेव ने उसे हथेली पर ग्रहण करके अग्नि में निक्षिप्त कर दिया, इस प्रकार अग्निशिखा से भृगु की उत्पत्ति हुई। ये सप्तर्षियों में एक हैं।

श्रीमद्भागवत में प्रसंग आता है कि—ब्रह्मा के पुत्र भृगु,—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—इन तीनों में कौन श्रेष्ठ है, इस बात की परीक्षा लेने हेतु ऋषियों द्वारा प्रेरित होकर, ब्रह्मा की सभा में उपस्थित हुये। ब्रह्मा की महिमा की परीक्षा करने के निमित्त भृगु ने उन्हें प्रणाम नहीं किया। उससे ब्रह्मा कुपित हो गये। फिर भृगु रूद्र के पास गये। महादेव ने उनको आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर भृगु ने महादेव को 'उन्मार्गगामी" (असदाचारी कहकर नका तिरस्कार किया। उससे रुद्र क्रुद्ध होकर त्रिशुल उठाते हुये भृगु का विनाश करने के लिए

उद्यत हो गये। इसके पश्चात् भृगु वैकुंठ में गये एवं लक्ष्मी की गोदी में सोते हुये नारायण के वक्षःस्थल पर पदाघात किया। उसके बाद श्रीहरि ने लक्ष्मी–सहित उठकर भृगु की वन्दना की एवं उनके आगमन का कारण न जानने से उनका यशोचित्त सत्कार नहीं करने पर क्षमा प्रार्थना और स्तव किया। तब भृगु ने मुनियों के समीप उपस्थित होकर सब कुछ बताया। इससे सभी ने ऐसा निर्णय लिया कि विष्णु ही श्रेष्ठ हैं।

मनु—ब्रह्मा के एकदिन में चतुर्दश मनु हो जाते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुस, वैवस्वत्, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसार्विण। वर्तमान मनु का नाम—वैवस्वत है। इनमें से प्रत्येक का भोगकाल—७१ चतुर्युग, महायुग या दिव्ययुग है। श्रीमद्भागवत में मनुओं का वंशविस्तार वर्णित है।

(४६) गौः भाः—सफल हइल ब्रह्मशाप—देवराज इन्द्र को गौतम के शाप से सहस्रयोनि प्राप्त हुई थीं। बाद में गौतम मुनि को स्तवन से सन्तुष्ट करके इन्द्र ने उनके प्रसाद से सहस्र नयन प्राप्त किये। उस ब्रह्मशाप के फल से प्राप्त सहस्र आज गौरसुन्दर लीला के दर्शन से सफल हुये।

(४७) गौः भाः—ब्रजसार—इन्द्र के अस्त्र का नाम बज्र है। यहाँ 'बज्रवत् सार' यह अर्थ न होकर सारयुक्त अस्त्र बज्र—यह अर्थ होगा। वही दृढ़ ब्रत शिथिल होकर गिर पड़ा।

(४८) गौः भाः—कृष्णेर ठाकुराल—भगवद् वैभव, भगवान् का प्रभाव।

(५०) गौः भाः—विनतानन्दन,—गरुड़।

ग्रन्थकार द्वारा गौर–जयगान एवं
सबके निमित्त करुणाभिक्षा—

जय जगतमंगल, प्रभु गौरसुन्दर,
जय सर्व–जीवलोकनाथ।
उद्धारिला करुणाते, ब्रह्मदैत्य येन–मते,
सबा प्रति कर दृष्टिपात॥५६॥
जय जय श्रीचैतन्य, संसार–तारक धन्य,
पतितपावन धन्यवाणा
श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्दचाँद प्रभु,
वृन्दावनदास गुणगाना॥५७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे
यमराजसंकीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।

(५६–५७) प० अनु०—जगन्मंगल प्रभु गौरसुन्दर की जय हो, सर्व जीवलोकनाथ की जय हो। हे प्रभो! जैसे आपने करूणा करके ब्रह्मदैत्यों का उद्धार किया, वैसे ही आप सबके प्रति शुभ दृष्टिपात कीजिए। श्रीचैतन्यदेव की जय हो, जय हो। संसार–तारफ! आप धन्य हैं, आपके 'पतितपावन' बाने को धन्य है। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्दचाँद के गुणों का वृन्दावन दास गान कर रहा है।

इति गौड़ीय–भाष्य में चतुर्दश अध्याय समाप्त

O

पंचदश अध्याय

पंचदश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में जगाइ–माधाइ द्वारा निर्बन्ध (निर्दिष्ट संख्या) सहित साधन एवं निर्वेद, विश्वम्भर–द्वारा जगाइ–माधाइ को आश्वासन–प्रदान, नित्यानन्द के अंग में चोट पहुँचाने के कारण माधाइ की आत्मग्लानि के अंग में चोट पहुँचाने के कारण माधाइ की आत्मग्लानि और नित्यानन्द के चरणों में क्रन्दन एवं स्तवन, नित्यानन्द द्वारा माधाइ की आत्मग्लानि और नित्यानन्द के चरणों में उपदेश–प्रार्थना एवं श्रील नित्यानन्द–द्वारा उपदेश प्रदान तथा माधाइ की तपस्या इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

महाप्रभु की कृपा से जगाइ–माधाइ प्रतिदिन ऊषाकाल में गंगास्थान करके दो लाख कृष्णनाम ग्रहण किया करते थे। वे निज–कृत पूर्व पापों की कथा को स्मरण करके अनुताप एवं गौरनाम लेकर क्रन्दन करते थे। पार्षद–सहित महाप्रभु–द्वारा जगाइ–माधाइ को निरन्तर कृपा–पूर्वक आश्वासन–वाक्य प्रदान करने पर भी वे अपने मन में शान्ति प्राप्त नहीं कर पा रहे थे। विशेषतः माधाइ नित्यानन्द के अंग से रक्तपात करने के अपराध का स्मरण करके निरंतर आत्मघात एवं अनुताप क्रन्दनापि करते रहते थे। एकदिन माधाइ निर्जन में दाँतो मे तृण धारण करके एवं नित्यानन्द के चरणयुगल पकड़कर अरुपूर्ण नेत्रों से बहुविध सारगर्भ–वाक्यों के द्वारा उनका स्तवन अपने द्वारा किये हुये अपराध के लिए उनमें क्षमा प्रार्थना करने लगे। माधाइ की कातर–प्रार्थना से नित्यानन्द ने दया–द्रवित होकर माधाइ को सान्त्वना प्रदान की एवं उसे बाहों में लेकर आलिंगन कर लिया।

माधाइ ने फिर एकबार नित्यानन्द के समीप जाकर निज–कृत अनेक जीवहिंसारूप अपराधों से मुक्ति पाने का उपाय जानने की इच्दा प्रकट की। इस पर श्रीमन्नित्याननद प्रभु ने माधाइ को गंगाघाट का निर्माण एवं गंगास्नानार्थ समागत व्यक्तियों को दण्डवत्–प्रणाम आदि करने का उपदेश प्रदान किया। नित्यानन्द के आदेशानुसार माधाइ प्रतिदिन अश्रुपूरित नेत्रों से 'कृष्ण–कृष्ण' कहते हुये गंगाघाट की सेवा, वहाँ समागत व्यक्तियों को दण्डवत् प्रणाम एवं उन लोगों के निकट स्वकृत अपराधों के लिए क्षमा प्रार्थना करने लगे। पहले जो व्यक्ति बिना सोचे–समझे महाप्रभु को लेकर निन्दा–परिहास आदि सोचे–समझे महाप्रभु को लेकर निन्दा–परिहास आदि किया करते थे, जगाइ–माधाइ की सुबुद्धि के दर्शन से वे भी महाप्रभु की अपार दया एवं महिमा को उपलब्ध करने में सक्षम हुये। कठोर तप के प्रभाव से माधाइ 'ब्रह्मचारी' नाम से विख्यात हो गये। माधाइ–द्वारा गंगाघाट–निर्माण के निदर्शनस्वरूप अभी भी 'माधाइ का घाट' नाम सुनने में आता है।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

मायूर रागः

देख गोराचाँदरे कत भाति।
शिव, शुक, नारद, धेयाने ना पाओयत्
सो–पहुँ अकिंचन–संगे दिनराति॥ध्रु॥१॥

(१) प० अनु०—श्रीगौरचन्द्र की महिमा को तो देखिए कि शिव, शुक, नारद भी जिनका ध्यान में दर्शन नहीं कर पाते हैं, वे ही प्रभु दिन–रात अकिंचन भक्तों के साथ विहार कर रहे हैं।

(१) गौः भाः—श्रीगौरचन्द्र के प्रकाश–वैशिष्ट्य का सब लोग दर्शन कीजिए। शिव, शुक, नारद आदि ध्यान में भी जिनको प्राप्त नहीं कर पाते हैं, वे ही प्रभु प्रतिपल कर्म, ज्ञान एवं भक्ति–रहित जनगण अपना संग देकर उन पर दया कर रहे हैं।

'अकिंचन'–शब्द से—जिनका कोई सम्बल नहीं है।

सागर में पड़ी हुई चन्द्रमा की किरणों को देखकर मीन जैसे उस चन्द्रमा की समझने में असमर्थ है, वैसे ही भवसागर में पड़े हुये जीव भी गौरलीला के दर्शन में असमर्थ हैं—

हेनमते नवद्वीपे विश्वम्भर राय।
अनन्त अचिन्त्य–लीला करये सदाय॥२॥
एत सब प्रकाशेओ केह नाहि चिने।
सिन्धु चन्द्र येन ना जानिल मीने॥३॥

(२–३) प० अनु०—इस प्रकार से नवद्वीप में विश्वम्भर राय ने अनन्त अचिन्त्य–लीलाओं को प्रकाशित किया है। इतने सारे प्रकाश होन पर भी कोई उन्हें उसी प्रकार नहीं जान पाया, जिस प्रकार मछली सागर में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को नहीं पहचान पाती है।

(३) गौः भाः—प्राचीन शास्त्रकारों ने समुद्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति की कथा का वर्णन किया है। किन्तु समुद्र में रहने वाली मीन जैसे यह नहीं जानती हैं कि चन्द्र का अधिष्ठान समुद्र में है, वैसे ही अज्ञानांध (अज्ञान के कारण अंधे) मनुष्य भी प्रपंच में अवतीर्ण श्रीचैतन्यदेव की अचिन्त्य–लीलाओं को समझ नहीं पाते हैं। (अन्य अर्थ)—मीन का अवस्थान क्षेत्र है—समुद्र। वहीं से चन्द्रमा का दर्शन करते समय समुद्र में चन्द्रमा की किरणों को देखने से मीन को जिस प्रकार से चन्द्रमा का स्वरूप जानने में व्याघात होता है, उसी प्रकार संसार–समुद्र में प्रवाहशील मर्त्तजीवकुल श्रीचैतन्यदेव की छायाशक्ति के आवरण से आवृत–नेत्रों से श्रीचैतन्यलीला के दर्शन करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं।

जगाइ–माधाइ का निर्वेद एवं निर्बन्ध–सहित भजन एवं गौरसुन्दर–द्वारा सान्त्वना–प्रदान—

जगाइ–माधाइ दुइ चैतन्य–कृपाय।
परम धार्मिरूपे बसे नदीयाय॥४॥
ऊषः काले गंगास्नान करिया निर्जने।
दुइ लक्ष कृष्णनाम लय प्रतिदिने॥५॥
आपनारे धिक्कार करये अनुक्षण।
निरवधि 'कृष्ण' बलि' करये क्रन्दन॥६॥
पाइया कृष्णेर रस परम उदार।
कृष्णेर दयित देखे सकल संसार॥७॥
पूर्वे ये करिल हिंसा, ताहा सङरिया।
कान्दिया भूमिते पड़े मूर्च्छित हइया॥८॥
''गौरचन्द्र, आरे बाप पतितपावन।''
सङरिया पुनः पुनः करये क्रन्दन॥''९॥
आहारेर चिन्ता गेल कृष्णेर आनन्दे।
सङरि' चैतन्यकृपा दुइ जने कान्दे॥१०॥
सर्वगण–सहित ठाकुर विश्वम्भर।
अनुग्रह, आश्वास करये निरन्तर॥११॥

आपने आसिया प्रभु भोजन कराय।
तथापिह दोंहे चित्ते सोयास्ति ना पाय॥१२॥

(४–१२) प० अनु०—चैतन्य के कृपाप्राप्त जगाइ–माधाइ दोनों परम धार्मिक के रूप में नदीया में रहने लगे। ऊषा काल में निर्जन में गंगास्नान के उपरान्त वे दोनों प्रतिदिन दो लाख कृष्ण–नाम ग्रहण किया करते थे और निरन्तर 'कृष्ण' कहकर क्रन्दन करते थे। उन दोनों को परम उदार कृष्णरस का आस्वादन मिला था और वे दोनों सारे संसार को कृष्ण–प्रिय रूप में देखने लगे। पहले की गई हिंसा का स्मरण करके वे दोनों क्रन्दन करते हुये भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ते थे। "अरे हमारे स्वामी पतितपावन गौरचन्द्र"—इस प्रकार स्मरण करके वे बारम्बार क्रन्दन करते थे। कृष्णानन्द में दोनों को आहार तक की चिन्ता नहीं रह गई थी और दोनों चैतन्यकृपा का स्मरण करके निरन्तर आँसू बहाते रहते थे। सर्वगण–सहित ठाकुर विश्वम्भर उन दोनों के लिए निरन्तर अनुग्रह और आश्वासन प्रदान करते रहते थे। प्रभु अपने आप आकर दोनों को भोजन करवाते थे; फिर भी दोनों के हृदय में चैन नहीं आता था।

(५) गौः भाः—कहा जाता है कि श्रीहरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख नाम ग्रहण किया करते थे। जगाइ–माधाइ भी रोज दो लाख नाम ग्रहण करते हैं, उन लोगों के द्वारा दी गई किसी भी वस्तु को श्रीचैतन्यदेव ग्रहण नहीं करते हैं। श्रीचैतन्य के चरणों के अनुचरगण नित्य कम–से–कम एक लाख–नाम अवश्य ही ग्रहण करते हैं; अन्यथा श्रीकृष्ण उन लोगों की भेंट ग्रहण नहीं करते। इससे भगवद् उच्छिष्ट (भगवान् के प्रसाद की) प्राप्ति के विचार में व्याघात उत्पन्न होता है।

(७) गौः भाः—विषयविग्रह कृष्ण—समस्त द्वादश रसों के ही आश्रय हैं। जो लोग कृष्ण–सम्बन्ध से विषय–समूहों का दर्शन करने में असमर्थ हैं, वे सब व्यक्ति—आसक्त हैं। उन लोगों को परम उदार कृष्ण की रसमयता की अनुभूति नहीं होती है। श्री जगाइ–माधाइ ने श्रीमन्महाप्रभु से अनुग्रह प्राप्त करके प्रापंचिक वस्तुमात्र के साथ कृष्ण–सम्बन्ध का दर्शन करना आरम्भ कर दिया था। इससे उनको संसार में प्रतिकूलता का बोध नहीं होता था। कृष्ण–सम्बनध–दर्शन के अभाव में प्रापंचिक वस्तु में भोग–बुद्धि का उदय होता है। रस–रहित अवस्था–निर्भेदब्रह्मानुसन्धान विचारपरक मात्र है। कृष्णरस के उद्दीपन से प्रपंच के व्यापार–समूह भगवद् भाव–संयुक्त हो जाते हैं। उस समय प्रापंचिक वस्तुओं में इन्द्रियभोग्य विचार का अभाव होकर कृष्णेन्द्रिय–तात्पर्य–ज्ञान से उनमें पूज्य–बुद्धि का उदय होता है। इसमें भोग्य–विचार नहीं रहता है। भोग्य–विचार नहीं रहने से व्यक्ति में हिंसावृत्ति का उदय नहीं होता है। कृष्णभोग्य–विचार से वस्तु के साथ मित्रता अवश्यम्भावी है।

नित्यानन्द–लंघन–हेतु माधाइ का
निर्वेद एवं काकूक्ति—

विशेषे माधाइ नित्यानन्देरे लंघिया।
पुनः पुनः कान्दे विप्र ताहा सङरिया॥१३॥
नित्यानन्द छाड़िल सकल अपराध।
तथापि माधाइ चित्ते ना पाय प्रसाद॥१४॥
''नित्यानन्द–अंगे मुञि कैलुँ रक्तपात।''
इहा बलि' निरन्तर करे आत्मघात॥१५॥
''ये अंगे चैतन्यचन्द्र करये विहार।
हेन अंगे मुञि पापी करिलुँ प्रहार॥''१६॥
मूर्च्छागत हय इहा सङरि' माधाइ।
अहर्निश कान्दे, आर किछु चिन्ता नाइ॥१७॥

(१३–१७) प० अनु०—विशेषरूप से विप्र माधाइ बारम्बार क्रन्दन करते थे, क्योंकि उन्हें यह स्मरण आता रहता था कि, उन्होंने नित्यानन्द पर आक्रमण किया था। यद्यपि नित्यानन्द ने उनके सभी अपराध क्षमा कर दिये थे; फिर भी माधाइ को चैन नहीं आता था। "नित्यानन्द के श्रीअंग से मैंने रक्त बहाया है"—इस बात को दोहराते हुये वे निरन्तर दुःखी रहते थे। "जिस शरीर में श्रीचैतन्यचन्द्र विहार करते हैं, उसी शरीर पर मुझ पापी ने प्रकार किया है।" इस बात को स्मरण करके माधाइ मूर्च्छित हो जाते और दिन–रात केवल क्रन्दन करते रहते—अन्य किसी विषय के बारे में वे सोच ही नहीं पाते थे।

परमानन्दमय नित्यानन्द का निरहंकारी होकर सारे नदीया में भ्रमण—

नित्यानन्द–महाप्रभु बालक–आवेशे।
अहर्निश नदीयाय बुलेन हरिषे॥१८॥
सहजे परमानन्द नित्यानन्द–राय।
अभिमान नाहि, सर्व नगरे बेड़ाय॥१९॥

(१८–१९) प० अनु०—नित्यानन्द–महाप्रभु बालक के आवेश में दिन–रात आनन्दपूर्वक नदीया में भ्रमण करते थे। सहज परमानन्दस्वरूप नित्यानन्द–राय अभिमान–रहित होकर नगर में सभी स्थानों पर घूमते रहते थे।

(१९) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द–प्रभु परमानन्दमय एवं अत्यन्त सरल–स्वभाव के थे। वे सारे नगर में सब श्रेणियों के नागरिकों के घरों में अपना महत्त्व विस्मृत होकर भ्रमण करते थे। उनके आदर्श–चरित्र का दर्शन करके जगत् के अनेक व्यक्तियों ने कुटिलता का त्याग करके निरहंकारी होने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

माधाइ–द्वारा नित्यानन्द के चरणों में निष्कपट शरणापति एवं स्तवन—

एकदिन नित्यानन्दे निभृते पाइया।
पड़िला माधाइ दुइ चरणे धरिया॥२०॥
प्रेमजले धोलाइल प्रभुर चरण।
दन्ते तृण धरि' करे प्रभुर स्तवन॥२१॥
''विष्णुरूपे तुमि प्रभु करह पालन।
तुमि से फणाय धर अनन्त भुवन॥२२॥
भक्तिर स्वरूप प्रभु तोर कलेवर।
तोमारे चिन्तये मने पार्वती–शंकर॥२३॥
तोमार से भक्तियोग, तुमि कर दान।
तोमा बइ चैतन्ये प्रिय नाहि आन॥२४॥
तोमार से प्रसादे गरूड़ महाबली।
लीलाय बहये कृष्ण हइ' कुतुहली॥२५॥
तुमि से अनन्तमुखे कृष्णगुण गाओ।
सर्वधर्मश्रेष्ठ 'भक्ति' तुमि से बुझाओ॥२६॥
तोमार से गुण गाय ठाकुर नारद।
तोमार से यत किछु चैतन्यसम्पद्॥२७॥
तोमार से कालिन्दि–भेदनकारी नाम।
तोमा सेवि' जनक पाइल दिव्यज्ञान॥२८॥
सर्वधर्ममय तुमि पुरुष पुराण।
तोमारे से वेदे बले 'आदिदेव' नाम॥२९॥
तुमि से जगतपिता, महा धनुर्द्धर॥३०॥
तुमि से पाषण्डक्षय, रसिक, आचार्य।
तुमि से जानह चैतन्येर सर्व–कार्य॥३१॥
तोमारे सेविया पूज्या हैला महामाया।
अनन्त ब्रह्माण्डे चाहे तोमा' पदछाया॥३२॥
तुमि चैतन्येर भक्त, तुमि महाभक्ति।
यत किछु चैतन्येर—तुमि सर्वशक्ति॥३३॥
तुमि शय्या, तुमि खट्टा, तुमि से शयन।
तुमि चैतन्येर छत्र, तुमि प्राणधन॥३४॥
तोमा बहि कृष्णेर द्वितीय नाहि आर।
तुमि गौरचन्द्रेर सकल अवतार॥३५॥

तुमि से करह प्रभु पतितेर त्राण।
तुमि से संहार' सर्व–पाषण्डीर प्राण॥३६॥
तुमि से करह सर्व–वैष्णेर रक्षा।
तुमि से वैष्णव–धर्म कराह ये शिक्षा॥३७॥
तोमार कृपाय सृष्टि करे अज–देवे।
तोमारे से रेवती, वारुणी, कान्ति सेवे॥३८॥
तोमार से क्रोधे महा–रुद्र–अवतार।
सेइ द्वारे कर सर्व–सृष्टिर संहार॥३९॥

तथाहि (श्रीविष्णुपुराण में २/५/१९)—
''संकर्षणाम्मको रुद्रो निष्क्रम्याति जगत्त्रयम्''॥४०॥
सकल करिया तुमि किछु नाहि कर।
अनन्त ब्रह्माण्ड नाथ तुमि वक्षे धर॥४१॥
परम कोमल सुख–विग्रह तोमार।
ये विग्रहे करे कृष्ण शयन–विहार॥४२॥
से हेन श्रीअंगे मुञि करिनु प्रहार।
मो–अधिक दारुण पातकी नाहि आर॥४३॥
पार्वती प्रभृति नवार्वुद नारी लइया।
ये अंग पूजये शिव जीवन भरिया॥४४॥
ये अंग स्मरणे सर्वबंध विमोचन।
हेन अंगे रक्त पड़े आमार कारण॥४५॥
चित्रकेतु–महाराज ये अंग सेविया।
सुखे विहरये वैष्णवग्रागण्य हइया॥४६॥
अनन्त ब्रह्माण्ड करे ये अंग स्मरण।
हेन अंग मुञि पापी करिनु लंघन॥४७॥
ये अंग सेविया शौनकादि ऋषिगण।
पाइल नैमिषारण्ये बन्ध–विमोचन॥४८॥
ये अंग लंघिया इन्द्रजित गेल क्षय।
ये अंग लंघिया द्विविदेर नाश हय॥४९॥
ये अंग लंघिया जरासन्ध नाश गेल।
आर मोर कुशल नाहि, से अंग लंघिल॥५०॥
लंघनेर कि दाय, याहार अपमाने।
कृष्णेर श्यालक रुक्मी त्यजिल जीवने॥५१॥
दीर्घ आयु ब्रह्मासम पाइयाओ सूत।
तोमा देखि' ना उठिल, हैल भस्मीभूत॥५२॥
याँर अपमान करि' राजा दुर्योधन।
सर्वशेते प्राण गेल, नहिल रक्षण॥५३॥
दैवयोगे छिल तथा महा–भक्तगण।
ताँरा सब जानिलेन तोमार कारण॥५४॥
कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन।
ताँ–सबार वाक्ये पुर पाइलेन पुनः॥५५॥
याँर अपमान मात्र जीवनेर नाश।
मुञि दारुणेर कोन् लोके हवे वास॥''५६॥
बलिते बलिते प्रेमे भासये माधाइ।
वक्षे दिया श्रीचरण पड़िल तथाइ॥५७॥
''ये चरण धरिले ना याइ कभु नाश।
पतितेर त्राण लागि' याहार प्रकाश॥५८॥
शरणागतेरे बाप, कर परित्राण।
माधाइर तुमि से जीवन, धन, प्राण॥५९॥
जय जय जय पद्मावतीर नन्दन।
जय नित्यानन्द सर्व–वैष्णवेर धन॥६०॥
जय जय अक्रोध परमानन्द राय।
शरणागतेर दोष क्षमिते युयाय॥६१॥
दारुण चंडाल मुञि, कृतघ्न गोखर।
सब अपराध प्रभु मोरे क्षमा कर॥''६२॥

(२०–६२) प० अनु०—एकदिन नित्यानन्द को एकांत में पाकर माधाइ उनके चरणों में पड़ गये। प्रेमजल से उन्होंने प्रभु के चरण धोये और दांतों में तृण लेकर (दैन्यपूर्वक) प्रभु का स्तवन करने लगे। "हे प्रभु! आप ही विष्णु–रूप से सबका पालन करते हैं। आप ही फण पर अनन्त भुवनों को धारण करते हैं। हे प्रभु! आपका श्रीअंग भक्ति का स्वरूप है। पार्वती और शंकर मन–ही–मन आपका चिंतन करते रहते हैं। यह भक्तियोग आपका ही है और आप ही उसे दान करते रहते

हैं। आपके अतिरिक्त चैतन्य का और कोई प्रिय नहीं है। आपकी कृपा से महाबली गरुड़ लीला–पूर्वक (अनायास) महा आनन्द के साथ कृष्ण को वहन करते हैं। आप अनन्तमुखों से कृष्ण के गुणों का कीर्तन करते रहते हैं। आप ही समझाते हैं कि, 'भक्ति' सर्वधर्मों में श्रेष्ठ है। ठाकुर नारद आपका ही गुण गाते रहते हैं। चैतन्य ही आपकी सब कुछ सम्पदा हैं। 'कालिन्दी–भेदनकारी' आपका ही नाम है। आपकी सेवा से ही जनक को दिव्यज्ञान मिला था। आप सर्वधर्ममय पुराण–पुरुष हैं। आपको ही वेद 'आदिवेद' नाम से सम्बोधित किया करते हैं। जगत्पिता, महा–योगेश्वर आप ही हैं। आप ही महा–धनुर्धारी लक्ष्मणचन्द्र हैं। आप ही पाखंडियों का नाश करने वाले करने वाले रसिक आचार्य हैं। चैतन्य के सभी कार्यों के बारे में केवल आपको की सब कुछ पता है। आपकी सेवा से ही महामाया पूजनीया बनी हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड आपकी पदछाया की कामना किया करते हैं। आप चैतन्य के भक्त हैं, आप स्वयं महाशक्ति हैं। आप ही चैतन्य के सब कुछ हैं—आप सर्वशक्ति के आधार हैं। आप ही चैतन्य की खाट और शय्या हैं, आप ही उनके प्राणधन हैं। आपके अतिरिक्त कृष्ण का दूसरा और कोई नहीं है। आप गौरचन्द्र के सभी अवतार हैं। हे प्रभु! आप ही पतितों का उद्धार करने लगे हैं। आप ही सभी पाखंडियों के प्राणों का संहार करने वाले हैं। आप ही सभी वैष्णवों की रक्षा करते हैं। आप ही वैष्णव–धर्म की शिक्षा प्रदान करते हैं। आपकी कृपा से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। रेवती, वारुणी, कान्ति आपकी ही सेवा किया करती हैं। क्रोधित होकर आप ही महारुद्र रूप से अवतार धारण करते हैं और उस रूप से सारी सृष्टि का संहार करते हैं। सब कुछ करते हुये भी आप कुछ नहीं करते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड–नाथ को आप अपने वक्ष पर धारण करते हैं। आपका सुख–विग्रह परम कोमल है। उस विग्रह पर कृष्ण शयन–विहार करते हैं। मैंने उसी श्रीअंग पर प्रहार किया है। मुझसे बढ़कर दारुण पातकी और कोई नहीं है। पार्वती आदि नौ अर्वुद नारियों के साथ शिव जीवनभर आपके श्रीअंग का पूजन करते रहते हैं। जिस अंग के स्मरण से सारे बंधन छूट जाते हैं, मेरे कारण उसी अंग से रक्त बहा है। जिस अंग की सेवा करके चित्रकेतु–महाराज वैष्णवों में अग्रगण्य होकर सुख से विहार करते हैं, अनन्त ब्रह्माण्ड जिस अंग का स्मरण करते हैं, मुझ पापी ने उसी अंग का अतिक्रमण किया है। जिस अंग का सेवन करके शौनक आदि ऋषिगण नैमिषारण्य में बंधन से मुक्त हुये हैं, जिस अंग का अतिक्रमण करने के कारण इन्द्रजित् (मेघनाद) विनाश को प्राप्त हुआ है, जिस अंग का अनादर करने से जरा अंग का अतिक्रमण किया है। जिस अंग का सेवन करके शौनक आदि ऋषिगण नैमिषारण्य में बंधन से मुक्त हुये हैं, जिस अंग का अतिक्रमण करने के कारण इन्द्रजित् (मेघनाद) विनाश को प्राप्त हुआ है, जिस अंग का अनादर करने से जरासंध विनष्ट हुआ है, मैंने उसी अंग का अतिक्रमण किया है। मेरा कुशल–मंगल होने का रास्ता बन्द हो गया है। अतिक्रमण करने की बात तो दूर, जिनका अपमान करने के कारण कृष्ण के साले रूक्मी को जीवन त्यागना पड़ा था। सूत ने ब्रह्मा के समान लम्बी आयु प्राप्त की थी, परन्तु आपको देखकर सम्मान–पूर्वक उठकर खड़े न होने के कारण उन्हें भस्सीभूत होना पड़ था। जिनका अपमान करने के कारण राजा दुर्योधन को

अपने वंश-सहित प्राण गँवाने पड़े थे, वह बच नहीं पाया था। दैवयोग से उस समय वहाँ महान् भक्तगण उपस्थित थे। उन सबको यह पता चला कि आप ही के कारण ये सब कुछ हुआ है। कुन्ती, भीष्म, युधिष्ठिर, विदुर, अर्जुन—इन सबकी बातों से उन्हें फिर अपना राज्य मिला था। जिनके अपमान-मात्र से जीवन का नाश हो जाता है, इस स्थिति में मुझ-जैसे महा अहंकारी निर्मम पाखण्डी को कौन से लोक में जगह मिलेगी।"

ऐसा कहते हुये माधाइ प्रेम में विभोर हो गया और फिर प्रभु के श्रीचरणों को अपने वक्ष पर धारण करके वहीं गिर पडा "जिन चरणों को धारण करने से कभी किसी का विनाश नहीं होता है, पतितों का उद्धार करने के लिए जिन चरणों का प्रकाश हुआ है; हे स्वामिन्! उन चरणों की शरण में आये हुये मेरा परित्राण कीजिए। आप की माधाइ के जीवन, धन और प्राण हैं। पद्मावती के नन्दन की जय हो, जय हो, जय हो। सभी-वैष्णवों के धनस्वरूप नित्यानन्द की जय हो। अक्रोध परमानन्द राय की जय हो, जय हो। आपके लिए यह उचित है कि आप शरणागत के दोषों को क्षमा कर दें। मैं दारुण, चांडाल, कृतघ्न और गोखर (मूर्ख) हूँ। हे प्रभु! आप मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर दीजिए।"

(२७) गौः भाः—श्रीश्रीमन् नित्यानन्द के सर्व सम्पत्ति-स्वरूप श्रीमन्महाप्रभु हैं। श्रीचैतन्य-मूलधन से ही वे धनी हैं।

(२८) गौः भाः—जनक,—आदि १५ अः १९५ संख्या का गौड़ीय-भाष्य द्रष्टव्य है।

कालिन्दी भेदनकारी' नाम,—श्रीबलदेव प्रभु ने यमुना में जलक्रीड़ा करने की इच्छा से यमुना का आह्वान किया। यमुना-द्वारा उनको मदमत्त समझकर उनके प्रति अवज्ञा प्रदर्शित करने से वे हल के अग्रभाग से यमुना का आकर्षण करने लगे। इसलिए ग्रन्थकार ने श्रीबलदेवाभिन्न श्रीमन् नित्यानन्द-प्रभु को 'कालिन्दी-भेदनकारी' नाम से अभिहीत किया है।

(३२) गौः भाः—विष्णुपूजा के प्रभाव से विष्णुमाया (जिसे प्रापंचिक जनगण महामाया के नाम से जानते हैं) ने जगत् वासियों से पूजा ग्रहण की थी।

(३५) गौः भाः—श्रीगौरचन्द्र की श्रीकृष्ण ालीला में बलदेव प्रभु सभी प्रकार से उनकी (श्रीकृष्णकी) सेवा किया करते हैं। बलदेव प्रभु—सब सेवकों में अद्वितीय हैं। कृष्णचन्द्र की चैतन्यलीला में श्रीनित्यानन्द के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति उनकी अद्वितीय सेवा करने में समर्थ नहीं हैं। वे महाप्रभु के मत्स्यकूर्मादि सभी अवतारों के आकर-तत्त्व हैं।

(३७) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द-प्रभु ही जगत् में शुद्धवैष्णवधर्म की शिक्षा का विधान करने वाले मूल आकर तत्त्व हैं। कलिहतजन श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरित्र पर नाना प्रकार के नीतिवर्जित दोषों का आरोप करके स्वयं नरक-पथ के पार्थिक बनते हैं और नरकयोग्य कुभोगों से जगत् के मूढ़ लोगों को फँसाकर उनका भी अधःपतन करवा देते हैं। भगवान् की सेवा करना ही मानव के लिए एकमात्र मंगलजनक पथ है, श्रीनित्यानन्द प्रभु इस विषय में उपेदश प्रदान करके वैष्णवधर्म को संरक्षित करते हैं।

(३८) गौः भाः—रेवती, वारुणी, कान्ति, —ये सब श्रीबलदेव की शक्तियाँ हैं। भाः ९/३/२९-३६ एवं विष्णुपुराण के २/५/१८ श्लोक द्रष्टव्य हैं। पाठभेद में—'रेवती, वारुणी सदा सेवे।'

(३९) गौः भाः—तथ्य—"यस्य प्रसादजो

ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्रभवः" अर्थात् जिनके प्रसाद (प्रसन्नता) से ब्रह्मा एवं क्रोध से रुद्र उत्पन्न हुये हैं—(भाः १२/५/१)। 'सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः' अर्थात् (ब्रह्मा ने कहा), —श्रीहरि के द्वारा नियोजित होकर मैं सृजन करता हूँ एवं शिव उनके वश में रहकर विश्व का संहार आदि कार्य करते हैं—(भाः २/६/३२)।

(४०) अन्वयः संकर्षणात्मको रुद्रः निष्क्रम्य (संकर्षणस्य वक्त्रेभ्यो निर्गतो भृत्वा) जगत्त्रयं (त्रिलोकं) अत्ति (ग्रसते)।

(४०) अनुवादः—संकर्षणात्मक (संकर्षण से प्रकाशित) रुद्र संकर्षण के वदनकमल से निर्गत होकर (कालानल-द्वारा) त्रिलोक को ग्रास करते हैं।

(४४) गौः भाः—तथ्य—आदि० १/२० गौड़ीय-भाष्य द्रष्टव्य हैं।

(४६) गौः भाः—तथ्य—भाः १०/७८-७९ अध्याय द्रष्टव्य है।

(४८) गौः भाः—श्रीमान् नित्यानन्द प्रभु ने लक्ष्मण-अवतार में इन्द्रजित का विनाश किया था।—(रामायण, लंकाकांड ८४-९१ अः द्रष्टव्य हैं। द्विविद का विनाश—नाम का वानर नरकासुन का मित्र था। यह वानर अपने मित्र नरकासुर के प्राणविनाश की प्रतिहिंसा को चरितार्थ करने के लिए नरकान्तक श्रीकृष्ण के निवास-स्थल गोकुल में नानाप्रकार के अत्याचार करने लगा। उस समय वारुणी-पान से मत्त श्रीबलदेव रैवतक पर्वत पर रमणियों के बीच अवस्थित थे। द्विविद ने वहाँ जाकर बलदेव एवं स्त्रियों के प्रति अवज्ञा-प्रदर्शन करते हुये बहुविध अत्याचार आरम्भ कर दिये। तब बलदेव ने उसका संहार किया। (भाः १०/६७ अध्याय द्रष्टव्य है।)

(५०) गौः भाः—तथ्य भाः १०/५०, ५२ एवं ७२ अध्याय द्रष्टव्य है।

(५१) गौः भाः—तथ्य-रुक्मी ने अनिरुद्ध के हाथों में अपनी पौत्री को प्रदान किया था। विवाह के उपरान्त रुक्मी बलदेव के साथ अक्षक्रीड़ा में प्रवृत्त हुआ। उसमें बारम्बार पराजित होने पर भी रुक्मी उसे अस्वीकार करता रहा। आकाशवाणी-द्वारा बलदेव की जय घोषित किये जाने पर भी दैववाणी को अग्राह्य करके रुक्मी बलदेव का 'गोरक्षक' 'वनचारी' आदि कहकर उपहास करता रहा। उस पर श्रीबलदेव ने मुद्गर-द्वारा रुक्मी का संहार कर डाला।—(भाः १०/६१ अः)।

(५२) गौः भाः—तथ्य—शौनकादि ऋषियों के द्वारा नैमिषारण्य में आयोजित यज्ञानुष्ठान-काल मे रोमहर्षण-सूत मुनियों की कृपा से दीर्घ आयु प्राप्त करके व्यास के आसन पर उपविष्ट थे। अनेक तीर्थों में पर्यटन के बाद श्रीबलदेव के वहाँ उपस्थित होने पर यज्ञानुष्ठानरत मुनियों ने सम्भ्रम-सहित खड़े होकर बलदेव की यथाविधि अर्चना की एवं उनको प्रणाम किया; परन्तु व्यास के आसन पर विराजमान रोमहर्षण ने किसी प्रकार का भी सम्मान प्रदर्शित नहीं किया। इस कारण श्रीबलदेव ने क्रुद्ध होकर उनकी विद्या अध्ययन आदि की अर्थहीनता को विचारकर कुश-द्वारा उनका संहार किया—(भाः १०/७८ अः)।

(५३-५५) गौः भाः—तथ्य—जाम्बवतीनन्दन शाम्ब ने दुर्योधन की कन्या लक्ष्मण के स्वयंवर के समय स्वयंवर-स्थल से लक्ष्मणा का हरण किया था। राजा दुर्योधन ने इससे अपने आपको अपमानित समझा और कुरुवृद्धजनों के परामर्श के अनुसार शाम्ब का पीछा करते हुये सभी ने मिलकर उसके साथ संग्राम किया एवं पराजित शाम्ब को बाँधकर हस्तिनापुर में ले आये। देवर्षि नारद के मुख से उस समाचार

को सुनकर यदुगण कुरुगणों के साथ युद्ध करने की तैयारी करने लगे। परन्तु भगवान् बलदेव व्यर्थ ही युद्ध करने के इच्छुक नहीं थे। इसलिए वे स्वयं कुलवृद्ध एवं ब्राह्मणों द्वारा परिवेष्टित होकर हस्तिनापुर में पहुँच और धृतराष्ट्र का अभिप्राय जानने के लिए उन्होंने उद्धव को उनके पास भेजा। श्रीबलराम के आगमन का समाचार सुनकर कौरव भेंट-सहित बलदेव के निकट उपस्थित हुये एवं उनका यथाविधि अर्चन किया। बलदेव ने शाम्ब को प्रत्यर्पित करने के लिए आदेश दिया। कौरवों ने बलदेव के आदेश को अग्राह्य ठहराते हुये यादवों की अवज्ञा की। इस पर श्रीबलदेव उन लोगों को यथोचित शिक्षा देने के लिए हल के अग्रभाग-द्वारा हस्तिानापुर को उखाड़ कर गंगा में डुबा देने के अभिप्राय से उसका आर्कषण करने लगे। तब दूसरा कोई उपाय ने देखकर कौरवगण बलदेव की शरण में आ गये एवं उन्हें बहुविध उपहार प्रदान करके लक्ष्मण ा-सहित शाम्ब को प्रत्यर्पित कर दिया। इस पर बलेदव उन लोगों को अभय प्रदान करके वापस द्वारका में चले आये।—(भाः १०/६८ अः एवं विष्णुपुराण ५/३५ अः द्रष्टव्य हैं)।

(५६) गौः भाः—दारुण,—महा अंहकारी निर्मम पाखण्डी।

माधाइ को आर्ति सुनकर नित्यानन्द-द्वारा आश्वासन प्रदान एवं कृपालिंगन तथा उस प्रसंग से चैतन्य में भक्ति रखने वाले को सुखप्राप्ति तथा चैतन्यभक्तिहीन नित्यानन्द-सेवाभिनयकारी का परिणाम-कथन—

माधाइर काकु-प्रेम शुनिया स्तवन।
हासि' नित्यानन्दराय बलिला बचन॥६३॥
''उठ उठ माधाइ, आमार तुमि दास।
तोमार शरीरे हैल आमार प्रकाश॥६४॥
शिशुपुत्र मारिले कि बापे दुःख पाय?
एइमत तोमार प्रहार मोर गाय॥६५॥
तुमि ये करिला स्तुति, इहा येइ शुने।
सेहो भक्त हइवेक आमार चरणे॥६६॥
आमार प्रभुर तुमि अनुग्रह पात्र।
आमाते तोमार दोष नाहि तिलमात्र॥६७॥
ये जन चैतन्य भजे, से आमार प्राण।
युगे युगे तार आमि करि' परित्राण॥६८॥
ना भजे चैतन्य यवे, मोरे भजे, गाय।
मोर दुःखे सेहो जन्मे जन्मे दुःख पाय॥६९॥
एत बलि' तुष्ट हैया कैला आलिंगन।
सर्व-दुःख माधाइर हैल विमोचन॥७०॥

(६३-७०) प० अनु०—माधाइ का आर्ति-भरा प्रेम-स्तवन सुनकर नित्यानन्द राय हँसते हुये बोले,—"उठो माधाइ!उठो! तुम मेरे दास हो। तुम्हारे शरीर में मेरा प्रकाश हुआ है। क्या पिता को दुःख होता है, जब उसका शिशुपुत्र उसे मारता है? मेरे शरीर पर तुमने भी इसी तरह का प्रकार किया है। तुम्हारे स्तवन को जो सुनेगा, वह भी मेरा भक्त हो जायेगा। तुम मेरे प्रभु के कृपा-पात्र हो। मेरे प्रति तुम्हारा तिलमात्र भी दोष नहीं है। जो चैतन्य का भजन करता है, वह मेरा प्राणस्वरूप है और हर युग मे मैं उसका परित्राण करता हूँ। जब कोई चैतन्य का भजन न करके केवल मेरा भजन-कीर्तन करता है, तब मुझे बड़ा दुःख होता है और मुझे दुःख मिलने से वह भी जन्म-जन्म में दुःख को प्राप्त होता है। इतना कहकर नित्यानन्द प्रभु ने प्रसन्नता के साथ माधाइ का आलिंगन किया, जिससे माधाइ का सारा दुःख दूर हो गया।

(६७) गौः भाः—क्योंकि, माधाइ महाप्रभु के कृपा-मात्र हैं, इसलिए नित्यानन्द प्रभु उनका कभी भी कोई भी दोष ग्रहण नहीं करते हैं।

(६९) गौः भाः—जब श्रीचैतन्य की सेवा न करके कोई दंभ के साथ नित्यानन्द की पूजा की छलना करता है, तब उस छलना से नित्यानन्द को दुःख होता है एवं इस कारण वह व्यक्ति भी जन्म–जन्मांतर तक दुःख को प्राप्त होता है।

स्वकृत जीवहिंसा–पाप–क्षालनार्थ श्रील नित्यानन्द के निकट माधाइ–द्वारा जिज्ञासा एवं नित्यानन्द का उपदेश–

पुनः बले माधाइ धरिया श्रीचरण।
आर एक प्रभु मोर आछे निवेदन॥७१॥
''सर्व–जीव–हृदये बसह प्रभु तुमि।
हेन बहु जीव–हिंसा करियाछि आमि॥७२॥
का'र वा करिलुँ हिंसा, ताहा नाहि चिनि।
चिनिले वा अपराध मागिए आपनि॥७३॥
या–सबार स्थाने करिलाम अपराध।
कोन्‌रूपे ता'रा मोरे करिबे प्रसाद?७४॥
यदि मोरे प्रभु तुमि हइला सदय।
इथे उपदेश मोरे कर महाशय॥''७५॥
प्रभु बले,—''शुन, कहि तोमारे उपाय।
गंगाघाट तुमि सज्ज करह सदाय॥७६॥
सुखे लोक यखन करिवे गंगास्नान।
तखन तोमारे सबे करिवे कल्याण॥७७॥
अपराध–भंजनी गंगार सेवा–कार्य।
इहाते अधिक वा तोमार कोन्‌ भाग्य॥७८॥
काकु करि' सबारे करिह नमस्कार।
तबे सब अपराध क्षमित तोमार॥७९॥

(७१–७९) प० अनु०—माधाइ ने फिर एकबार नित्यानन्द के श्रीचरण पकड़े और कहा,—"हे प्रभु! मेरा एक और निवेदन है। हे प्रभु! सभी जीवों के हृदय में विराजमान हैं। ऐसे बहुत से जीवों के प्रति मैंने हिंसा की है। किन–किन के प्रति हिंसा की है, वह भी मुझे मालूम नहीं है। यदि उन सबकी पहचान मिल जाए, तो उनके प्रति किये हुये अपराध के लिए मैं उनसे क्षमा प्रार्थना कर सकूँ। जिन सबके प्रति मैंने अपराध किया है, वे कैसे मुझ पर कृपा करेंगे? हे प्रभु! यदि आप मेरे प्रति दयावान् हैं तो इस विषय में मुझे उपदेश दीजिए।" इसके उत्तर में प्रभु बोले,—"सुनो, मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। तुम गंगा–घाट का निर्माण किया करो। जब लोग आराम से इस गंगाघाट पर स्नान करेंगे—तब सब मिलकर तुम्हें आशीर्वाद दिया करेंगे। इससे अधिक सौभाग्य तुम्हें और क्या मिल सकता है। विनीत होकर विनम्र भाव से सभी को नमस्कार किया करो। ऐसा करने से वे तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे।

(७६) गौः भाः—गंगाघाट–सज्ज—नदीया नगर के सभी लोग आराम से गंगा में स्नान कर सकें, इसलिए नित्यानन्द प्रभु ने माधाइ को गंगाघाट निर्माण के लिए आदेश प्रदान किया था। आजकल कुछ पापमति भक्तविद्वेषी लोग 'एकडाला' के निकट महतपुर ग्राम को 'माधाइ का घाट' नाम से प्रचारित करके जगत् में भ्रान्ति फैला रहे हैं। इन सब पापिष्ठों–द्वारा वैष्णव–निन्दा करके अपना अमंगल साधन करने से माधाइ का घाट उन लोंगो के पापों को प्रश्रय देने के लिए विलुप्त हो गया है। वर्तमान श्रीनाथपुर के निकट की माधाइ का घाट था। परन्तु पाप–परायण लोग संचित पापों की समृद्धि के लिए मातापुर ग्राम को ही माधाइ का घाट रूप से कल्पना करते हैं। भौगोलिक प्रमाण के अनुसार वह मोदद्रुम–द्वीप का अंश विशेष है; अतः वह कभी भी माधाइ का घाट नहीं हो सकता है। कुछ दिन पहले कुलिया के एक व्यक्ति के द्वारा व्यवसाय करने के उद्देश्य से महतपुर को 'माधाइ के

घाट' के रूप में कल्पित किये जाने से गंगा ने उसे ग्रास कर लिया है। माधाइ के घाट की स्थिति के सम्बंध में 'चित्रे नवद्वीप' ग्रन्थ का ५२ पृः द्रष्टव्य है।

नित्यानन्द के उपदेश से माधाइ-द्वारा
गंगाघाट-निर्माण, निर्वेद, सभी को
सम्मान-प्रदर्शन एवं क्षमा-भिक्षा—

उपदेश पाइया माधाइ ततक्षण।
चलिला प्रभुरे करि' बहु प्रदक्षिण॥८०॥
'कृष्ण कृष्ण' बलिते नयने पड़े जल।
गंगाघाट सज्ज करे, देखने सकल॥८१॥
लोक देखि' करे बड़ अपूर्व गेयान।
सबारे माधाइ करे दण्ड परणाम॥८२॥
''ज्ञाने वा अज्ञाने यत कैलुँ अपराध।
सकल क्षमिया मोरे करह प्रसाद॥''८३॥

(८०-८३) प० अनु०—प्रभु से उपदेश प्राप्त-करके माधाइ उसी क्षण प्रभु की बहुत-सी प्रदशिणाएँ करके चल दिये। 'कृष्ण' 'कृष्ण' कहते हुये माधाइ की आँखों से अश्रुपात हो रहा था। माधाइ गंगा पर घाट बनाने के काम में लगे हुये थे। सभी इसे देख रहे थे। यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य-सा लग रहा था। माधाइ सबको दण्डवत् प्रणाम करते थे और कहते थे, "मैंने जाने-अनजाने में जितने भी अपराध किये हैं, उन सबको क्षमा करके मुझ पर कृपा कीजिए।"

माधाइ के क्रन्दन से सभी को दुःख
एवं महाप्रभु की महिमा का कीर्तन तथा
गौरनिन्दक के संग का त्याग—

माधाइर क्रन्दने कान्दये सर्वजन।
आनन्दे 'गोविन्द' सबे करये स्मरण॥८४॥
शुनिल सकल लोके,—''निमाइ पण्डित।
जगाइ-माधाइर कैल उत्तम चरित॥''८५॥
शुनिया सकल लोक हइल विस्मित।
सबे बले,—''नर नहे निमाइ-पण्डित॥८६॥
ना बुझि' निन्दये यत सकल दुर्जन।
निमाइ-पण्डित सत्य करेन कीर्तन॥८७॥
निमाइ-पण्डित सत्य श्रीकृष्णेर दास।
नष्ट हैवे, ये ता'रे करिवे परिहास॥८८॥
एइ दुइर बुद्धि भाल ये करिते पारे।
सेइ वा ईश्वर, कि ईश्वर-शक्ति धरे॥८९॥
प्राकृत मनुष्य नहे, निमाञि-पण्डित।
एवे से महिमा ता'न हइल विदित॥९०॥
एइ मत नदीयार लोके कहे कथा।
आर लोक ना मिशाय, निन्दा हय यथा॥९१॥

(८४-९१) प० अनु०—माधाइ का क्रन्दन देखकर सभी क्रन्दन करने लगे और आनन्द में सभी 'गोविन्द का स्मरण करने लगे। सभी ने यह सुना के, "निमाइ पण्डित ने जगाइ-माधाइ को उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति बना दिया है।" इसे सुनकर सभी विस्मित हो गये। सभी कहने लगे,—निमाइ पण्डित नर नहीं हैं। निमाइ-पण्डित सचमुच ही कीर्तन करते हैं। परन्तु दुष्ट लोग बिना समझे ही उनकी निन्दा करते हैं। निमाइ पण्डित सचमुच श्रीकृष्ण के दास हैं। जो उनका परिहास करेंगे, वे नष्ट हो जायेंगे। इन दोनों की बुद्धि को जो अच्छा कर सका, वह ईश्वर है, अथवा ईश्वर की शक्ति को धारण किये हुये है। निमाइ पण्डित प्राकृत मनुष्य नहीं है। अब आकर उनकी महिमा विदित हुई हैं।" इस प्रकार से नदीया के लोग बातें करते थें। जहाँ प्रभु की निन्दा होती थी, वहाँ लोगों ने जाना बन्द कर दिया था।

(९०) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में अपराधीजन उनको प्राकृत मनुष्य समझकर उनकी लीलाओं के अवसान (अन्त होने) की

कल्पना करते हैं, एवं उनके जन्मस्थान को मानवों के लिए परिमेय मान लेते हैं तथा भगवद्-भक्तों के लिए भी समझना असम्भव है, ऐसा विचार करके अपराध-संचय करते रहते हैं। जो लोग अन्य लोगों की वंचना करने के लिए प्राकृत चेष्टाविशिष्ट होकर काय-मन-वाक्य को संयत नहीं कर पाते हैं, वे ही वैष्णवों की निन्दा का अवलम्बन करके भक्ति से विद्वेष करते हैं और इसके परिणाम-स्वरूप लम्पट भक्त बन जाते हैं।

माधाइ द्वारा कठोर साधन एवं
'ब्रह्मचारी' के रूप में ख्याति—

परम कठोर तप करये माधाइ।
'ब्रह्मचारी' हेन ख्याति हइल तथाइ॥९२॥
निरवधि गंगा देखि' थाके गंगाघाटे।
स्वहस्ते कोदालि लइया आपनेइ खाटे॥९३॥

(९२-९३) प० अनु०—माधाइ ने परम कठोर तपस्या करना शुरू कर दिया। इससे वे 'ब्रह्मचारी' के नाम से विख्यात हो गये। माधाइ निरन्तर गंगाघाट पर रहते हुये गंगा के दर्शन किया करते थे और अपने हाथों में फावड़ा लेकर स्वयं ही घाट बनाया करते थे।

माधाइ के प्रति चैतन्यकृपा की साक्षी—

अद्यापिह चिह्न आछे चैतन्य-कृपाय।
'माधाइर घाट' बलि' सर्वलोके गाय॥९४
एइमत कत कीर्ति हइल दोहाँर।
चैतन्य-प्रसादे दुइ दस्युर उद्धार॥९५॥
मध्यखंड-कथा येन अमृतेर खंड।
याहाते उद्धार दुइ परम पाषण्ड॥९६॥

(९४-९६) प० अनु०—चैतन्य की कृपा से अभी भी इसके चिह्न स्वरूप लोग एक घाट को 'माधाइ का घाट' नाम से जानते हैं। इस प्रकार से दोनों ने कितनी ही कीर्ति स्थापित की। चैतन्य की कृपा से ही दोनों दस्युओं का उद्धार हो गया।

मध्यखण्ड की यह कथा अमृत-खण्ड जैसी है, जिसमें दो परम पाखण्डियों के उद्धार का उल्लेख हुआ है।

महाप्रभु के प्रति श्रद्धारहित
व्यक्ति का परिणाम—

महाप्रभु गौरचन्द्र सबार कारण।
इहा शुनि या'र दुःख, खल सेइ जन॥९७॥

(९७) प० अनु०—महाप्रभु गौरचन्द्र सबके कारण (जनक) हैं, यह सुनकर जिसे दुःख होता है, वह खल है।

छन्नावतार चैतन्यदेव की लीला-वेदगोप्य है—

चारि-वेद-गुप्त-धन चैतन्येर कथा।
मन दिया शुन, ये करिल यथा यथा॥९८॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥९९॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे
माधवानन्दोपलब्धि वर्णनं नाम
पंचदशोऽध्यायः।

(९८-९९) प० अनु०—चैतन्य की कथा चारों वेदों का गुप्त धन है। उन्होंने जहाँ-जहाँ जो कुछ भी किया है, उसके बारे में आप सब ध्यान से सुनिये। श्रीकृष्णचैतन्य तथा नित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल-चरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

इति गौड़ीय-भाष्य में पंचदश अध्याय समाप्त

O

षोडश अध्याय

षोडश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में पार्षद-सहित महाप्रभु का श्रीवास के घर में रात को कीर्तन, श्रीवास की सास को छिपकर कीर्तन-गृह में अवस्थान, अद्वैत का चैतन्यदास्य भाव, महाप्रभु के द्वारा क्रोध की छलना से श्रीअद्वैत की महिमा का कीर्तन, अद्वैत के प्रति श्रीमहाप्रभु के द्वारा कृपा-वैभव के दर्शन से वैष्णवों का विस्मय, पार्षद-सहित महाप्रभु-द्वारा कृष्णप्रेमानन्द में नर्तन-कीर्तन, शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का वृत्तांत इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

प्रत्येक रात को महाप्रभु भक्तों के साथ श्रीवा के घर में द्वार बन्द करके संकीर्तन किया करते थे। एकदिन श्रीवास की क्षीणपुण्या सास प्रभु के कीर्तन-विलास को देखने की इच्छा से कीर्तन-गृह के एक कोने में छिपकर बैठ गई। सर्व-भूतान्तर्यामी महाप्रभु इसे जानकर बारम्बार कहने लगे कि, आज के नृत्य में आनन्द नहीं मिल रहा है। इससे भक्तों के साथ श्रीवास अत्यन्त भयभीत एवं चिन्तित होकर घर में कोई बहिर्मुख व्यक्ति तो नहीं है, इसके अनुसंधान में प्रवृत्त हो गये। पण्डित श्रीवास ने अपनी सास को घर में छिपा हुआ देखा तो केश पकड़कर उनको घर से बाहर निकलवा दिया। तब महाप्रभु ने चित्त में आनन्द का अनुभव करके फिर से भक्तों-सहित नृत्य करना आरम्भ कर दिया। महाप्रभु के कृपा-पात्रजनों को छोड़कर अन्य किसी को भी उनकी लीला का दर्शन करने को अधिकार नहीं है। जब महाप्रभु ने ईश्वर-भाव से विष्णु-सिंहासन पर विराजमान होकर सभी के मस्तक पर चरण रखते हुये अद्वैत को 'दास' कहकर सम्बोधित किया, तब अद्वैत के हृदय में विशेष प्रीति का उदय हुआ। परन्तु अचिन्त्य लीलामय विग्रह गौरसुन्दर मुहूर्त-भर में ही अपने ईश्वर भाव का संगोपन करके दास्यभावमयी नानाविध क्रीड़ा करने लगे एवं वैष्णवों की पदरेणु-ग्रहण करने में प्रवृत्त हो गये। इससे सभी वैष्णवों को हृदय में विशेष दुःख का अनुभव हुआ। चैतन्य का दास होने के अतिरिक्त अद्वैताचार्य को और कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, परन्तु महाप्रभु अद्वैताचार्य को 'गुरु' बुद्धि से देखते थे और उनके चरणयुगल धारण करने के लिए यत्नशील रहते थे। एवं जिस समय भावावेश-हेतु महाप्रभु मूर्च्छित हो जाते थे, उस समय प्रभु के चरणों के निकट उपस्थित होकर उनके श्रीचरणों में दण्डवत् नयनाश्रु से उनका पादप्रक्षालन, उनकी पदरेणु, सिर पर धारण एवं अनेक उपचार-सहित पूजा-अर्चना आदि करके अपनी मनोकामना पूर्ण किया करते थे। एकदिन नृत्य करते-करते महाप्रभु मूर्च्छित हो गये; तब सुयोग मिल जाने पर अद्वैताचार्य ने अपने सारे शरीर में महाप्रभु की चरणरेणु का लेपन कर लिया। कुछ क्षणों के पश्चात् फिर से नृत्य आरम्भ करके महाप्रभु करते हुये इस विषय में पूछताछ करने लगे कि किसी ने उनकी चरण-रेणु तो ग्रहण नहीं की

है। अद्वैताचार्य के डर से वैष्णवों ने महाप्रभु को कुछ नहीं बताया और मौन भाव धारण करके खड़े रहे। यह देखकर अद्वैताचार्य ने हाथ जोड़कर गौरसुन्दर के निकट चरणरेणु–चोरी की बात स्वीकार करते हुये अपने दोष के लिए क्षमा प्रार्थना की।

महाप्रभु ने अद्वैत की बात सुनकर बाहर से क्रोध प्रकाशित करते हुये निन्दा की छलना में अद्वैत के बहुविध गुणों को प्रकाशित करते–करते उनकी चरणरेणु को ग्रहण किया एवं उनके श्रीचरणों को अपने वक्षःस्थल पर धारण किया। इस पर जब अद्वैत–प्रभु ने गौरसुन्दर के द्वारा अपने सेवक की मर्यादा–वृद्धि के विषय में कीर्तन करते हुये महाप्रभु की महिमा को प्रकाश किया तो महाप्रभु भी अद्वैत के प्रति गौरसुन्दर की असीम कृपा के विषय को उपलब्ध करके विस्मित हो गये। इसके पश्चात् महाप्रभु, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य एवं अन्यान्य भक्तजन—सभी मिलकर महान आनन्द से नृत्य–कीर्तन करने लगे। नित्यानन्द–प्रभु कीर्तन के आनन्द मे परम विह्वल होते हुये भी सदैव सतर्क रहते थे एवं श्रीचैतन्यचन्द्र के प्रेमावेश में भूमि पर गिरने से पहले ही वे अपनी दोनों भुजाओं को प्रसारित करके उन्हें संभाल लेते थे।

नवद्वीप में 'शुक्लाम्बर' नाम के एक विष्णुभक्ति–परायण भिक्षुक ब्राह्मण रहा करते थे। वे भिक्षा में प्राप्त द्रव्यादि को कृष्ण के लिए अर्पण करने के पश्चात् उसके अवशेष–द्वारा अपने शरीर की रक्षा किया करते थे एवं दिन–रात कृष्णनाम–गुण–कीर्तन में नियुक्त रहने के कारण दारिद्रय–दुःख का थोड़ा–सा भी अनुभव नहीं कर पाये थे। बहिर्मुख लोग उनको केवलमात्र एक भिक्षुक के रूप में जानते थे; क्योकि, चैतन्य–कृपा–प्राप्त व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरा कोई भी उनके सेवक को नहीं पहचान सकता है।

एकदिन महाप्रभु ईश्वर के आवेश में बैठे हुये थे कि, उसी समय भिक्षा की झोली को कन्धे पर लेकर शुक्लाम्बर वहाँ आ पहुँचे एवं कृष्णप्रेम के आनन्द में नृत्य करने लगे। शुक्लाम्बर को देखकर महाप्रभु उनके गुणसमूह का कीर्तन करते–करते उनकी झोली में ले मुट्ठी–मुट्ठी तंडुल (चावल) ग्रहण करके चबाने लगे। निकृष्ट कणयुक्त चावल महाप्रभु ने कहा कि, मैं नित्यकाल भक्तों का द्रव्य ही परम आग्रह के साथ ग्रहण करता हूँ, अभक्तों के द्रव्य के प्रति मैं आँख उठाकर भी नहीं देखता हूँ। शुक्लाम्बर के प्रति गौरसुन्दर की कृपा का दर्शन करके भक्तगण आनन्द–भरे चित्त से कृष्ण–कीर्तन में प्रर्वत्त हो गये। महाप्रभु ने शुक्लाम्बर के गुणों का बहुविध कीर्तन करके उनको प्रेमभक्ति का वर प्रदान किया। शुक्लाम्बर के वर प्राप्त करने पर वैष्णवों ने आनन्द–पूर्वक हरिध्वनि की।

अर्चनमार्ग में मुद्रा–प्रदर्शन के साथ भगवान् को नैवेद्य अर्पण करना पड़ता है। शुक्लाम्बर–द्वारा उस भाव से अर्पित न होने पर भी महाप्रभु ने बलपूर्वक शुक्लाम्बर के तंडुल का भक्षण करके अर्चन–पथ की अपेक्षा अनुराग–पथ का वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया है। विषय के अभिमान में अन्धजन जन्म, ऐश्वर्यादि के मद से मत्त होकर वैष्णवों को पहचान नहीं पाते हैं। अपितु उनको दरिद्र, मूर्ख–इत्यादि समझकर उनकी निन्दा–उपहास आदि करते रहते हैं; इसलिए भक्त–वत्सल भगवान् उन सब वैष्णवापराधियों के अर्चन–पूजन–धन आदि को कभी स्वीकार नहीं करते हैं। कृष्ण केवलमात्र अकिंचन के ही प्राणधन हैं, यह बात सर्वशास्त्रसम्मत् है।

उसके पश्चात् ग्रन्थकार ने अध्याय की फलश्रुति का कीर्तन करके अध्याय को समाप्त किया है।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

पार्षदों–सहित गौरसुन्दर का जयगान—

जय जय महामहेश्वर गौरचन्द्र।
जय जय विश्वम्भर–प्रिय भक्तवृन्द॥१॥

(१) प० अनु०—महामहेश्वर श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। विश्वम्भर–प्रिय भक्तवृन्द की जय हो, जय हो।

भक्तिविमुख–जन–वंचनार्थ प्रभु–द्वारा निशाभाग में गृह को बन्द करके कीर्तन–विलास—

हेनमते नवद्वीपे विश्वम्भर–राय।
भक्तसंगे संकीर्तन करेन सदाय॥२॥
द्वार दिया निशाभागे करेन कीर्तन।
प्रवेशिते नारे कोन भिन्न लोकजन॥३॥

(२–३) प० अनु—इस प्रकार से विश्वम्भर राय नवद्वीप में भक्तों के साथ मिलकर सदैव संकीर्तन किया करते थे। द्वार बन्द करके वे रात को कीर्तन करते थे ताकि कोई बहिर्मुख व्यक्ति वहाँ प्रवेश न कर सके।

क्षीणपुण्या श्रीवास की सास का गौरकीर्तन–विलास–दर्शन की चेष्टा में अपने को छिपाकर रखना—

एकदिन नाचे प्रभु श्रीवासेर बाड़ी।
घरे छिल लुकाइया श्रीवास–शाशुड़ी॥४॥
ठाकुर पण्डित आदि केह नाहि जाने।
डोल मुड़ि' दिया आछे घरे एक कोणे॥५॥

(४–५) प० अनु—एकदिन महाप्रभु श्रीवास के भवन में नाच रहे थे। उस समय घर के भीतर श्रीवास की सास छिपकर बैठी हुई थीं। ठाकुर पण्डित आदि को इसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। वह घर के एक कोने में डोल (धानदि रखने का बृहत पात्र) के पीछे छिपकर बैठी हुई थीं।

गौर की कृपा बिना भाग्यहीन की अपनी इच्छा से भगवत्लीला–दर्शन–चेष्टा की निष्फलता—

लुकाइले कि हय, अन्तरे भाग्य नाइ।
अल्प भाग्ये सेइ नृत्य देखिते ना पाइ॥६॥
नाचिते नाचिते प्रभु बले घने घन।
''उल्लास आमार आजि नहे कि कारण?''॥७॥

(६–७) प० अनु०—अपने को छिपाने से क्या होता है, वास्तव में तो उनका भाग्य ऐसा नहीं था। अल्प भाग्य से यह नृत्य देखने को नहीं मिलता। नृत्य करते–करते प्रभु बारम्बार कहने लगे कि,—"क्या कारण है, आज मुझमें नृत्य का उल्लास नहीं हो रहा है?"

(६) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के भावमय नृत्य के भी दर्शन करने का सौभाग्य सभी का नहीं होता है। कम भाग्यवान्तन उस नृत्य को देखकर भी नृत्य का तात्पर्य समझने में असमर्थ रहते हैं। दर्शन का सौभाग्य प्रकाशित होने पर भी विचार में, हृदय के अन्दर विरोध का पोषण होने के कारण अनमना भाव ही सिद्ध होता है। मुख और मन में भेद रहने का नाम ही 'कपटता' है। वास्तव में कापट्य–सिद्धि एवं अनुसरण एक–जैसा नहीं है। इस जगत् में यह दिखाई देता है कि, निर्विशेषवादी, बाहर में लोगों को दिखाने के लिए दरिद्र का झूठा ग्रहण करके प्रतिष्ठता प्राप्त करने के लिए यत्न करते हैं; परन्तु हृदय में अपने ऐश्वर्य एवं पाण्डित्य के गौरव की समृद्धि आदि का आवरण करने पर भी

वास्तव में "दैत्य" नामकी जो लोभनीय पदवी है, उसका संधान उन्हें नहीं मिल पाता है। निर्विशेष-वाद को प्रश्रय देते समय समानता की प्रथा का प्रदर्शन करके जिस दाम्भिकता की समृद्धि होती है, वह कभी भी 'दैन्य-स्वरुपिणी अकिंचनता' नहीं होती है।

श्रीवास की सास की कीर्ति का सर्वज्ञ गौरसुन्दर के हृदय में गोचर होना एवं गौरसुन्दर-द्वारा आत्मगोपन पूर्वक प्रकारांतर से उसे प्रकाशित कर देना—

सर्वभूत-अन्तर्यामी जानेन सकल।
जानियाओ ना कहेन करे कुतूहल॥८॥
पुनः पुनः नाचि' बले,—''सुख नाहि पाइ।
केह वा कि लुकाइया आछे कोन् ठाञि?'' ॥९॥

(८-९) प० अनु०—सर्वभूत-अन्तर्यामी प्रभु तो सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होंने कुछ न कहकर रहस्य बनाये रखा। प्रभु बारम्बार नृत्य करते और कहते,—"मुझे सुख नहीं मिल रहा है; क्या कोई किसी स्थान पर छिपा हुआ है?"

श्रीवास के घर में सभी के द्वारा बहिर्मुख जन को ढूँढ़ निकालने के लिए अनुसंधान एवं निष्फलता—

सर्व-बाड़ी विचार करिला जने जने।
श्रीवास चाहिल घर-सकल आपने॥१०॥
''भिन्न केह नाहि'' बलि' करये कीर्तन।
उल्लास ना बाड़े प्रभु श्रीशचीनन्दन॥११॥

(१०-११) प० अनु०—सभी लोगों ने सारे भवन को ढूँढा और श्रीवास ने भी अपने आप पूरे घर की तलाशी ली। ढूँढ़ने के बाद सभी ने कहा—"दूसरा तो और कोई नहीं है।" फिर भी प्रभु श्रीशचीनन्दन का उल्लास नहीं बढ़ रहा था।

बहिर्मुख श्रीवास की सास को प्रकाशित कर देने के लिए महाप्रभु-द्वारा फिर एकबार चेष्टा एवं भक्तों की चिन्ता—

आरबार रहि' बले,—''सुख नाहि पाइ।
आजि वा आमारे कृष्ण-अनुग्रह नाइ॥''१२॥
महा-त्रासे चिन्ते सब भागवतगण।
''आमा-सबा बिना आर नाहि कोन जन॥१३॥
आमराइ कोन वा करिल अपराध।
अतएव प्रभु चित्ते ना पाय प्रसाद॥''१४॥

(१२-१४) प० अनु०—प्रभु ने फिर एकबार नृत्य बन्द करके कहा,—"मुझे सुख नहीं मिल रहा है लगता है, आज मैं कृष्ण-कृपा से वंचित हो गया हूँ।" यह सुनकर महा-भय से सभी भागवतगण चिन्ता करने लगे,—"हमारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है; हो सकता है कि हमसे ही कोई अपराध हुआ हो, जिसके कारण प्रभु अपने हृदय में आनन्द अनुभव नहीं कर पा रहे हैं।"

श्रीवास के द्वारा फिर अनुसंधान एवं सास को बाहर करना, इससे प्रभु का उद्वेग दूर एवं उल्लास—

आरबार ठाकुर-पण्डित घरे गिया।
देखे निज शाशुड़ी आछये लुकाइया॥१५॥
कृष्णावेशे महा-मत्त ठाकुर पण्डित।
या'र बाह्य नाहि, ता'र किसेर गर्वित?१६॥
विशेष प्रभुर वाक्ये कम्पित शरीर।
आज्ञा दिया चुले धरि' करिला बाहिर॥१७॥
केह नाहि जाने इहा, आपने से जाने।
उल्लासित विश्वम्भर नाचे ततक्षणे॥१८॥
प्रभु बले,—''एवे चित्ते वासि ये उल्लास।''
हासिया कीर्तन करे पण्डित श्रीवास॥''१९॥''
महानन्दे हइल कीर्तन-कोलाहल।
हासिया पड़ये सब वैष्णव-मण्डल॥२०॥

नृत्य करे गौरसिंह महा–कुतूहली।
धरिया बुलेन नित्यानन्द महाबली॥२१॥

(१५–२१) प० अनु०—दोबारा ठाकुर–पण्डित (श्रीवास) फिर अपने घर में गये और देखा कि, उनकी सास छिपकर बैठी हुई है। श्रीकृष्णावेश में महामत्त ठाकुर पण्डित को अपना बाह्यज्ञान नहीं था? विशेष करके प्रभु की बात से उनका शरीर काँप रहा था। अतः उन्होंने आज्ञा देकर किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी सास को केश पकड़कर बाहर करवा दिया। इस घटना को कोई नहीं जान पाया, केवल प्रभु ही जान सके। इधर विश्वम्भर उसी क्षण उल्लास के साथ नृत्य करने लगये। प्रभु कहने लगे,—"अब हृदय में उल्लास हो रहा है।" श्रीवास पण्डित भी हँसकर कीर्तन करने लगे। महाकुतूहली गौरसिंह नृत्य कर रहे थे और महाबली नित्यानन्द उनको सम्भालते हुये घूम रहे थे।

(१६) गौः भाः—कृष्णसेवा में मत्त कीर्तनकारी श्रीवास पण्डित बाहरी जगत् के चिन्ता–स्रोत से पूर्णतः पृथक् थे। उन्होंने अहंकार के वशवर्ती होकर कोई काम नहीं किया था। भोग में रुचि रखने वाले व्यक्ति जिस प्रकार से अंहकार के वशीभूत होकर दूसरों के प्रति अत्याचार करते हैं, उस प्रकार का विचार उनमें नहीं था।

(१७) गौः भाः—साधारणजन जिस प्रकार से अपनी इन्द्रियों के तर्पण में व्याघात होने से क्रोध से काँपते रहते हैं, उस प्रकार से श्रीवास ने अहंकार के वशीभूत न होकर, महाप्रभु को उद्वेग हो रहा है, यह जानकर क्रोध में अधीर भाव का प्रदर्शन करते हुये अपनी पूज्या छिपी हुई सास को दूसरों के द्वारा केशाकर्षण–पूर्वक डोल के निकट से अन्य जनों के अगोचर भाव में घर से निकलवा दिया।

(१९) गौः भाः—बहिर्मुख लोगों के साथ भावोल्लास की संभावना नहीं है। बहिर्मुख जनों के विताड़न से कृष्णसेवोन्मुखता प्रबल भाव से समृद्ध नहीं हो पाती है। स्वजातीयावश–स्निग्धजनों के संग–प्रभाव से सेवान्मुखता स्वाभाविक रूप से ही उल्लास को प्राप्त करती है। बहिर्मुख के मिलन से उस प्रकार का प्रेमचांचल्य दिखाई नहीं देता है। श्रीवास पण्डित ने जब देखा कि, महाप्रभु का उद्वेग कम हो चुका है तब उन्होंने परमानन्दचित्त से कीर्तन करना आरंभ किया। भगवद्भक्तों के मुखों पर भी हर्ष के चिह्न दिखाई देने लगे।

चैतन्य कृपा से ही चैतन्य–लीला में अधिकार—

चैतन्येर लीला केवा देखिवारे पारे।
सेइ देखे, यारे प्रभु देन अधिकारे॥२२॥
एइमत प्रतिदिन हरि–संकीर्तन।
गौरचन्द्र करे, नाहि देखे सर्वजन॥२३॥

(२२–२३) प० अनु—श्रीचैतन्य–लीला को कौन देख सकता है? इसे देखने में केवल वही समर्थ होता है, जिसे प्रभु अधिकार प्रदान करते हैं। इस प्रकार से श्रीगौरचन्द्र प्रतिदिन हरि–संकीर्तन करते रहते हैं, परन्तु सभी लोग उसको देख नहीं रहे हैं।

अद्वैत की महिमा को प्रकाश करने हेतु प्रभु की लीला—

आर एकदिन प्रभु नाचिते नाचिते।
ना पाय उल्लास प्रभु चाहे चारिभिते॥२४॥
प्रभु बले,—"आजि केने सुख नाहि पाइ?
किवा अपराध हइयाछे का'र ठाञि?"२५॥

(२४–२५) प० अनु०—फिर और एकदिन

प्रभु को नृत्य करते-करते जब उल्लास प्राप्त नहीं हुआ, तो वे चारों ओर देखने लगे। प्रभु बोले,—"आज मुझे सुख क्यों नहीं मिल रहा है? कहीं किसी के प्रति मुझसे कोई अपराध तो नहीं हो गया ह?"

अद्वैताचार्य का स्वरूपगत अभिमान—

स्वभावे चैतन्य-भक्त आचार्य गोसाईं।
चैतन्येर दास्य-बइ आर भाव नाइ॥२६॥
यखन खट्टाय उठे प्रभु विश्वम्भर।
चरण अर्पय सर्व-शिरेर उपर॥२७॥
यखन ठाकुर निज-ऐश्वर्य प्रकाशे।
तखन अद्वैत सुख-सिन्धु-माझे भासे॥२८॥
प्रभु बले,—''आरे नाड़ा, तुइ मोर दास।''
तखन अद्वैत पाय अनन्त उल्लास॥२९॥

(२६-२९) प० अनु—स्वभाव से आचार्य (अद्वैत) चैतन्य गोसाईं के भक्त थे। चैतन्य का दासत्व छोड़ कर उनमें और कोई भाव नहीं था। प्रभु विश्वम्भर जब सिंहासन पर विराजमान होकर सबके मस्तक पर अपना चरण अर्पित करते थे, जब ठाकुर अपने ऐश्वर्य का प्रकाश करते थे; तब अद्वैत आचार्य सुख-सागर में बहने लगते थे। प्रभु जब कहते, —"अरे नाड़ा, तू मेरा दास है, "तब अद्वैत को अनन्त उल्लास मिलता था।

भक्तों के साथ गौरसुन्दर की अचिन्त्य लीला—

अचिन्त्य गौरांगतत्त्व बुझन ना याय।
सेइक्षणे धरे सर्व-वैष्णवरे पाय॥३०॥
दशने धरिया तृण करये क्रन्दन।
''कृष्णरे, बापरे, तुइ मोहार जीवन॥''३१॥
एमन क्रन्दन करे, पाषाण विदरे।
निरन्तर दास्य-भावे प्रभु केलि करे॥३२॥
खण्डिते ईश्वर-भाव सबाकार स्थाने।
असर्वज्ञ-हेन प्रभु जिज्ञासे आपने॥३३॥
''किछुनि चांचल्य मुञि उपाधिक करों।
बलिह मोहारे, येन सेइक्षणे मरों॥३४॥
कृष्ण मोर प्राणधन, कृष्ण मोर धर्म।
तोमरा मोहार भाइ-बन्धु जन्म-जन्म॥३५॥
कृष्णदास्य बहि आर नाहि अन्य गति।
बुझाह, मोहार पाछे हय बुझाह,
मोहार पाछे हय आर मति॥''३६॥
भये सब वैष्णव करेन संकोचन।
हेन प्राण नाहि का'रो, करिबे कथन॥३७॥
एइमत यखन आपने आज्ञा करे।
तखन से चरण स्पर्शिते सबे पारे॥३८॥
निरन्तर दास्यभावे वैष्णव देखिया।
चरणेर रेणु लय सम्भ्रमे उठिया॥३९॥
इहाते वैष्णव-सब दुःख पाय मने।
अतएव सबारे करये आलिंगने॥४०॥

(३०-४०) प० अनु०—गौरांग-तत्त्व अचिन्त्य है—यह समझ में नहीं आता है। उसी क्षण (ऐश्वर्य का प्रकाश करते-करते ही) प्रभु ने सभी वैष्णवों के चरण छूना आरम्भ कर दिया, वे दाँतो में तृण लेकर क्रन्दन करने लगे और कहने लगे,—"हे कृष्ण, हे मेरे बाप, तुम ही मेरे जीवन हो।" उन्होंने ऐसा क्रन्दन किया कि पत्थर भी पिघल जाये। निरन्तर दास्यभाव में प्रभु क्रीड़ा करते रहे। जब अपना ईश्वर-भाव दूर हो गया, तब प्रभु असर्वज्ञ (अल्पज्ञ जीव) की भाँति पूछने लगे—"मैंने कोई औपाधिक चंचलता तो नहीं की है, आप सब मुझे बताइये! यदि मैंने ऐसा किया हो, तो इसी क्षण मेरी मृत्यु हो जाए। कृष्ण मेरे प्राणधन हैं, कृष्ण मेरा धर्म है तुम सब जन्म-जन्म के मेरे भाई-बन्धु हो। कृष्णदास्य को छोडकर मेरी अन्य कोई गति नहीं है। तुम सब मुझे समझाते रहना, पीछे मेरी अन्य

(विपरीत) मति न हो जाये।" यह सुनकर सभी वैष्णव डर के मारे चुप हो गये। किसी में इतना साहस नहीं था कि कोई कुछ कह सके। इस प्रकार से जब प्रभु अपने आप आज्ञा प्रदान करते थे, तभी सब लोग उनके चरण स्पर्श कर सकते थे। परन्तु जब प्रभु निरन्तर दास्यभाव में रहते थे, तब वैष्णवों को देखते ही वे सम्भ्रम-सहित उठकर उनके चरणों की रेणु (रज) ग्रहण करते थे। इससे सभी वैष्णवों को दुःख होता था। यह देखकर प्रभु फिर सबको अपने गले लगाा लेते थे।

(४०) गौः भाः—आदर्श भक्त का चरित्र प्रदर्शित करने हेतु महाप्रभु के द्वारा वैष्णवों की चरणधूलि ग्रहण किये जाने जैसे कार्यों से वैष्णवों को विशेष दुःख मिलता था। महाप्रभु उन लोगों का दुःख दूर करने के लिए चरणधूलि ग्रहण करने के बदले उन लोगों को अपने गले लगा लिया करते थे एवं अद्वैत प्रभु में गुरुबुद्धि रखने से अद्वैत प्रभु दुःख का अनुभव करते थे।

गौरसुन्दर के द्वारा अद्वैत में 'गुरु'—बुद्धि, इससे आचार्य अद्वैत का दुःख—

'गुरु'—बुद्धि अद्वैतेरे करे निरन्तर।
एतेके अद्वैत दुःख पाय बहूतर॥४१॥

(४१) प० अनु०—श्रीअद्वैत के प्रति प्रभु सदैव 'गुरु'—बुद्धि रखते थे। इससे अद्वैत को बहुत दुःख मिलता था।

साक्षात् गौरचरण-सेवा का अधिकार प्राप्त ने होने के कारण महाप्रभु के भावावेश के समय अद्वैत प्रभु-द्वारा नानारूप में चैतन्य-सेवा—

आपनेओ सेविते साक्षाते नाहि पाय।
उलटिया आरो प्रभु धरे दुइ पाय॥४२॥
ये चरण मने चिन्ते, से हइल साक्षाते।
अद्वैतेरे इच्छा—थाकि सदाइ ताहाते॥४३॥
साक्षाते ना पारे प्रभु करियाछे राग।
तथापिह चुरि करे चरण-पराग॥४४॥
भावावेशे प्रभु ये समये मूर्च्छा पाय।
तखने अद्वैत चरणेर पाछे याय॥४५॥
दण्डवत् हइया पड़े चरणेर तले।
पाखाले चरण दुइ नयनेर जले॥४६॥
कखनो वा मूछिया पुँछिया लय शिरे।
कखनो वा षड़ंगविहित पूजा करे॥४७॥
एहो कर्म अद्वैत करिते पारे मात्र।
प्रभु करियाछे या'रे महा-महा पात्र॥४८॥

(४२-४८) प० अनु—अद्वैत आचार्य अपने प्रभु की साक्षात् सेवा तो कर नहीं पाते थे, उल्टे प्रभु ही उनके दोनों चरणों को पकड़ लेते थे। जिन चरणों का वे मन में ध्यान किया करते थे, वे चरण अब साक्षात् प्रकट हो गये थे। अद्वैत की यही इच्छा थी कि वे सदैव उन चरणों की सेवा में रहें। वे उन श्रीचरणों की साक्षात् सेवा तो कर नहीं पाते थे, क्योंकि प्रभु रुष्ट होते थे। तथापि अद्वैत आचार्य चरण-पराग की चोरी कर लिया करते थे। जिस समय प्रभु भावावेश में मूर्च्छित हो जाते थे, उस समय अद्वैत प्रभु के चरणों के पीछे हो जाते थे तथा चरणयुगल को प्रेमाश्रु से धो देते थे। कभी-कभी उन्हें पोंछकर वे अपने सिर पर धारण करते थे तो कभी षडंग-विधानानुसार उनकी पूजा किया करते थे। यह कार्य केवल अद्वैत ही कर सकते थे, जिन्हें प्रभु ने महा-महा-पात्र के रूप में प्रकाशित किया था

(४५) गौः भाः—महाप्रभु गौरांग अद्वैत-प्रभु का सम्मान करते थे; अतएव श्रीअद्वैत प्रभु को प्रकाश्य भाव में श्रीमहाप्रभु के चरणों को स्पर्श करने का सुअवसर नहीं मिल पाता था;

अतः अप्रकाशित भाव से महाप्रभु के भावावेश के समय वे उनके चरणों का स्पर्श करने का मौका पा लेते थे एवं महाप्रभु के मूर्च्छाकल में उनके पादपद्मों में प्रणत होकर प्रचुर आर्ति के साथ नयनाश्रु-विसर्जन करते थे।

(४७) गौः भाः—षंडग,—मध्य, ६/३३ गौड़ीय-भाष्य द्रष्टव्य है।

(४८) गौः भाः—श्रीअद्वैत-प्रभु के द्व ारा प्रीति के साथ श्रीगौरचरण-सेवा किये जाते देखकर भक्तगण उनको निरहंकारी एवं जितेन्द्रिय पुरुषराज के रूप में सम्मान देते थे। जगत् मे सभी-भक्तों की अपेक्षा उनकी श्रेष्ठता को प्रचारित करने के लिए उनकी द्वि तीय-रहित 'अद्वैत' के नाम से स्थापना किया करते थे।

सभी भक्तों से बढ़कर
अद्वैताचार्य की श्रेष्ठता—

अतएव अद्वैत—सबार अग्रगण्य।
सकल वैष्णव बले,—'अद्वैत से धन्य'॥४९॥

(४९) प० अनु—इसलिए अद्वैत सभी वैष्णवों में अग्रगण्य थे। सभी वैष्णव कहते थे—'अद्वैत आचार्य धन्य हैं।'

अद्वैत-तत्त्व के बारे में अनभिज्ञ असत्
व्यक्तियों के द्वारा अद्वैत को महाविष्णु एवं
महाप्रभु को अद्वैताश्रित गोपी समझना—

अद्वैतसिंहेर एइ एकान्त महिमा।
ए रहस्य नाहि जाने यत दुष्ट जना॥५०॥

(५०) प० अनु—यही अद्वैतसिंह की एकान्त महिमा है कि वे सब वैष्णवों में अग्रगण्य हैं। जो दुष्ट लोग हैं, वे इस रहस्य को नहीं जानते हैं।

(५०) गौः भाः—श्रीअद्वैत-प्रभु—वैष्णवों में सर्वप्रधान है। इनकी अलौकिक-महिमा को जाने बिना विषयों में उन्तत्त असत् व्यक्तिगण कभी-कभी उनके बारे में यह प्रचार करते थे के वे एक दुरात्मा हैं। आज भी उनके कुछ वंशधरों एवं अनुगगणों में जो विचार वर्तमान है, उसके अनुसार वे अद्वैत-प्रभु को 'महाविष्णु' समझते हैं और गौरसुन्दर को उनकी आश्रिता परम-प्रिया गोपी-मात्र कहकर प्रचारित करते हैं। जिनमें श्रीचैतन्य का नित्यदास्य प्रबल है, उनको 'श्रीचैतन्य का नित्यदास्य प्रबल है, उनको 'श्रीचैतन्य-सेव्य' कहकर प्रतिष्ठापित करना दुष्टबुद्धि का परिचायक है। श्रीअद्वैत-वंश में एवं अद्वैतवंशानुचरगणों में '(अद्वैत के वंश के धरोहर के अनुचरवर्ग में) से कोई-कोई दुष्ट मत को ग्रहण करके श्रीअद्वैत-प्रभु को केवलाद्वैतवादी बनाने में लगे हैं।

प्रभु की मूर्च्छाकाल में अद्वैत का उनकी
पदधूलि ग्रहण करता एवं अन्तर्यामी
गौरसुन्दर-द्वारा कौतुक के साथ प्रकारान्तर
से उस विषय के बारे में जिज्ञासा—

एकदिन महाप्रभु विश्वम्भर नाचे।
आनन्दे अद्वैत ता'न बुले पाछे पाछे॥५१॥
हइल प्रभुर मूर्च्छा—अद्वैत देखिया।
लेपिल चरण-धूला अंगे लुकाइया॥५२॥
अशेष कौतुक जाने प्रभु गौर-राय।
नाचिते नाचिते प्रभु सुख नाहि पाय॥५३॥
प्रभु कहे,—''चित्ते केन ना वार्सो प्रकाश?
का'र अपराधे मोर ना हय उल्लास?५४॥
कोन् चोरे आमारे वा करियाछे चुरि?
सेइ अपराधे आमि नाचिते ना पारि॥५५॥
केह वा कि लइयाछे मोर पदधूलि।
सबे सत्य कह, चिन्ता नाहि, आमि बलि॥''५६॥

(५१-५६) प० अनु०—एकदिन महाप्रभु विश्वम्भर नाच रहे थे। अद्वैत आनन्द-सहित

उनके पीछे-पीछे घूम रहे थे। जब अद्वैत ने देखा कि, प्रभु मूर्च्छित हो गये हैं, तब उन्होंने गुप्त रूप से प्रभु की चरणधूलि अपने अंग में लेपन की। प्रभु गौर-राय अशेष कौतुक जानते हैं। नृत्य करते-करते प्रभु को सुख नहीं मिल रहा था। प्रभु ने कहा,—"मेरा हृदय विकसित क्यों नहीं हो रहा है? किसके अपराध से मेरे चित्त में उल्लास नहीं हो रहा है? किसी चोर ने मेरी चोरी कर ली है; उसी अपराध के कारण मैं नृत्य नहीं कर पा रहा हूँ। क्या किसी ने मेरी चरण-धूलि ग्रहण की है? सभी सच-सच बताओ, मैं कह रहा हूँ—चिन्ता मत करो।"

भक्तों का मौनभाव एवं अद्वैत-द्वारा अपना गुप्तकार्य स्वीकार—

अन्तर्यामी-वचन शुनिया भक्तगण।
भये मौन सबे, किछु ना बले वचन॥५७॥
बलिले अद्वैत-भय, ना बलिले मरि।
बुझिया अद्वैत बले योड़हस्त करि'॥५८॥
"शुन बाप, चोरे यदि साक्षाते ना पाय।
तबे ता'र अगोचरे लइते युयाय॥५९॥
मुञि चुरि करियार्छो मोरे क्षम' दोष।
आर ना करिब यदि तोर असन्तोष॥"६०॥

(५७-६०) प० अनु०—अन्तर्यामी प्रभु के वचनों को सुनकर सभी भक्तगण मौन हो गये, किसी ने कुछ भी नहीं कहा। कहते हैं तो अद्वैत का भय और नहीं कहते हैं तो वैसे मरते हैं, उनकी दुविधा को समझकर हाथ जोड़ते हुये अद्वैत बोले,—"सुनो बाप, यदि चोर को वह वस्तु साक्षात् में न मिलती हो, तब उनके अगोचर में चोरी कर लेना ठीक है। मैंने चोरी की है, दोष क्षमा कर दीजिए। यदि इसमें आपकी असंतोष होता है, तो आगे मैं ऐसा नहीं करूँगा।"

(५९) गौः भाः—यदि प्रकट रूप में दूसरों का द्रव्य अपहरण करने की सुविधा न मिलती हो, तब गोपन भाव से उस द्रव्य को संग्रह करने की योग्यता चोरों में है, पर उस कर्म के द्वारा किसी को नुकसान होने पर जो अपराध हुआ है, घर फिर से कभी पुनः अनुष्ठित नहीं होगा, यह जानने से ही उनके सन्तोष का कारण बन जाता है।

अद्वैत-वाक्य श्रवण से महाप्रभु-द्वारा क्रोध की छलना से अद्वैतमहिमा का प्रकाशन तथा बलपूर्वक अद्वैत-पदधूलि ग्रहण एवं उनके चरणों को वक्ष पर धारण करना—

अद्वैतेर वाक्य महा क्रुद्ध विश्वम्भर।
अद्वैतमहिमा क्रोधे बलये विस्तर॥६१॥
"सकल संसार तुमि करिया संहार।
तथापिह चित्ते नाहि वास प्रतिकार॥६२॥
संहारेर अवशेष सबे आछि आमि।
आमा संहारिया तबे सुखे थाक तुमि॥६३॥
तपस्वी, संन्यासी, योगी, ज्ञानि-ख्याति या'र।
काहारे ना कर तुमि शूलेते संहार?६४॥
कृतार्थ हइते ये आइसे तोमा-स्थाने।
ताहारे संहार कर धरिया चरणे॥६५॥
मथुरानिवासी एक परम वैष्णव।
तोमार देखिते आइल चरणवैभव॥६६॥
तोमा' देखि' कोथा से पाइवे विष्णु-भक्ति।
आरओ संहारिले तार चिरन्तन-शक्ति॥६७॥
लइया चरणधूलि ता'रे कैला क्षय।
संहार करिते तुमि परम निर्दय॥६८॥
अनन्त ब्रह्माण्डे यत आछे भक्तियोग।
सकल तोमारे कृष्ण दिल उपयोग॥६९॥
तथापिह तुमि चुरि कर क्षुद्र-स्थाने।

क्षुद्र संहारिते कृपा नाहि वास मने॥७०॥
महा डाकाइल तुमि, चोरे महा–चोर।
तुमि से करिला चुरि प्रेमसुख मोर॥''७१॥
एइ मत छले कहे सुसत्य वचन।
शुनिया आनन्दे भासे भागवतगण॥७२॥
''तुमि से करिला चुरि, आमि कि ना पारि।
हेर, देख, चोर उपरे करों चुरि॥''७३॥
एत बलि' अद्वैतेरे आपने धरिया।
लोटाये चरण–धूलि हासिया हासिया॥७४॥
महाबली गौरसिंहे अद्वैत ना पारे।
अद्वैतचरण प्रभु घसे निज शिरे॥७५॥
चरणे धरिया वक्षे अद्वैतेरे बले।
''हेर, देख, चोर बान्धिलाम निज कोले॥७६॥
करिते थाकये चुरि चोर शतबार।
बारे के गृहस्थ सब करये उद्धार॥''७७॥

(६१–७७) प० अनु०—अद्वैत के वचनों को सुनकर विश्वम्भर बड़े क्रुद्ध हो गये और क्रोध में ही अद्वैत की महिमा का सविस्तार वर्णन करने लगे—"तुमने सारे संहार किया है, फिर भी उसके प्रतिकार की तुम्हारे चित्त में कुछ भी चिन्ता नहीं है। सारे संसार का संहार करने के बाद एक मैं रह गया हूँ, मेरा भी संहार करके तुम सुख से रहना। तपस्वी, संन्यासी, योगी, ज्ञानी आदि नामों से जिनकी ख्याति है, उनमें से किसका तुम त्रिशूल से संहार नहीं करते हो? जो तुम्हारे निकट कृतार्थ होने के लिए आते हैं, तुम उनके चरण–स्पर्श करके उनका संहार करते हो। मथुरा–निवासी एक परम वैष्णव तुम्हारे चरण–वैभव का दर्शन करने का आया, परन्तु तुम्हारे दर्शन कर उसे विष्णुभक्ति तो मिली नहीं, उल्टे तुमने उसकी चिरन्तनशक्ति (पूर्व–शक्ति) का भी संहार कर दिया। उसकी चरण रज लेकर उसे क्षयशील (नाश) कर दिया। संहार करने में तुम परम निर्दयी हो। अनन्त ब्रह्माण्ड में जितना भी भक्तियोग वर्तमान है, वह सब कृष्ण ने तुम्हें प्रदान कर दिया। तथापि तुम क्षुद्र स्थान पर चोरी करते हो। छोटे का संहार करते समय तुम्हारे हृदय में दया नहीं होती है। तुम महाचोर हो। तुमने मेरा प्रेमसुख चुराया है।" इस प्रकार छल के माध्यम से प्रभु ने सुसत्य वचनों को प्रकाशित किया, जिन्हें सुनकर भागवतगण आनन्द में विभोर हो गये। जिन्हें सुनकर भागवतगण आनन्द में विभोर हो गये। "तुमने चोरी की है, क्या मैं नहीं कर सकता हूँ? देखो, मैं चोर के ऊपर चोरी करने में निपुण हूँ।" इतना कहकर प्रभु ने अद्वैत आचार्य को पकड़ लिया और हँसते हुये उनकी चरण–रज लूटने लगे। महाबली गौरसिंह के साथ अद्वैत आचार्य समर्थ नहीं हो सके और प्रभु अद्वैतचरणों को अपने सिर पर घिसने लगे। अपने वक्ष पर उनके चरणों को धारण करते हुये अद्वैत से कहने लगे, "देखो, मैंने चोर को अपनी भुजाओं में बाँध लिया है। चोर सौ बार चोरी करता है, पर गृहस्थी (जिसकी चोरी हुई है, वह) एक ही बार में सबका उद्धार कर लेता है।"

(६१–६७) गौः भाः—श्रीअद्वैत–प्रभु महाविष्णु होने के कारण रुद्र रूप से जगत् का संहार करते हैं। श्रीश्रीगौरसुन्दर ने कहा, —"मैं क्षुद्र व्यक्ति हूँ, मुझमें थोड़ा–सा भक्तिबल है। उसका संहार कर देना तुम्हारे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। तुम महाबलवान् वैष्णव हो, मुझ जैसे स्वल्प–भजन–बल वाले व्यक्ति की भजन–सम्पत्ति छीन लेना तुम्हारे लिए नितान्त गर्हित कार्य है। मथुरा निवासी कोई भक्त तुम्हारे निकट आया और भक्ति के लिए प्रार्थना की, पर तुमने उसका भक्ति–बल नष्ट करने के लिए बलपूर्वक उससे भक्ति छीन

ली।" इस प्रकार स्तुति के छल से पुरुष-वाक्यों (कठोर वचनों) के द्वारा श्रीगौरसुन्दर ने अद्वैत की महिमा का सुष्ठुभाव से प्रचार किया।

(६६) गौः भाः—मथुरा निवासी वैष्णव—स्वयं गौर-सुन्दर हैं। भक्तरूप में अवतीर्ण गौरसुन्दर का स्वयं को 'वैष्णव' कहना एवं नन्दनन्दन के साथ अभेद होने के कारण 'मथुरा निवासी' होने का अभिमान करना समीचीन ही है।

(६९) गौः भाः—उपयोग—आनुकुल्य, उपायोगिता।

(७५-७७) गौः भाः—चोर कई बार चोरी कर थोड़ा-थोड़ा द्रव्य संग्रह करता है। गृहस्थी चोर के कई बार चोरी करने का प्रतिशोध एकबार में ही ले लेता है और घर का सारा सामान निकलवा लेता है। श्रीचैतन्य—महाबली हैं, उनकी तुलना में अद्वैत की शक्ति क्षीण है, इसलिए महाप्रभु ने बलपूर्वक सबके सामने ही अद्वैत के चरण अपने वक्ष पर धारण कर लिये।

अद्वैत के द्वारा ऐकान्तिक
गौरदास्य की ज्ञापना—

अद्वैत बलये,—"सत्य कहिला आपनि।
तुमि से गृहस्थ, आमि किछुइ ना जानि॥७८॥
प्राण, बुद्धि, मन, देह—सकल तोमार।
के राखिवे प्रभु, तुमि करिले संहार?७९॥
हरिषेर दाता तुमि, तुमि देह' ताप।
तुमि शास्ति करिले राखिवे का'र बाप?८०॥
नारदादि याय प्रभु द्वारका-नगरे।
तोमार चरण-धन-प्राण देखिवारे॥८१॥
तुमि ता-सबार लओ चरणेर धूलि।
से सब कि करे प्रभु, सेइ आमि बलि॥८२॥
आपनार सेवक आपने यवे खाओ।
कि करिब सेवके, आपने भावि' चाओ॥८३॥
कि दाय चरण-धूलि, से रहुक पाछे।
काटिते तोमार आज्ञा कोन् जन आछे॥८४॥
तबे से एमत कर, नहे ठाकुरालि।
आमार संहार हय, तुमि कुतूहली॥८५॥
तोमार से देह, तुमि राख वा संहार'।
ये तोमार इच्छा प्रभु, ताइ तुमि कर॥"८६॥

(७८-८६) प० अनु—अद्वैत ने कहा, —"आपने सच कहा है। आप गृहस्थी हैं, इस विषय में तो मैं कुछ भी नहीं जानता। मेरे प्राण, बुद्धि, देह, मन—सब कुछ आपका है। हे प्रभु! आपके संहार करने पर कौन रक्षा कर सकता है? आप ही हर्ष के दाता हैं, आप ही संताप प्रदान करते हैं। आपके शास्ति (दण्ड) देने पर किसकी शक्ति है जो बचा सके? हे प्रभु! आपके चरण रूपी धन-प्राणों का दर्शन करने के लिए नारदादि द्वारका नगर में आते हैं। आप उन सबकी चरण धूलि ग्रहण कर लेते हैं। हे प्रभु! वे क्या करें, वही मैं कह रहा हूँ। हे प्रभु! वे सेवक का सर्वनाश करें, तो सेवक क्या करे, आप स्वयं इसके बारे में विचार करके देखिये। चरण-धूलि-ग्रहण करने की बात तो दूर, ऐसा कौन है, जो आपके आदेश का पालन न करे? फिर भी आप जो ऐसा करते हैं, यह आपकी ठाकुराई नहीं है। मेरे तो प्राण जाते हैं और आपको आनन्द होता है। आप रखें, या संहारें, यह देह आप ही की है। हे प्रभु! आपकी जो इच्छा हो, आप वही कीजिए।"

(७८-८५) गौः भाः—अद्वैत ने कहा, —गृहस्थी के घर में चोर चोरी करता है, परन्तु आप तो गृहस्थी नहीं है; सब कुछ आपका ही है; सब कुछ आपका ही है; आप ही सभी वस्तुओं के संहारकर्त्ता हैं एवं आप ही

सबको आनन्द प्रदान करते हैं। नारदादि मुनियों द्वार आपके चरण-दर्शन के लिए गमन करने पर आप उनके चरणों की धूलि ग्रहण करते हैं। आपकी आज्ञा का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता है। इस प्रकार के सर्वशक्तिमान आप मुझे सेवाधिकार प्रदान न करके जो मेरी सेवा करने का छल अपनाये हुये हैं, वह आपके वैभव की महिमा नहीं है। आप इसमें आनन्द ले सकते हैं, परन्तु इससे मेरा सर्वनाश होता है।

विश्वम्भर-द्वारा अद्वैत की महिमा का कीर्तन—

विश्वम्भर बले,—''तुमि भक्तिर भाण्डारी।
एतेके तोमार चरणेर सेवा करि॥८७॥
तोमार चरणधूलि सर्वांगे लेपिले।
भासये पुरुष कृष्णप्रेम-रस-जले॥८८॥
बिना तुमि दिले भक्ति, केह नाहि पाय।
'तोमार से आमि', हेन जान सर्वथाय॥८९॥
तुमि आमा यथा वेच', तथाइ विकाइ।
एइ सत्य कहिलाम तोमार से ठाञि॥''९०॥

(८७-९०) प० अनु—विश्वम्भर बोले, —"तुम भक्ति के भण्डारी हो। इस कारण मैं तुम्हारे चरणों की सेवा करता हूँ। सारे अंगों में तुम्हारे चरणों की धूलि का लेपन करने से पुरुष कृष्णप्रेम के आनन्द जल में बहने लगता है। तुम्हारे भक्ति प्रदान नहीं करने पर किसी को भी भक्ति नहीं मिलती है। 'मैं तुम्हारा ही हूँ', यह तुम अच्छी तरह से जान लो। तुम मुझे जहाँ बेचोगये, मैं वहीं बिक जाऊँगा—यह सत्य है, और मैंने इसे तुम्हारे निकट व्यक्त भी कर दिया है।"

(९०) गौः भाः—महाप्रभु ने अद्वैत प्रभु से कहा,—"तुम मुझे अपनी सम्पत्ति समझना। तुम मुझे जहाँ बेचोगये, मैं वही बिक जाऊँगा। तुम सेवा-भंडार के एकमात्र अधिकारी हो। सर्वतोभाव से तुम्हारी सेवावृत्ति का अनुसरण करने पर जीवों का कृष्णप्रेम-रसामृत-सिन्धु में अवगाहन संभव होता है। तुम जिसको सेवा के अनुसरण करने पर जीवों का कृष्णप्रेम-रसामृत-सिन्धु में अवगाहन संभव होता है। तुम जिसको सेवा के अधिकार से वंचित कर देते हो, उसे कभी भी सेवाधिकार नहीं मिल पाता है—यह परम सत्य है और यह मैं तुमसे कह रहा हूँ।"

अद्वैत के प्रति गौरसुन्दर के अनुग्रह की पराकाष्ठा के दर्शन से भक्तों की विस्तय-सूचक बहुविध उक्तियाँ—

अद्वैतेर प्रति देखि' कृपार वैभव।
अपूर्व चिन्तये मने सकल-वैष्णव॥९१॥
''सत्य सेविलेन प्रभु ए महापुरुषे।
कोटि मोक्षतुल्य नहे ए कृपार लेशे॥९२॥
कदाचित् ए प्रसाद शंकरे से पाय।
याहा करे अद्वैतेरे श्रीगौरांगराय॥९३॥
आमराओ भाग्यवन्त हेन भक्तसंगे।
ए भक्तेर पद्धूलि लइ सर्व अंगे॥''९४॥

(९१-९४) प० अनु—अद्वैत के प्रति प्रभु की कृपा का वैभव देखकर सभी-वैष्णव इस अपूर्व महिमा के बारे में चिन्तन करने लगे। "इस महापुरुष ने सचमुच ही प्रभु की सेवा की। इस कृपा के अणु-मात्र के साथ कोटि-कोटि मोक्षों की भी तुलना नहीं की जा सकती है। श्रीगौरांग राय ने जो कृपा अद्वैत पर की है, कदाचित् शंकर को भी वैसी ही कृपा मिली होगी। ऐसे भक्तों के संग से हम भी भाग्यवन् हैं। आओं, उन जैसे भक्त की पद्धूलि का लेपन हम भी सारे अंग में कर ले।"

(९१–९४) प० अनु—अद्वैत के प्रति प्रभु की कृपा का वैभव देखकर सभी–वैष्णव इस अपूर्व–महिमा के बारे में चिन्तन करने लगे। "इस महापुरुष ने सचमुच ही प्रभु की सेवा की है। इस कृपा के अणु–मात्र के साथ कोटि–कोटि मोक्षों की भी तुलना नहीं की जा सकती है। श्रीगौरांग राय ने जो कृपा अद्वैत पर की है, कदाचित् शंकर को भी वैसी ही कृपा मिली होगी। ऐसे भक्तों के संग से हम भी भाग्यवान् हैं। आओ, उन जैसे भक्त की पदधूलि का लेपन हम भी सारे अंग में कर लें।"

(९१) गौः भाः—कृपा का वैभव—अनुग्रह की पराकाष्ठा, औदार्य की पूर्ण–व्यापकता।

(९२) गौः भाः—मुक्ति का आदर्श कोटि गुना उन्नत होने पर भी वह (मुक्ति) इस प्रकार की उदारता के एक कण के समान भी नहीं है।

पापमति जनों का अद्वैत को गौरसुन्दर के 'सेवक' के रूप में न जाकर उन्हें 'सेव्य' मानने का परिणाम—

हेन भक्त अद्वैतेरे बलिते हरिषे।
पापि–सब दुःख पाय निज कर्मदोषे॥९५॥
से काले ये हैल कथा, सेइ सत्य हय।
ना माने वैष्णव–वाक्य, सेइ सत्य हय॥९६॥

(९५–९६) प० अनु०—हर्ष के साथ अद्वैत को महान, भक्त के रूप में सम्बोधित करने पर सभी पापियों को अपने–अपने कर्मदोष के कारण दुःख मिलता है। इस समय जो बात हुई, वह सब सत्य है। जो वैष्णव–वाक्य को नहीं मानता है, वह क्षय को प्राप्त होता है।

(९५) गौः भाः—श्रीअद्वैताचार्य—गौरसुन्दर के परमभक्त हैं। जो सब पापमतिजन अद्वैत–प्रभु को श्रीचैतन्य के ऐकान्तिक भक्त के रूप मे नहीं जानकर श्रीचैतन्यदेव को श्रीअद्वैत का सेवक समझते हैं, वे सब भाग्यहीन दुष्ट व्यक्ति निजी–कर्म–विपाक से अशेष दुःख में निमग्न हो जाते हैं; परन्तु महाप्रभु के सभी शुद्धभक्त परमानन्द चित्त से अद्वैत प्रभु को महाप्रभु का सेवक जानकर आनन्दित होते है। प्रभु के प्रकट–विहार–काल में ये सब घटनाएँ प्रकाशित हुई थीं। ये सब घटनाएँ परम सत्य हैं। जो इनमें विश्वास नहीं करता है एवं कल्पना के प्रभाव से अद्वैत को 'चैतन्य का सेव्यतत्त्व' समझता है, वह अपना अमंगल ही करता है, ऐसे सब प्राणी व्यक्ति क्षय को प्राप्त होते है। श्रीअद्वैत प्रभु की कितनी ही सन्तानें एवं उनके निम्न अधस्तनवर्गीय लोग अद्वैत प्रभु को चैतन्य देव का एकान्त भृत्य न समझकर 'केवलाद्वैतवादी समझते हुये अपनी बड़ाइ आप करते रहते है; इससे उन लोगों का सर्वनाश होता है।

महाप्रभु–द्वारा हरिध्वनि, भक्तों का कृष्णकीर्तन एवं गौर–नित्यानन्द–अद्वैत आदि के द्वारा नृत्य—

'हरिबोल' बलि' उठे प्रभु विश्वम्भर।
चतुर्दिके बेड़ि' सब गाय अनुचर॥९७॥
अद्वैत आचार्य महा–आनन्दे विह्वल।
महा–मत्त हइ' नाचे पासरि' सकल॥९८॥
तर्जे गर्जे आचार्य दाड़िते दिया हात।
भ्रुकुटि करिया नाचे शान्तिपुरनाथ॥९९॥
''जय कृष्ण गोपाल गोविन्द वनमाली।''
अहर्निश गाय सबे हइ' कुतूहली॥१००॥
नित्यानन्द–महाप्रभु परम विह्वल।
तथापि चैतन्य–नृत्ये परम कुशल॥१०१॥
सावधाने चतुर्दिके दुइ हस्त तुलि'।
पड़िते चैतन्य, धरि' रहे महाबली॥१०२॥

अशेष आवेशे नाचे श्रीगौरांग राय।
ताहा वर्णिवार शक्ति के धरे जिह्वाय?१०३॥
सरस्वती सहित आपने बलराम।
सेइ से ठाकुर गाय पूरि' मनस्काम॥१०४॥
क्षणे क्षणे मूर्च्छा हय, क्षणे महाकम्प।
क्षणे तृण लय करे, क्षणे महा-दंभ॥१०५॥
क्षणे हास, क्षणे श्वास, क्षणे वा विरस।
एइमत प्रभुर आवेश-परकाश॥१०६॥
वीरासन करिया ठाकुर क्षणे वैसे।
महा-अट्ट-अट्ट करि' माझे माझे हासे॥१०७॥
भाग्य-अनुरूप कृपा करये सबारे।
डुबिला वैष्णव-सब आनन्द-सागरे॥१०८॥

(९७-१०८) प० अनु०—प्रभु विश्वम्भर 'हरिबोल' बोल कर उठे और सभी अनुचर चारों ओर से उनको घयेरकर कीर्तन करने लगे। अद्वैताचार्य महा-आनन्द में विह्वल हो गये एवं सब कुछ भुलाकर महा-मत्त होकर नृत्य करने लगे। सभी महा-आनन्द-सहित दिन-रात "जय कृष्ण गोपाल गोविन्द वनमाली" गाकर कीर्तन करने लगे। नित्यानन्द-महाप्रभु यद्यपि परम विह्वल हो रहे थे, तब भी वे चैतन्य-नृत्य में परम कुशल थे। दोनों हाथ ऊपर उठाकर निपुणता के साथ नृत्य करते हुये महाप्रभु चारों दिशाओं में घूम रहे थे। नृत्य करते हुये श्रीचैतन्य जब भूमि पर गिर जाने को होते, तब महाबली नित्यानन्द उनको संभाल लेते। अन्तहीन आवेश में श्रीगौरांग राय जो नृत्य कर रहे थे, उसका वर्णन करने की शक्ति किसी जिह्वा में है? उस समय सरस्वती के साथ ठाकुर बलराम भी जी-भरकर कीर्तन कर रहे थे। क्षणभर में महाप्रभु मूर्च्छित हो जाते और क्षण-भर में उनके सारे अंगों में महाकम्प दिखाई देने लगता। एक क्षण में वे हाथ में तृण धारण कर लेते और दूसरे ही क्षण महा अंहकार करने लगते। वे क्षण में हँसते, क्षण में लम्बी साँसे लेने लगते और क्षण में कभी रस-रहित हो जाते। इस प्रकार महाप्रभु के आवेश का प्रकाश होता रहा। क्षण में ठाकुर वीरासन में विराजित होते और बीच-बीच में महाअट्टहास करने लगते। महाप्रभु भाग्य के अनुसार सभी पर कृपा कर रहे थे। सभी वैष्णव आनन्द-सागर में डूब हुये थे।

(९९) गौः भाः—श्रीअद्वैत-प्रभु शास्त्राचार सम्पन्न थे और दाढ़ी-मूँछ-केशादि मुंडित कराकर रखते थे। दाढ़ी अथवा गालों पर जो उन्नत केश दिखाई देते है; उन्हें भी साधारण भाषा में 'दाढ़ी' कहते हैं। इसलिए कोई-कोई व्यक्ति अनभिज्ञतावश अज्ञ वाउलिया (बंगाली वैष्णवों का एक अपसम्प्रदायी) का वेष बनाकर दाढ़ी-मूँछ आदि रखते हैं। परन्तु वास्तव में अद्वैत आचार्य मुंडित-केश थे। उनको 'नाड़ा'-शब्द से सम्बोधित किये जाने के कारण भी यही समझा जाता है कि वे मुंडित-केश थे।

(१०१-१०२) गौः भाः—प्रभु नित्यानन्द सदैव भावावेश में रहते थे, इसलिए प्रापंचिक-विचार से वे परम विह्वल अथवा उन्मत्त के रूप में जाने जाते थे। परन्तु भगवत् सेवा के उद्देश्य से नृत्य-काल में भी वे पूर्णरूप से अपनी निपुणता का प्रदर्शन किया करते थे। जिस समय श्रीचैतन्यदेव कृष्णप्रेम में उन्मत्त होकर नृत्य करते-करते पतनोन्मुख (धरती की गोद में गिर जाने लगे) होते, उस समय श्रीनित्यानन्द दोनों हाथ फैलाकर उनको भूमि पर गिरने से रोक लिया करते थे।

(१०४) गौः भाः—कृष्णकीर्तन के समय प्रेमोन्मत्त होकर अपना अभीष्ट-कीर्तन करते-करते जिह्वा से जो शब्द-समूह उच्चारित होते हैं, वे सब बलदेव के साथ सरस्वती के

मिलन से उदित होते हैं। बलदेव स्वयं वाणी (जिह्वा) से अपने प्रभु का गुणकीर्तन अपनी इच्छानुसार करते रहते हैं।

(१०८) गौः भाः—महाप्रभु की विभिन्न लीलाएँ अपनी योग्यतानुसार ही भगवद् भक्तों की समझ में आती हैं। भगवान् के प्रति उदासीन रहने वाले निर्विशेषवादी लोग प्रभु की कृपा प्राप्त करने में पूर्णरूप से अयोग्य होते हैं। सत्कर्म में निपुण कर्मकांडरत मनुष्य मायिक दया प्राप्त करके यह समझते हैं कि उन्होंने नश्वर भोगों में अभीष्ट-सिद्धि को प्राप्त कर लिया है। भगवद् भक्त भगवान् की सेवा में जितने परिणाम में अपनी चेष्टा का प्रदर्शन करते हैं, भगवान् उनके निकट उतने ही परिणाम में उनके प्रेम के वशीभूत होते हैं। कर्मी का स्वार्थपरक नश्वर आनन्दभोग तथा ज्ञानी का निर्भेद ब्रह्मानुसंधान आदि 'कृपा'—शब्द-वाच्य नहीं हैं; भगवद्-भक्त ही सुकृतिवश स्वेच्छाचारिता, कर्मकांड और ज्ञानकांड के अमंगल से मुक्त रहते हैं।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का आख्यान—

सम्मुखे देखये शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी।
अनुग्रह करे तारे गौरांग श्रीहरि॥१०९॥
सेइ शुक्लाम्बरेर शुनह किछु कथा।
नवद्वीपे वसति, प्रभुर जन्त यथा॥११०॥
परम स्वधर्मरत, परम सुशांत।
चिनिते ना पारे केह परम महान्त॥१११॥
नवद्वीपे घरे घरे झुलि लइ' कांधे।
भिक्षा करि' अहर्निश 'कृष्ण' बलि' कान्दे॥११२॥
'भिखारी' करिया ज्ञान, लोके नाहि चिने।
दरिद्रेर अवधि—करये भिक्षाटने॥११३॥
भिक्षा करि' दिवसे ये किछु विप्र पाय।
कृष्णेर नैवेद्य करि' तबे शेष खाय॥११४॥
कृष्णानन्द-प्रसादे दारिद्रय नाहि जाने।
बलिया बेड़ाय 'कृष्ण' सकल भवने॥११५॥
चैतन्येर कृपापात्र के चिनिते पारे?
यखन चैतन्य अनुग्रह करे या'रे?११६॥
पूर्वे येन आछिल दरिद्र दामोदर।
सेइमत शुक्लाम्बर विष्णुभक्तिधर॥११७॥
सेइ मत कृपाओ करिला विश्वम्भर।
ये रहे चैतन्यनृत्ये बाड़ीर भितर॥११८॥

(१०९-११८) प० अनु०—प्रभु गौरांग श्रीहरि ने अपने सामने शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी को देखा और उन पर अनुग्रह किया। प्रभु ने जहाँ जन्म लिया था, वहीं नवद्वीप में वे (शुक्लाम्बर) रहते थे। परम स्वधर्मरत, परम सुशांत, परम महान्त को कोई पहचान नहीं पाता है। कंधे पर झोली लेकर नवद्व ीप के घर-घर में वे भिक्षा करते थे और दिन-रात 'कृष्ण' कहकर क्रन्दन करते रहते थे। लोगों ने उनको केवलमात्र एक 'भिखारी' समझ रखा था, वास्तविकता का पता उन्हें नहीं था। वे गरीबी के अन्तिम स्तर पर थे और भिक्षा के लिए पर्यटन करते थे। उन ब्राह्मण को दिन-भर की भिक्षा में जो कुछ भी मिल जाता था, उसी का नैवेद्य बनाकर कृष्ण को निवेदन करते हुये अवशिष्ट भाग को वे ब्राह्मण ग्रहण कर लिया करते थे। कृष्णानन्द के अनुग्रह से उन्हें दरिद्रता का बोध नहीं होता था। सभी घरों में जाकर वे 'कृष्ण' कहकर भिक्षा किया करते थे। चैतन्य के कृपापात्र का कौन पहचान सकता है? चैतन्य कब किस पर अनुग्रह करते हैं, कौन जानता है? विष्णु-भक्तिधर शुक्लाम्बर ऐसे ही दरिद्र थे जैसे दामोदर (सुदामा) (कृष्ण-लीला में) थे। विश्वम्भर ने उन पर भी उसी प्रकार कृपा की थी। चैतन्य के नृत्य करते समय

शुक्लाम्बर घर के भीतर ही रहते थे।

(११३) गौः भाः—मूढ़ व्यक्ति आपात दर्शन से वंचित होकर शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी को इन्द्रिय–तर्पण के लिए इच्छुक साधारण भिक्षु के रूप में जानते थे। दरिद्रता और अभाव के पूर्ण आदर्श भिक्षुक के वेष में रहने वाले कृष्णभक्तों की चेष्टाओं को त्रिविध अहंकार में मत्त जनगण समझने में असमर्थ रहते हैं।

मायाविमूढ़ अंहकार–गार्वितजन भगवद्–भक्तों को कर्मफल के अधीन अभावग्रस्त समझते हैं। सज्जन वैष्णवों की दरिद्रता, अभाव अथवा प्रापंचिक वस्तुओं में उनके अकिंचनाधिकार (मेरा कुछ भी नहीं है, सब प्रभु का है, यह मनोभाव) को समझने की शक्ति उन लोगों में नहीं होती है। वे महान् होकर भी जीवों की अज्ञात–सुकृति के लिए दीनचेता गृहस्थियों के निवास पर गमन करते थे। "महान्त–स्वभाव एइ तारिते पामर। निज कार्य नाहि, तबु यान तार घर॥"—(चैः चः मः ८/३९)। उससे दाता के लिए अज्ञात–सुकृति का फल उत्पन्न होता है। इस आत्मवृत्ति को जो समझ सकते हैं, वे ही भक्तिमठ में भिक्षुक का वेष धारण करके हरिभजन करते हैं एवं मूढ़ जड़ासक्त लोगों के कल्याण–हेतु उन लोगो के लिए सुकृति का उदय करवाते हैं। भक्तिमठ के भिक्षुकगण विशुद्ध ब्राह्मणाचार स्वीकार करते हैं, वे भोगपरक ब्राह्मणाचार में अवस्थान करके आत्मवंचना नहीं होते हैं। वे भिक्षा में प्राप्त द्रव्य–समूह को कृष्ण–सेवा में नियुक्त करते हैं। कर्मफलभोगी कृष्णविमुख–ब्राह्मणवाद में जिस प्रकार आत्मेन्द्रिय–तर्पण की व्यवस्था है, इस प्रकार की ब्राह्मणब्रुवता (ब्राह्मणत्व का ढोंग) वैष्णवों में नहीं होती है। इस कारण वे कृष्ण के लिए अखिल चेष्टा सम्पन्न होकर आत्मस्वभाव एवं अपनी उन्नत पदवी के बारे मे निर्बोध संसार को जानकारी नहीं देते हैं।

(११७) गौः भाः—दामोदर,—"श्रीदाम' अथवा 'श्रीदामा' (सुदामा) नाम के एक ब्राह्मण थे, जो श्रीकृष्ण के सहाध्यायी सखा थे। (भाः १०/८० अध्याय द्रष्टव्य है।)

कन्धे पर भिक्षा की झोली लिए शुक्लाम्बर का प्रवेश एवं नृत्य; यह देखने हुये महाप्रभु की हँसी एवं उनका गुण–वर्णन—

झुलि कांधे लइ' विप्र नाचे महारंगे।
देखि' हासे प्रभु सब–वैष्णेर संगे॥११९॥
बसिया आछये प्रभु ईश्वर–आवेशे।
झुलि कान्धे शुक्लाम्बर नाचे कान्दे हासे॥१२०॥
शुक्लाम्बर देखिया गौरांग कृपामय।
'आइस' करि' प्रभु बलये सदय॥१२१॥
''दरिद्र सेवक मोर तुमि जन्म जन्म।
आमारे सकल दिया तुमि भिक्षु–धर्म॥१२२॥
आमिह तोमारे द्रव्य अनुक्षण चाइ।
तुमि ना दिलेओ आमि बल करि' खाइ॥१२३॥
द्वारकार माझे खुद काड़ि' खाइलुँ तोर।
पासरिला? कमला धरिल हस्त मोर॥''१२४॥

(११९–१२४) प० अनु०—कन्धे पर झोली लिए विप्र (शुक्लाम्बर) महा आनन्द में नृत्य कर रहे थे। यह देखकर सभी वैष्णवों के साथ प्रभु हँसने लगे। ईश्वर के आवेश में प्रभु बैठे हुये थे और शुक्लाम्बर भिक्षा की झोली कन्धे पर लेकर नृत्य कर रहे थे, क्रन्दन कर रहे थे और हँस रहे थे। शुक्लाम्बर को देखकर कृपामय गौरांग प्रभु ने दयापूर्वक उनसे कहा—"आ जाओ, आ जाओ"। " तुम मेरे जन्म–जन्म के दरिद्र सेवक हो। मुझे सब कुछ देकर तुम भिक्षु–धर्म अपनाये हुये हो। हर पल मैं भी तुम्हारी सामग्री चाहता रहता हूँ। तुम्हारे द्वारा ने दिये जाने पर भी मैं

बलपूर्वक तुमसे छीन कर खाता हूँ। मैंने द्वारका में तुम्हारा खुद (चावल का कण) छीन कर खाया था। भूल गये? उस समय कमला ने मेरे हाथ को पकड़ लिया था।"

(१२२-१२३) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु ने शुक्लाम्बर से कहा,—जन्म-जन्म से तुम मेरे दरिद्र भक्त रहे हो। संसार में प्रवेश कर गृहपति बनने की कोई वासना तुम में नहीं है। ब्रह्मचारी के रूप में द्वार-द्वार पर भिक्षा करके तुम मुझे भोजनीय द्रव्य सामग्री अर्पण करते रहते हो। तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो। गृहस्थी एवं वानप्रस्थी में जो प्राकृत-शब्दिक-अंहकार वर्तमान रहता है, उसमें भी तुम निर्मक्त हो। तुम परमहंस-धर्म में अवस्थित होकर अंकिचन तुर्याश्रम वर्ण को अपनार्य हुये हो। अतएव तुम पूर्ण शरणागत त्रिदण्डीभिक्षु हो। तुम अपने तन, मन, वचन अथवा अपनी सारी चेष्टाएँ मुझे सम्पूर्णरूप से देने में समर्थ हुये हो। मेरे लिए समर्पण करने के अतिरिक्त किसी भी वस्तु में तुम्हारा भोगपरक अभिनिवेश नहीं है। इसलिए मैंने बलपूर्वक तुम्हारा सब कुछ हरण किया है, अतएवं तुम गरीब हो गये हो।

(१२४) गौः भाः—तथ्य—भाः १०/८१/१० श्लोक द्रष्टव्य है।

प्रभु के द्वारा शुक्लाम्बर की झोली में से चावल भक्षण एवं इससे शुक्लाम्बर को दुःख—

एत बलि' हस्त दिया झुलिर भितर।
मुष्टि मुष्टि तंडुल विचाय विश्वम्भर॥१२५॥
शुक्लाम्बर बले,—"प्रभु कैला सर्वनाश।
ए तंडुले खुद-कण बहुत प्रकाश॥"१२६॥

(१२५-१२६) प० अनु०—इतना कहकर विश्वम्भर शुक्लाम्बर की झोली के भीतर हाथ डालकर मुट्ठी भर-भरकर तंडुल चबाने लगे। शुक्लाम्बर बोले,—"प्रभु आपने सर्वनाश कर दिया। इन चावलों में बहुत सारे चावल-कण विद्यमान हैं।

प्रभु के द्वारा भक्तों के निकृष्ट द्रव्य का भी अपनी इच्छा से भक्षण एवं अभक्तों के अमृत की भी उपेक्षा—

प्रभु बले,—"तोर खुदकण मुञि खाओ।
अभक्तेर अमृत उलटि' नाहि चाओ॥"१२७॥

(१२७) प० अनु०—प्रभु बोले,—"तुम्हारे चावलकण मैं खाता हूँ, किन्तु अभक्तों के अमृत को भी मैं पलट कर नहीं देखता।

(१२७) गौः भाः—तथ्य—"अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेमणा भूर्येव में भवेत्। भूर्यण्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते॥"—(भाः१०/८१/३)।

प्रभु का अचिन्त्य चरित्र देखकर भक्तों के आनन्दाश्रु एवं कृष्णकीर्तन—

स्वतन्त्र परमानन्द भक्तेर जीवन।
चिवाय तंडुल, के करिबे निवारण॥१२८॥
प्रभुर कारुण्य देखि' सर्वभक्तगण।
शिरे हाथ दिया सबे करेन क्रन्दन॥१२९॥
ना जानि, के कोन् दिगये पड़ये कान्दिया।
सबेइ विह्वल हैला कारुण्य देखिया॥१३०॥
उठिल परमानन्द—कृष्णेर कीर्तन।
शिशु बृद्ध आदि करि' कान्दे सर्वजन॥१३१॥
दन्ते तृण करे केह, केह नमस्करे।
केह बले,—"प्रभु कभु ना छाड़िया मोरे॥"१३२॥
गड़ागड़ि यायेन सुकृति शुक्लाम्बर।
तंडुल खायेन सुखे वैकुण्ठ ईश्वर॥१३३॥

(१२८-१३३) प० अनु०—भक्तों का जीवन स्वतन्त्र और परमानन्दमय होता है। प्रभु तंडुल चबा रहे हैं, कौन रोके? प्रभु का करुणापूर्ण व्यवहार देखकर सभी भक्तजन सिर पर हाथ

रखकर क्रन्दन करने लगे। पता नहीं, कौन किस दशा में गिरकर क्रन्दन कर रहा था। प्रभु की करुणा देखकर सभी विह्वल हो गये। उसी समय परमानन्दमय कृष्ण का कीर्तन गूँज उठा और बच्चे, बूढ़े आदि सभी क्रन्दन करने लगे। किसी के दाँतों तले तृण था, तो कोई नमस्कार कर रहा था और कोई कह रहा था,—"हे प्रभु! आप मुझे कभी नहीं छोड़ना।" सुकृतिवान् शुक्लाम्बर लोट-पोट हो रहे थे और वैकुण्ठ के ईश्वर आनन्द से तंडुल चबा रहे थे।

ऐकान्तिक भक्तों की कार्यावली का सम्पादन कृष्ण की इच्छानुसार होता है—

प्रभु बले,—"शुन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारि।
तोमार हृदये आमि सर्वदा विहरि॥१३४॥
तोमार भोजने हय आमार भोजन।
तुमि भिक्षाय चलिले आमार पर्यटन॥१३५॥
प्रेम-भक्ति बिलाइते मोर अवतार।
जन्म-जन्म तुमि प्रेमसेवक आमार॥१३६॥

(१३४-१३६) प० अनु०—प्रभु बोले, —"शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, सुनो! मैं सदैव तुम्हारे हृदय में विहार करता हूँ। तुम्हारे भोजन से मेरा भोजन होता है। तुम भिक्षा को जाते हो तो मेरा पर्यटन होता है। प्रेम-भक्ति को वितरण करने के लिए मेरा अवतार हुआ है। जन्म-जन्म से तुम मेरे प्रेमसेवक रहे हो।

(१३५) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के आश्रित त्रिदण्डी-वैष्णव-भिक्षु-सम्प्रदाय माधुकरी के उद्देश्य से जो पर्यटन करते हैं, उस पर्यटन-द्वारा नाम-प्रेम प्रचार का कार्य भगवान् ही भक्तों से करवाते हैं।

प्रभु-द्वारा शुक्लाम्बर को प्रेमभक्ति का वरदान, इससे भक्तों की जयध्वनि—

तोमारे दिलाम आमि प्रेमभक्ति दान।
निश्चय जानिह' प्रेम-भक्ति मोर प्राण'॥"१३७॥
शुक्लाम्बरे वर शुनि' वैष्णव-मण्डल।
जय जय हरिध्वनि करिल सकल॥१३८॥

(१३७-१३८) प० अनु०—मैंने तुमको प्रेमभक्ति का वरदान दिया है। निश्चित रूप से जान लेना कि, यह प्रेमभक्ति मेरा प्राण स्वरूप है। वैष्णव-मंडली ने जब शुक्लाम्बर के वरदान के बारे में सुना, तो सभी ने 'जय हो, जय हो' कहकर हरिध्वनि की।

साक्षात् लक्ष्मीपति के सेवक का भिक्षा-तात्पर्य सामान्यजन की समझ के बाहर—

कमलानाथेर भृत्य घरे घरे मागे।
ए रसेर मर्म जाने कोन् महाभागे?१३९॥

(१३९) प० अनु०—लक्ष्मीपति के भृत्य घर-घर में जाकर भीख माँगते हैं। कौन ऐसा महाभाग्यवान् है, जो इस रस का मर्म जान सके।

ऐकान्तिक भक्त शुक्लाम्बर की माधुकरी को बलपूर्वक ग्रहण करने से गौरसुन्दर-द्वार स्वयं भिक्षुधर्म का आवाहन—

दश घरे मागिया तंडुल विप्र पाय।
लक्ष्मीपति गौरचन्द्र ताहा काड़ि' खाय॥१४०॥

(१४०) प० अनु०—दस घरों में से माँगकर विप्र ने तंडुल संग्रह किये थे और उन्हीं तंडुलों को लक्ष्मीपति गौरचन्द्र छीनकर खा रहे थे।

(१४०) गौः भाः—अनन्त ऐश्वर्य के अधिपति श्रीगौरसुन्दर के ऐकान्तिक-भक्त शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी विभिन्न स्थानों से माधुकरी संग्रह करके जिस भोजनीय द्रव्य के द्वारा अपनी इच्छा से नित्य हरिसेवा करते थे, श्रीमन्महाप्रभु

ने इस बार उक्त सेवा-सुयोग उन्हें नहीं दिया और स्वतः प्रवृत्त होकर उस भोजनीय द्रव्य को ग्रहण करते हुये भिक्षुधर्म का स्वयं आवाहन किया। इससे श्रीचैतन्याश्रितजन ने यह जाना कि, श्रीचैतन्यदेव त्रिदण्डीभिक्षुओं के एकमात्र सेव्य हैं। त्रिदण्डीभिक्षुगण अपना पेट पालने या इन्द्रियतर्पण के उद्देश्य से माधुकरी का संग्रह नहीं करते हैं; अपितु उसके द्वारा वे कृष्णसेवा ही करते हैं। ब्रह्मसंन्यासीगण विषयों से विनिवृत्त होकर भिक्षामात्र का अवलम्बन करके यावत निर्वाह-प्रतिग्रह (जितने में गुजारा हो जाये, उतना ग्रहण करने का) का विचार अपनाते हैं। वैष्णव-संन्यासीगण माधुकरी से प्राप्त भोजन सामग्री के द्वारा भगवत् सेवा ही करते रहते हैं। त्यागी वैष्णव-संन्यासी का रूप-रसादि किसी भी विषय का ग्रहण—अपनी इन्द्रियों को सुख देने के लिए नहीं होता है, परन्तु वे इसके द्वारा कृष्ण एवं वैष्णवों की सेवा करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य किसी कुयोगी वैभव में वे आबद्ध नहीं रहते हैं। श्रीचैतन्यमठ में दीक्षित अथवा दिव्यज्ञानलब्धजन श्रीगौड़ीय मठ में रहकर शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के मार्ग का अनुसरण करते हैं। श्रीचैतन्यदेव मठमासियों के सभी भोजन-योग्य द्रव्यों को छीनकर खाते हैं। इसलिए वे गौरहरि के अपहरण-कार्य में सहायता करने में समर्थ होते हैं। सब कुछ श्रीगौरसुन्दर की सेवा में नियुक्त कर देना ही भक्तिमठवासियों (भक्ति के अनुशीलनकारी) का एकान्त कर्तव्य है। इसी वृत्ती को 'प्रेम' कहते हैं। यदि इस प्रेम का अनुसरण करना हो, तो इन मठवासियों के पवित्र चरित्र का दर्शन करना सुकृतिवान्जन का एकमात्र उचित कर्तव्य है। चारों आश्रमों में रहकर, चारों वर्णों में प्रतिष्ठित होकर पंचम आश्रम अथवा पंचम वर्ण की निरर्थकता के दर्शन में समर्थ होकर जो समदर्शन होता है, वही भक्तिमठवासियों के चिन्मय चरित्र में प्रतिभाव होता है। इसलिए भक्तिमठवासी परम सुचतुर रसज्ञ महाभाग इन सभी बातों को अच्छी तरह से समझकर तथा जगत् के सभी कार्यों का परित्याग करके प्रत्येक के घर में नाम-प्रेम-प्रचार-कार्य के द्वारा भाग्यवंत गृहस्थीजन की सेवा करने के लिए सदैव उत्कण्ठित रहते हैं।

वैदिक नैवद्य-दानविधि का अतिक्रमण करके महाप्रभु-द्वारा शुक्लाम्बर के तंडुल-ग्रहण करने का तात्पर्य-अर्चन पथ की अपेक्षा अनुरागपथ की महिमा का प्रदर्शन एवं कृष्णभक्ति की सर्वश्रेष्ठता की स्थापना—

मुद्रार सहित नैवेद्यर यत विधि।
वेदरूपे आपने बलेन गुणविधि॥१४१॥
बिने सेइ विधि किछु स्वीकार ना करे।
सकल प्रतिज्ञा चुर्ण भक्तेर दुयारे॥१४२॥
शुक्लाम्बर-तंडुल ताहार परमाण।
अतएवं सकल-विधिर भक्ति प्राण॥१४३॥

(१४१-१४३) प० अनु०—विभिन्न मुद्राओं के साथ नैवेद्य प्रदान करने की जितनी भी विधियाँ हैं, उनके बारे में वेदरूप गुणनिधिस्वरूप भगवान् स्वयं मार्ग-दर्शन कराते हैं। उन विधियों के बिना वे कुछ भी स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु भक्तों के सामने वे सब प्रतिज्ञाएँ अर्थहीन हो जाती हैं। शुक्लाम्बर के तंडुल इसका प्रमाण हैं। अतएवं भक्ति सभी विधियों का प्राणस्वरूप है।

(१४१) गौः भाः—नैवेद्य-दानविधि में "अस्त्राय फट्" मन्त्र-द्वारा अभिमंत्रित जल के साथ नैवेद्य प्रोक्षणपूर्वक चक्रमुद्रा भ्रमण के द्व ारा रक्षा करना एवं पश्चात वायुबीज (यं) का दशधा जल में जप करके जल को नैवेद्य मे सेचन करना होता है। उसके द्वारा नैवद्य-द्रव्य

के शुष्कत्व-दोष को मन-ही-मन दहन करना होता है। इसके बाद बाएँ हाथ में अमृतबीज (ठं) का चिन्तन करना होता है। अनन्तर दायें हाथ का तलदेश बायें हाथ के पृष्ठभाग में लगाकर दिखाते हैं एवं उस मुद्रा से उत्पन्न सुधा के द्वारा उस नैवेद्य-द्रव्य का सेचन करते हैं तथा पश्चात् मूलमन्त्र-सहित अभिमन्त्रित जल के द्वारा उस नैवेद्य का प्रोक्षण करके उन सब विषयों का सुधामयस्वरूप से चिन्तन करते हैं। इसके बाद उसे दायें हाथ-द्वारा स्पर्शपूर्वक अष्टथा (आठ बार) मूलमंत्र का जप करते हैं। फिर धेनुमुद्रा के सहयोग से उस नैवेद्य को परिपूर्ण समझकर गंध-जलादि के द्वारा उसका एवं श्रीहरि का अर्चन करते हैं। अनन्तर कुसुमांजलि लेकर श्रीहरि का अर्चन करते है और कहते हैं,—'हे भगवन्! नैवेद्य ग्रहण करने के लिए आपके श्रीवदनकमल से तेज विनिर्गत हो।' इस प्रकार से पूजा करके, जैसे प्रभु के वदनकमल से तेज विनिर्गत होकर नैवेद्य के साथ मिलित हो रहा है, इस प्रकार का चिन्तन करते हैं। तत्पश्चात् बाएँ हाथ से नैवेद्य-पात्र का स्पर्श करके दायें हाथ में गंध-पुष्प-सहित जल ग्रहण करते हैं एवं स्वाहान्त मूलमन्त्र का पाठ करके "श्रीकृष्णाय इदं नैवेद्यं कल्पयामि" कहकर गंध-पुष्पादि-सहित दायें हाथ में स्थित उस जल को भूतल में छोड़ देते हैं। फिर तुलसीदल-सहित नैवेद्य प्रदान के मंत्र-द्वारा प्रभु को निवेदन करने का मंत्र यह है,—"निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे।" पश्चात् "अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा" मन्त्र का पाठ करके बायें हाथ-द्वारा यथा-विधानानुसार प्रभु को वारिगंडूष (पानी का कुल्ला) प्रदान करते हैं एवं विकसित-कमल-सदृश ग्रासमुद्रा को दिखाते हैं। वास्तव मे पहले प्रणवविशिष्ट एवं अन्त में चतुर्थी विभक्ति-सहित स्वाहायुक्त प्राणदि-मन्त्र द्वारा दायें हाथ से प्राणदि पंचमुद्रा का प्रदर्शन करते हैं। इसके बाद दोनों हाथों के स्पर्श करके नैवेद्य द्रव्य का मन्त्र जपते हुये नैवेद्य-मुद्रा को दिखाते हैं। नैवेद्य मुद्रा का मन्त्र है,—'ठौं नमः पराय अवात्मनेऽनिरुद्धाय निवेद्यं कल्पयामि।" भगवद्-भक्तिपरायणजन अपने अभीष्ट मन्त्र का नैवेद्य पदार्थ के मन्त्ररूप में जप करते हैं एवं ग्रासमुद्रा दिखाते हैं। हरि-मुखकमल से जो तेज विनिष्क्रान्त (बाहर आने वाला) होता है, उसका चिन्तन वे नहीं करते हैं। अर्थात् शिष्टाचार के अनुसार प्रफुल्लचित्त से हरि को भोजन कराते हैं।—(हः भः विः ८म विलास द्रष्टव्य है)।

सभी वैदिक-विधि-निषेध, भक्ति के अनुगत है; इसमें विश्वास न रखने वालों की कृष्णसेवा-विमुखता के कारण दुर्गति—

यत विधि-निषेध—सकलि भक्तिदास।
इहाते याहार दुःख, सेइ याय नाश॥१४४॥

(१४४) प० अनु०—जितने भी विधि-निषेध हैं, वे सब भक्ति के अनुगत हैं, इससे जिसको दुःख होता है, वह विनाश को प्राप्त होता है।

(१४४) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने शुक्लाम्बर के निकट आतप एवं उष्म का विचार न करके एवं सारी नैवेद्य-दानविधियों का अतिक्रमण करके अनुरागवश जो ग्रहण-लीला की है, वही सब पांचरात्रिक वैधी भक्ति के अर्चन-पथों का एकमात्र परम फल है। सभी वैदिक विधिनिषेध, भक्ति के लिए अनुकूल चेष्टामात्र हैं, इसलिए प्रतिकूल चेष्टाओं से सहस्रों योजन दूर अवस्थान करने के कारण अनुराग पथ के पथिक कभी भी विधिमार्ग का उल्लंघन नहीं करते हैं; अपितु विधि-भक्ति क`साध्य विषयों में निरन्तर अवस्थान करते हुये अनुराग-पथ में कृष्णसेवा में लगे रहते

हैं। जो सब मुढ़ व्यक्ति आध्यक्षिक विचार का अवलम्बन करने के कारण अनुराग-पथ की सेवा को समझने में असमर्थ हैं, वे सब आध्यक्षिजन कृष्णसेवा विमुखता का प्राप्त करते हैं। इस कारण श्रीकृष्ण द्वारा गीता में 'अपि चेत् सुदुराचारो' श्लोक का आवाहन किया गया है। इस विचार को ध्यान में रखते हुये पापी-जीवन अथवा उच्छृंखलतामय अपस्वार्थपरता को कभी भी सहज-भक्ति-साध्य विषय के नाम से स्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु विषयासक्त प्राकृत सहजिया इस बात को समझने में असमर्थ होकर शुद्धभक्त एवं भक्ति के प्रति विद्रोह करके नरक-पथ के पथिक बन जाते हैं।

वेदव्यास-द्वारा कथित भक्ति का वैशिष्ट्य महाप्रभु एवं उनके अनुगतजनों के चरित्र में सुविकसित है—

भक्ति-विधि-मूल, कहिलेन वेदव्यास।
साक्षाते गौरांग ताहा करिला प्रकाश॥१४५॥
मुद्रा नाहि करे विप्र, ना दिल आपने।
तथापि तंडुल प्रभु खाइल यतने॥१४६॥

(१४५-१४६) प० अनु०—सारी विधियों का मूल है भक्ति, स्वयं वेदव्यास ने यह कहा है। गौरांगचन्द्र ने इसे साक्षात्रूप में प्रकाशित किया है। विप्र ने कोई मुद्रा नहीं दिखाई न ही उन्होंने अपने आप अर्पण किया, फिर भी प्रभु ने यत्नपूर्वक उन तंडुलों को खाया।

(१४४-१४५) तथ्य—"स्मर्तव्यः सततं विष्णु-र्विस्मर्तव्यो न जातुचित्। सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः"॥—(पद्मपुराण)।

(१४५) गौः भाः—श्रीवेदव्यास ने स्मृति-पुराणदि में जो विधि-भक्ति की कथाओं को लिपिबद्ध करके जिस विधि-निषेध की स्थापना की है, उसका यथायोग्य स्पष्टीकरण श्रीगौरसुन्दर एवं उनके निरुपम (तुलना रहित) दासों के चरित्र में अभिव्यक्त हुआ है।

महाप्रभु एवं उनके भक्तों का चरित्र विषय मदांध आध्यक्षिक विचारपरकजनों के अक्षज-ज्ञान की वस्तु नहीं है—

विषय-मदांध सब ए मर्म ना जाने।
सुत-धन-कुल-मदे वैष्णव ना चिने॥१४७॥

(१४७) प० अनु०—विषयों के मद में अंधे लोग इन सब बातों के मर्म को नहीं जानते हैं। जन्म, धन और वंश-मर्यादा के अंहकार के कारण ये सब लोग वैष्णव को नहीं पहचानते हैं।

वैष्णव को मूर्ख, दरिद्र समझकर अवज्ञा करते वालों की विष्णुपूजा को भक्तजन-प्रिय कृष्ण स्वीकार नहीं करते हैं—

देखि' मूर्ख दरिद्र ये वैष्णवेर हासे।
तार पूजा-वित्त कभु कृष्णेरे ना वासे॥१४८॥

(१४८) प० अनु०—वैष्णव को मूर्ख और दरिद्र देखकर जो हँसता है, उसकी पूजा-रूपी सम्पदा को कृष्ण कभी स्वीकार नहीं करते हैं।

(१४८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने रागानुगा विचारधारा को सबसे ऊपर मानकर उसे विधि-भक्ति के चरम-फल के रूप में निर्देशित किया है, इससे यह जानकारी मिलती है कि, अर्चन-पथ की सभी व्यवस्थाओं का अतिक्रमण करते हुये भी अनुराग-पथ की महिमा एवं मधुरिमा सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित है। जो लोग आध्यक्षिक (इन्द्रिय-जनित) विचार का अवलम्बन लेकर अपने आपको अति उन्नत समझते हुये वैष्णवों के प्रति प्राकृतत्व का विचार रखते हैं, वे आत्मविनाश को प्राप्त होते हैं, वे समझते हुये वैष्णवों के प्रति प्राकृतत्व का विचार रखते हैं, वे आत्मविनाश को प्राप्त

होते हैं, वे सब विषय-मदांधजन (विषयमद् में अन्धे) अनेक पुत्र प्राप्त करके, प्रचुर धन के मालिक बनकर, मर्यादासम्पन्न वंश में जन्म लेकर यह नहीं समझ पाते हैं कि, 'वैष्णव ही एकमात्र गुरु है।' आचार्य-वंश में जो कृत्रिम अर्चन एवं दीक्षाप्रदान इत्यादि वंशोचित क्रिया चालू है, वह मदांधता-मात्र है। इसलिए ही जाति गोस्वामीवाद के विचार-समूह वैष्णव को निर्देशित करने में असमर्थ हेाते है। पण्डितकुल प्रचुर परिणाम में स्वाध्याय में निरत होकर भी स्वाध्याय-फललब्ध वैष्णव को अनभिज्ञ (मूर्ख) समझते हैं, उसे मात्र अभावग्रस्त और दरिद्र के रूप में जानते हैं एवं उपहास का पात्र समझते हैं। परन्तु उस प्रकार के दांभिक की पूजा एवं उसके पूजोपकरणों को कृष्ण कभी भी स्वीकार नहीं करते हैं। दरिद्र वैष्णव का सर्वस्व-समर्पण—प्रापंचिक अन्य-समूह में उसकी लोभहीनता के परिचय को दर्शाता है। इसलिए ऐकान्तिक वैष्णवता न होने तक कृष्ण की तुष्टि नहीं हो सकती है। "येषां स एष भगवान्" श्लोक एवं "यस्याहं अनुगृहणामि" श्लोक इस प्रसंग में अनुशीलन के योग्य हैं। स्वप्नकालीन वस्तु-लाभ-प्रतीति की अकिंचित्करता (तृच्छता) की भाँति प्रपंच में अवस्थित जागरण काल के विचार की नश्वर-वस्तु-प्राप्ति की अकिंचित्करता (तुच्छता) की भाँति प्रपंच में अवस्थित जागरण काल के विचार करते रहते हैं। अतएव प्राकृत साहजिक की भाँति भोगीकुल से वे सदैव बहुत दूर अवस्थान करते हैं। किन्तु पुण्डरीक विद्यानिधि, राय रामानन्द-प्रमुख भक्ताधिराजगणों की सम्पत्ति को देखने से जो विषयचेष्टा की प्रापंचिकता आध्यक्षिक लोगों के नयनगोचर होती है, वह उन लोगों की विडम्बना-वृद्धि के लिए है; क्योंकि वे विषय-मदांध हैं। कृष्ण ही एकमात्र विषय हैं, क्योंकि वे विषय-मदांध हैं। कृष्ण ही एकमात्र विषय हैं, उन्हें छोड़कर दूसरा कोई विषय है ही नहीं। इस प्रकार की प्रतीति विष्णुभक्त के लिए एकमात्र लोभनीय वस्तु है। इस लोभ के वशवर्ती होकर कृष्ण के रूप-गुण-परिकर-वैशिष्ट्य-लीला आदि में जिनका उत्साह हैं, वे ही वास्तव में प्राक्तन सौ जन्मों से वासुदेव का अर्चन करते हुये अपना मंगल प्राप्त करके एवं नामाश्रित होकर अनुराग-पथ में अपनी आदर्श भजन-प्रणाली प्रदर्शित करने का सुयोग प्राप्त करते हैं।

तथाहि (भागवत ४/३१/२१)

न भजति कुमनीषियां स इज्यां हरिधनात्मधनप्रियो रसज्ञः।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्यु॥१४९॥

(१४९) अन्वयः—(सतां वश्योऽसौ भगवान् असतां तु पूजामपि न गृह्णातीत्याह,—) अधनात्म-धनप्रियः (अधनाश्च ते आत्मधनाश्च भगवद्धनाः ते प्रियाः यस्य सः ; यद्वा अधना अकिंचना निष्कामा एवात्मनो धनानि प्रियाश्च यस्य सः) रसज्ञः (धनुपुत्रादिषु ममतां परित्यज्य मय्येव ममतामयी दधते इति भक्तानां प्रेमरस जानातीति) सः (पूर्वोक्तः भगवा्) ये श्रुतधनकुलकर्मणां (श्रुतधनकुलैर्यानि कर्माणि यागादीनि तेषां) मदैः अकिंचनेषु सत्सु (स्वभक्तेषु) पापं विदधति (निन्दादिकं कुर्वन्ति तेषां) कुमनीषिणां (कुत्सित्) बुद्धीनाम्) इज्यां (पूजामपि) न भजति (नांगाकरोति)।

(१४९) अनुवादः—(श्रीहरि केवल साधुओं के वश में है, असत् व्यक्तियों की पूजा तक वे ग्रहण नहीं करते है, इस सच्चाई को दर्शा रहे हैं)—जिन सब धनहीन अर्थात् अकिंचन व्यक्तियों के भगवान् ही एकमात्र धन है, श्रीहरि उस प्रकार के भक्तों के ही प्रेमरस का आस्वादन करते हैं। (इसलिए वे

उन लोगां को ही अपना प्रिय समझते हैं)। अतएव जो व्यक्ति पाण्डित्य, धन, आभिजात्य एवं कर्म के अहंकार में मत्त होकर अकिंचन साधुओं की निन्दा आदि करते हैं, श्रीहरि उन सब कुमनीषियों की पूजा कभी भी स्वीकार नहीं करते हैं।

कृष्ण—निष्किंचनों के प्राण-सदृश हैं, यही सर्ववेदवाणी है एवं गौरसुन्दर इसी वैदिक-सत्य के आचार्य एवं प्रचारक हैं—

'अकिंचन-प्राण कृष्ण'—सर्ववेदं गाय।
साक्षाते गौरांग एइ ताहारे देखाय॥१५०॥

(१५०) प० अनु०—कृष्ण अकिंचनों के प्राण-स्वरूप हैं। 'सम्पूर्ण' वेद इस सच्चाई का कीर्तन करते हैं। साक्षात्भाव से गौरांगचन्द्र ने इसे दिखाया है।

(१५०) गौः भाः—जगत् में किसी भी वस्तु के प्रति जिसकी तनिक भी आसक्ति नहीं है, कृष्ण इस प्रकार के अकिंचन के ही प्राण स्वरूप हैं। सभी-वेदशास्त्रों एवं वेदानुग-शास्त्रों ने इस बात का कीर्तन किया है। गौरसुन्दर उस वैदिक निगूढ़ सत्य के एकमात्र आचार्य एवं प्रचारक हैं। उनके अनुगत दासगण आध्यक्षिक (इन्द्रिय से उपलब्ध) ज्ञान की अकिंचित्-करता (निरर्थकता) एवं वेदार्थ-संग्रह-कार्य मे सुनिपुणता का प्रकाश करते हैं। जो लोग शुक्लाम्बर-गौरसुन्दर की लीलाकथा का श्रवण करते हैं, उनको चिन्मय कर्णवेध-संस्कार प्राप्त होता है एवं चैतन्यदेव के चरणों में प्रेममयी सेवा करके वे भक्तिमठ के भिक्षु के रूप में 'गौड़ीय' नाम से परिचित होते है; परन्तु अपने आपको 'गौड़ीय' नाम से परिचित कराकर वे चैतन्यचरण-सेवा से बहुत दूर अवस्थान-पूर्वक गोविन्द-सेवा-विमुख होकर आत्मपात के लिए कभी भी चेष्टा नहीं करते हैं।

प्रभु के द्वारा शुक्लाम्बर के तंडुल-भक्षण की कथा सुनने वालों को प्रेमभक्ति की प्राप्ति—

शुक्लाम्बर-तंडुलभोजन येइ शुने।
सेइ प्रेम-भक्ति पाय चैतन्य-चरणे॥१५१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥१५२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे शुक्लाम्बर-तंडुल-भोजनं नाम षोडशोऽयायः।

(१५१-१५२) प० अनु०—जो शुक्लाम्बर के तंडुल-भोजन की इस कथा को सुनते हैं, उन्हें चैतन्य चरणों में प्रेमभक्ति मिलती है। श्रीकृष्ण ाचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल-श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

इति गौड़ीय-भाष्य में षोडश अध्याय समाप्त

O

सप्तदश अध्याय

सप्तदश अध्याय का कथासार

इस अध्याय मे महाप्रभु का नगर-भ्रमण, महाप्रभु के प्रति पाखण्डियों के द्वारा बहुविध उक्तियाँ एवं महाप्रभु का प्रत्युचर; पाखण्डियों के संभाषण से उत्पन्न दुःख के विनाशार्थ संकीर्तन का आरम्भ, कीर्तन के समय प्रभु में प्रेम का अभाव एवं इसके कारण की जिज्ञासा; श्रीमद्अद्वैताचार्य की उक्ति एवं नृत्य; कीर्तन में प्रेम के अभाव के कारण अद्वैत के प्रति प्रभु का प्रणय-कोप एवं गंगा में छलाँग लगाना, नित्यानन्द एवं हरिदास के द्वारा उनको निकालना, प्रभु को संगोपनार्थ (गुप्त रखने) नित्यानन्द के घर में प्रभु का गमन, नन्दनाचार्य-द्वारा प्रभु की सेवा, गुप्तभाव में नन्दनाचार्य के घर में प्रभु का अवस्थान, प्रभु को न देखने के कारण अद्वैत का दुःख एवं उपवास, महाप्रभु के द्वारा नन्दनाचार्य को भेजकर श्रीवास को बुलवाना एवं उनसे अद्वैत-संवाद का ग्रहण, प्रभु का अद्वैताचार्य के समीप गमन एवं उनको सान्त्वना प्रदान, अद्वैत-द्वारा गौरदास्य की प्रार्थना एवं कृष्ण-दास्य की महत्ता आदि विषय वर्णित हुये हैं।

महाप्रभु जब नवद्वीप-नगर में भ्रमण कर रहे थे, तब सभी लोग उनको साक्षात् 'मदनरुप' में देखते थे। एवं उनके विद्याबल को देखकर पाखंडीगण भी भयभीत हो जाते थे। जो लोग अपने आपको विद्या देने वाले अध्यापक मानकर आत्मप्रतिष्ठा का प्रचार किया करते थे, उस प्रकार के भट्टाचार्यों को महाप्रभु तृण के समान भी नहीं समझते थे। श्रीगौरसुन्दर नगर-भ्रमण के समय सेवकों के साथ गूढ़भाव में अवस्थान करते थे।

पाखंडीगण प्रभु की विद्या प्रतिभा (विलक्षण बौद्धिक शक्ति) के सामने परास्त होकर गुप्त भाव से उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। उन्होंने विभागीय शासनकर्ता के निकट महाप्रभु के विरुद्ध अभियोग (शिकायत) लगाया था। महाप्रभु के नगर-भ्रमण के समय पाखण्डियों ने अन्य प्रकार से शासनकर्ता के दूत के आने का समाचार महाप्रभु को बताया। प्रत्युत्तर में प्रभु ने उन्हें यह जानकारी दी कि, उन्होंने (महाप्रभु) कम आयु में ही सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है, परन्तु उन्हें बालक समझकर कोई उनके बारे में जानने की इच्छा ही नहीं करता है। इसलिए उनकी भी आत्मप्रतिष्ठा-ज्ञापन के लिए राज-दर्शन करने की इच्छा है। महाप्रभु ने अपने घर लौटकर भक्तों से पाखण्डियों के साथ संभाषण से उत्पन्न दुःख की बात कहकर उसे दूर करने के लिए सबके साथ संकीर्तन में प्रेमाभाव की बात बारम्बार प्रकाशित करते रहे। उस पर चैतन्य के प्रेम में उन्मत्त अद्वैताचार्य प्रभु ने महाप्रभु को यह जानकारी दी कि, उन्होंने नित्यानन्द की प्रेम-भंडारी बनाया है और अद्वैत-श्रीवास को वंचित करके तेलीमाली तक को प्रेम प्रदान किया है। अतः उनके सारे प्रेम का अद्वैत-प्रभु ने शोषण कर लिया है। प्रेम-प्रलाप में अद्वैताचार्य इस प्रकार की उक्ति करते हुये

कौतुक के साथ नृत्य करने लगे।

अद्वैत की बात सुनकर गौरसुन्दर ने यह कहकर कि प्रेम-रहित देह को धारण किये रखना व्यर्थ है, उसका परित्याग करने की इच्छा से उन्होंने गंगा से उठाया। महाप्रभु ने गुप्त रूप से रहने की अभिलाषा व्यक्त की और नित्यानन्द एवं हरिदास को यह समाचार किसी से भी कहने के लिए मना कर दिया तथा नन्दनाचार्य के घर में जाकर रहने लगे। महाप्रभु के आदेशानुसार नित्यानन्द और हरिदास ने महाप्रभु के गुप्तवास का यह समाचार किसी को भी नहीं बताया।

प्रभु का कोई ठिकाना न मिलने से भक्तगण विरह-दुःख में क्रन्दन करने लगे। अद्वैत-प्रभु भी महाप्रभु के विरह में बहुत दुःखी होकर उपवास करने लगे। नन्दनाचार्य के घर में उपस्थित होकर महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम पूर्वक अत्यन्त प्रीति-सहित उनकी बहुविध सेवा में अपने आपको लगा दिया। महाप्रभु द्वारा अपने आपको संगोपन करने के लिए नन्दनाचार्य को आदेश दिये जाने पर नन्दनाचार्य ने बतलाया कि, वे (महाप्रभु) सब जीवों के अन्तर्यामी होने के कारण जीवों के हृदय में, एवं क्षीरोदशयी के रूप से क्षीर-सागर में छिपकर रहते हैं, फिर भी भक्तों ने उनको जगत् के निकट प्रकाशित कर ही दिया है; इसलिए वे अब स्वयं को किस प्रकार से छिपाकर रख पायेंगे? इस प्रकार नन्दनाचार्य ने महाप्रभु के स्वरूपतत्त्व की कथा का कीर्तन किया। महाप्रभु नन्दन नन्दन के घर में कृष्ण-कथा-रस मे मत्त होकर बितायी।

प्रभात होने से महाप्रभु की श्रीअद्वैत-प्रभु के प्रति अनुग्रह प्रकाश करने की इच्छा हुई तो उन्होंने अकेले श्रीवास पण्डित को बुलाने के लिए नन्दनाचार्य को आदेश प्रदान किया। प्रभु के आदेशानुसार नन्दनाचार्य जब श्रीवास पण्डित को लेकर अपने घर में उपस्थित हुये, तब श्रीवास महाप्रभु के दर्शन करके प्रेम से क्रन्दन करने लगे। प्रभु ने श्रीवास को सान्त्वना प्रदान करके उनमें अद्वैत के बारे में पूछा। उस पर श्रीवास ने महाप्रभु को अद्वैत की विरह-कातरता एवं उपवास की बात बताई तथा उनको एवं अन्यान्य विरहव्याकुल भक्तों को दर्शन-दान से कृतार्थ करने के लिए प्रार्थना की। श्रीवास के वाक्य सुनकर कृपामय गौरसुन्दर अद्वैताचार्य के निकट उपस्थित हुये। उनको मूर्च्छित देखकर अपने आपको महा-अपराधी समझते हुये महाप्रभु अद्वैत को बारम्बार पुकारने लगे। आचार्य ने दीनता के साथ गौरसुन्दर के निकट अपने अहंकार, कुमति एवं क्रोध की बात कहकर दास्यभाव में उनके श्रीचरणों में स्थान प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। इस पर महाप्रभु ने प्राकृत दृष्टांत की सहायता से स्वामी के निकट भृत्य का अपराध, स्वामी-द्वारा भृत्य का दोष-मार्जन आदि की जानकारी देकर कहा कि अपराध के लिए कृष्ण के निकट दण्डप्राप्त व्यक्ति को ही जन्म-जन्म में कृष्ण दासत्व प्राप्त होता है। प्रभु की आश्वासनवाणी सुनकर अद्वैत आचार्य-सहित भक्तवृन्द को परमानन्द मिला।

इसके बाद ग्रन्थकार ने कृष्णदास्य की गरिमा का कीर्तन करके अध्याय को समाप्त किया है।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

जय जय महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर।
जय नित्यानन्द सर्वसेव्यकलेवर॥१॥

मध्यखण्ड–कथा येन अमृतेर खण्ड।
ये कथा शुनिले घुचे अन्तर–पाषण्ड॥२॥

(१–२) प० अनु०—महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर की जय हो, जय हो। सर्वसेव्यकलेवर नित्यानन्द की जय हो। यह मध्यखण्ड की कथा अमृत के खंड–जैसी (मधुर) है। इस कथा को सुनने से हृदय का पाखण्डी भाव दूर हो जाता है।

महाप्रभु–द्वारा नवद्वीप नगर में
गूढ़भाव से संकीर्तनलीला।

हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
गूढ़रूपे संकीर्तन करे निरन्तर॥३॥

(३) प० अनु०—इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर गुप्त रूप से नवद्वीप संकीर्तन किया करते थे।

(३) गौः भाः—गूढ़रूपे—गुप्तभाव से, अपने आपको छिपाकर।

प्रभु–द्वारा नगर भ्रमण के समय
व्यावहारिक जनों की गौर–प्रतीति—

यखन करये प्रभु नगर भ्रमण।
सर्वलोक देखे येन साक्षात् मदन॥४॥

(४) प० अनु०—जब प्रभु नगर में भ्रमण करते थे, तब सभी लोग साक्षात् मदन (कामदेव) के रूप में उनके दर्शन करते थे।

निजी–विद्या–प्रतिभा के बल से प्रभु–द्वारा
विद्याभिमानी जनों का दर्पचूर्ण—

व्यवहारे देखि प्रभु येन दंभमय।
विद्या–बल देखि' पाषण्डीओ पाय भय॥५॥
व्याकरण–शास्त्रे सबे विद्यार आदान।
भट्टाचार्य प्रतिओ नाहिक तृण–ज्ञान॥६॥
नगर भ्रमण करे प्रभु निज रंगे।
गूढ़रूपे थाकये सेवक–सब–संगे॥७॥

(५–७) प० अनु०—बाहर के व्यवहार से लगता था कि प्रभु दांभिक हैं। उनके विद्या–बल को देखकर पाखण्डीभी भयभीत हो जाते थे। प्रभु ने केवल व्याकरण–शास्त्र का ही अध्ययन किया था। फिर भी वे भट्टाचार्य को तृण के समान भी नहीं समझते थे। अपनी मस्ती में प्रभु नगर–भ्रमण करते थे और सभी सेवक गूढ़रूप में उनके साथ–साथ रहते थे।

(५) गौः भाः—जो लोग भगवत् तत्त्व के साथ मायिक–वस्तुओं की समानता का दर्शन करते हैं, अर्थात् आकर (मूलतत्त्व) के साथ उसके अन्तर्गत वर्तमान अथवा उससे निःसृत वस्तुओं को समानरूप से देखने की कोशिश करते हैं, उन्हें अनभिज्ञ अथवा 'पाखंडी' कहते हैं। जड़–विचार में पारंगत व्यक्तिगण अपने–अपने अहंकार का पोषण करने के अभिप्राय से जो दूसरों के ऊपर अपना प्रभत्व जमाते रहते हैं, उसे ही 'दंभ' कहते हैं। लौकिक व्यवहार की दृष्टि से वैष्णवों में स्वाभाविक दीनता रहती है। उस सुअवसर को ग्रहण करके अहंकारी दांभिक–सप्प्रदाय उनके ऊपर अपने–प्रभुत्त्व की स्थापना करने के लिए करने के लिए आत्मश्लाघा में मत्त हो जाते हैं। इस प्रकार के अंहकारी पण्डिताभिमानियों के ऊपर अपनी पाण्डितय–प्रतिभा का प्रकाशन करके श्रीगौरसुन्दर ने विष्णु–विद्वेषी पाखण्डियों में भीति (भय) का संचार किया था। उन्होंने अपने–अपने पाण्डितय की अर्थहीनता को उपलब्ध करके महाप्रभु के पाण्डित्यबल के सामने अपनी हार स्वीकार की थी। अतएव उनको दांभिक–विजेता के रूप में स्वीकार करके आध्यक्षिक पण्डितों ने अपनी दुर्बलता को उपलब्ध किया था।

(६) गौः भाः—'व्याकरण' नामक वेदांग वेदपुरुष का मुख कहा जाता है। सभी विद्याओं के ज्ञान में शब्द–सिद्धि के लिए व्याकरण का

आकरत्व स्वतः सिद्ध है। जो लोग विद्यादान करने वाले अध्यापक के रूप में आत्मप्रतिष्ठा का प्रदर्शन करते थे, उन लोगों को महाप्रभु अधिक माननीय नहीं समझते थे, अपितु अपनी विद्या-प्रतिभा का प्रकाश करते हुये उनकी उपेक्षा किया करते थे।

पाखंडियों के साथ प्रभु की उक्ति-प्रत्युक्ति—

पाषण्डी सकल बले,—''निमाइ-पण्डित।
तोमारे राजार आज्ञा आइसे त्वरित॥८॥
लुकाइया निशाभागे करह कीर्तन।
देखिते ना पाय लोक शापे' अनुक्षण॥९॥
मिथ्या नहे लोकवाक्य संप्रति फलिल।
सुहृज्-ज्ञाने सेइ यथा तोमारे कहिल॥''१०॥
प्रभु बले,—''अस्तु अस्तु ए सब वचन।
मोर इच्छा आछे, करों राज दरशन॥११॥
पड़िलुँ सकल-शास्त्र अलप वयसे।
शिशु-ज्ञान करि' मोरे केह ना जिज्ञासे॥१२॥
मोरे खोंजे, हेन कोथाओ ना पाङ।
येवा जन मोरे खोंजे, मुञि ताहा चाङ॥''१३॥
पाषण्डी बलये,—''राजा चाहिव कीर्तन।
ना करे पाण्डित्य-चर्चा, राजा से यवन॥''१४॥
तृण-ज्ञान पाषण्डीरे ठाकुर ना करे।
आइलेन महाप्रभु आपन मन्दिरे॥१५॥

(८-१५) प० अनु०—एक दिन सभी पाखण डी कहने लगे,—"निमाइ पण्डित! बहुत जल्दी तुम्हारे लिए राजा का आदेश आ रहा है। तुम रात को छिपकर कीर्तन करते हो। जो लोग इसे देख नहीं पाते हैं, वे हर पल तुम्हें कोसते रहते हैं। लोगों का कोसना मिथ्या नहीं हैं, उसी का फल अब मिलने वाला है। हम तुम्हें अपना मित्र समझते हैं, इसलि सब कुछ बता दिया है।" प्रभु बोले,—"ऐसा ही हो, ऐसा ही हो, ये सब वचन सच हों। राज-दर्शन के लिए मेरी भी इच्दा है। कम उम्र में मैंने सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लिया है। बच्चा समझकर कोई मुझे मान्यता नहीं देता है। ऐसा कोई एक भी मुझे मिलता नहीं, जो मुझे ढूँढ़े। मैं भी यही चाहता हूँ कि, कोई मुझे ढूँढ़े।" पाखण्डी बोले—"राजा कीर्तन सुनेगा? राजा यवन है, धर्मशास्त्र में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है।" महाप्रभु पाखंडियों को तृण के समान भी नहीं समझते थे। उनकी यह बात सुनकर महाप्रभु अपने घर पर चले आये।

(८-१३) गौः भाः—सभी पण्डितों ने प्रभु की विद्या-प्रतिभा के समक्ष पराजित होकर गुप्तभाव से उनके विरुद्ध षड़यन्त्र रचकर विभागीय शासनाधिकरी के निकट बहुत प्रकार के अभियोग किये थे। शीघ्र ही अनुसंधान करके अभियोगों का प्रतिकार होगा, इस बात की जानकारी देकर पाखंडीगण महाप्रभु के कीर्तन-प्रचार मे बाधा डालने की चेष्टा कर रहे थे। विरोधियों ने कपट-पूर्वक प्रभु से कहा था कि,—"लोगों के सामने दिन में हरिकीर्तन करने की योग्यता तुममें नहीं है। इसलिए रात के अंधेरे में लोगों से बचकर तुम शोर मचाकर कीर्तन करते हो, इससे तंग आकर लोग तुम्हें अभिशाप प्रदान करते हैं। हम तुम्हारे शुभचिन्तक हैं, इसलिए अभी भी कह रहे हैं कि सावधानी से काम लो। तुम्हें दण्ड दिलाने के लिए शीघ्र ही शासक-वर्ग यहाँ उपस्थित होने वाले हैं।" इसके उत्तर में महाप्रभु ने उन लोगों से कहा कि,—"सभी बहिर्मुख लोग मेरे विरोधी हैं, यह बात सच है। मैं भी राजा के दर्शन करके अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए उत्सुक हूँ। अल्प आयु में ही मैंने सभी समझकर कोई मेरा अनुसंधान नहीं करता है। यदि राजा मेरा

अनुसंधान करें, तो मुझे भी राजा को अपने विद्या वैभव के बारे में बताने का अवसर मिलेगा।"

(१४) गौः भाः—अस्तु–अस्तु—हो जाए, हो जाए। इसके उत्तर में विरोधियों ने विद्रूपात्मक स्वर में महाप्रभु से कहा,—"राजा विधर्मी यवन है, इसलिए वह धर्मशास्त्र का सम्मान नहीं करता है। वह तुम्हारा कीर्तन सुनेंगे!"

पाखंडियों के साथ संभाषण से महाप्रभु को दुःख एवं उसे दूर करने के लिए कीर्तन का आरम्भ—

प्रभु बले,—"हैल आजि पाषंडि–संभाष।
संकीर्तन कर सबे, दुःख याउ नाश॥"१६॥
नृत्य करे महाप्रभु वैकुण्ठ–ईश्वर।
चतुर्दिके बेड़ि' गाय सब अनुचर॥१७॥

(१६–१७) प० अनु०—प्रभु कहने लगे,—"आज पाखंडियों के साथ संभाषण हुआ है, सभी मिलकर संकीर्तन करो, ताकि संभाषण–जन्य दुःख दूर हो जाये। वैकुण्ठ के ईश्वर महाप्रभु नृत्य करने लगे और चारों ओर से उनको घेरकर सभी अनुचर भी कीर्तन करने लगे।

प्रभु के कीर्तन में प्रेम का अभाव एवं इसका कारण वर्णन—

रहिया रहिया बले—"आरे भाइ सब।
आजि केने नहे मोर प्रेम–अनुभव॥१८॥
नगरे हैल किवा पाषंडि–संभाष।
एइ वा कारणे नहे प्रेम–परकाश॥१९॥
तोमा' सबा–स्थाने वा हइल अपमान।
अपराध क्षमिया राखह मोर प्राण॥"२०॥

(१८–२०) प० अनु०—नृत्य के समय रुक–रुक कर प्रभु कह रहे थे—"अरे भाइयों! आज मुझे प्रेम का अनुभव क्यों नहीं हो रहा है? क्या नगर में पांखडियों के साथ संभाषण करने के कारण प्रेम प्रकाशित नहीं हो रहा है? अथवा, मैंने कहीं तुम लोगों का कोई अपमान तो नहीं किया है? यदि ऐसा हुआ है, तो अपराध क्षमा करके मेरे प्राणों को बचा लो।"

(१९) गौः भाः—पाषण्डी (पाषण्डी),—"येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः। नारायणाज्जगन्नाथात्ते वै पाषण्डिनस्तथा॥ कपालभस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिकलिंगिनः। ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटावल्कलधारिणः॥ अवैदिकक्रियोपेतास्ते वै पाषण्डिनस्तथा। शंखचक्रोद्‌र्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैहरिः॥ रहिता ये द्विजा देवि ते वै पाषण्डिनः स्मृताः। श्रुतिस्मृत्युदिताचारं यस्तु नाचरति द्विजः॥ स्मस्तयज्ञभोक्तारं विष्णुं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः। समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत् सदा॥ अवस्थात्रितये यस्तु मनोवाक्कायकर्मभिः। वासुदेवं न जानति स पाषण्डी भवेद्वितः। अवैष्णवस्तु यो विप्रः स पाषण्डी प्रकीर्त्तितः॥—पाद्मोतर (९२–९३ अध्याय); यो वेदसम्मतं कार्यं त्यक्त्वान्यं कर्म कुर्वते। निजाचारविहीना ये पाषण्डास्ते प्रकीर्त्तिताः॥—(पाद्म–क्रियायोग में १०म अध्याय); भवव्रतधारा ये च ये च तान् समनुव्रताः। पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥"—(भाः ४/२/२८)।

प्रेममत्त अद्वैताचार्य की उक्ति एवं नृत्य—

महापात्र अद्वैत भ्रुकुटि करि' नाचे।
"केमते हइव प्रेम, 'नाड़ा' शुषियाछे?२१॥
मुञि नाहि पाँउ प्रेम, ना पाय श्रीवास।
तिलि–मालि सने कर प्रेमेर विलास॥२२॥
अवधूत तोमार प्रेमेर हैल दास।

आमि से बाहिर, आर पण्डित श्रीवास॥२३॥
आमि सब नाहिलाङ प्रेम–अधिकारी।
अवधूत आसि' हइला प्रेमेर भाण्डारी॥२४॥
यदि मोरे प्रेम–योग ना देह' गोसाईं।
शुषिव सकल प्रेम, मोर दोष नाइ॥''२५॥
चैतन्येर प्रेमे मत्त आचार्य गोसाञि।
कि बलये, कि करये, किछु स्मृति नाइ॥२६॥
सर्व–मते कृष्णभक्त–महिमा बाड़ाय।
भक्तगणे यथा बेचे, तथाइ विकाय॥२७॥
ये भक्ति–प्रभावे कृष्णे बेचिवारे पारे।
से ये वाक्य बलिवेक, कि विचित्र तारे॥२८॥
नानारूपे भक्त बाड़ायेन गौरचन्द्र।
के बुझिते पारे ता'न अनुग्रह–दण्ड॥२९॥
ठाकुर विषादे' ना पाइया प्रेम–सुख।
हाते तालि दिया नाचे अद्वैत कौतुक॥३०॥

(२१–३०) प० अनु०—महापात्र अद्वैत भ्रकुटि–पूर्वक नृत्य कर रहे थे, "प्रेम कैसे मिलेगा? नाड़ा ने सबका शोषण कर लिया है। मुझे प्रेम नहीं मिलता, श्रीवास को भी नहीं मिलता और तेली–माली के साथ आप प्रेमविलास रचाते हैं। अवधूत आपके प्रेम का दास बन गया तथा मैं और पण्डित श्रीवास बाहर खड़े–खड़े देखते रहे। हम सब तो प्रेम के अधिकारी नहीं बच पाये; किन्तु अवधूत आकर प्रेम का भंडारी बन गया। हे गोसाईं! यदि आप मुझे प्रेमयोग प्रदान नहीं करेंगे, तो मैं सारे प्रेम का शोषण कर लूँगा, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।" आचार्य महाप्रभु के प्रेम में मत्त थे। वे क्या कह रहे थे, क्या कर रहे थे, इसका कुछ भी स्मरण उन्हें नहीं था। हर अवस्था में कृष्ण अपने भक्तों की महिमा बढ़ाया करते हैं। भक्तगण उन्हें जहाँ बेचते हैं, वे वहीं बिक जाते हैं। जो भक्ति के प्रभाव से कृष्ण को बेच जाते हैं, वे ऐसे विचित्र वाक्यों का उच्चारण करें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? गौरचन्द्र नाना प्रकार से भक्तों को ऊँचा स्थान दिलाते हैं। उनके अनुग्रह और दण्ड को कौन समझ सकता है? उधर प्रेम–सुख न मिलने के कारण ठाकुर विषादग्रस्त थे और इधर हाथों से ताली बजा–बजाकर अद्वैत मस्त होकर नृत्य कर रहे थे।

(२२–२५) गौः भाः—तेली, मालाकार–इत्यादि ब्राह्मणों से भिन्न जातियों के साथ भगवान् की प्रेमविलास–लीला कथाओं में आप मत्त रहते हैं। ब्राह्मण पण्डितों के साथ शास्त्र चर्चा करने के बदले आप नीच जाति के लोगों का संग करते हैं। मैं (अद्वैत) एवं श्रीवास—हम दोनों में से कोई भी आपका प्रेम नहीं पा रहा है। अवधूत नित्यानन्द ही आपका एकमात्र प्रेमभाजन बन गया है; मुझे प्रेम न देने से मैं आपका सारा प्रेम शोषण कर दूँगा।

(२७) गौः भाः—तथ्य—चैः चः आः ३य अः ९७–१०९ पयार आलोच्य हैं।

श्रीमन्महाप्रभु–द्वारा गंगा में छलांग लगाना एवं नित्यानन्द–हरिदास–द्वारा बचाव–कार्य—

अद्वैतेर वाक्य शुनि' प्रभु विश्वम्भर।
आर किछु ना करिला ता'र प्रत्युत्तर॥३१॥
सेइ मत रड़ दिला घुचाइया द्वार।
पाछे धाय नित्यानन्द हरिदास ताँ'र॥३२॥
प्रेमशून्य शरीर थुइया किवा काज।
चिन्तिया पड़िया प्रभु जाह्नवीर माझ॥३३॥
झाँप दिया ठाकुर पड़िला गंगामाझे।
नित्यानन्द हरिदास झाँप दिला पाछे॥३४॥
आथेव्यथे नित्यानन्द धरिलेन केशे।
चरण चापिया धरे प्रभु हरिदासे॥३५॥

(३१–३५) प० अनु०—अद्वैत की बात सुनकर प्रभु विश्वम्भर ने प्रत्युत्तर में और कुछ नहीं कहा। बस दरवाजा खोलकर प्रभु ने दौड़ना शुरू कर दिया। नित्यानन्द एवं हरिदास भी उनके पीछे दौड़ने लगे। इस प्रेमरहित शरीर को बचाये रखने से क्या प्रयोज? यह सोचकर प्रभु ने जाह्नवी (गंगा) में छलाँग लगा दी। गंगा में ठाकुर ने छलाँग लगाइ और उनके पीछे नित्यानन्द एवं हरिदास ने भी छलाँग लगा दी। व्यस्त होकर (फुर्ती से) नित्यानन्द ने उसकी केशराशि पकड़ी और हरिदास ने श्रीचरणों को थामा।

(३२) गौः भाः—रड़ दिल—दौड़ लगाई, धावित हुये।

नित्यानन्द और महाप्रभु की उक्ति-प्रत्युक्ति—

दुइजने धरिया तुलिला लजा तीरे।
प्रभु बले,—''तोमरा वा धरिले किसेरे?३६॥
कि कार्ये राखिव प्रेमरहित जीवन।
किसेरे वा तोमरा धरिले दुइजन?''३७॥
दुइजने महा कम्प—'आजि किवा फले'!
नित्यानन्द दिग् चाहि' गौरचन्द्र बले॥३८॥
''तुमि केने धरिला आमार केशभारे?''
नित्यानन्द बले,—''केन याह मरिवारे॥''३९॥
प्रभु बले,—''जानि तुमि परम विह्वल।''
नित्यानन्द बले,—''प्रभु, क्षमह सकल॥४०॥
यारे शास्ति करिवारे पार सर्वमते।
ता'र लागि' चल निज शरीर छाड़िते॥४१॥
अभिमाने सेवकेरा बलिल वचन।
प्रभु ताहे लइवे कि भृत्येर जीवन?''४२॥
प्रेममय नित्यानन्द बहे प्रेमजल।
यार प्राण, धन, बन्धु—चैतन्य सकल॥४३॥

(३६–४३) प० अनु०—दोनों जने प्रभु को पकड़ कर और उठाकर तट पर ले आये। प्रभु ने कहा—"तुम दोनों ने किसको पकड़ा? तुम दोनों ने किसको पकड़ा?" दोनों जनों में महाकम्प होने लगा,—दोनों चिन्ता करने लगे कि,—' जाने आज क्या फल मिलने वाला है।' नित्यानन्द की ओर देखकर गौरचन्द्र बोले,—"तुमने मेरी केशराशि क्यों पकड़ी?" नित्यानन्द बोले,—"आप मरने को क्यों जा रहे थे?" प्रभु बोले,—"मैं जानता हूँ कि तुम परम विह्वल हो।" नित्यानन्द बोले,—"प्रभु, सब क्षमा करें। जिसे आप हर प्रकार से दण्डित करने में समर्थ हैं, उसी के लिए आप अपना शरीर त्यागने को चल दिये। अभिमानी होकर सेवकों ने कुछ कह दिया तो, क्या इस कारण प्रभु भृत्यों का जीवन ले लेग?" चैतन्य जिनके प्राण, धन बन्धु,—सब कुछ हैं, उन प्रेममय नित्यानन्द की आँखों से प्रेमजल बहने लगा।

(३७) गौः भाः—तथ्य—न प्रेमगंधोऽस्ति दरापि में हरौ क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्। वंशीविलास्याननलोकनं बिना बिभर्मि यत् प्राण ापंतगकान् वृथा—(चैः चः म २/४५)।

महाप्रभु को छिपाए रखने के लिए नित्यानन्द एवं हरिदास को गौरसुन्दर का आदेश तथा नन्दनाचार्य के घर में आत्मगोपन—

प्रभु बले,—''शुन नित्यानन्द, हरिदास।
का'रो स्थाने कर पाछे आमार प्रकाश॥४४॥
'आमा ना देखिला' बलि' बलिवा वचन।
आमार आज्ञाय एइ कहिवा कथन॥४५॥
मुञि आजि संगोपे थाकिव एइ ठाञि।
का'रे पाछे कह यदि, मोर दोष नाइ॥''४६॥
एइ बलि' प्रभु नन्दनेर घरे याय।
एइ दुइ संगोप कैल प्रभुर आज्ञाय॥४७॥

(४४–४७) प० अनु०—प्रभु बोले,

—"नित्यानन्द और हरिदास! सुनो! मेरे बारे मे किसी को नहीं कहना। ऐसा कहना कि तुम लोगों ने 'मुझे नहीं देखा'। यह मेरा आदेश है। आज मैं छिपकर यहीं रह जाऊँगा। यदि किसी को भी तुम लोगों ने बता दिया, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं रहेगा।" इतना कहकर प्रभु नन्दनाचार्य के घर चले गये। प्रभु के आदेशानुसार इन दोनों ने भी उनके बारे में अपना मुख बन्द रखा।

प्रभु के अदर्शन से भक्तों को दुःख—

भक्त सब ना पाइया प्रभुर उद्देश।
दुःखमय हैल सबे श्रीकृष्ण–आवेश॥४८॥
परम विरहे सबे करेन क्रन्दन।
केह किछु ना बलये, पीड़े सर्व–मन॥४९॥

(४८–४९) प० अनु०—प्रभु के निवास-स्थान के बारे में कुछ पता न मिलने पर सभी भक्तों का श्रीकृष्ण-आनन्द का आवेश दुःख में परिणत हो गया। परम विरह में सभी क्रन्दन करने लगे। कोई कुछ नहीं बोल रहा था, पर अन्तर की ज्वलन से तब दग्ध हो रहे थे।

अद्वैताचार्य-द्वारा अपने आप को अपराधी समझकर उपवास—

सबार उपर येन हैल बज्रपात।
महा–अपराद्ध हैला शान्तिपुर–नाथ॥५०॥
अपराद्ध हैया प्रभु प्रभुर विरहे।
उपवास करि' गिया थाकिलेन गृहे॥५१॥

(५०–५१) प० अनु०—ऐसा लगा, जैसे सबके सिर के ऊपर बज्रपात हुआ है। शान्तिपुर-नाथ (अद्वैताचार्य) ने अपने आपको महा-अपराधी समझा और ये प्रभु (अद्वैताचार्य) उन प्रभु (गौरहरि) के विरह में घर जाकर उपवास करने लगे।

भक्तों का गौरपादपद्म का ध्यान करते हुये अपने-अपने घरों में चले जाना—

सबेइ चलिला घरे शोकाकुलि हैया।
गौरांग–चरण–धन हृदये बान्धिया॥५२॥

(५२) प० अनु०—गौरांग के चरण-रूपी धन को हृदय में बाँधकर सभी भक्तजन अत्यन्त विषादग्रस्त होकर अपने-अपने घरों की ओर चल दिये।

नन्दनाचार्य के घर में महाप्रभु का विष्णुसिंहासन पर उपवेशन एवं नन्दनाचार्य-द्वारा बहुविध सेवा-

ठाकुर आइला नन्दन–आचार्येर घरे।
बसिला आसिया विष्णुखट्टार उपरे॥५३॥
नन्दन देखिया गृहे परम मंगल।
दण्डवत् हइया पड़िला भूमितल॥५४॥
सत्वरे दिलेन आनि' नूतन वसन।
तिता–वस्त्र एड़िलेन श्रीशचीनन्दन॥५५॥
प्रसाद चन्दन–माला, दिव्य अघ्यं गंध।
चन्दने भूषित कैल प्रभुर श्रीअंग॥५६॥
कर्पूर–ताम्बूल आनि' दिलेन श्रीमुखे।
भक्तेर पदार्थ प्रभु खाय निज सुखे॥५७॥
पासरिला दुःख प्रभु नन्दन–सेवाय।
सुकृति नन्दन बसि' ताम्बूल योगाय॥५८॥

(५३–५८) प० अनु०—ठाकुर गौरांग आचार्य-नन्दन के घर में चले आये और आकर विष्णुसिंहासन के ऊपर विराजित हो गये। परम मंगलमय प्रभु को घर में आते देखकर नन्दनाचार्य दण्डवत् प्रणाम करते हुये भूमि पर गिर पड़े। नन्दनाचार्य ने प्रभु का तुरन्त नये कपड़े लाकर दिये। श्रीशचीनन्दन ने भीगे हुये वस्त्रों को बदल दिया। नन्दनाचार्य ने प्रभु को दिव्य गन्धयुक्त अर्घ्य दिया और उनके श्रीअंगों को प्रसादी चन्दन-माला आदि से

भूषित किया। फिर कर्पूर–युक्त ताम्बूल लाकर प्रभु के श्रीमुख में अर्पित किया। प्रभु ने भी भक्त–द्वारा दिये गये द्रव्यों को आनन्द–सहित स्वीकार किया। नन्दनाचार्य की सेवा से प्रभु अपना दुःख भूल किये। सुकृतिवान् नन्दनाचार्य बैठकर प्रभु को ताम्बूल देने लगे।

(५५) गौः भाः—तिता—आर्द्र, भीगा।

महाप्रभु को संगोपनार्थ नन्दन के प्रति उनका आदेश एवं नन्दन–द्वारा उत्तर प्रदान–सहित प्रभुतत्त्व की ज्ञापना—

प्रभु बले,—''मोर वाक्य शुनह नन्दन।
आजि तुमि आमारे करिवे संगोपन॥''५९॥
नन्दन बलये,—''प्रभु, ए बड़ दुष्कर।
कोथा लुकाइवा तुमि संसार भितर?६०॥
हृदये थाकिया ना पारिला लुकाइते।
विदित करिल तोमा भक्त तथा हइते॥६१॥
ये नारिला लुकाइते क्षीरसिंधु–माझे।
से केमने लुकाइव बाहिर–समाजे?''६२॥

(५९–६२) प० अनु०—प्रभु बोले, —"नन्दनाचार्य! मेरी बात सुनो। आज तुम मुझे छिपाकर रखना।" नन्दनाचार्य ने कहा—"प्रभु! यह बड़ा कठिन काम है। इस संसार के भीतर आप कहाँ छिप पायेंगे? हृदयों में रहते हुये भी आप अपने को छिपा नहीं सके। भक्तों ने आपको वहीं से प्रकाशित कर दिया है। क्षीरसिंधु में भी जो छिपे रहने में असमर्थ रहे हैं, वे बाहरी–समाज से कैसे अपने आपको छिपाये रखेगे?"

(६२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर कारण–गर्भ और क्षीरोदशायी—इन तीन पुरुषावतारों के मूलपुरुष बलदेव के भी आकर हैं, वे स्वयंरुप वस्तु हैं। साधारणतः इस जगत् में व्यष्टि–विष्णु ही प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्वतन्तभाव से निवास करते हैं। इस प्रकार की धारणा से कोई–कोई श्रीगौरसुन्दर को क्षीर–सागर में शयन करने वाले विष्णु–विशेष के रूप में भी मानते हैं। भक्तों द्वारा उनको व्यष्टि विष्णु समझने से वे अपने आप को छिपाये रखने में असमर्थ रहे हैं। पुरुषावतारों के द्वारा सृष्ट जगत् जो व्यक्त हुआ है, वही प्रपंच के नाम से विख्यात है। अतएव समग्र ब्रह्माण्ड में उस व्यष्टि–विष्णु का आत्मगोपन किस प्रकार से संभव है? ये सब बातें ही नन्दनाचार्य के कथन से व्यक्त हुई हैं।

नन्दन के कथन से प्रभु को आनन्द एवं कृष्णकथा–प्रसंग में रात्रियापना—

नन्दन–आचार्य–वाक्य शुनि' प्रभु हासे।
वंचिलेन निशि प्रभु नन्दन–आवासे॥६३॥
भाग्यवन्त नन्दन अशेष–कथा–रंगये
सर्व–रात्रि गोङाइला ठाकुरेर संगये॥६४॥
क्षणप्राय गयेल निशा कृष्ण–कथा–रसे।
प्रभु देखे—दिवस हइल परकाशे॥६५॥

(६३–६५) प० अनु०—नन्दनाचार्य की बात सुनकर प्रभु हँसने लगे। वह रात प्रभु ने नन्दनाचार्य के घर में ही बितायी। भाग्यवन्त नन्दनाचार्य ने ठाकुर के साथ अशेष कथाओं के आनन्द में ही सारी रात बिता दी। कृष्ण–कथा–रस में पूरी रात एक क्षण की तरह बीत गई। प्रभु ने देखा कि सूर्य उदय हो चुका है।

अकेले श्रीवास को बुला लाने के लिए प्रभु–द्वारा नन्दन को आदेश एवं श्रीवास को साथ लिए नन्दन का प्रत्यागमन—

अद्वैतेर प्रति दण्ड करिया ठाकुर।
शेषे अनुग्रह मने बाड़िल प्रचुर॥६६॥

आज्ञा कैल प्रभु नन्दन–आचार्य चाहिया।
''एकेचयर श्रीवास पण्डिते आन गिया॥''६७॥
सत्वरे नन्दन गयेला श्रीवासेर स्थाने।
आइला श्रीवासे लइया, प्रभु सेइखाने॥६८॥

(६६–६८) प० अनु०—अद्वैत को दण्ड देने के पश्चात् ठाकुर के मन में उनके लिए प्रचुर दया का उदय हुआ। प्रभु ने नन्दनाचार्य की ओर देखकर उन्हें आज्ञा दी,—"अकेले श्रीवास पण्डित को बुला लाओ।" नन्दनाचार्य तुरन्त श्रीवास के घर गये और श्रीवास को लेकर जहाँ प्रभु विराजमान थे, वहीं आ गये।

प्रभु को देखकर श्रीवास का क्रन्दन;
प्रभु-द्वारा सान्त्वना प्रदान एवं अद्वैत के
बारे मे पूछताछ—

प्रभु देखि' ठाकुर पण्डित काँदे प्रेम।
प्रभु बले,—''चिन्ता किछु ना करिह मने॥''६९॥
सदय हइया ताँ'रे जिज्ञासे आपने।
''आचार्येर वार्ता कह आछेन केमने?''७०॥

(६९–७०) प० अनु०—प्रभु को देखकर पण्डित ठाकुर (श्रीवास) प्रेम से क्रन्दन करने लगे। प्रभु बोले,—"मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।" दयावान होकर प्रभु ने अपने आप ही उनसे पूछा—"आचार्य के बारे में बताओ, वे कैसे हैं?"

श्रीवास-द्वारा भक्तों की एवं अद्वैताचार्य
की अवस्था का वर्णन करते हुये सबके
लिए कृपा की प्रार्थना—

'आरो वार्त्ता लह?'—बले पण्डित श्रीवास।
''आचार्येर कालि प्रभु हैल उपवास॥७१॥
आछिवारे आछे प्रभु सबे देह–मात्र।
दरशन दिया ताँ'रे करह कृतार्थ॥७२॥
अन्य जन हइले कि आमराइ सहि?
तोमार से सबेइ जीवन प्रभु बहि॥७३॥
तोमा बिना कालि प्रभु सबार जीवन।
महाशोच्य वासिलाम, आछे कि कारण?७४॥
येन दण्ड करिला वचन–अनुरूप।
एखने आसिया हओ प्रसाद–सम्मुख॥''७५॥

(७१–७५) प० अनु०—श्रीवास पण्डित कहने लगे,—"ऊपर से समाचार और पूछ रहे हो? आचार्य ने तो कल से उपवास किया हुआ है। हे प्रभु, रहने के नाम पर केवल उनकी देह-मात्र रह गई है। दर्शन देकर आप उन्हें कृतार्थ कर दीजिए प्रभु। दूसरा कोई होता तो क्या हम यह कष्ट सहन करते? हे प्रभु! हम सब का जीवन केवल आपके लिए ही है। आपके बिना जीवन-बिताना हमारे लिए महादुःखदायक है, यह कल हमने अनुभव किया, कि इसका कारण क्या है? वचनों के अनुरूप आपने दण्ड प्रदान किया है; अब कृपया प्रसन्न वदन-सहित हम सबको दर्शन दीजिए।"

(७२) गौः भाः—आछिबारे आछे—रहने के लिए ही रह गये हैं।

प्रभु का अद्वैताचार्य के निकट गमन एवं
अपने आप को 'अपराधी' समझकर
अद्वैत के प्रति उक्ति—

श्रीवासेर वचन शुनिया कृपामय।
चलिला आचार्य प्रति हइया सदय॥७६॥
मूर्च्छागत आसि' प्रभु देखे आचार्येरे।
महा अपराधी येन माने आपनारे॥७७॥
प्रसादे हइया मत्त बुले अंहकारे।
पाइया प्रभुर दण्ड कम्प देहभारे॥७८॥
देखिया सदय प्रभु बलये उत्तर।
''उठह आचार्य, हेर, आमि विश्वम्भर॥''७९॥
लज्जाय अद्वैत किछु ना बले वचन।

प्रेमयोगये मने चिन्ते प्रभुर चरण॥८०॥

(७६–८०) प० अनु०—कृपामय प्रभु श्रीवास के वचनों को सुनकर और आचार्य के प्रति सदय होकर उन्हें देखने के लिए चल पड़े। प्रभु ने जाकर देखा कि, आचार्य मूर्च्छित पड़े हैं। यह देखकर प्रभु ने अपने आपको महा–अपराधी–जैसा समझा। जो अद्वैत आचार्य प्रभु–कृपा से अंहकार में मस्त होकर इधर–उधर घूमते रहते थे, वे आज प्रभु–दण्ड से काँप रहे हैं। यह सब देखकर प्रभु दयावान होकर बोले,—"उठो आचार्य, देखो, मैं विश्वम्भर हूँ।" लज्जा के कारण अद्वैत कुछ भी नहीं बोल पाये; बस प्रेमयोग से हृदय में प्रभु के चरणों का चिन्तन करते रहे।

महाप्रभु के प्रति अद्वैत की उक्ति—

आरबार बले प्रभु,—"उठह आचार्य।
चिन्ता नाहि, उठि' कर आपनार कार्य॥"८१॥
अद्वैत बलये,—"प्रभु, कराइला कार्य।
यत किछु बल मोरे, सब प्रभु बाह्य॥८२॥
मोरे तुमि निरन्तर लओयाओ कुमति।
अहंकार दिया मोरे कराओ दुर्गति॥८३॥
सबाकारे उत्तम दियाछ दास्य–भाव।
आमारे दियाछ प्रभु यत किछु राग॥८४॥
लओयामो आपने दण्ड, कराह आपने।
मुखे एक बल तुमि, कर आर मने॥८५॥
प्राण, धन, देह, मन,—सब तुमि मोर।
तबे मोरे दुःख दाओ, ठाकुरालि तोर॥८६॥
हेन कर प्रभु मोरे दास्यभाव दिया।
चरणे राखह दासी–नन्दन करिया॥"८७॥

(८१–८७) प० अनु०—प्रभु ने एकबार फिर कहा,—"उठो आचार्य! चिन्ता मत करो, उठकर अपना काम करो!" अद्वैत बोले,—"प्रभु, आपने ही सब काम करवाया है। हे प्रभु! आप मुझसे जो कुछ भी कहते हैं, वह सब बाह्य है। आप मुझे निरन्तर कुमति प्रदान करते रहते हैं। अंहकार देकर मेरी दुर्गति करते हो। आपने सभी को उत्तम दास्यभाव प्रदान किया है, और जितना भी क्रोध है, वह सब मुझे सौंप दिया है। आप ही सब कुछ करवाते हैं और आप ही दण्ड देते हैं। आप मुख से कुछ कहते हो तथा मन में कुछ करते हो। आप ही मेरे प्राण, धन, देह, मन—सब कुछ हैं। फिर भी जो आप मुझे दुःख देते हैं, वह आपकी ठाकुराई है। हे प्रभु! अब आप कृपा करके ऐसा कीजिए कि, मुझे दास्यभाव प्रदान करके दासी–नन्दन की भाँति अपने चरणों में रख लीजिए।"

(८३–८७) गौः भाः—श्रीअद्वैत–प्रभु ने कहा,—सभी भक्तों को आपने सेवक के रूप में स्वीकार किया है एवं मुझे बहिर्जगत् मे समान–प्रदर्शन करने के लिए छोड़ दिया, ऐसा होने के कारण मेरे द्वारा जो कुछ भी अवैध कार्य किया गया है, उसके लिए मेरे प्रति जो दण्डविधान हुआ है, वह सब मेरे दुर्दैव का परिचायक है। मेरा सब कुछ ग्रहण करते हुये भी आपने मुझे जो दुःख दिया है, वह आपके वैभव का प्रसाद–मात्र है। अब ऐसा न करके आप वैभव का प्रसाद–मात्र है। अब ऐसा न करके आप मुझे सदैव 'भृत्य'–बुद्धि से देखिये, यही प्रार्थना है। जिस प्रकार से ऐश्वर्य–सम्पन्न गृह–स्वामियों के घरों में दासीपुत्रगण निवास करते हैं, मुझे भी सदैव उसी प्रकार का सेवक समझिए, यही मेरी प्रार्थना है।

प्रभु–द्वारा तत्त्व–कथन–प्रसंग में कृष्ण के सर्वेश्वरत्व एवं भक्तवात्सल्य का वर्णन—

शुनिया अद्वैत–वाक्य श्रीगौरसुन्दर।
अद्वैतेरे कहे सर्व–वैष्णव–गोचर॥८८॥

''शुन शुन आचार्य, तोमारे तत्त्व कइ।
व्यवहार–दृष्टान्त देखह तुमि एइ॥८९॥
राजपात्र राजस्थाने चलये यखन।
द्वारि–प्रहरीरा सब करे निवेदन॥९०॥
महापात्र यदि गोचरिया राजस्थाने।
जीव्य लइ' दिले रहे गोष्ठिर जीवने॥९१॥
येइ महापात्र–स्थाने करे निवेदन।
राज–आज्ञा हैले काटे सेइ सब जन॥९२॥
सब राज्यभार देइ ये महापात्रेरे।
अपराधे सव्य–हाते तारे शास्ति करे॥९३॥
एइ मते कृष्ण महाराज–राजेश्वर।
कर्ता–हर्ता ब्रह्मा–शिव याहार किंकर॥९४॥
सृष्टि आदि करितेओ दियाछेन शक्ति।
शास्ति करिलेओ केह ना करे द्विरुक्ति॥९५॥
रमा–आदि, भवादिओ कृष्णदण्ड पाय।
प्रभु सेवकेर दोष क्षमये सदाय॥९६॥
अपराध देखि' कृष्ण या'र शास्ति करे।
जन्मे जन्मे दास सेइ, बलिल तोमारे॥९७॥

(८८–९७) प० अनु०—अद्वैत का कथन सुनकर श्रीगौरसुन्दर सभी वैष्णवों के सामने अद्वैत से बोले,—"सुनो, आचार्य सुनो! मैं तुम्हें तत्त्व के बारे में बताता हूँ। इसे तुम व्यावहारिक दृष्टान्त के रूप में देखना। राजकर्मचारी जब राजा के निकट जाते हैं, तब द्वारपाल–प्रहरीगण आदि उनके निकट निवेदन करते हैं। यदि महापात्र प्रधानमंत्री राजा के निकट निवेदन–पूर्वक उन सबके लिए जीविका प्राप्त करके उनको देते हैं, तो वे सब अपने परिवारीजनों के साथ जीवन–धारण कर सकते हैं। जिस महापात्र के निकट वे प्रार्थना करते है" राजा की आज्ञा होने पर उसी महापात्र के हाथों में राज्य का सारा भार सौंप देता है, अपराध होने पर उसी का अपने हाथों से शास्ति (दण्ड) प्रदान करता है। इसी प्रकार कृष्ण महाराज–राजेश्वर हैं। कर्त्ता–हर्त्ता, ब्रह्मा–शिव उनके किंकर हैं। उन्हें सृष्टि–आदि करने की शक्ति भी उन्होंने ही दी है। शास्ति (दण्ड) प्रदान करने पर भी कोई कुछ नही कहता है। रमा–आदि, शिवादि को भी कृष्ण से दण्ड मिलता है। परन्तु प्रभु सेवकों का दोष सदैव क्षमा कर देते हैं। अपराध देखकर कृष्ण जिसे शास्ति प्रदान करते हैं, जन्म–जन्म वह उनका दास बना रहता है, यह मैंने तुमको बतला दिया है।"

(९०–९२) गौः भाः—जीव्य—जीवन–धारण के लिए अनुकूल वस्तुसमूह। गोष्ठीर जीवन (गोष्ठी का जीवन)—पालने योग्य आत्मीय–स्वजनों का प्राणधारण।

राजा का प्रधान कार्यकर्ता जब राजा गमन करता है, तब द्वारी–पहरेदार आदि अपनी जीविका के संस्थान (अस्तित्व) के लिए निकट निवेदन करते हैं। उक्त कार्यकर्ता राजा के निकट जाकर द्वारी–प्रहरी आदि का वृत्तान्त बतलाकर राजा के निकट से उन लोगों के लिए जीविका स्वरूप पारिश्रमिक (वेतन) ग्रहण करके उन लोगों को प्रदान करता है, तब इसकी सहायता से वे परिवार–सहित अपना भरण–पोषण करने में समर्थ होते हैं। इतना प्रभावशाली व्यक्ति होने पर भी यदि वह प्रधान कार्यकर्त्ता राजा के निकट कोई अपराध कर बैठना है, तो राजा की आज्ञा से वे ही द्वारी–प्रहरीगण उसको जान से मार डालने में नहीं हिचकिचाते।

(९३) गौः भाः—एक हाथ से योग्यता के लिए पुरस्कार और दूसरे हाथ से अयोग्यता के लिए तिरस्कार—ये दोनों प्रकार के धर्म एक ही व्यक्ति में अवस्थित हैं।

(९४) गौः भाः—तथ्य—"ब्रह्मादयो यत्कृत–सेतुपाला, यत्कारणं विश्वमिदंच माया। आज्ञाकारी यस्य पिशाचचर्या, अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम्॥"—(भाः ३/१४/२९); "स्वामित्वं तु हरेरेव मुख्यमन्यत्र भृत्यता"—(भाः ५/१०/११; मध्यभाष्य) " अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेश–भूतेशसुरेशमुख्याः। सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्यापितं लोकहितं वहामः॥"—(भाः ९/४/५४) "स हि सर्वाधिपतिः सर्वपालः सं ईशः स विष्णुः पतिः विश्वस्यात्मेश्वरः॥"—(भाः १/३/६ श्लोक का मध्यकृत भागवत—तात्पर्यधृत श्रुति वचन); "एकला—ईश्वरकृष्ण, आर सब—भृत्य"—(चैः चः आः ५/१४२); "तद्वशा इतरे सर्वे श्रीब्रह्मेशपुरः सराः"—(भाः ११/२/४७ मध्यभाष्य); "स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा॥"—(वृहदारणयक २/५/१५); "एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञा। एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभावाप्ययौ हि भूतानाम्"—(मांडुक्य); "सर्वानुग्राहकत्वेन तदस्म्यहं वासुदेवस्त्दस्म्यहं वासुदेव" इति—(अमृतविन्दूपनिषत् ४/७) "एष भूताधिपतिरेष–भूतपाल.....शास्ताऽच्युतो विष्णुर्नारायणः"—(मैत्रायण्युपनिषत्); "न तस्य कश्चित् पतिरस्य लोके न चेशिता नैव च अस्य लिंगम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥" (श्वेताश्व० ६/९)।

(९५) गौः भाः—तथ्य—सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः।"—(भाः २/६/३२); "यस्य प्रसादादहमच्युतस्य भूतः प्रजासृष्टिकरोऽन्तकारी। क्रोधाच्च रुद्रः स्थितिहेतुभूतो यस्माच्च मध्ये पुरुषः परस्मात्॥"— (विष्णुपुराण ४/१/८४) "स ब्रह्मणा सृजति, स रुद्रेण विलापयति"—(महोपनिषत्); मत्स्यादिरूपी पोषयति नृसिंहो रुद्रसंस्थितः। विलापयेद्विरिंचस्थः सृज्यते विष्णुरव्ययः (वामन पुराण)।

स्नान–भोजनार्थ को प्रभु का आदेश एवं अद्वैत–द्वारा उल्लास–सहित उक्ति एवं नृत्य—

उठिया करह स्नान, कर आराधन।
नाहिक तोमार चिन्ता, करह भोजन॥''९८॥
प्रभुर वचन शुनि' अद्वैत उल्लास।
दासेर शुनिया एण्ड हैल बड़ हास॥९९॥
''एखने से बलि नाथ, तोर ठाकुरालि।''
नाचेन अद्वैत रंगे दिया करतालि॥१००॥
प्रभुर आश्वास शुनि' आनन्दे विह्वल।
पासरिल पूर्व यत विरह–सकल॥१०१॥

(९८–१०१) प० अनु०—अब तुम उठकर स्नान करो और आराधना करो। तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी है भोजन करो।" प्रभु के वचन सुनकर अद्वैत उल्लसित हो उठे। दास के प्रति प्रभु का दण्ड सुनकर वे हँस पड़े—"हे नाथ, अब आपकी ठकुराई प्रकट हो गई।" ऐसा कहकर अद्वैत आनन्द–सहित हाथों से ताली बजा–बजाकर नृत्य करने लगे। प्रभु के आश्वासन वाक्य सुनकर अद्वैत आनन्द से विह्वल हो गये और पहले की सभी विरह–यंत्रणा भूल गये।

वैष्णवों का आनन्द एवं हरिदास–नित्यानन्द का हास्य—

सकल वैष्णव हैला परम आनन्द।
तखने हासेन हरिदास–नित्यानन्द॥१०२॥

(१०२) प० अनु०—सभी वैष्णव भी परम आनन्दित हुये। उस समय नित्यानन्द और हरिदास हँस रहे थे।

दुर्भाग्यशाली व्यक्ति का प्रभु की लीला में अधिकार नहीं है—

ए सब परमानन्द–लीला–कथा–रसे।
केह केह वंचित हैल दैवदोषे॥१०३॥

(१०३) प० अनु०—इन सब परमानन्दमयी-लीला कथाओं के रसास्वादन से कोई-कोई दैव-दोष के कारण वंचित रह गये हैं।

मायाग्रस्त जीवों का अद्वैत के बारे में विचार—

चैतन्येर प्रेममात्र श्रीअद्वैत-राय।
ए सम्पत्ति 'अल्प'-हेन बुझये मायाय॥१०४॥

(१०४) प० अनु०—श्रीअद्वैत-राय चैतन्य महाप्रभु के प्रेममात्र हैं। परन्तु माया के कारण कुछ लोग उनकी इस सम्पत्ति को 'अल्प' मानते हैं।

(१०४) गौः भाः—मायाग्रस्त जीव महाप्रभु के प्रेमभाजन अद्वैत-प्रभु को 'अल्प धन से धनी' समझते हैं।

कृष्णदास्य की गरिमा एवं महिमा तथा इसके बारे में भाष्यकारी का विचार—

'अल्प' करि' ना मानिह 'दास' हेन नाम।
अल्प भाग्य 'दास नाहि करे भगवान्॥१०५॥
आगये हय मुक्ति, तबे सर्वबन्ध-नाश।
तबे से हइते पारे श्रीकृष्णेर दास॥१०६॥
एइ व्याख्या करे भाष्यकारेर समाजे।
मुक्तसब लीलातत्त्व कहि' कृष्ण भजे॥१०७॥

(१०५-१०७) प० अनु०—'दास' जैसे नाम को कुछ 'कम' मत समझना। कम भाग्यशाली व्यक्ति को भगवान् अपना 'दास' नहीं बनाते हैं। पहले मुक्ति मिलती है, तत्पश्चात् सारे बंधन दूर होते हैं, तब जाकर कोई श्रीकृष्ण का दास बन पाता है। भाष्यकारों का समाज ऐसी की व्याख्या करता है। सभी मुक्त पुरुष इसे लीलातत्त्व कहकर कृष्ण का भजन करते हैं।

(१०५) गौः भाः—अनभिज्ञ मायावादी आध्यक्षिकगण समझते हैं कि, इस जगत् में 'प्रभु' बनना ही लोभनीय (आकर्षक) है। क्योंकि, दासजीवन में आज्ञावाही कुत्तों की भाँति हर प्रकार से क्लेशयुक्त होना पड़ता है। इसलिए परस्पर तुलना करने पर (तारतम्य-विचार से) दासस्व की अपेक्षा प्रभुत्व का आदर करना ही ठीक प्रतीत होता है। जिन लोगों में वैकुण्ठ एवं मायामय जगत् के बीच के व्यवधान का विवेक नहीं है, वैशिष्ट्य का विचार नहीं है, वे ही व्यक्ति सुकृतिवर्जित एवं भाग्यहीन हैं। भगवद्भक्तों को अन्य देवताओं के समान समझना, अर्चाविष्णु को गो-गर्द्दभ-पाद-ताड़ित पत्थर के टुकड़े के समान मानना, महान्त गुरुदेव को 'मरणशील' समझना, विष्णुनाम-मंत्र को 'शब्दसामान्य' मानना, विष्णुभक्तों में कुसाम्प्रदायिक संकीर्णता का आरोप लगाना एवं निर्विशेष ब्रह्मविचार में अलग ढ़ग के साम्यप्रयास को अपनाना, विष्णु-वैष्णव के पदधौत जल को 'अन्यजल' के समान समझना, अवैष्णवता के परिमाणानुसार वैष्णवों में श्रेणीभेद बताना, अर्थात् वर्णाश्रम के विचार से, उम्र के हिसाब से, विष्णुभक्ति को अग्राह्य करके जातिभेद, श्रेणीभेद आदि का विचार दुष्कृतिशाली मन्दभाग्य जीव को प्रापंचिक अष्टपाश में आबद्ध करता है एवं छः प्रकार के क्लेश उन लोगों को जर्जरित करते हैं। भोग्यवस्तुओं और भगवत् प्रसाद में साम्यबुद्धि रखना जीवों को नरक में ले जाता है। इस श्रेणी के व्यक्ति भगवद्-दास्य एवं मायिक वस्तुओं का दास्य—इन दोनों को समान समझते हैं। इस प्रकार का निर्विशेष विचार भगवद्-दास्य का नित्यत्व, केवल-चेतनमयता एवं निरन्तर आनन्दमयता की उपलब्धि करने में असमर्थ होता है। इस कारण ऐसे निर्विशेषवादी लोग यह नहीं समझ पाते है कि, भगवद्-दास्य ही आत्मा की

एकमात्र वृत्ति है। उस प्रकार के चिद्विलास से रहित एंव अचिद्विलास में प्रमत्त ये अभागये लोग भगवान् एवं भक्तों के वैशिष्ट्य–दर्शन में असमर्थता के कारण निर्विशेष की कल्पना किया करते हैं। भाग्यहीन कर्मी–कुल प्रापंचिक विचार के द्वारा माया से आवृत एवं विक्षिप्त होता है। सुकृतिसम्पन्न जीव ही भजनशील होते हैं। सच्चिदानन्द वस्तु की सेवा ही नित्य जीवात्मा—चिद्वस्तु का अंश चित्कण जीवों की नित्यवृत्ति है। इस सच्चाई को न समझने के कारण दुष्कृतिशाली व्यक्ति त्रिविध अंहकार से चालित होकर मानवजन्म की निष्फलता का आवाहन करते हैं। प्रकृति से उत्पन्न वस्तुसमूह प्राकृत–राज्य के उच्चावचभाव (बड़े छोटे की धारणा) में अवस्थित हैं। एक को 'प्रभु' एवं दूसरों को 'दास–रूप' में नियुक्त कर देने से यह भेद जीवों की कष्ट देता है। वेदों की विभिन्न शाखाओं पर विवाद करने वाले मूढो! तुम लोग अपनी–अपनी शाखाओं का आश्रय लेकर तथा अपना गुण–वर्णन एवं दूसरों का दोष वर्णन करके जिस अद्वयज्ञान से विच्युत होकर विष्णु से पृथक् देहसमूह की कल्पना करते हो, विष्णु–दास्य से हटकर विष्णु को प्राकृत–वस्तु–विशेष समझते हो, उस से मुक्त होने के लिए एकायन–स्कंध का आश्रय ग्रहण किया करो। एकायन–स्कन्ध ने बहुशाखी वैदिकगणों के मन्द भाग्य को अपसारित किया है। हे क्षीणपुण्य जनगण! आध्यक्षिक–ज्ञान में फँस कर तुम लोग भगवान् का दासत्व करना मत भूल जाना; विष्णुदास्य के प्रति लालच ही तुम लोंगो को परम मंगल की ओर ले आयेगा। भाग्यहीन व्यक्ति गुण–दोषों का दर्शन करके अपराधी बनते हैं। भगवत्–कृपा से भगवद्–दासों में गुण–दोषोद्भव–गुण वर्तमान न रहने के कारण एकायन–पद्धति के क्रमानुसार भगवान् की ही ऐकान्तिकी सेवा करते हैं। निखिल सदगुणों का भंडार हैं भगवान्—वैकुण्ठ वस्तुः इसलिए आवरण के द्वारा अथवा विक्षिप्त होकर वैकुण्ठ (भागवत्त्व) को गुण–दोषों के अन्तर्भुक्त कोई व्यापारविशेष मत समझना। अनन्त–कल्याण–गुणैक–वारिधि श्यामसुन्दर–विभु, चिदानन्दघन एवं भक्तों के आराध्य तथ प्रियतम हैं। उन प्रियतम के प्रिय बनने की चेष्टा को ही 'दास्य' कहा जाता है। मादक द्रव्य–सेवी दांभिक होकर प्राकृत वस्तुओं के भोगी–अभिमान से जिस अमंगल को वरण करता है, वह भजनीय–वस्तु के दास्यभाव के विपरीत है। यहाँ तक कि, अप्पय दीक्षित के गुरु श्रीकण्ठ ने जिस दास्यमार्ग की कथा का वर्णन करके सिर उसे निर्विशिष्ट भाव में पर्यवसित किया है, उस प्रकार की हेयता विष्णुभक्तों पर कभी भी आरोपित नहीं हो सकती है। विष्णु के अभक्त–सम्प्रदायों में जिस निर्विशेष भाव के अनुकरण से शैव–विशिष्टा द्वैत–विचार एवं दास्यभाव की कथा वर्णित हुई है, वह मन्दभाव का परिचय–मात्र है। भगवान् जिसे अपना सेवाधिकार प्रदान करते हैं, निर्विशिष्ट–विचारपरता उसका ग्रास करने में कभी भी समर्थ नहीं होती है।

(१०६) गौः भाः—आध्यक्षिक–ज्ञान से मुक्त हुये बिना मानव शब्दब्रह्म के विद्वद्रूढ़ि–प्रकाश का सान्निध्य भी असमर्थ रहता है। वैकुण्ठ के सेवक भक्तजन जड़–काम–भोगों की प्रभुता से विराम प्राप्त करने पर ही मुक्त होते हैं। मुक्त होने के बाद शांतभक्त में दास्य प्राप्त करने के लिए ऐकान्तिक अनुराग दिखाइ देता है। जड़दास्य से बिना मुक्त हुये पुरुष मुक्तजनों की उपासनाकी सेवावृत्ति को जड़ जगत् की हेयता में आबद्ध करते हैं। इससे वे हर प्रकार से नश्वर आशापाश मे आबद्ध हो जाते हैं। जो

प्रापंचिक विचार की सभी लोभनीय पदवियों से सर्वतोभाव से मुक्त हैं, उस सुनिर्मल आत्मा की नित्यावृत्ति ही—भगवत्-सेवा है। इस प्रसंग में 'कृष्णकर्णामृत' का "भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा" श्लोक द्रष्टव्य है।

(१०७) गौः भाः—शुद्धाद्वैत विचार के आचार्य सर्वज्ञ विष्णुस्वामिपाद कहते हैं,—"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ते।" नित्यमुक्त पुरुषगण मायावाद आदि सभी पार्थिव चिन्ताओं को परित्याग करके नित्यलीलामय भगवान् को निरन्तर भजते हैं। परन्तु उसके बाद के काल में श्रीकण्ठ-आदि शैवविशिष्ट द्वैतवादी एवं उनके अनुचर अप्पय-दीक्षित आदि निर्विशिष्ट केवलाद्वैतवादी शंकराचार्य आदि के विचारों को ग्रहण करके नश्वर भक्ति के परिणाम में निर्विशेष-कल्पना से संतुष्ट न होकर जो ऐकान्तिक विचार-सहित कृष्ण का भजन करता है, वही शैव-विशिष्टाद्वैतवाद से मुक्त होता हैं एवं शुद्धाद्वैतवाद की विचार-प्रणाली के परिणाम, विशिष्टाद्वैतवाद के आंशिक भाव से मुक्त होकर पूर्णपुरुष अधोक्षज कृष्ण के पंचरसों में से सर्वश्रेष्ठ मधुर रस का पारकीय भाव से भजन करता है। 'भाष्यकार' शब्द से बोधायन के अनुगत विशिष्टाद्वैत-विचार-परक श्रीभाष्य के रचयिता श्रीरामानुज ने अपने वेदार्थ-संग्रह नाम के ग्रंथ में बोधायन, टंक, द्रविड़, वोपदेव, कपर्द्दी एवं भारती-इत्यादि विभिन्न मतों के विचारों का उल्लेख किया है। सूत्रों में भी आत्रेयी, आश्मरथ्य, औडलमी, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनी एवं वादरी आदि की विभिन्न विचार-प्रणालियाँ परमार्थ के परस्पर विचार-पार्थक्य को प्रदर्शित करती हैं। भक्तिपथाश्रित चारों सम्प्रदायों के वैष्णवों के चार प्रकार के भाष्यों में केवल निर्विशेषपरता का अनुमोदन नहीं किया गया है। बौद्धविचार के आनुगत्य में लिंगायत-सम्प्रदाय के भाष्य एवं उस पंथ के अवलम्बी शंकर-सम्प्रदाय के भाष्यसमूहों में भजन का नित्यत्व अस्वीकार करने से उनके विचार से मुक्त अवस्था में निर्विशेष जाड्य ही उद्दिष्ट हुआ है। श्रीकण्ठ-भाष्य में जिस दास्यमार्ग की कथा वर्णित हुई है, वहाँ भी अन्त में निर्विशेष को ही उच्च पदवी प्रदान की गई है। अमुक्त पुरुषों का भगवान् के लीलाबोध मे अधिकार नहीं है; क्योंकि वे प्राकृत आध्यक्षिक विचार को लेकर ही उन्मत्त रहते हैं। जो अद्वैत प्रभु को निर्विशेष-विचारपरक के रूप में मानते हैं, उन लोगों को भक्ति के बारे में कुछ ज्ञात ही नहीं है। अद्वैत-प्रभु ने पूर्वपक्ष-विचार से केवलाद्वैतमतवाद की विचार-विभ्रान्ति का प्रदर्शन करने के लिए श्रीगौरसुन्दर के निकट इस विषय में संशय स्थापना एवं पूर्वपक्ष अवलम्बन पूर्वक सिद्धान्त एवं संगति का जगत् को वितरण किया है। मूढ़ व्यक्तिगण पंचांग न्याय के आदि तीन अंगो में आबद्ध रहकर जिस सिद्धान्त एवं संगति की कल्पना करते रहते हैं, वह आध्यक्षिक-भित्ति में से प्रकट हुआ है। नित्यभजनकारी भाष्यकारों ने इस समय के आध्यक्षिक विचारों में आबद्ध न रहकर अधोक्षज-धारा ग्रहण-पूर्वक में मुक्तजनों के नित्य वैचित्र का वर्णन किया है। अमुक्त आध्यक्षिकगण ऐसा विचार करने में समर्थ नहीं हैं।

(१०७) तथ्यः—"भक्तेय जीवन्मुक्त गुणाकृष्ट हइया कृष्ण भजे।"—(चैः चः मः २४/१२५))। ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥—(गीता १८-५४)।

कृष्णभक्त का स्वरूप, कृष्ण का भक्तवात्सल्य एवं भक्त–विग्रह–अनुग्रह का अधिकार—

कृष्णेर सेवक–सब कृष्णशक्ति धरे।
अपराधी हइलेओ कृष्ण शास्ति करे॥१०८॥

(१०८) प० अनु०—सभी कृष्ण–सेवक कृष्णशक्ति को धारण करते हैं। अपराधी होने पर कृष्ण उनको दण्ड प्रदान भी करते हैं।

(१०८) गौः भाः—जिन्होंने अपने आप को कृष्ण से भिन्न नश्वर वस्तु–वैचित्र से मुक्त कर लिया है, कृष्णज्ञान एवं कृष्णसान्निध्य प्राप्त कर लिया है, वे कृष्णभजन से पल–भर के लिए भी विच्युत (विरत) नहीं होते हैं। सर्वशक्तिमान् कृष्ण अपने सेवक की हर अवस्था में रक्षा करते हैं। कृष्ण—निग्रह एवं अनुग्रह के एकमात्र अधिनायक हैं। वे अपराधप्रवण आध्यक्षिक चित्त को शासन–दण्ड के द्वारा तिरस्कृत करते हैं। भगवान् से अनुग्रह और दण्ड प्राप्त करके जीव अपराध से मुक्त हो जाते हैं।

वैष्णवों की क्रियामुद्रा को न समझकर पक्षपातित्व–हेतु दुर्गति की प्राप्ति—

हेन कृष्णभक्त–नामे कोन शिष्यगण।
अल्प–हेन ज्ञाने द्वन्द्व करे अनुक्षण॥१०९॥
से सब दुष्कृति अति जानिह निश्चय।
या'ते सर्व–वैष्णेर पक्ष नाहि लय॥११०॥

(१०९–११०) प० अनु०—ऐसे 'कृष्णभक्त' –नाम को छोटा समझकर कोई–कोई शिष्यजन प्रतिपल द्वन्द्व (कलह) मचाते रहते हैं। निश्चित रूप से यह जान लेना चाहिए कि, वे सब अति दुष्ट–कर्मा हैं। क्योंकि, वे सभी वैष्णवों का उचित सम्मान नहीं करते हैं। वे किसी एक का पक्ष अपनाते हैं और दूसरे की निन्दा करते हैं।

(१०९) गौः भाः—जो अर्वाचीन भक्तब्रुव संकीर्ण विचारधारा का अवलम्बन करके परस्पर में विवाद का आवाहन करते हैं, उन सब लोगों को वैष्णवपराध होने के कारण अत्यन्त दुर्गति की प्राप्ति होती है वैष्णवों की क्रिया–मुद्रा न समझकर किसी एक का पक्ष ग्रहण करते हुये आध्यक्षिक विचारों को श्रवण करने से वैष्णवों के प्रति प्राकृत दृष्टि ही हो जाती है, वैष्णव–दृष्टि नहीं हो पाती है।

गौरसुन्दर के सर्वप्रथम–ज्ञान–रहित व्यक्ति में शुद्धभक्ति का अभाव—

सर्वप्रभु—गौरचन्द्र, इथे द्विधा या'र।
तार भक्ति शुद्ध नहे, सेइ दुराचार॥१११॥

(१११) गौः भाः—वेदान्तदर्शन के भाष्यकारों के विभिन्न दर्शनों में जो परस्पर विवाद दिखाई देता है, उन सब विवादों के एकमात्र सही मीमांसक—श्रीगौरसुन्दर ही हैं। जो श्रीचैतन्यदेव को 'सभी का एकमात्र प्रभु' न जानकर श्रीनित्यानन्द अथवा अद्वैत का विचार करते हैं, उन लोगों का कदाचार कभी भी शुद्धभक्ति नहीं है। आजकल तेरह–प्रकार के अपसम्प्रदाय श्रीचैतन्यदेव की दोहाई देकर अथवा उनके विरुद्ध आचरण करके जिन मतवादों का प्रचार करते हैं, वे सब दुराचार के अन्तर्गत हैं और केवल मनमानी करने वालों के लिए ही आदरणीय हैं। श्रीगौरसुन्दर में ऐकान्तिकी भक्ति न रहने से शुद्धभक्ति के अभाव के कारण जीवों में दुर्मति आ जाती है।

अहंग्रहोपासना—

गर्द्दभ–श्रृगाल–तुल्य शिष्यगण लइया।
केह बले,—"आमि 'रघुनाथ' भाव गिया॥"११२॥

(११२) प० अनु०—गर्द्दभ (गधे) और

श्रृगाल (गीदड़) जैसे शिष्यों को लेकर कोई कहता है,—"मैं ही रघुनाथ हूँ, ऐसी भावना किया करो।"

(११२) गौः भाः—रामानन्दी जयायेत सम्प्रदाय में अन्तर्निहित केवलाद्वैतवाद की न्यनाधिक प्रशस्ति दिखाई देती है। शैव-विशिष्टाद्वैतवादी भी उसी प्रकार से अपने आपको 'शिवोऽहं (मैं शिव हूँ) इस विचार से प्रतिष्ठित करते हैं। जयायेतगणों के बीच आत्मविचार-द्वारा रघुनाथ के प्रति भक्ति तात्कालिक है। श्रीकण्ठ की शिवभक्ति भी उस प्रकार की है। इसी कारण से अप्यय दीक्षितादि ने केवल 'शिवोऽहं' विचार में आबद्ध न रहकर क्लीवब्रह्मवाद की कथाओं का वर्णन किया है। ऐसी दुर्बुद्धि लोगों में कुशिक्षा-ग्रहण करने के कारण उत्पन्न होती है। गुरु-वैष्णव-विद्वेषीजन गुरु का कार्य करते समय निर्बोधों एवं शैतानों को शिष्यों के रूप में ग्रहण करके अपने प्रभुत्व का विस्तार करते हैं। इसके फलस्वरूप तेरह प्रकार के अपसम्प्रदायों ने गौरभक्ति का ढोंग रचाते-रचाते अपने सर्वनाश का साधन किया है। उनके शिष्य-सम्प्रदाय ने मानव-जन्म की सार्थकता का परिहार करके एवं पशुयोनियों की बुद्धि समूह का संग्रह करके अपने गुरुजनों को रामचन्द्र बना दिया है।

गौरसुन्दर के दासत्व की महिमा—

सृष्टि, स्थिति, प्रलय करिते शक्ति या'र।
चैतन्यदासत्व बइ बड़ नाहि आर॥११३॥

(११३) प० अनु०—जिन चैतन्य में सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करने की शक्ति है—उनके दासत्व को छोड़कर और कोई बड़ा काम नहीं है।

(११३) गौः भाः—जो जगत् के जन्म-स्थिति और संहार के एकमात्र अधिकारी हैं, उन श्रीचैतन्यदेव के दास्य को छोड़कर जीवात्मा के लिए और कोई परम उत्कृष्ट अवस्था नहीं है। इसके अतिरिक्त सभी स्थितियाँ अनित्य, अज्ञतापूर्ण एवं निरानन्द में पर्यवसित होने वाली हैं।

अनन्त ब्रह्माण्डधारी बलदेव का भी गौरदास्य—

अनन्त ब्रह्माण्ड धरे प्रभु बलराम।
सेह प्रभु दास्य करे, केबा हय आन?११४॥

(११४) प० अनु०—जो प्रभु बलराम अनन्त ब्रह्माण्डों को धारण करते हैं, वे भी प्रभु का दासत्व करते हैं,—फिर दूसरों की तो बात ही क्या है?

(११४) गौः भाः—जो बलदेव प्रभु अनन्त ब्रह्माण्डों पर हर प्रकार से नियंत्रण करते हैं, वे नियंत्रण कर्ता बलदेव-प्रभु भी कृष्णसेवा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य की मुख्यभाव से ग्रहण नहीं करते हैं।

ग्रन्थकार के द्वारा श्रीमन् नित्यानन्द का जयगान—

जय जय हलधर नित्यानन्द राय।
चैतन्यकीर्तन स्फुरे याँहार कृपाय॥११५॥

(११५) प० अनु०—जिनकी कृपा से चैतन्यकीर्तन का स्फुरण होता है, उन हलधर श्रीनित्यानन्दराय की जय हो, जय हो।

निताइ की कृपा से चैतन्य में रति प्राप्त की जा सकती है—

ताँहार प्रसादे हय चैतन्येते रति।
यत किछु बलि, सब ताँहार शकति॥११६॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर।
ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर॥११७॥
श्रीचैतन्य-नित्यानन्दचान्द पहुँ जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥११८॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे भक्तमहिमा वर्णनं नाम सप्तदशोध्यायः

(११६–११८) प० अनु०—जिनकी (नित्यानन्द की) कृपा से चैतन्य में रति होती है। जो कुछ भी मैं कह रहा हूँ, वह सब उन्हीं की शक्ति है। श्रीगौरसुन्दर मेरे प्रभु के प्रभु हैं। इस बात का मुझे बड़ा भरोसा है और मैं इसे सदैव हृदय में धारण किये रखता हूँ। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल–श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय–भाष्य में सप्तदश अध्याय समाप्त

O

अष्टादश अध्याय

अष्टादश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में भक्तवृन्द-सहित महाप्रभु-द्वारा ब्रजलीलाभिनय के अभिप्राय का प्रकाशन, सदाशिवबुद्धिमन्तखान को काच (अभिनय) करने के लिए वेश) प्रस्तुत करने के लिए प्रभु का आदेश, कौन क्या वेश ग्रहण करेंगये, इस बारे में व्यवस्था, नृत्य दर्शन करने के लिए योग्यता प्रदान, भक्तों के साथ प्रभु का चन्द्रशेखर के घर अभिनय के लिए जाना, वैष्णववृन्द का बहुविध वेश धारण, आद्याशक्ति का वेश में महाप्रभु का नृत्य, आद्याशक्ति का वेश, धारण करने का उद्देश्य, रमा के वेश में गदाधार का नृत्य, भक्तों द्वारा स्तववन, रात के अन्त में सभी का विरह-क्रन्दन, मातृभाव से प्रभु-द्वारा सबको स्तन-दान एवं सात दिन तक आचार्यरत्न के मन्दिर में अति अद्‌भुत तेज की विद्यमानता आदि विषय वर्णित हुये हैं।

एक दिन महाप्रभु ने भक्तों के निकट ब्रजलीलाभिनय का अभिप्राय प्रकाशित किया। प्रभु ने सदाशिव बुद्धिमन्त खान को शंख, काँचुली (चोली), पट्टसाड़ी (सिल्क की साड़ी), अलंकार आदि यथोचित वेशभूषा सजाये रखने का आदेश देकर पार्षदों में से कौन किस वेश को धारण करेगा, इस बारे में निर्देश प्रदान किया। प्रभु के आदेशानुसार बुद्धिमन्त खान ने सभी वेषभूषाएँ सज्जित कर लीं। इसे देखकर प्रभु ने अत्यन्त आनन्द के साथ भक्तों के निकट लक्ष्मी के वेश में स्वयं नृत्य करने की इच्छा प्रकट करते हुये कहा कि, इस नृत्य को देखने का अधिकार नहीं है। प्रभु का यह वाक्य सुनकर भक्तगण अत्यन्त दुःखित हुये। अद्वैत प्रभु एवं श्रीवास पण्डित द्वारा अपने आपको अजितेन्द्रिय मानकर नृत्यदर्शन में असम्मति प्रकट करने पर महाप्रभु मुस्कराते हुये बोले कि, उस दिन सभी महायोगयेश्वरत्व को प्राप्त करके प्रभु का नृत्य दर्शन कर सकेंगे। प्रभु की कृपा से कोई भी मोहग्रस्त नहीं होगा।

पार्षदों-सहित महाप्रभु अभिनय करने के लिए चन्द्रशेखर आचार्य के घर उपसिथत हुये। वहाँ पर लक्ष्मी के वेश में प्रभु का नृत्य दर्शन करने की इच्छा से विष्णुप्रिया-सहित शचीमाता एवं सभी वैष्णवों के परिवारी-जन इकट्ठे हुये। भक्तगण प्रभ ुके श्रीमुख से अपना-अपना वेश धारण करने की आदेश-वाणी सुनकर आनन्द में विह्वल हो गये। श्रीअद्वैताचार्य ने महाविदूषक की भाँति सभी प्रकार के भावों से नृत्य करना शुरू किया एवं मुकुन्द ने कृष्णकीर्तन आरम्भ किया। उधर हरिदास कोतवाल के वेश में हाथ में दण्ड लेकर लक्ष्मी के वेश में प्रभु का नृत्य देखते समय सभी को सावधान कर रहे थे। नारद के रूप में सज्जित होकर श्रीवास अपना परिचय प्रदान के छल से बता रहे थे कि—उनका नाम नारद है। वे अनन्त ब्रह्माण्डों में भ्रमण करते हैं। कृष्णदर्शन के लिए वैकुण्ठ में जाकर उन्होंने देखा कि, वहाँ के सभी घर-द्वार जनशून्य हैं। तत्पश्चात् कृष्ण की नदीया में आगमन की बात सुनकर वे वहाँ से

लौटकर नवद्वीप में लक्ष्मी के वेश में अपने प्रभु के नृत्य–लीलाभिनय में प्रविष्ट हुये हैं।

सभी वैष्णवों की गृहिणियों के साथ शचीमाता कृष्णप्रेम के आनन्द में विभोर होकर, श्रीवास के इस अपूर्व लीलाभिनय को देख रही थीं। शचीमाता श्रीवास के स्वरूप को देखकर आनन्द से मूर्च्छित हो गईं। तब पतिव्रता नारियों ने उनके कानों में कृष्णनाम सुनाकर उनकी मूर्च्छा भंग की। इस प्रकार घर के अन्दर–बाहर जो भी उपस्थित थे, सभी प्रेमानन्द में विभोर होकर आत्म–विस्मृत हो गये। उधर घर के भीतर प्रभु विश्वम्भर रुक्मिणी का वेश धारण करके उन्हीं के भाव से विभावित होकर अपने आपको 'विदर्भसुता' समझकर कृष्ण के निकट रुक्मिणी के पत्र के विषय में श्रीमद्भागवतोक्त श्लोक का पाठ करते–करते अश्रुपूर्ण नेत्रों से भूमि पर उंगली के द्वारा पत्रांकन करने लगे। इसे सुनकर वैष्णवगण प्रेम से क्रन्दन एवं हरिध्वनि करते रहे। प्रथम प्रहर में इस प्रकार का अभिनय सम्पन्न हुआ; फिर द्वितीय प्रहर में गदाधर ने ब्रह्मानन्द–सहित ब्रजवनिता का वेश धारण करके उन–उन भावों से विभावित होकर प्रेमविह्वल हृदय से रमा के वेश में नृत्य किया। इसी बीच महाप्रभु आद्याशक्ति एवं नित्यानन्द बड़ाई–बूढ़ी का वेश धारण करके रंगस्थल पर उपस्थित हुये। प्रभु को कोई कमला के रूप में, कोई लक्ष्मी के रूप में, कोई सीता के रूप में, कोई महामाया आदि के रूप में अपने–अपने भाव के अनुसार उनका दर्शन करने लगे। जिन्होंने प्रभु का जन्म से दर्शन किया था, वे भी प्रभु को देखकर उन्हें पहचान नहीं पा रहे थे। दूसरों की बात तो दूर, स्वयं शचीमाता भी प्रभु को पहचानने में असमर्थ रहीं। तब प्रभु की कृपा से सभी के हृदय में जननी–भाव उदित हो जाने के कारण सभी प्रेमानन्द में विह्वल हो गये।

कौन–सी प्रकृति के भाव में प्रभु नृत्य कर रहे थे, यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था, फिर भी भावावेश के समय उनकी विविध उक्तियों को सुनकर कभी उन्हें रुक्मिण ी, कभी महाचंडी और कभी श्रीराधा आदि समझ रहे थे। इसके द्वारा प्रभु ने अपनी सभी शक्तियों के यथायोग्य स्वरूप एवं सम्मान के विषय सभी को शिक्षा–प्रदान की।

आद्याशक्ति के वेश में प्रभु के नृत्य करते समय नित्यानन्द मूर्च्छित होकर गिर पड़े एवं भक्तगण प्रेमावेश में ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे। कुछ ही समय पश्चात् विश्वम्भर गोपीनाथ–विग्रह को गोद में लेकर महालक्ष्मी के भाव में सिंहासन पर विराजमान हो गये। तब भक्तगण प्रभु के आदेश से उनका स्तवनकीर्तन करते हुये उनसे शुभदृष्टि के लिए प्रार्थना करने लगे। अचानक प्रभात हो जाने पर वैष्णववृन्द एवं पतिव्रतागण सभी विषाद के कारण अपना धैर्य धारण नहीं कर सके। वैष्णवों का क्रन्दन देखकर प्रभु जगज्जननी के भाव में सभी को स्तन पिलाते रहे, इससे उनके सभी दुःख दूर हो गये एवं प्रेमरस में सभी मत्त हो गये।

प्रभु के अचिन्त्य–शक्तिबल से सात दिनों तक चन्द्रशेखर आचार्य के घर में अद्भुत ज्योति विद्यमान रही। उसके प्रभाव से लोग अपनी आँखों को खोल नहीं पाते थे। लोगों के द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वैष्ण ावगण मन–ही–मन मुस्कराते थे, कुछ भी प्रकट नहीं करते थे।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

पार्षद-सहित गौरसुन्दर का जयगान—

जय जय जगतमंगल गौरचन्द्र।
दान देह' हृदये तोमार पदद्वन्द्व॥१॥
जय जय नित्यानन्द-स्वरूपेर प्राण।
जय जय भक्तवत्सल गुणधाम॥२॥

(१-२) प० अनु०—जगद्मंगल स्वरूप गौरचन्द्र की जय हो, जय हो। आप युगल-चरणों को मेरे हृदय में समर्पित कीजिए। नित्यानन्द-स्वरूप के प्राणर्स्वस्व की जय हो, जय हो। भक्तवत्सल गुणधाम की जय हो, जय हो।

चैतन्यकथा सुनने से भक्ति की प्राप्ति—

भक्तगोष्ठी सहित गौरांग जय जय।
शुनिले चैतन्यकथा भक्ति लभ्य हय॥३॥

(३) प० अनु०—भक्तगोष्ठी-सहित गौरांग की जय हो, जय हो। श्रीचैतन्यन्यदेव को सुनने से भक्ति की प्राप्ति होती है।

नवद्वीप-लीला में प्रभु-द्वारा
संकीर्तन का रसास्वादन—

हेनमते नवद्वीपे विश्वम्भर-राय।
संकीर्तन-रस प्रभु करये सदाय॥४॥

(४) प० अनु०—इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर राय नवद्वीप में सदैव संकीर्तन का आनन्द रसास्वादन करते रहे।

अध्याय का सूत्र—

मध्यखण्ड कथा भाइ शुन एकमने।
लक्ष्मी-काचे प्रभु नृत्य करिला येमने॥५॥

(५) प० अनु०—हे भाइयों! इस मध्यखण्ड की कथा को एकाग्रचित्त से सुनो! लक्ष्मी के वेश में प्रभु ने जिस प्रकार नृत्य किया था।

(५) गौः भाः—लक्ष्मीकाचे—लक्ष्मी का वेश धारण-पूर्वक अभिनय।

प्रभु-द्वारा दृश्यकाव्य (रूपक) के
विधाननुसार नृत्य करने के लिए इच्छा
एवं काव्य सजाने के लिए आदेश—

एकदिन प्रभु बलिलेन सबा-स्थाने।
आजि नृत्य करिवाङ अंकेर विधाने॥६॥
सदाशिव बुद्धिमन्त खानेरे डाकिया।
बलिलेन प्रभु,—"काच सज्ज कर गिया॥७॥
शंख, काँचुली, पाटशाड़ी, अलंकार।
योग्य योग्य करि' सज्ज कर सबाकार॥८॥

(६-८) प० अनु०—एकदिन प्रभु सभी से बोले,—"आज मैं 'अंक' काव्य के विधि-अनुसार नृत्य करुँगा।" सदाशिव, बुद्धिमन्त खान को बुलाकर प्रभु कहने लगे,—"वेश-भूषा की तैयारियाँ करो।" सबके लिए शंख (शंखवुडी) चोली, पट्टसाड़ी और अलंकार आदि एकत्र करो एवं जिसे जैसा चाहिए, वैसी वेश-भूषा का प्रबन्ध करो।

(६) गौः भाः—अंक—दस प्रकार के दृश्यकाव्यों में से एक है। नाटक के परिच्छेद-विशेष को अंक कहते हैं। उक्त अंक में मुख्य अथवा गौणभाव से नायक का चरित्र उल्लिखित होते हैं। उसमें रसभाव आदि स्फुटरूप से प्रतीत होते हैं। अंक में प्रयुक्त शब्द समूह अनायास समझ में आने चाहिए एवं गद्य-समूहों में अनेक समासों का व्यवहार नहीं होना चाहिए। उसमें क्षुद्र चर्णक (समासहीन गद्य) रहने चाहिए। अंक में किसी भी एक अवांतर विषय की परिसमाप्ति होनी चाहिए। अवांतर विषय की परिसमाप्ति होने पर भी मूल घटना के साथ सम्बन्ध रखने वाला एक अंश अंक से जुड़ा हुआ रहना चाहिए। परन्तु अन्तिम अंक को छोड़कर अन्य अंकों के साथ ही इसका सम्बन्ध रहेगा; क्योंकि, अन्तिम अंक में सम्पूर्ण रूप से विषयों की

परिसमाप्ति हो जाती है, भविष्य की घटनाओं के साथ आगये सम्बन्ध नहीं रहता है। एक अंक में अनके प्रधान उद्देश्य वर्णित नहीं होते है। अंक में बीज का उपसंहार नहीं होता है। यह नियम भी अन्तिम अंक को छोड़कर अन्यत्र लागू होता है। अंक में अनेक वृत्तान्त प्रकाशित रहते हैं। गद्यांश अधिक विन्यस्त रहता है। परन्तु पद्यांश अधिक नहीं रहता। नायक आदि के कर्तव्य, सन्ध्या-वन्दना इत्यादि नित्यकर्मों का विरोधी कोई भी विषय अंक में सन्निवेशित (योजना) नहीं किया जाता है। जो वृत्तान्त पूरा होने में बहुत समय लेता हो, वह अंक में वर्णन योग्य नहीं माना जाता है, परन्तु जो कम समय में पूरा होने वाला हो, वही धारावाहिक रूप से रसविच्छेद-निराकरण के लिए अंक में निबद्ध होना चाहिए। सभी अंको में नायक के उपस्थित न रहने पर भी घटनाक्रम के माध्यम से प्रत्येक अंक से नायक का सम्बन्ध सूचित रहता है। साधारण तया तीन-चार पात्रों के द्वारा ही अंक का निर्वाह (परिचालन) होता है। नाटक के अंको में कुछ विषयों का वर्णन निषिद्ध होता है; जैसे—बहुत दूर से बुलाना, वध, युद्ध, राज्य-देश आदि का विप्लव, विवाह-भोजन, शाप प्रदान, माला का त्यागना, मृत्यु, सुरतक्रीड़ा, काम भाव से अधर दर्शन, स्तन आदि में नाखून-द्वारा आघात एवं अन्यान्य लज्जाजनक कार्य, शयन, अधरपानादि, नगर आदियों का अवरोध, स्नान एवं अनुलेपन। अंक अत्यन्त लम्बा नहीं होना चाहिए। अंक के अभ्यन्तर में महिषी, परिजनादि, अमात्य (सहचर) एवं वणिक आदियों का विचित्र वृत्तांत स्पष्ट रूप से प्रतीत रहना चाहिए एवं उक्त सभी चरित्र रस एवं भाव को उत्पन्न करने वाले होने चाहिए। अंक के अन्त में कोई भी पात्र रंगस्थल में उपस्थित नहीं रहता—अपितु सभी पर्दे के पीछे चले जाते हैं।—(साहित्यदर्पण) छह परिच्छेद ७म श्लोक)।

अंक के विधानानुसार—'अंक'—नामक दृश्यकाव्य के नियमानुसार।

अभिनेताओं के प्रति निर्देश—

गदाधर काविचेन रूक्मिणीर काच।
ब्रह्मानन्द ता'र बुड़ी सखी सुप्रभात॥९॥
नित्यानन्द हइवेन बड़ाइ आमार।
कोतोयाल हरिदास जागाइते भार॥१०॥
श्रीवास—नारद-काच, स्नातक—श्रीराम।
'देउटिया आजि मुजि' बलये श्रीमान्॥''११॥
अद्वैत बलये,—''के करिवे पात्र-काच?''
प्रभु बले,—''पात्र सिंहासने गोपीनाथ॥१२॥

(९-१२) प० अनु०—गदाधर रुक्मिणी का वेश धारण करेंगे और ब्रह्मानन्द उनकी बुढ़िया सखी सुप्रभात बनेंगे। नित्यानन्द मेरी 'बड़ाइ' का वेश अपनायेंगये और हरिदास कोतवाल के रूप में सबको जगाते रहेंगे। श्रीवास नारद के रूप में सज्जित होंगे एवं श्रीराम स्नातक के वेश में अपना कार्य निभायेंगे।" श्रीमान ने कहा,—"मुख्य पात्र के रूप में कौन अभिनय करेगा?" प्रभु ने कहा,—"मुख्य पात्र के रूप में गोपनीय सिंहासन पर विराजमान हैं।

(१०) गौः भाः—बड़ाइ—वृद्धा, मातामही; वृन्दावन की वृद्ध रमणी पौर्णमासी, वे ही योगमाया हैं, राधाकृष्ण मिलन का कारण हैं।

(१०) तथ्य—"श्रीराधाकृष्णसंयोगकारिणी जरतीव सा। योगमाया भगवती नित्यानन्दतनूं श्रिता॥"— (चैतन्य-चन्द्रोमय नाटक ३/११)

(११) गौः भाः—देउटिया—दीपधारी। स्नातक- समावर्तन स्नानकारी ब्राह्मण।

सदाशिव-बुद्धिमन्त को सज्जा-संग्रह करने के लिए प्रभु-द्वारा फिर एकबार आदेश एवं सज्जाओं को लाकर प्रभु के निकट अर्पण—

सत्वर चलह बुद्धिमन्त खान तुमि।
काच सज्ज कर गिया नाचिवाङ आमि॥''१३॥
आज्ञा शिरे करि' सदाशिव बुद्धिमन्त।
गृहे चलिलेन, आनन्देर नाहि अन्त॥१४॥
सेइक्षेणे काथियार-चान्दोया टानिया।
काच सज्ज करिलेन सुन्दर करिया॥१५॥
लइया यतेक काच बुद्धिमन्त खान।
थुइलेन लइया ठाकुरेर विद्यमान॥१६॥

(१३-१६) प० अनु०—प्रभु ने कहा, —"बुद्धिमन्त खान! शीघ्रता करो! वेश भूषा सजाओ, मैं नृत्य करूँगा।" आदेश शिरोधार्य-पूर्वक अंतहीन आनन्द के साथ सदाशिव बुद्धिमन्त घर की ओर चल दिये। उन्होने उसी क्षण जाकर काथिसा का चँदोवा तनवा कर सुन्दर वेशभूषाओं को अच्छी तरह से तैयार किया और उन सुसज्जित साज-सज्जाओं को लाकर बुद्धिमन्त खान ने प्रभु के सामने रख दिया।

(१३) गौः भाः—काच—परिच्छेद, वेशभूषा, सज्जा, अभिनय के लिए नट-नटी का वेश। सज्ज—प्रस्तुत, सज्जित।

(१५) गौः भाः—काथियार चान्दोया—काथिया नामक देश का चँदोवा।

अभिनय की साज-सज्जा देखकर प्रभु का आनन्द एवं वैष्णवों के प्रति उक्ति—

देखिया हइला प्रभु सन्तोषित मन।
सकल वैष्णव-प्रति बलिला वचन॥१७॥

(१७) प० अनु०—यह सब देखकर प्रभु मन में बड़े प्रसन्न हुये और सभी वैष्णवों से कहा।

प्रभु-द्वारा अपने अभिनय का निर्देश एवं उसे देखने वाले अधिकारी का निर्णय—

''प्रकृति-स्वरूपा नृत्य हइवे आमार।
देखिते ये जितेन्द्रिय, ता'र अधिकार॥१८॥
सेइ से याइव आजि बाड़ीर भितरे।
येइ जन इन्द्रिय धरिते शक्ति धरे॥''१९॥
लक्ष्मीवेशे अंक-नृत्य करिब ठाकुर।
सकल वैष्णव-रंग बाड़िल प्रचुर॥२०॥

(१८-२०) प० अनु०—"प्रकृति के स्वरूप में मेरा नृत्य होगा। जो जितेन्द्रिय हैं, उनको ही इसे देखने का अधिकार है। जो व्यक्ति इन्द्रियों पर संगम करने में समर्थ हैं, वे ही आज भवन के भीतर प्रवेश करें।" लक्ष्मी के वेश में ठाकुर अंक-नृत्य करेंगे। इसे सुनकर सभी वैष्णवों को बहुत ही आनन्द मिला।

प्रभुवाक्य से वैष्णवों में विषाद—

शेषे प्रभु कथाखानि करिलेन दृढ़।
शुनिया हइल सबे विषादित बड़॥२१॥

(२१) प० अनु०—प्रभु ने फिर एकबार इस बात को दोहराते हुये इस पर जोर डाला, तो इसे सुनकर सब बड़े ही विषादग्रस्त हो गये।

(२१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने आध्यक्षिक जनों की बुद्धि-परीक्षा-हेतु लक्ष्मी के वेश में नृत्य करने के प्रस्ताव के द्वारा इस बात की जानकारी दी है कि अधोक्षज के विचित्र विलास में आध्यक्षिक-ज्ञानियों को प्रेमशाधिकार नहीं है। जो लोग विवर्त बुद्धिवश अपने आपको पुरुष समझकर जगत् की नारियों के प्रति भोगबुद्धि रखतें, वे ही रावण के अनुकरण पर सीतापति बनने की दुर्वासना का पोषण करते हैं। लक्ष्मी का सेवनधर्म—वैष्णवता की ऐकान्तिकता है। जो लोग लक्ष्मी की सेवा करने के बदले 'श्रीमान्' बनने की

इच्छा करते हुये अपने आप में 'भोक्ता' होने का अभिमान रखते हैं, उन लोगों के लिए भगवत्-सेवा में कान्तरस का अधिकार प्राप्त करना तो दूर, मर्यादामार्ग में भी उनमें लक्ष्मी का सेवक बनने की योग्यता नहीं रहती है।

श्रीभगवद्वस्तु ही जहाँ शक्तितत्त्व का विलास प्रदर्शित करते हैं, वहाँ श्रीगौरसुन्दर के दर्शन करने से श्रीकृष्ण उपलब्धि में व्याघात उपस्थित होता है। गौरभोगी-सम्प्रदाय नागरी-विचार से आत्मप्रतिष्ठा प्राप्त करके गौरसुन्दर को भोग्य-विषय-मात्र समझते हैं।

प्रभु-वाक्य-श्रवण से अद्वैत एवं श्रीवास का अभिमत—

सर्वाद्ये भूमिते अंक दिलेन आचार्य।
''आजि नृत्य दरशने मोर नाहि कार्य॥२२॥
आमि से अजितेन्द्रिय ना याइव तथा।''
श्रीवास पण्डित कहे,—''मोर ओइ कथा॥''२३॥

(२२-२३) प० अनु०—सबसे पहले आचार्य ने भूमि पर रेखा खींची और कहा, —"आज नृत्य-दर्शन करने मैं समर्थ नहीं हूँ।" मैं तो अजितेन्द्रिय हूँ, इस कारण वहाँ नहीं जाऊँगा।" श्रीवास पण्डित भी बोले—"मेरा भी यही कहना है।"

(२२-२३) गौः भाः—सबसे आगे श्रीअद्वैत-प्रभु ने भूमि पर दाग देते हुये कहा,—"मैं इस प्रकार के नृत्य को देखने में असमर्थ हूँ। अजितेन्द्रिय को उस प्रकार के नृत्य को देखने योग्य नहीं हूँ।" उनका अनुसरण करते हुये श्रीवास पण्डित ने भी वैसा ही अभिप्राय प्रकट किया।

प्रभु-द्वारा सभी को आश्वासन प्रदान एवं अभिनय दर्शन करने का अधिकार दान—

शुनिया ठाकुर कहे ईषत् हासिया।
''तोमरा ना गयेले नृत्य काहारे लइया॥''२४॥
सर्वरंग-चूड़ामणि चैतन्य-गोसाईं।
पुनः आज्ञा करिलेन,—''का'रो चिन्ता नाइ॥२५॥
महायोगेश्वर आजि तोमरा हइवा।
देखिया आमारे केह मोह ना पाइवा॥''२६॥

(२४-२६) प० अनु०—यह सुनकर ठाकुर थोड़ा हँसकर बोले,—"तुम्हारे बिना मैं किसके साथ नृत्य करूँगा।" चैतन्य गोसाईं सर्वरंग-चूड़ामणि हैं। उन्होंने फिर एक बार आज्ञा दी,—"किसी के लिए भी चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। आज तुम सब महायोगेश्वर बन जाओगे। मुझे देखकर कोई भी मोह को प्राप्त नहीं होगा।"

प्रभु की आज्ञा से वैष्णवों में उल्लास—

शुनिया प्रभुर आज्ञा अद्वैत, श्रीवास।
सबार सहित महा पाइल उल्लास॥२७॥

(२७) प० अनु०—प्रभु की आज्ञा सुनकर सभी के साथ-साथ अद्वैत और श्रीवास को परम उल्लास हुआ।

सबको साथ लेकर महाप्रभु का चन्द्रशेखर-भवन में गमन—

सर्वगण सहित ठाकुर विश्वम्भर।
चलिला आचार्य-चन्द्रशेखरेर घर॥२८॥

(२८) प० अनु०—सबके साथ ठाकुर विश्वम्भर आचार्य-चन्द्रशेखर के घर चल दिये।

प्रभु का नृत्य देखने के लिए शची-आदि नारियाँ का आगमन—

आइ चलिलेन निज वधूर सहिते।
लक्ष्मीरूपे नृत्य बड़ अद्भुत देखिते॥२९॥
यत आप्त वैष्णवगणेर परिवार।

चलिला आइर संगये नृत्य देखिवार॥३०॥

(२९–३०) प० अनु०—लक्ष्मी के रूप मे उस बड़े ही अद्‌भुत नृत्य को देखने के लिए भाई (शचीमाता) ने अपनी पुत्र–वधू को साथ लेकर प्रस्थान किया। आई के साथ–साथ विश्वस्त वैष्णवों की गृहिणियाँ भी नृत्य देखने के लिए चल पड़ीं।

ग्रन्थकार के द्वारा चन्द्रशेखर के सौभाग्य की प्रशंसा—

श्रीचन्द्रशेखर–भाग्य तार एइ सीमा।
या'र घरे प्रभु प्रकाशिला ए महिमा॥३१॥

(३१) प० अनु०—श्रीचन्द्रशेखर के भाग्य की यही सीमा है कि उनके घर में प्रभु ने यह महिमा प्रकाशित की।

महाप्रभु–द्वारा सभी को अपनी–अपनी भूमिका में अभिनय करने के लिए निर्देश प्रदान—

बसिला ठाकुर सर्व–वैष्णव सहिते।
सबारे हइल आज्ञा स्व–काच काचिते॥३२॥

(३२) प० अनु०—सभी वैष्णवों के साथ ठाकुर विराजमान हो गये और उन्होंने अपने–अपने वेश में सजने के कहा।

अद्वैत के द्वारा अपनी सज्जा के बारे जिज्ञासा एवं प्रभु का उत्तर—

करजोड़े अद्वैत बलिला बार बार।
''मोरे आज्ञा प्रभु कोन् काच काचिवार?''३३॥
प्रभु बले,—''यत काच, सकलि तोमार।
इच्छा–अनुरूप काच काच' आपनार॥''३४॥

(३३–३४) प० अनु०—हाथ जोड़कर अद्वैत बारम्बार कहने लगे,—"हे प्रभु! मुझे कौन–सी भूमिका में अभिनय करने की आज्ञा है?" प्रभु ने कहा,—"जितने भी वेश हैं, वे सभी तुम्हारे अपने हैं। तुम अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी वेश को धारणकर अभिनय कर सकते हो।"

बाह्यज्ञान–रहित अद्वैत–प्रभु का विविध विलास—

बाह्य नाहि अद्वैतेर, कि करिव काच?
भ्रुकुटि करिया बुले शान्तिपुरनाथ॥३५॥
सर्व–भावे नाचे महा–विदूषक–प्राय।
आनन्द–सागर–माझे भासिया बेड़ाय॥३६॥

(३५–३६) प० अनु०—अद्वैत आचार्य को बाह्यज्ञान नहीं था। वे क्या अभिनय करेंगये? भौंह उठाकर शान्तिपुर–नाथ (अद्वैत) इधर–उधर घूमने लगे। अद्वैत आचार्य महा–विदूषक की भाँति सभी प्रकार के भावों में नृत्य करने लगे। और नृत्य करते–करते आनन्दसागर में बहते हुये विचरने लगे।

सभी के द्वारा कृष्णकीर्तन—

महा–कृष्ण–कोलाहल उठिल सकल।
आनन्दे वैष्णव–सब हइला विह्वल॥३७॥
कीर्तनेर शुभारम्भ करिला मुकुन्द।
''रामकृष्ण बल हरि गोपाल गोविन्द॥''३८॥

(३७–३८) प० अनु०—कृष्णकीर्तन का महाकोलाहल उठने लगा। सभी वैष्णव आनन्द में विह्वल हो गये। "रामकृष्ण बोल हरि गोपाल गोविन्द" कहकर मुकुन्द ने कीर्तन का शुभारम्भ किया।

वैकुण्ठ के कोतवाल के वेश में हरिदास–द्वारा सबको सावधान करना—

प्रथमे प्रविष्ट हैला प्रभु हरिदास।
महा दुइ गोंफ करि' वदने विलास॥३९॥
महा पाग शोभे शिरे धटी–परिधान।
दण्ड हस्त सबारे करये सावधान॥४०॥

''आरे आरे भाइ सब हओ सावधान।
नाचिव लक्ष्मीर वेशे जगतेर प्राण॥''४१॥
हाते नड़ि चारिदिके धाइया बेड़ाय।
सर्वांगे पुलक 'कृष्ण' सबारे जागाय॥४२॥
''कृष्ण भज, कृष्ण सेव, बल कृष्ण नाम।''
दंभ करि' हरिदास करये आह्वान॥४३॥

(३९-४३) प० अनु०—सबसे पहले बड़ी-बड़ी दो मूँछें लगाकर प्रसन्नवदन प्रभु हरिदास ने हँसते हुये प्रवेश किया। उनके सिर पर एक बड़ी पगड़ी शोभा दे रही थी और वे सुन्दर धोती पहने हुये थे। हाथ में दण्ड लिए वे सबको सावधान कर रहे थे। "अरे-अरे भाइयों! सभी सावधान हो जाओ। लक्ष्मी के वेश में जगत् के प्राणस्वरूप प्रभु नृत्य करेंगये।" हाथ में छड़ी लिए हरिदास ठाकुर चारों ओर दौड़ते फिर रहे थे। उनका सारा शरीर पुलकित हो रहा था और वे 'कृष्ण' नाम से सभी को जगाये रख रहे थे। दंभ-पूर्वक हरिदास आह्वान कर रहे थे, "कृष्ण का भजन करो, कृष्ण की सेवा करो और कृष्ण का नाम लो।"

(४१) गौः भाः—जगत् के प्राण—श्रीगौरसुन्दर।
(४२) गौः भाः—नड़ि—लगुड़ छड़ी, यष्टि।

हरिदास को देखकर सभी के द्वारा उनके परिचय के बारे में पूछताछ एवं हरिदास का उत्तर तथा मुरारि के साथ परिभ्रमण—

हरिदास देखिया सकल-गण हासे।
''के तुमि, एथाय केने''—सबेइ जिज्ञासे॥४४॥
हरिदास बले,—''आमि वैकुण्ठ-कोटाल।
कृष्ण जागाइया आमि बुलि सर्वकाल॥४५॥
वैकुण्ठ छाड़िया प्रभु आइलेन एथा।
प्रेमभक्ति लोटाइव ठाकुर सर्वथा॥४६॥
लक्ष्मीवेशे नृत्य आजि करिब आपने।
प्रेमभक्ति लुटि' आजि लओ सावधाने॥''४७॥
एत बलि दुइ गोंफ मुचुड़िया हाते।
रड़ दिया बुले गुप्त-मुरारि साथे॥४८॥
दुइ महा-विह्वल कृष्णेर प्रिय दास।
दु'येर शरीरे गौरचन्द्रेर विलास॥४९॥

(४४-४९) प० अनु०—हरिदास को देखकर सभी हँसने लगे और उनसे पूछने लगे कि,—"तुम कौन हो, यहाँ क्यों आये हो?" हरिदास ने कहा—"मैं वैकुण्ठ का कोतवाल हूँ। मैं कृष्ण को जगाते हुये सब समय घूमता रहता हूँ। वैकुण्ठ छोड़कर प्रभु यहाँ आ गये हैं, क्योंकि ठाकुर को यहाँ सब प्रकार से प्रेमभक्ति लुटानी है। आज लक्ष्मी के वेश में वे स्वयं नृत्य करेंगे। आज सब लोग सावधानी के साथ प्रेमभक्ति लूट लो।" इतना कहकर हरिदास हाथों से दोनों मूँछों में ताव देते हुये मुरारि गुप्त के साथ दौड़े-दौड़े विचरने लगे। कृष्ण के दोनों ही प्रिय भृत्य महा-विह्वल हो रहे थे। दोनों के शरीर के में गौरचन्द्र के विलास का उन्मेष था।

श्रीवास का नारद के वेश मे प्रवेश एवं तत्पश्चात् रामाइ पण्डित का आगमन—

क्षणेके नारद-काच काचिया श्रीवास।
प्रवेशिला सभा-माझे करिया उल्लास॥५०॥
महा-दीर्घ पाका दाड़ि फोंटा सर्व गाय।
वीणा-कान्धे, कुश-हस्ते चारिदिके चाय॥५१॥
रामाइ पण्डित कक्षे करिया आसन।
हाथे कमण्डलु, पाछे करिला गमन॥५२॥
बसिते दिलेन राम-पण्डित आसन।
साक्षात् नारद येन दिल दरशन॥५३॥

(५०-५३) प० अनु—एक क्षण के बाद नारद के वेश में श्रीवास ने उल्लास पूर्वक सभा में प्रवेश किया। बड़ी लम्बी सफेद दाढ़ी,

सारे शरीर मे तिलक रचना, कन्धे पर वीणा और हाथों मे कुश के साथ वे प्रविष्ट हुये और प्रवेश करके वे चारों और देखने लगे। उनके पीछे बगल में आसन दबाये और हाथ में कमंडलु लिये रामाइ पण्डित आये। राम-पण्डित ने उन्हें बैठने के लिए आसन प्रदान किया। देखने से ऐसा लग रहा था जैसे साक्षात् नारद जी ने ही दर्शन दिये हों।

श्रीवास के वेश को देखकर अद्वैताचार्य का प्रश्न एवं श्रीवास द्वारा अपना परिदय प्रदान करते हुये गौरतत्त्व की विज्ञापना—

श्रीवासेर वेश देखि' सर्वगण हासे।
करिया गभीर नाद अद्वैत जिज्ञासे॥५४॥
''के तुमि आइला एथा, कोन् वा कारणे?''
श्रीवास बलेन—''शुन कहि ये वचने॥५५॥
'नारद' आमार नाम कृष्णेर गायन।
अनन्त ब्रह्माण्डे आमि करिये भ्रमण॥५६॥
वैकुण्ठ गेलाङ कृष्ण देखिवार तरे।
शुनिलाम कृष्ण गेला नदीया-नगरे॥५७॥
शून्य देखिलाम वैकुण्ठेर घर-द्वार।
गृहिणी-गृहस्थ नाहि, नाहि परिवार॥५८॥
ना पारि रहिते शून्य-वैकुण्ठ देखिया।
आइलाम आपन ठाकुर सङरिया॥५९॥
प्रभु आजि नाचिवेन धरि' लक्ष्मीवेश।
अतएव ए सभाय आमार प्रवेश॥''६०॥

(५४-६०) प० अनु०—श्रीवास के वेश को देखकर सभी हँसने लगे। फिर गंभीर स्वर से अद्वैत ने उनसे पूछा,—"यहाँ आने वाले तुम कौन हो और किस कारण तुम्हें यहाँ आना पड़ा?" श्रीवास ने कहा—"मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। 'नारद' मेरा नाम है, मैं कृष्ण का गायक हूँ। अनन्त ब्रह्माण्डों में मैं भ्रमण करता रहता हूँ। कृष्ण के दर्शन करने के लिए मैं वैकुण्ठ में गया था। वहाँ जाकर सुना के, कृष्ण तो नदीयानगर में गये हुये हैं। मैंने देखा के वैकुण्ठ के घरद्वार सूने पड़े हैं। गृहिणी-गृहस्थी नहीं है, परिवार भी नहीं है। शून्य वैकुण्ठ को देखकर मुझसे रहा नहीं गया और मैं अपने ठाकुर को स्मरण करके यहाँ आ गया। आज प्रभु लक्ष्मी के वेश में नृत्य करेंगे, इस कारण इस सभा में मेरा प्रवेश हुआ है।"

श्रीवास की नारदनिष्ठा को देखकर सभी का हास्य एवं जयध्वनि—

श्रीवासेर नारद-निष्ठावाक्य शुनि।
हासिया वैष्णव-सब करे जयध्वनि॥६१॥

(६१) प० अनु०—श्रीवास के नारद के प्रति निष्ठा युक्त वाक्यों को सुनकर सभी वैष्णवों ने हँसते हुये जयध्वनि की।

नारद के साथ श्रीवास की अभिन्नता—

अभिन्न-नारद येन श्रीवास पण्डित।
सेइ रूप, सेइ वाक्य, सेइ से चरित॥६२॥

(६२) प० अनु०—श्रीवास पण्डित बिलकुल नारद जैसे लग रहे थे—वही रूप, वही वाणी और वही चरित्र।

पतिव्रताओं-सहित शचीमाता द्वारा अभिनय-दर्शन—

यत पतिव्रतागण—सकल लइया।
आइ देखे कृष्णसुधारते मग्न हैया॥६३॥

(६३) प० अनु०—सभी पतिव्रताओं को साथ लिए आई भी कृष्णसुधारस में मग्न होकर अभिनय देखने लगीं।

रहस्य-पूर्वक शचीमाता द्वारा मालिनी से

श्रीवास के बारे में पूछना एवं उनके मूर्त्ति-दर्शन से मूर्च्छा—

मालिनीरे बले आइ—''इनि कि पण्डित?''
मालिनी बलये,—''शुन ए सुनिश्चित॥''६४॥
परम वैष्णवी आइ सर्वलोकमाता।
श्रीवासेर मूर्त्ति देखि' हइला विस्मिता॥६५॥
आनन्दे पड़िला आइ हइया मूर्च्छिता।
कोथाओ नाहिक धातु, सबे चमकिता॥६६॥

(६४-६६) प० अनु०—मालिनी से आई ने पूछा,—"क्या वे पण्डित हैं?" मालिनी ने कहा,—"निश्चित रूप से वे ही हैं।" सर्वलोकमाता परम वैष्णवी आई श्रीवास की मूर्त्ति होकर आई गिर पड़ीं। उनके शरीर में चेतनता कहीं नहीं रही। यह देखकर सभी आश्चर्य चकित रह गये।

नारियों के द्वारा शची के कानों के सामने कृष्णकीर्तन एवं शचीदेवी को बाह्यज्ञान की प्राप्ति—

सत्वरे सकल पतिव्रता नारीगण।
कर्णमूले 'कृष्ण कृष्ण' करे सङरण॥६७॥
सम्वित् पाइया आइ गोविन्द सङरे।
पतिव्रतागणे धरे, धरिते ना पारे॥६८॥

(६७-६८) प० अनु०—सभी पतिव्रता नारियाँ तुरन्त उनके कानों में 'कृष्ण' नाम सुनारे लगीं। सम्विद् (चेतना) मिलने पर आई 'गोविन्द' का स्मरण करने लगीं। पतिव्रताएँ माता को पकड़ रही थीं, परन्तु सम्हाल नहीं पा रही थीं।

सभी का बाह्यरहित भाव एवं क्रन्दन—

एइमत कि घर-बाहिरे सर्वजन।
बाह्य नाहि स्फुरे, सबे करेन क्रन्दन॥६९॥

(६९) प० अनु०—इस प्रकार क्या घर के भीतर और क्या बाहर, सभी व्यक्तियों को बाह्य का बोध नहीं था और वे सभी क्रन्दन करने लगे।

प्रभु का रुक्मिणी के स्वरूप में सजना एवं उसी आवेश में अपने आपको रूक्मिणी समझकर तद्रूप अभिनय करना—

गृहान्तरे वेश करे प्रभु विश्वम्भर।
रुक्मिणीर भावे मग्न हइल निर्भर॥७०॥
आपना ना जाने प्रभु रुक्मिणी-आवेशे।
विदर्भेर सुता येन आपनारे वासे॥७१॥
नयनेर जले पत्र लिखये आपने।
पृथिवी हइल पत्र, अंगुली कलमे॥७२॥
रुक्मिणी पत्र—सप्तश्लोक भागवते।
ये आछे, पड़ये ताहा कान्दिते कान्दिते॥७३॥
गीतबन्धे शुन सात श्लोकेर व्याख्यान।
ये कथा शुनिले स्वामी हय भगवान्॥७४॥

(७०-७४) प० अनु०—दूसरे घर में प्रभु अपनी वेश-रचना करते-करते रुक्मिणी के भाव में एकदम तन्मय हो गये। रुक्मिणी के आवेश में प्रभु अपने आपको भूल गये और गये स्वयं को विदर्भ राज की कन्यास्वरूप मानने लगे। आँखों के आसुँओं से उन्होंने स्वयं पत्र लिखा। पृथ्वी बनी कागज और उंगली बनी कलम। भागवत के सात श्लोकों में रुक्मिणी के पत्र के बारे में जो लिखा हुआ है, उसे ही वे रोते-रोते पढ़ रहे थे। गीत के रूप में उन सात श्लोकों की व्याख्या सुनो, जिसे सुनने से भगवान् स्वामी बन जाते हैं।

(७२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर रुक्मिणी के भाव में विभावित होकर अश्रुजल का विसर्जन करने लगे। उस अश्रुजल ने स्याही का स्थान ग्रहण किया, पृथ्वीतल ने पत्र अथवा कागज का स्थान लिया और हाथ की उँगलियों ने

लेखनी अथवा कलम का कार्य किया।

तथाहि (भाः १०/५२/३७)—

''श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते।
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्॥
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभम्।
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे॥''७५॥

(७५) अन्वयः—(हे) भुवनसुन्दर, (हे) अच्युत, शृण्वतां (श्रवणकारिणां) कर्णविवरैः (कर्णरन्ध्रैः) निर्विश्य (अन्तःप्रविश्य) अंगतापं हरतः (दूरीकुर्वतः) ते (तव) गुणान् श्रुत्वा (लोकमुखादाकर्ण्य तथा) दृशिमतां (चक्षुष्मतां जनानां) अखिलार्थलाभं (सर्वार्थलाभात्मकं) (तव) रूपं (च श्रुत्वा) मे (मम) अपत्रपं (अपगता दूरीभूता त्रपा लज्जा यस्मात् तत्) चित्तं (हृदयं) त्वयि आविशति (आसज्जते)।

(७५) अनुवादः—हे भुवनसुन्दर अच्युत, आपकी कथा, सुनने वाले व्यक्तियों के कर्णरंध्रपथां से हृदय में प्रवेश करके अंगताप को हरण करती है। लोगों से आपकी गुणराशि एवं देखने की शक्ति रखने वाले व्यक्तियों के लिए निखिलवस्तु लाभात्मक आपके सौन्दर्य की कथा सुनकर मेरा लज्जाहीन हृदय आपके प्रति आसक्त हुआ है।

(कारुण्यशारदा रागेन गीयते)—

''शुनिया तोमार गुण भुवन–सुन्दर।
दूर भेल अंगताप त्रिविध दुष्कर॥७६॥
सर्वनिधि–लाभ तोर रूप–दरशन।
सुखे देखे, विधि या'रे दिलेक लोचन॥७७॥
शुनि' यदुसिंह तोर यशेर बाखान।
निर्लज्ज हइया चित्त याय तुया स्थान॥७८॥
कोन् कुलवती धीरा आछे जग–माझे।
काल पाइ' तोमार चरण नाहि भजे॥७९॥
विद्या, कुल, शीत, धन, रूप, वेश, धामे।
सकल विफल हय तोमार विहने॥८०॥
मोर धाष्ट्र्य क्षमा कर त्रिदशेर राय।
ना पारि' राखिते चित्त तोमारे मिशाय॥८१॥
एतेके वरिल तोर चरण–युगल।
मनः, प्राण, बुद्धि—तोंहे अर्पिल सकल॥८२॥
पत्नीपद दिया मोरे कर निज दासी।
मोर भागये शिशुपाल नहुक विलासी॥८३॥
कृप करि' मोरे परिग्रह कर नाथ।
येन सिंहभाग नहे शृगालेर साथ॥८४॥
व्रत, दान, गुरु–द्विज–देवेर अर्चन।
सत्य यदि सेवियार्छो अच्युत–चरण॥८५॥
तबे गदाग्रज मोर हउ प्राणेश्वर।
दूर हउ शिशुपाल, एइ मोर वर॥८६॥
कालि मोर विवाह हइव हेन आछे।
आजि झाट आइसह, विलम्ब कर पाछे॥८७॥
गुप्ते आसि' रहिवा विदर्भपुर–काछे।
शेषे सर्व–सैन्य संगये आसिवे समाजे॥८८॥
चैद्य, शाल्व, जरासन्ध—मथिया सकल।
हरिसेव मोरे देखाइया बाहुबल॥८९॥
दर्प प्रकाशेर प्रभु एइ से समय।
तोमार बनिता शिशुपाल–योग्य नय॥९०॥
बिनि बन्धु वधि' मोरे हरिवा आपने।
ताहार उपाय बर्लो तोमार चरणे॥९१॥
विवाहेर पूर्वदिने कुलधर्म आछे।
नव वधूजन याय भवानीर काछे॥९२॥
सेइ अवसरे प्रभु हरिवे आमारे।
ना मारिवा बन्धु, दोष क्षमिवा आमारे॥९३॥
याहार चरणधूलि सर्व अंगये स्नान।
उमापति चाहे, चाहे यतेक प्रधान॥९४॥
हेन धूलि प्रसाद ना कर यदि मोरे।
मरिव करिया व्रत, बलिलुँ तोमारे॥९५॥

यत जन्मे पाङ तोर अमूल्य चरण।
तावत् मरिव, शुन कमल-लोचन॥९६॥
चल चल ब्राह्मण सत्वर कृष्णस्थाने।
कह गिया ए सकल मोर निवेदने॥''९७॥

(७६-९७) प० अनु०—हे भुवनसुन्दर! आपकी गुण-गाथा सुनकर दुष्कर त्रिविध अंगताप दूर हो जाते हैं। आपके रूप-दर्शन से सब निधियों की प्राप्ति हो जाती है। विधाता ने जिसे आँखें दी हैं, वे बड़े आराम से आपका रूप-दर्शन कर सकते हैं। हे यदुसिंह! आपके यश की महिमा सुनकर हृदय निर्लज्ज होकर आपके पास चला आया है। जगत् मैं ऐसी कौन कुलवती धीर नारी है, जो मौका पाकर आपके चरणों की सेवा न करे। आपके बिना विद्या, कुल, शील, धन, रूप, वेश, धाम आदि सब व्यर्थ हैं। हे देवताओं के नाथ! मेरी धृष्टता को क्षमा कर दीजिए। अपने हृदय को मैं रोक नहीं पा रही हूँ, वह आप में मिल गया है। अतएव आपके चरण-युगल का मैंने वरण कर लिया है। मन, प्राण, बुद्धि—सब मैं आपको अर्पित कर चुकी हूँ। मुझे 'पत्नीपद' देकर अपनी दासी बना लीजिए। शिशुपाल को मैं अपना जीवन-साथी नहीं बनाना चाहती हूँ। हे नाथ! कृपया मुझे ग्रहण करो। सिंह का भाग शृगाल न छीन ले जाए। यदि मैंने व्रत, दान किये हों, गुरु, विप्र और देवताओं की पूजा की हो और अच्युत न छीन ले जाए। यदि मैंने सचमुच की हो, तब गदाग्रज (श्रीकृष्ण) मेरे प्राणेश्वर हों और शिशुपाल दूर हो जाए। यही वरदान मुझे मिले। यह निश्चय हुआ है कि, कल मेरा विवाह रचाया जायेगा। आप देर मत कीजिए, आज ही तुरन्त चले आइए। आकर पहले विदर्भपुर के पास गुप्तभाव से रहना, फिर सारी सेनाओं को साथ लेकर समाज मे आना। चेदिराज, शाल्व, जरासन्ध—इन सबको मथकर, अपना बाहुबल दिखाकर मुझे हरण कर लेना। हे प्रभो! दंभ प्रकाशित करने का यही समय है। आपकी प्रिया शिशुपाल के योग्य नहीं है। बन्धु वध के बिना आप मुझे हरण कर लेना। इसका उपाय मैं आपके चरणों में निवेदन करती हूँ। कुलधर्म के अनुसार विवाह से पहले दिन नई वधू भवानी के पास जाती है। हे प्रभु! उसी अवसर पर आप मेरा हरण कर लेना। बन्धुओं को मत मारना, मेरा दोष क्षमा कर देना। उमापति शिव-सहित सभी महानुभावों को जिस चरण-धूलि से सर्वांग स्नान करने की चाहत रहती है, उस धूल की कृपा यदि आपने मुझपर न की, तो मैं आपसे कहे देती हूँ कि, मैं (अनशन) व्रत धारण करके मर जाऊँगी। हे कमललोचन! सुन लीजिए, जन्म-जन्मान्तरों तक मैं मरती रहँगी, जब तक आपके अमूल्य-चरण मुझे ने मिल जाएँगये। चलिए ब्राह्मण चलिए, शीघ्र ही कृष्ण के समीप गमन कीजिए और जाकर मेरा यह सब निवेदन उनको सुना दीजिए।

(७६) गौः भाः—त्रिविध दुष्कर ताप—आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक—ये तीन प्रकार के अपरिहार्य क्लेश हैं जिन्हें अवश्य भोगना है।

(७९) गौः भाः—काल पाइ'—सुयोग मिलने पर। रूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्। धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम्॥''—(भाः १०/५२/३८ श्लोक द्रष्टव्य है।)

(८२-८४) गौः भाः—तथ्य—"तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरंग जायामात्मर्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि। मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायु-वन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष॥'—(भाः

१०/५२/३६ श्लोक द्रष्टव्य है।

(८५–८६) तथ्य—'पूर्त्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-गुर्वर्च्चनादिभिरलं भगवान् परेशः। आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृहणातु में न दमघोषसुतादयोऽये॥—(भाः १०/५२/४० श्लोक द्रष्टव्य है।

(८७–८९) गौः भाः—तथ्य—शृवोभाविनि त्वम-जितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पूतनापतिभिः परीतः। निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्॥"—(भाः १०/५२/४१ श्लोक द्रष्टव्य है)।

(९१–९२) गौः भाः—तथ्य—'अन्तःपुरान्तर-चरी-मनिहत्य बन्धून् त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्। पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा यस्यां बहिर्नववधूगिरि-जामुपेयात्॥'—(भाः १०/५२/४२ श्लोक द्रष्टव्य है)।

(९४–९६) गौः भाः—तथ्य—'यस्यांघ्रिकजरजः स्नपनं महान्तो वांछन्त्युमापतिरिवात्ममोऽपहत्यै। यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात्'॥—(भाः १०/५२/४३ श्लोक द्रष्टव्य है)।

प्रभु का अभिनय देखकर सभी के प्रेमाश्रु—

एइमत बले प्रभु रुक्मिणी–आवेशे।
सकल वैष्णवगण प्रेमे काँदे हासे॥९८॥
हेन रंग हय चन्द्रशेखर–मन्दिरे।
चतुर्दिके हरिध्वनि शुनि उच्चैःस्वरे॥९९॥

(९८–९९) प० अनु०—रुक्मिणी के आवेश में तन्मय होकर प्रभु ने इस प्रकार से कहा कि इसे देखकर सभी वैष्णवजन प्रेम से क्रन्दन भी करते जा रहे थे और हँसते भी जा रहे थे। ऐसा आनन्द चन्द्रशेखर के घर में हुआ था। वहाँ चारों ओर से ऊँचे स्वर में 'हरिबोल' की ध्वनि सुनाई देने लगी।

हरिदास–द्वारा हरिध्वनि–पूर्वक सभी को जाग्रत करना—

'जाग जाग जाग' डाके प्रभु–हरिदास।
नारदेर काचे नाचे पण्डित–श्रीवास॥१००॥

(१००) प० अनु०—प्रभु हरिदास 'जागो जागो' पुकार रहे थे और नारद के वेश में श्रीवास पण्डित नृत्य कर रहे थे।

गदाधर और ब्रह्मानन्द का अभिनय एवं वैष्णवों के संग उक्ति–प्रत्युक्ति—

प्रथम प्रहरे एइ कौतुक–विशेष।
द्वितीय प्रहरे गदाधर–परवेश॥१०१॥
सुप्रभा ताहान सखि करि' निज संगे।
ब्रह्मानन्द ताहान बड़ाइ बुले रंगे॥१०२॥
हाथे नड़ि, काँखे डाली, नेत परिधान।
ब्रह्मानन्द ये–हेन बड़ाइ विद्यमान॥१०३॥
डाकि' बले हरिदास,—"के सब तोमरा?"
ब्रह्मानन्द बले,—"याइ मथुरा आमरा॥"१०४॥
श्रीवास बलये,—"दुइ काहार वनिता?"
ब्रह्मानन्द बले,—"केने जिज्ञास वारता?"१०५॥
श्रीवास बलये,—"जानिवारे ना जुयाय?"
'हय बलि' ब्रह्मानन्द मस्तक ढुलाय॥१०६॥
गंगादास बले,—"आजि कोथाय रहिवा?"
ब्रह्मानन्द बले,—"तुमि स्थानखानि दिवा॥"१०७॥
गंगादास बले,—"तुमि जिज्ञासिला बड़।
जिज्ञासिया कार्य नाहि झाट तुमि नड़॥"१०८॥
अद्वैत बलये,—एत विचारे कि काज।
'मातृसमा परनारी' केने देह' लाज?१०९॥
नृत्य–गीते प्रिय बड़ आमार ठाकुर।
एथाय नाचह, धन पाइवा प्रचुर॥"११०॥
अद्वैतेर वाक्य शुनि' परम सन्तोषे।
नृत्य करे गदाधर प्रेम परकाशे॥१११॥
रमावेश गदाधर नाचे मनोहर।

समय-उचित गीत गाय अनुचर॥११२॥

(१०१-११२) प० अनु०—प्रथम प्रहर में उस सब कौतुक-विशेष का अनुष्ठान हुआ। द्वितीय प्रहर में गदाधर पधारे। अपनी सखी 'सुप्रभा' के साथ उन्होंने प्रवेश किया। उनकी बड़ाइ (बुढ़िया) के रूप में ब्रह्मानन्द उनके साथ मस्ती में घूम रहे थे। उनके हाथ में छड़ी, बगल में डालिय और परिधान में नेत (महीन रेशमी) वस्त्र थे। ब्रह्मानन्द बड़ाइ (बुढ़िया) की भाँति सज्जित हुये थे। पुकारते हुये हरिदास ठाकुर ने कहा—"तुम सब कौन हो?" उत्तर में ब्रह्मानन्द बोले,—"हम सब मथुरा जा रहे हैं।" श्रीवास ने पूछा,—"दोनों किनकी प्रियाएँ हैं?" ब्रह्मानन्द ने कहा—"यह सब किस लिए पूछ रहे हो?" श्रीवास बोले, —"क्या यह बात जानने योग्य नहीं है?" 'हाँ', कहकर ब्रह्मानन्द ने सिर हिला दिया। गंगादास ने पूछा—"आज कहाँ रहोगी?" उत्तर में ब्रह्मानन्द बोले,—"रहने का स्थान तुम दोगे।" गंगादास ने कहा,—"तुम्हें तो बड़ी बातें बनानी आती हैं, अतएवं पूछताछ का काम नहीं, चलो, अपना रास्ता पकड़ो।" अद्वैताचार्य बोले,—"इतने विचार का क्या प्रयोजन है? परनारी माता के समान होती है। इनको क्यों लज्जित करते हो? हमारे ठाकुर को नृत्य-गीत बहुत प्यारा है। यहाँ नृत्य करो, खूब गदाधर प्रेम-प्रकाश-पूर्वक नृत्य करने लगे। रमा के वेश में गदाधर मनोहर नृत्य कर रहे थे और अनुचरजन समयोचित गीत गा रहे थे।

(१०१) गौः भाः—गदाधर-परवेश-गदाधर का प्रवेश।

(१०८) गौः भाः—नड़—दूसरे स्थान पर जाओ।

गदाधर के अभिनय से सभी का प्रेमान्मत्त भाव एवं जयध्वनि—

गदाधर-नृत्य देखि' आछे कोन् जन?
विह्वल हइया नाहि करेन क्रन्दन॥११३॥

(११३) प० अनु०—ऐसा कौन था, जो गदाधार के नृत्य को देखकर विह्वल होकर रोने न लगा हो।

गदाधर के प्रेमाश्रु की नदी के साथ तुलना—

प्रेमनदी बहे गदाधरेर नयने।
पृथिवी हइला सिक्त, धन्य करि' माने॥११४॥

(११४) प० अनु०—गदाधर के नेत्रों से प्रेम की नदी बह रही थी, जिससे गीली होती हुई पृथ्वी अपने को धन्य मान रही थी।

गदाधर का स्वरूप—

गदाधर हैला येन गंगा मूर्त्तिमती।
सत्य सत्य गदाधर कृष्णेर प्रकृति॥११५॥
आपने चैतन्य बलियाछे बारबार।
''गदाधार मोर वैकुण्ठेर परिवार॥''११६॥

(११५-११६) प० अनु०—गदाधर मानों मूर्तिमती गंगा थे। सचमुच गदाधर कृष्ण की प्रकृति थे। स्वयं श्रीचैतन्य ने बारम्बार यह दोहराया था कि, "गदाधर मेरे वैकुण्ठ का परिवार है।"

गायक, द्रष्टा आदि सभी का बाह्य चेतना-साहित्य—

ये गाय, ये देखे, सब भासिलेन प्रेमे।
चैतन्य-प्रसादे केह बाह्य नाहि जाने॥११७॥

(११७) प० अनु०—जो गा रहे थे और जो देख रहे थे, वे सभी प्रेम में बह गये। चैतन्य की कृपा से किसी को बाहर की कुछ भी सुध-बुध नहीं रही।

चारों ओर हरिसंकीर्तन के द्वारा
आनन्द-कोलाहल—

'हरि हरि' बलि' कान्दे वैष्णवमण्डल।
सर्वगणे हइल आनन्द-कोलाहल॥११८॥
चौदिक शुनिये कृष्णप्रेमेर क्रन्दन।
गोपिकार वेशे नाचे माधवनन्दन॥११९॥

(११८-११९) प० अनु०—वैष्णव-मण्डली 'हरि-हरि' कहकर क्रन्दन कर रही थी। सब लोगों में आनन्द का कोलाहल हो रहा था। चारों ओर कृष्णप्रेम का क्रन्दन सुनाई दे रहा था। गोपी के वेश में माधवनन्दन नृत्य कर रहे थे।

(११९) गौः भाः—माधवनन्दन—माधवमिश्र के पुत्र श्रीगदाधर पण्डित।

आद्याशक्ति के वेश में प्रभु का प्रवेश
एवं सभी के द्वारा जयध्वनि—

हेनइ समये सर्व-प्रभु विश्वम्भर।
प्रवेश करिला आद्याशक्ति-वेषधर॥१२०॥
आगये नित्यानन्द बुड़ी-बड़ाकर वेशे।
वंक वंक करि' हाँटे, प्रेमरसे भासे॥१२१॥
मण्डली हइया सब वैष्णव रहिला।
जय जय महाध्वनि करिते लागिला॥१२२॥

(१२०-१२२) प० अनु०—इसी बीच सबके प्रभु विश्वम्भर ने आद्याशक्ति के वेश में प्रवेश किया। उनके आगे-आगे नित्यानन्द बड़ी-बूढ़ी (वृद्धा) के वेश में आ रहे थे। वे टेढ़े-टेढ़े चल रहे थे और प्रेमरस में बह रहे थे। सभी वैष्णवों ने मण्डली बना ली और जय-जयकार की महाध्वनि करने लगे।

(१२१) गौः भाः—वंक—बाँका, कुटिल, तिरछा।

प्रभु को पहचानने में असमर्थ होकर उनके
बारे में सभी की विभिन्न-धारणाएँ—

केह नारे चिनिते ठाकुर विश्वम्भर।
हेन अलक्षित वेश अति मनोहर॥१२३॥
नित्यानन्द-महाप्रभु—प्रभुर बड़ाइ।
ताँ'र पाछे प्रभु, आर किछु चिह्न नाइ॥१२४॥
अतएव सबे चिनिलेन 'प्रभु एइ'।
वेशे केह लखिते ना पारे 'प्रभु सेइ'॥१२५॥
सिन्धु हैते प्रत्यक्ष कि हइला कमला?
रघुसिंह-गृहिणी कि जानकी आइला?१२६॥
किवा महालक्ष्मी, किवा आइला पार्वती?
किवा वृन्दावेन सम्पत्ति मूर्त्तिमती?१२७॥
किवा भागीरथी, किवा रूपवती दया?
किवा सेइ महेश-मोहिनी महामाया॥१२८॥
एइ मते अन्योन्ये सर्व-जने-जने।
ना चिनिया प्रभुरे आपने मोह माने॥१२९॥
आजन्म धरिया प्रभु देखये याहारा।
तथापि लखिते नारे तिलार्द्धेक ता'रा॥१३०॥
अन्येर कि दाय, आइ ना पारे चिनिते।
आइ बले,—"लक्ष्मी किवा आइला नाचिते?"१३१॥
अचिन्त्य अव्यक्त किवा महायोगेश्वरी।
भक्तिर स्वरूपा हैला आपनि श्रीहरि॥१३२॥

(१२३-१३२) प० अनु०—जो पहले कभी देखा नहीं गया था, ऐसे अति मनोहर वेश को धारण करने वाले ठाकुर विश्वम्भर को कोई पहचान नहीं पाया। नित्यानन्द-महाप्रभु प्रभु के लिए बड़ी-बूढ़ी बने थे। प्रभु उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, और कोई दूसरी पहचान नहीं थी। अतएव, सभी ने पहचान लिया कि 'ये प्रभु ही हैं'। परन्तु वेश को देखकर कोई समझ नहीं पा रहा था कि, 'ये वे ही प्रभु है"। लग रहा था, कि सिन्धु से कमला प्रत्यक्ष रूप से गोचरीभूत हुई हैं। अथवा रघुसिंह की गृहिणी जानकी आई हुई

हैं। अथवा महालक्ष्मी या पार्वती पधारी हैं। अथवा वृन्दावन की मूर्तिमती सम्पत्ति आई हुई हैं। हो सकता है भागीरथी गंगा हों, अथवा रूपवती दया हो अथवा ये वे ही महेश को मोहित करने वाली महामाया हों। इस प्रकार सभी आपस में विचार-विमर्श करने लगे, परन्तु मोह के कारण कोई प्रभु को पहचान नहीं पाया। जिन्होने जीवनभर प्रभु को पहचान नहीं पाया। जिन्होंने जीवनभर प्रभु को देखा था, वे ही प्रभु को पहचानने में सम्पूर्णरूप से विफल रहे। दूसरों का क्या कहना, स्वयं आई भी उनको नहीं पहचान पाईं। आई ने कहा,—"संभवतः लक्ष्मी नृत्य करने के लिए आई हुई हैं?" अथवा अचिन्त्य अव्यक्त श्रीहरि महायोगेश्वरी भक्ति-स्वरूपा बनकर आये हैं।

(१२७) गौः भाः—वृन्दावन की सम्पत्ति—वार्षभानवी। श्रीराधा।

हर को मोहित करने वाले प्रभु के दर्शन में सभी मोह-रहित एवं सभी के चित्त में जननी-भाव—

महामहेश्वर हर ये रूप देखिया।
महामोह पाइलेन पार्वती लइया॥१३३॥
तबे ये नहिल मोह वैष्णव-सबार।
पूर्व अनुग्रह आछे, एइ हेतु तार॥१३४॥
कृपा-जलनिधि प्रभु हइला सबारे।
सबार जननी-भाव हइल अन्तरे॥१३५॥
परलोक हैते येन आइला जननी।
आनन्दे क्रन्दन करे आपना ना जानि'॥१३६॥
एइ मत अद्वैतादि प्रभुरे देखिया।
कृष्णप्रेम-सिन्धु-माझे बुलेन भासिया॥१३७॥

(१३३-१३७) प० अनु०—पार्वती के साथ महामहेश्वर हर ने उस रूप को देखकर महामोह प्राप्त किया था; फिर सभी वैष्णव मोहजाल में क्यों नहीं फँसे? इसका कारण यह है कि, प्रभु पहले ही सबके ऊपर अपना अनुग्रह किये हुये थे। कृपासागर के रूप में प्रभु ने सबके ऊपर अनुग्रह किया था। इस कारण सभी ने अन्तर में जननी-भाव को प्राप्त किया था। ऐसा लग रहा था, जैसे परलोक से जननी पधारी है। यह देखकर अपने आपको भूलकर सभी आनन्द में क्रन्दन करने लगे। इस प्रकार से प्रभु का रूप देखकर अक्षैत आदि सभी जन कृष्णप्रेम के सागर मे बहने लगे।

(१३३) गौः भाः—तथ्य-भाः ८/१२/१२-२५ के श्लोक समूह द्रष्टव्य हैं।

जगज्जननी के भाव में विश्वम्भर का नृत्य—

जगत्-जननी-भावे नाचे विश्वम्भर।
समय-उचित गीत गाय अनुचर॥१३९॥

(१३८) प० अनु०—जगज्जननी के भाव में विश्वम्भर नृत्य कर रहे थे और सब अनुचर समयोचित गीत गा रहे थे।

प्रभु का भाव समझने में सभी की असमर्थता एवं इस कारण विभिन्न धारणाएँ—

हेन दढ़ाइते केह नारे कोन जन।
कोन् प्रकृतिर भावे नाचे नारायण?१३९॥
कखनओ बलये,—"द्विज, कृपा कि आइला?"
तखन बुझिये येन विदर्भेर बाला॥१४०॥
नयने आनन्द-धारा देखिये यखन।
मूर्तिमती गंगा येन बुझिये तखन॥१४१॥
भावोवेशे यखन वा अट्ट अट्ट हासे।
महाचण्डी हेन सबे बुझेन प्रकाशे॥१४२॥
ढलिया ढलिया प्रभु नाचये यखने।
साक्षात् रेवती येन कादम्बरी-पाने॥१४३॥
क्षणे बले,—"चल बड़ाइ, याइ वृन्दावने।"
गोकुल-सुन्दरी-भाव बुझिये तखने॥१४४॥

वीरासने क्षणे प्रभु बसे ध्यान करि'।
सबे देखे येन महाकोटि-योगेश्वरी॥१४५॥
अनन्त ब्रह्माण्डे यत निज शक्ति आछे।
सकल प्रकाशे प्रभु रुक्मिणीर काचे॥१४६॥

(१३९-१४६) प० अनु०—कोई भी सही ढंग से निर्णय नहीं ले पा रहा था कि, कौन-सी प्रकृति के भाव में नारायण नृत्य कर रहे हैं? वे कभी कहते,—"हे द्विज, क्या कृष्ण आ गये?" तब यह पता चलता कि विदर्भकुमारी (रुक्मिणी) हैं जब नेत्रों में आनन्दधारा बहती हुई दिखाई देती, तब यों लगता जैसे मूर्त्तिमती गंगा हैं। भावावेश में आकर जब अट्टहास करते, तब सभी को लगता कि महाचण्डी का प्रकाश हुआ है। जब प्रभु झूम-झूमकर नृत्य करते थे, तब लगता था कि कादम्बरी पीती हुई साक्षात् रेवती हैं। वे क्षण में कहते, —"चलो बड़ाइ, वृन्दावन चलें।" तब समझ में आता कि वे गोकुल-सुन्दरी के भाव में हैं। क्षण में प्रभु ध्यान-मग्न होकर वीरासन में विराजमान हो जाते; तब सभी को ऐसा दिखाई देता जैसे कोई महाकोटि योगेश्वरी बैठी हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड में प्रभु की अपनी जितनी भी शक्तियाँ हैं, उन सबका प्रकाश प्रभु ने रुक्मिणी के रूप में किया।

(१३९) गौः भाः—दढ़ाइते—दृढ़ निश्चय करने में।

(१४०) गौः भाः—विदर्भीर बाला—विदर्भराज-नन्दिनी, रुक्मिणी।

चिट्ठी के साथ श्रीकृष्ण के निकट प्रेरित ब्राह्मण के लौटने पर रुक्मिणी ने जिस प्रकार उनसे श्रीकृष्ण के आगमन के विषय में प्रश्न किया था, महाप्रभु ने भी रुक्मिणी के भाव में विभाजित होकर उसी प्रकार से प्रश्न किया।

(१४३) गौः भाः—रेवती—श्रीबलदेव-शक्ति।

(१४६) गौः भाः—रुक्मिणी अंशिनी होने के कारण सभी प्रकाशमयी नारियों की आकर वस्तु हैं। उन अंशिनी के अंश-कलासमूह विभिन्न नारियों के रूप में चतुर्दश भुवन में शक्तिमत् तत्त्व अंशी श्रीकृष्ण के प्रकाशविशेष के रूप में (स्वांश-विभिन्नाशं-प्रकाशभेद से) सेवाभिनय करते रहते हैं।

प्रभु-द्वारा आद्यशक्ति का वेश धारण करने का उद्देश्य—

व्यपदेशे महाप्रभु शिखाय सबारे।
पाछे मोर शक्ति कोन जने निन्दा करे॥१४७॥
लौकिक वैदिक यत किछु कृष्णशक्ति।
सबार सम्माने हय कृष्ण दृढ़ भक्ति॥१४८॥
देव-द्रोह करिले कृष्णेर बड़ दुःख।
गणसह कृष्णपूजा करिले से सुख॥१४९॥
ये शिखाय कृष्णचन्द्र, सेइ सत्य हय।
अभाग्य पापिष्ठ-मति ताहा नाहि लय॥१५०॥

(१४७-१५०) प० अनु०—इस अभिनय के बहाने से महाप्रभु ने सबको यह शिक्षा दी है कि कोई भी उनकी किसी शक्ति की निन्दा न करे। लौकिक, वैदिक जितनी भी कृष्णशक्तियाँ हैं, उन सबका सम्मान करने से कृष्ण में दृढ़ भक्ति होती है। देवताओं के प्रति द्रोहपूर्ण आचरण करने से कृष्ण को बहुत दुःख होता है। गणसहित कृष्ण की पूजा करने से उन्हें सुख मिलता है। कृष्णचन्द्र जो कुछ भी सिखाते हैं, सब सत्य है। भाग्यहीन पापिष्ठजनों की बुद्धि उस शिक्षा को ग्रहण प्राप्त नहीं करती है।

(१४७) गौः भाः—निःशक्तिक (शक्ति-विहीन) मायावाद आध्यक्षिक विचार से परिपुष्ट है। विष्णुशक्ति को भी रूद्रशक्ति मानते हुये निर्विशेषवादी शक्ति को त्याग देते

हैं। जड़ सविशेषवादी लोग ब्रह्माण्डरूपी भांड को अपने उदर में समाये रखनेवाली जगज्जननी महेश-मोहिनी को प्रापंचिक सुख-दुःख की अधिष्ठात्री जानकर उनमें दोषों को आरोप करते हैं। अन्तरंगा स्वरूपशक्ति को कोई मायाशक्ति से 'अभिन्न' समझकर उसकी निन्दा न कर बैठे,—इस विचार से श्रीगौरसुन्दर ने जीवों को शिक्षा देने के लिए शक्ति-शक्तिमान् की अभिन्नता की जानकारी देने के उद्देश्य से रुक्मिणी के रूप में सेवाभिनय किया था।

(१४८) गौः भाः—चतुर्दश भुवन में जितनी भी कृष्णशक्तियाँ हैं, एवं वेद में वर्णित अधोक्षज (इन्द्रियज्ञान के अतीत) कृष्ण की जितनी शक्तियाँ हैं, इन सबके प्रति सम्मान प्रदर्शन करने से कृष्ण में दृढ़ भक्ति होती है।

(१४९) गौः भाः—देवगण प्रपंच में अपने-अपने अधिकार के अनुरूप भोगकार्य में बद्धजीवों के आदर्श होते हैं। सभी कृष्ण की आज्ञा के अनुसार परिचालन कार्य सम्हालने के लिए त्रिदिव-क्षेत्र (स्वर्ग) एवं मरलोक (मृत्युलोक) में विचरण करते हैं। वे कृष्णपूजा के चलचित्र हैं। परिकर-सहित कृष्ण-सेवा करने से कृष्ण को विशेष सुख मिलता है। तो सात्विक अंहकार युक्त दृश्य देवादि-नायक-समूह के प्रति विद्वेष रखते हैं, उन लोगों को विष्णुभक्तिपरायण के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता। बाहरी जगत् की कामनाओं को त्यागकर जब प्रार्थना की जाती है, तब उन लोगों की स्वरूपगत प्रार्थना में वासना की ताड़ना (बेचैनी) परिलक्षित नहीं होती है। आध्यक्षिक ज्ञान से विमुक्त जीवगण परिकर वैशिष्ट्य के विचार का अनुसरण करके प्रापंचिक दर्शन से विमुक्त होते हैं। उस प्रकार के महाभागवत ही कृष्ण के सुखविधान में सभी प्रकार से समर्थ हैं।

इस कविता का पाठ करके यदि कोई प्रापंचिक इन्द्रिय-तर्पण के लिए उद्यत (व्यस्त) होकर देवादि प्राणियों से अपनी-अपनी इन्द्रियों की परितृप्ति के उपादान (साधन) संग्रह करने में समर्थ होता है, तो इससे कृष्ण को सुख नहीं मिलता है। प्रपंच को भोग करने के लिए उन्मत्त (पागल) जनगण देवताओं एवं मनुष्यों को भोग करने के उद्देश्य से अपने आपको भोगी-सज्जा में सज्जित करते हैं, इस प्रकार कृष्णसेवा से विमुखता के कारण कृष्ण को बड़ा दुःख होता है एवं ऐसी देवपूजा को कपट अथवा देवविरोधमात्र जानकर कृष्ण को इससे सन्तुष्ट नहीं होते हैं। भगवद्भक्त के लक्षणों में—श्रीमद्भागवत में श्रद्धा एवं इससे अलग विषयों में अनिन्दा ही विहित हुई है अनिन्दा का विधान का विधान देखकर उन विषयों में प्रमत्त हो जाने की विधि भक्ति-शास्त्र में नहीं है, परन्तु उन सब बातों में प्रमत्त होकर उन्हें बढ़ावा देने की इच्छा करना भक्ति के विरूद्ध द्रोह आचरण के समान है। सब प्राणियों में भगवद्-भाव दर्शन एवं निर्मुक्त (बन्धन-रहित) विचार में उनके लिए उन देवताओं को भगवद् परिकर-रूप समझना आवश्यक है। "ये तु तत्र श्रीभगवत्पीठावरण-पूजायां गणेशदुर्गाद्या वर्तन्ते ते हि विष्वक्सेनादिवत् भगवतो नित्यवैकुण्ठ-सेवकाः। ततश्च ते गणेशदुर्गाद्या येऽपरे मायाशक्त्यात्मका गणेशदुर्गाद्यास्ते तु न भवन्ति। 'न यत्र माया किमुता परे' इति। ततो भगवत्-स्वरूपभूत-शक्त्यात्मका एव ते। सा हि मायांशरुपा तदधीने प्राकृतेऽस्मिन् लोके मन्त्ररक्षा-लक्ष्मणसेवार्थं नियुक्ता चिच्छक्त्यात्मकदुर्गाया दासीयते, न तु सेवाधिष्ठात्री"। श्रीमद् जीव गोस्वामी प्रभु के द्वारा विशेष रूप से लिखित इस भक्तिसन्दर्भ पर विचार करने एवं भाः ११/२७/२८-२९

श्लोक का अनुशीलन करने से इस विषय में और कोई संशय नहीं रहता।

प्रभु के नृत्य का दर्शन-श्रवण-
कीर्तनकारी में प्रेमभाव—

सर्व-शक्ति-स्वरूपे नाचये विश्वम्भर।
केह नाहि देखे हेन नृत्य मनोहर॥१५१॥
ये देखे, ये शुने, येवा गाय प्रभु-संगे।
सबेइ भासेन प्रेम-सागर-तरंगे॥१५२॥
एक वैष्णवेर यत नयनेर जल।
सेइ येन महा-वन्या व्यापिल सकल॥१५३॥
आद्याशक्ति-वेषे नाचे प्रभु गौरसिंह।
सुखे देखे ताँ'र यत चरणेर भृंग॥१५४॥
कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रुर अन्त नाइ।
मूर्त्तिमती भक्ति हैला चैतन्य-गोसाईं॥१५५॥
नाचेन ठाकुर धरि' नित्यानन्द-हात।
से कटाक्ष-स्वभाव बलिते शक्ति कात॥१५६॥

(१५१-१५६) प० अनु०—सभी शक्ति-स्वरूपों में विश्वम्भर नृत्य कर रहे थे। ऐसा मनोहर नृत्य पहले कभी किसी ने नहीं देखा था। देखने वाले, सुनने वाले और प्रभु के साथ कीर्तन करने वाले—सभी प्रेमसागर की लहरों में बह रहे थे। ऐ वैष्ाव की आँखों में से जितना जल निकल रहा था, लगता था, मानों वही महा-बाढ़ के रूप में चारों ओर व्याप्त हो रही है। आद्याशक्ति के वेश में प्रभु गौरसिंह नृत्य कर रहे थे। उनके चरण-कमलों के सभी भृंग आनन्द से उस नृत्य को देख रहे थे। उस समय उनके कम्प, स्वेद, पुलक, अश्रु आदि का अन्त नहीं दिखाइ दे रहा था। चैतन्य-गोसाईं उस समय मूर्तिमती भक्ति बने हुये थे। नित्यानन्द का हाथ पकड़कर ठाकुर नृत्य कर रहे थे। नृत्य करते समय उनके कटाक्ष-स्वभाव का वर्णन करने की शक्ति किसमें है?

(१५४)गौ भाः— आद्याशक्ति— आध्यक्षिक-विचार से बहिरंगा-शक्ति से उत्पन्न जगत् में मूलशक्ति को 'आद्याशक्ति' कहा जाता है। खंडकाल के अभ्यन्तर में पूर्वापर-विचार के अनुसार ब्रह्माण्डजननी 'आद्याशक्ति' के नाम से जानी जाती है। नित्याशक्तिमत् तत्त्व भगवान् की शक्तियों का तीन प्रकार का परिचय मिलता है। नश्वर जगत्-परिचालनी शक्ति, उद्भावनी शक्ति एवं विनाशिनी शक्ति—ये भगवान् की बहिरंगा शक्ति-मात्र हैं। वे आवरणी एवं विक्षेपात्मिका वृत्तिद्वय की परिचालिका हैं। इसके अतिरिक्त भगवान् की अन्तरंगा शक्ति नित्य वैकुण्ठ जगत् की प्रकाशकारिणी है। बहिरंगा शक्ति से उत्पन्न जगत् में पंचक्लेशों एवं तीन गुणों की परस्पर विवदमान अवस्था में अवस्थिति है; किन्तु अन्तरंग शक्ति से उत्पन्न नित्य स्वयं प्रकाशशील जगत् में आनन्दमयी अवस्थाओं का विराम नहीं है। इन अन्तरंगा एवं बहिरंगा शक्तिद्वय के अभ्यन्तर में लक्ष्य करने योग्य एक और भी शक्ति विद्यमान है—जो कभी अन्तरंगा शक्ति के अधीन रहती है, तो कभी बहिरंगा शक्ति का अनुसरण करने में व्यस्त हो जाती है।

भगवान् गौरसुन्दर ने आद्याशक्ति की कार्यावली को ग्रहण करके लास्य (मनोरम) नृत्य-प्रदर्शन का अभिनय किया था। उन्होंने अन्तरंगा-शक्तिप्रकाश-स्वरूपा ॅरुक्मिणी के वेश में भगवद्-उपासना प्रकट करके प्रापंचिक दर्शन में उस शक्ति का ही जागतिक अनुबन्ध प्रदर्शित किया था।

श्रीमान् पण्डित का अभिनय—

सम्मुखे देउटि धरे पण्डित श्रीमान्।
चतुर्द्दिक हरिदास करे सावधान॥१५७॥

(१५७) प० अनु०—सामने श्रीमान् पण्डित प्रदीप धारण किये हुये थे और हरिदास चारों ओर सबको सावधान कर रहे थे।

(१५७) गौः भाः—देऽटि—प्रदीप, दीपक।

कृष्णवेश में नित्यानन्द का मूर्च्छित हो जाना एवं वैष्णवों का प्रेमक्रन्दन—

हेनइ समये नित्यानन्द हलधर।
पड़िल मूर्च्छित हइया पृथिवी-उपर॥१५८॥
कोथाय वा गेल बुड़ि-बड़ाइर साज।
कृष्णावेशे विह्वल हइला नागराज॥१५९॥
येइ मात्र नित्यानन्द पड़िला भूमिते।
सकल वैष्णवगण कान्दे चारिभिते॥१६०॥
कि अद्भुत हैल कृष्णप्रेमेर क्रन्दन।
सकल कराय प्रभु श्रीशचीनन्दन॥१६१॥
का'रो गला धरि' केह कान्दे उच्चराय।
काहारो चरण धरि' केह गड़ि' याय॥१६२॥

(१५८-१६२) प० अनु०—सबके सब उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। इसी अवस्था में गौरांग श्रीहरि ने कहा,—'मेरा स्तव-पाठ करो'। सभी ने समझ लिया कि, प्रभु जगज्जननी के आवेश में हैं। इसे देखकर सब स्तव-पाठ करने लगे और महाप्रभु इसे सुनने लगे। कोई लक्ष्मी का स्तव पढ़ रहा था, तेा कोई चंडी की स्तुति कर रहा था। सभी अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति-पाठ कर रहे थे।

(१५९) गौः भाः—नागराज-शेषदेव, नित्यानन्द प्रभु शेषदेव के अंशी हैं। इसलिए उन्हें इस नाम से सम्बोधित किया गया है।

गोपीनाथ को लेकर महाप्रभु का विष्णु के सिंहासन पर आरोहण—

क्षणेके ठाकुर गोपीनाथे कोले करि'।
महालक्ष्मी-भावे उठे खट्टार उपरि॥१६३॥

(१६३) प० अनु०—एक क्षण में ठाकुर गौरहरि महालक्ष्मी के भाव में गोपीनाथ को अपनी गोद में लेकर सिंहासन के ऊपर विराजमान हो गये।

भक्तों को स्तव-पाठ करने के लिए प्रभु का आदेश एवं भक्तो-द्वारा विभिन्न भावों में स्तवन—

सम्मुखे रहिला सबे योड़हस्त करि'।
'मोर स्तव पड़' बले गौरांग श्रीहरि॥१६४॥
जननी-आवेश बुझिलेन सर्वगणे।
सेइरूपे पड़े स्तुति, महाप्रभु शुने॥१६५॥
केह पड़े लक्ष्मी-स्तव, केह चंडी-स्तुति।
सबे स्तुति पड़े याहार येन मति॥१६६॥

(१६४-१६६) प० अनु०—सबके सब उनके सामने हाथ जोड़कर खडे हो गये। इसी अवस्था में गौरांग श्रीहरि ने कहा,-'मेरा स्तव-पाठ करो'। सभी ने समझ लिया कि, प्रभु जगज्जननी के आवेश में हैं। इसे देखकर सब स्तव-पाठ करने लगे और महाप्रभु इसे सुनने लगे। कोई लक्ष्मी का स्तव पढ़ रहा था, तो कोई चंडी की स्तुति कर रहा था। सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति-पाठ कर रहे थे।

(१६६) गौः भाः—सात्विक अंहकार में अवस्थित जनगण श्रीगौरसुन्दर के शक्तिवेष का दर्शन करके एवं उनको 'नारायणी-महालक्ष्मी' जानकर उनका स्तवन करने लगे तो किसी-किसी ने तापस अंहकार के अभिमान से चण्डिका-स्तोत्र के द्वारा उनका अभिनन्दन किया।

मालशी राग—

''जय जय जगतजननी महामाया।
दुःखित जीवेर देह' रांगा–पदछाया॥१६७॥
जय जय अनन्त ब्रह्माण्ड–कोटीश्वरि!
तुमि युगे युगे धर्म राख अवतरि'॥१६८॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरे तोमार महिमा।
बलिते ना पारे, अन्य केवा दिवे सीमा॥१६९॥
जगत्–स्वरूपा तुमि, तुमि सर्व–शक्ति।
तुमि श्रद्धा,, दया, लज्जा, तुमि विष्णुभक्ति॥१७०॥
यत विद्या—सकल तोमार मूर्त्तिभेद।
'सर्व–प्रकृतिर शक्ति तुमि' कहे वेद॥१७१॥
निखिल–ब्रह्माण्डगणेर तुमि' माता।
के तोमार स्वरूप कहिते पारे कथा?१७२॥
त्रिजगत–हेतु तुमि गुणत्रयमयी।
ब्रह्मादि तोमारे नाहि जाने, एइ कहि॥१७३॥
सर्वाश्रया तुमि, सर्वजीवेर वसति।
तुमि आद्या, अविकारा परमा प्रकृति॥१७४॥
जगत जननी तुमि द्वितीयरहिता।
महीरूपे तुमि सर्वजीव पाल' माता॥१७५॥
जलरूपे तुमि सर्व–जीवेर जीवन।
तोमा सङरिले खण्डे अशेष बन्धन॥१७६॥
साधु–जन–गृहे तुमि लक्ष्मी मूर्त्तिमती।
असाधुर घरे तुमि कालरूपाकृति॥१७७॥
तुमि से कराह त्रिजगतेर सृष्टि स्थिति।
तोमा ना भजिले पाय त्रिविध दुर्गति॥१७८॥
तुमि श्रद्धा वैष्णवेर सर्वत्र–उदया।
राखह जननी दिया चरणेर छाया॥१७९॥
तोमार मायाय मग्न सकल संसार।
तुमि ना राखिले माता के राखिवे आर॥१८०॥
सबार उद्धार लागि' तोमार प्रकाश।
दुःखित जीवेर माता कर निज दास॥१८१॥
ब्रह्मादिर वन्द्य तुमि सर्वभूत–बुद्धि।
तोमा सङरिले सर्व–मन्त्रादिर शुद्धि॥''१८२॥
एइ मत स्तुति करे सकल महान्त।
वर–मुख महाप्रभु शुनये नितान्त।
पुनः पुनः सबे दण्ड–प्रणाम करिया।
पुनः स्तुति करे श्लोक पड़िया पड़िया॥१८४॥
''सबेइ लइल माता तोमार शरण।
शुभ दृष्टि कर तोर पदे रहु मन॥''१८५॥
एइ मत सबेह करेन निवेदन।
ऊर्द्धबाहु करि' सबे करेन क्रन्दन॥१८६॥

(१६७–१८६) प० अनु०—"जगत् की जननी महामाया की जय हो, जय हो। हे माते! दुःखित जीवों को रातुल (आलता–रंजित) चरणों की छाया प्रदान करें। अनन्त ब्रह्माण्ड कोटीश्वरी की जय हो, जय हो। आप युग–युग में अवतरण करके धर्म की रक्षा करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी आपकी महिमा वर्णन नहीं कर पाते हैं, दूसरा कोई उसकी सीमा कैसे दिखलायेगा? आप जगत्–स्वरूपा हैं, आप सर्व–शक्ति हैं, आप श्रद्धा, दया और लज्जा हैं, आप ही विष्णुभक्ति हैं। सारी विधाएँ आपकी ही भिन्न–भिन्न मूर्त्तियाँ हैं, 'आप सम्पूर्ण प्रकृति की शक्ति हैं'—यही वेद कहते हैं। आप निखिल ब्रह्माण्डों की माता हैं। आपके स्वरूप की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? आप त्रिजगत् (तीनों लोकों) की कारण–स्वरूपा हैं, आप त्रिगुण ामयी हैं। यही कहा जाता है कि, ब्रह्मा आदि भी आपको नहीं जानते हैं। आप सर्वाश्रया हैं, आप में सब जीवों को निवास है। आप जगत् की जननी हैं आप–जैसा दूसरा कोई नही है। हे माता, पृथ्वी के रूप में आप सारे जीवों की जीवन–स्वरूपा हैं। आप का स्मरण करने से अशेष बंधनों से छूटकारा मिलता है। साधुजनों के घर में आप मूर्त्तिमती लक्ष्मी हैं। असाधुओं के घर में आप कालरूपाकृति

हैं। आप ही त्रिजगत् की सृष्टि, स्थिति आदि करवाने वाली हैं। आपका भजन नहीं करने से त्रिविध दुर्गति को प्राप्त होना पड़ता है। आप सभी स्थानों पर उदय होने वाली वैष्णवों की श्रद्धा-स्वरूपा हैं। हे जननी! अपने चरणों की छाया में हमारा लालन-पालन कीजिए। सभी संसार आपकी माया में मुग्ध है। आपके रक्षा न करने पर कौन रक्षा करेगा? सबका उद्धार करने के लिए आपका प्रकाश हुआ है। हे माता, दुःखित जीवों को अपना दास बना लीजिए। ब्रह्मादि की भी वन्दनीया आप सभी भूतों की बुद्धिस्वरूपा हैं। आपका स्मरण करने से सभी मन्त्र शुद्ध हो जाते हैं।" इस प्रकार से सभी महत्जनों ने स्तुति की। वर प्रदान करने से सभी महत्जनों ने स्तुति की। वर प्रदान करने के लिए उन्मुख महाप्रभु ने सबको जी भरकर सुना। बारम्बार दण्डवत् प्रणाम निवेदन करते हुये श्लोक उच्चारण-पूर्वक सभी (भक्त) फिर से स्तुति करने लगे। "हे माते! सभी ने आपके चरणों में शरण ग्रहण की है। आप शुभ दृष्टि प्रदान कीजिए, ताकि आपके चरणों में हमारा मन लगा रहे।" इस प्रकार सभी ने निवेदन किया और हाथ ऊपर उठाकर क्रन्दन करने लगे।

(१६६) गौः भाः—सात्विक अहंकार में अवस्थित जनगण श्रीगौरसुन्दर के शक्तिवेष का दर्शन करके एवं उनको 'नारायणी महालक्ष्मी' जानकर उनका स्तवन करने लगे। किसी-किसी ने तापस अंहकार के अभिमान से चण्डिका-स्तोत्र के द्वारा उनका अभिनन्दन किया।

(१६७) गौः भाः—जगज्जननी महामाया ऐहिक भोगपरायण जीवों को नानाप्रकार के क्लेश प्रदान करती हैं। इन क्लेशों से छुटकारा पाने के लिए वे उनके शरणापन्न होते हैं, परन्तु उस समय यह नहीं समझ पाते हैं कि, वास्तव में, क्लेशों से छुटकारा मिलने के बाद उन लोगों को कौन-सी स्थिति में अवस्थान करना पड़ेगा। भगवान् के शरणागत जीवों को ही महामाया आद्याशक्ति से कृष्णसेवा की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। ऐकान्तिक कृष्णसेवा के प्रभाव से ही आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति होती है। इसे केवल भगवान् के शरणागतजन ही समझ सकते हैं। नन्दगोपसुत की सेवा ही जीवों के लिए परम हितकारिणी है और कात्यायनी के निकट प्रार्थनीय विषय भी यही होता है।

(१६९) गौः भाः—आप—अनन्तकोटी ब्रह्माण्डों की ईश्वरी हैं, आपकी शक्ति से ही युगोचित धर्म संरक्षित होता है। जन्म-स्थिति-लय के आधिकारिक देवत्रय भी आपकी महिमा का कीर्तन करने में असमर्थ हैं। इसलिए उनके अनुगत जीव आपकी महिमा की सीमा का निरूपण करने में किस प्रकार से समर्थ हो सकते हैं?

(१७०) गौः भाः—भगवत्-सन्दर्भ की ११७ संख्या में उल्लिखित है—"श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्तया कीर्त्या तुष्टयेलयोर्जया। विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम्॥" भाः १/३/१ श्लोक की व्याख्या में श्रीजीवगोस्वामी प्रभु—"शक्तिर्महालक्ष्मीरूपा स्वरूपभूता। 'शक्ति'-शब्दस्य प्रथमवृत्त्याश्रयरूपा भगवदन्तरंगमहा-शक्तिः माया च बहिरंगा शक्तिः। श्रयादयस्तु तयोरेव वृत्तिरूपाः। तासां सर्वासामपि प्राकृता-प्राकृतता-भेदेन श्रुयमाणत्वात्। ततः श्रियेत्यादौ शक्ति-वृत्तिरूपया मायावृत्तिरूपया चेति सर्वत्र ज्ञेयम्। तत्र पूर्वस्या भेदः-श्रीर्भागवतीसम्पत्; न त्वियं महालक्ष्मीरूपा, तस्या मूलशक्तित्वात्। तदग्रे विवरणीयम्। उत्तरस्या भेदः—श्रीर्जागतीसम्पत्; इमामेवाधिकृत्य

"न श्रीविरक्तमपि मां विजहाति" इत्यादि वाक्यम्; यत उक्तं चतुर्थशेषे श्रीनारदेन—तत्रेला भूस्तदुपलक्षणत्वेन लीलापि। तत्र च पूर्वस्या भेदो—विद्या तत्वावबोधकारणं संविदाख्यायातस्तद् वृत्तेवृत्तिविशेषः। उत्तरस्या भेदस्तस्या एव विद्यायाः प्रकाशद्वारम्। अविद्या-लक्षणो भेदः—पूर्वस्या। भगवति विभुत्वादि विस्मृतिहेतुर्मातुर्मातृभावादिमय प्रेमानन्दवृत्तिविशेषः। उत्तरस्याः स भेदः—संसारिण ाां स्वरूप-विस्मृत्यादिहेतु-रावणात्मक-

वृत्तिविशेषः। उत्तरस्याः स भेदः—संसारिणां स्वरूप-विस्मृत्यादिहेतु-रावरणात्मक-वृत्तिविशेषः; च-कारात्, पूर्वस्याः सन्धिनी-संविद्-ह्लादिनी-भ ाक्त्याधार-

शक्तिमूर्त्तिविमला-जया-योगा-प्रह्वीशानानुहादयश्च ज्ञेयाः। अत्र सन्धिन्येव सत्या जयैवोत्कर्षिण ी, योगैव योगमाया, संविदेव ज्ञानाज्ञानशक्तिः शुद्धसत्त्वंचेत्ति ज्ञेयम्। प्रह्वी विचित्रानन्तासामर्थ्यहेतुः, ईशाना सर्वाधिकारिता-शक्तिहेतुरिति

भेदः। एवंमुत्तरस्याश्च यथायथमन्या ज्ञेयाः। तदेवमप्यत्र माया-वृत्तयोर्न विव्रियन्ते, —बहिरंगसेवित्वात् मूले तु सेवांशमात्रयाधाण्येन गणिताः—बहिरंग-सेवित्वंच तस्या भगवदंशभूतपुरुषस्य विदूरवर्त्तितयैवाश्रितत्वात्। अथवा मूलपद्ये शक्त्येति सर्वत्रैव विशेष्यपदम। श्रीमूर्लरूपा; पुष्टयादस्यदयस्तदंशा; विद्या ज्ञानम्; आ समीचीना विद्या भक्तिः—राजविद्या राजगुह्यम—इत्याद्युक्तेः; माया बहिरंगा, तद्वृत्तयः श्रयादयस्तु पृथगज्ञेयाः; शिष्टं समम्। ततश्चात्र शुद्धभगवत्-प्रकरणे स्वरूपशक्ति-

वृत्तिष्वेव गणनायां पर्यवसितासु विवेचनीयमिदम्।"

(१७१) गौः भाः—आप विष्णुभक्ति स्वरूपा हैं। इसलिए सभी विधाएँ—आपका ही प्रकाश-भेद हैं। शक्तिमान् के सभी स्वभावों की आप ही शक्ति (अर्थात् कारण स्वरूपा) हैं; वेदशास्त्रों मे चिन्मयी शक्ति को ही 'सभी प्राकृत सृष्टि का बल' कहा गया है।

(१७२-१७४) गौः भाः—ब्रह्माण्ड और वैकुण्ठ के बीच यही अन्तर है कि, वैकुण ठ—स्वप्रकाशवस्तु हैं; और ब्रह्माण्ड—सृष्ट वस्तु है। ब्रह्माण्ड के जन्म, स्थिति एवं विनाश—काल के अधीन हैं, और वैकुण्ठ का अधिष्ठान नित्य—कालातीत है। वैकुण्ठ की माता नहीं है, पर ब्रह्माण्ड की जननी हैं; वे स्वरूपतः चिन्मयी शक्ति होकर भी गुणमय जगत् की सृष्टिकारिणी हैं। चिन्मयी शक्ति ही त्रिजगत का कारण है एवं त्रिगुणातीत होने पर भी आपको प्राकृत दृष्टि से त्रिगुणमयी कहकर लोग विवर्त (भ्रम) का आश्रय करते हैं। आपके स्वरूप का वर्णन करने की शक्ति आध्यक्षिकों (इन्द्रियजन्य ज्ञान रखने वालों) में नहीं है।

(१७५-१७६) गौः भाः—आप—अद्वितीय चिच्छक्ति होकर भी प्रकाशविशेष में प्राकृत जगत् की जननी हैं। आपके प्रकाश-भेद से यह धरती बद्धजीवों के लिए माता के रूप में परिदृष्ट होती है। आप जलरूप में सभी जीवों की जीवनस्वरूपा हैं। आपकी चिन्मयी शक्ति का स्मरण करने से जीव अशेष या विशेष? प्रकार की मायाशक्तियों से उत्पन्न जागतिक धारणाओं से विमुक्त होकर विवर्त (भ्रम) को त्याग देने में समर्थ होते हैं।

(१७७) गौः भाः—भगवतसेवा-परायण वैष्णवों के घर में आप लक्ष्मी की मूर्त्ति में विराजमान रहती हैं, परन्तु विष्णुसेवा-रहित भोगी के घर में आप ही उस जीव को अशेष प्रकार के बंधनों में आबद्ध करके अपनी आवरणी एवं विक्षेपात्मिका वृत्तिद्वय के द्वारा विमोहित करके एवं खण्डकाल के अधीन बनाकर उनको विनष्ट कर देती हैं।

(१७८) गौः भाः—आपकी चिन्मयी शक्ति वैकुण्ठ में नित्य विराजमान रहते हुये भी

स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल इत्यादि लोकों में सृष्टि, स्थिति एवं विनाश का साधन करके नश्वरता उत्पादन करती है। आपकी चिन्मयी शक्ति की अधीनता में सेवापरायण न होने पर जीव आध्यात्कि-आदि त्रिविध दुर्गतियों को प्रापत करता है।

(१७९) गौः भाः—विष्णुभक्तिपरायण सेवोन्मुख जन के निकट आप श्रद्धा के रूप में उदित होकर जीवों की भक्ति को बढ़ाती हैं। जिनके प्रति आप निर्दयी होती हैं, उनको कृष्णसेवा से विमुख करके भोगकामनाओं में प्रमत्त कर देती हैं। तब वे आपको केवल कामना-तर्पणकारिणी के रूप में जानते हैं। परन्तु आप जिन पर दया करती हैं, उनके लिए आप शुभचिन्तक बनकर भोग्या होने के बदले सेव्या के रूप में सामने आती हैं।

(१८०) गौः भाः—भक्तिहीन जगत् आपकी माया में आबद्ध होकर संसार में भ्रमण करके कष्ट पाता है। सेव्या बनकर आपके जगज्जीवों की रक्षा नहीं करने पर वे अबोध पुत्रगण आपको पूजनीया के रूप में ग्रहण नहीं कर पाते हैं, इसके फलस्वरूप वे अष्टपाश में आबद्ध रहते हैं और भगवान् के शरणापन्न नहीं हो सकते हैं।

(१८१) गौः भाः—जगत् के सभी मुमुक्ष व्यक्ति आपकी आवरणी एवं विक्षेपात्मिका वृत्तिद्वय के द्वारा निर्यातित (ताड़ित) होकर वासनाओं से पूरी तरह मुक्त होने के लिए उद्धार की कामना करते हैं। उन सब सेवोन्मुख जीवों की शुभचिन्तक बनकर आप उन लोगों को त्रिविध दुःखों से मुक्ति दिलाती हैं एवं कृष्णसेवोन्मुखता के लिए उपदेश प्रदान करती हैं।

(१८२) गौः भाः—सभी देवता आप की ही पूजा किया करते हैं। गायत्री देवी संकल्प-विकल्पात्मक विचार से मानव को उन्मुक्त करके बुद्धियोग प्रदान करती हैं। आपका स्मरण करने से सभी प्रकार के मनोधर्मजीवियों की चंचलता शोधित होती है।

(१८३) गौः भाः—वरमुख—वरदान के लिए उन्मुख।

(१८७) प० अनु०—घर में सभी पतिव्रतागण क्रन्दन कर रही थीं, उस प्रकार चन्द्रशेखर का भवन आनन्द-स्वरूप हो गया।

(१८८-१९२) प० अनु०—सभी जन आनन्द में निमग्न थे। किसी को बाहर की सुधबुध नहीं थी। उसी समय रात का अन्त हो गया। आनन्द में निमग्न लोगों को यह पता भी नहीं चल पाया कि रात का अवसान हो चुका है और दारुण सूर्यदेव का प्रवेश हो गया है। रात बीत जाने के साथ-साथ नृत्य का भी समापन हो गया। इसे देखकर सभी ने ऐसा अनुभव किया, जैसे कोई महाबाण उनके हृदय में बिद्ध गया हो। आश्चर्यचकित होकर सब चारों ओर देखने लगे। 'रात का अन्त' देखकर सब ऊँची आवाज में क्रन्दन करने लगे। कोटि पुत्रों को खो देने के शोक में भी इतना दुःख नहीं होता है, जितना दुःख उस समय वैष्णवों के हृदय में उत्पन्न हुआ।

(१९३-१९४) प० अनु०—जिस दुःख से सभी वैष्णवों ने सूर्य की ओर देखा, इससे सूर्य को भस्म हो जाना चाहिए था। परन्तु केवल प्रभु की कृपा के कारण ऐसा नहीं हुआ। इस आनन्द का ऐसा विषादभरा समापन होगा, इसे सोचकर ही गौरचन्द्र ने जानबूझकर ऐसा किया था।

पतिव्रताओं के द्वारा क्रन्दन एवं
शचीदेवी के चरण-धारण—

कान्दे सब-भक्तगण विषाद भाविया।

पतिव्रतागण कान्दे भूमेते पड़िया॥१९५॥
यत नारायणी–शक्ति–जगत–जननी।
सेइ सब हइयाछे वैष्णव–गृहिणी॥१९६॥
अन्योन्ये कान्दे सब पतिव्रतागण।
सबेइ धरेन शचीदेवीर चरण॥१९७॥

(१९५–१९७) प० अनु०—जगत् की नारी जातियाँ नारायणी–शक्ति का ही कायव्यूह हैं। वैष्णवगण अवैष्णवों की भाँति भोगबुद्धि से परिचालित होकर जगज्जननी नारायणी शक्ति को 'प्रभु' ज्ञान नहीं करते हैं।

सभी के प्रेमक्रन्दन से चन्द्रशेखर–भवन की प्रेममयता—

चौदिके उठिल विष्णुभक्तिर क्रन्दन।
प्रेममय हैल चन्द्रशेखर–भवन॥१९८॥

(१९८) प० अनु०—चारों ओर विष्णुभक्ति का क्रन्दन गूँज उठा। इससे चन्द्रशेखर का भवन प्रेम से परिपूर्ण हो गया।

रात बीत जाने पर गौर–नृत्य के अन्त में वैष्णवों का क्रन्दन एवं जगज्जननी के भाव में गौरसुन्दर के द्वारा स्तन–प्रदान के माध्यम से गीता–पाठ की सत्यता की स्थापना—

सहजेइ वैष्णवेर रोदन उचित।
जन्म जन्म जाने या'रा कृष्णेर चरित॥१९९॥
केह बले,—''आरे रात्रि केने पोहाइले?
हेन रसे केन कृष्ण वंचित करिले?''२००॥
चौदिके देखिया सब वैष्णव–रोदन।
अनुग्रह करिलेन श्रीशचीनन्दन॥२०१॥
माता–पुत्रे येन हय स्नेह अनुराग।
एइ मत सबारे दिलेन पुत्रभाव॥२०२॥
मातृभावे विश्वम्भर सबारे धरिया।
स्तन पान कराय परम स्निग्ध हइया॥२०३॥
कमला, पार्वती, दया, महा–नारायणी।
आपने हइला प्रभु जगतजननी॥२०४॥
सत्य करिलेन प्रभु आपनार गीता।
''आमि पिता, पितामह, आमि धाता, माता॥''२०५॥

(१९९–२०५) प० अनु०—क्रन्दन करना वैष्णवों के लिए उचित था। जन्म–जन्म से जो कृष्ण–चरित्र को जानते थे, उनके लिए यह स्वाभाविक था। कोई कहने लगा—"अरे रात क्यों बीत गई? हे कृष्ण! ऐसे आनन्द से आपने हमें वंचित क्यों कर दिया?" चारों ओर वैष्णवों का रोदन देखकर श्रीशचीनन्दन ने सब पर अनुग्रह किया। माता और पुत्र के बीच में जिस प्रकार का स्नेह अनुराग दिखाई देता है, उसी प्रकार का पुत्र भाव उन्होंने सभी के प्रति प्रदर्शित किया। विश्वम्भर ने मातृ भाव धारण करके परम स्निग्ध होकर सभी को अपना स्तन पान कराया। प्रभु ने अपने आप जगज्जननी का रूप धारण किया और कमला, पार्वती, दया, महा–नारायणी आदि के भाव में सबो स्नेह प्रदान किया। गीता की वाणी—"मैं पिता हूँ, पितामह हूँ, मैं धाता हूँ, मैं माता हूँ" को प्रभु ने इस प्रकार से सत्य कर दिया।

(१९९) गौः भाः—रोदन दो प्रकार का होता है,—आनन्दाश्रु–विसर्जन काल में उच्छ्वास और अभाव के कारण क्लेश–सहित कातर होकर अश्रु–विसर्जन के साथ चीत्कार। जगत् का दुःख देखते हुये वैष्णवों में दोनों भाव ही स्वाभाविक रूप से उदित होते हैं।

(२०४) गौः भाः—विषयविग्रह के रूप में भगवद् वस्तु पुरुषोत्तम हैं। वे सबके पालक हैं। आश्रयशक्ति सेवोन्मुखी होकर जिस काल में अपने लीला–वैचित्र्य का प्रदर्शन करती है, तब यह जीवों का स्वरूप विकसित

करती है और जिस समय वह आवरणी एवं विक्षेपात्मिका वृत्तिद्वय का परिचालन करती है, तब वह जीव–मोहन–कार्य का सम्पादन करती है एवं बद्धभाव में फँसे जीव उसी को परम आदरणीय वस्तु मानते हैं, तब वह जीवों के लिए पूजनीय भोग का आधार बनकर नश्वर मंगल प्रदान करती है। श्रीचन्द्रशेखर के भवन में विषय–विग्रह के आश्रयोचित्त मातृत्व–प्रकाश–लीला सभी भावों में अवस्थान के लिए अयोग्यता–निराशकारी होने पर भी वह विषयविग्रह भगवत्ता का अपना स्वरूप नहीं है, इसे दिखाने के लिए भगवान् ने भक्त का भाव अंगीकार किया था। शक्तिमत् तत्त्व ने श्रीगौरलीला में विभिन्न शक्तियों के अभिनय का आदर्शभिमान प्रदर्शित किया है। इसी कारण उन्हें आश्रय–जातीय बद्वजीव भोग्य व्यापारविशेष समझना उचित नहीं होगा। जगत् में जननीत्व का जो आदर्श प्रकटित हुआ है, उसमें यह दिखाई देता है कि, प्रसूत–सन्तति जननी के निकट जिस समय सेवा ग्रहण करती है, उस समय वह अपनी चेतनता का अनुकूल भाव दर्शाने में असमर्थ रहती है। जननी दासी की भाँति जिस समय पुत्र की सेवा करती है, उस समय पुत्र उनकी सेवा करने में सम्पूर्ण रूप से असमर्थ रहता है। जननी से सेवा–ग्रहण करने के अलावा जननी की सेवा करना उस समय उसके लिए संभव नहीं होता। पुत्र में जब अच्छी तरह से पुत्रज्ञान का उदय होता है, तब स्वयं प्रभु बनने का विचार लोभ उसमें प्रबल होता है। तब भी वह समझ नहीं पाता है कि, जो जननी जन्म से ही उसकी सेवा करती आ रही है, उसकी सेवा करके ऋण से मुक्त होना उसके लिए आवश्यक है। इस प्रकार का विचार प्रबल होने पर संसार को भोग करने में उसकी प्रवृत्ति और नहीं रहती है। परन्तु 'विष्णु' माया इतनी शक्तिसम्पन्ना है कि, सभी जीवों को वह इस प्रकार का अधिकार प्रदान नहीं करती है। भगवान् कभी भी सेवक–सेविका नहीं हो सकते हैं। वे सदैव प्रभु एवं भोगी हैं, उनके अनुगत शक्तिगण ही उनके सेवक–सेविका हैं। भगवान् को जो सेवक–सेविका के तत्त्व में परिणत करने की चेष्टा करते हैं, वे विष्णु–माया के द्वारा विमोहित होते हैं। विष्णु कभी भी बद्ध जीव की भोग्या–शक्ति नहीं हो सकते हैं। इसी कारण भगवान् की बहिरंगा–शक्ति से उत्पन्न जगत् को भोग्यभूमि समझते हुये तटस्थ–शक्ति से उत्पन्न जीव, जगत् के प्रभु बन बैठे हैं एवं शाक्तेय मतवाद की स्थापना करके वे परमार्थ–पथ से विदा ले चुके हैं। जड़ भोगों को ही जिस समय प्रयोजन समझा जाता है, उस समय बद्धजीव भगवान् को अपनी इन्द्रियभोग्य वस्तुओं के प्रबंधकर्ता के रूपा में स्थापित कर लेते हैं; और इस कारण भोग–रज्जु में आबद्ध हो जाते हैं। गौरसुन्दर के द्वारा भक्तभाव अंगीकार पूर्वक जगज्जननी के भाव में जिस लीला का प्रदर्शन हुआ हैं, उसके द्वारा यही प्रदर्शित किया गया है कि, शक्तिमद्–विष्णु की सेवा ही शाक्तेय मतवादियों की उपास्या मूला शक्ति की एकमात्र वृत्ति है। विष्णुवस्तु कभी भी शक्ति नहीं है। शक्ति सदैव भगवान् की आश्रिता है। सेवान्मुखिनी शक्ति–शक्तिमत् तत्त्व के लिए परम उपयोगिनी है, एवं बहिरंगा मायाशक्ति अन्तरंगा शक्ति के साथ मिलकर विपरीत भाव में शक्ति के परिचालन की लीला का प्रदर्शन करती है,—इसे परिपुष्ट करने के लिए ही गौरसुन्दर के द्वारा इस प्रकार की लीला का प्रकाश हुआ है।

(२०५) गौः भाः—भगवान्—वास्तव वस्तु हैं। भगवान् के अंश जीवों के साथ भगवान्

का नित्य सम्बन्ध है। भगवान्—विभुचिद् वस्तु हैं, उनके साथ सम्बन्धविशिष्ट सभी अणुचित् आश्रयजातीया शक्ति के अंशविशेष हैं। देश-काल-पात्र के विचार से भगवान् की विभिन्न शक्तियों को परिचालित करना उनकी मायाशक्ति का काम है। इन सब बातों को प्रदर्शन करने के लिए जीवों के मायिक परिचय के साथ स्वरूप-लक्षण से कोई सम्बन्ध न रहने पर तटस्थ-लक्षण में सभी सम्बन्ध वर्तमान हैं, इस बात की भी जानकारी दी है।

तथाहि (गीता ९/१७)—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः॥२०६॥

(२०६) अन्वयः—अहं (श्रीकृष्णः) अस्य (स्थिरचरस्य) जगतः (चतुर्दश भुवनस्य) पिता माता धाता पितामहश्च (पितृत्वेन धारकत्वेन पोषकत्वेन पितामहत्वेन चाहमेव स्थितः)।

(२०६) अनुवाद—मैं ही इस जगत् के पिता, माता, धारक, पोषक एवं पितामह के रूप में अवस्थित हूँ।

भाग्यवन्त पुरूष को ही स्तनपान में अधिकार—

आनन्दे वैष्णव-सब करे स्तनपान।
कोटि कोटि जन्म या'रा महाभाग्यवान्॥२०७॥

(२०७) प० अनु०—कोटि-कोटि जन्मों से जो महाभाग्यवान् थे, उन्हीं सब वैष्णवों ने आनन्द के साथ स्तन पान किया।

स्तनपान से सभी की प्रेममत्तता—

स्तनपाने सबार विरह गेल दूर।
प्रेमरसे सबे मत्त हइला प्रचुर॥२०८॥

(२०८) प० अनु०—स्तन पान के कारण सभी का विरह-दुःख दूर हो गया और सभी प्रेमरस में खूब मत्त हो गये।

गौरलीला की नित्यता—

ए सब लीलार कभु अवधि ना हय।
'आविर्भाव, तिरोभाव' वेदे मात्र कय॥२०९॥

(२०९) प० अनु०—इन सब लीलाओं का कभी अन्त नहीं होता है। वेद इनका वर्णन केवल 'आविर्भाव' एवं 'तिरोभाव' के रूप में करते हैं।

महाप्रभु-द्वारा इस प्रकार के अभिनय का कारण—

महाराज-राजेश्वर प्रभु विश्वम्भर।
एइ रंग करिलेन नदीया-भितर॥२१०॥
निखिल ब्रह्माण्डे यत स्थूल-सूक्ष्म आछे।
सब चैतन्येर रूप—भेद करे पाछे॥२११॥
इच्छाय करये सृष्टि, इच्छाय मिलाय।
अनन्त ब्रह्माण्ड सृष्टि करये लीलाय॥२१२॥
इच्छायमय महेश्वर इच्छा-काच काचे।
ता'न इच्छा नाहि करे, हेन कोन् आछे?२१३॥
तथापि ताँहार काच—सकलि सुसत्य।
जीव तारिवार लगि' ए सब महत्व॥२१४॥

(२१०-२१४) प० अनु०—प्रभु विश्वम्भर महाराज-राजेश्वर हैं। उन्होंने नदीया के भीतर ये आनन्द रचाया। इसका कारण यह है कि, निखिल ब्रह्माण्डों में जितनी भी स्थूल-सूक्ष्म वस्तुएँ हैं—वे सब चैतन्य के ही रूप हैं, —कोई इनमें भेद न करे। वे अपनी इच्छा के अनुसार सृष्टि करते है, इच्छा के अनुसार ध्वंस करते हैं। लीला में वे अनन्त ब्रह्माण डों का सृजन करते हैं। इच्छामय महेश्वर अपनी इच्छानुसार वेश ग्रहण करते हैं। ऐसा कौन है, जो उनकी इच्छानुसार न चलता हो? तथापि विभिन्न रूपों में उनके द्वारा

लीलाविलास रचना परम सुसत्य है। ये सब महानताएँ (महान लीलाएँ) जीवों का उद्धार करने के लिए ही हैं।

(२११) गौः भाः—मायाशक्ति से उत्पन्न जगत् में गुणभेद के परिणामस्वरूप जिन स्थूल एवं सूक्ष्म अंगों की उत्पत्ति हुई है, वे सब चेतन की मुख्य एवं गौण शक्ति की विचित्रता के रूप में गिने गये हैं। लीला एवं क्रिया में विशिष्टता है। अखंडकाल एवं खंडकाल के विचारभेद से प्राकृत बहुविध शक्तियों अवस्थित हैं। व्यक्तिविशेष में अवस्था के भेद के अनुसार अन्वय एवं व्यतिरेक भाव से (परस्पर सम्बन्ध और सम्बन्ध के अभाव से) उन सबके साथ उनका संयोग है।

भाग्यहीन की दृष्टि में विषय-विग्रह द्वारा आश्रयोचित लीला का सम्पादन भ्रान्ति उत्पन्न कराता है—

इहा ना बुझिया कोन कोन पापी जना।
प्रभुरे बलये 'गोपी' खाइया आपना॥२१५॥

(२१५) प० अनु०—इसे न समझकर कोई-कोई पापी दुर्भाग्यवश प्रभु को 'गोपी' कहकर सम्बोधित करते हैं।

(२१५) गौः भाः—भगवान्—विषय-विग्रह हैं, उनको आश्रय-विग्रह समझकर 'गोपी' रूप में उनका वर्णन करने से वे केवल शक्तिमात्र मे पर्यवसित हो जाते हैं, शक्तिमान् स्वरूप बने नहीं रह पाते। मायावादी एवं अभक्तगण भगवान् गौरसुन्दर को विष्णुग्रह के आकर स्वरूप में नहीं पहचान पाते हैं। विषय-विग्रह का आश्रयोचित लीला-प्रदर्शन भाग्यहीन जीवों के लिए सत्य की उपलब्धि करने में व्याघात की सृष्टि करता है।

गोपिका-नृत्य-कथा-श्रवण से कृष्णभक्ति की प्राप्ति—

अद्‌भुत गोपिका-नृत्य चारि-वेद-धन।
कृष्णभक्ति हय इहा करिले श्रवण॥२१६॥
हइला बड़ाइ बुड़ी प्रभु नित्यानन्द।
से लीलाय हेन लक्ष्मी काचे गौरचन्द्र॥२१७॥

(२१६-२१७) प० अनु०—चारों वेदो के धन स्वरूप अद्‌भुत गोपिका-नृत्य के बारे में श्रवण करने से कृष्ण में भक्ति होती है। जिस लीला में प्रभु नित्यानन्द बड़ी-बूढ़ी बने हैं, उसी लीला में गौरचन्द्र ने लक्ष्मी के वेश मे नृत्य किया है।

नित्यानन्द के द्वारा सर्वत्र गौरसुन्दर के प्रति आनुगत्य प्रदर्शन—

यखन येरूपे गौरचन्द्र ये विहरे।
सेइ अनुरूप रूप नित्यानन्द धरे॥२१८॥

(२१८) प० अनु०—जब जिस रूप में गौरचन्द्र विकार करते हैं, तब उसी के अनुसार नित्यानन्द अपना रूप धारण कर लेते हैं।

गौर-नित्यानन्द की लीला को समझना अनर्थयुक्त व्यक्तिओं के लिए संभव नहीं है, वह कृष्णकृपा से ही समझ में आती है—

प्रभु हइलेन गोपी, नित्यानन्द बड़ाइ।
के बुझिवे इहा, या'र अनुभव नाइ॥२१९॥
कृष्ण-अनुग्रह या'र, से ए मर्म जाने।
अल्पभाग्ये नित्यानन्द-स्वरूप ना चिने॥२२०॥

(२१९-२२०) प० अनु०—प्रभु ने गोपी का और नित्यानन्द ने बड़ी-बूढ़ी का रूप अपनाया, इसे अनुभवहीन कौन समझ सकता है? कृष्ण जिन पर अनुग्रह करते हैं, वे ही इसके रहस्य को जान पाते हैं। अल्पभाग्य से नित्यानन्द-स्वरूप को पहचानना संभव नहीं है।

ग्रन्थकार-द्वारा नित्यानन्द के स्वरूप एवं अलौलिक लीलाओं को समझने में समर्थ होकर उनकी निन्दा करने वालों के मस्तक पर पदाघात—

किवा योगी नित्यानन्द, किवा भक्त ज्ञानी।
या'र येन मत इच्छा ना बोलये केनी॥२२१॥
ये से केन चैतन्येर नित्यानन्द नहे।
तथापि से पादपद्म रहुक हृदये॥२२२॥
एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे।
तबे लाथि मारों ता'र शिरेर उपरे॥२२३॥

(२२१-२२३) प० अनु०—कोई भी अपनी इच्छानुसार नित्यानन्द को योगी, भक्त या ज्ञानी के रूप में मानकर उनका वर्णन क्यों न करे, और श्रीनित्यानन्द श्रीचैतन्यदेव के चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, मेरी यही प्रार्थना है कि, उनके पादपद्म मेरे हृदय में सदा बसे रहें। इतना परिहार करने के पश्चात् भी जो पापी उनकी निन्दा करता है, उसके सिर पर मैं लात मारता हूँ।

(२२३) गौः भाः—पिछले कर्मविपाल के कारण जो लोग पाप-प्रवण-चित्त हैं, वे सब श्रीनित्यानन्द बलदेव तत्त्व एवं उनके अलौलिक क्रिया-समूह को बिना समझे उनकी निन्दा करते हैं। उस प्रकार के निन्दनीय पाप-परायण ों की विचारधारा अत्यन्त घृणा एवं निन्दा के योग्य है। इसे समझाने के लिए ग्रन्थकार के द्वार सिर पर पदाघात करने की बात कही गई है। वैष्णवों के निकट से उस प्रकार का शासन (दण्ड) मिलने पर हरिसेवाविमुखों को परम सौभाग्य मिलता है, परन्तु साधारण मूर्ख लोग इसे समझने में असमर्थ रहते हैं।

अध्याय का कथासार—

मध्यखण्ड-कथा येन अमृत-श्रवण।
याँहे लक्ष्मीवेशे नृत्य कैला नारायण॥२२४॥
नाचिल जननी-भावे भक्ति शिखाइया।
सबार पुरिल आशा स्तन पियाइया॥२२५॥

(२२४-२२५) प० अनु०—मध्यखंड की कथा सुनने में अमृत (मधुर) जैसी लगती है, जिससे लक्ष्मी के वेश में नारायण ने नृत्य किया है। प्रभु ने भक्ति की शिक्षा देकर जननी के भाव में नृत्य किया और स्तन पान कराकर सबकी आशाएँ पूरी कीं।

(२२५) प० अनु०—लोगों को शिक्षा देने के लिए चिच्छक्ति एवं मायाशक्ति के क्रिया-समूह का प्रदर्शन करके प्रभु ने बद्धजीवों में छिपी हुई नित्यवृत्ति भक्ति की शिक्षा दी थी। जड़जगत् में प्रयोजननीय आहार्य दान एवं स्वरूप को उपलब्ध की हुई आत्मा को भगवान् के निकट से सेवा ग्रहण करने के बदले उन भगवान् की सेवा करना उचित है, इस बात का दर्शाया था।

चन्द्रशेखर के भवन में सप्ताह-भर अपूर्व तेज की विद्यमानता, केवल सुकृतिवान् जन उसे देखने मे समर्थ—

सप्तदिन श्रीआचार्य-स्नेर मन्दिरे।
परम अद्भुत तेज छिल निरन्तरे॥२२६॥
चन्द्र, सूर्य, विद्युत एकत्र येन ज्वले।
देखये सुकृति-सब महा-कुतूहले॥२२७॥

(२२६-२२७) प० अनु०—सात दिनों तक श्रीआचार्यरत्न (चन्द्रशेखर) के मन्दिर में एक परम अद्भुत तेज निरन्तर विद्यमान रहा था। वह ऐसा था, जैसे चन्द्र, सूर्य और विद्युत् एक साथ चमक रहे हों। सभी सुकृतिवान् जन उसका महाआनन्द के साथ दर्शन कर रहे थे।

आचार्य के भवन में आये हुये व्यक्तियों की अपनी आँखे खोलने में असमर्थता एवं इसका हेतु पूछना; इससे वैष्णवों का हँसना—

यतेक आइसे लोक आचार्येर घरे।
चक्षु मेलिवारे शक्ति केह नाहि धरे॥२२८॥
लोके बले,—"कि कारणे आचार्येर घरे।
दुइ चक्षु मेलिते फुटिया येन पड़े?२२९॥
शुनिया वैष्णवगण मने मने हासे।
केह आर किछु नाहि करये प्रकाशे॥२३०॥

(२२८-२३०) प० अनु०—जितने भी लोग आचार्य के घर आते थे, उनमें किसी की भी आँखें खोलने की शक्ति नहीं रहती थी। लोक कहते थे,—"किस कारण से आचार्य के घर में आँखे खोलते ही जलन शुरू हो जाती है?" इन सभी बातों को सुनकर वैष्णवगण मन-ही-मन मुस्कराते थे। कोई कुछ और प्रकट नहीं करते थे।

चैतन्य की माया-निगूढ़ा है—

हेन से चैतन्य-माया परम गहन।
तथापिह केह किछु ना बुझे कारण॥२३१॥
एमत अचिन्त्य-लीला गौरचन्द्र करे।
नवद्वीपे सब-भक्त सहिते विहरे॥२३२॥

(२३१-२३२) प० अनु०—चैतन्य की माया बड़ी रहस्यमयी है। फिर भी इसका कारण किसी की भी समझ में नहीं आता है। इस प्रकार गौरचन्द्र ने नवद्वीप में भक्तों के साथ विहार करके अचिन्त्य लीला की।

(२३१) गौः भाः—श्रीचैतन्य की माया-परम गूढ़ है। गौर-भोगी-सम्प्रदाय के हृदय में (गौरसुन्दर को भोग करने की वस्तु समझकर उनके निकट से सेवा ग्रहण करने के कारण अर्थातृ अपने का ेनागरी कहलाने के कारण) लेशमात्र भी शक्ति नहीं होती है—श्रीचैतन्यदेव ने मूढ़जनों को इसकी जानकारी नहीं दी है।

चैतन्लीला सुनने के लिए ग्रन्थकार के द्वारा सभी का आह्वान—

शुन शुन आरे भाइ चैतन्येर कथा।
मध्यखण्डे ये ये कर्म कैल यथा यथा॥२३३॥
श्रीचैतन्य-नित्यानन्दचाँ पहुँ जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥२३४॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे गौरांगस्य गोपिकानृत्यं-वर्णन नाम अष्टादशोध्यायः

(२३३-२३४) प० अनु०—अरे मेरे भाइयों! सुनो! सुना! चैतन्य की कथा सुनो। मध्यखण्ड में वर्णित जहाँ-जहाँ उन्होंने जो कुछ भी किया, उसके बारे में सुनो। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनको महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय-भाष्य में अष्टादश अध्याय समाप्त

O

ऊनविंश अध्याय

ऊनविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में नित्यानन्द के साथ श्रीमन्महाप्रभु का भक्तों के गृहों में भ्रमण, गौरसुन्दर के द्वारा अद्वैत के प्रति भक्ति-प्रदर्शन-हेतु अद्वैत का दुःख एवं उसे मिटाने के लिए कौशल, गौरसुन्दर का नगर-भ्रमण एवं नित्यानन्द के साथ वामाचारी संन्यासी के घर में गमन और उसके घर में फलों का आहार करना, अद्वैताचार्य के घर में गौर-नित्यानन्द का गमन, अद्वैत के द्वारा ज्ञानयोग की व्याख्या, उसे सुनकर प्रभु के द्वारा अद्वैत पर प्रहर एवं निजी तत्त्व को प्रकाशित करना, अद्वैताचार्य का आनन्द एवं प्रतिज्ञा, उपमा-सहित देवान्तर-भजन का कुफल; वैष्णवनिन्दा के विषय में प्रभु के द्व ारा सबको सावधान करना, अद्वैत के घर में प्रभु का भोजन, क्रोध के छल से अद्वैत के द्वारा नित्यानन्द की महिमा का कीर्तन आदि विषय वर्णित हुये हैं।

नित्यानन्द के साथ मिलकर श्रीमन्महाप्रभु नवद्वीप में सभी भक्तों के घरों में भ्रमण करते हैं। प्रभु को आनन्द में रहते देखकर सारी भक्तमंडली आनन्द में मत्त हो जाती है। इनमें श्रीअद्वैताचार्य का आनन्द सबसे अधिक है। प्रेमावेश मे उनमें बाह्यबोध नहीं है। परन्तु श्रीगौरसुन्दर गौरबुद्धिवश उनके चरणों की धूल को ग्रहण करते हैं, इससे वे विशेष दुःखित होकर मन-ही-मन अपने प्रति प्रभु का क्रोध उत्पन्न करने के लिए भक्ति की अपेक्षा ज्ञान की श्रेष्ठता के स्थापन का अभिनय करते हुये योगवाशिष्ठ की व्याख्या करने लगते हैं।

एकदिन नित्यानन्द के साथ महाप्रभु के नगर भ्रमण करते समय देवगण दोनों को दो चन्द्रमाओं की भाँति देखते हैं। इस प्रसंग में वे स्वर्गलोक को नरलोक, अपने आपको नर एवं पृथ्वी को स्वर्ग के रूप में विचारने लगते हैं एवं इस विषय को लेकर परस्पर नाना प्रकार की जल्पनाएँ करने लगते हैं।

श्रीनित्यानन्द एवं श्रीगौरसुन्दर दोनों अद्वैताचार्य के घर जाते समय रास्ते में एक दारी (स्त्री रखने वाले) संन्यासी के घर पहुँच जाते हैं। महाप्रभु के द्वारा संन्यासी को प्रमाण निवेदन करने पर दारी संन्यासी महाप्रभुर के भवनमोहन रूप के दर्शन से मुग्ध होकर उन्हें एहिक ऐश्वर्य-प्राप्ति का आशीर्वाद देते है॥ महाप्रभु-द्वारा उनके उस आशीर्वाद की हेयता एवं नश्वरता का प्रतिपादन करने पर दारी संन्यासी भोगबुद्धि वश धन-पुत्र आदि के साथ मिलकर इन्द्रिय-तर्पण को ही अधिक सम्मानीय बताने लगे। महाप्रभु तब संन्यासी को समझा देते हैं कि, धन, कुल आदि नश्वर पदार्थों के लिए प्रार्थना करना अनावश्यक हैं अपने-अपने अदृष्ट (भाग्य) के अनुसार सबको ही सुख-दुःख मिलते रहते है॥ वेदों का तात्पर्य न समझकर लोग धर्म, अर्थ और काम को ही वेदों का प्रतिपाद्य विषय मान लते हैं— धन, पुत्र आदि की प्राप्ति को ही गंगास्नान तथा हरिनाम-कीर्तन आदि अनुष्ठानों

का फल समझते है॥ परन्तु परोक्षवादी वेदों का प्रकृत तात्पर्य यह नहीं है। भक्ति ही वेद-प्रतिपाद्य विषय है। इसके अलावा दूसरी किसी वस्तु की प्रार्थना करना सुबुद्धि का परिचायक नहीं है।

महाप्रभु की बात सुनकर दारी संन्यासी गौरसुन्दर को विकृत मस्तिष्क वाला बालक एवं स्वयं को सभी तीर्थों में भ्रमण किया हुआ परम ज्ञानी समझता हैं नित्यानन्द प्रभु दारी संन्यासी की बातें सुनकर हँस पड़ते है॥ फिर उनको प्रतिष्ठा-प्रदान-पूर्वक निरस्त करके तथा यह कहकर कि कार्य-गौरववशात् हमें दूसरे स्थान पर जाना है, वे दोनों कुछ भोजन योग्य वस्तु के लिए प्रार्थना करते है॥ दारी संन्यासी दोनों प्रभुओं से अपने घर में भोजन करने के लिए अनुरोध करते है॥ श्रीगौर-नित्यानन्द गंगास्नान के पश्चात् संन्यासी के घर में दूध, फल आदि का उपभोग करने के लिए बैठ जाते है॥ दारी संन्यासी द्वारा नित्यानन्द प्रभु को मदिरा पीने के लिए इशारा करने पर वे उनको वामाचारी संन्यासी जानकर दोनों हाथ-मुँह धोकर उनके घर को त्याग देते हैं एवं जल-मार्ग से तैरते हुये शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर उपस्थित होते है॥ अद्वैत-प्रभु महाप्रभु के आगमन की वार्ता सुनकर ज्ञानयोग की महिमा की व्याख्या करने लगते है॥ महाप्रभु अद्वैत-प्रभु से 'भक्ति एवं ज्ञान के बीच में श्रेष्ठ कौन हैं', इस विषय के बारे में पूछते हैं, इस पर आचार्य कहते हैं कि, ज्ञान बड़ा है। यह सुनते ही महाप्रभु अद्वैताचार्य की पीठ घर घूँसा मारने लगते हैं एवं तर्जन-गर्जन-पूर्वक अपने तत्त्व को प्रकाशित करके प्रहार करने से विरत होते है॥ तब अद्वैत-प्रभु आनन्द में नृत्य करते-करते महाप्रभु के द्वारा दिये गये पूर्व सम्मान की बातों का उल्लेख करके जन्म-जन्म के लिए गौरदास्य की ही प्रार्थना करते है॥ एवं महाप्रभु के चरणों की धूलि लेकर अपने सारे अंग में लेपन करते है॥ अद्वैत के घर में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ जाती है। महाप्रभु अद्वैत प्रभु को वर प्रदान करते हैं कि, जा आधे पल के लिए भी अद्वैत प्रभु के चरणों में आश्रय लेंगे, गौरकृपा उन्हें सहज सुलभ होा जायेगी। तब अद्वैत प्रभु शैव राजा सुदक्षिणा की उपमा का उल्लेख करते हुये कहते हैं कि, यदि कोई महाप्रभु की उपेक्षा करके केवल अद्वैताचार्य की उपासना करेगा, तो उसकी वही भक्ति उसका संहार कर देगी। अद्वैत के वाक्य को सुनकर महाप्रभु कहते हैं कि, उनके भक्त की उपेक्षा करते हुये यदि कोई उनकी पूजा करता है तो वे कभी भी उस पूजा को स्वीकार नहीं करते हैं, परन्तु उस प्रकार की भक्ति प्रभु के अंग में अग्नि-प्रयोग करने के बराबर होती है।

महाप्रभु अद्वैत-पत्नी को भोजन बनाने के लिए आदेश देते है॥ तत्पश्चात् सभी मिलकर गंगास्नान के लिए जाते हैं एवं गंगास्नान के उपरान्त भोजन करने के लिए बैठते है॥ भोजन के बाद नित्यानन्द प्रभु द्वारा सारे घर में अन्न फैला देने से अद्वैत प्रभु उनकी निन्दा के छल से उनकी अशेष महिमा का कीर्तन करते हैं तत्पश्चात् अद्वैत के भवन में कुछ दिनों के लिए ठहकर अपने गणों सहित महाप्रभु अपनी पुरी (घर) में प्रत्यावर्तन करते है॥

(गौड़ीय-भाष्य)

O

श्रीगौरसुन्दर का जयगान–

जय विश्वम्भर सर्व–वैष्णवेर नाथ।
भक्ति दिया जीवे प्रभु कर आत्मसात्॥१॥

(१) प० अनु०—सभी वैष्णवों के नाथ–स्वरूप श्रीविश्वम्भर की जय हो। हे प्रभु! भक्ति का दान देकर आप सभी जीवों को आत्मसात् कीजिए।

(१) गौः भाः—विश्वम्भर जगत् के पालक है। वे सभी प्रकार के भक्ति–याजनों के विषय है। भोग की प्रवृत्ति से चालित होकर बद्धजीव शुद्धसेवा को भूल गये है। भगवान् जब जीवों की सेवोन्मुख–प्रवृत्ति में सेव्य बनकर सेवा–ग्रहण नहीं करते हैं, तब जीवों में स्वाभाविक भोगप्रवृत्ति प्रबल हो जाती है। इसलिए करुणामय प्रभु विषयविग्रह बनकर आश्रित विभिन्नांश जीवों को अपना मानकर उन्हें सेवा करने का सुयोग प्रदान करते है।

नवद्वीप में महाप्रभु की विहार लीला–

हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
क्रीड़ा करे, नहे सर्व–नयनगोचर॥२॥
आपन भक्तेर सब मन्दिरे मन्दिरे।
नित्यानन्द–गदाधर–संहति विहरे॥३॥

(२–३) प० अनु०—इस प्रकार से नवद्वीप में प्रभु विश्वम्भर ने जो क्रीड़ा की, उसे सभी लोग नहीं देख पाते थे। वे नित्यानन्द और गदाधर को साथ लेकर अपने भक्तों के घर–घर में विहार करने लगे।

कृष्णसेवोन्मुखता के आवेश के कारण भागवतगणों में बाहरी सुधबुध का अभाव–

प्रभुर आनन्दे पूर्ण भागवतगण।
कृष्णपरिपूर्ण देखे सकल भुवन॥४॥
निरवधि भावावेशे का'रो नाहि बाह्य।
संकीर्तन बिना आर नाहि कोन कार्य॥५॥

(४–५) प० अनु०—प्रभु को आनन्द में मग्न देख कर भागवतगण भी परिपूर्ण आनन्द में डूब गये। सभी ने देखा कि, सम्पूर्ण भुवन श्रीकृष्ण से परिपूर्ण है। निरन्तर भावावेश में रहने के कारण किसी को भी बाहरी दुनिया की सुधबुध नहीं रही। एक संकीर्तन के अतिरिक्त उनके लिए और कोई कार्य नहीं रह गया था।

(४) गौः भाः—भगवत् सेवोन्मुख भक्तों के लिए श्रीमहाप्रभु पूर्ण आनन्द की मूल निधि है। बद्धजीव जगत् में त्रिविध दुःखों का अनुभव करते हैं, परन्तु मुक्त भागवतगण कृष्णानन्द से परिपूर्ण रहकर किसी जागतिक दुःख का अनुभव नहीं कर पाते है॥ जहाँ आनन्द का विषय नश्वर है एवं जीवों की चेष्टा अपूर्ण है, वहाँ कृष्णानन्दरूप पूर्णता का अभाव रहता है। हर जगह कृष्णानन्द–दर्शन ही जीवों का पूर्णानन्दमयी प्रतीति है।

(५) गौः भाः—भगवद् भक्तगण कृष्णसेवोन्मुखता में आविष्ट (मग्न) रहते हैं; इसलिए बहिः प्रज्ञा (बाहरी दुनिया का ज्ञान) से चालित होकर वे जड़–जगत् के प्रति दृष्टिपात नहीं कर पाते। अपितु वे हर समय कृष्ण के नाम–रूप–गुण लीला–कीर्तन में मस्त रहते है॥

आचार्य गोस्वामी का चरित्र–

सबा हैते मत्त बड़ आचार्य गोसाईं।
आगाध चरित्र, बुझे हेन केह नाइ॥६॥
जाने जन–कथो श्रीचैतन्य–कृपाय।
चैतन्येर महाभक्त शान्तिपुर–राय॥७॥

(६–७) प० अनु०—सबसे अधिक मत्त थे आचार्य गोसाईं। ऐसा कोई नहीं था जो

उनके अगाध चरित्र को समझ सके। श्रीचैतन्य की कृपा से केवल कोई-कोई ही उन्हें जान पाये थे कि शान्तिपुर-राय (अद्वैताचार्य) चैतन्य महाभक्त है।

अद्वैत के प्रति महाप्रभु के द्वारा भक्ति-प्रदर्शन से आचार्य को दुःख एवं आचार्य द्वारा प्रभु के इस प्रकार के भाव को हटाने के लिए संकल्प-

बाह्य हैले विश्वम्भर सर्व-वैष्णवेरे।
महाभक्ति करेन, विशेष अद्वैतेरे॥८॥
इहाते असुखी बड़ शान्तिपुरनाथ।
मने मने गर्ज्जे, चित्ते ना पाय सोयाथ॥९॥
''निरवधि चोरा मोरे विडम्बना करे।
प्रभुत्व छाड़िया मोरे चरणे से धरे॥१०॥
बले नाहि पारौं मुञि प्रभु महाबली।
धरियाओ लय मोर चरणेर धूलि॥११॥
भक्ति-बल सबे मोर आछये उपाय।
भक्ति बिना विश्वम्भर चिनन ना याय॥१२॥
तबे से 'अद्वैत-सिंह'-नाम लोके घोषे।
चूर्ण करों माया यबे अशेष-विशेषे॥१३॥
भृगुरे जिनिया आश पाइयाछे चोर।
भृगु हेन शत शत शिष्य आछे मोर॥१४॥
हेन क्रोध जन्माइव प्रभुर शरीरे।
स्वहस्ते आपने येन मोर शास्ति करे॥१५॥
'भक्ति बुझाइते से प्रभुर अवतार।
हेन भक्ति ना मानिमु'— एइ मन्त्र सार॥१६॥
भक्ति ना मानिले क्रोध आपना पासरि'।
प्रभु मोर शास्ति करिवेन चुले धरि''॥१७॥

(८-१७) प० अनु०-बाह्य जगत् का बोध होने पर विश्वम्भर सभी वैष्णवों के प्रति, विशेष करके अद्वैत के प्रति महाभक्ति प्रदर्शित करते थे। इससे शान्तिपुर नाथ अद्वैत को बड़ा ही दुःख होता था। वे मन-ही-मन गर्जन करते थे और चित्त से अशांत रहते थे। "निरन्तर ये चोर (गौरांग प्रभु) मुझे विडम्बना में डालते रहते है॥ प्रभुता को छोड़कर वे मेरे चरण पकड़ते है॥ महाबली प्रभु के साथ शक्ति से मैं निपट नहीं सकता हूँ, मुझे पकड़कर भी वे जोर जबरदस्ती मेरे चरणों की धूल ले लेते है॥ बस, एक ही उपाय है, और वह है मेरा शक्ति-बल। क्योंकि, भक्ति के बिना विश्वम्भर को पहचानना संभव नहीं है। माया को जब मैं पूरी तरह से मिटा पाऊँगा, तभी लोगों को पता चलेगा कि मैं सचमुच ही 'अद्वैत-सिंह' हूँ। भृगु को जीतकर 'चोर' का साहस बढ़ गया है। भृगु-जैसे मेरे सैंकड़ों शिष्य है। प्रभु के शरीर में ऐसा क्रोध उत्पन्न करूँगा कि प्रभु अपने ही हाथों से मुझे दण्ड प्रदान करे॥ 'जिस भक्ति को समझाने के लिए प्रभु का अवतार हुआ है, मैं उस भक्ति को स्वीकार नहीं करूँगा'- बस, यही सार सिद्धान्त है। भक्ति को न मानने से प्रभु क्रोधित होकर अपने आपको भूल जायेंगे और मेरे केश पकड़कर मुझे शास्ति (दण्ड) प्रदान करेंगे।"

(८) गौः भाः—हर समय महाप्रभु कृष्ण के प्रति प्रीति-विधान के उद्देश्य से उन्मत्त भाव प्रदर्शित करते थे एवं बहिर्मुख भोगमय जगत् की ओर वे देखते भी नहीं थे, इस प्रकार का लीलाभिनय वे किया करते थे। जिस समय बाहरी जगत् के प्रति उनकी आपेक्षिक दृष्टि पड़ती थी, उसी समय वे सभी विष्णु-भक्तों कीसेवा करने में व्यस्त हो जाया करते थे एवं श्रीअद्वैताचार्य के प्रति भी वे गौरबुद्धि से विशेष सेवालीला का प्रदर्शन किया करते थे; परन्तु इससे अद्वैत प्रभु सन्तुष्ट नहीं थे। श्रीचैतन्य का दास्य ही उनका एकमात्र अभिप्रेत था। इसलिए प्रभु उनमें जो गुरुबुद्धि रखते थे, उसे

वे अपने भाग्य की विडम्बना–मात्र मानते थे।

(१४) गौः भाः—लोगों में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि, भगवान् नारायण ने भृगु को निर्बोध प्रमाणित करने के लिए एवं अपने वात्सल्य स्वभाव को प्रदर्शित करने–हेतु भृगु के पदचिह्न को धारण किया था। मूढ़ व्यक्तियों में ठगे जाने की अधिक योग्यता होती है। इसलिए वे समझते हैं कि, भगवान् की अपेक्षा भृगु की महिमा अधिक है। परन्तु श्रीअद्वैत प्रभु वैष्णवाचार्य 'महाविष्णु' है॥ इसलिए उन्होंने भृगु की बेवकूफी को समझ लिया था। इस कारण अद्वैताचार्य ने बाहर से दंभ और क्रोध प्रकट करते हुये भृगु की भाँति उनके सैंकड़ों शिष्य हैं, इस बात को प्रकाशित कर दिया था। अभिन्न ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीगौरसुन्दर आत्मगोपन पूर्वक अपनी श्यामसुन्दर–लीला में किये गये चौर्यव्यापार को अद्वैत प्रभु के निकट छिपा नहीं पाये। जो लोग माया के द्वारा ताड़ित होकर अपने स्वरूप एवं भगवत् स्वरूप को समझने में असमर्थ रहते हैं, भगवान् को भूल जाने के कारण उन लोगों में पद–पद पर भोगबुद्धि का उदय होता है। परन्तु श्रीअद्वैत प्रभु विशेष बुद्धिमान् सुचतुर गौरभक्त थे, इस कारण वे निर्बोध जीवों की भाँति विचार नहीं रखते थे। श्रीचैतन्यदेव के निकट से दण्ड प्राप्त करने के उद्देश्य से वे स्वयं पूजनीय होने के विचारर को बदलने के लिए यत्न करने लगे। इस विचार का अवलम्बन लेकर उन्होंने भगवान् के द्वारा सेवक के अभिमान से किये गये लीलाविलास को खर्व (छोटा) करने के उद्देश्य से गौरावतार के भक्तिप्रचार के विषयों में कृत्रिम रुकावटें उत्पन्न करने की इच्छा प्रकट की।

हरिदास के साथ आचार्य का शान्तिपुर में जाना एवं योगवाशिष्ठ की व्याख्या द्वारा भक्तिपथ के विद्वेष की छलना–

एइ मत चिन्तिया अद्वैत महा–रंगे।
विदाय हइला प्रभु हरिदास–संगे॥१८॥
कोन् कार्य लक्ष्य करि' गृहेते आइला।
आसिया मानस–मन्त्र पड़िते लागिला॥१९॥
निरवधि भावावेशे दोले मत्त हइया।
बाखाने वाशिष्ट शास्त्र 'ज्ञान' प्रकाशिया॥२०॥
'ज्ञान' बिना किवा शक्ति धरे विष्णुभक्ति।
अतएव सबार प्राण, ज्ञान–सर्वशक्ति॥२१॥
हेन ज्ञान ना बुझिया कोन कोन जन।
घरे धन हाराइया चाहे गिया वन॥२२॥
विष्णु–भक्ति—दर्पण, लोचन हय—'ज्ञान'।
चक्षुहीन जनेर दर्पण, कोन् काम?॥२३॥
आदि अन्त आमि पड़िलाम सर्वशास्त्र।
बुझिलाम सर्व–अभिप्राय—'ज्ञान'–मात्र॥२४॥

(१८–२४) प० अनु०—ऐसा सोचकर अद्वैताचासर्य प्रभु ने हरिदास के साथ आनन्द–सहित महाप्रभु से विदा ली। किसी कार्य को ध्यान में रखते हुये वे घर (शान्तिपुर) आये और आकर मानस–मन्त्र पढ़ने लगे। भावावेश में मत्त होकर वे निरन्तर झूम रहे थे और 'ज्ञान' की प्रधानता–प्रकाश–पूर्वक वाशिष्ठ–शास्त्र की व्याख्या कर रहे थे। बिना 'ज्ञान' के विष्णु–भक्ति में कोई–कोई व्यक्ति अपने घर में ही निज धन को खोकर वन–वन में ढूंढता रहता है। विष्णु–भक्ति दर्पण–स्वरूप होती है और नेत्र होते हैं 'ज्ञान'। बिना नेत्रों के दर्पण किस काम का? सभी शास्त्रों का मैंने आदि से अन्त तक अध्ययन किया है और देखा है कि, केवल 'ज्ञान' ही इन सबका एकमात्र अभिप्राय है।

(२०) गौः भाः–श्रीअद्वैत–प्रभु योगवाशिष्ठ नाम के भक्ति–विरोधी मायावादियों के ग्रन्थ की व्याख्या करते हुये भक्तिपथ से विद्वेष

करने की छलना करने लगे। उनका अभिप्राय यही था कि, महाप्रभु के भक्ति-प्रचार-कार्य में रुकावटें खड़ी कर देने से वे श्रीअद्वैत की पूजा करने के स्थान पर उन्हें शास्ति (दण्ड) प्रदान करेंगे।

(२१) गौः भाः—निर्भेद-ब्रह्मानुसंधानरूप ज्ञान के अलावा विष्णु-भक्ति कुछ भी शक्ति ध ाारण करने में समर्थ नहीं है। 'ज्ञान' भक्ति का प्राण हैं ज्ञान ही सर्वशक्तिधर है,-इस प्रकार के निर्भेद ज्ञान परित्याग करके, कोई-कोई मानों अपने घर में धन को त्यागकर वन में, जहाँ धन नहीं है, वहाँ धन को ढूँढ़ते है॥

(२३) गौः भाः—विष्णु-भक्ति—दर्पण-सदृश है, दर्पण मात्र है। उस दर्पण के होने पर भी यदि ज्ञानरूपी नेत्र नहीं हैं, तो वह दर्पण किस काम का? यदि नेत्र न हों, तब दर्पण किसी काम का नहीं रह जाता।

(२४) गौः भाः—शुरू से अन्त तक मैंने सभी शास्त्रों का अध्ययन किया है। शास्त्रों के तात्पर्य के बारे में मेरी सिद्धान्त यह है कि, ज्ञान ही सबसे बढ़कर है।

अद्वैत के चरित्र को जानने वाले हरिदास की इस व्याख्या को सुनकर हँसी-

अद्वैत-चरित्र भाल बुझे हरिदास।
व्याख्यान शुनिया महा-अट्ट-अट्ट-हास॥२५॥

(२५) प० अनु०—अद्वैत के चरित को हरिदास भलीभाँति समझते थे। उनकी इस व्याख्या को सुनकर वे बहुत जोर-जोर से हँसने लगे।

अद्वैत चरित को हृदयंगम करने में सौभाग्यवन्त जन ही समर्थ एवं इसके अभाव के कारण भाग्यहीन जन को अमंगल की प्राप्ति-

एइमत अद्वैतेर चरित्र अगाध।
सुकृतिर भाल, दुष्कृतिर कार्यबाध॥२६॥

(२६) प० अनु०—इस प्रकार अद्वैत का चरित्र अगाध है। सुकृतिवान् के लिए वह अच्छा है, परन्तु दुष्कृतिकारियों के लिए उनके काम में बाधा उत्पन्न करने वाला है।

(२६) गौः भाः—जो लोग सौभाग्यविशिष्ट थे, उन्होंने भक्त अद्वैत के चरित्र कोा समझकर भगवद्भक्ति की सर्वश्रेष्ठता को हृदयंगम किया और जो लोग भाग्यहीन दुष्कर्मपरायण थे, उन्होंने अद्वैत के अभिप्राय को बिना समझे ही निर्भेद ब्रह्मानुसंधान रूप ज्ञान (भेद-रहित ब्रह्मज्ञान) को ही भक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर परम अमंगल को प्राप्त किया।

अद्वैत के अभिप्राय के बारे में महाप्रभु की जानकारी-

सर्व-वाञ्छा-कल्पतरु प्रभु विश्वम्भर।
अद्वैत-संकल्प चित्ते हइल गोचर॥२७॥

(२७) प० अनु०—प्रभु विश्वम्भर सभी वाञ्छाओं के कल्पतरु है॥ अद्वैत ने जो संकल्प लिया था, वह उनके हृदय में प्रत्यक्ष हो गया।

(२७) गौः भाः—महाप्रभु सभी को वांछित फल प्रदान करने वाले मूल आकर तत्त्व है॥ वे अद्वैत प्रभु के द्वारा किये गये संकल्प के बाह्य एवं व्यतिरेक— सभी भावों को समझ गये। श्रीअद्वैत प्रभु ने जब देखा कि महाप्रभु काय, मन एवं वचनों के द्वारा यत्नपूर्वक उनकी सेवा करते हुये उनके प्रति गौरव-बुद्धि रखते हैं, तब इसका प्रतिकार करने के उद्देश्य से उन्होंने ज्ञान की प्रतिष्ठा करके भक्ति की महिमा को कम करने की छलना की।

नित्यानन्द के साथ महाप्रभु के नगर–भ्रमण के समय विधाता के द्वारा अपने आपको भाग्यवन्त समझना–

एकदिन नगर भ्रमये प्रभु रंगे।
देखये आपन–दृष्टि नित्यानन्द संगे॥२८॥
आपनारे 'सुकृति' करिया विधि माने।
''मोर शिल्प चाहे प्रभु सदय–नयने''॥२९॥

(२८–२९) प० अनु०—एकदिन नगर भ्रमण करते समय प्रभु नित्यानन्द के साथ आनन्द–पूर्वक अपनी दृष्टि को निहार रहे थे। इससे विधाता ने अपने आपको 'सुकृतिवान्' समझा और सोचा कि, "दयावान् प्रभु दयामय नेत्रों से मेरे शिल्प को देख रह है॥"

(२९) गौः भाः—जगत् के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा श्रीगौरसुन्दर को प्रपंच में अवतरण करते हुये देखकर अपे को सौभाग्यवान समझने लगे। विश्वशिल्पी विधाता ने प्रभु के अनुग्रह का आकर्षण करके अपने को उनकी कृपादृष्टि प्राप्त किया हुआ जानकर स्वयं को सौभाग्यवान् समझा।

चन्द्रमा के साथ दोनों प्रभुओं की तुलना एवं सेवाप्रवृत्ति के अनुपात (अनुसार) में सभी को प्रभु–दर्शन का सौभाग्य–

दुइ चन्द्र येन दुइ चलि आइसे याय।
नति–अनुरूप सबे दरशन पाय॥३०॥

(३०) प० अनु०—निमाइ–निताइ—दोनों दो चन्द्रमाओं जैसे हैं, दोनों आ–जा रहे है॥ शरणागति की मात्रा के अनुसार सभी को उनके दर्शन मिल रहे है॥

(३०) गौः भाः—दुइ चन्द्र—श्रीगौरचन्द्र एवं श्रीनित्यानन्दचन्द्र। आइसे याय गमनागमन करते है॥

नति–अनुरूप—जिनकी सेवा–प्रवृत्ति जिस प्रकार की है, वे उसी प्रकार की भिन्न–भिन्न दृष्टि से गौर–निताइ के दर्शन करते हैं, अर्थात्, भक्ति की तुलनात्मक स्थिति के अनुसार गौरसुन्दर के दर्शन करते है॥ पाठ भेद में–'मति–अनुरूप'।

अन्तरिक्ष में स्थित देवताओं में गौरनित्यानन्द के दर्शनों से दर्शन–विपर्यय एवं वितर्क–

अन्तरीक्षे थाकि' सब देखे देवगण।
दुइ चन्द्र देखि' सबे गणे मने मन॥३१॥
आपन लोकेर हैल वसुमति ज्ञान।
चान्द देखि' पृथिवीरे हैल स्वर्ग भान॥३२॥
नर–ज्ञान आपनारे सबार जन्मिल।
चन्द्रेर प्रभावे नरे देव बुद्धि हैल॥३३॥
दुइ चन्द्र देखि' सबे करेन विचार।
''कभु सवर्गे नाहि दुइ चन्द्र अधिकार''॥३४॥
कोन देव बले–''शुन वचन आमर।
मूल चन्द्र–एक, एक प्रतिबिम्ब आर''॥३५॥
कोन देव बले–''हेन बुझि नारायण।
भाग्ये वा चन्द्रेर विधि करिल योजन''॥३६॥
हेन बले–''पिता पुत्र एकरूप हय।
हेन बुझि एक–'बुध' चन्द्रेर तनय''॥३७॥

(३१–३७) प० अनु०—आकाशमार्ग में स्थित सब देवगण देख रहे थे। दो चन्द्रमाओं को देखकर सभी मन–ही–मन सोचने लगे। अपने लोक को उन्होंने वसुमती (पृथ्वी) समझा और चन्द्र–युगल को देखकर पृथ्वी को उन्होंने स्वर्ग माना। सभी देवता अपने आप को नर समझ रहे थे और चन्द्र–युगल के प्रभाव से नरों को देवता मान रहे थे। दो चन्द्रमाओं को देखकर सभी विचार कर रहे थे, कि–"स्वर्ग में कभी दो चन्द्रमाओं का अधिकार नहीं होता है।" किसी अन्य देवता ने कहा—"लगता है, ये स्वयं नारायण हैं, हम सब भाग्यवान् हैं, जो विधाता ने हमारे लिए

एक ही समय में दो चन्द्रमाओं को उदित कर दिया है।" कोई और बोला,—"पिता-पुत्र एकरूप होते हैं, मालूम पड़ता है कि एक चन्द्रमा है और दूसरा उसका पुत्र 'बुध है।"

(३२) गौः भाः—देवगण अपने आवासस्थल को पृथ्वी और पृथ्वी को स्वर्ग मानने लगे। गौरचन्द्र एवं नित्यानन्दचन्द्र-इन चन्द्रद्वय के दर्शन करके तेज, वारि और मिट्टी के परस्पर विनिमय-दर्शन की भाँति दर्शन- विपर्यय हुआ है।

(३३) गौः भाः—देवगण अपने आपको स्वल्प शक्तिधर नर समझने लगे एवं गौर-निताइ रूप दोनों चन्द्रमाओं की किरणों से स्निग्ध नरगण को अपने से बढ़कर श्रेष्ठ देवता मानने लगे।

(३४) गौः भाः—स्वर्ग में केवल एक ही चन्द्रमा है, एक ही समय पर दो चन्द्रमाओं का प्रकाश नहीं होता है। अतएव पृथ्वी ही स्वर्ग से बढ़कर उन्नत स्वर्ग है।

(३५) गौः भाः—स्वयंरूप भगवान् कृष्णचन्द्र ही—मूल चन्द्रमा हैं और स्वयं-प्रकाश बलदेव उनके प्रकाश है॥ "अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्य य एकदा। सर्वथा तत्स्वरूपैव स प्रकाश इतीर्यते"-(लघु भागवतामृत)

(३६) गौः भाः—किसी एक देवता ने कहा,- 'लगता है, हम सभी के सौभाग्य के बल पर विधाता ने दोनों चन्द्रमाओं को एकसाथ एक ही समय में उदित किया है।'

(३७) गौः भाः—'आत्मा वै जायते पुत्रः" श्रुति के अनुसार पुत्र-पिता के सादृश्य होता हैं चन्द्र का पुत्र बुध-पितृतुल्य है। लगता है, इन दोनों चन्द्रमाओं में एक पिता और दूसरा उसका पुत्र है।

वेदगोप्य प्रभु के दर्शन से देव-मोहन की असंगति का निराकरण-

वेदे नारे निश्चाइते ये प्रभुर रूप।
ताहाते ये देव मोहे, ए नहे कौतुक॥३८॥

(३८) प० अनु०—वेद भी जिस प्रभु के रूप के बारे में निश्चित निर्णय नहीं ले सकते, उस रूप को देखकर देवगण इसमें जो मोहित हो गये, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(३८) गौः भाः—तथ्य-"तेने ब्रह्म हृदा या आदि- कवये मुह्यन्ति यत् सूरयः। तेजोवारिमृदां यथा विनिमयों यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।"—(भाः१/१/१)।

नगर भ्रमणरत दोनों प्रभुओं का अद्वैताचार्य के भवन की ओर गमन-

हेनमते नगर भ्रमये दुइ जन।
नित्यानन्द, जगन्नाथ-मिश्रेर नन्दन॥३९॥
नित्यानन्द सम्बोधिया बले विश्वम्भर।
"चल याइ शान्तिपुर-आचार्येर घर"॥४०॥
महारंगी दुइ प्रभु परम चंचल।
सेइ पथे चलिलेन आचार्येर घर॥४१॥

(३९-४१) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द और जगन्नाथ मिश्र के नन्दन (गारैप्रभु) नगर में भ्रमण कर रहे थे। नित्यानन्द को सम्बोधित करते हुये विश्वम्भर बोले,-"चलो, शान्तिपुर में आचार्य के घर चले॥" दोनों उसी रास्ते से आचार्य के घर के लिए चल पड़े।

प्रभु के गमनपथ में ललितपुर नाम के गाँव में दारी सन्यासी का वास-

मध्यपथे गंगार समीपे एक ग्राम।
मुल्लुकेर काछे से 'ललितपुर' नाम॥४२॥
सेइ ग्रामे गृहस्थ-संन्यासी एक आछे।
पथेर समीपे घर जाह्नवीर काछे॥४३॥

(४२–४३) प० अनु०—रास्ते के मध्य गंगा के समीप एक गाँव है। मुलक के पास स्थित उस गाँव का नाम 'ललितपुर' है। उस गाँव में एक गृहस्थी–संन्यासी रहता था। उसका घर रास्ते के निकट और जाह्नवी (गंगा) के पास था।

(४२) गौः भाः—मुल्लुक अथवा मुलुक अथवा मुलक (पार्सी में मिलिक्), वह अम्बिका में बह रही गंगा के पूर्वी तट पर अवस्थित है। पियारीगंज आदि गंगा के पश्चिम दिशा में अवस्थित है। ललितपुर गाँव शान्तिपुर के निकट अर्थात् गंगा के पूर्वी तट पर, श्रीमायापुर से शान्तिपुर जाने वाले मार्ग के बीच में अवस्थित है। यह गंगा के पूर्वीतट पर हाटडांगा नाम के गाँव का परवर्त्ती गाँव है।

(४३) गौः भाः—गृहस्थी–संन्यासी अर्थात् गृही बाउल, जो घर–पागला (गृहमेधी) बनकर जगत् में 'त्यागी' के रूप में अपना परिचय देता हैं तामसिक तन्त्रसमूह इस प्रकार के दारी संन्यासियों अथवा व्यभिचारियों को प्रश्रय देते है॥ सोने की पत्थर की वाटी की तरह त्यागी के वेश में घर–पागलागण गृही बाउल बनकर, शाक्तेय मत का सहारा लेकर रक्तवस्त्र धारण करके सेवादासी अथवा पत्नी आदी रखते हैं और इसे शास्त्रसम्मत पंथ मानते है॥ आजकल श्रीमान् अन्नदाचरण मित्र गृहस्थी होकर रक्त वस्त्र पहनते हैं एवं वृन्दावन–वासी श्रीयुक्त मधुसूदन गोस्वामी गृहस्थी के अभिमान में प्रचार करने के उद्देश्य से रक्तवस्त्र पहनते थे। त्यागियों का गैरिक वस्त्र–धारण मर्यादामार्ग में संन्यास विधि के अन्तर्गत है, जैसे कि मध्ययुग के सभी वैष्णवाचार्यों ने गेरुआ वस्त्रों को व्यवहार में लिया है। अनुराग–मार्ग के प्रवर्तक श्रीरूप–सनातन ने अपने स्वाभाविक पारमहंस्य–धर्म का प्रचार करते समय श्रीगौरसुन्दर के द्वारा अपनाये गये एकदंड संन्यास का समर्थन नहीं किया था। श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के श्रीगुरुदेव त्रिदण्डिसंन्यासी प्रवर श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने आचार्योचित गेरुआ वस्त्र पहनकर पारमहंस्यवेश की अधिकतर महत्ता एवं अनुराग–पथ की श्रेष्ठता को प्रदर्शित किया है। श्रीरूपानुग श्रीमज्जीवचरण ने आचार्योचित उपदेश–पदर्शन काल में छल पारकीयवादियों के विषदन्तों के उखाडने के लिए एवं पारकीय–विचार– दर्शन कोा सहज सरल भाव में सझाने के लिए स्वकीय प्रकाश का प्रदर्शन किया है। परन्तु श्रीजीवपाद के स्वकीय–विचार ने चिन्मय जगत् में केवल पारकीय–मत की परम उज्जवलता की ही स्थापना की है।

नित्यानन्द के निकट प्रभु की दारी संन्यासी के परिचय के बारे में जिज्ञासा एवं संन्यासी के भवन में दोनोंका गमन–

नित्यानन्द–स्थाने प्रभु करये जिज्ञासा।
''काहार मण्डप जान कह का'र वासा?'' ॥४४॥
नित्यानन्द बले,–''प्रभु, संन्यासी–आलय।''
प्रभु बले,–''ता'रे देखि, यदि भाग्य हय'' ॥४५॥
हासि' गेला दुइ प्रभु संन्यासीर सथाने।
विश्वम्भर संन्यासीरे करिला प्रणामे॥४६॥
देखिया मोहन–मूर्ति द्विजेर नन्दन।
सर्वांगसुन्दर रूप, प्रफुल्ल वदन॥४७॥

(४४–४७) प० अनु०—प्रभु ने नित्यानन्द से पूछा,–"कहो, यह किसका आश्रम है, यह किसका घर है?" नित्यानन्द बोले,–"प्रभु, यह एक संन्यासी का आश्रम है।" प्रभु बोले,–"चलो, चलकर देखते हैं, यदि भाग्य में हुआ तो दर्शन करेंगे।" हँसकर दोनों प्रभु संन्यासी के पास गये। विश्वम्भर ने संन्यासी को प्रणाम किया। प्रफल्लित वदन कमल, मोहन–मूर्त्ति,

सर्वांगसुन्दर-रूपधारी ब्राह्मण कुमार (गौर प्रभु) को संन्यासी ने देखा।

(४४) गौः भाः— मण्डप (मंडल)-इलाका, डेरा, आश्रम, जमींदारी, स्वामित्वाधीन स्थान।

महाप्रभु के रूप को देखकर संन्यासी के द्वारा इन्द्रियतर्पण-परक आशीर्वाद-दान एवं इस पर महाप्रभु का प्रतिवाद-

सन्तोषे संन्यासी करे बहु आशीर्वाद।
''धन, वंश, सुविवाह हउ विद्यालाभ़'' ॥४८॥
प्रभु बले,-''गोसाईं ए नहे आशीर्वाद।''
हेन बल-''तोरे हउ कृष्णेर प्रसाद॥४९॥

(४८-४९) प० अनु०— प्रसन्नता के साथ संन्यासी ने बहुत से आशीर्वाद प्रदान किये। संन्यासी ने कहा,-"तुम्हें धन, वंश, सुविवाह और विद्या की प्राप्ति हो।" प्रभु बोले,-"गोसाईं ये आशीर्वाद नहीं है। ऐसा कहिए,-"तुम्हें कृष्ण की कृपा मिल जाए।

(४९) गौः भाः— आजकल के घर-पागला (गृहमेधी) गृहस्थी गौरांग-पूजक मृत नन्दी के गुट दारी संन्यासी के मत का पोषण करते है॥ दारी संन्यासीगणों की चित्तवृत्ति में 'आशीर्वाद' का मतलब मनोरमा भार्या की प्राप्ति, गरीबों के ऊपर आधिपत्य की स्थापना करने के लिए धन, आभिजात्यहीन (अकुलीन) जनों के ऊपर ब्राह्मणादि-वंशमर्यादा के संरक्षण की पिपासा, जड़-विद्यालाभ इत्यादि हर प्रकार से प्रदर्शित होता है। श्रीगौरसुन्दर ने इन सब गृहमेधी 'बाउया ठाकुर' नाम के गुटों का अनुमोदन नहीं किया है। बल्कि, दारी संन्यासी के आशीर्वाद-विचार में उन्होंने दोष प्रदर्शित किया है। काम-जीवी सम्प्रदाय निष्काम परमहंस वैष्णवों की चित्तवृत्ति को समझ नहीं पाते। इस कारण वे वैष्णवों को अपना-जैसा ही समझते है॥ दारी संन्यासियों ने धीरे-धीरे जाति-गोस्वामीवाद (जाति से गोस्वामी होने केमत) का आवाहन किया हैं श्रीमन्महाप्रभु ने जाति-गोस्वामी का कभी भी आदर नहीं किया है, परन्तु दारी संन्यासी को शिक्षा देने के उद्देश्य से इस बात की जानकारी दी है कि, कृष्ण-कृपा ही सबसे बड़ा आशीर्वाद हैं प्राकृत आशीर्वाद पाने के इच्छुक विष्णुभक्ति-रहित काम-दग्ध जनगण नगण्य विषयों का ही अधिक सम्मान करते है॥ वे निष्काम पारमहंस्य भागवत-धर्म को समझ नहीं पाते हैं, स्मार्त्त सम्प्रदाय के द्वारा अपनाई गई अवैष्णवता को ही वे वैष्णवता समझते है॥ लौकिक विचारों के अनुसार जाति गोस्वामी अथवा दारी संन्यासीगण जगत् में 'गोसाईं'-उपाधि पाने के लिए उद्यत रहते है॥ महाप्रभु ने भी संन्यासी को उनका सम्मान-प्रदर्शन करने की छलना से 'गोसाईं' कहकर सम्बोधित किया था। वास्तव में वे कभी भी गोस्वामी नहीं हो सकते। श्रीमद् भागवत में (७/५/३०) —"अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्त्रं" आदि श्लोकों के माध्यम से श्रीचैतन्यदेव का मनोभाव पहले ही अभिव्यक्त हो चुका है।

महाप्रभु के द्वारा विष्णुभक्तिरूप आशीर्वाद के श्रेष्ठत्व की ज्ञापना-

विष्णुभक्ति-आशीर्वाद—अक्षय अव्यय।
ये बलिला गोसाईं, तोमार योग्य नय़'' ॥५०॥

(५०) प० अनु०—विष्णुभक्तिरूप आशीर्वाद अक्षय- अव्यय है। हे गोसाईं, आपने जो कहा, वह आपके योग्य नहीं है।"

(५०) गौः भाः—धन, पुत्र, मनोरमा भार्या एवं जड़विद्या आदि सब कुछ नश्वर है॥ विष्णु-नित्य हैं, वैष्णव-नित्य हैं एवं वैष्णवों की विष्णुभक्ति-नित्य है; और विष्णुसेवा का

आशीर्वाद भी–अविनाशी एवं अक्षय है। लोग आपको 'गुरू', 'गोसाईं' कहकर सम्बोधित करते हैं; यदि सचमुच आप ऐसे हैं, तब आपके लिए इस प्रकार का लौकिक नश्वर आशीर्वाद देना कभी भी उचित नहीं होता है।

संन्यासी की विपरीत बुद्धि देखकर महाप्रभु की हँसी–

हासिया संन्यासी बले,–''पूर्वे ये शुनिल।
साक्षाते ताहार आजि निदान पाइल॥५१॥
भाल से बलिते लोक ठेंगा लञा धाय।
ए विप्र पुत्रेर सेइमत व्यवसाय॥५२॥
धन–वर दिल आमि परम सन्तोषे।
कोथा गेल उपकार, आरो आमा' दोषे!''॥५३॥
संन्यासी बलये,–''शुन ब्राह्मणकुमार।
केने तुमि आशीर्वाद निन्दिले आमार?॥५४॥
पृथिवीते जन्मिया ये ना कैल विलास।
उत्तम कामिनी या'र ना रहिल पाश॥५५॥
या'र धन नाहि, ता'र जीवने कि काज।
हेन धन–वर दिते, पाओ तुमि लाज॥५६॥
हइल वा विष्णुभक्ति तोमार शरीरे।
धन बिना कि खाइवा, ताहा कह मोरे।''॥५७॥
हासे प्रभु, संन्यासीर वचन शुनिया।
श्रीहस्त दिलेन निज कपाले तुलिया॥५८॥

(५१–५८) प० अनु०—हँसकर संन्यासी ने कहा,–"महले जो सुना था, आज उसका साक्षात् प्रमाण मिल गया। भलाई की बात कहो, तो लोग डंडा लेकर मारने को छोड़ते है॥ यह ब्राह्मण–पुत्र भी कुछ ऐसा ही व्यवहार कर रहा है। बड़ी प्रसन्नता के साथ मैंने धन का आशीर्वाद दिया था। कहाँ गया वह उपकार, ऊपर से मुझे ही दोषी ठहरा रहा है!" संन्यासी ने आगे कहा,–"सुनो ब्राह्मणकुमार! तुम मेरे आशीर्वाद की निन्दा क्यों कर रहे हो? पृथ्वी पर जन्म लेकर जिसने भोग–विलास न किया हो, उत्तम कामिनी जिसके साथ न हो, जिसके पास धन–सम्पत्ति न हो, उस जीवित रहने का क्या प्रयोजन? मैंने तुम्हें ये सब वरदान दिये और तुम लज्जित हो गये। मान लिया कि, तुम्हारे शरीर में विष्णुभक्ति का उदय हुआ है। परन्तु मुझे यह तो बताओ कि धन के बिना कैसे जीओगे, क्या खाओगे।" संन्यासी की बात सुनकर प्रभु हँसने लगे और अपने श्रीहस्त को उठाकर उन्होंने अपने माथे में लगा लिया।

(५२) गौः भाः—दारी संन्यासी ने कहा,–सुना था कि लोगों को कोई अच्छी बात कहो, तो बदले में लोग दुर्व्यवहार करते हैं आज इस बात का साक्षात् प्रमाण मिल गया। यह ब्राह्मणकुमार सच हो झूठ सिद्ध करना चाहता है॥ मैंने उसकी भलाई के लिए कहा और यह बुरा मान गया।

(५३) गौः भाः—मैंने प्रसन्नता के साथ ब्राह्मण–कुमार को 'धन आदि की प्राप्ति हो जाए' कहकर आशीर्वाद दिया, परन्तु इन्होंने उपकार को बिना समझे मेरी निन्दा की है। यह साक्षात् कलि का कार्य है।

(५५) गौः भाः— इस संसार में आकर जिस व्यक्ति ने स्त्रीसंग नहीं किया, उसने वृथा ही जीवन गँवा दिया। जिस व्यक्ति ने मनुष्य–जीवन पाकर भी धन–संग्रह नहीं किया, उसके जीवन का क्या प्रयोजन है? मैंने 'कनक–कामिनी की प्राप्ति हो जाए,'– यह आशीर्वाद दिया था, परन्तु तुम इसे ग्रहण करने में लज्जा का अनुभव कर रहे हो, यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। इस जगत् में धन के बिना एक कदम आगे बढ़ना भी असंभव हैं विष्णुभक्ति–विशिष्ट हो जाने पर भी बिना धन के पेट कैसे भरेगा—समझ में

नहीं आता।

(५८) गौः भाः—दारी संन्यासी से इस प्रकार मूढ़जनोचित विचारों को सुनकर गौरसुन्दर ने 'हाय-हाय' कहकर अपना माथा ठोक लिया।

गौरसुन्दर के द्वारा भक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं की अप्रयोजनीयता की शिक्षा प्रदान-

व्यपदेशे महाप्रभु सबारे शिखाय।
भक्ति बिना के येन किछुइ ना चाय॥५९॥
''शुन शुन संन्यासी-गोसाईं, ये खाइव।
निज कर्मे ये आछे, से आपने मिलिव॥६०॥
धन-वंश-निमित्त संसार काम्य करे।
बल ता'र धन-वंश तबे केन मरे?॥६१॥
ज्वरेर लागिया केह कामना ना करे।
तबे केन ज्वर आसि' पीड़ये शरीर॥६२॥
शुन शुन गोसाईं इहार हेतु—कर्म।
कोन् महापुरुषे से जाने एइ मर्म॥६३॥
वेदेओ बुझाय 'स्वर्ग', बले जना जना।
मूर्ख-प्रति केवल से वेदेर करुणा॥६४॥
विषय-सुखेते बड़ लोकेर सन्तोष।
चित्त बुझि' कहे वेद, वेदेर कि दोष॥६५॥
'धन पुत्र पाइ गंगास्नान हरिनामे'।
शुनिया चलये लोक वेदेर कारणे॥६६॥
येते-मते गंगास्नान-हरिनाम कैले।
द्रव्येर प्रभावे 'भक्ति' हइवेक हेले॥६७॥
एइ वेद-अभिप्राय मूर्ख नाहि बुझे।
कृष्णभक्ति छाड़िया विषय-सुखे मजे॥६८॥
भाल-मन्द विचारिया बुझह गोसाईं।
कृष्णभक्ति-व्यतिरिक्त आर वर नाइ''॥६९॥
संन्यासीर लक्ष्ये शिक्षागुरु भगवान्।
'भक्तियोग' कहे वेद करिया प्रमाण॥७०॥

(५९-७०) प० अनु०—प्रभु ने सार्वजनिक रूप से सबको यह शिक्षा दी कि, कोई भी व्यक्ति भक्ति के सिवाये और कुछ भी न माँगे। महाप्रभु ने दारी संन्यासी से कहा,-"सुनो संन्यासी-गोसाईं, सुनो! हम जो कुछ खायेंगे, वह तो कर्म के अनुसार अपने आप ही मिलेगा। धन-वंश के लिए लोग संसार बसाना चाहते हैं, तो फिर बताओ, उनका धन-वंश नष्ट क्यों हो जाता है? कोई नहीं चाहता कि उसको ज्वर आ जाए, फिर भी ज्वर आकर उसे तंग क्यों करता है? सुनो, गोसाईं सुनो, इसका कारण है कर्म। कोई-कोई महापुरुष ही इस रहस्य को जानता हैं वेद भी 'स्वर्ग' की ओर इशारा करते हैं, लोग भी इसके पीछे पड़े हुये है॥ परन्तु यह तो केवल मूर्खों के प्रति वेदों की करूणा है। विषय-सुख में लोगों को बड़ा ही सुख मिलता है। वेद लोगों के दिलों को दखेते हैं और उसी के अनुसार कहते हैं, इसमें वेदों का क्या दोष है। 'गंगास्नान करने और हरिनाम लेने से धन-पुत्र आदि की प्राप्ति होती है', यह सुनकर लोग वेदों के कारण उधर चल पड़ते है॥ किसी भी प्रकार से गंगास्नान और हरिनाम करने से द्रव्य के प्रभवव के कारण आसानी से 'भक्ति' आ जायेगी—वेदों के इन अभिप्रायों को मूर्ख नहीं समझ पाते हैं और इस कारण कृष्णभक्ति को छोड़कर वे केवल विषय-सुखों में डूब जाते है॥ हे गोसाईं! अच्छे-बुरे को सही तरह से पहचानिए। कृष्णभक्ति के अतिरिक्त और कोई आशीर्वाद है ही नही॥" संन्यासी को लक्ष्य करके शिक्षागुरु भागवान् ने वेद-प्रमाण सहित इस 'भक्तियोग' का वर्णन किया है।

(५९) गौः भाः—श्रीमनमहाप्रभु ने अपनी इस लीला में भक्ति की प्रयोजनीयता एवं भक्ति को छोड़कर अन्य सभी कार्यों की अप्रयोजनीयता को समझाकर, इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की है कि, 'जगत् में किसी को भी विषय-वासनाओं में नही फँसना चाहिए'।

इस शिक्षादान के छल में भोगमयी वासना को त्याग देने की शिक्षा दी है।

(६०) गौः भाः—दारी संन्यासी के द्वारा यह कहने पर कि 'धन–प्राप्ति के आशीर्वाद को छोड़कर तुम क्या खाकर जीओगे?' इसके उत्तर में महाप्रभु ने कहा, 'अपने कर्मों के फलानुसार जीव बिना चाहे अपना भोजन पाने का सुयोग प्राप्त करते है॥' भोजनीय वस्तुएँ अपने आप आ जाती हैं; उसी प्रकार से, जिस प्रकार से नवजात शिशु बिना चेष्टा के ही माता के स्तन्य (दूध) को पेय के रूप में प्राप्त कर लेते है॥

(६१) गौः भाः—जब भी मानवों में धन–पुत्र– आदि के लिए सांसारिक कामना करने की स्वाभाविक रुचि दिखाई देती है, तब भी वे कामना करके भी धन, पुत्र आदि को त्यागने के लिए विवश क्यों हो जाते हैं?

(६२) गौः भाः—यदि आशीर्वाद–कामना से ही फल मिलता होता, तब अनचाहा ज्वर क्यों आकार जीव–शरीर में उपस्थित होता है? बिना प्रार्थना के भी जब वस्तु आकर स्वयं उपस्थित होती है, एवं कभी–कभी जब प्रार्थना करने पर भी कुछ नहीं मिलता है, तब यही सिद्ध होता है कि, वासना अर्थहीन है।

(६४) गौः भाः—कर्मफल के द्वारा ही धन–आदि की प्राप्ति होती है। सत्कर्म के प्रभाव सेस स्वर्गसुख आदि की बातें भी सुनाई देती हैं एवं लोभी, भोगी अनभिज्ञ मानवों के प्रति कृपा–पदर्शन करने के लिए वैदिक अनुशासनादि का आरोप उन लोगों में से उन–उन स्वभावों को दूर हटाने के उद्देश्य से ही कहा गया है। "परोक्षवादों वेदोऽयम्"–(भाः११/३/४४) "लोके व्यवायामिष"– (भाः११/५/११) इत्यादि श्लोक इस प्रसंग में अनुशीलनीय है॥ मायिक विषयों का प्रभु होने के लिए भगवद्मुखों को बड़ा ही आनन्द मिलता हैं इसलिए वेदशास्त्र उन लोगों की रुचि के अनुकूल ही उन लोगों को विभिन्न प्रकार से उत्साहित करते है॥ वास्तव में वेदों का वक्तव्य विषय ऐसा नहीं है।

(६६) गौः भाः–साधारणजन सोचते हैं कि गंगास्नान एवं हरिनाम से ऐहिक धन एवं संसार की वृद्धि होती है, इसलिए वे वेद को अपनी इन्द्रियों के लिए उपयोगी समझकर उसका अधिक सम्मान करते हैं; परन्तु गंगास्नान एवं हरिनाम इत्यादि कार्यों के करने से स्वाभाविक मलिनता दूर होर सेवोन्मुखी वृत्ति उदित होती है।

(६८) गौः भाः—वेदों का अभिप्राय जिन लोगों की समझ में नहीं आता है, वे ही भगवत् सेवा की प्रयोजनीयता को अस्वीकार करके जड़ जगत् में प्रमत्त हो जाते है॥

(६९) गौः भाः—महाप्रभु ने दारी संन्यासी का अच्छे–बुरे का विचार दिखाया एवं इसके सहारे प्रमाणित किया कि, कृष्णसेवा के अतिरिक्त अन्य कोई आशीर्वाद सही प्रकार से सम्पूर्ण फल प्रदान करने में समर्थ नहीं है।

परनिन्दक पापमति की चैतन्यवाक्यों को हृदयंगम करने में असमर्थता के कारण उनका भक्ति में अनादर–

ये कहे चैतन्यचद्र, सेइ सत्य हय।
परनिन्दे पापी–जीव ताहा नाहि लय॥७१॥

(७१) प० अनु०–चैतन्यचन्द्र जो कुछ भी कहते हैं, सब सत्य है; किन्तु परिनन्दक पापी जीव उसे स्वीकार नहीं करते है॥

(७१) गौः भाः—दूसरों की निन्दा करने वाले पापी लोग श्रीचैतन्यचन्द्र के वास्तविक–सत्य–पूर्ण वाक्यों को बिना समझे नित्यकाल पापमति रह जाते हैं एवं कृष्णभक्ति का अनादर करते रहते है॥

प्रभु वाक्य को सुनकर दारी संन्यासी के द्वारा प्रभु को 'विकृत-मस्तिष्क' वाला समझना एवं अपनी आध्याक्षिकता के श्रेष्ठत्व की स्थापना-

हासये संन्यासी शुनि' प्रभुर वचन।
''ए बुझि पागल द्विज— मन्त्रेर कारण॥७२॥
हेन बुझि एइ वा संन्यासी बुद्धि दिया।
लइ' याय ब्राह्मणकुमार भुलाइया''॥७३॥
संन्यासी बलये,-''हेन काल से हइल।
शिशुर अग्रेते आमि किछु ना जानिल॥७४॥
आमि करिलाम ये पृथिवी-पर्यटन।
अयोध्या, मथुरा, माया बदरिकाश्रम॥७५॥
गुजराट, काशी, गया, विजय-नगरी।
सिंहल गेलाम आमि,यत आछे पुरी॥७६॥
आमि ना जानिल भाल, मन्द हय काय।
दुग्धेर छाओयाल आजि आमारे शिखाय''॥७७॥

(७२-७७) प० अनु०—प्रभु का वचन सुनकर संन्यासी हँसने लगा। संन्यासी साचने लगा, "हो सकता है, मन्त्र के कारण यह ब्राह्मण पागल हो गया हो। यह भी हो सकता है कि आया हुआ संन्यासी इस ब्राह्मणकुमार को बहला-फुसलाकर ले जा रहा हो।" संन्यासी ने कहा,-"ऐसा समय आ गया है कि, बच्चे के समाने मैं अनजान बन गया हूँ। मैंने पृथ्वी का पर्यटन किया है। अयोध्या, मथुरा, माया, बदरिकाश्रम, काशी, गुजरात, गया, विजय-नगरी, सिंहल और जितनी भी पुरियाँ हैं, उन सभी जगहों पर मैंने भ्रमण किया है। सो मैं तो जान नहीं पाया कि, किससे अच्छा और किससे बुरा होता है और यह दूध-पीता बच्चा आज मुझे इसके बारे में शिक्षा दे रहा है।

(७३) गौः भाः—महाप्रभु के द्वारा कथित कृष्णभक्ति की सर्वोत्तमता एवं परम प्रयोजनीयता के बारे में सुनकर दारी संन्यासी ने उसका आदर नहीं किया। उन्होंने महाप्रभु को विकृत-मस्तिष्क वाला बालक मात्र समझा एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु को संन्यासी के वेश में महाप्रभु के साथ उपस्थित देखकर दारी संन्यासी ने सोचा कि, नित्यानन्द प्रभु ने ही इस ब्राह्मणकुमार (महाप्रभु) की बुद्धि को बदल डाला है और इसे प्रताड़ित किया है।

(७७) गौः भाः—मैं अभिज्ञ हूँ, बड़ी उम्र वाला हूँ, संसार की मस्ती में मस्त हूँ, मैंने पूरे भारतवर्ष का भ्रमण किया है और सभी तीर्थस्थानों पर अवस्थान कर रहे विक्षण व्यक्तियों से मुझे परामर्श मिला है, परन्तु इस ब्राह्मण-बालक ने मेरी सारी अभिज्ञताओं को ठुकरा दिया है। स्वयं दूध पीता बच्चा है, इसलिए मेरी बात उसकी समझ में नहीं आई। ऊपर से मुझे सिखाने चला है। भली-बुरी बातों को सोचने-समझने की शक्ति मुझमें पूर्णरूप से विद्यमान है।

नित्यानन्द प्रभु के द्वारा दारी संन्यासी को प्रतिष्ठा प्रदान एवं क्षमा-याचना-

हासि बले नित्यानन्द,-''शुनह गोसाईं।
शिशु-संगे तोमार विचारे कार्य नाञि॥७८॥
आमि से जानिये भाल तोमार महिमा।
आमारे देखिया तुमि सब कर क्षमा''॥७९॥
आपनार श्लाघ शुनि' संन्यासी सन्तोषे'।
भिक्षा करिवारे झाट बलये हरिषे॥८०॥

(७८-८०) प० अनु०—इस पर नित्यानन्द ने हँसकर कहा,-"सुनिए गोसाईं! बच्चे के साथ आपका विचार करना ठीक नहीं है! मैं आपकी महिमा भली-भाँति जानता हूँ। मुझे देखकर आप सब कुछ क्षमा कर दीजिए।" अपनी प्रशंसा सुनकर संन्यासी संतुष्ट हो गया और आनन्द के साथ तुरन्त भिक्षा (भोजन)

करने के लिए कहा।

(७९) गौः भाः–श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जड़भोगों में प्रमत्त दारी संन्यासी से क्षमा प्रार्थना करके उनको सम्मान प्रदान किया एवं महाप्रभु को अनभिज्ञ शिशु के रूप में स्थापित किया। इस पर दारी संन्यासी ने श्रीमन् नित्यानन्द के प्रति करुणा प्रदर्शित की।

नित्यानन्द के द्वारा संन्यासी के निकट भोजनीय वस्तु के लिए प्रार्थना एवं संन्यासी के द्वारा अनुरोध किये जाने पर दोनों का संन्यासी के घर में फलाहार–

नित्यानन्द बले,–''कार्य–गौरवे चलिव।
किछु देह' स्नान करि' पथेते खाइव''॥८१॥
संन्यासी बलये,–''स्नान कर एइखाने।
किछु खाइ' स्निग्ध हइ' करह गमने''॥८२॥
पातकी तारिते दुइ प्रभु अवतारे।
रहिलेन दुइ प्रभु संन्यासीर घरे॥८३॥
जाह्नवीर मज्जने घुचिल पथश्रम।
फलाहार करिते बसिला दुइजन॥
दुग्ध, आम्र, पनसादि करि' कृष्णसात्।
शेषे खाये दुइ प्रभु संन्यासी–साक्षात्॥८५॥

(८१–८५) प. अनु०—नित्यानन्द ने कहा,–"हमें और किसी काम के लिए जाना है। कुछ दे दीजिए, स्नान करके हम लोग रास्ते में खा लेंगे।" सन्यासी बोले,–यहाँ नहा लो। फिर कुछ खा–पीकर स्निग्ध होकर चले जाना।" पातकियों का उद्धार करने के लिए ही दोनों प्रभुओं का अवतार हुआ है। दोनों प्रभु संन्यासी के घर में ठहर गये। जाह्नवी (गंगा) में स्नान करने से उनकी रास्ते की थकावट दूर हो गयी। दोनों आकर फलाहार करने के लिए बैठ गये। दुग्ध, आम्र, पनस आदि को पहले कृष्ण के लिए समर्पित करके फिर, दोनों संन्यासी के सामने बैठ कर खाने लगे।

(८१) गौः भाः—कार्य गौरवे–"इससे भी अधिक प्रयोजनीय कार्य हमें करना है"–प्रस्थान करने का यही कारण प्रदर्शित किया।

वामाचारी संन्यासी के द्वारा नित्यानन्द से मदिरा पीने के लिए अनुरोध करना एवं संन्यासी की पत्नी के द्वारा इसमें बाधा देना–

वामपथि–संन्यासी मदिरा पान करे।
नित्यानन्द–प्रति ताहा कहे ठारे ठोरे॥८६॥
''शुनह श्रीपाद, किछु आनन्द आनिव?
तोमा हेन अतिथि वा कोथाय पाइव?८७॥
देशान्तर फिरि' नित्यानन्द सब जाने।
'मद्यप संन्यासी' हेन जानिलेव मने॥८८॥
'आनन्द आनिव'–न्यासी बले बार–बार।
नित्यानन्द बले,–''तबे लड़ सेए आमार॥''८९॥
देखिया दोहाँर रूप मदन–समान।
संन्यासीर पत्नी चाहे जुड़िया धेयान॥९०॥
संन्यासीरे निषेध करये ता'र नारी।
''भोजनेते केने तुमि विरोध आचरि?''९१॥

(८६–९१) प. अनु०—इसी बीच वामाचारी संन्यासी मदिरा पीने लगे। उन्होंने इसके लिए नित्यानन्द को भी इशारा किया। "सुनिए श्रीपाद! आपके लिए भी कुछ आनन्द लाऊँ? आप जैसा अतिथि कहाँ मिलेगा? नित्यानन्द बहुत जगह घूमे थे, इसलिए उन्हें सब पता चल गया–नित्यानन्द मन में जान गये कि, ये संन्यासी मदिरा पी रहे है॥ संन्यासी ने बारबार कहा,–'आनन्द लाऊँ? यह सुनकर नित्यानन्द बोले,–यदि आप ऐसा करेंगे, तो हम चले जायेंगे।" दोनों के मदन (कामदेव) के समान सुन्दर रूप को संन्यासी की पत्नी जी–भरकर देख रही थी। संन्यासी को उनकी पत्नी ने यह कहते हुये मना कर दिया कि, "भोजन

के समय आप विरोधाचरण क्यों कर रहे हैं?"

(८६) गौः भाः—दारी संन्यासी संन्यास के विपरीत पथ अथवा वामपथ ग्रहण करने के पक्षपाती थे। उन्होंने मदिरा पान में अत्यधिक आसक्त होने के कारण नित्यानन्द-प्रभु को भी मदिरा पीने के लिए इशारा किया। दारी संन्यासी उन्हें मदिरा पिलाने के लिए बार-बार चेष्टा करने लगे।

वामपथि-वामाचारी। मद्य-मांस- मत्स्य-मुद्रा-मैथुन आदि पंचतत्त्व एवं रजस्वला स्त्री के रज द्वारा कुलस्त्री की पूजा, मदिरा आदि का दान एवं सेवन-ये सब वामाचारी के प्रधान कर्तव्य है॥ इसके बाद वामास्वरूप होकर परमा शक्ति की पूजा करना इनका कर्त्तव्य है-(आचारभेदतन्त्र)। ललाट में सिन्दूर-चिह्न लगाना एवं हाथ में मदिरासव को धारण करके गुरु एवं देवता का ध्यान करते हुये उसे पी जाना। हाथ में सुरापात्र लेकर मन्त्रपाठ-सहित पाँच-बार मद्यपात्र की वन्दना करते हुये पाँच-पात्र मदिरा-पान करना। इसके बाद जब तक सभी इन्द्रियाँ चंचल न हो जायें, तब तक पीते रहना। तत्पश्चात् शान्तिस्तोत्र-आदि का पाठ करना कर्तव्य-प्राणतोषिणी-तन्त्र एवं कुलाण र्व में दिया हुआ विशेष विधान द्रष्टव्य है।

(८९) गौः भाः—दारी संन्यासी की बारम्बार मदिरा पिलाने की ललक को देखकर श्रीमन् नित्यानन्द प्रभु महाप्रभु को साथ लेकर वहाँ से चले जाने को तैयार हो गये और संन्यासी को यह बात बता दी।

(९१) गौः भाः—दार-रहित जन ही संन्यासी अथवा भिक्षु-नाम से जाने जाते है॥ संन्यासियों को टक्कर देने की इच्छा से दौरात्म्य-प्रदर्शन पूर्वक संन्यास-विरोधी सम्प्रदाय नारी-संग्रह, परनारी-ग्रहण इत्यादि पाप कर्मों को धर्मशास्त्र के अनुमोदित विषय मानकर उनका प्रचलन करने की चेष्टा करते है॥ यहाँ संन्यासी की पत्नी ने संन्यासी से ऐसी चेष्टा करने को मना कर दिया।

वामाचारी संन्यासी की नित्यानन्द को मदिरा पिलाने की इच्छा को सुनकर महाप्रभु एवं नित्यानन्द का गंगा में छलाँग लगाना एवं आचार्य के घर में गमन-

प्रभु बले-"कि आनन्द बलये संन्यासी?"
नित्यानन्द बलये,-"मदिरा हेन वासी॥"९२॥
'विष्णु विष्णु' स्मरण करये विश्वम्भर।
आचमन करि' प्रभु चलिला सत्वर॥९३॥
दुइ प्रभु चंचल, गंगाय झांप दिया।
चलिला आचार्य-गृहे गंगाय भासिया॥९४॥

(९२-९४) प. अनु०—प्रभु ने पूछा,-"संन्यासी किस आनन्द की बात कर रहे हैं?" नित्यानन्द ने कहा,-"लगता है मदिरा के बारे मे॥" यह सुनकर विश्वम्भर 'विष्णु-विष्णु' स्मरण करते हुये आचमन करके तुरन्त चल पड़े। दोनों चंचल प्रभुओं ने गंगा में छलाँग लगाई और गंगा में बहते हुये दोनों आचार्य के घर की ओर चल दिये।

(९३) गौः भाः—महाप्रभु ने जब समझा कि, पाप-परायण 'संन्यासी'-नामधारी कपटी व्यक्ति मदिरा पिलाने की बातें कर रहा है एवं उस प्रकार की पापवृत्ति का समर्थन कर रहा है, तब भगवत्स्मरण- पूर्वक आहार का परित्याग करके एवं "अमृताविधानमसि स्वाहा" ऐसा उच्चारण करके गंडूष (आचमन) करने के उपरान्त दोनों ने गंगा में छलांग लगा दी।

नीतिवादियों के विचार में स्त्रैण एवं मद्यपायी निकृष्ट होने पर भी वैष्णवविद्वेषी वेदान्ती की अपेक्षा भगवान् का अधिक कृपा-पात्र है-

स्त्रैण–मद्यपेरे प्रभु अनुग्रह करे।
निन्दक वेदान्ती यदि, तथापि संहारे॥९५॥

(९५) प. अनु०–स्त्रैण एवं मद्यपायी (शराबी) पर भी प्रभु अनुग्रह करते हैं, किन्तु वैष्णव–निन्दक यदि वेदान्ती भी है, तब भी प्रभु उसका संहार कर देते है॥

(९५) गौः भाः—साधारण नीतिपरायण जड़भोगों में प्रमत्त जनगण केवलाद्वैत वैदान्तिको को स्त्रीसंगी एवं शराब के नशे में चूर रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ऊँचा स्थान प्राप्त करते है॥ परन्तु जीवों के प्रति परम कारुणिक सर्वतन्त्र भगवान् साधारणजनों के आपात–दर्शन–जनित विचार का अनुमोदन किये बिना वैष्णवविद्वेषी वैदान्तिक के विचार का खंडन कर देते हैं, क्योंकि वह सम्पूर्णरूप से भक्तिविरुद्ध है। भगवान् कमजोर, स्त्रीसंगी एवं मद्यपायी के प्रति तारतम्यविचार पूर्वक अनुग्रह प्रदर्शन करते है॥

संग का तारतम्य प्रदर्शन करने के लिए गौरसुन्दर के द्वारा कृपापूर्वक मायावादियों का साथ छोड़ देने के लिए दारी संन्यासी को शिक्षा–प्रदान–

न्यासी हैया मद्य पिये, स्त्रीसंग आचरे।
तथापि ठाकुर गेला ताहार मन्दिरे॥९६॥
वाक्यावाक्य कैला प्रभु, शिखाइल धर्म।
विश्राम करिया कैला भोजनेर कर्म॥९७॥
ना हय ए जन्मे भाल, हैव आर जन्मे।
सबे निन्दकेरे नाहि वासे भाल–मर्मे॥९८॥
देखा नाहि पाय यत अभक्त संन्यासी।
ता'र साक्षी यतेक संन्यासी काशीवासी॥९९॥

(९६–९९) प. अनु०—संन्यासी होकर मदिरा पीते हैं, स्त्री के साथ संग करते हैं, फिर भी ठाकुर उनके घर में गये। उनके साथ प्रभु ने वार्तालाप किया, उनको धर्म सिखाया। फिर विश्राम के बाद उनके घर में भोजन किया। इस जन्म में वे अच्छे नहीं हैं, न सही, दूसरे जन्म में अच्छे होंगे। केवल निन्दा करने वालों से प्रभु नाराज रहते है॥ जितने भी अभक्त संन्यासी हैं, वे प्रभु के दर्शन करने में समर्थ नहीं होते है॥ काशीवासी सभी संन्यासी इस बात के साक्षी है॥

(९६) गौः भाः—संसार में परदारहारी मदिरापानरत व्यक्तियों को 'पुण्यविग्रह' (अच्छे आदमी) के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। पापियों के घर में जाकर कोई उनके संग करने का अवकाश नहीं देते है॥ श्रीगौर–नित्यानन्द ने संग का तारतम्य प्रदर्शन करने के लिए मायावादियों का संग मद्यपायी के संग की अपेक्षा अधिक तुच्छ एवं त्याज्य है, इसे समझाने के लिए दारी संन्यासी पर भी कृपा की। साथ ही काशीवासी मायावादी वैदान्तिकगणों का संग पूर्णतः परित्याग करने योग्य है, इस बात की जानकारी दी। स्त्रैणमद्यपायी–केवल पापी है, परन्तु मायावादी–भगवद्विद्वेषी एवं भक्तविद्वेषी हैं, अतएव नित्याकाल अपराधी है। पापों का क्षालन (नाश) किया जा सकता है; अपराध के कारण आत्मसंहार आदि सार्वकालिक पाप औपाधिक विचार का परित्याग नहीं करता है। अपराध के फलस्वरूप जीवों का नित्य सौभाग्य एवं चरम कल्याण सदा–सदा के लिए विनष्ट हो जाता है। पुण्यादि के समागम से पाप विनष्ट होता है; परन्तु अपराध नहीं। अपराध से पाप की अपेक्षा अधिक अमंगल की प्राप्ति होती है।

काशी में बसने वाले संन्यासियों को प्रभु के आगमन की वार्ता सुनकर गौरदर्शन–प्राप्ति की आशा एवं भक्ति की उपेक्षा

करने के कारण नैराश्य की प्राप्ति–

शेष–खण्डे यखने चलिला प्रभु काशी।
शुनिलेक काशीवासी यतेक संन्यासी॥१००॥
शुनिया आनन्द हैल संन्यासीर गण।
'देखिव चैतन्य', बड़ शुनि महाजन॥१०१॥
सबेइ वेदान्ती–ज्ञानी, सबेइ तपस्वी।
आजन्म काशीते वास, सबेइ यशस्वी॥१०२॥
एक दोषे सकल गुणेर गेल शक्ति।
पड़ाय वेदान्त, ना बाखाने विष्णुभक्ति॥१०३॥
अन्तर्यामी गौरसिंह इहा सब जाने।
गियाओ काशीते ना दिला दरशने॥१०४॥
रामचन्द्रपुरीर मठेते लुकाइया।
रहिलेन दुइ मास वाराणसी गिया॥१०५॥
विश्वरूप–क्षौरेर दिवस दुइ आछे।
लुकाइया चलिला, देखये केह पाछे॥१०६॥
पाछे शुनिलेन सब संन्यासीर गण।
चलिलेन चैतन्य, नहिल दरशन॥१०७॥

(१००–१०७) प. अनु०—शेष–खण्ड में जब प्रभु काशी गये, तब काशी में रहने वाले सभी संन्यासियों ने इस बारे में सुना। सुनकर सब संन्यासी आनन्दित हुये और सोचने लगे कि, "हम भी चैतन्य को देख पायेंगे।" सुना है कि, वे बहुत बड़े महापुरुष है॥ सभी संन्यासी वेदान्ती और ज्ञानी थे, सभी तपस्वी थे, जन्म से ही वे काशी में रह रहे थे, वे सभी यशस्वी भी थे। बस, एक ही दोष के कारण सारे गुणों पर पानी फिर गया। वे वेदान्त पढ़ाते तो थे, परन्तु विष्णुभक्ति की चर्चा नहीं करते थे। अन्तर्यामी गौरहरि यह सब जानते थे। इसलिए काशी में रहते हुये भी उन्हें दर्शन नहीं दिये। उन्होंने वाराणसी में जाकर वहाँ रामचन्द्रपुरी के मठ में रहते हुये दो महीने छिपकर बिता दिये। 'विश्वरूपक्षौर' नामक तिथि आने से दो दिन पूर्व ही वे छिपकर वहाँ से चल दिये, ताकि कोई देख न सके। सभी संन्यासियों ने बाद में सुना कि, चैतन्य चले गये। इस कारण उनके दर्शन नहीं मिल पाये।

(१०३) गौः भाः—मायावाद का खंडन करने वाले विष्णुभक्तिपरायणजन ही शुद्धवैदान्तिक है॥ विद्धवैदान्तिकगण मायावादी हैं, इसलिए भगवान् की माया को वास्तविक सत्य के साथ समान भाव से देखने के कारण वे दोषयुक्त हो जाते है॥ इस प्रकार के दोषदुष्टजन भगवान् एवं भक्तों के चरणों में नित्य अपराधी हो जाते है॥ तथा निखिल सद्गुणसमूह उन मायावादियों को त्यागकर चले जाते हैं और इस कारण विष्णुभक्ति, जो उनका आत्मधर्म है, विलुप्त हो जाता है।

(१०५) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने वाराणासी में चन्द्रशेखर के घर में अवस्थान किया था। शूद्र चन्द्रशेखर जाति से वैद्य थे। श्रीचैतन्य भागवत के लेखक ठाकुर वृन्दावनदास को यह पता है कि, श्रीमन्महाप्रभु ने रामचन्द्रपुरी के मठ में छिपकर अवस्थान किया था। रामचन्द्रपुरी के एक कपटी शिष्य थे, मायावाद के प्रति वे प्रचुर आग्रही थे। प्रकाश्यभाव में रामचन्द्रपुरी के मठ में अवस्थान की बात प्रचारित करके वे कृष्णभक्तों के साथ और कहीं रहा करते थे। रामचन्द्रपुरी साम्प्रदायिक संन्यासी थे, अतएव यतिरूप जीवन में उस मठ में अवस्थान करने के कारण बहिर्मुख जगत् को उनके ऊपर दोषारोप करने का कोई मौका नहीं मिला।

(१०६) गौः भाः—विश्वरूप–क्षौर–एकदण्डी यतिओं को दो–दो महीने के बाद पूर्णिमा तिथि में क्षौरकार्य कराना विहित है। चातुर्मास्य के बीच में अर्थात् दो महीनों के बाद जो क्षौरकार्य होता है, वह 'विश्वरूप–क्षौर' नाम

से विख्यात है। चातुर्मास्य के नियमानुसार उस समय क्षौरकार्य कराना मना है। परन्तु प्रत्येक दो महीने के बाद क्षौरकार्य की विधि का पालन करने के लिए श्रावण एवं भाद्र महीने की पूर्णिमा तिथि को एकदंडी यतिओं के लिए विशेष क्षौर–विधि की व्यवस्था है। इससे उन लोगों का चातुर्मास्यव्रत भंग नहीं होता है। विश्वरूप–क्षौरकार्य के उपरांत श्रीगुरुपूजा एवं गीता के विश्वरूप–अध्याय का पाठ आदि आनुष्ठानिक कृत्य है॥ भाद्र मास के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी–तिथि को महाप्रभु गोपनीयता–अवलम्बनपूर्वक लोगों को बिना दर्शन दिये वहाँ से चले गये। संन्यासीगण यह जानते थे कि, 'विश्वरूप– क्षौर' नामक तिथि को उन्हें श्रीचैतन्यदेव का दर्शन मिलेगा। संन्यासियों की यही धारणा थी कि–श्रीचैतन्यदेव भी उन सब की तरह एक मायावादी संन्यासी हैं, इसलिए 'विश्वरूपक्षौर' नामक तिथि को भी वे छिपकर कहीं और चले गये, यह जानकर संन्यासीगण निराशा के सागर में डूब गये।

महाप्रभु के प्रस्थान से
मायावादियों की जल्पना–

सर्व–बुद्धि हरिलेक एक निन्दा–पाप।
पाछेओ काहार चित्ते ना जन्मिल ताप॥१०८॥
आरो बले,–आमरा सकल पूर्वाश्रमी।
आमा सबा सम्भाषिया बिना गेला केनी?१०९॥
दुइ दिन लागि' केने स्वधर्म छाड़िया।
केने गेला ''विश्वरूप 'क्षौर' लंघिया?''११०॥

(१०८–११०) प. अनु०—एक निन्दारूपी पाप ने उनकी सब बुद्धियों का हरण कर लिया। बाद में भी किसी के मन में पश्चाताप नहीं हुआ। ऊपर से वे ऐसा और कहने लगे, कि हम सब पूर्वाश्रमी हैं, हमसे बिना मिले वे क्यों चले गये? दो दिनों की खातिर उन्होंने अपने धर्म को क्यों छोड़ दिया? 'विश्वरूपक्षौर' का उल्लंघन करके क्यों चले गये?

कृष्णभक्तिहीन निन्दक को काशीपति
महादेव के द्वारा दण्डदान–

भक्तिहीन हइले एमत बुद्धि हय।
निन्दकेर पूजा शिव कभु नाहि लय॥१११॥
काशीते ये पर निन्दे, से शिवेर दण्डय।
शिव–अपराधे विष्णु नहे ता'र वन्द्य॥११२॥

(१११–११२) प. अनु०—भक्तिरहित होने से ऐसी ही बुद्धि हो जाती है। निन्दा करने वालों की पूजा शिव कभी भी स्वीकार नहीं करते। काशी में जो दूसरों की निन्दा करते हैं, उन्हें शिव दण्ड प्रदान करते हैं, और शिव के निकट अपराध करने के कारण वे विष्णु की वन्दना करने में असफल ही रह जाते है॥

(१११) गौः भाः–जिन व्यक्तियों में आत्मा की नित्यवृत्ति–भक्ति का उदय नहीं हुआ है, वे विश्वरूपक्षौर आदि–आनुष्ठानिक क्रिया में आसक्त रहने के कारण श्रीचैतन्यदेव के द्वारा प्रचारित भक्ति की सुन्दरता को समझ नहीं पाते है॥ काशीपति सदाशिव वैष्णवनिन्दाकारी की पूजा कभी भी स्वीकार नहीं करते है॥

(११२) गौः भाः—प्रभु–निन्दाकारी काशीवासी को काशी के स्वामी महादेव दण्ड प्रदान करते है॥ इस प्रकार दण्ड पाने योग्य जीव वैष्णवों के चरणों में अपराधी होते हैं, इस कारण वैष्णवश्रेष्ठ महादेव उन लोगों को दण्ड देने के लिए विष्णुभक्ति से वंचित कर देते है॥

वैष्णवनिन्दक को छोड़कर बाकी सबके
ऊपर गौरसुन्दर की कृपा–

सबार करिब गौरसुन्दर उद्धार।
व्यतिरिक्त वैष्णव–निन्दक दुराचार॥११३॥
मद्यपेर घरे कैला स्नान (से) भोजन।
निन्दक वेदान्ती ना पाइल दरशन॥११४॥

(११३–११४) प. अनु०—गौरसुन्दर वैष्णव–निन्दक दुराचारी को छोड़कर बाकी सब का उद्धार करने वाले है॥ मद्यपायी (शराबी) के घर में भी प्रभु ने स्नान एवं भोजन किया, परन्तु निन्दक वेदान्ती उनके दर्शन करने में असफल रहे।

(११३) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने इसलिए भक्ति का प्रचार किया, ताकि जगत् के सभी प्राणियों का उद्धार हो जाए। परन्तु वैष्णवनिन्दक दुराचारी मायावादियों का उद्धार करने के लिए उनकी दया नहीं थी। उन लोगों के प्रति महाप्रभु ने अपनी करुणा नह; दिखाई। पक्षान्तर में उन्होंने (महाप्रभु ने) स्त्रैण–मद्यप के घर में आतिथ्य स्वीकार करने की लीला का अभिनय किया; तथापि वैष्णव–विद्वेषी मायावादी वैदान्तिकों को अपने स्वरूप के दर्शन कराने का सौभाग्य प्रदान नहीं किया।

चैतन्य के दण्ड से भयभीत न होने वाला
व्यक्ति यम के द्वारा दण्डनीय–

चैतन्येर दण्डे या'र चित्ते नाहि भय।
जन्मे जन्मे सेइ जीव यमदण्डय हय॥११५॥

(११५) प. अनु०—चैतन्य के दण्ड के बारे में जिनके मन में कोई छर नहीं है, उन्हें जन्म–जन्म में यम दण्ड प्रदान करते है॥

(११५) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव ने मायावादी वैदान्तिकों के साथ असहयोग–नीति का अवलम्बन करके उन्हें दण्ड प्रदान किया था। ऐसी कड़ी सजा से जो नहीं डरता है, उसको यमराज प्रत्येक जन्म में प्रचुर परिमाण में शासन करते है॥ सभी देवता भगवान् के सेवक हैं, वे सदैव भगवान् का कथा–कीर्तन करते रहते है॥ देव–द्विजों की सेवा में विमुखजन कभी भी श्रीगौरसुन्दर के पादपद्मों में आसक्त नहीं हो सकते। श्रीचैतन्य के पादपद्मों में अत्यासक्ति न रहने से व्यक्ति अर्थहीन केवलाद्वैत विचारपरायण बन जाता है, जो सभी प्रकार से अप्रयोजनीय है। श्रीमहाप्रभु की सेवा में रहितजनों का मायावाद–वेदान्तपाठ, विष्णुभक्ति से रहित होना एवं बहिर्जगत् की भोगप्रवृत्ति से दूर रहना–यह सब अनुपयोगी एवं निष्फल है।

अज–भाव आदि के द्वारा स्तवनयोग्य
गौरसुन्दर में रतिहीन वैदान्तिकों के
संन्यास–ग्रहण आदि की निष्फलता–

अज, भव, अनन्त, कमला सर्वमाता।
सबार श्रीमुखे निरन्तर याँ'र कथा॥११६॥
हेन गौरचन्द्र–यशे या'र नहे रति।
व्यर्थ ता'र संन्यास, वेदान्त–पाठे मति॥११७॥

(११६–११७) प. अनु०—अज (ब्रह्मा), भव, अनन्त और सबकी माता कमला,–इन सबके श्रीमुखों से निरन्तर जिनकी कथावार्ता होती रहती है, उन गौरचन्द्र के यश में जिनकी रति (प्रीति) नहीं है, उनका वेदान्तपाठ में आग्रह और संन्यास सब कुछ व्यर्थ है।

महाप्रभु एवं नित्यानन्द के द्वारा तैरकर
अद्वैत– भवन की ओर गमन–

हेनमते दुइ प्रभु आपन आनन्दे।
सुखे भासि' चलिलेन जाह्नवी–तरंगे॥११८॥

(११८) प. अनु०—इस प्रकार से दोनों प्रभु अपने आनन्द के साथ जाह्नवी (गंगा) की लहरों में सुख से बहे जा रहे है॥

हुँकार–पूर्वक महाप्रभु के द्वारा अद्वैत–तत्त्व कथन एवं उनको दण्ड–प्रदान करने के लिए संकल्प–

महाप्रभु विश्वम्भर करये हुँकार।
'मुञि सेइ, मुञि सेइ' बले बार बार॥११९॥
''मोहारे आनिल नाड़ा शयन भाँगिया।
एखाने बाखाने 'ज्ञान' भक्ति लुकाइया॥१२०॥
ता'र शाज्ञित करौं आजि ज्ञान–योग राखे॥''
केमते देखुक आजि ज्ञान–योग राखे॥''१२१॥
तर्जे गर्जे महाप्रभु, गंगास्त्रोते भासे।
मौन हइ' नित्यानन्द मने मने हासे॥१२२॥

(११९–१२२) प. अनु०—महाप्रभु विश्वम्भर बारम्बार हुँकार करने लगे और कहने लगे कि, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ'। नींद से उठाकर मुझे नाड़ा यहाँ ले आया है, और अब यहाँ भक्ति को छिपाकर वह 'ज्ञान' की व्याख्या कर रहा है। देख लेना, इसी कारण आज मैं उसे प्रत्यक्षरूप से दण्ड प्रदान करूँगा। मैं देखना चाहता हूँ कि, आज कैसे वह ज्ञानयोग को बचाये रखता है।" गंगा की लहरों में बहते हुये महाप्रभु तर्जन–गर्जन कर रहे थे और नित्यानन्द मौन होकर मन–ही–मन मुस्करा रहे थे।

गंगा में प्रवहमान गौरनित्यानन्द की अनन्त एवं मुकुन्द के साथ तुलना–

दुइ प्रभु भासि' याथ गंगार उपरे।
अनन्त मुकुन्द येन क्षीरोदसागरे॥१२३॥

(१२३) प. अनु०–क्षीर–सागर में रहने वाले अनन्त और मुकुन्द की भाँति दोनों प्रभु गंगाजल के ऊपर बहे जा रहे थे।

(१२३) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के साथ मुकुन्द की उपमा एवं नित्यानन्द के साथ शेष जी की समानता प्रदर्शित हुई है। क्षीरसागर में विष्णु के शयन की तरह यहाँ गंगाजल में गौरनित्यानन्द की प्रवहमान अवस्था है।

अद्वैत प्रभु के द्वारा गौरसुन्दर से दण्ड प्राप्त करने की आशा में मायावाद का आदर–

भक्तियोग–प्रभावे हद्वक्त महाबल।
बुझिलेन चित्ते मोर हइवेक फल॥१२४॥
'आइसे ठाकुर क्रोधे' अद्वैत जानिया।
ज्ञानयोग बाखाने' अधिक मत्त हइया॥१२५॥
चैतन्य–भक्तेर के बुझिते पारे लीला।
गंगापथे दुइप्रभु आसिया मिलिला॥१२६॥

(१२४–१२६) प. अनु०—भक्तियोग के प्रभाव से महाबली अद्वैत ने हृदय में अनुभव किया कि, मुझे अब फल मिलने वाला है। अद्वैत ने जब यह जाना कि, 'क्रोधित होकर ठाकुर आ रहे हैं', तब वे और अधिक मत्त होकर ज्ञानयोग की व्याख्या करने लगे। चैतन्य–भक्त की लीला कौन समझ सकता है? उधर दोनों प्रभु गंगापथ से वहाँ पहुँच गये।

महाप्रभु के आगमन से मायावाद की व्याख्या में अद्वैत की और अधिक मत्तता–

क्रोधमुख विश्वम्भर नित्यानन्द–संगे।
देखये, अद्वैत दोले ज्ञानानन्द–रंगे॥१२७॥

(१२७) प. अनु.—क्रुद्ध विश्वम्भर ने नित्यानन्द के साथ जाकर देखा कि, अद्वैत ज्ञानचर्चा के आनन्द में झूम रहे है॥

(१२७) गौः भाः—श्रीअद्वैत–प्रभु श्रीगौरसुन्दर से दण्ड के माध्यम से प्रचुर कृपा प्राप्त करने की आशा में भक्ति–विरोधी मायावाद का सम्मान करते हुये झूमने लगे। इस कारण महाप्रभु ने नित्यानन्द के साथ वहाँ उपस्थित होकर भक्तिविद्वेषी के प्रति क्रोध का प्रदर्शन किया।

अच्युत, हरिदास एवं अद्वैत की गृहिणी के द्वारा प्रभु को प्रणाम निवेदन–

प्रभु देखि' हरिदास दण्डवत् हय।
अच्युत प्रणाम करे अद्वैत–तनय॥१२८॥
अद्वैत–गृहिणी मने मने नमस्करे।
देखिया प्रभुर मूर्त्ति चिंतित अन्तरे॥१२९॥

(१२८–१२९) प. अनु०—प्रभु को देखकर हरिदास ने दण्डवत् प्रणाम किया, अद्वैत के पुत्र अच्युत ने भी प्रणाम किया। अद्वैत की पत्नी ने मन-ही-मन उन्हें नमस्कार किया और प्रभु की मूर्त्ति को देखकर वे हृदय में चिन्तित हो गईं।

(१२८) गौः भाः—उस समय हरिदास ठाकुर शान्तिपुर में अद्वैत के घर पर अवस्थान कर रहे थे। अद्वैत-पुत्र अच्युतानन्द एवं ठाकुर हरिदास दोनों ने महाप्रभु को आते देखकर दण्डवत् प्रणाम किया।

(१२९) गौः भाः—अद्वैत की दोनों पत्नियों ने बाहरी विचार से प्रकट रूप से नमस्कार अथवा अभिवादन न करके मन-ही-मन अहंकार-परित्याग पूर्वक प्रभु का आनुगत्य स्वीकार किया।

विश्वम्भर की तात्कालिक मूर्त्ति के दर्शन से सभी को भय–

विश्वम्भर–तेजः येन कोटि–सूर्यमय।
देखिया सबार चित्ते उपजिल भय॥१३०॥

(१३०) प. अनु०–कोटि-सूर्य की भाँति विश्वम्भर का तेज प्रकाशित हो रहा था। यह देखकर सभी के चित्त में डर छा गया।

गौरसुन्दर के द्वारा पूछे जाने पर अद्वैत-प्रभु के द्वारा ज्ञान की श्रेष्ठता का कथन एवं महाप्रभु के द्वारा अद्वैत पर प्रहार–

क्रोधमुखे बले प्रभु,–''आरे आरे नाड़ा।
बल देखि ज्ञान–भक्ति दुइते के बाड़ा?''१३१॥
अद्वैत बलये,–''सर्वकाल बड़ 'ज्ञान'।
या'र नाहि ज्ञान, ता'र भक्तिते कि काम?''१३२॥
'ज्ञान–बड़' अद्वैतेर शुनिया वचन।
क्रोधे बाह्य पासरिल शचीर नन्दन॥१३३॥
पिँड़ा हइते अद्वैतेरे धरिया आनिया।
स्वहस्ते किलाय प्रभु उठाने पाड़िया॥१३४॥

(१३१–१३४) प. अनु०—प्रभु क्रोधित होकर बोले,–"अरे! अरे नाड़ा! कहो तो सही, ज्ञान और भक्ति में कौन श्रेष्ठ है?" उत्तर में अद्वैत ने कहा,–"ज्ञान हर समय श्रेष्ठ है। जिनको ज्ञान नहीं है, उन्हें भक्ति से क्या प्रयोजन?" ज्ञान श्रेष्ठ है',- अद्वैत के ये वचन सुनकर क्रोध के कारण शचीनन्दन बाहरी सुधबुध भूल गये। अद्वैत अपने चबूतरे पर बैठे हुये थे। प्रभु ने उन्हें वहाँ से उठाया और आँगन में ले आये। फिर आँगन में नीचे गिराकर वे अपने हाथों से उन्हें मारने लगे।

(१३२) गौः भाः—महाप्रभु के द्वारा यह पूछे जाने पर कि, 'ज्ञान और भक्ति में कौन श्रेष्ठ है'-अद्वैताचार्य ने उत्तर दिया कि, ज्ञान ही श्रेष्ठ है; और यह भी कहा कि, ज्ञानवान् व्यक्ति के लिए भक्तिपथ में रहना जरूरी नहीं है।

(१३४) गौः भाः—अद्वैत प्रभु ने जब कहा कि, ज्ञान की महिमा भक्ति से अधिक है, तब लोगों को शिक्षा देने के लिए महाप्रभु ने अद्वैत को पीढ़े (चबूतरा) से उठाया उन पर खूब प्रहार करना आरम्भ कर दिया।

अद्वैत-पत्नी के द्वारा महाप्रभु को रोकने की चेष्टा, नित्यानन्द की हँसी एवं हरिदास का डर–

अद्वैतगृहिणी पतिव्रता जगन्माता।
सर्वतत्त्व जानिआओ करये व्यग्रता॥१३५॥
''बुड़ा विप्र, बुड़ा विप्र, राख राख प्राण।
काहार शिक्षाय एत कर अपमान?१३६॥
एत बुड़ा वामनेरे, आर कि करिबा?
कोन किछु हैले एड़ाइते ना पारिबा॥''१३७॥
पतिव्रता–वाक्य शुनि' नित्यानन्द हासे।
भये 'कृष्ण' सडरये प्रभु हरिदासे॥१३८॥

(१३५–१३८) प. अनु०—जगन्माता–स्वरूपिणी अद्वैत की पतिव्रता गृहिणी सब तत्त्व जानते हुये भी व्याकुल हो गईं और कहने लगीं,–"यह वृद्ध ब्राह्मण है, इनके प्राणों की रक्षा कीजिए। किसके सिखाये में आकर आप इनका इतना अपमान कर रहे हैं? इतने बूढ़े ब्राह्मण के साथ और क्या–क्या करेंगे? यदि कुछ हो गया, तो छुटकारा मिलना मुश्किल हो जाएगा।" पतिव्रता पत्नी की बात सुनकर नित्यानन्द हँसने लगे और प्रभु हरिदास डर के मारे 'कृष्ण' का स्मरण करने लगे।

(१३७) गौः भाः—अद्वैत की पत्नी ने कहा,– "अद्वैत बहुत बूढ़े हो चुके हैं ब्राह्मण ावध शास्त्रों में निषिद्ध है। बहुत ज्यादा प्रहार करने के कारण यदि ब्रह्म हत्या हो गई, तो इस घातक अपराध से छुटकारा मिलना बहुत कठिन होगा।"

क्रोधयुक्त महाप्रभु के द्वारा अपने तत्त्व को प्रकाशित करना–

क्रोधे प्रभु पतिव्रता–वाक्य नाहि शुने।
तर्जे गर्जे अद्वैतेरे सदम्भ–वचने॥१३९॥
शुतिया आछिलुँ क्षीर–सागरेर माझे।
आरे नाड़ा निद्रा–भंग मोर तोर काजे॥१४०॥
भक्ति प्रकाशिलि तुइ आमारे आनिला।
एबे बाखानिस ज्ञान भक्ति लुकाइया॥१४१॥
यदि लुकाइवि भक्ति, तोर चित्ते आछे।
तबे मोर प्रकाश करिलि कोन् काजे?१४२॥
तोमार संकल्प मुञि ना करि अन्यथा।
तुमि मोरे विड़म्बना करह सर्वथा॥१४३॥
अद्वैत एड़िया प्रभु बसिला दुयारे।
प्रकाशे आपन–तत्त्व करिया हुँकारे॥१४४॥
''आरे आरे कंस ये मारिल, सेइ मुञि।
आरे नाड़ा सकल जानिस देख तुइ॥१४५॥
अज, भव, शेष, रमा करे मोर सेवा।
मोर चक्रे मरिल शृगाल–वासुदेवा॥१४६॥
मोर चक्रे वाराणसी दहिल सकल।
मोर वाणे मरिल रावण महाबल॥१४७॥
मोर चक्रे काटिल वाणेर बाहुगण।
मोर चक्रे नरकेर हइल मरण॥१४८॥
मुञि से धरिलुँ गिरि दिया वाम–हात।
मुञि से आनिलुँ स्वर्ग हैते पारिजात॥१४९॥
मुञि से छलिलुँ बलि, करिलुँ प्रसाद।
मुञि से हिरण्य मारि' राखिलुँ प्रह्लाद॥''१५०॥
एइ मत प्रभु निज ऐश्वर्य प्रकाशे।
शुनिया अद्वैत प्रेमसिन्धु–माझे भासे॥१५१॥

(१३९–१५१) प. अनु०—क्रोध में प्रभु ने पवित्रता की बात को नहीं सुना। दंभ–प्रकाश पूर्वक प्रभु अद्वैत के प्रति तर्जन–गर्जन करते रहे। प्रभु ने कहा,–"अरे नाड़ा, मैं तो क्षीरसागर में सो रहा था। तेरे कार्य ने ही मेरी निद्रा भंग कर दी। तूने भक्ति को प्रकाशित करने के लिए मुझे यहाँ बुला लिया। अब भक्ति को छिपाकर ज्ञान की व्याख्या कर रहा है। यदि तेरे मन में भक्ति को छिपाये रखने की इच्छा थी, तो किस प्रयोजन के लिए तूने मुझे प्रकाशित किया? तेरे संकल्प को मैं कभी व्यर्थ नहीं होने देता, पर तू मुझे सदैव विडम्बना में डाले रहता है। इसके बाद अद्वैत को छोड़कर प्रभु द्वार में आकर बैठ

गये और हुँकार करते हुये निज तत्त्व को प्रकाशित करने लगे। प्रभु ने कहा,- "अरे अरे! जिसने कंस को मारा था, मैं वही हूँ। अरे ओ नाड़ा! तू सब जानता है, देख ले। अज, भव, शेष, रमा-ये सब मेरी सेवा करते है॥ मेरे सुदर्शन चक्र ने शृगाल-वासुदेव (पौण्ड्रक) को मार गिराया था। मेरे सुदर्शन चक्र ने सारे वाराणसी नगर को जला डाला था। मेरे वाणों ने महाबली रावण का संहार किया था। मेरे चक्र ने वाणासुर की भुजाओं को काटा था। मेरे चक्र ने नरकासुर का वध किया था। बाएँ हाथ पर मैंने ही (गोवर्धन) पर्वत को धारण किया था। स्वर्ग से पारिजात भी मैं ही लाया था। मैंने ही बलि को छला था, फिर उस पर कृपा भी मैंने ही की थी। मैंने हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद को बचाया था।" इस प्रकार से प्रभु अपना ऐश्वर्य प्रकाशित करते रहे और उसे सुनकर अद्वैत प्रेमसागर में बहते रहे।

(१४१) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु को धराधाम में अवतीर्ण करवाकर श्रीअद्वैत प्रभु ने भक्ति की महिमा प्रकाशित की है। परन्तु इस समय भगवान् की सेवाप्रवृत्ति को आवरित (आच्छन्न) करके ज्ञान की व्याख्या के द्वारा लोगों को प्ररोचित (उत्साहित) करने से उनका पूर्व अभिप्राय नष्ट हो रहा है,-इस बात की जानकारी महाप्रभु ने दी।

(१४४) गौः भाः—अद्वैत प्रभु पर प्रहार करना बंद करके वे उनके द्वारदेश में बैठकर ऊँचे स्वर में अपनी विचित्र लीला-कथाओं को प्रकाशित करने लगे।

(१४५) गौः भाः—जिन्होंने कंस का वध किया था, वे ही भगवान् गौरसुन्दर हैं-श्री अद्वैताचार्य इस बात को अच्छी तरह से जानते थे।

(१४६) गौः भाः—ब्रह्मा, शिव, अनन्तदेव, लक्ष्मी आदि सभी भगवान् की ही सेवा करते है॥ भगवान् ने सुदर्शन चक्र के द्वारा शृगाल-वासुदेव का संहार किया था।

(१४६) तथ्य—शृगाल-वासुदेव-भाः १०/६६ अः एवं ब्रह्मवैवर्त-पुराण के श्रीकृष्णजन्मखंड में १२१ अः द्रष्टव्य है॥

(१४८) गौः भाः—तथ्य-भाः१०/६३/एवं २०/५८ अः द्रष्टव्य है॥

(१४९) गौः भाः—तथ्य-भाः १०/२५ एवं १०/५९ अः द्रष्टव्य है॥

(१५०) गौः भाः—तथ्य-भाः ८/१८-२३ अः एवं ७/८ अः द्रष्टव्य है॥

महाप्रभु से दण्ड मिलने पर अद्वैत का नृत्य एवं प्रभु के प्रति उक्ति-

शास्ति पाइ, उद्वैत परमानन्दमय।
हाथे तालि दिया नाचे करिया विनय॥१५२॥
"येन अपराध कैलुँ, तेन शास्ति पाइलुँ।
भालइ करिला प्रभु अल्पे एडाइलुँ॥१५३॥
एखन से ठाकुराल बुझिलुँ तोमार।
दोष-अनुरूप शास्ति करिला आमार॥१५४॥
इहाते से प्रभु भृत्ये चित्ते बल पाय।"
बलिया आनन्दे नाचे शान्तिपुर-राय॥१५५॥
आनन्दे अद्वैत नाचे सकल अंगने।
भ्रुकुटि करिया बले प्रभुर चरणे॥१५६॥
"कोथा गेल एबे मोरे तोमार से स्तुति?
कोथा गेल एबे तोर से सब ढांगाति?१५७॥
दुर्वासा ना हउ मुञि यारे कदर्थिबे।
या'र अवशेष-अन्न सर्वांगे लेपिबे॥१५८॥
भृगमुनि नहुँ मुञि, या'र पदधूलि।
वक्षे दिया 'श्रीवत्स' हइबा कुतूहली॥१५९॥
मोर नाम अद्वैत-तोमार शुद्ध दास।

जन्मे जन्मे तोमार उच्छिष्टे मोर आश॥१६०॥
उच्छिष्ट–प्रभावे नाहि गणों तोर माया।
करिला त' शास्ति, एबे देह' पदछाया॥''१६१॥

(१५२–१६१) प. अनु०—दण्ड प्राप्त करके अद्वैत परम आनन्दित हुये और हाथों से ताली बजा–बजाकर विनीतभाव से नृत्य करने लगे। अद्वैत बोले,–"अपराध के अनुरूप ही मुझे दण्ड मिला है। अच्छा किया प्रभु, जो आपने मुझे थोड़े–से ही में छुटकारा कर दिया। अब आपकी ठाकुराई मेरी समझ में आ गई। आपने अपराध के अनुरूप मुझे दण्ड प्रदान किया है। हे प्रभु! इससे भृत्य के हृदय में बल मिलता है।" इतना कहकर शान्तिपुर–राय (अद्वैत) खुशी से नृत्य करने लगे। अद्वैत सारे आंगन में आनन्द–सहित नृत्य कर रहे थे और भौं नचा–नचाकर प्रभु के चरणों में निवेदन कर रहे थे–"मेरे प्रति आपकी वह स्तुति अब कहाँ गई? कहाँ गये अब आपके वे सारे ढंग? मैं दुर्वासा नहीं हूँ, जिसकी आप कदर्थना (तिरस्कार) कर देंगे, जिनके अवशिष्ट अन्न का आप सारे शरीर में लेपन कर लेंगे। मैं भृगुमुनि भी नहीं हूँ, जिनकी पदधूलि को वक्ष पर धारण करके आप आनन्द–सहित 'श्रीवत्स' बन जायेंगे। मेरा नाम अद्वैत है–मैं आपका शुद्ध दास हूँ। मैं जन्त–जन्मान्तर से आपकी जूठन (प्रसादी) पाने के लिए अभिलाषी हूँ। आपकी 'जूठन' के प्रभाव से मुझे आपकी माया की भी परवाह नहीं है। मुझे आप सजा तो दे चुके हैं, अब कृपया चरणों की छाया प्रदान कीजिए।"

(१५७) गौः भाः—ढांगाति–ढंगीपना (चतुराई)। अद्वैत ने कहा,–"मेरे प्रति आपकी वे सब स्तुतियाँ अब कहाँ गईं? मैंने अभक्ति–पथ का प्रचार करना आरम्भ किया, तो आपने मेरी स्तुति करने के बदले मुझपर प्रहार किया। मैं आपसे कभी भी सेवा नहीं माँगता हूँ, परन्तु आपकी ही सेवा करना चाहता हूँ। आप ढंगी बनकर अवैधरूप से मेरा स्तवन करते रहे है॥ अब आपने उस स्तवन को छोड़ दिया। मैं आपका नित्य सेवक हूँ, आप मेरे नित्य प्रभु हैं; अपने सेवक का स्तवन करना आपको उचित नहीं है। सेवक को शासित करना एवं उससे स्तवन ग्रहण करना ही आपका स्वभाव है। उसे छिपाकर आपने अवैधरूप से मेरा स्तवन किया था। अब उस स्तवन के बदले आपने जिस प्रकार से मुझपर शासन किया है, वही आपके लिए उचित है।"

(१५८) गौः भाः—मैं आपका नित्यदास हूँ, मैं दुर्वासा की भाँति भक्त एवं भगवान् को कष्ट देने वाला नहीं हूँ। यदि वास्तव में मैं दुर्वासा की भाँति हरिभक्ति से विद्वेष कर रहा होता, तो मेरी निन्दा करना आपके लिए उचित होता, परन्तु मैं आपका भक्त हूँ।

पुराण में लिखा हुआ है कि, दुर्वासा के जूठे अन्न का भगवान् ने अपने श्रीअंगों पर लेपन किया था।

(१५९) गौः भाः–तथ्य–भाः १०/८९ अः द्रष्टव्य है।

(१६१) गौः भाः—तथ्य–त्वयोपभुक्तस्रगं धवासोऽ–लंकारचर्चिताः। उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि। (भाः १२/६/४६)।

प्रभु के चरणकमलों में अद्वैत का पड़ जाना–

एत बलि भक्ति करि' शान्तिपुर–नाथ।
पड़िला प्रभुर पद लइया माथात॥१६२॥

(१६२) प. अनु०—इतना कहकर शान्तिपुर–नाथ (अद्वैताचार्य) भक्तिपूर्वक प्रभु के चरणकमलों में माथा लगा कर पड़ गये।

महाप्रभु के द्वारा अद्वैत को अपनी गोद में लेना एवं सभी का प्रेमक्रन्दन–

सम्भ्रमे उठिला कोले कैल विश्वम्भर।
अद्वैतेरे कोले करि' कान्दये निर्भर॥१६३॥
अद्वैतेर भक्ति देखि' नित्यानन्द–राय।
क्रन्दन करये येन नदी बहि' याय॥१६४॥
भूमिते पड़िला कान्दे प्रभु हरिदास।
अद्वैतगृहिणी कान्दे, कान्दे यत दास॥१६४॥
कान्दये अच्युतानन्द–अद्वैत–तनय।
अद्वैत–भवन हैल कृष्णप्रेममय॥१६६॥

(१६३–१६६) प. अनु०—सम्भ्रम–सहित उठकर विश्वम्भर ने अद्वैत को अपनी गोद में ले लिया और खूब रोये। अद्वैत की भक्ति को देखकर नित्यानन्द राय ने ऐसा रोदन किया, मानों नदी बह रही हो। प्रभु हरिदास भूमि पर गिरकर रोने लगे, अद्वैत की गृहिणी रो रही थी, जितने भी दास थे, वे सभी रो रहे थे। अद्वैत के पुत्र अच्युतानन्द भी क्रन्दन कर रहे थे। इस प्रकार अद्वैत का भवन कृष्ण–प्रेममय हो गया।

महाप्रभु–द्वारा अद्वैत को वरदान–

अद्वैतेरे मारिया लज्जित विश्वम्भर।
सन्तोषे आपने देन अद्वैतेरे वर॥१६७॥
''तिलार्द्धेको ये तोमार करये आश्रय।
से केने पतंग, कीट, पशु, पक्षी नय॥१६८॥
यदि मोर स्थाने करे शत अपराध।
तथापि ताहारे मुञि करिव प्रसाद॥''१६९॥

(१६७–१६९) प. अनु०—अद्वैत पर प्रहार करने के बाद विश्वम्भर बड़े लज्जित हुये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अद्वैत का वर प्रदान किया। प्रभु ने कहा,–"आधे पल के लिए भी जो तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेगा, वह चाहे पशु हो, कीट हो, पक्षी हो, पंतगा हो, चाहे कोई भी हो, यदि मेरे प्रति उसने सौ अपराध भी किये हों, तब भी मैं उस पर कृपा करूँगा।"

वर सुनकर अद्वैत का क्रन्दन एवं उक्ति–

वर शुनि' कान्दये अद्वैत महाशय।
चरणे धरिया कहे करिया विनय॥१७०॥
''ये तुमि बलिला प्रभु कभु मिथ्या नय।
मोर एक प्रतिज्ञा शुनह महाशय॥१७१॥

(१७०–१७१) प. अनु०—महाभाग अद्वैत ऐसा वर सुनकर क्रन्दन करने लगे और चरण पकड़कर विनय–पूर्वक बोले–हे प्रभो! आपने जो कुछ कहा, वह कभी मिथ्या नहीं है। हे महाशय! मेरी भी एक प्रतिज्ञा है, कृपया सुन लीजिए।

गौरसेवा–त्यागी अद्वैत–भक्त को संहार की प्राप्ति–

यदि तोरे ना मानिया मोरे भक्ति करे।
सेइ मोर भक्ति तबे ताहारे संहारे॥१७२॥

(१७२) प. अनु०–यदि कोई आपको आदर न देकर मेरे प्रति भक्ति करेगा, तो उसकी वह भक्ति उसका संहार करने वाली होगी।

(१७२) गौः भाः—अद्वैताचार्य ने कहा,–'हे प्रभो वियवम्भर! आपकी सेवा का परित्याग करके यदि मेरे शिष्यनामधारी व्यक्ति एवं अधस्तन पुत्रगण केवल मेरी सेवा–भक्ति करने के लिए तत्पर होते हैं, तो उन लोगों की वह भक्ति उनका संहार कर देगी–यही मेरी प्रतिज्ञा है।' श्रीअद्वैत–प्रभु श्रीचैतन्यदेव के नित्य दास है। इसे बिना समझे अद्वैत को 'विष्णु' मानकर तथा गौरसुन्दर को 'लक्ष्मी' के रूप में स्वीकार करके अद्वैत के मूढ़ शिष्यवर्ग अथवा अनभिज्ञ अधस्तन सन्तानगण भक्ति से विच्युत होकर अपना सर्वनाश कर रहे है।,

गौरपादपद्मों में प्रीतिरहित अपना पुत्र–
शिष्यवर्ग अद्वैत के द्वारा त्याज्य–

ये तोमार पादपद्म ना करे भजन।
तोरे ना मानिले कभु नहे मोर जन॥१७३॥
ये तोमारे भजे प्रभु से मोर जीवन।
ना पारौं सहिते मुञि तोमार लंघन॥१७४॥
यदि मोर पुत्र हय वा किंकर।
'वैष्णवापराधी' मुञि ना देखौं गोचर॥१७५॥

(१७३–१७५) प. अनु०—जो आपके चरणकमलों का भजन नहीं करता है, जो आपको नहीं मानता है, वह कभी मेरा भक्त नहीं हो सकता। हे प्रभु! जो आपका भजन करता है, वह मेरा जीवन है। आपका उल्लंघन किसया जाना मैं सहन नहीं कर सकता। भले ही मेरा पुत्र हो, अथवा मेरा किंकर, यदि वह वैष्णवों के चरणों में अपराधी हो जाए, तो मैं उसका मुँह देखना नहीं चाहता।

(१७३) गौः भाः—हे विश्वम्भर, मैं कभी भी किसी व्यक्ति को भी अपना निजी जन कहकर उसका परिचय प्रदान नहीं करूँगा–आपकी चरण–सेवा में जिनका सभी प्रकार से प्रीतिभाव नहीं है; मैं उन अधस्तन पुत्रों एवं शिष्यों का सभी प्रकार से परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हूँ। श्रीअद्वैत–वंश में एवं उस वंश के लोगों के शिष्यवर्ग में अभी भी अद्वैत के त्याज्य–पुत्रत्व एवं त्याज्य–शिष्यत्व का विचार गौड़ीय वैष्णव–जगत् सदैव करता रहता है। श्रीअद्वैत–प्रभु की भविष्यवाणी सफल हुई है। अद्वैत–प्रभु के सभी अन्तरंग शिष्यों एवं अधस्तनजनों ने गदाधर पण्डित का आनुगत्य स्वीकार किया था। अद्वैत के विरोधी पुत्रों एवं शिष्यों ने गदाधर पण्डित गोस्वामी के विचारों को स्वीकार नहीं किया एवं वे यह नहीं जान सके कि, वे ही श्रीगुरुपादपद्म है।

(१७४) गौः भाः—महाप्रभु को भक्तरूप में अंगीकार करने के कारण मूढ़ अद्वैतवादीगण विश्वम्भर को विषय–विग्रह न मानकर आश्रय–विग्रह मानते है। इससे विश्वम्भर की मर्यादा लंघित होती है। एवं अपनी बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण विष्णु–वंशी बनने की अवैध चेष्टा करने से उन लोगों के लिए त्याज्यवंश एवं त्याज्य शिष्य के रूप में परिचित होना मात्र शेष रह जाता है। चैतन्य के अकृत्रिम (निष्कपट) सेवकगण ही परम भक्त है। महाप्रभु के निज–सेवक अद्वैतप्रभु को जीवन–सदुश प्रिय है॥ जो व्यक्ति विषयविग्रह श्रीचैतन्यदेव की सेवा छोड़कर अपने आप तुच्छ स्वार्थ–पोषण के लिए अद्वैत की महिमा को स्थापित करते हैं, वे भगवान् के अनुग्रह–लाभ से सदैव वंचित होकर आत्मभरी (अपना बड़प्पन दिखाना) दाम्भिक एवं प्रतिष्ठाशा–परायण हो जाते है। अभी भी कोई–कोई अद्वैत–वंश का परिचय देकर शुद्धभक्त के द्वारा किये गये शुद्धाभक्ति के अनुष्ठान का प्रतिष्ठाशा कहकर स्थापित करने कर यत्न करते है। इससे उन लोगों की अवैध दांभिकता मात्र प्रकाशित होती है। उस प्रकार के दांभिकगण भक्ति के स्वरूप को बिना समझे अपने आपको विष्णु–वंशी एवं उस वंश के दासाभिमानी जनों का वैष्णव समझकर प्रतिष्ठाशारूप सागर के अतल तल में निमग्न हो जाते हैं; अद्वैत प्रभु उन लोगों का अपराध क्षमा करके उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करें, यही शुद्धभक्त–जगत् का एकमात्र प्रार्थनीय विषय है।

(१७५) गौः भाः—श्रीअद्वैत के तीनों पुत्रों एवं केवल नाम से बने कुछ शिष्यों के श्रीचैतन्यदेव एवं उनके शुद्धदासों के प्रति अपराध–विशिष्ट होने पर अद्वैत प्रभु ने उन लोगों के साथ अपना सम्पर्क छिन्न कर लिया एवं उन्हें कृपा से वंचित कर दिया, इसकी

जानकारी श्रीअद्वैत प्रभु की उक्ति से ही मिलती है। उनके प्रकटकाल में एवं उस समय से वर्त्तमान काल तक उनके त्याज्य-पुत्रों एवं उन लोगों के अधस्तन शिष्य-सम्प्रदाय के साथ श्रीअद्वैत एवं श्रीचैतन्यदेव का कोई सम्बन्ध है ही नहीं। अभी भी वे अपने अवैष्णव परिचय का अधिक सम्मान करते है।

गौरविमुख अन्य देवपूजक को उस-उस देवता के द्वारा विनाश की प्राप्ति, दृष्टान्त-स्वरूप सुदक्षिण-उपाख्यान का वर्णन-

तोमारे लंघिया यदि कोटि-देव भजे।
सेइ देव ताहारे संहारे कोन व्याजे॥१७६॥
मुञि नाहि बलों एइ वेदेर बाखान।
सुदक्षिण-मरण ताहार परमाण॥१७७॥

(१७६-१७७) प. अनु०—आपका उल्लंघन करके यदि कोई कोटि-देवताओं का भजन करता है, तो वे देवता ही छल-पूर्वक उसका संहार कर देते है॥ यह मैं नहीं कहता, यह वेद का कथन है। सुदक्षिण की मृत्यु इसका प्रमाण है।

(१७६) गौः भाः—अनर्पितचरी स्वभक्ति-श्री के प्रचार की वासना से श्रीभगवान् के द्वारा भक्तभाव को अंगीकार करना उनकी करुणा का अकृत्रिम (निष्कपट) आदर्श है। उस सुवर्ण-सुन्दर-द्युतिकदम्ब- सन्दीपित श्रीगौरहरि की सेवा का परित्याग करने वालों की जिन सब देवों की अनुभूति में प्रेमभक्ति की अमर्यादा दिखाई देती है, उन कोटि-कोटि देवों की मर्यादा विश्वम्भर-लंघन-जनित अपराध को कभी भी प्रशमित (दूर) नहीं कर सकती है। श्रीगौरविमुख पंडिताभिमानीजन कितने ही विभिन्न पवित्र देवताओं की पूजा में मस्त क्यों न रहें, वे सभी पूजित देवता उनके विपथगामी स्तावकों को किसी-न-किसी छल से विनष्ट कर देते है॥

सुदक्षिण के द्वारा शिव की आराधना-

सुदक्षिण नाम-काशीराजेर नन्दन।
महा-समाधिये शिव कैल आराधन॥१७८॥

(१७७) गौः भाः-श्रीवेदव्यास के द्वारा रचित पुराण-समूह वेदशास्त्रों के ऐतिह्य की विस्तृति (विस्तार) मात्र है॥ पुराणादि संस्कृत भाषा में लिखे हुये है॥ वे ऐतिह्य के सुगम आलोच्य विषय है॥ प्राचीन देवभाषा में लिखित वेद-समूह का आदर कम पड़ जाने एवं धीरे-धीरे उस सबके काल-कवलित हो जाने के कारण वह अब और देखने को नहीं मिलते, ऐसा कहकर पुराण-शास्त्रों को वेद से पृथक् समझ लेना अनभिज्ञता का परिचय-मात्र है। वेदव्याख्या के रूप में वही सब ऐतिह्य (इतिहास संबन्धीय) पुराणों में संगृहीत हुआ है।पुराणों (भाः १०/६६ अः) में सुदक्षिण का मरण-वृत्तांत अद्वैत के उक्ति समूह का प्रमाण है।

(१७८) प. अनु०—सुदक्षिण नाम के काशीराज के पुत्र ने महा-समाधि लेकर शिव की आराधना की थी।

(१७८) गौः भाः—महा-समाधिये-महा-समाधि अवलम्बन-पूर्वक।

शिव के द्वारा सुदक्षिण को वरदान, अभिचार-यज्ञानुष्ठान के लिए उपदेश एवं वैष्णव-विद्वेष करने का निषेध-

परम सन्तोषे शिव बले-"माग वर।
पाइवे अभीष्ट, अभिचार-यज्ञ कर॥१७९॥
विष्णुभक्त प्रति यदि कर अपमान।
तबे सेइ यज्ञे तोर लइव पराण॥"१८०॥

(१७९-१८०) प. अनु०—परम सन्तोष के

साथ शव बोले,–"वर माँग लो। अभिचार–यज्ञ का अनष्ठान करो, तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट मिल जाएगा। परन्तु यदि तुमने विष्णुभक्तों का अपमान किया, तो उसी यज्ञानुष्ठान में मैं तुम्हें मार डालूँगा।"

(१७९) गौः भाः—अभिचार–यज्ञ–अथर्व वेद में उक्त मारण–उच्चाटन आदि हिंसाकर्म है॥ तन्त्र में भी मारण, मोहन, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन, वशीकरण आदि अभिचार की कथाएँ सुनने को मिलती है॥ इसी कारण देवी की पूजा एवं होम–आदि का विधान विद्यमान है।

शिव की आज्ञा से सुदक्षिण का अभिचार–यज्ञ–

शिव कहिलेन व्याजे, से इहा ना बुझे।
शिवाज्ञाय अभिचार–यज्ञ गिया भजे॥१८१॥

(१८१) प. अनु०—शिव ने छलपूर्वक सब कुछ कह दिया, परन्तु सुदक्षिण कुछ नहीं समझा। शिव की आज्ञा से उसने अभिचार–यज्ञ करना आरम्भ कर दिया।

अभिचार–यज्ञ में त्रिशिर–मूर्ति का आविर्भाव एवं सुदक्षिण–द्वारा उसे द्वारका–दहन का आदेश–

यज्ञ हैते उठे एक महा–भयंकर।
तिन कर, चरण, त्रिशिर–रूप धर॥१८२॥
तालजंघ परमाण बले,–'वर माग'।
राजा बले–'द्वारका पोड़ाओ महाभाग'॥१८३॥

(१८२–१८३) प. अनु०—तीन हाथ, तीन चरण और तीन सिरों वाली एक महाभयंकर मूर्ति यज्ञ से उत्पन्न हुई। तालजंघ (तालवृक्ष के तने) के समान विशालकाय उस मूर्ति ने कहा,–'वर माँगो'। राजा बोला,–'हे महाभाग! द्वारका को जला दो'।

दुःख के साथ शैव–मूर्ति का द्वारका जाना, सुदर्शन द्वारा उस पर आक्रमण एवं शैव–मूर्ति के द्वारा सुदर्शन का स्तवन–

शुनिया दुःखित हैल महा–शैव–मूर्ति।
बुझिलेन इहार इच्छार नाहि पूर्ति॥१८४॥
अनुरोधे गेला मात्र द्वारकार पाशे।
द्वारका–रक्षक चक्र खेदाड़िया आसे॥१८५॥
पलाइवे ना एड़ाइ सुदर्शन–स्थाने।
महा शैव पडि' बले चक्रेर चरणे॥१८६॥
''यारे पलाइते नाहि पारिल दुर्वासा।
नारिल राखिते अज–भव–दिग्वासा॥१८७॥
हेन महा–वैष्णव–तेजेर स्थाने मुञि।
कोथा पलाइव प्रभु ये करिस् तुइ॥१८८॥
जय जय प्रभु मोर सुदर्शन नाम।
द्वितीय शंकर–तेज जय कृष्णधाम॥१८९॥
जय महाचक्र, जय वैष्णवप्रधान।
जय दुष्ट–भयंकर, जय शिष्टत्राण॥''१९०॥

(१८४–१९०) प. अनु०—महा शैव–मूर्ति यह सुनकर दुःखित हो गई और उन्हें यह भी पता लग गया कि सुदक्षिण की इस इच्छा का पूरा होना सम्भव नहीं है। अनुरोध के कारण द्वारका के पास जानेमात्र से द्व ारका के रक्षक चक्र उनके पीछे पड़ गये। भागकर भी सुदर्शन चक्र से बचना मुश्किल था। अतएव चक्र के चरणों में गिरकर महा शैव ने कहा,–"भागकर भी जिससे दुर्वासा बच नहीं पाये, अज–भव–दिग्वासा आदि जिससे रक्षा करने में असमर्थ रहे, उस महा–वैष्णव–तेज के सामने से बचकर मैं कहाँ जाऊँगा। हे प्रभु, जैसी आपकी इच्छा वैसा ही हो। सुदर्शन नामधारी मेरे प्रभु की जय हो, जय हो। द्वि तीय शंकर–तेज स्वरूप कृष्णधाम की जय हो। महाचक्र की जय हो, वैष्णवप्रधान की जय हो। दुष्ट के लिए भयंकर आपकी जय हो, और शिष्ट के त्राणकर्ता आपकी जय हो।"

सुदर्शन की आज्ञा से शैवमूर्ति-द्वारा सुदक्षिण को जलाना-

स्तुति शुनि' सन्तोषे बलिल सुदर्शन।
पोड़ा गिया यथा आछे राजार नन्दन॥१९१॥
पुनः सेइ महा-भयंकर बाहुड़िया।
चलिला काशीर राजपुत्र पोड़ाइया॥१९२॥

(१९१-१९२) प. अनु०—स्तवन सुनकर प्रसन्न हुये सुदर्शन ने कहा, 'जाओ, जाकर राजपुत्र को जला डालो'। आज्ञा मिलते ही उस महा-भयंकर शैव ने फिर से उल्टा चलना शुरू कर दिया और लौटकर काशी के राजपुत्र को जलाकर भस्म कर डाला।

श्रीचैतन्य के दासों से विद्वेष करने वाले अद्वैत-भक्तों का अद्वैत के द्वारा विनाश-साधन-

तोमारे लंघिया प्रभु शिवपूजा कैल।
अतएव ता'र यज्ञे ताहारे मारिल॥१९३॥
तेञि से बलिलुँ प्रभु तोमारे लंघिया।
मोर सेवा करे ता'रे मारि पोड़ाइया॥१९४॥
तुमि मोर प्राणनाथ, तुमि मोर धन।
तुमि मोर पिता-माता, तुमि बन्धुजन॥१९५॥
ये तोरे लंघिया करे मोरे नमस्कार।
से जन काटिया शिर करे प्रतिकार॥१९६॥

(१९३-१९६) प. अनु०—हे प्रभु! आपका अतिक्रमण करके उसने शिव की पूजा की थी। अतएव उसके यज्ञ ने उसे मार डाला। हे प्रभु! अतएव मैं भी यही कह रहा हूँ कि, जो आपका अतिक्रमण करके मेरी सेवा करता है, मैं उसे जला डालता हूँ। आप मेरे प्राणनाथ हैं, आप मेरे धन हैं, आप मेरे पिता-माता हैं, आप मेरे बन्धु है॥ जो आपका अतिक्रमण करके मुझे नमस्कार करता है, उसे अपना सिर काटकर प्रायश्चित करना पड़ता है।

(१९४) गौः भाः—जो श्रीचैतन्य के दासों से विद्वेष करने के इच्छुक हैं एवं अद्वैत के सम्बन्ध को लेकर उनके 'सेवक' के रूप परिचय प्रदान करना चाहते हैं, उन्हें अद्वैत सुदक्षिण की तरह आग में जला डालते है। जो स्तावकगण विष्णु- वैष्णवों से विद्वेष करते हैं, अद्वैत प्रभु अथवा महादेव उस प्रकार के स्तावकों की पूजा कभी भी स्वीकार नहीं करते है। आज भी दांभिक सम्प्रदाय भक्ति से विद्वेष करने के लिए दंभवश प्रतियोगी -सम्मेलन एवं प्रतियोगीकीर्तन-प्रचार आदि की व्यवस्था बड़े यत्न के साथ करते रहते हैं, परन्तु कीर्तनीय-विग्रह विष्णु एवं वैष्णव उन लोगों को अपस्वार्थ में नियोजित करके उन्हें वैष्णव-सेवा-बुद्धि से अनन्त काल के लिए दूर हटा देते है। वे निजी आचरण के द्वारा ही काम और क्रोध के दास बनकर आत्मविनाश का साधन करते रहते हैं, इसलिए शुद्धभक्ति सदा के लिए उन लोगों के पास से विदा हो जाती है।

(१९५) गौः भाः-ऐसे बहुत से लोग हैं जो श्रीगौरसुन्दर को भ्रान्त-विचार-वश आश्रय-जातीय मातृविग्रह, आश्रय-जातीय पितृ-विग्रह, आश्रय-जातीय बंधुविग्रह इत्यादि समझते हैं; परन्तु अद्वैत प्रभु ने गौरसुन्दर को जागतिक सभी परिचयों से अलग करके लोकातीत पितृत्व, मातृत्व, धनत्व एवं प्राण नाथत्व पर स्थापित किया है। प्रापंचिक सम्बन्ध अनुपादेय भोग-प्रतीति मात्र पर अवस्थित हैं, उनमें सेवा नाम की कोई प्रवृत्ति नहीं है। प्राकृत-सहजिया का कान्तभाव, प्राकृत-सहजिया-धनी का धन, प्राकृत-सहजिया पुत्र के पिता-माता, बन्धु-सब भोग के आकाश में आबद्ध है॥ वे भोग से मुक्त हो जाने के लिए त्याग रूपी आकाश में आबद्ध है॥

वे भोग से मुक्त हो जाने के लिए त्याग रूपी आकाश शून्य का आश्रय ग्रहण करके निर्विशेषवादी हो जाते हैं, किन्तु जो लोग जगत् के सभी प्रकार के आश्रय–जातीय प्रतीतिसमूह में वैष्णव–बुद्धि रखते हैं, वे इन्द्रियजनित ज्ञान अथवा भोग–बुद्धि से नित्यकाल के लिए अपने आपको अलग रख पाते है। वैष्णव–दर्शन में अपनी प्रापंचिक भोगबुद्धि नहीं रहती है। दृश्य वस्तुओं में 'भोग्य' ज्ञान नहीं रहता है, अपितु भोग के स्थान पर उनकी सेव्यबुद्धि प्रबल होती है।

(१९६) गौः भाः—बद्धजीव समूह त्रिगुण के आवरण में कर्मसमूह को प्राकृत भूमिका में अवस्थान करके एवं स्वयं भोगी एवं कर्ता बनकर जिस सेवा अथवा अहंकार का परित्याग करने का अभिनय करते हैं, वह सेव्य का अपमान–मात्र है। सेवा–रहित दर्शन–भोगोन्मुख जीवों की हरिसेवा–विमुखता– मात्र है। इसलिए जिस भक्ति की प्रतीति में जड़ीय पिता, माता, बन्धु, कान्त इत्यादि विहित हैं, वह सेव्यवस्तु को सेवक के रूप में रूपांतरित करने का दुष्ट आचरण–मात्र है। सेवोन्मुख दृष्टि के अतिरिक्त सेवक के रूप में ऐसा अभिनय सेव्य के सिर को काटने के बराबर है, अर्थात् वह सेव्य के ऊपर अपने आधिपत्य का विस्तार करना है।

कृष्ण का लंघनकारी अन्य–देवपूजक सत्राजित् आदि का दृष्टान्त–

सूर्येर साक्षात् करि राजा सत्राजित।
भक्ति–वशे सूर्य सूर्य ता'न हइला विदित॥१९७॥
लंघिया तोमार आज्ञा आज्ञा–भंग–दुःखे।
दुइ भाइ मारा याय, सूर्य देखे सुखे॥१९८॥
बलदेव–शिष्यत्व पाइया दुर्योधन।
तोमारे लंघिया पाय सवंशे मरण॥१९९॥
हिरण्यकशिपु वर पाइया ब्रह्मार।
लंघिया तोमारे गेल सवंशे संहार॥२००॥
शिरश्छेदि, शिव पूजियाओ दशानन।
तोमा लंघि' पाइलेक सवंशे मरण॥२०१॥

(१९७–२०१) प. अनु०—राजा सत्राजित् ने साक्षात् सूर्यदेव के दर्शन किये। भक्तिवश होकर सूर्यदेव उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गये। परन्तु सत्राजित् ने आपकी आज्ञा का उल्लंघन किया और आज्ञा–अतिक्रमण करने के दुःख में दोनों भाई (सत्राजित् और प्रसेन) मारे गये। सूर्यदेव सुख पूर्वक इन सब घटनाओं को देखते रहे। दुर्योधन बलदेव का शिष्य बना, परन्तु आपका लंघनकरने के कारण वह अपने वंश–सहित मारा गया। हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वरदान मिला। परन्तु आपका लंघन करने के कारण उसका भी अपने वंश के साथ संहार हुआ। दशानन के सिर काटकर शिव की पूजा की, फिर भी आपका लंघन करने के कारण वह वंश–सहित मारा गया।

श्रीचैतन्यदेव ही–सभी देवताओं के मूल आकर एवं सभी ईश्वरों के ईश्वर है; व्यक्त और अव्यक्त–सारा जगत् उनका दास है–

सर्व–देवमूल तुमि सबार ईश्वर।
दृश्यादृश्य यत–सब तोमार किंकर॥२०२॥

(२०२) प. अनु०—आप सभी देवताओं के मूल आकर–स्वरूप सबके ईश्वर है। दृश्य–अदृश्य–सभी आपके ही किंकर है।

सर्वेश्वरेश्वर कृष्ण की सेवा से विमुख व्यक्ति को कृष्णदास देवगणों की पूजा करने से उस–उस देवता के द्वारा विनाश की प्राप्ति–

प्रभुरे लंघिया ये दासेरे भक्ति करे।
पूजा खाइ' सेइ दास ताहारे संहारे॥२०३॥

(२०३) प. अनु०—प्रभु का लंघन करके जो उनके दासों की भक्ति करता है, वे दास (देवता) उसकी पूजा स्वीकार करके उसी का संहार कर देते है।

(२०२–२०३) गौः भाः—हे विश्वम्भर चैतन्यदेव, आप सभी देवताओं के मूल आकर है। आप सभी ईश्वरों के ईश्वर परमेश्वर है। आप प्रेममय विग्रह है। व्यक्त और अव्यक्त सभी जगत् आप से ही विभिन्न सेवाओं का अधिकार प्राप्त करके भृत्य का कार्य करते है। आपके कुछ भृत्य हरिसेवा–विमुख जीवों के लिए ईंधन–स्वरूप बनकर उन लोगों के इन्द्रियज ज्ञान–द्वारा गोचरीभूत वस्तुओं के रूप से परिणत होते है। वे सब लोभी अनभिज्ञजन परमेश्वर के प्रति सेवाचेष्टा का प्रदर्शन केये बिना हरिसेवा–विमुखता को ही सभी प्रकार से युक्तियुक्त समझते हैं, परन्तु बहिः प्रज्ञा चालित वे सभी दृश्यादृश्य वस्तुएँ तो आप ही की सेवा में नियुक्त हैं, आप ही उन सबके सेव्य हैं, वे आपके किंकर उन सेवा–विमुख व्यक्तियों को आपका अनादर करना सिखाकर विपथगामी करते है। भगवान् के वे आधिकारिक किंकरगण अपने–अपने प्रस्तावित स्तावकों के निकट पूजा ग्रहण करके उन लोगों के लिए इन्द्रियतर्पण का प्रबन्ध करवरकर उन्हें विशेष रूप से कृष्णसेवा से विमुख करवा देते हैं और उस लोभनीय इन्द्रियज–ज्ञानलब्ध बाह्यप्रतीति के दर्शकों में कर्तृव्य–भाव को पुष्ट करके उन्हें विनष्ट कर देते हैं।

विष्णु का लंघन करके शिव–आदि की पूजा वृक्ष का मूल काटकर पल्लव आदि को सींचने जैसा है

तोमारे लंघिया ये शिवादिदेव भजे।
वृक्षमूल काटि' येन पल्लवेरे॥२०४॥

(२०४) प. अनु०—आपका लंघन करके जो शिवादि देवताओं का भजन करता है, वह मानों वृक्ष के मूल को काटकर पल्लवों का पूजन कर रहा है।

(२०४) गौःभाः–श्रीकर, श्रीकण्ठ एवं उत्तरकाल में अप्पय–दीक्षित–इत्यादि शैवगण, लिंगायेत सम्प्रदाय के माणिक्य–भास्कर, ज्ञानेश्वर, केवलाद्वैतवादी आचार्यगण,–सभी ने दंभ–सहित विशिष्टाद्वैत विचार के सहारे विष्णुभक्ति से च्युत होकर जिन शिव की भक्ति का आवाहन किया है, उन महादेव ने ही उनके स्वरूप–ज्ञान के अभाव के कारण उनसे पूजा स्वीकार न करके उनको न्यूनाधिक केवलाद्वैत– वाद में नियोजित करके उन लोगों के स्तावकधर्म को निरस्त कर दिया है। विष्णुसेवा का परित्याग करके जो विष्णु के आंशिक जड़ जगत् की अनित्यता का प्रतिपादन करने वाले शक्तिमत् तत्त्व का विचार करके विष्णु के अतिरिक्त बहिरंग–प्रतीति–साध्य प्रकृतिसंग–समन्वित शिवादि देवताओं की पूजा करते हैं, वे मानों वृक्ष के मूल को उखाड़कर उसके पल्लव आदि की सेवामात्र करते हैं। "यथा तरोर्मूल–निषेचनेन०" श्लोक एवं ब्रह्मसंहिता में पंचदेवताओं के स्वरूप–वर्णन के साथ विष्णु का स्वरूपवैशिष्ट्य इस प्रसंग में अनुशीलन के योग्य है।

यज्ञादि सबके मूल श्रीगौरसुन्दर की उपेक्षा करने वालों की पूजा अद्वैत–द्वारा अस्वीकार करना–

वेद, विप्र, यज्ञ, धर्म–सर्वमूल तुमि।
ये तोमा पस भजे, ता'र पूज्य नहि आमि॥''२०५॥

(२०५) प. अनु०—आप वेद, विप्र, यज्ञ,

धर्म– सबके मूल हैं। जो आपका भजन नहीं करता है मैं उसका पूजनीय नहीं हूँ।

(२०५) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के द्वारा उपदिष्ट सुदुर्लभ कृष्णप्रेम में जिन लोगों की रुचि नहीं है एवं कृष्णप्रेमदाता श्रीचैतन्यचरण में जो लोग सभी प्रकार से आत्मसमर्पण करने में असमर्थ हैं, वे यदि अद्वैतप्रभु की पूजा करते हैं, तो अद्वैत प्रभु कभी भी उनकी सेवा ग्रहण नहीं करते हैं। कुछ अनभिज्ञ व्यक्ति वेदों के एकदेश–कर्मकाण्ड से प्रतारित होकर वैतानिक (वेतन भोगी) यज्ञधर्म का आवाहन करते हैं, वेदों के तात्पर्य को समझने में असमर्थ रहने के कारण वे चैतन्य–सेवा से वंचित हो जाते हैं। इससे उन लोगों की बाह्यप्रतीति उन्हें न्यूनाधिक बौद्धावलम्बियों का प्रतियोगी बनाकर रख देती है, और वे असुरों के साथ संग्राम में नियोजित होकर अपने–अपने याज्ञिक अनुष्ठान की प्रशंसामात्र करके मूल तात्पर्य भगवत् प्रतीति को भुला देते हैं। व्यक्त और अव्यक्त जगत् में वैष्णव–प्रतीति को साध्य न समझकर और अपनी–अपनी अनर्थपूर्ण अवस्थाओं में त्रिगुणताड़ित होकर लोगों में जो कर्तृत्वाभिमान दिखाई देता है, उससे वे जो तमाम वस्तुओं के मूल आकर एवं अधिष्ठान हैं एवं सभी नश्वर वस्तुओं की बाहरी प्रतीति और सभी लोगों के कारण हैं, उन श्रीचैतन्य चरणों को छोड़ कर ऐसे भगवद्विमुख लोगों में दाम्भिकतापूर्ण अनुष्ठान प्रबलभाव से प्रचलित हो जाता है, अतः उन लोगों को अद्वैत प्रभु कभी भी अपना निजीजन कहकर स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि, वे विष्णु–वैष्णवों के चरणों में अपराधी हैं। गौरसुन्दर अद्वैतप्रभु से इस अविवदमान (अविरोधी) अद्वयज्ञान के बारे में सुनकर बड़े प्रसन्न हुये एवं "वदन्ति तत्तव्यविदः" श्लोक का अद्वयज्ञान–तातपर्य अद्वैतप्रभु के मुख से सुनकर श्रीचैतन्यदेव ने अचिन्त्यभेदाभेद–तत्त्व के आचार्य के रूप में उन महाविष्णु अद्वैतप्रभु का समादर किया।

अदैत के वचन सुनकर महाप्रभु की उक्ति–

महातत्त्व अद्वैतेर शुनिया वचन।
हुँकार करिया बले श्रीशचीनन्दन॥२०६॥

(२०६) प. अनु०—महातत्त्व के बारे में अद्वैत प्रभु के वचनों को सुनकर हुँकार–पूर्वक श्रीशचीनन्दन ने कहा–

कृष्णभक्तों का लंघन करके विष्णु की पूजा करना– विष्णु के श्रीअंग में आघात करना मात्र है–

''मोर एइ सत्य सबे शुन मन दिया।
ये आमारे पूजे मोर सेवक लंघिया॥२०७॥
से अधम जने मोरे खंड खंड करे।
ता'र पूजा मोर गाये अग्नि–हेन पोड़े॥२०८॥

(२०७–२०८) प. अनु०—"मेरा यह सत्य वचन सभी ध्यान देकर संनो! जो मेरे सेवकों का लंघन करके मेरा पूजन करता है, वह अधम व्यक्ति मुझे खंड–खंड कर देता है। उसकी पूजा से मेरा सारा शरीर जलता है।"

(२०७) गौः भाः–श्रीगौरसुन्दर ने अद्वैत के अचिन्त्यभेदाभेद–तत्त्व को सुनकर उनके सभी निजीजनों को उसका ध्यानपूर्वक अनुशीलन करने के लिए कहा। अद्वैत की उक्ति का समर्थन करते हुये सेव्य के आसन पर विराजित होकर गौरसुन्दर ने कहा,–"सेव्यसेवक के बीच में अटूट सम्बन्ध वर्तमान है। अतएव 'अर्च्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्च्चयेत्तु यः। न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः॥' भगवत्तत्त्व को एक प्राकृत जगत् का खंडित अंश समझना भगवत्–शरीर को खंड–खंड करके काटने के समान होता है।

धर्म के नाम पर इस हिंसावृत्ति के कारण खंडित विचारभेदसमूह नानाविध धर्ममतों की सृष्टि करके वास्तविक सत्य से दूर हट रहा है। मैं पुरुषोत्तम हूँ, सेव्य-विषय-विग्रह हूँ; आश्रयसमन्वित न होने से, मेरा विचित्र विलास न रहने से, मुझे निर्विशिष्ट विचार के कारागार में आबद्ध कर देने से एवं मेरे अंगप्रत्यंगों को अंगी से विच्छिन्न कर देने से जिस प्रकार की धार्मिकता तथा साधन सिद्धियाँ एवं प्रजल्प की विडम्बना जगत् में दिखाई देती है, उस प्रकार की पूजा एवं वैसा धर्मानुशीलन मेरे पुरुषोत्तम रूपी अंग में अग्नि निक्षेप करके मुझे दहन कर देने का प्रयास मात्र है।" विष्णु-भक्ति- रहित व्यक्तियों की मत्सरता एवं हिंसाप्रवृत्ति-अद्वयज्ञान विष्णु पर जड़-जगत् की हेयता आरोपित करती है, अतः वह उन्हें खण्डित कर देने का प्रयास-मात्र है; अथवा उनकी नित्यविलास-विचित्रता में बाधा डालकर उन्हें जड़ भोग के समतुल्य समझना-उनके पूर्ण विलास के लिए हानिकारक है। जागतिक अनुभूति में जो बारह प्रकार के नश्वर रस-वैषम्य 'रस'-नाम से लाक्षित होते हैं, अचिन्त्यभेदाभेद-विचार- सम्पन्न आत्मा उन सबको व्यतिरेक-विचार से कुंठित नहीं करता है। मायिक विचार-रहित होकर वैकुण्ठ-दर्शन ही विष्णुसेवा की ओर उन्मुख होना है।

आध्यक्षिक ज्ञान से भक्त की निन्दा करने पर भगवान् के द्वारा उसका संहार-

ये आमार दासेर सकृत् निन्दा करे।
मोर नाम कल्पतरु संहारे ताहारे॥२०९॥

(२०९) गौः भाः—प्रपंच में विष्णुमाया भगवद्- इच्छानुसार अनभिज्ञजनों के कर्तृत्व एवं भोग करने की इच्छा में ईंधन प्रदानकर उन लोगों की प्रतारणा करती है। लोभी जीव अपनी स्वतन्त्रता के अपव्यवहार के फलस्वरूप कभी 'मायावादी' और कभी अहंकारविमूढ़-भाव में त्रिगुणों के द्वारा ताड़ित होकर अपने आपको 'देवता' समझने लगते हैं। कृष्ण के आकर्षण से आकृष्ट जीवों का जो उस आकर्षण से विच्छिन्न हो जाने का प्रयास है, उसी का नाम 'भोग' है, और कृष्णसेवोन्मुख होने के लिए यत्नशील रहने का नाम ही 'भक्ति' है। जो लोग इस प्रकार के आश्रित के भेद-रूपी अंश को निराश्रित समझकर उसमें त्रिगुणताड़ित कर्तृत्व के अभिमान का आरोप करते हैं, वे अनभिज्ञ द्विपाद (दो पैरों वाले) पशु बहिर्जगत के भोगों में आसक्त हो जाते हैं एवं कृष्ण और कृष्णभक्तों का अनादर करते हैं। जब वे पशुओं के स्वभाव को अपनाकर कर्तृत्व-भाव को संकुचित करने के उद्देश्य से भगवान् की सेवा भी करते हैं; किन्तु भक्त-सेवा से वंचित हो जाते हैं, तब उन लोगों में भक्तविद्वेष को ही भगवद्भक्ति कहकर प्रकाशित करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस कारण गौरसुन्दर कह रहे हैं,-"मेरे प्रकाश के अवतार-समूह मेरे अन्तरंग भक्तों में एवं मुझमें आश्रित व्यक्ति विशेषों के आश्रयविग्रह श्रीगुरुदेव के साथ मेरे भेद की कल्पना करके जो व्यक्ति मेरी पूजा की छलना करते हैं, मैं उन लोगों का संहार करके ही अपनी दया का प्रकृष्ठ परिचय प्रदान करता हूँ।" भगवद् भक्तों में निखिल सद्गुण वर्तमान रहते हैं। मुक्ति उनकी दासी है एवं भुक्ति उनकी आज्ञा का पालन करने वाली है। अतएव आध्यक्षिक दृष्टि से प्राकृत विचार की सहायता लेकर जो प्रत्यक्षवादी लोग मेरे भक्तों की निन्दा करते हैं,-उनके प्रति गर्हण (अवज्ञा) एवं परिवाद (निन्दा) आदि का भाव रखते हैं, उन दम्भियों का भगवान् संहार कर देते हैं।

मत्सरी व्यक्तियों की भक्त–हिंसा–प्रवृत्ति अमंगल का जनक और आत्मविनाशक है–

अनन्त ब्रह्माण्डे यत, सब मोर दास।
एतेके ये पर हिंसे सेइ याय नाश॥२१०॥
तुमि त' आमार निज देह हैते बड़।
तोमारे लंघिते दैव ना सहये दढ़॥२११॥

(२१०–२११) प. अनु०—अनन्त ब्रह्माण्ड में जितने भी जीव हैं, वे सब मेरे दास हैं। इस कारण जो दूसरों की हिंसा करता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। तुम तो मेरी अपनी देह से भी बढ़कर हो। तुम्हारा लंघन दैव को कभी भी सहन नहीं होता।

(२१०) गौः भाः—प्रार्पचिक मानव हरिविमुखता के कारण काम–क्रोध आदि रिपुओं की सेवा करने को ही एकमात्र अवलम्बन के विषय के रूप में मानते हैं। व्यक्त और अव्यक्त सम्पूर्णजगत् सेव्य भगवान् से सम्बंध रखने के कारण उनके सेवक के रूप में विराजमान है। यदि एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति के प्रति मत्सर–भाव का प्रदर्शन करता है तो वह मत्सर व्यक्ति 'वैष्णव'–नाम के आत्मप्रतिष्ठान को व्याघात करके सेवोन्मुखजनों के निकट विद्वेषकारी के रूप में परिचित हो जाता है। उस प्रकार के विचार में जो हिंसाकार्य दिखाई देता है, उससे न्यूनाधिक भगवान् की ही हिंसा होती है। फिर, भक्तों में परोपकार–प्रवृत्ति–सेवा–प्रवृत्ति बहुत ही अधिक प्रबल होती है, इसी कारण वे चैतन्यदास्य से अनभिज्ञ जीवों की कृष्णोन्मुखता की समृद्धि के लिए जो चेष्टा करते हैं, उस चेष्टा को मत्सर–सम्प्रदाय उन लोगों की हिंसावृत्ति के ही किसी विचित्र विलास का एक हिस्सा समझता है। इससे उन मत्सरी लोगों का अमंगल जरूर होता है। अद्वय–ज्ञान के साथ सम्बन्ध–रहित वस्तु के प्रति मानव भोगबुद्धिवश हिंसा करते हैं। शुद्धभक्त कभी भी त्रिगुणों के द्वारा ताड़ित होकर रजः–सत्व–तमोगुणों के सलिल में निमग्न नहीं होते हैं। अतएव निर्तत्सर भक्तों के चरणों का आश्रय छोड़कर मत्सरधर्म–परायण नश्वर जगत् के प्रापंचिक भोगी सम्प्रदाय अपने कर्मफल के अनुसार मायावाद आदि का आवाहन करके स्वयं असुविधा में पतित हो जाते हैं एवं आत्मविनाश को अपना लेते हैं। अनात्म–प्रवृत्ति के वश में रहकर कभी भी आत्मा का अनुसंधान नहीं मिलता है। भगवत्–प्रतीति को छोड़कर लुब्ध मानवजाति के लिए कल्याण का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए गुरुद्रोही सम्प्रदाय कल्पितज्ञानसे गुरु–द्रोहिता, दाम्भिकता आदि अधन को धन के रूप में ग्रहण करके अनात्म–तमिस्रमाया (घोरतम माया) में विलीन होकर स्वगत–स्वजातीय–विजातीयभेद रहित केवलाद्वैतवाद की मर्यादा स्थापित करते हैं। यही उन लोगों का सर्वनाश है। सच्चिदानन्द भगवान् की सभी प्रकार से सेवा करना ही पराप्रकृति के लिए आत्मस्थ होने का सुयोग है, नहीं तो सर्वनाश को ही अपनाना पड़ता है।

फलकामरहित संन्यासी को भी निन्दारहित वैष्णव की निन्दा करने में अधः पतन की प्राप्ति–

संन्यासीओ यदि अनिन्दक निन्दा करे।
अधःपाते याय, सर्व धर्म घुचे ता'रे॥''२१२॥

(२१२) प. अनु०–कोई संन्यासी भी यदि अनिन्दक की निन्दा करता है, तो उसका अधःपतन हो जाता है और सभी धर्म उसे त्याग देते हैं।"

अमन्दोदय–दयावान् महाप्रभु के द्वारा मायावादी, कर्मी एवं अत्याभिलाषी को वैष्णवनिन्दारहित

होने का उपदेश प्रदान–

बाहु तुलि' जगतेरे बले गौरधाम।
''अनिन्दक हइ', सबे बल कृष्णनाम॥२१३॥
'अनिन्दक हइ' ये सकृत् 'कृष्ण' बले।
सत्य सत्य मुञि ता'रे उद्धारिव हेले॥''२१४॥

(२१३–२१४) प. अनु—गौरधाम (गौरांग महाप्रभु) बाहुओं को ऊपर उठाकर जगत् से कहते हैं,– "अनिन्दक होकर सभी कृष्णनाम बोलो। 'अनिन्दक होकर' जो एकबार 'कृष्ण' नाम बोलता है, मैं सचमुच उसका अनायास ही उद्धार कर देता हूँ।"

(२१३) गौः भाः—दोष नहीं रहने पर भी दोषारोपण करने का नाम 'निन्दा' है। कृष्णनाम–ग्रहण के समय निन्दारहित होकर रहना सब प्रकार से जरूरी है। निन्दारहित व्यक्ति ही सर्वोत्तम है। फलकामरहित व्यक्ति ही सर्वोत्तम है। फलकामरहित व्यक्ति–संन्यासी होता है। ऐसा निन्दारहित संन्यासी भी यदि वैष्णव–निन्दा कर बैठता हैं, तो उसका त्यागधर्म एवं परचर्चारहित धर्म नष्ट होकर उसे नीचे गिरा देता है।

(२१४) गौः भाः—परचर्चा करते हुये मिथ्या दोषारोपण से अलग रहकर जो व्यक्ति कृष्ण को पुकारते हैं, वे इस संसार–बंधन से मुक्त हो जाते हैं। कृष्णभक्त की निन्दा करना–जगत् में त्रिताप भोग करने की योग्यता अर्जन करना मात्र है। वैष्णवनिन्दा–रहित होने पर ही जीव को मुक्ति मिलती है। कर्मी, मायावादी एवं अन्याभिलाषी–ये तीन प्रकार के प्रापंचिक विचारपरायण व्यक्ति–वैष्णव– निन्दाकारी होते हैं। उन लोगों के मुख से कृष्णनाम–संकीर्तन संभव ही नहीं है।

महाप्रभु के वाक्यों से भगतों की जयध्वनि एवं अद्वैत का प्रेमक्रन्दन–

एइ यदि महाप्रभु बलिला वचन।
'जय जय जय' बले सर्व–भक्तगण॥२१५॥
अद्वैत कान्दये दुइ चरणे धरिया।
प्रभु कान्दे अद्वैतेरे कोलेते करिया॥२१६॥

(२१५–२१६) प. अनु०—महाप्रभु ने जब ये वचन कहे, तब सभी भक्त जयध्वनि करने लगे और अद्वैत, प्रभु के दोनों चरणों को पकड़कर रोने लगे तथा प्रभु भी अद्वैत को गोद में लेकर क्रन्दन करने लगे।

ईश्वर से अभिन्न अद्वैत का नित्यानन्द के साथ मिलकर अचिन्त्य–लीला जो समझ सकता है, वे ही परमानन्द के अधिकारी हैं–

अद्वैतेरे प्रेमे भासे सकल मेदिनी।
एइ मत महाचिन्त्य अद्वैत–काहिनी॥२१७॥
अद्वैतेरे वाक्य बुझिवार शक्ति कार'।
जानिह ईश्वर–सने भेद नाहि या'र॥२१८॥
नित्यानन्द–अद्वैते ये गालागालि बाजे।
सेइ से परमानन्द यदि जने बुझे॥२१९॥

(२१७–२१९) प. अनु०—अद्वैत के प्रेम में सारी धरती प्लावित हो रही है। इस प्रकार अद्वैत की कथा महा अचिन्त्य है। अद्वैत के वाक्य को समझने की शक्ति भला किसमें है? यह जान लेना चाहिए कि, ईश्वर के साथ उनका कोई भेद नहीं है। नित्यानन्द और अद्वैत के बीच परस्पर जो गाली गलोच होती रहती है, उन्हें यदि कोई समझ सके तो, वे परमानन्द को प्राप्त करेगा।

विष्णु–वैष्णवों का कर्म–इन्द्रियज ज्ञान से नहीं, उनकी कृपा से ही समझ में आता है–

दुर्विज्ञेय विष्णु–वैष्णवेर वाक्यकर्म।
ता'न अनुग्रहे से बुझिये ता'र मर्म्म॥२२०॥

(२२०) प. अनु०—विष्णु–वैष्णवों के वचन

और कर्मों को समझना बड़ा कठिन है। उनकी कृपा से ही उन सब का मर्म समझ में आता है।

(२२०) गौः भाः—जगत् में जो शब्द प्रचलित हैं, वे सब शब्द-प्राकृतिक वस्तुओं के भावों को निर्देशित काते हैं। जागतिक कर्मसमूह कर्ता के द्वारा किये गये कर्मों के फल के अनुसंधान में नियुक्त हैं। विष्णुवाक्य और वैष्णववाक्य उस प्रकार के नही हैं। उनके कर्म अविष्णु और अवैष्णवों के कर्मों के समान नहीं हैं। विष्णुवैष्णवों के वाक्य एवं कर्म में और दूसरों के वाक्य और कर्म में यही विशिष्टता है कि, इनमें एक इन्द्रियज-ज्ञान के अधीन है और दूसरा इन्द्रियज-ज्ञान के अधीन है और दूसरा इन्द्रियज-ज्ञान से अतीत है। विष्णु और वैष्णवों की कृपा होने से ही उस दुर्लभ राज्य में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

नित्यानन्द और अद्वैत के वाक्यों को समझने में अनन्तदेव ही समर्थ हैं-

एइ मत यत आर हइल कथन।
नित्यानन्दाद्वैत प्रभु आर यत गण॥२२१॥
इहा बुझिवार शक्ति प्रभु बलराम।
सहस्र वदने गाय एइ गुणग्राम॥२२२॥

(२२१-२२२) प. अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द प्रभु, अद्वैत प्रभु और अन्य भक्तों के बीच जितनी भी वार्ताएँ हुई हैं, उन्हें समझने की शक्ति केवल प्रभु बलराम में है, जो सहस्र वदनों से उनके गुणग्राम का कीर्तन करते रहते हैं।"

विश्वम्भर-द्वारा अद्वैत से निजी लीला के विषय में प्रश्न एवं अद्वैत का उत्तर-

क्षणेकेइ बाह्यदृष्टि दिया विश्वम्भर।
हासिया अद्वैत प्रति बलये उत्तर॥२२३॥
''किछुनि चांचल्य मुञि करियाछों शिशु?''
अद्वैत बलये,-''उपाधिक नहे किछु॥''२२४॥

(१२३-१२४) प. अनु०—कुछ देर में ही विश्वम्भर को बाह्यज्ञान होने पर वे हँसकर अद्वैत से कहने लगे कि,-"क्या मैंने शिशु की भाँति कुछ चंचलता प्रकाशित की है?" अद्वैत बोले,- "आपने कुछ भी अस्वाभाविक नहीं किया है।

(२२४) गौः भाः—विश्वम्भर ने अद्वैत से पूछा,-"मैंने बालक की भाँति चपलता-प्रकाश कर तुम्हें दण्ड देने के लिए कदम उठाया था।" इसके उत्तर में श्रीअद्वैत प्रभु ने कहा,-"आपके द्वारा उस प्रकार का कार्य वास्तव में कभी भी सम्भव नहीं है। वह वस्तु के निकट स्थित नश्वर क्रिया मात्र है। अतएव वह वास्तविकता के बदले औपाधिकता मात्र है। वस्तुतः आत्मनिष्ठा के समक्ष मनोनिष्ठा एवं स्थूलदेहनिष्ठा औपचारिक नश्वर विषय-मात्र है, अर्थात् नित्य पूर्णज्ञानमय और निरन्तर आनन्दमय नहीं है, तात्कालिक प्रतीति-मात्र है।"

महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्द के निकट क्षमा याचना एवं सभी को हँसना-

प्रभु बले,-''शुन नित्यानन्द महाशय।
क्षमिवा चांचल्य यदि मोर किछु हय॥''२२५॥
नित्यानन्द, चैतन्य, अद्वैत, हरिदास।
परस्पर सबा चाहि सबे हैल हास॥२२६॥

(२२५-२२६) प. अनु—प्रभु बोले,-"सुनो, नित्यानन्द महाशय! यदि मैंने कोई चंचलता की हो, तो मुझे क्षमा कर देना।" नित्यानन्द, चैतन्य, अद्वैत और हरिदास सभी ने एक दूसरे की ओर देखा और हँस पड़े।

महाप्रभु की भोजन करने की इच्छा एवं अद्वैत की गृहिणी को रसोई बनाने के लिए आदेश–

अद्वैतगृहिणी महासती पतिव्रता।
विश्वम्भर महाप्रभु या'रे बले 'माता' ॥२२७॥
प्रभु बले,–''शीघ्र गिया करह रंधन।
कृष्णेर नैवेद्य कर, करिव भोजन॥''२२८॥

(२२७–२२८) प. अनु०—अद्वैत की महासती पतिव्रता गृहिणी को विश्वम्भर महाप्रभु 'माता' कहकर पुकारते थे। प्रभु ने उनसे कहा,–"आप तुरन्त जाकर रंधन कार्य कीजिए और कृष्ण को नैवेद्य निवेदित कीजिए और कृष्ण को नैवेद्य निवेदित कीजिए। मैं भोजन करूँगा।"

जनसमूह के सहित महाप्रभु का गंगास्नान के लिए गमन–

नित्यानन्द, हरिदास, अद्वैतादि–संगे।
गंगास्नाने विश्वम्भर चलिलेन रंगे॥२२९॥

(२२९) प. अनु०–इसके बाद नित्यानन्द, हरिदास और अद्वैत को साथ लेकर विश्वम्भर आनन्द–सहित गंगा में स्नान करने के लिए चल पड़े।

गंगास्नान करके लौटने के पश्चात् महाप्रभु के द्वारा पाद–पक्षालन एवं कृष्ण–प्रक्षालन एवं कृष्ण–प्रणाम–

ये सब आनन्द वेदे वर्णिवे विस्तर।
स्नान करि' प्रभु सब आइलेन घर॥२३०॥
चरण पाखालि' महाप्रभु विश्वम्भर।
कृष्णेरे करये दण्ड–प्रणाम विस्तर॥२३१॥

(२३०–२३१) प. अनु०—उस सब आनन्द का सविस्तार वर्णन तो वेद करेंगे। स्नान करके सभी प्रभु घर आ गये। वहाँ महाप्रभु विश्वम्भर ने अपने चरण धोकर कृष्ण को बारम्बार दण्डवत् प्रणाम किया।

(२३०) गौः भाः—वेदशास्त्र जीवों के लिए औपाधिक ज्ञान के बदले यथार्थ ज्ञान का प्रकाश करते हैं। यथार्थ, शुद्ध और वास्तविक धारणा वेदों के वर्णन से ही जीवों के हृदय में परिस्फुटित होती है।

अद्वैत का महाप्रभु के चरणों में और हरिदास का अद्वैत के चरणों में प्रणाम–

अद्वैत पड़िला विश्वम्भर–पदतले।
हरिदास पड़िला अद्वैत–पदमूले॥२३२॥

(२३२) प. अनु०—अद्वैत विश्वम्भर के चरणों में और हरिदास अद्वैत के चरणों में पड़ गये।

इस कौतुक को देखकर नित्यानन्द की हँसीः महाप्रभु, नित्यानन्द एवं अद्वैत अद्वय–ज्ञान के धर्म–सेतु स्वरूप–

अपूर्व कौतुक देखि' नित्यानन्द हासे।
धर्मसेतु येन तिन विग्रह प्रकाशे'॥२३३॥
उठि– देखि' ठाकुर अद्वैतपदतले।
आथे व्यथे उठि प्रभु 'विष्णु विष्णु' बले॥२३४॥

(२३३—२३४) प. अनु०—इस अपूर्व कौतुक को देखकर नित्यानन्द हँसने लगे। वे तीनों विग्रह धर्मसेतु की भाँति प्रकाश पा रहे थे। ठाकुर ने जब देखा कि, अद्वैत उनके चरणों में पड़े हुये हैं, तब प्रभु अस्त–व्यस्त होते हुये उठकर 'विष्णु विष्णु' कहने लगे।

(१३३) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत एवं श्रीमहाप्रभु–ये तीनों, अद्वय–ज्ञानधर्म के सेतु के ही विभिन्न प्रकाश हैं। इन तीनों के द्वारा प्रचारित धारणा का अवलम्बन करके जीव अनायास ही आ भवसागर को पार कर सकते हैं।

तीनों प्रभुओं का भोजन के लिए जाना एवं नित्यानन्द द्वारा चंचलता का प्रकाश–

अद्वैतेर हाथे धरि' नित्यानन्द–संगे।
चलिला भोजनगृहे विश्वम्भर–रंगे॥२३५॥
भोजने बसिला तिन प्रभु एक ठाञि।
विश्वम्भर, नित्यानन्द, आचार्य–गोसाञि॥२३६॥
स्वभाव चंचल तिन प्रभु निजावेशे।
उपाधिक नित्यानन्द अति बाल्यरसे॥२३७॥

(२३५–२३७) प. अनु०—अद्वैत का हाथ पकड़कर नित्यानन्द के साथ श्रीविश्वम्भर आनन्द–सहित भोजनगृह की ओर चल पड़े। तीनों प्रभु–विश्वम्भर, नित्यानन्द और आचार्य गोसाईं एक साथ भोजन करने के लिए बैठे। तीनों प्रभु अपने–अपने भावावेश के कारण स्वभाव से चंचल हो रहे थे। इनमें बाल्यरस की अधिकता के कारण नित्यानन्द औपाधिक चंचलता का प्रकाशन कर रहे थे।

द्वार में उपवेशन–पूर्वक भोजन कर रहे हरिदास के द्वारा तीनों प्रभुओं की लीला का दर्शन–

द्वारे बसि' भोजन करये हरिदास।
या'र देखिवार शक्ति सकल प्रकाश॥२३८॥

(२३८) प. अनु०—हरिदास द्वारप्रान्त में बैठकर भोजन कर रहे थे; जिनमें समस्त–लीला दर्शन करने की शक्ति थी।

अद्वैत–गृहिणी के द्वारा परिवेषण–कार्य–

अद्वैत–गृहिणी महासती योगेश्वरी।
परिवेशन करेन सड.रि 'हरि हरि॥२३९॥
भोजन करेन तिन ठाकुर चंचल।
दिव्य अन्न, घृत, दुग्ध, पायस सकल॥२४०॥

(२३९–२४०) प. अनु०—अद्वैत की महासती योगेश्वरी गृहिणी 'हरि' का स्मरण करती हुई परिवेषण कर रही थीं और तीनों चंचल ठाकुर दिव्य अन्न, घृत, दुग्ध और खीर का भोजन कर रहे थे।

अद्वैत एवं नित्यानन्द–तत्त्व अभिन्न हैं–

अद्वैत देखिया हासे नित्यानन्द राय।
एक वस्तु दुइ भाग कृष्णेर लीलाय॥२४१॥

(२४१) प. अनु०—अद्वैत को देखकर नित्यानन्द राय हँस रहे थे। एक ही तत्त्व कृष्णलीला के लिए दो भागों में प्रकाशित हुये हैं।

भोजन के उपरान्त बालक के आवेश में नित्यानन्द के द्वारा घर के सभी स्थानों पर अन्न निक्षेप एवं अद्वैत के द्वारा क्रोध के छल से नित्यानन्द–तत्त्व का कथन–

भोजन हइल पूर्ण, किछु मात्र शेष।
नित्यानन्द हइला परम बाल्यावेश॥२४२॥
सब घरे अन्न छडाइया हैल हास।
प्रभु बले 'हाय हाय', हासे हरिदास॥२४३॥
देखिया अद्वैत क्रोधे अग्नि–हेन ज्वले।
''नित्यानन्द–तत्त्व कहे क्रोधावेश–छले॥२४४॥
जाति नाश करिलेक एइ नित्यानन्द।
कोथा हइते आसि' हइल मद्यपेर संग॥२४५॥
गुरु नाहि, बलये 'संन्यासी' करि' नाम।
जन्मिला ना जानिए निश्चय कोन् ग्राम॥२४६॥
केह त' ना चिने, नाहि जानि कोन् जाति।
ढुलिया ढुलिया बुले येन मत्त हाती॥२४७॥
घरे घरे पश्चिमार खाइयाछे भात।
एखाने हइल आसि' ब्राह्मणेर साथ॥२४८॥
नित्यानन्द मद्यपे करिला सर्वनाश।
सत्य सत्य सत्य एइ शुन हरिदास॥''२४९॥
क्रोधावेशे अद्वैत हइल दिग्वास।
हाते तालि दिया नाचे अट्ट अट्ट हास॥२५०॥

(२४२–२५०) प. अनु०—भोजन समाप्त हो चुका था, पर कुछ अन्न बाकी रह गया था। इसी बीच नित्यानन्द परम बाल्यावेश में मग्न हो गये। नित्यानन्द घर में सभी स्थानों पर अन्न फैलाकर हँसने लगे। यह देखकर प्रभु 'हाय, हाय' कर रहे थे और हरिदास हँस रहे थे। सब कुछ देखकर अद्वैत क्रोध में अग्नि के समान जलने लगे और क्रोधावेश के छल से वे नित्यानन्दतत्त्व का वर्णन करते हुये कहने लगे,–"इस नित्यानन्द ने जातिनष्ट कर दी है। न जाने कहाँ से यह मदिरा पीने वाला आ गया है और हमें इसका संग करना पड़ रहा है। कोई गुरु नहीं है इसका, फिर भी अपने आपको 'सन्यासी' कहलाता है। कौन से गाँव में इसने जन्म लिया है, निश्चित रूप से इसका भी कोई पता नहीं है। कोई इसे पहचानता तक नहीं, कौन–सी जाति का है,–यह भी नहीं पता। झूमता–झामता ऐसा चलता है, जैसे कोई मस्त हाथी चल रहा हो। पश्चिम देश के घर–घर में इसने अन्न ग्रहण किया है और अब यहाँ आकर इसको ब्राह्मण का संग मिल गया है। मद्यपायी (शराबी) इस नित्यानन्द ने सर्वनाश कर दिया है। सुनो हरिदास! मैं जो कह रहा हूँ, वह सब सच है, सच है, सच है।" क्रोध के आवेश में अद्वैत दिगम्बर हो गये और हाथों से ताली बजा–बजाकर अट्ट–अट्ट हँसी के साथ नृत्य करने लगे।

(१४५) गौः भाः–मतवाले एवं अवैध व्यक्ति भोजनीय वस्तु के बारे में सक्ड़ि–निसक्ड़ि अर्थात् स्पृश्य–अस्पृश्य के विचार को स्वीकार नहीं करते हैं। बालक की भाँति चंचलता का प्रकाश करते हुये नित्यानन्द ने भोजन–गृह में प्रत्येक स्थान पर अन्न फैला दिया। इस काम को आचरण के विरुद्ध जानकर श्रीअद्वैत प्रभु ने श्रीनित्यानन्द में जाति–विचार एवं स्पृश्य–अस्पृश्य आदि के विचार का अभाव है, ऐसा कहकर उनकी आलोचना करनी आरम्भ कर दी। श्रीनित्यानन्द कौन से गाँव के रहने वाले हैं, किसके पुत्र हैं, कौन से गुरु के शिष्य हैं, यह कोई नहीं जानता; बहुत स्थानों पर भ्रमण करने के कारण उन्होंने विभिन्न जाति के लोगों से अन्न आदि ग्रहण किया है। अतएव ऐसी स्वाभाविक मत्त प्रकृति के ये नित्यानन्द सर्वनाश कर रहे हैं। श्रीअद्वैत प्रभु ने बंगाल में रहने वाले गृहस्थ–ब्राह्मण का लीलाभिनय किया था। अतः बंगाल की पश्चिम दिशा में रहने वाले यवनों के साथ मेल–जोल रखने के कारण उन लोगों के संसर्ग से नित्यानन्द का अपना जातिगत ार्म विनष्ट हो चुका है, ऐसा कहकर वे नित्यानन्द के प्रति दोषारोपण करने लगे। वास्तव में नित्यानन्द आसव पीने वाले तान्त्रिक संन्यासी नहीं थे। व्यभिचार में रत व्यक्ति इन सब प्रसंगों से भ्रमवश नित्यानन्द को उन लोगों की भाँति ही विशृंखल समझते थे, परन्तु प्रभु–नित्यानन्द ने उस प्रकार के पापों को प्रश्रय देने की शिक्षा कभी भी प्रदान नहीं की है। "परिवदतु जनो यथा तथा वा ननु मुखरों व वयं विचारयामः॥" हरिरस–मदिरामदातिमत्त्वा भुवि विलुठाम नटाम निर्विशाम॥" यह श्लोक इस प्रसंग में अनुशीलन योग्य है।

अद्वैत चरित्र दर्शन से गौरसुन्दर की हँसी–

अद्वैत चरित्र देखि' हासे गौर–राय।
हासि' नित्यानन्द दुइ अंगुलि देखाय॥२५१॥

(२५१) प. अनु.—श्रीगौरांगराय अद्वैत के चरित्र को देखकर को देखकर हँसने लगे। नित्यानन्द प्रभु भी हँसकर उन्हें दो उँगलियाँ दिखाने लगे।

अद्वैत के विचित्र क्रोधावेश को देखकर सभी को हँसी-

शुद्ध हास्यमय अद्वैतेर क्रोधावेशे।
किवा बृद्ध किवा शिशु हासये विशेषे॥२५२॥

(२५२) प. अनु.—अद्वैत का क्रोधावेश शुद्ध हास्यमय था। उसे देखकर क्या बूढ़े और क्या बच्चे-सभी विशेष रूप से हँसने लगे।

बाह्यज्ञान होने पर अद्वैत का नित्यानन्द के साथ आलिंगन-

क्षणेके पाइया बाह्य कैल आचमन।
परस्पर आनन्दे करिला आलिंगन॥२५३॥
नित्यानन्द-अद्वैत हइल कोलाकुली।
प्रेमरसे दुइ प्रभु महा-कुतूहली॥२५४॥

(२५३-२५४) प. अनु.—एक क्षण में बाह्य ज्ञान मिलने पर अद्वैत ने आचमन किया। फिर आनन्द के साथ परस्पर आलिंगन-बद्ध हो गये। नित्यानन्द और अद्वैत ने एक दूसरे को गले लगाकर प्रेमरस में मत्त दोनों प्रभु महान् आनन्द में विभोर हो गये।

नित्यानन्द एवं अद्वैत-दोनों महाप्रभु की दो भुजा-स्वरूप हैं, दोनों के बीच अप्रीति का अभाव है; दोनों कल कलह लीलामात्र है-

प्रभु-विग्रहेर दुइ बाहु दुइ जन।
प्रीति-बइ अप्रीति नाहिक कोन क्षण॥२५५॥
तबे ये कलह देख, से कृष्णेर लीला।
बालकेर प्राय विष्णु-वैष्णवेर खेला॥२५६॥

(२५५-२५६) प. अनु.—ये दोनों (अद्वैत और नित्यानन्द) गौरसुन्दर की दो भुजा-स्वरूप हैं। किसी भी क्षण दोनों के बीच प्रीति के अलावा अप्रीति का भाव नहीं रहता है। फिर भी दोनों में जो कलह दिखाई देता है, वह कृष्ण की लीला मात्र है। विष्णु-वैष्णवों का खेल प्रायः बालकों के खेल-जैसा होता है।

(२५५) गौः भाः—प्रभु नित्यानन्द और प्रभु अद्वैत,—ये दोनों गौरसुन्दर की दक्षिण एवं वाम भुजा-स्वरूप हैं। इसलिए वास्तव में इन दोनों के बीच किसी प्रकार से मनमुटाव या अप्रीति के भाव का रहना संभव नहीं है। दोनों ही भगवत् प्रेम में उन्मत्त रहते हैं।

अद्वैत के घर में महाप्रभु की कृष्णकीर्तन-लीला को समझने में श्रीबलदेव प्रभु ही समर्थ हैं-

हेनमते महाप्रभु अद्वैत-मन्दिरे।
स्वानुभावानन्दे कृष्ण-कीर्तने विहरे॥२५७॥
इहा बुझिवारे शक्ति प्रभु बलराम।
अन्ये नाहि जानये ए सब गुणग्राम॥२५८॥

(२५७-२५८) प. अनु.—इस प्रकार अद्वैत के मन्दिर (घर) में महाप्रभु स्वानुभावानन्द में कृष्णकीर्तनसहित विहार करते रहते हैं। इसे समझने की शक्ति केवल प्रभु बलराम में ही है। दूसरा कोई इन सब गुणसमूहों को नहीं जानता है।

विश्रंभ गुरुसेवा में रत व्यक्ति को बलदेव की कृपा से कृष्णकीर्तन में अधिकार-प्राप्ति; अप्राकृत सरस्वती तादृश जनकी जिह्वा पर नृत्य करती हैं-

सरस्वती जाने बलरामेर कृपाय।
सबार जिह्वाय सेइ भगवती गाय॥२५९॥

(२५९) प. अनु.—बलराम की कृपा से सरस्वती उन गुणों को जानती हैं। वे भगवती देवी ही सब की जिह्वा पर विराजमान होकर उन गुणों का कीर्तन करती रहती हैं।

(२५९) गरौः भाः—श्रीबदेव की कृपा से कीर्तनकारी की जिह्वा पर श्रीचैतन्यवाणी प्रतिष्ठित हो जाती है।

(२५९) गौः भाः—श्रीबदेव की कृपा से

कीर्तनकारी की जिह्वा पर श्रीचैतन्यवाणी प्रतिष्ठित हो जाती है। विश्रंभ (विश्वस्त) गुरु–सेवा जिन लोगों का व्रत है, वे ही कृष्णलीला–कीर्तन में समर्थ होते हैं। अप्राकृत सरस्वती–उन लोगों की जिह्वा पर नृत्यस करती हुई कृष्णकीर्तन–तरंग को प्रवाहित करती रहती हैं।

ग्रन्थकार का निवेदन एवं भक्तों को प्रणाम–

ए सब कथार नाहि जानि अनुक्रम।
ये–ते–मते गाइ मात्र कृष्णेर विक्रम॥२६०॥
चैतन्यप्रियेर पाये मोर नमस्कार।
इहाते ये अपराध क्षमह आमार॥२६१॥

(२६०–२६१) प. अनु.—इन सब कथाओं का अनुक्रम मैं नहीं जानता हूँ। जैसे–तैसे भी हो, मैं तो केवल कृष्ण की महिमा का कीर्तन कर रहा हूँ। जो चैतन्य के प्रिय हैं, उनके चरणों में मेरा नमस्कार है। यदि इसमें कोई अपराा हो गया हो, तो वे मुझे क्षमा करेंगे।

श्रीगौरसुन्दर का नवद्वीप में लौट आना, इससे सभी को आनन्द एवं महाप्रभु के द्वारा वैष्णवों को प्रेमालिंगन–दान–

अद्वैतेर गृहे प्रभु बंचि' कतदिन।
नवद्वीपे आइला संहति करि' तिन॥२६२॥
नित्यानन्द, अद्वैत, तृतीय हरिदास।
एइ तिन संगे प्रभु आइला निज वास॥२६३॥
शुनिल वैष्णव सब 'आइला ठाकुर'।
धाइया आइल सबे आनन्द प्रचुर॥२६४॥
देखि' सर्व ताप हरे से चन्द्रवदन।
धरिया चरण सबे करये रोदन॥२६५॥
गौरचन्द्र महाप्रभु सबार जीवन।
सबारे करिल प्रभु प्रेम–आलिंगन॥२६६॥

(२६२–२६६) प. अनु०—अद्वैत के घर में कुछ दिन रहकर प्रभु तीनों को साथ लेकर नवद्वीप में आ गये। नित्यानन्द, अद्वैत और हरिदास–इन तीनों के साथ प्रभु अपने घर आ पहुँचे। सब वैष्णवों ने जब सुना कि, 'ठाकुर आ गये', तब वे सभी कड़े ही आनन्द के साथ दौड़ते हुये वहाँ चले आये। प्रभु के मुखचन्द्र को देखकर सभी का दुःख दूर हो गया और सभी प्रभु के चरण पकड़कर क्रन्दन करने लगे। गौरचन्द्र महाप्रभु जीवनस्वरूप हैं। प्रभु ने सभी को प्रेमालिंगन प्रदान किया।

भक्तों का तत्त्व–

सबेइ प्रभुर निज विग्रह समान।
सबेइ उदार–भागवतेर प्रधान॥२६७॥

(२६७) प. अनु०—ये सब प्रभु के अपने विग्रह के समान थे। ये सभी उदार और भागवतों में श्रेष्ठ थे।

भक्तों के द्वारा अद्वैत को प्रणाम निवेदन एवं प्रभु के साथ कृष्ण–कीर्तन–

सबे करिलेन अद्वैतेरे नमस्कार।
या'र भक्ति–कारणे चैतन्य–अवतार॥२६८॥
आनन्दे हइला मत्त वैष्णव–सकल।
सबे करे प्रभु–संगे कृष्ण–कोलाहल॥२६९॥

(२६८–२६९) प. अनु०—जिनकी भक्ति के कारण महाप्रभु चैतन्य का अवतार हुआ, उन अद्वैत प्रभु को सभी ने नमस्कार किया। सभी वैष्णव आनन्द में मत्त हो गये और सभी मिलकर प्रभु के साथ कृष्ण कोलाहल करने लगे।

गौरसुन्दर के दर्शन करके वधू के साथ शचीमाता का आनन्द–

पुत्र देखि' आइ हैल आनन्दे विह्वल।
वधू–संगे गृहे करे गोविन्द–मंगल॥२७०॥

(२७०) प. अनु०—पुत्र को देखकर आई आनन्द में विह्वल हो रही थीं। वे वधू को साथ लेकर घर में गोविन्द–कीर्तनरूपी मांगलिक अनुष्ठान में मग्न हो गईं।

(२७०) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत एवं श्रीहरिदास के साथ श्रीगौरसुन्दर को प्रत्यागमन करते हुये देखकर एवं वैष्णवों को आनन्द में मत्त होकर कृष्ण–कोलाहल सहित गौर–गृह को मुखरित करते हुये देखकर श्रीशचीदेवी परमानन्द में डूब गईं। पुत्रवधू के साथ माता श्रीगौरसुन्दर को श्रीकृष्णगीत में पूर्ण रूप से तन्मय हो जाते देखकर समधिक आनन्द को प्राप्त हुईं। साधारण सासू–माताएँ पुत्रवधू के साथ पुत्र के मिलन में जिस प्रकार प्रापंचिक भोग का विचार रखती हैं, उसके विपरीत सभी ने कृष्णप्रेमानन्द में घर को गोलोक समझ लिया, इस मंगलमय दृश्य को देखकर शचीमाता आनन्द में विह्वल हो गई।

ग्रन्थकार की नित्यानन्द–निष्ठा–

इहा बलिवार शक्ति सहस्रवदन।
ये प्रभु आमार जन्म–जन्मेर जीवन॥२७१॥

(२७१) प. अनु०—इस चैतन्य लीला का वर्णन करने की शक्ति केवल उन सहस्रवदन में है, जो जन्म–जन्म में मेरे प्रभु और मेरे जीवनस्वरूप हैं।

नित्यानन्द–तत्त्व–

'द्विज, विप्र, ब्राह्मण' ये हेन नाम–भेद।
एइमत भेद नित्यानन्द–बलदेव॥२७२॥

(२७२) प. अनु०—'द्विज, विप्र, ब्राह्मण' इत्यादि शब्दों में जिस प्रकार केवल नाममात्र का भेद वर्तमान है, उसी प्रकार का भेद नित्यानन्द और बलदेव के बीच वर्तमान है। (तत्त्वतः दोनों एक ही हैं)।

अध्याय की फलश्रुति–

अद्वैत–गृहेते प्रभु यत कैल केलि।
इहा येइ शुने, सेइ पाय सेइ मेलि॥२७३॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावनदास तछु पदयुगे गान॥२७४॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे अद्वैतगृहे विलास–वर्णनं नाम ऊनविंशोऽध्यायः।

(२७३–२७४) प. अनु०—अद्वैत के घर में प्रभु ने जितनी भी केलियाँ (लीलाएँ) कीं, उन सबके बारे में जो सुनते हैं, उन्हें प्रेमभक्ति मिल जाती है। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल–श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

इति गौड़ीय–भाष्य में ऊनविंश अध्याय समाप्त

O

विंश अध्याय

विंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में महाप्रभु द्वारा मुरारिगुप्त को सपने में नित्यानन्द तत्त्व की जानकारी, निर्विशेषवाद का खण्डन, मुरारि के द्वारा अपने घर में महाप्रभु को भोग-प्रदान करना, इससे महाप्रभु को अजीर्ण होना एवं मुरारि का जल पीने से बीमारी से मुक्ति, श्रीवास के घर में महाप्रभु के द्वारा चतुर्भुज-मूर्ति धारण करना, मुरारि-द्वारा गरुड़-भाव को अपनाना एवं महाप्रभुद्वारा मुरारि के कन्धों पर आरोहण, देह को त्याग देने के लिए मुरारि का संकल्प एवं प्रभु के द्वारा निन्दक संन्यासी के साथ बंचक की तुलना-इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

महाप्रभु जब श्रीवास के घर में अवस्थान कर रहे थे, तब एकदिन मुरारि गुप्त वहाँ आये। जब उन्होंने महाप्रभु को प्रणामपूर्वक नित्यानन्द के चरणों में प्रणाम किया, तब महाप्रभु ने मुरारि से कहा कि, उनके इस व्यवहार में व्यतिक्रम हुआ है। मुरारि द्वारा उस विषय में अपनी अज्ञता प्रकाशित करने पर महाप्रभु ने उनसे कहा कि, वे आने वाले दिनों में सब कुछ जान सकेंगे। अपने घर लौटने के बाद मुरारि ने रात को सपने में नित्यानन्द के साक्षात् हलधर के स्वरूप में दर्शन किये एवं उनके पीछे व्यजनरत (पंखा झलते हुये) विश्वम्भर को देखा। मुरारि ने सपने में दोनों का तत्त्व जानने के बाद दूसरे दिन प्रभु के पास जाने पर पहले नित्यानन्द को प्रणाम किया और फिर गौरसुन्दर को प्रणाम किया। तब महाप्रभु ने इसका कारण पूछा। उत्तर में मुरारि ने बताया कि, महाप्रभु ने ही उनके हृदय में ऐसा भाव प्रदान किया है, क्योंकि वे ही सभी जीवों के नियन्त्रणकर्ता हैं। महाप्रभु ने मुरारि को बताया कि, वे उनके प्रिय हैं, ऐसा बोलकर ही उन्होंने मुरारि के पास अपने तत्त्व को ज्ञापित किया है। इसके बाद महाप्रभु ने उनको अपना चर्बित ताम्बूल (पान) प्रदान किया, जिसे मुरारि ने मर्यादा-सहित भक्षण कर लिया।इसके पश्चात् महाप्रभु ने मुरारि को हाथ धोने के लिए कहा तो मुरारि ने अपना हाथ सिर पर रख लिया। महाप्रभु ने तब मुरारिक को स्मार्तविचार से उनके जातिनाश की आशंका की ज्ञापना की और वे काशी के निर्विशेषवादी प्रकाशानन्द के प्रति तिरस्कार प्रकट करने लगे। मायावादी श्रीभगवाद्-विग्रह में देह-देही का भेद आरोपित करने हैं एवं अपने आपको सेव्य प्रभु, भगवान् के साथ अभिन्न समझते हैं, इससे आत्मविनाश का रास्ता खुल जाता है।

तत्पश्चात् महा।भु ने मुरारि की प्रशंसा करके उनकोअपने घर चले जाने का आदेश दिया। मुारि के घर आकर अपनी पत्नी के पास भोजन करने का अभिप्राय व्यक्त किया। उनकी पत्नी ने उनके सामने अन्न लाकर रख दिया। वे अन्नपात्र से मुट्ठी-भर अन्न ले-लेकर कृष्ण को अर्पण करते हुये भूमि पर गिराने लगे। दूसरे दिन प्रातः गौरसुन्दर वहाँ आये और मुरारि से कहा कि, उनका अन्न खाकर

प्रभु को अजीर्ण हो गया है एवं केवल मुरारि के जलपात्र से जल पीने पर ही वह अजीर्ण (बदहजमी की बीमारी) दूर हो सकता है। वह देखकर मुरारि प्रेमानन्द में मूर्च्छित हो गये और मुरारि के सभी पारिवारिक जनों ने प्रेम से क्रन्दन करना आरंभ कर दिया।

एकदिन महाप्रभु ने श्रीवास के घर में हुँकार– पूर्वक चतुर्भुज रूप धारण करते हुये 'गरुड़ गरुड़' कहकर पुकारा तो मुरारि गरुड़ के भाव से आविष्ट होकर प्रभु के निकट उपस्थित हुये एवं अपने आपको गरुड़ कहकर उन्होंने अपना परिचय प्रदान किया। उन्होंने गरुड़ के रूप में प्रभु की द्वापरयुग की लीलाओं में उनकी जो सेवा की थी, उसका भी स्मरण कराया तथा प्रभु ने अपने कंधों पर आरोहण करने का अनुरोध किया। महाप्रभु को अपने कन्धों पर चढ़ाकर मुरारिगुप्त आंगन में घूमने लगे। इसे देखकर भक्तों ने जयध्वनि की एवं मुरारि के प्रति प्रभु की कृपा का दर्शन करके वे उनके सौभाग्य की प्रशंसा करने लगे।

फिर एकदिन मुरारिगुप्त ने गौरसुन्दर के लीलावसान के पहले ही अपने शरीर को त्याग देने का संकल्प करते हुये एक तेज धारदार अस्त्र को अपने घर में छिपाकर रख लिया। अन्तर्यामी महाप्रभु इसे जान गये और उन्होंने मुरारि के घर आकर उनसे ऐसा करने को मना कर दिया।

इसके बाद ग्रन्थकार ने चैतन्य के दासों की प्रशंसा एवं निन्दक संन्यासी को भी साधु–निन्दारूप अपराध के लिए शोचनीय परिणाम वर्णन कर अध्याय को समाप्त किया है।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

श्रीगौरसुन्दर का जयगान–

जय जय गौरसिंह श्रीशचीकुमार।
जय सर्वतापहरण चरण तोमार॥१॥
जय गदाधर–प्राणनाथ महाशय।
कृपा कर प्रभु येन तोहे मन रय॥२॥

(१–२) प. अनु—श्रीशचीकुमार गौरसिंह की जय हो, जय हो सब ताप को हरण करने वाले आपके चरणकमलों की जय हो। गदाधर के प्राणनाथ महाशय की जय हो। हे प्रभु, आप ऐसी कृपा कीजिए कि मेरा मन सदा आप में ही निमग्न रहे।

(१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के चरणों का आश्रय लेने से जीवों के सभी प्रकार के आध्यक्षिक ताप विनष्ट हो जाते हैं। श्रीगौरसुन्दर किसी औपाधिक विषय के प्रश्रयदाता नहीं हैं, वे जीवों के स्वरूप को जागतिक करके उन्हें सभी प्रकार के जागतिक तापों से विमुक्त कर देते हैं।

(२) गौः भाः—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी मधुर रति के आश्रय में सभी प्रकार से श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन से अभिन्न श्रीगौरसुन्दर ही श्रीगदाधर की हार्दिक चेष्टाओं के प्रभु हैं।

भक्तों के साथ गौरचन्द्र का बहुविध कौतुक–

हेनमते भक्त–गोष्ठी ठाकुर देखिया।
नाचे, गाय, कान्दे, हासे प्रेमपूर्ण हइया॥३॥
एइमते प्रतिदिने अशेष कौतुक।
भक्त–संगे गौरचन्द्र करे नानारूप॥४॥
एकदिन महाप्रभु नित्यानन्द–संगे।
श्रीनिवासगृहे बसि' आछे नाना–रंगे॥५॥

(३–५) प. अनु०—इस प्रकार भक्त–गोष्ठी को देखकर ठाकुर प्रेमभाव से परिपूर्ण होकर नाचने लगते, गाने लगते, क्रन्दन करने लगते

और हँसने लगते हैं। इस तरह भक्तों के साथ मिलकर गौरचन्द्र प्रतिदिन बहुविध अशेष कौतुक करते हैं। एकदिन महाप्रभु नित्यानन्द के साथ श्रीवास के घर में नानाविध आनन्द का रसास्वादन करते हुये विराजित थे।

मुरारि गुप्त-द्वारा प्रभु चरणों में प्रणाम निवेदन के उपरान्त नित्यानन्द को प्रणाम निवेदन करना-

आइला मुरारि-गुप्त हेनइ समय।
प्रभुर चरणे दण्ड-परणाम हय॥६॥
शेषे नित्यानन्देरे करिया परणाम।
सम्मुखे रहिला गुप्त महाज्योतिर्धाम॥७॥

(६—७) प. अनु०—उसी समय मुरारि-गुप्त वहाँ आ पहुँचे। आकर उन्होंने प्रभु के चरणों में दण्डवत् प्रणाम निवेदन किया। पश्चात् नित्यानन्द को प्रणाम निवेदन करके महाज्योतिर्धाम (परम तेजस्वी) गुप्त उनके सामने खड़े हो गये।

जगद्गुरु की पूजा करने से पहले भगवान् की पूजा करने के कारण प्रभु का प्रतिवाद एवं मुरारि का उत्तर-

मुरारि गुप्तेरे प्रभु बड़ सुखी मने।
अकपटे मुरारिरे कहेन आपने॥८॥
''ये करिला मुरारि, ना हय व्यवहार।
व्यतिक्रम करिया करिला नमस्कार॥९॥
कोथा तुमि शिखाइया, ये ना इहा जाने।
व्यवहारे हेन धर्म तुमि लंघ' केने?''१०॥
मुरारि बलये,-''प्रभु जानिव केमते?
मोर चित्त तुमि लइयाछ येन-मते॥''११॥

(८-११) प. अनु०—बड़े ही प्रसन्नचित्त से प्रभु से निष्कपट भाव से मुरारि गुप्त से कहा,-"मुरारि, तुम्हारा यह व्यवहार ठीक नहीं हुआ। तुमने क्रमभंग पूर्वक नमस्कार किया है। इस शिष्टाचार-धर्म का यदि तुम ही उल्लंघन करोगे तो इस विषय में अनजान व्यक्तियों को तुम क्या शिक्षा दोगे?" मुरारि ने कहा,-"हे प्रभु! मैं कैसे जानूँ? मेरे हृदय में विराजमान होकर आपने ही प्रेरणा की।"

(६-९) गौः भाः—श्रीमुरारि गुप्त ने पहले भगवान् गौरसुन्दर को नमस्कार किया, पश्चात् श्रीनित्यानन्दप्रभु को प्रणाम निवेदन किया। नमस्कार करने के समय क्रमभंग हो जाने के कारण महाप्रभु ने आपत्ति पूर्वक कहा,-"बलदेव प्रभु की ज्येष्ठता एवं मेरी कनिष्ठता के विषय में तुमको विचार-भ्रान्ति उपस्थित हुई है। विशेष करके तुम तो श्रीबलराम के उपासक हो। इस कारण पहले श्रीगुरुपूजा एवं जगद्गुरुपूजा न करके भगवत्पूजा से क्रमभंग होता है।" प्रचलित भाषा में कहते हैं,-"घोड़े का अतिक्रमण करके घास नहीं खानी चाहिए।" श्रीकृष्ण के बिना किसी को भी भगवान् की सेवा करने का अधिकार नहीं मिलता है।

प्रभु-द्वारा मुरारि को सपने में नित्यानन्द-तत्त्व की ज्ञापना-

प्रभु बले,-''भाल भाल आजि याह घरे।
सकल जानिबा कालि बलिब तोमारे॥''१२॥
सम्भ्रमे चलिला गुप्त सभय हरिषे।
शयन करिला गिया आपनार वासे॥१३॥
स्वप्ने देखे-महाभागवतेर प्रधान।
मल्लवेशे नित्यानन्द चले आगुयान॥१४॥
नित्यानन्द-शिरे देखे महा-नाग-फणा।
करे देखे श्रीहल-मुषल ता'न बाना॥१५॥
नित्यानन्द-मूर्त्ति देखे येन हलधर।
शिरे पाखा धरि' पाछे याय विश्वम्भर॥२६॥
स्वप्ने प्रभु हासि कहे,-''जानिला मुरारि।
आमि ये कनिष्ठ, मने बुझह विचारि॥''१७॥

स्वप्ने दुइ प्रभु हासे मुरारि देखिया।
दुइ भाइ मुरारिरे गेला शिखाइया॥१८॥

(१२–१८) प. अनु—प्रभु ने कहा,–"अच्छा, अच्छा, आज घर जाओ। कल हम तुम्हें सब बता देंगे।" हर्ष और भय के साथ गुप्त संभ्रम–सहित चल पड़े और अपने घर आकर सो गये। महान् भागवतों में प्रधान गुप्त ने सपने में देखा कि, मल्ल के वेश में नित्यानन्द आगे–आगे चल रहे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि महानाग के फन नित्यानन्द के सिर पर विराजमान हैं और नित्यानन्द के हाथों में उनके अस्त्र–श्रीहल और मूसल भी विद्यमान है। नित्यानन्द प्रभु हलधर की भाँति दिखाई पड़ रहे हैं और उनके सिर पर पंखा धारण करके विश्वम्भर उनके पीछे–पीछे चल रहे हैं। सपने में ही प्रभु हँसकर कहने लगे,–"अब तो तुम जान गये मुरारि! ये जरा मन में विचार करके देखो कि मैं कनिष्ठ हूँ।" सपने में दोनों प्रभु मुरारि को देखकर हँस रहे थे। दोनों भाईयों ने मुरारि को सपने में ही शिक्षा प्रदान कर दी।

चेतनता लौटने पर मुरारि का क्रन्दन–

चैतन्य पाइया गुप्त करये क्रन्दन।
'नित्यानन्द' बलि श्वास छाड़े घने घन॥१९॥
महा–सती मुरारि–गुप्तेर पतिव्रता।
'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' बले हइ' सचकिता॥२०॥
'बड़ भाइ नित्यानन्द' मुरारि जानिया।
चलिला प्रभुर स्थाने आनन्दित हइया॥२१॥

(१९–२१) प. अनु०—चेतनता लौट आने पर मुरारि गुप्त क्रन्दन करने लगे और 'नित्यानन्द' 'नित्यानन्द कहकर बारम्बार साँस छोड़ने लगे। मुरारि गुप्त की गृहिणी एक महासती पतिव्रता नारी थी। वह भी चकित होकर 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' कहने लगीं। 'नित्यानन्द बड़े भाई है'–यह जानकर मुरारि आनन्द–सहित प्रभु के पास चल दिये।

मुरारि के द्वारा पहले जगद्गुरु नित्यानन्द को प्रणाम निवेदन, पश्चात् गौरसुन्दर को प्रणाम–

बसि' आछे महाप्रभु कमललोचन।
दक्षिणे से नित्यानन्द प्रसन्न–वदन॥२२॥
आगे नित्यानन्देर चरणे नमस्करि'।
पाछे वन्दे विश्वम्भर चरण मुरारि॥२३॥

(२२–२३) प. अनु०—अपने दाहिनी ओर प्रसन्नवदन नित्यानन्द को साथ लेकर कमललोचन महाप्रभु बैठे हुये थे। मुरारि ने पहले नित्यानन्द के चरणों में नमस्कार निवेदन किया। बाद में उन्होंने विश्वम्भर के चरणों की वन्दना की।

प्रभु द्वारा इस क्रम के बारे में पूछने पर दृष्टान्त–सहित मुरारि का उत्तर–

हासि' बले विश्वम्भर,–"मुरारि ए केन?"
मुरारि बलये,–"प्रभु लओयाइले येन॥२४॥
पवन–कारणे येन शुष्क तृण चले।
जीवेर सकल धर्म तोर शक्तिबले॥"२५॥

(२४–२५) प. अनु०—हँसकर विश्वम्भर ने पूछा,–"ऐसा क्यों मुरारि?" मुरारि ने कहा,–"हे प्रभु! आपने जैसा करवाया, वैसा मैंने किया। पवन के कारण जैसे सूखे तृण एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चले जाते हैं, उसी प्रकार आपकी शक्ति के बल से जीवों के सभी धर्म नियन्त्रित होते हैं।"

(२५) गौः भाः—जिस प्रकार से सूखी घास भार में हलकी होने के कारण हवा के द्व रा आसानी से चलायमान हो जाती है, उसी प्रकार से मूलाधार भगवद्–शक्ति जीवों के

सभी धर्मों को नियन्त्रित करती है।

प्रभु-द्वारा अपने प्रियतमजन के समक्ष निज रहस्य का उद्घाटन-

प्रभु बले,-''मुरारि, आमार प्रिय तुमि।
अतएव तोमारे भांगिल मर्म आमि॥''२६॥

(२६) प. अनु०—प्रभु बोले,-"हे मुरारि! तुम मेरे प्रिय हो। इसी कारण तुम्हारे निकट इस रहस्य को प्रकट कर रहा हूँ।"

गदाधर-द्वारा प्रभु को ताम्बूल प्रदान एवं प्रभु के द्वारा मुरारि को उसका उच्छिष्ट दान-

कहे प्रभु निज तत्त्व मुरारिर स्थाने।
योगाय ताम्बूल प्रिय गदाधर वामे॥२७॥
प्रभु बले,-''मोर दास मुरारि प्रधान।''
एत बलि' चर्बित ताम्बूल कैला दान॥२८॥
सम्भ्रमे मुरारि योड़हस्त करि' लय।
खाइया मुरारि महानन्दे मत्त हय॥२९॥

(२७-२९) प. अनु—मुरारि के पास प्रभु निज तत्त्व का वर्णन करने लगे। उधर बाईं ओर से प्रिय गदाधर ने उन्हें ताम्बूल प्रदान किया। प्रभु ने कहा,-"मेरे दासों में मुरारि श्रेष्ठ है।" ऐसा कहकर उन्होंने चर्बित ताम्बूल मुरारि को प्रदान कर दिया। मुरारि ने हाथ जोड़कर सम्भ्रम-सहित उसे ग्रहण किया और खाकर महा आनन्द में मत्त हो गये।

प्रभु-द्वारा मुरारि को हाथ धोने के लिए आदेश प्रदान एवं मुरारि-द्वारा अपने हाथ को अपने सिर पर रख देना-

प्रभु बले,-''मुरारि सकाले धोओ हात।''
मुरारि तुलिया हस्त दिलेक माथात॥३०॥

(३०) प. अनु०—प्रभु बोले,-"मुरारि! तुरन्त हाथ धो डालो।" यह सुनकर मुरारि ने अपने हाथ को अपने सिर पर रख लिया।

(३०) गौः भाः—सकाले-बिना कालविलम्ब किये, अतिशीघ्र।

प्रभु-द्वारा स्मार्तविचार की दोहाई देकर मुरारि के जातिनाश को आशंका की ज्ञापना-

प्रभु बले,-''आरे बेटा जाति गेल तोर।
तोर अंगे अच्छिष्ट लागिल सब मोर॥''३१॥

(३१) प. अनु०—प्रभु बोले,-"अरे ओ मुरारि! तेरी जाति का नाश हो गया। मेरा उच्छिष्ट तेरे सब शरीर में लग गया।"

(३१) गौः भाः—स्मृतिशास्त्र के विचारानुसार उच्छिष्ट भोजन करने वालों की जाति का नाश हो जाता है।

निर्विशेषवादी द्वारा सविशेषवादी पर आक्रमण करने से प्रभु का क्रोध-

बलिते प्रभुर हइल ईश्वर आवेश।
दन्त कड़मड़ करि' बलये विशेष॥३२॥
''संन्यासी प्रकाशानन्द बसये काशीते।
मोरे खण्ड खण्ड बेटा करे भाल मते॥३३॥

(३२-३३) प. अनु०—ऐसा कहते-कहते प्रभु में ईश्वर का आवेश हो गया और वे दाँतों को कड़कड़ाते हुये विशेष रूप से कहने लगे,-"प्रकाशानन्द नाम का एक संन्यासी काशी में रहता है। वह मुझे अच्छी तरह से खंड-विखंड करता रहता है।

(३३) गौः भाः—काशीवादी मायावादी संन्यासीगण कहते हैं-"जगत् मिथ्या है, वैकुण्ठ में विचित्रता नहीं है, जो कुछ जागतिक विचित्रता दिखाई देती है, वह सब मिथ्या है, जीवों का कोई नित्यस्वरूप नहीं है, भ्रमवश ब्रह्म ही अपने आप में जीवरूप की कल्पना किया करता है। अज्ञान दूर हो जाने से केवल

निर्विशेष ब्रह्म ही शेष रह जाता है। श्रीभगवान् का चिन्मय रूप नहीं है, क्योंकि रूपमात्र ही अचित जगत् में अवस्थान करता है, अतएव उस प्रकार की धारणाएँ भ्रान्तिमात्र हैं। रूपरहित अवस्था ही निर्विशेष ब्रह्म की नित्य स्थिति है। भगवान् के नाम–रूप–गुण–परिकर–विशिष्टता एवं लीला प्रापंचिक विचारों के अन्तर्गत (अंग्रेजी में जिसे एन्थ्रोपोमोरफिजम कहते हैं) उस विवर्तबुद्धि का आश्रय लेकर इस प्रकार कल्पना करते हैं। उस विवर्तबुद्धि का आश्रय लेकर इस प्रकार कल्पना करते हैं। भगवद्विग्रह नामक कोई सेव्य पुरुषोत्तम नहीं है। सेव्य–सेवनधर्म केवल पार्थिव विचारों में ही प्रतिष्ठित है। सविशेष सच्चिदानन्द भगवान् निर्विशेष ब्रह्म से अलग–विवर्त–उत्थापित विचारमात्र है। उपासना–अनित्य है।"–इत्यादि केवलाद्वैतवादियों का विचार है। काशीवासी संन्यासीगण परमार्थ से वंचित होकर भगवान् के चिन्मय अंग के अस्तित्व को खंड—खंड करके नष्ट करने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार के संन्यासियों में अग्रणी प्रकाशानन्द नामक एक मायावादी संन्यासी ने महाप्रभु के समय में सभी यतिओं में श्रेष्ठता को प्राप्त किया था। इस जगत् में घोर हिंसा–वृत्ति रहने के कारण नित्य–सविशेषवाद पर आक्रमण करना निर्विशेषवाद की प्रधान प्रचेष्टा रही है, परन्तु श्रीगौरसुन्दर का ऐसा अभिप्राय नहीं है।

केवलाद्वैतवाद के विचार में भगवद् विग्रह को अस्वीकार करने के कारण प्रकाशानन्द को कुष्ठ रोग–

पड़ाय वेदान्त, मोर विग्रह ना माने।
कुष्ठ कराइलुँ अंगे तबु नाहि जाने॥३४॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर ये अंगते अंगते वैसे।
ताहा मिथ्या बले बेटा केमन साहसे?३५॥

(३४–३५) प. अनु—वेदान्त पढ़ाता है, परन्तु मेरे विग्रह को नहीं मानता है। उसके अंग में कुष्ठ रोग कर दिया, फिर भी वह होश में नहीं आया। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे जिस अंग में विराजमान हैं, उसे वह मिथ्या बतलाता है, कैसा साहस (हिम्मत) है उसका?"

(३४) गौः भाः—श्रुतियों का अलग–अलग अर्थ निकालना संभव होने के कारण विभिन्न रुचि–विशिष्ट मनुष्यों ने अपने–अपने संकीर्ण विचारों का अवलम्बन करके विभिन्न श्रुतिमन्त्रों के अर्थ के विषय में परस्पर विवाद देखा हैं। इसलिए उन लोगों के शास्त्र–विवाद को समाप्त करने के लिए श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव ने वादरायण सूत्रों की अवतारणा की है। वही वादरावण सूत्र अन्य भारतीय पंचविध दर्शनों से अलग होकर 'वेदान्तदर्शन' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इसी ब्रह्मसूत्र का अकृत्रिम भाष्य स्वरूप है श्रीमद्भागवत्। श्रीमद्भागवत का कथन है कि अद्वयज्ञान भगवद्वस्तु ही ब्रह्म एवं परमात्मा के नाम से कथित है और दोनों श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए उपयोगी शब्दों के द्वारा उस वस्तु के बारे में यह ग्रन्थ–रत्न परिचय प्राप्त कराता है। परन्तु तीन प्रकार के नामों से संज्ञित वह वस्तु वस्तुतः एक एवं अद्वितीय है। जो लोग शब्दों की विद्वद्रूढ़िवृत्ति की अवज्ञा करके अज्ञरूढ़िवृत्ति का आश्रय लेते हैं, उन लोगों के निकट ही भगवत्–तत्त्व ब्रह्म एवं परमात्मा से पृथक् रूप से परिलक्षित होता है। इस श्रेणी के ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करने वाले लोग न्युनाधिक केवलाद्वैतमतवाद की स्थापना के लिए वेदान्त की बौद्धजनोचित व्याख्या करके केवल बौद्धतर्कों के द्वारा हत होते हैं। प्रच्छन्न–बोद्ध वैदान्तिकगण आध्यक्षिक विचारप्रणाली से अभ्युन्नत (उदित) होकर जगत् की कुयुक्तियों

से आबद्ध हो जाते हैं, फलस्वरूप अपने गुरुत्व एवं प्रभुत्व का संरक्षण करने के लिए वे अकृत्रिम श्रीमद्भागवत से अलग मतवैषम्य का प्रचार करते हैं। श्रीमद्भागवत में कथित शुद्धाद्वैत, दैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं शुद्धद्वैत आदि विचारों का परित्याग करके केवलाद्वैत को वेदान्त का तात्पर्य मानकर उसे प्रमाणित करने की चेष्टा से वे जिस अपराध का संचय करते हैं, उस अपराध का नाम है भगवद्विद्वेष–भगवद् विग्रह का विघातन–भगवद् अंग में खड़गाघात। चिन्मय अंगी के चिन्मय अंगों को विच्छिन्न करने का यह प्रयास–नितान्त अकिंचित्कर है। इस कारण प्रकाशानन्द नाम के काशीवासी सर्वप्रधान संन्यासी के नश्वर शरीर में कुष्ठरोग की उत्पत्ति हुई। भगवद्–अंग के ऊपर आक्रमण करने से आध्यक्षिक ज्ञानी के स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर में कुष्ठरोग दिखाई देता है। कुष्ठरोगी भगवद्–विग्रह को न मानने के कारण उस अपराध का वैसा फल भोगते रहते हैं। विश्व–सत्य है,–इस विचार का परिहार करते हुये भी विश्व के अन्तर्गत जीव–शरीरों की नश्वरता का विचार न करके जो लोग भगवान् की बहिरंग शक्ति से उत्पन्न जगत् को मिथ्यापात्र कहकर विश्व के अन्तर्गत जीव–शरीरों को भी मिथ्या नश्वर, परन्तु नश्वर सत्य नहीं है, इत्यादि बातें कहते रहते हैं, उन लोगों की यह अर्वाचीनता धृष्टता नामक अपराध के अन्तर्गत आती है। अनन्त विश्वब्रह्माण्ड भगवान् की बहिरंग शक्ति की परिणति–मात्र है। बहिरंग शक्ति में खण्ड काल की क्रिया समाहित रहती है। इस कारण निर्बोधजन आध्यक्षिक चेष्टालब्ध अज्ञान का आश्रय लेते हैं। वे मायावादी यह नहीं समझते हैं कि, प्रापंचिक विश्वरूपी शरीर मेरी बहिरंग शक्ति से उत्पन्न हुआ है; परन्तु भगवान् के नित्य विग्रह को फल्गु (कपट) चिंतास्रोत के द्वारा प्रकृति से उत्पन्न सविशिष्ट भाव मात्र समझकर वे लोग विचारों में शिथिलता प्रदर्शित करते हैं। भगवान् की अन्तरंग शक्ति नित्यकाल पूर्ण–चिन्मयता–संरक्षणकर नित्यानन्द में विचरण करती है। जड़ विचित्रता नाशकारी बुद्धि को लेकर चिद्वैचित्र पर आक्रमण करना,–रावण के द्वारा मायासीता हरण की भाँति मिथ्या चेष्टामात्र है। मायावादी हर तरह से अपराधी एवं अभक्त हैं। भक्तिपथ में उनके विचरण की कपटता, अपराधमात्र में पर्यवसित होती है।

ब्रह्मा, शिव आदि के वन्दनीय श्रीविग्रह को अस्वीकार करने से सर्वनाश की प्राप्ति–

सत्य कहों मुरारि आमार तुमि दास।
ये ना माने मोर अंग, सेइ याय नाश॥३६॥
अज–भवानन्त प्रभुर विग्रह से सेवे।
ये विग्रह प्राण करि'पूजे सर्व–देवे॥३७॥
पूण्य पवित्रता पाय ये अंग परशे।
ताहा मिथ्या बले बेटा केमन साहसे॥३८॥

(३६–३८) प. अनु०—तुम मेरे दास हो मुरारि, मैं तुमसे सच कह रहा हूँ। जो मेरे अंग को नहीं मानता है, उसका विनाश हो जाता है। अज, भव, अनन्त आदि देव प्रभु के विग्रह की सेवा करते हैं। समस्त देवता भी उस विग्रह को अपना प्राणस्वरूप समझकर पूजते हैं। जिस अंग को स्पर्श करने से पुण्य, पवित्रता प्राप्त होती है, उस अंग को वे किस साहस से मिथ्या कहते हैं।

(३६) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने मुरारि से कहा,–"मैं पुरुषोत्तम वस्तु हूँ, तुम मेरे आश्रित दास हो। मैं अपने भीतरी एवं बाहरी अंगसमूहों का अंगी हूँ। बाहरी अंग समूह को

जो भीतरी–अंग के समान समझते हैं, वे ही माया में फँसकर मेरे अन्तर अंग 'वैकुण्ठ' को समझ नहीं पाते। मायावादी मेरे श्रीविग्रह में देहदेही भेद का आरोप करते हैं। मायावादी यदि विचारों की चंचलता प्रकाशित करके माया से उत्पन्न जगत् को मिथ्या भी कहते हैं, तथापि अंहकार–पूर्वक अपनी बहिः प्रज्ञा से चालित होते हुये अन्तः प्रज्ञा को बहिः प्रज्ञा के समान समझकर निर्वाण (मुक्ति) के लिए प्रयासरत होते हैं। ऐसी चेष्टा आत्मविनाश का लक्षण मात्र है। परन्तु प्रभु का दास कभी भी अपने प्रभु के साथ अभिन्न नहीं होना चाहता है। अभिन्न हो जाने की चेष्टा करना ही आत्मविनाश का कारण है।

(३७) गौः भाः–सब जीवों के वन्दनीय ब्रह्मा,, शिव एवं अनन्तदेव भगवान् के श्रीविग्रह की सेवा करते हैं। समस्त देवता भी उनके विग्रह की प्राण देकर पूजा करते हैं। जो लोग पुरुषोत्तम श्रीविग्रह की सेवा न करके अमूर्त्त (निर्विशेष) की कल्पना करते हैं, वे अज, भव, अनन्त एवं बाकी सभी देवताओं का अतिक्रमण करते हैं। जो लोग अपने स्थूल विग्रह के, अथवा सूक्ष्म विग्रह के नश्वर अभिमान में प्रमत्त हैं, वे समझते हैं कि, सभी विग्रहों का जनक विग्रहरहित होकर निर्विशिष्ट (?) है; परन्तु वास्तव में उस प्रकार की कल्पना प्रकृतिवादी अथवा मायावादी की दांभिकता अथवा अज्ञतामात्र है।

(३८) गौः भाः—मायावादी सम्प्रदाय प्रपंच को मिथ्या मानकर पुण्य, पवित्रता, सत्वगुण आदि के अध्ष्ठिान को पाप, अपवित्रता तथा रजः–सत्त्व–तमो गुण आदि के आश्रित समझते हैं, इस कारण उन लोगों की काल्पनिक चिन्तनधारा वास्तविक सत्य का अनुसंधान करने से वंचित रहती है। परन्तु सर्वशक्तिमान भगवान् सब सत्त्वों के एकमात्र आधार हैं। निज अंग एवं अंगी के बीच के पार्थक्य को विदूरित करता हुआ उनका अवस्थान नित्य है–जो लोग इस बात को नहीं समझ सकते, वे प्रपंच में मिथ्या भाव को दर्शन करके, भगवान् के देह–देही भेद का आरोपण करके सत्य से भ्रष्ट हो जाते हैं। अतिसाहस–विशिष्ट व्यक्ति ही नित्य चिदानन्दमय अध्ष्ठिान के विग्रह को मिथ्या कहने की धृष्टता दिखाते हैं।

भगवान् एवं भक्त की नित्यता–भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला परिकर वैशिष्ट्य की नित्यता–

सत्य सत्य करों तोरे एइ परकाश।
सत्य मुइ, सत्य मोर दास, ता'र दास॥३९॥
सत्य मोर लीला–कर्म, सत्य मोर स्थान।
इहा मिथ्या बले, मोरे करे खान खान॥४०॥

(३९–४०) प. अनु०—मैं तुम्हारे सामने इस परम सत्य का प्रकाशन कर रहा हूँ कि, मैं सत्य हूँ, मेरे दास सत्य हैं, मेरे दासों के दास सत्य हैं। मेरी लीलाएँ सत्य हैं, मेरा ध्ाम सत्य है। जो इन्हें मिथ्या मानते हैं, वे मुझे खंड–विखंड कर देते हैं।

(३९) गौः भाः—भगवान् के प्रकाशसमूह–नित्य हैं एवं मिथ्या से विपरीत भाव में अवस्थित हैं। भगवान् सत्य हैं, भगवान् के दास सत्य हैं, भगवान् के दासों के अनुगत दाससमूह भी सत्य हैं। भगवान् एवं भक्त में उपाधि गत नश्वरता का आरोप करने से अविकृत आत्मापरमात्मा–विचार को विपद् का सामना करना पड़ता है। संसार–अनित्य है, वास्तविक सत्य इसमें अपनी जगह बनाने में समर्थ नहीं होने पर भी संसार से अतीत भगवान् एवं उनके भक्त नित्य सत्य हैं–इस विषय में कुछ और भेद वर्तमान नहीं है। उन लोगों

में प्रपंच के वस्तु-विशेष-ज्ञान से जो विचार उत्पन्न होता है, ऐसे मिथ्या, स्थूल एवं सूक्ष्म देह में अर्थात् उपाधि में वस्तुज्ञान अथवा मैं-ज्ञान विवर्त (भ्रम) का उदाहरण-मात्र हैं। परन्तु आत्मा को कभी भी अनात्मा कहकर भ्रम पैदा भी अनात्मा कहकर भ्रम पैदा नहीं हो सकता।

(४०) गौः भाः—यदि कुछ लोग सच्चिदानन्दविग्रह के अधिष्ठान को 'कल्पित' समझते हैं, भगवान् के लीलासमूह को अनित्य मानते हैं, वैकुण्ठ आदि की काल्पनिकता प्रचारित करते हैं, तब उस भगवद वस्तु में देह-देही-विचार, अर्थात् तद्रूप-वैभव में प्रापंचिक खंडित विचारों का आरोप करना मात्र होता है। ब्रह्मज्ञ के अभिमानी अथवा योगीजन जो इस प्रकार से भगवान् के प्रति हिंसा प्रकट करते हैं, वे भगवान् के अखंड विचार से-अद्वयज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दन की सेवा से सदा के लिए वंचित होकर आंशिक अनित्य विचार में अपने आपको प्रतिष्ठित कर लेते हैं।

भगवान् के नाम-गुण-कीर्त्ति आदि के श्रवण से आध्यक्षिकता का विनाश-

ये यशः-श्रवणे आदि अविद्या-विनाश।
पापी अध्यापके बले 'मिथ्या से विलास'॥४१॥

(४१) प. अनु०—जिस यश के श्रवण करने से आदि अविद्या का विनाश हो जाता है, पापी अध्यापक ही उसे 'मिथ्या विलास' कहते हैं।

(४१) गौः भाः-भगवान् के गुण, नाम, कीर्त्ति आदि के श्रवण करने से मानवों की आध्यक्षिक विचार-प्रणाली विनष्ट हो जाती है। जो व्यक्ति प्रापंचिक विचार को लेकर प्रत्यक्ष आदि अचित् सर्ग के विषयों की फल्गुता की उपलब्धि करते हुये हरि-सम्बधिनी लीलाओं को भी प्रापंचिक नश्वर वस्तुओं की भाँति अकिंचित्कर समझते हैं, वे सब मायापाश में आबद्ध अभिज्ञता के अभिमानी अध्यापक नामधारी जनगण पाप में प्रवृत्त होकर अपराध कर बैठते हैं।

भगवान् की लीलाओं का अनादर करने वालों की भगवान् के अवतार के विषय में अज्ञता-

ये यशः श्रवण-रसे शिव दिगम्बर।
याहा गाय आपने अनन्त महीधर॥४२॥
ये यशः श्रवणे शुक नारदादि मत्त।
चारिवेदे बाखाने ये यशेर महत्त्व॥४३॥
हेन पुण्यकीर्ति प्रति अनादर या'र।
से कभु ना जाने गुप्त मोर अवतार॥४४॥

(४२-४४) प. अनु०—जिस यश के श्रवण-रस में शिव दिगम्बर रहते हैं, पृथ्वी को धारण करने वाले अनन्तदेव स्वयं जिनके यश का कीर्तन करते रहते हैं, शुक-नारदादि जिस यश के श्रवण से सदा मत्त रहते हैं, चारों वेद जिस यश की महिमा का निरन्तर कीर्तन करते रहते हैं, इस प्रकार की पुण्यकीर्त्ति के प्रति जो अनादर भाव रखता है, वह मेरे गुप्त अवतार के बारे में कभी कुछ नहीं जान सकता।

(४२-४४) गौः भाः—जिस भागवत-यश के श्रवण के आनन्द में भवानी-पति महादेव अभिमान रूप वसनों (वस्त्रों) का परित्याग करके दिगरूपी वस्त्रों को धारण करते हैं, जिनके नित्यकीर्ति-समूह को अनन्तशक्तिमान महीधर अनन्तदेव निरन्तर गाया करते हैं; शुक, नारद-आदि संसार-मुक्त महाभागवतगण जिनके गुणगान श्रवण से प्रापंचिक कठिन विधियों को दूर हटाकर भगवत-प्रेम में उन्मत्त ाहते हैं एवं चारों वेद जिनके यश की महिमा के कीर्तन

में सदैव व्यस्त रहते हैं, उन सब गुरुजनों एवं उस शुद्ध ज्ञान के जो विरोधी हैं, वे कभी भी प्रपंच में भगवद–अवतार के विषय को सही ढंग से समझ नहीं सकते हैं।

मुरारि को लक्ष्य करके प्रभु–द्वारा निजतत्त्व के बारे में शिक्षा–प्रदान

गुप्त लक्ष्ये सबारे शिखाय भगवान्।
''सत्य मोर विग्रह, सेवक, लीला, स्थान॥''४५॥
आपनार तत्त्व प्रभु आपने शिखाय।
इहा ये ना माने, से आपने नाश याय॥४६॥
क्षणेके हइला बाह्यदृष्टि विश्वम्भर।
पुनः से हइला प्रभु अकिंचनवर॥४७॥

(४५–४७) प. अनु०—मुरारि गुप्त के माध्यम से भगवान् सबको यही शिक्षा प्रदान करते हैं कि, "मेरा विग्रह, मेरे सेवक, मेरी लीला, मेरा धाम–ये सब सत्य हैं। अपने तत्त्व को प्रभु अपने आप सिखा रहे हैं। जो इसे नहीं मानता, वह अपना विनाश स्वयं कर रहा है। एक क्षण में बाहरी चेतनता प्राप्त होने पर प्रभु विश्वम्भर फिर से अकिंचन श्रेष्ठ की भाँति व्यवहार करने लगे।

(४६) गौः भाः—मुरारि गुप्त को लक्ष्य करके भगवान् ने जिस शिक्षादान–लीला का अभिनय किया है, उसे ग्रहण करने का सौभाग्य जिसमें नहीं है, वह कभी भी अपने आपकी रक्षा नहीं कर सकता है।

(४७) गौः भाः—जब श्रीमन्महाप्रभु ने प्रापंचिक संस्थानों के प्रति दृष्टिपात किया, तब उन्होंने प्रपंच के सभी ऐश्वर्य, महत्त्व आदि का परिहार करके तृणादपि सुनीच, तरु की भाँति सह्यगुण सम्पन्न एवं स्वयं अमानीध र्म को प्रदर्शित करते हुये सभी को सम्मान प्रदान किया–सेव्य विग्रह के विचार–समूह का परित्याग करके उन्होंने सेवक के लिए जरूरी सही विचारों में अपने आपको प्रतिष्ठित किया।

बाह्यज्ञान मिलने पर प्रभु–द्वारा 'तृणादपि' श्लोक का यथार्थ आचरण एवं मुरारि का आलिंगन करते हुये उनके प्रति उक्ति–

'भाइ' बलि' मुरारिरे कैला आलिंगन।
बड़ स्नेह करि' बले सदय वचन॥४८॥
''सत्य तुमि मुरारि आमार शुद्ध दास।
तुमि से जानिला नित्यानन्देर प्रकाश॥४९॥

(४८–४९) प. अनु०—'भाई' कहकर प्रभु ने मुरारि को गले लगाया और बड़ा स्नेह करते हुये दयायुक्त वचन कहने लगे,–"मुरारि, तुम सचमुच मेरे शुद्ध दास हो। तुमने नित्यानन्द के प्रकाश को जाना है।

जगद्गुरु नित्यानन्द से द्वेष करने वाले व्यक्ति, प्रभु की कृपा पाने में अयोग्य–

नित्यानन्दे याहार तिलेक द्वेष रहे।
दास हइलेओ सेइ मोर प्रिय नहे॥''५०॥

(५०) प. अनु०–नित्यानन्द के प्रति जिसका तिलमात्र भी द्वेष रहेगा, वह मेरा दास होने पर भी मेरा प्रिय नहीं होगा।"

(५०) गौः भाः—जगद्गुरु श्रीनित्यानन्द के चरणकमलों में गौरवबुद्धि का परित्याग करके जो व्यक्ति समबुद्धि–पूर्वक सेवा–वैषम्य में अवस्थित हैं, मानों उनकी सभी विचार–क्षमता लुप्त हो चुकी है।

नित्यानन्द–प्रीति–हेतु मुरारि को प्रभु–कृपा की प्राप्ति एवं मुरारि के स्वरूप का परिचय–

घरे याह गुप्त, तुमि आमारे किनिला।
नित्यानन्द–तत्त्व गुप्त तुमि से जानिला॥५१॥
हेनमते मुरारि प्रभुर कृपा–पात्र।

ए कृपार पात्र सबे हनुमान–मात्र ॥५२॥

(५१–५२) प. अनु०—घर जाओ गुप्त, तुमने मुझे खरीद लिया है। हे गुप्त! तुमने नित्यानन्द–तत्त्व को भी जान लिया है। प्रभु के जैसे कृपापात्र मुरारि थे; वैसे ही हनुमान भी प्रभु के कृपापात्र थे।

(५१) गौः भाः—विदा देने के समय श्रीमहाप्रभु ने मुरारि से कहा,–"श्रीनित्यानन्द–तत्त्व के बारे में तुमने अच्छी तरह से जानकारी प्राप्त कर ली है। स्वयंरूप भगवान् ने अपने प्रकाशरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रति मुरारि गुप्त के दृढ़ प्रणय को देखकर उन्हें (श्रीमुरारि गुप्त को) हनुमत्–स्वरूप कहकर पहचाना। मुरारि गुप्त को दास्य रस में विशेष अनुराग के साथ भजनशील देखकर श्रीगौरसुन्दर को उनका रामलीला वाला स्वरूप दृष्टिगोचर होने लगा। इस कारण मुरारि नित्यानन्द के प्रति प्रीति–युक्त होने के कारण महाप्रभु के कृपापात्र हो गये।

भावावेश में मुरारि का घर जाना एवं उनके हृदय में गौरनित्यानन्द का विश्राम–

आनन्दे मुरारि गुप्त घरेमे चलिला।
नित्यानन्द संगे प्रभु हृदये रहिला ॥५३॥
अन्तरे विह्वल गुप्त चले निज वासे।
एक बले, आर करे, खलखली हासे ॥५४॥
परम उल्लासे बले 'करिब भोजन'।
पतिव्रता अन्न आनि' कैल उपसन्न ॥५५॥

(५३–५५) प. अनु०—गौर–नित्यानन्द को हृदय में धारण करते हुये मुरारि गुप्त ने आनन्द–पूर्वक घर के लिए प्रस्थान किया। अन्तर में विह्वल गुप्त अपने घर को चल पड़े। वे कहते हैं कुछ, तथा करते हैं कुछ और, और खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। परम उल्लास के साथ गुप्त ने कहा, 'मैं भोजन करूँगा'। यह सुनकर उनकी पतिव्रता पत्नी ने भोजन सामग्री लाकर उनके सामग्री लाकर उनके सामने रख दी।

(५३) गौः भाः–महाप्रभु से कृपा प्राप्त करने के पश्चात् मुरारि गुप्त अपने घर चले आये। गौरनित्यानन्द उनके हृदय में विराजमान हो गये। "भक्तेर हृदये कृष्णेर सतत विश्राम"–इस वाक्य की सार्थकता यहाँ स्पष्टरूप से प्रकाशित हुई है।

मुरारी का पत्नी से अन्न–प्रार्थना एवं अन्न का भूमि पर निक्षेपण करते–करते गुप्त–द्वारा उसे कृष्ण के लिए अर्पण–

विह्वल मुरारि गुप्त चैतन्येर रसे।
'खाओ खाओ' बलि' अन्न फेले ग्रासे ग्रासे ॥५६॥
घृत माखि' अन्न सब पृथिवीते फेले।
'खाओ खाओ खाओ कृष्ण' एइ बोल बले ॥५७॥

(५६–५७) प. अनु०—चैतन्य–रस में विह्वल मुरारि गुप्त 'खाओ! खाओ'!! कहते हुये प्रत्येक ग्रास को फेंकने लगे। घी मे लिप्त सारा अन्न उन्होंने पृथ्वी पर डाल दिया और 'खाओ खाओ कृष्ण खाओ!' बस यही कहते रहे।

मुरारि का व्यवहार देखकर उनकी पत्नी का हँसना, और मुरारि को सावधान करना–

हासे पतिव्रता देखि' गुप्तेर व्याभार।
पुनः पुनः अन्न आनि' देय बारे बार ॥५८॥
'महाभागवत गुप्त' पतिव्रता जाने।
'कृष्ण' बलि' गुप्तेरे कराय सावधाने ॥५९॥

(५८–५९) प. अनु०—गुप्त का व्यवहार देखकर पतिव्रता हँस रही थीं और बारम्बार अन्न ला–लाकर उन्हें दे रही थीं। पतिव्रता

जानती थीं कि 'गुप्त महाभागवत' हैं। उन्होंने 'कृष्ण' नाम उच्चारण करके गुप्त को सावधान कर दिया।

भक्तप्रदत्त अन्न का महाप्रभु के द्वारा आग्रह–सहित भोजन–

मुरारि दिले से प्रभु करये भोजन।
कभु ना लंघये प्रभु गुप्तेर वचन॥६०॥
यत अन्न देय गुप्त, ताइ प्रभु खाय।
विहाने आसिया प्रभु गुप्तेरे जागाय॥६१॥

(६०–६१) प. अनु०—मुरारि का दिया हुआ अन्न प्रभु भोजन करते हैं। गुप्त के वचनों का उल्लंघन प्रभु कभी नहीं करते हैं। गुप्त के वचनों का उल्लंघन प्रभु कभी नहीं करते हैं। गुप्त ने जितना भी अन्न दिया, प्रभु ने उसे ग्रहण कर लिया। अगले दिन प्रभातकाल में आकर प्रभु ने गुप्त को जगाया।

(५४–६१) गौः भाः—अपने घर जाकर गुप्त ने पत्नी के द्वारा पकाये गये अन्न की मुट्ठी भर–भर कर घर के चारों ओर फेंकते हुये उसे कृष्ण को निवेदित किया। इस प्रकार प्रचुर परिमाण में अन्न निवेदित हुआ। मुरारि का दिया हुआ अन्न महाप्रभु अस्वीकार नहीं कर सके। यदि आग्रहपूर्वक भक्त सेवा करें, तो भगवान् भी उस सेवा को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाते हैं।

अपच को दूर करने के लिए महाप्रभु का मुरारि के घर में आगमन एवं आसन–ग्रहण–

बसिया आछेन गुप्त कृष्णनामानन्दे।
हेनकाले प्रभु आइला, देखि' गुप्त वन्दे'॥६२॥
परम आदरे गुप्त दिलेन आसन।
बसिलेन जगन्नाथ–मिश्रेर नन्दन॥६३॥

(६२–६३) प. अनु०—कृष्णनाम के आनन्द में मुरारि गुप्त बैठे हुये थे। उसी समय प्रभु वहाँ आ पहुँचे। प्रभु को देखकर गुप्त ने वन्दना की और परम आदरपूर्वक गुप्त ने प्रभु को आसन प्रदान किया। जगन्नाथ मिश्र ने नन्दन प्रभु गौरसुन्दर उस आसन पर विराजमान हो गये।

गुप्त के द्वारा अजीर्ण होने के कारण की जिज्ञासा एवं प्रभु–द्वारा उत्तर–प्रदान–

गुप्त बले,–''प्रभु केने हइल आगमन?''
प्रभु बले,–''आइलाम चिकित्सा–कारण॥''६४॥
गुप्त बले,–''कहिबे कि अजीर्ण–कारण?
कोन् कोन द्रव्य कालि करिला भोजन?''६५॥
प्रभु बले,–''आरे बेटा जानिवि केमने?
'खाओ खाओ' बलि' अन्न फेलिलि यखने॥६६॥
तुइ पासरिलि' तोर पत्नी सब ताने।
तुइ दिलि, मुञि वा ना खाइब केमने?६७॥
कि लागि' चिकित्सा कर अन्य वा पाँचन।
अजीर्ण मोहार तोर अन्नेर कारण॥६८॥

(६४–६८) प. अनु०—गुप्त ने कहा,–"प्रभु! आपका आगमन किस कारण से हुआ है?" प्रभु ने कहा,–"मैं चिकित्सा कराने के लिए आया हूँ।" फिर गुप्त ने पूछा–"अजीर्ण का कारण बतायेंगे? आपने कल किन–किन पदार्थों का भोजन किया था?" प्रभु ने कहा,–"अरे वत्स, तुम कैसे जान पाओगे? 'खाओ! खाओ!!' कहकर तुमने ही तो अन्न फेंका था। तुम तो भूल गये, परन्तु तुम्हारी पत्नी को सब कुछ याद है। तुमने जो अन्न प्रदान किया, उसे बिना खाये मैं कैसे रह पाता? गुप्त ने कहा, मैं किस रोग की चिकित्सा करूँ? तुम्हारे अन्न के कारण मुझे अजीर्ण का रोग हुआ है।

(६१–६५) गौः भाः—अति प्रभातकाल में

अजीर्ण की बीमारी को दूर करने के लिए श्रीगौरसुन्दर जब मुरारि के घर में उपस्थित हुये, तब मुरारि ने स्पष्ट रूप से अपज (अजीर्ण) होने का कारण पूछा।

जल पीने से अजीर्ण का विनाश–

जल–पाने अजीर्ण करिते नारे बल।
तोर अन्ने अजीर्ण, औषध–तोर जल॥''६९॥

(६९) प. अनु०—जल पीने से अजीर्ण का जोर कम हो जाता है। अजीर्ण का कारण है तुम्हारा अन्न; इसलिए अजीर्ण को दूर करने के लिए तुम्हारा ही जल चाहिए।"

प्रभु के द्वारा मुरारि के जलपात्र से जल पीना, इससे मुरारि का अचेत हो जाना एवं उनकी गोष्ठी का क्रन्दन–

एत बलि' धरि' मुरारिर जलपात्र।
जल पिये' प्रभु भक्तिरसे पूर्णमात्र॥७०॥
कृपा देखि' मुरारि हइला अचेतन।
महा–प्रेमे गुप्तगोष्ठी करये क्रन्दन॥७१॥
हेन प्रभु, हेन भक्तियोग, हेन दास।
चैतन्य–प्रसादे हइल भक्तिर प्रकाश॥७२॥

(७०–७२) प. अनु०—इतना कहकर भक्तिरस से परिपूर्ण प्रभु ने मुरारि के जलपात्र से जल पिया। इस कृपा को देखकर मुरारि अचेत हो गये और गुप्त का परिवार महाप्रेम से क्रन्दन करने लगा। ऐसे प्रभु, ऐसा भक्तियोग, ऐसे दास–इन सबको लेकर चैतन्य की कृपा से भक्ति का प्रकाश हुआ।

(७१) गौः भाः—मुरारि गुप्त के रिश्तेदारों ने जब देखा कि, श्रीमहाप्रभु जल पी रहे हैं, तब वे सब प्रेम से क्रन्दन करने लगे।

(७३) प. अनु०—मुरारि गुप्त के दासों ने जिस कृपा को प्राप्त किया, उसे नदीया के भट्टाचार्य नहीं देख पाये।

नदीया के आध्यक्षिक पण्डितों की अपेक्षा मुरारि के भृत्यों का अधिक सौभाग्य–

मुरारि गुप्तेर दासे ये प्रसाद पाइल।
सेइ नदीयाय भट्टाचार्य ना देखिल॥७३॥

(७३) गौः भाः—श्रीमुरारि के घर के भृत्यों ने प्रभु के जिस अनुग्रह को प्राप्त किया, उसे पाने का सौभाग्य नवद्वीप के ब्राह्मण—पण्डितों को भी प्राप्त नहीं हुआ। गुप्त के घर के दासों को जिस कृपा की प्राप्ति हुई, उसे देखने का सौभाग्य भी योग्यता के अभिमानी व्यक्तियों को नहीं मिला।

विद्या–धन–प्रतिष्ठा से भगवत् कृपा प्राप्ति में अयोग्यता, केवल भक्त की कृपा से भगवत्–कृपा की प्राप्ति–

विद्या–धन–प्रतिष्ठाय किछुइ ना करे।
वैष्णवेर प्रसादे से भक्तिफल धरे॥७४॥
ये–से केने नहे वैष्णवेर दासी–दास।
'सर्वोत्तम सेइ'–एइ वेदेर प्रकाश॥७५॥
एइ मत मुरारिरे प्रति–दिने–दिने।
कृपा करे महाप्रभु आपना–आपने॥७६॥
शुन–शुन मुरारिर अद्‌भुत आख्यान।
शुनिले मुरारि–कथा पाइ भक्तिदान॥७७॥

(७४–७७) प. अनु.—विद्या–धन और प्रतिष्ठा से कुछ भी नहीं होता है। केवल वैष्णवों की कृपा से ही भक्ति मिल सकती है। चाहे जैसे भी हो, वैष्णवों के दास–दासीगण सर्वोत्तम हैं, वेद की ऐसी ही घोषणा है। इस प्रकार से प्रतिदिन महाप्रभु अपने आप मुरारि पर कृपा करते रहे। सुनिए, सुनिए, मुरारि के इस अद्‌भुत आख्यान को सुनिए। मुरारि की कथा सुनने से भक्ति की प्राप्ति होती है।

(७४) गौः भाः–मानव विद्या–धन–जाति के अंहकार एवं प्रतिष्ठा आदि से जिस प्रभु–कृपा को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, उस कृपा को मुरारि गुप्त जैसे भक्त के घर के किंकरों ने वैष्णवों के अनुग्रह से प्राप्त किया था।

(७५) गौः भाः—वैष्णवघर के दास–दासीगण चाहे कितने ही बड़े अथवा छोटे क्यों न हों, वेदों का तात्पर्य जिन्हें अवगत हुआ है, वे भली–भाँति जानते हैं कि, वे वैष्णवों के दास–दासीगण जगत् में सबसे उत्तम हैं।

श्रीवास के घर में प्रभु–द्वारा चतुर्भुज मूर्त्ति धारण एवं गरुड़ का आह्वान–

एकदिन महाप्रभु श्रीवास–मन्दिरे।
हुँकार करिया प्रभु निज मूर्त्ति धरे॥७८॥
शंख, चक्र, गदा, पद्म शोभे चारि कर।
'गरुड़' 'गरुड़' बलि डाके विश्वम्भर॥७९॥

(७८–७९) प. अनु.—एकदिन महाप्रभु ने श्रीवास के घर में हुँकार करते हुये अपने स्वरूप को धारण किया। शंख, चक्र, गदा और पद्म विश्वम्भर के चारों हाथों में विराजमान थे और वे 'गरुड़' 'गरुड़' कहकर पुकार रहे थे।

श्रीवास के मन्दिर में मुरारि का आगमन एवं उनकी देह में गरुड़–भाव–

हेनह समये गुप्त आविष्ट हइया।
श्रीवास–मन्दिरे आइला हुँकार करिया॥८०॥

(८०) प. अनु०—उसी समय आविष्ट चित्त वाले मुरारि गुप्त हुँकार करते हुये श्रीवास के मन्दिर (घर) में आ पहुँचे।

प्रभु–द्वारा गरुड़ का आह्वान करने से मुरारि में गरुड़ोचित कैंकर्य का उदय–

गुप्त–देहे हैल महा–वैनतेय भाव।
गुप्त बले'–''मुञि सेइ गरुड़ महा–भाव॥''८१॥
गरुड़ गरुड़ बलि' डाके विश्वम्भर।
गुप्त बले,–''एइ मुञि तोमार किंकर॥''८२॥

(८१–८२) प. अनु०—गुप्त की देह में महान् वैनतेय–भाव (गरुड़–भाव) उदित हुआ था। गुप्त ने कहा,–"वह महाभाव गरुड़ मैं ही हूँ। फिर भी 'गरुड़ गरुड़' कहकर विश्वम्भर पुकारते रहे। गुप्त ने कहा,–"आपका वह किंकर मैं ही हूँ।

(७८–८१) गौः भाः—श्रीवास के आँगन में महाप्रभु ने अपनी नारायण–मूर्त्ति का प्रकाश करते हुये गरुड़ का आह्वान किया तो उस आह्वान–मात्र से मुरारि वहाँ उपस्थित होकर गरुड़ के भाव से विभावित हो गये एवं अपने आपको गरुड़ समझने लगे। प्रभु–द्वारा गरुड़ का आह्वान किये जाने पर मुरारि में गरुड़ोचित कैंकर्य का उदय हुआ।

प्रभु–द्वारा मुरारि को वाहन के रूप में अंगीकार करना एवं मुरारि का अनुमोदन–

प्रभु बले,–''बेटा तुइ आमार वाहन।''
'हय हय' हेन गुप्त बलये वचन॥८३॥

(८३) प. अनु०—प्रभु बोले,–"वत्स, तुम मेरे वाहन हो।" गुप्त ने कहा,–"आपने सही कहा।"

(८३) गौः भाः—प्रभु ने गुप्त को अपने वाहन के रूप में अंगीकार किया तो मुरारि ने उनके वचन का अनुमोदन किया।

कृष्णलीला में गुप्त का प्रभु–कैंकर्य–

गुप्त बले,–''पासरिला तोमारे लइया।
स्वर्ग हइते पारिजात आनिलुँ बहिया॥८४॥
पासरिला तोमा' लइया गेलुँ वाणपुरे।
खंड खंड कैलुँ मुञि स्कन्धेर मयूरे॥८५॥

एइ मोर स्कन्दे प्रभु आरोहण कर।
आज्ञा कर, निव कोन् ब्रह्माण्ड–भितर?''८६॥

(८४–८६) प. अनु०–गुप्त ने कहा,–"आप भूल गये हैं प्रभु, आपको कन्धों पर बिठाकर मैं स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाया था। आप यह भी भूल चुके हैं कि, मैं आपको लेकर बाणपुर (बाणराजा की पुरी) गया था। वहाँ कार्तिकेय के मोर को मैंने खंड–खंड किया था। हे प्रभु! आप मेरे कन्धों पर आरोहण कीजिए और आज्ञा दीजिए कि कौन–से ब्रह्माण डके भीतर आपको ले जाऊँ?"

(८४) गौः भाः—तथ्य–भाः १०/५९ अध्याय द्रष्टव्य है।

(८५) गौः भाः–तथ्य—भाः १०/६२–६३ अध्याय द्रष्टव्य है।

गुप्त के कन्धों पर प्रभु का आरोहण
एवं सभी के द्वारा जयध्वनि–

गुप्त–स्कन्दे चड़ैं प्रभु मिश्रेर नन्दन।
'जय जय'–ध्वनि हैल श्रीवास–भवन॥८७॥
स्कन्दे कमलार नाथ, गुप्तेर नन्दन।
रड़ दिया पाक फिरे सकल–अंगन॥८८॥
जय–हुलाहुलि देय पतिव्रतागण।
महाप्रेमे भक्त–सब करये क्रन्दन॥८९॥
केह बले–'जय जय', केह बले–'हरि'।
केह बले–''येन एइ रूप ना पासरि॥''९०॥
केह मालसाट् मारे परम–उल्लासे।
'भालरे ठाकुर' बलि' केह केह हासे॥९१॥
''जय जय मुरारि–वाहन विश्वम्भर।''
बाहु तुलि' केह डाके करि' उच्चैः स्वर॥९२॥

(८७–९२) प. अनु.—जगन्नाथ मिश्र के नन्दन प्रभु विश्वम्भर गुप्त के कन्धों पर चढ़ गये। यह देखकर श्रीवास के भवन में उपस्थित सभी 'जय जय'–ध्वनि करने लगे। कन्धों पर कमलापति को बिठाकर मुरारि गुप्त दौड़ते हुये सारे आँगन में इधर–उधर घूमने लगे। पतिव्रताएँ जय–स्वरूप ऊलुध्वनि करने लगीं और सभी भक्त महाप्रेम से क्रन्दन करने लगे। कोई कहता 'जय जय', तो कोई कहता 'हरि हरि'। कोई कहता,–"ऐसा हो जाए कि, प्रभु के इस रूप को कभी भुला न पाऊँ।" कोई परम उल्लास के साथ मालसाट् (आनन्द में विभोर होकर शरीर में थप्पी मारना) मारने लगा तो कोई–कोई 'वाह रे मेरे ठाकुर' ऐसा कहकर हँसने लगे। कोई–कोई बाहुओं को ऊपर उठाकर ऊँचे स्वर से कहते हैं,–"मुरारिवाहन विश्वम्भर की जय हो, जय हो।

प्रभु को कन्धों पर बिठाकर मुरारि
का घर में भ्रमण–

मुरारिर स्कन्धे दोले गौरांगसुन्दर।
उल्लासे भ्रमये गुप्त बाड़ीर भितर॥९३॥

(९३) प. अनु०—मुरारि के कन्धों पर चढ़कर गौरांगसुन्दर डोल रहे थे। उल्लास के साथ गुप्त घर के भीतर भ्रमण कर रहे थे।

भाग्यहीनों का गौरलीला में अविश्वास–

सेइ नवद्वीपे हय ए सब प्रकाश।
दुष्कृति ना देखे गौरचन्देर विलास॥९४॥

(९४) प. अनु०—उसी नवद्वीप में इन सब लीलाओं का प्रकाश हो रहा था; परन्तु दुष्कृतियों (अभागों) को गौरचन्द्र का वह विलास देखने को मिला।

भक्ति के वश में हैं भगवान्–

धन, कुल, प्रतिष्ठाय कृष्ण नाहि पाइ।
केवल भक्तिर वश चैतन्य–गोसाञि॥९५॥,
जन्मे जन्मे ये–सब करिल आराधन।

सुखे देखे एबे ता'र दास–दासीगण ॥९६ ॥

(९५–९६) प. अनु.—धन, कुल, प्रतिष्ठा आदि से कृष्ण की प्राप्ति नहीं होती है। चैतन्य गोसाईं तो केवल भक्ति के ही वश में हैं। जन्म–जन्म में जिन सबने उनकी आराधना की थी, उनके दास–दासीगण तक अब आनन्दपूर्वक प्रभु के दर्शन कर रहे हैं।

(९५) गौः भाः—धन के द्वारा, आभिजात्य (कुलीनों के से लक्षण तथा गुण) के द्वारा, विभिन्न प्रकार की प्रतिष्ठा के संग्रह–द्वारा कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता है, केवलमात्र सेवा–द्वारा ही कृष्ण भक्तों के वश में हो जाते हैं। भाग्यहीनजन श्रीगौरसुन्दर के लीलाविलास का दर्शन नहीं कर सकते।

भगवान् की लीला का दर्शन करने वालों के द्वारा दुष्कृतियों के निकट उनकी लीला–दर्शन की कथा का वर्णन करने पर भी इसमें उनका अविश्वास–

ये वा देखिलेक, से वा कृपा करि' कय।
तथापिह दुष्कृतिर चित्त नाहि लय ॥९७ ॥
मध्यखण्डे गुप्त–स्कन्धे प्रभुर उत्थान।
सब अवतारे गुप्त–सेवक–प्रधान ॥९८ ॥
ए' सब लीलार कभु अवधि न हय।
'आविर्भाव–तिरोभाव'–एइ वेदे कय ॥९९ ॥

(९७–९९) प. अनु.—जिसने इन लीलाओं का दर्शन किया है, वे यदि कृपापूर्वक इनका वर्णन करते हैं, तो भी दुष्कृतियों (भाग्यहीन जनों) के हृदय उन्हें ग्रहण नहीं करते। गुप्त के कन्धों पर प्रभु का उत्थान मध्यखण्ड में वर्णित हुआ है। प्रभु के सभी अवतारों में गुप्त प्रधान सेवक हैं। इन सब लीलाओं का कभी अन्त नहीं होता है। वेद आविर्भाव, तिरोभाव के रूप में इनका वर्णन करते हैं।

(९७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर की लीलाओं का जिन–लोगों ने प्रत्यक्षरूप से दर्शन किया है, उनके द्वारा अनुग्रह–पूर्वक इनका वर्णन करने पर भी भाग्यहीन जन इनमें विश्वास स्थापित करने में समर्थ नहीं होते हैं। भाग्यहीनता ही लीलादर्शन में बाधक है।

बाहरी चेतनता मिलने पर मुरारि के कन्धों से महाप्रभु का अवतरण–

बाह्य पाइ' नाम्बिला गौरांग महाधीर।
गुप्तेर गरुड़–भाव हइल सुस्थिर ॥१०० ॥

(१००) प. अनु.—बाह्य चेतना प्राप्त होने पर महाधीर गौरांग नीचे उतर आये और गरुड़ के भाव में स्थित गुप्त भी सुस्थिर हो गये।

प्रभु का गुप्त के कन्धों पर आरोहण– एक निगूढ़ लीला–

ए' बड़ निगूढ़ कथा केह नाहि जाने।
गुप्त–स्कन्धे महाप्रभु कैला आरोहणे ॥१०१ ॥

(१०१) प. अनु०—गुप्त के कन्धों पर महाप्रभु के आरोहण की यह लीला–कथा अत्यन्त निगूढ़ है। इसे कोई सहज ही नहीं जान पाता है।

मुरारि के प्रति प्रभु की कृपा का दर्शन करके भक्तों के द्वारा उसकी प्रशंसा–

मुरारिरे कृपा देखि' वैष्णव–मण्डल।
'धन्य धन्य धन्य' बलि' प्रशंसे' सकल ॥१०२ ॥
धन्य भक्त मुरारि , सफल विष्णुभक्ति।
विश्वम्भर–लीलार वहने या'र शक्ति ॥१०३ ॥

(१०२–१०३) प. अनु.—मुरारि के प्रति इस कृपा को देखकर वैष्णव–मण्डली 'धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो' ऐसा कह–कहकर प्रशंसा करने लगी। लीला में विश्वम्भर को

वहन करने की शक्ति जिनमें है, उन मुरारि भक्त का जीवन धन्य है, उनकी विष्णुभक्ति सफल है।

मुरारि का आख्यान-अनन्त-

एइ मत मुरारि-गुप्तेर पुण्य कथा।
आर कत आछे, ये कैला यथा यथा॥१०४॥

(१०४) प. अनु०-इस प्रकार से मुरारि गुप्त की पुण्य कथाएँ अनन्त हैं। जहाँ-जहाँ पर उन्होंने जो-जो लीलाएँ की हैं, वे असंख्य हैं।

मुरारि के द्वारा भगवद् अवतार-कथा की आलोचना एवं भगवान् के प्रकटकाल में आत्मसंहार करने की इच्छा से अस्त्र-संग्रह-

एकदिन मुरारि परम-शुद्ध-मति।
निज मने मने गणे अवतार-स्थिति॥१०५॥
''संगोपागें आछये यावत् अवतार।
तावत् चिन्तिये आमि निज-प्रतिकार॥१०६॥
ना बुझि कृष्णेर लीला, कखन कि करे।
तखनि सृजिया लीला, तखनि संहारे॥१०७॥
ये सीता लागिया मरे सवंशे रावणे।
आनिया छाड़िला सीता केमन कारण?१०८॥
ये यादवगण निज-प्राणेर समान।
साक्षाते देखये-ता'रा हाराय पराण॥१०९॥
अतएव यावत् आछये अवतार।
तावत् आमार देह-त्याग प्रतिकार॥११०॥
देह एड़िवार मोर एइ से समय।
पृथिवीते यावत् आछये महाशय''॥१११॥
एतेक निर्वेद गुप्त चिन्ति' मने मने।
खरसान काति एक आनिल यतने॥११२॥
आनिया थुइल काति गृहेर भितरे।
''निशाय एड़िव देह हरिष अन्तरे॥''११३॥

(१०५-११३) प. अनु०—परम शुद्धमति मुरारि एकदिन मन-ही-मन अवतारों की स्थितियों के बारे में चिन्तन कर रहे थे। "जब तक सांगोपांग के साथ यह अवतार विद्यमान है, तब तक मुझे अपने लिए उपाय सोच लेना चाहिए। कृष्ण की लीला समझ में नहीं आती, न जाने कब क्या कर बैठें। एक ओर लीला-सृजन करते हैं, दूसरी ओर उसका तत्काल संहार कर देते हैं। जिस सीता के लिए रावण अपने कुल-सहित मारा गया, उसी सीता को लाकर भी उन्होंने उसे त्याग क्यों दिया? जो यादवगण उनके प्राण-समान थे, उनको भगवान् ने अपनी आँखों के सामने मरते हुये देखा था। अतएव, जब तक यह अवतार विद्यमान है, उस काल में ही मुझे शरीर त्याग देना चाहिए। जब तक ये महानुभाव पृथ्वी पर विराजमान हैं, उनके पूर्व ही अपने शरीर को छोड़ने का उचित समय है।" निर्वेद प्राप्त गुप्त इस प्रकार से मन-ही-मन सोच करके यत्न-पूर्वक एक शानित (धारदार) अस्त्र ले आये। अस्त्र लाकर गुप्त ने उसे घर में रख दिया और मन-ही-मन सोचने लगे कि, "रात को आनन्द के साथ शरीर छोड़ देंगे।"

(१०५-११२) गौः भाः—एकदिन मुरारि गुप्त ने भगवान् के अवतार-समूह के बारे में चिंतन किया, और देखा कि, भगवान् के अवतार समूह किसी भी लीला को प्रकट करके फिर उसका संगोपन कर लेते हैं, रावण के वंश का ध्वंस करके सीता का उद्धार करने के बाद फिर सीता को त्याग दिया और प्राणप्रिय यदुकुल को ध्वंस करने की व्यवस्था की; इसलिए भगवान् के प्रकटकाल में ही आत्मसंहार करने की इच्छा से उन्होंने सान (एक प्रकार का पत्थर) पर तेज धार किये हुये एक हथियार को आत्मविनाश के लिए संग्रह करके रख लिया।

सर्वभूतान्तर्यामी प्रभु–द्वारा मुरारि की चित्तवृत्ति को समझकर उसका प्रतिकार करने के लिए मुरारि के घर में गमन एवं अस्त्र को त्याग देने के लिए मुरारि से अनुरोध–

सर्वभूत–हृदय–ठाकुर विश्वम्भर।
मुरारिर चित्तवृत्ति हइल गोचर॥११४॥
सत्वरे आइला प्रभु मुरारि–भवन।
सम्भ्रमे करिल गुप्त चरण–वन्दन॥११५॥
आसने बसिया प्रभु कृष्णकथा कय।
मुरारि गुप्तेरे हइ' परम सदय॥११६॥
प्रभु बले,–''गुप्त, वाक्य राखिबा आमार।''
गुप्त बले,''प्रभु, मोर शरीर तोमार॥''११७॥
प्रभु बले,–''ए–त सत्य?'' गुप्त बले,–''हय''।
''कातिखानि देह मोरे'' प्रभु काणे कय॥११८॥
''ये काति थुइला देह छाड़िबार तरे।
ताहा आनि' देह'–आछे घरेर भितरे॥''११९॥
''आस हाय' करे गुप्त महा–दुःख–मने।
''मिथ्याकथा कहिल तोमारे कोन् जने?''१२०॥
प्रभु बले,–''मुरारि, बड़ त' देखि भोल।
'परे कहिले से आमि जानि'–हेन बोल?१२१॥
ये गाड़िया दिल काति ताहा जानि आमि।
ताहा जानि, यथा काति थुइयाछ तुमि॥''१२२॥
सर्व–अन्तर्यामी प्रभु जाने सर्व–स्थान।
घरे गिया काटारि अनिल विद्यमान॥१२३॥
प्रभु बले,–''गुप्त, एइ तोमार व्यवहार।
कोन् दोषे आमा छाड़ि' चाह याइवार?१२४॥
तुमि गेले काहारे लइया मोर खेला?
हेन बुद्धि तुमि का'र स्थाने वा शिखिला?१२५॥
एखनि मुरारि मोरे देह' एइ भिक्षा।
आर कभु हेन बुद्धि ना करिबा शिक्षा॥१२६॥

(११४–१२६) प. अनु०—ठाकुर विश्वम्भर सब प्राणियों के हृदयों में वास करते हैं। इस कारण मुरारि ने जो सोचा था, उसे ठाकुर जान गये। प्रभु शीघ्र मुरारि के घर आये। उनको देखकर मुरारि ने संभ्रम–सहित उनके चरणों की वन्दना की। मुरारि के प्रति परम दयावान् प्रभु आसन पर विराजमान होकर कृष्णकथा कहने लगे। प्रभु ने कहा,–"गुप्त, मेरी बात मानना।" गुप्त बोले,–"प्रभु! मेरा यह शरीर आपका है।" प्रभु ने पूछा,–"यह सत्य है?" गुप्त ने उत्तर दिया,–"बिलकुल सत्य है।" यह सुनकर प्रभु ने उनके कान में कहा "वह काती (छुरी) मुझे दे दो।" "शरीर का त्याग करने के लिए जिस काती को तुमने घर में छिपाकर रखा है, उसे लाकर मुझे दे दो।" मन में बड़े दुःखी होते हुये गुप्त 'हाय हाय' करने लगे। उन्होंने कहा–"यह मिथ्या बात आपको किसने बता दी?" प्रभु ने कहा,–"मुरारि, तुम तो बड़े भोले मालूम होते हो। 'मुझे दूसरों से जानकारी लेनी पड़ती है'–ऐसा कह रहे हो? मैं जानता हूँ कि किसने काती बनाई है। मैं यह भी जानता हूँ कि काती को तुमने कहाँ छुपा रखा है।" सभी के अन्तर्यामी प्रभु, वे सब कुछ जानते हैं। प्रभु घर के भीतर गये और तेज कटार को ले आये। प्रभु ने कहा,–"गुप्त! तुम्हारा यही व्यवहार है! मेरा क्या दोष है, जो मुझे छोड़कर तुम जाना चाहते हो? तुम चले गये तो मेरी क्रीड़ा किसके साथ सम्पन्न होगी? किस से तुमने ऐसी बुद्धि सीखी है? तुम अभी मुरारि मुझे यह भिक्षा दो कि, आगे कभी भी ऐसी शिक्षा ग्रहण नहीं करोगे।

(११६–११८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने मुरारि के साथ कृष्ण–कथा कहते–कहते कृपापूर्वक कहा,– 'मुरारि, मेरे वाक्य का पालन करो'। इसके उत्तर में मुरारि ने कहा,–'यह शरीर आपका है।' तब प्रभु ने उनके कान में कहा,–"यदि तुमने यह बात सत्य कही है;

तो तेज धार की हुई कटारी को, जिसे तुमने घर में छिपा रखा है, उसे लाकर मुझे दे दो।

प्रभु के द्वारा मुरारि को गोद में लेकर देह-त्याग निषेध-

कोले करि' मुरारिरे प्रभु विश्वम्भर।
हस्त तुलि' दिल निज शिरेर उपर॥१२७॥
''मोर माथा खाओ गुप्त, मोर माथा खाओ।
यदि आर बार देह छाड़िबारे चाओ॥''१२८॥

(१२७-१२८) प. अनु.—मुरारि को गोद में लेते हुये प्रभु विश्वम्भर ने उनके हाथों को अपने सिर के ऊपर रखकर कहा,-"गुप्त मेरी शपथ है, मेरी शपथ, जो फिर कभी देह छोड़ने की इच्छा भी करो।"

भक्त और भगवान् के प्रेमाश्रु वर्जन-

आथे-व्यथे मुरारि पड़िला भूमि-तले।
पाखलिल प्रभुर चरण प्रेमजले॥१२९॥
सुकृति मुरारि कान्दे धरिया चरण।
गुप्त कोले करि' कान्दे श्रीशचीनन्दन॥१३०॥

(१२९-१३०) प. अनु०—व्यस्त होकर मुरारि भूमि पर गिर पड़े और प्रेमजल से प्रभु के चरणों का प्रक्षालन करने लगे। प्रभु के चरणों को पकड़कर सुकृतिवान् मुरारि क्रन्दन करने लगे। उधर प्रभु श्रीशचीनन्दन भी गुप्त को अपनी गोद में लेकर रोने लगे।

मुरारि के प्रति चैतन्यदेव ने जो कृपा की, उसे पाने के लिए अज, भव आदि भी प्रार्थना करते हैं-

ये प्रसाद मुरारि गुप्तेरे प्रभु करक।
ताहा वाञ्छे रमा, अज, अनन्त, शंकरे॥१३१॥

(१३१) प. अनु०—जैसी कृपा प्रभु ने मुरारि पर की, वैसी कृपा पाने की प्रार्थना रमा, ब्रह्मा, अनन्तदेव और शंकर भी करते रहते हैं।

सभी देवता चैतन्यदेव के अचिन्त्य भेदाभेद प्रकाश हैं-

ए' सब देवता-चैतन्येर भिन्न नहे।
इँहारा 'अभिन्न-कृष्ण'-वेदे एइ कहे॥१३२॥
सेइ गौरचन्द्र 'शेष'-रूपे महीधरे।
चतुर्मुख-रूपे सेइ प्रभु सृष्टि करे॥१३३॥
संहारेओ गौरचन्द्र त्रिलोचनरूपे।
आपनारे स्तुति करे आपनार मुखे॥१३४॥
भिन्न नाहि, भेद नाहि, ए' सकल-देवे।
ए' सकल-देव चैतन्येर पद सेवे॥१३५॥

(१३२-१३५) प. अनु०—ये सब देव-गण चैतन्य से अलग नहीं हैं। वेद कहते हैं, ये सब कृष्ण से अभिन्न हैं। वे गौरचन्द्र ही 'शेषदेव' के रूप में पृथ्वी को धारण करते हैं, वे प्रभु ही चतुर्मुख 'ब्रह्मा' के रूप में सृजन करते हैं। त्रिलोचन 'रुद्र' के रूप में वे गौरचन्द्रही संहार भी करते हैं, और अपने मुख से अपना स्तवन भी करते हैं। ये सब देवता चैतन्य से भिन्न नहीं हैं, चैतन्य के साथ उनका कोई भेद नहीं है। ये सब देवगण चैतन्य के चरणों की सेवा करते हैं।

(१३२) गौः भाः-श्रुतियों के परस्पर भेदतात्पर्य का मीमांसक वेदान्त-दर्शन कहता है,-सभी देवगण चैतन्य से अभिन्न हैं। अचिन्त्य-भेदाभेद ही वेदान्त का तात्पर्य है। सभी देवता एक ही तात्पर्यपरक होकर श्रीचैतन्यदेव की सेवा करते हैं। इसलिए वे सब अभिन्न हैं। 'सभी देवता भगवान् के सेवक नहीं हैं'-ऐसी प्रतीति ही भेद की ज्ञापना करती है। श्रीचैतन्य की सेवा को छोड़कर देवताओं का दूसरा कोई कार्य नहीं है। इसलिए वे

सभी श्रीचैतन्यदेव के अचिन्त्य भेदाभेद–प्रकाश स्वरूप हैं। अन्य देवता के सेवक जहाँ श्रीचैतन्य के विलास में देवगण का प्रतिकूल विचार करते हैं, वहीं तत्त्वविरोध दिखाई देता है, एवं वेदान्त के प्रतिपाद्य अभेद–विचार के साथ संघर्ष शुरू हो जाता है।

चैतन्य के नाम कीर्तन से अस्फुट–चेतन पक्षियों को भी चिन्मय धाम की प्राप्ति–

पक्षि–मात्र यदि लय चैतन्येर नाम।
से–ओ सत्य याइवेक चैतन्येर धाम॥१३६॥

(१३६) प. अनु०–यदि पक्षी भी चैतन्य का नाम लेता है, तो वह भी सचमुच ही चैतन्य के धाम को पहुँच जायेगा।

(१३६) गौः भाः—अस्फुट (सुप्त) चेतना वाला पक्षी भी यदि श्रीचैतन्य नाम का कीर्तन करता है, तो वह भी चिद्धर्म में रहकर परम मंगल को प्राप्त कर लेता है। वैकुण्ठ–नाम साधारण मायिक शब्द की भाँति भगवान् से अलग किसी अन्य वस्तु का वाचक नहीं है। इसलिए वह अपराध–रहित उच्चारित शब्द नामाभास–जातीय होने के कारण पक्षियों को भी अवश्य मुक्ति दिला देता है। मुक्त आत्माएँ भगवान् के चिन्मय धाम को प्राप्त करती हैं। वहाँ कोई मिश्र धर्म नहीं है।

चैतन्यविद्वेषी चतुर्थाश्रमी की भी सत्यवस्तु दर्शन करने में असमर्थता–

संन्यासीओ यदि नाहि माने गौरचन्द्र।
जानिह से दुष्टगण जन्म–जन्म अन्ध॥१३७॥

(१३७) प. अनु०—संन्यासी होकर भी जो व्यक्ति गौरचन्द्र को नहीं मानते हैं, तो यह जान लेना चाहिए कि, वे सब दुष्ट हैं और जन्म–जन्म में सत्य वस्तु के दर्शन में अन्धे हैं।

(१३७) गौः भाः—वर्णाश्रम धर्म के परम उन्नत शिखर पर तुरीय आश्रम (संन्यास आश्रम) अवस्थित है। ऐसे आश्रम में निवास करने वाले संन्यासी भी यदि गौरचन्द्र से विद्वेष करते हैं, तो जन्म–जन्म में वे अन्धे होकर सत्यवस्तु के दर्शन करने में वे अन्धे होकर सत्यवस्तु के दर्शन करने में असमर्थ रहते हैं। गौरविद्वेषी यतिगण दुराचारी हैं। कपटी दुष्ट दस्युगण ही तपस्वी का वेष धारण करके श्रीगौरसुन्दर की निन्दा करते हैं। इस कारण उन लोगों को साधुओं के वेष में देखकर उनके प्रति अधिक सम्मान प्रदर्शित करना उचित नहीं होगा। गौरनिन्दक संन्यासी–लुटेरे दस्युओं से भी अधिक घृणा के योग्य हैं।

लुटेरे के साथ निन्दक संन्यासी की तुलना–

येन तपस्वीर वेशे थाके वाटोयार।
एइ मत निन्दक–संन्यासी दुराचार॥१३८॥
निन्दक–संन्यासी वाटोयारे नाहि भेद।
दुइते निन्दक बड़–'द्रोही' कहे वेद॥१३९॥

(१३८–१३९) प. अनु०—जैसे बटमार तपस्वियों का वेष धारण कर लेते हैं; उसी प्रकार से निन्दक संन्यासी दुराचारी हैं। निन्दक सन्यासियों और बटमार (लुटेरा) में कोई अन्तर नहीं है। बल्कि दोनों में निन्दक बड़ा है। वेद उन्हें 'द्रोही' कहते हैं।

(१३९) गौः भाः—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास–इन चारों आश्रमों पर ब्राह्मणों का ही अधिकार है। क्षत्रियों का वानप्रस्थ तक अधिकार है। संन्यास दो प्रकार का होता है; नरोत्तम एवं धीर। वैदिकविधि–पालन–पूर्वक जो संन्यास ग्रहण किया जाता है, उसे त्रिदण्ड–ग्रहण कहते हैं; विधि के अतीत परमहंसआश्रम के आनुकूल्य में एकदण्ड– संन्यास की व्यवस्था

से ब्राह्मणावार शिथिल पड़ जाता है। शूद्राचार में वैदिक संस्कार नहीं है। शूद्राचार-सम्पन्न कोई व्यक्ति यदि तपस्वी के वेष में रहकर जीवन-निर्वाह करने की चेष्टा से विधि-पूर्वक दिये गये दान को लेने के लिए दौड़ता है, तो वह फिर से शूद्राचार में पर्यवसित हो जाता है। त्रिदण्ड जिन लोगों की उपजीविका है, उन लोगों को शास्त्र 'भण्ड' कहते हैं। वे सब उत्तम आसन प्राप्त करते हुये भी ध र्म का तात्पर्य न जानने के कारण अधर्म को 'धर्म' कहकर प्रचार करते हैं। मायावादी एकदण्डिगण शूद्राचार-सम्पन्न होने के कारण परमहंसधर्म से वंचित हो जाते हैं। उस काल में शूद्रों के लिए जिस प्रकार प्रतिग्रह निषिद्ध है, उसी प्रकार प्रतिग्रह की वासना से धावित होने से 'तपोवेशोपजीवि-मात्र' (तपस्या के बल पर जीवन निर्वाह करने वाले) विचार में प्रतिष्ठित होना पछ़ता है। त्रिदण्डी-संन्यासियों के संस्कार जिस समय पूर्णमात्रा में अवस्थान करते हैं, उस काल में उन लोगों के द्व ारा आश्रम में अवस्थान करना सम्पूर्णरूप से वैदिक अनुष्ठान माना जाता है। संस्कार वर्जित शूद्राचार में अवस्थित होकर प्रतिग्रह करना अधर्म को बुलावा देना है। ब्राह्मण-आदि चारों वर्णों के अभिमान से जो सब तपस्या, वेष एवं जीविका आदि की चेष्टाएँ वर्तमान हैं, त्रिदण्डीविष्णु सेवको की कोई चेष्टा उस प्रकार के अभिमान से प्रेरित नहीं होती है। वे सब अपने आपको ब्राह्मणब्रुव, क्षत्रियब्रुव, वैश्यब्रुव अथवा शूद्रब्रुव संज्ञा से अभिहित नहीं करते हैं। वे वर्णातीत हैं। वे ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी एवं भिक्षु-इन चारों आश्रमों में पालन करने योग्य सभी-विधियों को भगवत-सेवा के उद्देश्य से नियुक्त कर देने के कारण भोगमय जगत् की तपस्या, वेष अथवा निजी प्राणध ारण के लिए उपजीविका आदि चेष्टाओं में आबद्ध नहीं होते हैं। वे सब श्रीनारद-पंचरात्र में कथित "आराधितों यदि हरिः" श्लोक का पाठ कर चुके हैं, अतएव तपस्या के प्रति 'नियमाग्रह' प्रकाश अथवा 'नियम-अग्रह'-प्रकाश पूर्वक हरि-आराधना में विमुखता का प्रदर्शन नहीं करते हैं। बाहरी वेष के प्रति उन लोगों का कोई आदर नहीं है। गृहस्थ के वेष में उन लोगों के सम्मान की हानि नहीं होती। संन्यासी के वेष में वे अपने आपको उन्नत समझकर अभिमानी नहीं होते। ब्राह्मणादि चारों वर्णों में अपनाये गये जीविका-साधनों की भाँति निजी जीवन के पालन-पोषण के लिए उन लोगों की थोड़ी-सी भी चेष्टा नहीं होती है। विष्णुवैष्णव की सेवा के उद्देश्य से वे उपार्जन करते हैं। परन्तु निजीसेवा के कारण के ब्राह्मण ादि की भाँति वृत्तिजीवि-मात्र नहीं बनते हैं। ब्राह्मणाचार-वर्जित होकर दूसरों से दान-ग्रहण करके निजी जीवन का पालन-पोषण करने से अधःपतन होता है। यह जानकर कोई भी विष्णुसेवक अपने उदर के लिए अथवा भोग के उद्देश्य से किसी भी द्रव्य का प्रतिग्रह नहीं करता है; परन्तु वृत्तिजीविगण त्रिदण्ड का आश्रय करके अपने व्यवहार के लिए उपयोगी सभी विषयों का भोग करते-करते रावणादि की भाँति कपटी तपस्वियों के वेष में तपस्या के प्रति अभिनिवेश प्रदर्शित करते हैं। अतपस्वी की अपेक्षा तपस्वी की श्रेष्ठता वेदशास्त्र एवं लोका चार में विख्यात है। किन्तु तपस्या की छलना से वेषादि ग्रहण करके निजी इन्द्रियतर्पण ापरता जीव को वर्णधर्म एवं आश्रमधर्म में प्रतिष्ठित करवाकर भगवान् से विमुख करवा देती है। इस कारण 'उत्तम आसन पर आरूढ़' रहने को अभिमानी अधर्मज्ञ जनगण मायावाद का प्रचार करते हुये जो धर्म, अर्थ, काम एवं

मोक्ष की बात करते हैं, वह सब शूद्रोचित दानग्रहण लालसा मात्र है और वह तपस्वी के वेष में जीवन धारण करने के लिए अपनाई गई कपटता–मात्र है। वही शूद्राचार है एवं वैसा शूद्राचार ही कलिजनोचित कार्य है। वे ही गौरसुन्दर के आनुगत्य का परित्याग करके बटमार (लुटेरा) की भाँति कार्य करते हैं एवं शुद्ध गौरभक्तों को आक्रान्त करते हुये नरक जाने को प्रस्तुत रहते हैं। बटतारगण इस प्रकार के मायावादी संन्यासी शूद्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। कलियुग में विवाद धर्म का आश्रय करके अपने आपको शूद्र से अलग समझकर तपोवेशोपजीविका के आश्रय से अपने को 'धर्मोपदेशक' बताकर जो कपट अभिमान दिखाई दे रहा है, वह सब कलि का प्रचण्ड नृत्य मात्र है। इस कारण श्रीमद्भागवत के अन्तिम स्कन्ध में इस घृणायोग्य आचरण का अल्लेख किया गया है। श्रीमद्भागवत में कथित (७म स्कन्ध १३ अध्याय ३२ श्लोक के) विचार का अतिक्रमण करके जो सब वर्णब्रुवाभिमानिजन (केवल नाम के वास्ते वर्ण के अभिमान में प्रमत्त जनगण) विपथगामी होते हैं, उन लोगों के चाल–चलन को ध्यान में रखते हुये इस श्लोक की अवतारणा हुई है।

तथाहि श्रीमन् नारद पंचरात्र में–

प्रकटं पतितः श्रेयान् य एको यात्यधः स्वयम्।
वकवृत्तिः स्वयं पापः पातयत्यपरानपि ॥१४०॥
हरन्ति दस्यवोऽकुट्यां विमोह्यास्त्रैर्नणां धनम्।
चारित्रैरतितीक्ष्णाग्रैर्वादैरेवं वकव्रताः ॥१४१॥

(१४०) अन्वय–यः प्रकटं (दृश्यतः प्रत्यक्षं यथा स्यात् तथेत्यर्थः) पतितः (धर्मभ्रष्टः भवति), स श्रेयान् (वरं, तेन न कियान् आयाति याति) (यतः सः) एकः स्वयं (एकाकी) अधः (नरकं) याति (गच्छति)। अपि (परन्तु) वकवृत्तिः (वकस्य इव वृत्तिः वर्त्तनं यस्य सः कपटाचारी) स्वयं (मूर्त्तिमान्) पापः (पापिष्ठः जनः) अपरान् (अन्यान् जनान् नरकं) पातयति (चालयति)।

(१४०) अनुवादः—प्रत्यक्ष रूप से पतित व्यक्ति तुलना में अच्छा है; क्योंकि वह अकेला ही अधोगमन करता है; परन्तु वकधर्मी पापिष्ठ व्यक्ति अपने आप को एवं दूसरों को भी नरक में गिरा देता हैं।

(१४१) अन्वयः—दस्यवः (दस्युजनाः) अकुट्यां (निर्जनप्रदेशे) अस्त्रैः विमोह्य (मोहयित्वा) नृणां (नराणां) धनं हरन्ति (लुण्ठन्ति)। एवं (अनेन प्रकारेण) वकव्रताः (कपटाचारिणः) चारित्रैः (चरित्र– प्रदर्शन–छद्मभिः) अतितीक्ष्णाग्रैः (मर्मभेदिभि) वादैः (वाक्यैः च नृणां धनं हरन्ति)।

(१४१) अनुवादः—दस्यगुण सुनसान जगह पर हथियारों के द्वारा मोह या भय उत्पन्न करके लोगों के धन का अपहरण करते हैं, वकव्रती (कपटाचारि) जन मर्मभेदी वाक्यों के द्वारा लोगों में मोह उत्पन्न करके उन लोगों के धन का हरण करते रहते हैं।

तथाहि श्रीमद् भागवत में (१२/३/६८)–

शुद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेशोपजीविनः।
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥१४२॥
भालरे आइसे लोक तपस्वी देखिते।
साधुनिन्दा शुनि' मरि' याय भाल–मते ॥१४३॥

(१४२) अन्वय—शूद्राः तपोवेषोपजीविनः (तपोवेषेण तपोवेष–धारणेन उपजीवन्तीतिसाधुवेश धारणेन जीविका–निर्वाहिणः सन्तः) प्रतिग्रहीष्यन्ति (गृहस्थेभ्यः धनं ग्रहीष्यन्ति), अधर्मज्ञाः (धर्मज्ञानहीनाः) उत्तमम् आसनम्, अधिरुह्य

(आरुह्य) धर्म वक्ष्यन्ति (प्रचारयिष्यन्ति)।

(१४२) अनुवादः— (कलिकाल में) शूद्रगण तपस्या के वेश को उपजीविका बनाकर दानादि ग्रहण करेंगे। धर्म के विषय में कुछ भी न जानने वाले लोग आचार्य के आसन पर अधिरोहण करके धर्म का उपदेश करेंगे।

(१४३) प० अनु०— तपस्वियों के दर्शनों को लोग भले के लिये आते हैं, परन्तु वहाँ साधुनिन्दा सुनकर वह सर्वनाश को प्राप्त करते हैं।

साधुनिन्दा सुनकर मौन रहने वालों की अधोगति–

साधुनिन्दा शुनिले सुकृति हय क्षय।
जन्म जन्म अधःपात–वेदे एइ कय॥१४४॥
वाटोयारे सबे मात्र एक जन्मे मारे।
जन्मे जन्मे क्षणे क्षणे निन्दके संहरे।।१४५॥

(१४४–१४५) प० अनु०— साधुनिन्दा श्रवण करने से सकृति का क्षय हो जाता है। वेद कहते हैं कि इससे जन्म-जन्म में अधःपतन होता हैं बटमार (लुटेरा) तो केवल एक ही जन्म में मारता है। परन्तु निन्दक का संहार तो क्षण-क्षण में जन्म-जन्मान्तर तक होता रहता है।

(१४४) गौः भाः— जो अनेक व्यक्ति समन्वयवाद की छलना से साधु-गुरु-वैष्णवों की निन्दा सुनकर भी मौन रहते हैं, उनका अनेक जन्मों तक अधः पतन होता रहता है। उन लोगों का सारा सौभाग्य क्षीण हो जाता है। "निन्दां भगवतः श्रण्वन् ततपरस्य जनस्य वा। ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः॥"— (भक्ति सन्दर्भ २६५ संख्या द्रष्टव्य है।)

(१४५) गौः भाः— साधारण दस्युगण प्रायश्चित न करने तक अपने द्वारा किये गये बुरे कर्मों के फलस्वरूप क्लेश भोगते हैं, परन्तु नैसर्गिक (स्वभावगत) पापिष्ठजन विष्णु और वैष्णवों से विद्वेष करके प्रतिपल अनन्तकाल तक कष्ट भोगने को विवश हो जाते हैं। उन लोगों की दुष्प्रवृत्ति अनुक्षण भगवान् एवं भक्तों की निन्दा करने के कारण उन्हें अशेष यन्त्रणाएँ प्रदान करती रहती है।

साधारण दस्यु की तुलना में वैष्णवविद्वेषी व्यक्ति अनन्तगुना अधिक पापिष्ठ–

अतएव निन्दक–संन्यासी—वाटोयार।
वाटोयार हैतेओ अनन्त दुराचार॥१४६॥

(१४६) प० अनु०— अतएव निन्दक संन्यासी और बटमार, इन दोनों में निन्दक संन्यासी बटमार से भी अनन्तगुना अधिक दुराचारी है।

निन्दक कृष्ण का अप्रिय है–

आब्रह्मा–स्तम्बादि सब कृष्णेर वैभव।
'निन्दामात्र कृष्ण रुष्ट' कहे शास्त्र सब॥१४७॥

(१४७) प० अन०—ब्रह्मा से लेकर तृण आदि- सब कुछ कृष्ण का ही वैभव है। इसलिए सभी शास्त्र यही कहते हैं कि, 'निन्दा करने मात्र से कृष्ण रुष्ट हो जाते हैं।'

अनिन्दक को एकबार कृष्णनाम का उच्चारण करने से ही भगवद्-अनुग्रह की प्राप्ति–

अनिन्दक हइ' ये सकृत् 'कृष्ण' बले।
सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिव हेले॥१४८॥

(१४८) प० अनु०— अनिन्दक होकर जो एक बार 'कृष्ण' कहता है, कृष्ण उसका सचमुच ही उद्धार कर देते हैं।

(१४८) गौः भाः— साधुओं की निन्दा का परित्याग करके जो एकबार भी कृष्णनाम का उच्चारण करते हैं, वे अनायास ही भगवद्–अनुग्रह को प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु नामापराधी व्यक्ति साधु–निन्दा करके श्रीगुरुपादपद्मों में अपराध कर बैठते हैं एवं गुरुनिन्दा करके भगवान् के चरणों में अपराधी हो जाते हैं। भगवान् की निन्दा करने वालों के लिए भगवान् का नाम उच्चारण करने का फल—कृष्ण–प्रेम पाना तो दूर, वे नामापराध के फलस्वरूप अष्ट–पाश–बद्ध होकर धर्म, अर्थ एवं काम तक की प्राप्ति करने में भी असमर्थ हो जाते हैं।

चतुर्वेदी का भी विष्णुवैष्णव–निन्दा के फलस्वरूप कुंभीपाक में गमन–

चरि–वेद पड़ियाओ यदि निन्दा करे।
जन्म जन्म कुंभीपाके डुबिया से मरे॥१४९॥

(१४९) प० अनु०— चारों वेदों का अध्ययन करते हुये भी यदि निन्दा करता है, तो वह जन्म–जन्म में कुंभापाक नामक नरक में डूबकर मरता है।

(१४९) गौः भाः— पापिष्ठजन अपने आपको चतुर्वेदी, अग्निहोत्रा आदि नामों से अभिहित करते हुये भी यदि विष्णु–वैष्णव की निन्दा करता है, तो उस अपराध के कारण उसे प्रत्येक जन्म के उपरान्त कुंभीपाक–नरक में पतित होकर विषम क्लेशों को भोगना पड़ता है। इस प्रकार उन लोगों का चारों वेदों का अध्ययन भी नरक–यंत्रण का ही कारण बन जाता है। इसी प्रकार मुख्य सामगान का उद्गाता भी यदि वैष्णव–विद्वेषी है, तो उसका अन्त भी यन्त्रण प्रदान करने वाला होता है।

आत्मेन्द्रिय–तर्पण की वासना से भागवत्–कथाकार या पाठक के द्वारा जगद्गुरु नित्यानन्द कीनिन्दा से सर्वनाश की प्राप्ति–

भागवत पड़ियाओ का'रो बुद्धिनाश।
नित्यानन्द–निन्दा करे हइवे सर्वनाश॥१५०॥

(१५०) प० अनु०— भागवत का अध्ययन करके भी किसी–किसी की बुद्धि का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति नित्यानन्द की निन्दा करने के कारण सर्वनाश को प्राप्त होते हैं।

(१५०) गौः भाः— अनेक भागवत–कथाकार एवं पाठक भगवान् एवं भक्तों की निन्दा करके अपने अर्थोपार्जन एवं इन्द्रियतर्पण को बिना बाधा के प्रचलित रखने के लिए भागवत का तात्पर्य विकृत करके जगत में झंझट फैलाते रहते हैं। वे लोग वैष्णव–गुरु के चरणकमलों का परित्याग करके एवं श्रीनित्यानन्द के चरणों में अपराधी होकर मायावादी, ज्ञानी, कर्मी, अन्याभिलाषी आदि को अपने गुरुपद पर प्रतिष्ठित करके अपने आपको भगवद्–कृपा–प्राप्ति से सदा के लिए वंचित कर लेते हैं। ऐसे लोगों का संग करने से जगत् के अनेक दूसरे व्यक्ति भी सद्धर्म के रास्ता सेस भटक जाते हैं एवं इस कारण वे भी संसार के क्लेशों को प्राप्त करते हैं।

निन्दक का गौरलीला–विलास में अविश्वास–

एइ नवद्वीपे गौरचन्द्रेर प्रकाश।
ना माने निन्दक–सब से सत्य विलास॥१५१॥

(१५१) प० अनु०—इस नवद्वीप में गौचन्द्र का प्रकाश हुआ है। उनके इन सब सत्य विलासों को निन्दकजन स्वीकार नहीं करते हैं।

चैतन्य–विमुख अथवा कपटी भागवत–पाठक के संग का परित्याग करके शुद्ध चैतन्यदासों का संग ही वांछित–

चैतन्य–चरणे या'र आछे मति–गति।

जन्म जन्म हय येन ताँहार संहति॥१५२॥

(१५२) प० अनु०—मेरी यही कामना है कि चैतन्य के चरणों में जिनकी बुद्धि स्थित है, उनका संग ही मुझे जन्म-जमान्तर तक मिलता रहे।

(१५२) गौः भाः— कपटी भगवत-पाठक अथवा कथावाचक के संग का परित्याग करके जन्म-जन्म में श्रीचैतन्य के अकृत्रिम (सच्चे) दासों के साथ मिलकर रहना ही मनुष्यों के लिए प्रार्थनीय विषय हैं चैतन्य-विमुख मायावादियों का संग करना बिलकुल ही अप्रयोजनीय है।

चैतन्य-विमुख अष्टंग-योगियों का मुख भी देखने लायक नहीं है-

अष्ट सिद्धियुक्त—चैतन्येते भक्तिशून्य।
कभु येन ना देखाँ से पापी हीन-पुण्य॥१५३॥

(१५३) प० अनु०- चैतन्य में भक्ति न रखने वाला पापी पुण्यहीन व्यक्ति यदि अष्टसिद्धियुक्त भी है, तब भी मैं कभी भी उसके दर्शन करना नहीं चाहता हूँ।

(१५३) गौः भाः— क्षीण-पुण्य पापिष्ठ व्यक्ति ही चैतन्य सेवा से विमुख होते हैं। यद्यपि साधारण विचार से वे अष्टांग-योगसिद्ध पुरुष के नाम से भी प्रख्यात क्यों न हों, तथापि उन पापिष्ठों का मुख देखना उचित नहीं है। श्रीचैतन्य के प्रियतम दास श्रीगुरुपादपद्म ही हैं। श्रीगुरुपादपद्म के अभिन्न-हृदय वैष्णव साधुगण ही अष्टसिद्धियों को धिक्कार प्रदान करते हैं। वे ही शुद्ध वैष्णवों के गुरु वर्ग हैं। अन्य लघु-सम्प्रदायों के प्रति बाहरी सम्मान दिखाकर उन भक्तों से दूर रहना ही प्रधान प्रयोजनीय विषय हैं

मुरारि गुप्त को सान्त्वना-प्रदान पूर्वक प्रभु का अपने घर में गमन-

मुरारि गुप्तेरे प्रभु सान्त्वना करिया।
चलिला आपन-घरे हरिषत हइया॥१५४॥

(१५४) प० अनु०— मुरारि गुप्त को सान्त्वना प्रदान करके प्रभु हर्ष के साथ अपने घर की ओर चल दिये।

मुरारि गुप्त के प्रभाव का वर्णन करने में ग्रन्थकार के द्वारा अपनी असमर्थता का प्रकाशन-

हेनमते मुरारि गुप्तेर अनुभाव।
आमि कि बलिब, व्यक्त ताँहार प्रभाव॥१५५॥

(१५५) प० अनु०- इस प्रकार मुरारि गुप्त के महान् अनुभावों का मैं क्या वर्णन करूँ? उनका प्रभाव तो स्वयं ही प्रकाशमान है।

नित्यानन्द की कृपा से ग्रन्थकार को वैष्णवों की महिमा के बारे में ज्ञान की प्राप्ति-

नित्यानन्द-प्रभु-मुखे वैष्णवेर तथ्य।
किछु किछु शुनिलाम सबार माहात्म्य॥१५७॥

(१५६) प० अनु०— नित्यानन्द प्रभु के श्रीमुख से ही मैंने वैष्णवों के तथ्य एवं माहात्म्य के बारे में कुछ-कुछ सुना है।

ग्रन्थकार की हार्दिक इच्छा-

जन्म जन्म नित्यानन्द हउ मोर पति।
याँहार प्रसादे हैल चैतन्येते रति॥१५७॥
जय जय जगन्नाथ मिश्रेर नन्दन।
तोर नित्यानन्द हउ मोर प्राणधन॥१५८॥
मोर प्राणनाथेर जीवन विश्वम्भर।
ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर॥१५९॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु तदयुगे गान॥१६०॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे मुरारिगुप्त–प्रभाव वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः। (१५७–१६०)

प० अनु०—जन्म–जन्म में नित्यानन्द मेरे स्वामी हों, जिनकी कृपा से मेरी चैतन्य में रति उत्पन्न हुई है। जगन्नाथ मिश्र के नन्दन श्रीगौरसुन्दर की जय हो, जय हो। आपके नित्यानन्द मेरे प्राणधन बन जाएँ। विश्वम्भर मेरे प्राणनाथ (नित्यानन्द) के जीवन–स्वरूप हैं। यही मेरे लिए बड़े भरोसे की बात है, इसी को मैं सदैव अपने हृदय में धारण किये रहता हूँ। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल–श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान कर रहे हैं।

(१५९) गौः भाः— ग्रन्थकार बड़ी आशा लेकर उन श्रीगुरु– नित्यानन्द के चरणकमलों को अपने हृदय में दृढ़भाव से धारण किये रहते हैं, जिनके सदा उपास्य विग्रह हैं श्रीगौरसुन्दर।

इति गौड़ीय–भाष्य में विंश अध्याय समाप्त

O

एकविंश अध्याय

एकविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में महाप्रभु का बलदेव भाव, देवानन्द पण्डित के प्रति महाप्रभु का वाक्य-दण्ड एवं भागवत, तुलसी, गंगा एवं भक्तजनों के साथ भगवान् की अभिन्नता आदि वर्णित हुई है।

एकदिन महाप्रभु नगर में भ्रमण करते-करते सार्वभौम-भट्टाचार्य के पिता महेश्वर विशारद के घर के सामने जा पहुँचे। उस समय वहाँ देवानन्द पण्डित का निवास स्थान वर्तमान था। वे आकुमार ब्रह्मचारी, मोक्षकामी एवं भागवत के महान-अध्यानक के रूप में जगत् में विख्यात थे; परन्तु भागवत-पाठ करते हुये भी भाग्यदोष के कारण वे भक्तिहीन थे।

महाप्रभु नगर भ्रमण करते-करते मद्यपायी के घर के सामने से गुजरे तो वहाँ मदिरा की गंध मिलने के कारण उनमें बलदेव-भाव का उदय हो गया। तब उन्होंने मद्यपायी के घर में प्रवेश करने की इच्छा प्रकट की; परन्तु वैसा आचरण श्रीवास पण्डित को अच्छा नहीं लगा, इस कारण भक्त की इच्छा के विरुद्ध चलने को अनिच्छुक महाप्रभु ने ऐसा नहीं किया।

श्रीगौरसुन्दर मद्यपायी के घर तो नहीं गये, किन्तु मद्यपायी की भाँति उन्मत्त होकर हरिकीर्तन करते-करते राजमार्ग से गुजर रहे थे। उसी समय पद्यपायीगण भी 'हरिबोल' कहते हुये प्रभु के पीछे-पीछे चलने लगे।

श्रीश्रीगौरचन्द्र पद्यपायीजनों के प्रति शुभदृष्टि प्रदान करके कुछ दूर ही चले थे कि उनकी दृष्टि देवानन्द पण्डित पर पड़ी। उन्हें देखते ही प्रभु कोा श्रीवास की याद आ गई। उन्हें स्मरण हो आया कि देवानन्द पण्डित की भागवत-व्याख्या सुनने के लिए श्रीवास पण्डित ने एकदिन उनके पास जाकर भागवत की व्याख्या सुनी थी। भागवत का प्रत्येक अक्षर प्रेममय है। यह जानकर उस समय श्रीवास का हृदय द्रवीभूत हो गया और उनके अंग में अश्रु-कम्प-आदि सात्विक विकार उपस्थित हो गये। यह देखकर देवानन्द पण्डित के छात्रों ने पाठ में बाधा हो रही है, ऐसा सोच करके उनको घर से निकाल दिया था। देवानन्द पण्डित ने भी उस समय छात्रों को ऐसा करने से मना नहीं किया था। इस कारण उनमें वैष्ण ावापराध का जन्म हुआ था। पश्चात् बाह्यज्ञान प्राप्त होने पर श्रीवास पण्डित दुःखित होकर अपने घर वापस चले आये थे।

देवानन्द को देखकर श्रीगौरसुन्दर को उस पूर्वोक्त घटना की याद आ गई। तब श्रीचैतन्यदेव ने भागवत कोा अपमानित करने वाले देवानन्द पण्डित को भगवत पाठ के लिए अनधिकार घोषित करते हुये उनका बहुविध तिरस्कार किया और भागवत का प्रकृत (वास्तविक) तात्पर्य, उसका महात्मा एवं वैष्णवों के माहात्मा का कीर्तन किया। देवानन्द उस समय बहुत लज्जित हुये और वे घर लौट गये।

श्रीचैतन्य से वाक्यदण्ड प्राप्त करने वाला

व्यक्ति भी परम सुकृति-सम्पन्न होता है, इसलिए ग्रन्थकार ने देवानन्द के महासौभाग्य की भी कथा वर्णन की है।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

सपार्षद श्रीश्रीगौरसुन्दर का जयगान-

जय जय नित्यानन्द-प्राण विश्वम्भर।
जय गदाधर-पति, अद्वैत-ईश्वर॥१॥
जय श्रीनिवास-हरिदास-प्रियंकर।
जय गंगादास-वासुदेवेर ईश्वर॥२॥
भक्तगोष्ठी-सहित गौरांग जय जय।
शुनिले चैतन्य-कथा भक्ति लभ्य हय॥३॥
हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
विहरे सहंति-नित्यानन्द-गदाधर॥४॥

(१-४) प० अनु०— नत्यानन्द के प्राणस्वरूप श्रीविश्वम्भर की जय हो, जय हो। गदाधर के स्वामी और अद्वैत के ईश्वर की जय हो। श्रीनिवास और हरिदास को प्रसन्न करने वाले प्रभु की जय हो। गंगादास और वासुदेव के ईश्वर की जय हो। भक्तगोष्ठी-सहित गौरांग की जय हो, जय हो। चैतन्य की कथा सुनने से भक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर नित्यानन्द और गदाधर के साथ मिलकर नवद्वीप में विहार कर रहे थे।

(१) गौः भाः—विश्वम्भर-नित्यानन्द के प्राण स्वरूप हैं। वे ही गदाधर के स्वामी हैं। वे ही अद्वैत के ईश्वर हैं। भक्त, भजनीय वस्तु एवं भजन-इन तीनों का सम्मिलन न होने से भगवान् का विचित्र-विलास सम्पादित नहीं होता है। इन तीनों के अभाव से भक्ति-विरोधी निर्विशेष भाव या प्रकाश का अभाव दिखाई देने के कारण लीलारहित अवस्था ही अवशिष्ट रह जाती है। जो लोग श्रीचैतन्यदेव की कथा का अनुशीलन नहीं करते हैं, वे भक्ति के स्वरूप की उपलब्धि करने में असमर्थ रह जाते हैं। जिन लोगों का अज्ञान प्रबल है, वे अभक्त बनकर भगवत-सेवा से विमुख हो जाते हैं और उन लोगों को मिथ्या अहंकार दबा तेला है जो उन्हें भगवान्, भक्त एवं भक्ति से कहीं दूर खींचकर ले जाता है।

देवानन्द पण्डित के घर के सामने महाप्रभु का गमन-

एकदिन प्रभु करे नगरभ्रमण।
चारिदिके यत आप्त-भागवतगण॥५॥
सार्वभौम-पिता—विशारद महेश्वर।
ताँहार जांघाले गेला प्रभु विश्वम्भर॥६॥
सेइखाने देवानन्द पण्डितेर वास।
परम सुशान्त विप्र मोक्ष-अभिलाषा॥७॥

(५-७) प० अनु०—एकदिन चारों ओर से अपने भागवतजनों के द्वारा घिरे हुये प्रभु नगर मे भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते-करते प्रभु विश्वम्भर सार्वभौम के पिता महेश्वर विशारद के घर के सामने जा पहुँचे। वहाँ जलप्लावन (बाढ़) से घर को बचाने के लिए एक बाँध था। वहीं देवानन्द पण्डित भी रहा करते थे। देवानन्द पण्डित परम सुशान्त और मोक्ष के अभिलाषी विप्र थे।

(६) गौः भाः—जांघाल— बांध। नवद्व ीप-मंडल में गंगा की पश्चिम दिशा में 'कुलिया' ग्राम अवस्थित है। उससे थोड़ी दूर पश्चिम में भूमि कुछ निम्नस्तर पर अवस्थित है; इसलिए विद्यानगर में अवस्थित महेश्वर विशारद के घर को बचाने के लिए वहाँ एक बाँध वर्तमान था।

(७) गौः भाः–मोक्षाभिलाष–विष्णुपादपद्म की सेवा-प्राप्ति को छोड़कर जो काल्पनिक निर्विशिष्टमुक्ति की धारणा है, वह अनर्थ युक्त व्यक्ति की वासनाओं के अन्तर्गत एक धारण ा–मात्रा है। जागतिक अभिज्ञता की दृष्टि से त्रिताप-रहित अवस्था की धारणा ही 'मुक्ति' के रूप में कही जाती है। परन्तु, देश-काल और पात्र की निकृष्टता का व्यवधान उत्कृष्ट देश-काल और पात्र के प्रकाश के बिना संभव नहीं होता है। जो सब लोग जड़भोगों से अच्छी तरह पीड़ित होते हैं, उन सभी की शान्ति की धारणा में भगवत् सेवा 'मुक्ति' के रूप में प्रकाशित नहीं होती है। प्रापंचिक बुद्धि प्राप्त करके हरि से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं में उदासीनता का प्रदर्शन करने पात्र से भगवत्-सेवा-रहित तपस्या एवं द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन के त्रिविध अधिष्ठान में स्थित भोगपरक नश्वर विचारों से छुटकारा मिल जाता है किन्तु भगवत्सेवोन्मुखता प्राप्त नहीं होती है। अर्वाचीन मूढ़ जन मुक्ति का कदर्थ निकालकर जिस भक्तिरहित अवस्था को 'मोक्षाभिलाष' मानते हैं, वह समीचीन विचारपरक भगवद्भक्तों के विचार में दोषयुक्त है।

भगवत्-सेवा-रहित तपस्या सम्पन्न होकर 'भागवत में महा-अध्यापक, नाम से विख्यात होने पर भी भक्ति-हीनता-दोष के कारण देवानन्द की भागवत का मर्मार्थ समझने में असमर्थता–

ज्ञानवन्त तपस्वी आजन्म उदासीन।
भागवत पड़ाय, तथापि भक्तिहीन॥८॥
'भागवते महा–अध्यापक' लोके घोषे।
मर्म–अर्थ ना जानेन भक्तिहीन–दोषे॥९॥
जानिवार योग्यता आछये किछु ता'न।
कोन् अपराधे नहे, कृष्ण से प्रमाण॥१०॥

(८–१०) प० अनु०—देवानन्द पण्डित ज्ञानवन्त, तपस्वी थे एवं जन्म से ही उदासीन रहे थे। वे भागवत पढ़ाते थे, फिर भी उनमें भक्ति नहीं थी। लोग कहते थे, वे 'भागवत के महान् अध्यापक' हैं। परन्तु भक्तिरहित होने के कारण वे भगवत के मर्मार्थ को नहीं जानते थे। जानने के योग्यता उनमें कुछ थी, फिर भी किस अपराध के कारण वह जान नहीं पाये, इस बारे में अन्तर्यामी कृष्ण ही जानते हैं।

(९–१०) गौः भाः—यद्यपि साधारण लोग देवानन्द को भागवत के महान् पण्डित के रूप में जानते थे, तथापि, भगवत् सेवोन्मुखता के अभाव के कारण उस समय उनमें भगवत का उद्देश्य समझने की योग्यता वर्तमान नहीं थी। जीवमात्र ही वैष्णव हैं, इसलिए एक जीव होने के नाते दवानन्द में भी भागवत का मर्मार्थ जानने की योग्यता वर्तमान थी; परन्तु उसके सुप्त रहने के कारण उस अपराध से उनमें यह अज्ञान उत्पन्न हुआ था। इस कारण ही उस समय वे जानने के अधिकार से वंचित हो गये थे। कृष्ण—अन्तर्यामी हैं। किस अपराध के कारण भागवत का पठन-पाठन आदि करते हुये भी उनमें अपराध का संचार हो गया था, यह बात कृष्ण के अलावा अदूरदर्शी जीवों की समझ में नहीं आई थी।

रास्ते से जाते समय प्रभु-द्वारा देवानन्द की भागवत-व्याख्याका श्रवण–

दैवे प्रभु भक्त–संगे सेइ पथे याय।
येखानेते ता'न व्याख्या शुनिवारे पाय॥११॥

(११) प० अनु०— दैवयोग से भक्तजनों को साथ लिए प्रभु उस मार्ग से गुजर रहे थे; जहाँ से वे उनकी व्याख्या सुन सकें।

भक्तियोग की महिमा व्याख्यात न होने के कारण देवानन्द की व्याख्या का प्रभु अनुमोदन नहीं किया-

सर्वभूत-हृदय—जानये सर्व-तत्त्व।
ना शूनये व्याख्या भक्तियोगेर महत्त्व॥१२॥
कोपे बले प्रभु,-''बेटा कि अर्थ बाखाने?
भागवत-अर्थ कोन जन्मेओ ना जाने॥१३॥

(१२-१३) प० अनु०— प्रभु तो सब प्राणियों के हृदय निवासी हैं, सब तत्त्वों को जानते हैं। वहाँ भक्तियोग की महिमा उन्हें सुनाई नहीं दी। इस कारण कुपित होकर प्रभु कहने लगे- "यह व्यक्ति कौन-सा अर्थ बखान कर रहा है? यह भागवत का अर्थ किसी भी जन्म में नहीं जान पाया।

(१२) गौः भाः— श्रीयामुनाचार्य ने लिखा है,-भगवान् एवं भगवद्-भक्तों के प्रति अभक्तों में स्वाभाविक अपराध वर्तमान रहता है। नामापराध के विचार से भी देखा जाता है कि, साधुवैष्णवों के निकट अपराधी होने से बद्धजीव भगवान् का स्वरूप एवं अपना स्वरूप समझने में असमर्थ हो जाते हैं। अपराधवश जीवों में अज्ञान आकर उपस्थित हो जाता है। इस कारण जीव के उत्तरदायी बन जाता है। अनेक अर्वाचीन जन कृष्ण एवं कृष्णलीला को प्रकाशस्वरूप न मानकर अपनी काल्पनिक नश्वर बुद्धि को ही 'प्रामाणिक' समझते हैं। जब वे सब अपराधों से मुक्त होा जाते हैं, तब जाकर वे कृष्ण को ही एकमात्र 'प्रमाण' जानकर जड़ ज्ञान के प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाणों से बच पाते हैं। 'नैषां मति-स्तावदुरुक्रमांङ्घ्रि' (भाः ७/५/३२)- भागवत का यह श्लोक इस प्रसंग में अनुशीलन करने योग्य है।

भगवान् श्रीगौरहरि सभी के हृदय में बसे हुये हैं और सब कुछ जानते हैं। कर्मयोग, हठयोग, ज्ञानयोग, राजयोग इत्यादि की कमजोरी भगवान् गौरसुन्दर भली-भाँति जानते हैं एवं जीवों के चरम कल्याण के उद्देश्य से भक्तियोग की महिमा का जगत् में विस्तार करने के लिए ही उन्होंने ये सब बातें प्रकाशित की हैं। अतएव जहाँ भक्तियोग की महिमा व्याख्यात नहीं होती है, उन सब कथाओं का अनुमोदन वे कभी भी नहीं करते हैं।

(१३) गौः भाः—महाभागवत में २६ सद्गुण वर्तमान हैं। इनमें कृष्णैकशरणागति ही नित्य मुख्य सद्गुण है। यह सद्गुण भगवान् एवं भक्त—दोनों में प्रकाशित है। इस कारण ही जीव के भक्ति-वरोधी-विचारों में उसकी वासना के प्रतिकूल चिकिस्ता किये जाने के कारण 'क्रोध'-नामक वासना भेदकारी उपदेश को अर्वाचीन मनुष्य 'क्रोध' शब्द के रूप में जानते हैं। अनर्थयुक्त जीव अपनी वासना पूरी न होने के कारण क्रोध नामक जिस वृत्ति का प्रदर्शन करता है, वह सेवाविरोधीजनों के कल्याण के लिए भगवद्भक्तों के द्वारा वासनाओं के प्रतिकूल विषयों में जो वृत्ति प्रकाशित होती है, उसमें कोई दोष हो ही नहीं सकता, इसे दिखाने के लिए ही श्रीगौरसुन्दर ने यह क्रोधलीला प्रकाशित की है। जो लोग 'पल्लवग्राहिता' (शास्त्र का आंशिक भाग स्वीकार करके) नीति का अवलम्बन करके अनेक कलाओं का अभ्यास करते हैं, वे सब श्रीमद् भागवत् ग्रन्थ को अनेक शास्त्रों में से एक अन्यतम शास्त्र समझते हैं और धर्मरहित होकर इसका ध्ययन करते हैं। इस कारण वे भागवत के तात्पर्य श्रीभगवान् की लीला को किसी भी अवस्था में समझ नहीं पाते हैं। उन लोगों में जन्म-जन्मान्तर तक वासनाएँ रहती हैं। इसलिए वे भागवत का तात्पर्य समझ ही

नहीं पाते हैं। वे सब भागवत का पाठ करते हुये भी कृष्ण से अलग कुछ और वासनाएँ रखने के कारण भक्तिहीनता के दोष सेस दुष्ट रह जाते हैं।

प्रभु-द्वारा भागवत का स्वरूप वर्णन-

ए बेटार भागवते कोन् अधिकार?
ग्रन्थरूपे भागवत कृष्ण-अवतार॥१४॥
सबे पुरुषार्थ 'भक्ति' भागवते हय।
'प्रेम-रूप भागवत' चारिवेदे कय॥१५॥
चारि वेद— 'दधि', भागवत-'नवनीत'।
मथिलेन शुके, खाइलेन परीक्षित॥१६॥

(१४-१६) प० अनु०— इस व्यक्ति का भागवत पर क्या अधिकार है? ग्रन्थ के रूप में भागवत कृष्ण का अवतार है। भागवत में एकमात्र पुरुषार्थ केवल 'भक्ति' ही हैं चारों वेदों का कहना है कि 'भागवत प्रेमस्वरूप है।' चारों वेद 'दही' हैं, भागवत है 'नवनीत'। शुकदेव गोस्वामी ने इसका मंथन किया है और परीक्षित महाराज ने इसे खाया है।

(१४) गौः भाः—'बेटा'-शब्द सेस तुच्छता-ज्ञापक अनभिज्ञजन को ही समझा जाता है। बच्चा जिस प्रकार से अज्ञानी होने के कारण पिता के निकट मूर्खता प्रकाशित करता है एवं पिता अथवा उपदेशक जिस प्रकार से अनभिज्ञजनों को' निर्बोध' इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किया करते हैं, उसी प्रकार 'बेटा' शब्द भी उसी भाव का सुष्ठु रूप से प्रकाश करता है। भागवत के तात्पर्य को हृदयंगम न करके केवल शब्दों के सहारे दिखाये हुये व्यापार-समूह को जड़वासना में आबद्ध होकर जो लोग समझने की चेष्टा करते हैं, उन लोगों को भगवान् से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं में किसी भी प्रकार से प्रवेश-प्राप्ति नहीं होती। श्रीमद्भागवत में कृष्णकथा वर्णित हैं वह कृष्णकथा का कीर्तन जब कर्णकुहरों में प्रविष्ट होता है तो साक्षात् कृष्ण का स्फुरण होता है; तब जड़कथारूपी कचरा—कर्णमल स्वरूप मधु-कैटभ नाम के दोनों असुरों की भाँति विनष्ट हो जाता है। यही 'कर्णवेध'-संस्कार है। चिन्मय कर्णेन्द्रिय जड़ता से आवृत है। विचार करने से भोगपरक वाक्यसमूह हमारे मन को चंचल बना देते हैं। तब कृष्ण से अलग विषय ही हमारा लक्ष्य बन जाता है। वैकुण्ठ-नाम-ग्रहण, वैकुण्ठ-रूप-श्रवण, वैकुण्ठ-गुण-श्रवण, वैकुण्ठ परिकरकीर्तन-श्रवण, वैकुण्ठ-लीलाकथा-श्रवण आदि की योग्यता सुष्ठु-भाव से श्रीमद्भागवत-श्रवण आदि की योग्यता सुष्ठु-भाव से श्रीमद्भागवत-श्रवण करने से ही शुद्धसत्त्वसम्पन्न निर्मल जीवहृदय में उदित होती है। तब जाकर कोई जान सकता है कि, अपना हृदय वृन्दावन सेस अभिन्न है, जहाँ कृष्णचन्द्र नित्य अवस्थान करते हैं।

(१५) गौः भाः- सभी वेदशास्त्र श्रीमद्भागवत को 'प्रेम' रूप प्रयोजनतत्त्व मानते हैं और इसका कीर्तन करते हैं। प्रयोजन का विचार करते समय साधारणतया भोगी सम्प्रदाय धर्म, अर्थ और काम को ही लक्ष्य करते हैं; परन्तु भोगी और त्यागी सम्प्रदायों के अतिरिक्त सुनिर्मल आत्मा भगवद् भजन में पारंगत होकर चारों वेदों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्षा-आदि चतुःवर्ग-विचार का परित्याग करके श्रीमद्भागवत में वर्णित विशुद्ध कृष्णप्रेम कोा ही तात्पर्यस्वरूप ग्रहण करती है। यथार्थ पुरुषार्थ संग्रह के लिए उत्कण्ठित होने से कर्म, ज्ञान, योग, स्वाध्याय आदि सभी अभिधेय समूहों के अधिष्ठान विलुप्त होकर भक्ति में ही पर्यवसित (समाप्त) हो जाते हैं।

(१६) गौः भाः—वेदशास्त्र की तुलना दही के साथ की गई हैं शुकदेव उस दधि के

मंथनकारी हैं; उसमें से वेद-तात्पर्य स्वरूप नवनीत 'श्रीमद्भागवत' के रूप में उदित हुआ है। विषयों से निवृत्त हुये परीक्षित को सभी वेदों का तात्पर्य श्रीशुकदेव के उपदेश से प्राप्त हुआ है। मेरठ जिले के प्रान्त भाग में हस्तिनापुर अवस्थित है। आजकल के मुजफ्फरनगर जिले के प्रान्तभाग में भोगवा थाना के अन्तर्गत भूखा-रेहड़ी जनपद के निकटवर्ती शुकरतल नामक गाँव में ही गंगा के तट पर श्रीपरीक्षित महाराज ने प्रायोपवेशन-पूर्वक श्रीशुकदेव के निकट से समग्र वेद-तात्पर्य एक सप्ताह के भीतर संग्रह किया था। दही का मंथन करने से जिस प्रकार सरांश-स्वरूप नवनीत निकल आता है, उसी प्रकार से वेदों के कर्मकांड एवं ज्ञानकांड रूप सारहीन अंशों की तुच्छता का प्रदर्शन करते हुये वहाँ प्रेमभक्ति की सारता स्थापिता हुई थी। परीक्षित ने बाकी सब कथाओं का परित्याग करके वही सार ग्रहण किया था। इसलिए सभी भागवतजनों ने असत् संसर्ग के कारण फलभोगवाद एवं फलत्यागवाद का विचार अपनाकर भारवाही के रूप में आत्मग्लानि को अपनाया है। असारमिश्रित किंचित् सार की अपेक्षा असार-रहित विशुद्ध सार अथवा निर्यास ही ग्रहण के योग्य है, वही आत्मविद्जनों का भोज्य एवं पेय है। असारग्राहिगण फलभोगवाद से स्थूल भाव में भारवाही हैं एवं फलत्यागवाद कोा अपनाने के कारण बाहर से 'भारहीन' होने की भांड़-वृत्ति का प्रदर्शन करने पर भी सूक्ष्मभाव में अधिकतर गुरुभारवाही बने रहते हैं। ये दोनों ही सार को ग्रहण करने से मूँह फिराये बैठे हैं।

शुकदेव भागववेत्ता हैं एवं भगवत् तत्त्व ही भागवत का प्रतिपाह्य विषय है-

मोर प्रिय शुक से जानेन भागवत।
भागवते कहे मोर तत्त्व-अभिमत॥१७॥

(१७) प० अनु०—मेरे प्रिय शुकदेव ही भागवत को जानते हैं। श्रीमद्भागवत में ही मेरे तत्त्व का सही रूप सेस वर्णन हुआ है।

भक्त, भगवान् एवं भागवत में भेद-दर्शी निजी अमंगल का आवाहन करते हैं-

मुञि, मोर दास, आर ग्रन्थ-भागवते।
यार भेद आछे, तार नाश भालमते॥''१८॥

(१८) प० अनु०—मुझे में, मेरे भक्तों में और भागवत ग्रन्थ में जो भेजद दर्शन करता है, वह भली-भाँति विनाश को प्राप्त होता है।

(१८) प० अनु०—गौः भाः- भगवान् एवं भक्तों में जो लोग भेदबुद्धि वश विष्णु-वैष्णव-तत्त्व के बारे में अवगत नहीं होते हैं वे सब सभी प्रकार से निज अमंगल का आवाहन किया करते हैं। लीला में प्रेवश किये बिना भगवान् की सभी कथाएँ सुष्ठुभाव से व्यक्त नहीं की जा सकती। भगवत्कथाओं से भरपुर भागवत को शुकदेव ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता। एक किंवदन्ती है कि, श्रीमहादेव ने एकबार कहा था,-"मैं भागवत को जानता हूँ, शुकदेव भागवत को जानते हैं, लेखक श्रीव्यासदेव ने गुरु-चरणाश्रय-पूर्वक विशुद्ध गुरुसेवा के अभाव के कारण कुछ दिनों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सेवकों के उपकार के लिए शास्त्र-ग्रन्थों का प्रणयन किया था;" परन्तु सत् शास्त्रसमूह के एकमात्र तात्पर्यस्वरूप श्रीमद्भागवत की रचना के समय उन्होंने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को धिक्कार प्रदान करने वाली बुद्धि का आश्रय लेकर कृष्णलीला का वर्णन किया है, वहाँ भी श्रीवार्षभानवी देवी (श्रीराधा) की कथाओं को मुख्यरूप से उपस्थापित न करने के कारण एवं साधारणजनों में योग्यता के

अभाव के कारण वर्णन-विषय में जो सावधान अपनाई है, उससे विदित होता है कि वे कुछ सीमा तक अवगत हैं एवं कुछ सीमा तक अनवगत हैं उन्होंने ऐसा ही अपना परिचय प्रदान किया है। परन्तु श्रीनृसिंह के उपासक त्रिदण्डि स्वामी श्रीधर भगवत्-कृपा से सेवोन्मुख होने के कारण भागवत का तात्पर्य सुष्ठुभाव से जानकर गोपीजनवल्लभ की सेवा की कथा को सम्यग् रूप से समझ पाये; भक्तयेक रक्षक श्रीधर स्वामी एवं उनके छोटे भाई लक्ष्मीधर ने नाम-भजन के प्रभाव से भगवान् के रूप-गुण परिकर वैशिष्ट एवं उनकी लीला में जिस अधिकार को दर्शाया है, श्रीधर-विरोधी, श्रीधर-टीका-पाठकारी बुभुक्षु एवं मुमुक्षु-सम्प्रदाय अभक्त होने के कारण वैसी कृपा को प्राप्त करने में सदा के लिए वंचित रह गये। कनिष्ठ अधिकारियों की चेष्टा में भगवान् का कुछ परिचय मिलता है; किन्तु भक्तों के प्रति अमर्यादा का प्रदर्शन करने के कारण उन्हें भगवत्-सेवा में कनिष्ठ अधिकार से भी वंचित होना पड़ता है। अतएव परिकर वैष्ष्ट्य एवं विषय और आश्रय के विचार में, जिन लोगों में भेदज्ञान-जनित अमंगल प्रेवश किया है, वे सब यह नहीं जान पाते कि, प्रेमभक्ति ही सभी प्रकार से प्रयोजनीय विषय है। इस कारण वे सब मानवजीवन प्राप्त करते हुये भी अपने आपको विनाश की ओर ले जाते हैं।

प्रभु के श्रीमुख से भागवत-तत्त्व सुनकर वैष्णवों को आनन्द-

भागवत-तत्त्व प्रभु कहे क्रोधावेशे।
शुनिया वैष्णवगण महानन्दे भासे॥१९॥

(१९) प० अनु०—क्रोध के आवेश में आकर प्रभु ने जो भागवत-तत्त्व कहा, उसे सुनकर वैष्णवगण महान् आनन्द में विचरण करने लगे।

(१९) गौः भाः—देवानन्द पण्डित मुमुक्षु थे। मायाबद्ध-विचार के सहारे उन्होंने जैसा समझा, उसके अनुसार तपस्या, जगत् के प्रति उदासीनता आदि विषयों को ही वे अधिक सम्मान करते थे। परमार्थ 'विषय' के बारे में वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। लौकिक प्रयोजन-जगत् से मुक्त हो जाना एवं उसके ज्ञान में विभोर हो जाने के कारण भागवत केमुख्य विचार को ग्रहण करने में वे अक्षम थे। कर्म और ज्ञान से आच्छादित अवस्था में किसी भी व्यक्ति को अपने स्वरूप का पता नहीं चलता है। इस कारण भगवद्-उपासना की नित्यता उन्हें उपलब्ध नहीं हुई। भगवत्-सेवा से वंचित व्यक्ति जिस समय आत्मस्वरूप को विस्मृत करके भगवत्-सेवा से उदासीन रहते हैं एवं उसी को परम पुरुषार्थ समझते हैं, उस समय परम दयामय श्रीगौरसुन्दर उन अभक्तों के उस प्रकार के कार्यों के प्रति विरक्ति का प्रकाशन करते हैं एवं उनका मंगल करने की इच्छा से, उस प्रकार का कार्य अत्यन्त निन्दनीय एवं अप्रयोजनीय है-ऐसा कथन करते हैं। गौरसुन्दर यह भी कहते हैं कि, कर्मफल-भोग अथवा कर्म-फल-त्याग नितान्त अन्याय-युक्त कार्य है। प्रभु के इस क्रोध का दर्शन करके वैष्णवों ने परमानन्द प्राप्त किया।

भागवत में भगवद्-भजन से अलग विषयों की व्याख्या अर्वाचीनता-मात्र है-

भक्ति बिनु भागवत ये आर बाखाने।
प्रभु बले,-"से अधम किछुइ ना जाने॥२०॥

(२०) प० अनु०—ब्रह्मज्ञानी जब अद्वयज्ञान को उपलब्ध करता है, तब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञात—इन तीनों अवस्थाओं की निर्विशिष्टता ही चरम

आराधनीय विषय बन जाती है। योगिगण गर्भेदकशायी विष्णु के साथ मिलित होना चाहते हैं और इसलिए कैवल्य प्राप्तिहेतु यत्न करते हैं। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में भगवान की लीला, उनके परिकर वैशिष्ट्य, उनके अखिल सद्गुण, उनके रूप एवं नाम–आदि का उल्लेख है। नित्यमुक्त भगवद्भक्त एवंसाधनसिद्ध भक्तगण तथा भक्तिपरायण सेवकगण नित्यकाल भगवान की सेवा को छोड़कर अन्य कोई प्रयोजन नहीी समझते। इसलिए नित्य सेवक के सेवा–विचार के अतिरिक्त अन्य बातें भागवत में नहीं हैं; इसका प्रदर्शन करना ही प्रभु का उद्देश्य है। जो लोग भागवत में भगवान की नित्य सेवा को छोड़कर कुछ और ढूँढ़ते हैं, वे सब नितान्त अर्वाचीन हैं, ऐसा ही जानना होगा।

अभक्तिपरक व्याख्या करने वाले को
भागवत पर अधिकार नहीं है–

निरवधि भक्तिहीन ए बेटा बाखाने।
आजि पुँथि चिरिब, देखह विद्यमाने''॥२१॥
पुँथि चिरिबारे प्रभु क्रोधावेशे याय।
सकल वैष्णवगण धरिया रहाय॥२२॥

(२१–२२) प० अनु०—यह व्यक्ति निरन्तर भक्ति रहित व्याख्या कर रहा है। देखना, आज मैं इसके ग्रन्थ को चीर–फाड़कर रख दूँगा।" ग्रन्थ को फाड़ देने के लिए प्रभु क्रोध के आवेश में दोड़े, किन्तु सब वैष्णवों ने उन्हें रोक दिया।

(२१) गौः भाः— अभक्तजन सेवाध र्म–वर्जित होने के कारण अन्याभिलाष, कर्मफल–प्राप्ति, निर्भेद ब्रह्मानुसंधान आदि विषयों का वर्णन करते समय लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाते हैं एवं इस कारण भागवत के मुख्य उद्देश्य को ग्रहण करने में असफल रहते हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने भागवत की अभक्तिपरक व्याख्या को सुना और कहा,–जो भागवत पाठक के हृदय में अभक्ति के भाव काा उद्दीपन कराती है, उस वंचना के भाव से युक्त भागवत की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए उस भागवत ग्रन्थ को भगवद्–विग्रह नहीं जानकर उसे पार्थिव–पदार्थ–विशेष समझकर तथा रुद्र का विनाशद्रव्य मानकर फाड़ दूँगा। जो लोग श्रीमद्भागवत को भोग्य वस्तु समझते हैं, उन लोगों की उस प्रकार की दृष्टि मायाबद्ध जीवों में उत्तरोत्तर काम की वृद्धि करवाती है। इस कारण विषयी के योषिद्–बोध में सहायक भागवत–पाठ को निरस्त कर देना ही भगवान् का उद्देश्य है।

जड़ विद्या–तप–प्रतिष्ठा की आशा से युक्त
व्यक्ति भागवत को समझने में असमर्थ–

महाचिन्त्य भागवत सर्वशास्त्रे गाय।
इहा ना बुझिए, विद्या, तप, प्रतिष्ठाय॥२३॥
'भागवत बुझि' हेन यार आछे ज्ञान।
से ना जाने कभु भागवतेर प्रमाण॥२४॥

(२३–२४) प० अनु०—सभी शास्त्र इस बात का कीर्तन करते हैं कि भागवत एक महान, अचिन्तनीय वस्तु है। इसे विद्या, तपस्या एवं प्रतिष्ठा से नहीं समझा जा सकता है। जिसको ऐसा ज्ञान है कि 'मैं भागवत को समझता हूँ' वह कभी भी भागवत के तत्त्व को नहीं जान सकता है।

(२३) गौः भाः–सब शास्त्रों से यह प्रमाणित हुआ है कि, जड़जगत् के प्रति भोग–बुद्धि एवं त्यागबुद्धि रहते हुये कोई कभी भी श्रीमद्भागवत का मर्म नहीं समझ सकता। अतएव जड़विद्या, जड़ तपस्या एवं जड़ प्रतिष्ठा पाने की आशा जब तक किसी में विद्यमान है, तब तक वह

अचिन्तनीय राज्य में अवस्थित भागवत कथा को समझने की क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता।

(२४) गौः भाः—जो लोग भागवत को जागतिक भोग्यवस्तुओं में से एक सर्वश्रेष्ठ भोग्यवस्तु समझकर यह मानने लगते हैं कि, वे भागवत पर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं, वे सब वस्तुतः भागवत के किसी भी अंश को समझ ही नहीं पाये हैं। श्रीमद्भागवत जिसे प्रमाणित करने के लिए उद्यत है, वह प्रमेय (प्रमाणित करने योग्य) वस्तु कभी भी जड़ इन्द्रियों के अधिकार का विषय नहीं हो सकती।

श्रीमद्भागवत को भगवद्-विग्रह के रूप में अपनाने वाले ही भागवत-प्रतिपद्य भगवत् प्रेम के विषय को समझने में समर्थ हैं-

भागवते अचिन्त्य-ईश्वरबुद्धि यार।
से जानये भागवत-अर्थ भक्तिसार॥२५॥
सर्वगुणे देवानन्द पण्डित-समान।
पाइते विरल बड़ हेन ज्ञानवान्॥२६॥

(२५-२६) प० अनु०—भागवत को जो अचिन्तनीय ईश्वर-स्वरूप समझते हैं, वे ही जानते हैं कि, भक्ति ही भागवत का सार अर्थ है। देवानन्द पण्डित जैसा ज्ञानवान और सभी सद्गुणों से युक्त व्यक्ति कोई विरला ही मिलता है।

(२५) गौः भाः—जो यह जानते हैं कि, श्रीमद्भागवत का कीर्तन साक्षात् भगवद्-विग्रह-स्वरूप है, जो भागवत ग्रन्थ को प्राकृत ग्रन्थ-मात्र नहीं समझते, एवं श्रीमद्भागवत में कथित विचारों के द्वारा अपने जड़ाश्रित बुद्धिदोषों को नियन्त्रित करते हैं, वे ही समझ सकते हैं कि, सर्वसार भगवद्भजन ही श्रीमद्भागवत का एकमात्र प्रयोजनीय विषय है।

श्रीमद्भागवतके विषय में भ्रान्त व्यक्ति का गौरव बढ़ाने का प्रयास करने वाले व्यक्ति को यम से दण्ड की प्राप्ति-

से-सब लोकेर यथा भागवते भ्रम।
ताते ये अन्येर गर्व, तार शास्ता यम॥२७॥

(२७) प० अनु०—जहाँ ऐसे लोग भी भागवत को समझने में भ्रमित हो जाते हैं, वहाँ दूसरा कोई यदि अपने आपको भागवत का अधिकारी समझकर अहंकार करता है, तो यमराज उसे दण्डित करते हैं।

(२७) गौः भाः—बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न, सभी गुणों से युक्त ज्ञानवान पण्डित भी श्रीमद्भागवत के अर्थ को समझने में भ्रमित हो सकते हैं, इस प्रकार के पण्डितों का गौरव बढ़ाने के लिए जो लोग प्रयास करते हैं, उन लोगों को न्याय और अन्याय के विचारक अथवा पुरस्कार और तिरस्कार के दाता यमराज दण्ड प्रदान करते हैं।

भागवत-व्याख्याता होकर भी जो नित्यानन्द में श्रद्धारहित है वह निर्बोध है-

भागवत पड़ाइया का'रो बुद्धिनाश।
निन्दे अवधूतचाँदे जगत् निवास॥२८॥

(२८) प० अनु०—भागवत का अध्यापन करते हुये भी कुछ लोगों की बुद्धि नष्ट हो जाने के कारण वे जगन्निवास अवधूत-चाँद श्रीनित्यानन्द की निन्दा करते हैं।

(२८) गौः भाः—अवधूत परमहंस की तरह आचरण करते हैं एवं वे समग्र जगत् के मूल आकर अधिष्ठान के आधार हैं। ऐसे श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रति श्रद्धारहित होकर जो बाहर से श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते हैं, वे स्थिर-बुद्धि-रहित होकर विचलित हो जाते हैं। भक्तिरहित पण्डितगण 'भागवत में

अधिकार प्राप्त किया है', ऐसा मन-ही-मन सोचने पर भी भक्ति के मूल आश्रय वस्तु (श्रीनित्यानन्द) की निन्दा करने से भागवत के विषय में उनका कोई कभी भी अधिकार हुआ नहीं है, ऐसा जानना होगा।

नगर में भ्रमण करते-करते मद्यप के घर के सामने वारुणी की गन्ध प्राप्ति से प्रभु का बलराम भाव-

एइमत प्रतिदिन प्रभु विश्वम्भर।
भ्रमये नगर सर्व संगे अनुचर॥२९॥
एकदिन ठाकुर पण्डित-संगे करि'।
नगर भ्रमये विश्वम्भर गौर-हरि॥३०॥
नगरेर अन्ते आछे मद्यपेर घर।
याइते पाइला गन्ध प्रभु विश्वम्भर॥३१॥
मद्य-गन्धे वारुणीर हइल स्मरण।
बलराम-भाव हैल शचीर नन्दन॥३२॥

(२९-३२) प० अनु०—इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर प्रतिदिन अपने अनुचरों के साथ पूरे नगर में भ्रमण किया करते थे। एकदिन श्रीवास पण्डित को साथ लेकर ठाकुर विश्वम्भर गौर-हरि नगर में भ्रमण कर रहे थे। नगर के अन्त में एक मद्यप का घर था। वहाँ से गुजरते समय प्रभु विश्वम्भर को वारुणी की गन्ध मिली। मदिरा की गन्ध मिलते ही प्रभु शचीनन्दन को वारुणी का स्मरण हो आया। वे बलराम के भाव से आवेशित हो गये।

(३२) गौः भाः—भगवान् श्रीगौरसुन्दर स्वयंरूप वस्तु हैं। उनमें स्वयं प्रकाश के विचित्र विलास समाए हुये हैं। सम्भोग-रस के आश्रय में श्रीबलदेव-प्रभु वारुणी पीकर प्रमत्त हो जाया करते थे। उसका स्मरण करके श्रीगौरसुन्दर आश्रयजातीय बलदेव के भाव सेस विभावित होकर बाह्य जगत् की लीलाओं को भूल गये।

प्रभु-द्वारा मद्यप के घर जाने की इच्छा प्रकट करना एवं श्रीवास के द्वारा इसमें बाधा डालना-

बाह्य पासरिया प्रभु करये हुँकार।
'उठौं गिया' श्रीवासेरे बले बार बार॥३३॥
प्रभु बले,-"श्रीनिवास! एइ उठौं गिया।"
माना करे श्रीनिवास चरणे धरिया॥३४॥

(३३-३४) प० अनु०—बाह्य चेतना भूलकर प्रभु ने हुँकार की और श्रीवास से बार-बार कहने लगे कि, 'चलो, भीतर चलते हैं।' प्रभु ने कहा,-"श्रीनिवास! मैं जा रहा हूँ।" परन्तु श्रीनिवास ने चरण पकड़कर उन्हें माना किया।

प्रभु-द्वारा विशुद्ध-सत्त्व-विचार का परित्याग करके राजस-तामस विचार का अनुमोदन करने पर भक्त का देह-त्याग देने का संकल्प एवं भक्तवाञ्छापूर्णकारी श्रीगौरहरि के उस प्रयास में बाधा-प्रदान-

प्रभु बले,-"मोरेओ कि विधि प्रतिषेध?"
तथापिह श्रीनिवास करये निषेध॥३५॥
श्रीनिवास बलये,-"तुमि जगतेर पिता।
तुमि क्षय करिले वा के आर रक्षिता?३६॥
ना बुझि' तोमार लीला निन्दिवे ये जन।
जन्मे जन्मे दुःखे तार हइबे मरण॥३७॥
नित्य धर्ममय तुमि प्रभु सनातन।
ए लीला तोमार बुझिवेक कोन् जन॥३८॥
यदि तुमि उठ गिया मद्यपेर घरे।
प्रविष्ट हइमु मुञि गंगार भितरे॥"३९॥
भक्तेर संकल्प प्रभु ना करे लंघन।
हासे प्रभु श्रीवासेर शुनिया वचन॥४०॥
प्रभु बले,-"तोमार नाहिक या'ते इच्छा।
ना उठिब, तोर वाक्य ना करिब मिछा॥"४१॥

(३५–४१) प० अनु०—प्रभु बोले,–"क्या मुझे भी विधि–निषेध का पालन करना पड़ेगा? फिर भी श्रीवास उन्हें जाने को मना करते रहे। श्रीवास ने कहा,–"आप जगत् के पिता हैं, यदि आप ही संहार करने लगे, तो रखवाला कौन है? बिना समझे जो आपकी लीलाओं की निन्दा करेगा, वह जन्म–जन्मान्तर दुःख–भोगकर मरेगा।हे प्रभु! आप नित्य सनातन धर्ममय पुरुष हैं, आपकी यह लीला कौन समझ सकता है? यदिद आप मद्यप के घर चले गये, तो मैं गंगा में प्रवेश करूँगा।" प्रभु भक्त के संकल्प का उल्लंघन नहीं करते। श्रीवास की बात सुनकर प्रभु हँसने लगे। प्रभु ने कहा,–"तुम्हारी इच्छा के विपरीत मैं कुछ नहीं करूँगा। मैं नहीं आऊँगा। तुम्हारा वचन मैं व्यर्थ नहीं होने दूँगा।"

(३५) गौः भाः—श्रीवास–पण्डित ने जब महाप्रभु को पद्यपायी (शराबी) के घर में प्रवेश करने से मना किया, तब महाप्रभु ने उनसे कहा,–"मैं विधि–निषेध से परे हूँ, इसलिए मुझे निषेध करने का आदर्श जगत् में उपस्थित करने की किसी को कोई आवश्यकता नही है।"

(४१) गौः भाः—श्रीवास–पण्डित के श्रीमन् महाप्रभु से मद्यपायी (शराबी) के घर जाने की विभिन्न प्रकार से मना करने पर भी जब महाप्रभु ने तय किया कि, भक्त का कोई भी आवेदन वे नहीं सुनेंगें, तब श्रीवास ने गंगाजल में प्रेवश करने की इच्छा प्रकट की। इसे सुनकर भगवान् श्रीगौरसुन्दर ने भक्त की इच्छा के विरुद्ध अपने संकल्प का परित्याग कर दिया। भगवान् गौरसुन्दर ने विशुद्ध सात्त्विक विचार का परित्याग करके मिश्र तामसिक या राजसिक बातों का अनुमोदन कभी नहीं किया। परन्तु यहाँ भक्तश्रेष्ठ श्रीवास ने जब देखा कि, मिश्र–सत्त्व के लीलाभिनय करने का दुर्योग उपस्थित हो रहा है, तो उन्होंने श्रीगौरसुन्दर को ऐसा करने से रोकने के लिए समुचित यत्न किया। ऐसे बहुत लोग हैं जो सोचते हैं कि,–श्रीगौरसुन्दर जब सर्वशक्तिमान हैं, तब कोई भी राजस अथवा तामस विचार वे अपनी लीला में प्रकट करने में समर्थ हैं; परन्तु प्रकृत शुद्धभक्तगण भगवान का वैसा विशुद्ध सत्त्व–विचार–परित्याग कर विकारयुक्त लीलाओं के अनुमोदनकारी के रूप में स्थापना नहीं करते हैं।

प्रभु द्वारा अपने बलराम–भाव का संवरण करते हुये धीरे–धीरे गमन एवं प्रभु को देखकर मद्यपायियों (शराबी लोगों) का नृत्यकीर्तन–

श्रीवास–वचने संवरिया राम–भाव।
धीरे धीरे राजपथे चले महाभाग॥४२॥
मद्य–पाने मत्त सब ठाकुरे देखिया।
'हरि, हरि' बले सब डाकिया डाकिया॥४३॥
केह बले,–''भाल भाल निमाइ–पंडित।
भाल भाल लागे, भाल गाय नाट गीत॥''४४॥
'हरि' बलि' हाते तालि दिया केह नाचे।
उल्लासे मद्यपगण याय ता'न पाछे॥४५॥

(४२–४५) प० अनु०—श्रीवास के वचन सुनकर महाप्रभु ने अपने बलराम–भाव को परित्याग कर दिया और वे धीरे–धीरे राजमार्ग से गुजरने लगे। मदिरा पीने के कारण उन्मत्त सभी शराबी ठाकुर कोा देखकर जोर–जोर से 'हरि हरि' कहने लगे। कोई बोला–"निमाइ–पण्डित बहुत ही अच्छे हैं। तुम्हारा भाव अच्छा लगता है, तुम्हारा नृत्य गीत भी अच्छा है।" कोई 'हरि–हरि' कहकर हाथों से तालियाँ बजाते हुये नृत्य करने लगा। इस प्रकार शराबी लोग उल्लास के साथ उनके पीछे–पीछे चलने लगे।

(४४) गौः भाः—मद्यपायी के घर न

जाकर मद्यपायी-जैसी उन्मत्तता का प्रदर्शन करते हुये निमाइ पण्डित की राजमार्ग से गुजरते समय कोई-कोई मद्यप स्तुति करने लगा एवं उनके नृत्य-गीत, लय-मान, सुरतान आदि संगीत-पारदर्शित की प्रशंसा भी करने लगा।

(४५) गौः भाः—कोई-कोई मतवाला गौरसुन्दर के पीछे-पीछे उल्लासपूर्वक हरिकीर्तन करते हुये हाथ जोड़कर उच्चध्वनि एवं नृत्य करते-करते चलने लगा। मतवाले भी भगवान् और भक्तों का सान्निध्य प्राप्त करके हरि-रस में प्रमत्त हो गये।

भगवान् और भक्तों का सान्निध्य प्राप्त करके मद्यपायीगणों में भी हरिरस-मत्तता-

''हरिबोल हरिबोल जय नारायण।''
बलिया आनन्दे नाचे मद्यपेर गण॥४६॥
महा-हरि-ध्वनि करे मद्यपेर गणे।
एइ मत हय विष्णु-वैष्णव-दर्शन॥४७॥

(४६-४७) प० अनु०—शराबी लोग भी "हरिबोल! हरिबोल! जय नारायण!" कहकर आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे और महान् हरिध्वनि करने लगे। विष्णु और वैष्णवों के दर्शन करने से ऐसा ही होता है।

मद्यपों का नृत्यकीर्तन देखकर गौरसुन्दर का हँसना एवं भगवत् प्रभाव-दर्शन से श्रीवास का प्रेमक्रन्दन-

मद्यपेर चेष्टा देखि' विश्वम्भर हासे।
आनन्दे श्रीवास कान्दे देखि' परकाशे॥४८॥

(४८) प० अनु०—शराबियों की चेष्टाओं को देखकर विश्वम्भर हँसने लगे। प्रभु का ऐसा प्रकाश देखकर श्रीवास आनन्द से रोने लगे।

श्रीचैतन्य-दर्शन के प्रभाव से मद्यपायियों में भी आनन्द; परन्तु पापीगण निन्दाधर्म में अवस्थित रहने के कारण उससे वंचित-

मद्यपेओ सुख पाय चैतन्ये देखिया।
एकले निन्दये पापी संन्यासी देखिया॥४९॥

(४९) प० अनु०—श्रीचैतन्य के दर्शन करके शराबियों को भी सुख मिला। केवल पापी संन्यासी ही उनको देखकर निन्दा करते हैं।

(४९) गौः भाः—महाप्रभु कोा देखकर मतवाले भी आनन्दित हुये। केवल पापियों ने बिना समझे त्यागधर्म के विपरीत आचरण करते हुये उनकी निन्दा की।

श्रीचैतन्यदेव की लीला अथवा प्रतिष्ठा का जो अनुमोदन नहीं करता, अपने दुर्भाग्य का आवाहन करता है-

चैतन्य-चन्द्रेर यशे यार मने दुःख।
कोन जन्मे-आश्रमे नाहिक तार सुख॥५०॥

(५०) प० अनु०—श्रीचैतन्यचन्द्र के यश को देखकर जिसके मन में दुःख होता है, उसे किसी भी जन्म में या किसी भी आश्रम में कभी भी सुख नहीं मिलता है।

(५०) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु की प्रत्येक क्रिया से एवं प्रत्येक प्रतिष्ठा से जिन लोगों को दुःख मिलता है, उन लोगों में किसी भी जन्म या आश्रम में किसी प्रकार सुखोदय होने की संभावना नहीं है।

ग्रन्थकार के द्वारा श्रीचैतन्यदेव का सान्निध्य प्राप्त एवं भगवद् गुणानुगान में सुयोग-प्राप्त मद्यपायियों के भी सौभाग्य की प्रशंसा-

ये देखिल चैतन्य-चन्द्रेर अवतार।
हउक मद्यप, तबु तारे नमस्कार॥५१॥
मद्यपेरे शुभ-दृष्टि करि' विश्वम्भर।
निजावेशे भ्रमे प्रभु नगरे नगर॥५२॥

(५१-५२) प० अनु०—जिन्होंने चैतन्यचन्द्र के अवतार को देखा, वे यद्यपि शराबी थे,

फिर भी मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। शराबियों के प्रति शुभ-दृष्टिपात करके विश्वम्भर ने अपने आवेश में पूरे नगर में भ्रमण किया।

(५१) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु के प्रकटकाल में जिन आसव-सेवियों को उनका सान्निध्य मिला था, उन सबके वैसे पापकर्म में निरत रहने के कारण श्रीचैतन्यदेव की विशुद्ध-सत्तमयी लीला के प्रचार में सन्देह उपस्थित हो सकता है, परन्तु उक्त भाग्यशाली पुरुषों को ग्रन्थकार यह सोचकर नमस्कार कर रहे हैं कि, पुराने दुष्कर्मों के वशीभूत होने के कारण अवशेष रह गया था; फिर भी प्रचुर सुकृति के कारण उन्हें भगवद्-गुणानुगान करने का जो सुअवसर मिला, उसके कारण उन लोगों का दुर्लभ भाग्य सभी प्रकार से प्रशंसनीय है।

नगर में भ्रमण करते-करते देवानन्द को देखकर प्रभु का क्रोध-

कत दूरे देखिया पण्डित-देवानन्द।
महाक्रोधे किछु तारे बले गौरचन्द्र॥५३॥

(५३) प० अनु०—दूर से देवानन्द पण्डित को देखकर महाक्रोध से गौरचन्द्र ने उन्हें कुछ कहा।

प्रभु के क्रोध का कारण-

'देवानन्द पण्डितेर श्रीवासेर स्थाने।
पूर्व अपराध आछे', ताहा हैल मने॥५४॥
से-समये नाहि किछु प्रभुर प्रकाश।
प्रेमशून्य जगते दुःखित सब दास॥५५॥
यदि वा पड़ाय केह गीता-भावगत।
तथापि ना शुने केह भक्ति-अभिमत॥५६॥
से-समये देवानन्द परम-महान्त।
लोके बड़ अपेक्षित परम-सुशान्त॥५७॥
भागवत अध्यापना करे निरन्तर।
आकुमार संन्यासीर प्राय व्रतधर॥५८॥
दैवे एकदिन तथा गेला श्रीनिवास।
भागवत शुनिते करिया अभिलाष॥५९॥
अक्षरे अक्षरे भागवत प्रेममय।
शुनिया द्रविल श्रीनिवासेर हृदय॥६०॥
भागवत शुनिया कान्दये श्रीनिवास।
महाभागवत विप्र छाड़े घन श्वास॥६९॥
पापिष्ठ पड़ुया बले,-''हइल जंजाल।
पड़िते ना पाइ भाइ, व्यर्थ याय काल॥''६२॥
सम्वरण नहे श्रीनिवासेर रोदन।
चैतन्येर प्रिय-देह जगत-पावन॥६३॥
पापिष्ठ पड़ुया सब युकति करिया।
बाहिरे एड़िल लजा श्रीवासे टानिया॥६४॥
दवानन्द पण्डित ना कैल निवारण।
गुरु यथा भक्तशून्य, तथा शिष्यगण॥६५॥
बाह्य पाइ' दुःखेते श्रीवास गेला घर।
ताहा सब जाने अन्तर्यामि-विश्वम्भर॥६६॥

(५४-६६) पु० अनु०—'देवानन्द पण्डित ने कुछ दिनों पहले श्रीवास के निकट एक अपराध किया था।' वह उन्हें याद हो आया था। उस समय प्रभु की महिमा बिलकुल अप्रकाशित थी। प्रेमरहित जागत् में उनके सभी दास दुःखित थे। यद्यपि कोई-कोई गीता-भागवत पढ़ाते थे, तथापि यह सुनने में नहीं आता था कि इसका अभिप्राय भक्ति है। उन दिनों परम महान्त, परम सुशांत देवानन्द पण्डित निरन्तर भागवत का अध्यापन किया करते थे। लोग उनके प्रति खूब सम्मान प्रदर्शित करते थे और उन्हें बहुत चाहते थे। बाल्यकाल से ही वे संन्यासी की भाँति व्रतधारी थे। दैव-विधानानुसार एकदिन श्रीवास भागवत सुनने की अभिलाष से वहाँ गये। भागवत का प्रत्येक अक्षर प्रेम से परिपूर्ण है। उसे सुनकर महा-भागवत ब्राह्मण श्रीनिवास रोने लगे और गहरी श्वास छोड़ने

लगे। उसे देखकर पढ़ने वाले पापिष्ठ छात्र कहने लगे-"हम लोग झंझट में फँस गये हैं। हमारा समय व्यर्थ व्यतीत हो रहा है भाई।" चैतन्य के प्रिय देहस्वरूप जगत्-पावन श्रीनिवास अपना क्रन्दन संवरण नहीं कर पाये। सभी पढ़ने वाले पापिष्ठ छात्रों ने आपस में परामर्श करके श्रीवास को खींचकर बाहर कर दिया। देवानन्द पण्डित ने यह सब देखते हुये भी उन्हें नहीं रोका। जैसे भक्तिरहित गुरु थे, वैसे ही शिष्यगण। बाह्म बोध होने पर दुःखित श्रीवास अपने घर चले गए। अन्तर्यामी विश्वम्भर यह सब कुछ जान गये।

(५६) गौः भाः-उस समय अध्यापकों में कोई-कोई गीता और कोई-कोई श्रीमद्भागवत भी पढ़ाते थे; परन्तु निजी आचरण में भगवत-सेवोन्मुखता के अभाव के कारण भक्ति का अन्वेषण करने में वे बिलकुल असमर्थ थे।

(५७) गौः भाः—देवानन्द पण्डित बहुत से गुणों से युक्त एवं शान्त स्वभाव के व्यक्ति थे; इस कारण लोग उनके प्रति अधिाक सम्मान प्रदर्शित करते हुये उनका लंघन नहीं करते थे।

(५८) गौः भाः—देवानन्द भागवत-पाठ करते हुये संन्यासी की भाँति व्रतविशिष्ट होकर बाल्यकाल से ही प्रह्मचर्य का पालन करते रहते थे। परन्तु भक्तिरहित होने के कारण उनका वह ब्रह्मचर्यानुष्ठान भक्तसेवा-विमुखता को प्रदर्शित करता रहता था। इसलिए कौमार्यव्रत धारण करते हुये भी अथवा त्यागमार्ग पर चलते हुये भी वे उन सब सद्गुणों का फल प्राप्त करने में असमर्थ रह गये।

(६२) गौः भाः—जो लोग शब्दसिद्धि प्राप्त करने के लिए देवानन्द के पास भागवत पढ़ने गये थे एवं लौकिक विचारों में प्रतिष्ठा प्राप्त करना ही जिनका उद्देश्य था, वे सब भागवत पाठ के समय श्रीवास पण्डित की भेजनचेष्टा (भक्ति) को समझ नहीं पाये। श्रीवास के शरीर में अश्रु, कम्प एवं रोमांच आदि सात्विक भाव-समूह को देखकर आध्यक्षिक राज्य में अवस्थित विद्यार्थियों ने समझा कि, श्रीवास के कारण उन लोगों के पाठ-श्रवण में रुकावटें खड़ी हो रही हैं।

(६३-६४) गौः भाः—श्रीवास का रोना बन्द होने का नाम ही नहीं ले रहा था। इससे पाठ सुनने में व्याघात उत्पन्न होने के कारण विद्यार्थीगण श्रीचैतन्य के नितान्त प्रियजन को जगत्-पावन के रूप में पहचानने में असमर्थ रहे। श्रीवास के चिन्मय श्रीअंग में जो सब सात्विक आगंतुक भावसमूह दिखाई दिया था, वही जगत् में सभी प्रकार की पवित्रता का आनयन करता है— इस सच्चाई को न समझने के कारण उन विद्यार्थियों ने श्रीवास को बलपूर्वक पकड़कर पाठागार (पाठशाला) से बाहर निकाल दिया। इससे उन लोगों को अध्ययन के लिए सुअवसर मिल गया।

(६५) गौः भाः— यदि देवानन्द पण्डित में थोड़ी-सी भी भगवत्-सेवोन्मुखता रही होती, तो वे निश्चितरूप से उन अबोध छात्रों को वैसा भक्तिरहित कार्य करने से रोक देते। अतएव देवानन्द पण्डित एवं विद्यार्थियों—सभी विषयभोगों में निरत, तर्कहत, पाठकमात्र थे। श्रीवास-पण्डित श्रीमद्भागवत के अर्थास्वादन करने का सुअवसर न मिलने पर दुःखित होकर अपने घर चले आये। अन्तर्यामी भगवान् श्रीचैतन्यदेव देवानन्द के अपराध की कथा को जानते थे।

भक्त को अपमानित करने वाले देवानन्द का प्रभु-द्वारा तिरस्कार-

देवानन्द–दरशने हइल स्मरण।
क्रोधमुखे बले प्रभु शचीर नन्दन॥६७॥
''अये अये अवानन्द! बलि ये तोमारे।
तुमि एबे भागवत पड़ाओ सबारे॥६८॥
ये श्रीवासे देखिते गंगार मनोरथ।
हेन–जन गेला शुनिवारे भगवत॥६९॥
कोन अपराधे ताने शिष्य हाथाइया।
बाड़ीर बाहिरे लइया एड़िला टानिया?७०॥
भागवत शुनिते ये कान्दे कृष्ण–रसे।
टानिया फेलिते कि ताहार योग्य आइसे?७१॥
बुझिलाम, तुमि से पड़ाओ भागवत।
कोन जन्मे ना जानह ग्रन्थ–अभिमत॥७२॥
परिपूर्ण करिया ये सब जने खाय।
तबे बहिर्देशे गिया से सन्तोष पाय॥७३॥
प्रेममय भागवत पड़ाइया तुमि।
तत सुख ना पाइला, कहिलाम आमि॥''७४॥

(६७–७४) प० अनु०—देवानन्द को देखकर प्रभु शचीनन्द को सब कुछ स्मरण हो आया। क्रोधान्वित होकर उन्होंने देवानन्द से कहा– "अरे ओ देवानन्द! मैं तुम्हें पूछ रहा हूँ कि आजकल सभी को भागवत पढ़ाने लगे हो, फिर गंगा भी जिनके दर्शनों को लालायित रहती है, वे श्रीवास जब भागवत सुनने के लिए तुम्हारे पास गये थे, तब कौन–से अपराध के कारण तुमने अपने शिष्यों के द्वारा उन्हें खींचकर घर से बाहर कर दिया था? भागवत सुनते–सुनते जो कृष्णरस के आवेश में रोते हैं, उन्हें खींचकर बाहर कर देना क्या उचित है? मैंने जान लिया तुम भागवत पढ़ाते हो, परन्तु उसका अभीष्ट मत किसी जन्म में भी नहीं जानते हो। जो लोग खूब पेट भरकर भोजन कर लेते हैं, उनको मल त्यागकर ही सुख मिलता हैं मैं तुमसे यही कह रहा हूँ कि, प्रेम से परिपूर्ण भागवत को पढ़ाकर भी तुम्हे वह सुख भी नहीं मिल पा रहा है।"

(६७–७१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर देवानन्द को देखते ही भक्त श्रीवास के निर्यात का स्मरण करके उनसे कहने लगे,– "श्रीमद्भागवत के कीर्तन से हृदय द्रवीभूत होता है, केवल बाहरी जगत् के भोगपरायणजन ही कठिन हृदय का पोषण करने में समर्थ हैं। श्रीवास पण्डित की कम्प–रोमांच आदि चेष्टाएँ जिस समय प्रबल हुई थीं, उस समय तुमने और तुम्हारे छात्रों ने बिना समझे उनको भागवत–श्रवण से निरस्त करके विताड़ित कर दिया था। परन्तु श्रीवास–जैसे भक्तों के दर्शन करने के लिए ही शिव के सिर पर अवस्थित गंगादेवी निम्नगामिनी होकर नदी के रूप में प्रकट हुई हैं। इस कारण तुमने अपने शिष्यों के द्वारा बलपूर्वक श्रीवास को बाहर निकलवा दिया था, उसी अपराध पुंज ने तुम्हें सभी प्रकार से भगवद्–विमुख बना दिया है। तुम या तुम्हारे शिष्यों ने भगवद्–भक्तों के आदर्श श्रीवास के किस व्यवहार से उन्हें दंड पाने के योग्य समझ लिया था?"

(७२) गौः भाः—देवानन्द यद्यपि भागवत के व्याख्याता थे, तथापि वे जन्म–भर भागवत के तात्पर्य को समझने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके।

(७३–७४) गौः भाः—कोई–कोई इस पद्य की व्याख्या इस प्रकार भी करते हैं— परिपूर्ण रूप से भोजन करके बहिर्देश में गमन करने पर भी लोग जिस तरह क्लेश के बाद शान्ति प्राप्त करते हैं, तुम्हारे भागवत–पाठ से उस प्रकार की अकिंचित्कर शान्ति भी किसी को नहीं मिली है। श्रीमद्भागवत–पाठ के फलस्वरूप हरि–प्रेम के आस्वादन की बात तो दूर, तुम्हारी व्याख्या साधारण दुःखों को भी दूर करने में असमर्थ रही है।

भागवत के तात्पर्य से अनभिज्ञ देवानन्द की भक्तनिर्यातन-हेतु भगवद् विमुखता, तिरस्कार से देवानन्द को लज्जा-

शुनिया वचन देवानन्द द्विजवर।
लज्जाय रहिला, किछु ना करे उत्तर॥७५॥
क्रोधावेशे बलिया चलिला विश्वम्भर।
दुःखित चलिला देवानन्द निज-घर॥७६॥

(७५-७६) प० अनु०—प्रभु के वचनों को सुनकर द्विजवर देवानन्द लज्जित होकर रह गये, उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। क्रोध के आवेश में इतना कहकर विश्वम्भर चल दिये। दुःखित देवानन्द भी अपने घर की ओर चले गये।

चैतन्य के वाक्यदण्ड की प्राप्ति से देवानन्द में सुकृति का उदय-

तथापिह देवानन्द बड़ पुण्यवन्त।
वचनेओ प्रभु यारे करिलेन दण्ड॥७७॥
चैतन्येर दण्ड महा-सुकृति से पाय।
याँर दण्डे मरिले वैकुण्ठे लोक याय॥७८॥

(७७-७८) प० अनु०— तथापि (इतना होने पर भी) देवानन्द बहुत ही पुण्यंतजन थे, जिन्हें प्रभु ने वचनों के द्वारा दंड प्रदान किया था। जिनके दंड से मरने पर लोग वैकुण्ठ को जाते हैं, उन चैतन्य का दंड किसी महान सुकृतिशाली को ही मिलता है।

(७५-७८) गौः भाः—श्रीमहाप्रभु के वचन सुनकर देवानन्द लज्जित हो गये। प्रभु का वाक्यदण्ड मिलने पर देवानन्द में सुकृति का उदय हुआ। भगवान् विष्णु जिनका संहार करते हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाती है। इसलिए देवानन्द के प्रति भगवान् का यह वाक्य-दण्ड आगे चलकर देवानन्द के लिए सौभाग्य प्राप्ति का कारण बन गया।

चैतन्य के दण्ड-प्रदान का अनुमोदन करने वाले व्यक्ति ही सौभाग्यशाली हैं एवं इससे असंतुष्ट व्यक्ति यम के द्वारा दण्डनीय हैं-

चैतन्येर दण्ड ये मस्तके करि' लय।
सेइ दण्ड तारे प्रेमभक्ति-योग हय॥७९॥
चैतन्येर दण्डेयार चित्ते नाहि भय।
जन्मे जन्मे से पापिष्ठ यमदण्डय हय॥८०॥

(७९-८०) प० अनु०—चैतन्य से मिले दण्ड को जो सिर झुकाकर ग्रहण करता है, उसे वह दण्ड प्रेमभक्ति-योग तक दे देता है। चैतन्य के दण्ड से जो भयभीत नहीं होता है, उस पापिष्ठ को जन्म-जन्मान्तर तक यम से दण्ड मिलता है।

(७९) गौः भाः—जो व्यक्ति श्रीचैतन्यदेव के दण्ड प्रदान का सम्मान नहीं करता है, वह प्रेमभक्ति के स्वरूप को समझने में असमर्थ रह जाता हैं जो भगवान् से मिले दण्ड को अपने मंगल का कारण समझता है, उसे ही प्रेमभकित प्राप्त करने का सुअवसर मिलता है।

(८०) गौः भाः— श्रीचैतन्यदेव के असंतोष से जिसका हृदय उद्वेलित नहीं होता है, ऐसे पापचित्त व्यक्ति को यम प्रत्येक जन्म में दण्ड प्रदान करते हैं।

प्रपंच में आविर्भूत श्रीकृष्ण का चतुर्विध विग्रह-

भागवत, तुलसी गंगाय, भक्त-जने।
चतुर्द्धा विग्रह कृष्ण एइ चारि सने॥८१॥

(८१) प० अनु०—भागवत, तुलसी, गंगा एवं भक्त के रूप में कृष्ण के चार प्रकार के विग्रह हैं।

(८१) गौः भाः—श्रीकृष्ण चार मूर्त्तियाँ ध ाारण करके प्रपंच में अपना विग्रह प्रकाशित करते हैं। यद्यपि इन चारों मूर्त्तियों के अचानक दर्शन करने पर यह समझ में नहीं आता है

कि, वे सब भगवान् हैं, तथापि भगवान् से सम्बन्ध रखने वाली ये चारों वस्तुएँ भागवान् के प्रकाश-विग्रह के रूप में पूजित होती हैं। वैष्णव, तुलसी, गंगा एवं श्रीमद्भागवत ग्रन्थ—ये चारों ही श्रीकृष्ण के प्रकाश-विग्रह हैं।

अर्च्चाविग्रह एवं उपर्युक्त चतुर्विध विग्रह के बीच का तारतम्य-

जीवन्यास करिले श्रीमूर्त्ति पूज्य हय।
'जन्म मात्र ए चारि ईश्वर' वेदे कय॥८२॥

(८२) प० अनु०— प्राण-प्रतिष्ठा करने पर श्रीमूर्त्ति पूजनीय होती है, किन्तु "ये चारों जन्म-मात्र से ही ईश्वर हैं," ऐसा वेद कहते हैं।

(८२) गौः भाः— बाहरी विचार से श्रीअर्च्चाविग्रह में प्राण-प्रतिष्ठा-पूर्वक पूज्यबुद्धि करनी पड़ती है। वैसी प्राण-प्रतिष्ठा न करने पर भी श्रीमद्भागवत, तुलसी, गंगा एवं वैष्ाव,-ये चारों जगत् की भोग्य वस्तुओं के रूप में परिदृष्ट होने पर भी वास्तव में भोक्तृ-भाव-सम्पन्न, ईश्वर से अभिन्न एवं साक्षात् प्रभुतत्त्व हैं,—चिन्मय ज्ञान-प्रदाता वेद ऐसा ही कहते हैं।

पार्षद-सहित चैतन्यदेव के चरणों में ग्रन्थकार के द्वारा एकनिष्ठता का ज्ञापन-

चैतन्य कथार आदि अन्त नाहि जानि।
ये-ते-मते चैतन्येर यश से बाखानि॥८३॥
चैतन्य-दासेर पाये मोर नमस्कार।
इथे अपराध किछु नहुक आमार॥८४॥
मध्यखण्ड कथा येन अमृतेर खण्ड।
ये कथा शुनिले घुचे अन्तर-पाषण्ड॥८५
चैतन्येर प्रियदेह नित्यानन्द राय।
प्रभु-भृत्य-संगे येन ना छाड़े आमाय॥८६॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द चाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥८७॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्ड देवानन्द वाक्यदण्ड वर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः।

(८३-८७) प० अनु०— चैतन्य की कथा का आदि-अन्त मैं नहीं जानता हूँ। मैं तो जैसे-तैसे चैतन्य का यश वर्णन कर रहा हूँ। चैतन्य के दासों के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ। इसमें मुझसे कोई अपराध ने हो जाये। मध्यखण्ड की कथा अमृत इससे मेरी मनोवांछित आशा पूरी हो जाएगी। विधि-अनुसार भारती का शिष्य 'भारती' होना चाहिए, किन्तु यह नाम इनके योग्य नहीं है। भाग्यवान् न्यासिवर इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि शुद्ध सरस्वती देवी आकर उनकी जिह्वा पर अधिष्ठत हो गईं।

(१७३) गौः भाः—साम्प्रदायिक श्रेणीविशेष का नाम-सम्प्रदाय में स्थित विशेष नाम के साथ ग्रहण किया जाता है; परन्तु यहाँ केशव भारती से श्रीगौरसुन्दर ने 'भारती' नाम ग्रहण नहीं किया। महाप्रभु के नामकरण के समय भारती की जिह्वा पर शुद्धभक्ति के प्रभाव से परविद्या-वाणी उपस्थित हो गईं।

इति गौड़ीय, भाष्य में एकविंश अध्याय समाप्त

O

द्वाविंश अध्याय

द्वाविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमन् महाप्रभु के द्वारा अपनी जननी के माध्यम से वैष्णव-अपराध के गुरुत्व का प्रदर्शन करते हुये सभी को इससे सतर्क किया गया है।

श्रीगौरसुन्दर ने देवानन्द पण्डित को वाक्यदण्ड प्रदान करके सभी को यह शिक्षा दी है कि, वैष्णव के प्रति अपराध करके कृष्णभजन करने की चेष्टा प्रदर्शित करने पर भी वैष्णव की कृपा न मिलने के कारण किसी को कृष्णप्रेम की प्राप्ति नहीं होती है।

श्रीगौरचन्द्र ने अपनी माता के वैष्णवापराध- क्षमापन की लीला के द्वारा वैष्णवापराध का और भी गुरुत्व प्रदर्शित किया है।

एकदिन श्रीगौरसुन्दर श्रीवास के मन्दिर में विष्णु के सिंहासन पर आरोहण करके निज-तत्त्व का अपने मुख से वर्णन करने लगे। श्रीश्रीमन् नित्यानन्द प्रभु एवं श्रीगदाधर-गोस्वामी कउस अवसर पर समयोचित सेवा करने लगे। महाप्रभु ने सभी को अभीप्सित (इच्छानुसार) वर प्रदान किये। इसी बीच श्रीवास पण्डित ने गौरचन्द्र से शचीदेवी को प्रेम प्रदान करने का अनुरोध किया। इसके उत्तर में श्रीगौरांगदेव ने कहा कि, वैष्णवापराध के कारण मेरी जननी प्रेमभक्ति की अधिकारिणी नहीं है।

सारे जगत् के प्रभु श्रीभगवान् गौरचन्द्र की जननी को भी प्रेमभक्ति पाने का अधिकार नहीं है, यह सुनकर भक्तगण अत्यन्त विषादग्रस्त चित्त से देह को त्याग देने का संकल्प करने के लिए उद्यत हो गये। इस पर महाप्रभु ने शचीदेवी के वैष्णवापराध का कारण बताते हुये कहा कि, वैष्णव के प्रति अपराध होने से वैष्णव के अतिरिक्त स्वयं भगवान् भी उस अपराध का खंडन नहीं कर सकते हैं एवं उसके ज्वलन्त दृष्टान्त के रूप में उन्होंने अम्बरीष के प्रति दुर्वासा के द्वारा किये गये अपराध का उल्लेख किया।

अद्वैत प्रभु के प्रति शचीदेवी द्वारा अपराध(?) हुआ है-यह जानकर सभी अद्वैत प्रभु के पास गये और शचीदेवी ने जो अपराध (?) किया है, उसका परिहार कर देने के लिए सभी ने उनसे अनुराध किया। यह सुनकर श्रीअद्वैताचार्य बड़े लज्जित हुये और विष्णु का स्मरण करते हुये वे शचीदेवी की महिमा का कीर्तन करते-करते आविष्ट हो गये। उसी समय सुयोग मिलने पर शचीमाता ने अद्वैत-प्रभु की चरण-धूलि अपने मस्तक पर धारण कर ली और प्रेमसागर में डूब गईं। यह देखकर परम प्रीतिसहित गौरहरि ने कहा, अब जननी प्रेमभक्ति की अधिकारिणी हुई हैं।

अद्वैत के प्रति शचीदेवी के अपराध का कारण इस प्रकार है— एक दिन श्रीमन् महाप्रभु के बड़े भाई विश्वरूप अपने पिता जगन्नाथ मिश्र के साथ भट्टाचार्यों की सभा में गये। वहाँ किसी एक भट्टाचार्य ने विश्वरूप से पठनीय विषय के बारे में प्रश्न पूछा।

इस पर उन्होंने जो उत्तर दिया, उससे पिता जगन्नाथ मिश्र ने गुस्से में आकर अपने पुत्र विश्वरूप को एक थप्पड़ मारा और अपने घर लौट आये। विश्वरूप पिता के साथ घर की ओर जाते-जाते सहसा लौट पड़े और उन्हीं भट्टाचार्यें को अपने ऊपर किये गये प्रहार के बारे में बतलाकर उनसे पुनः एक बार प्रश्न पूछने का अनुरोध किया। भट्टाचार्य-द्वारा अपना अभिप्राय व्यक्त करने पर विश्वरूप ने पठनीय सूत्रों की अलग-अलग व्याख्या, उसका खंडन एवं पुनः उसकी स्थापना के द्वारा सभ्यजनों को मुग्ध कर दिया।

समग्र जगत् को भक्तिशून्य देखकर विश्वरूप को बड़ा दुःख होता था। परन्तु एक श्रीअद्वैत-प्रभु ऐसे थे, जो सभी शास्त्रों की व्याख्या में कृष्णभक्ति की बात करते थे। इसलिए विश्वरूप सदैव अद्वैत प्रभु के ही साथ रहते हुये सुख अनुभव किया करते थे।

एक दिन विश्वम्भर जननी की आज्ञा से बड़े भाई विश्वरूप को भोजन के लिए बुला लाने को अद्वैत की सभा में उपस्थित हुये। वहाँ श्रीअद्वैत-प्रभु उनको देखकर परम मोहित होते हुये उन्हें पहचानने में समर्थ हो गये। सभी वैष्णवजन भी बाल विश्वम्भर का रूप देखकर उनके प्रति विशेष आकर्षण का अनुभव करने लगे।

समय आने पर विश्वरूप ने संसार को त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया। इससे उनकी माता शचीदेवी को गम्भीर दुःख हुआ, पर वे वैष्णवपराध के डर से कुछ भी कह न सकीं। धीरे-धीरे वे निमाइ का श्रीमुख देखकर पुत्र-विरह का सभी दुःख भूल गईं।

आगे चलकर विश्वम्भर भी क्रमे-क्रमे अपना स्वरूप प्रकाशित करते हुये लक्ष्मीदेवी का संग त्याग कर सदैव अद्वैत के निकट अवस्थान करने लगे; इससे शचीमाता ने दुःखित होकर कहा था कि, अद्वैत ने एक पुत्र को भी वे वैसा ही परामर्श प्रदान कर रहे हैं। अतएव अद्वैत प्रभु ने मेरे लिए यह माया फैला रखी है।

बस, इतने-से अपराध के फलस्वरूप (?) शचीमाता भगवत्-सेवा से वंचित हो गईं। वस्तुतः गौरसुन्दर ने जननी को लक्ष्य बनाकर सभ्ज्ञी जगत् को वैष्णवापराध से दूर रहने की शिक्षा प्रदान की है।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

श्रीगौसुन्दर का जयगान-

जय जय गौरचन्द्र कृपार सागर।
जय शची-जगन्नाथ-नन्दन सुन्दर॥१॥
जय जय शची-सुत श्रीकृष्णचैतन्य।
'कृष्ण' नाम दिया प्रभु जगत् कैल धन्य॥२॥

(१-२) प० अनु०—कृपा के सागर श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। शची एवं जगन्नाथ के नन्दन गौरसुन्दर की जय हो। शची-सुत श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो। प्रभु ने 'कृष्ण' नाम देकर जगत् को धन्य कर दिया है।

(१) गौः भाः—"कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगे-पांगास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥"-इस श्लोक के विचारानुसार श्रीगौरसुन्दर ने कृष्णनाम देकर जगत् को धन्य किया। श्रीहरिदास ठाकुर के द्वारा नाम-भजन की प्रणाली का प्रचार करवा कर वैसे भजन द्वारा ही कृष्णप्रेम को प्राप्त किया जा सकता है, इस बात की जानकारी उन्होंने दी थी।

देवानन्द पण्डित को वाक्यदण्ड प्रदान करके प्रभु का अपने घर चले जाना—

हेनमते नवद्वीपे प्रभु विश्वम्भर।
विहरे संहति–नित्यानन्द–गदाधर॥३॥
वाक्यदण्ड देवानन्द–पण्डितेरे करि'।
आइला आपन–घरे गौरांग–श्रीहरि॥४॥

(३–४) प० अनु०—इस प्रकार से नित्यानन्द और गदाधर के साथ प्रभु विश्वम्भर ने नवद्वीप में विहार किया। देवानन्द–पण्डित को वाक्यदण्ड प्रदान करके गौरांग श्रीहरि अपने घर लौट आये।

बहिर्मुख विद्यार्थियों के संग से ही देवानन्द को दुःख की प्राप्ति–

देवानन्द पण्डित चलिल निज–पासे।
दुःख पाइलेन द्विज दुष्ट–संगदोषे॥५॥
देवानन्द–हेन साधु चैतन्येर ठाञि।
सम्मुख हइते योग्य नहिल तथाई॥६॥

(५–६) प० अनु०—देवानन्द पण्डित अपने घर की ओर चल पड़े। दुष्टों के संगदोष से ब्राह्मण को दुःख भोगना पड़ा। उसी कारण देवानन्द जैसे साधु भी चैतन्य के सम्मुख नहीं ठहर सके।

(५) गौः भाः— देवानन्द पण्डित बहिर्मुख विद्यार्थियों के संग–दोष के कारण महाप्रभु से वाक्यदंड प्राप्त करके दुःखित हुये। साधारणजन उन्हें शान्त और शिष्ट व्यक्ति के रूप में जानते थे। फिर भी श्रीचैतन्यदेव से उन्हें आदर नहीं मिला। श्रीमहाप्रभु ने देवानन्द को 'भागवत' के रूप में स्वीकार नहीं किया; इस कारण वे महाप्रभु के कृपापात्र नहीं बन पाये।

भगवत्–सेवक के अनुग्रह के बिना सेवोन्मुख धर्म का अभिनय भी व्यर्थ–

वैष्णवेर कृपाय से पाइ विश्वम्भर।
'भक्ति' बिना जप–तप अकिंचित्कर॥७॥

(७) प० अनु०—वैष्णव की कृपा से ही विश्वम्भर को प्राप्त किया जा सकता है। भक्ति के बिना जप–तप सब अकिंचित्कर हैं।

(७) गौः भाः—भगवत्सेवा की ओर उन्मुख न होकर केवल भगवान् के नाम–जप–आदि अथवा विभिन्न प्रकार की तपस्याओं में निरत रहना वृथा परिश्रम मात्र है। भगवत्–सेवक के अनुग्रह व्यतीत किसी की भी आत्मा में सेवोन्मुखता–रूप धर्म का उन्मेष होना सम्भव नहीं है।

वैष्णवापराधी नामसेवा के अभिनय के द्वारा कृष्णप्रीति प्राप्त नहीं कर सकता–यही श्रीगौरसुन्दर एवं वेदों की वाणी है–

वैष्णवेर ठाँइ या'र हय अपराध।
कृष्णकृपा हइलेओ ता'र प्रेम–बाध॥८॥
आमि नाहि बलि,–एइ वेदेर वचन।
साक्षातेओ कहियाछे शचीर नन्दन॥९॥

(८–९) प० अनु०—वैष्णव के प्रति जिनका अपराध हुआ है, उन पर कृष्णकृपा होने पर भी उन्हें प्रेम नहीं मिलता है। यह मैं नहीं कहता,– यह वेदों का वचन है और साक्षात् रूप से शचीनन्दन ने भी ऐसा ही कहा है।

(८) गौः भाः—वैष्णवापराधीजन नामापराध के फलस्वरूप कृष्णभजन करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। यद्यपि लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि नाम सेवा का अभिनय दिखाकर वे भगवद्कृपा प्राप्त कर रहे हैं,– तथापि भगवान् कभी भी भक्तविरोधी के प्रति प्रीतियुक्त नहीं होते हैं। इसीलिए नामापराधत्याग–प्रसंग में पहले ही साधुनिन्दा का वर्जन (त्याग) करने के लिए कहा गया है।

अपनी जननी को आदर्श बनाकर प्रभु-द्वारा नामापराध-वर्जन-शिक्षा प्रदान-

ये शचीर गर्भे गौरचन्द्र-अवतार।
वैष्णवापराध पूर्व आछिल ताँहार॥१०॥
आपने से अपराध प्रभु घुचाइया।
मा'येरे दिलेन प्रेम सबा' शिखाइया॥११॥

(१०-११) प० अनु०—जिन शचीमाता के गर्भ में गौरचन्द्र का अवतार हुआ है, उनका पहले वैष्णव- अपराध था। प्रभु ने स्वयं उस अपराध को दूर करवा कर माता को प्रेम प्रदान किया तथा सबको शिक्षा दी।

(१०) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर की जननी शचीदेवी ने श्रीअद्वैत-प्रभु के प्रति अपराध किया था। इसलिए उस अपराध के विनष्ट न होने तक शचीमाता भगवान् के प्रति प्रीति को अर्जन करने में असमर्थ रहीं।

शचीमाता के वैष्णवापराध का कारण-

ए बड़ अद्भुत कथा शुन सावधाने।
वैष्णवापराध घुचे इहार श्रवणे॥१२॥
एकदिन महाप्रभु गौरांग-सुन्दर।
उठिया बसिल विष्णुखट्टार उपर॥१३॥
निजमूर्ति-शिलासव करि' जिन-कोले।
आपना 'प्रकाशे' गौरचन्द्र कुतूहले॥१४॥
''मुञि कलि-युगे कृष्ण, मुञि नारायण।
मुञि राम-रूपे कैलुँ सागर-बन्धन॥१५॥
शुतिया आछिलुँ क्षीरसागर-भितरे।
मोर निद्रा भांगिलेक नाड़ार हुँकारे॥१६॥
प्रेम-भकित बिलाइते आमार प्रकाश।
माग' माग' आरे नाड़ा, माग श्रीनिवास॥''१७॥
देखि' महापरकाश नित्यानन्द-राय।
ततक्षणे तुलि' छत्र धरिल मथाय॥१८॥
वामदिके गदाधार ताम्बूल योगाय।
चारिदिके भक्तगण चामर ढुलाय॥१९॥
भक्ति-योग बिलाया गौरांग-महेश्वर।
याँहार याहाते प्रीति, लय सेइ वर।।२०॥
केह बले,-''मोर बाप बड़ दुष्टमति।
ता'र चित्त भाल हैले मोर अव्याहति।।''२१॥
केह मागे' गुरु-प्रति, केह शिष्य-प्रति।
केह पुत्र, केह पत्नी,—या'र यथा रति।।२२॥
भक्त-वाक्य-सत्यकारी प्रभु विश्वम्भर।
हासिया सबारे दिला प्रेम-भक्ति-वर।।२३॥
महाशय श्रीनिवास बलेन,-''गोसाईं।
आइरे देयाव प्रेम, इए सबे चाइ।।''२४॥
प्रभु बले,-''इहा ना बलिवा श्रीनिवास।
ताँ'रे नाहि दिमु प्रेम-भक्तिर विलास।।२५॥
वैष्णवेर ठाञि ता'न आछे अपराध।
अतएव ता'न हैल प्रेम-भक्ति-बाध।।''२६॥
महावक्ता श्रीनिवास बले आर बार।
''ए कथाय प्रभु, देहत्याग से सबार।।२७॥
तुमि हेन पुत्र याँ'र गर्भे अवतार।
ताँ'र कि नहिब प्रेम-योगे अधिकार।।२८॥
सबार जीवन आइ जगतेर माता।
माया छाड़ि' प्रभु, ता'न हओ भक्ति-दाता।।२९॥
तुमि याँ'र पुत्र प्रभु,—से सर्वजननी।
पुत्र-स्थाने मा'येर कि अपराध गणि।।३०॥
यदि वा वैष्णव-सथाने थाके अपराध।
तथापिह खण्डाइया करह प्रसाद।।''३१॥

(१२-३१) प० अनु०—यह बड़ी अद्भुत कथा है। इसे सावधानी से सुनिए। इसके सुनने से वैष्णवा-पराध दूर हो जाता है। एकदिन महाप्रभु श्रीगौरांग-सुन्दर विष्णु के सिहांसन पर उठ कर बैठ गये। अपनी शिलामयी मूर्तियों को अपनी गोद में लेते हुये गौरचन्द्र आनन्द के साथ अपने स्वरूप को प्रकाशित करने लगे। प्रभु कहने लगे—"कलियुग में मैं कृष्ण

हूँ, मैं नारायण हूँ, मैंने राम के रूप में सागर को बाँधा था। मैं क्षीरसागर में सो रहा था। नाड़ा, 'माँग लो'! 'माँग लो'! श्रीनिवास, तुम भी माँग लो।" महान् प्रकाश को देखकर नित्यानन्दराय ने उसी क्षण प्रभु के मस्तक पर छत्र धारण कर लिया। बाईं ओर से गदाधर ने ताम्बूल प्रदान किया और चारों और भक्तजन चामरा–व्यजन करने लगे। महेश्वर गौरांग भक्तियोग का वितरण कर रहे थे। सभी लोग अपना–अपना मनचाहा वर प्रभु से माँग रहे थे। किसी ने कहा,–"मेरे पिता बहुत ही दुष्टमति के हैं; यदि उनका चित्त अच्छा हो जाये तो मेरी रक्षा हो जाये।" इसी प्रकार किसी ने गुरु के लिए, किसी ने शिष्य के लिए, किसी ने पुत्र के लिए और किसी ने पत्नी के लिए अपनी–अपनी रति के अनुसार वर माँगा। प्रभु विश्वम्भर भक्तों के वचनों को सत्य करने वाले हैं। उन्होंने हँसकर सभी को प्रेम–भक्ति का वर प्रदान किया। श्रीनिवास महाशय ने कहा–"हे प्रभो! हम सब चाहते हैं कि, आई (शचीमाता) को भी प्रेमभक्ति का वर मिल जाये।" प्रभु बोले,–"ऐसा मत कहना श्रीनिवास। उन्हें मैं प्रेमभक्ति का विलास प्रदान नहीं करूँगा। उन्होंने वैष्णव के चरणों में अपराध किया है; अतएव, उन्हें प्रेमभक्ति मिलने में बाधा है। महान् वक्ता श्रीनिवास ने और एकबार कहा,– "हे प्रभो! आपकी इस बात से हमारा देह त्याग होगा। जिनके गर्भ से आप जैसे पुत्र का अवतार हुआ हो, क्या उन्हें प्रेम–योग का अधिकार नहीं मिलेगा? जगत् की माता आई सबकी जीवन–स्वरूप हैं। हे प्रभु! कृपया अपनी माया को हटाइए और उन्हें भक्ति प्रदान कीजिए। हे प्रभु! आप जिनके पुत्र हैं, वे सबकी जननी हैं। पुत्र के प्रति माता का अपराध कैसा? यदि वैष्णव के प्रति कोई अपराध हुआ है, तो उसे खण्डित करके उन पर कृपा कीजिए।"

(२२) गौः भाः—भगवान् श्रीगौरसुन्दर द्वारा महाप्रकाश प्रदर्शन करते समय किसी व्यक्ति ने अपराधी गुरु के प्रति, किसी ने अपराधी पुत्र के प्रति, किसी ने अपराधी शिष्य के प्रति, किसी ने अपराधिनी पत्नी के प्रति—अर्थात् जिस–जिस व्यक्ति ने प्रिय–ज्ञान से भगवद्भक्ति की प्रार्थना की थी, उस सभी वैष्णवों को प्रभु ने यथायोग्य वर प्रदान किया था।

(२६) गौः भाः—सभी को कृष्णप्रेम रूपी बाढ़ में प्लावित करते हुये देखकर श्रीवास पण्डित ने श्रीगौरहरि से उनकी जननी के लिए प्रेमभक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की। इस पर महाप्रभु ने कहा,–वे वैष्णवापराधीनी हैं, इसलिए उनमें प्रेमभक्ति का उदय होना संभव नहीं है।

(२८) गौः भाः—श्रीवास ने कहा,–जिस जननी के गर्भ से साक्षात् भगवद्–विग्रह आप स्वयं आविर्भूत हुये हैं, क्या उन्हें भी प्रेमयोग पाने का अधिकार नहीं है?" इसे सुनकर भक्तों ने प्राणत्याग की कामना की। गौरसुन्दर की जननी—जगद्वासी सभी व्यक्तियों की जननी हैं, इसलिए वे भी भगवत्सेवोन्मुखी हो जाएँ, इस कारण उनको अकैतव (निष्कपट) कृष्णप्रेम प्राप्त कराने के लिए सभी लोग महाप्रभु से प्रार्थना करने लगे।

वैष्णवापराध के खण्डन करने का उपाय–

प्रभु बले,–''उपदेश कहिते से पारि।
वैष्णवापराध आमि खण्डाइते नारि।।३२॥
ये–वैष्णव–स्थाने अपराध हय या'र।
पुनःसे–इ क्षमिले से घुचे, नहे आर।।३३॥
दुर्वासार अपराध अम्बरीष–स्थाने।
तुमि जान, ता'र क्षय हइल केमने।।३४॥

नाड़ा स्थानेते आछे ता'न अपराध।
नाड़ा क्षमिलेइ हय प्रेमेर प्रसाद।।३५॥
अद्वैत–चरण–धूलि लइले माथाय।
इहवेक प्रेम–भक्ति आमार आज्ञाय॥''३६॥

(३२–३६) प० अनु०—प्रभु ने कहा,–"मैं उपदेश कर सकता हूँ, परन्तु वैष्णवापराध का खंडन नहीं कर सकता। जिस वैष्णव के प्रति जिसका अपराध होता है, केवल उसके द्वारा क्षभा किये जाने पर ही उसे अपराध से मुक्ति मिलती है। अन्य कोई उपाय नहीं है। दुर्वासा ने अम्बरीष के प्रति अपराध किया था। तुम जानते हो, उसका खंडन (निवारण) कैसे हुआ। उनका नाड़ा (अद्वैत) के प्रति एक अपराध है। यदि नाड़ा उन्हें क्षमता कर देते हैं, तो उन्हें प्रेमभक्ति मिल जायेगी। यदि अद्वैत के चरणों की धूलि वे अपने सिर पर धारण कर लेती हैं, तो मेरी आज्ञा से उन्हें प्रेमभक्ति उपलब्ध हो जायेगी।

(३२) गौः भाः—"यह सत्य है कि मैं भक्ति का उपदेश सभी को प्रदान कर सकता हूँ, परन्तु वैष्णव–विद्वेषी के अपराध का मोचन मैं किसी भी अवस्था में करने में समर्थ नहीं हूँ।"

(३३) गौः भाः—"जिस वैष्णव के निकट जिनका अपराध होता है, उसके द्वारा क्षमा कर देने से ही उस अपराधी को उससे परित्राण मिलता है। जिस प्रकार से राजा अम्बरीष के निकट दुर्वासा का अपराध हुआ था। यदि जननी अद्वैत प्रभु उनका अपराध क्षमा कर देंगे एवं मैं भी जननी को भगवद् भक्ति का उपदेश करने में समर्थ हो सकूँगा।।"

सभी के द्वारा अद्वैत से शचीमाता के अपराध का मोचन करने के लिए अनुरोध एवं श्रीअद्वैत प्रभु का शची की महिमा का कीर्तन करते-करते प्रेमावेश–

तखने चलिला सबे अद्वैतेर स्थाने।
अद्वैतेरे कहिलेक सब विवरणे।।३७॥
शुनिया अद्वैत करे श्रीविष्णुस्मरण।
''तोमरा लइते चाह आमार जीवन।।३८॥
याँ'र गर्भे मोहार प्रभुर अवतार।
से मोर जननी, मुञि पुत्र से ताँहार।।३९॥
ये आइर चरण–धूलिर आमि पात्र।
से आइर प्रभाव ना जानि तिल–मात्र॥४०॥
विष्णु–भक्तिस्वरूपिणी आइ जगन्माता।
तोमरा वा मुखे केने आन' हेन कथा।।४१॥
प्राकृत–शब्देओ येवा बलिवेक 'आई'।
'आई'–शब्द–प्रभावे ताहार दुःख नाइ।।४२॥
येइ गंगा, सेइ आइ, किछु भेद नाइ।
देवकी–यशोदा येइ, से–इ वस्तु आइ।।''४३॥
कहिते आइर तत्त्व आचार्य–गोसाञि।
पड़िला आविष्ट हैया, बाह्य किछु नाइ।।४४॥
बुझिया समय आइ आइल बाहिरे।
आचार्य–चरण–धूलि लइलेन शिरे।।४५॥

(३७–४५) प० अनु०—तब सभी मिलकर एक-साथ अद्वैत के पास गये और उन्हें सब कुछ बताया। सुनकर अद्वैत ने श्रीविष्णु का स्मरण किया और कहने लगे,–"तुम सब मेरा जीवन लेना चाहते हो। जिनके गर्भ से मेरे प्रभु का अवतार हुआ है, वे मेरी जननी हैं और मैं उनका पुत्र हूँ मैं जिस आई की चरण-धूलि का पात्र हूँ, उस आई का प्रभाव मैं तिल-मात्र भी नहीं जानता हूँ। जगन्माता आई विष्णु-भक्तिस्वरूपिणी हैं। तुम लोग ऐसी बातें क्यों कर रहे हो? प्राकृत-शब्द के रूप में भी जो 'आई' बोलेगा, 'आई'-शब्द के प्रभाव से उसका दुःख नहीं रहेगा। गंगा में और आई में कोई भेद नहीं हैं। देवकी-यशोदा और आई एक ही तत्त्व के बारे में कहते-कहते आचार्य

गोसाईं आविष्ट हो गये और बाह्यज्ञानरहित होकर भूमि पर गिर पड़े। समय और सुयोग पा आई बाहर आईं एवं आचार्य की चरण-ध ूलि अपने सिर पर धारण कर ली।

(३८) गौः भाः—भक्तों ने जब श्रीअद्वैत प्रभु के समक्ष शचीमाता के अपराध-क्षमापन के लिए प्रस्ताव रखा, तब अद्वैत प्रभु ने "विष्णु" का स्मरण किया और भक्तों से कहा कि, ऐसा वाक्य श्रवण करने से उनका अपराध हो रहा हैं जिन्होंने साक्षात्रूप से श्रीभगवान् को गर्भ में धारण किया है, हम सब उनके अधमपुत्र हैं, अतएव क्या हम अपनी जननी को अपराधिनी समझ लेंगे? कहाँ तो मुझे जननी की चरण-धूलि अपने सिर पर धारण करके आत्म-पवित्रता सम्पादित करनी है, और कहाँ आज इसके बदले तुम सब मिलकर मेरी भक्तिप्राणता को विनष्ट करने की इच्छा कर रहे हो!

(४१) गौः भाः—ठकुरानी पतिव्रता जननी—साक्षात् मूर्तिमती भक्ति हैं, इस कारण तुम लोगों के मुख से निकला इस प्रकार का संयम-रहित वाक्य नितान्त अनादर के योग्य है।

(४२) गौः भाः—श्रीगौरजननी श्रीशचीदेवी जिस 'आइ' अथवा 'अर्या' शब्द से अभिहित होती थीं, वह शब्द भेले ही प्राकृत-बुद्धिवश उच्चारित किया जाये, तथापि उस 'आई' शब्द के उच्चारण से जीव त्रिविध तापों से मुक्त हो सकते हैं।

(४४) गौः भाः—शचीदेवी के बारे में कहते-कहते अद्वैत प्रभु का बाह्यज्ञान तुप्त हो गया और वे कहने लगे,—आर्या शची एवं गंगा- एक ही वस्तु हैं; देवकी और यशोदा के साथ उनके भेद की कल्पना करना उचित नहीं है।

श्रीअद्वैत प्रभु की आवेश-अवस्था में
शचीमाता के द्वारा उनकी पदधूलि-ग्रहण
एवं आविष्ट-भाव-

परम-वैष्णवी आइ— मूर्तिमती भक्ति।
विश्वम्भर गर्भे धरिलेन याँ'र शक्ति।।४६॥
आचार्य-चरण-धूलि लइला यखने।
विह्वले पड़िला आइ, बाह्य नाहि जाने।।४७॥

(४६-४७) प० अनु०—आई परम वैष्ण ावी हैं, मूर्तिमती भक्ति हैं। विश्वम्भर को गर्भ में धारण करने में जिनकी सेवा-शक्ति है। उन्होंने जब आचार्य की चरण-धूलि ग्रहण की, तब वे विह्वल होकर गिर पड़ीं और उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया।

(४३) गौः भाः—शचीदेवी—भगवान् की जननी हैं, इसलिए भगवान् को गर्भ में ध ारण करने की सेवा-शक्ति उनमें ही वर्तमान है। वे भगवान् की नित्य भक्तिमती सेविका हैं। अभी अद्वैत प्रभु के बाह्य-संज्ञाहीन हो जाने पर अनुकूल अवसर को देखकर जननी शचीदेवी ने उनकी पदरज अपने सिर पर धारण कर ली।

(४७) गौः भाः—आचार्य की पदधूलि ग्रहण करने मात्र से शचीदेवी की कृष्णप्रेमविह्वलता और बढ़ गई और वे भी बाह्यज्ञज्ञन-रहित हो गईं

वैष्णवों की हरिध्वनि-

''जय जय हरि'' बले वैष्णव-सकल।
अन्योन्ये करये श्रीचैतन्य-कोलाहल।।४८॥
अद्वैतेर बाह्य नाहि—आइर प्रभावे।
आइर नाहिक बाह्य— अद्वैतानुभावे।।४९॥
दोँहार प्रभावे दोँहे हइला विह्वल।
'हरि हरि' ध्वनि करे वैष्णवमण्डल।।५०॥

(४८-५०) प० अनु०-सभी वैष्णव एक

दूसरे के साथ मिलकर "जय जय हरि" ध्वनि-पूर्वक 'श्रीचैतन्य-कोलाहल' करने लगे। आई के प्रभाव से अद्वैत में बाह्यज्ञान-रहित हो गईं। एक दूसरे के प्रभाव से दोनों विह्वल हो गये और वैष्णवमण्डली 'हरि-हरि' की ध्वनि करने लगी।

प्रभु का हास्य एवं अपराध खण्डन-
पूर्वक जननी कोा प्रेमदान-

हासे प्रभु विश्वम्भर खट्टार उपरे।
प्रसन्न हइया प्रभु बले जननीरे।।५१॥
''एखने से विष्णुभक्ति हइल तोमार।
अद्वैतेर स्थाने अपराध नाहि आर।।''५२॥
श्रीमुखेर अनुग्रह शुनिया वचन।
'जय-जय-हरि' ध्वनि हइल तखन।।५३॥

(५१-५३) प० अनु०—सिंहासन के ऊपर विराजमान प्रभु हँसने लगे और प्रसन्न होकर जननी से बोले-"इस क्षण से आपको विष्णुभक्ति मिल गई, अद्वैत के प्रति अब आपका और कोई अपराध नहीं है।" श्रीमुख से अनुग्रह-रूप वचनों को सुनकर सभी 'जय-जय-हरि' की ध्वनि करने लगे।

जननी को उपलक्ष्य करके प्रभु-द्वारा सभी
को वैष्णवापराध से दूर रहने के लिए
सावधान करना-

जननीर लक्ष्ये शिक्षागुरु भगवान्।
करायेन वैष्णवापराध सावधान।।५४॥

(५४) प० अनु०—शिक्षागुरु भगवान् ने जननी को उपलक्ष्य करके सबको वैष्णवापराध के विषय में सावधान रहने के लिए कहा है।

(५४) गौः भाः—अद्वैत के निकट शचीदेवी ने जो अपराध किया था, उससे उनको मुक्त करके भगवान् गौरसुन्दर ने जो लीला प्रकाशित की है, उससे यही सूचित होता है कि, सभी क्षमताएँ रखने वाले व्यक्ति भी वैष्णवापराध के कारण अपने सर्वविध सौभाग्य लाभ से वंचित हो जाते हैं। यही शास्त्रों का वचन है।

सभी क्षमताए रखने वाले व्यक्ति को भी
वैष्णवापराध के कारण दुर्भाग्य की प्राप्ति—
यही शास्त्रों का तात्पर्य है-

'शूलपाणि-सम यदि वैष्णवेरे निन्दे।'
तथापिह नाश पाय,-कहे शास्त्रवृन्दे।।५५॥

(५५) प० अनु०—'यदि शूलपाणि (महादेव) के समान (शाक्ति सम्पन्न) भी कोई व्यक्ति वैष्णव की निन्दा करता है', तो वह विनाश को प्राप्त होता है। यही शास्त्रों का तात्पर्य है।

शास्त्रवाक्य की अवहेलना करते हुये
साधुनिन्दा से दुर्गति की प्राप्ति-

इहा ना मानिया ये सुजन-निन्दा करे।
जन्मे जन्मे से पापिष्ठ दैवदोषे मरे।।५६॥

(५६) प० अनु०—इसे न मानते हुये जो व्यक्ति सज्जन की निन्दा करता है, वह पापिष्ठ जन्म-जन्म में दैवदोष के कारण मरता है।

गौरसुन्दर द्वारा जननी के माध्यम से
वैष्णवापराध के गुरुत्व का प्रदर्शन-

कन्येर कि दाय, गौर-सिंहेर जननी।
ताहारेओ 'वैष्णवापराध' करि' गणि।।५७॥

(५७) प० अनु०—गौरसुन्दर की जननी को भी जब वैष्णवों के प्रति अपराधिनी माना गया है, तब दूसरों का क्या कहना?

(५७) गौः भाः—जो सब महापापिष्ठ अपराधी व्यक्ति वैष्णवों की निन्दा करने का दुःसाहस प्रदर्शित करते हैं, दैव-दुर्विपाक के कारण वे सब पापिष्ठ सर्वतोभाव से विनष्ट हो जाते हैं। श्रीगौरसुन्दर की जननी होने के सौभाग्य से युक्त होने पर भी जब शचीमाता

पर वैष्णवापराध प्रबल विक्रम प्रदर्शित करता है, तब दूसरों के बारे में क्या कहना?

शचीदेवी का वैष्णवापराध (?) क्या है?–

वस्तुविचारेते सेह अपराध नहे।
तथापिह 'अपराध' करि' प्रभु कहे।।५८॥
'इहारे 'अद्वैत' नाम केने लोके घोषे?'
'द्वैत' बलिलेन आइ कोन असन्तोषे।।५९॥
सेइ कथा कहि, शुन हइ' सावधान।
प्रसंगे कहिये विश्वरूपेर आख्यान।।६०॥
प्रभुर अग्रज—विश्वरूप महाशय।
भुवन–दुर्लभ–रूप, महा–तेजोमय॥६१॥
सर्वशास्त्रे विशारद परम सुधीर।
नित्यानन्द–स्वरूपेर अभेद शरीर।।६२॥
ता'न व्याख्या बुझे, हेन नाहि नवद्वीपे।
शिशुभावे थाके प्रभु बालक–समीपे।।६३॥
एकदिन सभाय चलिला मिश्रवर।
पाछे विश्वरूप पुत्र परम सुन्दर।।६४॥
भट्टाचार्य–सभाय चलिला जगन्नाथ।
विश्वरूप देखि' बड़ कौतुक सभा'त।।६५॥
नित्यानन्द–रूप प्रभु परम सुन्दर।
हरिलेन सर्व–चित्त सर्वशक्ति–धर।।६६॥
एक भट्टाचार्य बले,–''कि पड़ छाओयाल?''
विश्वरूप बले–''किछु किछु सबाकार।।''६७॥
शिशु–ज्ञाने केह किछु ना बलिल आर।
मिश्र पाइलेन दुःख शुनि' अहंकार।।६८॥
निज कार्य करि' मिश्र चलिलेन घर।
पथे विश्वरूपेरे मारिल एक चड़॥६९॥
''ये पुँथि पड़िस् बेटा, ताहा ना बलिया।
कि बोल बलिलि तुइ सभा–माझे गिया।।७०॥
तोमारे त' सबार हइल मूर्खज्ञान।
आमारेओ दिले लाज करि' अपमान।।''७१॥
परम उदार जगन्नाथ महाभाग।
घरे गेला पुत्रेरे करिया बड़ राग।।७२॥
पुनः विश्वरूप सेइ सभामाझे गिया।
भट्टाचार्य–सब प्रति बलेन हासिया।।७३॥
''तोमरा त' आमारे जिज्ञासा ना करिला।
बापेर स्थानेते आमा' शास्ति कराइला।।७४॥
जिज्ञासा करिते याहा का'रो लय मने।
सबे मेलि' ताहा जिज्ञासह आमा' स्थाने।।''७५॥
हासि' बले एक भट्टाचार्य,–''शुन शिशु!
आजि ये पड़िले, ताहा बाखानह किछु।।''७६॥
बाखानये सूत्र विश्वरूप–भगवान्।
सबार चित्तते व्याख्या हइल प्रमाण।।७७॥
सबेइ बलेन,–''सूत्र भाल बाखानिला।''
प्रभु बले,–''भाण्डाइलुँ, किछु ना बुझिला।।''७८॥
यत बाखानिल, सब करिल खण्डन।
विस्मय सबार चित्ते हइल तखन।।७९॥
इए मते तिन बार करिया खण्डन।
पुनः सेइ तिनबार करिल स्थापन।।८०॥
'परम सुबुद्धि' करि' सबे बाखानिल।
विष्णुमाया–मोहे केह तत्त्व ना जानिल।।८१॥
हेन मते नवद्वीपे वैसे विश्वरूप।
भक्तिशून्य लोक देखि' ना पाय कौतुक।।८२॥
व्यवहारमदे मत्त सकल संसार।
न करे वैष्णव–यश–मंगल–विचार।।८३॥
पुत्रादिर महोत्सवे करे धन व्यय।
कृष्ण–पूजा, कृष्ण–धर्म केह ना जानय॥८४॥
यत अध्यापक सब—तर्क से बाखने।
कृष्णभक्ति, कृष्णपूजा—किछुइ ना जाने।।८५॥
यदि वा पड़ाय केह भगवत–गीता।
सेह ना बाखाने भक्ति, करे शुष्क चिंता।।८६॥
सर्व–स्थाने विश्वरूप ठाकुर बेड़ाय।
भक्ति–योग ना शुनिया बड़ दुःख पाय॥८७॥
सकले अद्वैत–सिंह पूर्ण–कृष्णशक्ति।

पड़ाइया 'वाशिष्ठ' बाखाने कृष्णभक्ति।।८८॥
अद्वैतेर व्याख्या बुझे, हेन कोन् आछे।
वैष्णवेर अग्रगण्य नदीयार माझे।।८९॥
चतुर्दिके विश्वरूप पाय मनो–दुःख।
अद्वैतेर स्थाने सबे पाय प्रेम–सुख।।९०॥
निरवधि थाके प्रभु अद्वैतेर संगे।
विश्वरूप–सहित अद्वैत रस–रंगे।।९१॥
परम बालक प्रभु गौरांग–सुन्दर।
कुटिल कुन्तल, वेश अति मनोहर।।९२॥
मा'ये बले,–''विश्वम्भर, याह रड़ दिया।
तोमार भाइरे झाट डाकि' आन गिया।।''९३॥
मायेर आदेशे प्रभु धाय विश्वम्भर।
सत्वरे आइला—यथा अद्वैतेर घर।।९४॥
बसियाछे अद्वैत बेड़िया भक्तगण।
श्रीवासादि करिया यतेक महाजन।।९५॥
विश्वम्भर बले,–''भाइ, भात खाओ गिया।
विलम्ब ना कर,'' बले हासिया।।९६॥
हरिल सबार चित्त प्रभु विश्वम्भर।
सबे देखे शिशुरूप परम सुन्दर।।९७॥
मोहित हइया चाहे अद्वैत आचार्य।
सेइ मुख चाहे सब परिहरि' कार्य।।९८॥
एइ मत प्रतिदिन मायेर आदेश।
विश्वरूपे डाकिवार छलेते आइसे।।९९॥
चिन्तये अद्वैत चित्ते—देखि' विश्वम्भर।
''मोर चित्त हरे शिशु परम सुन्दर।।१००॥
मोर चित्त हरिते कि पारे अन्य जन।
एइ वा मोहार प्रभु मोहे, मोर मन।।''१०१॥
सर्वभूत–हृदय ठाकुर विश्वम्भर।
चिन्तिते अद्वैत झाट चलि' याय घर।।१०२
निरवधि विश्वरूप अद्वैतेर संगे।
छाड़िया संसार–सुख गोड़ायेन रंगे।।१०३॥
विश्वरूप–कथा आदिखण्डेते विस्तार।
अनन्त–चरित्र नित्यानन्द–कलेवर।।१०४
ईश्वरेर इच्छा सब ईश्वर से जाने।
विश्वरूप संन्यास करिल कतदिने।।१०५॥
जगते विदित नाम 'श्रीशंकरारण्य'।
चलिला अनन्त–पथे वैष्णवाग्रगणय॥१०६॥
करि' दण्ड ग्रहण चलिला विश्वरूप।
निरवधि आइर विदरे शोके बुक।।१०७॥
मने मने गणे, आइ हइया सुस्थिर।
''अद्वैत से मोर पुत्र करिल बाहिर।।''१०८॥
तथापिह आइ वैष्णपराध भये।
किछु ना बलये, मने महा–दुःख पाये।।१०९॥
विश्वम्भर देखि' सब पासरिला दुःख।
प्रभुओ मायेर बड़ बाड़ा'येन सुख।।११०॥
दैवे कतदिने प्रभु करिला प्रकाश।
निरवधि अद्वैतेर संहति विलास।।१११॥
छाड़िया संसार–सुख प्रभु विश्वम्भर।
लक्ष्मी परिहरि' थाके अद्वैतेर घर।।११२॥
ना रहे गृहेते पुत्र–हेन देखि' आइ।
''एहो पुत्र निला मोर आचार्य गोसाईं॥''११३॥
सेइ दुःखे सबे एइ बलिलेन आइ।
''के बले, 'अद्वैत',–'द्वैत' ए बड़ गोसाईं॥११४॥
चन्द्रसम एक पुत्र करिया बाहिर।
एहो पुत्र ना दिलेन करिवारे स्थिर।।११५॥
अनाथिनी—मोरे त' काहारो नाहि दया।
जगते 'अद्वैत', मोहे से 'द्वैत–माया'॥११६॥
सबे एइ अपराध, आर किछु नाइ।
इहार लागिया भक्ति ना देन गोसाईं॥११७॥

(५८–११७) प० अनु०—वस्तु के विचार से वह भी अपराध नहीं था। फिर भी प्रभु ने इसे अपराध घोषित किया। 'संसार इन्हें 'अद्वैत' नाम से क्यों पुकारता है? किसी कारण से असन्तुष्ट होकर आई ने इन्हें 'द्वैत' कहा था। वह कथा मैं कहता हूँ, सावधानी

से सुनिए। इस प्रसंग में विश्वरूप का आख्यात कह रहा हूँ। भुवन–दुर्लभ रूप वाले, महातेजोमय विश्वरूप महाशय महाप्रभु गौरांग के बड़े भाई थे। वे परम सुधीर एवं सभी शास्त्रों में पारंगत थे। उनका श्रीअंग नित्यानन्दस्वरूप से अभिन्न था। नवद्वीप में ऐसा कोई नहीं था, जो उनकी व्याख्या को समझ सके। शैशव में प्रभु बालकों के साथ अवस्थित रहते थे। एकदिन मिश्रवर जगन्नाथ किसी सभा में जा रहे थे। उनके पीछे उनका परम सुन्दर पुत्र विश्वरूप भी जा रहा था। जगन्नाथ किसी सभा में जा रहे थे। उनके पीछे उनका परम सुन्दर पुत्र विश्वरूप भी जा रहा था। जगन्नाथ मिश्र भट्टाचार्य–सभा में अपने पुत्र के साथ उपस्थित हुये। विश्वरूप भी जा रहा था। जगन्नाथ मिश्र भट्टाचार्य–सभा में अपने पुत्र के साथ उपस्थित हुये। विश्वरूप को देखकर सभा में उपस्थित सभी को बड़ा कौतूहल हुआ। नित्यानन्द के–से रूप वाले प्रभु विश्वरूप परम सुन्दर थे। सर्वशक्तिमान् प्रभु ने सबका हृदय हरण कर लिया। किसी एक भट्टाचार्य ने पूछा,–"क्या पढ़ते हो बालक?" विश्वरूप ने उत्तर दिया— "कुछ–कुछ सबमें से पढ़ा हूँ।" शिशु समझकर किसी ने और कुछ नहीं कहा। परन्तु पुत्र की अहंकार–भरी बात सुनकर मिश्र को दुःख हुआ। अपना कार्य समाप्त करके मिश्र घर के लिए चल दिये। जाते–जाते रास्ते में उन्होंने विश्वरूप को एक थप्पड़ मारा और कहा,–" जिस पुस्तक को तू पढ़ता है, उसके बारे में न कहकर तूने सभा को उपस्थित सभी को क्या बोल बोल दिया? सभी ने तुम्हें मूर्ख समझा। मुझे भी लज्जित और अपमानित होना पड़ा।" इस प्रकार पुत्र के प्रति क्रोध प्रकट करके महाभाग्यवान् जगन्नाथ अपने घर चले गये। विश्वरूप फिर से उस सभा में गये और हँसकर सभी अट्टाचार्यें से कहने लगे,–"आप ने तो हमें कुछ पूछा ही नहीं, ऊपर से हमें पिताजी की मार और खाने को मिली। यदि आप हमसे प्रश्न पूछना चाहते हैं, तो सब मिलकर प्रश्न कीजिए।" यह सुनकर एक भट्टाचार्य हँसकर कहने लगे,–"सुनो बालक! आज तुमने जो कुछ भी अध्ययन किया है, उसके बारे में कुछ कहो।" विश्वरूप–भगवान् ने सुत्रों की व्याख्या की। सभी ने उस व्याख्या को सही माना। वे कहने लगे,–"सूत्रों की सही व्याख्या की है तुमने।" प्रभु बोले,–"मैंने तो आप लोगों को बहकाया है, पर आप लोग कुछ भी नहीं समझे।" ऐसा कहकर प्रभु ने अपनी सभी व्याख्याओं का खण्डन कर दिया। इससे सभी लोग बड़े आश्चर्य चकित हुये। इस प्रकार से प्रभु ने तीन बार व्याख्याओं का खंडन किया और फिर तीन बार उनकी स्थापना की। व्याख्या को सुनकर सभी ने माना कि, यह बालक 'परम सुबुद्धिमान्' है। परन्तु विष्णुमाया से मोहित किसी को भी उनके तत्त्व के बारे में कुछ भी पता नहीं चल पाया। इस प्रकार से विश्वरूप नवद्वीप में अवस्थान करते थे; परन्तु भक्ति–रहित लोगों को देखकर उन्हें सुख नहीं मिलता था। सब संसार व्यवहार मद में मोहित था। कोई भी वैष्णव के मंगलमय यश के बारे में विचार नहीं रखता था। पुत्र आदि के महोत्सव पर सभी धन खर्च कियाा करते थे, परन्तु कृष्ण–पूजा अथवा कृष्ण–धर्म के बारे में किसी को कुछ भी पता नहीं था। जितने भी अध्यापक थे, कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति के बारे में वे कुछ भी नहीं जानते थे। यद्यपि कोई–कोई भागवत और गीता आदि भी पढ़ाते थे, पर वे भी भक्ति का बखान नहीं करते

थे, केवल शुष्क चिन्तन में डूबे रहते थे। ठाकुर विश्वरूप ने सभी स्थानों पर भ्रमण किया, परन्तु कहीं भी भक्तियोग के बारे में कुछ भी न सुनकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। केवल पूर्ण-कृष्णभक्ति- स्वरूप अद्वैत-सिंह 'वाशिष्ठ' पढ़ाते हुये भी कृष्णभक्ति का बखान किया करते थे। नवद्वीप में ऐसा कौन था, जो वैष्णवों के अग्रगण्य अद्वैत की व्याख्या को समझ सके? विश्वरूप को चतुर्दिक से मानसिक दुःख मिलता था। केवल अद्वैत के पास ही उन्हें प्रेम-सुख प्राप्त होता था। वे निरन्तर प्रभु अद्वैत के साथ ही रहने लगे। अद्वैत भी विश्वरूप के साथ रहकर रसास्वादन के आनन्द में मस्त थे। अति मनोहर वेशधरी, कुटिल कुंतल-युक्त परम सुन्दर प्रभु गौरांग अभी बालक थे। माँ उनसे बोली,—"विश्वम्भर, दौड़ जाओ, और अपने भाई को जल्दी बुला लाओ।" माँ की आज्ञा सुनकर विश्वम्भर प्रभु तुरन्त दौड़ पड़े और जहाँ अद्वैत का घर था, वहाँ उपस्थित हो गये। श्रीवास आदि जितने भी भक्त महाजन थे, उन सबसे घिरे हुये अद्वैत अपने आसन पर विराजमान थे। विश्वम्भर ने हँसकर कहा,-"भाई, जाकर भोजन कर लो! देर मत करो!" ऐसा कहते हुये प्रभु विश्वम्भर ने सबका दिल जीत लिया। शिशुरूप परम सुन्दर प्रभु को सब देखते रह गये। अद्वैत आचार्य ने भी मोहित होकर उन्हें देखा और सभ्ज्ञी कार्यें का परित्याग करके उस पुखकम को देखते ही रह गये। इस प्रकार से विश्वम्भर प्रभु विश्वरूप को बुलाने के छल से प्रतिदिन अद्वैत मन-ही-मन सोचा करते कि'-"यह परम सुन्दर शिशु मेरा मन हरण कर रहा है। क्या दूसरा कोई मेरा मन जीत सकता है? संभवतः ये ही मेरे प्रभु हैं और मुझे मोहित कर रहे हैं।" ठाकुर विश्वम्भर सर्वभूतों (सब प्राणियों) के हृदय-स्वरूप हैं। अद्वैत को सोच में डूबोकर ठाकुर जल्दी अपने घर लौट आते।

संसार-सुख को छोड़ विश्वम्भर निरन्तर अद्वैत के साथ आनन्द में रह रहे थे। आदिखण्ड में अनन्त-चरित्र और नित्यानन्द कलेवर-स्वरूप विश्वरूप की कथाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। ईश्वर की सब इच्छाओं को ईश्वर ही जानते हैं। कुछ दिनों बाद विश्वरूप ने संन्यास ग्रहण कर लिया और संसार में 'श्रीशंकरारण्य' नाम सेस प्रसिद्ध हुये। वैष्णवों में अग्रगण्य वे अनन्त-पथ की ओर चल दिये। दण्ड ग्रहण-पूर्वक विश्वरूप संन्यास के मार्ग पर चले गये। उधर आई की छाती शोक से विदीर्ण होने लगी। सुस्थिर होने पर आई मन-ही-मन सोचने लगती। "अद्वैत ने ही मेरे बेटे को बाहर किया है।" तथापि वैष्णवापराध के डर से आई कुछ भी बोलती नहीं थीं, परन्तु मन में बड़ा दुःख अनुभव किया करती थीं। विश्वम्भर को देखकर आई सभी दुःख भूल जाया करती थीं। प्रभु भी माता को बहुत सुख देते थे। कुछ दिनों बाद दैव से प्रभु ने अपने आपको प्रकाशित किया। उस समय प्रभु का विलास निरन्तर अद्वैत के साथ ही होने लगा। संसार-सुख को छोड़कर प्रभु विश्वम्भर लक्ष्मीदेवी से दूर अद्वैत के घर ही रहने लगे। पुत्र घर में नहीं रहता है-यह देखकर आई कहती थीं- "आचार्य गोसाईं ने मेरे इस पुत्र को भी ले लिया।" उस दुःख के कारण आई ने केवल इतना ही कहा था कि, "कौन इन्हें 'अद्वैत' कहताा है, यह बड़े गोसाईं तो 'द्वैत' हैं। चन्द्रमा-जैसे एक पुत्र कोा भी स्थिर नहीं रहने देते हैं। मैं अनाथिनी हूँ— मुझ पर किसी की दया नहीं हैं जगत् उन्हें 'अद्वैत' नाम से जानता

है, परन्तु 'द्वैत-माया' के सहारे वे जगत् को मोहित करते रहते हैं।" बस, इसके अतिरिक्त आई का और कोई अपराध नहीं था। इस कारण गोसाईं (गौरांग महाप्रभु) ने उन्हें भक्ति प्रदान नहीं की।

(६२) गौः भाः—प्रभु के बड़े भाई विश्वरूप सभी शास्त्रों में विशारद थे। वे श्रीनित्यानन्द-स्वरूप से अभिन्न-विग्रह थे।

(६३) गाः भाः—विवश्रूप की व्याख्या को सुनने पर उस व्याख्या के विज्ञानसम्मत अर्थ को समझने में कोई भी पण्डित समर्थ नहीं था। उस समय साधारण बालकों की भाँति विश्वरूप शैशो वोचित (बालोचित) विचारों में अवस्थित थे।

(६७) गौः भाः-एक पण्डित ने विश्वरूप से पूछा था,- 'हे वत्स! तुम किस श्रेणी तक पढ़े-लिखे हो?' इसके उत्तर में विश्वरूप ने कहा,- 'मैंने सभी शास्त्रों में कुछ-कुछ अधिकार प्राप्त किया है'। इससे गुस्से में आकर पिता जगन्नाथ ने बालक विश्वरूप को प्रताड़ित किया।

(८०) गौः भाः—पिता से मार खाकर विश्वरूप फिर से पण्डितों की सभा में उपस्थित हुये। पण्डितों ने जब उनसे फिर एकबार पूछा तो उन्होंने वेदान्तसुत्र की व्याख्या की। इससे श्रोतृवर्ग परम सन्तुष्ट हुआ। यह देखकर विश्वरूप ने पुनः उस व्याख्या के विरुद्ध एक और व्याख्या प्रस्तुत की। इस द्वितीय व्याख्या के प्रतिपक्ष में फिर से तृतीय व्याख्या प्रस्तुत करते हुये विश्वरूप ने पूर्वमत का प्रतिपादन किया।

(८१) गौः भाः—विश्वरूप स्वयं भगवत् तत्त्व हैं, इसलिए पण्डितकुल विष्णुमाया से मुग्ध होकर तत्त्व के विषय में कुछ भी समझ नहीं पाये। उन लोगों में आत्मा की नित्यवृत्ति भक्ति उन्मेषित नहीं थी, इस कारण उक्त व्याख्या को समझने में वे असमर्थ रहे। उन लोगों को समझने का अधिकार नहीं मिला था। इससे संकर्षण-प्रभु विस्मित नहीं हुये।

(८३) गौः भाः—सांसारिक-विचारों में प्रमत्त होकर साधारण लोगों ने जीवों के लिए परम मंगलमय विष्णुभक्ति की प्रतिष्ठा का अनुमोदन नहीं किया। वैष्णवगण ही सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ठ एवं कीर्तिमन्त हैं, इस बात को व्यवहार-रस-मुग्ध साधारणजन समझ नहीं पाये।

(८४) गौः भाः—सांसारिक लोग कर्मफल के कारण मिलने वाले दुःख के अपसारण (हटाने) को ही 'धर्म' समझते हैं। पितृवर्ग जो धन उपार्जित करते हैं, उस धनराशि को पुत्रों का सुख बढ़ाने के लिए विवाह आदि में खर्च करना उचित समझते हैं। उस समय भी संचित अर्थ के द्वारा कृष्णपूजा एवं कृष्णधर्म के अभिज्ञान (ज्ञान) की प्राप्ति का किसी ने भी अनुमोदन नहीं किया। और तो और, आज भी भले-बुरे का भेद जानने में अक्षम व्यक्तिगण कर्मफल के कारण पीड़ितजन की सहायता में आत्मनियोग को ही कृष्णपूजा एवं कृष्णाभिज्ञान-प्राप्ति की अपेक्षा अधिक सम्मान प्रदान करते हैं।

(८५) गौः भाः—सभी पण्डित-अध्यापक जड़ेन्द्रियों के सहारे विचार-तर्क की प्रधानता की स्थापना करने में लगे हुये थ। कृष्णसेवा एवं कृष्णार्चन ही सर्वोत्तम है— यह उन्होंने नहीं समझा था।

(८६) गौः भाः—छात्रों को भागवत एवं गीता- आदि सद् शास्त्रों को पढ़ाते हुये भी अध्यापक महाशय अपना मंगल साधन करने के स्थान पर कुतर्क एवं व्यर्थ चिन्तन के द्वारा बाह्य-विचारों का ही प्रदर्शन किया करते थे।

(८८) गौः भाः—योगवाशिष्ठ' की व्याख्या

करते समय अद्वैत प्रभु उसमें-से 'कृष्णभक्ति' की व्याख्या किया करते थे। उन्होंने सम्पूर्ण रूप से कृष्णशक्ति को धारण करके अपने 'वैष्णवाग्रणी'-नाम की सार्थकता का सम्पादन किया। महाप्रभु के अग्रज विश्वरूप को जगत् में कहीं भी हरिभक्ति की चर्चा सुनाई न देने के कारण वे विशेषरूप से दुःख का अनुभव किया करते थे। इसलिए वे अद्वैत प्रभु के साथ रहकर सर्वतोभाव से परमानन्दित हुआ करते थे।

(१०६) गौः भाः—श्रीविश्वरूप अद्वैत प्रभु के संग से पितृगृह का परित्याग करके अनन्तपथ के यात्री बन गये। उनका संन्यास-नाम 'शंकरारण्य' हुआ। अद्वैत प्रभु के संग से विश्वरूप का गृह-परित्याग देखकर जननी शचीदेवी अद्वैतप्रभु के आचरण की गर्हण (निन्दा) कभी नहीं की, परन्तु फिर भी अद्वैत के प्रति शचीदेवी-द्वारा अपराध का अभिनय हुआ।

(११२) गौः भाः—श्रीगौरहरि भी अपनी पत्नी लक्ष्मीदेवी का संग त्यागकर अद्वैत प्रभु के पास रहने लगे। यह देखकर, अद्वैत प्रभु के प्रति शचीदेवी की अनासक्ति और भी अधिक बढ़ने लगी।

(११३-११७) गौः भाः—क्रोध में आकर शचीदेवी कहने लगीं,-"अब केवल मेरा एक ही पुत्र संसार में रह गया है। पहले पुत्र को अद्वैत प्रभु ने परामर्श देकर संन्यासी बना दिया है और मैं उस पुत्र की सेवा से वंचित हो गई हूँ। फिर, इस पुत्र को भी वे वैसा ही परामर्श दे रहे हैं, अतएव अद्वैत प्रभु जगत् में, 'अद्वैत' नाम से परिचित होने पर भी मेरे लिए मायाजाल बिछा रहे हैं।" इस अपराध के कारण(?) शचीदेवी को भगवत्-सेवाविमुखिनी होने का अभिनय करना पड़ा था।

श्रीअद्वैत एवं श्रीनित्यानन्द में भेद-बुद्धि रखने वाले मूढ़जनों को शिक्षा देने के लिए प्रभु-द्वारा अद्वैत एवं नित्यानन्द-तत्त्व का निरूपण-

ए-काले ये वैष्णवेरे 'बड़' 'छोटे' बले।
निश्चिन्ते थाकुक, से जानिवे कत काले।।११८॥
जननीर लक्ष्ये शिक्षागुरु भगवान्।
वैष्णवापराध करायेन सावधान।।११९॥
चैतन्य-सिंहेर आज्ञा करिया लंघन।
ना बुझि' वैष्णव निन्दे' पाइबे बंधन।।१२०॥
एक कथार हेतु किछु शुन मन दिया।
ये-निमित्त गौरचन्द्र बलिलेन इहा।।१२१॥
त्रिकाल जानेन प्रभु श्रीशचीनन्दन।
जानेन,— सेविवे अद्वैतेर दुष्टगण।।१२२॥
अद्वैतेरे गाइवेक 'श्रीकृष्ण' बलिया।
यह किछु वैष्णवेर वचन निन्दिया।।१२३॥
ये बलिबे अद्वैतेरे 'परम वैष्णव'।
ताहारे बेड़िया लंघिबे पापी सब।।१२४॥
से-सब-गणेर पक्ष अद्वैत धरिते।
एत बड़ शक्ति नाहि—ए दण्ड देखिते।।१२५॥
सकल-सर्वज्ञ चूड़ामणि विश्वम्भर।
जानेन विलम्बे हइवेक बहुतर।।१२६॥
अतएव दण्ड देखाइया जननीरे।
साक्षी करिलेन अद्वैतादि-वैष्णवेरे।१२७॥
वैष्णवेर निन्दा करिवेक या'र गण।
ता'र रक्षा-सामर्थ नाहिक कोन जन।।१२८॥
वैष्णव-निन्दकगण याहार आश्रय।
आपनेइ एड़ाइते ताहार संशय॥१२९॥
बड़ अधिकारी हय, आपने एड़ाय।
क्षुद्र हैले—गण-सह अधःपाते याय॥१३०॥
चैतन्येर दण्ड बुझिवारे शक्ति का'र?
जननीर लक्ष्ये दण्ड करिल सबार।।१३१॥
ये वा जन अद्वैतेरे 'वैष्णव' बलिते।

निन्दा करे, दण्ड करे, मरे भाल–मते।।१३२॥
सर्व–प्रभु गौरांग–सुन्दर महेश्वर।
एइ बड़ स्तुति ये ताहार अनुचर।।१३३॥
नित्यानन्द–स्वरूपे से निष्कपट हञा।
कहिलेन गौरचन्द्र 'ईश्वर' करिया।।१३४॥
नित्यानन्द–प्रसादे से गौरचन्द्र जानि।
नित्यानन्द–प्रसादे से वैष्णवेरे चिनि।।१३५॥
नित्यानन्द–प्रसादे से निन्दा याय क्षय।
नित्यानन्द–प्रसादे से विष्णुभक्ति हये।।१३६॥
निन्दा नाहि नित्यानन्द–सेवकेर मुखे।
अहर्निश चैतन्येर यश गाय सुखे।।१३७॥
नित्यानन्द–भक्त सवदिके सावधान।
नित्यानन्द–भृत्येर 'चैतन्य'—धन–प्राण।।१३८॥
अल्प भाग्ये नाहि हय नित्यानन्द दास।
याहारा लओयाय गौरचन्द्रेर प्रकाश।।१३९॥
ये जन शुनये विश्वरूपेर आख्यान।
से हय अनन्त–दास नित्यानन्द–प्राण।।१४०॥

(११८–१४०) प० अनु०—इस समय जो व्यक्ति वैष्णवों में से किसी को 'छोटा' और किसी को 'बड़ा' कह रहा है, कुछ दिनों बाद उसे निश्चित रूप से पता चल जायेगा कि सच क्या है? जननी को उपलक्ष्य बनाकर शिक्षागुरु भगवान् गौरसुन्दर ने सभी को वैष्णवापराध के बारे में सतर्क किया था। जो चैतन्यसिंह के आदेश का लंघन करके बिना समझे 'वैष्णव–निन्दा' करेंगे, वे बन्धन में फँस जायेंगे। जिस कारण श्रीगौरचन्द्र ने ऐसा कहा है, उस कारण के बारे में एकाग्रचित होकर सुनिए। प्रभु श्रीशचीनन्दन त्रिकालज्ञ हैं। वे जानते थे कि, दुष्टगण अद्वैत की सेवा करेंगे। वैष्णवों ने जो कुछ भी कहा है, उसकी निन्दा करके वे अद्वैत को 'श्रीकृष्ण' के रूप में मान्यता प्रदान करेंग। जो यह कहेगा कि, अद्वैत 'परम वैष्णव' हैं, उसके विरुद्ध सब पापी इकट्ठे होकर खड़े हो जाएँगे और उसका उल्लंघन करेंग। अद्वैत प्रभु भी उन सब पापियों की रक्षा नहीं कर पायेंगे। उनमें इतनी शक्ति नहीं कि उस दण्ड का सामना कर सकें। विश्वम्भर समस्त सर्वज्ञों के चूड़ामणि हैं। वे जानते थे कि, आने वाली समय में ये सब पापी और भी बढ़ जायेंगे। अतएव जननी को दण्ड प्रदान करके उन्होंने अद्वैत आदि वैष्णवों को साक्षी बना दिया। जिन लोगों के गण वैष्णवों की निन्दा करेंगे, उनकी रक्षा कोई भी नहीं कर पायेगा। वैष्णव–निन्दक जन जिसके आश्रय में रहते हैं, उसके लिए भी उस अपराध से उन्हें बचा पाना बहुत कठिन हैं जो बड़ा अधिकारी होता है, वह अपने आपको बचा सकता है, परन्तु अधिकार कम होने से उसका गण–सहित अधःपतन होता है। चैतन्य के दण्ड को समझने की शक्ति किसमें है? जननी को लक्ष्य करके उन्होंने सभी को दण्ड प्रदान किया अद्वैत को 'वैष्णव' कहने वाले व्यक्ति की जो निन्दा करता है, उसे दण्ड मिलता है, वहव अच्छी तरह से मरता है। 'महेश्वर श्रीगौरांग–सुन्दर सभी के प्रभु हैं।' यह उन लोगों के लिए बहुत बड़ी स्तुति है, जो उनके अनुचर हैं। गौरचन्द्र ने निष्कपट भाव से नित्यानन्द–स्वरूप को 'ईश्वर' कहा है। नित्यानन्द की कृपा से वैष्णव को पहचाना जा सकता हैं नित्यानन्द की कृपा से निन्दा का नाश होता हैं नित्यानन्द का सेवक कभी वैष्णव–निन्दा नहीं करता है। वह रातदिन आनन्द के साथ चैतन्य के यश का कीर्तन करता रहता हैं नित्यानन्द का भक्त हर समय सावधान रहता हैं नित्यानन्द के भृत्य के लिए 'चैतन्य' ही धन एवं प्राण हैं। अल्प भाग्य होने पर कोई भी नित्यानन्द का दास नहीं बन सकता है। नित्यानन्द के

दास ही गौरचन्द्र को प्रकाश में लाते हैं। जो विश्वरूप के इस आख्यान को सुनते हैं, वे अनन्तदेव के दास होते हैं और नित्यानन्द उनके प्राण-स्वरूप होते हैं।

(११८-११९) गौः भाः—कोई-कोई व्यक्ति श्रीगौरसुन्दर की जननी के द्वारा अद्वैतचरण में किये गये अपराध (?) का विचार करके अद्वैतप्रु को 'श्रीकृष्ण' कहकर भ्रान्त होंगे एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ अद्वैतप्रभु के तारतम्य का विचार करते हुये नित्यानन्द को छोटा समझेंगे। वे सब लोग भगवान् श्रीगौरसुन्दर के दोनों सेवकों में-से 'कौन बड़ा', कौन छोटा' ऐसा मनोधर्मी विचार करने का गुरूतर फल बहुत जल्दी ही जान पायेंगे। अपनी जननी के द्वारा अद्वैत प्रभु को वैष्णव-श्रेष्ठ के रूप में परिचित करा देने पर भी कहीं मूढ़ व्यक्तिगण उनको 'स्वयं भगवान् कृष्ण' समझने की भूल न कर बैठें,— इसलिए अपने भक्त अद्वैत को 'वैष्णव' के रूप में ज्ञापित एवं प्रचारित करना ही श्रीगौरहरि का उद्देश्य था।

श्रीअद्वैत प्रभु के कतिपय दुष्ट स्तावक (स्तुतिकर्त्ता) जन भ्रमवश कहीं उन्हें 'श्रीकृष्ण' न मानने लग जाएँ एवं श्रीगौरसुन्दर और श्रीनित्यानन्द को उनके अनुगत न समझ बैठे— उस अपराध से उन लोगों को बचाने के लिए ही अद्वैतप्रभु को वैष्णवतत्त्व में स्थापित करने के उद्देश्य से जननी का अपराध-क्षमापन करवाया गया है।

(१२४) गौः भाः—श्रीअद्वैत प्रभु साक्षात् कृष्ण नहीं हैं, वे परम-वैष्णव हैं— इस बात का विरोध करने वाले पापिष्ठ अपराधिजन अद्वैत के स्तावक बनकर उन अद्वैत प्रभु का लंघन ही करेंगे।

(१२८) गौः भाः—वैष्णव के शिष्यत्त्व के अभिमान से अन्य वैष्णवों की निन्दा करने से वैष्णवगुरु कभी भी उस शिष्य की रक्षा नहीं करते हैं। श्रीनित्यानन्द की अवज्ञा करके अद्वैत की स्तुति करने वाले लोगों की गौरवपात्र बनने की चेष्टा से अद्वैत प्रभु कभी भी सन्तुष्ट नहीं होते और उन दुष्ट मतवालों को समर्थन नहीं देते। जोा लोग गुरु के आसन पर विराजमान होकर वैष्णवों की निन्दा करते हैं एवं वैष्णवनिन्दक शिष्य का समर्थन करते रहते हैं, उन लोगों का अधःपतन अवश्यंभावी है।

(१३२) गौः भाः—जो लोग श्रीअद्वैत प्रभु को 'वैष्णव' न मानकर उनमें कृष्णत्व की स्थापना करते हैं, उन लोगों के बीच की कलह अद्वैत प्रभु की निन्दा के रूप में ही पिरणत होती है। इस सब निन्दकों का विनाश अवश्यंभावी है।

(१३४) गौः भाः—श्रीअद्वैत प्रभु श्रीगौरसुन्दर के अनुगत भृत्य हैं। श्रीगौरसुन्दर ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को 'ईश्वर' नाम से अभिहित किया हैं अद्वैत-प्रभु को 'कृष्ण' कहने वाले लोग श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रति विद्वेष भाव का ही पोषण रकते हैं।

(१३५) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द के अनुग्रह से ही श्रीअद्वैत-आदि वैष्णव वर्ग को पहचाना जा सकता है एवं श्रीनित्यानन्द की कृपा से ही श्रीगौरसुन्दर को 'कृष्ण' के रूप में जाना जा सकता है।

(१३६) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द की कृपा से अद्वैत के दुष्ट स्तावकों के द्वारा की गई निन्दा का क्षय होता है। श्रीनित्यानन्द के अनुग्रह से ही भगवान् के प्रति सेवोन्मुखता की वृद्धि होती है।

नित्यानन्द एवं विश्वरूप अभिन्न हैं–

नित्यानन्द विश्वरूप—अभेद शरीर।
आइ इहा जोन, जाने आर कोन धीर।।१४१॥

(१४१) प० अनु०–नित्यानन्द और विश्वरूप के शरीरों में कोई अन्तर नहीं है, दोनों अभिन्न हैं। आई इसे जानती हैं, आई के अतिरिक्त औरकोई धीर व्यक्ति ही इसे जानता हैं

(१४१) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं विश्वरूप—वस्तुतः पृथक् तत्त्व नहीं हैं। श्रीशचीदेवी यह भली–भाँति जानती थीं। अद्वैत के आनुगत्य में विश्वरूप को सत् शिक्षा मिली थी, यह जानकर श्रीनित्यानन्द प्रभु भी अद्वैत के अनुगत हैं—ऐसा विचार न्यायसंगत नहीं है।

श्रीश्रीगौरनित्यानन्द का जयगान–

जय नित्यानन्द—गौरचन्द्रेर शरण।
जय जय नित्यानन्द सहस्त्र–वदन।।१४२॥
गौड़देश–इन्द्र जय नित्यानन्द–राय।
के पाय चैतन्य बिने तोमार कृपाय॥१४३॥

(१४२–१४३) प० अनु०—गौरचन्द्र के शरणागत नित्यानन्द प्रभु की जय हो। सहस्त्र–वदन नित्यानन्द की जय हो, जय हो। गौड़देश के इन्द्र–स्वरूप नित्यानन्दराय की जय हो। आपकी कृपा के बिना चैतन्य को कौन प्राप्त कर सकता है?

ग्रन्थकार का नित्यानन्द–गौरांग–चरण में लौल्य (उत्सुकता)–

नित्यानन्द हेन प्रभु हाराय याहार।
कोथाओ जीवने सुख नाहिक ताहार।।१४४॥
हेन दिन हइबे कि चैतन्य–निताइ।
देखिव कि पारिषद–संगे एक–ठाँइ।।१४५॥
आमार प्रभुर प्रभु गौरांग–सुन्दर।
ए बड़ भरसा चित्ते धरिये अन्तर।।१४६॥

(१४४–१४६) प० अनु०—नित्यानन्द–जैसे प्रभु को जोा खो देता है, उसे जीवन में कभी कहीं भी सुख नहीं मिलता है। क्या मेरे लिए ऐसा दिन आयेगा, जब मैं पार्षद–सहित चैतन्य–निताइ को एकसाथ देख सकूँगा? श्रीगौरांग–सुन्दर मेरे प्रभु के प्रभु हैं। यह मेरे लिए बड़े भरोसे की बात है और मैं इसे सदैव हृदय में धारण करता हूँ।

(१४४) गौः भाः— श्रीनित्यानन्द प्रभु गौड़देश के दिक्पाल हैं। उनके अनुग्रह के बिना श्रीचैतन्य के पादपद्म में किसी की मति प्रवेश नहीं कर सकती है। श्रीनित्यानन्द की कृपा से वंचित हो जाने पर जीवों को किसी भी प्रकार का सुख मिलना संभव नहीं है।

(१४६) गौः भाः—श्रीनित्यानन्द प्रभु सभी प्रकार से श्रीगौरसुन्दर की सेवा करते हैं, अतएव, श्रीतिन्यानन्द के नित्य भृत्यगण श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीगौरसुन्दर से अनुग्रह प्राप्त करते रहेंगे—ऐसी आशा का हम पोषण करते हैं।

ग्रन्थकार के द्वारा सभृत्य–अद्वैत–प्रभु के चरणों में नमस्कार–

अद्वैत–चरणे मोर एइ नमस्कार।
ता'न प्रिय ताहे मति रहुक आमार।।१४७॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन–दास तछु पदयुगे गान।।१४८॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे शच्यपराधमोचनं नाम तथा नित्यानन्द–गुणवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।

(१४७–१४८) प० अनु०—अद्वैत के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ। उनके प्रिय स्तावकों के चरणों में मेरी मति बनी रहे। श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्दचाँद जिनके जीवन

हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल-श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(१४७) गौः भाः—श्रील अद्वैत प्रभु के प्रकृत (शुद्ध) स्तावकों के चरणों में मेरी मति बनी रहे। दुष्ट शिष्यों के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

इति गौड़ीय-भाष्य में द्वाविंश अध्याय समाप्त

O

त्रयोविंश अध्याय

द्वाविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमन् महाप्रभु के द्वारा अपनी जननी के माध्यम से वैष्णव-अपराध के गुरुत्व का प्रदर्शन करते हुये सभी को इससे सतर्क किया गया है।

श्रीगौरसुन्दर ने देवानन्द पण्डित को वाक्यदण्ड प्रदान करके सभी को यह शिक्षा दी है कि, वैष्णव के प्रति अपराध करके कृष्णभजन करने की चेष्टा प्रदर्शित करने पर भी वैष्णव की कृपा न मिलने के कारण किसी को कृष्णप्रेम की प्राप्ति नहीं होती है।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

त्रयोविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमान् महाप्रभु के द्वारा प्रतिदिन निशाकाल में भक्तगण-सहित संकीर्तन विलास, दूध पीने वाले एक ब्रह्मचारी का संकीर्तन-नृत्य दर्शन करने के लिए श्रीवास से अनुरोध, श्रीवास द्वारा उन्हें अपने घर ले आना, प्रभु का क्रोध एवं फल्गु तपस्या-आदि की तुच्छता का ज्ञापन, दूध पीने वाले ब्रह्मचारी पर कृपा, प्रभु-द्वारा नागरिकों को महामन्त्र कीर्तन का उपदेश काजी-द्वारा मृदंग-भंग, इससे प्रभु का क्रोध एवं काजी को दलन के लिए यात्रा, नगर-नगर में हरिकीर्तन, प्रतिद्वार में मंगलाचार एवं देवताओं के द्वारा पुष्पवृष्टि, नगरवासियों का आनन्दोल्लास, पाखण्डियों का गात्रदाह (जलन), काजी को दण्डित करने के लिए प्रभु का आदेश एवं भक्तों की प्रार्थना पर काजी की उपेक्षा, प्रभु का शंखवाणिक एवं तन्तुवाय (जुलाहा) मोहल्ले में गमन, प्रभु का श्रीधर के घर गमन एवं फूटे लोहे के पात्र में से जल पीना भक्त-माहात्म्य-कीर्तन-आदि विषय पर्णित हुये हैं।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास के भवन में हर रात को द्वारा बन्द करके संकीर्तन विलास में मग्न रहते थे, इस पर पाखण्डी लोग अन्दर घुसने में असमर्थ होकर चतुरता-पूर्वक भीतर जाने के लिए बाहर खड़े-खड़े नानाप्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग करते थे। सज्जनों में-से कोई-कोई अपने भाग्य को धिक्कारते हुये अपने को संकीर्तन दिखाने के लिए भक्तोंसे अनुरोध किया करते थे। परन्तु प्रभु के डर से कोई भी भक्त इसके लिए साहस नहीं कर पाते थे।

एकदिन दूध पीने वाले एक ब्रह्मचारी ने छिपकर प्रभु के कीर्तन-विलास के दर्शनार्थ श्रीवास के निकट अनुरोध किया। श्रीवास उन्हें ब्रह्मचारी एवं सात्विक आहारभोजी जानकर अपने घर ले गये। श्रीवास की युक्ति के अनुसार ब्रह्मचारी घर में छिपकर बैठ गये। परन्तु अन्तर्यामी प्रभु कीर्तन करते-करते कहने लगे,- "आज मुझे कीर्तन मे आनन्द नहीं मिल रहा है, संभवतः किसी बहिर्भुखी व्यक्ति ने घर में प्रवेश किया है।"

श्रीवास ने प्रभु से डरते हुये कहा कि, एक

दूध पीने वाले ब्रह्मचारी का कीर्तन-दर्शनार्थ अत्यन्त आर्तियुक्त आग्रह देखकर उस ब्रह्मचारी को घर के भीतर निर्जन स्थान प्रदान कर दिया गया। यह सुनकर क्रोधित होते हुये प्रभु कहने लगे, कृष्णप्रपत्ति को छोड़ पयः पान (दुग्धपान) आदि बहिर्मुख-तपस्या आदि के द्व ारा कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होती है। उन्होंने ब्राह्मण को बाहर चले जाने का अदेश दिया। डर के मारे ब्राह्मण घर से बाहर जाकर अपने आंशिक दर्शन के सौभाग्य के विषय में सोचने लगे। तब परम करुणामय श्रीगौरसुन्दर ने उनको आह्वान किया और उनके सिर पर अपना पादपद्म-प्रदान करते हुये तपस्या आदि की दांभिकता को ज्ञापनार्थ निषेध किया।

द्वारा बन्द करके प्रभु के संकीर्तन करने से नगरवासी सज्जनगण प्रभु के संकीर्तन विलास के दर्शन करने में असमर्थ होकर पाखंडियों के कारण हीी प्रभु द्वारा बन्द करके कीर्तन करते हैं; इससे सज्जनगण भी अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते हैं। कोई-कोई व्यक्ति प्रभु के दर्शन की आकांक्षा लेकर मार्ग में ही खड़े रहते थे।

नगरवासी सज्जनवृन्द दिन में नानाप्रकार के द्रव्योंसहित प्रभु के दर्शन करने के लिए आये एवं प्रभुपादपद्म में दण्डवत् प्रणाम निवेदन करने से श्रीचैतन्यदेव ने 'सभी को कृष्णभक्ति हो जाए'— इस प्रकार का आशीर्वाद प्रदान किया एवं उन्हें महामन्त्र-कीर्तन और जप करने का उपदेश दिया। नागरिकगण सायंकाल के समय अपने घरों के द्वारों पर रहकर करताली के साथ संकीर्तन करने लगे। प्रभु की कृपा से इस प्रकार का संकीर्तन सभी नगरों में होने लगा। 'अमानी मानद'- लीला करने वाले प्रभु दाँतों में तृण लिए सभ्ज्ञी के निकट जाते एवं सभी का आलिंग करते हुये उनसे आर्ति के साथ कीर्तन करने का अनुरोध करते। प्रभु के इस मर्मस्पर्शी आवेदन से सभी ने अर्ति-क्रन्दन करते-करते कीर्तनाख्या भक्ति का आश्रय ग्रहण कर लिया। मृदंग-शंख आदि के सहयोग से संकीर्तन करते रहने पर विषयीजन उसे महामाया के अकाल में आह्वान पर बजने वाला तौर्यत्रिक (नृत्य-गीत एवं वाद्य) समझकर की कल्पना करके नानाप्रकार की कटूक्तियों का उच्चारण करने लगे।

दैवानुसार एक दिन विधर्मी काजी ने उस रास्ते से गुजरते समय कीर्तन सुनकर मृदंग को तोड़ डाला एवं किसी-किसी व्यक्ति को प्रहार करते हुये फिर से कीर्तन करने पर और भी अधिक सजा (शास्ति) देने का भय दिखाकर कीर्तन बन्द करा दिया। दुष्टों के साथ काजी नगर में भ्रमण करते हुये सभी स्थानों पर कीर्तन करने का निषेध करने लगा। इससे पाखण्डियों को बड़ा सन्तोष मिला। वे नानाप्रकार से भक्तों का उपहास करते हुये आनन्द लेने लगे।

कीर्तन के आनन्द में बाधा उपस्थित होने पर नगरवासी प्रभु के पास गये और उन्हें सब बात बताकर उन्होंने दुःख से कहीं और चले जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर क्रोध से हुँकार करते हुये प्रभु ने काजी को दमन करने के लिए सभी नगरवासियों को एक-एक दीप लेकर साथ चलने का आदेश दिया। प्रभु का यह आदेश सर्वत्र उद्घोषित हो गया। लाखों लोग अगणित प्रदीप जलाकर प्रभुके समीप उपस्थित हो गये। अलग-अलग सम्प्रदाय में प्रभु ने कीर्तन की व्यवस्था की और सबको साथा लेकर प्रभु परिकरसहित गंगा के किनारे-किनारे कीर्तन करते हुये अग्रसर होने लगे।

प्रभु जिस नगर में प्रवेश करते, उस नगर

के स्त्री–वृद्ध–बालक आदि सब अपने–अपने गृहकार्यों का परित्याग करके प्रभुपादपद्म में दण्डवत् प्रणत हो जाते एवं सभी कृष्ण–प्रेमरंग में उन्मत्त हो जाते। नगरवासियों का प्रेमोन्माद–भाव देखकर पाखण्डियों का हृदय जलने लगा। वे मन–ही–मन कहने लगे,–"यदि इसी समय काजी आ गया होता, तो इन लोगों का सब कीर्तनानन्द मिट्टी में मिल गया होता।"

श्रीगौरचन्द्र धीरे–धीरे काजी के घर की ओर चलने लगे। गीत–वाद्य सुनकर काजी ने खोज–खबर लेने के लिए लोगों को भेजा। सभी अनुचरगण के मुख से 'काजी को मार डालो'– यह शब्द सुनकर दौड़ते हुये वे काजी के पास लौट आये और उन्हें सब हाल बताया। यह सुनकर काजी अपने साथियों के साथ वहाँ से प्रस्थान कर गया। काजी के घर के सामने आकर प्रभु ने कीर्तनविद्वेषी काजी को निर्यातन करने के लिए आदेश दिया। आदेश सुनते ही सब काजी के घर को तोड़ने लगे एवं आम, केला, कटहल आदि के बागों को उजाड़ दिया। इसके पश्चात् प्रभु द्वारा काजी के घर में आग लगा देने का आदेश दिये जाने पर भक्तवृन्द ने गले में कपड़ा डालकर हाथ जोड़ते हुये इस क्रोध–लीला का संवरण करने के लिए प्रभु के निकट प्रार्थना की। भक्तवाक्य से शान्त होकर प्रभु शंखवणिक–मोहल्ला एवं जुलाहा–मोहल्ला से गुजरते हुये श्रीधर के घर पधारे। वहाँ नृत्य करते–करते वे टांका युक्त जल से भरे हुये लोहे के पात्र को देखकर उसमें स्थित जल को पी गये। इसे देखकर श्रीधर हृदय में अत्यन्त व्यथा का अनुभव करके मूर्च्छित हो गये। प्रभु ने वहाँ सभी के समक्ष वैष्णव का जलपीने की महिमा का कीर्तन किया।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

सपरिकर गौरसुन्दर का जयगान–

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य गुणनिधि।
जय विश्वम्भर जय भवादिर विधि॥१॥
जय जय नित्यानन्द प्रिय द्विजराज।
जय जय चैतन्येर भक्त–समाज ॥२॥

(१–२) प० अनु०—गुणनिधि श्रीकृष्णचैतन्य की जय हो, जय हो। शिव आदि के विधाातास्वरूप विश्वम्भर की जय हो, जय हो। नित्यानन्द के प्रिय द्विजराज की जय हो, जय हो। चैतन्य के भक्तसमाज की जय हो, जय हो।

(१) गौः भाः—भवादिर विधि (भवादि के विधि)॥ गुणावतार रुद्र एवं विरिंचि (ब्रह्मा) के नित्य विधानकर्ता। 'जन्म' एवं 'भंग' नित्य के दो पार्श्वमात्र हैं। अखंडकाल–रूप भगवान् 'सत्' एवं 'असत्' ` नियामक हैं। इसलिए वे भवादि के विधि हैं।

द्वार बन्द करके प्रभु का कीर्तन–विलास–

हेनमते नवद्वीप प्रभु विश्वम्भर।
क्रोड़ा करे, नहे सर्व–नयन–गोचर॥३॥
दिने दिने महानन्द नवद्वीप–पुरी।
वैकुण्ठनायक विश्वम्भर अवतारि॥४॥
प्रियतम–नित्यानन्द संगे कुतूहले।
भक्त समाजे निज–नाम–रसे खेल॥५॥
प्रतिदिन निशाभागे करये कीर्तन।
भक्त–बिनु थाकिते ना पाय अन्य जन॥६॥

(३–६) प० अनु०—इस प्रकार से प्रभु विश्वम्भर नवद्वीप में क्रीड़ाएँ कर रहे थे। परन्तु वे क्रीड़ाएँ सभी को दिखाई नहीं देती थीं। वैकुण ठनायक विश्वम्भर के अवतरण से नवद्वीप–पुरी

में दिन पर दिन महान् आनन्द होने लगा। भक्त समाज और प्रियतम नित्यानन्द के साथ मिलकर प्रभु आनन्द-सहित निज-नाम-रसमें विलास करते थे। प्रतिदिन रात्रि के समय प्रभु कीर्तन करते थे। उस समय भक्तों को छोड़ दूसरा कोई वहाँ नहीं रह सकता था।

(३) गौः भाः—भगवान् विश्वम्भर की सभी क्रियाओं को देखने का अधिकार कोई नहीं था। जैसा जिसका अधिकार था, वह मात्र उसी प्रकार की क्रियाओं का दर्शन कर सकता था।— (भाः१०/४३/१७) "मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः। मृत्युर्भेजपतेर्विराडविदुषां तत्त्व परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंङ्ग गतः साग्रजः॥"

अर्थात्, एक ही अद्वयज्ञानवस्तु भगवान् के विविध रूपों में दिखाई देने पर भी व्यक्तिविशेष उनके सभी प्रकार के रूपों को एक साथ एक ही समय में नहीं देख सकते हैं। शान्त-दर्शन में एकपाद-विभूति में अवस्था करने के समय जीव एकसाथ वस्तुओं को एक ही समय में नहीं देख सकता। दोनों आँखों के एक ही दिशा में अवस्थान के कारण वृत्त का आधा भाग दिखाई देता है; उस समय दूसरे भाग को देखना संभव नहीं है। फिर, ऊपर गगनमंडल को देखते समय नीचे देखना संभव नहीं है; इसलिए एक ही समय में सब कुछ देखना असंभवहै; अतएव गोले का केवल एकपाद (चौथाई भाग) ही एक समय में देखा जा सकता है।

(५) गौः भाः—निज-नामरस— श्रीभगवान् रसमय हैं। भगवान् और भगवान् के नाम अभिन्न हैं। अतएव नाम भी रसमय है। भगवान् के नाम अथवा वैकुण्ठ-नाम अन्य नामों अथवा संज्ञाओं से पृथक् हैं। भगवान् के अपने भक्तों में जो नामरस प्रबल है, उससे भगवान् गौरहरि स्वयं ही आत्मविस्मृत हो जाते हैं। भक्त के प्रति वत्सलता ही उनकी विस्मृति का कारण है।

(६) गौः भाः—रात को कीर्तन के सहारे भजन-'शिक्षा के समय भिन्न उद्देश्य लेकर आये हुये विजातीय-आशय वाले लोगों को वहाँ प्रवेश करने का अधिकार नहीं था।

तुरीय वस्तु का विचार त्रिगुण के अनतर्गत स्थित जीव के लिए अगम्य है-

एत बड़ विश्वम्भर-शक्तिर महिमा।
त्रिभुवने लंघिते ना परे केह सीमा॥७॥

(७) प० अनु०—विश्वम्भर की शक्ति की महिमा इतनी बड़ी है कि, त्रिभुवन में कोई भी उसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता है।

(७) गौः भाः॥ विश्वम्भर की शक्ति-महिमा अतुलनीय है। मनुष्यों का ज्ञान त्रिगुणात्मक है। इसलिए वे तुरीय अथवा उससे ऊपर के विचार को ग्रहण करने में असमर्थ हैं।

प्रभु के कीर्तन में प्रवेशाधिकार न मिलने पर विजातीयशय व्यक्तियों के द्वारा बहुविध उक्ति-

अगोचरे दूरे थाकि' मिलि दश-पाँचे।
मन्द मात्र बले, यम-घरे याय पाछे॥८॥
केह बले,-"कलिकाले किसरे वैष्णव?
यत देख-हेर पेट-पोषा-गुला सब़"॥९॥
केह बले,-"एगुलार बान्धि' हात पा'य।
जले फेलि' दिए यदि, तबे दुःख याय॥१०॥
केह बले,-"आरे भाइ, जानिह निश्चित।
ग्राम-खान नष्ट कैल निमाइ पण्डित़"॥११॥

(८-११) प० अनु०—प्रभु के कीर्तन में प्रवेशाधिकार से वंचित लोग दश-पाँच एक

साथ मिलकर दूर से, अगोचर में, केवल अपशब्दों का उच्चारण करते रहते थे और इसके फलस्वरूप बाद में उन्हें यम के घर जाना पड़ता था। किसी ने कहा,—"कलिकाल में काहे का वैष्णव? जितने भी दिखाई दे रहे हैं, वे सब पेट पालने के लिए ही ऐसा कर रहे हैं।" जल में फेंक दिया जाये, तभी दुःख दूर हो सकता है।" किसी ने कहा,–"अरे भाई, निश्चितरूप से यह जान लो कि, निमाइ पंडित ने गाँव को बरबाद कर दिया है।"

(८) गौः भाः—अधिकार ने मिलने पर साधारण (अप्रविष्ट) जन भगवद्–भजन–प्रणाली की निन्दा करते हुये जीवन के अन्तिम चरण में यम के द्वारा दंडित होते हैं।

(९) गौः भाः—निन्दक–सम्प्रदाय वैष्णवों को 'उदर–भरण–परायण' कहते हैं; विशेषतः विवाद–प्रधान कलियुग में वैष्णव का अस्तित्व अथवा विष्णु–भक्ति– प्राप्ति की संभावना नहीं है, यही उन लोगों का विचार था।

(१०) गौः भाः–तब इन सब उदर–परायण भगवत्सेवा–विमुख वैष्णवों को विनष्ट कर देने के उद्देश्य से इन लोगों के हाथ–पैर बाँध ाकर इन्हें पानी में बहा देने से हम लोगों का दुःख दूर हो सकता है।

(११) गौः भाः—निमाइ पण्डित ने शुद्धभक्ति का प्रवर्तन करके गाँव के सारे सुख को नष्ट कर दिया है। अतएव नवद्वीप नष्ट हो गया है।

दुर्वृत्तजनों के द्वारा कीर्तन–भवन में प्रवेशार्थ चतुरता अपनाने की निष्फलता–

भय देखायेन सबे देखिवार तरे।
अन्तरे नाहिक भाग्य, चातुर्ये कि करे॥१२॥

(१२) प० अनु०—कीर्तन देखने के लिए सभी भय दिखाते थे, परन्तु भाग्य में न होने पर केवल चतुरता से क्या होता है?

(१२) गौः भाः—दुराचारी (बुरे आचरण वाले) लोग भक्तसमाज को भयभीत करके श्रीचैतन्यदेव के परमगोप्य संकीर्तन–विलास के दर्शन करने के लिए जिस चतुराई से काम लेना चाहते थे, भाग्यहीनता–दोष के कारण वह चतुराई भक्तसमाज में कोई प्रभाव विस्तार करने में समर्थ न हो सकी।

प्रभु का कीर्तन जगत् का चित्त–शोधक है–

संकीर्तन करे प्रभु शचीर नन्दन।
जगतेर चित्तवृत्ति करये शोधन॥१३॥

(१३) प० अनु०–संकीर्तन के द्वारा शचीनन्दन जगत् की चित्तवृत्तियों का शोधन किया करते थे।

(१३) गौः भाः—भगवान् शचीनन्द कृष्ण का सम्यक् कीर्तन करके भगवद्विमुख जगत् के विभिन्न भोगप्रवण (भोगासक्त) भावसमूहों का मार्जन किया करते थे।

साधारणजन लोगों को कीर्तन–विलास–दर्शन का अधिकार ने मिलने पर उनका आक्षेप एवं भक्तों के समीप प्रवेशार्थ आवेदन; प्रभु के डर से भक्तों द्वारा इसको अस्वीकार–

देखिते ना पाय लोक, करे अनुताप।
सबेइ 'अभाग्य' बलि' छाड़ये निःश्वास ॥१४॥
केह वा काहारो ठाञि परिहार करे।
संगोपे संकीर्तन गिया देखिवार तरे॥१५॥
'प्रभु से सर्वज्ञ' इहा सर्व–दासे जाने।
इए भये केह का'रे ना लय से–स्थाने॥१६॥

(१४–१६) प० अनु०—कीर्तन–विलास न देख पाने के कारण लोग अनुताप करते थे और हमारा 'अभाग्य' है, ऐसा कहकर वे सभी लम्बी साँस छोड़तेथे। गुप्तरूप से संकीर्तन

देखने के लिए कोई-कोई किसी भक्त के निकट अनुरोध भी करते थे; किन्तुसभी दास (भक्त) जानते थे;कि, 'प्रभु सर्वज्ञ हैं', इस भय से कोई किसी को वहाँ नहीं ले जाता था।

(१५) गौः भाः–परिहार-प्रार्थना; आवेदन। कभी-कभी कोई-कोई भक्तों के निकट निजी-दोष स्खालन-पूर्वक गुप्तभाव से कीर्तन-लीला देखने के लिए अनुरोध किया करते थे।

कृष्णभक्ति-रहित दूध पीने वाले ब्रह्मचारी का आख्यान-

एक ब्रह्मचारी सेइ नवद्वीपे वैसे।
तपस्वी परम साधु बसये निर्दोषे॥१७॥
सर्वकाल पयः पान, अन्न नाहि खाय।
प्रभुर कीर्तन विप्र देखिवारे चाय॥१८॥

(१७-१८) प० अनु०—एक निर्दोष, तपस्वी, परम साधु ब्रह्मचारी नवद्वीप में रहता था। वह केवल दूध पीता था, अन्न आदि का भोजन नहीं करता था। वह ब्राह्मण प्रभु का कीर्तन देखना चाहता था।

(१८) गौः भाः—अग्नि से पकाये गये पदार्थ को प्राणनाशक समझकर बिना उबाले हुये कच्चे दुग्ध को पीकर जीवन निर्वाह करने वाला ब्रह्मचारी भगवान् की महिमा सुनने में अयोग्य था, इस कारण बन्द द्वारवाले भवन में कीर्तन सुनने का उसके अधिकार नहीं था। मात्र भोग-परित्याग-धर्म ही भगवान् की साक्षात् सेवा कभी नहीं है वैराग्य के अपव्यवहारकारी अर्वाचीनलोग भगवान् की सेवा के उपकरणों को भी आत्मग्लानि का विषय समझते हैं।

पयः पानव्रती ब्रह्मचारी का कीर्तन सुनने में अधिकार न होने से उसे देखने के लिए श्रीवास से अनुरोध एवं श्रीवास -द्वारा ब्रह्मचारी को गोपन भाव में अपने घर रखना-

प्रभु से दुयार दिया करये कीर्तन।
प्रवेशिते नारे भक्त बिना अन्य जन॥१९॥
सेइ विप्र प्रतिदिन श्रीवासेर स्थाने।
नृत्य देखिवार लागि' साधये आपने॥२०॥
''तुमि यदि एकदिन कृपा कर मोरे।
आपने लइया याह बाड़ीर भितरे॥२१॥
तबे से देखिते पाङ पण्डितेर नृत्य।
लोचन सफल करौं, हङ कृतकृत्य॥''२२॥
एइमत प्रतिदिन साधये ब्राह्मेमण।
आर दिने श्रीनिवास बलिला वचन॥२३॥
''तोमारे त' जानि सर्वकाल बड़ भाल।
ब्रह्मचर्ये फलाहारे गोङाइला काल॥२४॥
कोन पाप नाहि जानि तोमार शरीरे।
देखिवार तोमार त' आछे अधिकारे॥२५॥
प्रभुर से आज्ञा नाहि केह याइवारे।
'संगोपे थाकिबा', एइ बलिलुँ तोमारे॥२६॥
एत बलि' ब्राह्मणेरे लइया चलिला।
एक दिके आड़ हइ' संगोपे रहिला॥२७॥

(१९-२७) प० अनु०—द्वार बन्द करके प्रभु कीर्तन करते थे। भक्तों को छोड़ और दूसरा कोई वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता था। वे ब्राह्मण ब्रह्मचारी नृत्य देखने के लिए रोज श्रीवास से अनुरोध किया करते थे "यदि तुम किसी दिन कृपा करके मुझे अपने घर ले चलो, तो पण्डित जी का नृत्य देखने को मिल जाए। इससे मेरे नेत्र सफल हो जायेंग और मैं भी कृतार्थ हो जाऊँगा।" इस प्रकार से ब्राह्मण प्रतिदिन प्रार्थना करता था। एकदिन श्रीवास ने कहा,- "मैं तुम्हें जन्म से जानता हूँ, तुम बहुत अच्छे हो। ब्रह्मचारी बनकर केवल फलाहार करके तुमने दिन बिताये हैं। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे शरीर में कोई पाप नहीं है। तुम्हें देखने का अधिकार है; परन्तु

प्रभु की आज्ञा के बिना वहाँ कोई नहीं जा सकता, तुम 'छिपकर बैठ जाना।' ऐसा कहकर श्रीवास ब्राह्मण को घर ले जाये। वहाँ जाकर ब्राह्मण एक स्थान पर छिपकर बैठ गये।

(२६) गौः भाः—यद्यपि पयः पान व्रतधारी ब्रह्मचारी का शरीर निष्पाप था, फिर भी महाप्रभु की ओर से उन्हें भगवत्–कीर्तन सुननेकी अनुमति नहीं थी। ब्रह्मचारी–द्वारा श्रीवास के समक्ष प्रतिदिन दर्शन की अभिलाषा ज्ञापन करने पर श्रीवास ने उन्हें आत्मगोपनीयता–अवलम्बन–पूर्वक अवस्थान करने का परामर्श दिया।

ब्रह्मचारी की अवस्थिति का सर्वज्ञ प्रभु को हृदयगोचर एवं उसके प्राशार्थ छल–

नृत्य करे चतुर्दश भुवनेर नाथ।
चतुर्दिके मा–भाग्यवन्त–वर्ग–साथ॥२८॥
''कृष्ण राम मुकुन्द मुरारि वनमाली।''
सबे मिलि' गाय हइ' महा–कुतूहली॥२९॥
नित्यानन्द–गदाधर धरिया बेड़ाय।
आनन्दे अद्वै–सिंह चारिदिगे धाय॥३०॥
परानन्द–सुखे केह बाह्य नाहि जाने।
वैकुण्ठ–नायक नृत्य करये आपने॥३१॥
'हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल भाइ।'
इहा बइ आर किछु शुनिते ना पाइ॥३२॥
अश्रु, कम्प, लोमहर्ष, सघन–हुँकार।
के कहिते पारे विश्वम्भर विकार॥३३॥
सर्वज्ञेर चूड़ामणि विश्वम्भर–राय।
जाने 'द्विजे लुकाइया आछये एथाय॥'३४॥
रहिया रहिया बले प्रभु विश्वम्भर।
''आजि केन प्रेम–योग ना पाङ निर्भर?॥३५॥
केह जानि आसियाछे बाड़ीर भितरे।
किछु नाहि बुझि, सत्य कह देखि मोरे॥''३६॥
भय पाइ' श्रीनिवास बलये वचन।
''पाषण्डेर इथे प्रभु, नाहि आगमन॥३७॥
सबे एक ब्रह्मचारी बड़ सुब्राह्मण।
सर्वकाल पयः पान, निष्पाप–जीवन॥३८॥
देखिते तोमार नृत्य श्रद्धा ताँ'र बड़।
निभृते आछये प्रभु, जानियाछ दढ़॥''३९॥

(२८–३९) प० अनु०—महाभाग्यशाली भक्तों के द्वारा चारों ओर से घिरे हुये चतुर्दश भुवनों के नाथ उनके साथ मिलकर नृत्य कर रहे थे। सभी मिलकर "कृष्ण राम मुकुन्द मुरारि वनमाली" कहकर महा आनन्द के साथ कीर्तन कर रहे थे। नित्यानन्द और गदाधर एक दूसरे को पकड़कर घूम रहे थे। अद्वैतसिंह आनन्द–सहित चारों ओर दोड़ रहे थे। परानन्दसुख के कारण किसी को भी बाहरी सुध–बुध नहीं थी। वैकुण्ठ–नायक स्वंय नृत्य कर रहे थे। 'हरिबोल, हरि बोल, हरि बोल भाई' के अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं देता था। अश्रु, कम्प, लोमहर्ष एवं सघन–हुँकार–सहित विश्वम्भर नृत्य कर रहे थे। विश्वम्भर के इन सब विकारों का वर्णन कौन कर सकता है? सर्वज्ञ–चूड़ामणि विश्वम्भर राय जानते थे कि, 'ब्राह्मण यहाँ छिपकर अवस्थान कर रहे हैं।' इस कारण विश्वम्भर प्रभु रह–रहकर कहते जा रहे थे– "आज मुझे पूर्ण प्रेमयोग की उपलब्धि क्यों नहीं हो पा रही है? लगता है, कोई भवन के भीतर घुस आया है मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है, मुझे सच–सच बताओ।" भयभीत होकर श्रीनिवास ने कहा,–"हे प्रभु, कोई भी पाखण्डी यहाँ नहीं आया हुआ है। केवल एक सद् ब्राह्मण ब्रह्मचारी यहाँ उपस्थित है। उनका जीवन निष्पाप है और वे केवल दूध ही पीते हैं। वे बड़े श्रद्धालु हैं और आपका

नृत्य देखना चाहते हैं। आपने बिलकुल सही जाना,वे छिपकर बैठे हुये हैं।"

(३५) गौः भाः—जो भगवान् के नाम-रूप- गुण-परिकर-वैशिष्ट्य एवं लीला के विरोधी हैं तथा केवल जड़क्रिया से विमुक्त हैं, ऐसे योगी-सम्प्रदाय कृष्ण-प्रीति का अनुसंधान नहीं करते हैं। इसलिए उन लोगों का सांसारिक महत्त्व रहने पर भी उन्हें चतुर्वर्ग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) से अतीत भगवत् प्रेम के विरोधी-भाव ग्रास कर लेते हैं। उस प्रकार के वर्जनीय संग वाले व्यक्तियों को लोगों की दृष्टि में श्रेष्ठ समझे जाने पर भी उस भक्ति-विरोधी योग के माध्यम से प्रेम-प्राप्ति की संभावना नहीं है। श्रीगौरसुन्दर ने प्रेमविरोधी लोगों के साथ प्रेम का अभाव ज्ञापित किया है।

क्रोध के आवेश में प्रभु-द्वारा
कृष्णबहिर्मुख तपस्या

आदि की निष्फलता का ज्ञापन-
शुनि' क्रोधावेशे तबे बले विश्वम्भर।
''झाट झाट बाड़ीर बाहिर लञा कर' ॥४०॥
मोर नृत्य देखिते उहार कोन् शक्ति।
पयःपान करिले कि मोते हय भक्ति।।''४१॥
दुइ भुज तुलि' प्रभु अंगुली देखाय।
''पयः पाने कभु मोरे केह नाहि पाय॥४२॥
चंडालेओ मोहार शरण यदि लय।
सेह मोर, मुञि ता'र, जानिह निश्चय॥४३॥
संन्यासीओ मोर यदि ना लय शरण।
सेह मोर नेह, सत्य बलिलुँ वचन॥४४॥
गजेन्द्र-वानर-गोपे कि तप करिल।
बल देखि, ता'रा मोहे केमते पाइल॥४५॥
असुरेओ तप करे, कि हय ताहार।
बिने मोर शरण लइले नाहि पार॥''४६॥
प्रभु बले,—''पयः पाने मोरे नाहि पाय।
सकल करिमु चूर्ण देखिवे एथाइ'' ॥४७॥

(४०-४७) प० अनु०—यह सुनकर क्रोध के आवेश में विश्वम्भर कहने लगे,-"तुरन्त उसे भवन से बाहर ले जाओ। मेरा नृत्य देखने की क्या शक्ति है उसमें? क्या पयः पान-मात्र से मुझमें भक्ति हो जाती है?" दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर अंगुली दिखाते हुये प्रभु बोले-"पयःपान-मात्र से मुझे कभी कोई प्राप्त नहीं कर सकता। चांडाल भी यदि मेरी शरण में आता है, तो वह मेरा है और मैं उसका हूँ, यह मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ। संन्यासी भी यदि मेरी शरण नहीं लेता है, तो वह मेरा नहीं है, यह बिलकुल सच है। गजेन्द्र, वानर और गोपों ने क्या तप किया था? जरा बताओ तो सही, फिर उन्होंने मुझे कैसे प्राप्त किया था? असुर भी तपस्या करता है, उसे क्या मिलता है? मेरे शरणागत हुये बिना, पार पाना संभव नहीं है।" प्रभु आगे बोले,-"पयःपान से मैं मिलने वाला नहीं हूँ। देख लेना, यहीं मैं सब चूर्ण-विचूर्ण कर दूँगा।"

(३६-४१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर को जब हरिकीर्तन में अधिक स्फूर्त्ति न मिली तो उन्हें सन्देह हुआ कि दुःसंग को बहुमान्यकारी घर के भीतर किसी का प्रवेश हुआ है। महाप्रभु ने श्रीवास पण्डित से जिज्ञासा की तो उत्तर में श्रीवास पण्डित ने कहा- "भगवद्-विद्वेषी किसी अधार्मिक पाखंडी ने घर में प्रवेश नहीं किया है; परन्तु ब्रह्मचारी-आश्रम में अवस्थित, पयःपानव्रती, निष्पाप और कर्मनिष्ठ एक ब्राह्मण आपका नृत्य देखने के लिए श्रद्धायुक्त होकर घर के भीतर निर्जन प्रकोष्ठ में अवस्थान कर रहा है।" यह सुनकर महाप्रभु ने उसे 'अभक्त'- समझकर घर से बाहर निकाल देने

के लिए क्रोध प्रकाशित किया। कच्चा दूध पीने से ही अधिक भगवद्भक्ति होती है, जब यह निश्चित नहीं है, तब भक्त का नृत्य देखने का अधिकारकिसी अभक्त व्यक्ति को कैसे होगा? केवला भक्ति के अभाव के कारण ही उसमें बहिर्मुख तपःसाधन की प्रवृत्ति उदित हुई है। साधारण विचार में अहिंसा के उद्देश्य से जिन सब तपस्याओं को धार्मिक जीवन के अनुकूल माना जाता है, वैसी तपस्याएँ कभी भी भगवद्–भक्ति का सोपान नहीं बन सकती हैं। भगवत्–सेवोन्मुखता एवं जड़जगत् में प्राधान्य–प्राप्ति की चेष्टा—ये दोनों बातें समान नहीं हैं।

(४२) गौः भाः—अहिंसा नीति के वशवर्त्ती होकर जागतिक श्रेष्ठता अथवा साधुता प्राप्त करने की चेष्टा भगवान् में सेवोन्मुखता का प्रमाण नहीं है। श्रीगौर सुन्दर ने विशेषरूप सेस इसे दिखाया है।

(४३) गौः भाः—कर्म करते समय वर्तमान मानव जीवन में भले ही कोई सुनीचता को प्राप्त करे ले, तब भी उसमें यदि भगवत्–सेवोन्मुखता प्रबल भाव में विद्यमान रहे, तो वह मेरा निजी–जन है और वही 'मानकी तुन' ब्राह्मण है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं है।

(४४) गौः भाः—सर्वश्रेष्ठ आश्रमी यति भी यदि भगवत्–सेवाविमुख है, तो उसे भगवान् के निजी–जन के रूप में स्वीकार करना उचित नहीं होगा, यह ध्रुव सत्य है।

(४५–४६) तथ्यः—उद्धव के प्रति श्रीभगवान् की उक्ति (भाः११/१२/१–८)—"न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एवं च। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त्तं न दक्षिणा।। व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः। यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसङ्गपहो हि माम्॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः। गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्वारणगह्यकाः॥ व़िाधरा–मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽनघ।। बहवो मत्त्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्र– कायाधवादयः। वृष्णपर्वा बलिर्वाणो मयश्चाथ, विभीषणः। सुग्रीवो हतुमानृक्षो गजो गृधो वाणिक्–पथः। व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे।। ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासित–महत्तामाः। अव्रतातप्ततपसः मामीयुरंजसा।।" "व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का, कुब्जायाः किमु नामा रूपमधिकं किं तत् सुदाभ्नो धनम्। वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं भक्त्या तुष्यति केवलं नच गुणैर्भक्तिप्रिये माधवः॥

(पद्यावली से उद्धृत दाक्षिणात्य कवि–वाक्यम्)

प्रभु के शासन–ताड़न से ब्रह्मचारी का ज्ञानोदय एवं अपने भाग्य की प्रशंसा–

महा–भये ब्रह्मचारी हइला बाहिर।
मने मने चिन्तये ब्राह्मण महाधीर॥४८॥
"एइ बड़ भाग्य मुञि ये किछु देखिलुँ।
अपराध–अनुरूप शास्तिओ पाइलुँ॥४९॥
अद्भुत देखिलुँ नृत्य, अद्भुत कीर्तन।
अपराध–अनुरूप पाइलुँ तर्जन॥"५०॥
सेवक हइले एइ मत बुद्धि हय।
सेवके से प्रभुर सकसल दण्ड सय॥५१॥

(४८–५१) प० अनु०—भयभीत होकर ब्रह्मचारी घर के बाहर आ गये। वे महाधीर ब्राह्मण मन–ही– मन चिन्तन करने लगे,–"जो कुछ भी मैंने देखा है, उसे मैं अपना भाग्य मानता हूँ और अपराध के अनुरूप दण्ड भी मुझको मिल गया है। मैने अद्भुत नृत्य और कीर्तन देखा है और अपराध के अनुसार

तर्जन भी मिला है। सेवकों की ऐसी बुद्धि होती है। सेवक ही प्रभु का सभी दण्ड सहन करते हैं।

(४९–५०) गौः भाः—तपस्वी ब्रह्मचारी निर्विशेष विचारपकर थे। अतः उनमें सेवा–प्रवृत्ति का अभाव था। इस कारण भगवत्– प्रेमोन्मत्त दृश्य उनके आदर का विषय नहीं था। वही उनके अपराध का कारण था। जड़–जगत् में विषयोन्मत्त जीवों के नृत्य अथवा उनके अभाव जनित क्रन्दन को जो लोग भगवत्–कथा के आनन्द में होने वाले हास्य–गीत एवं क्रन्दन–परायण भगवद्–भक्त को समान समझते हैं, वे सब अपराधी जीव हैं। श्रीगौसुन्दर के शासन एवं ताड़न–वाक्यों से निर्विशेष विचार–परक ब्रह्मचारी को दण्ड मिला। इससे उनमे ज्ञान का उदय हुआ है।

(५१) गौः भाः—निरन्तर सेवापरक चित्तवाला व्यक्ति आत्मस्वरूप की उपलब्धि–हेतु भगवद् विहित किसी कार्य में अपना असन्तोष प्रकट नहीं करता है— अपने आपको दण्ड के योग्य समझकर भगवान् के विधान को शिरोधार्य करते हुये वह अपने पूर्वकृत अपराध की योग्यता का ही विचार करता है एवं धीर भाव से धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष आदि किसी भी फल की प्राप्ति के उद्देश्य से भगवद्–विधान के प्रतिकूल प्रयत्न मे तत्पर नहीं होता है। इस प्रसंग में (भाः१०/१४/८) "तत्तेऽनुकम्पां" श्लोक एवं श्रीगौरसुन्दर द्वारा कथित "आश्लिष्य वा पादरतां" श्लोकद्वय अनुशील के योग्य हैं।

प्रभु–द्वारा ब्रह्मचारी के मस्तक पर पादपद्म की स्थापना–

एइमत चिन्तियाा चलिते द्विजवर।
जानिलेन अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर॥५२॥
डाकिया आनिया पुनः करुणा–सागर।
पादपद्म दिला ता'र मस्तक–उपर॥५३॥

(५२–५३) प० अनु०—इस प्रकार चिन्तन करते हुये द्विजवर चले जा रहे थे कि, अन्तर्यामी प्रभु विश्वम्भर को सब कुछ अवगत हो गया। करुणा–सागर प्रभु ने उन्हें फिर बुलाया और उनके सिर पर अपना पादपद्म रख दिया।

प्रभु के द्वारा तपस्या आदि से विष्णुभक्ति की श्रेष्ठता की स्थापना–

प्रभु बले 'तपः' करि' ना करह बल।
विष्णुभकित सर्वश्रेष्ठ जानह केवल॥५४॥

(५४) प० अनु०—प्रभु बोले, 'तपस्या' करके घमंडी मत बनो। निश्चितरूप सेस जान लो कि केवल विष्णुभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

(५४) गौः भाः— तथ्य—पूर्वलिखित भाः ११/१२/१–८ श्लोकसमूह द्रष्टव्य हैं। (भाः १०/२३/४२–४३) ''नासां द्विजातिसंस्कारों न निवासो गुरावपि। न तपो नात्ममीमांसा न शौचां न क्रियाः शुभः॥ तथापि ह्युत्तमःश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे। भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादि–मतामपि।।" पद्मपुराण में— "मुहाकुल–प्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। सहस्त्रशाखाध्यायी च न गुरु स्याद्वैष्णवः॥" नारद पंचरात्र में— " आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्। नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् अन्तर्बहिर्यादि हरिस्तपसा ततः किम् नान्तर्बहिर्यादि हरिस्तपसा ततः किम्॥ (भाः ११/२०/३१)— "न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह।" (भाः १०/८१/११)— "सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चारणार्च्चनम्।" पद्मपुराण में—"आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्च्चनम्॥"

पयः पानव्रती ब्रह्मचारी–द्वारा प्रभु की

करुणा का स्मरण एवं क्रन्दन–

आनन्दे क्रन्दन करे सेइ विप्रवर।
प्रभुर करुणा–गुण स्मरे निरन्तर॥५५॥

(५५) प० अनु०—प्रभु के करुणा–गुण का स्मरण करते हुये विप्रवर आनन्द में निरन्तर क्रन्दन करते रहे।

ब्रह्मचारी को कृपाप्राप्ति होने से वैष्णवों को आनन्द–

'हरि' बलि' सन्तोषे सकल भक्तगण।
दण्डवत हइया पड़िल ततक्षण॥५६॥

(५६) प० अनु०—उस समय प्रसन्नता के साथ 'हरिबोल' कहकर सभी भक्तगण दण्डवत होकर गिर पड़े।

ब्रह्मचारी के उपाख्यान को सुनने का फल–

श्रद्धा करि' येइ शुने ए सब रहस्य।
गौरचन्द्र–प्रभु ताँ'रे मिलिब अवश्य॥५७॥

(५७) प० अनु०–श्रद्धापूर्वक जो इन सब रहस्यों के बारे में सुनता है, वह निश्चितरूप से गौरयन्द्रप्रभु को प्राप्त कर लेगा।

ब्रह्मचारी पर कृपा करके आवेश में प्रभु का नृत्य–

ब्रह्मचारी–प्रति कृपा करिया ठाकुर।
आनन्द–आवेशे नृत्य करने प्रचुर॥५८॥

(५८) प० अनु०—ब्रह्मचारी पर कृपा करके ठाकुर आनन्द के आवेश में प्रचुर नृत्य करने लगे।

ग्रन्थकार के द्वारा ब्राह्मण को अपने गोष्ठी में लेना एवं सम्मान–प्रदान–

सेइ द्विज–चरणे आमार नमस्कार।
चैतन्येर दण्डे हैल हेन बुद्धि याँ'र॥५९॥

(५९) प० अनु०—चैतन्य के द्वारा दिये गये दण्ड में जिसकी इस प्रकार की बुद्धि हुई, उस ब्राह्मण के चरणों में मेरा नमस्कार है।

(५९) गौः भाः—अपराध के फलस्वरूप दण्डित विप्र को ठाकुर श्रीवृन्दावन–द्वारा अपनी गोष्ठी में ग्रहण करने एवं उनको सम्मान प्रदान करने की अभिलाषा वर्णित हो रही है।

प्रभु के निशा–कीर्तन–विलास–दर्शन का अधिकार न मिलने के कारण नदियावासियों को दुःख एवं पाखंडियों के प्रति उनकी बहुविध उक्ति–

एइमत प्रति–निशा करये कीर्तन।
देखिवारे शक्ति नाहि धरे अन्य जन॥६०॥
अन्तरे दुःखित सब लोक नदीयार।
सबे पाषण्डीरे मन्द बलये अपार॥६१॥
''पापिष्ठ निन्दक बुद्धिनाशेर लागिया।
हेन महोत्सव देखिवारे नारे गिया॥६२॥
पापिष्ठ–पाषण्डी–सब, सबे निन्दा जाने।
वंचित हइया मरे ए–हेन कीर्तने॥६३॥
पापिष्ठ–पाषण्डी लागि' निमाइ पण्डित।
भलरेओ द्वारा नाहि देन कदाचित॥६४॥
तेंहो से कृष्णेर भक्त,–जानेन सकल।
ताँहार हृदय पुनि परम निर्मल॥६५॥
आमरा सबार यदि ताँ'के भक्ति थाके।
तबे नृत्य अवश्य देखिब कोन पाके॥''६६॥
कोन नगरिया बले,–''बसि' थाक भाइ।
नयन भरिया देखिबाड़ एइ ठाञि॥६७॥
संसार–उद्धार लागि' निमाइ पण्डित।
नदीयार माझे आसि' हइला विदित॥६८॥
घरे घरे नगरे नगरे प्रति–द्वारे।
करिबेल संकीर्तन, बलिल तोमारे॥''६९॥

(६०–६९) प० अनु०—इस प्रकार से हर

रात प्रभु का कीर्तन को देख होता था। परन्तु दूसरा कोई उस कीर्तन को देख नहीं सकता था। नदीया के सभी लोग मन से दुःखी थे और सब मिलकर पाखण्डियों को गाली दिया करते थे। "बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण सब पापिष्ठ निन्दक इस प्रकार के महोत्सव को देखने से वंचित हैं। सब पापिष्ठ-पाखण्डी केवल निन्दा करना जानते हैं और इस कारण ऐसे कीर्तन से दूर रह गये हैं पापिष्ठ-पाखण्डियों के कारण अच्छे लोगों को भी निमाइ पण्डित कभी भीतर नहीं आने देते हैं। वे कृष्णभक्त हैं, सब जानते हैं। उनका हृदय परम पवित्र और निर्मल है। यदि हम सबकी भी उनके प्रति सच्ची भक्ति हो जाये तोा उस दशा में निश्चितरूप से हम लोगों को भी उनका नृत्य देखने का सुअवसर मिल जाये।" कोई एक नगरवासी कहता,- "धीरज रखो भाई! हम लोग भी आँख भरकर यहीं सब देख पायेंगे। संसार का उद्धार करने के लिए निमाइ पण्डित नदीया में आविर्भूत हुये हैं। हम तुम्हें बताये देते हैं कि वे घर-घर में, नगर-नगर में और द्वार-द्वारा पर संकीर्तन करेंगे।"

(६४) गौः भाः—साधारण-विचार में पूजित निष्पाप सज्जनवृन्द एवं भगवद्-विद्वेषी पापरतजन—इन दोनों को ही भगवान् स्वीकार नहीं करते हैं।

(६६) गौः भाः—पाके—अवस्था में, दशा में, हालत में।

ग्रन्थकार के द्वारा भाग्यवन्त नागरिकों के सौभाग्य की प्रशंसा एवं वैष्णव-निन्दकों की गर्हणा-

भाग्यवन्त नगरिया सर्व-अवतारे।
पण्डितेर गण सबे निन्दा करि' मरे॥७०॥

(७०) प० अनु०—सभी अवतारों में नगरवासी भाग्यवन्त रहे, जबकि पाण्डित्य के अहंकार से भरे पण्डितगण निन्दा करते-करते मर गये।

नागरिकों के द्वारा दिन निकलने पर हाथों में उपहार लिए प्रभु के समीप गमन एवं प्रभु को प्रणाम-

दिवस हइले सब नगरियागण।
प्रभु देखिवारे तबे करने गमन॥७१॥
केह वा नूतन द्रव्य, का'रो हाते कला।
केह घृत, केह दधि, केह दिव्य-माला॥७२॥
लइया चलेन सबे प्रभु देखिवारे।
प्रभु देखि' सर्व-लोक दण्डवत करे॥७३॥

(७१-७३) प० अनु०—दिन निकलने पर सब नगर वासी प्रभु के दर्शन करने के लिए गये। किसी के हाथों में नया द्रव्य था, कोई केला, कोई घी, न दही और कोई हाथों में दिव्य माला लेकर प्रभु के दर्शन करने के लिए गये। प्रभु को देखकर सभी लोगों ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम निवेदन किया।

प्रभु-द्वारा कृष्णभक्ति का आशीर्वाद एवं कृष्णनाम- महामन्त्र के कीर्तन करने का उपदेश-

प्रभु बले,- "कृष्णभक्ति हउक सबार।
कृष्णनाम-गुण बइ ना बलिह आर॥"७४॥
आपने सबारे प्रभु करे उपदेशे।
"कृष्ण-नाम महा-मन्त्र शुनह हरिषे॥७५॥

(७४-७५) प० अनु०—प्रभु बोले,— "सभी की कृष्ण के प्रति भक्ति हो जाये। कृष्ण के नाम और गुणों को छोड़कर और कुछ मत कहो।" प्रभु ने सबको यह उपदेश दिया और कहा कि "इस कृष्णनाम महामन्त्र को सब लोग विशेष हर्ष के साथ सुनो।

महामन्त्र–

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'॥''७६॥
प्रभु बले,–''कहिलाङ एइ महामन्त्र।
इहा जप' गिया सबे करिया निर्बन्ध॥७७॥
इहा हइते सर्व–सिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल' इथे विधि नाहि आर॥७८॥
दश–पाँच मिलि' निज द्वारेते बसिया।
कीर्तन करह सबे हाते तालि दिया॥७९॥
'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः॥
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥'८०॥

संकीर्तन–

संकीर्तन कहिल ए तोमा' सबाकारे।
स्त्री–पुत्रे–बापे मिलि' कर गिया घरे॥''८१॥

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम रामा राम हरे हरे'॥"

(७७–८१) प० अनु०—प्रभु बोले,–"मैंने यह महामन्त्र कह दिया। तुम सब निर्बन्ध–पूर्वक (विधिअनुसार) इसका जाप किया करो। इस महामन्त्र– जाप से ही तुम्हें सारी सिद्धियाँ मिल जाएँगी। सब समय इसे बोलते रहा करो। इसके अतिरिक्त और कोई विधि–विधान नहीं है। दश–पाँच लोग एक साथ मिलकर अपने द्वार पर बैठकर हाथों से ताली बजाते हुये कीर्तन किया करो—'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविछ राम श्रीमधुसूदन।।' मैंने तुम सबको संकीर्तन के बारे में जानकारी दे दी है। अब स्त्री, पुत्र, पिता सब मिलकर घर में यह कीर्तन किया करो।"

(७४) गौः भाः—भगवत्–सेवा से विमुखता के कारण जीवों में बद्धभाव उपस्थित हो जाने से इन्द्रिय–तर्पण ही उनका एकमात्र उद्देश्य बन गया है। इस इन्द्रियतर्पण के लिए बद्धजीव सभी प्रकार से चेष्टाविशिष्ट हैं। बद्धजीवों के वाक्यसमूह इन्द्रियतोषण के लिए उपयोगी जड़वस्तुओं के नाम, रूप, गुण एवं क्रियाओं में आबद्ध हैं। इस कारण कृष्ण की नाम–रूप–गुण–लीलात्मक कथा सुनने का सुअवसर न मिलने के कारण बद्धजीव कृष्ण से अलग विषय– सम्बन्धी वाक्यविलास में फँस जाते हैं। जीवों के नित्य मंगल की आकांक्षा करके श्रीगौरसुन्दर ने 'सभी जीवों में कृष्णसेवा–प्रवृत्ति उन्मेषित हो जाये'– ऐसा आशीर्वाद दिया था तथा उन लोगों से कृष्ण के अतिरिक्त अन्य नाम, रूप, गुण और क्रिया इत्यादि विषयों में तत्पर होने से मना कर दिया अर्थात् सदा के लिए हरि–संकीर्तन करते रहने का ही उपदेश किया। हरिकथा के कीर्तन की कमी हो जाने से ही जीवों मे विषय –कथाकीर्तन की प्रबलता हो जाती है। उससे उनका अमंगल ही होता है।

(७५) गौः भाः—बद्धजीव समूह कृष्णभक्ति रहित होकर निजी इन्द्रिय–तोषण करने के लिए उद्ग्रीव (उत्कण्ठित) रहते हैं श्रीगौरसुन्दर ने इन सब जीवों के मंगल के लिए हर्ष के साथ कृष्णनाम–महामन्त्र–कीर्तन करने एवं सुनने के लिए उपदेश प्रदान कियाा है। जो सब व्यक्ति बाध्य होकर श्रीनाम श्रवण करते हैं, उन लोगों में उतना उत्साह दिखाई नहीं देता हैं इसलिए हर्षपूर्वक उत्साह–सहित प्रसन्नचित्त से प्रदत्त अथवा कीर्तित कृष्णनाम–महामन्त्र को ग्रहण अथवा श्रवण करने का उपदेश दिया गया। सेवा–विमुख जीव सदैव असत् परामर्श एवं असत् संगदोष के कारण जर्जरित रहते हैं, अतः वे भगवत् कथा–श्रवण में स्वभावतः रुचि नहीं रखते हैं।

जड़ भोगों की चिन्ता से विरत हो जाने की प्रक्रिया को 'मन्त्र' कहते हैं। शब्द के

माध्यम से दिया गया उपदेश ही भोग अथवा त्याग के चिन्तन से मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय है। उच्चारित शब्द को हृदय में धारण करके विषयासक्त मन को नियन्त्रित करने पर ही मन्त्रसिद्धि होती है। व्यक्ति-विशेष का मन दूसरों के मन से पृथक् होता है; इसलिए मननक्रिया एक व्यक्ति के द्वारा ही सम्पादनीय है। अतएव व्यक्तिविशेष जिस 'हरि'-शब्द का कीर्तन करता है, उसे 'मन्त्र' कहते हैं।

महामन्त्र की साधना अनेक व्यक्ति एक साथ कर सकते हैं। साधनोपयोगी अनुकूल परामर्श अनेक व्यक्ति प्रदान कर सकते हैं; इस कारण शिक्षागुरुओं की बहुलता एवं मन्त्रदीक्षा-गुरु की एकता सिद्ध होती हैं चित्तशुद्धि के फलस्वरूप सभी इन्द्रियाँ नश्वर-विषय- प्रवृत्ति से विमुक्त होकर अज्ञताभाव में नित्यत्व की उपलब्धि करती हैं। तब व्यक्ति के लिए हेय अथवा अनुपादेय विचार का कोई मतलब नहीं रह जाता। इन सब बातों को जो आनन्द-सहित ग्रहण करने में असमर्थ हैं, वे निरानन्द में ही बैठ रहते हैं।

(७६) गौः भाः—नामात्मक होने पर भी 'मन्त्र में 'हरये' और 'यादवाय' इन चतुर्थ्यन्त पदों के प्रयुक्त रहने से अर्थात् सम्प्रदान के सम्बन्ध से आत्मसमर्पण की बात व्यक्त होती है। महामन्त्र के सभी पद सम्बोधन के पद हैं; उनमें मन्त्र की भाँति चतुर्थ्यन्त पद नहीं हैं।

स्मात्-गण महामन्त्र को "तारक-ब्रह्मनाम" से अभिहित करते हैं। सभी स्मार्त न्यूनाधिक निर्विशेषवादी होते हैं; इसलिए वे भोग के अन्त मे निर्विशेषवादी होते हैं; इसलिए वे भोग के अन्त में निर्विशिष्ट त्याग के पक्षपात युक्त धर्म में अवस्थित रहते हैं। कर्मी एवं ज्ञानी होने के ग्रास से मुक्त पुरुषगण कामनावर्जित हैं। निजस्वार्थ (अपस्वार्थ) काम के वशीभूत होकरकुछ व्यक्ति भोगी एवं कुछ व्यक्ति भोगों का परित्याग करने की इच्छा से मुमुक्षु बनकर निज-अवस्था-मोचन के लिए मुक्ति के प्रयासी होते हैं। उस प्रकार वासना के वशवर्ती होकर महामन्त्र ग्रहण करने से तुच्छ लाकांक्षा प्रबल हो जाती है।

'हरि' शब्द के सम्बोधन में 'हरे' पद एवं 'हरा' शब्द के सम्बोधन में भी वही 'हरे' पद निष्पन्न होता है। स्वयंरूप 'कृष्ण' एवं सर्वशक्तिमान् स्वयंप्रकाश 'राम' एवं 'हरि' शब्दों के कामनारहित जिह्वा से उच्चारित होने के कारण चतुर्दश भुवन, बिरजा-नदी, ब्रह्मलोक आदि में अवस्थित होकर सेवा करना संभव नहीं है। पख्योम में ही सेवा आरंभ होने की संभावना है। कृष्ण के स्वयं प्रकाशतत्त्व में अथवा उनके आनुषंगिक अन्यान्य विशेष प्रकाश-विलासों में रसों की उत्कर्षता का विचार करने से अखिलसामृत-मूर्त्ति कृष्ण में ही सभी रसों की पूर्ण अभिव्यक्ति लक्षित होती है। इसलिए रसों की उत्कर्षता का विचार करते हुये आंशिक रसविग्रह के अधिष्ठान प्रकाश-विलास-समूह में सर्वरस-प्राप्ति की संभावना नहीं हैं इस कारण वे सब न्यूनधिाक रूप से स्वयंरूप की ही अपने-अपने अंश-प्रकाश द्वारा सेवा करते हैं। कृष्णभक्ति उपलब्ध होने से सम्बोधन के पद में 'आत्माराम-मात्र' की उपलब्धि होने के बदले "राधारमण" की सेवा-प्रवृत्ति की स्फूर्ति होती है।

(७७) गौः भाः—महामन्त्र सबस समय उच्च स्वर में ही कीर्तन करने योग्य है; वह कभी भी जपनीय नहीं है,- इस प्रकार का विचार किसी के भी हृदय में उदित न हो, इसलिए महामन्त्र के 'जप' का भी उपदेश उल्लिखित हुआ है। 'निर्बन्ध'-शब्द से विधि के अनुसार संख्या-नाम-ग्रहण ही लक्षित किया गया

है। महामन्त्र केवलमात्र जपनीय नहीं है, फिर अजपनीय भी नहीं है। दस–पाँच मनुष्यों के द्वारा एकसाथ मिलकर हाथों से ताली बजाकर इस महामन्त्र का उच्च स्वर में कीर्तन करने का प्रावधान रहने से यह महामन्त्र केवलमात्र जप्य भी नहीं है; फिर महामन्त्र के सम्बोधन पदों के साथ चतुर्थ्यन्त पद (जिस पदों के अन्त में चतुर्थी विभक्ति रहती है) का प्रयोग करके कीर्तन करने की विधि भी उपेक्षित नहीं हुई है। "सर्वक्षण बल" इस पद के द्वारा केवलमात्र जप करने के विचार का खण्डन किया गया है।

(७८) गौः भाः—मन्त्राधिकार के निर्णय में अनेक विधियों का पालन करना पड़ता है; परन्तु हर समय महामन्त्र का उच्चारण अथवा 'उपांशु'–जप में उन सब विधियों का पालन न करते हुये भी सभी को हर प्रकार की सिद्धियाँ मिल जाती हैं; अर्थात् धर्म, अर्थ एवं काम के लाभ–वाली भुक्तिसिद्धि, निर्भेद–ब्रह्मानुसंधानरूपा मुक्ति–सिद्धि एवं दोनों को धिक्कार प्रदानकारी भगवत्प्रेम–सिद्धि—इन सब सिद्धियों को प्राप्त किया जा सकता है। मन्त्र में कालाकाल का विचार रहता है, परन्तु महामन्त्र में कालाकाल का, योग्यायोग्य का अथवा स्थानास्थान का विचार नहीं होता है—यह कहकर काल्पनिक मन्त्र–नामादि के जप से किसी भी सिद्धि के मिलने की संभावना नहीं है। क्योंकि, ऐसा शब्दसमूह अज्ञरूढ़िवृत्तिजात है।

(८१) गौः भाः—बीज–बुटित चतुर्थ्यन्त–पद–प्रयुक्त मन्त्र अथवा प्रणव–पुटित चतुर्थ्यन्त मन्त्र कीर्तन करने योग्य नहीं है; परन्तु 'नाम' अथवा सम्बोधन–पदयुक्त नाम याा बीज–प्राणव–रहित चतुर्थ्यन्त पद–प्रयुक्त–'नमः' शब्द–युक्त मन्त्र भी संकीर्तन के योग्य है; यथा "हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः"— ये पद संकीर्तन करने योग्य है।

प्रभु से मन्त्र पाकर नागरिकों का
उल्लास–पूर्वक घर को प्रत्यागमन एवं
कृष्णनाम–कीर्तन–

प्रभु–मुखे मन्त्र पाइ' सबार उल्लासे।
दण्डवत करि' सबे चले निज–वास॥८२॥
निरवधि सबेइ जपेन कृष्णनाम।
प्रभुर चरण काय–मने करि' ध्यान॥८३॥
सन्ध्या हैले आपनार द्वारे सबे मेलि'।
कीर्तन करेन सबे दिया करतालि॥८४॥

(८२–८४) प० अनु०—प्रभु के श्रीमुख से मन्त्र प्राप्त कर सभी लोग बड़े आनन्दित हुये और प्रभु को दण्डवत् प्रणति निवेदन करके सब अपने–अपने घरों को चले गये तथा तन–मन से प्रभु के चरणों का ध्यान करते हुये सभी निरन्तर कृष्णनाम जपने लगे। सन्ध्या के समय सब मिलकर अपने द्वार पर हाथों से ताली–बजा–बजाकर कीर्तन करते थे।

(८२) गौः भाः—संकीर्तन में सोहल नाम और बत्तीस अक्षरों वाले महामन्त्र एवं चतुर्थ्यन्त पदप्रयुक्त 'नमः'–शब्द से युक्त सम्बोधन के साथ मन्त्र–प्राप्ति से सभी में उल्लास का संचार हो गया। बहिर्मुख स्मार्ते के विचार में—स्वाहा–प्रणव–संयुक्त मन्त्र के आदान–प्रदान में अमंगल की कथा विहित है, परन्तु महामन्त्र–योग से अथवा सम्बोधन–पद–योग से मन्त्रकीर्तन करना सर्ववादि–सम्मत है; क्योंकि, ये प्रणव—या बीजपुटित नहीं हैं।

(८३) गौः भाः—जिनका मन निगृहीत है, वे सब प्रभु से नाम–मन्त्र का उपदेश प्राप्त करके व्यक्त–अव्यक्त–भाव से कृष्ण का ध्यान करते–करते अपांशु (मानसिक) जपादि

करते रहते थे। (भाः२/८/४) "श्रृन्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्। नातिदीर्घेण कालेन भगवान् विशते हृदि"॥ सौ-सौ जन्मों तक मन्त्रों के द्वारा अर्चन करने से महामन्त्र-कीर्तन की योग्यता प्राप्त होती है। उस प्रकार की योग्यता के मिलने पर ही ध्यान-आदि संभव है; अन्यथा कृत्रिम-ध्यान-आदि के निषेध के लिए ही कथित श्लोक का उपदेश विहित हुआ है।

प्रभु-द्वारा विनीतभाव से सभी को कृष्णभजन के लिए अनुरोध-

एइमत नगरे नगरे संकीर्तन।
कराइते लागिलेन शचीर नन्दन॥८५॥
सबारे उठिया प्रभु आलिंगन करे।
आपन गलार माला देय सबाकारे॥८६॥
दन्ते तृण करि' प्रभु परिहार करे।
''अहर्निश भाइ सब, भजह कृष्णेरे॥''८७॥

(८५-८७) प० अनु०—इस प्रकार शचीनन्दन नगर-नगर में संकीर्तन कराने लगे। सबको प्रभु आलिंगन करते और अपने गले की माला उनको प्रदान करते। दाँतों में तृण लिए प्रभु अनुरोध करते कि,—"हे भाइयों! तुम सभी दिन-रात कृष्णभजन किया करो।"

(८७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने विनीत-भाव से सभी दांभिक व्यक्तियों के निकट दीनता-प्रकाश-पूर्वक 'आप सभी सब समय कृष्णसेवा में आत्मनियोग कीजिए' एवं "कृष्ण भजन छोड़कर अन्य किसी भी कार्य में आत्मनियोग करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है" ऐसी प्रार्थना अनुनय-विनय सहित सबसे की।

प्रभु के मर्मस्पर्शी आवेदन से सभी का निष्कपट भाव से कृष्णनामाश्रय-

प्रभु देखिया आर्ति कान्दे सर्व-जन।
काय-मनो-वाक्ये लइलेन संकीर्तन॥८८॥
परम-आह्लादे सब नगरियागण।
हाते तालि दिया बले 'राम नारायण'॥८९॥

(८८-८९) प० अनु०—प्रभु के आर्तभाव को देखकर सभी क्रन्दन करने लगे। सभी ने तन-मन-वचन से संकीर्तन को ग्रहण किया। परम-आह्लाद-सहित भी नगरवासी हाथों से ताली बजा-बजाकर 'राम-नारायण' का कीर्तन करने लगे।

(८८) गौः भाः—श्रीमन्महाप्रभु के मर्मस्पर्शी आवेदन को सुनकर सभी श्रोतृवर्ग अपने-अपने कुविचारों के लिए क्रन्दन करने लगे एवं सभी ने कायमनोवाक्य से कीर्तनाख्या भक्ति का आश्रय ग्रहण किया।

दुर्गा-उत्सव के लिये व्यवहृत मृदंगादि का संकीर्तनार्थ व्यवहार-

मृदंग-मन्दिरा-शंख आछे सर्वघरे।
दूर्गोत्सव-काले वाद्य बाजा'वार तरे॥९०॥
सेइ सब वाद्य एबे कीर्तन-समये।
गायेन वा'येन सबे सन्तोष-हृदये॥९१॥
'हरि उ राम राम हरि उ राम राम।'
एइ मत नगरे उठिल ब्रह्म-नाम॥९२॥

(९०-९२) प० अनु०—दुर्गापूजा के उत्सव के समय बजाने के लिए सभी घरों में मृदंग, मन्दिरा (मँजीरा) और शंख आदि वाद्य विद्यमान थे। उस समय प्रसन्नचित्त उन्हीं सब बाजों को बजाते हुये सभी कीर्तन करने लगे। नगर में इस प्रकार से 'हरि ओ राम राम हरि ओ राम राम'-रूप ब्रह्मनाम गूँज उठा।

(९०) गौः भाः—सभी धर्मप्राण व्यक्तियों के घरों में मृदंग-शंख आदि वाद्ययन्त्र विद्यमान थे। शरतकाल में अथवा चैत्रमास में महामाया

की पूजा के उपलक्ष्य में वे सब वाद्य बजाये जाते थे। वह पूजा सामयिक थी एवं जागतिक विषय–सुख–प्राप्ति के उद्देश्य से अनुष्ठित होती थी। अब निरन्तर हरिकीर्तन के समय उन सब वाद्ययन्त्रों का उपयोग किया जाने लगा।

कीर्तन सुनकर श्रीधर का नृत्य एवं इससे बहिर्मुखगणों का हास्य एवं उक्ति–

खोला–बेचा, श्रीधर यायेन सेइ पथे।
दीर्घ करि' हरिनाम बलिते॥९३॥
शुनिया कीर्तन आरम्भिला महा नृत्य।
आनन्दे विह्वल हैला चैतन्येर भृत्य॥९४॥
देखिया ताहान सुख नगरियागण।
बेड़िया चौदिके सबे करने कीर्तन॥९५॥
गड़ागड़ि यायेन श्रीधर प्रेम–रसे।
बहिर्मुख–सकल दूरते थाकि' हासे'॥९६॥
कोन पापी बले,–''हेर–देख भाइ सब।
खोला–वेचा मिन्साओ हइल वैष्णव।९७॥
परिधान वस्त्र नाहि, पेटे नाहि भात।
लोकेरे जानाय, 'भाव हइल आमा'त'॥''९८॥
नगरिया–गुला बले,–''मागि खाइ मरे।
अकालेते दुर्गोत्सव आनिलेक घरे।।''९९॥
एइ मत पाषण्डीरा वल्गये सदाय।
प्रतिदिन नगरियागणे 'कृष्णव' गाय॥१००॥

(९३–१००) प० अनु०—ऊँचे स्वर में हरिनाम बोलते–बोलते केला बेचने वाला श्रीधर उस रास्ते से गुजर रहा था। कीर्तन सुनकर आनन्द में विह्वल होते हुये उस चैतन्य के भृत्य ने महान् नृत्य करना आरंभ कर दिया। नागरिकों ने उनको प्रसन्न देखकर उन्हें चारों ओर से घेर लिया और कीर्तन करने लगे। प्रेम–रस में श्रीधर भूमि के ऊपर गिरकर लोट–पोट हो गये। बहिर्मुख लोग यह देखक दूर खड़े–खड़े हँसने लगे। किसी पापी ने कहा—"देखो तो भाई, यह केला बेचने वाला मानुष भी वैष्णव बन गया है! पहनने को कपड़ा नहीं, पेट में अन्न नहीं, लोगों को बता रहा है कि 'मुझ में भी भक्ति–भाव का उदय हुआ है।" कुछ नागरिक बोले,–"भीख माँगकर खाते हैं। असमय में ही दुर्गोत्सव को घर ले आये हैं।"— इस प्रकार से पाखंडीगण सर्वदा बोलते थे। उधर नगरवासी प्रतिदिन 'कृष्ण कीर्तन' करते थे।

(९७) गौः भाः—मुनिसा या मिन्स, — पुरूष–मानुष'। यह 'मनुष्य' शब्द का अपभ्रंश और निन्दासूचक ग्राम्य शब्द हैं छोटे व्यवसायी अथवा साधारण क्षुद्र पंसारी समाज में निम्नस्तर वाले लोग माने जाते हैं। वैष्णव— सर्वोत्तम हैं, उच्चस्तर से लेकर निम्नस्तर तक सभी व्यक्तिओं में विष्णुभक्ति प्राप्त करने की योग्यता है, परन्तु उच्चस्तर के अथवा शिक्षित समाज के व्यक्तिगण निम्न अथवा अशिक्षित समाज के व्यक्तिओं को 'वैष्णव' होने की योग्यता प्रदान नहीं करते हैं। अत्रि कहते हैं,–"वेदैर्विहीनाश्च पठिन्त शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्चपुराण–पाठाः। पुराण–हीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति।" "यत छिल नाड़ाबुने, सबाइ हल कीर्तुने कास्ते भेंगे, गड़ा'ल करताल।" तथाकथित उच्चपदस्थ लोग बहुधा प्रति–युग में ही निम्नपदस्थ लोगों की वैष्णवता–प्राप्ति में अथवा वैष्णवसम्मान पाने के अधिकार में बाधा डालते रहते हैं। परन्तु शास्त्रानुसार,–"शास्त्रतः श्रयते भक्तौ नृमात्रस्या–धिकारिता।" और भी कहा है,– "अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शंखचक्रांकधरिणः। वैष्णवी–दीक्षां संप्राप्य दीक्षित इव संबभुः॥"

(९८) गौः भाः—साधारण लोगों में यह विश्वास है कि, उत्तम वेशभूषा से सिज्जत होकर सभ्य बनने से ही 'अच्छा वैष्णव'

बना जा सकता है एवं अधिक उपार्जन करके अच्छा खाना-पीना करने से ही 'वैष्ण व' होना संभव हैं लेकिन शास्त्र प्रसिद्ध बात यह है कि उत्तम वसन-परिधान एवं स्वादिष्ट खाना-पीना छोड़कर उन्नत-चिन्तन के प्रभाव से ही भगवत सेवा का अधिकार मिलता है। इसलिए अभाव से पीड़ित लोग कृत्रिम भक्ति भाव युक्त होकर बाहर के लोगों को दिखाने के लिए एवं उनसे सम्मान-प्राप्ति की आशा से अपनी अभावग्रस्त अवस्था का सदुपयोग करते हुये अपना परिचय भावभक्ति सेस युक्त एक भक्त के रूप में देते हैं। जो लोग इस प्रकार कृत्रिम भाव से अपने उन्नत जीवन का परिचय देते हैं, उन सब धर्मध्वजियों को, भगवद्भक्तों पर निन्दा का आरोप लगाने से पाप स्पर्श करता है।

(९९) गौः भाः—विषय-सुख में मस्त नगरवासी व्यक्ति वैष्णवों के नृत्यकीर्तन-वाद्य आदि को अपने सुखभोग का तौर्यत्रिक-आशय मानकर भ्रान्त होने के कारण कृष्ण-सुख-तपत्पर्य-परक हरि कीर्तन-नृत्य-वाद्य आदि को भी महामाया की पूजा में जड़ानन्द के लिए प्रयुक्त उपकरण ों की भाँति समझ रहे थे। वे सब लोग यह भी कह रहे थे कि, अनेकों वृत्तिजीवी कर्मनिष्ठ-सम्प्रदायों के विचार को छोड़कर उन लोगों के द्वारा प्रतिपालित होकर भी कीर्तन-आदि कार्य में आनन्द-उपभोग करना दरिद्र व्यक्तियों के लिए बिलकुल उचित कार्य नहीं है। साल (वर्ष) के सभी दिनों को विषय-कार्य में लगाकर संगृहीत अर्थ के द्व ारा आनन्द-प्राप्ति के उद्देश्य से दुर्गापूजा के उत्सव के उपलक्ष्य में जो समय वाद्य-नृत्य के आनन्द में गुजरता है, वैसा आनन्द-अनुष्ठान अन्य समय में सम्पादित करना युक्तिसंगत नहीं है।

कीर्तन-श्रवण से काजी-द्वारा मृदंग-भंग एवं नागरिकों का निर्यातन-

एकदिन दैवे काजी सेइपथे याय।
मृदंग, मन्दिरा, शंख शुनिवारे पाय॥१०१॥
हरि-नाम-कोलाहल चतुर्दिके मात्र।
शुनिया सङरे काजी आपनार शास्त्र॥१०२॥
काजी बले,-"धर धर, आजि करौं कार्य।
आजि वा कि करे तोर निमाइ-आचार्य॥"१०३॥
आथेव्यथे पलाइल नगरियागण।
महात्रासे केश केह ना करे बंधन॥१०४॥
याहारे पाइल काजी, मारिल ताहारे।
भांगिल मृदंग, अनाचार कैल द्वारे॥१०५॥
काजी बले,-"हिन्दुयानि हइल नदीया।
करिमु इहार शास्ति नागालि पाइया॥१०६॥
क्षमा करि' या ङ आजि, दैवे हैल राति।
आर दिन लागालि पाइले लैब जाति॥"१०७॥
एइमत प्रतिदिन दुष्टगण लैया।
नगर भ्रमये काजी कीर्तन चाहिया॥१०८॥

(१०१-१०८) प० अनु०—दैवयोग से एकदिन काजी उसी मार्ग से गुजर रहा था तो उसे मृदंग, मन्दिरा (मंजीरा) और शंख की ध्व नि सुनाई दी और चारों ओर केवल हरिनाम का कोलहल सुनने को मिला। सुनकर काजी ने अपने शास्त्र का स्मरण किया और कहा,-"पकड़ लो, आज मैं अपना काम करके ही रहूँगा। देखता हूँ, तुम्हारा निमाइ-आचार्य आज क्या करता है।" यह सुनकर नागरिकगण डर के मारे अस्तव्यस्त होकर भाग खड़े हुये। महाभय के कारण कोई केश भी नहीं बाँध पाया। जो मिला, काजी ने उसी को मारा। फिर मृदंग को तोड़ा और घर के द्वारों में घुसकर अनाचार किया। काजी ने कहा,-"नदीया में हिन्दुत्व सिर उठाने लगा है। पकड़ लिये जाने पर सबको सजा दूँगा।" दैवयोग से आज

रात हो चुकी है, अतः आज तो क्षमा करके चला जा रहा हूँ परन्तु फिर किसी दिन पकड़ लिये गये, तो जाति नष्ट कर दूँगा। इस प्रकार से काजी प्रतिदिन दुष्टों को साथ लेकर नगर में भ्रमण करने लगा और देखने लगा कि कही कीर्तन तो नहीं हो रहा है।

(१०२) गौः भाः—भारतवासीगण श्रुति स्मृति पुराण अथवा पंचरात्र की विधि का पालन करते हुये अर्चन करते हैं। इसमें वाद्य आदि के शब्द अथवा श्रौतपथ का आवाहन है। विध ार्मिगण भगवान् की मूर्ति के साथ जड़ जगत् की भोग्य–मूर्त्तियों को समान आसन प्रदान करके शब्दादि–वाद्यांगसमूह को भगवत्–सेवा में अन्तराय–स्वरूप समझते हैं। प्रापंचिक– बुद्धि का हरिसम्बन्धी वस्तुओं में नियोजन होने पर उस प्रकार के संग के परिहार की वासना के त्याग के विचार से हरिसेवा के उपयोगी क्रिया–समूह को भगवत्–साधन का विरोधी समझा जाता है। इसलिए वैराग्य का दुरुपयोग होने के कारण भगवत्–सेवा में वाद्ययन्त्रों की उपयोगिता कोा अनेकों के विचार में स्वीकृति नहीं मिली हैं वह फल्गुवैराग्य के अन्तर्भुक्त है। जो वाद्य समूह जीवों को भोग करने में उन्मत्त बनाकर परमसत्य भागवान् की सेवा से विमुख करवा देता हो, उस सब तौर्यत्रिक का अवश्य ही परिहार करना होगा। परन्तु तात्पर्यरहित होकर जो विचार अपनाया जाता है, उस भगवत्–सेवा के अनुकूल मानकर स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(१०६) गौः भाः—श्रुति–स्मृति–पुराण और पंचरात्र में विहित कार्यों में अर्चन एवं नाम कीर्तनादि विधि की व्यवस्था रहने के कारण विधर्मियों के विचार में उन सबको 'हिन्दुत्व' के रूप में माना गया। विधर्मियों की ऐकान्तिक अभिलाषा यही है कि, वैदिक धर्म को उत्सादित (नष्ट) करके नवीन नवीन धर्म की स्थापना की जाये,

जिससे कि उन लोगों की मर्यादा वर्द्धित होती रहे एवं धर्म पालित होता रहे। इस कारण नवद्वीप नगर के निष्ठावान् में डाल दिया गया था— किसी–किसी को मारा–पीटा भी गया था एवं वाद्ययन्त्र आदि को तोड़कर शास्त्रीय सदाचार के विरुद्ध कदाचार का प्रवर्तन किया गया था। विधर्मियों की विचार–प्रणाली यही है कि, विभिन्न विचार परायण धार्मिकों के सामाजिक, व्यवहारिक एवं पारमार्थिक विधि–विध ानों को नष्ट करके अपनी नवीन–विधि का प्रवर्तन किया जाये। श्रीगौरसुन्दर के आचरण में वेद एवं वेदानुग धर्म का पुनः प्रवर्तन देखकर उसे बन्द कर देने के लिए उन लोगों को यह सुअवसर मिला था। शासक होने के कारण धर्म के नाम पर उन्हें प्रजा के ऊपर अत्याचार करने का मौका मिला गया था।

(१०७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के द्वारा प्रवर्तित सद्धर्म के अनुष्ठान में कीर्तन एवं वाद्ययन्त्रों के प्रयोग ने विधर्मियों को आक्रमण करने का अवसर प्रदान किया था। काजी ने कहा,—'फिर ऐसा देखनेन को मिला तो नदीया के अधिवासियों के सामाजिक विचार को बलपूर्वक परिवर्तित करके उन सभी को अपने धर्म में सम्मिलित कर लेंगे।

काज़ी के भय से नागरिकों की
कीर्तन से निवृत्ति–

दुःखे सब नगरिया थाके लुकाइया।
हिन्दुगणे काजी सब मारे कदर्थिया॥१०९॥

(१०९) प० अनु०—दुःखित होकर सब नागरिक छिपकर बैठ गये। उधर काजी हिन्दुओं के ऊपर अत्याचार करने लगा।

(१०९) गौः भाः— काजी के भय से नवद्वीप

के अधिवासीजन कीर्तन-वाद्य आदि बन्द करने को मजबूर हो गये। केवल मात्र गुप्त भाव से वही सब काम चलने लगे। परन्तु असत्-प्रवृत्तिविशिष्ट विद्वेषी अधिवासीजनों की सहायता से काजी कीर्तन करने वालों को ढूँढ़ने लगा। मिल जाने पर काजी उन लोगों को गाली देता एवं उन पर प्रहार करता था।

काजी के पक्षधर पाखण्डियों के क्षरा
निर्जन-भजन- विधि-प्रवर्तन की चेष्टा पर
बहुविध उक्ति-

केह बले,-''हरिनाम लैब मने मने।
हूड़ाहूड़ि बलियाछे कोन् वा पुराणे॥११०॥
लंघिले वेदेर वाक्य एइ शस्ति हय।
'जाति' करियाओ ए गुलार नाहि भय॥१११॥
निमाइ पण्डित ये करेन अहंकारे।
सबे चुर्ण हइवेक काजीर दूयारे॥११२॥
नगरे नगरे ये बुलेन नित्यानन्द।
देख तार कोन् दिन बाहिराय रंग॥११३॥
उचित बलिते हइ आमरा 'पाषण्ड'।
धन्य नदीयाय एत उपजिल भंड॥११४॥

(११०-११४) प० अनु०— किसी पाखण्डी ने कहा,-"हरिनाम का चिन्तन मन-ही-मन में करो! कौन से पुराण में लिखा हुआ है कि ऊँचे स्वर में हरिनाम कीर्तन करो? वेदवाक्य का लंघन करने से ऐसा दण्ड मिलता है। 'जाति' खो देने का भय भी इन लोगों को नहीं है। निमाइ पण्डित का सारा अहंकार काजी के सामने चूरचूर हो जायेगा। नित्यानन्द भी नगर-नगर में घूमते रहते हैं। देख लेना, किसी दिन उनका भ्रमण बन्द हो जायेगा। सच कहने से हम लोग 'पाखण्डी' हो गये हैं। धन्य है, नदीया में इतने सारे भण्ड (भाँड़) कहाँ से आ गये हैं।

(११०) गौः भाः—भगवत्कथा-प्रचार में बाध डालने के उद्देश्य से काजी के पक्षधर बनकर 'पाखण्डी हिन्दू'- नामधारी लोग निर्विशेषवाद एवं निर्जन-भजन के नाम पर शास्त्र की दोहाई देते हुये मन-ही-मन हरिनाम ग्रहण करने की विधि का प्रवर्तन करने लगे। ऊँचे स्वर में हरिनाम-कीर्तन अथवा नृत्य-वाद्य-आदि के सहयोग से हरिनाम-संकीर्तन-विधि का उल्लेख किसी भी शास्त्र में नहीं है—ऐसी अर्वाचीनता का प्रकाश वे करने लगे।

(१११) गौः भाः—अर्वाचीन लोग सामगान की बात न जानने के कारण यह धारणा बनाये हुये थे कि, वेदशास्त्र में कीर्तन-प्रथा नहीं है एवं आगे चलकर परवर्त्ती समय में कीर्तन-वाद्यादि की कुप्रथा इसमें जोड़ दी गई है— इस प्रकार की धारणा के वशवर्ती होकर वे सब मानते थे कि, वेद का उल्लंघन करने के कारण विधर्मी के हाथों से इस प्रकार की शास्ति तथा दण्ड-विधान की उपयोगिता हैं वेदवर्जित क्रिया के आवाहन के समय सामाजिक-विचार- संरक्षणरूप जाति के नाश की आशंका भी इन कीर्तनकारियों को नहीं है, ऐसा निर्णय वे ले रहे थे। सामाजिक-विधि ा-संरक्षण पूर्वक जातिरक्षा में विशेषरूप से मनोयोगी होना ही 'मरमार्थ' है—इस प्रकार का विचार अर्वाचीन लोगों का है।

(११२) गौः भाः-'निमाइ पण्डित-द्वारा प्रवर्तित शास्त्रविचार काजी के द्वारा दण्डित होने से उनका अहंकार चूर्ण हो जायेगा।'

(११३) गौः भाः—'श्रीनित्यानन्द के नगर-कीर्तन का आनन्द-रंग भी एकदिन यथोचित दण्ड मिलने सेस ही थम जायेगा।'

प्रभु के निकट सभी की काजी के
अत्याचार के बारे में ज्ञापना-

भये केह किछु नाहि करे प्रत्युत्तर।
प्रभु–स्थाने गिया सबे करेन गोचर॥११५॥
''काजीर भयेते आर ना करि कीर्तन।
प्रतिदिन बुले लइ' सहस्त्रेक जन॥११६॥
नवद्वीप छाड़िया याइव अन्य स्थाने।
गोचरिल एइ दुइ तोमार चरणे॥''११७॥

(११५–११७) प० अनु०—भय के मारे किसी ने कुछ भी प्रत्येत्तर नहीं दिया। सभी ने प्रभु के समक्ष जाकर सब कुछ उन्हें बताया,–"काजीके भय से हम लोगों ने कीर्तन करना बन्द कर दिया हैं काजी प्रतिदिन हजारों आदमी साथ लेकर घूमता हैं हम लोग नवद्वीप छोड़कर कहीं और चले जायेंगे। ये दो बातें हम आपके चरणों में निवेदन कर रहें हैं।"

(११४–११५) गौः भाः—श्रीगौरनित्यानन्द की हरिनामकीर्तन–प्रथा–वेदविरोधी चेष्टा है— ऐसा कहने पर साधारण मूर्ख लोग (कीर्तनकारी) हमें 'शास्त्रज्ञानरहित पाखण्डी' समझते हैं, अतएव इस धर्मध्वजियों ने जिस नवीन पंथ को चालू किया है, वह केवलमात्र भंडता है—इन सब अविवेचक पाखण्डी अधिवासियों की बातों का कुछ भी प्रत्युत्तर न देकर भक्तों ने उनके अवैध अत्याचार एवं धारणा के बारे में महाप्रभु के निकट आकर बताया।

(११६–११७) गौः भाः—नवद्वीप के अधिवासीगण कहने लगे,–"क्योंकि काजी के हजारों आदमी कीर्तन के विरोधी बन गये हैं एवं वे हमें ढूँढ़ कर निर्यात करेंगे, इसलिए हम सभी स्वयं ही नवद्वीप छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर चले जायेंगे।" काजी के अत्याचारों का भय एवं उससे बचने के लिए नवद्वीप का परित्याग— ये दोनों बातें नवद्वीप के अधिवासियों ने महाप्रभु को बताईं।

कीर्तन में बाधा की बातें सुनकर
प्रभु की क्रोधोक्ति–

कीर्तनेर बाध शुनि' प्रभु विश्म्भर।
क्रोधे हइलेन प्रभु रुद्र मूर्त्तिधर॥११८॥
हुँकार करये प्रभु शचीर नन्दन।
कर्ण धरि' 'हरि' बले नगरियागण॥११९॥
प्रभु बले,–''नित्यानन्द, हओ सावधान।
एइ क्षणे चल सब वैष्णवेर स्थान॥१२०॥
सर्व नवद्वीपे आजि करिमु कीर्तन।
देखों, मोरे कोन् कर्म करे कोन् जन?१२१॥
देखों, आजि काजीर पोड़ाङ घर–द्वारा।
कोन् कर्म करे देखों राजा वा ताहार?१२२॥
प्रेम–भक्ति–वृष्टि आजि करिब विशाल।
पाषण्डिगणेर से हइब आजि 'काल'॥१२३॥
चल चल भाइ–सब नगरियागण।
सर्वत्र आमार आज्ञा करह कथन॥१२४॥
कृष्णेर रहस्य आजि देखिवेक ये।
एक महा–दीप लइया आसिवेक से।१२५॥
भांगिव काजीर घर, काजीर दुयारे।
कीर्तन करिमु, देखों कोन् कर्म करे॥१२६॥
अनन्त ब्रह्माण्ड मोर सेवकेर दास।
मुञि विद्यमानेओ कि भयेर प्रकाश॥१२७॥
तिलार्द्धेको भय केह ना करिह मने।
विकाले आसिबे झाट करिया भोजने॥''१२८॥

(११८–१२८) प० अनु०—कीर्तन में रुकावट आने की बात सुनकर प्रभु विश्वम्भर क्रोध से रुद्रमूर्ति हो गये। प्रभु शचीनन्दन हुँकार करने लगे। नागरिकगण कान पकड़कर 'हरि–हरि' बोलने लगे। प्रभु ने कहा,– "नित्यानन्द, सावधान हो जाओ और तुरन्त सभी वैष्णवों के पास चले जाओ। आज सारे नवद्वीप में कीर्तन करूँगा। देखता हूँ, कोई हमारा क्या करता है? देख लेना, आज काजी का घर–द्वार

फूँक डालूँगा। देखें उसका राजा भी क्या कर सकता है? आज विशाल प्रेमभक्ति की वृष्टि करूँगा। आज का दिन पाखण्डियों के लिए 'कालस्वरूप' होगा। हे नागरिकों! चलो भाइयों, चलो! सभी जगह मेरा यह आदेश पहुँचा दो कि जो आज कृष्ण का रहस्य देखना चाहता है, वह एक महा-दीप लेकर आ जाये। आज काजी का घर-द्वारा सब तोड़-फोड़ कर रख दूँगा। आज कीर्तन करूँगा, देखता हूँ, कोई क्या करता है। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे सेवक का दास है। जहाँ मै। स्वयं विद्यमान हूँ, वहाँ भय किस बात का? कोई जरा-सा भी भय अपने मन में मत रखो। खा-पीकर शाम को सभी लोग जल्दी आ जायें।"

(१२३) गौः भाः— श्रीगौरसुन्दर ने असीम धर्य- धारण का उपदेश दिया है। फिर उन्होंने स्वयं क्रोधित होकर रुद्रमूर्त्ति धारण करके कीर्तन-विद्वेषी का घर-द्वार ध्वस्त कर देने की इच्छा प्रकट की। अतएव इन परस्पर विवदमान धर्मों का सामंजस्य क्या है?—यह प्रश्न अनेक लोगों के मन में उठ सकता है कृष्णसेवा के अनुकूल सभी कार्यों का सम्पादन करना ही श्रीनाम-भजन का प्रधान अंग है। कृष्णसेवा के प्रतिकूल विषयों में मुख्य रूप से अथवा गौणरूप से योगदान करना अथवा सहायता करना ही भगवत्-सेवा की प्रतिकूलता है। अतएव, अनुकूल अनुशीलन के लिए ही 'तृणादपि सुनीच' (तिनके से भी अधिक नम्र) एवं 'तरु की भाँति सह्य-गुण ासम्पन्न' होने का उपदेश प्रदान किया गया है। किन्तु प्रतिकूलता की सहायता के लिए जो धैर्य एवं निरुपाधिकता है, वह सब चेष्टा नाम-भजन का सम्पूर्ण विरोध है। नामाप-राध को सहायता देने के लिए जिनकी ऐकान्तिक चेष्टा है, वे ही 'तृणादपि-सुनीच' एवं वृक्ष की तरह सह्यगुणसम्पन्न बनने के उपदेश का दुरुपयोग करते हैं। इस प्रकार का दुरुपयोग प्रतिकूल अनुशीलन-जातीय है, इसे समझाने के लिए, सर्वतोभाव से कृष्णानुशीलन के कारण श्रीगौरसुन्दर ने 'तृणादपि सुनीच' एवं 'तरु की भाँति सह्यगुणसम्मपन्न' होने के लिए कहा है। यद्यपि बाहर से प्रतिकूल अनुशीलन के प्रति उदासीन रहना अनुकूल समझा जाता है, तथापि उस प्रकार के कार्य से चेतन वृत्ति को आवृत करने की दुष्टबुद्धि तथा अज्ञानता ही ज्ञापित होती है। श्रीमद् भागवत के ४र्थ स्कन्द में उल्लिखित "कर्णौपिधाय निरियात्" श्लोक का इस प्रसंग में विशेषरूप से अनुध ाावन करना आवश्यक है; नहीं तो भक्ति से वर्जित होकर अपराध-मात्र का संचय होता है। श्रीगौरसुन्दर ने क्रोध एवं प्रतिशोध की आकांक्षा का प्रदर्शन करने के साथ-साथ कहा,-"आज ही मैं विशाल प्रेमभक्ति को बरसाऊँगा, वहीं पाखण्डियों के लिए यमसदृश बन कर रह जाऊँगा।" "मल्ला-नामशनिर्नृणां" इत्यादि श्लोकोक्त असंख्य-विभिन्न प्रतीतियाँ एकमात्र प्रभु में ही संभव हैं।

प्रभु के कहने पर नागरिकों के द्वारा सानन्द संकीर्तन-शोभायात्रा के द्रव्यादि-संग्रह-पूर्वक प्रभु के निकट गमन-

ततक्षणे चलिलेन नगरियागण।
पुलके पूर्णित सबे, किसेर भोजन?१२९॥
'निमाइ पण्डित आजि नगरे नगरे।
नाचिवेन'— ध्वनि हैल प्रति घरे घरे॥१३०॥
या'र नृत्य ना देखिया नदीयार लोक।
कत कोटि सहस्त्र करिया आछे शोक॥१३१॥
हेन जन नाचिवेन नगरे नगरे।
आनन्दे देउटि बान्धे प्रति घरे घरे॥१३२॥

बापे बान्धिलेओ पुत्र बान्धे आपनार।
केह कारे हरिषे ना पारे राखिवार॥१३३॥
ता'र बड़, ता'र बड़, सबेइ बान्धेन।
बड़ बड़ भाण्डे तैल करिया लयेन॥१३४॥
अनन्त अर्वुद लक्ष लोक नदीयार।
देउटिर संख्या करिवार शक्ति का'र?१३५॥
इथि–मध्ये ये ये व्यवहार बड़ हय।
सहस्त्रेक साजाइया कोन जने लय॥१३६॥
हइल हइल देउटि–मय नवद्वीप–पुर।
स्त्री–बाल–वृद्धेर रंग बाड़िल प्रचुर॥१३७॥
एइ शक्ति अन्येर कि हय कृष्णबिने।
तबु पापी लोक ना जानिल एत दिने॥१३८॥
ईषत् आज्ञाय मात्र सर्व नवद्वीप।
चलिला देउटि लइ' प्रभुर समीप॥१३९॥

(१२९–१३९) प० अनु०—नागरिकगण यह सुनकर अपने-अपने घरों के लिए चल पड़े। सभी आनन्दयुक्त पुलक से भरे थे। भोजन के प्रति उन लोगों का ध्यान ही नहीं गया। घर-घर में केवल यही ध्वनि सुनाई दी कि, 'आज निमाइ पण्डित प्रत्येक नगर में नृत्य करेंगे। जिनका नृत्य ने देख सकने के कारण नदीया के लोगों ने न जाने कितने हजार कोटि दुःख प्रकट किये हैं। वे ही प्रभु आज नगर-नगर में नृत्य करेंगे। अतएव सभी बड़े आनन्द के साथ देउटि (दीप, मशाल) तैयार करने लगे। बाप भी तैयार कर रहा था, तो बेटा भी तैयार कर रहा था। प्रसन्नता के कारण कोई किसी को रोकने में समर्थ नहीं था। सभी एक से बढ़कर एक मशालें तैयार करने में लगे थे। बड़े-बड़े भाण्डों में उन्होंने तेल ले लिया था। नदीया में अनन्त, अर्बुद (अरब), लाखों लोग रहते थे। सो, मशालों की संख्या गिनने की शक्ति किसमें थी? इनमें भी जो सामर्थ्यवान् थे, उन्होंने हजार-हजार मशालें तैयार कीं। नवद्वीपपुर मशालों से भर गया। यह देखकर स्त्री, बालक और वृद्धों को बहुत आनन्द आ रहा था। कृष्ण के अतिरिक्त इस प्रकार की शक्ति और किसी में हो सकती है क्या? फिर भी, इतने दिनों में भी पापियों को कुछ पता नहीं चला। प्रभु ने थेड़ी-सी आज्ञा प्रदान की, इससे सारा नवद्वीप झूम उठा और सभी अधिवासी हाथों में मशाल लिए प्रभु के पास जाने को प्रस्तुत हुये।

प्रभु के द्वारा भक्तजनों को अलग-अलग सम्प्रदायों में विभाजित होकर कीर्तन करने का आदेश–

शुनि' सर्व वैष्णव आइला ततक्षण।
सबारे करने आज्ञा शचीर नन्दन॥१४०॥
आगे नृत्य करिवेन आचार्य–गोसाईं।
एक सम्प्रदाय गाइवेन ता'न ठाञि॥१४१॥
मध्ये नृत्य करि' यावेन हरिदास।
एक सम्प्रदाय गाइवेन तान पाश॥१४२॥
तबे नृत्य करिवेन श्रीवास पण्डित।
एक सम्प्रदाय गाइवेक ता'न भित॥१४३॥

(१४०–१४३) प० अनु०—महाप्रभु का आदेश सुनकर सभी वैष्णव तत्क्षण आ गये। शचीनन्दन ने उन सबको आज्ञा प्रदान की। आचार्य-गोसाईं सबसे आगे नृत्य करेंगे तथा और एक सम्प्रदाय उनके पास रहकर कीर्तन करेगा। बीच में हरिदास नृत्य करते-करते आगे बढ़ेंगे तथा और एक सम्प्रदाय उनके समीप कीर्तन करेगा। फिर श्रीवास पण्डित नृत्य करेंगे तथा एक सम्प्रदाय उनके निकट रहकर कीर्तन करेगा।

नित्यानन्द की स्वाभीष्ट सेवाकांक्षा–

नित्यानन्द–दिके मात्र चाहिलेन प्रभु।

नित्यानन्द बले,– ''तोमा ना छाड़िव कभु॥१४४॥
धरिया बुलिव प्रभु इए कार्य मोर।
तिलेको हृदये पद ना छाड़िव वतोर॥१४५॥
स्वतन्त्र नाचिते प्रभु मोर कोन् शक्ति।
यथा तुमि, तथा आमि, एइ मोर भक्ति॥''१४६॥
प्रेमानन्द–धारा देखि' नित्यानन्द अंगे।
आलिंगन करि' राखिलेन जिन–संगे॥१४७॥
एइ मत या'र येन चित्तेर उल्लास।
केह वा स्वतन्त्र नाचे, कहे प्रभु–पाश॥१४८॥

(१४४–१४८) प० अनु०—प्रभु ने नित्यानन्द की ओर केवलमात्र देखा ही था कि नित्यानन्द ने कहा,–"मैं आपको कभी नहीं छोड़ूँगा। मैं आपके साथ–साथ रहूँगा, यही मेरा काम है। मैं अपने हृदय में से आपको आधे पल के लिए भी जुदा नहीं होने दूँगा। हे प्रभु! स्वतन्त्रभाव से नृत्य करने की शक्ति मुझमें कहाँ है? जहाँ आप हैं, वहाँ मैं हूँ, यही मेरी भक्ति है।" नित्यानन्द के श्रीअंग में प्रेमानन्द की धारा को देखकर प्रभु ने उन्हें आलिंगन–प्रदान–कर अपने पास रख लिया। इस प्रकार उल्लास के साथ कोई स्वाधीनभाव में नृत्य करने लगा, तो कोई प्रभु के पास नाचने लगा।

अंगोपांग–सहित प्रभु का नगर–कीर्तन–

मन दिया शुन भाइ, नगर–कीर्तन।
ये कथा शुलिने घुचे कर्मेर बन्धन॥१४९॥
गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास।
गोपीनाथ, जगदीश, विप्र–गंगादास॥१५०॥
रामाइ, गोविन्दानन्द, श्रीचन्द्रशेखर।
वासुदेव, श्रीगर्भ, मुकुन्द, श्रीधर॥१५१॥
गोविन्द, जगदानन्द, नन्दन–आचार्य।
शुक्लाम्बर–आदि ये ये जाने एइ कार्य॥१५२॥
अनन्त चैतन्य–भृत्य कत जानि नाम।
वेदव्यास द्वारे व्यक्त हइब पुराण॥१५३॥
सांगोपांग अस्त्र–पारिषदे प्रभु नाचे।
इहा वर्णिवार कि नरेर शक्ति आछे?१५४॥
अवतार एमत कि आछे अद्भुत।
याहा प्रकाशिलेन हइया शचीसुत॥१५५॥
तिले तिले बाड़े विश्वम्भरेर उल्लास।
अपराह्न आसिाया हइल प्रकाश॥१५६॥
भक्तगणेर चित्ते कि हैल आनन्द।
सुखसिन्धु माझे भासे सब भक्त–वृन्द॥१५७॥
नगरे नाचिव प्रभु कमलार कान्त।
देखिया जीवेर दुःख घुचित नितान्त॥१५८॥
स्त्री, बालक, वृद्ध, किवा स्थावर–जंगम।
से नृत्य देखिले सर्व–बन्ध–विमोचन॥१५९॥
कहारओ नाहिक बाह्य आनन्द–आवेशे।
गोधूलि–समय आसि' हइल प्रवेशे॥१६०॥
कोटि–कोटि लोक आसि' आछये दुयारे।
परशिया ब्रह्माण्ड श्रीहरि–ध्वनि करे॥१६१।
हुँकार करिला प्रभु शचीर नन्दन।
शब्दे परिपूर्ण हैल सबार श्रवण॥१६२॥
हुँकारेर शब्दे सबे हइला विह्वल।
'हरि' बलि' सबे दीप ज्वालिल सकल॥१६३॥
लक्ष कोटि दीप–सब चतुर्दिके ज्वले।
लक्ष कोटि लोक चारिदिके 'हरि' बले॥१६४॥
कि शोभा हइल से बलिते शक्ति का'र।
कि सुखेर ना जानि हइल अवतार॥१६५॥
किवा चन्द्र शोभे, किवा शोभे दिनमणि।
किवा तारागण ज्वले, किछुइ ना जानि॥१६६॥
सबे ज्योतिर्मय देखि, सकल आकाश।
ज्योति–रूपे कृष्ण किवा करिला प्रकाश॥१६७॥
'हरि' बलि' डाकिलेन गौरांग–सुन्दर।
सकल वैष्णवगण हइला सत्वर॥१६८॥

करिते लागिला प्रभु बेड़िया कीर्तन।
सबार अंगेते माला श्रीफागु–चन्दन॥१६९॥
करताल मन्दिरा सबार शोभे करे।
कोटि–सिंह जिनिया सबेइ शक्ति धरे॥१७०॥
चतुर्दिके आपन–विग्रह भक्तगण।
बाहिर हइला प्रभु श्रीशची–नन्दन॥१७१॥
प्रभु मात्र बाहिर हइला नृत्य–रसे।
'हरि' बलि' सर्व लोक महानन्दे भासे॥१७२॥
संसारेर ताप हरे' श्रीमुख देखिया।
सर्वलोक 'हरि' बले आनन्द हइया॥१७३॥

(१४९–१७३) प० अनु०—सुनो भाइयों! मन लगाकर नगर–कीर्तन के बारे में सुनो। इस कथा को सुनने से कर्म के बन्धनों से छुटकारा मिल जायेगा। गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास, गोपीनाथ, जगदीश, विप्र–गंगादास, रामाइ, गोविन्दानन्द, श्रीचन्द्रशेखर, वासुदेव, श्रीगर्भ, मुकुन्द, श्रीधर, गोविन्द, जगदानन्द, नन्दन–आचार्य शुक्लाम्बर आदि सभी ने इस नगर–कीर्तन में योगदान किया। ये सभी अच्छी तरह जानते थे कि नगर–संकीर्तन कैसे किया जाता है। 'चैतन्य के भृत्यों की संख्या अनन्त है, सभी के नाम मैं कैसे गिना सकता हूँ।' वेदव्यास के द्वारा पुराणों में इसका वर्णन किया जायेगा। सांगोपांग, अस्त्रों और परिषदों के साथ प्रभु नृत्य कर रहे थे। क्या उस नृत्य का वर्णन करने की क्षमता मनुष्य में है? क्या ऐसा अद्‌भुत अवतार कहीं अन्यत्र है, जैसा शचीनन्दन के रूप में प्रकाशित हुआ है? धीरे–धीरे विश्वम्भर का उल्लास बढ़ता गया। उधर अपराह्न का समय उपस्थित हो गया। सभी भक्तवृन्द महान् आनन्द के कारण सुख–सागर में विचरण करने लगे। प्रभु कमलाकान्त नगर में नृत्य करेंगे, उस देखकर जीवों का दुःख पूरी तरह मिट जायेगा। उस नृत्य को देखने से स्त्री, बालक, वृद्ध तथा स्थावर–जंगम आदि— सभी, सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाएँगे। आनन्द–आवेश के कारण किसी में भी बाहरी सुबधुध नहीं थी। इसी बीच गोधूलि का समय उपस्थित हो गया। कोटि–कोटि जन आकर द्वार पर खड़े हो गये और हाथ ऊपर उठाकर ब्रह्माण्ड को स्पर्श करने वाली श्रीहरि–ध्वनि करने लगे। प्रभु श्रीशचीनन्दन ने हुँकार किया। उस हुँकार की ध्वनि से सभी के कान परिपूरित हो गये। हुँकार के शब्द से सभी विह्वल हो गये और सभी ने 'हरि' कहकर दीपों को जलाया। चारों ओर लाखों, करोड़ों लोग 'हरि–हरि' कहने लगे। उस समय कैसी शोभा थी, इसका वर्णन करने की शक्ति किसमें है? न जाने कौन–सेस सुख का अवतार हुआ। वह शोभा चन्द्रमा की थी अथवा सूरज की थी अथवा जगमगाते सितारों की थी, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। सब कुछ ज्योतिर्मय था, सम्पूर्ण आकाश ज्योतिस्वरूप था। संभवतः ज्योति के रूप में कृष्ण ने अपने आपको प्रकाशित किया था। गौरांगसुन्दर ने ज्यों ही 'हरि' कहकर पुकारा, सभी ने प्रभु को घेरकर कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। सभी के अंग माला, अबीर एवं चन्दन से सुशोभित थे। सभी हाथों में करताल और मंजीरा शोभा पा रहे थे। सबमें कोटि–सिंहों से भी बढ़कर शक्ति का संचार हो गया था। चारों ओर अपने विग्रहस्वरूप भक्तों को साथ लिए प्रभु श्रीशचीनन्दन बाहर आये। नृत्य के आनन्द में प्रभु के बाहर होने के साथ–साथ सब लोग 'हरि' बोलकर महान आनन्द में बहने लगे। प्रभु के श्रीमुख को देखकर संसार का ताप दूर हो रहा था। सभी लोग आनन्द में 'हरि–हरि' कह रहे थे।

(१५५) गौः भाः—श्रीचैतन्यदेव के अनन्त कोटि भृत्य हैं; अवतारी के विभिन्न अवतारस्वरूप इन सब भृत्यों ने नानाप्रकार से भगवान् की लीलाओं में सहायता प्रदान की हैं पुराण-रचना के समय वेदव्यास ने इसे व्यक्त किया है और आगे भी करेंगे। श्रीमद्भागवत में "कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं" श्लोक वर्णित हुआ हैं अपनी दीनता की जानकरी देते हुये ग्रन्थकार कहते हैं—"मुझे जैसे मानव में वेदव्यास की भाँति वर्णन करने की शक्ति का अभाव है।"

श्रीशचीनन्दन के अवतार में प्रभु की जैसी अद्भुत लीलाएँ प्रकाशित हुई हैं, वैसी उनके अन्यान्य प्रकाशविशेष समूहों में प्रकटित नहीं हुई हैं। अवतार समूहों की लालाओं का जो वर्णन वेदव्यास ने नहीं किया है, उसके अतिरिक्त औदार्यलीला की पराकाष्ठा इन करुणावतारी की लालाओं में प्रकटित हुई हैं।

(१६९) गौः भाः—श्रीफागु चन्दन—अबीर (गुलाल) एवं चन्दन; वसन्तकाल में ही अबीर-चूर्ण एवं चन्दन को व्यवहार में लाया जाता हैं इससे यह जाना जाता है कि, श्रीगौरसुन्दर के द्वारा कीर्तनविरोध-प्रशमन-लीला दोल के समय हुई थी।

(१७१) गौः भाः—आपनविग्रह—निजमूर्त्ति; भगवान् के श्रीअंग को चारों ओर से भक्तों ने घेर रखा था।

प्रभु का अप्राकृत असमोद्ध रूप-

जिनिया कन्दर्प कोटि लावण्येर सीमा।
हेन नाहि, याहा दिया करिव उपमा॥१७४॥
तथापिह बलि ता'न कृपा-अनुसारे।
अन्यथा से-रूप कहिवारे केवा पारे॥१७५॥
ज्योतिर्मय कनक-विग्रह वेद'सार।
चन्दने भूषित येन चन्द्रेर आकार॥१७६॥
चाँचर-चिकुरे शोभे मालतीर माला।
मधुर-मधुर हासे जिनि' सर्वकला॥१७७॥
ललाटे चन्दन शोभे फागू-बिन्दु-सने।
बाहु तुलि' 'हरि' बले श्रीचन्द्र-वदने॥१७८॥
आजानुलम्बित माला सर्व-अंगे दोले।
सर्व-अंग तिते पद्मनयनेर जले॥१७९॥
दुइ महा-भुज हेन कनकेर स्तंभ।
पुलके शोभये येन कनक-कदम्ब॥१८०॥
सुरंग अधर अति, सुन्दर दशन।
श्रुतिमूले शोभा करे भ्रुयुगपत्तन॥१८१॥
गजेन्द्र जिनिया स्कन्ध, हृदय सुपीन।
तहिँ शोभे शुक्ल-यज्ञ-सुत्र अति क्षीण॥१८२॥
चरणारविन्दे रमा-तुलसीर स्थान।
परम-निर्मल-सूक्ष्म-वास परिधान॥१८३॥
उन्नत नासिका, सिंह-ग्रीव मनोहर।
सबा' हैते सुपीत सुदीर्घ कलेवर॥१८४॥
ये-से-खाने थाकिया सकल लोक बले।
''देख, ठाकुरेर केश शोभे नाना फुले॥''१८५॥
एतेक लोकेर से हइल समुच्चय।
सरिषप पड़िलेओ तल नाहि हय॥१८६॥
तथापित हेन कृपा हइल तखन।
सबेइ देखेन सुखे प्रभुर वदन॥१८७॥

(१७४-१८७) प० अनु०—प्रभु के लावण्य की सीमा कोटि कन्दर्पों से भी बढ़कर थी। ऐसा कोई भी नहीं है, जिसके साथ उनकी तुलना की जाये। फिर भी उनकी कृपा के अनुसार (तुलना) कर रहा हूँ, अन्यथा उनके रूप का वर्णन कौन कर सकता है? वेदों का सारस्वरूप ज्योतिर्मय चन्द्रमा-जैसा उनका कनक-विग्रह चन्दन से विभूषित था। घुँघराले केशों में मालती की माला शोभा पा रही थी। प्रभु समस्त कलाओं को जीतकर मधुर-मधुर

हँस रहे थे। ललाट पर अबीर की बिन्दी के साथ चन्दन शोभा पा रहा था। बाहुओं को ऊपर उठाकर अपने श्रीयुक्त–चन्द्रवदन से वे 'हरि–हरि कह रहे थे। जानु तक लटकी माला सारे अंग में हिल–डुल रही थी। कमलनयन के जल से उनके सारे अंग भीग रहे थे। उनकी दोनों महाभुजाएँ ऐसी शोभा पा रही थीं, मानों कनक के स्तम्भ हों। उनकी पुलकावलि कनक कदम्ब की भाँति शोभित हो रही थी। उनके अधर अरुण थे और दन्त–पंक्ति बड़ी सुन्दर थी। कानों के मूल तक खिंचे हुये उनके भ्रू–युगल बड़ी शोभा पा रहे थे। गजेन्द्र के से सुपुष्ट उनके स्कन्ध थे और उनके विस्तृत वक्ष पर अति क्षीण धवल यज्ञ–सूत्र शोभायमान था। उनके चरणारविन्दों में रमा और तुलसी का निवास था। वे परम निर्मल सूक्षम–वस्त्र पहने थे। उन्नत नासिका और सिंह–जैसी मनोहर ग्रीवा वाले सुदीर्घ कलेवरध ाारी प्रभु सबसे अधिक गौरवर्ण के थे। जहाँ खड़े हुये सभी लोग कह रहे थे, "देखो ठाकुर के केशों में तरह–तरह के फूल शोभा पा रहे हैं।" वहाँ इतने लोगों का समागम हुआ था कि, ऊपर से फेंका हुआ सरसों का दाना भी नीचे नहीं आ सकता था। फिर भी उस समय प्रभु की कुछ ऐसी कृपा हुई कि सभी आराम से उनके वदनकमल को निहार सके।

(१८६) गौः भाः—लोगों की भीड़ इतनी सघन थी कि, ऊपर से फेंका हुआ बहुत ही छोटा सरसों का दाना भी नीचे मिट्टी पर नहीं गिर सकता था।

प्रभु के श्रीमुख–दर्शन से नारियों के द्वारा उलुध्वनि– पूर्वक हरिध्वनि एवं प्रतिघर में मंगलाचार–

प्रभुर श्रीमुख देखि' सब नारीगण।
हुलाहुलि दिया 'हरि' बले अनुक्षण॥१८८॥
कान्दिर सहित कला सकल दुयारे।
पूर्णघट शोभे नारिकेल आम्रसारे॥१८९॥
घृतेर प्रदीप ज्वले परम सुन्दर।
दधि, दूर्वा, धान्य दिव्य बाटार उपर॥१९०॥
एइमत नदीयार प्रति द्वारे द्वारे।
हेन नाहि जानि, इहा कोन् जने करे॥१९१॥

(१८८–१९१) प० अनु०—प्रभु के श्रीमुख को देखकर सभी नारियाँ उलुध्वनि–प्रदानकर अनुक्षण 'हरि–हरि' कह रही थीं। सभी के द्व ारों पर कान्दी के साथ केला और नारियल तथा आम्रसार–सहित पूर्णघट शोभायमान थे। परम सुन्दर घी के प्रदीप जल रहे थे और दही, दूर्वा तथा धान दिव्य पात्रों के ऊपर रखे हुये थे। इस प्राकर से नदीया के सभी द्वारों पर सब सामग्री सिज्जत थी। कोई नहीं जानता था कि यह सब किसने किया।

(१८८) गौः भाः—हुलाहुलि–उलुउलु; उलुध वनि (मंगलध्वनि)।

स्त्री और पुरुष सभी का नगर–कीर्तन में भ्रमण एवं 'स्त्रीपुत्रादि–कथां जहुर्विषयिणः, इत्यादि श्लोक की यथार्थता के दर्शन–

बुले स्त्री–पुरूष सब लोक प्रभु–संगे।
केह का'हो ना जाने परमानन्द–रंगे॥१९२॥

(१९२) प० अनु०—स्त्री–पुरुष आदि सब लोग प्रभु के साथ–साथ चल रहे थे। परमानन्द में विभोर रहने के कारण कोई किसी को नहीं जान पा रहा था।

चौर्याभिलाषी व्यक्ति का भी कीर्तन में योगदान–

चोरेर आछिल चित्त–'एइ अवसरे।
आजि चुरि करिवाङ प्रति घरे घरे॥'१९३॥

शेषे चोर पासरिल भाव आपनार।
'हरि' बइ मुखे का'रो ना आइसे आर॥१९४॥

(१९३–१९४) प० अनु०—चोर सोच रहे थे कि, इस सुअवसर का लाभ उठाकर आज घर–घर में चोरी करेंगे। परन्तु बाद में ये चोर भी अपने भाव को भूल गये। 'हरिनाम' के अतिरिक्त और कुछ किसी के मुख से किनल ही नहीं रहा था।

(१९४) गौः भाः—श्रीचैतन्यचन्द्रामृतोक्त 'स्त्रीपुत्रा– दिकथां जहुर्विषयिणः, श्लोक (संख्या–११३) इस प्रसंग में अनुशीलन करने योग्य है।

श्रीकृष्ण की अचिन्त्य शक्ति का प्रभाव–

हइल सकल पथ खइ–कड़ि–मय।
केवा करे, केवा फेले, हेन रंग हय॥१९५॥
'स्तुति–हेन ना मानिह ए–ससकल–कथा।
एइ मत हये—कृष्ण विहरेन यथा॥१९६॥
नव–लक्ष प्रासाद द्वारका रत्नमय।
निमेषे हइल, एइ भागवते कय॥१९७॥
ये काले यादव–संगे सेइ द्वारकाय।
जलकेलि करिलेन एइ द्विजराज॥१९८॥
जगते विदित हय लवण–सागर।
इच्छामात्र हइल अमृत–जलधर॥१९९॥
'हरिवंशे' कहेन से–सब–गोप्य–कथा।।
एतेक सन्देह किछु ना करिह एथा॥२००॥
से–इ प्रभु नाचे निज–कीर्तने विह्वल।
आपनेइ उपसन्न सकल मंगल॥२०१॥

(१९५–२०१) प० अनु०—सारा मार्ग खोई (खील) और कौड़ी से भरा हुआ था। कोई कर रहा था, कोई फेंक रहा था और ऐसी लीला हो रही थी, इन सब बातों को 'स्तुति–जैसी' मत समझियेगा। श्रीकृष्ण जहाँ विहार करते हैं, वहाँ ऐसा ही होता हैं श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि द्वारका में नौ लाख रत्नखचित प्रासाद निमेष–भर में बन गये थे। उसी द्वारका में जिस समय यादवों के साथ मिलकर इन द्विजराज (शचीनन्दन) ने जलकेलि रचाई थी, उस समय संसार–भर में विदित लवण–सागर इनकी इच्छामात्र से ही अमृत–जलधर बन गया था। ये सब गोपनीय कथाएँ 'हरिवंश' में वर्णित हैं। अतएव, इसमें सन्देह करना उचित नहीं होगा। वे ही प्रभु जहाँ अपने कीर्तन में विह्वल होकर नृत्य कर रहे थे, वहाँ सकल मंगल अपने आप ही उपस्थित हो गये थे।

(१९७) गौः भाः—तथ्य—श्रीमद्भागवत में १०/५०/४९/–५३ श्लोक द्रष्टव्य हैं।

(२००) गौः भाः—तथ्य–हरिवंश में १४५ अः द्रष्टव्य है।

भागीरथी के तट पर प्रभु का नृत्य–
कीर्तनकारी भक्तों–सहित गमन–

भागीरथी–तीरे प्रभु नृत्य करि' याय।
आगे पाछि 'हरि' बलि' सर्वलोके धाया॥२०२॥
आचार्य गोसाईं आगे जन कत लञा।
नृत्य करि' चलिलेन परमानन्द हञा॥२०३॥
तबे हरिदास कृष्ण–रसेर सागर।
आज्ञाय चलिला नृत्य करिया सुन्दर॥२०४॥
तबे नृत्य करिया चलिला श्रीनिवास।
कृष्णसुखे परिपूर्ण याँहार विलास॥२०५॥
एइमत भक्तगण आगे नाचि' याय।
सबारे बेड़िया एक सम्प्रदाय गाय॥२०६॥
सकल–पश्चाते प्रभु गौरांगसुन्दर।
यायेन करिया नृत्य अति मनोहर॥२०७॥
मधु–कण्ठ हइलेन सर्व भक्तगण।
कभु नाहि गाये—सेहो हइल गायन॥२०८॥
मुरारि, मुकुन्द–दत्त, रामाइ, गोविन्द।
वक्रेश्वर, वासुदेव–आदि भक्तवृन्द॥२०९॥

सबेइ नाचेन प्रभु बेड़िया गायेन।
आनन्दे पूर्णित प्रभु–संहित यायेन॥२१०॥

(२०२–२१०) प० अनु०—भागीरथी के तट पर नृत्य करते-करते प्रभु जा रहे हैं। सभी लोग 'हरि'- 'हरि' कहते हुये आगे-पीछे चल रहे हैं। आगे-आगे आचार्य गोसाईं कतिपय लोगों के साथ लिये परमानन्दित होकर नृत्य करते-करते चल रहे हैं। फिर कृष्णरस के सागर-स्वरूप हरिदास, प्रभु की आज्ञा से सुन्दर नृत्य करते-करते चल रहे हैं। उनके पीछे श्रीनिवास, जिनका विलास कृष्णसुख से परिपूर्ण है, नृत्य कर रहे हैं। इस प्रकार से भक्तगण नृत्य करते हुये आगे बढ़ रहे हैं। सबको घेरकर एक-एक सम्प्रदाय कीर्तन कर रहा है। इन सबके पीछे प्रभु श्रीगौरांगसुन्दर अति मनोहर नृत्य करते हुये जा रहे हैं। सभी भक्तगण बहुत ही सुन्दर सुरीला कीर्तन करने वाले हो गये। जिसने कभी नहीं गाया था, वह भी गायक हो गया। मुरारि, मुकुन्द-दत्त रामाइ, गोविन्द, वक्रेश्वर, वासुदेव आदि भक्तवृन्द सभी प्रभु को चारों ओर से घेरकर नृत्य एवं कीर्तन करते-करते आनन्द में विभोर होकर प्रभु के साथ साथ जा रहे हैं।

प्रभु के दोनों ओर नित्यानन्द एवं गदाधर-

नित्यानन्द गदाधर याय दुइ पाशे।
प्रेम–सुधा–सिन्धु–माझे दुइ जन भासे॥२११॥

(२११) प० अनु०—प्रभु के दोनों ओर नित्यानन्द और गदाधर चल रहे हैं। दोनों प्रेम-सुधा-रस-सागर में बह रहे हैं।

प्रभु का नृत्य देखने के लिए अनगिनत लोगों का आगमन-

चलिलेन महाप्रभु नाचिते।
लक्ष कोटि लोक धाय प्रभुरे देखिते॥२१२॥

(२१२) प० अनु०—महाप्रभु नृत्य करते हुये चल रहे हैं। प्रभु के दर्शनों के लिए लाखों-करोड़ों लोग जा रहे थे।

तत्कालीन शोभा-

कोटि कोटि महा–ताप ज्वलिते लागिल।
चन्द्रेर किरण सर्व शरीरे हइल॥२१३॥
चतुर्दिके कोटि कोटि महा दीप, ज्वले।
कोटि कोटि लोक चतुर्दिके 'हरि' बले॥२१४॥

(२१३–२१४) प० अनु०—इधर करोड़ों-करोड़ों मशालें जल रही थीं। उधर चन्द्रमा की किरणें सभी के शरीर पर पड़ रही थीं। चारों ओर करोड़ों महादीप जगमगा रहे थे। करोड़ों लोग चारों ओर से 'हरि-हरि' बोल रहे थे।

(२१३) गौः भाः—महाताप-मशाल।

प्रभु का नृत्य देखकर नदीयावासियों में आनन्द- कोलाहल-

देखिया प्रभुर नृत्य अपूर्व विकार।
आनन्दे विह्वल सब लोक नदीयार॥२१५॥
क्षणे हय प्रभु–अंग सब धूलामय।
नयनेर जले क्षणे सब पाखलय॥२१६॥
से कम्प, से घर्म, से वा पुलक देखिते।
पाषण्डीर चित्तवृत्ति लागये नाचिते॥२१७॥
नगरे उठिल महा–कृष्ण–कोलाहल।
'हरि' बलि' ठाकजि नाचये सकल॥२१८॥
'हरि ओ राम राम, हरि ओ राम राम'।
'हरि बलि' नाचये सकल भाग्यवान्॥२१९॥
ठाजि ठाजि एइ मने मेलि' दश–पाँचे।
केह गाय, केह वा'य, केह माझे नाचे॥२२०॥
लक्ष लक्ष कोटि कोटि हैल सम्प्रदाय।
आनन्दे नाचिया सर्व नवद्वीपे याय॥२२१॥

''हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन''॥२२२॥
केह केह नाचये हइया एक मेलि'।
दशे–पाँचे नाचे काँहा दिया करतालि॥२२३॥
दुइ–हात जोड़ा दीप तैलेर भाजने।
ए बड़ अद्‌भुत तालि दिलेन केमने॥२२४॥
हेन बुझि—वैकुण्ठ आइला नवद्वीपे।
वैकुण्ठ–स्वभाव–धर्म पाइलेक लोके॥२२५॥
जीवमात्र तचुर्भुज हइल सकल।
ना जानिल केह, कृष्ण–आनन्दे विह्वल॥२२६॥
हस्त ये हइल चारि, ताहे नाहि जाने।
आपनार स्मृति गेल, तबे तालि केन॥२२७॥
हेनमते वैकुण्ठेर सुखे नवद्वीप।
नाचिया यायेन सबे गंगार समीप॥२२८॥
विजय करिला येन नन्द–घोषेर बाला।
हातेते मोहन–वाँशी, गले वनमाला॥२२९॥
एइमत कीर्तन करिया सर्वलोक।
पासरिला देह–धर्म, यत दुःख–शोक॥२३०॥
गड़ागड़ि याय केह, मालसाट् पूरे।
काहारओ जिह्वाय नानामत वाक्य स्फुरे॥२३१॥
केह बले,–''एबे काजी बेटा गेल कोथा।
लागि पाङ एखन छिण्डिया फेलों माथा॥''२३२॥
रड़ दिया याय केह पाषण्डी धरिते।
केह पाषण्डीर नामे किलाय माटिते॥२३३॥
ना जानि वा कत जने मृदंग बाजाय।
ना जानि वाा महानन्दे कत जने गाय॥२३४॥
हेन प्रेम–वृष्टि हैल सर्व नदीयाय।
वैकुण्ठसेवको याहा चाहे सर्वथाय॥२३५॥
ये सुखे विह्वल अज, अनन्त, शंकर।
हेन–रसे भासे सर्व–नदीया–नगर॥२३६॥
गंगा–तीरे तीरे प्रभु वैकुण्ठेर राय।
सांगोपांग–अस्त्र–पारिषदे नाचि' याय॥२३७॥

(२१५–२३७) प० अनु०—अपूर्व (सात्विक) विकारों–सहित प्रभु का नृत्य देखकर नदीया के सभी लोग आनन्द में विह्वल हो गये। क्षण–भर में प्रभु का सम्पूर्ण श्रीअंग धूलमय हो गया, तो क्षण भर में नेत्रजल ने सारे अंगों को धो डाला। उस कम्प को, उस स्वेद को और उस पुलक को देखकर पाखंण्डियों का मन भी नाचने लगा था। नगर–भर मेंमहान कृष्ण–कोलाहल भी गूंज उठा। 'हरि' 'हरि' बोलकर सभी इधर–उधर नृत्य कर रहे हैं। 'हरि ओ राम राम, हरि ओ राम राम' की ध्वनि के साथ हरि'–'हरि' कहकर सभी भाग्यवान्‌जन नृत्य कर रहे थे। पाँच–दस एक–एक जगह पर इकट्ठे होकर कोई गा रहा है, कोई बजा रहा है और कोई बीच में नृत्य कर रहा है। लाखों–करोड़ों सम्प्रदाय आनन्द–साहित नृत्य करते हुये नवद्वीप में जा रहे हैं। 'हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः। गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन'–इस पद्य के साथ कीर्तन करते हुये कोई–कोई एकाएक नृत्य करने लगता है। कहीं दश–पाँच एक साथ मिलकर हाथों से ताली बजाते हुये नृत्य कर रहे हैं। यह बड़ा ही आश्चर्य है कि, एक हाथ से मशाल थामे हुये और एक हाथ में तेल का भाण्ड संभाले हुये व्यक्तियों ने तालियाँ कैसे बजाईं। लगता है, नवद्वीप में वैकुण्ठ का अवतरण हो गया है। लोगों को वैकुण्ठ का स्वभाव–धर्म मिल गया है। सभी लोग चतुर्भुज–स्वरूप हो गये हैं; किन्तु कृष्णानन्द में विह्वल हो जाने के कारण कोई इसे जान नहीं पाया है। सबको चार–चार हाथ हो गये हैं, किन्तु किसी ने इसे जाना नहीं। अपने आपको सभी भूले हुये थे। इसलिए वे यह नहीं जान पाये कि ताली कैसे बजा रहे हैं। इस प्रकार से नवद्वीप में

वैकुण्ठ–सुख का अवतरण हुआ है। नृत्य करते–करते सभी गंगा के समीप पहुँच गये। ऐसा लग रहा है, जैसे हाथों में मोहनी–वंशी और गले में वनमाला लिए नन्दनन्दन श्रीकृष्ण अपने विजय अभियान पर जा रहे हों। इस प्रकार से कीर्तन करते–करते सभी अपने देह–धर्म और दुःख–शोक को भूले गये। कोई भूमि पर लोट–पोट हो रहा था तो कोई मल्लवीरों की तरह अपना गौरव प्रकाश कर रहा है। किसी–किसी की जिह्वा से तरह–तरह की बातें स्फुरित हो रही थीं। कोई कह रहा था,–"अब काजी कहाँ भाग गया। यदि हाथ में आ आता, तो सिर काटकर फेंक देता।" कोई पाखण्डी के नाम पर मिट्टी में घूंसा जमा रहा था। पता नहीं उस महा आनन्द में कितने लोग मृदंग बजा रहे थे और न जाने कितने लोग कीर्तन कर रहे थे। वैकुण्ठ का सेवक सब प्रकार से जिसे चाहता है, उसी प्रेम–रस की वर्षा सारे नदीया नगर में हो रही थी। अज (ब्रह्मा), अनन्त, शंकर जिस आनन्द के कारण विह्वल रहते हैं, उसी आनन्द में सारा नदीया–नगर झूम रहा था। वैकुण्ठ के अधिपति प्रभु श्रीशचीनन्द सांगोपां–अस्त्र पारिषदों के साथ गंगा के तट पर कीर्तन करते–करते चले जा रहे थे।

(२२०) गौः भाः—वा'य—बजाता है।

कीर्तन के प्रभाव से सभी स्थानों की पवित्रता–

पृथिवीर आनन्देर नाहि समच्चय।
आनन्दे हइला सर्वदिग् पथ–मय॥२३८॥
तिल–मात्र अनाचार हेन भूमि नाइ।
परम उत्तम हैल सर्व–ठाञि–ठाञि॥२३९॥

(२३८–२३९) प० अनु०—पृथ्वी के आनन्द की सीमा नहीं है सभी दिशाएँ एवं पथ भी आनन्द मय हो गये हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं था जहाँ तिल मात्र भी अनाचार हो। हर स्थान परम उत्तम बन गया था।

(२३९) गौः भाः—हरिकीर्तन के प्रभाव से सभी स्थान परम पवित्र बन गये। कोई भी स्थान कीर्तन–विरहित वैषयिक (विषय सम्बन्धीय) मरुभूमि नहीं रह गया था।

श्रीचैतन्य के आदि–कीर्तन का पद–

नाचिया यायेन प्रभु गौरांग–सुन्दर।
बेड़िया गायेन चतुर्दिके अनुचर॥२४०॥

(२४०) प० अनु०—चारों ओर कीर्तनकारी अनुचरों से घिरे हुये प्रभु श्रीगौरांगसुन्दर नृत्य करते–करते अग्रसर हो रहे थे।

अथ पद–

"तुया चरणे मन लागहूँरे।
सारंग–धर, तुया चरणे मन लागहूँरे॥"ध्रु॥२४१॥
चैतन्यचन्द्रेर एइ आदि संकीर्तन।
भक्तगण गाय, नाचे श्रीशचीनन्दन॥२४२॥

(२४१–२४२) प० अनु०—"तेरे चरणों में मन लग जाए, सारंग–धर, तेरे चरणों में मन लग जाए।" यही चैतन्यचन्द्र का आदि संकीर्तन है। भक्तवृन्द कीर्तन कर रहे थे और श्रीशचीनन्दन गौरहरि नृत्य कर रहे थे।

(२४१–२४२) गौः भाः— सारंग धर—धनुषपाणि। श्रीगौरसुन्दर के आदि संकीर्तन में श्रीरामचन्द्र के चरणों में मन लगाने का विधान है। अधिकार–भेदानुसार भक्तवृन्दों में–से कोई केवल वासुदेव के उपासक हैं, कोई लक्ष्मी–नारायण के उपासक हैं और कोई सीताराम के उपासक हैं। साधक के लिए उत्तरोत्तर श्रेष्ठ आदर्श सेव्य–पर्यायों के प्रकाशभेद की प्रयोजनीयता वर्तमान है। भगवद्

भक्तगण हमेशा नीतिविरुद्ध पापों से दूर रहते हैं; वे सदैव सभी के लिए और अपने लिए भी मंगल-साधन के उद्देश्य से कार्य करते हैं। इस जगत् के अवरता, असम्पूर्णता, अनुपादेयता, परिच्छेद, कालक्षोभ्य इत्यादि धर्मों का भगवान् में, भगवद्-धाम में एवं भगवत्-लीलाओं में आरोप करने से नित्या भक्ति का स्वरूप विपर्यय को प्राप्त करता है।

कीर्तन के आवेश में सभी को पथभ्रान्ति एवं चदुर्दश भुवन में शब्दोद्दिष्ट विषयों का अतिक्रमण-

कीर्तन करेन सबे ठाकुरेर सने।
'कोन् दिगे याइ' इहा केह नाहि जाने॥२४३॥
लक्ष कोटि लोके ये करये हरिध्वनि।
ब्रह्माण्ड भेदये येन हेनमते शुनि॥२४४॥
ब्रह्मलोक, शिवलोक, वैकुण्ठ पर्यन्त।
कृष्ण-सुखे पूर्ण हैला, नाहि ता'र अन्त॥२४५।

(२४३-२४५) प० अनु०— सभी ठाकुर के साथ कीर्तन कर रहे थे। 'किस दिशा की ओर जाना है' यह कोई नहीं जानता था। लाखों, करोड़ों लोगों के द्वारा उच्चारित हरिध्वनि ब्रह्माण्ड का भेदन कर रही थी। ब्रह्मलोक, शिवलोक और वैकुण्ठलोक भी कृष्ण-सुख में परिपूर्ण हो गये थे। फिर भी इस ध्वनि का कोई अन्त नहीं था।

(२४४-२४५) गौः भाः— 'हरि'-शब्द ऊँचे स्वर में उच्चारित होने से चतुर्दश भुवनों के शब्दोद्दिष्ट विषय समूह दूर हट गये। ब्रह्मलोक, शिवलोक और इसके ऊपर स्थित ऐश्वर्यमय वैकुण्ठलोक—जो गोलोक के निम्नार्द्ध में स्थित हैं, ये सब कृष्णसुख से पूर्णता को प्राप्त हुये।

कीर्तन देखकर देवताओं का पूर्च्छित हो जाना एवं संविद् मिलने पर कीर्तन में योगदान-

सपार्षदे सर्व देव आइला देखिते।
देखिया मूर्च्छित हैला सबार सहिते॥२४६॥
चैतन्य पाइया क्षणे सर्व देवगण।
नर-रूपे मिशाइया करेन कीर्तन॥२४७॥
अज, भव, वरुण, कुबेर, देवराज।
यम, सोम आदि यत देवेर समाज॥२४८॥
ब्राह्मसुख-स्वरूप अपूर्व देखि' रंग।
सबे हैला नर-रूपे चैतन्येर संग॥२४९॥
देवे नरे एकत्र हइया 'हरि बले।
आकाश पुरिया सब महा-दीप ज्वले॥२५०॥
कदलीर वृक्ष प्रति दुयारे दुयारे।
पूर्ण-घट, धान्य, दुर्वा, दीप, आम्रसारे॥२५१॥

(२४६-२५१) प० अनु०— पार्षदों-सहित सभी देवता नृत्य देखने आये और नृत्य देखकर सभी मूर्च्छित हो गये। फिर क्षण-भर में चेतनता प्राप्त करके सभी देवता नररूत धारण करके कीर्तन करने लगे। अज, भव, वरुण, कुबेर, देवराज इन्द्र, यम, सोम आदि जितने भी देवता हैं, वे सब ब्रह्मसुख-स्वरूप अपूर्व आनन्द को देखकर नररूप अपनाते हुये श्रीचैतन्यदेव के संग हो लिये। देवता और मानुष एकत्र होकर 'हरि' बोलने लगे। उधर आकाश-मण्डल मशालों सेस आच्छादित हो गया। पूर्ण-घट, धान, दूर्वा, दीप, आम्रसार और कदली के वृक्ष—ये सब द्रव्य प्रत्येक द्व ारा पर शोभा पा रहे थे।

(२४९) गौः भाः—सभी देवताओं ने पूर्णसुखस्वरूप अपूर्व आनन्द को देखकर नररूप धारण करके श्रीचैतन्यदेव के अतिदुर्लभ संग को प्राप्त कर लिया।

नवद्वीप नगर का तत्कालीन वैभव-

नदीयार सम्पत्ति वर्णिते शक्ति का'र?

असंख्य नगर–घर–चत्तर–बाजार॥२५२॥
एक जाति लोक या'ते अर्बुद अर्बुद।
इहा संख्या करिवेक कोन् वा अबुध॥२५३॥
अवतरिवेन प्रभु जानिया विधाता।
सकल एकत्र करि' थुइलेन तथा॥२५४॥
स्त्रीये यत जयकार दिया बले 'हरि'।
ताहा लक्ष वत्सरेओ वर्णिते ना पारि॥२५५॥

(२५२–२५५) प० अनु०—नदीया की सम्पत्ति का वर्णन करने की शक्ति किसमें है? नदीया में असंख्या नगर, घर चबूतरे और बाजार वर्तमान थे। एक ही जाति के लोग अर्बुद की संख्या में नदीया में रहते थे। कौन अबोध होगा, जो उनकी गिनती करेगा। विधाता ने जब यह जाना कि, प्रभु अवतरित होंगे, तब उन्होंने वहाँ सबको एकत्र करके रख दिया था। जय–जयकार की ध्वनिकर स्त्रियों ने जितना 'हरि' बोल बोला, उसका वर्णन लाखों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता।

प्रभु के नृत्य–कीर्तनादि के दर्शन से सभी के धैर्य की विच्युति–

ये सब देखये प्रभु नाचिया याइते।
ता'रा आर चित्तवृत्ति ना पारे धरिते॥२५६॥
से कारुण्य देखिते, से क्रन्दन शुनिते।
परम–लम्पट पड़े कान्दिया भूमिते॥२५७॥

(२५६–२५७) प० अनु०—जिन लोगों ने प्रभु को नृत्य करते हुये देखा, वे सब अपने आपको संभाल नहीं पाये। करुणानिधान प्रभु की दया को देखकर, उस क्रन्दन को सुनकर परम–लम्पट भी रो–रोकर भूमि पर गिर रहे थे।

प्रभु का अपूर्व रूप–

'बोल बोल' बलि' नाचे गौरांग–सुन्दर।
सर्व–अंगे शोभे माला अति–मनोहर॥२५८॥
यज्ञ–सूत्र, त्रिकच्छ–वसन परिधान।
धूलाय धूसर प्रभु कमलनयन॥२५९॥
मन्दाकिनी–हेन प्रेम–धारार गमन।
चान्देरे ना लय मन देखि' से वदन॥२६०॥
सुन्दर नासाते बहे अविरत धार।
अति क्षीण देखि येन मुकुतार हार॥२६१॥
सुन्दर चाँचर केश—विचित्र बन्धन।
तहिँ मालतीर माला अति–सुशोभन॥२६२॥

(२५८–२६२) प० अनु०—बोलो! बोलो! कहकर गौरांग–सुन्दर नृत्य कर रहे थे। उनके सारे अंग में अति मनोहर मालाएँ शोभा पा रही थीं। यज्ञ–सूत्र और त्रिकच्छ–वसन ध ाारण किये हुये कमलनयन प्रभु धूल से ध ूसरित थे। चलने की गति से लगता था मानों मन्दाकिनी–जैसी प्रेमधारा बह रही हो। उनके मुख–चन्द्र को देखने पर चन्द्रमा को देखने की इच्छा नहीं होती थी। सुन्दर नासिका में–से अविरल धारा बह रही थी। उसे देखने से ऐसा लगता था, जैसे कोई अति क्षीण मुक्ताहार हो। सुन्दर घुँघराले केशों का बन्धन अति विचित्र था और उस पर मालती की माला अत्यन्त शोभा पर रही थी।

(२६०) गौः भाः–स्वर्गगंगा मन्दाकिनी की प्रेममय प्रभु की गति से तुलना एवं सौन्दर्य–विशिष्ट चन्द्रमा भी श्रीगौरसुन्दर के वदनमण्डल की तुलना में अति–स्वल्प—ये दोनों बातें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

सभी के द्वारा प्रभु सेस वर की प्रार्थना–

''जनमे जनमे प्रभु, देह' एइ दान।
हृदय रहुक एइ केलि अविराम॥''२६३॥

(२६३) प० अनु०—"हे प्रभु! हम सबको यही वर दीजिए कि हम सबके हृदय में प्रत्येक जन्म में यही केलि (लीला) सदैव

विराजमान रहे।"

भक्त की महिमा बढ़ाने के लिए प्रभु का प्रियजनों के सामने नृत्य-

एइमत वर मागे सकल भुवन।
नाचिया यायेन प्रभु श्रीशचीनन्दन॥२६४॥
प्रियतम सब आगे नाचि' नाचि' याय।
आपने नाचये पाछे वैकुण्ठेर राय॥२६५॥
चैतन्य-प्रभु से भक्त बाड़ाइते जाने।
येन करे भक्त तेन करये आपने॥२६६॥
एइमत महाप्रभु नाचिते नाचिते।
सबार सहित आइसेन गंगापथे॥२६७॥

(२६४-२६७) प० अनु०—सारा भुवन इसी प्रकार का वर माँग रहा था। प्रभु श्रीशचीनन्दन नृत्य करते हुये चल रहे थे। प्रियतम समस्त भक्तजन भी नृत्य करते हुये आगे-आगे जा रहे थे। वैकुण्ठ के अधिपति उन सबको पीछे नृत्य कर रहे थे। प्रभु श्रीचैतन्यदेव भक्तों की महिमा बढ़ाना जानते थे। भक्तजन जैसा करते थे, वे स्वयं भी वैसा ही कर रहे थे। इस प्रकार से नृत्य करते हुये महाप्रभु सबको साथ लेकर गंगा के किनारे-किनारे अग्रसर हो रहे थे।

प्रभु का नृत्य एवं भक्तों द्वारा कीर्तन-

वैकुण्ठ-ईश्वरे नाचे सर्व नदीयाय।
चतुर्दिके भक्तगण पुण्य-कीर्ति गाय॥२६८॥

(२६८) प० अनु०—वैकुण्ठ के ईश्वर सारे नवद्वीप में नृत्य कर रहे थे और चारों ओर भक्तवृन्द पुण्यकीर्ति का कीर्तन कर रहे थे।

भक्तों का कीर्तन-पद-

''हरि' बल मुग्ध लोक, 'हरि' 'हरि' बल रे।
नामाभासे नाहि रय शमन-भय रे॥''ध्रु॥२६९॥
-एइ सब कीर्तने नाचये गौरचन्द्र।
ब्रह्मादि सेवये याँ'र पादपद्मद्वन्द्व॥२७०॥ऽ

(२६९-२७०) प० अनु०—"हरि' बोले, हे मुग्ध (मोहग्रस्त) लोग, 'हरि'-'हरि' बोलो। नामाभास से शमन-भय (यम का भय) दूर जा जाता है।"— ब्रह्मादि जिनके युगल-चरण ाकमलों की सेवा करते हैं, वे ही प्रभु गौरचन्द्र इस सारे कीर्तन में नृत्य कर रहे हैं।

(२६९) गौः भाः-अपराध-रहित एवं अपरिव्यक्त (अप्रकाशित) सम्बन्ध-ज्ञान-विशिष्ट नामोच्चारण को ही 'नामभास' कहते हैं; उससे जीवों को मुक्ति मिलती है। नामापराध होने से जिस प्रकार कलेश मिलने की संभावना है, नामाभास से उस प्रकार यमदण्ड से दण्डित होकर कलेश मिलने की कोई संभावनाएँ नहीं रहती हैं।

ब्रह्मादि के द्वारा सेव्यपद श्रीगौरसुन्दर का नृत्यकालीन वेश-

पाहिड़ा राग-

नाचे विश्वम्भर,जगत्-ईश्वर, भागीरथी-तीरे-तीरे।
याँरे पदधूलि, हइ' कुतूहली, सबेइ धरिल शिरे॥२७१॥
अपूर्व विकार, नयने सु-धार, हुँकार गर्जन शुनि।
हासिया हासिया, श्रीभुज तुलिया, बले 'हरि हरि'-वाणी॥२७२॥
मदन-सुन्दर, गौर-कलेवर, दिव्य वास परिधान।
चाँचर-चिकुरे, माला मनोहरे, येन देखि पाँच वाण॥२७३॥
चन्दन-चर्चित, श्रीअंग शोभित, गले दोले वनमाला।
ढुलिया पड़ये, प्रेमे थिर नहे, आनन्दे शचीर वाला॥२७४॥
काम-शरासन, भ्रूयुग-पत्तन, भाले मलयज-बिन्दु।
मुकुता-दशन, श्रीयुत वदन, प्रकृति करुणासिन्धु॥२७५॥
क्षणे शत शत, विकार अद्भुत, कत करिव निश्चय।
अश्रु, कम्प, घर्म, पुलक वैवर्ण्य, ना जानि कतेक हय॥२७६॥
त्रिभंग हइया, कभु दाँडाइया, अंगुले मुरली वा'य।
जिनि' मत्त गज, चलइ सहज, देखि' नयन जुड़ाय॥२७७॥

अति–मनोहर, यज्ञ–सूत्र–वर, सदय हृदये शोभे।
ए बुझि अनन्त, हइ, गुणवन्त, रहिला परश–लोभे॥२७८॥
नित्यानन्द–चाँद, माधव–नन्दन, शोभा करे दुइ–पाशे।
यत प्रिय–गण, करये कीर्तन, सबा' चाहि' चाहि' हासे॥२७९॥
याँहार कीर्तन, करि' अनुक्षण, शिव 'दिगम्बर भोला।
से प्रभु विहरे, नगरे, नगरे करिया कीर्तन–खेला॥२८०॥
ये करये वेश, ये अंग, ये केश, कमला लालसा करे।
से प्रभु धूलाय, गड़ागड़ि याय, प्रति नगरे नगरे॥२८१॥
लक्ष कोटि दीपे, चाँदेर आलोके, ना जानि कि भेल सुखे।
सकल संसार, 'हरि' बहि आर, ना बोलइ का'रो मुखे॥२८२॥

(२७१–२८२) प० अनु०— जगत् के ईश्वर विश्वम्भर भागीरथी के किनारे-किनारे नृत्य कर रहे हैं। सभी आनन्द से उनके चरणों की धूल अपने मस्तक पर धारण कर रहे हैं। प्रभु के नेत्रों से सुन्दर धारा बह रही है। साथ-साथ अपूर्व सात्विक विकारों-सहित उनकी हुँकार और उनका गर्जन सुनाई दे रहा है। श्रीभुजाओं को ऊपर उठाते हुये प्रभु हँस-हँसकर 'हरि-हरि' कह रहे हैं। मदन के समान सुन्दर गौर कलेवर-स्वरूप प्रभु दिव्य वस्त्र पहने हुये हैं। उनके घुँघराले केश मनोहर माला से सज्जित हैं। सब कुछ मिलाकर पंचशर जैसे दिखाई देते हैं। उनका शोभायुक्त श्रीअंग चन्दन से चर्चित है और उनके गले में वनमाला हिल-डुल रही है। प्रेम से अस्थिर प्रभु श्रीशचीनन्दन आनन्द से भूमि पर गिर-गिर पड़ते हैं। प्रभु के भ्रू-युगल काम-शरासन के समान हैं। उनके ललाट पर मलयज (चन्दन) की बिन्दी शोभा पा रही है। प्रभु के दाँत मोती-से दमक रहे हैं, उनके मुख की शोभा बड़ी आकर्षक है और स्वभाव से वे करुणा के सागर हैं। क्षण-भर में सौ-सौ अद्‌भुत विकार जो उनमे दिखाई दे जाते हैं, उनका वर्णन मैं कैसे करूँ! अश्रु, कम्प, स्वेद, पुलक, वैवर्ण्य न जाने कितने भाव उनमें संचारित हो रहे हैं। कभी त्रिभंग भंगिमा में खड़े होकर वे उंगली से मुरली बजाते हैं। उनका सहज चलना मत्त हाथी की चाल-जैसा सुन्दर हैं उसे देखकर नेत्रों को बड़ा सुख मिलता है। उनके सदय हृदय पर अति मनोहर सुन्दर यज्ञसूत्र शोभायमान है। उसे देखने से ऐसा लगता है, जैसे अनन्तदेव प्रभु का स्पर्श पाने के लोभ से गुणवन्त (सूत्र-स्वरूप) होकर विराजमान हैं। नित्यानन्द चन्द्र और माधव-नन्दन प्रभु के दोनों ओर शोभायमान हैं। जितने भी प्रियजन हैं, वे सब कीर्तन कर रहे हैं और प्रभु सबकी ओर देख-देखकर हँस रहे हैं। अनुक्षण जिनका यशोगान करते हुये शिव 'दिगम्बर भोले' बने रहते हैं, वे ही प्रभु नगर-नगर में कीर्तन-लीला प्रदर्शन-पूर्वक विहार कर रहे हैं। जिनके वेश, जिनके अंग और जिनके केशों के दर्शन के लिए कमला भी लालायित रहती हैं, वे ही प्रभु नगर-नगर में धूल में लोट-पोट हो रहे हैं। चन्द्रमा के आलोक में, लाखों-करोड़ों प्रज्जवलित दीपों के बीच न जाने सभी को कैसा सुख मिला होगा। सारे संसार में किसी के भी मुख से 'हरि' के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकल रहा था।

(२७३) गौः भाः—पाँचबाण—पंचशर-१. सन्मोहन, २. उन्मादन, ३. शोषण, ४. तापन एवं ५.स्तम्भन— येय पाँच कामदेव के बाण हैं।

(२७३) तथ्य—"द्रवणं शोषणं वाणं तापनं मोहनाभिधम्। उन्मादनंच कामस्य वांणाः पंच प्रकीर्त्तिताः॥ अर्थात् द्रवण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्मादन— ये कामदेव के पाँच बाण कहे गये हैं।

(२७९) गौः भाः– माधव-नन्दन माधव

मिश्र के पुत्र श्रीगदाधर पण्डित।

प्रभु का नृत्य देखकर सभी का
आनन्द एवं कीर्तन–

अपूर्व कौतुक, देखि' सर्व लोक, आनन्दे हइल भोर।
सबेइ सबार, चाहिया वदन, बले भाइ "हरि बोल"॥२८३॥

(२८३) प० अनु०— उस अपूर्व कौतुक को देखकर सभी लोग आनन्द में विभोर हो गये। सभी एक दूसरे के मुख की ओर देखकर कर रहे थे,—भाई! "हरि बोल"॥

भावावेश में प्रभु के नीचे गिरने के
समय नित्यानन्द–द्वारा रक्षा–

प्रभुर आनन्द, जाने नित्यानन्द, यखन येरूप हय।
पड़िवार वेले, दुइ बाहु मेले, येन अंगे प्रभु रय॥२८४॥

(२८४) प० अनु०—जब जिस रूप में प्रभु आनन्द प्रकाश करते थे, उसके बारे में नित्यानन्द सब कुछ जानते थे। नीचे गिरने के समय नित्यानन्द दोनों बाहुओं को फैला देते थे, ताकि प्रभु नीचे गिर न जाए, उनके अंग में ही रहें।

(२८४) गौः भाः—बेले—काल में, समय में।

संकीर्तन के समय प्रभु की बहुविध लीला–

नित्यानन्द धरि', वीरासन करि', क्षणे महाप्रभु वैसे।
वाम कक्षे तालि, दिया कुतूहली।
'हरि हरि' बलि' हासे॥२८५॥
अकपटे क्षणे, कहये आपने, "मुञि देव नारायण।
कंसासुर मारि', मुञि से कंसारि, बलि छलिया वामन॥२८६॥
सेतु–बन्ध करि', रावण संहारि', मुञि से राघव–राय॥"
करिया हुँकार, तत्त्व आपनार, कहि' चारिदिगे चाय॥२८७॥
के बुझे से तत्त्व, अचिन्त्य महत्त्व, सेइ क्षणे कहे आन।
दन्ते तृण धरि', 'प्रभु प्रभु' बलि', मागये भकित–दान॥२८८॥
यखन ये करे, गौरांग–सुन्दरे, सब मनोहर लीला।
आपन वदने, आपन चरणे, अंगुलि धरिया खेला॥२८९॥

(२८५–२८९) प० अनु०—क्षण में नित्यानन्द को पकड़कर महाप्रभु वीरासन में विराजित होते थे और कुतूहलवश वाम कक्ष पर ताली देते हुये 'हरि–हरि' बोलकर हँसते थे। क्षण में निष्कपट भाव से अपने आप कहते थे, "मैं नारायण देव हूँ। कंसासुर को मारकर मैं कंसारि हुआ हूँ। मै। बलि को छलने वाला वामन हूँ। मैं ही वह रघुवंशतिलक (राम) हूँ, जिन्होंने सेतु–बन्धन–पूर्वक रावण का संहार किया था।" हुँकार–प्रदान–पूर्वक अपने तत्त्व की जानकारी देते हुये प्रभु चारों दिशाओं की ओर देख रहे थे। उस तत्त्व को, जिनका अचिन्त्य महत्व है, कौन समझ सकता है! उसी क्षण प्रभु ने कुछ और कहा और दाँतों में तृण लेकर 'प्रभु प्रभु' कहते हुये वे भक्ति का दान माँगने लगे। जब भी, जो कुछ भी गौरांगसुन्दर ने किया, वे सब उनकी मनोहर लीलाएँ थीं। कभी–कभी वे अपने मुख में अपने चरणों की उँगलियाँ रख कर खेला करते थे।

(२८५) गौः भाः—तथ्य—वीरासन—"वीरानां साधकानामासन्।" साधकों के बैठने का एक विशेष आसन। इस आसन में बैठकर साधकरगण साधना किया करते हैं। एकपादमथैकस्मिन् विन्यसयेदूरूसंस्थितम्। इतरस्मिन् तथा पश्चाद् वीरासनमिदं विदुः॥–(घेरण्ड संहिता)। पूजादि का संकल्प 'वीरासन' में बैठकर किया जाता है। वाम ऊरु के ऊपर दक्षिण जंघा को स्थापित करके बैठने को 'वीरासन' कहते हैं।

श्रीनवद्वीप में श्वेतद्वीप की धारणा जैवज्ञान
के सहारे प्रकाश का समय–

वैकुण्ठ–ईश्वर, प्रभु विश्वम्भर, सब नवद्वीप नाचे।
श्वेतद्वीप–नाम, नवद्वीप–ग्राम, वेदे प्रकाशिव पाछे॥२९०॥

(२९०) प० अनु०—वैकुण्ठ के ईश्वर प्रभु विश्वम्भर सारे नवद्वीप में नृत्य कर रहे थे। नवद्वीप नाम का गाँव ही श्वेतद्वीप नाम का धाम है। आगे चलकरवेद इसे प्रकाशित करेगा।

(२९०) गौः भाः— सब नवद्वीप—नवद्वीप के सभी स्थानों में अर्थात्, (१) अन्तर्द्वीप, (२) सीमन्तद्वीप, (३) गोद्रुम द्वीप, (४) मध्यद्वीप, (५) कोलद्वीप, (६) ऋतुद्वीप, (७) जह्नुद्वीप (८) मोदद्रुमद्वीप एवं (९) रुद्रद्वीप में।

श्रीगौरसुन्दर केवल विश्वेश्वर नहीं हैं। वे वैकुण्ठ के भी ईश्वर हैं अर्थात् मायिक विश्व एवं मायातीत वैकुण्ठ, दोनों के प्रभु हैं।

श्वेतद्वीप—श्रीगौर–विचरण–लीला–क्षेत्र ही 'नवद्वीप' या 'श्वेतद्वीप' है, यह प्रतीति आध्यक्षिक मानवज्ञान में निरस्त होकर वास्तव ज्ञान में उदित होती है। आध्यक्षिकगण भोगमयी धारणावश धाम का स्वरूप उपलब्ध करने में असमर्थ हैं। परन्तु जिस समय उन्हें धाम का स्वरूप समझ में आता है, उस समय वे जान सकते हैं कि, 'श्रीधाम' पशुपक्षिमानव आदि की भोग्यभूमि नहीं है।

'वेद'–शब्द का चार प्रकार का अर्थ है। श्रीनवद्वीप, जो केवल जड़–भूमिका में स्थित नहीं है, वह पांचरात्रिक चतुर्व्यूह–विचार में दिखाया गया है। एकपाद विभूति में जो परिदृश्यमान जगत् दिखाई देता है, वह त्रिपाद–विभूमिवर्जित होने के कारण चतुष्पाद विभूमि के साथ समान धारणा–विशिष्ट नहीं है। पंचतत्त्व के विचार से जो सब धर्म प्रतिष्ठित हैं, उनके ही चार प्रकार के प्रकाशक व्यूहतत्त्व में अवस्थित हैं। फिर, तीन पुरुषावतार के तुरीय वस्तु में से विभिन्न सागरों में परिदृष्ट होने पर चतुर्विध प्रकाश का ज्ञान मिलता है। इस पुरुषावतार–तत्त्व के अभिज्ञान से ही वैकुण्ठ–गोलोक और श्वेतद्वीप की धारणा प्राप्त की जा सकती है। भगवत्–प्राकट्य के ४०० या ४०५ अथवा ४४४ सालों के बाद श्रीनवद्वीप धाम में श्वेतद्वीपत्व की धारणा जैवज्ञान (जीव के ज्ञान) में प्रकाशित हुई है।

नानावाद्यन्त्रों के सहयोग से कीर्तन के समय प्रभु की अवस्थिति–

मन्दिरा, मृदंग, करताल, शंख, ना जानि कतेक बाजे।
महा–हरिध्वनि, चतुर्दिके शुनि, माझे शोभे द्विजराजे॥२९१॥

(२९१) प० अनु०—मन्दिरा (मँजीरा), मृदंग, करताल, शंख इत्यादि न जाने कितने वाद्य बज रहे थे। चारों ओर महा–हरिध्वनि सुनाई दे रही थी और बीच में द्विजराज श्रीगौरसुन्दर शोभा पा रहे थे।

ग्रन्थकार के द्वारा सपरिकर श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीनाम काा जयगान–

जय जय जय, नगर–कीर्तन, जय विश्वम्भर–नृत्य।
विंश–पद गीत, चैतन्य–चरित, जय चैतन्येर भृत्य॥२९२॥
येइ–दिके चाय, विश्वम्भर राय, सेइ दिके प्रेमे भासे।
श्रीकृष्ण–चैतन्य, ठाकुर नित्यानन्द, गाय वृन्दावन–दासे॥२९३॥

(२९२–२९३) प० अनु०—नगर–कीर्तन और विश्वम्भर प्रभु के नृत्य की जय हो, जय हो, जय हो। बीस पदों में चैतन्यचरित कीर्तित हुआ हैं चैतन्य के भृत्यों की जय हो। जिस दिशा की ओर विश्वम्भर राय देखते थे, वही दिशा के लोग प्रेम में बहने लगे। श्रीकृष्णचैतन्य और ठाकुर नित्यानन्द का स्मरण करके वृन्दावन दास उनका यशोगान कर रहे हैं।

(२९२) गौः भाः—विंश–पद गीत—"नाचे विश्वम्भर" से शुरू करके "माझे शोभे द्वि

जराज" तक के बीस पदों वाला गीत।

वैकुण्ठ शब्द चतुर्दश भुवन, विरजा, ब्रह्मलोक एवं ब्रह्माण्ड के कर्णपटह का भेदन करके एकायन-पद्धति में अवस्थिति-

हेन-महारंगे प्रति नगरे नगर।
कीर्तन करेन सर्व लोकेर ईश्वर॥२९४॥
अविच्छिन्न हरिध्वनि सर्वलोके करे।
ब्रह्माण्ड भेदिया ध्वनि याय वैकुण्ठेरे॥२९५॥

(२९४-२९५) प० अनु०—सर्वलोक के ईश्वर ने इस प्रकार महान आनन्द में प्रति नगर में कीर्तन किया। सभी लोग अविच्छिन्न रूप से हरिध्वनि कर रहे थे। वह ध्वनि ब्रह्माण्ड को भेद करके वैकुण्ठ में पहुँच गई।

(२९५) गौः भाः—बद्धजीवों के कर्णरन्ध्रों में जो सब शब्द ध्वनित होते हैं, उनका विचार चतुर्दश भुवन के अन्तर्गत राज्यों में अवस्थित है। वैकुण्ठ शब्द ने इस चतुर्दश भुवन, विरजा एवं ब्रह्मलोक को भेद करके एवं ब्रह्माण्ड के कर्णपटल का छेदन करके एकायन पद्धति (एकमात्र भगवान् के चरणों में अवस्था करते हैं।

वैकुण्ठध्वनि सुनकर वैकुण्ठ-नाथका उल्लास-

शुनिया वैकुण्ठ नाथ श्रीगौर-सुन्दर।
उल्लासे उठये प्रभु आकाश-उपर।।२९६॥
मत्तसिंह जिनि' कत तरंग प्रभुर।
देखिते सबार हर्ष बाड़ये प्रचुर॥२९७॥

(२९६-२९७) प० अनु०—उस कीर्तन ध्वनि को सुनकर वैकुण्ठनाथ श्रीगौरसुन्दर उल्लास में आकाश के ऊपर ऊँचे उछल जाते हैं। मत्तसिंह से भी बढ़कर उन प्रभु में कितनी ही आनन्द-तरंगें दिखाई दे रहीं थीं। उन्हें देखकर सभी लोग उत्तरोत्तर प्रचुर हर्ष का अनुभव कर रहे थे।

महाप्रभु के नृत्य कीर्तन का पथ-

गंगा-तीरे तीरे पथ आछे नदीयाय।
आगे सेइ पथे नाचि याय गौर-राय॥२९८॥
'आपनार घाटे' आगे बहु नृत्य करि'।
तबे 'माधायेर घाटे' गेला गौरहरि॥२९९॥
'वारकोणा-घाटे,' 'नगरिया-घाटे' गिया।
'गंगार नगर, दिया गेला 'सिमुलिया'॥३००॥

(२९८-३००) प० अनु०—नदीया में गंगा के किनारे-किनारे पथ वर्तमान था। आगे-आगे नृत्य करते हुये गौरसुन्दर उस मार्ग से जा रहे थे। पहले 'अपने घाट' पर बहुत नृत्य करने के पश्चात् गौरहरि 'माधाइ के घाट' पर आये। फिर 'बारकोणा घाट' एवं 'नगरिया घाट' होकर 'गंगानगर' होकर 'सिमुलिया' पहुँच गये।

(२९८) गौः भाः—श्रीधाम-मायापुर के योगपीठ के कतिपय भक्तों के हृदय में श्रीगौरसुन्दर के प्राकट्य काल का गंगाखात (गंगा का तट) विद्यमान था। इस समय उस खात (गर्त) का गर्भावशेष देखने को मिलता है। उस खात से होते हुये पश्चिमोत्तर दिशा में गंगा प्रवाहित होती थी। उसी रास्ते से महाप्रभु कीर्तन-वाणी को साथ लेकर चलने लगे।

(२९९) गौः भाः—अपने घर से दक्षिण दिशा की ओर कुछ दूर जाने पर ही प्रभु का अपने 'घर का घाट' स्थित था। वहाँ से कुछ दूर 'माधाइ का घाट' विद्यमान था।

(३००) गौः भाः—'माधाइ के घाट' के आगे 'वारकोणा—घाट' स्थित था। उसके बाद ही नगरवासियों का प्रशस्त घाट विद्यमान था। उसी के आगे गंगानगर—पल्ली थी। कुछ दिनों पहले गंगानगर पल्ली वर्तमान 'भारुइडांगा' नाम की पल्ली के पास स्थित था। गंगानगर से

उत्तरपूर्व कोण में लगभग आधे कोस पर प्राचीन 'सिमुलिया'–गाँव विद्यमान था। वर्तमान 'छाड़ि गंगार' नाम का खात—जिसे 'गुड़ गुड़े' कहते हैं। उस स्थान पर गंगा प्रवाहित होती थी, इसलिए उस सिमुलिया गाँव का कुछ अंश टूट गया है एवं वही इस समय 'कृष्ण नगर' है, जो समय–समय पर 'चरकाष्ठशाली', 'तारणवास', कड़ियाटि' इत्यादि नामों से कथित होता रहा है। अभी 'खालसेपाड़ा'– नाम के स्थान पर एक वटवृक्ष के नीचे सीमन्तिनी देवी का स्थान बना हुआ है। प्रभु के समय में 'सिमुलिया' यहाँ से कुछ हजार हाथ दूर पर अवस्थित था।

अगणित मशालों की रोशनी से दिन–रात का निर्णय करने में लोगों की भ्रान्ति–

लक्ष कोटि महादीप चतुर्द्दिके ज्वले।
लक्ष कोटि लोक चतुर्द्दिके 'हरि' बले॥३०१॥
चन्द्रेर आलोके अति अपूर्व देखिते।
दिवा–निशि एको केहो नारे निश्चयिते॥३०२॥

(३०१–३०२) प० अनु०—लाखों–करोड़ों महादीप (मशालों) चारों ओर जल रहे थे। लाखों–करोड़ों लोग चारों ओर 'हरि–हरि' बोल रहे थे। चन्द्रमा के आलोक में सब कुछ अपूर्व दिखाई दे रहा था। दिन है, या रात, इसका निर्णय कोई नहीं क पा रहा था।

सभी के द्वारा पर मंगलाचार एवं देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि–

सकल दुयार शोभा करे सुमंगले।
रम्भा, पूर्ण–घट, आम्रसार, दीप ज्वले॥३०३॥
अन्तरीक्षे थाकि' यत स्वर्गदेव–गण।
चम्पक, मल्लिका–पुष्प करे वारिषण॥३०४॥

(३०३–३०४) प० अनु०—सभी द्वारों पर पंगलाचार का दृश्य था। वहाँ कदली, पूर्ण–घट और आम्रसार एवं जलते हुये दीपक शोभा पा रहे थे। स्वर्ग के देवतागण आकाश में स्थित होकर चम्पक, मल्लिका आदि पुष्पों की वर्षा कर रहे थे।

वसुमती की जिह्वा के साथ पुष्पों की तुलना।

पुष्पवृष्टि हैल नवद्वीप–वसुमती।
पुष्प–रूपे जिह्वा से करिल उन्नति॥३०५॥
सुकुमार–पदाम्बुज प्रभुर जानिया।
जिह्वा प्रकाशिला देवी पुष्प–रूप हइया॥३०६॥

(३०५–३०६) प० अनु०—पुष्पवृष्टि होने से नवद्वीप की पृथ्वी मानों पुष्पों के रूप में अपनी जिह्वा को प्रकाशित कर रही थी। प्रभु के चरण–कमलों को सुकोमल देखकर देवी पृथ्वी ने पुष्पों के रूप में अपनी जिह्वा को प्रकाशित किया था।

(३०६) गौः भाः—वसुमती (पृथ्वी) की जिह्वा के साथ पुष्पों की तुलना हुई है। देवी वसुमती ने पुष्परूपिणी अपनी जिह्वा को प्रकाशित इसलिए किया है कि इसके ऊपर श्रीगौरसुन्दर के सुकोमल पादपद्म सुखपूर्वक विचरण कर सकें। इसलिए पथ पुष्पों से शोभित हुआा है।

भक्तों के साथ गौरचन्द्र के नृत्य में नगरवासियों की हर्षोल्लास के साथ विविध क्रियाएँ एवं उक्तियाँ–

आगे नाचे श्रीवास, अद्वैत, हरिदास।
पाछे नाचे गौरचन्द्र सकल–प्रकाश॥३०७॥
ये–नगरे प्रवेश करये गौर–राय।
गृह–वृत्ति परिहरि' सर्व लोक–धाय॥३०८॥
देखिया से चाँदमुख जगत जीवन।
दण्डवत् हइया पड़ये सर्वजन॥३०९॥

नारीगण हुलाहुलि दिया बले 'हरि'।
स्वामी, पुत्र, गृह, वित्त, सकल पासरि' ॥३१०॥
अर्वुद अर्वुद नगरिया नदीयार।
कृष्ण–रसे–उन्माद हइल सबाकार॥३११॥
केह नाचे, केह गाय, केह बले 'हरि'।
केह गड़ागड़ि याय आपना' पासरि' ॥३१२॥
केह केह नानामत वाद्य वा'य मुखे।
केह का'रो कान्धे उठे परानन्द–सुखे।३१३॥
केह का'रो चरण धरिया पड़ि' कान्दे।
केह का'रो चरण आपन केशे बान्धे॥३१४॥
केह दण्डवत् हय काहारे चरणे।
केह कोलाकुलि वा करये का'रो सने॥३१५॥
केह बले,—''मुञि एइ निमाइ पण्डित।
जगत उद्धार लागि' हइनु विदित॥''३१६॥
केह बले,—''आमि श्वेतद्वीपेर वैष्णव।''
केह बले,–''आमि वैकुण्ठेर पारिषद॥''३१७॥
केह बले,–''एबे काजी बेटा गेल कोथा।
लागालि पाइले आजि चूर्ण करों माथा॥''३१८॥
पाषण्डी धरिते केह रड़ दिया याय।
''धर धर एइ पाप–पाषण्डी पालय॥''३१९॥
वृक्षेर उपरे गिया केह केह चड़े।
सुखे पुनः पुनः गिया लाफ दिया पड़े॥३२०॥
पाषण्डीरे क्रोध करि' केह भाँगे डाल।
केह बले,–''एइ मुञि पाषण्डीर काल॥''३२१॥
अलौकिक शब्द केह उच्च करि' बले।
यम राजा बान्धिया जानिते केह चले॥३२२॥
सेइखाने थाकि' बले,–''आरे यमदूत!
बल गिया यथा आछे तोर सूर्य–सुत॥३२३॥
वैकुण्ठ–नायक अवतरि' शची–घरे।
आपनि कीर्तन करे नगरे नगरे॥३२४॥
ये नाम प्रभावे तोर धर्मराजयम।
ये नामे तरिल अजामिल विप्राधम॥३२५॥
हेन नाम सर्व मुखे प्रभु बोलाइला।
उच्चारणे शक्ति नाहि से ताहा शुनिला॥३२६॥
प्राणी–मात्र का'रे यदि करे अधिकार।
मोर दोष नाहि तबे करिव संहार॥३२७॥
झाट कह गिया यथा आछे चित्रगुप्त।
पापीर लिखन सब झाट कर लुप्त॥३२८॥
ये–नाम प्रभावे तीर्थ–राज वाराणसी।
याहा गाय शुद्ध–सत्त्व श्वेतद्वीप–वासी॥३२९॥
सर्व–वन्द्य महेश्वर ये–नाम प्रभावे।
हेन नाम सर्वलोके शुने, बले एबे॥३३०॥
हेन नाम लओ, छाड़, सर्व अपकार।
भज विश्वम्भर, नहे करिमु संहार॥''३३१॥
आर जन सब दिशे रड़ दिया याय।
''धर धर कोथा काजी भांडिया पलाय॥३३२॥
कृष्णेर कीर्तन ये ये पापी नाहि माने।
कोथा गेल से–सकल पाषण्डी एखने॥''३३३॥
माटिते किलाय केह 'पाषण्डी' बलिया।
'हरि' बलि' बुले पुनः हुँकार करिया॥३३४॥
एइमत कृष्णेर उन्मादे सर्वक्षण।
किवा बले, किवा करे, नाहिक स्मरण॥३३५॥

(३०७–३३५) प० अनु०–आगे–आगे श्रीवास, अद्वैत और हरिदास नृत्य कर रहे थे। पीछे सर्वप्रकाश- स्वरूप गौरचन्द नृत्य कर रहे थे। जिस नगर में गौरांग–सुन्दर प्रवेश करते थे, वहाँ के सभी लोग घर के कामकाज को छोड़कर उनको देखने के लिए भाग खड़े होते थे और जगत् के जीवन श्रीगौरसुन्दर के उस चन्द्रमुख की शोभा को देखकर सब दण्डवत् होकर पड़ जाते थें स्वामी, पुत्र, गृह, वित्त—सब कुछ भूलकर नारियाँ 'उलुध्वनि' कर 'हरि' बोल रही थीं। नदीया के सभी अर्बुद–अर्बुद नागरिकवृन्द कृष्ण–रस में उन्मत्त हो रहे थे। कोई नृत्य कर रहा था।

कोई गा रहा था, कोई 'हरि–हरि' बोल रहा था, कोई अपने आप को भूलकर भूमि के ऊपर लोट–पोट हो रहा था। कोई–कोई मुख से नाना–प्रकार के वाद्य (बाजे) बजा रहा था। परमानन्द सुख में कोई किसी के कन्धों पर चढ़ जाता था तो कोई किसी के चरण पकड़कर क्रन्दन कर रहा था। कोई किसी के चरणों कोा अपने केशों में बाँध रहा था तो कोई किसी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम निवेदन कर रहा था तथा कोई किसी का आलिंगन कर रहा था। कोई कहता,—"मैं श्वेतद्वीप का वैष्णव हूँ।" कोई कहता,–"मैं वैकुण्ठ का पार्षद हूँ।" कोई कहता,–"अब काजी कहाँ छिप गया। कहीं मिल जाये, तो सिर तोड़कर रख दूँ।" "पकड़ लो, पकड़ लो, ये पापी–पाखण्डी भागे जा रहे हैं"। ऐसा कहकर कोई पाखण्डियों को पकड़ने के लिए दौड़ रहा था। कोई–कोई आनन्द में वृक्ष के ऊपर चढ़ जता और बारम्बार ऐसा करते हुये नीचे छलाँग लगा देता। पाखण्डियों के प्रति क्रोध का प्रकाशन करते हुये कोई वृक्ष की डाल ही तोड़ डालता था। कोई कहता,–"मैं स्वयं पाखण्डियों का कालस्वरूप हूँ॥" कोई ऊँचे स्वर में अलौकिक शब्द को उच्चारण कर रहा था। कोई यमराज को बन्दी बनाकर ले जाने के लिए उद्यत होता, फिर वहीं खड़े रहकर कहता,–"अरे ओ यमदूत! जहाँ सुर्यपुत्र (धर्मराज) विराजमान हैं, वहाँ जाकर कहो कि, वैकुण्ठ के अधिपति शची के घर में अवतरित होकर अपने आप नगर–नगर में कीर्तन कर रहे हैं। जिस नाम के प्रभाव से तेरे यम, 'धर्मराज' बने बैठे हैं, जिस नाम से ब्राह्मणाधम अजामिल ने त्राण लाभ किया है, प्रभु के प्रभाव से अब उसी नाम का उच्चारण सभी कर रहे हैं। इस नाम का उच्चारण करने की शक्ति जिसमें नहीं है उसे भी यह नाम सुनाई दे रहा हैं इस कारण यदि तुम किसी भी प्राणी के ऊपर अपना अधिकार दिखाओगे, तो मेरा दोष नहीं। मैं तुम्हारा संहार कर डालूँगा। तुरन्त चित्रगुप्त के पास चले जाओ और उन्हें पापियों के पापों का हिसाब मिटा देने के लिए कह दो। जिस नाम के प्रभाव से वाराणसी 'तीर्थराज' बना है, शुद्ध–सत्त्व श्वेतद्वीप–वासी जिस नाम का कीर्तन करते हैं, जिस नाम के प्रभाव के महेश्वर शिव सबके वन्दनीय हैं, उसी नाम को सब लोग सुन रहे हैं, और बोल रहे हैं। और बोल रहे हैं। सभी प्रकार का अपकार छोड़ कर इस नाम को ग्रहण करो। विश्वम्भर का भजन किया करो, नहीं तो संहार कर डालूँगा।" कोई एक व्यक्ति हरेक दिशा की ओर दौड़ रहा था और कह रहा था,–"पकड़ लो, काजी को पकड़ लो! हमें धोखा देकर न जाने कहाँ भाग गया है। जिन पापियों ने कृष्णकीर्तन को नहीं माना, वे सब पाखण डीअब कहाँ हैं?" किसी ने 'पाख्याण्डी' कहकर मिट्टी के ऊपर घूँसा मारे, फिर 'हरि' बोलकर हुँकार करते हुये इधर–उधर घूमने लगा। इस प्रकार से अनुक्षण कृष्णरस में उन्मत्त होकर वे सब क्या कह रहे थे, क्या कर रहे थे, उन्हें कुछ भी स्मरण नहीं था।

(३२५) गौः भाः—हरिनाम के प्रभाव से ही यम, 'धर्मराज' की संज्ञा से अभिहित हुये हैं। विप्राधम अजामिल ने नामाभास के प्रभाव से ही यमराज के हाथों से उद्धार पाया था, अर्थात् अजामिल के नामाभास– ग्रहण करने के कारण ही यमराज ने उन्हें छोड़ दिया था।

(३२८) गौः भाः—यमें की संख्या–चतुर्दश हैं इनमें से चित्रगुप्त अन्यतम हैं, वे मानवों के पाप–पुण्य आदि का लेखा–जोखा रखते

हैं। नाम-ग्रहण करने के समय कोई व्यक्ति उन्मत्त होकर कह रहा था कि, चित्रगुप्त यम ने पाप-परायण मनुष्योंके बारे मेंजो कुछ भी लिपिबद्ध कर रखा है, उस सबको अब वे नाम-ग्रहण के प्रभाव से मिटा डालें।

(३२९) गौः भाः—पंचवदन-महादेव वारणासी में अवस्थान-पूर्वक भगवन्नाम ग्रहण करते रहते हें; इस कारण ही वाराणसी प्रधान तीर्थराज अर्थात् प्रधान सारस्वतक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। श्वेतद्वीप-वासी शुद्धसत्त्व-सम्पन्न भगवद् पार्षद-समूह मिश्रित गुणों से बहुत दूर अवस्थित रहकर श्रीनाम के प्रभाव का कीर्तन करते रहते हैं।

(३३०) गौः भाः—महादेव—सभी देवताओं के वन्दनीय हैं। वे जिस नाम का कीर्तन करते हैं, उसे उनके पास से सुनने के पश्चात् देवता, मनुष्य-आदि उस नाम का कीर्तन करते हैं। विष्णुस्वामी सम्प्रदाय उस आदि पुरुष रुद्र से खीष्ट-जन्म के २०० वर्ष पहले मादुरा प्रदेश में प्रादुर्भूत हुये थे। उनकी ही धारा में 'नामकौमुदी' के लेखक श्रीलक्ष्मीधर एवं उनके भाई श्रीधरस्वामिपाद ने शुद्धाद्वैत-विचार परक रचनाओं के द्वारा श्रीनाम के प्रभाव का वर्णन किया है। श्रीसनातन गोस्वामी-प्रभु ने 'श्रीनामकौमुदी'-आदि ग्रन्थों के प्रति अतिशय सम्मान प्रदर्शित किया है। 'प्रेमाकर' आदि के वंशधरगण वल्लभाचार्य के कुलगुरु के सूत्र में श्रीनाम के अचिन्त्य प्रभाव को उपलब्ध करने में असफल रहे हैं।

(३३१) सभी प्रकार के अपकारों को त्याग देने की भावना हृदय में उत्पन्न होते ही नामग्रहण में प्रवृत्ति होती है। जगत-पालक के रूप में विश्वम्भर गौरसुन्दर ने नामदान करके जगत् का पालन किया है जो लोग नामभजन के विद्वेषी हैं, उन लोगों की कुविचार—प्रणाली को श्रीगौरसुन्दर एवं उनके सेवक धर्मराज सुष्ठुभाव से विनष्ट करने के लिए अग्रसर होते हैं।

(३३२) गौः भाः—भांडिया-धोखा देकर।

(३३३) गौः भाः—भगवद्विमुखता-प्रबल होने से पापी लोक कृष्ण-कीर्तन रूप औषध ग्रहण करने की इच्छा नहीं रखते हैं। भगवान् से अलग देवताओं को भगवान् के समान समझने के कारण कीर्तन- विरोधीजन को 'पाखण्डी' कहते हें कृष्ण-कीर्तन के साथ अन्य देवताओं के नामोच्चारण को समान समझना ही पाखण्डियों का स्वभाव है।

कृष्णनाम-वैकुण्ठनाम है; अन्यान्यदेवगण—मायिक हैं, उनके नाम-नामी देवताओं के साथ भेदधर्मयुक्त हैं; इसलिए 'कृष्ण' एवं कृष्ण से अलग देवताओं के नामों को कृष्णनाम के साथ समानबुद्धि दशविध नामापराधों में अन्यतम अपराध है।

नगरवासियों को कृष्णप्रेम में उन्मत्त होते देखकर पाखण्डियो में जलन-

नगरिया सकलेर उन्माद देखिया।
मरये पाषण्डी सब ज्वलिया पुड़िया॥३३६॥
सकल पाषण्डी मेलि' गेण' मने मने।
''गोसाञि करेन काजी आइसे एखने॥३३७॥
कोथा याय रंग ढंग, कोथा याय डाक।
कोथा याय नाट-गीत, कोथा याय जाँक॥३३८॥
कोथा याय कला-पाँता, घट-आम्रसार।
एक सकल वचनेर शोधि तबे धार॥३३९॥
यत देख महाताप देउटि सकल।
यत देख हेर सब भावक-मण्डल॥३४०॥
गण्डगोल शुनिया आइसे काजी यबे।
सबार गंगाय झाँप देखिवाङ तबे॥''३४१॥
केह बले,-''मुञि तबे निकटे थाकिया।

नगरिया–सब देङ गलाय बान्धिया॥''३४२॥
केह बले,–''चल याइ काजीरे कहित।''
केह बले,–''युक्ति नहे एमन करिते॥''३४३॥
केह बले,–''भाइ सब, सक युक्ति आछे।
सबे रड़ दिया याइ भावकेर काछे॥३४४॥
'आइसे करिया काजी' वचन तोलाइ।
तबे एक जनाओ ना रहिव ता'र ठाञि॥''३४५॥
एइ मत पाषण्डी आपना' खाय मने।
चैतन्येर गण मत्त श्रीहरिकीर्तने॥३४६॥

(३३६–३४६) प० अनु०—नगरवासियों का कृष्ण उन्माद भाव देखकर सभी पाखण्डी जलने लगे। सभी पाखण्डी एक साथ मिलकर मन–ही–मन सोच रहे थे, "गोसाईं ऐसा कर रहे हैं, अभी काजी जब आ जायेगा, तब ये रंग–ढंग, ये पुकार, ये नृत्य–गीत, ये चमक–दमक, ये केला–गाढ़ना, ये आम्रसार घट कहीं भी न रह पायेंगे। तब हम इनके सब वचनों का बदला उतारेंगे। जितनी सारी भावुक–मण्डलियाँ नजर आ रही हैं; जब हल्लागुल्ला सुनकर काजी आयेगा, तब ये सभी लोग गंगा में छलाँग लगाते हुये दिखाई देंगे।" कोई कहता,–"उस समय मैं पास रहकर नगरवासियों के गले में रस्सी बांधकर देता जाऊँगा।" कोई कहता,–"चलो, चलकर काजी को बताते हैं।" कोई कहता,–"ऐसा करना उचित नहीं होगा।" कोई कहता,–"भाइयों! चलो, एक युक्ति करते हैं। हमसब दौड़कर भावुकों के पास आकर कहेंगे कि, 'काजी आ रहा है।' फिर देखना, कोई भी आदमी दिखाई नहीं देगा।" इस प्रकार से पाखण्डी लोग मन के लड्डू खा रहे थे और उधर चैतन्य के सभी भक्त श्रीहरिकीर्तन में मत्त थे।

(३३६) गौः भाः—नाम–भजन–प्रणाली एवं नाम–कीर्तन के विरोधी भाव रखने वाले पाखण्डीगण सदैव हिंसा की जलन से जलते रहते थे और दसस प्रकार की मृत्युओं में–से किसी–न–किसी प्रकार की मृत्यु का आवाहन करते रहते थे। वे सब ईर्ष्यान्वित होकर अपने गात्रदाह के निवारण के लिए भगवद्भक्तों के प्रति विद्वेष करते रहते थे।

(३४०) गौः भाः—देउटी–[ही–दीवट,–दीपपात्र] प्रदीप।

श्रीचैतन्यभक्तों की आंगशोभा–

सबार अंगेते शोभे श्रीचन्दन–माला।
आनन्दे गायेन 'कृष्ण' सबे हइ' भोला॥३४७॥

(३४७) प० अनु०—सभी भक्तों के अंग श्रीचन्दन और मालाओं से सुशोभित थे। आनन्द में मुग्ध होकर वे सब 'कृष्ण'–कीर्तन कर रहे थे।

तत्कालीन सिमुलिया की स्थिति–

नदीयार एकान्ते नगर 'सिमुलिया'।
नाचिते नाचिते प्रभु उत्तरिला गिया॥३४८॥

(३४८) प० अनु०—नदीया के एक प्रान्त में 'सिमुलिया' नाम का नगर वर्तमान है। नृत्य करते–करते प्रभु वहाँ जा पहुँचे।

(३४८) गौः भाः—'गंगानगर' से उत्तरपूर्व दिशा की ओर जाने वाले मार्ग पर आधा कोस चलने के बाद जो 'सिमुलिया'–नगर मिलता था, वह अब नदीयानगर के एक प्रान्त में अवस्थित है।

भक्तों के मुख से हरिकीर्तन–श्रवण से प्रभु में सात्विक विकार–

अनन्त अनुर्वद–मुखे हरिध्वनि शुनि'।
हुँकार करिया नाचे द्विज–कुल–मणि॥३४९॥
से कमल–नयने वा कत आछे जल।

कतेक वा धारा बहे परम निर्मल॥३५०॥
कम्प–भावे उठे पड़े अन्तरीक्ष हैते।
कान्दे नित्यानन्द प्रभु ना पारे धरिते॥३५१।
शेषे वा ये हय मूर्च्छा आनन्द–सहित।
प्रहरेको धातु नाहि, सबे चमकित॥३५२॥

(३४९–३५२) प० अनु०—अनन्त अर्बुद मुखों से हरिध्वनि सुनकर द्विज–कुलमणि श्रीगौरसुन्दर हुँकार–पूर्वक नृत्य कर रहे थे। उन कमल–नयनों में न जाने कितना जल विद्यमान था, न जाने कितनी परम निर्मल धाराएँ वहाँ से बह रही थीं।

काँपते हुये प्रभु कभी आकाशा से नीचे गिर जाते थे और फिर ऊपर उठते थे। उन्हें ऊपर–नीचे उठते–गिरते देखकर नित्यानन्द प्रभु क्रन्दन करने लगे, किन्तु वे प्रभु को संभाल नहीं पा रहे थे। अन्त में आनन्द–पूर्वक प्रभु मूर्च्छित हो गये। उस समय एक प्रहर तक उनके श्रीअंग में धातु नहीं रहा। यह देखकर सभी अचम्भे में रह गये।

प्रभु का अपूर्व भावावेश देखकर विभिन्न लोगों के द्वारा बहुविध उक्तियाँ–

एइ मत अपूर्व देखिया सर्व जन।
सबेइ बलेन,–''ए पुरुष—नारायण॥''३५३॥
केह बले,–''नारद, प्रह्लाद, शुक येन।''
केह बले,–''ये–ये हउ, मनुष्य नहेन॥''३५४॥
एइ मत बले, येन या'र अनुभव।
अत्यन्त तार्किक बले,–''परम वैष्णव॥''३५५॥
बाह्य नाहि प्रभुर परम–भक्ति–रसे।
बाहु तुलि' 'हरि–बोल हरि–बोल' घोषे॥३५६॥
श्रीमुखेर वचन शुनिया एकेवारे।
सर्व लोके 'हरि हरि' बले उच्चैःस्वरे॥३५७॥

(३५३–३५७) प० अनु०—इस प्रकार की अपूर्वता को देखकर सभी कहने लगे,–"ये पुरुष तो नारायण हैं।" किसी ने कहा,–"नारद, प्रह्लाद अथवा शुकदेव जैसे लगते हैं।" किसी ने कहा,–"कोई भी हो, पर मनुष्य नहीं हैं।" इस प्रकार वे सब अपने अनुभव के अनुसार बातें कर रहे थे। अत्यन्त तार्किक बोला,– "ये परम वैष्णव हैं।" परम भक्तिरस के कारण प्रभु का बाह्य ज्ञान नहीं था। फिर बाहुओं कोा ऊपर उठाकर प्रभु ने 'हरिबोल' 'हरिबोल' की घोषणा की। एकबार प्रभु के श्रीमुख से यह वचन सुनकर सभी लोग उच्च स्वर में 'हरि–हरि' कहने लगे।

काजी के घर की ओर प्रभु का अग्रसर होना–

गौरांग–सुन्दर याय ये–दिने नाचिया।
सेइ दिगे सर्व लोक चलये धाइया॥३५८॥
काजीर बाड़ीर पथ धरिला ठाकुर।
वाद्य–कोलाहल काजी शुनये प्रचुर॥३५९॥

(३५८–३५९) प० अनु०—नृत्य करते–करते गौरांग–सुन्दर जिस ओर अग्रसर होते थे, उसी दिशा की ओर चलने लगे तो काजी को भी प्रचुर वाद्य–कोलाहल सुनाई देने लगा।

(३५९) गौः भाः—'सिमुलिया'–गाँव से वर्तमान 'वामन–पुकुर' नाम के गाँव में आने का पथ; जहाँ काजी का पुराना मकान वर्तमान था, वह मकान अभी भी है।

वाद्य–कोलाहल सुनकर उसके बारे में अनुसंधान के लिए काजी के द्वारा अनुचर–भेजना–

काजी बले,–''शुन भाइ, कि गीत–वानद!
किबा का'र विभा, किबा भूतेर कीर्तन॥३६०॥
मोर बोल लंघिया के करे हिन्दुयानि।
झाट जानि' आओ, तबे चलिव आपनि॥''३६१॥
काजीर आदेशे तबे अनुचर धाय।

संघट्ट देखिया आपनार शास्त्र गाय॥३६२॥
अनन्त अर्बुद लोके बले,–''काजी मार''।
डरे पलाइल तबे काजीर किंकर॥३६३॥

(३६०–३६३) प० अनु०—काजी ने कहा, "सुनो भाई सुनो, यह कैसा गीत–वादन है। यह क्या किसी की शादी हो रही है या भूतों का कीर्तन हो रहा है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके यह कौन हिन्दूयानि चल रहा है। जाकर जल्दी पता लगाओ, तब मैं स्वयं जाऊँगा।" काजी का आदेश सुनकर अनुर दौड़ पड़े, फिर लोगों की भीड़ को देखकर अपना शास्त्र गाने लगे। अनन्त अर्बुद लोग कह रहे थे,–"काजी को मार डालो।" यह सुनकर काजी के किंकर डर के मारे भाग खड़े हुये।

(३६१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर की कीर्तन–वाहिनी की आवाज सुनकर अनुसंधानार्थ काजी ने लोगों को भेजा। उसका सोचना थाा कि,–"उस प्रकार का कोलाहल या तो किसी विवाह आदि के वाद्यों का है या कोई आमोद–प्रमोद का गोलमाल है। उसने कहा,–"मैंने हिन्दुओं को कीर्तन बन्द करने का आदेश प्रदान किया है; मेरे आदेश का उल्लंघन करते हुये यदि कोई 'हिन्दूयानि' कीर्तन करेगा, तो उसका समाचार मिलने–मात्र से मैं स्वयं जाकर उसे बन्द करवा दूँगा।"

अनुचरों–द्वारा काजी के निकट प्रभु के आगमन की सूचना–

रड़ दिया काजीरे कहिल झाट गिया।
''कि कर' चलह झाट याइ पलाइया॥३६४॥
कोटि कोटि लोक संगे निमाइ–आचार्य।
साजिया आइसे आजि किवा करे कार्य॥३६५॥
लाखे लाखे महाताप दीप सब ज्वले।
लक्ष कोटि लोक मेलि' हिन्दुयानि बले॥३६६॥
दुयारे दुयारे कला–घट–आम्रसार।
पुष्पमय पथ सब देखि नदीयार॥३६७॥
ना जानि कतेक खइ कड़ि फुल पड़े।
बाजन शुनिते दुइ श्रवण उपाड़े॥३६८॥
हेनमत नदीयार नगरे नगरे।
राजा आसितेओ केह एमन ना करे॥३६९॥
सब भावकेर बड़ निमाइ पण्डित।
सबे चले, से नाचिया याय येइ भित॥३७०॥
ये सकल नगरिया मारिल आमरा।
'आजि काजी मार' बलि' आइसे ताहारा॥३७१॥
एको ये हुँकार करे निमाइ–आचार्य।
सेइ से हिन्दूर भूत, ए ताहार कार्य॥''३७२॥
केह, बले,–''ए वामना एत कान्दे केन!
वामनेर दुइ चक्षे नदी बहे येन॥''३७३॥
केह बले,–''वामनेर के आछे कोथाय!
सेइ दुःखे काँदे, हेन बुझि ये सदाय॥''३७४॥
केह बले,–''वामन देखिते लागे भय।
गिलिते आइसे येन देखि कम्प हय॥''३७५॥

(३६४–३७५) प० अनु०—अनुचर दौड़ता हुआ तुरन्त काजी के पास आया और बोला, "क्या कर रहे हो, चलो, जल्दी भाग निकलें। करोड़ों लोगों को साथ लिये निमाइ–आचार्य सज्जित होकर आ रहे हैं। न जाने आज उन्हें क्या काम करना है। महाताप–स्वरूप लाखों दीप जल रहे हैं। लाखों–करोड़ों लोग एक साथ मिलकर हिन्दूयानि के नारे लगा रहे हैं। प्रत्येक द्वारा पर केला, घट और आम्रसार शोभित हैं। नदीया के सभी मार्ग फूलों से भरे हुये हैं। न जाने कितने खोई (खील) कोड़ी और फूल बिछे हुये हैं। ढेर सारे वाद्यों की आवाजें सुनने से दोनों कान उखड़े जा रहे हैं। राजा के आगमन पर भी कोई ऐसा नहीं करता होगा, जैसा इस समय

नदीया के नगर-नगर में हो रहा है। सभी भावुकों में निमाइ पण्डित सबसे बड़े हैं। वे जिस दिशा की ओर नृत्य करते हुये जाते हैं, सभी लोग उसी दिशा की ओर अग्रसर हो जाते हैं। जिन नगरवासियों को हमने पीटा है, वे ही नगरवासी आज 'काजी को मार डालो,' ऐसा नारा लगाते हुये इधर आ रहे हैं। अकेला निमाइ-आचार्य जो हुँकार करते हैं, वही हिन्दुओं का भूत है, यह सब उसी का काम है!!" कोई कहता,-"यह ब्राह्मण इतना रोता क्यों है! जैसे दोनों आँखों से नदी बह रही हो।" कोई कहता,-"इस ब्राह्मण का कोई प्रियजन कहीं होगा। लगता है, उसी दुःख से यह सदा रोता रहता है।" कोई कहता,-"ब्राह्मण को देखने से भय लगता है— जैसे निगलने के लिए आ रहा हो, देखकर कम्प होने लगता है"।

वाद्यों के कोलाहल को सुनकर विवाहार्थ निमाइ की यात्रा है, काजी की ऐसी धारणा-

काजी बले,-''हेन बुझि निमाइ पण्डित।
विहा करिवारे वा चलिला कोन भित॥३७६॥
एवा नहे, मोरे लंघि' हिन्दुयानि करे।
तबे जाति निमु आजि सबार नगरे॥''३७७॥
एइमत युक्ति काजी करे सर्व-गणे।
महावाद्य-कोलाहल शुनि ततक्षेण॥३७८॥

(३७६-३७८) प० अनु०—काजी बोला,-"ऐसा लगता है कि निमाइ पण्डित विवाह करने के लिए कहीं जा रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मेरे आदेश का उल्लंघन करके ये लोग हिन्दुयानि कर रहे हैं। यदि ऐसा हुआ, तो मैं आज सब नगरवासियों की जाति का हरण कर लूँगा।" इस प्रकार से काजी सबके साथ मिलकर योजना बनाने लगाा। उधर उसी समय महावाद्यों का कोलाहल सुनाई पड़ा।

(३७६) गौः भाः—विहा, विवाह।

प्रभु का काजीनगर में आगमन एवं करोड़ों कण्ठों से हरिध्वनि सुनकर यवनों का भयभीत हो जाना-

सर्वलोकचूड़ामणि प्रभु विश्वम्भर।
आइला नाचिया यथा काजीर नगर॥३७९॥
कोटि कोटि हरिध्वनि महा-कोलाहल।
स्वर्ग, मर्त्य, पातालादि पूरिल सकल॥३८०॥
शुनिया कम्पित काजी गण-सह धाय।
सर्प-भय येन भेक, इन्दुर पलाय॥३८१॥
पूरिल सकल स्थान विश्वम्भर-गणे।
भये पलाइते केह दिग् नाहिजाने॥३८२॥
माथार फेलिया पाग केह सेइ मेले।
अलक्षिते नाचये, अन्तरे प्राण हाले॥३८३॥
या'र दाड़ि आछे, सेइ हइया अधोमुख।
लाजे माथा नाहि तोले, डरे हाले बुक॥३८४॥
अनन्त अर्बुद लोक केवा का'रे चिने।
आपनार देह-मात्र केह नाहि जाने॥३८५॥
सबेइ नाचेन, सबे गायेन कौतुके।
ब्रह्माण्ड पूरिया 'हरि' बले सर्वलोके॥३८६॥

(३७९-३८६) प० अनु०—सर्वलोक-चूड़ामणि प्रभु विश्वम्भर नृत्य करते-करते काजी के नगर में आ पहुँचे। करोड़ों हरिध्वनियों के महा-कोलाहल से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल आदि लोक पूरी तरह परिपूर्ण हो गये। उसे सुनकर काजी भय के मारे अपने लोगों के साथ उसी तरह भागने लगे, जैसे सर्प के भय से मेढक और चूहे भागते हैं। विश्वम्भर के भक्तों के द्वारा सभी स्थान भर गये थे। किसी को भाग जाने का रास्ता ही नहीं मिल रहा था। कोई सिर की पगड़ी उतारकर उसी भीड़ में सम्मिलित होते हुये आँख बचाकर

नृत्य करने लगा, परन्तु भीतर ही भीतर काँप रहा था। जिसकी दाढ़ी थी,उसने मुँहनीचा कर लिया। शर्म से वह सिर ऊपर नहीं उठा रहा था, भय के मारे उसकी छाती काँप रही थी। अनन्त अर्बुद लोगों की भीड़ में कौन किसको पहचाने,–अपने शरीर के बारे में किसी को ध्यान नहीं था। सभी नाच रहे थे, सभी आनन्द से कीर्तन कर रहे थे। ब्रह्माण्ड–पूरित (भरकर) सभी लोग 'हरि–हरि' बोल रहे थे।

काजी के द्वारा पर प्रभु का आगमान एवं काजी को निर्यात करने के लिए ओदश–

आसिया काजीर द्वारे प्रभु विश्वम्भर।
क्रोधावेशे हुँकार करये बहुतर॥३८७॥
क्रोधे बले प्रभु—''आरे काजी बेटा कोथा।
झाट आन' धरिया काटिया फेल माथा॥३८८॥
निर्यवन करौं आजि सकल भुवन।
पूर्वे येन बध कैलुँ से कालयवन॥३८९॥
प्राण जञा कोथा काजी गेल दिया द्वारा।''
'घर भांग, भांग' प्रभु बले बार बार॥३९०॥
सर्व–भूत अन्तर्यामी श्रीशची–नन्दन।
आज्ञा लंघिवेक हेन आछे कोन् जन॥३९१॥

(३८७–३९१) प० अनु०—काजी के घर के सामने आकर प्रभु विश्वम्भर क्रोध के आवेश में बहुत हुँकार करने लगे। क्रोध में आकर प्रभु बोले,–"अरे! काजी कहाँ गया? जल्दी से उसे पकड़कर लाओ और उसका सिर काट डालो। आज सारे भुवन को निर्यवन (यवन रहित) कर दूँगा—पहले जैसे कालयवन का वध किया था, वैसे ही। जान बचाने के लिए द्वार बन्द करके काजी कहाँ भाग गया है?" प्रभु बारबार कहने लगे—"तोड़ डालो, घर को तोड़ डालो।" श्रीख–चीनन्दन सर्वभूतों के अन्तर्यामी स्वरूप हैं। ऐसा कौन था जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता।

प्रभु के आदेश से सभी के द्वारा काजी के घर के द्वार पर नानारूप से उपद्रव–

महामत्त सर्व लोक चैतन्येर रसे।
घरे उठिलेन सबे प्रभुर आदेशे॥३९२॥
केह घर भाँगे, केह भाँगने दुयार।
केह लाथि मारे, केह करये हुँकार॥३९३॥
आम्र–पनसेर डाल भांगि, केह फेले।
केह कदलीर वन भाँगि' 'हरि' बले॥३९४॥
पुष्पेर उद्याने लक्ष लक्ष लोक गिया।
उपाड़िया फेले सबस हुँकार करिया॥३९५॥
पुष्पेर सहित डाल छिंडिया छिंडिया।
'हरि' बलि' नाचे सब श्रुति–मूले दिया॥३९६
एकटि करिया पत्र सर्व लोके नितें।
किछु ना रहिल आर काजीर बाड़ीते॥३९७॥

(३९२–३९७) प० अनु०—चैतन्य के रस में महामत्त सभी प्रभु के आदेश से काजी के घर की ओर चल पड़े। कोई घर फोड़ने लगा, कोई द्वार तोड़ने लगा, कोई लात मारने लगा तो कोई हुँकार करने लगा। कुछ लोगों ने आम–कटहल आदि की डालियाँ तोड़कर फेंक दीं। कुछ ने 'हरि–हरि' बोलते हुये कदली वन को उजाड़ दिया। लाखों लोगोंने फूलवाड़ी में जाकर हुँकार करते हुये सब कुछ उखाड़कर फेंक दिया। फूलों की डालियाँ तोड़कर और उनसे अपने कर्णपुटों को सज्जित करके वे सब 'हरि' 'हरि' बोलते हुये नृत्य करने लगे। सभी लोगों ने वहाँ से एक–एक पत्ता लिया और उसी से काजी के घर में कुछ भी शेष न रहा।

काजी के घर में आग लगा देने के लिए प्रभु का आदेश एवं भक्तों के द्वारा गले में वस्त्र

डालकर प्रभु की क्रोधशान्ति-हेतु प्रार्थना-

भांगिलेन यत सब बाहिरेर घर।
प्रभु बले,-"अग्नि देह' बाड़ीर भितर॥३९८॥
पुड़िया मरुक सब-गणेर सहिते।
सर्व बाड़ी बेड़ि' अग्नि देह' चारि भिते॥३९९॥
देखों मोरे कि करे उहार नर-पति।
देखों आजि कोन् जने करे अव्याहति॥४००॥
यम, काल, मृत्यु— मोर सेवकेर दास।
मोर दृष्टि-पाते हय सबार प्रकाश॥४०१॥
संकीर्तन-आरम्भे मोहार अवतार।
कीर्तन-विरोधी पापी करिमु संहार॥४०२॥
सर्व पातकीओ यदि करये कीर्तन।
अवश्य ताहारे मुञि करिमु स्मरण॥४०३॥
तपस्वी, संन्यासी, ज्ञानी, योगी ये-ये जन।
संहारिमु यदि सब ना करे कीर्तन॥४०४॥
अग्नि देह' घरे सब ना करिह भय।
आजि सब यवनेर करिमु प्रलय॥"४०५॥
देखिया प्रभुर क्रोध सर्व भक्त-गण।
गलाय बाँधिया वस्त्र पड़िला तखन॥४०६॥
ऊर्द्धबाहु करिया सकल भक्तगण।
प्रभुर चरणे धरि' करे निवेदन॥४०७॥
"तोमार प्रधान अंश प्रभु संकर्षण।
ताँहार अकाले क्रोध ना हय कखन॥४०८॥
ये-काले हइवे सर्व सृष्टिर संहार।
सकर्षण क्रोधे हन रुद्र-अवतार॥४०९॥
ये रुद्र सकल सृष्टि क्षणेके संहारे।
शेषे तिहों आसि' मिले तोमार शरीरे॥४१०
अंशांशेर क्रोधो याँ'र सकल संहारे।
से तुमि करिले क्रोध कोन् जने तरे॥४११॥
'अक्रोध परमानन्द तुमि' वेदे गाय।
वेद-वाक्य प्रभु घुचाइते ना युयाय॥४१२॥
ब्रह्मादिओ तोमार क्रोधेर नहे पात्र।
सृष्टि-स्थित-प्रलय तोमार लीला-मात्र॥४१३॥
करिला तो काजीर अनेक अपनाम।
आर यदि घटे तबे संहारिह प्राण॥"४१४॥
"जय विश्वम्भर महाराज राजेश्वर।
जय सर्वलोक-नाथ श्रीगौर-सुन्दर॥४१५॥
जय जय अनन्त-शयन रमा-कान्त।"
बाहु तुलि' स्तुति करे सकल महान्त॥४१६॥

(३९८-४१६) प० अनु०—घर के बाहरी हिस्से को पूर्णरूप से नष्ट-भ्रष्ट कर देने के बाद प्रभु ने कहा,-"भवन के भीतर आग लगा दो। सब लोगों के साथ काजी को जलकर भस्म हो जाने दो। सारे भवन को चारों ओर से आग लगा दो। देखता हूँ, उसका राजा मेरा क्या कर लेता है। देखता हूँ, आज उसे कौन बचाता है। यम, काल और मृत्यु मेरे सेवक के भृत्य हैं। मेरे दृष्टिपात के कारण उन सबका प्रकाश होता हैं संकीर्तन आरंभ करने के लिए मेरा अवतार हुआ हैं कीर्तन-विरोधी पापियों का मैं संहार कर डालूँगा। सब प्रकार से पापी भी यदि मेरा कीर्तन करता है, तो मैं उसका स्मरण जरूर करता हूँ। जो- जो जन तपस्वी, संन्यासी, ज्ञान अथवा योगी हैं, वे भी यदि कीर्तन नहीं करते हैं तो उनका भी संहार करूँगा। भयरहित होकर सारे घर में आग लगा दो। आज सभी यवनों का विनाश कर दूँगा।" उस समय प्रभु का क्रोध देखकर सभी भक्तजन गले में वस्त्र बाँधरकर चरणों में पड़ गये। फिर बाहुओं को ऊपर उठाकर सभी भक्तवृन्द प्रभु के चरणों का स्पर्श करके निवेदन करने लगे—"प्रभु संकर्षण आपके प्रधान अंश हैं। असमय में कभी भी उनको क्रोध नहीं आता है। जिस समय सर्व-सृष्टि का संहार करना होता है, तभी संकर्षण क्रोध में रुद्र-अवतार धारण करते हैं।

जो रुद्रदेव सम्पूर्ण सृष्टि का क्षण में संहार कर देते हैं। जिनके अंशांश के क्रोध से सब कुछ विनष्ट हो जाता है, वे स्वयं ही यदि क्रुद्ध जो जाएंगे, तो कौन चबेगा। वेद कहते हैं, आप 'अक्रोध परमानन्द स्वरूप' हैं। हे प्रभो! वेद–वाक्य को अन्यथा करना उचित नहीं होगा। प्रभो! ब्रह्मादि भी आपके क्रोध के पात्र नहीं हैं। सृष्टि–स्थिति–प्रलय आपकी केवल लीलामात्र हैं। अब तो आप काजी का बहुत अपमान कर चुके हैं। फिर भी यदि वह ऐसा कुछ करे तो उसके प्राणों का संहार कर देना।" इसके बाद सभी महत्जन बाहुओं को ऊपर उठाकर स्तवन करने लगे, — "महाराज राजेश्वर विश्वम्भर की जय हो! सर्वलोक नाथ श्रीगौरसुन्दर की जय हो! शेषशायी परमाकान्त की जय हो, जय हो।"

(४०२–४०४) गौः भाः—संकीर्तन के प्रवर्तक महाप्रभु ने कहा कि, कीर्तन के विरोधी निर्जनताप्रिय ध्यान करने वाले को 'पापी' जानकर वे उनका संहार करे देंगे। सभी प्रकार के पाप करने वाले जीव भी यदि कीर्तन करेंगे, तो वे सभी भगवद्स्मृति–पथ में आ जायेंगे। तपस्या में रत एवं भोगों का परित्याग कर चुके यति, मुमुक्षु ज्ञानी, भगवत् सान्निध्य प्राप्त करने के इच्छुक योगी— यद्यपि जनसमाज में 'धार्मिक–साधु' के रूप में विख्यात हैं,— परन्तु वे भी यदि कीर्तन–विरोधी हैं और उच्च स्वर में भगवत्कीर्तन नहीं करते हैं तो महाप्रभु उनका भी विनाश करने के लिए प्रस्तुत हैं। श्रीश्रीजीव गोस्वामी प्रभु ने सप्तम स्कन्ध (५/२३) में प्रह्लादोक्ति की टीका में लिखा है, — "यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्तव्या, तदा कीर्तनाख्या भक्ति–संयोगेनैव कर्तव्या।" कीर्तन को छोड़कर कलि में अन्य किसी प्रकार की भक्ति का अनुष्ठान संभव नहीं है।

आजकल हम जिस विश्व में रहते हैं, वहाँ हरिकथा का कोई कीर्तन नहीं है, इसलिए लोक–हितकारी विश्वम्भरने हरिकीर्तन–सहित सब प्रकार से भगवत्–सेवा– विधान का उपदेश दिया है। नाम–कीर्तन के द्वारा ही वैकुण ठनाम की सेवा होती है। इसके अतिरिक्त जो सब अनुष्ठान दिखाई देते हैं, वे सब भगवद्–विमुखता की परिणति–मात्र हैं, उससे भक्तिलाभ की संभावना नहीं है। अन्याभिलाषा, कर्म एवं ज्ञानादि के उद्देश्य से विहित यावतीय अभिधये कर्म कभी भी 'केवला भक्ति' रूप शब्द सेस अभिहित नहीं किय जा सकते हैं। कीर्तनाख्या भक्ति के समर्थन में सभी साधन कीर्तन के आनुगत्य में अनुष्ठित होने कर्तव्य हैं।

भक्तवाक्यों से प्रभु के कोप की शान्ति एवं अन्यत्र विजय–

हासे महाप्रभु सर्वदासेर वचने।
'हरि' बलि' नृत्य–रसे चलिला तखने॥४१७॥
काजीरे करिया दण्ड सर्व–लोक–राय।
संकीर्तन–रसे सर्व–गणे नाचि' याय॥४१८॥
मृदंग मन्दिरा बाजे शंख करताल।
'रामकृष्ण जय–ध्वनि गोविन्द गोपाल॥'४१९॥
काजीर भांगिया घर सर्व–नगरिया।
महानन्दे 'हरि' बलि' यायेन नाचिया॥४२०॥
पाषण्डीर हइल परम चित्तभंग।
पाषण्डी विषाद भावे, वैष्णवेर रंग॥४२१॥
'' जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि वनमाली।''
गाय सब नगरिया दिया हाते तालि॥४२२॥
जय–कोलाहल प्रति नगरे नगरे।
भासये सकल लोक आनन्द–सागरे॥४२३॥
केवा कोन् दिगे नाचे, केवा गाय, वा'य।
हेन नाहि जानि केवा कोन् दिगे धाय॥४२४॥

आगे नृत्य करिया चलये भक्तगण।
शेषे चले महाप्रभु श्रीशची–नन्दन॥४२५॥
कीर्तनीया—ब्रह्मा, शिव, अनन्त आपनि।
नृत्य करे प्रभु वैष्णवेर चूड़ामणि॥४२६॥
इहाते सन्देह किछु ना करिह मने।
सेइ प्रभु कहियाछे कृपाय आपने॥४२७॥

(४१७–४२७) प० अनु०—सभी दासों का यह वचन सुनकर महाप्रभु हँसने लगे और 'हरि' बोलते हुये नृत्य के आनन्द में आगे चल पड़े। सभी लोगों के अधिपति महाप्रभु गौरसुन्दर काजी को दण्ड प्रदान करके संकीर्तन के आनन्द में 'हरि' बोलते एवं नृत्य करते चले जा रहे थे। इसे देखकर पाखण्डियों का दिल टूट गया। पाखण्डी दुःख अनुभव कर रहे थे, वैष्णव आनन्द में मस्त थे। हाथों से ताली बजा–बजाकर सभी नगरवासी "जय कृष्ण मुकुन्द मुरारि वनमाली" कहकर कीर्तन कर रहे थे। जयध्वनि का कोलाहल नगर–नगर में हो रहा था। सभी लोग आनन्द के सागर में बह रहे थे। कौन किस दिशा में नृत्य कर रहा है, कौन कीर्तन कर रहा है, कौन बाजा बजा रहा है, कौन किस दिशा की ओर जा रहा है, यह कोई नहीं जानता था। भक्तजन आगे–आगे नृत्य करते हुये चल रहे थे, पीछे–पीछे महाप्रभु श्रीशचीदनन्दन चल रहे थे। ब्रह्मा, शिव और स्वयं अनन्तदेव कीर्तनकारी के रूप में साथ दे रहे थे। वैष्णव–चूड़ामणि प्रभु नृत्य कर रहे थे। इस विषय में मन में कोई सन्देह मत रखना। स्वयं प्रभु ने कृपा पूर्वक इसके बारे में सब कुछ कह दिया है।

शंखवणिक् के नगर में प्रभु का प्रवेश एवं घर–घर में आनन्द का कोलाहल–

अनन्त अर्बुद लोक संगे विश्वम्भर।
प्रवेश करिला शंख–वणिक–नगर॥४२८॥
शंखवणिकेर पुरे उठिल आनन्द।
'हरि' बलि' बाजाय मृदंग, घन्टा, शंख॥४२९॥
पुष्पमय पथे नाचि' चले विश्वम्भर।
चतुर्दिके ज्वले दीप परम सुन्दर॥४३०॥
से चन्द्रेर शोभा किवा कहिवारे पारि।
याहाते कीर्तन करे गौरांग श्रीहरि॥४३१॥
प्रति द्वारे पूर्णकुम्भ रम्भा आम्रसार।
नारीगणे 'हरि' बलि देय जयकार॥४३२॥

(४२८–४३२) प० अनु०—अनन्त अर्बुद लोगों के साथ विश्वम्भर ने शंखवणिक् के नगर में प्रवेश किया। शंखवणिक्–पुर में आनन्द की धूम मच गईध। 'हरि' बोलते हुये सभी मृदंग, घण्टा और शंख बजा रहे थे। फूलों से सजाये गये मार्ग पर विश्वम्भर नृत्य करते हुये चल रहे थे। चारों ओर परम सुन्दर दीप जल रहे थे। उस चन्द्रमा की शोभा का क्या वर्णन करूँ, जिसके आलोक में गौरांग श्रीहरि कीर्तन करते चल रहे थे। द्वार–द्वार पर पूर्णकुंभ, रम्भा (केला) और आम्रसार शोभा पा रहे थे नारियाँ 'हरि' बोलकर जयध वनि कर रही थीं।

(४२८) गौः भाः—काजी के संकीर्तन–विरोधी अभियान को दमन करने के बाद भगवान् श्रीगौरसुन्दर कीर्तन–वाहिनी को लेकर निकटवर्ती शंखणिक् के नगर में उपस्थित हुये।

तन्तुवाय की पल्ली में प्रभु का प्रवेश एवं वहाँ मंगलध्वनि–

एइमत सकल नगरे शोभा करे।
आइला ठाकुर तन्तुवायेर नगरे॥४३३॥
उठिल मंगल–ध्वनि जय–कोलाहल।
तन्तुवाय–सब हैला आनन्दे विह्वल॥४३४॥
नाचे सब–नगरिया दिया करतालि।

''हरि बल मुकुन्द गोपाल वनमाली॥''४३५॥

(४३३–४३५) प० अनु०—इस प्रकार सब नगरों में शोभायमान होकर ठाकुर तन्तुवायपल्ली (जुलाहा के मोहल्ले) में पधारे। ठाकुर के वहाँ प्रवेश करते ही जय कोलाहल के साथ मंगल ध्वनि होने लगी। हाथों से ताली बजा–बजाकर सभी नगरवासी "हरि बोल मुकुन्द गोपाल वनमाली" कहकर कीर्तन एवं नृत्य करने लगे।

(४३३) गौः भाः—'शंखवणिक्–नगर' से प्रभु तन्तुवाय–पल्ली जुलाहे के मोहल्ला) में आकर उपस्थित हुये । तन्तुवाय–पल्ली अभी भी वर्तमान है।

श्रीधर के घर में प्रभु का आगमन एवं टूटे–फूटे लौहपात्र में–से जलपान–

सर्व–मुखे 'हरि'–नाम शुनि' प्रभु हासे।
नाचाया चलिला प्रभ श्रीधरेर वासे॥४३६॥
भाँगा एक घर मात्र श्रीधरेर वास।
उत्तरिला गिया प्रभु ताँहार आवास॥४३७॥
सबे एक लौह–पात्र आछये दुयारे।
कत ठाँइ तालि, ताहा चोरेओ ना हरे॥४३८॥
नृत्य करे महाप्रभु श्रीधर–अंगने।
जलपूर्ण पात्र प्रभु देखिला आपने॥४३९॥
भक्तप्रेम बुझाइते श्रीशची–नन्दन।
लौह–पात्र तुलि' लइलेन ततक्षण॥४४०॥
जल पिये महाप्रभु सुखे आपनार।
का'र् शक्ति आछे ताहा 'नय' करिवपर॥४४१॥

(४३६–४४१) प० अनु०—सभी के मुख से 'हरिनाम' सुनकर प्रभु हँस रहे थे। फिर नृत्य करते हुये प्रभु श्रीधर के घर पहुँचे। एक टूटे–फूटे घर में श्रीधर रहते थे। प्रभु उनके घर उपस्थित हुये। वहाँ द्वार पर एक लोहे का पात्र पड़ा था। वह जीर्ण लौहपात्र ऐसी स्थिति में था कि, किसी चोर ने भी उसे नहीं चुराया। श्रीधर के आँगन में नृत्य करते समय महाप्रभु ने उस जलपूर्ण पात्र को देखा। भक्तप्रेम समझाने के लिए श्रीशचीनन्दन ने उस समय उस जलपूर्ण लौहपात्र को उठा लिया। फिर सुख पूर्वक महाप्रभु ने उसमें से जल पीया। उनको मना करने की शक्ति किसमें थी?

(४३६) गौः भाः—तन्तुवाय–पल्ली से श्रीगौरसुन्दर श्रीधर के आँगन में गये।

दरिद्रता के कारण प्रभु यथोचित सेवा में असमर्थ श्रीधर की पूर्च्छा–

'मरिलुँ मरिलुँ' बलि' डाकये श्रीधर।
''मोरे संहारिते से आइला मोर घर॥''४४२॥
बलिया मूर्च्छित हैला सुकृति श्रीधर।
प्रभु बले,–''शुद्ध मोर आजि कलेवर॥४४३॥

(४४२–४४३) प० अनु०—'अरे मैं मर गया, मैं मर गया' ऐसा कहकर श्रीधर शोर मचाने लगे। "मेरा संहार करने के लिए ही (प्रभु) मेरे घर आये हुये हैं।" इतना कहकर सुकृतिवान् श्रीधर मूर्च्छित हो गये। प्रभु ने कहा,—"आज मेरा शरीर शुद्ध हो गया।

(४४०–४४२) गौः भाः—श्रीधर के जीर्ण लौहपात्र में से महाप्रभु ने परम आनन्द के साथ जलपान किया। दरिद्र श्रीधर गौरसुन्दर को अयाचित सेवा ग्रहण करते हुये देखकर अपनी निर्धनता के कारण भाग्य को दोष देतेहुये कहने लगे,–"श्रीगौरसुन्दर के योग्य संभाषण मुझसे नहीं हो पाया, इस कारण मुझे मार डालने के लिए ही, मुझे दुःख देने के लिए ही महाप्रभु ने बलपूर्वक टूटे–फूटे लौपात्र में से जलपान किया है।"

प्रभु–द्वारा अपने श्रीमुख से भक्त के घर में जलपान का फल कीर्तन–

आजि मोर भक्ति हैल कृष्णेर चरणे।
श्रीधरेर जल पान करिलाँ यखन॥४४४॥
एखने से 'विष्णु-भक्ति' हइल आमार।
कहिते कहते पड़े नयनेर धार॥''४४५॥
'वैष्णवेर जल-पाने विष्णु-भक्ति हय।'
सबारे बुझाय प्रभु गौरांग सदय॥४४६॥

(४४४-४४६) प० अनु०—"श्रीधर का जल पीने से आज कृष्ण के चरणों में मेरी भक्ति का उदय हुआ है। अभी-अभी मुझे 'विष्णुभक्ति' की प्राप्ति हुई है।" ऐसा कहते-कहते प्रभु के नेत्रों से जलधारा बहने लगी। दयावान् महाप्रभु ने सबको यह शिक्षा प्रदान की है कि, 'वैष्णव के जलपान से विष्णुभक्ति प्राप्त होती है।'

(४४४) गौः भाः-श्रीधर का वाक्य सुनकर श्रीगौरसुन्दर ने कहा,-श्रीधर के जीर्ण जलपात्र में से जलपान करने के कारण मुझमें कृष्णसेवा-वृत्ति उन्मेषित हुई है, फलस्वरूप कृष्णविस्मृति दूर हो चुकी है। एवं बाहरी जगत् में सुखनासुधान-रहित यह शरीर भगवत् सेवा में प्रतिष्ठित हो जाने के कारण शोधित हो गया है। जनार्द्दन-भावग्राही हैं, वे जड़ जगत् के ऐश्वर्य के द्वारा सेवित होने के बदले जीवों के निष्कपट हृदय की सेवा स्वीकार करते हैं।

(४४६) गौः भाः—"गृह्णयाद् वैष्णवाज्जलम,"-जिस जल को वैष्णव ग्रहण करके अवशेष के रूप में रखते हैं, उस जल को पीने से विष्णुभक्ति उन्मेषित होती है। अकिंचन वैष्णव के अन्य सभी द्रव्यसमूह को तो साधारण लोग 'धन' समझते हैं और अकिंचित्कार मूल्यहीन जल उन्हें किसी अनादर की वस्तु के रूप में दिखाई देता है।

तथाहि (पद्मपुराण आदि खण्ड ३१/११२)-

प्रार्थयेद्वैश्णवस्यान्नं प्रयत्नेन विचक्षणः।
सर्व-पापविशुद्धर्थं तदभावे जलं पिबेत्॥४४७॥

(४४७) अन्वयः—विचक्षणः (पण्डितः जनः) प्रयत्नेन (प्रकृष्टरूपेन यत्नेन) सर्वपापविशुद्धर्थं (सर्वपापविशुद्धि-निमित्तं) वैष्णवस्यान्नं (वेष्णवेन श्रीभगवते अर्पितं यद्व वैष्णव-भुक्तावशेषं अन्नं) प्रार्थयेत्; तदभावे (तदप्राप्ते सति) जलं (वैष्णवपानवशेषं तत्पादस्पृष्टं वा) पिबेत्।

अनुवाद—पण्डित व्यक्ति को सर्वपाप विशुद्धि के निमित्त प्रकृष्टरूप से यत्न के साथ वैष्णव के समक्ष भगवत्-प्रसाद (वैष्णव के द्वारा निवेदित) अथवा वैष्णव के भुक्तावशेष अन्न के लिए प्रार्थना करना कर्तव्य है। उसके न मिलने पर कम से कम वैष्णव का उच्छिष्ट जल अथवा उनका चरण-प्रक्षलित जल पीना उचित है।

प्रभु का भक्तवात्सल्य देखकर भक्तों का आनन्द-क्रन्दन-

भक्त-वात्सल्य देखि' सर्व भक्त-गण।
सवार उठिला महा-आनन्द-क्रन्दन॥४४८॥
नित्यानन्द गदाधर पड़िला कान्दिया।
अद्वैत-श्रीवास कान्दे भूमिते पड़िया॥४४९॥
कान्दे हरिदास, गंगादास, वक्रश्वर।
मुरारि, मुकुन्द कान्दे, श्रीचन्द्रशेखर॥४५०॥
गोविन्द, गोविन्दानन्द, श्रीगर्भ, श्रीमान।
कान्दे काशीश्वर, श्रीजगदानन्द, राम॥४५१॥
जगदीश, गोपीनाथ कान्देन नन्दन।
शुक्लाम्बर, गरुड़, कान्दये सर्वजन॥४५२॥
लक्ष कोटि लोक कान्दे शिरे दिया हाथ।
''कृष्ण रे ठाकुर मोर अनाथेर नाथ॥''४५३॥
कि हैल बलिते नारि श्रीधरेर वासे।
सर्व-भावे प्रेमभक्ति हइल प्रकाशे॥४५४॥

'कृष्ण' बलि' कान्दे सर्वजगत हरिषे।
संकल्प हइल सिद्धि, गौरचन्द्र हासे।४५५॥

(४४८–४५५) प० अनु०—भक्त के प्रति प्रभु की वत्सलता को देखेकर सभी भक्तवृन्द महा आनन्द में क्रन्दन करने लगे। नित्यानन्द, गदाधर, अद्वैत और श्रीवास भूमि के ऊपर लोट–पोट होते हुये क्रन्दन कर रहे थे। हरिदास, गंगादास, वक्रेश्वर, मुरिार, मुकुन्द, श्रीचन्द्रशेखर, गोविन्द, गोविन्दानन्द, श्रीगर्भ, श्रीमान, काशीश्वर, श्रीजगदानन्द, नाम, जगदीश, गोपीनाथ, नन्दन आचार्य, शुक्लाम्बर, गरुड़— सभी क्रन्दन कर रहे थे और कह रहे थे,—"हे कृष्ण हे हमारे स्वामी, आप अनाथों के नाथ हैं।" श्रीधर के घर में जो कुछ भी हुआ, उसके बारे में मैं कुछ नहीं कर सकता। सभी प्रकार से वहाँ प्रेमभक्ति प्रकाशित हुई थी। सारा जगत् 'कृष्ण' कहकर हर्ष के साथ क्रन्दन कर रहा था। संकल्प–सिद्धि होते देखकर गौरचन्द्र हँस रहे थे।

जीर्ण जलपात्र में से जलपान कर प्रभु–द्वारा वैष्णवों को अप्राकृत विचार–सहित दर्शन करने की शिक्षा देना–

देख सब भाइ, एइ भक्तेर महिमा।
भक्त–वात्सल्येर प्रभु करिलेन सीमा॥४५६॥
लौह–जलपात्र, ता'ते बाहिरेर जल।
परम–आदरे पान कैलेन सकल॥४५७॥
परमार्थे पान–इच्छा हइल यखेन।
सुधामृत भक्त–जल हइल तखने॥४५८॥
'भक्ति' बुझाइते से एमत पात्रे जल।
परमार्थे वैष्णवेर सकल निर्मल॥४५९॥

(४५६–४५९) प० अनु०—देखो भाइयों, यही भक्त की महिमा है। प्रभु ने भी भक्त–वात्सल्य की सीमा का प्रदर्शन किया है। एक तो लोहे का जलपात्र, ऊपर से बाहर का जल, फिर भी परम आदर–सहित प्रभु ने सब पी लिया। परमार्थ में जब पीने की इच्छा हुई, तब भक्त का जल अमृत–रस जैसा हो गया। 'भक्त' कोा समझाने के लिए ही ऐसे पात्र में जल रखा गया हैं परमार्थ में वैष्णव का सब कुछ निर्मल होता है।

(४५७) गौः भाः—लोहा सबसे कम दाम की धातु है। इस पर भी वह लौहमय पात्र पहुविध व्यवहार के कारण जीर्ण हो गया था और फिर उसका उपयोग बाहरी कामकाज के लिए होता था। परमार्थ के विचार से चिन्मय–दर्शन में अचिद्–दर्शन के कारण दरिद्रता अथवा नीचता भागवद्भक्ति में रुकावट है, इसे दिखाने के लिए दरिद्र श्रीधर के द्वारा नाना प्रकार से परमम्त किये गये टूटे–फूटे लौह–जलपात्र में से जल पीकर प्रभु ने जगत् को यह शिक्षा प्रदान की है कि, अप्राकृत–दर्शन से आदर–सहित भक्तों को मर्यादा प्रदान करनी चाहिए।

दाम्भिक व्यक्तियों के बहुमूल्य द्रव्य की भी भगवान् के द्वारा उपेक्षा और भक्त के अति निकृष्ट द्रव्य का लबपूर्वक ग्रहण, इस विषय में दृष्टान्त–

दाम्भिकेर रत्नपात्र, दिव्य जलासने।
आछुक पिवार कार्य, ना देखे नयने॥४६०॥
ये से द्रव्य सेवकेर सर्वभावे खाय।
नैवेद्यादि विधिरओ अपेक्षा नाहि चाय॥४६१॥
अल्प द्रव्य दासेओ ना दिले बले खाय।
ता'र साक्षी ब्राह्मणेर खुद द्वारकाय॥४६२॥
अवशेषे सेवकेरे करे आत्मासत्
ता'र साक्षी वनवासे युधिष्ठिर–शाक॥४६३॥
सेवक कृष्णेर पिता, माता, पत्नी, भाई।

'दास' बइ कृष्णेर द्वितीय आर नाइ॥४६४॥
येरूप चिन्तये दासे सेइ रूप हय।
दासे कृष्णे करिवारे पारये विक्रय॥४६५॥
सेवकवत्सल प्रभु' चारि वेदे गाय।
सेवकेर स्थाने कृष्ण प्रकाशे सदाय॥४६६॥

(४६०–४६६) प० अनु०—दम्भी के रत्नजटि दिव्य जलपात्र में से जल पीना तो दूर की बात है, प्रभु उस ओर देखते भी नहीं; किन्तु सेवक का कुछ भी द्रव्य वे परम आदर–पूर्वक ग्रहण करते हैं। खाते समय वे नैवेद्या–आदि विधि क अपेक्षा भी नहीं करते हैं। अल्पमाजत्रा में द्रव्य होने के कारण दास–द्वारा प्रदान न करने पर भी वे बलपूर्वक छीनकर खाते हैं। द्वारका में सुदामा–ब्राह्मण की खुद (चावल की कनकी) इसका साक्षी है। अन्त में प्रभु सेवक को आत्मसात् कर लेते हैं। वनवास में प्रभु–द्वारा युधिष्ठिर का शाक ग्रहण करना इसका साक्षी हैं सेवक ही कृष्ण के पिता, माता, पत्नी, भाई सब कुछ होते हैं। 'दासों को छोड़कर कृष्ण वैसा ही रूप धारण कर लेते हैं। दास कृष्ण को बेच सकता है। चारों वेद 'सेवक–वत्सल' के रूप में प्रभु का कीर्तन करते हैं। सेवक के निकट कृष्ण सदैव स्वयं प्रकाशित रहते हैं।

(४६२) तथ्य—भाः १०/८१ अध्याय द्रष्टव्य है।

(४६३) तथ्य—महाभारत वनपर्व २६१—२६२ अः द्रष्टव्य हैं।

(४६०–४६५) गौः भाः—जड़जगत् में बहुविध उपादानों एवं अनेक द्रव्यों से सम्पन्न अनेक व्यक्तियों में कई बार दाम्भिकता आकर उपस्थित हो जाती है। 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं धनी हूँ, सेवा के लिए मैं बहुत से उपकरणों का संग्रह कर सकता हूँ, मैं बहुत भक्तिमान हूं,' 'श्रीधस्वामी जैसे वैष्णव मायावादी हैं', इत्यादि नाना प्रकार की कुविचार दाभिकता का आश्रय कर लेते हैं; किन्तु भागवान् श्रीगौरसुन्दर उन सब लोगों की ओर दृष्टपात भी नहीं करते हैं अथवा उनसे किसी सेवा की अभलाष भी नहीं रखते हैं। विश्रंभ संख्य, वात्सल्य एवं मधुर—रस के विषय भगवान् को जागतिक विचारों का 'गौरव' बाध्य करने में समर्थ नहीं होता हैं दरिद्र भक्त के द्वारा प्रदान की गई सामान्य वस्तु को भी भगवान् बलपूर्वक आदर–सहित ग्रहण करते हैं। परन्तु बहुत ही धनवान् दांभिक व्यक्ति के द्वारा मर्यादा–सहित प्रदान किए गये द्रव्य को भगवान् अस्वीकार करते हैं। द्वारका सुदामापुरी–निवासी (वर्तमान पोरबन्दर) सुदामा विप्र के द्वारा प्रदत्त अन्नकाण भगवान् ने आदर सहित ग्रहण किये थे। उसी प्रकार वनवास के समय युधिष्ठर के द्वारा प्रत्त वनशाक को भी भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत ही आदर के साथ ग्रहण किया था। सेव्यकृष्ण का पत्नी, पिता, माता, सखा, दास आदि सभी सेवक मात्र हैं। जो भगवान् की नित्यलीला के परिकरों में से हैं, उन सब सेवकों के सम्पत्ति रूप भागवान् की सेवा विभिन्न सेवकों के द्वारा विभिन्न रसों में विहित होती है।

कृष्णदास्य का सर्वश्रेष्ठत्व–

नयन भरिया देख दासेर प्रभाव।
हेन दास्य–भावे कृष्णे कर अनुराग॥४६७॥
अल्प हेन ना मानिह 'कृष्णदास'–नाम।
अल्प–भाग्ये 'दास' नाहि करे भगवान्॥४६८॥
बहु कोटि जन्म ये करिल निज–धर्म।
अहिंसाय अमायाय करे सर्व कर्म।।४६९॥
अहर्निश दास्यभावे ये करे प्रार्थन।
गंगा–लभ्य हय काले बलि' 'नारायण'॥४७०॥

तबे हय मुक्त–सर्वबन्धेर विनाश।
मुक्त हइले हय, सेइ गोविन्देर दास।।४७१॥
एइ व्याख्या करे भाष्यकारेर समाजे।
मुक्त–सब लीला–तनु करि' कृष्ण भजे॥४७२॥

(४६७–४७२) प० अनु०—नयन भरकर दास का प्रभाव देखिये और इस प्रकार के दास्य भाव से कृष्ण में अनुराग कीजिये। 'कृष्णदास'– जैसे नाम को अल्प मत समझियेगा। अल्प–भाग्यशाली को भगवान् अपना 'दास' नहीं बनाते हैं करोड़ों जन्मों तक जिसने अपने धर्म का पालन किया हो, अहिंसा और अमाया–सहित जिसने सर्वकर्म सम्पादित किये हों, दिनरात दास्यभाव के लिए जिसने प्रार्थना की हो, उसी को अन्तिम समय में 'नारायण' नाम उच्चारण करते हुये गंगा की प्राप्ति (मृत्य) होती है। तब जाकर वह मुक्त होताहै, मुकत होने से सभी बन्धनों का विनाश होता हैं मुक्तपुरूष ही गोविन्द का दास बन सकता है। नित्यमुक्त व्यक्ति ही लीलातनुधारी भगवान् की उपासना किया करते हैं। भाष्यकारों का समाज इसी प्रकार की व्याख्याएँ प्रस्तुत करता है।

(४६८) गौः भाः–जगत् के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति भगवत्—सेवा में तत्पर हैं। मायाबद्ध जीव इस बात को बिना समझे उच्चाकांक्षा के वशीभूत होकर भक्तिवर्जित विभिन्न अनुष्ठानों को 'साधना' समझते हैं एवं अन्त में उस प्रकार की साधना के फलस्वरूप उन लोगों को जो उन्नत आदर्श मिलता है, वह भगवत्—सेवा– विमुखता का अन्यतम निदर्शन होता है। जिस समय मानवों में सभी प्रकार की भगवत्–सेवा–प्रवृत्ति जागरित होती है, उस समय वे सार्वापेक्षा धन्य हो जाते हैं। भगवद्'भक्तगण सदैव लोगों के लिए सर्वोत्तम मंगल की भावना से 'कृष्ण में उनकी अनुराग वृद्धि हो जाये'—ऐसी शुभेच्छा का पोषण करते हैं। सेवा के द्वारा ही सेव्यवस्तु का प्रीति–विधान होता है। सेव्य के अभीष्ट–साधन में यत्न करने का नाम ही 'भक्ति' है। यह बोध परम सौभाग्यशाली व्यक्तियों के हृदय में ही प्रकाशित होता है। जो भाग्यहीन हैं, वे भगवत्–सेवा की उपादेयता नहीं समझ पाते हैं और इस कारण वे 'विदग्ध–ललाट' हैं, उन सब भाग्यहीन व्यक्तियों को भगवान् अपना दास्यत्व प्रदान नहीं करते हैं।

(४७०) गौः भाः—भगवान् के निकट 'सेवा' के लिए प्रार्थना करने से अन्त में मरण के समय 'नारायण'– शब्द के उच्चारण करने का एवं गंगाजल में निमज्जित होने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

(४७२) गौः भाः—सर्वज्ञ विष्णुस्वामी भाष्टकसासें में आदि पुरूष हैं। उन्होंने लिखा है, कि जीवगण माया से मुक्त होकर स्वाधीनभाव से लीलामयविग्रह भगवान् की नित्य सेवा करते हैं। लीलाविशेष ग्रहण के अलावा मानवों की नश्वर क्रिया में जो सेवा दिखाई देती है, वह क्षण भंगुर है। श्रीधरस्वामी पाद ने मूल भाष्यकार के वाक्य को श्रीमद्भागवत की अपनी टीका में उद्धृत किया है। कोई भी भाष्यकार जड़ जगत् में बद्ध नश्वर क्रियासमूह को 'भजन' नहीं मानता हे, परन्तु वे सभी नित्यलीलामय के स्वरूप विग्रह का आदर करते हैं।

तथाहि सर्वज्ञैभाष्यकृद्भिः–
(भा १०/८७/२१ श्लोक में श्रीधर–धृत सर्वज्ञ–भाष्यकार–व्याख्या–)

मुक्त अपि लीलया विग्रहं
कृत्वा भगवन्तं भजन्ते॥४७३॥

अतएव भक्त हय ईश्वर–समान।
भक्त–स्थाने पराभव माने' भगवान्॥४७४॥
अनन्त–ब्रह्माण्डे यत आछे स्तुतिमाला।
'भक्त'–हेन स्तुतिर ना धरे केह कला॥४७५॥
'दास'–नामे ब्रह्मा, शिव, हरिष सबार।
धरणी–धरेन्द्र चाहे दास–अधिकार॥४७६॥
ए सब ईश्वर–तुल्य स्वभावेइ भक्त।
तथापिह भक्त हइवारे अनुरक्त॥४७७॥

(४७३) अन्वयः–मुक्त (नित्यमुक्ता जनाः) अपि लीलय विग्रहं कृत्वा (भगवतासह लीलार्थं श्रीमूर्तिमन्तः सन्तः) भगवन्तं भजन्ते (सेव्यन्ते इति सर्वज्ञैः भाष्यकृद्भिः व्याख्यातम्)।

अनुवादः–नित्यमुक्तजन भी लीलातनुधारी भगवान् की उपासना करते हैं,- ऐसी व्याख्या सर्वज्ञ भाष्यकारों ने की है।

(४७४-४७७) प० अनु०— अतएव, भक्त ईश्वर के समान होते हैं भक्त के समक्ष भगवान् भी हार मान लेते हैं। अनन्त ब्रह्ममाण डों में जितनी भी स्तुतिमालाएँ हैं, उनमें से कोई भी 'भक्त'— जैसी स्तुति के अंश का अंश भी नहीं है। 'दास'- नाम से ब्रह्मा और शिव, सबको हर्ष प्राप्त होता है। धरणी-धरेन्द्र दास के अधिकार में स्थित होना चाहते हैं। ये सब ईश्वर के समान स्वाभाविक रूप से ही भक्त हैं, फिर भी भक्त बनने के लिए अनुरागयुक्त रहते हैं।

अद्वैत प्रभु का स्वरूप जानने में असमर्थ व्यक्तियों को उस विषय में विभिन्न धारणाएँ रखने के कारण दुःख की प्राप्ति-

हेन भक्त अद्वैतेर बलिते हरिषे।
पापी–सब दुःख पाय निज–कर्मदोषे॥४७८॥

(४७८) प० अनु०—हर्ष के साथ अद्वैत को भक्त के रूप में सम्बोधित करने में पापियों को अपने कर्मदोष के कारण दुःख प्राप्त होता है।

'भक्त' नाम से श्रीकृष्ण का सन्तोष-

कृष्णेर सन्तोष बड़ 'भक्त'–हेन नामे।
कृष्णचन्द्र बिने भक्त आर के वा जाने॥४७९॥

(४७९) प० अनु०–'भक्त' के नाम से कृष्ण को बड़ा सुख मिलता है। बिना कृष्णचन्द्र के भक्तों को और कौन पहचान सकता है?

'अहं ब्रह्मास्मि' अभिमानी पाखण्डी एवं स्वराट् पुरूषोत्तम स्वयं भगवान् के प्रभाव में तारतम्य-

उदर–भरण लागि' एबे पापी सब।
लओयाय 'ईश्वर आमि',–मूले जरद्गव॥४८०॥
गर्दभ–श्रृगाल–तुल्य शिष्यगण लइया।
केह बले,–''आमि रघुनाथ भाव' गिया''॥४८१॥
कुक्कुरेर भक्ष्य देह,— इहारे लइया।
बलये 'ईश्वर' विष्णु–माया–मुग्ध हइया॥४८२॥
सर्व–प्रभु गौरचन्द्र श्रीशची–नन्दन।
देख ताँर शक्ति एइ भरिया नयन॥४८३॥
इच्छा–मात्र कोटि कोटि समृद्ध हइल।
कत कोटि महादीप ज्वलिते लागिल॥४८४॥
के वा रोपिलेक कला प्रति–द्वारे–द्वारे।
के वा गाय, वा'य के वा, पुष्पवृष्टि करे॥४८५॥

(४८०–४८५) प० अनु०—सब पापी आजकल उदर-भरण के लिए 'मैं ईश्वर हूँ' ऐसा बोलते हैं, असल में वे सब बूढ़े बैल (महामूर्ख) हैं। गर्दभ-श्रृगालों के समान शिष्यों को लेकर कोई कहता है,-"मैं रघुनाथ हूँ"- इस प्रकार का चिन्तन करते रहो।" विष्णु-माया से मोहित होकर कुत्तों के भक्ष्य इस देह को लेकर वे अपने आपको 'ईश्वर' मानते हैं। गौरचन्द्र श्रीशचीनन्दन सबके प्रभु हैं। नयन भरकर उनकी शक्ति को देख लो। उनकी

इच्छामात्र से करोड़ों लोग एकत्रित हो जाते हैं। करोड़ों महादीप जलने लगते हैं। द्वार–द्वार पर कौन केला रोपित करता है, कौन गाता है, कौन बाजा बजाता है, कौन पुष्पवृष्टि करता है?

श्रीधर के जलपान से प्रभु–गोष्ठी–सहित प्रेमभाव से नृत्य–कीर्तन–

करिलेन मात्र श्रीधरेर जल–पान।
कि हइल ना जानि प्रेमेर अधिष्ठान॥४८६॥
भक्तवात्सल्य देखि' त्रिभुवन कान्दे।
भूमिते लोटाय केह केश नाहि बान्धे॥४८७॥
श्रीधर कान्दये तृण धरिया दशने।
उच्च करि' 'हरि' बले सजल नयने॥४८८॥
''कि जल करिल पान त्रिदशेर राय।''
नाचये श्रीधर, कान्दे, करे 'हाय हाय'॥४८९॥
भक्त–जल पान करि' प्रभु विश्वम्भर।
श्रीधर–अंगने नाचे वैकुण्ठ–ईश्वर॥४९०॥
प्रिय–गणे चतुर्दिके गाय महा–रसे।
नित्यानन्द गदाधर शोभे दुइ पाशे॥४९१॥

(४८६–४९१) प० अनु०—श्रीधर का जल पीने–मात्र से (प्रभु में) न जाने कौन से प्रेम का अधिष्ठान हो गया। भक्त के प्रति प्रभु की वत्सलता को देखकर त्रिभुवन क्रन्दन करने लगा। कोई बिना केश बान्धे भूमि पर लोट–पोट होने लगा। दाँतों में तृण लिये श्रीधर क्रन्दन कर रहे थे और आँसुओं से भरे हुये नेत्रों–सहित ऊँचे स्वर में 'हरि' 'हरि' कह रहे थे। "त्रिदश (देवताओं) के अधिपति (महाप्रभु) ने कौन–सा जल पी लिया है।" यह देखकर श्रीधर नृत्य, क्रन्दन और 'हाय–हाय' करने लगे। वैकुण्ठ के ईश्वर प्रभु विश्वम्भर भक्त श्रीधर का जल पीकर उसके आँगन में नृत्य कर रहे थे। उनके चारों ओर प्रिय भक्तवृन्द महा आनन्द–सहित कीर्तन कर रहे थे। नित्यानन्द और गदाधर दोनों ओर शोभा पा रहे थे।

श्रीधर का भाग्य देखकर ब्रह्मादि द्वारा प्रशंसा–

खोला–बेचा सेवकेर देख भाग्य–सीमा।
ब्रह्मा, शिव कान्दे याँ'र देखिया महिमा॥४९२॥

(४९२) प० अनु०—उस केले बेचने वाले सेवक (श्रीधर) के भाग्य की सीमा तो देखिये, जिसकी महिमा को देखकर ब्रह्म और शिव भी क्रन्दन करने लगे।

भगवान् श्रीचैतन्यदेव केवलमात्र भक्ति के वश–

धने, जने पाण्डित्ये कृष्णेरे नाहि पाइ।
केवल भक्ति वश चैतन्य गोसाईं॥४९३॥

(४९३) प० अनु०—धन, जन और पाण्डित्य के बल से कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। चैतन्य गोसाईं तो केवल भक्ति के वशीभूत हैं।

अपने नगर में प्रभु का आगमन एवं नृत्य–

जलपाने श्रीधरेर अनुग्रह करि'।
नगरे आइला पुनः गौरांग–श्रीहरि॥४९४॥
नाचे गौरचन्द्र भक्तिरसेर ठाकुर।
चतुर्दिके हरिध्वनि शुनिये प्रचुर॥४९५॥

(४९४–४९५) प० अनु०—जलपान–द्वारा श्रीधर को अनुगृहीत करके गौरांग–श्रीहरि फिर से नगर में लौट आये। अपने नगर में भक्तिरस के ठाकुर नृत्य कर रहे थे। उनके चारों ओर प्रचुर हरिध्वनि सुनाई दे रही थी।

उस समय का नवद्वीप–

सर्व–लोक जिनि' नवद्वीपेर शोभाय।
हरि–बोल शुनि मात्र सबार जिह्वाय॥४९६॥

ये सुखे विह्वल शुक, नारद, शंकर।
से सुखे विह्वल सर्व–नदीया–नगर॥४९७॥

(४९६–४९७) प० अनु०—उस समय नवद्वीप की शोभा ने सब लोकों को जीत लिया था। सबकी जिह्वा पर केवलमात्र 'हरिबोल' सुनाई देता था। जिस सुख के कारण शुक, नारद और शंकर विह्वल हैं, उसी सुख में सारा नदीया नगर भी विह्वल था।

पूरे नवद्वीप में प्रभु का नृत्य एवं नृत्य-काल-

सर्व नवद्वीपे, नाचे त्रिभुवन–राय।
'गादिगाछा,''पारडांग', 'माजिदा', दिया याय॥४९८॥
'एक निशा' हेन ज्ञान ना करिह मने।
कत कल्प गेल सेइ निशार कीर्तने॥४९९॥
चैतन्य–चन्द्रेर किछु असंभव नय।
भ्रू–भंगे याहार हय ब्रह्माण्ड–प्रलय॥५००॥

(४९८–५००) प० अनु०—त्रिभुवन के अधिपति सारे नवद्वीप में घूम-घूमकर नृत्य कर रहे थे। नृत्य करते-करते 'गादिगाछा', 'पारडांगा', माजिदा' होकर जा रहे थे। ऐसा मत समझियेगा कि वह केवल 'एक रात' का ही कीर्तन था। उस रात के कीर्तन में न जाने कितने कल्प बीत गये थे। जिनकी भ्रू-भंगिमा के कारण ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जाता है, उस चैतन्यचन्द्र के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।

(४९८) गौः भाः–नवद्वीप की विभिन्न पल्लियों में 'गादिगाछा',-वर्तमान स्वरूपगंज, ठांरा, महेशगंज आदि गाँव। पारडांगा-वर्तमान ब्रह्मनगर के निकटवर्ती स्थान। माजिदा-मध्यद्वीप इत्यादि। आजकल 'पारडांगा' नाम के गाँव का अवस्थान विलुप्त हो चुका है, अथवा दूसरे किसी नाम से उसे पुकारा जाता है।

कर्म और ज्ञान के आवरण से मुक्त व्यक्ति ही श्रीचैतन्य-लीला-दर्शन का अधिकारी एवं भोगपरक और त्यागपरक बुद्धि से उस विषय में जड़-साम्य-विचार-

महा–भाग्यवाने से ए सब तत्त्व जाने।
शुष्कतर्कवादी पापी किछुइ ना माने॥५०१॥
ये नगरे नाचे वैकुण्ठेर अधिराज।
ताहाराओ भासये आनन्द–सिन्धु–माझा॥५०२॥

(५०१–५०२) प० अनु०—महा-भाग्यवान् व्यक्ति ही इन सब तत्त्वों का जानता है। शुष्क तर्कवादी पापी व्यक्ति कुछ भी मानने की तैयार नहीं होता है वैकुण्ठ के अधिराज जिस नगर में नृत्य करते थे, वहाँ के सभी लोग आनन्द के सागर में बहने लगते थे।

महाप्रभु का नृत्य देखकर नदीयावासियों के द्वारा शची-जगन्नाथ की प्रशंसा-

से हुँकार, से गर्जन, से प्रेमेर धार।
देखिया कान्दये स्त्री–पुरुष नदीयार॥५०३॥
केह बले,–''शचीर चरणे नमस्कार।
हेन महापुरुष जन्मिल गर्भे याँ'र॥''५०४॥
केह बले,–''जगन्नाथ मिश्र पुण्यवन्त।''
केह बले,–''नदीयार भाग्येर नाहि अन्त॥''५०५॥

(५०३–५०५) प० अनु०—नदीया के स्त्री-पुरुष उस हुँकार, उस गर्जन, उस प्रेमध ारा को देखकर क्रन्दन करते थे। कोई कहता,-"उन शची के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ, जिनके गर्भ से ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया है।" कोईकहता,-जगन्नाथ मिश्र पुण्यवन्त हैं।" कोई कहता,- "नदीया के भाग्य का अन्त नहीं हैं।"

प्रभु की लीलाओं का कालविचार-

एइ मत लीला प्रभु कत कल्प कैला।

सबे बले आजि रात्रि प्रभात ना हइला॥५०६॥

(५०६) प० अनु०—इस प्रकार से कितने कल्पों तक प्रभु लीला-विलास करते रहे। सभी कह रहे थे-'आज की रात का अन्त नहीं है।'

प्रभु को देखकर सभी के द्वारा जयध्वनि एवं प्रणाम-

एइ मत बलि' सबे देय जयकार।
सर्वलोक 'हरि' बिने नाहि बले आर॥५०७॥
प्रभु देखि' सर्वलोक दण्डवत् हञा।
पड़ये पुरुषे-स्त्रीये बालक लइया॥५०८॥

(५०७-५०८) प० अनु०—ऐसा कहते हुये सभी जयध्वनि प्रदान कर रहे थे। 'हरि' के अतिरिक्त कोई कुछ और कहता ही नहीं था। प्रभु को देखकर स्त्री-पुरुष आदि सब अपने-अपने बच्चों के साथ प्रभु को दण्डवत् प्रणति निवेदन कर रहे थे।

सभी के प्रति शुभदृष्टि-प्रदानकर प्रभु का कीर्तन-विहार-

शुभदृष्टि गौरचन्द्र करि' सबाकारे।
स्वानुभावानन्दे प्रभु कीर्तने विहरे॥५०९॥
ए सब लीला कभु नाहि परिच्छेद।
'आविर्भाव' 'तिरोभाव'- एइ कहे वेद॥५१०॥

(५०९-५१०) प० अनु०—सबके प्रति शुभदृष्टि प्रदान-कर स्वानुभावानन्द (निजी आनन्द) में प्रभु कीर्तन में विहार कर रहे थे। इन सब लीलाओं का कभी अन्त नहीं होता है। वेद इन्हें 'आविर्भाव' 'तिरोभाव' के रूप में मानते हैं।

भक्त के ध्यानानुसार भगवान् का नित्य स्वरूप-प्रकाश-

येखाने येरूप भक्त-गणे करे ध्यान।
सेइ रूपे सेइखाने प्रभु विद्यमान॥५११॥

(५११) प० अनु०-जहाँ-जहाँ जिस रूप में भक्तवृन्द प्रभु का ध्यान करते हैं, वहाँ-वहाँ उसी रूप में प्रभु आविर्भूत हो जाते हैं।

तथाहि (भाः ३/९/११)

यद्ययद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति।
तत्तद्वपुः प्रणयसे सददुग्रहाय॥५१२॥

(५१२) अन्वय-हेउरुगाय (पुण्यश्लोक! भक्ताः) धिया (एकाग्रेण मनसा) ते (तव) यत् यत्वपुः (रूपं) विभावयन्ति (स्वेच्छया ध्यायन्ति) सदनुग्रहाय (सतां भक्तानां अनुग्रहाय अनुग्रहार्थं) तत्.तत्. वपुः प्रणयसे (तेषां समीपे प्रकटयसीत्यार्थः।

अनुवाद-हे पुण्यश्लोक! भक्तवृन्द अपनी-अपनी (सिद्धदेहगत) भावना के अनुसार आपके जिस-जिस नित्य स्वरूप की विभावना करते हैं, उन सबके प्रति अनुग्रह प्रकाश करने के लिए आप उसी-उसी नित्य स्वरूप को उनके समक्ष प्रकटित करते हैं।

चैतन्य-लीला की नित्यता-

अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे।
याँ'र भाग्ये थाके, से देखये निरन्तरे॥५१३॥

(५१३) प० अनु०—आज भी श्रीचैतन्यदेव ये लीलाएँ करते रहते हैं। जिसके भाग्य में होता है, वह उन्हें निरन्तर देखता रहता है।

(५१३) गौः भाः—मध्य में किसी द्रव्य के रहते दृश्यवस्तु का सम्पूर्ण दर्शन संभव नहीं है। पूर्णचेतन का जितना अंश जीवों की भोगप्रवृत्ति-द्वारा आच्छन्न रहता है, उतने अंश में दर्शनाभाव रहने के कारण श्रीचैतन्यदेव की समग्र नित्यलीलाएँ लोगों की दृष्टि से

अदृश्य रहती हैं। जो लोग फलभोग करने की आशा अथवा फल-त्याग-वाद की इच्छा के पीछे नहीं भागते, ऐसे कर्म और ज्ञान के आवरण से मुक्त पुरुष ही श्रीचैतन्यलीलाओं का सदैव दर्शन करने में सक्षम होते हैं। भोगमयी अथवा त्यागमयी बुद्धि मानवों में जड़ता का उत्पादन करती है। उस प्रकार की जड़ता के हाथों से मुक्त होने मात्र से भोग एवं त्यांग की भूमिका का अतिक्रमण करने की शक्ति बद्धजीव प्राप्त कर लेता है। नहीं तो, कालक्षोभ्य (काल द्वारा चालित) एवं परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) विचार से अनुपादेय अन्य वस्तुओं के साथ समानता का विचार रखते हुये श्रीचैतन्यलीला को भी कर्म और ज्ञान के द्वारा आवृत मानव-विलास के साथ एक ही पर्याय में गिनने की असत् पिपासा उदित हो जाती है।

भक्त की श्रेष्ठता एवं भक्तसेवा की महिमा-

भक्मत लागि' प्रभुर सकल अवतार।
भक्त बइ कृष्ण-कर्म ना जानये आर॥४१४॥
कोटि जन्म यदि योग, यज्ञ, तप करे।
'भक्ति' बिना कोन कर्मे फल नाहि धरे॥५१५॥
हेन 'भक्ति' बिना भक्त सेविले ना हय।
अतएव भक्त-सेवा सर्व-शास्त्रे कय॥५१६॥

(५१४-५१६) प० अनु०—प्रभु के सभी अवतार भक्तों के कारण ही प्रकाशित होते हैं। भक्त हो छोड़कर कृष्ण और कुछ नहीं जानते हैं। कोटि जन्मों तक योग, यज्ञ, तपस्या आदि का अनुशीलन करने पर भी 'भक्ति' के बिना कोई कर्म फल प्रदान करने में समर्थ नहीं है। इस प्रकार की 'भक्ति' को भक्त की सेवा के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतएव सभी शास्त्र भक्त-सेवा की महिमा कहते हैं।

(५१४) गौः भाः-भगवान् के नित्य सेवक ही भगवान् के नित्य प्राकट्य का अनुभव करने के योग्य पात्र हैं। वे सेवोन्मुख जनगण की नित्य-भूमिका में सदैव अवतीर्ण होते हैं। सेवा-चेष्टा नहीं रहने से कृष्ण के कर्म अर्थात् नित्यलीला का अनुभव कोई दूसरा नहीं कर सकता है।

(५१५) गौः भाः—योग, यज्ञ, तपस्या-इत्यादि सब कुछ ही कालक्षोभ्य एवं जड़ भूमिका में अवस्थित है। इएलिए वे सब केवल-चेतन से अलग हैं। जब तक बद्धजीवों में से भोग एवं त्याग करने की प्रवृत्ति दूर नहीं हो जाती, तब तक जीव कर्मपाश में आबद्ध रहने के कारण आत्मा की नित्यवृत्ति उन्मिषित होती है, उसी क्षण वे जान जाते हैं कि, तपस्या एवं योग, यज्ञ-आदि सब कुछ हरिसेवा की अनुकूलता में अनुष्ठित न होने से माया के प्रभुत्त्व में ही पर्यवसित होते हैं।

(५१६) गौः भाः—केवल सर्वतोभाव से भक्तों का अनुगमन एवं उन सबकी सेवा को छोड़कर जीवों के लिए बद्धावस्था से उन्मुक्त होने का और कोई उपाय नहीं है। यही पाणि डत्य की शेष कथा है।

(५१६) तथ्य-'रहूगणैतत् तपसा न याति' एवं 'नषां मतिस्तावद्- श्रीमद्भागवत के ५/१२/१२ एवं ७/५/३२ श्लोकद्वय अनुशीलन करने योग्य हैं।

ग्रन्थकार के द्वारा निजाभीष्टदेव नित्यानन्द की महिमा का कीर्तन-

आदि देव जय नित्यानन्द-राय।
चैतन्य कीर्तन स्फुरे याँहार कृपाय॥५१७॥
केह बले,-"नित्यानन्द बलराम सम।"

केह बले,–''चैतन्येर बड़ प्रियतम॥''५१८॥
केह बले,–''महातेजी अंश–अधिकारी।''
केह बले,–''कोनरूप बुझिते ना पारि॥''५१९॥
कि वा जीव नित्यानन्द, कि वा भक्त ज्ञानी।
या'र येन मत इच्छा ना बोलये केनि॥५२०॥
ये से केने चैतन्येर नित्यानन्द नहे।
तबु से चरण–धन रहुक हृदये॥५२१॥
एत परिहारेओ ये पापी निन्दा करे।
तबे लाथि मारों ता'र शिरेर उपरे॥५२२॥
चैतन्य–प्रियेर पाये मोर नमस्कार।
अवधूत–चन्द्र प्रभु हउक् आमार॥५२३॥
चैतन्येर कृपाय से नित्यानन्द चिनि।
नित्यानन्द जानाइले गौरचन्द्र जानि॥५२४॥
गौरचन्द्र–नित्यानन्द–श्रीराम–लक्ष्मण।
गौरचन्द्र–'कृष्ण', नित्यपनन्द–'संकर्षण'॥५२५॥
नित्यानन्द–स्वरूपे से चैतन्येर भक्ति।
सर्व–भावे करिते धरये प्रभु शक्ति॥५२६॥
चैतन्येर यत प्रिय सेवक–प्रधान।
ताँहार से ज्ञात नित्यानन्देर आख्यान॥५२७॥
तबे ये देखह अन्योऽन्ये द्वन्द्वे बाजे।
रंग करे कृष्णचन्द्र केह नाहि बुझे॥५२८॥
इहाते ये एक वैष्णवेर पक्ष लय।
अन्य वैष्णवेरे निन्दे, से–इ याय क्षय॥५२९॥
सर्व–भावे भजे कृष्ण, का'रे ना ये निन्दे।
सेइ से गणना पाय वैष्णवेर वृन्दे॥५३०॥

(५१७–५३०) प० अनु०—आदिदेव नित्यानन्द– राय की जय हो, उनकी ही कृपा से चैतन्य का कीर्तन स्फुरित होता है। कोई कहता है,– "नित्यानन्द बलराम के समान हैं।" कोई कहता है,– "वे चैतन्य के बड़े प्रियतम हैं।" कोई कहता है,– "समझ में नहीं आता, उनका कौन–सा रूप है।" हो सकता है कि, नित्यानन्द कोई जीव हों, यह भी हो सकता है कि वे कोई ज्ञानी भक्त हों। अपनी–अपनी इच्छा के अनुसार कोई कुछ भी क्यों न कहे, चैतन्य के नित्यानन्द जैसे भी हों, हर अवस्था में उनके चरण–धन मेरे हृदय में विराजित रहें। इतना परिहार करने पर भी जो पापी उनकी निन्दा करता है, उसके सिर के ऊपर मैं लात मारता हूँ। चैतन्य के प्रियजनों के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ कि अवधूत–चन्द्र (नित्यानन्द) मेरे प्रभु बन जाएँ चैतन्य की कृपा से नित्यानन्द को पहचाना जा सकता है। नित्यानन्द–द्वारा समझाये जाने से गौरचन्द्र जाना जा सकता है। गौरचन्द्र– नित्यानन्द–श्रीराम–लक्ष्मण–स्वरूप हैं। गौर–चन्द्र–'कृष्ण' हैं, नित्यानन्द–'संकर्षण' हैं। नित्यानन्द–स्वरूप में ही चैतन्य के प्रति भक्ति सर्वतोभाव से सम्पादन करने के लिए शक्ति विराजमान है। चैतन्य के जितने भी प्रधान सेवक हैं, वे सब नित्यानन्द के आख्यान को जानते हैं। फिर भी आपस में कभी–कभी जो कलह दिखाई देता है, वह कृष्णचन्द्र का एक कौतुक रंग है, इस कोई नहीं समझ सकता। आपस में कलह को देखकर जो कोई एक वैष्णव का पक्ष लेता है और दूसरे वैष्णव की निन्दा करता है, वह विनाश को प्राप्त होता है।

(५२५) गौः भाः— श्रीगौर एवं नित्यानन्द—श्रीराम और लक्ष्मण हैं। श्रीगौरनित्यानन्द, श्रीकृष्ण–नारायण एवं श्रीसंकर्षण हैं। वास्तविक सेव्यवस्तु के विभिन्न स्तरों में श्रीचैतन्य लीला का दर्शन करने से सेव्यतत्त्व के प्रकाश के साथ श्रीचैतन्य–नित्यानन्द में अभेदबोध उदित होता है। विभिन्न प्रकाशों के द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभु ही श्रीचैतन्यदेव की सेवा करने में समर्थ हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु से ही जीवशक्ति निकली हुई है। इसलिए सेवाधर्म प्रत्येक जीव का नित्यधर्म है।

(५२९) गौः भाः— श्रीनित्यानन्द प्रभु एंव श्रीअद्वैत-प्रभु के बीच जो प्रेमकलह दिखाई देती है, वह कृष्ण की इच्छा के अनुसार ही सम्पन्न होता है— इस बात को बहिर्मुख लोग समझने में असमर्थ हैं। बिना समझे एक का पक्ष अवलम्बन करने से दूसरे वैष्णव के साथ विरोध हो जाता है; परन्तु ऐसा करने से अपराध ही संचित होता है।

(५३०) गौः भाः— श्रीभगवान् का सर्वतोभाव से भजन करने पर भगवान् की बहिरंग शक्ति में जो सब देवता दिखाई पड़ते हैं, उन सबकी निन्दा करनेन के अवकाश नहीं मिलता है। इस प्रकार दूसरों की निन्दा से रहित महाभागवत वास्तव में उत्तम भगवत्-सेवक की श्रेणी में गिने जाते हैं।

ग्रन्थकार द्वारा अद्वैत के चरणों में प्रणति निवेदन-

अद्वैत-चरणे मोर एइ नमस्कार।
ता'न प्रिय ताहे मति रहुक आमार॥५३१॥
सव्रगोष्ठी-सहित गौरांग जय जय।
शुनिलेइ मध्यखण्ड भक्ति लभ्य हय॥५३२॥

(५३१-५३२) प० अनु० अद्वैत के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ और यह चाहता हू कि, उनके प्रियजनों के प्रति मेरी मति बनी रहे।

सर्वगोष्ठी-सहित गौरांग की जय हो, जय यहो। मध्यखण्ड की इस कथा को सुनने पात्र से भक्ति मिल जाती है।

अद्वैतपक्षावलम्बी के अभिनय में पापिष्ठ गदाधर- निन्दक जनों की अद्वैत-भृत्य होने में अयोग्यता-

अद्वैतेर पक्ष लञा निन्दे गदाधर।
से पापिष्ठ कभु नहे अद्वैत-किंकर॥५३३॥

(५३३) प० अनु०— जो व्यक्ति अद्वैत का पक्ष लेकर गदाधर की निन्दा करता है, वह पापिष्ठ कभी भी अद्वैत का भृत्य नहीं हो सकता है।

(५३३) गौः भाः— अद्वैताचार्य के आनुगत्य की छलना से जो व्यक्ति श्रीगदाधर पण्डित के श्रीचरणों में अपराध कर बैठते हैं, वे कभी भी श्रीअद्वैत के निजी-दास नहीं बन सकते हैं; वे सब केवलमात्र पापिष्ठ हैं। गदाधरादि भक्तों की प्रशंसा करने वाले अद्वैत प्रभु के प्रकृत दासों के चरणों में ग्रन्थकार की सदैव मति बनी रहे, ऐसी उनकी अभिलाषा है। वास्तव में चैतन्यदेव के दर्शन कौन कर सकता है,— इसका निदर्शन जानने के लिए यह देखना होगा कि, चैतन्य-कथा सुनने में जिसे सुख मिलता है, वही श्रीचैतन्य की सेवा में योग्यता प्राप्त करता है।

सभी जीवों के हृदय में चैतन्यलीला-स्फुरण के लिए ग्रन्थकार के द्वारा आशीर्वाद प्रदान-

चैतन्य-चन्द्रेर कथा अमृत मधुर।
सकल जीवेर मने बाडुक प्रचुर॥५३४॥

(५३४) प० अनु०— चैतन्यचन्द्र की अमृत-स्वरूप मधुर कथाएँ सभी जीवों के हृदय में प्रचुर परिमाण में वर्धित होती रहें।

चैतन्यलीला-श्रवण से आनन्दित व्यक्ति को ही चैतन्य-दर्शन का अधिकार-

शुनिले चैतन्य-कथा या'र हय सुख।
से अवश्य देखिवेक चैतन्य-श्रीमुख॥५३५॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द-चान्द जान।
वृन्दावनदास तछु पद-युगे गान॥५३६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे नवद्वीप-नगर-भ्रमणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

(५३५-५३६) प० अनु०— चैतन्य-कथा

सुनने में जिसे सुख मिलता है, वहव अवश्य ही चैतन्य–श्रीमुख के दर्शन करने में सक्षम होगा। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौडीय–भाष्य में त्रयोविंश अध्याय

O

चतुर्विंश अध्याय

चतुर्विंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमन्महाप्रभु की कीर्तन में अद्भूत प्रेमावेश, श्रीअद्वैत-प्रभु-द्वारा गोपीभाव में नृत्य, महाप्रभु के द्वारा अद्वैत को अवश्वरूप का प्रदर्शन, नित्यानन्द और अद्वैत के बीच प्रेमकलह इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

संकीर्तन के पिता श्रीमन्महाप्रभु नवद्वीप में बहुविध कीर्तन-विलास में निरत (नियुक्त) रहते थे, उसी समय एकदिन श्रील अद्वैत प्रभु गोपीभाव में नृत्य करने लगे; भक्तगण हर्ष और उल्लास के साथ कीर्तन कर रहे थे; परन्तु बहुत समय बीत जाने पर भी उनका नृत्य भंग नहीं हुआ। अन्त में किसी प्रकार से भक्तों ने उन्हें किंचित् स्थिर किया और चारों ओर से उन्हें घेर कर बैठ गये। इसके बाद श्रीवास एवं रामाइ आदि लोगों के स्नानार्थ चले जाने पर श्रीअद्वैत- प्रभु प्रेमावेश में श्रीवास के आँगन में बारम्बार लोट-पोट हाने लगे। श्रीअद्वैत की अर्ति अन्य कार्यों में लगे हुये विश्वम्भर के हृद्-गोचर हुई। तब श्रीवास के यहाँ आकर गौरप्रभु ने अद्वैत प्रभु को साथ लेकर विष्णु-मन्दिर में प्रेवश किया और उसका दरवाजा बन्द कर लिया। इसके पश्चात् उन्होंने उनकी प्रार्थना के बारे में पूछा। श्रीअद्वैत पभु द्वारा विश्वरूप-दर्शन करने की अभिलाषा करने पर भक्तवांछा-कल्पतरु श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें अपना विश्वरूप दिखाया।

श्रीनित्यानन्द प्रभु उस समय नदीया में पर्यटन कर रहे थे। अन्तर्यामी नित्यानन्द गौरप्रभु के विश्वरूप प्रकाश के बारे में सब कुछ जानकर उसी क्षण वहाँ आ गये और द्वार पर खड़े होकर गर्जन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द के आगमन को समझते हुये द्वार खोल दिया। नित्यानन्द प्रभु उस अनन्त ब्रह्माण्डरूप के दर्शन करके प्रभु के समाने दण्डवत् प्रणत हो गये। दोनों प्रभु महाप्रभु का प्रभाव देखकर आनन्द-सहित नृत्य करते हुये प्रभु की स्तुति करने लगे।

कुछ समय पश्चात् श्रीनित्यानन्द और अद्वैत परस्पर प्रेमकलह में मत्त हो गये। क्षण्भर के बाद श्रीमहाप्रभु ने सब कुछ संवरण करते हुये भक्तों के साथ अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

श्रीगौरसिंह का जयगान-

जय जय जय गौर-सिंह महाधीर।
जय जय शिष्ट-पाल जय दुष्ट-वीर॥१॥
जय जगन्नाथ-पुत्र श्रीशचीनन्दन।
जय जय जय पुण्य श्रवण-कीर्तन॥२॥
जय जय श्रीजगदानन्दे जीवन।
जय हरिदास-काशीश्वर-प्राण-धन॥३॥
जय कृपासिन्धु दीनबन्धु सर्व-तात।
ये बले 'आमार' प्रभु, ता'र हओ नाथ॥४॥

(१-४) प० अनु०—महाधीर गौरसिंह की जय हो, जय हो, जय हो। सज्जनों के पालनकर्ता और दुष्टों के दमनकर्ता की जय हो,

जय हो, जय हो। जगन्नाथ—पुत्र श्रीशचीनन्दन की जय हो, पुण्य श्रवण–कीर्तन–स्वरूप की जय हो, जय हो, जयय हो। श्रीजगदानन्द के जीवन–स्वरूप की जय हो, जय हो। हरिदास–काशीश्वर के प्राणधन–स्वरूप की जय हो। कृपासिन्धु दीनबन्धु सर्व पिता की जय हो। जो कहता है प्रभु 'मेरे' हैं, आप उसके नाथ बन जाते हैं।

(१) गौः भाः—कृष्णप्रेम–प्रदानकर्ता श्रीगौरसिंह ने चंचल जीवों को सहिष्णुता की शिक्षा देने के लिए कृष्णसेवा का उपदेश दिया है। यदुनन्दन ने विश्वपालन–पूर्वक परम ऐश्वर्य का प्रकाश किया है।

प्रभु का बहुविध कीर्तन–विलास–

हेनमते नवद्वीपे विश्वम्भर–राय।
विविध कीर्तन प्रभु करये सदाय॥५॥
हेन से हइला प्रभु हरि–संकीर्तने।
कृष्णनाम श्रुतिमात्र पड़े ये से स्थाने॥६॥
कि नगरे, कि चत्वेर, कि वा जले वने।
निरन्तर अश्रुधारा बहे श्रीनयने।।७॥
आप्त–गणे रक्षिया बुलेन निरन्तर।
भक्तिरसमय हइलेन विश्वम्भर।।८॥
केह मात्र कोन रूपे यदि बले 'हरि'।
शुलिनेइ पड़े प्रभु आपना पासरि'॥९॥
महा–कम्प, अश्रु, हय पुलक सर्वांगे।
गड़ा–गड़ि यायेन नगरे महा–रंग॥१०॥
ये आवेश देखिले ब्रह्मादि धन्य हय।
ताहा देखे नदीयारा लोक–समुच्चय॥११॥
शेषे अति मूर्च्छा देखि' मिलि' सर्व दासे।
आलग करियो निया चलिल आवासे॥१२॥
तबे द्वार दिया ये करने संकीर्तन।
से सुखे पूर्णित हय अनन्त भुवन॥१३॥
यत सब भाव हय—अकथ्य सकल।
हेन नाहि बुझि प्रभु कि रसे विह्वल॥१४॥

(५–१४) प० अनु०—इस प्रकार प्रभु विश्वम्भर राय नवद्वीप में सदैव बहुविध कीर्तन करते रहते थे। हरि–संकीर्तन में प्रभु की ऐसी स्थिति हो गई कि कृष्णनाम सुनने मात्र से वे जहाँ–जहाँ भूमि पर गिर जाया करते थे। चाहे नगर हो या चत्वर (चौरस भूमि) अथवा जल हो या वन हो, उनके नेत्रों से निरन्तर अश्रुधाराएँ बहती रहती थीं। प्रभु के निज–जन भक्तिरसमय प्रभु विश्वम्भर की सदैव रक्षा करते थे। कोई भी, किसी प्रकार से यदि 'हरि' मात्र कहता तो उसे सुनने मात्र से प्रभु आत्मविस्मृत होकर भूमि पर गिर जाते थे। उनके सारे श्रीअंगों में महाकम्प, अश्रु और पुलक होने लगता था। महा आनन्द सहित प्रभु नगरों में लोट–पोट हो जाते थे। जिस आवेश को देखने से ब्रह्मादि धन्य हो जाते हैं, उसी भावावेश को नदीया के सभी लोग देखा करते थे। अन्त में अतिमूर्च्छा को देखकर सभी दास मिलकर उनको अलग (सुरिक्षत) घर में ले जाते थे। घर आकर द्वार बन्द करके प्रभु जो संकीर्तन करते थे, उस संकीर्तन से अनन्त भुवन सुखसागर में डूब जाते थे। जितने सारे भाव उनके श्रीअंग में दिखाई देते थे, उन सबके बारे में कुछ कहना असंभव है। समझ में नहीं आता था कि कौन से रस के कारण प्रभु विह्वल थे।

प्रभु–द्वारा वैष्णवाभिमान–प्रदर्शनकर
अहंग्रहोपासना का निराकरण–

क्षणे बले,–''मुञि सेइ मदन–गोपाल।''
क्षणे बले,–''मुञि कृष्ण–दास सर्व–काल॥''१५॥

(१५) प० अनु०—वे क्षण में कहते थे,–"मैं वही मनदगोपाल हूँ।" और क्षण मे कहते

थे,– "मैं सर्वकाल कृष्ण का दास हूँ॥"

(१५) गौः भाः—वैकुण्ठ–नाम के कीर्तन–प्रभाव से मायिक जीवों के लिए किस रूप सौभाग्य का उदय होता है, उसी का आदर्श प्रदर्शित करने हेतु श्रीगौरसुन्दर का अवतार हुआ है। जीव जब ब्राह्मी, सानकी एवं खैरौष्ठी (प्राचीन लिपियाँ) आदि भाषाओं के अन्तर्गत जितने भी शब्द हैं, उनके कृष्णसेवा–विमुख भोगमय अर्थों की उपलब्धि से अवकाश ग्रहण करते हैं, उसी समय वैकुण्ठ नाम के प्रभाव से उन जीवों में आत्मा की नित्यवृत्ति उदित होती हैं जब बाह्य वस्तुसमूह के आकर्षण से सन्तुष्ट न होकर वे अनिर्वचनीय चेष्टाओं में रत हो जाते हैं, तब वे अपने नित्यस्वरूप की **(१६) प० अनु०**–किसी दिन महाप्रभु केवल 'गोपी गोपी गोपी' जपते रहते थे और कृष्णनामा सुनने मात्र से महाक्रोध में जलने लगते थे।

प्रभु–द्वारा आत्मा के नित्यधर्म में श्रीवार्षभानवी देवी (वृषभानु–सुता) के आनुगत्य में गोपी–अभिमान की सर्वोत्कार्षता की स्थापना–

'गोपी गोपी गोपी' मात्र कोन दिन जपे'।
शुनिले कृष्णेर नामा ज्वले महा–कोप॥१६॥

(१६) गौः भाः—जीवात्मा के नित्यधर्म में श्रीवार्ष–भानवी (वृषभानुनन्दिनी) के आनुगत्य में मधुर–रसमय गोपी–अभिमान ही सर्वोत्तम है, एवं मधुर–रसाश्रय जीवात्मा का स्वरूप 'गोपी' है, ऐसा कहकर ब्रजेन्द्रनन्दन स्वयं गोपी–अभिमान में स्थित होने के लिए अनेक बार 'गोपी–गोपी'–शब्द का जप किया करते थे। जीव आश्रयजातीय विभिन्नांश है, वह कभी भी विषयजातीय स्वयंरूप कृष्ण नहीं है,– इस बात को समझाने के लिए पंचोपासक मायीवादी बद्धजीवों का कृष्ण के साथ अभिन्नाभिमान नितान्त अकिंचित्कर (व्यर्थ) है, इसकी जानकारी देने के लिए ही प्रभु ने एक ओर कृष्णनाम में वितृष्णा प्रदर्शित करने का अभिनय दर्शाया है तो दूसरी ओर प्रति पल कृष्ण का अनुसंधान करना एवं अनुसंधान के साथ–साथ कृष्णसेवा करना ही जीव मात्र का परम धर्म है,

इस बात की जानकारी दी है। इसी कारण श्रीमहाप्रभु ने व्यतिरेक–भाव से कृष्णनाम में वितृष्णा का प्रदर्शन किया था और साथ–साथ स्वरूप की उपलब्धि में कृष्णनाम–ग्रहण करने में प्रगाढ़ तृष्णा जताने के लिए समग्र जगत् के निकट विपरीत आचरण के द्वारा उनकी अप्रसन्नता उत्पादित कराने की चेष्टा की छलना से अनुक्षण कृष्णनाम श्रवण–स्पृहा का वर्धन किया था।

कपट–कृष्णनिन्दा के द्वारा निर्बोधजनों को दण्डदान एवं भक्तों के समक्ष अर्वाचीनलोगों की बुद्धि का दारिद्रय–ज्ञापन–

''कोथाकार कृष्ण तोर महा–दस्यु से।
शठ धृष्ट कैतव—भजे वा ता'रे के?१७॥
स्त्री–जित हइया स्त्रीर काटे नाक काण।
लुब्धकेर प्राय लैल बालिर पराण॥१८॥
कि कार्य आमार से वा चोरेर कथाय।''
ये 'कृष्ण' बलये ता'रे खेदाड़िया याय॥१९॥

(१७–१९) प० अनु०—"कहाँ का तेरा कृष्ण, वह तो महा दस्यु है। वह तो शठ, धृष्ट और कपटी है। उसका भजन कौन करेगा? स्त्रियों को जीतकर भी स्त्रियों के नाक–कान काटता है। व्याध की भाँति उसने बाली के प्राणों का हरण कर लिया। उस चोरा की बातों से मुझे क्या लेना?" जो 'कृष्ण' कहता था, उसे महाप्रभु खदेड़ने दौड़ते थे।

(१८) गौः भाः–"कृष्ण—महादस्यु है;

कृष्ण–शठ, धृष्ट और कपटी है; उसका भजन करना उचित नहीं है; वह नगण्य व्यक्ति है"– इत्यादि उक्तियों के द्वारा भगवान् गौरसुन्दर ने निर्बोधजनों को समुचित दण्ड– विधान एवं कृष्णभक्तों को अर्वाचीन लोगों की बुद्धि का दारिद्र ज्ञापित किया है। इसके द्वारा श्रद्धावन्त जीवों की कृष्णभजन की सुष्ठु अवस्था का ज्ञापन और वाम्य स्वभाव–प्रकटन–लीला के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

(१८) तथ्य— भाः१० म स्कन्ध ९० अः १५–१७ श्लोक द्रष्टव्य है।

निरन्तर राधाकृष्णलीला–स्मृति–पदर्शनार्थ 'गोकुल– मथुरा' आदि नामों का उच्चरण–

'गोकुल' 'गोकुल' मात्र बले क्षणे क्षणे।
'वृन्दावन' वृन्दावन' बले कोन दिने।।२०॥
'मथुरा' 'मथुरा' कोन दिन बले सुखे।
कोन दिन पृथिवीते नखे अंक लेखे॥२१।
क्षणे पृथिवीते लेखे त्रिभंग–आकृति।
चाहिया रोदन करे, भासे सब क्षिति॥२२॥
क्षणे बले, ''भाइ सब, बड़ देखि वन।
पाले पाले सिंह व्याघ्र भल्लुकेर गण॥''२३॥

(२०–२३) प० अनु०—गौरप्रभु कभी क्षण–क्षण में 'गोकुल' मात्र कहते थे। किसी दिन 'वृन्दावन' 'वृन्दावन' बोलते थे। किसी दिन सुख–पूर्वक 'मथुरा' 'मथुरा' बोलते थे। किसी दिन नाखून से पृथ्वी पर चिह्न अंकित करते थे। फिर कभी क्षण में पृथ्वी पर त्रिभंग–आकृति का अंकन करते थे और उसे देख– देखकर क्रन्दन करते रहते थे, आँसुओं से धरती भीग जाया करती थी। क्षण में कहने लगते थे, "भाइयों! बड़ा वन देख रहा हूँ। उस वन में बहुत से सिंह, व्याघ्र और भालू हैं।"

"या निशा सर्वभूतानां" गीतोक्त श्लोक का आदर्श–प्रदर्शन–

दिवसेरे बले रात्रि, रात्रिरे दिवस।
एइ मत प्रभु हइलेन भक्ति वश॥२४॥

(२४) प० अनु०—प्रभु भक्ति के वश में ऐसे हो गये कि वे दिन को रात और रात को दिन कहने लगे।

(२४) तथ्य–(गीताः २/६९)–"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मनुः॥"

प्रभु के ब्रह्मादि–द्वारा अभिलषित आवेश के दर्शन से भक्तों का क्रन्दन–

प्रभुर आवेश देखि' सर्व–भक्त–गण।
अन्योन्ये गला धरि' करेन क्रन्दन॥२५॥
ये आवेश देखिते ब्रह्मार अभिलाष।
सुखे ताहा देखे यत वैष्णवेर दास॥२६॥

(२५–२६) प० अनु०—प्रभु का आवेश देखकर सभी भक्तवृन्द एक दूसरे के गले लगकर क्रन्दन करने लगते थे। जिस आवेश को देखने के लिए ब्रह्मा की अभिलाषा होती है, उसी आवेश को वैष्णव के दास अनायास ही देखा करते थे।

अपना घर छोड़कर प्रभु का भक्तों के घर रहना–

छाड़िया आपन वास प्रभु–विश्वम्भर।
वैष्णव–सबेर घरे थाके निरन्तर॥२७॥

(२७) प० अनु०—अपना घर छोड़कर प्रभु निरन्तर वैष्णवों के घरों में रहने लगे।

कदाचित् जननी को खुश रखने के लिए बाह्य–चेष्टा का प्रदर्शन–

बाह्य–चेष्टा ठाकुर करेन कोन क्षणे।

से केवल जननीर सन्तोष–कारणे ॥२८॥

(२८) प० अनु०—कभी–कभी ठाकुर अपनी जननी को सन्तोष प्रदान करने के लिए बाह्य–चेष्टा का प्रदर्शन भी करते थे।

सांगोपांग–सहित प्रभु की तत्कालीन अवस्थिति–

सुखमय हइलेन सर्व भक्तगण।
आनन्दे करेन सबे कृष्ण–संकीर्तन ॥२९॥
नित्यानन्द मत्त–सिंह सर्व नदीयाय।
घरे घरे बुले प्रभु अनन्त–लीलाय ॥३०॥
प्रभु–संगे गदाधर थाकेन सर्वथा।
अद्वैत लइया सर्व वैष्णवेर कथा ॥३१॥

(२९–३१) प० अनु०—सुखमय स्थिति में रहते हुये सभी भक्तवृन्द आनन्द–सहित कृष्ण–संकीर्तन किया करते थे। नित्यानन्द अनन्त लीला में मतवाले सिंह की भाँति नदीया के घर–घर में घूमते रहते थे। गदाधर सब समय प्रभु के साथ–साथ रहते थे और अद्वैत को साथ लेकर सभी वैष्णववृन्द वार्तालाप करते थे।

गोपीभाव में अद्वैत प्रभु का नृत्य–

एकदिन अद्वैत नाचेन गोपीभावे।
कीर्तन करेन सबे महा–अनुरागे ॥३२॥
आर्त्ति करि' नाचये अद्वैत महाशय।
पुनः पुनः दन्ते तृण करिया पड़य ॥३३॥
गड़ागड़ि यायेन अद्वैत प्रेम–रसे।
चतुर्द्दिगे भक्तगण गायेन उल्लासे ॥३४॥

(३२–३४) प० अनु०— एकदिन अद्वैत गोपीभाव में नृत्य करने लगे। सभी बड़े अनुराग के साथ कीर्तन कर रहे थे। आर्त्ति–प्रकाशकर नृत्य करते–करते महामति अद्वैत दाँतों में तृण लिए बारम्बार नीचे गिर रहे थे और प्रेम के आनन्द में अद्वैत भूमि पर लोट–पोट हो रहे थे तथा भक्तवृन्द चारों ओर उल्लास के साथ कीर्तन कर रहे थे।

नृत्य संवरण की चेष्टा में भक्तों का परिश्रम–

दुइ प्रहरेओ नृत्य नहे संवरण।
श्रान्त हइलेन सब भागवत–गण ॥३५॥

(३५) प० अनु०—जब दो प्रहर बीत जाने पर भी नृत्य बन्द नहीं हुआ, तब सभी भागवतजन श्रान्त (थक) हो गये।

आचार्य को घेरकर सभी का उपवेशन–

सबे मेलि' आचार्येरे स्थिर कराइया।
बसिलेन चतुर्द्दिगे आचार्य बेड़िया ॥३६॥

(३६) प० अनु०—सभी ने मिलकर आचार्य को सुस्थिर किया, फिर आचार्य को घेरकर सभी भक्त बैठ गये।

आचार्य को सुस्थिर देखकर श्रीवासादि का स्नानार्थ गमन एवं आचार्य में फिर आवेश–

किछु स्थिर हञा आचार्य बसिला।
श्रीवास–रामाइ–आदि तबे स्नाने गेला ॥३७॥
आर्ति–योग अद्वैतेर पुनः पुनः बाड़े।
एकेश्वर श्रीवास–अंगने गड़ि पड़े ॥३८॥

(३७–३८) प० अनु०—आचार्य जब कुछ स्थिर होकर बैठ गये, तब श्रीवास–रामाइ आदि ने स्नान करने के लिए प्रस्थान किया। उधर अद्वैत का आर्ति–योग बार–बार बढ़ने लगा और एकेश्वर (एकेले) अद्वैत श्रीवास के आँगन में लोट–पोट होने लगे।

अद्वैत की आर्त–दशा प्रभु के हृदगोचर–

कार्यान्तरे निज–गृहे छिला विश्वम्भर।
अद्वैतेर आर्ति चित्ते हइल गोचर ॥३९॥

(३९) प० अनु०—उधर विश्वम्भर अपने

घर में ही अन्य कार्यों में लगे हुये थे। तभी अद्वैत की आर्ति उनके हृदय में दृष्टिगोचर हुई।

अद्वैत के समीप प्रभु का आगमन एवं विष्णुमन्दिर में प्रवेशपूर्वक द्वाररोध–

भक्त–आर्ति–पूर्णकारी सदानन्द राय।
आइला अद्वैत यथा गड़ागड़ि याय॥४०॥
अद्वैतेर आर्ति देखि' धरि' ताँ'र करे।
द्वार दिया वसिलेन गिया विष्णु घरे।।४१॥

(४०–४१) प० अनु०—भक्त का दुःख दूर करने वाले सदानन्द राय प्रभु वहाँ आ पहुँचे जहाँ अद्वैत लोट–पोट हो रहे थे। अद्वैत की आर्ति देखकर प्रभु उनका हाथ पकड़कर उन्हें विष्णु मन्दिर में ले आये और मन्दिर का दरवाजा बन्द कर दिया।

(४१) गौः भाः—विष्णुघरे (विष्णुमन्दिर में)– उस समय सभी हिन्दुओं के घरों में, विशेषतया सभी ब्राह्मणों के घरों में 'विष्णुगृह' थे। जगह–जगह पर चण्डी–मण्डप आदि यज्ञ धर्मानुष्ठान के लिए जगह थी।

अद्वैत की अभिलाषा जानने के लिए प्रभु का प्रश्न–

हासिया ठाकुर बले,–''शुनह आचार्य!
कि तोमार इच्छा, बल कि वा चाह कार्य?''४२॥

(४२) प० अनु०—फिर हँसकर ठाकुर बोले– "सुनिए आचार्य! आपकी क्या इच्छा है, आप क्या कार्य करना चाहते हैं?"

अद्वैत द्वारा अपनी मनोभिलाषा का ज्ञापन एवं विश्वरूप–दर्शन–

अद्वैत बलये,–''तुमि सर्व–वेद–सार।
तोमारेइ चाहौं प्रभु, कि चाहिव आर।।''४३॥
हासि बले प्रभु,–''आमि एइ त' साक्षाते।
आर कि आमारे चाह बल त' आमाते।।''४४॥
अद्वैत बलये,–''प्रभु कहिला सु–सत्य।
एइ तुमि सर्व–वेद–वेदान्तेर तत्त्व।।४५॥
तथापिह वैभव देखिते किछु चाइ।''
प्रभु बले,–''कि वा इच्छा बल मोर ठाँइ॥''४६॥
अद्वैत बलये,–''प्रभु पूर्वे अर्जुनेरे।
याहा देखाइले ताहा इच्छा बड़ करे॥''४७॥
बलित अद्वैत मात्र देखे एक रथ।
चतुर्दिगे सैन्य–दले महा–युद्धपथ॥४८॥
रथेर उपरे देखे श्यामल–सुन्दर।
चतुर्भुज शंख–चक्र–गदा–पद्म–धर॥४९॥
अनन्त–ब्रह्माण्ड–रूप देखे सेइ क्षणे।
चन्द्र, सूर्य, सिन्धु गिरि, नदी उपवने॥५०॥
कोटि चक्षु, बाहु, मुख देखे पुनः पुनः।
सम्मुख देखये स्तुति करये अर्जुन॥५१॥
महा–अग्नि येन ज्वले सकल वदन।
पोड़ये पाषण्ड–पतंग–दुष्टगण॥५२॥
ये पापिष्ठ पर निन्दे', पर–द्रोह करे।
चैतन्येर मुखग्निते सेइ पुड़ि' मरे॥५३॥
एइ रूप देखिते अन्येर शक्ति नाइ।
प्रभुर कृपाते देखे आचार्य–गोसाईं॥५४॥
प्रेमसुखे अद्वैत कान्देन अनुरागे।
दन्ते तृण करि पुनः पुनः दास्य मागे॥५५॥

(४३–५५) प० अनु०—अद्वैत बोले,–"आप सर्व– वेद–सारस्वरूप हैं, मैं आपको ही चाहता हूँ और क्या चाहूँगा।" हँसकर प्रभु ने कहा—"मैं तो तुम्हारे सामने साक्षात् उपस्थित हूँ, और मुझे कैसे चाहते हो, बोलो"। अद्वैत बोले,– "प्रभु! आपने सुसत्य वचन कहा है। आप ही सम्पूर्ण वेद–वेदान्त के तत्त्व हैं, तथापि मैं आपका कुछ वैभव देखना चाहता हूँ।" प्रभु बोले,–"क्या देखना चाहते हो बोलो।" अद्वैत ने कहा,–"आपने अर्जुन को जो कुछ दिखाया

था, उसे देखने की बड़ी इच्छा है।" कहने के साथ-ही-साथ अद्वैत को एक रथ दिखाई दिया और चारों ओर सैन्यबल से युक्त संग्राम भूमि भी दिखाई दी। रथ के ऊपर उन्होंने चार भुजाओं वाले श्यामसुन्दर को देखा, जो शंख-चक्र-गदा और पद्म धारण किये हुये थें उसी क्षण चन्द्र, सूर्य, सिन्धु, गिरि, नदी, उपवन समेत अनन्त-बह्माण्ड को भी उन्होंने देखा। करोड़ों नेत्र, बरोड़ों बाहु और करोड़ों मुख उन्हें बारम्बार दिखाई दे रहे थे। समाने अर्जुन को भी स्तुति करते हुये देखा। सभी वदन (विश्वरूप में प्रकाशित) महा-अग्नि की तरह जलते हुये दिखाई दिये। उस अग्नि में पाखण्डी दुष्टगण-रूपी पतंगे जलकर भस्म हो रहे थे। जो पापिष्ठ दूसरों की निन्दा करता है, दूसरों के प्रति द्रोह करता है, वह चैतन्य की मुखाग्नि में जलकर मरता है। अन्य किसी में इस रूप को देखने की शक्ति नहीं है। आचार्य-गोसाईं प्रभु की कृपा के कारण ही इसे देख सके। प्रेमसुख में अद्वैत अनुराग-सहित क्रन्दन करने लगे और दाँतों में तृण लिये (दैन्यभाव से) बारम्बार दास्य-भाव की प्रार्थना करने लगे।

(५३) गौः भाः—जड़-जगत के यावतीय चिन्ता-स्त्रोत की जो प्रकाण्ड मूर्त्तियाँ हैं, वे पुरुषोत्तम के तात्कालिक विवश्वरूप हैं; वे नित्य नहीं हैं अथवा नैमित्तिक अवतार के नाम, रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट्य एवं लीला के समान भी नहीं हैं। आध्यक्षिक ज्ञान जब पूर्णरूप से विकसित होता है, तब वृहत्त की तात्कालिक पूर्णप्रकाशमूर्त्ति अभावग्रस्त दरिद्र के निकट प्रतिभात होने पर भगवान् का तात्कालिक विश्वरूप उतना ही प्रदर्शित होता है, जितना अनित्य जगत् में प्रकटित होने की योग्यता रखता हैं अग्नि जैसे सभी वस्तुओं अथवा वस्तुओं के मैल को दग्ध, ध्वंस अथवा द्रवीभूत करने में समर्थ होता है, वैसेस ही भगवत्- विमुखता के कारण जो लोग पाप-परायण होकर श्रेष्ठ भागवतजनों की निन्दा अथवा उनके प्रति विद्वेष करते हैं, उन सब पापप्रवण-चित्तवाले लोगों की मानसिक दुर्बलता एवं कायिक ताण्डव-नृत्य-रूप मलसमूह श्रीचैतन्यदेव की कृपा से प्राप्त प्रकृत अभिज्ञतासूचक (निपुणता) चेतनमय कीर्तनरूप अग्नि में दग्ध हो जाते हैं।

नगर-भ्रमणरत नित्यानन्द को महाप्रभु की लीला हृद्गोचर एवं उनका श्रीवास के घर में गमन-

परम आनन्दे प्रभु नित्यानन्द राय।
पर्यटनसुखे भ्रमे, सर्व नदीयाय॥५६॥
प्रभुर प्रकाश सब जाने नित्यानन्द।
जानिलेन हइयाछेन प्रभु विश्व-अंग॥५७॥

(५६-५७) प० अनु०—प्रभु नित्यानन्द राय परम आनन्द-सहित सारी नदीया में पर्यटन का सुख लेते हुये घूम रहे थे। प्रभु के प्रकाश के बारे में नित्यानन्द सब कुछ जानते थे। उन्होंने जान लिया कि प्रभु ने विश्वरूप धारण किया है।

(५७) गौः भाः-विश्वद्रष्टा व्यक्ति भगवत्-स्वरूप के दर्शन में असमर्थ होते हैं; क्योंकि कर्त्तृत्वाभिमान प्रबल होने के कारण ऐसे जीव पूर्णवस्तु को देख नहीं सकते हैं। विश्व में प्रकाशित अवतारी को नित्यानन्द 'अंग' के रूप में जानते थे। बद्धजीवों की अनुभूति महाप्रभु की पूर्णता की उपलब्धि करने में असमर्थ थी, किन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उन्हें पूर्णतम प्रकाश के रूप में पहचान लिया था। संकीगर्णदृष्टिधारी जीव उन्हें विश्व के एक अन्यतम व्यक्तित्व के रूप में जानते

थे, किन्तु विश्व उनका व्यक्तित्व के रूप में जानते थे, किन्तु विश्व उनका अंग है— इस प्रकार के विशिष्टाद्वैत दर्शन की पूर्णता श्रीनित्यानन्द की ही पूर्णसेवामयी दृष्टि में दिखाई देती है। श्रीमद्भागवत ने विश्व के जन्म–स्थित–भंग–दर्शन को भगवत्ता के गौण लक्षण के प्रकाश के रूप में माना हैं

विष्णुमन्दिर के द्वारा पर नित्यानन्द का गर्जन एवं प्रभु के द्वारा द्वारा का उद्घाटन–

सत्तरे आइला यथा आछेन ठाकुर।
विष्णु–गृह–द्वारे गिया गर्जेन प्रचुर॥५८॥
नित्यानन्द आगमन जानि' विश्वम्भर।
द्वार घुचाइया प्रभु आइला सत्तर॥५९॥

(५८–५९) प० अनु०—नित्यानन्द शीघ्र वहाँ चले आये, जहाँ ठाकुर विराजमान थे। विष्णुमन्दिर के द्वार पर जाकर वे प्रचुर गर्जन करने लगे। विश्वम्भर ने जब देखा कि नित्यानन्द आ गये हैं, तब उन्होंने शीघ्र दरवाजा खोल दिया और बाहर आ गये।

विश्वरूप–दर्शन से नित्यानन्द का दण्डवत पतन–

अनन्त–ब्रह्माण्ड–रूप नित्यानन्द देखि'।
दण्डवत हइया पड़िला बुजि' आँखि।।६०॥

(६०) प० अनु०—प्रभु के अनन्त–ब्रह्माण्ड–मय रूप को देखकर नित्यानन्द आँखें बन्द करके दण्डवत प्रणति–निवेदन–पूर्वक नीचे पड़ गये।

नित्यानन्द के प्रति महाप्रभु की उक्ति–

प्रभु बले,—''उठ नित्यानन्द, मोर प्राण।
तुमि से जानह मोर सकल आख्यान।।६१॥
ये तोमारे प्रीति करे, मुञि सत्य ता'र।
तोमा' बइ प्रियतम नाहिक आमार।।६२॥
तुमि आर अद्वैत ये करे भेद–बुद्धि।
भाल–मते ना जाने से अवातर–शुद्धि॥''६३॥

(६१–६३) प० अनु०—प्रभु बोले,–"उठो नित्या– नन्द, तुम मेरे प्राणस्वरूप हो। मेरे बारे में तुम्हें सब कुछ पता है। जो तुमसे प्रेम करता है, मैं सचमुच उसी का हो जाता हूँ। तुम्हें छोड़ कर दूसरा कोई मेरा प्रियतम नहीं है। तुममें और अद्वैत में जो भेद बुद्धि रखता है, वह अवतार–तत्त्व को शुद्ध रूप से नहीं जान सकता।

(६३) गौः भाः–श्रीनित्यानन्द एवं श्रीअद्वैत–प्रभु—इन दोनों को जो लोग विष्णुतत्त्व से अलग समझकर इन दोनों में देह–देही भेद की स्थापना करते हैं, वे सब अवतार–तत्त्व को विशुद्ध रूप से समझने में असमर्थ हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु भगवत् प्रकाश एवं श्रीअद्वैत प्रभु उपादान–कारण रूपी विष्णु हैं। अद्वैत प्रभु में उपादान–कारण रूप विष्णत्त्व के विचार से वैष्णवत्त्व के मूल आचार्य–गुरुत्त्व आदि विचारों का विग्रहत्त्व समाया हुआ है। निमित्त कारण और उपादान कारण में जोा भेद वर्तमान है, वह भगवत् तत्त्व से अविच्छिन्न (अभिन्न) है, इसलिए 'अद्वैत' है, फिर अद्वैत–विचार से निमित्त कारण के विशिष्ट्य का उसमें संयोग करने से प्रकाश–वस्तु एवं स्वयंरूप आदि के वैशिष्ट्य का अनादर होता है।

अद्वैत–नित्यानन्द का नृत्य–

नित्यानन्द–अद्वैत देखिया विश्वम्भर।
आनन्दे नाचये विष्णु–गृहेर भितर॥६४॥

(६४) प० अनु०—विश्वम्भर को देखकर नित्यानन्द और अद्वैत विष्णु–मन्दिर के भीतर आनन्द–सहित नृत्य करने लगे।

सहुँकार प्रभु की उक्ति–

हुँकार गर्जन करे श्रीशची–नन्दन।
'देख देखे' करि' प्रभु डाके घन घन॥६५॥

(६५) प० अनु०—हुँकार एवं गर्जन करते हुये प्रभु श्रीशचीनन्दन बारम्बार 'देखो देखो' कहने लगे।

दोनों प्रभुओं के द्वारा महाप्रभु की स्तुति–

'प्रभु प्रभु, बलि' स्तुति करे दुइ जन।
विश्वरूप देखिया आनन्दमय मन॥६६॥

(६६) प० अनु०—गौरसुन्दर के विश्वरूप को देखकर प्रसन्नचित्त होते हुये दोनों 'प्रभु–प्रभु' कहकर स्तुति करने लगे।

(६६) गौः भाः—"आमार प्रभुर श्रीगौरसुन्दर"। आः १७/१५३ संख्या का भाष्य द्रष्टव्य है।

महाप्रभु की एतादृशी लीला देखने में साधारणजन असमर्थ–

ए सब कौतुक हय श्रीवास–मन्दिरे।
तथापि देखिते शक्ति अन्य नाहि धरे॥६७॥

(६७) प० अनु०—यद्यपि यह सब कौतुक श्रीवास के मन्दिर में होता रहता था, फिर भी उसे देखने की शक्ति दूसरों में नहीं थी।

गौरचन्द्र को 'सर्वमहेश्वर' के रूप में स्वीकार न करने वाला व्यक्ति अदर्शनीय है–

अद्वैतेर श्रीमुखेर ए सकल कथा।
इहा ये ना मानये से दुष्कृति सर्वथा॥६८॥
'सर्व महेश्वर गौरचन्द्र' ये ना बले।
वैष्णवेर अदृश्य से पापी सर्व–काले॥६९॥
आमार प्रभुर प्रभु गौरांगसुन्दर।
एइ से भरसा आमि धरिये अन्तर॥७०॥

(६८–७०) प० अनु०—अद्वैत ने अपने श्रीमुख से ये सब बातें कही हैं। जो इन्हें नहीं मानता है, वह सब प्रकार से दुष्कृतिवान् है। गौरचन्द्र को 'सर्व–महेश्वर के रूप में जो स्वीकार नहीं करता, वह पापी सदा वैष्णवों के लिए न देखने योग्य हैं गौरांगसुन्दर मेरे प्रभु के प्रभु हैं। यही मेरा भरोसा है, जिसे मैं अपने हृदय में धारण करता हूँ।

भक्त–व्यतीत नवद्वीप–लीला दूसरों के लिए अगम्य है–

नवद्वीपे हेन सब प्रकाशेर स्थान।
तथापिह भक्त बहि ना जानये आन॥७१॥

(७१) प० अनु०—यद्यपि नवद्वीप में यह सब लीलाएँ प्रकाशित हो रही थीं, फिर भी भक्तों को छोड़कर और कोई नहीं जान सका।

त्रिविध 'भक्ति'–शब्द सम्बंधाभिधेय–प्रयोजन उद्देशक है–

भक्ति–योग, भक्ति–योग, भक्ति–योग–धन।
'भक्ति' एइ—कृष्ण–नाम–स्मरण–क्रन्दन॥७२॥

(७२) प० अनु०—भक्ति–योग, भक्ति–योग और भक्ति–योग ही धनस्वरूप हैं। कृष्ण–नाम स्मरण और क्रन्दन को 'भक्ति' कहा जाता है।

(७२) गौः भाः—भक्तियोग—पहली बार 'भक्ति'– शब्द 'संबन्ध' के उद्देश्य से उल्लिखित हुआ है, दूसरी बार 'भक्ति' का अभिप्राय 'अभिधेय' है और तीसरी बार 'भक्ति'–शब्द 'प्रयोजन' के उद्देश्य से लिखित है। श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण के माध्यम से मसृण–चित्त (निर्मल–चित्त) में भक्ति प्रकाशित होती हैं कठिन तर्कनिष्ठ–हृदय होने से अथवा प्रभुत्वाकांक्षा रहने से सेवोन्मुखी वृत्ति आत्मा में स्थान नहीं पाती हैं अभक्तियोग से आत्मविकृत धर्म ही प्रकाशित होती है।

कृष्णनाम–स्फुर्त्ति की अवस्था–

'कृष्ण बलि' कान्दिले से कृष्ण–नाम मिले।
धने कुले किछु नहे 'कृष्ण' ना भजिल॥७३॥

(७३) प० अनु०—'कृष्ण' कहकर क्रन्दन करने से कृष्ण–नाम मिलता है। 'कृष्ण' भजन के बिना धन और कुल कुछ नहीं दे सकते।

(७३) गौः भाः—कृष्णसेवा के अतिरिक्त प्राकृत मर्यादा–सम्पन्न वंश एवं विभिन्न प्रकार का ऐश्वर्य, यह सब कुछ अकिंचित्कर (व्यर्थ) है। अहंकार रहित चित्त में, द्रवीभूत का–हृदय से 'कृष्ण' कहकर पुकारते– पुकारते 'कृष्ण–नाम' एवं 'नामी–कृष्ण'— दोनों अभिन्नः हैं ऐसी उपलब्धि हो जाने से नाम की नित्य सेवा प्राप्त होती है। तर्क और अहंकार से पीड़ितजन के दुःख जनित क्रन्दन के द्वारा भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती हैं परन्तु निरहंकार जनों के आर्दचित्त में ही भगवत्सेवोन्मुखता प्रकाशित होती है। उसके साथ जड़जगत् मं प्रभुता के लिए अथवा प्रभुता से विच्युत अवस्था के कारण जो दुःख जनित क्रन्दन दिखाइ देता है, उसका यहाँ अभिप्रेत (उद्देश्य) नहीं है; यहाँ क्रन्दन का अभिप्राय नित्य आह्लाद जनित आनन्द से क्रन्दन से क्रन्दन समझना होगा।

विश्वरूप–दर्शन की फलश्रुति–

दुइ ठाकुरेर विश्वरूप–दरशन।
इहा ये शुनये ता'रे मिले कृष्ण–धन॥७४॥

भक्तों के साथ प्रभु का अपने घर जाना–

क्षणेके सकल संवरिया गौरचन्द्र।
चलिलेन निज–गृहे लइ भक्त–वृन्द॥७५॥

(७४) प० अनु०–दोनों ठाकुरों (अद्वैत एवं नित्यानन्द) के द्वारा विश्वरूप–दर्शन के इस प्रसंग को जो सुनता है, उसे कृष्णधन की प्राप्ति होती है।

(७५) प० अनु०–एक क्षण में गौरचन्द्र सब कुछ गोपन करके भक्तवृन्द को साथ लेकर अपने भवन की ओर चल दिये।

विश्वरूप के दर्शन करके अद्वैत–नित्यानन्द में बाहरी सुध–बुध का अभाव–

विश्वरूप देखिया अद्वैत–नित्यानन्द।
काहारो नाहिक बाह्य,—परम आनन्द॥७६॥
वैभव–दर्शन–सुखे मत्त दुइ जन।
धुलाय यायेन गड़ि सकल अंगन॥७७॥
केह नाचे, केह गाय दिया करताली।
ढुलिया ढुलिया बुले दुइ महाबली॥७८॥

(७६–७८) प० अनु०–प्रभु का विश्वरूप देखकर अद्वैत और नित्यानन्द में परमानन्द के कारण बाहरी ज्ञान नहीं था। वैभव–दर्शन के सुख में मत्त होा गये। दोनों आँगन की धूल में लोट–पोट होने लगे। कोई नृत्य करता, कोई हाथों से ताली बजा–बजाकर कीर्तन करता। दोनों महाबली झूमते–झामते हुये घूमने लगे।

नित्यानन्द और अद्वैत में प्रेमकलह–

एइ मते दुइ जने महा कुतूहली।
शेषे दुइ जनेह बाजिल गाला–गालि॥७९॥
अद्वैत बलये—''अवधूत मातालिया!
एथा कोन् जन तोके आनिल डाकिया॥८०॥
दुयार भाँगिया आसि साम्भाइलि केने?
'संन्यासी' करिया तो'रे बले कोन' जने?८१॥
हेन जाति नाहि, ना खाइला या'र घरे।
'जाति आछे', हेन कोन् जने बले तोरे?८२॥
वैष्णव–सभाय केने महा–मातोयाल?
झाट नाहि पालाइले नाहिवेक भाल॥''८३॥
नित्यानन्द बले,—''आरे नाड़ा, बसि' था।

किलाइया पाड़ों आगे देखाइ प्रताप॥८४॥
आरे बुड़ा बामना तोमार भय नाइ।
आमि अवधूत–मत्त, ठाकुरेर भाइ॥८५॥
स्त्रीये पुत्रे गृहे तुमि परम संसारी।
परमहंसेर पथे आमि अधिकारी॥८६॥
आमि मरिलेओ किछु बलिते ना पार।
आमा' सने तुमि अकारणे गर्व करे॥''८७॥
शुनिया अद्वैत क्रोध अग्नि–हेन ज्वले।
दिगम्बर हइया अशेष मन्द बले॥८८॥
''मत्स्य खाओ, मांस खाओ, केमत संन्यासी!
वस्त्र एड़िलाम आमि, एइ दिग्वासी॥८९॥
कोथा माता–पिता, कोन् देशे वा वसति?
के जानये, आसिया बलुक देखि' इथि॥९०॥
एक चोरा आसिया एतेक करे पाक।
खाइमु गिलिमु संहारिमु सब थाक॥९१॥
ता'रे बलि 'संन्यासी', ये किछु नाहि चाय।
बोलाय 'सन्यासी', दिने तिनबार खाय॥९२॥
श्रीनिवास पण्डितेर मूले जाति नाइ।
कोथाकार अवधूते आनि' दिला ठाञि॥९३॥
अवधूत करिल सकल जाति नाश।
कोथा हैते मद्यपेर हैल परकाश॥''९४॥
कृष्ण–प्रेम–सुधा–रसे मत्त दुइ जन।
अन्योन्ये कलह करेन सर्वक्षण॥९५॥

(७९–९५) प० अनु०—इस प्रकार से महा–आनन्द में मत्त दोनों जनों के बीच अन्त में गाली–गलौज शुरू हो गई। अद्वैतय कहने लगे,–"मतवाले अवधूत! तुझे किसने यहाँ बुलाया है? क्यों द्वार तोड़कर तू अन्दर घुस आया है? कौन तुझे 'संन्यासी' कहता है? ऐसी कोई जाति नहीं है, जिसके घर तूने भोजन न किया हो। कौन कहता है कि तेरी कोई 'जाति' है? वैष्णव–सभा में महा–मतवाले का आगमन क्यों हुआ है? जल्दी भाग जा, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।" नित्यानन्द बोले,–"अरे नाड़ा, बैठ जा; नहीं तो अपना पौरुष दिखाते हुये तुमको पटक दूँगा। अरे बुड्ढे ब्राह्मण! तुझे डर नहीं लगता? मैं मत्त अवधूत हूँ, ठाकुर का भाई हूँ। स्त्री–पुत्र–घर–सहित तुम तो परम संसारी हो और मैं परमहंसों के मार्ग का अधिकारी हूँ। मुझसे मार खाकर भी तुम कुछ बोल नहीं पाओगे। मेरे सामने तुम अकारण ही अहंकार कर रहे हो।" यह सब सुनकर अद्वैत क्रोध में अग्नि की तरह जलने लगे और दिगम्बर (नंगे) होकर खरी खोटी कहने लगे—"मत्स्य खाता है, पांस खाता है, तू कैसा संन्यासी है! यह लो, मैंने वस्त्रों को त्याग दिया और दिगम्बर बन गया। अब बता,–कहाँ हैं तेरे माता–पिता, कहाँ का रहने वाला है? कोई आकर यहाँ बताये तो। एक चोर यहाँ आकर इतना हल्लागुल्ला मचा रहा है। सब खा डालूँगा, सब निगल जाऊँगा, सब का संहार कर दूँगा। उसे ही 'संन्यासी' कहा जता है, जो कुछ नहीं माँगता। अपने आपको 'संन्यासी' कहता है किन्तु दिन में तीनबार खाता हैं वस्तुतः श्रीनिवास पण्डित की कोई जाति नहीं है। न जाने कहाँ से एक अवध ूत को लाकर घर में बसा लिया है। इस अवधूत ने सबको जातिभ्रष्ट कर डाला है। न जाने कहाँ से एक मद्यप यहाँ आ गया है।" इस प्रकार कृष्णप्रेम के सुधारस में दोनों मत्त रहते थे और दोनों आपस में हर समय कलह किया करते थे।

(८५–८६) गौः भाः—प्रेम–कलह में श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अपनी अवस्था का वर्णन करते हुये स्वयं को परमहंस पथ का पथिक कहा और बहिर्दशक की दृष्टि के निकम्मेपन को समझाने के लिए श्रीअद्वैत प्रभु कोा संसारोन्मत्त गृहस्थी, स्त्री–पुत्र का पालक बताया।

श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अपने आपको 'परमहंस– अवधूत' 'श्रीगौरसुन्दर का अग्रज' आदि होने के अभिमान के साथ अद्वैतप्रभु को 'बुद्धिभ्रष्ट वृद्ध', 'दरिद्र ब्राह्मण' तथा 'अति साहसी' कहकर निर्देशित किया तथा उनको बलपूर्वक अपनी अधीनता में ले आने के लिए प्रबल शक्ति–प्रदर्शन करने की प्रतारणा (छलना) की। यह सब श्रीअद्वैत के द्व ारा श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रति प्रणय ज्ञापक सरोष वचनों का प्रयोग करने के फलस्वरूप हुआ था। अद्वैत–प्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को 'मतवाला', अनाधिकार–प्रवेशकारी', 'संन्यास–धर्म–विगर्हित', 'पंक्तिहीन', शुद्धशुद्ध विचार रहित होकर सभी के निकट उच्छिष्ट भोजनकारी', वैदिक धर्म–विच्युत' आदि कहकर और अद्वैत के गृह का परित्याग न करने पर उन्हें विशेषरूप से दंडित किया जायेगा, ऐसा कहने पर इन सब वचनों का प्रतिवाद करते हुये नित्यानन्द के द्वारा यह सब अहंकार–प्रतिम (तुल्य) उक्ति समूह उच्चारित हुये थे।

(८९) गौः भाः—श्रीअद्वैत वाद–प्रतिवाद के छल से अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले,–"मत्स्य–मांसभोजी दारी संन्यासी जिस प्रकार से गृहस्थी के वस्त्रों का परित्याग करके अपने आपको दिगम्बर कहकर अभिमन करते हैं, ऐसे ही तुम्हारा व्यवहार हैं वैष्णवविद्वेषी तांत्रिक विषयासक्त शाक्तेय–मतावलम्बी संन्यासीगण जिस प्रकार से पंच 'म'–कार का आवाहन करते हुये अपने संन्यासी की प्रसिद्धि के संरक्षण के लिए यत्न करते हैं, तुम भी ऐसे ही हो। यथेच्छाचार कभी भी वेदानुगत्य–प्रभाववाला संन्यासी धर्म नहीं हो सकता है।"

इन सब उक्ति–प्रत्युक्तियों को पढ़कर निर्बोध पाठकगण श्रीबलदेव–श्रीनित्यानन्द प्रभु को आचार–भ्रष्ट और संन्यासच्युत न समझ लें। जो लोग अद्वैत के द्वारा की गई इस प्रकार की उक्तियों के मर्म को समझे बिना सरलभाव से अपनी निर्बुद्धिता का प्रकाश करते हैं वे नित्यानन्द–प्रभु के स्वरूप को समझने में अनुपयुक्त हैं, ऐसा जानना होगा। श्रीअद्व ैत प्रभु द्वारा की गई ये सब विद्रुपोक्तियाँ अथवा व्याज–निन्दा मत्स्य–मांस–भोजीगण के लिए दुष्प्रवृत्ति–वर्धन करने का एक कौशलमात्र है। जिन लोगों का भाग्य अतीव मन्द है, वे इन सब वाक्यों का उद्देश्य समझने में असमर्थ होकर निजी चतुरता के सभी अभाव के कारण जागतिक पाप का आश्रय लेते हुये नरकपथ के पथिक बन जाते हैं। प्रतारण ा–मूलक मीठी–मीठी बातों के आगे जो झुक जाते हैं, वे कभी कभी चतुर कृष्णभक्त नहीं बन सकते हैं।

(९२) गौः भाः–श्रीअद्वैत ने कहा,"संन्यासी का धर्म—किसी से कुछ नहीं लेना; परन्तु नित्यानन्द–प्रभु 'सन्यासी' के रूप में अपना परिचय देते हुये दिन में तीनबार भोजन के लिए व्यस्त रहते हैं।" जो लोग कर्म के प्रति विशेष आग्रही होने के कारण चुक्तवैराग्य एवं फल्गुवैराग्य के बीच का अन्तर नहीं समझ पाते, वे इन सब युक्तियों को, जो किसी काम में नहीं लगतीं, उसे समझने में असमर्थ होकर अपने आपको 'तार्किक' मानते हैं; परन्तु उन लोगों की तर्क की भित्ति नितान्त दुर्बल हैं इसलिए प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति समझ जाता है कि, वे 'निर्बोध' हैं। उस निर्बुद्धिता के फलस्वरूप बहिः प्रज्ञा के द्वारा चालित होकर जो कुभाव हृदय में पुष्ट होता है, वह भगवद्भक्त– दर्शन एवं भगवद्–दर्शन के मार्ग में अन्तराय–स्वरूप है। जो लोग फल्गुवैराग्य एवं युक्तवैराग्य के बारे में श्रीकृष्णचैतन्य

महाप्रभु के श्रीमुख से श्रवण-पूर्वक श्रीरूप प्रभु की लेखनी के माध्यम से आश्वास्त हुये हैं, उन लोगों क मूर्खता दूर हुई है, ऐसा समझना होगा।

(९३) गौः भाः—श्रीनिवास पण्डित दिन-रात अपने व्यवहार से प्रत्येक व्यक्ति की वैष्ाावता का आदर करते थे। अतएव निर्बोध स्मातों के वैदिक अनुशासन का सुष्ठुभाव से पालन न करने के कारण, सामाजिक अधिष्ठान सभी प्रकार से निर्मूलित हुआ था, इसी कारण उन्होंने अज्ञातकुलशील श्रीनित्यानन्द-प्रभु को 'अवधूत' रूप से ग्रहण करते हुये सामाजिक जनों के निकट स्थापित किया था।

सामाजिक जातिगत अनुष्ठान का परिहार करते हुये भगवद्-भक्ति में अग्रसर होना सांसारिक विचारों के प्रतिकूल है।

विष्णु-वैष्णव की क्रियामुद्रा बिना समझे किसी एक का पक्षधर होने से सर्वनाश-

इथे एक जनेर हइया पक्ष येइ।
अन्य जने निन्दा करे, क्षय याय सेइ॥९६॥
हेन प्रेम-कलहेर मर्म ना जानिया।
एके निन्दे, आर वन्दे, से मरे पुड़िया॥९७॥
अद्वैतेर पक्ष हइया निन्दे गदाधर।
से अधम कभु नहे अद्वैत-किंकर॥९८॥
ईश्वर से ईश्वरेर कलहेर पात्र।
के बुझिवे विष्णु-वैष्णवेर लीला मात्र॥९९॥
'विष्णु' आर 'वैष्णव' समान थुइ हय।
पाषण्डी निन्दक इहा बुझे विपर्यय॥१००॥
सकल वैष्णव-प्रति अभेद देखिया।
ये कृष्ण-चरण भजे, से याय तरिया॥१०१॥
श्रीकृष्ण-चैतन्य नित्यानन्द-चान्द जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥१०२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे विश्वरूप-दर्शनादि-वर्णन नामंचतुर्विंशोऽध्यायः।

(९६-१०२) प० अनु०—इसमें एक का पक्षधर बनकर जो दूसरे की निन्दा करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है। इस प्रकार की प्रेम-कलह का मर्म बिना समझे जो एक की निन्दा और दूसरे की वन्दना करता है, वह जलकर मरता है। जो व्यक्ति अद्वैत का पक्षधर बनकर गदाधर की निन्दा करता है, वह अधम कभी भी अद्वैत का दास नहीं है। जहाँ ईश्वर ही ईश्वर के कलह का पात्र हो, इस विष्णु-वैष्णव की लीला को कौन समझ सकता है। 'विष्णु और वैष्णव' दोनों सामान होते हैं। इसको नहीं समझकर पाखंडी निन्दक विपरीत बुद्धि करते हैं। जो सभी वैष्णवों को अभेद दृष्टि से देखता है और कृष्णभजन करता है, वही तर जाता है। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(९८) गौः भाः- श्रीअद्वैत के शिष्य-सम्प्रदाय के अन्तर्गत सभी भक्तों ने आचार्य के अप्रकट के बाद श्रीगदाधर का आनुगत्य स्वीकार कर लिया, इससे कतिपय निर्बोध व्यक्तियों ने अद्वैत का परिचय समझने में असमर्थ होने के कारण उन्हें अधिक सम्मान देने के छल से गदाधर पण्डित के भक्तिधर्म-प्रचार-कार्य की गर्हणा (निन्दा) की। परन्तु वास्तव में उस प्रकार के अवैध कर्म के द्वारा गदाधर का विरोध करने वाले पाखण्डियों को अद्वैत प्रभु के नित्य भृत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वे सब अद्वैत-पादपद्म में अपराधी होने के कारण कपटता-पदर्शन-पूर्वक अद्वैत प्रभु की प्रशंसा के छल से श्रीगदाधर की निन्दा करते हैं, उन्हें अद्वैत प्रभु कभी भी सहन नहीं करते हैं, परन्तु उन सब भृत्यब्रुवगण

ों को निजी भृत्यों के रूप में न अपनाकर भगा देते हैं।

(९९) गौः भाः–विष्णु अथवा उनके नित्य भृत्य वैष्णवगण, सभी ईश्वर, यानी प्रभु हैं। दासगण इसे समझने में समर्थ नहीं हैं। विष्णु के प्रकाश–विशेष आपस में वैषम्य उत्पादन–पूर्वक जिस भेद का प्रतिपादन करते हैं, अथवा वैष्ावों के बीच भगवत्–प्रेम–वर्धन के निमित्त जो विवादों की छलना दिखाई देती है, उन सब बातों का साधारण कर्मफल– बाध्य जीवों के ईश्वर अथवा प्रभु हैं; इसलिए प्रभु के साथ दूसरे वैष्णव प्रभु की, श्रीनित्यानन्द के साथ श्रीअद्वैत प्रभु की जिन सब विवाद–सदृश बातों को निर्बोध सरलबुद्धि वाले व्यक्ति अन्य साधारण जागतिक दृष्टान्तों के समान समझकर उनकी निन्दा–प्रशंसा के बीच प्रवेश करते हैं, वह उन लोगों की मूर्खता–मात्र है।

(१००–१०१) गौः भाः—विष्णु एवं वैष्णव विषयाश्रय–भेद से विशेष धर्मयुक्त हैं; अतएव विष्णु के तात्पर्य एवं वैष्णव के तात्पर्य में भेद है, ऐसा जानने से समता के स्थान पर वैषम्य अपना अधिकार कर लेता है। इस प्रकार का वैषम्य पाखण्डी एवं निन्दकों में प्रबल होता है; क्योंकि, वे सब विष्णु एवं वैष्णव को भिन्न तात्पर्यपरक जानकर अपने विचारों के अधीन ले आते हैं। उन लोगों का विष्णुसेवा–वर्जित अहंकार उन्हें 'प्रभु' के रूप में सजाकर विष्णु–वैष्णव में समता एवं वैषम्य का विचार करता है। विषयाश्रय बोध का अभाव ही उन लोगों में निन्दा एवं पाखंड–प्रवृत्तियों का जनक है। इसलिए श्रीकृष्ण चरण–भजन में एवं कृष्णलीला में वैष्णव–मात्र के ही प्रवेशाधिकार के अभेदत्त्व को जानने से जीव सुष्ठुरूप से भजन कर सकता है। परिकर–वैशिष्ट्य–विचार–रहित होकर भगवान् के नाम, रूप एवं गुणों का जो ग्रहण है; इसमें परिकर वैशिष्ट्य की उपयोगिता न रहने के कारण जीवों में भगवद्–भजन की संभावना दिखाई नहीं देती है। ऐसा कहकर अवैष्णवता को अथवा विष्णुसेवा–रहित धर्म के यजनकारी को 'अवैष्णव' न मानकर वैष्णव–भ्रान्ति में अभेद जानने से भगवद्–भजन की संभावनाएँ लुप्त हो जाती हैं।

विष्णुभक्ति–रहित वैष्णव को ही 'अवैष्णव' कहा जाता है। उष्णता–रहित वस्तु को ही 'शीतल' कहा जाता है। अति शीतलता में भी उष्णता के अति अल्प अंश अवस्थित रहते हैं। इसलिए शीतोष्ण विचार के अभेद–दर्शन में विचित्र–विलास का अभाव विद्यमान रहता है। परन्तु विचित्रता अथवा विलास स्वरूप का धर्म है। विरूप–विचार से स्वभाव एवं अभाव का साम्य अथवा वैषम्य, दोनों दोषयुक्त हैं। इन दोनों में जड़वर्जित चिन्मय भाव उदित न होने तक जीवों में शुद्ध भावाभाव–सेवा–प्रवृत्ति का उदय नहीं होता हैं सेवा–प्रवृत्ति के अनुदय से भगवद्–दर्शन अथवा भक्ति में अवस्थान संभव नहीं है।

इति गौडिय–भाष्य में चतुर्विंश अध्याय समाप्त

O

पंचविंश अध्याय

पंचविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में प्रभु द्वारा अपने-नामकीर्तन में ऐश्वर्य-प्रकाश, 'दुःखी'-दासी के द्वारा गंगाजल आनयनपूर्वक प्रभु सेवा, 'दुःखी' का 'सुखी'- नामकरण, श्रीवास-पुत्र को परलोक प्राप्ति, प्रभु-द्वारा मृत बालक के मुख सेस तत्त्वकथा-कीर्तन के द्वारा श्रीवास-गोष्ठी का शोक-शमन एवं गदाधर को अर्चनभार प्रदान इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवास के घर संकीर्तन-विलास में सदैव आविष्ट रहते थे एवं अपना ऐश्वर्य-प्रकाश किया करते थे। बाह्य चेतना प्राप्त होने पर भक्तों के साथ गंगास्नान किया करते थे, कभी-कभी भक्तगण श्रीवास के आँगन में ही प्रभु को स्नान करवा देते थे।

प्रभु द्वारा आनन्द-सहित नृत्य करते समय श्रीवास की 'दुःखी' नाम की दासी अश्रुपूर्ण नेत्रों से नृत्य देखा करती थी एवं घड़ों को गंगाजल से परिपूर्ण करके एक लाईन में रख दिया करती थी। यह देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने परम सन्तोष के साथ श्रीवास से उस जल लाने वाली का परिचय पूछा और यह कहकर कि इस प्रकार के सेवा-सोभाग्य से सम्पन्न व्यक्ति कभी भी 'दुःखी' नहीं हो सकता है, ऐसा विचार करके उसका नाम 'सुखी' रख दिया।

एकदिन श्रीवास के आंगन में प्रभु कीर्तन-विलास में मत्त थे। उसी समय श्रीवास के पुत्र को परलोक की प्राप्ति हो गई। अचानक नारियों की क्रन्दन-ध्वनि सुनकर श्रीवास ने घर में प्रवेश करके ठाकुर के नृत्यकालीन प्रेमानन्द में व्याघात करने वाले मायिक व्यवहार को कुछ देर के लिए बन्द करने को कहा; ऐसा न करने पर गंगाजल में अपने प्राण-विसर्जन का भय दिखाया एवं प्रभु के कीर्तन में पुनः परम उल्लास-सहित योगदान किया। अन्तर्यामी प्रभु ने अपने हृदय में आनन्द के अभाव का छल दिखाकर, श्रीवास के घर में दुर्घटना तो नहीं हुई है, ऐसा पूछा। तब भक्तों ने सारी घटना के बारे में प्रभु से निवेदन कर दिया। श्रीवास की प्रभु-प्रीति-चेष्टा देखकर प्रभु क्रन्दन करने लगे। तत्पश्चात् मृत बालक को सम्बोधन करके उससे श्रीवास के घर को छोड़ने का कारण पूछने पर मृत शिशु ने उत्तर में कहा कि उस शरीर में उसको जितने दिन रहना था, वह रह चुका है; अब उस शरीर को भोगन के उपरान्त वह कहीं ओर जा रहा है। सभी अपने-अपने कर्मों का फल भोगते रहते हैं। पिता-माता-पुत्रादि-सम्बन्ध वृथा हैं

मृतक के मुख से तत्त्वज्ञान की यह बात सुनकर श्रीवास-गोष्ठी का शोक दूर हो गया। प्रभु के चरण पकड़कर सभी विनय के साथ विविध वाक्यों के द्वारा प्रभु का स्तवन करने लगे। भगवान् प्रेमानन्द में कीर्तन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवास को संसार की रीति के बारे में समझाया। फिर उन दोनों भाइयों ने श्रीवास के पुत्र के रूप में अवस्थान करना अंगीकार किया।

श्रीगौरसुन्दर पांचरात्रिक–विधानानुसार विष्णुपूजा का आयोजन किया करते थे, परन्तु प्रेम में उन्मत्त हो जाने से अर्चन कार्य करने में असमर्थ होने पर उन्होंने अर्चन–दायित्व श्रीगदाधर पण्डित को समर्पित कर दिया।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

गोष्ठी–सहित चैतन्यदेव का जयगान–

जय जय सर्वलोकनाथ गौरचन्द्र।
जय विप्र–वेद–धर्म–न्यासीर महेन्द्र॥१॥
जय शची–गर्भ–रत्न–कारुण्य–सागर।
जय जय नित्यानन्द, जय विश्वम्भर॥२॥
भक्तगोष्ठी–सहित गौरांग जय जय।
शुनिले चैतन्य–कथा भक्ति लभ्य हय॥३॥

(१–३) प० अनु०—सब लोकों के स्वामी श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। विप्र, वेद, धर्म और संन्यासी के महेन्द्रस्वरूप की जय हो। शची—गर्भ–रत्न एवं करुणासागर प्रभु की जय हो। नित्यानन्द की जय हो, जय हो। विश्वम्भर की जय हो। नित्यानन्द की जय हो, जय हो। विश्वम्भर की जय हो। भक्तगोष्ठी– सहित गौरांग की जय हो, जय हो। चैतन्य–कथा सुनने से भक्ति की प्राप्ति होती है।

(१) गौः भाः—सर्वलोक नाथ,–पुरुषोत्तम श्रीगौरसुन्दर चतुर्दश लोकों के नाथसमूह के एकमात्र पूजनीय विग्रह हैं एवं वे ही सारे जगत् के एकमात्र नाथ यानी पति हैं।

विप्र–महेन्द्र,–जीवशक्ति में भगवान् की प्रधानता दिखाई देने से उसे 'इन्द्र' कहते हैं; 'विप्र' समस्त वर्णों के गुरु हैं। विप्रसज्जा में जो 'इन्द्र' नाम सपरिचित हैं, उनमें से जो सर्वश्रेष्ठ हैं, वे हुये 'विप्र–महेन्द्र'।

वेद–महेन्दद्र,–वेदपुरुष इन्द्रगणों में जो सर्वश्रेष्ठ हैं।

धर्म–महेन्द्र,–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष–यह चतुर्वर्ग समूह–इन्द्रसदृश हैं। इसके अतिरिक्त जो परधर्ममूर्त्ति हैं, वे अधोक्षज–सेवा–धर्म के प्रवर्त्तक हैं।

न्यासि–महेन्द्र,–कर्मी संन्यासी, ज्ञानी एवं योगी–संन्यासी आदि इन्द्रतुल्य एवं चुक्तवैराग्य के तारतम्य के प्रदर्शक हैं, अतः वे 'न्यासि–महेन्द्र' हैं।

मध्यखण्ड–कथा का माहात्म्य–

मध्यखण्ड–कथा भक्तिरसेर निधान।
नवद्वीपे ये क्रीड़ा करिला सर्वप्राण॥४॥

(४) प० अनु०—मध्यखण्ड की कथा भक्तिरस का आधार है। सर्वप्राणस्वरूप प्रभु ने नवद्वीप में लीलाएँ की हैं।

प्रभु–द्वारा निरन्तर हरिकीर्तन एवं विविध ऐश्वर्य–प्रकाश–

निरवधि करे प्रभु हरि–संकीर्तन।
आपन ऐश्वर्य प्रकाशते सर्वक्षण॥५॥

(५) प० अनु०— प्रभु निरवधि (निरन्तर) हरि–संकीर्तन में मत्त रहते थे और हर समय अपने ऐश्वर्य का प्रकाश किया करते थे।

निजी नामावेश में प्रभु का नृत्य एवं प्रेमविकार–

नृत्य करे महाप्रभु निज–नामावेशे।
हुँकार करिया महा अट्ट अट्ट हासे॥६॥
प्रेमरसे निरवधि गड़ागड़ि याय।
ब्रह्मार वन्दित अंग पूर्णित धूलाय॥७॥
प्रभुर आनन्द–आवेशेर नाहि अन्त।
नयन भरिया देखे सब भाग्यवन्त॥८॥

(६–८) प० अनु०—अपने नाम के आवेश में महाप्रभु नृत्य करते रहते थे और बीच–बीच में हुँकार–पूर्वक अट्टहास करते थे। प्रेमरस में प्रभु निरन्तर भूमि पर लोट–पोट होते रहते थे। ब्रह्मा–द्वारा वन्दित उनके श्रीअंग धूल से पूर्णित हो जाते थे। उनके आनन्द–ओवेश का अन्त नहीं था। सभी भाग्यवन्तजन नयन भरकर यह सब देखा करते थे।

(६) गौः भाः—निजनामावेशे (अपने नाम के आवेश में)– भगवान् श्रीगौरसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन से अभिन्न हैं। कृष्णनाम में विभोर रहने के कारण उन्हें निजी नामकीर्तन–स्वरूप–प्रेमावेश में अवस्थित कहा जाता है।

(७) गौः भाः—श्रीचतुर्मुख ब्रह्मा भगवान् के सेवक होने के कारण भगवान् के श्रीअंग की वन्दना किया करते हैं स्वरूप से कृष्णप्रीतिरस से पूर्ण रहने पर भी बाहरी जगत् की निर्मलता के प्रति ध्यान न देकर वे धूल से धूसरित थे।

बाह्य बोध होने पर प्रभु के कार्य–

बाह्य हैले वैसे प्रभु सर्वगण लइया।
कोनदिन गंगाजल विहरये गिया॥९॥
कोनदिन नृत्य करि' बसेन अंगने।
घरे स्नान करायेन सर्व भक्तगणे॥१०॥

(९–१०) प० अनु०— बाह्य ज्ञान होने पर प्रभु सब के साथ बैठते थे। किसी–किसी दिन जाकर गंगाजल में विहार भी करते थे। किसी–किसी दिन जब नृत्य समाप्त–कर वे आंगन में बैठते थे; तब सभी भक्तवृन्द उन्हें घर में ही स्नान करा दिया करते थे।

श्रीवास की दासी 'दुःखी' द्वारा सेवा–

यतक्षण प्रभुर आनन्द–नृत्य हये।
ततक्षण 'दुःखी' पुण्यवती जल बह॥११॥
क्षणेके देखये नृत्य सजल–नयने।
पुनः पुनः गंगाजल बहि' बहि' आने॥१२॥

(११–१२) प० अनु०—जब तक प्रभु का आनन्द– नृत्य होता रहता था, तब तक पुण्यवती 'दुःखी' जल ढोती रहती थी। कभी बीच में एक क्षण अश्रुपूर्ण नेत्रों से नृत्य देख लिया करती थी। फिर बारम्बार गंगाजल ढो–ढोकर लाती रहती थी।

'दुःखी' की सेवा से प्रभु का सन्तोष एवं उसका 'सुखी' नामकरण–

सारि करि' चतुर्द्दिगे एड़े कुम्भगण।
देखिया सन्तोष बड़ श्रीशची–नन्दन॥१३॥
श्रीवासेर स्थाने प्रभु जिज्ञासे आपने।
''प्रतिदिन गंगा–जल कोन् जने आने?''१४॥
श्रीवास बलये–''प्रभु, 'दुःखी' बहि' आने।''
प्रभु बले,–''सुखी' करि' बल सर्वजने॥१५॥
ए जनेर 'दुःखी' नाम कभु योग्य नय।
सर्वकाल 'सुखी'–हेन मोर चित्ते लय॥''१६॥

(१३–१६) प० अनु०—दुःखी चारों ओर कुम्भ–समूह (घड़ो) को पंक्ति में सजाकर रखती थी। उसे देखकर श्रीशचीनन्दन को बड़ा सन्तोष होता था। श्रीवास से प्रभु ने स्वयं पूछा,–"प्रतिदिन गंगाजल कौन लाता है?" श्रीवास ने कहा,–"प्रभु, 'दुःखी' नाम से पुकारना।" यह कभी भी 'दुःखी' नाम के योग्य नहीं है। मुझे लगता है कि यह सदा ही 'सुखी' है।"

'दुःखी' के प्रति प्रभु की कृपा से भक्तों का आनन्द एवं 'दुःखी' को 'सुखी' सम्बोधन–

एतेक कारुण शुनि' प्रभुर श्रीमुखे।
कान्दिते लागिला भक्तगण प्रेमसुखे॥१७॥
सबे 'सुखी' बलिलेन प्रभुर आज्ञाय।

'दासी'–बुद्धि श्रीवास ना करे सर्वथाय॥१८॥

(१७–१८) प० अनु०—प्रभु के श्रीमुख से ऐसी करुणा की बात सुनकर भक्तवृन्द प्रेमसुख में क्रन्दन करने लगे। प्रभु की आज्ञा से सभी उसे 'सुखी' कहकर सम्बोधित करने लगे। श्रीवास ने भी उसे सब प्रकार से दासी–बुद्धि से देखना बन्द कर दिया।

कृष्णसेवा–चेष्टाहीन संन्यास अथवा प्रायश्चित्तादि यम–यातना दूर करने में असमर्थ–

प्रेमयोगे सेवा करिलेइ कृष्ण पाइ।
माथा मुड़ाइले यमदण्ड ना एड़ाइ॥१९॥

(१९) प० अनु०—प्रेमयोग से सेवा करने पर ही कृष्ण को प्राप्त किया जा सकता है। केवल सिर मुड़ाने से यम दण्ड से छुटकारा नहीं मिलता हैं

(१९) गौः भाः—बाहर से संन्यास–ग्रहण करने से अथवा जिनीकृत पापों का प्रायश्चित करने से यमदंड से मुक्ति नहीं मिलती है। कृष्ण के प्रति प्रीति अर्जन करने के उद्देश्य से उनकी सेवा करने से ही कृष्ण की प्राप्ति होती है।

प्रेमनिष्ठा के अतिरिक्त जन्म, ऐश्वर्य–आदि की निष्फलता–

कुले, रूपे, धने वा विद्याय किछु नय।
प्रेम–योगे भजिले से कृष्ण तुष्ट हय॥२०॥

(२०) प० अनु०—कुल, रूप, धन अथवा विद्या से कुछ नहीं होने वाला है। प्रेमयोग से भजन करने पर ही कृष्ण सन्तुष्ट होते हैं।

(२०) गौः भाः—उच्चवंश, सुन्दर रूप, प्रचुर धन अथवा विद्या–प्रतिभा आदि का अवलम्बन करने से भगवत्–प्रीति उत्पन्न नहीं होती है; परन्तु उनके अनुकूल अनुशीलन में प्रेमनिष्ठ होने से ही भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। कर्मी से ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, और ज्ञानी से ज्ञानविमुक्त भक्त श्रेष्ठ हैं, जो उत्तरेत्तर कृष्णप्रीति के पात्र कहलाकर विवेचित होते हैं।

गौरसुन्दर के द्वारा वेद–भागवत–तत्त्व के आदर्श का प्रदर्शन–

यतेक कहेन तत्त्व वेदे भागवते।
सब देखायेन गौरसुन्दर साक्षाते॥२१॥

(२१) प० अनु०–वेद और भागवत में जिन तत्त्वों का वर्णन किया गया है, उन सबको गौरसुन्दर ने साक्षात् भाव में दिखाया हैं

कृष्णभक्त को निम्नस्तर में अवस्थित समझने वाले वृथा अभिमानी की तुलना में भक्त के घर की दासी का अधिक सौभाग्य–

दासी हइ' ये प्रसाद 'दुःखी' रे हइल।
वृथा–भिमानी सब ताहा ना देखिल॥२२॥
कि कहिब श्रीवासेर भाग्येर महिमा।
याँ'र दास–दासीर भाग्येर नाहि–सीमा॥२३॥

(२२–२३) प० अनु०—दासी होकर भी दुःखी ने जो कृपा प्राप्त की, उस कृपा को देखने में वृथा–अभिमानी व्यक्ति समर्थ नहीं हो सके। जिनके दास–दासियों के भाग्य की सीमा नहीं है, उन श्रीवास के भाग्य की महिमा का क्या कहना!

(२२) गौः भाः—श्रीवास के घर की परिचारिका के रूप में नियुक्त दुःखी श्रीगौरसुन्दर के लिए गंगाजल लाया करती थी। इससे भगवान् सन्तुष्ट हुये। इस कार्य से भगवान् ने उसके प्रति प्रसन्न होकर उस पुण्यवती 'दुःखी' को 'सुखी' नाम से अभिहित किया। यह सब अनुष्ठान 'वेद' एवं 'भागवत' आदि शास्त्रों में वर्णित तत्त्वों का ही उदाहरण

हैं। परिदर्शक- सम्प्रदाय दूर से विचारपूर्वक भागवान् में प्रेमनिष्ठ भक्तों को निम्नस्तर में विवेचना करने से उन लोगों का सिर्फ वृथा-अभिमान ही प्रकाशित होता है।

श्रीवास के पुत्र के परलोक-प्राप्ति से श्रीवास का आचरण-

एकदिन नाचे प्रभु श्रीवास-मन्दिरे।
सुखे श्रीनिवास-आदि संकीर्तन करे॥२४॥
दैवे व्याधियोगे गृहे श्रीवास-नन्दन।
परलोक हइलेन देखे नारीगण।।२५॥
आनन्दे करेन नृत्य श्रीशची-नन्दन।
आचम्बिते श्रीवास-गृहे उठिल क्रन्दन॥२६॥
सत्तरे आइला गृहे पण्डित श्रीवास।
देखे, पुत्र हइयाछे परलोक-वास॥२७॥
परम गम्भीर भक्त महा-तत्त्वज्ञानी।
स्त्री-गणेरे प्रबोधिते लागिला आपनि॥२८॥
''तोमरा त सब जान कृष्णेर महिमा।
सम्वर रोदन सबे, चित्ते देह' क्षमा॥२८॥
अन्तकाले सकृत शुनिले याँ'र नाम।
अति महा पातकीओ याय कृष्णधाम॥३०॥
हेन प्रभु आपने साक्षाते करे नृत्य।
गुण गाय यत ताँ'र ब्रह्मादिक भृत्य॥३१॥
ए समये याहार हइल परलोक।
इहाते कि युयाय करिते आर शोक?३२॥
कोन काले ए शिशुर भाग्य पाइ यबे।
'कृतार्थ' करिया आपनारे मानि तबे॥३३॥
यदि वा संसार-धर्मे नार' सम्वरिते।
विलम्बे कान्दिह, याँ'र येइ लय चित्ते॥३४॥
अन्य येन केह ए आख्यान ना शुनये।
पाछे ठाकुरेर नृत्य-सुखभंग हये॥३५॥
कलरव शुनि' यदि प्रभु बाह्य पाय।
तबे अजि गंगा प्रवेशिमु सर्वथाय॥''३६॥
सबे स्थिर हइलेन श्रीवास-वचने।
चलिलेन श्रीवास प्रभुर संकर्तीने॥३७॥
परानन्दे संकीर्तन करये श्रीवास।
पुनः पुनः बाड़े आरो विशेष उल्लास॥३८॥
श्रीनिवास पण्डितेर एमन महिमा।
चैतन्य पार्षदेर एइ गुण-सीमा॥३९॥

(२४-३९) प० अनु०—एकदिन प्रभु, श्रीवास के घर में नृत्य कर रहे थे। श्रीवास आदि सब भक्तजन सुख सेस संकीर्तन कर रहे थे। उसी समय दैवयोग से व्याधि के कारण नागरियों के सामने श्रीवास-नन्दन का परलोक गमन हो गया। शचीनन्दन आनन्द-पूर्वक नृत्य कर रहे थे कि अचानक श्रीवास के घर में क्रन्दन (रोने) की ध्वनि उठने लगी। ध्वनि सुनकर श्रीवास पण्डित शीघ्र घर में आये और देखा कि पुत्र को परलोक-प्राप्ति हो चुकी है। परम गंभीर महा-तत्त्वज्ञानी भक्त श्रीनिवास स्वयं स्त्रियों को सान्त्वना प्रदान करते हुये बोल—"कृष्ण की महिमा को तुम सब तो जानती हो'। इसलिए रोना बन्द करो और अपने आपको संभालो। अन्तकाल में जिनका नाम एकबार सुनने से अति महापातकी भी कृष्णधाम का प्राप्ति करता है, वे ही प्रभु साक्षात् नृत्य कर रहे हैं और ब्रह्मादि सभी भृत्यवर्ग उनकी महिमा का गुण-कीर्तन कर रहे हैं। ऐसे समय में जिसने परलोक को प्राप्त किया है, उसके लिये शोक प्रकट करना क्या उचित होगा? यदि इस शिशु-जैसा भाग्य मुझे कभी किसी समय भी मिल जाये, तो मैं अपने आपको 'कृतार्थ' समझूँगा। फिर भी, तुम सब यदि संसार-धर्म के कारण अपने आपको नहीं सम्भाल सकते, तो अपना मनचाहा क्रन्दन बाद में कर लेना। अभी किसी को इसके बारे में पता नहीं चलना चाहिए; क्योंकि, इससे ठाकुर

का नृत्य-सुख भंग हो सकता है। क्रन्दन-ध्वनि सुनकर यदि प्रभु के प्रेमानन्द में व्याघात हो जाये, तो मैं आज निश्चितरूप से गंगा में प्रवेश कर जाऊँगा।" श्रीवास का वचन सुनकर सभी सुस्थिर हो गईं और श्रीवास, प्रभु के संकीर्तन में चले गये। परम आनन्द सहित श्रीवास संकीर्तन करते रहे। संकीर्तन में श्रीवास का उल्लास बार-बार विशेषरूप से और भी अधिक बढ़ता गया। श्रीवास पण्डित की ऐसी महिमा थी, चैतन्य के पार्षदों की यही गुण-सीमा है।

(२४-३३) तथ्य—"शोकशातन"-(शोक निवारण)— प्रदोष समये, श्रीवास-अंगने, संगोपने गोरामणि। श्रीहरि-कीर्तन, नाचे नानारंगे, उठिल मंगल ध्वनि।।१॥ मृदंग मादल, बाजे करताल, माझे माझे जयतुर। प्रभुर नटन, देखि' सकलेर, हइल सन्ताप दूर।।२॥ अखण्ड प्रेमेते, मातल तखन, सकल भक्तगण। आपना पासरि', गोराचाँदे घेरि', नाचे गाय अनुक्षण।।३॥ एमत समये, दैव व्याधियोगे, श्रीवासेर अन्तः पूरे। तनय-वियोगे, नारीगण शोके, प्रकाशल उच्चैःस्वरे।।४॥ क्रन्दन उठिले, हबे रसभंग, भक्तिविनोद डरे। श्रीवास अमनि, बुझिल कारण, पशिल आपन घरे।।५॥ प्रवेशिया अन्तः पूरे, नारीगणे शान्त करे, श्रीवास अमिय उपदेशे। शुन पागलिनीगण, शोक कर अकारण, किबा दुःख थाके कृष्णावेशे।।६॥ कृष्ण नित्य सूत या'र, शोक कभु नाहि तार, अनित्य आसक्ति सर्वनाश। आसियछ ए संसारे, 'कृष्ण' भजिवार तरे, नित्य-तत्त्वे करह विलास।।७॥

ए देहे यावन् स्थिति, कर कृष्णचन्द्रे राति, कृष्णे जान धन, जन, प्राण। ए-देह अनुग यत, भाई-बन्धु-पति-सूत, अनित्य सम्बन्ध बलि' मान'॥८॥ केबा कार पति-सूत, अनित्य-सम्बन्ध-कृत, चाहिले राखिते नारे ता'रे करम-बिपाक-फले, सुत ह'ये वसे कोले, कर्मक्षये आर रैते नारे।।९॥ इथे सुख-दुःख मानि', अधोगति लभे प्राणी, कृष्णपद हैते पड़े दूरे। शोक सम्बरिया एबे, नामानन्दे मज सबे, भक्ति-विनोद-वाञ्छा पूरे।।१०॥ धन, जन, देह, गेह कृष्ण समर्पण। करियाछ शुद्धचित्ते करह स्मरण।।११॥ तबे केन 'मम सुत' बलि' कर दुःख? कृष्ण निल निज-जन ताहे ताँ'र सुख।।१२॥ कृष्ण-इच्छा-मते सब घटय घटना। ताहे सुख दुःख-ज्ञान अविद्या कल्पना।।१३॥ याहा इच्छा करे कृष्ण ताइ जान भाल। त्यजिया आपन इच्छा घुचाओ जंजाल।।१४॥ देश कृष्ण, नेय कृष्ण, पाले कृष्ण सबे। राखे कृष्ण, मारे कृष्ण, इच्छा करे यबे।।१५॥ कृष्ण-इच्छा-विपरित ये करे वासना। ता'र इच्छा नाहि फले, से पाय यातना।।१६॥ त्यजिया सकल शोक शुन 'कृष्ण'-नाम। परम आनन्द पा'वे, पूर्ण हबे काम।।१७॥ भकति-विनोद मागे श्रीवास-चरणें आत्मनिवेदन-शक्ति जीवने मरणे।।१८॥ सबु मेलि' बालक-भाग विचारि'। छोड़वि मोह-शोक चित्तविकारी।।१९॥ चौद्द-भुवन-पति नन्दकुमारा। शचीनन्दन भेल नदीया-अवतारा।।२०॥ सोइ गोकुल चाँद आँगने मोर। नाचइ भक्त-सह आनन्द-विभोर।।२१॥ शुनत नाम-गान बालक मोर। छोड़ल देह, हरि-प्रीति विभोर।।२२॥ अईछन भाग यब हइ हामारा। तबहुँ हँउ भव-सागर-पारा।।२३॥ तुहुँ सबु विछरि' एहि विचारा। काँहे करवि शोक चित्तविकारा।।२४॥ स्थिर नहि हओवि यदि उपदेशे। वंचित हउवि रसे अवशेषे।।२५॥ पशिबुँ हाम सुर-तटिनी माहे। भक्तिविनोद प्रमाद देखे ताहे।।२६॥ श्रीवास-वचन, श्रवण करिया, साध्वी पतिव्रतागण। शोक परिहरि, मृत शिशु राखि', हरि-रसे दिल मन।।२७॥ श्रीवास तखन, आनन्दे मातिया, अंगने आइल

पुनः। नाचे गोरा-सने, सकल पासरि', गाय नन्दसुत-गुण।।२८॥ चारि दण्ड रात्रे, मरिल कुमार, अंगने केह ना जाने। श्रीनाम-मंगले, तृतीय प्रहर, रजनी अतीत गाने।।२९॥ कीर्तन भाँगिले, कहे गौरहरि, आजि केन पाइ दुःख। बुझि, एइ गृहे, किछु अमंगल, घटिया हरिल सुख।।३०॥ तबे भक्तगण, निवेदन करे, श्रीवास शिशुर कथा। शुनि' गोरा राय, बले हाय हाय, मरमे पाइनु व्यथा।।३१॥ केन ना कहिले, आमारे तखन, विपद-संवाद सबे। भक्तिविनोद, भक्त-वत्सल, स्नेहेते मजिल तबे।।३२॥ प्रभुर वचन, तखन शुनिया, श्रीवास लोटाञा भूमि। बले, शुन नाथ! तब रसभंग, सहिते ना पारि आमि।।३३॥ एकटि तनय, मरियाछे नाथ, ताहे मोर बिा दुःख। यदि सब मरे, तोमारे हेरिया, तबु त पाइब सुख।।३४॥ तब नृत्यभंग, हइले आमार, मरण हइत हरि। ताइ कुसंवाद, ना दिल तोमारे, विपद आशंका करि'॥३५॥ एबे आज्ञा देह, मृत सुत ल'ये, सत्कार करुन सबे। एतेक शुनिया, गोरा-द्विजमणि, काँन्दिते लागिल तबे।।३६॥ केमने ए-सबे छाड़िया याइब, पराण विकल हय। से कथा शुनिया, भक्तिविनोद, मनेते पाइल भय॥३७॥ गोराचाँदेर आज्ञा पेये गृहवासीगण। मृत सुते अंगनेते आने ततक्षण।।३८॥ कलिमलहारी गोरा जिज्ञासे तखन। श्रीवासे छाड़िया, शिशु, याओ कि कारण?३९॥ मृत शिशुमुखे जीव करे निवेदन। 'लोक-शिक्षा लागि' प्रभु तब आचारण।।४०॥ तुमि त' परम तत्त्व अनन्त अद्वय। पराशक्ति तोमार अभिन्न-तत्त्व हय।४१॥ सेइ पराशक्ति त्रिधा हइया प्रकाश। तब इच्छामत कराय तोमार विलास।।४२॥ चिच्छक्ति-स्वरूपे नित्यलीला प्रकाशिया। तोमारे आनन्द देन ह्लादिनी हइया।।४३॥ जीवशक्ति हइया तब चितकिरण चये। तटस्थ-स्वभावे जीवगणे प्रकटये।।४४॥ मायाशक्ति ह'ये करे प्रपंच-सृजन। बहिर्मुख जीवे ताहे करय बन्धन।।४५॥ भकतिविनोद बले अपराध फले। बहिर्मुख ह'ये आछि प्रपंच-कवले।।४६॥ "पूर्णचिदानन्द तुमि, तोमार चितकण आमि, स्वभावतः आमि तुया दास। परम स्वतन्त्र तुमि, तुयाा परतन्त्र आमि, तुया पद छाड़ि' सर्वनाश।।४७॥ स्वतन्त्र ह'ये यखन, माया-प्रति कैनु मन, स्व-स्वभाव छाड़िल आमाय। प्रपंचे मायार बन्धे, पड़िनु कर्मेर धन्धे, कर्मचक्र आमारे फेलाय॥४८॥ माया तब इच्छामते, बाँधो मोरे ए जगते, अदृष्ट निर्बन्ध लौह-करे। सेइ'त निर्बन्ध मोरे, आने श्रीवासेर घरे, पुत्ररूपे मालिनी-जठरे।।४९॥ से निर्वन्ध पुनराय, मोरे एबे ल'ये याय, आमि त' थाकिते नारि आर। तब इच्दा सुप्रबल, मोर इच्छा सुदुर्बल, आमि जीव अकिंचन छार।।५०॥ यथाय पाठाओ तुमि, अवश्य याइव आमि, कार के वा पुत्र पति पिता। जड़ेर सम्बन्ध सब, ताहा नाहि सत्यय बल, तुमि जीवरे नित्य पालयिता।।५१॥ संयोग-वियोगे यिनि, सुखः दुःख मने गणि, तब पदे छाड़ेन आश्रय। मायार गर्दभ ह'ये, मजेन संसार ल'ये, भक्तिविनोदेर सेइ भय॥५२॥ बाँधिल माया, येदिन ह'ते, अविद्या- मोह-डोर। अनेक जनम, लभिनु आमि, फिरिनु मायाघोरे।।५३॥ देव दानव, मानव-पशु, पतंग-कीट ह'ये। स्वर्गे-नरके, भूतले फिरि, अनित्य आशा ल'ये।।५४॥ ना जानि कि बा सुकृतिबले, श्रीवास सुत हैनु। नदीया-धामे, चरण तब, दरश परश कैनु।।५५॥ सकल बारे, मरण-काले, अनेक दुःख पाइ। तुया प्रसंगे, परम सुखे, एबार च'ले याइ।।५६॥ इच्छाय तोर, जनम यदि, आबार हय, हरि! चरणे तब, प्रेम-भकति, थाके मिनति करि।।५७॥ यखन शिशु, नीरब भेल, देखिया प्रभुर लीला। श्रीवास गोष्ठी, त्यजिया शोक, आनन्द-मगल भेला।।५८॥ गौर-चरित,

अमृतधारा, करिते करिते पान। भक्तिविनोद, श्रीवासे मागे', याय येन मोर प्राण।।५९॥ श्रीवासे कहेन प्रभु, तुहुँ मोर दास। तुया प्रीते बाँधा आमि जगते प्रकाश।।६०॥ भक्तगण सेनापति श्रीवास पंडित। जगते घुषुक आजि तोमार चरित।।६१॥ प्रपंच–कारा–रक्षिणी मायार बन्धन। तोमार नाहिक कभु, देखुक जगज्जन।।६२॥ धन, जन, देह, गेह आमारे अर्पिया। आमार सेवार सुखे आछ सुखी हञा।।६३॥ मम लीलापुष्टि लागि' तोमार संसार। शिखुक गृहस्थ जन तोमार आचार।।६४॥ तब प्रेमे बद्ध आद्दि आमि, नित्यानन्द। आमा दुँहे। सुत जानि' भुँजह आनन्द।।६५॥ नित्यतत्त्व सुत या'र, अनित्य तनये। आसक्ति ना करे सेइ सृजने प्रलये।।६६॥ भक्तिते तोमार ऋणी आमि चिरदिन। तब साधुीभावे तुमि क्षण मोर ऋमा।।६७॥ श्रीवासेर पाय भक्तिविनोद कुजन। काकुति करिया मागे गौरांग–चरण।।६८॥ श्रीवासेर प्रति, चैतन्यप्रसाद, देखिया सकल जन। जय श्रीचैतन्य, जय नित्यानन्द, बलि' नाचे घन घन।।६९॥ श्रीवास–मन्दिरे, कि भाव उठिल, ताहा कि वर्णन हय। भावयुद्ध सने, आनन्द–क्रन्दन, उठे कृष्णप्रेममय॥७०॥ अहे प्राणेश्वर, ए हेन विपद, प्रतिदिन येन हय। याहाते तोमार, चरण–युगले आसक्ति बाड़िते रय॥७२॥ विपद–सम्पदे, सेइ दिन भाल, ये दिन तोमारे स्मरि। तोमार स्मरण–रहित ये दिन, सेदिन विपद हरि।।७३॥ श्रीवास–गोष्ठीर चरणे पड़िया, भकतिविनोद भणे। तोमादेर गोरा, कृपा वितरिया, देखाओ दुर्गत जने।।७४॥ मृत शिशु ल'ये तबे भक्त–वत्सल। भक्त–संगेते गाय श्रीनाम–मंगल।।७५॥ गाइते गाइते गेला जाह्नवीर तीरे। बालके सत्कार कैल जाह्नवीर नीरे।।७६॥ जाह्नवी बलेन, मम सौभाग्य अपार। सफल हइल व्रत छिल ये आमार।।७७॥ मृत शिशु देन गोरा जाह्नवीर जले। उथलि जाह्नवी देवी शिशु लय काले।।७८॥ उथलिया स्पर्शे गोरा–चरण–कमल। शिशु–कोले प्रेमे देवी हय टलमल।।७९॥ जाह्नवीर भाव देखि' यत भक्तगण। श्रीनाम–मंगलध्वनि करे अनुक्षण।।८०॥ सर्ग हैते देवे करे पुष्प–वरिषण। विमान–संकुल तबे छाइल गगन।।८१॥ एइरूपे नानाभावे हइया मगन। सत्कार करिया स्नान कैल सर्वजन।।८२॥ परम आनन्दे सबे गेला जिन घरे। भकतिविनोद मजे गोरा–भाव भरे।।८३॥ (श्रोतृगणेर प्रति निवेदन)–नदीया–नगरे गोरा–चरित–अमृत। पिया, शोक, भय छाड़, स्थिर कर चित।।८४॥ अनित्य संसार भाई, कृष्ण–मात्र सारा। गोरा–शिक्षा–मते कृष्ण भज अनिवार।।८५॥ गोरार चरण धरि' येइ भाग्यवान्। ब्रजे राधाकृष्ण भजे, सेइ मोर प्राण।।८६॥ राधाकृष्ण—गोराचाँद, न'दे—वृन्दावन। एइ मात्र कर सार, पा'बे नित्यधन।।८७॥ विद्याबुद्धि–हीन दीन अकिंचन छार। कर्मज्ञानशुन्य आमि शून्य–सदाचार।।८८॥ श्रीगुरु वैष्णव मोरे दिलेन उपाधि। भक्तिहीन उपाधि हइल एबे व्याधि।।८९॥ यतन करिया सेइ व्याधि–निवारणे। शरण लइनु आमि वैष्णव–चरणे।।९०॥ वैष्णवेर पदरज मस्तके धरिया। ए शोकशातन गाय भक्ति– विनोदिया।।९१॥—(श्रीगीतमाला)।

(३४) गौः भाः— सांसारिक दृष्टि से मायाबद्ध जीव पुत्र की मृत्यु हो जाने से दुःखित होकर क्रन्दन करता है। कीर्तन–सहित नृत्यादि के समय इस प्रकार का मायिक व्यवहार प्रभु के प्रेमानन्द में व्याघात उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार विवेचना करके श्रीवास ने एतादृश मायिक व्यवहार हो कुछ देर के लिए बन्द करने को कहा।

स्वानुभावानन्द में प्रभु का नृत्य–

स्वानुभावानन्दे नृत्य करे गौरचन्द्र।
कतक्षणे रहिलेन लइ' भक्तवृन्द॥४०॥

(४०) प० अनु०— प्रभु गौरचन्द्र स्वानुभावानन्द में नृत्य करते रहे। कुछ देर बाद भक्तवृन्द-सहित उन्होंने नृत्य को समाप्त किया।

(४०) गौः भाः—स्वानुभावानन्द,-चेतनामय राज्य में ज्ञेयवस्तु कृष्णप्रेम की अनुभूति, अनुभवकारी और अनुभवनीय विषय—इन त्रिविध विचित्र विलासों में, अर्थात, सच्चिदानन्दानुभूति में यह स्वानुभावानन्द दृष्ट होता है।

श्रीवास-पुत्र की परलोक-प्राप्ति का समाचार सुनकर भक्तों का आचारण-

परम्परा शुनिलेन सर्व-भक्तगण।
पण्डितेर पुत्रेर हैल वैकुण्ठ-गमण।।४१॥
तथापिह केह किछु व्यक्त नाहि करे।
दुःख बड़ पाइलेन सबेइ अन्तरे॥४२॥

(४१-४२) प० अनु०—सभी भक्तों ने एक दूसरे से यह समाचार सुन लिया था कि पण्डित के पुत्र को वैकुण्ठ-प्राप्ति हो गई है; फिर भी किसी ने कुछ नहीं कहा— किन्तु भीतर-ही-भीतर सभी को बहुत दुःख हुआ।

सर्वज्ञ प्रभु-द्वारा जिज्ञासा एवं भक्तों का उत्तर-

सर्वज्ञेर चूड़ामणि श्रीगौरसुन्दर।
जिज्ञासेन प्रभु सर्व-जनेर अन्तर॥४३॥
प्रभु बले,-''आजि मोर चित्त केमन करे।
कोन दुःख हइयाछे पण्डितेर घरे॥''४४॥
पण्डित बलेन,-''प्रभु मोर कोन दुःख।
या'र घरे सुप्रसन्न तोमार श्रीमुख॥'४५॥
शेषे आछिलेन यत सकल महान्त।
कहिलेन पण्डितेर पुत्रेर वृत्तान्त॥४६॥
सम्भ्रमे बलये प्रभु,-''कह कतक्षण?''
शुनिलेन चारि दण्ड रजनी यखन॥४७॥
''तोमार आनन्द-भंग-भये श्रीनिवास।
काहारेओ इहा नाहि करेन प्रकाश॥४८॥
परलोक हइयाछे आड़ाइ प्रहर।
एबे आज्ञा देह' कार्य करिते स्तवर॥'४९॥
शुनि' श्रीवासेर अति अद्भुत कथन।
'गोविन्द' 'गोविन्द' प्रभु करेन स्मरण॥५०॥

(४३-५०) प० अनु०—सर्वज्ञ-चूड़ामणि श्रीगौरसुन्दर ने पूछा,-"आज मेरे मन को न जाने क्या हो गया है; लगता है, पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है।" पण्डित बोले,-"हे प्रभु, जब मेरेर घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख विराजमान है, तब मेरा क्या दुःख है।" बाद में सभी उपस्थित महान्तों ने प्रभु को दुःख है।" बाद में सभी उपस्थित महान्तों ने प्रभु को पण्डित के पुत्र के बारे में सब कुछ बता दिया। संभ्रम-सहित प्रभु ने पूछा,-"कब?" सभी ने उत्तर दिया,-रात चार दण्ड के समय। "आपके आनन्दभंग के भय से श्रीनिवास ने किसी के निकट प्रकट नहीं किया। परलोक-प्राप्ति को ढाई प्रहर बीत चुका है। अब कृपया शीघ्र कार्य-समापन करने की आज्ञा दीजिए।" श्रीवास का अद्भुत कथन सुनकर महाप्रभु 'गोविन्द' 'गोविन्द' स्मरण करने लगे।

श्रीवास जैसे भक्तों का संग त्याग करने की प्रभु की अनिच्छा-

प्रभु बले,-''हेन संग छाड़िब केमते?''।
एत बलि, महाप्रभु लागिला कान्दिते॥५१॥
''पुत्र-शोक ना जानिल ये मोहार प्रेमे।
हेन सब संग मुञि छाड़िब केमने॥५२॥

(५१-५२) प० अनु०—प्रभु बोले,-"इस संग को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ?" ऐसा कहकर

महाप्रभु क्रन्दन करने गले। "मेरे प्रेम के कारण जिन्होंने पुत्रशोक को भी अनुभव नहीं किया, उन सबका संग मैं कैसे छोड़ दूँ?"

(५२) गौः भाः—गृहस्थी लोग संसार में अमंगल उपस्थित होनेन से शोक में अधीर हो जाते हैं। विशेष करके, गृहस्थ को प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्र के विरह से अभावजनित जो शोक उपस्थित होता है, भगवान् के सान्निध्य में रहने के कारण श्रीवास उससे प्राावित नहीं हुये। इसलिए भगवद् भक्तों को प्राकृत व्यक्तियों के समान समझकर सामान्य-श्रेणी में उनकी गिनती नहीं का जा सकती। जो सर्वतोभाव से कृष्णप्रेम में उन्मत्त हैं, उनकी कृष्ण से अलग अन्य वस्तुओं में प्रीति की संभावना नहीं होती है। श्रीगौसुन्दर ने श्रीनवद्वीप-नगर के मित्रवर्ग में प्रधान श्रीवास पण्डित की प्रेमनिष्ठा की पराकष्ठा को देखकर उनका संग छोड़कर और कहीं जाने की इच्छा नहीं की।

प्रभु का कथन सुनकर भक्तों की चिन्ता एवं क्रन्दन-

एत बलि' महाप्रभु कान्देन निर्भन।
त्याग-वाक्य शुनि' सबे चिन्तेन अन्तर॥५३॥
नाहि जानि कि परमाद पड़ये कखन।
अन्योऽन्ये चिन्तये सकल भक्तगण॥५४॥
गारिहस्त छाड़िया प्रभु करिबे संन्यास।
तबे ध्वनि करि' कान्दे छाड़िया निवास॥५५॥

(५३-५५) प० अनु०—इतना कहकर महाप्रभु बहुत अधिक क्रन्दन करने लगे। उच्च स्वर से त्याग की बात सुनकर सभी मन में चिन्ता करने लगे, कि न जाने बक क्या विपद आ जाये। इस प्रकार सभी भक्तवृन्द आपस में सोच-विचार करने लगे। गृहस्थ-आश्रम को छोड़कर प्रभु संन्यास ले लेंगे, इस चिन्ता से सभी भक्त दीर्घ-श्वास लेते हुये ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने लगे।

सभी के द्वारा मृतक के सत्कार की चेष्टा-

स्थिर हइलेन यदि ठाकुर देखिया।
सत्कार करिते शिशु यायेन लइया॥५६॥

(५६) प० अनु०—ठाकुर को देखकर सभी स्थिर हो गये। फिर वे शिशु को लेकर सत्कार करने के लिए चल पड़े।

मृत शिशु के प्रति प्रभु का प्रश्न एवं मृत शिशु का उत्तर-

मृत-शिशु-प्रति प्रभु बलेन वचन।
"श्रीवासेर घर छाड़ि' याओ कि कारण?"५७॥
शिशु बले,-"प्रभु, येन निर्बन्ध तोमार।
अन्यथा करये शक्ति आछये काहार?"५८॥
मृत-शिशु उत्तर करये प्रभु-सने।
परम अद्भुत शुने सर्व-भक्तगणे।।५९॥
शिशु बले,-"ए देहेते यतेक दिवस।
निर्बन्ध आछिल भुंजिलाङ सेइ रस॥६०॥
निर्बन्ध घुचिल, आर रहिते ना पारि।
एबे चलिलाङ अन्य निर्बन्धित-पुरि॥६१॥
ए देहेर निर्बन्ध गेल रहिते ना पारि।
हेन कृपा कर येन तोमा' ना पासरि॥६२॥
के काहार बाप, प्रभु के का'र नन्दन।
सबे आपनार कर्म करये भुजन॥६३॥
यत दिन भाग्य छिल श्रीवासेर घरे।
आछिलाङ, एवे चलिलाम अन्य पुरे।।६४॥
सर्पाषदे तोमार चरणे नमस्कार।
अपराध ना लइह, विदाय आमार॥"६५॥
एत बलि' नीरव हइला शिशु-काय।
एमत कौतुक करे श्रीगौरांग-राय॥६६॥

(५७-६६) प० अनु०—पृत शिशु के

प्रति प्रभु ने कहा,–"श्रीवास के घर को छोड़कर किस कारण से जा रहे हो।" शिशु बोला,–"प्रभु, आपकी जैसी इच्छा है, उसको अन्यथा करने की शक्ति किसमें है?" मृत शिशु प्रभु के समक्ष उत्तर दे रहा था। सभी उपस्थित भक्तवृन्द इस परम अद्‌भुत प्रसंग को सुन रहे थे। शिशु ने आगे कहा,–"इस शरीर में मुझे जितने दिन रहना था, उतने दिन मैंने आनन्दपूर्वक इसका उपभोग किया है, अब चले जाने का समय आ गया है, इएलिए मैं यहाँ और नहीं रह सकता। अब भाग्यानुसार पहले से ही तयय किये हुये अन्य शरीर में जा रहा हूँ। इस शरीर में जितने दिन रहने का विधान था, रह लिया, यहाँ और नहीं रह सकता हूँ। ऐसी कृपा कीजिए कि आपको भूल न जाऊँ। हे प्रभु, यहाँ कौन किसका पिता है और कौन किसका पुत्र है। सभी को अपना–अपना कर्म भोगना पड़ता है। जितने दिन भाग्य में था, उतने दिन मैं श्रीवास के घर में रहा। अब कहीं और जा रहा हूँ। सपार्षद आपके चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ। मेरा अपराध मत लेना। मैं विदा लेता हूँ।" इतना कहकर शिशु–शरीर चुप हो गया। श्रीगौरांग–राय इस प्रकार के कौतुक करते हैं।

(५८) गौः भाः—भगवान् जिसके लिए जैसा विधान बना देते हैं, उसके लिए उस प्रकार के विधान का अनुगमन करना ही परम प्रयोजनीय है; अन्यथा स्वेच्छाचारिता के वशीभूत होकर भागवान् की नियति का असम्मान करके निजी यथेच्छाचारिता का परिचय देने से क्या लाभ मिलेगा? फिर अन्य किसी में यह सामर्थ्य भी नहीं है कि, भगवद् इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सके।

(६१) गौः भाः—भगवदिच्छा से श्रीवास के पुत्र के रूप में मैं जितने दिन ठहर चुका हूँ, उससे अधिक समय मैं इस रूप में और नहीं ठहर सकता। मुझे जहाँ जाने की व्यवस्था की है, उसी शरीर को अब मैं धारण करूँगा।

श्रीगौरसुन्दर ने शिशु के मुख से जन्मान्तरवाद– विचार की जानकारी जगज्जीव को दी है। स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म आधार नित्यकाल रहने वाले नहीं है। जीवात्मा इन स्थूल–सूक्ष्म दोनों शरीरों को आवरण के रूप में ग्रहण करता है एवं दोनों आवरण ों का प्रयोजनानुसार फिर से परित्याग करने को विवश हो जाता है कर्मफल के कारण कर्त्तृत्वाभिमान के वशीभूत होकर जीव–द्वारा स्थूल–सुक्ष्म आवरणों का ग्रहण एवं स्थूल और सूक्ष्म भूमिकाओं में विचरण संघटित होता है। आत्मा कभी भी कर्म और ज्ञान की भूमिका में विचरण नहीं करता। भुक्ति और मुक्ति के ये दोनों आधार आत्मा के अवस्थान करने योग्य स्थान नहीं हैं। श्रीगौरसुन्दर एवं उनके पार्षदवर्ग का संग हर समय प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होगा–इस प्रकार की सुकृति सबकी नहीं है, इस कारण मानव–ज्ञान में भुक्ति–मुक्ति की पिपासा एवं भगवत्–सेवाविमुखता विद्यमान है।

मृतपुत्र के मुख से तत्त्कथा सुनकर
श्रीवास–गोष्ठी का शोक–शातन एवं प्रभुचरण
में विज्ञप्ति–

मृत–पुत्र मुखे शुनि' अपूर्व कथन।
आनन्द–सागर भासे सर्व भक्त–गण॥६७॥
पुत्र–शोक–दुःख गेल श्रीवासगोष्ठीर।
कृष्णप्रेमानन्द–सुखे हइला अस्थिर॥६८॥
कृष्णप्रेमे श्रीनिवास गोष्ठीर सहिते।
प्रभुर चरण धरि' लागिला कान्दिते॥६९॥
''जन्म जन्म तुमि पिता, माता, पुत्र, प्रभु।

तोमार चरण येन ना पासरि कभु॥७०॥
येखाने सेखाने प्रभु, केने जन्म नहे।
तोमार चरणे येन प्रेम-भक्ति रहे॥''७१॥

(६७-७१) प० अनु०—मृतपुत्र के मुख से अपूर्व कथन सुनकर भक्तवृन्द आनन्द-सागर में विचरण करने लगे। श्रीवासगोष्ठी का पुत्रशोक का दुःख दूर हो गया और सभी कृष्णप्रेमानन्द सुख में विह्वल हो गये। कृष्णप्रेम के कारण गोष्ठी को साथ लेकर श्रीनिवास प्रभु चरण पकड़कर क्रन्दन करने लगे एवं कहने लगे, "हे प्रभु, जन्म-जन्म में आप ही हमारे पिता, माता, पुत्र और प्रभु हैं। ऐसी कृपा कीजिए कि, कभी भी आपके चरणों को हम भूल न जाएँ। हे प्रभु, जहाँ कहीं भी हमें जन्म क्यों न लेना पड़े, आपके चरणों में हमारी प्रेमभक्ति सदा बनी रहे।"

भक्तों का प्रमक्रन्दन-

चारि भाई प्रभुर चरणे काकु करे।
चतुर्द्दिगे भक्त-गण कान्दे उच्चैः स्वरे॥७२॥
कृष्ण-प्रेमे चतुर्द्दिगे उठिल क्रन्दन।
कृष्णप्रेम-मय हैल श्रीवास-भवन॥७३॥

(७२-७३) प० अनु०—चारों भाई प्रभु के चरणों में कातर भाव से प्रार्थना निवेदन करने लगे। चारों ओर भक्तवृन्द उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगे। कृष्णप्रेम से चारों ओर क्रन्दन की ध्वनि गूँज उठी और श्रीवास का भवन कृष्णप्रेम से परिपूर्ण हो गया।

प्रभु-द्वारा श्रीवास-महिमा का कीर्तन-

प्रभु बले,-''शुन शुन श्रीवास पण्डित!
तुमि त' सकल जान संसारेर रीत॥७४॥
ए सब संसार-दुःख तोमार कि दाय।
ये तोमारे देखे सेह कभु नाहि पाय॥७५॥
आमि, नित्यानन्द—दुइ नन्दन तोमार।
चित्ते तुमि व्यथा किछु ना भाविह आर॥''७६॥

(७४-७६) प० अनु०—प्रभु बोले,- "सुनो, सुनो श्रीवास पण्डित! संसार की रीति के बारे में तुम तो सब कुछ जानते हो। इन सब सांसारिक दुःखों के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, जो तुम्हें देखता है, उसे भी कभी यह दुःख नहीं मिलेगा। मैं और नित्यानन्द-हम दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। तुम अपने चित्त में किंचित् मात्र भी दुःख मत करना।"

(७५-७६) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने श्रीवास पण्डित को कहा,-भगवद्-भक्त का कभी भी संसार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। अनभिज्ञजन श्रीवास पण्डित को गृहस्थी एवं संसारी के रूप में देखते थे; परन्तु भगवद्-भक्तवृंद अनजाने में भी श्रीवास पण्डित को कभी भी अमंगल के विषय के रूप में नहीं देखते थे। जो लोग भगवद्-भक्त के दर्शन करने में अभ्यस्त हैं, उन लोगों का संसार-बन्धन नहीं है। संसार की परम प्रयोजनीय वस्तु—पति-पत्नी-पुत्रादि का अभाव दूर करने के लिए भगवान् को उन-उन स्थानों पर विराजमान जानने से ही नित्यवस्तु का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है। सभी वस्तुओं में भगवद्-भाव का दर्शन करने से ही जीवों की बद्धावस्था से विमुक्ति होती है।

प्रभु के वाक्य सुनकर भक्तों की जयध्वनि-

श्रीमुखेर परम कारुणय-वाक्य शुनि'।
चतुर्द्दिगे भक्तगण करे जय-ध्वनि॥७७॥

(७७) प० अनु०—श्रीमुख से परम करुणामयी वाणी सुनकर चारों ओर से भक्तवृन्द जयध्वनि करने लगे।

भक्तों सहित प्रभु के द्वारा मृत का सत्कार-

सर्वगण–साह प्रभु बालक लइया।
चलिलेन गंगा–तीरे कीर्तन करिया॥७८॥
यथोचित क्रिया करि' कैला गंगा–स्नान।
'कृष्ण' बलि' सबे गृहे करिला पयान॥७९॥
प्रभु, भक्त–गण सबे गेला निजघर।
श्रीवासेर गोष्ठी सब हइला विह्वल॥८०॥

(७८–८०) प० अनु० बालक को लेकर प्रभु भक्तों के साथ कीर्तन करते-करते गंगा के तट पर पहुँचे। यथोचित क्रिया-समापन कर सभी ने गंगा में स्नान किया, फिर 'कृष्ण' कहकर सबने अपने-अपने घर प्रस्थान किया। भक्तों और प्रभु के अपने-अपने घर चले जाने पर श्रीवास-गोष्ठी विह्वल हो गई।

गूढ़ चैतन्यलीला की फलश्रुति-

ए सब निगूढ़ कथा ये करे श्रवण।
अवश्य मिलिव ता'रे कृष्ण–प्रेमधन॥८१॥

(८१) प० अनु०—इन सब निगूढ़ कथाओं को जो सुनेगा, उसे अवश्य ही कृष्ण प्रेमधन की प्राप्ति होगी।

गौरनिताइ द्वारा पुत्र के रूप में श्रीवास से सेवा-ग्रहण-

श्रीवासेर चरणे रहुक नमस्कार।
'गौरचन्द्र' 'नित्यानन्द'— नन्दन याँहार॥८२॥
ए सब अद्‌भुत सेइ नवद्वीपे हये।
भक्तेर प्रतीत हय, अभक्तेर नय॥८३॥
मध्यखण्डे परम अपूर्व सब कथा।
मृत–शिशु तत्त्व–ज्ञान कहिलेन यथा॥८४॥
हेनमते नवद्वीपे श्रीगौर–सुन्दर।
विहरये संकीर्तने–सुखे निरन्तर।।८५॥

(८२–८५) प० अनु०-'गौरचन्द्र' और 'नित्यानन्द' जिनके नन्दन (पुत्र) हैं, उन श्रीवास के चरणों में मैं नमस्कार निवेदन करता हूँ। ये सब अद्‌भूत लीला उस नवद्वीप में हुई है, किन्तु भक्तों को ये दिखाई देती थीं, अभक्तों को नहीं। मध्यखण्ड की कथा अपूर्व है, जहाँ मृत-शिशु ने तत्त्वज्ञान को कहा है। इस प्रकार से नवद्वीप में श्रीगौरसुन्दर संकीर्तन के आनन्द में निरन्तर विहार करते रहते थे।

(८२) गौः भाः—श्रीगौरनित्यानन्द ने पुत्र के रूप में श्रीवास की सेवा ग्रहण की।

प्रेमोन्मत्तता-प्रदर्शन से प्रभु-द्वारा पांचरात्रिक विधि- अनुसार अर्चन-असामर्थ्य के कारण गदाधर को अर्चन-दायित्व-प्रदान-

प्रेमरसे प्रभुर संसार नाहि स्फुरे।
अन्येर कि दा, विष्णु–पूजिते ना पारे॥८६॥
स्नान करि' बसे प्रभु श्रीविष्णु पूजिते।
प्रेम–जले सकल श्रीअंग–वस्त्र तिते॥८७॥
बाहिर हइया प्रभु से वस्त्र छाड़िया।
पुनः अन्य वस्त्र परि' विष्णु पूजे गिया॥८८॥
पुनः प्रेमानन्द–जले तिते से–वसन।
पुनः बाहिराइ अंग करे प्रक्षालन॥८९॥
एइ मत वस्त्र–परिवर्त करे मात्र।
प्रेमे विष्णु पूजिते ना परे तिल मात्र॥९०॥
शेषे गदाधर–प्रति बलिलेन वाक्य।
तुमि विष्णु पूज, मोर नाहिक से भाग्य॥९१॥
एइ मत वैकुण्ठनायक भक्तिरसे।
विहरये नवद्वीपे रात्रिये दिवसे॥९२॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥९३॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे मृतशिशु तत्त्वज्ञान–वर्णनं नाम पंचविशोऽध्यायः।

(८६–९३) प० अनु०—प्रेमरस के कारण प्रभु कोा संसार स्फुरन नहीं होता था। अन्य

कोई कार्य करना तो दूर, वे विष्णु का पूजन भी नहीं कर सकते थे। स्नान करके प्रभु श्रीविष्णु–पूजन के लिए बैठते थे; परन्तु प्रेमजल से उनके श्रीअंग और वस्त्र भी जाते थे। बाहर आकर प्रभु उन वस्त्रों को उतारकर फिर से अन्य वस्त्र पहनकर विष्णु–पूजा करने लगते थे, फिर वे वस्त्र भी प्रेमानन्द–जल से भीग जाते थे। पुनः एकबार बाहर आकर प्रभु अंग–प्रक्षालय करते थे। इस प्रकार से बारम्बार प्रभु केवल कपड़े बदलते रहते थे। प्रेम के कारण तिल–मात्र भी विष्णुपूजा नहीं कर पाते थे। अन्त में वे (प्रभु) गदाधर से बोले,– तुम विष्णु का पूजन किया करो, मेरा ऐसा भाग्य नहीं है। इस प्रकार से वैकुण्ठ–नायक रात–दिन भक्तिरस में निमग्न रहते हुये नवद्व ीप में विहार करते रहते थे। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

(९१) गौः भाः—पांचरात्रिक विधानानुसार श्रीगौरसुन्दर जितनी बार विष्णुपूजा का आयोजन करते थे। प्रत्येक बार वे प्रेम में उन्मत्त होकर तादृश अर्चन–कार्य में असमर्थ हो जाते थे। बारम्बार अर्चन करने के प्रयास में अकृतकार्य होकर अन्त में उन्होंने श्रीगदाभर पण्डित को श्रीकृष्ण–विग्रह अर्चन का दायित्व प्रदान कर दिया– श्रीगौरसुन्दर कहने लगे,–"मैं भाग्यहीन हूँ, मर्यादा के साथ विष्णुपूजा करने में मैं असमर्थ हूँ।"

इस लीला के माध्यम से श्रीगौरसुन्दर द्व ारा श्रीगदाधर पण्डित को श्रीगोपीनाथ की सेवा प्रदान किये जाने पर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में टोटा के भीतर अथवा कानन के अभ्यन्तर श्रीगदाधर प्रभु ने उनका अर्चन किया था एवं मर्यादा–मार्ग में शिष्यादि ग्रहण किये थे। सौ–सौ जन्मों तक अर्चन के फलस्वरूप भगवन्नाम–भजन में जीव प्रीतिविशिष्ट होता है; किन्तु श्रीगदाध ार को उस श्रेणी का कर्मफल–बाध्य जीव न समझकर महाप्रभु के परम प्रियतम के रूप में जानना आवश्यक है। श्रीगौसुन्दर–द्वारा रचित 'शिक्षाष्टक' में अर्चन–विधान के चरम फल के रूप में श्रीनाम–भजन का ही उपदेश प्रदत्त हुआ है।

इति 'गौड़ीय–भाष्य में' पंचविशं अध्याय समाप्त

O

षडविंश अध्याय

षडविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी का अन्न-ग्रहण, आखरिया (लिपिकर) विजय दास के अंग पर हस्त प्रदान-पूर्वक निजी वैभव-पदर्शन, अप्राकृत मत्स्य-कूर्मादि अवतारलीला के भाव-प्रदर्शन, गोपीभाव में 'गोपी, गोपी' उच्चारण के समय किसी एकए विद्यार्थी के द्वारा समालोचना; विद्यार्थी को लाठी से माने की चेष्टा, पहेली के माध्यम से निजीभक्तों के समक्ष संन्यास ग्रहण की इच्छा-ज्ञापन, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु के साथ एकान्त में परामर्श, मुकुन्द एवं गदाध ार के समक्ष संन्यास-ग्रहण कइच्छा-ज्ञापन एवं भक्तजनों का दुःख इत्यादि विषय वर्णित हुये हैं।

एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने शुक्लाम्बर ब्रह्ममचारी के निकट भोजन ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। इस पर शुक्लाम्बर ने उसे महाप्रभु की छलनामात्र मानकर प्रभु के द्वारा बार-बार प्रार्थना किये जाने पर शुक्लाम्बर ने भक्तों के निकट विधि के बारे में जिज्ञासा की। भक्तों ने शुक्लाम्बर के भाग्य की प्रशंसा करके उन्हें आलगोछे से (स्पर्श किये बिना) रन्धन करने की युक्ति प्रदान की। उसके अनुसार ी स्नान के पश्चात् शुक्लाम्बर ने जल गरम किया एवं उसमें तण्डुल (चावल) एवं थोड़ (केले के पेड़ का गूदा) आदि सामग्री असंस्पृष्ट भाव में डालकर वे श्रीहरिनाम-कीर्तन करने लगे। तब लक्ष्मीदेवी ने भक्त के अन्न पर कृपादृष्टि प्रदान की। आप्तगण-सहित प्रभु ने शुक्लाम्बर के घर पधारकर और अपने हाथों से अन्न ग्रहण करे विष्णु को निवेदित किया; तत्पश्चात् स्वयं भोजन करते-करते अन्न के स्वादिष्ट होनेन के प्रशंसा करने लगे। शुक्लाम्बर के प्रति कृपादर्शन से भक्तवृन्द प्रेमाश्रु बरसाने लगे। प्रभु का भोजन समाप्त होने के बाद सभी ने मिलकर प्रसाद-पात्र को उठा लिया। श्रीगौरसुन्दर ने कुछ समय तक वहाँ इष्टगोष्ठी की। फिर बाद मे वहीं शयन किया। भक्तों ने भी प्रभु के अनुसरण किया। सब भक्तों के शयन करते समय महाप्रभु ने लिपिकर विजय दास के अंग पर हस्त प्रदान किया। महाप्रभु के विचित्र अद्भुत ऐश्वर्य को देखकर जब विजय शोर मचाने के लिए तैयार हुये तो प्रभु ने उन्हें उँगली के संकेत से मना कर दिया। विजय हुँकार-पूर्वक मूर्च्छित होकर गिर पड़े भक्तगण उस गूढ़ मर्म के समझ गये। भक्त के समक्ष प्रभु ने कहा, यह गंगा अथवा विष्णु काा प्रभाव है। विजय ने सातदिन तक उसी जड़प्राय अवस्था में अवस्थान किया।

महाप्रभु नवद्वीप लीलाकाल में भाव के छल से मत्स्य-कूर्मादि अवतारों का अप्राकृत नित्य रूप प्रकाशित किया करते थे। फिर उसे संगोपन भी कर लेते। परन्तु प्रभु में बलराम-भाव बहुत दिनों तक वर्तमान रहा। श्रीगौरसुन्दर द्वारा बलराम के भाव में महामत्त होकर वारुणी की माँग करने पर

अभिन्न–बलदेव श्रीनित्यानन्द प्रभु महाप्रभु के हृदय का भाव समझकर उनके सामने घड़ा भरकर गंगाजल लाकर रख देते थे। प्रभु का हुँकार और गर्जन सुनकर त्रिभुवन कम्पित होने लगता–ताण्डवनृत्य के कारण पृथ्वी थरथराने लगती। भय के मारे भक्तों के द्व ारा बलदेव–स्तुति का कीर्तन करने पर प्रभु सन्तुष्ट होकर मूर्च्छित हो जाते थे।

एकदिन महाप्रभु के द्वारा गोपीभाव में विभावित होकर 'गोपी' 'गोपी' उच्चारण करने से किसी एक विद्यार्थी ने उनके हृदय के भाव कोा समझे बिना उनके इस आचरण की निन्दा की। इस पर प्रभु हथों में लाठी लिये उसे मारने दौड़े। जान बचाने के लिए विद्यार्थी भाग गया। अपने साथियों के पास पहुँचकर उसने प्रभु के बारे में सब कुछ बताया। इस पर उन सभी ने अक्षज–ज्ञान (जड़ेन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान) से प्रभु को निर्यातन प्रदान करने की अभिलाषा प्रकट की। इस प्रकार वे सब महाप्रभु के चरणों में अपराध संचित कर बैठे। अन्तर्यामी प्रभु ने यह जानकर सभी पार्षदों के समक्ष पहेली के रूप में अपने संन्यास–ग्रहण के विषय में कहा; किन्तु नित्यानन्द प्रभु को छोड़कर दूसरा कोई उनके भाव को समझ नहीं पाया। प्रभु ने सुन्दर केशों के लुप्त हो जाने की चिन्ता से वे दुःखित हो गये।

श्रीमन्महाप्रभु ने नित्यानन्द को एकान्त में ले जाकर अपने संन्यास ग्रहण का कारण बताया। वे जगद उद्धार के लिए अवतीर्ण हुये हैं; परन्तु उन्हें देखकर लोगों का उद्धार तो हो नहीं रहा है, उलटे वे उनके चरणों में अपराध कर बैठते हैं। प्रभु ने बताया कि यदि वे संन्यास ग्रहण करके उन लोगों के घर पर भिखारी बनकर जायंगे तो वे सब संन्यासी के वेश में मुझे देखकर चरणस्पर्श कर दण्डवत्–प्रणाम किया करेंगे, ऐसा करने से ही उन लोगों का अपाध दूर होकर श्रीगौरांग–चरण में भक्ति की प्राप्ति होना सम्भव है। श्रील नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु के उद्देश्य पर अपनी कोई आपत्ति नन करके भक्तों के समक्ष उस अभिप्राय को प्रकाशित करने के लिए कहा एवं प्रभु–विरह में शचीमाता के दुःख की चिन्ता करके नित्यानन्द चुप रह गये।

श्रीगौरहरि ने मुकुन्द के घर में जाकर 'कृष्ण–मंगल' कीर्तन करने का आदेश प्रदान किया। मुकुन्द कीर्तन करने लगे। प्रभु ने भी विह्वल भाव से कीर्तन श्रवण किया। फिर भाव संवरण करके प्रभु ने मुकुन्द के समक्ष अपना अभिप्राय व्यक्त किया। मुकुन्द ने सुनने मात्र से दुःखित होकर प्रभु से और कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया।

तत्पश्चात् श्रीगौरसुन्दर ने गदाधर के घर जाकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया। इसे सुनकर गदाधर को वज्रपात–जैसा अनुभव हुआ। अभिमान के साथ उन्होंने बहुत–सी बातें कहीं और उन्हें संन्यास लेने से रोकने की चेष्टा की। प्रभु ने और भक्तों के निकट भी अपना अभिप्राय प्रकाशित किया। प्रभु की श्रीशिख के अन्तर्द्धान की चिन्ता से सभी भक्त दुःख के सागर में निमग्न हो गये।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

श्रीगौरसुन्दर का जयगान–

जय जय जगत–मंगल गौरचन्द्र।
दान देह' हृदये तोमार पदद्वन्द्व ॥ध्रु॥

(ध्रु) प० अनु०—जगत् के मंगल—स्वरूप श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। हे प्रभु! मेरे हृदय में आपके युगल–चरण विराजमान

रहें, ऐसा दान दीजिए।

प्रभु की शुक्लाम्बर का अन्न खाने की इच्छा एवं उनके निकट अन्न-याचना-

एकदिन शुक्लाम्बर-ब्रह्मचारी-स्थाने।
कृपाय ताहाने अन्न मागिला आपने॥१॥
''तारे अन्न खाइते आमार इच्छा बड़।
किछु भय ना हरिक, बलिलाङ दड़॥''२॥

(१-२) प० अनु०—एकदिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के निकट कृपापूर्वक स्वयं प्रभु ने अन्न माँगा। प्रभु ने कहा,-"तेरा अन्न खाने की बड़ी इच्छा होती है। भय नहीं करना, मैं दृढ़तावूर्पक कह रहा हूँ।"

शुक्लाम्बर का दैन्य एवं प्रभु की प्रार्थना का 'रहस्य' ज्ञान-

एइमत महाप्रभु बले बार बार।
शुनि' शुक्लाम्बर काकु करेन आपार॥३॥
''भिक्षुक अधम मुञि पापिष्ठ गर्हित।
तुमि धर्म सनातन, मुञि से पतित॥''५॥

(३-५) प० अनु०—इस प्रकार से महाप्रभु ने बारम्बार कहा। सुनकर शुक्लाम्बर बड़ा गिड़गिड़ाता हुआ प्रभु से निवेदन करने लगा। शुक्लाम्बर बोला,— "मैं अधम, भिखारी, पापिष्ठ और निन्दनीय हूँ। कहाँ आप सनातन धर्म-स्वरूप और कहाँ मैं पतित। मुझे अपने चरणों की छाया में आश्रय प्रदान करें। आप मुझ पर इतनी बड़ी माया फैला रहे हैं। हे प्रभु! मैं तो कीट के समान भी नहीं हूँ।"

प्रभु-द्वारा फिर प्राथना किये जाने पर शुक्लाम्बर के द्वारा भक्तों से युक्ति-ग्रहण-

प्रभु बले,-''माया हेन ना बासिह मने।
बड़ इच्छा बासे मोर तोमार रन्धने॥६॥
सत्त्वरे नैवेद्य गिया करह बासाय।
आजि आमि मध्याह्ने याइब सर्वथाय॥''७॥
तथापिह शुक्लाम्बर भय पाइ' मने।
युक्ति जिज्ञासिलेन सकल भक्त-स्थाने॥८॥

(६-८) प० अनु०—प्रभु बोले,- "इसे माया मत समझो! तुम्हारे हाथ से पका हुआ अन्न भोजन करने की मेरी बड़ी इच्छा है। शीघ्र घर में जाकर नैवेद्य तैयार करो। आज दोपहर को मैं अवश्य आऊँगा।" फिर भी, भयभीत शुक्लाम्बर ने सभी भक्तों के निकट कोई युक्ति बताने की प्रार्थना की।

भक्तगण-द्वारा युक्ति-प्रदान एवं शुक्लाम्बर के भाग्य की प्रशंसा-

सबे बलिलेन,-''तुमि केने कर भय।
परमार्थे ईश्वरेर केह भिन्न नय॥९॥
विशेषे ये जन ताने सर्वभावे भजे।
सर्वकाल ता'न अन्न आपनेइ आँजे॥१०॥
आपने शूद्रार पुत्र विदूरेर स्थाने।
अन्न मागि' खाइलेन भक्तिर कारणे।।११॥
भक्तस्थाने मागि' खाय, प्रभुर स्वाभाव।
देह' गिया तुमि बड़ करि' अनुराग॥१२॥
तथापिह तुमि यदि भय वास मने।
आलगोछे तुमि गिया करह रन्धने॥१३॥
बड़ भाग्य तोमार, एमत कृपा या'रे।''
शुनि' द्विज हरिषे आइला निज-घरे॥१४॥

(९-१४) प० अनु०—सभी कहने लगे,-"तुम्हें भय किस बात का है! परमार्थ में कोई भी ईश्वर से अलग नहीं है। विशेषतया जे सर्वतोभाव से प्रभु का भजन किया करते हैं, प्रभु उन्हीं का अन्न सर्वकाल ढूँढ़ते हैं। भक्ति के कारण उन्होंने स्वयं शूद्र के पुत्र विदुर के निकट से माँगर अन्न खाया था। प्रभु का यह स्वभाव है कि वे भक्त के निकट से

माँगकर खाते हैं। तुम बड़े अनुराग के साथ उन्हें अन्न निवेदन करो। फिर भी, यदि तुम्हें भय लगता हो, तो स्पर्श किये बिना नैवेद्य पकाओ! तुम बड़े भाग्यवान् हो, जो तुम पर प्रभु ने ऐसी कृपा की है।" यह सुनकर वह पब्राह्मण सहर्ष अपने घर आ गया।

(११) गौः भाः—तथ्य-विदुर के घर में भगवान् के द्वारा अन्न-भिक्षा—महाभारत उद्योग-पूर्व में ९० अध्याय द्रष्टव्य है।

(१३) गौः भाः—आलगोछे—[फा-अलग से (स-छ) शब्दज]- असंस्पृष्ट भाव से स्पर्श किये बिना, अलग से।

कीर्तन करते-करते शुक्लाम्बर के द्वारा रन्धन एवं उसमें लक्ष्मीदेवी का दृष्टिपात-

स्नान करि' शुक्लाम्बर अति सावधाने।
सुवासित जल तप्त करिला आपने॥१५॥
तण्डुल सहित तबे दिव्य गर्भ-थोड़।
आलगोछे दिया विप्र कैला करयोड़॥१६॥
"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली।"
बलिते लागिला शुक्लाम्बर कुतूहली॥१७॥
सेइ क्षणे भक्त-अन्ने रमा जगन्माता।
दृष्टिपात करिलेन महा-पतिव्रता॥१८॥

(१५-१८) प० अनु०—स्नान करने के पश्चात् शुक्लाम्बर ने अति सावधानी के साथ स्वयं सुवासित जल गरम किया। फिर स्पर्श किये बिना उस जल में तण्डुल-सहित दिव्य गर्भ-थोड़ (केले के पेड़ का गूदा) प्रदान करके ब्राह्मण ने हाथ जोड़ दिये। कुतूहली (उत्सुकतायुक्त) शुक्लाम्बर कहने लगे,-"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली।" उसी क्षण महा-पतिव्रता जगन्माता रमादेवी ने भक्त के अन्न पर दृष्टिपात कर दिया।

प्रभु का शुक्लाम्बर के घर आगमन एवं अन्न-भोजन करते-करते स्वादिष्टता की प्रशंसा-

ततक्षणे सर्वामृत हइल से अन्न।
स्नान करि' प्रभु आसि हैला उपसन्न॥१९॥
संगे नित्यानन्द-आदि आत कत जन।
ताता-वस्त्र एड़िलेन श्रीशचीनन्दन॥२०॥
आपने लइला अन्न ता'न इच्छा पालि'।
शुक्लाम्बर देखिया हासेन कुतूहली॥२१॥
गंगार अग्रेते घर गंगार समीपे।
विष्णु-निवेदन करिलेन बड़ सुखे॥२२॥
हासि' बसिलेन प्रभु आनन्दे भोजने।
नयन भरिया देखे सब भृत्य-गणे॥२३॥
ब्रह्मादिर यज्ञभोक्त श्रीगौरसुन्दर।
शुक्लाम्बर-अन्न खाय—ए बड़ दुष्कर॥२४॥
हेन प्रभु बले,-"जन्म यावत् आमार।
एमत अन्नेर स्वादु नाहि पाइ आर॥२५॥
कि गर्भ-थोड़ेर स्वादु ना परि कहिते।
आलगोछे एमत वा रान्धिल कोन्‌मते॥२६॥
तुमि हेन जन से आमार बन्धु-कुल।
तोमा' सब लागि' से आमार आदि मूल॥'२७॥

(१९-२७) प० अनु०—रमा के दृष्टिपात के कारण तत्क्षण सारा अन्न अमृतस्वरूप बन गया। उधर स्नान करके प्रभु भी आकर उपस्थित हो गये। नित्यानन्द आदि अनेक आप्तजन भी उनके साथ आये। श्रीशचीनन्द ने भीगे हुये वस्त्रों को बदल दिया और उनकी इच्छा के अनुसार प्रभु ने स्वयं अपने हाथों से अन्न ग्रहण किया। यह देखकर कुतूहलवश शुक्लाम्बर हँसने लगे। गंगा के समीप ही गंगा के सामने उनका घर था। प्रभु ने बड़े आनन्द से विष्णु को अन्न निवेदित किया हँसकर प्रभु आनन्द में भोजन के लिए बैठ गये सभी भृत्यगण (उन्हें) नयन भरकर देख रहे थे।

श्रीगौरसुन्दर—जो ब्रह्मा आदि के यज्ञभोक्ता हैं, वे आज शुक्लाम्बरका अन्न भोजन कर रहे थे— वह बहुत ही दुःसाध्य था। इस प्रकार भक्तवत्सल प्रभु कहने लगे,–"जब से मेरा जन्म हुआ है, तब से इस प्रकार के स्वादिष्ट अन्न का भोजन मैंने कभी नहीं किया है। गर्भ–थोड के स्वाद का मैं वर्णन नहीं कर सकता। स्पर्श किये बिना हीइस प्रकार का अन्न कैसे पकाया? तुम्हारे जैसे व्यक्ति ही मेरे बन्धु–कुल हैं। मेरा आदि मूल तुम सबके कारण ही है।"

(२०) गौः भाः–तिता– ['सिक्त, से अथवा सं 'तिप्' (क्षरण) धातु से] सिक्त, आर्द्र, भीगा हुआ।

(२४) गौः भाः—यज्ञेश्वर विष्णु ब्रह्मा के पवित्र यज्ञ में भोजन किया करते हैं। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी अनेक स्थानों से भिक्षा–संग्रह किया करते थे। बाह्य दृष्टि से उस तण्डुल में स्पर्श आदि का दोष विद्यमान था। भिक्षा के द्वारा अनेक बार अक्षत तण्डुल प्राप्त नहीं होता है। इसलिए गृहस्थीगण भिक्षुक के द्वारा स्पर्श किये हुये द्रव्य को ग्रहण नहीं करते हैं। यह सत्य है कि, अक्षत तण्डुल स्पर्श–दोष–दुष्ट क्षत–तण्डुल की अपेक्षा पवित्र है, परन्तु भिक्षा–लब्ध तण्डुल उससे भी अधिक पवित्र है; क्योंकि वह भगवत्–कृपालब्ध दान–मात्र हैं आपात दृष्टि से उसमें स्पर्श–दोषादि अथवा मर्यादा–मार्ग का उल्लंघन दिखाई देता है; परन्तु श्रीगौरसुन्दर द्वारा प्रवर्तित विचार में महाप्रसाद से हृदय की पवित्रता ही प्रधान प्रयोजनीय विषय हैं

शुक्लाम्बर के प्रति प्रभु–कृपा–दर्शन से भक्तों के द्वारा प्रेमाश्रु–वर्षण–

शुक्लाम्बर–प्रति देखि' कृपार वैभव।
काँन्दिते लागिला अन्योऽन्ये भक्त सब॥२८॥
एइ मत प्रभु पुनः पुनः आस्वादिया।
करिलेन भोजन आनन्दयुक्त हैया॥२९॥

(२८–२९) प० अनु०—शुक्लाम्बर के प्रति प्रभु कृपा का वैभव देखकर सभी भक्तवृन्द क्रन्दन करने लगे। इस प्रकार से बारम्बार आस्वादनपूर्वक प्रभु ने आनन्द के साथ भोजन किया।

भक्तिहीन कोटीश्वर भी चैतन्य–कृपा से वंचित; भगवान् भक्ति के वशीभूत–

ये प्रसाद पायेन भिक्षुक शुक्लाम्बर।
देखुक अभक्त यत पापी कोटिश्वर॥३०॥
धने जने पाण्डित्ये चैतन्य नाहि पाइ।
'भक्तिरसे वश प्रभु' सर्वशास्त्रे गाइ॥३१॥
बसिलेन प्रभु प्रेमे भोजन करिया।
ताम्बूल खायेन प्रभु हासिया हासिया॥३२॥

(३०–३२) प० अनु०–प्रभु की जिस कृपा कोा भिक्षुक शुक्लाम्बर ने प्राप्त किया, उसे सब पापी अभक्त कोटिश्वर (करोड़पति) जरा देखें तो सही। धन, जन और पाण्डित्य–प्रतिभा से चैतन्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। सभी शास्त्र कहते हैं, 'प्रभु भक्तिरस के वशीभूत हैं।' प्रेम से भोजन समाप्त करने के पश्चात् प्रभु बैठ गये और हँस–हँसकर ताम्बूल खाने लगे।

(३०) गौः भाः—करोड़ों मुद्राओं के अधीश्वर बन जाने से ही भगवान् को भोजन कराया जा सकता है ऐसा नहीं है। निर्धन शुक्लाम्बर ने भिक्षावृत्ति के द्वारा संचित तण्डुलों के सहारे श्रीगौरसुन्दर को तृप्त किया था। भक्तिहीन पापी सम्पद्राय इन सब बातों को बिकुल भी नहीं समझ पाते हैं।

ब्रह्मादि के वन्दनीय प्रभु के प्रसाद–पात्र

भक्तों के द्वारा सिर पर धारण–

पात्र लइ' भृत्यगण भूलिला आनन्दे।
ब्रह्मा, शिव, अनन्त ये पात्र शिरे वन्दे॥३३॥
कि आनन्द हइल से भिक्षुकेर घरे।
एमत कौतुक करे प्रभु विश्वम्भरे॥३४॥

(३३–३४) प० अनु०—जिस प्रसाद–पात्र को ब्रह्मा, शिव और अनन्तदेव सिर पर धारण करके वन्दना किया करते हैं, उसी प्रसाद–पात्र को लेकर भक्तवृन्द आनन्द में विभोर हो रहे थे। उस भिक्षुक के घर में न जाने कौन सा आनन्द हुआ, जहाँ प्रभु विश्वम्भर ने इस प्रकार का कौतुक रचाया।

(३३) गौः भाः—पात्र–श्रीमहाप्रभु का अवशेष–पात्र।

प्रभु के द्वारा कृष्ण–कथा प्रसंग एवं शुक्लाम्बर के घर में विश्राम–

कृष्णकथा–प्रसंग कहिया कतक्षण।
सेइखाने महाप्रभु करिलाशयन।।३५॥

(३५) प० अनु०—कुछ देर तक प्रभु कृष्णकथा–प्रसंगों की चर्चा करते रहे। फिर वहीं उन्होंने शयन किया।

विजय के अंग से प्रभु के हस्त का स्पर्श एवं विजय–द्वारा वैभव–दर्शन–

भक्तगण करिलेन तथाइ शयन।
तथि मध्य अद्‌भुत देखये एक जन।।३६॥
ठाकुरेर एक शिष्य श्रीविजय–दास।
से महापुरुषे किछु देखिला प्रकाश।।३७॥
नवद्वीपे ताँ'र मत नाहि आँखरिया।
प्रभुरे अनेक पुँथि दियाछे लिखिया।।३८॥
'आँखरिया–विजय' करिया सबे घोषे।
मर्म नाहि जाने लोक भक्ति–हीन दोषे।३९॥
शयने ठाकुर ता'न अंगे दिला हस्त।
विजय देखेन अति अपूर्व समस्त।।४०॥
हेम–स्तम्भ–प्राय हस्त दीर्घ सुवलन।
परिपूर्ण देखे तथि रत्न–आभरण।।४१॥
श्रीरत्न–मुद्रिका यत अंगुलीर मूल।
ना जानि कि कोटि सूर्य–चन्द्र–मणि ज्वले।।४२॥
आब्रह्म पर्यन्त सब देखे ज्योतिर्मय।
हस्त देखि' परानन्द हइला विजय॥४३॥

(३६–४३) प० अनु०—भक्तवृन्द भी वहीं सो गये। उन भक्तों में से किसी एक को कुछ अद्‌भुत–सा नजर आया। ठाकुर (महाप्रभु) के श्रीविजय दास नाम के एक शिष्य थे। उन महापुरुष ने प्रभु का कुछ प्रकाश देखा। उन जैसा आँखरिया (लिपिकर) नवद्वीप में कोई दूसरा नहीं था। उन्होंने प्रभु को अनेक पोथियाँ लिखकर दी थीं। सभी उन्हें 'आँखरिया–विजय' कहकर पुकारते थे। परन्तु भक्तिहीनता–दोष के कारण कोई उनके मर्म को नहीं जानता था। शयन करते समय ठाकुर ने उनके अंग पर हाथ रख दिया। इससे विजय को सब कुछ अति अदभुत दिखाई देने लगा–प्रभु के हेम–स्तम्भ–जैसे सुवलित दीर्घ हस्त हैं। वे हस्त रत्नों के आभारणों से परिपूर्ण हैं अंगुलियों के मूल में श्रीरत्न–मुद्रिकाएँ शोभित हैं। न जाने कौन–से कोटि सूर्य–चन्द्र–मणि वहाँ चमक रहे हैं विजय ने ब्रह्म–पर्यन्त सब कुछ ज्योतिर्मय देखा। हस्त को देखकर विजय परमानन्दित हो गया।

(३८) गौः भाः—आँखरिया–लिपिकर; 'आक्षरिक' शब्दज। जब इस देश में मुद्रण–यन्त्र नहीं हुआ करते थे, तब ग्रन्थादि लिपिबद्ध करकेएक श्रेणी के व्यक्ति जीविका–अर्जन किया करते थे। लोग उन्हें 'आँखरिया' कहते थे।

(४२) गौः भाः–श्रीरत्न–मुद्रिका— अंकित

अँगूठी, मणि-प्रवालादि-खचित अंगुरी (अंगूठी)।

विजय-द्वारा शोर मचाने का उद्योग एवं प्रभु का निषेध-

विजय उद्योग मात्र करिला डाकिते।
श्रीहस्त दिलेन प्रभु ताँहार मुखेते।।४४॥
प्रभु बले,-"यत दिन मुञि थाकौं एथा।
तावत् काहारे पाछे कह एक कथा।।"४५॥

(४४-४५) प० अनु०—विजय ने शोर मचाने की चेष्टा की ही थी कि प्रभु ने उनके मुख पर श्रीहस्त प्रदान किया। प्रभु बोले,-"जब तक मैं यहाँ हूँ, किसी से इसके बारे में कुछ मत कहना।"

विजय की हुँकार एवं मूर्च्छा-

एत बलि' हासे प्रभु विजय चाहिया।
विजय उठिला महा हुँकार करिया।।४६॥
विजयेर हुँकारे जागिला भक्तगण।
धरेन विजय तबु ना याय धरण।।४७॥
कतक्षण उन्माद करिया महाशय।
शेषे हैला परानन्द मूर्च्छित तन्मय॥४८॥

(४६-४८) प० अनु०—इतना कहकर प्रभु विजय को देखकर हँसने लगे। विजय महा हुँकार करके उठ खड़े हुये। विजय की हुँकार से भक्तवृन्द भी जाग उठे। सभी ने विजय को पकड़ा, परन्तु उन्हें कोई संभाल नहीं पाया। कुछ देर तक वे महाशय उन्माद की अवस्था में रहकर अन्त में परम आनन्द से तन्मय होकर मूर्च्छित हो गये।

विजय की अवस्था को देखकर भक्तों का आनन्द-क्रन्दन-

भक्त सब बुझिलेन—वैभव-दर्शन।
सर्व-गण लागिलेन करिते क्रन्दन।।४९॥

(४९) प० अनु०—सभी भक्तवृन्द समझ गये कि विजय को वैभव-दर्शन हुआ है। यह देखकर सभी भक्तजन क्रन्दन करने लगे।

प्रभु-द्वारा भक्तों के निकट विजय की विषय-ज्ञापना एवं अंगस्पर्श के द्वारा विजय में चेतनता-विधान-

सबारे जिज्ञासे प्रभु,-"कि बल इहार?
आचम्बिते विजयेर बड़ त' हुँकार।।"५०॥
प्रभु बले,-"जानिलाङ गंगार प्रभाव।
विजयेर विशेषे गंगाय अनुराग।।५१॥
नहे शुक्लाम्बर-गृहे देव-अधिष्ठान।
किवा देखिलेन इहा कृष्ण से प्रमाण।।"५२॥
एत बलि' विजयेर अंगे दिया हस्त।
चेतन करिल, हासे वैष्णव-समस्त।।५३॥

(५०-५३) प० अनु०—प्रभु सबसे पूछने लगे,- "इनको क्या हुआ है? अचानक विजय ने बड़ी हुँकार की है।" फिर प्रभु बोले,-"समझ गया, यह गंगा का प्रभाव है। विजय का गंगा के प्रति विशेष अनुराग है। यह भी हो सकता है कि इन्होंने शुक्लाम्बर के घर में विराजित देवता के प्रत्येक्षरूप में दर्शन किये हों। कृष्ण ही सब कुछ जानते हैं।" ऐसा कहकर विजय के शरीर पर हाथ रखकर प्रभु ने उन्हें चेतनता प्रदान की। यह देखकर सभी वैष्णवजन हँसने लगे।

सात दिनों तक विजय में जड़प्राय भाव-

उठियाओ विजय हइला-जड़-प्राय।
सप्त दिन भ्रमिलेन सर्व नदीयाय॥५४॥
ना आहार, ना निद्रा, रहित देह-धर्म।
भ्रमेण विजय, केह नाहि जाने मर्म।।५५॥
कत दिने बाह्य-चेष्टा जानिला विजय।
शुक्लाम्बर-गृहे हेन सब रंग हय॥५६॥

(५४-५६) प० अनु०—उठकर भी विजय

जड़–तुल्य बने रहे। सात दिनों तक वे सारे नदीयापुर में घूमते रहे। खाना, न सोना—देह–धर्म–रहित होकर वियज भ्रमण करते रहे, किन्तु कोई भी इसके मर्म को नहीं जान पाया। कुछ दिनों बाद विजय की बाहरी चेष्टा लोट आई। शुक्लाम्बार के घर में इस प्रकार का सब आनन्द हुआ।

शुक्लाम्बर के भाग्य की प्रशंसा एवं उपाख्यान की फलश्रुति–

शुक्लाम्बर–भाग्य बलिबारे शक्ति का'र।
गौरचन्द्र अन्न–परिग्रह कैला या'र।।५७॥
एइ मत भाग्यवन्त शुक्लाम्बर घरे।
गोष्ठीर सहित गौरसुन्दर विहरे।।५८॥
विजयेरे कृपा,–शुक्लाम्बरान्न–भोजन।
इहार श्रवणे मात्र मिले भक्तिधन।।५९॥
हेनमते नवद्वीपे श्रीगौरसुन्दर।
सर्व–वेद–वन्द्य लीला करे निरन्तर।।६०॥
एइ मत प्रति वैष्णवेर घरे घरे।
प्रतिदिन नित्यानन्द–संहति विहरे।६१॥

(५७–६१) प० अनु०—उन शुक्लाम्बर के भाग्य का वर्णन करने की शक्ति भला किसमें है, जिनका अन्न गौरचन्द्र ने स्वयं ग्रहण किया है। इस प्रकार के परम भाग्यशाली शुक्लाम्बर के घर में गौरसुन्दर ने गोष्ठी के साथ विहार किया है। विजय के प्रति कृपा एवं शुक्लाम्बर के अन्न भोजन की इस कथा के श्रवण–मात्र से भक्तिधन मिलता हैं सर्व–वेद–वन्द्य श्रीगौरसुन्दर इस प्रकार से सारे नवद्वीप में निरन्तर लीला करते थे। वे प्रत्येक वैष्णव के घर में प्रतिदिन नित्यानन्द के साथ विहार करते थे।

महाप्रभु के द्वारा अपने अवतारादि भावों का प्रकाशन एवं दीर्घकाल–स्थायी बलराम–भाव–

निरवधि प्रेमरसे शरीर विह्वल।
'भाव–धर्म' यत, ताहा प्रकाशे सकल।।६२॥
मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वराह, वामन।
रघु–सिंह, बौद्ध, कलिक, श्रीनन्द–नन्दन।।६३॥
एइ मत यत अवतार से–सकल।
सब रूप हय प्रभु करि' भाव–छल।।६४॥
एइ सकल भाव हइ' लुकाय तखने।
सबे ना घुचिल राम–भाव चिरदिने।।६५॥

(६२–६५) प० अनु०–प्रभु का श्रीअंग प्रेमरस के कारण निरन्तर विह्वल रहता था। जितने भी 'भाव–धर्म' विद्यमान हैं, उन सब का प्रकाशन प्रभु ने किया। मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वराह, वामन, रघुसिंह (राघवेन्द्र), बौद्ध, कल्कि, श्रीनन्दनन्दन आदि जितने भी अवतार हैं, उन सभी का रूप प्रभु भाव–छल के माध्यम से धारण करते रहते थे। इन सभी भावों को अपनाकर प्रभु उसी क्षण उन्हें छिपा लेते थे। परन्तु केवलमात्र बलराम–भाव प्रभु में बहुत समय तक विराजमान रहा।

(६४) गौः भाः—तथ्य— गीतगोविन्द में— "वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्विभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते। पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।"

(६५) गौः भाः—दश अवतार–समूह में से दश प्रकार के भावों को बीच–बीच में प्रदर्शित करके महाप्रभु सभी भावों का संगोपन कर लिया करते थे, इनमें से केवल 'हलधर–भाव' को ही उन्होंने अनेक समय तक प्रदर्शित किया था।

प्रभु–द्वारा बलराम भाव में मदिरा–याचना एवं नित्यानन्द के द्वारा गंगावारि–प्रदान–

महा–मत्त हैला प्रभु हलधर–भावे।
'मद आन' 'मद आन' डाके उच्चरबे।।६६॥
नित्यानन्द जानेन प्रभुर समीहित।
घट भरि' गंगाजल देन सावहित।।६७॥

(६६–६७) प० अनु०—हलधर के भाव में प्रभु महामत्त हो जाया करते थे और 'मदिरा लाओ', 'मदिरा लाओ—ऐसा उच्च स्वर में कहते थे। नित्यानन्द महाप्रभु की अन्तर–इच्छा को जानते थे। वे सावधानी के साथ प्रभु को घटपूर्ण गंगाजल प्रदान कर दिया करते थे।

(६७) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के द्वारा उच्च स्वर में 'मदिरा ले आओ'–आदि सम्यक् चेष्टासमूह के बारे में नित्यानन्द प्रभु अवगत थे। इसलिए वे घटपूर्ण गंगाजल लाकर दे देते थे। गंगोदक अमृत सदृश है एवं भक्तिभाव का उद्दीपक है।

प्रभु के हुँकार एवं ताण्डव से पृथ्वी का कम्पन एवं भयभीत होकर भक्तों द्वारा बलराम–गीत का गान–

हेन से हुँकार करे, हेन से गर्जन।
नवद्वीप–आद करि काँपे त्रिभुवन।।६८॥
हेन से करेन महा ताण्डव प्रचण्ड।
पृथिवीते पड़िले पृथिवी हय खण्ड।।६९॥
टलमल करे भूमि ब्रह्माण्ड–सहिते।
भय पाय भृत्य–सब से नृत्य देखिते।।७०॥
बलराम–वर्णन गायेन सबे गीत।
शुनिया हयेन प्रभु आनन्दे मूर्च्छित।।७१॥

(६८–७१) प० अनु०—प्रभु ने जिस प्रकार से हुँकार और गर्जन किया, उससे नवद्वीप–सहित तीनों लोक काँपने लगे। जिस प्रकार का महा–प्रचण्ड ताण्डव वे कर रहे थे, उससे पृथ्वी पर गिर जाने पर पृथ्वी विखण्डित हो जाती थी। ब्रह्माण्ड–सहित भूमण डल टलमलाने लगता था। सभी भृत्यवर्ग उस नृत्य को देखने से डर जाया करते थे। सभी ने मिलकर बलराम की महिमा काा कीर्तन प्रारम्भ कर दिया। उसे सुनकर प्रभु आनन्द में मूर्च्छित हो गये।

प्रभु–द्वारा आविष्ट–भाव में भ्रमण एवं नित्यानन्द का आह्वान–

आर्या–तर्ज्जा पड़ेन परम–मत्त–प्राय।
ढुलिया ढुलिया सब–अंगने बेड़ाय॥७२॥
कि सौन्दर्य प्रकाश हैल राम–भावे।
देखिते देखिते का'रो आर्ति नाहि भागे।।७३॥
अति अनिर्वचनीय देखि' मुखचन्द्र।
घन घन डाके 'नित्यानन्द नित्यानन्द'!७४॥
कदाचित् कखनओ प्रभुर बाह्य हय।
'प्राण याय मोर' सबे एइ कथा कय॥७५॥

(७२–७५) प० अनु०—परम–मत्त की भाँति प्रभु आर्या–तर्जा (छन्दोबद्ध–प्रश्नोत्तर) पढ़ने लगे और झूमते–झामते हुये सारे आँगन में घूमने लगे। बलराम–भाव में प्रभु का जो सौन्दर्य प्रकाशित हुआ, उसे देखते–देखते किसी की भी तृप्ति नहीं होती थी। श्रीमुखचन्द्र का सौन्दर्य अनिर्वचनीय दिखाई दे रहा था। बारम्बार प्रभु 'नित्यानन्द नित्यानन्द' कहकर पुकारने लगे। कभी–कभी प्रभु को बाह्य बोध होता था। तब 'मेरे प्राण निकल रहे हैं', केवल यही कहते थे।

प्रभु की प्रद्यम्न–भाव में उक्ति–

प्रभु बले,–''बाप कृष्ण राखिलेन प्राण।
मारिलेन देखि हेन ज्येठा बलराम।।''७६॥
एतेक बलिया प्रभु हेन मूर्च्छा याय।
देखि' त्रासे भक्तगण कान्दे उच्च–राय॥७७॥
ये क्रीड़ा करेन प्रभु, सेइ महाद्भुत।

नाना भावे नृत्य करे जगन्नाथ-सुत।।७८॥

(७६-७८) प० अनु०—प्रभु बोले,-"पिता श्रीकृष्ण ने मेरे प्राणों की रक्षा की है। देखो, ताऊ बलराम तो मार ही डालते हैं।" इतना कहकर प्रभु इस प्रकार मूर्च्छित हो गये कि, देखकर भय के मारे भक्तवृन्द ऊँची आवाज में क्रन्दन करने लगे। प्रभु जो-जो लीला करते थे, वही महा अद्‌भुत होती थी। इस प्रकार नाना भावों-सहित जगन्नाथ-नन्दन श्रीगौरचन्द्र नृत्य किया करते थे।

(७६) गौः भाः—महाप्रभु कभी-कभी प्रद्युम्न के भाव से विभावित होकर बलराम को 'ज्येष्ठ तात' कहकर सम्बोधन करते हुये उन्हें 'शासन-कर्ता' एवं कृष्ण को पितृज्ञान से 'रक्षाकर्ता कहा करते थे।

गोपीभाव में प्रभु-द्वारा विप्रलंभ-चेष्टा का प्रदर्शन-

कखनो वा विरह प्रकाश हेन हय।
अकथ्य अद्‌भुत प्रेम-सिन्धु येन बय॥७९॥
हेन से डाकिया प्रभु करेन रोदन।
शुनिले विदीर्ण हय अनन्त-भुवन।।८०॥
आपनार रसे प्रभु आपने विह्वल।
आपना' पासरि' येन करये सकल।।८१॥
पूर्वे येन गोपी-सब कृष्णेर विरहे।
पायेन मरण भय चन्द्रेर उदये।।८२॥
सेइ सब भाव प्रभु करिया स्वीकार।
कान्दे सबार गला धरिया अपार।।८३॥
भावावेशे प्रभुर देखिया विह्वलता।
रोदन करेन गृहे शची जगन्माता।।८४॥
इए मत प्रभुर अपूर्व प्रेम-भक्ति।
मनुष्य कि ताहा वर्णिवारे धरे शक्ति।।८५॥
नाना रूपे नाट्य प्रभु करे दिने दिने।
ये भाव प्रकाश प्रभु करेन यखने।।८६॥

(७९-८६) प० अनु०—कभी-कभी ऐसा विरह प्रकाशित होता था, मानों वर्णनातीत अद्‌भुत प्रेम-सिन्धु प्रवाहित हो रहा हो। पुकार-पुकार कर प्रभु ऐसा रोदन किया करते थे कि उस सुनकर अनन्त-भुवन विदीर्ण हो जाया करते थे। अपने रस में प्रभु स्वयं विह्वल रहते थे। ऐसा लगता था, जैसे अपने आपको भूलकर ही प्रभु सब कुछ कर रहे हों। पहले जैसे गोपियाँ कृष्ण के विरह में चन्द्रमा का उदय देखकर मृत्यु भय से भीत हो जाती थीं, उन्हीं सब भावों को अब स्वयं अपनाते हुये प्रभु सबके गले लगकर अपार क्रन्दन किया करते थे। भावावेश में प्रभु की विह्वलता कोा देखकर जगन्माता शची घर में रोती थीं। इस प्रकार से प्रभु की अपूर्व प्रेम-भक्ति कहाँ है कि वह उसका वर्णन कर सके। जब-जब जिस भाव को प्रभु प्रकाशित करते थे, तब-तब उसी भाव में नाना रूप से दिन-दिन भर प्रभु नृत्य करते रहते थे।

(७९) गौः भाः—ब्रजवासिनी गोपियों के भाव से विभावित होकर महाप्रभु विप्रलम्भ-चेष्टाएँ प्रदर्शित किया करते थे।

(८२) गौः भाः-श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र को प्राप्त न कर पाने के कारण विरह-कातर गोपियाँ जब आकाश में कृष्ण के मुखचन्द्र सदृश चन्द्रोदय को देखती थीं, तब उन गोपियों में जिस प्रकार से कृष्ण-विरहजनित मृत्यु-आदि दशविध विरह-दशाएँ उत्पन्न हुआ करती थीं, उसी प्रकार से अप्राकृत भावशावल्य (अनेक भावों की सन्धि) गौरसुन्दर में दिखाई देते थे।

प्रभु का 'गोपी'-नामोच्चारण से विद्यार्थी-द्वारा दुर्बुद्धिवश प्रभु को उपदेश-दान चेष्टा एवं प्रभु के द्वारा विद्यार्थी को निर्यात प्रदान करने का उद्योग-

एकदिन गोपी–भाव जगत–ईश्वर।
'वन्दावन', 'गोपी गोपी' बले निरन्तर।।८७॥
कोन योगे ताँहि एक पड़ुया आइल।
भाव–मर्म ना जानिया से उत्तर दिल।।८८॥
''गोपी गोपी' केन बल निमाञि पण्डित!
'गोपी गोपी' छाड़ि' 'कृष्ण' बलह त्वरित।।८९॥
कि पुण्य जन्मिबे 'गोपी गोपी' नाम लैले।
'कृष्णनाम' लइले से पुण्य, वेदे बले।।''९०॥
भिन्नभाव प्रभुर से, अज्ञे नाहि बुझे।
प्रभु बले–''दस्यु कृष्ण, कोन् जने भजे।।९१॥
कृतघ्न हइया 'बालि' मारे दोष बिने।
स्त्री–जित हइया काटे स्त्रीर नाक–काणे।।९२॥
सर्वस्व लइया 'बलि' पाठाय पाताले।
कि हइबे आमार ताहार नाम लैले।।''९३॥
एत बलि' महाप्रभु सतम्भ हाते लैया।।
पड़ुया मारिते याय भावाविष्ट हैया।।९४॥
आथेव्यथे पड़ुया उठिया दिल रड़।
पाछे धाय पहाप्रभु, बले 'धर धर'॥९५॥
देखिया प्रभुर क्रोध ठेंगा हाते धाय।
सत्वरे संशय मानि' पड़ुया पलाय॥९६॥
भिन्न–भाव याय प्रभु, ना जाने पड़ुया।
प्राण लइयामहा–त्रासे याय पलाइया।।९७॥

(८७–९७) प० अनु०—एकदिन जगदीश्वर गोपीभाव में निरन्तर 'वृन्दावन' और 'गोपी–गोपी' कहे जा रहे थे। उसी समय वहाँ एक विद्यार्थी किसी कारणवश आ गया। भाव का तात्पर्य बिना समझे उसने कुछ उत्तर दिया। "गोपी गोपी' क्यों कह रहे हो निमाइ पण्डित! 'गोपी–गोपी' कहना छोड़कर शीघ्र 'कृष्णनाम' ग्रहण करने से पुण्य मिलेगा? वेद कहता है, 'कृष्णनाम' ग्रहण करने से पुण्य की प्राप्ति होती है।" भिन्नभाव में स्थित प्रभु को वह अज्ञ व्यक्ति समझ नहीं पाया। प्रभु कहने लगे,– "कृष्ण दस्यु है, उसका नहीं पाया। प्रभु कहने लगे,–"कृष्ण दस्यु है, उसका भजन कौन करे। उसने अकृतज्ञ होकर बिना दोष के 'बली' को मार डाला। स्त्री–जाति होकर स्त्रियों के नाम–कान काट डाले। स्त्री जाति होकर स्त्रियों के नाम–कान काट डाले। 'बलि' का सर्वस्व लेकर उसको पाताल में भेज दिया। उसका नाम लेने से मेरा क्या होगा" इतना कहकर भावाविष्ट महाप्रभु हाथ में डंडा लेकर विद्यार्थी को मारने के लिये दौड़ पड़े। विद्यार्थी अस्तव्यस्त होता हुआ उठकर भाग गया। पकड़ लो, पकड़ लो, कहकर महाप्रभु उसके पीछे–पीछे भागने लगे। क्रोधित प्रभु को हाथ में डंडा लिये आते देखकर भय के मारे विद्यार्थी शीघ्र दूर भाग गया। भिन्न भाव में स्थिति प्रभु को विद्यार्थी समझ नहीं पाया था। अत्यन्त भयभीत वह विद्यार्थी जान बचाकर भाग निकला।

(८९–९४) गौः भाः— श्रीगौरसुन्दर अपने आपको वृन्दावनवासिनी गोप–कन्या मानकर वृषभानु–नन्दिनी को लक्ष्य करते हुये सम्बोधित कर रहे थे, यह सुनकर एक विद्यार्थी ब्राह्मण वटु ने गौर–भगवान् के हृद्गत मर्म को उपलब्ध करने में असमर्थ होकर उनसे कहा, कृष्णनाम ही संसार से उद्धार–प्राप्ति का तारक मन्त्र है, उसका परित्याग करके तुम 'गोपी–नाम' उच्चारण– पूर्वक विपथगामी क्यों हो रहे हो? बालक विद्यार्थी नहीं जानता था कि कृष्ण की आश्रयविग्रह गोपियों के आनुगत्य से रहित होकर कृष्ण–पादपद्म को प्राप्त नहीं किया जा सकता है; विशेषतया, उस निर्बोध विद्यार्थी ने श्रीमद्भागवत के 'आहुश्च ते नलिननाभ' श्लोक का अनुशीलन न करने से प्रायश्चित करने के के योग्य स्मार्त व्यवस्थापक की भाँति विचार करते हुये गौरसुन्दर को कृष्ण

कहलाने के लिए जो यत्न किया था, उससे गौरसुन्दर का रस विपर्यय हो जाने से श्रीमाध्वेन्द्रपुरी ने जिस प्रकार से रामचन्द्रपुरी नाम के विपथगामी शिष्य को विताड़ित किया था, उसी प्रकार महाप्रभु भी उस विद्यार्थी के प्रति व्यवहार दिखाने को प्रवृत्त हो गये। जिस कृष्ण 'दस्यु' ने अभिलाषिणी सूर्पणखा के नाक, कान काट डाले थे, बालि को मारा था एवं सर्वस्व ग्रहण–कर बलि को पाताल भेज दिया था— उस कृष्ण का आश्रय ग्रहण करने से मेरा क्या लाभ होगा?— इस प्रकार के प्रणय–कलहसूचक वाक्यों का प्रयोग करते–करते महाप्रभु ने विद्यार्थी को ताड़ित किया था।

(९५–९६) गौः भाः—श्रील गौरसुन्दर का उद्देश्य समझने में असमर्थ विद्यार्थी उनके हाथ के डण्डे की मार से बचने के लिए अत्यन्त भयभीत एवं शंकित होकर भाग गया था।

भक्तों के द्वारा प्रभु को रोकना–

आथेव्यथे धाइया प्रभुर भक्तगण।
आनिलेन धरिया प्रभुरे ततक्षण।।९८॥
सबे मेलि' स्थिर कराइलेन प्रभुरे।
महाभये पड़ुआ पालाञा गेल दूर।।९९॥

(९८–९९) प० अनु०—भक्तवृन्द अस्तव्यस्त होकर भागे और प्रभु को तत्क्षण पकड़कर ले आये। सभी ने मिलकर प्रभु को शान्त किया। उधर महा भयभीत होकर विद्यार्थी दूर भाग गया।

विद्यार्थी का पलायन एवं अपने साथियों के समक्ष घटना का पूरा वर्णन–

सत्वरे चलिला यथा पड़ुयार गण।
सर्व–अंगे घर्म, श्वास बहे घने।।१००॥
सम्भ्रमे जिज्ञासे सबे भयेर कारण।
''कि जिज्ञास आजि भाग्ये रहिलजीवन।।१०१॥
सबे बले 'बड़ साधु निमाइ पण्डित।'
देखिते गेलाङ आमि ताहार बाड़ीत।।१०२॥
देखिलाङ बसिया जपेन एइ नाम।
अहर्निश 'गोपी गोपी' ना बलये आन।।१०३॥
ताहे आमि बलिलाङ—'कि कर' पण्डित।
'कृष्ण कृष्ण' बल— येन शास्त्रेर विहित।।'१०४॥
एइ वाक्य शुनि' महा–क्रोधे अग्नि हैया।
ठेंगा हाते आमारे आइल खेदाड़िया।।१०५॥
कृष्णेरेओ हइल यतेक गाला–गालि।
ताहा आर मुखे आमि आनिते ना परि।।१०६॥
रक्षा पाइलाङ एइ आजिकार विवरेण।
कहिलाङ एइ आजिकार विवरणे।।''१०७॥

(१००–१०७) प० अनु०— भागकर विद्यार्थी शीघ्र अपने सहपाठियों के पास आ गया। उस विद्यार्थी का सारा शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था और वह जोर–जोर से सांस ले रहा था। सम्भ्रम–सहित सभी ने उससे भय का कारण पूछा। विद्यार्थी ने कहा, "क्या पूछ रहे हो, आज तो भाग्य सेस ही जीवन बचा है। कहते हैं कि 'निमाइ पण्डित बड़े साधु हैं', इसलिए आज मैं उन्हें देखने के लिए उनके घर गया था। मैंने देखा कि निमाइ पण्डित बैठकर नाम जप रहे हैं। दिन–रात 'गोपी–गोपी' के अतिरिक्त वे और कुछ नहीं बोल रहे थे। इस पर मैंने कहा,– 'क्या कर रहे हो पण्डित! 'कृष्ण कृष्ण' बोलो— यही शास्त्रों का विधान है।' यह सुनकर उसने महा क्रोध से लाल होकर हाथ में डंडा लिए मुझसे खदेड़ कर भगा दिया। कृष्ण को भी बहुत गालियाँ दीं। उन सबको मैं दुबारा मुख पर नहीं ला सकता। आयु होने के कारण आज में बच गया हूँ। बस, आज का समाचार यही है।"

मूर्ख विद्यार्थियों के द्वारा अक्षज-विचार के सहारे चैतन्य की निन्दा-

शुनिया हासये सब महा-मूर्ख गणे।
बलिते लागिला यार येन लय मने।।१०८॥
केह बले-''भाल त 'वैष्णव' बले लोके।
ब्राह्मण लंघिते आइसेन महा कोपे।।''१०९॥
केह बले- ''वैष्णव'' बा बलिब केमने।
'कृष्ण'-हेन नाम यदि ना बले वदने।।''११०
केह बले,-''शुनिलाङ अद्भूत आख्यान।
वैष्णव जपये मात्र 'गोपी गोपी'-नाम।।''१११॥
केह बले,-''एत वा सम्भ्रम केने करि।
आमरा कि ब्राह्मणेर तेज नाहि धरि।।११२॥
तेहोँ से ब्राह्मण, आमरा कि विप्र नहि।
तेहोँ मारिबेन आमरा केनइ वा सहि।।११३॥
राजा त' नहेन तेहोँ मारिबेन केने।
आमराओ समवाय हओ सर्वजने।।११४॥
यदि तेहोँ मारिते धायेन पुनर्वार।
आमार सकल तबे ना साहिब आर।।११५॥
तिँहो नवद्वीपे जगन्नाथ-मिश्र-पुत।
आमराओ नहि अल्प-मानुषेर सुत।।११६॥
हेर सबे पड़िलाङ कालि ता'र सने।
आजि तिँहो 'गोसाञि' वा हइल केमने।।''११७॥
एइ मत युक्ति करिलेन पापिगण।
जानिलेन अन्तर्यामी श्रीशची-नन्दन।।११८॥
एकदिन महाप्रभु आछेन बसिया।
चतुर्दिके सकल पार्षदगण लैया।।११९॥

(१०८-११९) प० अनु०— इसे सुनकर वे सब महा-मूर्खगण हँस पड़े और जिसके मन में जो आया सो कहने लगे— किसी ने कहा,-"लोक तो उन्हें भला 'वैष्णव' कहते हैं। परन्तु अत्यधिक कुपित होकर वे ब्राह्मण का अतिक्रमण करना चाहते हैं।" कोई बोला,-"यदि कृष्णनाम मुख में नहीं बोलते हैं, तब 'वैष्णव' कैसे कहेंगे।" किसी ने कहा-"यह तो अद्भुत बात सुनने में आई है कि 'वैष्णव' केवल 'गोपी-गोपी-नाम का जाप करता है।" एक ने कहा,- "इतना सम्भ्रम (भय) प्रदर्शित करने की क्या जरूरत हैं" क्या हममें ब्राह्मणों का तेज नहीं है? वे ब्राह्मणों हैं, तो क्या हम लोब ब्राह्मण नहीं हैं? उनकी मार हम क्यों सहन करें? वे कोई राजा तोा है नहीं, फिर वे हमें क्यों मारेंगे। हम सबको इकट्ठा होकर खड़ा होना होगा। यदि फिर से वे मारने को आते हैं तो हम और सहन नहीं करेंगे। वे यदि नवद्वीप में रहने वाले जगन्नाथ-मिश्र के पुत्र हैं तो हम भी किसी क्षुद्र मनुष्य की सन्तान नहीं हैं। उस दिन की ही बात है, हम सब उनके साथ अध्ययन किया करते थे। आज वे 'गोसाईं' कैसे बन गये?" पापीजन इस प्रकार से अनेक युक्तियाँ करने लगे। अन्तर्यामी श्रीशचीनन्दन सब कुछ जान गये। एकदिन महाप्रभु चारों ओर से सभी पार्षदों के द्वारा घिरे हुये बैठे थे।

(१०८-११७) गौः भा—त्रस्त विद्यार्थी ने अपनी भाँति ही अल्पबुद्धि-सम्पन्न पण्डिताभिमानियों के निकट आकर श्रीगौरसुन्दर के आचरण के बारे में बताया। इससे उनके सहाध्यायीगणों में से किसी ने कहा,- "जब विश्वम्भर ने हमारे साथ मिलकर अध्ययन किया है, तब वे 'मुक्त पुरुष और महाभगवत' कैसे बन गये? वे जगन्नाथ मिश्र के पुत्रमात्र हैं; तो हम सब भी पण्डित जगन्नाथ मिश्र-जैसे व्यक्तियों की सन्तानें हैं। वे कोई राजा तो हैं नहीं,-जो हमें दण्ड प्रदान करेंगे। वे दण्ड देने को आयेंगे, तो हम भी उन्हें दण्ड देंगे। हम भी उनकी ही भाँति ब्राह्मणों की सन्तानें हैं। यदि कोई ब्राह्मण को मारने आया, तोा हम उसे सहन नहीं करेंगे। यदि कोई उन्हें 'वैष्ण

ाव' मानकर ब्राह्मण की अपेक्षा उच्चासन प्रदान करता है, तो वैष्णवोचित कृष्णनाम ही उनके मुख से सुनाई देना चाहिए था अथवा सुनने में आना चाहिए था। उनके मुख से सुनाई देना चाहिए था अथवा सुनने में आना चाहिए था। उनके इस अद्‌भुत 'गोपी' नामोच्चारण को सुनकर कोई भी उन्हें 'वैष्णव' नहीं कहेगा। ब्राह्मणों का आनुगत्य करना वैष्णवों का ध र्म है(?); अतएव ब्राह्मणलंघनार्थ जब उनमें क्रोध का उदय होता है, तब उन्हें ब्राह्मणविद्वेषी ही जानना होगा पापचित्त जनों क पापभर से पूर्ण होने पर जैसी चित्तवृत्ति होती है, वैसी चित्तवृत्ति युग–युग से होती चली आ रही है आज भी वैसी ही निष्ठुरता का पिरचय देखने को मिलता है।

पहेली के माध्यम से महाप्रभु–द्वारा संन्यास–ग्रहण–वार्ता की अभिव्यक्ति–

एक वाक्य अद्‌भुत बलिला आचम्बित।
केह ना बुझिल अर्थ, सबे चमकित।।१२०॥
''करिल पिप्पलिखण्ड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाड़िल देहेते।।१२१॥
बलि' अट्ट अट्ट हासे सर्व–लोक–नाथ।
कारण ना बुझि' भय जन्मिल सबा'त।।१२२॥

(१२०–१२२) प० अनु०—अचानक प्रभु ने एक अद्‌भुत वाक्य कह दिया। वाक्य का अर्थ किसी की समझ में नहीं आया। सभी आश्चर्यचकित रह गये। "कफ दूर करने के लिए मैंने 'पिप्पली–खण्ड' का उपयोग किया था। उलटे शरीर में कफ और बढ़ गया।" इतना कहकर सर्वलोकनाथ गौरप्रभु खिलखिलाकर हँस पड़े। कारण समझ में न आने से सभी भयभीत हो गये।

(१२१) गौः भाः—मैंने जगत् के बाह्य दृष्टि से प्रपीड़ित जीवों के लिए अनुद्‌घाटित (अप्रकाशित) सत्य का प्रचार करने की चेष्टा की थी; परन्तु उसका फल ग्रहण करना तो दूर, उलटे उन्होंने भीषणतर अपराधों का भार और अधिक परिमाण में अपने कन्धों पर उठा लिया है। नदीयावासी जीवों के लिएए मैं नित्यमंगल की कथाएँ प्रचारित करने गया था; परन्तु वे बिना समझे आपातदर्शन से विमूढ होकर 'शुद्धभक्ति'–प्रचार के विरोधी हो गये। वैद्यों के शास्त्र में कफ से पीड़ित धातु वाले व्यक्ति को स्वस्थ करने के लिए 'पिप्पलीखण्ड' नाम की औषधि प्रदान की जाती है। उस औषधि के द्वारा कफ से पीड़ित अथवा दुःखित व्यक्ति को स्वास्थ्य–लाभ होना तो दूर, उससे कफ व्याधि और बढ़ गई है। सांसारिक भोगी सम्प्रदाय भोग–विवर्द्धन के लिए ही कल्पित भगवान् की उपासना किया करते हैं; भगवान् की प्रीति के निमित्त कुछ न करके वे केवल अपनी इन्द्रियों के तर्पण की साधाना में ही व्यस्त हो जाते हैं। अपने–अपने भागों को ही वे सब अपना प्रयोजन समझते हैं— सुदुर्लभ कृष्ण–प्रेमसेवा का सन्धान उनके पास नहीं है।

प्रभुवाक्य को सुनकर नित्यानन्द का विषाद–

नित्यानन्द बुझिलेन प्रभुर अन्तर।
जानिलेन–'प्रभु शीघ्र छाड़िबेन घर।।१२३॥
विषादे हइला मग्न नित्यानन्द–राय।
हइब संन्यासी–रूप प्रभु सर्वथाय॥१२४॥
ए सुन्दर केशेर हइब अन्तर्द्धान।'
दुःखे नित्यानन्देर विकल हैल प्राण।।१२५॥

(१२३–१२५) प० अनु०—नित्यानन्द ने प्रभु के हृदय की बात समझ ली और वे जान गये कि–'प्रभु शीघ्र घर छोड़ देंगे। प्रभु सब प्रकार से संन्यासी–रूप धारण करेंगे, इस

चिन्ता से नित्यानन्द रास विषाद में डूब गये। इन सुन्दर केशों का अन्तर्द्धान (लोप) हो जायेगा।' दुःख से नित्यानन्द के प्राण व्याकुल हो उठे।

नित्यानन्द के साथ प्रभु का एकान्त में कथोपकथन–

क्षणेके ठाकुर नित्यानन्द–हस्ते धरि'।
निभृते बसिला गिया गौरांग–श्रीहरि।।१२६॥
प्रभु बले,–''शुन नित्यानन्द महाशय!
तोमारे कहिये निज हृदय निश्चय॥१२७॥
भाल से आइलाङ आमि जगत तारिते।
तारण नहिल, आमि आइलुँ संहारिते।।१२८॥
आमा देखि' कोथा पाइवेक बन्धनाश।
एक गुण बद्ध छिल—हैल कोटि–पाश।।१२९॥
आमारे मरिते यबे करिलेक मने।
तखनेइ पड़ि' गेल अशेष बन्धने।।१३०॥
भाल लोक तारिते करिलुँ अवतार।
आपने करिलुँ सब जीवेर संहार।।१३१॥
देख कालि शिखा–सूत्र सब मुड़ाइया।
भिक्षा करि' बेड़ाइमु संन्यास करिया।।१३२॥
ये ये जने चाहियाछे मोरे मारिबारे।
भिक्षुक हइमु कालि ताहार दुयारे।।१३३॥
तबे मोरे देखि' से–इ धरिबे चरण।
एइ मते उद्धारिब सकल भुवन।।१३४॥
संन्यासीरे सर्व लोक करे नमस्कार।
सन्यासीरे केह आर ना करे प्रहार।।१३५॥
संन्यासी हइया कालि प्रति–घरे–घरे।
भिक्षा करि बुलों—देखों के वा मोरे मारे।।१३६॥
तोमारे कहिलुँ एइ आपन हृदय।
गारिहस्त–वास मुञि छाड़िब निश्चय॥१३७॥
इथे किछु दुःख तुमि ना भाविह मने।
विधि देह' तुमि मोरे संन्यास–कारणे।।१३८॥
येरूप कराह तुमि, से–इ हइब आमि।
एतेके विधान देह' अवतार जानि'॥१३९॥
जगत् उद्धार यदि चाह करिवारे।
इहाते निषेध नाहि करिबे आमारे।।१४०॥
इथे तुमि दुःख ना भाविह कोन क्षण।
तुमि त' जानह अवतारेर कारण।।''१४१॥
शुनि' नित्यानन्द श्रीशिखार अन्तर्द्धान।
अन्तरे विदीर्ण हैल मन–देह–प्राण।।१४२॥
कोन् विधि दिब हेन ना आइसे वदने।
'अवश्य करिबे प्रभु' जानिलेन मने।।१४३॥
नित्यानन्द बले,–''प्रभु, तुमि इच्छामय।
ये तोमार इच्छा प्रभे सेइ से निश्चय।१४४॥
विधि वा निषेध के तोमारे दिते पारे।
सेइ सत्य, ये तोमार आछये अन्तरे।।१४५॥
सर्व–लोकपाल तुमि सर्व–नाथ।
भाल हय ये मते से विदित तोमा'त।।१४६॥
येरूपे करिबा प्रभु जगत उद्धार।
तुमि से जानये ताहा के जानये आर।।१४७॥
स्वतन्त्र परमानन्द तोमार चरित।
तुमि ये करिबे, से–इ हइबे निश्चित।।१४८॥
तथापिह कह सब सेवकेर स्थाने।
के वा कि बलये ताहा शुनह आपने।।१४९॥
तबे ये तोमार इच्छा करिबे ताहारे।
के तोमार इच्छा प्रभु, विरोधिते पारे।।''१५०॥
नित्यानन्द–वाक्ये प्रभु सन्तोष हइला।
पुनः पुनः आलिंगन करिते लागिला।।१५१॥
एइमत नित्यानन्द–संगे युक्ति करि'।
चलिलेन वैष्णव–समाजे गौरांग–श्रीहरि।।१५२॥
गृह छाड़िवेन प्रभु' जानि' नित्यानन्द।
बाह्य नाहि स्फुरे, देह हइल निष्पन्द।।१५३॥
स्थिर हइ' नित्यानन्द मने मने गणे'।
''प्रभु गेले आइ प्राण धरिब केमने।।१५४॥

केमते बंचिव आइ काल—दिवा–राति।''
एतेक चिन्तिते मूर्च्छा पाय महामति।।१५५॥
भाविया आइर दुःख नित्यानन्द–राय।
निभृते बसिया प्रभु कान्दये सदाय॥१५६॥

(१२६–१५६) प० अनु०— एक क्षण में ठाकुर गौरांग–श्रीहरि नित्यानन्द का हाथ पकड़कर एकान्त में जा बैठे। प्रभु कहने लगे,–"नित्यानन्द महाशय, सुनो! जो मैंने निश्चय किया है, वह तुमसे कह रहा हूँ। मैं जगत् का उद्धार करने के लिए आया था। उद्धार तो हुआ नहीं; लगता है, मैं संहार करने के लिए आया हूँ। मुझे देखकर जहाँ उनको बन्धन से मुक्त हो जाना चाहिए था, वहाँ उल्टे उनकी एक गुण–बन्धन दशा करोड़ों गुना बन्धनों में बदलती जा रही है जब मुझे मारने का निश्चय किया, तभी वे (विद्यार्थी) अशेष बन्धनों में फँस गये। लोगों का उद्धार करने के लिए मैंने अवतार लिया था, परन्तु मैंने स्वयं सब जीवों का संहार कर दिया। देख लेना, कल ही सब शिखा–सूत्र परित्याग पूर्वक संन्यास ग्रहण करके भिक्षुक धर्म लेकर पर्यटन करूँगा। जिस–जिसने मुझे मारने की इच्छा की है, उन्हीं सब के घरों पर कल भिक्षुक बन कर जाऊँगा। मुझे संन्यासी के वेष में देखकर वे मेरे चरण स्पर्श करेंगे। इस प्रकार से सारे संसार का उद्धार करूँगा। सभी लोग संन्यासी को नमस्कार करते हैं। संन्यासी पर कोई प्रहार नहीं करता है। संन्यासी बनकर कल घर–घर में भिक्षा करूँगा—फिर देखता हूँ कौन मुझे मारता है। मैंने तुम्हें हृदय की बात बता दी है। गृहस्थ–आश्रम को मैं निश्चितरूप से छोड़ूँगा। इससे तुम मन में कोई दुःख मत लाना। संन्यास ग्रहण के लिए तुम मुझे विधान दो। तुम मुझे जिस रूप में देखना चाहते हो, मैं उसी रूप को अपनाऊँगा। अतएव, मुझे अवतारोचित विधान प्रदान करो। यदि जगत् का उद्धार करना चाहते हो, तो मुझे ऐसा करने से निषेध नहीं करना। अवतार के कारण के बारे में तुम तो सब कुछ जानते हो। अतएव एक क्षण के लिए भी दुःखित मत होना।" श्रीशिखा के अन्तर्द्धान के विषय में सुनकर नित्यानन्द के अन्तर से देह–मन–प्राण सब विदीर्ण हो गये। क्या विधि दूँ, नित्यानन्द कुछ समझ नहीं पाये। परन्तु मन–ही–मन वे जान गये कि, 'प्रभु अवश्य संन्यास ग्रहण करेंगे।' नित्यानन्द कहने लगे,–"हे प्रभु, आप इच्छामय हैं, जो आपकी इच्छा है, वह निश्चित रहेगी। आपके लिए विधि अथवा निषेध का विधान कौन दे सकता है। वही सच है जो आपके मन में है। हे प्रभु, सब लोकों के पालने वाले और सब लोकों के स्वामी आप ही हैं। क्या ठीक है, यह आप ही भलीभाँति जानते हैं। जिस प्रकार से आप जगत् का उद्धार करेंगे, उसे आपके अतिरिक्त और कौन जानता है प्रभु। आपका चरित्र स्वतन्त्र परमानन्द–स्वरूप हैं निश्चिरूप से वही होगा, जो आप करेंगे। फिर भी, आप अपने सेवकों के समक्ष सब कुछ कहिये। कौन क्या कहता है, यह भी आप सुनिये। फिर भी आपकी जो इच्छा है वही करिये। हे प्रभु! आपकी इच्छा के विरुद्ध कौन चल सकता है।" नित्यानन्द के वचनों कोा सुनकर प्रभु को बड़ी प्रसन्नता हुई और बार–बार नित्यानन्द का आलिंगन करने लगे। इस प्रकार से नित्यानन्द के साथ परामर्श करके गौरांग–श्रीहरि वैष्णव–समाज से मिलने के लिए चल दिये। 'प्रभु घर छोड़ देंगे'– यह जानकर नित्यानन्द का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और उनका देह भी निष्पन्द (स्पन्दन–रहित

स्थिर) हो गया। फिर अपने आपको सम्हालकर नित्यानन्द सोचने लगे, "प्रभु चले गये तो आई कैसे प्राण धारण करेंगी। दिन रात का समय आई कैसे व्यतीत करेंगी।" इस चिन्ता से महामति नित्यानन्द मूर्च्छित हो गये। आई के दुःख का अनुभव करके प्रभु नित्यानन्द राय एकान्त में बैठकर सदैव रोया करते थे।

(१२९) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने श्रीनित्यानन्द से कहा,—"नवद्वीपवासियों के मंगलविधान हेतु मैंने हरि एवं हरिभक्तों का कीर्तन आरम्भ किया था। परन्तु इससे विपरीत फल हुआ। वे उत्तरोत्तर अधिकतर अपराध में निमग्न हो गये। शुद्धभक्ति के अनुष्ठान को बिना समझे भगवद्-भक्ति को विपरीत विषय मानकर उन्होंने आत्मविनाश को प्राप्त किया है—जड़जगत् की बन्धन-रज्जु को उन्होंने और भी कसकर बाँध लिया है! भगवद्विद्वेष के फलस्वरूप एवं भगवद्-भक्तों के सेवाबोध के अभाव के कारण ही उन लोगों को को इस प्रकार की दुर्गति का सामना करना पड़ा है।" श्रीगौरसुन्दर के अभिप्राय के अनुसार श्रीविश्व-वैष्णवराज- सभा के अनुष्ठान-निपुण भक्तवृन्द जिस समय शुद्धभक्ति के प्रचार में व्यस्त थे, तबकालनावासीी एक उद्धत कर्मी की सहायता से तथाकथित प्राकृत साहजिक-सम्प्रदाय ने कितने ही दौरात्म्य प्रकाशित किये थे! तथाकथित विष्णुभक्ति-प्रचारकों द्वारा सामयिक समाचार-पत्रादि में भी अनेक प्रकार के तीव्र कटुवाक्यों के सहारे शुद्धभक्ति के विरोध में न जाने कितने यत्न किये गये! दुराचार-व्यभिचारादि, कृष्ण एवं कृष्णभक्त-विद्व ेषरूप अभक्ति और योषित्-संग आदि को ही श्रीगौरसुन्दर के द्वारा प्रचारित शुद्धभक्ति का आदर्श जानकर वे सब आत्मसंहारार्थ न जाने कितने कल्मषकूपों में निमग्न हो गये! किसी-किसी ने वर्णाश्रमर्ध-पालन की छलना से दैववर्णाश्रम के विरुद्ध कटाक्षपात किया, तो कोई-कोई भक्ति-धारा को बिना समझे भोग-प्रवृत्ति का संरक्षण करता हुआ मुँछों की रक्षा के निमित्त प्रवृत्त हुआ। निर्बोध प्राकृत-सहजियागण जब भगवद्-भक्तों के उद्देश्य के बारे में ही कुछ भी नहीं समझ पाते, तो फिर गौरसुन्दर की अलौकिक चेष्टाओं और मुद्राओं को कैसे समझ पायेंगे? परम पवित्र गौरलीला के चरम उद्देश्य—कृष्णप्रेम-प्रदान को भी नीतिविरोधी जनोंकी चित्तविकृति कहकर वे लोग नये साहित्य की उद्भावना करने से पीछे नहीं हटे। युग-युग में 'कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वदेसंज्ञिता' वाक्य की वास्तविकता दिखाई देती है। तथापि धर्म की ग्लानि के निराकरणार्थ (हटाने के लिए) भगवान् एवं तदीयजन सदैव यत्नशील रहते हैं। अनुद्घाटित (अप्रकाशित) रहस्य को ग्रहण करने की योग्यता का अर्जन करना पापचित्त वाले व्यक्तियों के लिए सम्भव नहीं है।

(१३५) गौः भाः— ब्रह्मचारी, गृहस्थी एवं वानप्रस्थी-इन तीनों आश्रमों में स्थित व्यक्ति अपने-अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर विरोधी- धर्मों का पोषण करते हैं। सब प्रकार से सब कुछ त्याग देने का नाम-'संन्यास' है। कर्मफल त्याग देने से 'कर्म-संन्यास' सब प्रकार से जागतिक ज्ञान का त्याग करने से 'ज्ञान-संन्यास' एवं सब वस्तुओं की सेवा-ग्रहण प्रवृत्ति का परित्याग करके भगवत् सेवोन्मुख होने से ही भक्तिपथ का संन्यास सिद्ध होता है। धर्म, अर्थ और काम कर्मसंन्यासी का प्राप्य है, मोक्ष— ज्ञानसंन्यासी का प्राप्य है और कृष्णप्रेम भक्त-संन्यासी का प्राप्य है। संन्यास ग्रहणकरने से किसी को भी कोई नुकसान नहीं होता है; क्योंकि, संन्यासी की प्रार्थनीय कोई

भी वस्तु दूसरों के लिए लोभनीय नहीं होता हैं संन्यासी पर कोई आक्रमण नहीं करता है। 'भिक्षुक' समझकर संन्यासी को सभी दया की दृष्टि से देखते हैं।

कृष्णचन्द्र सिंह जिस समय ब्रजमण्डल में अनेक व्यक्तियों के अप्रीति के पात्र बन गये थे एवं अनेक मामला–मुकद्दमा में भी फँस गये थे, उस समय उन्होंने अनुराग–पथ में संन्यास ग्रहण किया था। इससे ब्रजवासियों ने उनके प्रति आक्रमणात्मक व्यवहार छोड़ दिया था। परन्तु श्रीविश्व–वैष्णव–राजसभा के त्रिदण्डि संन्यासियों के विरुद्ध अनेक अनभिज्ञ व्यक्तियों ने भक्तिपथ में संन्यास ग्रहण करने के तात्पर्य को समझने में असमर्थ होकर आक्रमण किया है। जो लोग आक्रमण करते हैं, उन्हें दोष देने का कुछ भी कारण नहीं है, परन्तु उन लोगों की मूर्खता एवं अर्वाचीनता (अधमता) ही उक्त दोषों का कारण है।

श्रीगौरसुन्दर के प्रकट काल में कलिध र्म अत्यन्त प्रबल नहीं हुआ था, अतः बहुत से लोग संन्यासियों पर आक्रमण नहीं किया करते थे। परन्तु चरित्रहीन, नीतिवर्जित, मत्सर–स्वभावके मनुष्य त्रिदाण्डि संन्यासियों के विरुद्ध हर समय दौरात्मय (दुर्व्यवहार) प्रकाशित करते रहते हैं; यहाँ तक कि, विशुद्ध हरिभजन, हरिधाम, विशुद्ध वर्णाश्रम–ध र्म में अनुकूल भाव–सहित जीवन निर्वाह करना आदि सभी विषयों के प्रति अति मत्सरता दिखाकर उन सबने यातिओं पर आक्रमण किया है मादक–द्रव्यों का सेवन—ध र्म का अंग नहीं है, ऐसा कहने से ही कोई–कोई क्षुब्ध हो जाता है, दुश्चरित्रता धर्म का अंग नहीं हो सकता है, ऐसा कहने से कुछ लोग क्रुद्ध हो जाते हैं, जाल–जुआचोरी करके अर्थोपार्जनकी अपेक्षा केवल सत्पथ पर रहकर भी अपने लिए अर्थोपार्जन करना उचित नहीं है, ऐसा कहने से भी कोई–कोई क्रुद्ध होता है। कपटता धर्म का अंग नहीं है, ऐसा कहने से कोई–कोई असन्तुष्ट हो जाताहैं जागतिक उन्नति–साधन–आदि कार्य प्रयोजनीय विषय नहीं है, मत्सर होना कर्तव्य नहीं है, निष्पक्ष होकर धर्मालोचन कर्तव्य है— इन सब बातों से मत्सर–स्वभाव वाले,'धार्मिक' नाम से परिचायाकांक्षी लोगों में ईर्ष्या की वृद्धि होती है। वे भी धार्मिक वेशभूषा से सज्जित धार्मिक लोगों को अपने–जैसा अधार्मिक समझकर उनसे विवाद करते रहते हैं एवं दूसरों को भी कलह करने के लिए अवैधभाव से प्रोत्साहित किया करते हैं। जो लोग आत्मसंयम में असमर्थ हैं, उस प्रकार के व्यक्ति धार्मिक ख्याति के प्रलोभन से प्रलुब्ध होकर कपटपूर्वक उक्त वेश धारण करके भगवान्, भगवद् धाम एवं भगवद्–भक्ति के सम्पूर्ण अनुष्ठानों को ध्वस्त करने की चेष्टा करके अनेक देवतावाद की छलना से नाना प्रकार की दुर्नीतियों को धर्म कहकर उनका प्रचार करते हैं और विरोध ी भावों के प्रचार को ही 'धर्मप्रचार' इत्यादि कहते हैं। त्रिदण्डिगण उन लोगों की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते हैं, बल्कि अपराध ारहित होकर श्रीनाम–सेवा, विषयवितृष्ण होकर श्रीधाम–सेवा एवं इन्द्रिय– तर्पण–परित्याग–पूर्वक कामदेव की सेवा में कृष्णप्रेमान्वेषी होते हैं। धर्मध्वजी धर्म– याजन के नाम पर 'अर्थसंग्रह', सभा–समितियों में धार्मिक वक्तृता के नाम पर चिल्ला–चिल्लाकर बातें बोलना, शास्त्र–व्याख्या एवं पाठ आदि के नाम पर जीविका–अर्जन आदि की चेष्टा करके साधारण जनता की सहानुभूति प्राप्त करने का यत्न करते रहते हैं। ये सब मत्सर–स्वभाव वाले लोग जिस दिन वास्तव में हरि–वैमुख्यरूप आत्मंभरिता

(अभिमान) से अपने आपको अलग कर सकेंगे, उसी दिन वे भक्तिपथ के यतियों का आदर करना सीखेंगे एवं देखेंगे कि, उनकी भाँति निजेन्द्रिय-तत्परता एवं संभोगबुद्धि का आवाहन श्रीविश्व-वैष्णव-राजसभा के कोई भी सदस्य कभी नहीं रकते हैं। वे विशुद्ध भाव से श्रीचैतन्यचन्द्र का गनुगमन करते रहते हैं। भगवद्-भक्ति की प्राप्ति से जीव-मात्र का ही मंगल होगा।

इसी कारण समस्त विषयों के प्रति भोगोन्मुखी प्रवृत्ति को सेवोन्मुखी प्रवृत्ति में परिण ात करना ही उनका स्वभाव है। श्रीविश्व-वैष्ण ाव-राजसभा के प्रचारक अर्थ संग्रह अथवा जनसंग्रह को अपने काम में नहीं लगाते हैं, कृष्ण अथवा कृष्ण-भक्तों कीसेवा में ही सब कुछ नियोग कर देते हैं। विष्णुभक्ति में दीक्षित हुये बिना ये सब बाते समझ में नहीं आती हैं।

मुकुन्द के घर में प्रभु का गमन एवं कीर्तन के अन्त में मुकुन्द के समीप निजाभिलाष-ज्ञापन-

मुकुन्देर वासाय आइला गौरचन्द्र।
देखिया मुकुन्द हैला परम-आनन्द।।१५७॥
प्रभु बले,-''गाओ किछु कृष्णेर मंगल।''
मुकुन्द गायेन, प्रभु शुनिया विह्वल।।१५८॥
'बोल बोल' हुँकार करये द्विज-मणि।
पुण्यवन्त मुकुन्देर शुनि' दिव्य-ध्वनि।।१५९॥
क्षणेके करिला प्रभु भाव सम्वरण।
मुकुन्देर संगे तबे कहेन कथन।।१६०॥
प्रभु बले,-''मुकुन्द, शुनह किछु कथा।
बाहिर हइब आमि, ना रहिब हेथा।।१६१॥
गारिहस्त आमि छाड़िवाङ सुनिश्चित।
शिखा-सूत्र छाड़िया चलिव ये-ते भित।।''१६२॥

(१५७-१६२) प० अनु०—श्रीगौरसुन्दर मुकुन्द के आवास (घर) पर चले आये। प्रभु को देखकर मुकुन्द परम-आनन्दित हुये। प्रभु कहने लगे,-"कृष्ण का कुछ मंगल गान करो।" मुकुन्द गाने लगे। उनका कीर्तन सुनकर प्रभु विह्वल हो गये। पुण्यवन्त मुकुन्द की दिव्य-ध्वनि सुनकर द्विजमणि 'बोल! बोल!!' कहकर हुँकार करने लगे। एक क्षण में प्रभु ने अपने भाव का संवरण किया और मुकुन्द से वार्तालाप करने लगे। प्रभु बोले,- "मुकुन्द, कुछ बात सुनो। मैं बाहर जा रहा हूँ, यहाँ नहीं रहूँगा। निश्चितरूप से मैं गृहस्थाश्रम छोड़ने वाला हूँ और शिखा-सूत्र परित्यागकर कहीं भी चला जाऊँगा।

(१६२) गौः भाः—कर्मी एवं ज्ञानी सन्यासीगण भोग-परित्याग पूर्वक त्याग की भावना से शिखा एवं सूत्र (यज्ञोपवीत) का परित्याग करते हैं। मायावादी ज्ञानियों को दिखाने के लिए श्रीचैतन्यदेव ने श्रीशिखा का परित्याग किया था। त्रिदण्डिगण भगवान् कीसेवा में शिखा-सूत्र को नियोजित करते हैं। इसलिए वे शिखा-सूत्र सहित माचवगौड़ीय-विचार के अन्तर्गत 'त्रिदण्ड-संन्यास' ग्रहण करते हैं। माध्व-गौड़ीया-विचार अवलम्बन कर श्रीसम्प्रदाय के त्रिदण्डीभिक्षु श्री प्रबोधानन्द सरस्वती ने शिखा-सूत्र पूर्ववत् रखा था। श्रीगदाधर की शाखा में वल्लभाचार्य ने त्रिदण्ड-ग्रहण के समय शिखा-सूत्र रखा था। श्रीविष्णु-स्वामी, श्रीरामानुज एवं श्रीनिम्बादित्य—सभी शिखा-सूत्रयुक्त संन्यासी हैं। केवल माध्व-सम्प्रदाय के तीर्थगणों के बीच शिखा-सूत्र त्यागेन की व्यवस्था आज भी प्रचलित है। माध्वगौड़ीया विचार से ब्रजवासी षड्गोस्वामियों ने श्रीउपदेशामृत के विचारानुकूल त्रिदण्ड- संन्यास ग्रहण किया एवं पारमहंस्य विचार से किसी-किसी ने तो काषाय (गेरुआ)

वस्त्र भी नहीं ग्रहण किया था। अतएव उन्हें परमहंस के रूप में जानना होगा। ऐसा होता है, यहय कहकर विविदिसा–संन्यास (संन्यास के बारे में जानने के इच्छुक) में त्रिदण्डीगण गेरुआ वस्त्रों का परित्याग नहीं करेंगे। उनके गुरुवर्ग गेरुआ वस्त्रधारियों के अन्तर्गत नहीं है। गेरुआ–वस्त्रों का संरक्षण करने में भी परमहंसचार में व्याघात नहीं होता है। शिखा–सूत्र–सहित परमहंसगण ही श्रीगौरसुन्दर के आश्रित परमहंस पथ के पथिक बनकर शिखा–सूत्र का वर्जन (त्याग) नहीं करते हैं—यही 'श्रीचैतन्यदेव की शिक्षा' के रूप में कथित है।

प्रभु की संन्यासवार्ता सुनकर मुकुन्द को दुःख–

श्रीशिखार अन्तर्द्धान शुनिया मुकुन्द।
पड़िल विरहे, सब घुचिल आनन्द।।१६३॥
काकुति करिया बले, मुकुन्द महाशय।
''यदि प्रभु, एमत से करिबा निश्चय॥१६४॥
दिन–कथो एइरूपे करह कीर्तने।
तबे प्रभु, करिबा सेये तोमार मने।।''१६५॥

(१६३–१६५) प० अनु०—श्रीशिखा के अन्तर्द्धान की बात सुनकर मुकुन्द विरह के दुःख में डूब गये, उनका सारा आनन्द चौपट हो गया। महामति मुकुन्द बहुत ही विनम्रता के साथ प्रभु से बोले,–"हे प्रभु! यदि आपने ऐसा करने का निश्चय किया है, तो कुछ दिनों तक इसी प्रकार का कीर्तन और करते रहिये। फिर जो मन चाहे सो करना।

गदाधर के समीप प्रभु का गमन एवं संन्यासवार्ता–कथन, इसके उत्तर में गदाधर की अभिमानेक्ति–

मुकुन्दे वाक्य शुनि' श्रीगौर–सुन्दर।
चलिलेन यथाय आछेन गदाधर।।१६६॥
सम्भ्रमें चरण वन्दिलेन गदाधर।
प्रभु बले,–''शुन किछु आमार उत्तर।।१६७॥
ना रहिब गदाधर, आमि गृह–वासे।
ये–ते दिके चलिवाङ कृष्णेर उद्देशे।।१६८॥
शिखा–सूत्र सर्वथाय आमि ना राखिब।
माथा मुड़ाइया ये–ते दिके चलि' याब।।''१६९॥
श्रीशिखार अन्तर्द्धान शुनि' गदाधर।
वज्रपात येन हैल शिरेर उपर।।१७०॥
अन्तेर दुःखित हइ' बले गदाधर।
''यतेक अद्भुत प्रभु, तोमार उत्तर।।१७१॥
शिखा–सूत्र घुचाइलेइ से कृष्ण पाइ।
गृहस्थ तोमार मते वैष्णव कि नाइ?१७२॥
माथा मुड़ाइले प्रभु, किवा कर्म हय।
तोमार से मत, ए वेदेर मत नय॥१७३॥
अनाथिनी, मायेर वा केमते छाड़िबे।
प्रथमेइ जननी–बधेर भागी हबे।।१७४
तुमि गेले सर्वथा जीवन नाहि तान।
सबे अवशिष्ट आछ तुमि ताँ'र प्राण।।१७५॥
घरेते थाकिले कि ईश्वरेर प्रीत नय।
गृहस्थ से सबार प्रीतेर स्थली हय॥१७६॥
तथापिओ माथा मुण्डाइले स्वास्थ्य पाओ।
ये तोमार इच्छा ताइ करि' चलि' याओ।।''१७७॥

(१६६–१७७) प० अनु०—मुकुन्द की बात सुनकर श्रीगौरसुन्दर गदाधर से मिलने के लिए चल पड़े। गदाधर ने सम्भ्रम सहित उनके चरणों की वन्दना की। प्रभु कहने लगे,– "मेरी कुछ बात सुनो गदाधर! मैं घर में अब और नहीं रहूँगा–कृष्णानुसंधान के निमित्त मैं कहीं भी चला जाऊँगा। मैंने निश्चय किया है कि मैं शिखा–सूत्र का परित्याग कर दूँगा और मस्तक मुण्डवाकर किसी भी दिशा की ओर चला जाऊँगा। श्रीशिखा के लुप्त होने की

बात सुनकर गदाधर को ऐसा लगा जैसे सिर के ऊपर वज्रपात हुआ हो। हृदय से दुःखित होकर गदाधर बोले,–"हे प्रभु! आपका कहना वास्तव में अद्‌भुत है। क्या शिखा–सूत्र त्याग देने से ही कृष्ण की प्राप्ति होती है? आपके मतानुसार क्या कोई गृहस्थी वैष्णव नहीं है? हे प्रभु! मस्तक मुण्डवा लेने से क्या काम बन जायेगा? यह आपका मत है, परन्तु वेद ऐसा नहीं कहते हैं। माता कोा असहाय कैसे छोड़ दोगे। प्रारम्भ में ही जननी–बध के भागीदारी बन जाओगे; क्योंकि आप चले गये तो उनके जीवन का भी अन्त हो जायेगा। उनके प्राणस्वरूप केवल आप ही रह गये हैं। क्या घर में रहकर ईश्वर से प्रेम नहीं किया जा सकता? गृहस्थ सबके प्रेम का केन्द्रस्थल होता है। फिर भी यदि मस्तक मुँड़ाने से ही आपको सुखचैन मिलता हो, तो जैसी आपकी इच्छा, आप वैसा ही कीजिए और चले जाइये।"

(१७३) गौः भाः—श्रीगदाधर ने कहा,–"क्या गृहस्थी होने से विष्णुभक्ति नहीं होती है? क्या यही वेदों का उद्दिष्ट है? अतएव हरिभक्ति का आदर्श दिखाने के लिए केवलाद्वैती की भाँति शिखा–सूत्र त्याग करने से ही क्या अधिकतर श्रेष्ठता प्रदर्शित होती है? गृहस्थ–धर्म में रहकर हरिभजन करने से जननी सन्तुष्ट रहती है। बन्धुबान्धव सभी आनन्दित होते हैं प्रतिकूल संसार अवश्य त्यागने योग्य है— यही शिक्षा देने के लिए श्रीगौरसुन्दर ने नवद्वीप के ईर्ष्या परायण बन्धुबान्धवों के संग का परित्याग किया था। उनका एक और अभिप्राय था। अवैध गृहस्थाश्रम के धर्म में प्रतिष्ठित होकर जो प्राकृत–सहजिया धर्म आजकल के भारतवर्ष कोा आच्छन्न किये हुये हैं, उससे मुक्त होने का परामर्श देना भी श्रीगौरसुन्दर का उद्देश्य था। किसी भी आश्रम में रहकर प्रतिक्षण हरिभजन करना ही प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य हैं। संसार को अनुकूल समझकर भक्ति के प्रतिकूल स्मार्तधर्म के के आनुगत्य में श्राद्ध–तर्पणादि अदैव–कार्यों अथवा समाज की अनकूलता से एवं भगवद् विरोधी जनों को सम्मान आदि का प्रदर्शन करने से भगवद्–भक्ति की मर्यादा अनभिज्ञ व्यक्ति की दृष्टि में क्षुण्ण (कम) होती है— यह सब दिखाने के उद्देश्य से ही श्रीगौरसुन्दर ने विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण करने का अभिनय किया था।

संन्यास–वार्ता सुनकर भक्तों का क्रन्दन–

एइ मत आप्त–वैष्णवेर स्थाने स्थाने।
'शिखा–सूत्र घुचाइमु' बलिला आपने।।१७८॥
सबेइ शुनिया श्रीशिखार अन्तर्द्धान।
मूर्च्छिते पड़ये कारु नाहि देहे ज्ञान।।१७९॥

(१७८–१७९) प० अनु०—इस प्रकार प्रत्येक प्रिय वैष्णव के निकट जाकर प्रभु ने स्वयं कहा,–"मैं शिखा–सूत्र का परित्याग कर दूँगा।" श्रीशिखा के अन्तर्द्धान की बात सुनकर सभी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। किसी को भी देहानुसंधान नहीं रहा।

रामकिरि राग–

करिबेन महाप्रभु शिखार मुण्डन।
श्रीशिखा सङरिया कान्दे सर्वभक्तण।।ध्रु।।१८०॥
केह बले,–"से सुन्दर चाँचर चिकुरे।
आर माला गाँथिया कि दिब ता' उपरे।।"१८१॥
केह बले,–"ना देखिया से केश–बन्धन।
केमते रहिबे एइ पापिष्ठ जीवन।।"१८२॥
"से केशेर दिव्य गन्ध ना लइब आर।"
एत बलि' शिरे कर हानये अपार।।१८३॥

केह बले,–''से सुन्दर केशे आर बार।
आमलक दिया कि वा करिब संस्कार।।''१८४॥
'हरि हरि' बलि' केह कान्दे उच्चैः स्वरे।
डुबिलेन भक्तगण दुःखेर सागरे।।१८५॥
श्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दचाँद जान।
वृन्दावनदास तछु पद–युगे गान।।१८६॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे शुक्लाम्बर–विजय–प्रसाद वर्णनं तथा विद्याथीशोधनरूप–यतिधर्म–ग्रहणेच्छा वर्णनं च नाम षड्विंशोऽध्यायः॥

(१८०–१८६) प० अनु०—महाप्रभु शिखा का मुण्डन करवायेंगे; ऐसा जानकर श्रीशिखा का स्मरण कर सभी भक्तवृन्द क्रन्दन करने लगे। कोई बोला,–"ऐसे सुन्दर घँघराले केशों को फिर क्या कभी माला–गुंथन से सज्जित कर सकेंगे।" कोई कहता,–"उस केश–बन्धन को देखे बिना यह पापिष्ठ जीवन कैसे जिन्दा रहेगा।" "उन केशों की दिव्य गंध आगे कभी नहीं ले सकूँगा।" इतना कहकर कोई–कोई तो हाथों से अपने सिर पर आघात करने लगे। कोई बोला,–"क्या फिर कभी एकबार उन सुन्दर केशों में आँवला देकर संस्कार करर सकूँगा।" 'हरि हरि' कहकर कोई उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगा। सभी भक्तवृन्द दुःख के सागर में डूब गये। श्रीकृष्णचैतन्य तथा श्रीनित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय भाष्य में षडविंश अध्याय समाप्त

O

सप्तविंश अध्याय

सप्तविंश अध्याय कथासार

इस अध्याय में विरह से दुःख के सागर में डूबे हुये भक्तों को प्रभु के द्वारा सान्त्वना प्रदान, शचीमाता का विलाप एवं प्रभु द्वारा प्रबोध दान आदि विषय वर्णित हुये हैं।

प्रभु द्वारा संन्यास-ग्रहण वार्ता सुनकर प्रभु का साथ छूट जाने की आशंका से भक्तों के निरन्तर चिन्तायुक्त रहने के कारण उनमें अन्नजल-ग्रहण करने की भी रुचि नहीं रही। भक्तवत्सल भगवान् सेवकों का दुःख सहन नहीं कर पाये। इस कारण उनके समक्ष निज-रहस्य-कथा अभिव्यक्त कर प्रभु ने कहा कि, वे सब उनके नित्य-परिकर हैं; उनके छोड़कर प्रभु की लीला असम्भव है; वे सब जन्म-जन्म में प्रभु के साथ लीला-सहचर-रूप में अवतीर्ण होते हैं। प्रभु के वाक्यों से सान्तवना प्राप्तकर भक्तवृन्द अपने-अपने घर चले गये।

प्रभु की संन्यास वार्ता परम्पर से प्रचारित होते- होते शचीमाता तक आ पहुँची। इस वार्ता को सुनकर शचीमाता बहुत दुःखित होकर क्षण-क्षण में मूर्च्छित होने लगीं। अन्त में महाप्रभु को अविचलित देखकर शचीमाता उनके निकट आकर बहुविध विलाप युक्त वाक्यों के द्वारा अपना दुःख ज्ञापित करने लगीं। महाप्रभु-द्वारा शचीमाता के निकट निज-रहस्य कथन एवं शचीदेवी के स्वरूप का वर्णन करते हुये उन्हें सान्तवना प्रदान करने से शचीमाता ने कुछ सीमा तक अपने आपको सम्भाला।

(गौड़ीय-भाष्य)

O

श्रीमन्महाप्रभु का जय-गान-

जय जय विश्वम्भर श्रीची-नन्दन।
जय जय गौरसिंह पतितपावन॥१॥

(१) प० अनु०—श्रीशचीनन्दन विश्वम्भर की जय हो, जय हो। पतितपावन गौरसिंह की जय हो, जय हो।

प्रभु-द्वारा संन्यास-ग्रहण की वार्ता से भक्तों को दुःख एंव प्रभु-द्वारा प्रबोध-दान के छलसे निज-रहस्य-कथन-

एइ मत अन्योन्ये सर्वभक्तगण।
प्रभुर विरहे सबे करेन क्रन्दन॥२॥
''कोथ याइबेन प्रभु संन्यास करिया।
कोथा वा आमरा सब देखिवाङ गिया॥३॥
संन्यास करिले ग्रामे ना आसिवे आर।
कोन् दिके यायेन वा करिया विचार॥''४॥
एइ मत भक्तगण भावे निरन्तरे।
अन्न पानि कारो नाहि रोचये शरीरे॥५॥
सेवकेर दुःख प्रभु सहिते ना पारे।
प्रसन्न हइया प्रभु प्रबोधे सबारे॥६॥
प्रभु बले,-''तोमरा चिन्तह कि कारण।
तुमि सब यथा, तथा आमि सर्वक्षण॥७॥
तोमरा वा भाव 'आमि संन्यास करिया।
चलिवाङ आमि तोमा' सबारे छाड़िया॥'८॥

सर्वथा तोमरा इहा ना भाविह मने।
तोमा' सबा' आमि ना छाड़िब कोन क्षणे॥९॥
सर्वकाल तोमरा–सकल मोर संग।
एइ जन्मे हेन ना जानिबा—जन्म जन्म॥१०॥
एइ जन्मे तुमि सब येन आमा' संगे।
निरवधि आछ संकीर्तन–सुख रंगे॥११॥
युगे युगे अनेक आमार अवतार।
से सकले संगी सबे ह'येछ आमार॥१२॥
एइ मत आरो आछे दुइ अवतार।
'कीर्तन'–'आनन्द'–रूप हइबे आमार॥१३॥
ताहातेओ तुमि सब एइ मत रंगे।
कीर्तन करिबा महा–सुखे आमा' संगे॥१४॥
लोक–शिक्षा–निमित्त से आमार संन्यास।
एतेके तोमरा सब चिन्ता कर नाश॥''१५॥
एतेक बलिया प्रभु धरिया सबारे।
प्रेम–आलिंगन सुखे पुनः पुनः करे॥१६॥
प्रभु,–वाक्ये भक्त–सब किछु स्थिर हैला।
सबा' प्रबोधिया प्रभु निज वासे गेला॥१७॥

(२–१७) प० अनु०—इस प्रकार से सभी भक्तवृन्द परस्पर मिलकर प्रभु के विरह में क्रन्दन करने लगे। "संन्यास अवलम्बन करके प्रभु न जाने कहाँ चले जायेंगे। हम सब भी उन्हें कहाँ देखने जा सकेंगे। संन्यास ले लेने पर प्रभु पुनः गाँव में लौटकर नहीं आएँगे। वह सोच विचारकर किधर जायेंगे?" इस प्रकार से भक्तवृन्द निरन्तर करने लगे। उनकी अन्नजल ग्रहण करने की रुचि भी नहीं रही। सेवकों का दुःख प्रभु सहन नहीं कर पाये। प्रसन्न होकर प्रभु सबको सान्त्वना देने लगे। प्रभु ने कहा,–"तुम सब चिन्ता क्यों करते हो। जहाँ तुम सब हो, वहीं प्रतिक्षण मैं भी हूँ। सम्भवतः तुम सब यही सोच रहे हो कि, 'मैं संन्यास लेकर तुम सबको छोड़कर चला जाऊँगा।' किन्तु कभी भी तुम सब ऐसा नहीं सोचना। मैं तुम सबको एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ूँगा। केवल इस जन्म में ही नहीं, जन्म–जन्म में प्रत्येक युग में तुम सब मेरे साथ रहे हो। जैसे इस जन्म में तुम सब मेरे साथ निरन्तर संकीर्तन–सुख के आनन्द में निमग्न हो, इसी प्रकार युग–युग में मेरे अनेक अवतारों में तुम सबने मेरा साथ दिया है। इस प्रकार के मेरे दो और अवतार हैं। 'कीर्तन' और 'आनन्द' रूप इन अवतारों में मैं अपने आपको प्रकट करूँगा। इनमें भी तुम सब इसी प्रकार महा–आनन्द–सहित मेरे साथ कीर्तन किया करोगे। लोगों को शिक्षा देने के लिए मेरा संन्यास है। इसलिए तुम सब चिन्तामुक्त हो जाओ।" इतना कहने के पश्चात् प्रभु सबको पकड़–पकड़कर सुख–पूर्वक बारम्बार प्रेमालिंगन करने लगे। प्रभु के वचनों को सुनकर भक्तवृन्द कुछ स्थिर हुये। इस प्रकार सबको सान्तवना देकर प्रभु अपने घर चले गये।

(१३) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने कहा,–"इस प्रकार मेरे दो और अवतार होंगे। भगवन्नाम–कीर्तन के साथ मैं अवतीर्ण होता हूँ; और अपना सच्चिदानन्द रूप प्रदर्शित करने के लिए मैं अर्चनकारी के निकट अर्च्चाविग्रह में आनन्द से आविर्भूत होता हूँ।" पाखण्डी मत्सर स्वभाव के जनगण श्रीगौरसुन्दर के दो और अवतारों का छल अपनाकर श्रीगौरसुन्दर की अर्चा के बदले कदाचार–सम्पन्न मानवों को भगवान् श्रीगौरसुन्दर के अवतार के रूप में स्थापित करते हैं। शुद्धभक्तवृन्द द्वारा भगवान् श्रीगौरसुन्दर के दोनों अवतारों के विचार को 'आवेशावतार'–विचार से प्रतिष्ठित करने पर कर्मफल–बाध्य, असत् व्यक्तिगण 'दिन में तीन अवस्था प्राप्त करने वाले' जीवों को भगवान्

बनाने की चेष्टा किया करते हैं।— (चैः भाः आदि १४ श अः८५ संख्या द्रष्टव्य है) । "अर्चा" एवं 'नाम' ये दो प्रकार के रूप" इस वाक्य को वे आदर-सहित ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार का नया गौरांगवाद स्थान-स्थान पर उत्पन्न हो जाने से परमार्थ का मार्ग बहुत परिमाण में रुद्ध एवं व्याहत (बाधा प्राप्त) हुआ है।

(१५) गौः भाः—लोगों को शिक्षा देने के लिए ही श्रीगौरसुन्दर ने संन्यास ग्रहण किया था। उप संन्यास के फलस्वरूप भारत के अनेक स्थानों पर अनेक व्यक्तियों में 'कृष्ण कहाँ, कैसे, किसस रूप में लीला कर रहे हैं,-यह देखने का सुअवसर मिल जाने का उन्होंने अभिनय किया था। बहुज्ञता के अभाव के कारण 'गौड़ीय-वैष्णव'—नामधारियों में जो विषम अपराधमय चिन्तन-स्त्रोत प्रवाहित हुआ है, उससे संन्यास न ग्रहण करने से कभी भी उन लोगों का मंगल नहीं होगा। भक्ति के प्रतिकूल विषयों का त्याग ही प्रधान लोकशिक्षा है। भोग-प्रतीति से जगत् का दर्शन करने पर भक्ति का स्वरूप कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता है। इस कुण्ठायुक्त राज्य में सम्भोगवाद का विचार प्राकृत-सहजियावाद में परिणत हो जाता है।

शचीमाता का संन्यास-वार्ता-श्रवण एवं
प्रभु के निकट विलाप-

परम्परा ए सकल यतेक आख्यान।
शुनिया शचीर देहे नाहि रहे प्राण॥१८॥
प्रभुर संन्यास शुनि' शची-जगन्माता।
हेन दुःख जन्मिल ना जाने आछे कोथा॥१९॥
मूर्च्छित हइया क्षेणे पड़े पृथिवीते।
निरवधि धारा बहे, ना पारे राखिते॥२०॥
बसिया आछेन प्रभु कमल-लोचन।
कहिते लागिला शची करिया क्रन्दन॥२१॥

(१८-२१) प० अनु०—परम्परा से इस सारे आख्यान को सुनकर शची के देह में प्राण नहीं रहे। प्रभु के संन्यास की वार्ता को सुनकर जगन्माता शचीदेवी को ऐसा दुःख हुआ कि उन्हें यह ज्ञान नहीं रहा कि वे कहाँ है। क्षण-क्षण माता पूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़तीं। उनकी आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगी, उन्हें रोकने में वे असमर्थ हो गईं। कमल-लोचन प्रभु वहाँ बैठे हुये थे। रोती हुई शचीमाता प्रभु से कहने लगीं-

भाटियारी राग-

"ना याइय ना याइय बाप, मायेरे छाड़िया।
पाप जीउ आछे तोर श्रीमुख चाहिया॥२२॥

(गौरांग हे! ध्रु।।)

कमल-नयन तोर श्रीचन्द्र-वदन।
अधर सुरंग, कुन्द-मुकुता-दशन॥२३॥
अमिया बरिखे येन सुन्दर वचन।
ना देखि' बाँचिव कि से गजेन्द्र-गमन॥२४॥
अद्वैत-श्रीवास-आदि तोर अनुचर।
नित्यानन्द आछे तोर प्राणेर दोसर॥२५॥
परम बान्धव गदाधर-आदि-संगे।
गृहे रहि' संकीर्तन कर तुमि रंगे॥२६॥
धर्म बुझाइते बाप, तोर अवतार।
जननी छाड़िबा ए कोन् धर्मेर विचार?२७॥
तुमि धर्म-मय यदि जननी छाड़िबा।
केमते जगते तुमि धर्म बुझाइबा?"२८॥
प्रेम-शोके कहे शची, शुने विश्वम्भर।
प्रेमेते रोधित कण्ठ, ना करे उत्तर।।२९॥
"तोमार अग्रज आमा' छाड़िया चलिला।

वैकुण्ठ तोमार बाप गमन करिला॥३०॥
तोमा' देखि' सकल सन्ताप पासरिलुँ।
तुमि गेले प्राण मुञि सर्वथा छाड़िमु॥३१॥

(२२–३१) प० अनु०—माँ को छोड़कर मत जाना वत्स, मत जाना। ये पापी प्राण तेरे ही सहारे टिके हैं। तेरे ये कमल जैसे नयन, चन्द्र जैसा सुन्दर वदन, सुरंग अधर, कुन्द कली और मुक्ता जैसे दशन, तेरी ये मीठी–मीठी बातें, तेरी गजेन्द्र–जैसी चाल,— यह सब देखे बिना मैं कैसे जीवित रहूँगी। अद्व ैत–श्रीवास आदि अपने अनुचरवर्ग, प्राण–समान नित्यानन्द और परम बान्धव गदाधर आदि के साथ तू घर में रहकर आनन्द–सहित संकीर्तन किया कर। हे पुत्र! धर्म कोा समझाने के लिए तेरा अवतार हुआ है। जननी को त्याग देना कौन से धर्म का विचार है? धर्ममय तूही यदि जननी को छोड़ देगा, तो जगत् में तू धर्म को कैसे समझायेगा? प्रेम–शोक से विह्वल शची कह रही थीं, विश्वम्भर सुन रहे थे। "तेरा बड़ा भाई मुझे छोड़कर चला गया। तेरे पिता वैकुण्ठ को चले गये। तुझे देखकर मैं सब दुःख भूल चुकी थी; यदि तू भी चला गया तो मैं निश्चितरूप से प्राणों का परित्याग कर दूँगी।

(२३–२४) गौः भाः—चन्द्रमा के साथ श्रीगौरहरि का वदन, कुन्दपुष्प एवं मोती के साथ उनकी दन्तावली एवं गजेन्द्र–गमन के साथ उनके प्रति–पदक्षेप की उपमा की गई है।

(२८) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर धर्म के उपदेशक एवं स्वयं धर्ममय हैं, इसलिए जननी की सेवा का परिहार करके धर्म की रक्षा कैसे की जायेगी, शचीदेवी ने यह जानना चाहा। "स वै पुंसां परो धर्मो" (भाः१/२/६) इस विचार की शिक्षा देने के लिए शचीमाता के मुख में उक्त प्रश्न का उदय हुआ हैं भगवान् की सेवा जागतिक तात्कालिक धर्म से भी अधिकतर प्रयोजनीय है।

करुणा भाटियारी (राग)

प्राणेर गौरांग हेर बाप,
अनाथिनी छाड़िते ना युयाय॥३२॥
सबा' लञा कर' निज–अंगने कीर्तन,
नित्यानन्द आछये सहाय॥ध्रु॥३३॥
प्रेम–मय दुइ आँखि,दीर्घ दुइ भुज देखि,
वचनेते अमिया वरिषे।
बिना–दीपे घर मो,तोर अंगेते उजोर,
रांगा पा'ये कत मधु बरिषे॥''३४॥
प्रेम–शोके कहे शची,विश्वम्भर शुने बसि',
(येन) रघुनाथे कौशल्या बुझाय।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द,सुखदाता सदानन्द,
वृन्दावन दास रस गाय॥३५॥
एइ मत विलाप करये शची–माता।
मुख तुलि' ठाकुर ना कहे कोन कथा॥३६॥
विवर्ण हइला शची–अस्थिचर्मसार।
शोकाकुला देवी किछु ना करे आहार॥३७॥
प्रभु देखि' जननीर जीवन ना रहे।
निभृते बसिया किछु गोप्य कथा कहे॥३८॥

(३२–३८) प० अनु०—हे प्राणस्वरूप गैरांग, देखो बेटे! अनाथिनी को त्याग देना उचित नहीं है। सबको लेकर अपने आंगन में कीर्तन किया करो, नित्यानन्द तेरे सहायक हैं। प्रेम से भरपुर तेरी दोनों आँखों को और तेरी दोनों दीर्घ भुजाओं को मैं देखती रहती हूँ। तू जब बात करता है, तो मानों अमृत की वर्षा होती है। दीप के बिना भी मेरा घर तेरी अंगप्रभा से जगमगाता रहता है। अरुणाभ चरण–कमलों से कितना मधु बरसता है।" प्रेम–शोक के

साथ शची कह रही थीं, विश्वम्भर बैठकर सुन रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे रघुनाथ को कौशल्या समझा रही हों। सुखदाता तथा सदानन्द स्वरूप श्रीचैतन्य और नित्यानन्द की महिमा का गुणकीर्तन वृन्दावनदास कर रहे हैं। इस प्रकार से शचीमाता विलाप कर रही थीं। सिर झुकाए हुये ठाकुर चुपचाप बैठे थे, कुछ भी नहीं बोल रहे थे। विवर्ण हुई शची के अंगों में केवल अस्थि और चर्म ही शेष रह गये थे। शोक से आकुल होकर देवी ने आहार करना भी छोड़ दिया था। प्रभु ने जब देखा कि, जननी जीवन का त्याग करने जा रही हैं, तब वे एकान्त में बैठकर जननी को कुछ गोपनीय कथाएँ सुनाने लगे।

प्रभु के द्वारा जननी को सान्त्वना देने के छल से जननी के स्वरूप का प्रकाशन-

प्रभु बले,-"माता, तुमि स्थिर कर मन।
शुन यत जन्म आमि तोमार नन्दन॥३९॥
चित्त दिया शुनह आपन गुण-ग्राम।
कोन काले आछिल तोमार 'पृश्नि'-नाम॥४०॥
तथाय आछिल तुमि आमार जननी।
तबे तुमि स्वर्गे हैले 'अदिति' आपनि॥४१॥
तबे आमि हइलुँ वामन-अवतार।
तथाओ आछिला तुमि जननी आमार॥४२॥
तबे तुमि 'देवहूति' हैला आर बार।
तथाओ कपिल आमि नन्दन तोमार॥४३॥
तबे त 'कौशल्य' हैला आर बार तुमि।
तथाओ तोमार पुत्र रामचन्द्र आमि॥४४॥
तबे तुमि मथुराय 'दवेकी' हइला।
कंसासुर-अन्तःपुरे बन्धने आछिला॥४५॥
तथाओ आमार तुमि आछिला जननी।
तुमि सेइ देवकी, तोमार पुत्र आमि॥४६॥
आरो दुइ जन्म एइ संकीर्तनारम्भे।
हइब तोमार पुत्र आमि अविलम्बे॥४७॥
'मोर अर्चा मूर्त्ति' माता तुमि से धरणी।
'जिह्वारूपा' तुमि माता नामेर जननी॥४८।
एइ मत तुमि आमार माता जन्मे जन्मे।
तोमार आमार कभु त्याग नाहि मर्मे॥४९॥
अमायाय एइ सब कहिलाङ कथा।
आर तुमि मनोदुःख ना कर सर्वथा॥"५०॥

(३९-५०) प० अनु०—प्रभु कहने लगे,-"माता, अपने मन को स्थिर कीजिए। जितने जन्मों मैं आपका पुत्र रहा हूँ, उस बारे में सुनिए! अपने गुण-समूह के विषय में मन लगाकर सुनिए! किसी समय आपका नाम 'पृश्नि' था। तब आप मेरी जननी थीं। फिर आप स्वर्ग में जब 'अदिति' बनीं, तब मैं वामन-अवतार के रूप में (आपके गर्भ से) आविर्भूत हुआ था वहाँ भी मैं कपिल नाम से आपका पुत्र हुआ। फिर एकबार आप 'कौशल्या' के रूप में आविर्भूत हुईं। वहाँ भी मैं आपका पुत्र रामचन्द्र बना। फिर आप मथुरा में 'देवकी' हुईं। उस समय आप कंस नाम के असुर के अन्तःपुर में बन्दी थीं। वहाँ भी आप मेरी जननी थीं। आप वही देवकी हैं और मैं आपका पुत्र हूँ। संकीर्तन के आरम्भ में मेरे दो जन्म और होंगे। मैं बहुत जल्दी ही तब भी तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा। हे माता! पृथ्वी-स्वरूपा आप से 'मेरी अर्चा-मूर्ति' प्रकाशित होगी और 'जिह्वा' रूप से आप 'नाम' की जननी बनेंगी इस प्रकार से जन्म-जन्म में आप मेरी माता हैं। हम दोनों का कभी एक दूसरे से पार्थक्य नहीं है। निष्कपट रूप से मैंने यह सब तुम्हें बता दिया है। अब आप कभी भी और दुःख मत करना।

(४७) गौः भाः—अर्चा-मूर्त्तियाँ मिट्टी-आदि की होती हैं, और भगवन्नाम— शब्दात्मक

है, इसलिए शचीनन्दन के ये दो अवतार हैं। एक अर्चावतार और दूसरा नामावातार। "कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार" (चैः चः आदि १७/२२) यही गौरसुन्दर की वाणी है। अर्चा-विग्रह, श्रीस्वरूप एवं श्रीनाम, ये तीनों अभिन्न हैं-"नाम, विग्रह, स्वरूप-तिन एकरूप। तिने भेद नाहि,- तिन चिदानन्द-रूप।।" (चैःचः१७/१३१)।

जननी की स्थिरता-

कहिलेन प्रभु अति रहस्य-कथन।
शुनिया शचीर किछु स्थिर हैल मन॥५१॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द-चाँद जान।
वृन्दावन दास तछु पद-युगे गान॥५२॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे विरह प्रबोध वर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः

(५१-५२) प० अनु०—प्रभु ने परम रहस्य की बात सुनाई थी। उसे सुनकर शची का मन कुछ स्थिर हुआ। श्रीकृष्णचैतन्य तथा नित्यानन्दचाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावनदास उनके युगल-श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

इति गौड़ीय भाष्य में सप्तदिंश अध्याय समाप्त

O

अष्टाविंश अध्याय

अष्टाविंश अध्याय का कथासार

इस अध्याय में श्रीमन् महाप्रभु के द्वारा श्रीकेशव भारती के निकट से संन्यास-ग्रहण ाभिलाषा का नित्यानन्द के समक्ष ज्ञापन एवं शचीमाता आदि पंचजनों के समीप इसके ज्ञापनार्थ आदेश संन्यास-ग्रहण के पूर्व का दिवस भक्तों के साथ कीर्तन के आनन्द में बिताना एवं सभी को कृष्णभजन करने के लिए आदेश, श्रीधर-प्रदत्त लौकी एवं किसी एक अन्य सुकृतिमान् के द्वारा प्रदत्त दुग्ध-द्वारा माता को लौकी-रन्धनार्थ आदेश एवं उसका भोजन, प्रभु द्वारा घर छोड़ने से पहले शचीमाता का द्वार में अवस्थान, प्रभु के द्वारा शचीमाता को प्रबोध दान एवं उनकी चरणधूलि ग्रहण करके प्रस्थान, शचीमाता की जड़प्राय स्थिति, प्रभु की गमन-वार्ता सुनकर भक्तों का क्रन्दन निन्दक पाखण्डियों द्वारा भी शोक प्रकटन, प्रभु के द्वारा केशव भारती के कानों में संन्यास-मन्त्र का वर्णन एवं केशव भारती द्वारा वही मन्त्र प्रभु को देकर संन्यास-नाम-प्रदान आदि विषय वर्णित हुये हैं।

श्रीश्रीगौरहरि ने संन्यास-लीला का आविष्कार करने से पहले श्रीनित्यानन्द प्रभु को एकान्त में बुलाकर केशव भारती के निकट से संन्यास-ग्रहण करने की बात व्यक्त की एवं शचीमाता आदि पंचजनों के समीप उसे प्रकाशित करने का आदेश दिया। संन्यास ग्रहण से पहले का दिवस प्रभु ने सभी के साथ परमानन्द सहित संकीर्तन के आनन्द में बिताया एवं सभी को अपनी प्रसादी माला प्रदानकर निरन्तर कृष्ण-कीर्तन एवं कृष्ण-भजन करने का उपदेश किया और बताया कि इससे ही उनमें प्रीति का उदय होगा।

सभी भक्तों को उस प्रकार का उपदेश देकर प्रभु जब अपने घर लौटे, तब श्रीधर ने हाथ में एक लौकी लेकर प्रभु के समीप आगमन किया। भक्तके द्रव्य का भोजन करने के अभिलाषी होकर प्रभु ने अपनी जननी को उसे रन्धन करने का आदेश प्रदान किया। इसी बीच एक भाग्यवान् व्यक्ति द्वारा भेंट में दुग्ध प्रदान किये जाने पर प्रभु ने माता से 'दुग्धलौकी' रन्धन करने को कहा। परम प्रसन्नता के साथ शचीमाता ने उसे पकाया। सभी व्यक्तियों को विदा करके भोजन समापन के पश्चात् प्रभु ने कुछ देर के लिए योगनिद्रा के प्रति दृष्टिपात किया। गदाधर एवं हरिदास उनके समीप सोये रहे; परन्तु शचीमाता की आँखों में नींद नहीं आई। वे अनुक्षण क्रन्दन कर रही थीं।

रात्रि के चार दण्ड बाकी हैं, यह जानकर महाप्रभु द्वारा यात्रा की तैयारी प्रारम्भ करने पर गदाधर ने उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की; किन्तु प्रभु ने अकेले जाने की अभिलाषा व्यक्त की। प्रभु के गमन का सामाचार जानकर शचीदेवी द्वार में जाकर अवस्थान करने लगी। श्रीश्रीगौरसुन्दर ने जननी को बहुविध सान्त्वना प्रदान करके एवं उनकी चरणधूलि सिर पर लेकर यात्रा की। शचीमाता की स्थिति जड़प्राय

हो गई। भक्तवृन्द जब प्रातः प्रभु को प्रणाम निवेदन करने के के लिए आये, तब उन सबने शचीमाता को बहिर्द्वार में देखा। श्रीवास–द्वारा कारण पूछे जाने पर शचीमाता उत्तर देने में असमर्थ रहीं। उनके नेत्रों से केवल अश्रु विनिर्गत होने लगे। अन्त में निर्वेद–सहित उन्होंने कहा, "भक्तवृन्द विष्णु के द्रव्य के अधिकारी होते हैं; इसलिए जो कुछ सामग्री घर में पड़ी है, उसे वे ले जाएँ; मैं, जहाँ मेरी इच्छा होगी, चली जाऊँगी।" भक्तवृन्द इसे सुनकर समझ गये कि, प्रभु चले गये। वे सब अचेतन होकर भूमि पर गिर पड़े। कुछ देर तक क्रन्दन करने के पश्चात् भक्तवृन्द शचीमाता को घेर कर बैठ गये। सारे नदीया में प्रभु के प्रस्थान का समाचार फैल गया। इसे सुनकर पूर्वनिन्दक पाखण्डीजन भी क्रन्दन करने लगे एवं प्रभु को पहले पहचानने में असमर्थ होने के कारण पशचाताप करने लगे।

श्रीमन् महाप्रभु गंगा के उस पार जाकर कन्टक नगर में उपस्थित हुये। प्रभु ने जिन–जिन व्यक्तियों को अपने साथ गमनार्थ आदेश दिया था, वे सभी वहाँ आकर प्रभु से मिल गये। केशव भारती के निकट जब प्रभु पहुँचे तो प्रभु के श्रीअंग की ज्योति देखकर केशव भारती उठ खड़े हुये। केशव भारती को स्तुति निवेदन करके प्रभु ने उनसे कृपा करने का अनुरोध किया। मुकुन्दादि भक्तवृन्द कीर्तन करने लगे एवं प्रभु आवेश में नृत्य करने लगे। अनेक लोक वहाँ आकर एवं प्रभु के रूप का दर्शन करके चमत्कृत होने लगे। प्रभु की भक्ति देखकर केशव भारती ने कहा कि जगद्गुरु भगवान् लोगों को शिक्षा देने के लिए पधारे हैं। चन्द्रशेखर आचार्य विधियोग्य कार्य करने लगे। नाई प्रभु की शिखा का मुण्डनकरने के लिए बैठा; परन्तु वह क्रन्दन करने लगा। नित्यानन्द–प्रमुख भक्तवृन्द भी क्रन्दन करने लगे। अन्तराल में स्थित देववृन्द भी अश्रु विसर्जित करने लगे। अन्त में दिन की समाप्ति पर जैसे–तैसे क्षौरकार्य सम्पन्न होने पर सर्वशिक्षागुरु श्रीगौरसुन्दर ने छलपूर्वक भारती के कान में संन्यास मन्त्र कहकर 'यही संन्यास मन्त्र है न' इस प्रकार पूछा। प्रभु की आज्ञा से भारती ने उसी मन्त्र को प्रभु के कानों में सुना दिया। अरुण वसन धारण करने पर प्रभु का श्रीअंग अपूर्वरूप से शोभित हो रहा था। केशव भारती द्वारा प्रभु को संन्यास–नाम प्रदान करने की इच्छा करने पर शुद्धा सरस्वती ने भारतीकी जिह्वा पर अधिष्ठत होकर कहा कि ये कृष्ण–कीर्तन–प्रचार–पूर्वक जगत् को चैतन्य प्रदान कर रहे हैं; इसलिए इनका नामा है 'श्रीकृष्णचैतन्य'। यह सुनकर चारों ओर 'जय जय'–ध्वनि गूँज उठी एवं आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी।

(गौड़ीय–भाष्य)

O

श्रीगौरांग के जय–गान–प्रसंग में जीवों के लिए हित–कामना–

जय जय श्रीगौरांग विष्णुप्रिया–नाथ।
जीवगण प्रति कर शुभ दृष्टि–पात॥१॥

(१) प० अनु०विष्णुप्रिय के नाथ श्रीगौरांग की जय हो, जय हो। हे प्रभु! जीवों के प्रति शुभ दृष्टिपात कीजिए।

संकीर्तन के आनन्द में डूबे प्रभु को देखकर भक्तों को प्रभु की संन्यासी–वार्ता की विस्मृति–

एइ मते आछेन ठाकुर विश्वम्भर।
संकीर्तन–आनन्द करेन निरन्तर॥२॥

स्वेच्छामय महेश्वर कखने कि करे।
ईश्वर मर्म केह बुझिते ना पारे॥३॥
निरवधि परानन्द संकीर्तन–रंगे।
हरिषे थाकेन सर्व–वैष्णवेर संगे॥४॥
परमानन्दे विह्वल सकल भक्तगण।
पासरि' रहिला सबे प्रभुर गमन॥५॥
सर्व वेदे भावेन ये प्रभुरे देखिते।
क्रीड़ा करे भक्तगण से–प्रभु–सहिते॥६॥

(२–६) प० अनु०—इस प्रकार से ठाकुर विश्वम्भर निरन्तर संकीर्तन के आनन्द में रहते थे। स्वेच्छामय महेश्वर न जाने कब क्या करें? ईश्वर का मर्म कोई नहीं समझ सकता है। प्रभु सभी वैष्णवों के साथ निरन्तर परानन्दमय संकीर्तन के रंग रहा करते थे सभी भक्तवृन्द परम आनन्द में विह्वल रहने के कारण प्रभु के चले जाने की बात ही भूल गये। जिन प्रभु के दर्शनों की अभिलाषा सभी वेद करते रहते हैं, वही प्रभु भक्तों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं।

(६) गौः भाः— मूर्त्तिमन्त वेदविग्रहगण अपने प्रतिपाद्य भगवान् की मूर्त्ति का चिन्तन–मात्र करते हैं; परन्तु भगवद् भक्तगण साक्षात् उस श्रीमूर्त्ति के साथ एकत्र क्रीड़ा करते हैं।

नित्यानन्द के समीप प्रभु के द्वारा संन्यास ग्रहण का दिन एवं संन्यास–प्रदाता के नाम का उल्लेख–

ये–दिन चलिब प्रभु संन्यास करिते।
नित्यानन्द–स्थाने ताहा कहिला निभृते७॥
''शुन शुन नित्यानन्द–स्वरूप गोसाञि!
ए कथा भाँगिबे सबे पंच–जन ठाञि८॥
एइ संक्रमण–उत्तरायण–दिवसे।
निश्चय चलिब आमि करिते संन्यासे॥९॥
'इन्द्राणी' निकटे काटोआ–नामे ग्राम।
तथा आछे केशव भारती शुद्ध नाम॥१०॥
तान स्थाने आमार संन्यास सुनिश्चित।
एइ पाँच जने मात्र करिबा विदित॥''११॥

(७–११) प० अनु०— प्रभु को संन्यास–ग्रहण करने के लिए जिस दिन जाना था, उसके बारे में उन्होंने नित्यानन्द को एकान्त में बताया। प्रभु कहने लगे,–"हे नित्यानन्द–स्वरूप गोसाईं सुनिए! सुनिए! यह बात केवल पाँच जनों के समक्ष कहना। मैं आने वाली इस उत्तरायण–संक्रान्ति के दिन निश्चितरूप से संन्यास ग्रहण करूँगा। 'इन्द्राणी' के निकट काटोया–नाम के गाँव में शुद्ध नाम के केशव भारती विद्यमान हैं। मैं उनसे ही संन्यास ग्रहण करूँगा, यह निश्चित है। यह समाचार सिर्फ इन पाँच जनों के पास कहना।"

(९) गौः भाः—ग्रहण–गण ज्योतिश्चक्र में भ्रमण करते हैं। वह ज्योतिश्चक्र द्वादश समान भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग में वृत्त का द्वादशांश वर्तमान है; वृष, मिथुन, कर्कट सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ एवं मीन नामों से जाने जाते हैं। पृथ्वी पर रहने वाले दर्शक सूर्य को ज्योतिषचक्र में भ्रमण करते हुये देखते हैं। राशियों में सूर्य के प्रारम्भिक गमन को' रवि संक्रमण' कहा जाता है। कर्कट–राशि में रवि के प्रवेश करने का नाम है— दक्षिणायन; और मकर–राशि में रवि के प्रवेश करने का नाम है— उत्तरायण। प्रति सौरवर्ष में ही एकबार दक्षिणायन–संक्रमण एवं दूसरी बार उत्तरायण–संक्रमण होता है। 'मकर–संक्रमण' अर्थात् धनु राशि से मकर–राशि में संक्रमण–दिवस को ही 'उत्तरायण– संक्रमण' कहते हैं। स्थिर–राशिचक्र नक्षत्रों से गिना जाता है। चलराशिचक्र का संक्रमण–दिवस एवं

स्थिर-राशि चक्र में रवि-सक्रमण— अयनांया परिमित दिवस-संख्या में व्यवहित है। राढ़ीय श्रीनिवास द्वारा गणन-प्रथा चालू करने के पहले भगवान् श्रीगौरसुन्दर का आविर्भा हुआ था। १४५५ शकाब्द में उनके तिरोभाव की कथा लिपिबद्ध है। इसके बाद श्रीनिवास ने १४८९ शकाब्द से गणन प्रथा चलित की; उसे बंगदेश के स्मार्त श्रीरघुनन्दन ने उनके परवर्ती समय में 'गणन-विधि' के नाम से लिपिबद्ध किया है। परवर्त्ती समय में १५१३ एवं १५२१ शकाब्द में श्रीराघवानन्द ने क्रमशः 'सिद्धान्तरहस्य' एंव 'दिन चन्द्रिका' नाम के ग्रन्थों को प्रकाशित किया। 'दिनचन्द्रिका' एवं परवर्त्ती समय में 'दिनकौमुदी' आदि सारिणियों से आजकल में बंगदेश में पंजिकाएँ गिनी जाती हैं। निरयनपथ (अश्रायहीन-पथ)-गणित-विचार ही श्रीमन् महाप्रभु के समय में बंगदेश में प्रचलित विध ाान था। इसलिए निरयन-मकर-संक्रांन्ति ही इस स्थान पर लक्षित है।

(१०) गौः भाः—इन्द्राणी-उस समय में प्रचलित एक प्रसिद्ध सथान। वर्तमान काटोया के समीप 'इन्द्राणी'-परगने की अवस्थिति है। काटोया (काँटोया)-इसी स्थान पर आजकल वर्द्धमान जिले में उस नाम का एक सदर अवस्थित है। 'व्यांडेल बारहारबाया' लाइन में इस नाम का रेल-स्टेशन है। यह स्थान आज भी गंगा के किनारे अवस्थित है।

केशव भारती— एक संन्यासी थे। वे संन्यासगुरु का कार्य करते थे। विष्णु स्वामी के अतीव प्राचीन सम्प्रदाय में अष्टोत्तर-शत साम्प्रदायिक संन्यास नामों की प्रथा प्रवर्तित थी। आगे केवलाद्वैतवादी श्रीशंकराचार्य था। इनमें 'भारती'—एक साम्प्रदायिक संन्यास नाम है। कहा जाता है कि, दाक्षिणात्य के श्रृंगेरी मठ से दशनिमि-सम्प्रदाय के तीन प्रकार के संन्यासी (सरस्वती, भारती एवं पुरी—नामधारी यतिगण) उद्भूत हुये हैं। सरस्वती-सम्प्रदाय श्रेष्ठ, भारती-सम्प्रदाय मध्यम एवं पुरी-सम्प्रदाय साधारण है। व्यक्तिगत नाम है- केशव और श्रेणीगत परिचय है भारती। वर्तमान समय में भी अनेक व्यक्ति अपने को केशव भारती का वंशज बताकर अपना परचिय प्रदान करते हैं। 'वैष्णवमंजूषा'—समाहृति' में ये सभी बातें विस्तृतरूप ये वर्णित हैं।

केवल पाँच जनों के निकट रहस्य-प्रकाश-

''आमार जननी, गदाधर, ब्रह्मानन्द।
श्रीचन्द्रशेखराचार्य, अपर मुकुन्द॥''१२॥
एइ कथा नित्यानन्द-सवरूपेर स्थाने।
कहिलेन प्रभु, इहा केह नाहि जाने॥१३॥
पंच-जन-स्थाने मात्र ए सब कथन।
कहिलेन नित्यानन्द प्रभुर गमन॥१४॥

(१२-१४) प० अनु०—प्रभु ने नित्यानन्द-स्वरूप से कहा,-यह समाचार मेरी जननी, गदाधर, ब्रह्मानन्द, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य और मुकुन्द से कहना। इस बात को और कोई नहीं जाने। नित्यानन्द ने कवलमात्र पाँच जनों के निकट प्रभु के प्रस्थान के बारे में सब बातें कह दीं।

प्रभु का कीर्तन-विलास एवं भोजन-

सेइ दिन प्रभु सर्व-वैष्णवेर संगे।
सर्व दिन गोङाइला संकीर्तन-रंगे॥१५॥
परम-आनन्दे प्रभु करिया भोजन।
सन्ध्या करिला गंगा देखिते गमन॥१६॥
गंगा नमस्करिया बसिला गंगा-तीरे।
क्षणेक थाकिया पुनः आइलेन घरे॥१७॥

(१५-१७) प० अनु०—उस दिन प्रभु ने सभी वैष्णवों के साथ दिन-भर संकीर्तनके

आनन्द में व्यतीत किया। तत्पश्चात् परम आनन्द-सहित भोजन किया। सायंकाल प्रभु ने गंगाजी के दर्शनार्थ गमन किया। गंगा को नमस्कार करके प्रभु गंगा के किनारे थोड़ी देर के लिए बैठे, फिर अपने घर चले आये।

अनुचरों-सहित प्रभु का अवस्थान, बहुत लोगों का मालाचन्दन लिए प्रभु-दर्शनार्थ आगमन एवं प्रभु के चरणों में प्रणाम निवेदन-

आसिया बसिला गृहे श्रीगौरसुन्दर।
चतुर्दिके बसिलेन सब अनुचर॥१८॥
से-दिने चलिब प्रभु केह नाहि जाने।
कौतुके आछेन सबे ठाकुरेर सने॥१९॥
बसिया आछेन प्रभु कमल-लोचन।
सर्वांगे शोभित माला सुगन्धि चन्दन॥२०॥
यतेक वैष्णव आइसेन देखिवारे।
सबेह चन्दन माला लइ' दुइ करे॥२१॥
हेन आकर्षण प्रभु करिला आपनि।
केवा कोन् दिग हइते आइसे नाहि जानि॥२२॥
कतेक वा नगरिया आइसे देखिते।
ब्रह्मादिर शक्ति इहा नाहिक लिखिते॥२३॥
दण्ड-परणाम हञा पड़े सर्वजन।
एक दृष्टे सबेइ चाहेन श्रीवदन॥२४॥

(१८-२४) प० अनु०-श्रीगौरसुन्दर घर में आकर बैठ गये। सब अनुचर भी उनके चारों ओर बैठ गये। कोई नहीं जानता था कि प्रभु उसी दिन जाने वाले हैं। सभी लोग बड़े आनन्दपूर्वक प्रभु के साथ बैठे हुये थे। कमल-लोचन प्रभु भी वहीं विराजमान हैं। उनके सारे अंग में सुगन्धित चन्दन-सहित मालाएँ शोभित थीं। प्रभु के दर्शन के लिए जितने भी वैष्णव आ रहे थे, वे सब दोनों हथों में चन्दन और माला लिए हुये थे। प्रभु ने सभी को ऐसा आकर्षित किया कि कौन कहाँ से आ रहा है, यह कोई नहीं जान पाया। प्रभु के दर्शनों को कितने नगरवासी आ रहे थे, इसे लिखने की शक्ति ब्रह्मा आदि में भी नहीं है। प्रभु को देखकर सभी दण्डवत्-प्रण ाम निवेदन कर रहे थे और स्थिर दृष्टि से प्रभु के वदनकमल को निहार रहे थे।

प्रसादी-माला-प्रदानकर प्रभु द्वारा सभी को कृष्णभजन का उपदेश-

आपन गलार माला सबाकारे दिया।
आज्ञा करे प्रभु सबे-"कृष्ण गाओ गिया॥२५॥
बल कृष्ण, भज कृष्ण, गाओ कृष्ण-नाम।
कृष्ण बिनु केह किछु ना भाविह आन॥२६॥

(२५-२६) प० अनु०-प्रभु ने अपने गले की मालाएँ सबको प्रदान और आज्ञा की- "जाकर कृष्ण-कीर्तन करो। कृष्ण बोलो! कृष्ण का भजन करो! कृष्ण का नाम कीर्तन करो। कोई भी कृष्ण के अतिरिक्त कुछ और चिन्तन मत करो।

(२५) गौः भाः-नदीया नगर के 'श्रीमायापुर'- (पल्ली के सभी अधिकवासिजनों को प्रभु ने प्रथानुसार अपनी वरणीय माला (गले की मामा) प्रदान की। साथ-साथ एक दायित्व भी दिया।

सबाकारे, (सभी को)-स्त्रीपुरूष सभी को वर्णाश्रमों में रहने वाले सभी को, ६ र्मार्धर्म पालन वाले सभी को। जो प्रभु की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, उन सभी को कृष्णकीर्तन का अधिकारी बनाया। कपटवश जो भगवद्-आज्ञा का पालन न करके योषित्संग करेगा और कृष्णसेवा नहीं करेगा, वह महाप्रभु का आज्ञा पालक भृत्य बनने में समर्थ नहीं होगा, केवल उसके गले में ही श्रीगौरसुन्दर की प्रसादी माला दिखाई नहीं देगी। वर्तमान समय में श्रीधाम-मायापुर के श्रीचैतन्यमठ में

जिन कृष्णकीर्तन करने वालों के गलेदेश में श्रीचैतन्यचन्द्र की प्रसादी माला धारित रहती है, वे ही कृष्णकीर्तन करते हैं। वर्तमान समय में श्रीभागवत जनानन्द ब्रह्मचारी महोदय ने अपने निर्याण-काल के पक्षकाल से पहले अथवा एक मास से अधिक समय पहले स्वस्थ शरीर में अवस्थान करते समय जो भविष्यत् वाणी लिपिबद्ध की थी, वह 'गौड़ीय' नाम की पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। श्रीधाम-मायापुर के श्रीचैतन्यमठ में श्रीगौरसुन्दर के गलदेश की प्रसादी माला सभी से को प्रदान की जाती है। तभी वे कृष्णकीर्तन करने में सक्षम होते हैं। क्योंकि, वे सब श्रीगौरसुन्दर की शिक्षा एवं आज्ञा का पालन करते हैं एवं 'श्रीशिक्षाष्टक' में ही वे सब दीक्षित हैं तथा श्रीरूपपाद के 'उपदेशामृत' से पालित हैं। परविद्यापीठ में गौरविहित कृष्णकीर्तन होता है। श्रीकृष्णसन्दर्भ में श्रीरूपानुग श्रीजीव गोस्वामी प्रभु ने विस्तृत रूप से कृष्णकथा को निरूपित किया है और ब्रह्मासंहिता की टीका में उन्होंने फिर से कृष्णकथा की चर्चा की है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण के पुरुषावतारसमूह अंश-कला श्रेणी में निर्दिष्ट हुये हैं। कृष्ण-स्वयं भगवान्, हैं; मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथि एवं रौहिण ेय राम, बुद्ध एवं कल्कि आदि नैमित्तिक अवतार-समूह, कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी एवं क्षीरोदकशायी आदि पुरुषावतार समूह, चतुर्व्यूह प्रकाश एवं परव्योम में रहने वाले प्रकाशसमूह स्वयंरूप कृष्ण के ही अंश-कला वैभावावतार, मन्वंतरावतार एवं युगावतारसमूह, काल की धारा में निमित्त एवं बह्माण्ड की सृष्टि आदि के निमित्त गुणावतार-समूह हैं। आवेशावतर समूह-तदेकात्मविचार से भगवान् के विभिन्न अवतार हैं; जीवकोटि में एवं गुणकोटि में आंशिक विभिन्न चिदचिद्-शक्ति की परिणति के कारण वैकुण्ठ से जितने प्रकार के अवतार समूह ब्रह्माण्ड में अवतरित हुये हैं; उन सभी अवतारों के आदि मूल पुरुष स्वयंरूप कृष्ण हैं।

श्रीकृष्ण-अखिल रसामृतमूतित्त हैं; कृष्ण—सच्चि- दानन्द विग्रह हैं, कृष्ण—काल के जनक हैं, रक्षक हैं एवं विनाशक हैं। पुरुषावतार समूह कृष्ण के प्रकाशविग्रह के अंश हैं। माया उनकी उपादन की अंश हैं; तीनों गुण उस उपादानांश के अंश है; उन गुणत्रय के क्षुद्रांश से ही विश्व की उत्पत्ति आदि कार्य हुये हैं। नारायणादि परतत्त्व का विचार उनके ही अंग का परिचायक तत्त्व है। वे आनन्द-सत्ता युक्त एवं पूर्णज्ञानमय हैं। वे यामुनचारी, गोष्ठ में अवस्थितए गोपालक एवं गोप-पालक हैं तथा मृत्य उनसे भयभीत रहती हैं। वे स्वप्रकाश एवं पर-प्रकाशक हैं, वे परम प्रेमास्पद है। उनमें देह-देहि भेद नहीं हैं वे भिन्न-भिन्न द्रष्टाओं के निकट भिन्न-भिन्न अधिष्ठानयुक्त हैं। वे महेन्द्र हैं। गोलोकस्थ 'गो' से यज्ञसमूह की प्रवूत्ति, 'गो' से देवताओं का प्राकट्य, 'गो' से ही षड्-अंग-पद क्रम-सहित वेदसमूह अद्भूत हुये हैं। वे उस गोलेक के पति गोविन्द हैं। वे सभी कारणों के कारणरूप परमेशवर हैं, कार्य-कारण के अधिपति हैं, नित्यमुक्त गोपियों के वल्लभ हैं। वे स्वयंरूप हैं; उनका नाम एवं वे स्वयं पृथक् नहीं हैं।

(२६) गौः भाः—'कृष्ण-शब्द का उच्चारण करने से अन्य शब्दों के उच्चारण की योग्यता विलुप्त हो जाती है। 'कृष्णनाम' की कीर्तन करने से अपने-पराये सभी के नित्यानन्द की वृद्धि होती है। कृष्ण-नाम-भजन से नामी कृष्ण का भजन होता है। 'कृष्ण'- व्यतीत

कोई अधिक वस्तु (?) आवृत-कृष्णदर्शन में 'कृष्ण' से पृथक् है, इसलिए 'कृष्ण' शब्द ही जपना चाहिए, 'कृष्ण' शब्द का ही वर्णन करना चाहिए। 'कृष्ण' के व्यतीत अन्य किसी शब्द या नाम का स्मरण नहीं करना चाहिए; क्योंकि, उसके द्वारा 'कृष्ण' से न्यूनाधिक-इतररूप लक्षित होने के कारण कृष्ण-प्राप्ति के अभाव के कारण जीवों को पूर्णमंगल प्राप्ति की सम्भावना नहीं है। कृष्ण से अधिक का विचार—कृष्ण का आवृत दर्शन है एवं कृष्ण को कृष्ण के अखिल-रसों से वंचित करना मात्र है। कृष्ण से पृथक् रसों की संयोग-छलना से कृष्ण के अखिल रसों की पूर्णता को बढ़ाने की कोशिश करने से रस, मिश्रभाव में विपर्यय को प्राप्त होता है। कृष्ण भागवत् प्रकाश-समूह के पूर्ण स्वयंरूप अवतारी है; इसलिए कृष्ण-स्मरण व्यतीत व्यक्ति में अपूर्णता, अशुद्धता, अनित्याता श्रृंखलबद्धता-आदि कोई न कोई एक दोष हो जाता है। वह सच्चिदानन्दविग्रह से अलग करके उनके अनादित्व एवं आदित्व से उसे वंचित कर देता है। इससे भोग-विचार उस पर आक्रमण कर देता है। 'कृष्' धातु के 'भूवाचक' अर्थ से पूर्ण नित्यासत्ता अथवा पूर्ण नित्यज्ञानमय सत्ता का बोध होता है और 'ण' द्वारा आनन्द का बोध होता है। दूसरी वस्तुओं के समानाधिकरण्य में हेतु एवं हेतुमत् का भेद सम्भव है; परन्तु 'कृष्' एवं 'ण'—इन दोनों में आकर्षण एवं आकृष्टि-वशतः समानाधिकरण्य में युगपत् हेतु एवं हेतुमत्ता की असम्भावना के कारण व्यापार एवं प्रतिपाद्य के साथ अभेद-रूप वैशिष्ट्य ही है। निर्विशिष्ट विचार जड़जगत् के आपेक्षिक धर्म में संश्लिष्ट है। अप्राकृत अतीन्द्रिय अधोक्षज वस्तु का असामान्य विचार 'कृष्ण'-शब्द की योगरूढ़ि वृत्ति में उनका स्वयंनामित्व, स्वयंरूपता, स्वयंगुगणित्व, स्वयंलीलात्व बाधित नहीं होता है।

कृष्ण-कीर्तन में ही श्रीचैतन्यदेव की प्रीति-

यदि आमा' प्रति स्नेह थाके सबाकार।
तबे कृष्ण-व्यतिरिक्त ना गाइबे आर॥२७॥

(२७) प० अनु०—यदि मेरे प्रति आप सबका स्नेह वर्तमान है, तो कृष्ण को छोड़कर किसी अन्य का कीर्तन मत करना।

(२७) गौः भाः—शब्द की रूढ़िवृत्ति विद्वद एवं अविद्वद्-भेद से विपरीत धर्म का प्रकाश करती है। एक शब्द दूसरे के साथ जिस पार्थक्य की स्थापना करताहै, उसमें भिन्नांश अवस्थित होता है। शब्द की जिस वृत्ति से भिन्नांश-प्रतिम-नानात्व एकायनविशिष्ट परक होताा है, वही शब्द का विद्वद् रूढ़ि-बल है। इसलिए 'कृष्ण'-शब्द की विद्वद्रूढ़िवृत्ति में कृष्ण को छोड़कर अन्य कोई भोग्य-भाव आरोपित नहीं करना चाहिए। आरोप करने से ही जानकारी मिलती है कि बहुत्व ने आकर अद्वयज्ञान को व्याघात किया है। वही मायाधीनता है। मायायुक्त पुरुष के द्वारा शब्द की विद्वद्रूढ़िवृत्ति से उच्चारित कृष्णनाम अव्यवसायी (अनिश्चित बुद्धि) अनेकायन (पंचोपासक)- बहुशाखा- पद्धति में अवस्थित है, ऐसा कहकर जो विचार-भेद उत्पादित किया जाता है, वह भ्रमसंकुल है। इस कारण ही श्रीगौरसुन्दर ने गंगादास पण्डित एवं नवद्व ीप के अपरा विद्या के आश्रित विद्यार्थी और पाठ के अध्यापकगणें को परविद्या की कथा की जानकारी देते हुये शिक्षाष्टक के प्रथम श्लोक की रचना की है। द्वितीय श्लोक में उसी का विस्तृत रूप दिखाया गया है; तृतीय श्लोक में उसी की सुष्ठु सेवा-प्रणाली जगत् को बतायी है। जगत् जिस प्रणाली में

कृष्ण से अलग वस्तुओं की वासना करता है, उसके परित्याग का विधान चतुर्थ श्लोक में है; पंचम श्लोक में भगवद् ऐश्वर्य की उपलब्धि-परित्यागकर सर्वोत्तम आनन्द-स्वरूप अद्वय-ज्ञान का उपासक बनकर अपने नित्य सेवकाभिमान के साथ श्रीनाम-भजन की बात कही गई है; नाम-भजन में उन्नति के साथ-साथ मन, वाणी और कर्म के द्वारा इस विषय में चेष्टा करने की बात षष्ठ श्लोक में बतलाई गई है एवं सप्तम श्लोक में बताया गया है कि नाम-नामी के अभेद-विचार से शिक्षार्थी अपनी दशा-प्राप्ति में योग्यता को प्राप्त करता है और शिक्षार्थी संभोग-विचार का पूर्णतः परित्याग करके नाम-भजन करते-करते हरिवैमुख्य प्राप्ति के दुःसंग से स्वयं को बचाते हुये सम्पूर्णभाव से शरणागति के सभी लक्षणों से सज्जित हो जाता है, जिससे वह कृष्णप्रेम संचित कर सके, अष्टम श्लोक के द्वारा, शिक्षक का जो कार्य किया है, उसे छोड़कर कृष्ण के आंशिक परिचय की किसी भी बात में नियुक्त रहने से अपने प्रेमास्पद गण को निवारण किया है। श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्र के स्नेहवर्जित जीवगण ही कठिन शुष्क हृदय ध ाारणकर रसमय भगवत्ता को अपने कान्त के रूप में ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसा उपदेश देने का साहस स्वयंरूप कृष्ण के अलावा और किसी में भी नहीं है।

निरन्तर कृष्णकीर्तन करने का उपदेश-

कि शयने, कि भोजने, किवा जागरणे।
अहर्निश चिन्त कृष्ण, बलह वदने॥''२८॥
एइ मत शुभदृष्टि करि' सबाकारे।
उपदेश कहि' सबे बले—''याओ घरे॥''२९॥
एइ मत कत याय, कत वा आइसे।
केह का'रे नाहि चिने, आनन्देते भासे॥३०॥
पूर्ण हैल श्रीविग्रह चन्दन-मालाय।
चन्द्रे वा कतेक शोभा कहने ना याय॥३१॥

(२८-३१) प० अनु०—क्या शयन में, क्या भोजन में, अथवा जागरण में दिन-रात कृष्ण का चिन्तन करना और मुख से कृष्ण बोलना।" इस प्रकार से सबके प्रति शुभ दृष्टिपातकर उपदेश देते हुये प्रभु ने कहा,—"घर लौट जाओ।" इस प्रकार से कितने ही आये, कितने चले गये, कोई किसी को पहचानता नहीं था, सभी आनन्द में बह रहे थे। गौरसुन्दर का श्रीविग्रह चन्दन और मालाओं से परिपूर्ण हो गया। उनके आगे चन्द्रमा की क्या शोभा है। वस्तुतः उस समय गौरसुन्दर की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

(२८) गौः भाः-जिन्होंने गौरविहित कीर्तन का श्रवण किया है, उनके लिए प्रतिदिन ६० दण्ड समय तक शयन-भोजन-जागरण आदि विषयों में संश्लिष्ट रहने पर भी कृष्णनाम-वर्जन एवं कृष्णनाथ-स्मरण को बन्द कर देने का उपदेश नहीं है।

(३१) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के कृष्णकलेवर में अनेक अनुगत भक्तों द्वारा चन्दन और कुसुम मालिक प्रदत्त होने से उनकी परम शोभा एवं पूर्णता प्रकटित हुई। श्रीगौरसुन्दर पर इन सबके सुशोभित होने के कारण जिस प्रकार की अलौकिक शोभा हुई थी, उसकी तुलना ज्योत्स्ना-विकाशी चन्द्रमा के साथ भी नहीं की जा सकती है।

प्रसाद पाने के बाद आनन्द के
साथ सभी का गमन-

प्रसाद पाइया सबे हरिषत हञा।
उच्च हरि-ध्वनि सबे यायेन करिया॥३२॥

(३२) प० अनु०–प्रसाद पाने के पश्चात् सभी व्यक्ति आनन्दित होकर उच्च स्वर में हरि–ध्वनि करते–करते चले गये।

श्रीधर–द्वारा भेट में लौकी प्रदान एवं किसी अन्य सुकृतिमान के द्वारा दुग्ध भेंट, उन्हें पकाने के लिए जननी कोा आदेश–

एक लाउ हाते करि' सुकृति श्रीधर।
हेनइ समये आसि' हइला गोचर॥३३॥
लाउ–भेट देखि' हासे श्रीगौरसुन्दर।
''कोथाय पाइला?'' प्रभु जिज्ञासे ताहारे॥३४॥
जिन–मने जाने प्रभु ''कालि चलिवाङ।
एइ लाउ भोजन करिते नारिलाङ॥३५॥
श्रीधरेर पदार्थ कि हइबे अन्यथा।
ए लाउ भोजन आजि करिब सर्वथा॥''३६॥
एतेक चिन्तिया भक्त–वात्सल्य राशिते।
जननीरे बलिलेन रन्धन करिते॥३७॥
हेनइ समये आर कोन भाग्यवान्।
दुग्ध–भेट आनिया दिलेन विद्यमान॥३८॥
हासिया ठाकुर बले,–''बड़ भाल भाल।
दुग्ध–लाउ पाक गिया करह सकाल॥'३९॥
सन्तोषे चलिला शची करिते रन्धन।
हेन भक्तवत्सल श्रीशचीर नन्दन॥४०॥
एइ मते महानन्दे वैकुण्ठ–ईश्वर।
कौतुके आछेन रात्रि द्वितीय प्रहर॥४१॥

(३३–४१) प० अनु०—उसी समय एक हाथ में लौकी लिए हुये सौभाग्यशाली श्रीधर आकर उपस्थित हुये। लौकी की भेंट को देखकर श्रीगौरसुन्दर हँसने लगे और उनसे पूछा–"कहाँ मिली?" और मन–ही–मन प्रभु सोच रहे थे, "मुझे कल चले जाना है। इस लौकी के भोजन का अवसर मुझे नहीं मिलेगा। श्रीधर–द्वारा भेंट में दिया हुआ पदार्थ तब क्या काम में नहीं आयेगा। निश्चितरूप से आज ही इस लौकी का भोजन करूँगा।" प्रभु ने इस प्रकार चिन्ता करते हुये और भक्त के प्रति वत्सलता दिखाने के लिये जननी को लौकी रन्धन करने के लिए कहा। उसी समय किसी एक अन्य भाग्यवान् में भेंट में दुग्ध प्रदान किया। यह देखते हुये हँसकर ठाकुर बोले, —"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा हुआ। जाकर शीघ्र दुग्ध–लौकी बनाओ।" प्रसन्न होकर शची रन्धन करने को चल पड़ीं। श्रीशचीनन्दन प्रभु ऐसे भक्तवत्सल हैं। इस प्रकार से वैकुण्ठ के ईश्वर कौतुकपूर्वक महानन्द में भक्तों के साथ विराजमान थे कि रात का द्वितीय प्रहर हो गया।

भोजन एवं विश्राम के उपरान्त प्रभु की यात्रा–

सबारे विदाय दिया प्रभु विश्वम्भर।
भोजन बसिला आसि' त्रिदश–ईश्वर॥४२॥
भोजन करिया प्रभु मुखशुद्धि करि'।
चलिला शयन–घरे गौरांग–श्रीहरि॥४३॥
योगनिद्रा प्रति दृष्टि करिला ईश्वर।
निकटे शुइला हरिदास गदाधर॥४४॥
आइ जाने आजि प्रभु करिबे गमन।
आइर नाहि निद्रा, कान्दे अनुक्षण॥४५॥
'दण्ड चारि रात्रि आछे' ठाकुर जानिया।
उठिलेन चलिवारे नासाग्रण लइया॥४६॥

(४२–४६) प० अनु०—सबको विदा देकर देवाधि– प्रति प्रभु विश्वम्भर भोजन करने को आ बैठे। भोजन करके प्रभु ने मुखशुद्धि की और फिर वे शयन–घन में चल दिये। वहाँ जाकर ईश्वर ने योगनिन्द्रा के प्रति दृष्टिपात किया। हरिदास और गदाधर पास ही सो रहे थे। आई जानती थीं कि, आज प्रभु चले जायेगें; इसलिए आई की आँखों में नींद नहीं थी। वे अनुक्षण रो रही थीं। 'रात के चार

दण्ड बाकी रह गये हैं,' यह जानकर ठाकुर नासाघ्राण लेकर चलने को तैयार हो गये।

(४४) गौः भाः—श्रीधर की शेषभिक्षा लौकी एवं एक और भाग्यवान् के द्वारा प्रदत्त दुग्ध से श्रीशचीदेवी ने दुग्धलौकी का रन्धन किया। उसे ग्रहण करके श्रीगौरसुन्दर रात के द्वितीय प्रहर में अपने शयन-कक्ष में चले गये। उनके निद्रा के समय पास ही आच्छन्न होकर सभी विश्राम करने लगे।

(४६) गौः भाः—ब्राह्म-मुहूर्त्त में ब्रह्मरन्ध्र की गति का पर्यवेक्षण (विचार) करके अर्थात् नासारन्ध्र का विचार करके श्रीगौरसुन्दर ने उसी समय अपनी यात्रा का शुभ विचार किया।

प्रभु के साथ जाने के लिए गदाधर की इच्छा एवं प्रभु द्वारा प्रत्याख्यान (निषेध)-

गदाधर हरिदास उठिलेन जानि'।
गदाधर बलेन,-''चलिब संगे आमि॥''४७॥
प्रभु बले,-''आमार नाहिक कारु संग।
एक अद्वितीय से आमार सर्व रंग॥''४८॥
आइ जानिलेन मात्र प्रभुर गमन।
दुयारे बसिया रहिलेन तत-क्षण॥४९॥

(४७-४९) प० अनु०-प्रभु यात्रा का रहे हैं, यह जानकर हरिदास और गदाधर उठ गये। गदाधर कहने लगे,-"मैं भी साथ चलूँगा।" प्रभु बोले,-"मेरा किसी से कोई संग नहीं है। मैं अद्वितीय हूँ और इसी स्वरूप में मेरा सम्पूर्ण आनन्द निहित है।" आई ने जब जान लिया कि, प्रभु अब जाने को तैयार हैं, तो वे तत्क्षण आकर द्वार पर बैठ गयीं।

(५०-६०) प० अनु०—जननी को देखकर प्रभु ने उनका हाथ पकड़ लिया और बैठकर उन्हें अनेक प्रकार के उपदेशों से सांत्वना देते हुये बोले,-"तुमने बहुत ही अच्छी प्रकार से मेरा पालन पोषण किया है। तुम्हारे कारण मैं पढ़ने-सुनने मे सफल हुआ हूँ। तुमने अपने सुख के बारे में कभी आधा तिल-मात्र भी नहीं सोचा। जन्म से ही तुम मुझे सुख-भोग प्रदान करती रही हो। तुमने पल-पल मेरे प्रति जो स्नेह प्रदर्शित किया है, मैं कोटि-कल्पों में भी उससे उऋण नहीं हो सकता हूँ। तुम्हारी कृपा से ही उसका प्रतिकार हो सकता है। मैं जन्म-जन्म का तुम्हारा ऋणी हूँ। सुनो माता, संसार ईश्वर के अधीन हैं स्वतन्त्र होने की शक्ति किसी में भी नहीं है। संयोग-वियोग-सब उसी प्रभु के हाथ में है।उनकी इच्छा को समझने की शक्ति किसमें है? चाहे अभी यादस दिनों के बाद मैं चला जाऊँ, तो तुम कोई चिन्ता मत करना। तुम्हारे व्यवहार या परमार्थ का सम्पूर्ण दायित्व मुझ पर ही है।" छाती पर हाथ रखकर प्रभु बारम्बार कहने लगे, "तुम्हारा सब भार मेरा है, मेरा है।" जो कुछ भी प्रभु कह रहे थे, शची सब सुन रही थीं, किन्तु कुछ उत्तर दिये बिना वे केवल रोये जा रही थीं।

(५३) गौः भाः-विदा के समय श्रीगौरसुन्दर ने जननी से कहा,—"मेरी सेवा छोड़कर तुमने अपने सुख के लिए कुछ भी नहीं किया, इसलिए कोटि-कल्पो में भी मैं तुम्हारा ऋण उतार नहीं सकता हूँ।" नित्य जननी के नित्यविग्रह का परित्याग श्रीगौरसुन्दर कभी भी नहीं करते हैं। अप्राकृत वात्सल्य-रस की आश्रय-विग्रह श्रीशचीदेवी इस कारण ही अप्रकट नित्य-लीला में श्रीगौरसुन्दर के वात्सल्य रस की आश्रय-विग्रह हैं। उनका संग वे एक मुहूर्त्त के लिए भी परित्याग नहीं करते हैं।

(५६) गौः भाः—जड़जगत् में जन्म, स्थिति एवं विनाश-रूप तीन प्रकार के विचार अवस्थित हैं, इसलिए विरह में दुःख की कथा

एवं संयोग में विरह के अभाव के कारण सुख-भोग की बात वर्तमान है। भगवान् की इच्छा से भगवद् सेवा-विमुख ऐहिक जगत् भगवान् के द्वारा बाध्य है। यहाँ रहते हुये जो लोग भगवद् विमुखता में प्रतिष्ठित होकर भगवान् की इच्छाशक्ति के विपरीत अपनी इच्छा का पोषण किया करते हैं, वे सब धीरे-धीरे जब अपनी दुर्बलता समझने में समर्थ हो जाते हैं, तब भागवान् के ही शरणागत हो जाते हैं, किन्तु सेवाविमुखजन कृष्णशक्ति से परिचित होने में असमर्थ रह जाते हैं।

(५९) गौः भाः—नित्य वात्सल्याश्रय-विग्रह श्रीशचीदेवी से श्रीगौरसुन्दर ने कहा, "तुम्हारे लिए व्यवहारिक एवं पारमार्थिक सभी रसों में मैं तुम्हारा पुत्र एवं विषय-विग्रह हूँ, अतएव सारी जिम्मेदारियाँ मेरी हैं,"— यह बात प्रभु ने बारम्बार कही।

शचीदेवी का धीरज-

पृथिवीस्वरूपा हैला शची जगन्माता।
के बुझिवे कृष्णेर अचिन्त्य-लीला-कथा॥६१॥

(६१) प० अनु०—जगन्माता शची पृथ्वीस्वरूपा हो गईं। कृष्ण की अचिन्त्य लीला कथाओं को समझने में कौन समर्थ है?

(६१) गौः भाः—धरणीस्वरूपा बनकर श्रीशचीदेवी श्रीगौरसुन्दर के अर्चाविग्रह का उपादान-कारण हो गईं। शान्त, दास्य, सख्य एवं वात्सल्य आदि रस के सब आश्रय-विग्रह विषयविग्रहों से दूर अवस्थान करते हैं; मधुर-रस के आश्रयविग्रह विषय-विग्रहों के साथ एक ही आसन पर विराजमान होते हैं।

जननी की पदधूलि-ग्रहण एवं प्रदक्षिणा के उपरान्त प्रभु की यात्रा एवं शची का जड़-प्राय भाव-

जननीर पद-धूलि लइ' प्रभु शिरे।
प्रदक्षिण करि' ताने चलिला सत्वेर॥६२॥
चलिलेन वैकुण्ठ-नायक गृह हइते।
संन्यास करिया सर्व जीव उद्धारित॥६३॥
शुन शुन आरे भाइ, प्रभुर संन्यास।
ये कथा शुनिले सर्व-बन्ध हय नाश॥६४॥
प्रभु चलिलेन मात्र शची जगन्माता।
जड़प्राय रहिलेन, नाहि स्फुरे कथा॥६५॥

(६२-६५) प० अनु०—जननी की चरण-धूलि सिर पर धारण करके एवं उनकी प्रदक्षिणा करके प्रभु शीघ्र चल दिये। संन्यास ग्रहण करके सभी जीवों का उद्धार करने के लिए वैकुण्ठ के नायक घर छोड़कर चल पड़े। हे भाइयों! प्रभु के संन्यास के बारे में सुनिए, सुनिए। इस कथा को सुनने से सभी बन्धनों से छुटकारा मिल जाता है। प्रभु के चले जाने मात्र से जगन्माता शची जड़ प्राय हो गईं। उनकी वाणी बन्द हो गई।

महाप्रभु को प्रणाम निवेदन करने के लिए भक्तों का आगमन एवं दरवाजे के बाहर शचीमाता को देखकरइस विषय में पूछताछ-

भक्त-सब ना जानेन ए सब वृत्तान्त।
ऊषःकाले स्नान करि' यतेक महान्त॥६६॥
प्रभु नमस्करिते आइला प्रभु-घरे।
आसि' सबे देखे आइ बाहिर-दुयारे॥६७॥
प्रथमेइ बलिलेन श्रीवास-उदार।
''आइ केन रहियाछे बाहिर-दुयार॥''६८॥

(६६-६८) प० अनु०— इस वृत्तान्त के बारे में भक्तों को कुछ भी पता नहीं था। जितने भी महान्त थे, वे सब ऊषाकाल में स्नान करके प्रभु को नमस्कार करने के लिए उनके घर आये। आते ही सबने देखा कि आई बाहर द्वार पर बैठी हैं। उदारमना

श्रीवास पहले ही बोले,—"आई बाहर द्वार पर क्यों बैठी हैं?"

शचीमाता के द्वारा निर्वेदसूचक उत्तर–

जड़प्राय आइ, किछु ना स्फुरे उत्तर।
नयनेर धारा मात्र बहे निरन्तर॥६९॥
क्षणेके बलिला आइ—''शुन, बाप सब!
विष्णुर द्रव्येर भागी सकल वैष्णव॥७०॥
एतेके ये किछु द्रव्य आछये ताहार।
तोमा' सबाकार हय शास्त्रपरचार॥७१॥
एतेके तोमार सबे आपने मिलिया।
येन इच्छा तेन कर, मो याङ चलिया॥''७२॥

(६९–७२) प० अनु०—जड़प्राय आई ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उनकी आँखों से निरन्तर केवल धाराएँ बह रही थीं। एक क्षण के बाद आई ने कहा,–"सुनो पुत्रों! सभी वैष्णव विष्णु के द्रव्य के अधिकारी होते हैं। इसलिए जो कुछ भी उनका है, वह सब तुम्हारा है—यही शास्त्रका वचन है। अतएव तुम सब आपस में मिलकर जैसी इच्छा हो करो, मैं तो चली जाऊँगी।

(७१–७२) गौः भाः—श्रीशचीदेवी ने भक्तों से कहा,–"भगवान् के सभी द्रव्यों के उत्तराधिकारी भक्तगण होते हैं; इस कारण गौरहरि के सभी द्रव्यों पर तुम लोगों का अधिकार है—शास्त्रों में यही लिखा हुआ है। इसलिए इन सब वस्तुओं को ग्रहण का लो, मैं कहीं और चली जाती हूँ।"

प्रभु के विरह में भक्तों का विषाद–

शुनि' मात्र भक्तगण प्रभुर गमन।
भूमिते पड़िला सबे हइ' अचेतन॥७३॥
कि हइल से वैष्णवगणेर विषाद।
कान्दिते लागिला सबे करि' आर्तनाद॥७४॥
अन्योन्ये सबेइ सबार धरि' गला।
विविध विलाप सबे करिते लागिला॥७५॥
''कि दारुण निशि पोहाइल गोपी–नाथ।''
बलिया कान्देन सबे शिरे दिया हात॥७६॥
''ना देखि' से चाँद–मुख वंचिब केमने।
किवा कार्य ए वा आर पापिष्ठ जीवन॥७७॥
आचम्बिते केने हेन हैल बज्रपात।''
गड़ा–गड़ि याय केह करे आत्मघात॥७८॥
सम्वरण नहे भक्तगणेर क्रन्दन।
हइल क्रन्दनमय प्रभुर भवन॥७९॥
ये भक्त आइसे प्रभु देखिवार तरे।
से–इ आसि' डूबे महा–विहर–सागरे॥८०॥
कान्दे सब भक्तगण भूमिते पड़िया।
''संन्यास करिते प्रभुर गेलेन चलिया॥८१॥
अनाथेर नाथ प्रभु गेलेन चलिया।
आमा–सबे विरह–समुद्रे फेलाइया।।''८२॥
कान्दे सबे भक्तगण, हइयाअचेतन,
'हरि हरि' बलि' उच्चैःस्वरे।
कि वा मोर धन–जन, कि वा मोर जीवन,
प्रभु छाड़ि' गेला सबाकार॥८३॥
माथाय दिया हात, बुके मारे निर्घात,
'हरि हरि' प्रभु विश्वम्भर।
संन्यास करिते गेला, आमा–सबा ना बलिला,
कान्दे भक्त धूलया धूसर॥८४॥
प्रभुर अंगने पड़ि,' कान्दे मुकुन्द–मुरारि,
श्रीधर, गदाधर, गंगादास।
श्रीवासेर गण यत, ता'रा कान्दे अविरत,
श्रीआचार्य कान्दे हरिदास॥।८५॥
शुनिया क्रन्दन–रव, नदीयार लोक–सब,
देखिते आइसे सब धाञा।
ना देखि' प्रभुर मुख, सबे पाय महा–शोक,
कान्दे सबे माथे हात दिया॥८६॥

नगरिया यत भक्त, ता'रा कान्दे अविरत,
बाल–वृद्ध नाहिक विचार।
कान्दे सब स्त्री–पुरूषे, पाषण्डीगण हासे,
'निमाइरे ना देखिमु आर'॥८७॥

(७३–८७) प० अनु०— प्रभु चले गये, यह सुनने–मात्र से भक्तवृन्द अचेतन होकर भूमि पर गिर पड़े। वैष्णवों में विषाद छा गया। सभी आर्त्तनाद होकर क्रन्दन करने लगे। सभी परस्पर एक दूसरे के गले लग कर बहुविध विलाप करने लगे। सभी सिर पर हाथ रखकर क्रन्दन करने लगे और कहने लगे,–"गोपीनाथ! आज की रात का शेष कितना दुःखदायक हुआ।" "उस मुखचन्द्र को देखे बिना हम कैसे जीयेंगे। इस पापिष्ठ जीवन से हमें और क्या प्रयोजन। अचानक यह बज्रपात क्यों हुआ?" ऐसा विलाप करते हुये कोई भूमि पर लोट–पोट होने लगा और कोई आर्तनाद करने लगे। भक्तों का क्रन्दन रुक नहीं रहा था। प्रभु का भवन केवल क्रन्दनमय हो गया था। प्रभु के दर्शनों के लिए जो भी भक्त आते थे, वे सभी महा–विरह के सागर में डूब जाते थे। सब भक्तवृन्द भूमि पर पड़कर रोते हुये कह रहे हैं, "संन्यास–ग्रहण करने को प्रभु चले गये! हम सबको विरह के सागर में डूबोकर अनाथों के नाथ प्रभु चले गये।"

अचेतन होकर सभी भक्तजन ऊँचें स्वर में 'हरि हरि' कहकर क्रन्दन कर रहे थे और कह रहे थे कि, मेरा धन, जन और मेरा जीवन अब किस काम का? प्रभु हम सबको छोड़कर चले गये। सिर पर हाथ रखकर, छाती पर कराघात करके, 'हरि हरि' कहते हुये भक्तजन धूली में लोट–पोट होकर क्रन्दन कर रहे थे और कह रहे थे कि, प्रभु विश्वम्भर हम सबको बताये बिना संन्यास ग्रहण करने को चले गये। प्रभु के आँगन में गिरकर मुकुन्द, मुरारि, श्रीधर, गदाधर और गंगादास क्रन्दन कर रहे थे। श्रीवास के जितने भी भक्त थे, वे सभी निरन्तर क्रन्दन कर रहे थे। श्रीआचार्य और हरिदास भी क्रन्दन कर रहे थे। क्रन्दन की आवाज सुनकर नदीया के सभी लोग दौड़कर प्रभु–दर्शन के लिए वहाँ चले आये, परन्तु प्रभु को न देखकर सभी व्यक्तियों को महा शोक हुआ और सिर पर हाथ रखकर वे भी क्रन्दन करने लगे। नगर के जितने भी भक्त थे, वे सब निरन्तर क्रन्दन कर रहे थे, इसमें बाल–वृद्ध का विचार नहीं था। स्त्री–पुरूष—सभी क्रन्दन कर रहे थे, परन्तु पाखण्डीगण हँस रहे थे। भक्तों की चिन्ता थी कि, 'निमाइ को अब और नहीं देख सकेंगे।'

भक्तों का धीरज एवं शची
को घेरकर उपवेशन–

कतक्षणे भक्तगण हइ' किछु शान्त।
शची–देवी बेड़ि' सब बसिला महान्त॥८८॥

(८८) प० अनु०—कुछ समय के पश्चात् भक्तवृन्द थोड़े शान्त हुये और वे सब महानुभाव शचीदेवी को घेर कर बैठ गये।

सारे नवद्वीप में प्रभु के गृहत्याग–संवाद
का प्रचार एवं सभी को शोक–

कतक्षणे सर्व–नवद्वीपे हैल ध्वनि।
संन्यास करिते चलिलेन द्विजमणि॥८९॥
शुनि' सर्व लोकेर लागिल चमत्कार।
धाइया आइला सर्व–लोक नदीयार॥९०॥
आसि' सर्व–लोक देखे प्रभुर बाड़ीते।
शून्य बाड़ी सबे लागियाछेन कान्दिते॥९१॥

(८९–९१) प० अनु०—कुछ ही समय में

सारे नवद्वीप में यह समाचार फैल गया कि, द्विजमणि श्रीगौरप्रभु संन्यास-ग्रहण करने को चले गये हैं। सुनकर सभी भौंचक्के रह गये। नदीया के सभी लोग दौड़कर वहाँ आ पहुँचे। प्रभु के भवन में आकर सभी ने देखा कि, भवन शून्य है और सभी रो रहे हैं।

प्रभु के विरह में पाखण्डी निन्दकों की भी खेदोक्ति-

तखने से 'हाय-हाय' करे सर्व-लोक।
परम निन्दक पाषण्डीओ पाय शोक॥९२॥
''पापिष्ठ आमरा ना चिनिल हेन जन।''
अनुताप करि' सबे करेन रोदन॥९३॥
भूमिते पड़िया कान्दे नगरियागण।
''आर ना देखित ताँ'र से चन्द्र-वदन॥''९४॥
केह बले,-''चल घरे द्वारे अग्नि दिया।
काणे परि' कुण्डल चलिब योगी हञा॥९५॥
हेन प्रभु नवद्वीप छाड़िल यखन।
आर केने आछे आमा' सबार जीवन॥''९६॥
कि स्त्री पुरूष ये शुनिल नदीयार।
सबेइ विषाद बइ ना भावये आर।।९७॥

(९२-९७) प० अनु०-जब सभी लोग 'हाय-हाय' कर रहे थे तो परम निन्दक पाखण्डी भी शोक-ग्रस्त हो गये। पश्चात्ताप करते हुये वे सब रोने लगे और कहने लगे,-"हम सब पापिष्ठ उन्हें पहचान नहीं पाये।" नागरिकगण भूमि के ऊपर गिरकर रोने लगे और कहने लगे,-"उनका वह चन्द्र-वदन हमें अब और देखने को नहीं मिलेगा।" कोई कहने लगा,-"चलो घर-द्वार में आग लगाकर और कानों में कुण्डल पहनकर तथा योगी बनकर हम भी चले जायेंगे। जब ऐसे प्रभु ने नवद्वीप छोड़ दिया, तो हम सबका जीवन भी क्यों रहो।" नदीया के स्त्री-पुरुष, जिन्होंने इस समाचार को सुना, विषाद में डूब गये-और कुछ सोच नहीं पा रहे थे।

(९५) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के संन्यास ग्रहण की बात सुनकर किसी-किसी ने परामर्श दिया कि,हम सभी अपने घर-द्वार आदि में आग अगाकर और 'कनफटे' योगी बनकर देश-त्यागी हो जायें। बाहर का कोई शब्द जैसे उनके कानों में प्रवेश न कर सके, इसलिए 'कनफटे' योगिजन कर्णद्वय में छिद्र करके उनमें दो कीलक (कील) प्रविष्ट कराकर कर्णों के रन्ध्रद्वय को अवरुद्ध करके रखते हैं।

सभी जीवों के उद्धार-हेतु प्रभु की लीला-

प्रभु से जानये या'रे तारिब ये मते।
सर्वजीव उद्धार करिब हेन मते॥९८॥
निन्दा-द्वेष-आदि या'र मनेते आछिल।
प्रभुर विरह-सर्प पाषण्डे दंशिल॥९९॥
सर्वजीव-नाथ गौर-चन्द्र जय जय।
भाल रंगे सबे उद्धारिले दयामय॥१००॥

(९८-१००) प० अनु०—प्रभु जानते थे कि कैसे किसका उद्धार करना है। इस प्रकार से प्रभु ने सबका उद्धार किया। जिनके मन में निन्दा-द्वेष आदि था, उन पाखण्डियों को भी प्रभु के विरह-रूपी सर्प ने डसकर निर्मल कर दिया। समस्त जीवों के नाथ श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। हे दयामय, आपने अच्छी लीला (संन्यास) कौतुक द्वारा सभी का उद्धार कर दिया।

प्रभु-द्वारा संन्यास ग्रहण की कथा सुनने का फल-

शुन शुन आरे भाइ, प्रभुर संन्यास।
ये कथा शुनिले कर्मबन्ध याय नाश॥१०१॥

(१०१) प० अनु०-हे भाइयों! प्रभु-द्वारा

संन्यास-ग्रहण के इस प्रसंग को सुनिए, सुनिए! जिस प्रसंग को सुनने से कर्म-बन्धन नष्ट हो जाते हैं।

केशवभारती के निकट प्रभु का गमन एवं कृपाभिक्षा का अभिनय-

गंगा पार हइया श्रीगौरांग-सुन्दर।
सेइ दिने आइलेन कण्टक-नगर॥१०२॥
या'रे या'रे आज्ञा प्रभु पूर्वे करिछिला।
ताहाराओ अल्पे अल्पे आसिया मिलिला॥१०३॥
श्रीअवधूतचन्द्र, गदाधर, मुकुन्द।
श्रीचन्द्रशेखराचार्य, आरर ब्रह्मानन्द॥१०४॥
आइलेन प्रभु यथा केशव-भारती।
मत्त-सिंह-प्राय प्रियवर्गेर संहति॥१०५॥
अदभूत देहेर ज्योतिः देखिया ताहान।
उठिलेन केशव-भारती पूण्यवान्॥१०६॥
दण्डवत्प्रणाम करिया प्रभु ताने।
करयोड़ करि' स्तुति करेन आपने॥१०७॥
''अनुग्रह तुमि मोरे कर महाशय!
पतित-पावन-तुमि महा-कृपामय॥१०८॥
तुमि से दिबारे पार कृष्ण प्राणनाथ।
निरबधि कृष्णचन्द्र बसये तोमा'त॥१०९॥
कृष्ण-दास्य बिनु मोर नहे किछु आन।
हेन उपदेश तुमि मोरे देह' दान॥'११०॥

(१०२-११०) प० अनु०—श्रीगौरांग-सुन्दर गंगा को पार करके उसी दिन कंटक नगर जा पहुँचे। जिन-जिन व्यक्तियों को प्रभु ने पहले वहाँ आने की आज्ञा दे रखी थी, वे भी धीरे-धीरे वहाँ आकर मिल गये। श्रीअवधृतचन्द्र (श्रीनित्यानन्द प्रभु), गदाधर, मुकुन्द, श्रीचन्द्रशेखराचार्य और ब्रह्मानन्द आदि प्रियवर्ग को साथ लेकर मत्तसिंह की भाँति केशव-भारती के पास आ पहुँचे। गौरचद्र की देह की अद्भुत ज्योति को देखकर पुण्यवान् केशव-भारती उठकर खड़े हो गये। प्रभु उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर स्वयं उनकी स्तुति करने लगे। प्रभु बोले,-"हे महाशय! हे महा-कृपामय! हे पतित-पावन! आप मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए। आप मुझे प्राणनाथ श्रीकृष्ण को दे सकते हैं। कृष्णचन्द्र निरन्तर आपके साथ रहते हैं। वे आपके हृदय में बैठे हुये हैं। कृष्ण-दास्य के बिना मुझे और कुछ नहीं चाहिए। आप कृपा करके मुझे उपदेश प्रदान दीजिए।"

(१०४) गौः भाः—श्रीचन्द्रशेखराचार्य के भवन में श्रीगौरसुन्दर ने संन्यास ग्रहण करने का परामर्श किया था। वहाँ श्रीनित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द एवं ब्रह्मानन्द भारती उस परामर्श के बारे में अवगत थे। वर्तमान में वहाँ उसी स्थान पर श्रीचैतन्यमठ की स्थापना हुई है।

(११०) गौः भाः-श्रीकेशव भारती को कोई-कोई श्रील माधवेन्द्रपुरी का शिष्य मानता है। श्रीगौरसुन्दर ने केशव भारती से कहा,-"आपने कृष्णचन्द्र को अपना प्रभु मानकर उन्हें अपने हृदय में बिठाया हुआ है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, मैं केवल यही चाहता हूँ कि, कृष्ण मेरी सेवा ग्रहण किया करें; आप कृपा करके मुझे यह अनुग्रह दान कीजिए।"

प्रभु का प्रेमविकार और मुकुन्द आदि का कीर्तन-

प्रेम-जले अंग भासे प्रभुर कहिते।
हुँकार करिया शेषे लागिला नाचिते॥१११॥
गाइते लागिला मुकुन्दादि भक्तगण।
निजावेशे मत्त नाचे श्रीशचीनन्दन॥११२॥

(१११-११२) प० अनु०—इतना कहते-कहते प्रभु का श्रीअंग प्रेम-जल से भीग गया।

अन्त में प्रभु हुँकार करते हुये नृत्य करने लगे। मुकुन्दादि भक्तवृन्द कीर्तन करने लगे और निज आवेश में मत्त श्रीशचीनन्दन नृत्य करते रहे।

प्रभु को देखने के लिए बहुत लोगों का आगमन एवं अपलक दृष्टि से प्रभु के दर्शन–

अर्वुद अवुर्द लोक शुनि' सेइक्षणे।
आसिया मिलिला नाहि जानि कोथा हने॥११३॥
देखिया प्रभुर रूप परम सुन्दर।
एक दृष्टे पान सबे करे निरन्तर॥११४॥

(११३–११४) प० अनु०—यह सुनकर अर्वुद–अर्वुद लोग उसी क्षण न जाने कहाँ से वहाँ चले आये। प्रभु का परम सुन्दर रूप देखकर सभी निर्निमेष–नेत्रों से निरन्तर उसका पान करने लगे।

प्रभु के अद्‌भुत प्रेमभाव को देखकर एवं संन्यास–ग्रहण की बात को सुनकर सभी का क्रन्दन–

अकथ्य अद्‌भुत धारा प्रभुर नयने।
ताहा ना कहिते पारे 'अनन्त' वदने॥११५॥
पाक दिया नृत्य करिते ये छुटे जल।
ताहातेइ लोक स्नान करिल सकल॥११६॥
सर्व लोके तितिल प्रभुर प्रेम–जले।
स्त्री–पुरूषे बाल–वृद्धे 'हरि हरि' बले॥११७॥
क्षणे कम्प, क्षणे स्वेद, क्षणे मूर्च्छा याय।
आछाड़ देखिते सर्व लोके पाय भय॥११८॥
अनन्त–ब्रह्माण्ड–नाथ निज–दास्य–भावे।
दन्ते तृण करि' सबा–स्थाने दास्य मागे॥११९॥
से कारुण्य देखिया कान्दये सर्वलोक।
संन्यास शुनिया सबे भावे–महा–शोक॥१२०॥
'केमने धरिब प्राण इहार जननी।
आजि ताने पोहाइल कि काल–रजनी॥१२१॥
कोन् पुण्यवती हेन पाइलेक निधि।
कोन् वा दारूण दोषे हरिलेक विधि॥१२२॥
आमा' सबाकार प्राण विदरे शुनिते।
भार्या वा जननी प्राण धरिब केमते॥'१२३॥
एइमते नारीगण दुःख भावि' कान्दे।
पड़ि' कान्दे सर्व जीव चैतन्येर फान्दे॥१२४॥
क्षणेक सम्वरि' नृत्य वैसे विश्वम्भर।
बसिलेन चतुर्दिके सब–अनुचर॥१२५॥

(११५–१२५) प० अनु०—प्रभु के नयनों से अद्‌भुत अकथ्य धारा प्रवाहित होने लगी। स्वयं 'अनन्तदेव' भी उसका वर्णन करने में सक्षम नहीं है। चक्कर देकर नृत्य करते समय उनके नेत्रों से जो जल निकला, उसी से सभी लोगों का स्नान हो गया। प्रभु के प्रेम–जल से सभी लोग भीग गये।

स्त्री,–पुरुष, बालक–वृद्ध—सभी 'हरि–हरि' कहने लगे। प्रभु को क्षण में कम्प, क्षण में स्वेद और क्षण में मूर्च्छा होर ही थी। उनकी पछाड़ को देखकर तो सभी लोग भयभीत होने लगे। अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी निज दास्य–भाव में स्थित होकर दाँतों में तृण लिए सभी के पास दास्य भाव की याचना करने लगे, उस कारुण्य को देखकर सभी लोग क्रन्दन करने लगे। फिर संन्यास ग्रहण करने की बात सुनकर वे बड़े शोकाकुल हो गये। 'इनकी जननी कैसे प्राण धारण करेंगी? आज कौन–सी काल–रात्रि उनके लिये प्रभाव लेकर आई है? न जाने किस पुण्यवती को ऐसी निधि मिलि थी। कोई दारुण दोष रहा होगा, जिसके कारण विधाता ने उनसे इस निधि का हरण कर लिया। सुनने मात्र सेस ही हम सभी के प्राण विदीर्ण हो रहे हैं, तब इनकी भार्या अथवा जननी कैसे प्राण धारण करेंगी?' इस प्रकार से नारियाँ दुःख का

अनुभव करके क्रन्दन करने लगीं। चैतन्य के फन्दे में फँसकर सभी जीव रोने लगे। तभी एक एक्षण नृत्य रोककर विश्वम्भर बैठ गये एवं चारों ओर सभी अनुचर भी बैठ गये।

(११९) गौः भाः— अभिन्न-ब्रजेन्द्र-नन्दन चतुर्दश ब्रह्माण्डों के पति एवं कृष्ण होकर भी गौरसुन्दर लोकशिक्षा-हेतु अत्यन्त विनय-नम्रविचार सहित कृष्णदास्य एवं भक्तसेवा के लिए प्रार्थना कर रहें है।

(१२२) गौः भाः— विष्णुप्रिया को उद्देश्य करके विचारकगण कहने लगे, पति के रूप में श्रीगौरसुन्दर की प्राप्ति होने से उन्हें परम सौभाग्य की उपलब्धि हुई थी। फिर गौरसुन्दर संन्यास ग्रहण कर रहे हैं, यह जानकर वे बोले,-विष्णुप्रिया देवी ने ऐसा कौन-सा उपराध किया है, जिसके कारण विधाता ने उनका प्राप्त धन हरण कर लिया।

श्रीकेशव-भारती के द्वारा प्रभु की प्रशंसा एवं प्रभु को 'जगद्गुरू' के रूप में स्वीकार करना-

देखिया प्रभुर भक्ति केशव भारती।
आनन्द सागरे मग्न हइ' करे स्तुति॥१२६॥
''ये भक्ति तोमार आमि देखिल नयने।
एक शक्ति अन्येर नहे ईश्वरे बिने॥१२७॥
तुमि से जगदगुरू जानिल निश्चय।
तोमार गुरुर योग्य केह कभु नय॥१२८॥
तबे तुमि लोकशिक्षा-निमित्त-कारणे।
करिबा आमारे गुरु हेन लय मने॥''१२९॥

(१२६-१२९) प० अपु०— प्रभु की भक्ति को देखकर केशव भारती आनन्द के सागर में मग्न होकर स्तुति करने लगे। केशव भारती कहने लगे,-"मैंने अपनी आँखों से आपमें जिस भक्ति के दर्शन किये हैं; उसके दर्शन करने की शक्ति ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं है। आप जगद्गुरु हैं, यह मैं निश्चितरूप से जान गया हूँ। कभी भी कोई आपका गुरु होने योग्य नहीं है। फिर भी, लगता है कि आप केवल लोकशिक्षा के मिमित्त मुझे गुरुरूप में स्वीकार करेंगे।"

(१२८) गौः भाः— कतिपय संख्या वाले शिष्यों के गुरु अथवा एक व्यक्ति के गुरु अपने अनुरूप योग्यता को देखकर ही शिष्यों को स्वीकार करते हैं एवं हमारी भाँति सभी प्राणियों में भगवद्-भाव का दर्शन करते हुये अपने आपको सभी का शिष्य समझता है, वह जगद्गुरु हो सकता है। अपनी भजन-प्रणाली में श्रीगौरसुन्दर ने तृणादपि सुनीच, तरु की भाँति सहिष्णु एवं अमानी मानद होकर हर पल कृष्ण-भजन करना होगा— इस प्रकार से अन्तर-बाहर की निष्कपट भजन-शिक्षा दी है, इस कारण वे ही सर्वोपास्य ब्रजेन्द्रनन्दन एवं प्रकृत जगदगुरु हैं। श्रीचैतन्य के जितने भी सेवक हैं, वे भी जगद्गुरु है। श्रीचैतन्य के जितने भी सेवक हैं, वे भी जगद्गुरु हैं; क्योंकि, मुझ-जैसे सबसे अधम पतित पाखण्डी को भी वे दासरूप से स्वीकार करते हुये अपनी सेवा का अधिकार प्रदान कर सकते हैं— मैं जगत् के बाहर नहीं हूँ। वैष्णवोचित वास्तविक दीनता न रहने से कभी भी कोई भी गुरु का कार्य नहीं कर सकता। केशव भारती वैष्णवोचित गुणों से विभूषित थे।

सर्वोपास्य प्रभु-द्वारा लोकशिक्षार्थ अभिनय-

प्रभु बले,-''माया मोरे ना कर प्रकाश।
हेन दीक्षा देह' येन हऊं कृष्ण-दास॥''१३०॥

(१३०) प० अनु०—प्रभु बोले,- "मेरे सामने माया का प्रकाश मत कीजिएगा। ऐसी दीक्षा दीजिए ताकि मैं कृष्ण का दास बन सकूँ।"

(१२९-१३०) गौः भाः—केशव भारती

ने महाप्रभु से कहा,-"मैं समझ गया हूँ कि लोकशिक्षा के लिए आप गुरुकरण-प्रथा का आदर कर रहे हैं।" इसके उत्तर में महाप्रभु ने कहा,-"मोहिनी माया का विस्तार करते हुये मुझे वंचित मत कीजिएगा। जिस प्रकार से मैं कृष्ण का सेवक बन सकूँ, उसी प्रकार का दिव्य-ज्ञान प्रदान करते हुये मेरे सभी पाप-पुण्यों को हरण कर लीजिए।"

कृष्णकथा-प्रसंग में गौरसुन्दर द्वारा रात बिताना-

एइमत कृष्णकथा-आनन्द-प्रसंगे।
वंचिलेन से निशा ठाकुर सबा' संगे॥१३१॥

(१३१) प० अनु०—इस प्रकार से सभी के साथ मिलकर कृष्णकथा के आनन्द में ठाकुर ने उस रात को बिताया।

विधियोग्य अनुष्ठान के लिए
चन्द्रशेखर को आदेश-

प्रभाते उठिया सर्व भुवदेर पति।
आज्ञा करिलेन चन्द्रशेखरेर प्रति॥१३२॥
''विधियोग्य यत कर्म सब कर तुमि।
तोमारेह प्रतिनिधि करिलाङ आमि॥''१३३॥
प्रभुर आज्ञाय चन्द्रशेखर-आचार्य।
करिते लागिला सर्व-विधि-योग्य कार्य॥१३४॥

(१३२-१३४) प० अनु०—प्रातः उठकर सभी भुवनों के पति गौरसुन्दर ने चन्द्रशेखर को आज्ञा दी,- "विधियोग्य जितने भी कर्म हैं, उनका सम्पादन तुम करो! मैंने तुम्हें ही अपना प्रतिनिधि बनाया है।" प्रभु की आज्ञा से आचार्य चन्द्रशेखर विधियोग्य सभी कार्यों को करने लगे।

(१३४) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर ने चन्द्रशेखर आचार्य के प्रति संन्यास के आनुष्ठानिक सभी क्रियाकर्मों को सम्पादित करने के लिए आदेश देकर उन्हें अपना प्रतिभू (प्रतिनिधि) नियुक्त किया। यतियों के लिए उचित कोई आनुष्ठानिक क्रियाकर्म महाप्रभु ने स्वयं सम्पादित नहीं किया।

नाना स्थानों सेस उपहार-

नाना ग्राम हइते से नाना उपायन।
आसिते लागिला अति अकथ्य-कथन॥१३५॥
दधि, दुग्ध, घृत, मुदग, ताम्बूल, चन्दन।
पुष्प, यज्ञ-सूत्र, वस्त्र आने सर्वजन॥१३६॥
नानाविध भक्ष्य द्रव्य लागिल आसिते।
हेन नाहि जानि के आनये कोन् भिते॥१३७॥

(१३५-१३७) प० अनु०—विभिन्न गावों से अनेक उपहार आने लगे। सभी लोग दही, दुग्ध, घृत, मुदग (मूँग), ताम्बूल, चन्दन, पुष्प, यज्ञ-सूत्र और वस्त्र इत्यादि लाने लगे। अनेक प्रकार की भोजन सामग्रियाँ आने लगीं; परन्तु कौन कहाँ से सामान ला रहा था, कोई नहीं जानता।

सभी के मुखों से हरिध्वनि-

'परम'-आनन्दे सबे करे हरि-ध्वनि।
'हरि' बिना लोक-मुखे आर नाहि शुनि॥१३८॥

(१३८) प० अनु०—'परम'-आनन्द से सभी लोग हरिध्वनि कर रहे थे। 'हरि' के अतिरिक्त लोगों के मुख से और कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था।

कर्मपद्धति के विचार से प्रभु-द्वारा
शिखामुंडन-हेतु उपवेशन-

तबे महाप्रभु सर्व जगतेर प्राण।
बसिला करिते श्रीशिखार अन्तर्द्धान॥१३९॥

(१३९) प० अनु०—तब सभी जगत् के प्राण स्वरूप श्रीमन् महाप्रभु श्रीशिखा के अन्तर्द्धान के लिए बैठे।

(१३९) गौः भाः—विद्या-प्रतिभा अर्जित करने के लिए अग्नि को साक्षी बनाकर चोल-संस्कार होता है। शिखा के बिना शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष आदि वेदांग-शास्त्रसमूह में एवं वेदांग आदि शास्त्रों में अधिकार प्रदान नहीं किया जाता है। जब भोगमयी अपरा विद्यासमूह की प्रतिभा को अर्जित करने की इच्छा ध्वंस हो जाती है, तब शिखा-परित्याग करने की व्यवस्था है। लोकाचार-विचार में अनुष्ठानिक कर्म परित्याग—शिक्षात्याग का लक्षण है; किन्तु भगवद् भक्त त्रिदण्डीगण भगवत् सेवा के लिए ही शिखा-सूत्र का प्रापंचिकता-बुद्धि अवलम्बन करपरित्याग नहीं रकते हैं, परन्ततु हरि-सम्बन्धी-वस्तु जानकर शिखसूत्रको धारण करते हुये भी परमहंस के धर्म में अवस्थित रह सकते हैं। श्रीगौरसुन्दर के प्रकट-काल में भारत के उत्तरीभाग में कर्मपद्धति का खूब प्रचार होने के कारण, श्रीगौरसुन्दर ने एकदण्ड विधि-बल से शिखासूत्र को त्याग दिया था। परन्तु उनके दासों ने परमहंसवेष-स्वीकार त्रिदण्ड-ग्रहण विधि के अनुसरण में शिखा-सूत्र का संरक्षण किया था।

नाई के द्वारा मुण्डन करने का आयोजन दर्शन से सभी का क्रन्दन एवं नाई का अश्रुविसर्जन-

नापित बसिला आसि सम्मुखे यखने।
क्रन्दनेर कलरव उठिल तखने॥१४०॥
क्षुर दिते नापित से चाँचर-चिकुरे।
माथे हात ना देय, क्रन्दनमात्र करे॥१४१॥
नित्यानन्द-आदि करि' यत भक्तगण।
भूमिते पड़ियासबे करेन क्रन्दन॥१४२॥
भक्तेर कि दाय, यत व्यवहारि-लोक।
ताहाराओ कान्दिते लागिला करि' शोक॥१४३॥
केह बले,- "कोन् विधि सृजिल संन्यास?"
एत बलि' नारीगण छाड़े महा-श्वास॥१४४॥
अगोचरे थाकि' सब कान्दे देवगण।
अनन्त ब्रह्माण्डमय हइल क्रन्दन॥१४५॥
हेन से कारुण्य-रस गौरचन्द्र करे।
शुष्क-काष्ठ-पाषाणादि द्रवये अन्तरे।।१४६॥
ए सकल लीला जीव-उद्धार-कारण।
एइ ता'र साक्षी देख कान्दे सर्वजन।।१४७॥

(१४०-१४७) प० अनु०—जब नाई आकर प्रभु के सामने बैठा, तब चारों ओर से क्रन्दन की ध्वनि उठने लगी। उन घुँघराले केशों में उस्तार लगाते समय नाई भी रुक गया और सिर को हाथ लगाये बिना वह रोने लगा। नित्यानन्द आदि सभी भक्तवृन्द भूमि पर गिरकर क्रन्दन करने लगे। भक्तों की बात तो दूर, व्यावहारिक लोग भी दुःखित होकर क्रन्दन करने लगे। कोई कहता,-"कौन से विधाता ने संन्यास का सृजन किया है?" इतना बोलते ही नारियाँ लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगीं। सभी देवगण अगोचर में क्रन्दन करने लगे। अनन्त ब्रह्माण्ड में क्रन्दन व्याप्त हो गया। गौरचन्द्र से ऐसे कारुण्य-रस का विस्तार किया कि, शुष्क काष्ठ, पाषाण आदि का अभ्यन्तर भी द्रवीभूत हो गया। जीव-उद्धार के कारण ये सब लीलाएँ हैं। इसकी साक्षी दखो, यह सब लोग रो रहे हैं।

प्रभु का प्रेमविह्वल-भाव एवं क्षौरकर्म में नाई की असमर्थता-

प्रेम-रसे परम चंचल गौरचद्र।
स्थिर नहे निरवधि भाव अश्रु कम्प।।१४८॥
'बोल' 'बोल' करि' प्रभु उठे विश्वम्भर।
गायेन मुकुन्द, प्रभु नाचे निरन्तर।।१४९॥
बसिलेओ प्रभु स्थिर हइते ना पारे।

प्रेम-रसे महा-कम्प, बहे आश्रुधारे।।१५०॥
'बोल' 'बोल' करि' प्रभु करये हुँकार।
क्षौरकर्म नापित ना पारे करिबार।।१५१॥

(१४८-१५१) प० अनु०—प्रेमरस के कारण परम चंचल गौरचन्द्र स्थिर नहीं हो पा रहे थे। उनमें भाव, अश्रु और कम्प का उदय निरन्तर हो रहा था। 'बोलो' 'बोला' कहते हुये प्रभु विश्वम्भर उठ खड़े हुये। मुकुन्द गाने लगे और प्रभु निरन्तर नृत्य करने लगे। बैठने पर भी प्रभु स्थिर नहीं हो पा रहे थे। प्रेमरस के कारण उनके श्रीअंग में महा-कम्प हो रहा था और आँखों से अश्रुधाराएँ निकल रही थीं। 'बोलो' 'बोलो' कहकर प्रभु हुँकार करने लगे। ऐसे में नाई क्षौरकर्म करने में समर्थ नहीं हो पा रहा था।

सायंकाल में क्षौरकर्म का सम्पादन, स्नान के बाद प्रभु का भारती के समीप उपवेशन-

कथं-कथमपि सर्वदिन-अवशेषे।
क्षौर कर्म निर्वाह हइल प्रेम-रसे॥१५२॥
तबे सर्व-लोक-नाथ करि' गंगा-स्नान।
आसिया बसिला यथा संन्यासेर स्थान॥१५३॥

(१५२-१५३) प० अनु०—प्रेमरस में सारा दिन बीत जाने पर सायंकाल के समय जैसे-तैसे क्षौरकर्म समाप्त हुआ। फिर सर्वलोक-नाथ प्रभु गंगास्नान करके उस स्थान पर आकर बैठ गये जो संन्यास के लिए निश्चित था।

(१५२) गौः भाः—श्रीगौरसुन्दर के अपूर्व केशादि- रहित वेश के बनाने में नरसुन्दर (नाई) का हाथ नहीं चल पा रहा था; अनेक प्रकार की चिन्ताओं में डूबे रहने के कारण क्षौरकार्य में विलम्ब होते-होते सारा दिन बीत गया। तब जाकर संन्यासोचित क्षौरकार्य सम्पन्न हुआ।

प्रभु-द्वारा छलपूर्वक भारती के कान में मन्त्र-प्रदान एवं लोक-शिक्षार्थ उनसे मन्त्र ग्रहण करने का अभिनय-

'सर्वशिक्षा-गुरु गौरचन्द्र' वेदे बले।
केशवभारती-स्थाने ताहा कहे छे॥१५४॥
प्रभु कहे,-''स्वप्ने मोरे कोन-महाजन।
कर्णे संन्यासेर मन्त्र करिल कथन॥१५५॥
बुझ देखि ताहा तुमि किबा हय नहे।।''
एत बलि' प्रभु ता'र कर्णे मन्त्र कहे॥१५६॥
छले प्रभु कृपा करि' ताँ'रे शिष्य कैल।
भारतीर चित्ते महा-विस्मय जन्मिल॥१५७॥
भारतीर बलेन,-''एइ महा-मन्त्रवर।
कृष्णेर प्रसादे कि तोमार अगोचर॥''१५८॥
प्रभुर आज्ञाय तबे केशव-भारती।
सेइ मन्त्र प्रभुरे कहिला महा-मति॥१५९॥
चतुर्दिके हरिनाम सुमंगल-ध्वनि।
संन्यास करिला वैकुण्ठेर चूड़ामणि॥१६०॥

(१५४-१६०) प० अनु०—वेद में कहा गया है, 'गौरचन्द्र सर्वशिक्षा-गुरु' हैं। वे प्रभु केशव भारती के निकट छलपूर्वक कहने लगे,-"सपने में किसी महाजन ने मेरे कानों में संन्यास का मन्त्र से दीक्षित करके फिर उसी मन्त्र को लोकशिक्षा के लिए शिष्य का अभिनय करते हुये प्रभु ने उनसे ग्रहण किया।

(१६१-१६७) प० अनु०—प्रभु ने जब मनोहर अरुण वसन धारण किये, तब वे करोड़ों कामदेवों की भाँति सुन्दर हो गये। श्रीमस्तक-सहित उनका सारा अंग चन्दन से लेपित था, मालाओं से पूर्णित उनका श्रीविग्रह शोभा पा रहा था, दोनों श्रीहस्तों में उज्जवल दण्ड-कमण्डलु लिये हुये प्रभु निज प्रेमानन्द में निरन्तर विह्वल हो रहे थे। उनका श्रीमुख कोटि-कोटि चन्द्रमाओं से भी बढ़कर सुन्दर लग रहा था। उनके दोनों नयन-कमल प्रेमधाराओं

से परिपूर्ण थे। कैसा यह प्रभु के संन्यासी रूप का प्रकाशन हुआ। इसको वेदव्यास पूर्णरूप से वर्णन करेंगे। 'विष्णु-सहस्त्रनाम-स्तोत्र' में वेदव्यास ने कहा है, 'कोई अवतार में प्रभु संन्यास ग्रहण करते हैं।' द्विजराज ने इसी बात को सत्य किया है। सभी वैष्णव समाज इस रहस्य को जानते है।

'महाभारत के दानधर्म में १४९ अः,
सहस्त्रनाम स्तोत्र में ७५ संख्या'

संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्तिः परायणः ॥१६८॥

(१६८) गौः भाः-श्रीविष्णुसहस्त्रनाम के अन्यतम भगवन्नाम हैं- 'संन्याकृत्' शम-शान्त अथवा भगवान् के प्रति निष्ठायुक्त। श्रीगौरसुन्दर ने अपने इन सभी नामों की सार्थकता सम्पादित की है।

(१६८) अन्वयः—संन्यासकृत (यतिधर्मपरः) शमः (निर्विषयः) शान्तः (कृष्णैकनिष्ठचित्तः) निष्ठा- शान्तिपरायणः (निष्ठा चित्तैकाग्रं शान्ति च निष्ठाशान्तीः परम् अयनम् आश्रये यस्य सेः)।

(१६८) अनुवादःद (वे ही श्रीविष्णु) यतिधर्म ग्रहणकारी, निर्विषय, केवल कृष्ण के प्रति निष्ठायुक्त, हरिकीर्तनरूप महायज्ञ में दृढ़निष्ठ, केवलाद्वैतवादी अभक्त की निवृत्ति कारिणी शान्ति से लब्ध-महाभाव-परायण।

प्रभु के नामकरणार्थ भारती की चिन्ता एवं
शुद्ध सरस्वती के द्वारा भारती की जिह्वा पर
आकर प्रभु का संन्यास-नाम-वर्णन-

तबे नाम थुइवारे केशव भारती।
मने मने चिन्तिते लागिला महामति ॥१६९॥
''चतुर्द्दश-भुवनेते एमत वैष्णव।
आमार नयने नाहि हय अनुभव ॥१७०॥
अतएव कोथाओ ना थाके येइ नाम।
हेन नाम थुइले मोर पूर्ण हय काम ॥१७१॥
मूले भारतीर शिष्य 'भारती' से हये।
इहाने त' ताहा थुइबारे योग्य नहे ॥१७२॥
भाग्यवान् न्यासिवर एतेक चिन्तिते।
शुद्ध सरस्वती तान आइला जिह्वाते ॥१७३॥

(१६९-१७३) प० अनु०—अब महामति केशव भारती, प्रभु के संन्यास के योग्य नामकरण के लिए मन-ही-मन चिन्तन करने लगे। "चतुर्द्दश भुवनों में मैंने ऐसा वैष्णव कभी नहीं देखा हैं अतः इनका ऐसा नाम रखना चाहिए जो कहीं भी सुनाई न दिया हो। इससे मेरी मनोवांछित आशा पूरी हो जाएगी। विधि-अनुसार भारती का शिष्य 'भारती' होना चाहिए, किन्तु यह नाम इनके योग्य नहीं है। भाग्यवान् न्यासिवर इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि शुद्ध सरस्वती देवी आकर उनकी जिह्वा पर अधिष्ठत हो गईं।

(१७३) गौः भाः-साम्प्रदायिक श्रेणीविशेष का नाम-सम्प्रदाय में स्थित विशेष नाम के साथ ग्रहण किया जाता है; परन्तु यहाँ केशव भारती से श्रीगौरसुन्दर ने 'भारती' नाम ग्रहण नहीं किया। महाप्रभु के नामकरण के समय भारती की जिह्वा पर शुद्धभक्ति के प्रभाव से परविद्या-वाणी उपस्थित हो गईं।

भारती के द्वारा प्रभु का नामकरण एवं
उसका अर्थ-प्रकाशन-

पाइया उचित नाम केशव-भारती।
प्रभु-वक्षे हस्त दिया बले शुद्ध-मति ॥१७४॥
''यत जगतेर तुमि 'कृष्ण' बोलाइया।
कराइला चैतन्य-कीर्तन प्रकाशिया ॥१७५।
एतेके तोमार ना श्रीकृष्णचैतन्य।
सर्वलोक तोमा' हइते याते हइल धन्य ॥''१७६॥

(१७४-१७६) प० अनु०—उचित नाम मिल जाने पर शुद्धमति केशव-भारती प्रभु की छाती पर हाथ रखकर कहने लगे,-"कीर्तन प्रकाशित करके तुमने सारे जगत् को 'कृष्ण' कहलवाकर चैतन्यता प्रदान की हैं इसलिए तुम्हारा नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' रखा जा रहा है। सभी लोग तुम्हारे इस नाम के कारण धन्य हो जायेंगे।"

(१७४) गौः भाः—अपरा विद्या-वाणी को 'दुष्टा सरस्वती' कहते हैं। जिस समय सेवोन्मुखी वार्ता आविर्भूत होती है, उस समय वाणी भगवत् सेवा में ही नियुक्त रहती है।

(१७५) गौः भाः—जड़भोग में उन्मत्त जगत् का सम्बन्ध कृष्ण के साथ करा देने के लिए कृष्णनाम-कीर्तन की व्यवस्था करने से केशव भारती ने भगवान् को 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम से अभिहित किया। कृष्णनाम संकीर्तन से समग्र भोगपरक जगत् का चेतन उन्मोषित हुआ। भगवान् के बारे में सबस व्यक्ति अब तक उदासीन थे। केवल श्रीकृष्ण ही एकमात्र श्रीचैतन्य-विग्रह स्वरूप हैं,-इस बात को सार्वजनिक रूप से जीवगत् को सर्वप्रथम श्रीकृष्णचैतन्य ने ही सुष्ठुभाव से श्रवण करने का अधिकार प्रदान किया है।

प्रभु का नाम सुनते ही चारों
जयध्वनि एवं पुष्पवृष्टि-

एत यदि न्यासिवर बलिला वचन।
जयध्वनि पुष्पवृष्टि हइल तखन॥१७७॥
चतुर्दिके महा हरि-ध्वनि-कोलाहल।
करिया आनन्दे भासे वैष्णव-सकल॥१७८॥

(१७७-१७८) प० अनु०— संन्यासी श्रेष्ठ केशव भारती ने जब ऐसा कहा, तब जय ध्वनि और पुष्पों की वर्षा होने लगी। चारों ओर महा हरिध्वनि का कोलाहल करते हुये सभी वैष्णवजन आनन्द में बहने लगे।

भक्तों द्वारा भारती को प्रणाम एवं
निज-नाम से प्रभु को सन्तोष-

भारतीरे सर्व भक्त करिला प्रणाम।
प्रभुओ हइला तुष्ट लभि' निज जाम॥१७९॥
'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम हइल प्रकाश।
दण्डवत् हइया पड़िला सब दास॥१८०॥
हेनमते संन्यास करिया प्रभु धन्य।
प्रकाशिला आत्मनाम' श्रीकृष्णचैतन्य'॥१८१॥

(१७९-१८१) प० अनु०—सभी भक्तों ने भारती को प्रणाम किया। प्रभु भी अपना उचित नाम मिल जाने से सन्तुष्ट हये। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम का प्रकाशन हुआ। सभी भक्तों ने दण्डवत् पड़कर प्रभु को प्रणाम किया। इस प्रकार से संन्यास ग्रहण करके अपने ध न्य 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम को प्रकाशित किया।

चैतन्यलीला की नित्यता-

सर्व-काल चैतन्य सकल लीला करे।
याँहारे यखन कृपा, देखायेन ताँरे॥१८२॥

(१८२) प० अनु०—श्रीचैतन्य अपनी सभी लीलाएँ सर्वदा करते रहते हैं। जिस पर वे कृपा करते हैं, उसे उन लीलाओं का दर्शन कराते हैं।

नित्यानन्द ही श्रीचैतन्य को सम्पूर्णरूप से
जानते हैं,उनकी आज्ञा से ही ग्रन्थकार-द्वारा
चैतन्यचरित की रचना-

आर कत लीला-रस हइल सेइ स्थाने।
नित्यानन्द-स्वरूपे से सब तत्त्व जाने॥१८३॥
ताँहार आज्ञाय आमि कृपा-अनुरूपे।
किछुमात्र सूत्र आमि लिखिल पुस्तके॥१८४॥

(१८३-१८४) प० अनु०—उसी स्थान पर और भी कितने ही लीला-रसों का प्रकाशन हुआ है नित्यानन्द-स्वरूप उन सब तत्त्वों को जानते हैं। उनकी आज्ञा से उनकी कृपा के अनुसार मैंने इस पुस्तक में कुछ सूत्र रूप से लिखा है।

ग्रन्थकार के द्वारा सभी वैष्णवों के चरणों में प्रणाम निवेदन-पूर्वक निज दैन्य प्रकाशित करते हुये मध्यलीला का उपसंहार-

सर्व-वैष्णवेर पा'ये मोर नमस्कार।
इथे अपराध किछु ना लबे आमार॥१८५॥
वेदे इहा कोटि-कोटि मुनि वेदव्यासे।
वर्णिवेन नाना मते अशेष-विशेषे॥१८६॥
एइ मते मध्य-खण्डे प्रभुर संन्यास।
ये कथा शुनिले हय चैतन्येर दास॥१८७॥
मध्य-खण्डे ईश्वरेर संन्यास-ग्रहण।
इहार श्रवणे मिले कृष्णप्रेम-धन॥१८८॥
श्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्द दुइ प्रभु।
एइ वाञ्छा इहा येन ना पासरि कभ॥१८९॥
हेन दिन हइवे कि चैतन्य-नित्यानन्द।
देखिव वेष्टित चतुर्दिके भक्त-वृन्द॥१९०॥
आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर।
ए बड़ भरसा चित्ते धरि निरन्तर॥१९१॥
मुखेह ये जन बले 'नित्यानन्द-दास'।
से अवश्य देखिवेक चैतन्य-प्रकाश॥१९२॥
चैतन्येर प्रियतम नित्यानन्द-राय।
प्रभु-भृत्य-संग येन ना छाड़े आमाय॥१९३॥
जगतेर प्रेमदाता हेन नित्यानन्द।
तान हञा येन भजों प्रभु-गौरचन्द्र॥१९४॥
संसारेर पार हइ' भक्तिर सागरे।
ये डूबिवे से भजुक निताइ-चान्देरे॥१९५॥
काष्ठेर पुतली येन कुहके नाचाय।
एइमते गौरचन्द्र मोरे ये बोलाय॥१९६॥
पक्षी येन आकाशेर अन्त नाहि पाय।
यत शक्ति थाके, तत दूर उड़ि' याय॥१९७॥
एइमत चैतन्य-कथार अन्त नाइ।
या'र यतदूर शक्ति सबे तत गाइ॥१९८॥
श्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दचान्द जान।
वृन्दावन दास तछु पदयुगे गान॥१९९॥
आनन्दलीलारसविग्रहाय हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय। चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते॥२००॥

इति श्रीचैतन्यभागवते मध्यखण्डे संन्यासग्रहणं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः।

(१८५-२००) प० अनु०—सभी वैष्णवों के चरणों में मैंने नमस्कार निवेदन करता हूँ ताकि इसमें मेरा कोई अपराध न हो जाये। वेद में यह (चरित) कोटि-कोटि वेदव्यास मुनि नानाप्रकार से अशेष-विशेषरूप से वर्णन करेंगे। इस प्रकार से मध्यखण्ड में वर्णित प्रभु की संन्यास-वार्ता के बारे में जो सुनेगा, वह चैतन्य का दास बन जायेगा। मध्यखण्ड में वर्णित ईश्वर-द्वारा संन्यास ग्रहण की इस कथा को सुनने से कृष्णप्रेम-धन मिलता है। मेरी यही इच्छा है कि, श्रीकृष्णचैतन्य औरर नित्यानन्द—इन दोनों प्रभुओं को मैं कभी भूल न जाऊँ। क्या ऐसा दिन कभी आएगा, जब मैं चारों ओर से भक्तवृन्दों-द्वारा घिरे हुये चैतन्य और नित्यानन्द के दर्शन कर सकूँगा श्रीगौरसुन्दर मेरे प्रभु के प्रभु हैं, इसी बड़े भारी भरोसे को मैं निरन्तर अपने हृदय में धारण किये रहता हूँ। मुख से भी जो कहता है,- "मैं नित्यानन्द का दास हूँ", उसे चैतन्य का प्रकाश देखने का सौभाग्य अवश्य मिलता है। नित्यानन्द-राय चैतन्य के प्रियतम हैं। प्रभु और उनके भृत्य के संग से मैं

वंचित नहीं रहूँ। जो नित्यानन्द जगत् के प्रेम दाता हैं, मैं उन्हीं का होकर प्रभु गौरचन्द्र का भजन कर सकूँ, यही मेरी इच्छा है। भवसागर के पार होकर जो भक्ति के सागर में डूबना चाहता है, उसे नित्यानन्द चन्द्र का भजन करना चाहिए। काष्ठ की पुतली को जैसे नट नचाता है, उसी प्रकार से गौरचन्द्र मुझसे बुलवा रहे हैं। पक्षियों को जैसे आकाश का अन्त नहीं मिलता है, जितनी शक्ति है, उतनी ऊँचाई तक वे उड़ सकते हैं, उसी प्रकार चैतन्य-कथा का भी कोई अन्त नहीं है। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार वे चैतन्य-महिमा का कीर्तन करते हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानन्द चाँद जिनके जीवन हैं, वे वृन्दावन दास उनके युगल-श्रीचरणों में उनकी महिमा का गान करते हैं।

हे श्रीचैतन्यचन्द्र! आप कृष्णानन्द-लीला-रस के विग्रह-स्वरूप हैं, आप स्वर्णच्छटा-मण्डित लोकातीत सुन्दर मूर्त्ति हैं, आपने कृष्ण का उज्जवल प्रेम-रस जगत् को प्रदान किया है। आपको मेरा बारम्बार मनस्कार है।

(१९२) गौः भाः—आदिमूल श्रीगुरू-विग्रह श्रीनित्यानन्द की भृत्यबुद्धि प्राप्त न करते हुये भी बाहर से गुरुदास कहकर स्वीकार करने से उन्हें श्रीचैतन्य प्रकाश-मूर्त्ति का निश्चितरूप से दर्शन मिलेगा।

(१९३) गौः भाः—ऐसा हो जाये कि, मैं कभी भी किसी भी दिन अपने गुरुदेव श्रीनित्यानन्द प्रभु की सेवा छोड़कर किसी अन्य कार्य में लिप्त न हो जाऊँ॥

इति गौड़ीय-भाष्य में अष्टाविंश अध्याय समाप्त

इति मध्यखण्ड समाप्त